शरत्-समग्र

[उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध एवं संस्मरण]

चतुर्थ खण्ड

अमर कथाकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय की सम्पूर्ण रचनाए पांच खण्डो मे

संपादन—विश्वनाथ मुखर्जी

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना

हिन्दी प्रचारक संस्थान

पो. बा ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी २२१००१

प्रचारक ग्रंथावली परियोजना : ४

सहायक प्रस्तुति कन्हैयालाल 'राज'

जनवरी, १९९०

मूल्य : ४०.०० प्रति खण्ड

प्रकाशक :
विजय प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० ब० ११०६, पिशाचमोचन
वाराणसी-२२१००१

मुद्रक :
मोनार्क इन्डस्ट्रीज
(आफसेट प्रिंटिंग)
इन्डस्ट्रियल स्टेट, जौनपुर-222 002
दूरभाष - 2167

फोटो कम्पोजिंग
विशिष्टा फोटोग्राफिक्स (प्रा०) लि०
एच-७४, सेक्टर-९
नोएडा, गाजियाबाद

SARAT SAMAGRA . Edited By Vishwanath Mukherjee

प्रकाशकीय

शरत् बाबू की रचनाएं आज हिन्दी पाठको को समर्पित करते हुए हमे अपार हर्ष हो रहा है। हिन्दी मे यह प्रथम प्रयास है। शरत् बाबू के सभी उपन्यासो, कहानियो, लेखो के अलावा उनके सस्मरण, अनेक अज्ञात रचनाए, अधूरी कहानिया और उपन्यासो के अंशो को प्रकाशित किया गया है। उनके महत्वपूर्ण पत्र एवं उनकी प्रामाणिक जीवनी प्रकाशित किये गये है। इस ग्रथावली की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि समग्र रचनाए बिना काट-छांट के प्रकाशित की गयी है।

हमे खेद है कि इस समग्र के लिए पाठको को लम्बे अर्से तक प्रतीक्षा करनी पडी और हम अपने वायदे के अनुसार समय पर इसका प्रकाशन नही कर सके। कई हजार पाठको के उलाहने निरन्तर प्राप्त होते रहे। सच तो यह है कि यह एक महायज्ञ था जो आज पांच खण्डो मे संपूर्ण किया गया। अगर पाठको का इसी प्रकार स्नेह मिलता रहा तो हम सस्ती कीमत मे अन्य लेखको की रचनाए प्रस्तुत करने मे सफल हो सकेगे। शीघ्र ही हम सर्वश्री वृन्दावन लाल वर्मा और रामेश्वर समग्र पाठको को समर्पित करने जा रहे है।

— प्रकाशक

कृतज्ञता ज्ञापन

शरत्-समग्र का प्रकाशन हिन्दी-जगत के लिए एक क्रान्तिकारी कदम है। आज के युग मे जहा जीवनोपयोगी सारी सामग्रियो की कीमते बढ रही है, वही ज्ञान पिपासुओं की प्यास बुझाने के लिए सस्ती कीमत मे पुस्तके देने के लिए 'प्रचारक ग्रथावली' के सयोजकगण सर्वश्री विजय प्रकाश बेरी, राजेन्द्र प्रसाद बेरी एव अनिल बेरी कटिबद्ध है। शरत् बाबू की सपूर्ण कृतियो का मूल्य दो हजार रुपये लगभग होगा और प्रकाशक उसे दो सौ रुपये मे दे रहा है। इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं।

इस ग्रथावली मे उनके सभी उपन्यास, कहानी, निबध, अप्रकाशित तथा अज्ञात रचनाओं के अलावा अनेक महत्वपूर्ण पत्रो का प्रकाशन किया गया हैं। केवल यही नही, शरत् बाबू की प्रामाणिक जीवनी अनेक दस्तावेजो के साथ, प्रथम बार प्रकाशित हो रही है जिससे ज्ञात हो सकेगा कि उनके बारे मे अब तक जो कुछ लिखा गया है, वह भ्रमपूर्ण है।

शरत् ग्रथावली का प्रकाशन वृहत-यज्ञ के बराबर रहा है। इस कार्य के पुरोधा है –सर्वश्री (स्व०) निहालचन्द्र बेरी, डा० महादेव साहा, डा० बदरीनाथ कपूर सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय, रसिक बिहारी, छेदीलाल गुप्त, कुलदीप कौल, कन्हैयालाल 'राज', वशिष्ठ मुनि ओझा, वीरेश्वर भट्टाचार्य तथा सूर्यकान्त तिवारी। अगर इन सभी बंधुओ का सहयोग न मिलता तो इसके प्रकाशन मे और विलम्ब होता। मै इन सभी आदरणीय सहयोगियो का आभारी हू। विशेष रूप से उन पाठको का आभारी हू जो पिछले वर्ष से ग्रथावली पाने को उत्सुक रहे है। अब इतजार की घडिया समाप्त हो गयी।

—संपादक

विषय- सूची

शरत् बाबू की पाण्डुलिपि

'देवघर की स्मृति' नामक कहानी का एक पृष्ठ

शरत् के उपन्यास

- विप्रदास
- शेष प्रश्न
- अरक्षणीया
- आखिरी परिचय
- श्रीकांत (चतुर्थ खण्ड)

विप्रदास

बलरामपुर गाँव की रथशाला मे किसानों की एक बैठक हो गयी। पास की रेलवे-लाइन के कुली गैंग ने रविवार का अवकाश होने के कारण सभा मे सम्मिलित होकर इसकी शोभा बढ़ायी और कलकत्ते से आये हुए कई प्रसिद्ध वक्ताओं ने वर्तमान युग की विषमता और अमैत्री के विरुद्ध उग्र भाषण दे डाले। काफी प्रस्ताव हुए और अन्त मे जुलूस बनाकर वन्देमातरम् के नारों के साथ गाँव की परिक्रमा की गयी और उस दिन के सम्मेलन का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

बलरामपुर समृद्ध गाँव है, यहाँ छोटे-बड़े बहुत से ताल्लुकेदारो और धनी गृहस्थ रहते हैं। मुसलमान किसानों की बस्ती गाँव के किनारे पर है और उसी के पास कई एक घर बाग्दियों और दुले लोगो के हैं। गगा की एक धारा ने बहुत पहले ही सूखकर कोसो लम्बी नहर बना दी है, इसी के किनार पर उनके घर बने हैं। यज्ञेश्वर मुखोपाध्याय इस गाँव के सबसे धनी पुरुष हैं। उनकी जमीदारी, ताल्लुका और व्यापार इत्यादि के धन ऐश्वर्य को अपार कहना अत्युक्ति नही होगी। जिस समय वह जुलूस लाल कपडे पर लिखे हुए भाँति-भाँति के नारों के साथ उच्च स्वर से किसान मजदूरों की जय-जयकार करता हुआ उनके रमणीय महल के सामने वाले मार्ग से निकल रहा था, उस समय एक दीर्घाकृति, बलिष्ठ नवयुवक ऊपर के बरामदे मे खडा होकर नीचे का सारा दृश्य शान्त भाव से देख रहा था। अचानक उसकी ओर दृष्टि पडते ही जनता का जोशपूर्ण शोर पल-भर मे ठण्डा पड गया। आगे-आगे चलने वाले नेताओ मे से दो-तीन ने विस्मित होकर इधर-उधर देखते हुए बहुतेरे लोगो की दृष्टि के साथ-साथ जब ऊपर दृष्टि घुमायी तो वह खम्भे की ओट मे धीरे-धीरे छिप गया। वे पूछ बैठे—'कौन है?'

कई आदमियो ने फुसफुसाहट मे कहा—'विप्रदास बाबू।'

'कौन हैं विप्रदास? क्या गाँव के जमीदार?'

किसी ने कह दिया—'हाँ।'

नेतागण शहर के आदमी हैं। वे किसी को कुछ समझते नही, अपमानित स्वर से कहा—'ओह यही!' और फिर तुरन्त ही उन्होंने उच्च स्वर से चिल्लाकर और हाथ उठाकर कहा—'बोलो भारत माता की जय! बोलो किसान-मजदूरो की जय! वन्देमातरम्!'

लेकिन इससे कोई खास फायदा नही हुआ। बहुतेरे चुप हो गये, या मन-ही-मन मे नारा लगाया और जिन दो-चार लोगो ने आवाज भी लगायी, उनका दबा हुआ कण्ठ-स्वर ऊँचा नही उठ सका। विप्रदास के बरामदे को पार कर वह उनके कानों तक पहुँचा या नही, यह कहा नही जा सकता। नेताओ ने अपने को अपमानित समझकर, खीझकर कहा—'इस एक साधारण देहाती जमीदार का इतना भय! यही तो हमारे शत्रु हैं, हमारा खून निरन्तर चूस रहे हैं। हमारा असली आक्रमण तो इन्ही के विरुद्ध है। वे लोग—

इस उग्र भाषण का सिलसिला अचानक विघ्न पहुँचने से रुक गया। कितने ही तीव्र बाण अभी उनके तरकश मे मौजूद थे, किन्तु प्रयोग करने मे बाधा हो गयी। किसी ने भीड़ मे से कहा—'उनके दादा हैं!'

'किनके?'

एक युवक ने, जिसकी आयु लगभग पच्चीस-छब्बीस साल की थी, और झडा लिए सबके आगे-आगे चल रहा था, मुँह फेरकर खडा हो गया और कहने लगा—'वे मेरे बडे भाई हैं।'

परन्तु इसी युवक के आग्रह, परिश्रम और पैसे से आज का सम्मेलन सफल हो सका था।

अच्छा, आपके बडे भाई हैं! तो आप भी यहाँ के जमीदार हैं?'

युवक का सिर लज्जा से झुक पडा।

दो

छोटे भाई को अपनी बैठक मे बुलाकर विप्रदास ने कहा—'कल का कार्यक्रम बुरा नही रहा; बहुत कुछ विस्मित करने वाला था। नारे भी अच्छे चुने गये। उनमे तीखापन था, यह तो मानना ही होगा।'

द्विजदास चुपचाप खडा रहा।

विप्रदास ने पूछा—'जुलूस क्या खासतौर से मेरे ही लिए, मेरी नाक के सामने से ले जाया गया। डर जाऊँगा, इसीलिए क्या?'

द्विजदास ने शान्त होकर उत्तर दिया—'केवल आप ही के लिए नही। जुलूस किसी भी मार्ग से क्यो न जाए—जिन्हे डराना है, वे तो डर ही जायेगे, दादा।'

विप्रदास मुस्कराया। उनकी यह हँसी अवज्ञा से भरी थी। उन्होने कहा—'तुम्हारे भैया उस प्रकार के व्यक्ति नही हैं, यह बात तुम्हारे जुलूस के बहुत से लोग जानते थे। वर्ना उनकी जय-ध्वनि सुनने के लिए मुझे बरामदे मे जाकर कानो से सुनने की आवश्यकता न होती, मकान के भीतर से ही सुनाई पड जाती। तुम्हारे भॉति-भॉति के झण्डो और लम्बे-चौडे भाषणो से मैं घबराता नही। यह मैं भली-भॉति जानता हूँ कि लगाये हुए नकली दॉतो से दूसरो के ऊपर दॉत पीसे भर जा सकते हैं, उनसे काटने का कार्य नही हो सकता।'

कल जिस वजह से अनेक लोगो का कण्ठरोध हुआ था, वह छिपा नही था और इसी से द्विजदास मन ही मन बहुत लज्जित भी हुआ था। वह स्वभाव से शान्त प्रकृति का व्यक्ति है, बडे भाई का बहुत अधिक सम्मान करने के कारण शायद और किसी प्रसग मे भी चुप रह जाता, परन्तु जिस बात को लेकर उन्होंने ताना मारा, उसे सहना कठिन था। फिर भी मृदु कण्ठ से उसने कहा—''दादा, लगाये दाँतो से कितना काम चलता है यह हम जानते हैं। केवल आप लोग ही नही जानते कि ससार मे असली दाँत वाले व्यक्ति भी हैं। जब काटने का समय आयेगा तब उनकी कमी न रहेगी।'

उत्तर निराशपूर्ण था। विप्रदास ने विस्मय से उसके मुँह की ओर देखते हुए कहा—'अच्छा।'

द्विजदास उत्तर मे कुछ कहने ही जा रहा था, पर भय से रुक गया। भय विप्रदास का नही, मॉ का था। अचानक द्वार के बाहर मॉ का कण्ठ सुनाई पडा—'तुम लोग द्वार पर पर्दा क्यो लटकाये रखते हो? नेम-धरम से घर मे पैर रखना कठिन हो गया है। घर-द्वार सब विलायती फैशन की वस्तुओ से भर गया है।'

द्विजदास ने तुरन्त ही पर्दे को एक ओर हटा दिया और विप्रदास तख्त से उठ खडे हुए। एक प्रौढ विधवा स्त्री कमरे मे आयी। अवस्था चालीस से ऊपर है, परन्तु रूप का ठिकाना नही। सूखे मुँह पर वैधव्य के दु ख की छाप पडी है, यह देखते ही मालूम हो जाता है। छोटे लडके की ओर पीठ फेरकर बडे लडके के लिए उन्होंने कहा—'अरे विपिन, सुना है कि इस महीने मे एकादशी के विषय मे पत्रा मे बडी गडबडी है। ऐसा तो कभी हुआ नही।'

विप्रदास ने कहा—'ऐसा तो नही होना चाहिए, मॉ।'

'तू तनिक स्मृतिरत्न महाशय को बुलवा ले, देखे उनकी क्या राय हैं?'

विप्रदास कुछ हँसकर बोला—'अच्छा बुलवाता हूँ। परन्तु उनकी राय से क्या होगा मॉ, तुम्हारे कानो मे जब यह सूचना एक बार पड चुकी हैं तो इन दोनो दिनो मे किसी भी दिन तुम तो पानी ग्रहण नही करोगी, यह मैं समझता हूँ।'

मा ने हँसकर कहा—'योंही उपवास करते रहने का क्या कोई शौक है? परन्तु और उपाय क्या है? इसे करने मे पुण्य नही है, और न करने मे रौरव नरक है। सुना है बहू कह रही थी कि अखबार मे लिखा है कोई बडे पंडित कलकत्ते मे भागवत की बहुत सुन्दर व्याख्या कर रहे हैं। तनिक पता तो लगा कि क्या वे इस झोपडी को भी पवित्र कर सकेगे?''

'तुम्हारी आज्ञा है तो पता लगा दूँगा, मॉ।'

'क्यो, मेरी आज्ञा की क्या आवश्यकता? क्या तुम लोगो का सुनने को मन नही होता? पता नही, कब कथा हुई थी?'

विपदास ने हँसते हुए कुछ डरकर कहा—'अभी तीन महीने भी नही हुए उसको, मॉ।'

मॉ ने आश्चर्य से कहा—'केवल तीन महीने! परन्तु तीन महीने क्या कम होते हैं? जो कुछ भी हो बेटा, पर इस बार नही कराने से काम नही चलेगा। मेरी दोनो मामियो ने चिट्ठियाँ लिखी हैं, कैलास मानसरोवर के दर्शन के लिए इस बार मैं अवश्य जाऊँगी।'

विप्रदास ने हाथ जोडकर कहा—'दोहाई मॉ! यह आज्ञा मत दो। हम दोनो मे से एक यदि साथ नही जाता तो मामियो की सरक्षता में तुम्हे तिब्बत नही भेज सकूँगा। और सभी हानि मैं सह सकता हूँ, लेकिन मॉ को मैं नही छोड सकता।'

मॉ की ऑखे भर आयी, बोली—'डर मत, कैलास-यात्रा में मृत्यु होगी, ऐसा पुण्य तेरी मॉ ने नही

किया है। मैं फिर लौट आऊँगी। लडको मे तू तो मेरे साथ नही जा सकेगा विपिन, तेरे ऊपर ही इतने बडे परिवार का सारा वोझ है। और पीछे जो लडका खडा हुआ है, उसे साथ लेकर मैं वैकुण्ठ भी नही जाऊँगी। ब्राह्मण का लडका होकर सध्या-गायत्री तो बहुत पहले ही खत्म कर चुका, सुना है कलकत्ते मे खाने-पीने मे भी विचार नही करता। इस पर कल उसने क्या किया, सुना है?'

विप्रदास ने भोल आदमी के समान कहा, 'और क्या किया इसने? नही, मैंने तो कुछ भी नही सुना।'

माँ ने कहा—'अवश्य सुना है। तेरी आँखों को धोखा देगा, इतनी बुद्धि इस लडके मे नही है। लेकिन इसकी कुछ रोकथाम कर। यह हमारा ही खायेगा-पहनेगा और हमारे ही रुपये से कलकत्ते से आदमी बुलाकर हमारी ही प्रजा को बिगाडने की कोशिश करेगा। इसका कलकत्ते का खर्च तू बन्द ही कर दे।'

विप्रदास ने विस्मित होकर कहा—'यह क्या कहती हो माँ, पढाई का खर्च बन्द कर दूँ! वह पढेगा नही?'

माँ ने पूछा—'क्या आवश्यकता है? मेरे श्वसुर की पाठशाला के लडको के दल ने जब आकर कहा कि विदेशी पढाई-लिखाई से देश का सत्यानाश हो रहा है, तब तू बेत लेकर उन्हें मारने दौडा था। और अब तेरा छोटा भाई जब ठीक उन्ही बातो को कह रहा है तो इसका कोई विरोध नही करेगा? यह तेरा कैसा विचार है?'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'इसका कारण है माँ! स्कूल मे उन्नति न पाने का उलाहना मैं सहन नही कर सकता, लेकिन द्विजू के समान एम० ए० उत्तीर्ण करके विलायती शिक्षा के प्रति अपशब्द कहना मुझे बुरा नही लगता।'

माँ बोली—'परन्तु मेरे ही रुपयो से मेरी ही प्रजा को उकसाना! यह बात कैसे होगी?'

अब तक द्विजदास चुप था, एक भी बात का उत्तर उसने नही दिया। अब उसने कहा—'कल की सभा-समिति के लिए तुम्हारी जमीदारी का एक पैसा भी मैंने अपव्यय नही किया।'

कमरे मे आने के बाद से माँ ने एक बार भी पीछे की ओर नही देखा था, इस बार भी नही देखा। विप्रदास से ही पूछा—'तो नालायक से पूछ तो सही कि रुपया कहाँ से पाया? क्या कही नौकरी कर रहा है?'

ठीक इसी समय पर्दे के बाहर आहिस्ता से चूडियो की खनखनाहट सुनाई दी। विप्रदास ध्यान से सुनकर बोला—'यही तो इसका उत्तर है माँ! यदि तुम्हारे घर की बहू रुपये देती है तो मना कौन करे, तुम्ही बताओ?'

माँ को याद आ गयी। बोली—'हाँ, यही बात है। यह काम उस सती का ही है। बडे बाप की लडकी है और बाप की जमीदारी से सालाना हजार रुपये पाती है, वह बात तो मैं भूल ही गयी। वह अपने योग्य देवर को रुपये दे रही है!' फिर कुछ शान्त होकर बोली—'तेरे ब्याह के लिए जब समधी स्वय आये, उसी समय मैंने मालिक से कहा था कि रायवश की कन्या घर मे लाने की आवश्यकता नही। उन्ही के घराने के अनाथराय ही ने तो विलायत मे मेम से शादी की थी। वे जो चाहे सो कर सकते हैं। ससार मे उनके लिए असम्भव क्या है?'

विप्रदास हँसकर चुप रह गया। उसे मालूम था कि सती के भाग्य मे यह ताना लिखा है। उसके मायके के सम्बन्धियो मे किसी अनाथराय ने बगाली मेम से शादी की थी, यह बात माँ भूल न सकी।

सभी को मौन देखकर उन्होने फिर कहा—'अच्छा जाने दो। बाबा कैलासनाथ इस बार याद कर रहे हैं, उनका दर्शन कर आऊँ तब इसका प्रबन्ध करूँगी।' इतना कहकर वह कमरे से बाहर निकल गयी।

विप्रदास ने कहा—'क्यो द्विजू, माँ के साथ जा सकेगा? जब उनके हृदय मे यह बात जम गयी है तब उन्हे रोका जा सकेगा, इसकी मुझे आशा नही।'

द्विजदास ने उसी दम अस्वीकार करते हुए कहा—'आपको मालूम तो है कि देवी-देवताओ मे मेरी श्रद्धा नहीं है। इसके सिवा माँ मेरे साथ स्वर्ग मे भी जाने के लिए प्रस्तुत नही है, यह तो आप उन्ही के मुख से सुन चुके हैं।'

विप्रदास झल्लाकर बोला—'हाँ, सुना पण्डितजी! पर तू जायेगा या नही, यह कह?'

'मुझे अभी मरने की फुरसत नही।' इतना कहकर दूसरे प्रश्न के सुनने से पहले ही द्विजदास कमरे से बाहर निकल गया।

लम्बी साँस छोडते हुए विप्रदास बोला—'तो ऐसी बात है। देश का कार्य ऐसा है कि माँ की आज्ञा भी नही मानी जा सकती।'

यहाँ पर माँ का थोडा परिचय दे देना आवश्यक है। वह विप्रदास की सौतेली माँ है। उसकी माँ की मृत्यु के वर्ष-भर बाद ही यज्ञेश्वर दयामयी को व्याह कर अपने घर लाये और उसी दिन से उन्होंने उसका पालन-पोषण किया। वह सगी माँ नही है, यह बात विप्रदास बडी आयु होने तक भी नही जान पाया था।

तीन

केवल भाभी ही इस घर मे द्विजदास का सबसे अधिक आदर करती थी। उसके सभी प्रकार के बाहरी व्यय के रुपये भी उन्ही के बक्स से आते थे। सती केवल रिश्ते मे ही बडी नही थी, अवस्था में भी वह कई महीने बडी थी। इसीलिए प्राय' वह उसका नाम लेकर पुकारती थी। इसकी शिकायत द्विजदास ने बचपन में कितनी बार माँ से की है, इसका कोई लेखा नही।

केवल ग्यारह वर्ष की आयु मे सती का बहू के रूप मे इस घर मे आने के कारण उसके आदर की सीमा नही थी। सास हँसकर कहती—'ऐसी बात है? किन्तु बहू, यह तो तुम्हारा अन्याय है, देवर को नाम लेकर बुलाना?'

सती कहती—'अन्याय कैसा, मैं उससे आयु मे अधिक बडी जो हूँ।'

'अधिक बडी! कितनी बडी?'

'मैं पैदा हुई वैशाख मे और वह भादो मे।'

माँ हँसकर कहती—'हाँ, भादो मे ही तो, मैं तो भूल ही गयी थी। इस पर भी यदि कभी वह शिकायत करने आता है तो उसके कान मल दूँगी।'

माँ की कचहरी मे हारकर द्विज जब अप्रसन्न हो चला जाता तो बहू को गोद मे समेटकर सास प्यार से कहती—'वह नासमझ लडका है, इसीलिए नही समझता, लल्ला या देवर कहने से बहुत प्रसन्न होता है। कभी-कभी यही कहकर बुला लिया करो, समझ गयी बहू?'

सहमत होते हुए सती ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—'अच्छा माँ, कभी-कभी यह कहकर पुकारूँगी।'

उस समय वह बालिका थी और आज वह इतने बडे घर की गृहिणी है। विधवा होने के बाद से सास तो अपने जप-तप और धर्म-कर्म मे लगी रहती हैं, लेकिन उनका उस दिन का उपदेश आगे चलकर सती के लिए बडे काम का प्रमाणित हुआ, जैसे आज।

पहले वाले परिच्छेद में वर्णित घटना के पश्चात् लगभग पन्द्रह-सोलह दिन व्यतीत हो गये हैं, सबेरे सती ने देवर के कमरे मे प्रवेश करते हुए पुकारा—'देवर!'

हाथ उठाकर रोकते हुए द्विजदास बोला—'बस करो भाभी, अधिक चापलूसी की आवश्यकता नही, मैं करूँगा।'

'क्या करोगे, पूछूँ?'

'तुम जो आज्ञा दोगी, वही। किन्तु यह दादा का बडा अन्याय है।'

'अन्याय कैसा हे, बताओ तो सही?'

द्विजदास ने उसी प्रकार क्रोध मे कहा—'मैं जानता हूँ। अभी दादा के कमरे के सामने से होकर आ रहा हूँ। भीतर माँ और वह थे, माँ का और तुम्हारा गुप्त आयोजन मेरे कानो मे पहुँच गया। उनमे साहस नही है कि मुझसे कहे, इसीलिए स्वार्थ-सिद्धि के लिए तुम्हारी सहायता ली गयी है। बताओ तो सही, कितना बडा अन्याय है?'

सती ने हँसकर कहा—'अन्याय तो नही हे देवर, वे अच्छी प्रकार जानते हैं कि उनके कहते ही टका-सा उत्तर मिलेगा कि मुझे मरने का अवकाश नही हैं, परन्तु भाभी की आज्ञा होने पर क्या मजाल है कि द्विजू मना कर दे।'

द्विजदास गर्दन हिलाकर बोला—'वही मैं दुविधा मे पड जाता हूँ, इसी कारण उन्हे बल मिल जाता है। परन्तु करना क्या चाहिए?'

सती ने कहा—'माँ, कैलास-दर्शन को जायेंगी और तुम्हे साथ जाना होगा।'

थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् द्विजदास बोला—'दो-तीन महीने से कम नही लगेंगे'। काम की कितनी हानि होगी, वह भी सोचा है भाभी?'

यह बात मानकर सती ने कहा—'हानि तो कुछ होगी ही, परन्तु एक नया स्थान भी तो देख आओगे। अपनी ओर से इसे सोलहो आने हानि नही कहा जा सकता। मेरे राजा देवर, अब मना मत करना।'

द्विजदास ने कहा—'तुम जब आज्ञा दे रही हो तो मना न करूँगा, साथ-साथ चलूँगा! लेकिन अचानक ही उस दिन दादा मे मेरा कलकत्ते पढने का खर्च बन्द करवा देने के लिए माँ ने कहा था।'

सती ने हँसकर कहा—'यह तो क्रोध की बात है, भाई। परन्तु आज्ञा देने के लिए माँ के अलावा दूसरा कोई है नही। यह बात भूलने से भी काम नही बनेगा।'

द्विजदास ने उत्तर दिया—'भाभी, भूला नही हूँ परन्तु उस दिन से मैंने क्या प्रतिज्ञा की है, मालूम है? मैं अकेला आदमी हूँ, शादी करने का मौका मुझे कभी मिलेगा नही, सयोग भी नही आयेगा. इसलिए खर्च कम होगा। आवश्यकता होगी तो लडके पढाकर पेट पालूँगा, परन्तु इनकी रियासत से कभी एक पैसा न लूँगा।'

सती ने फिर हँसकर कहा—'माँगने की आवश्यकता नही होगी देवर, स्वय आकर उपस्थित हो जायेगा। मान लो यह भी नही होता तो तुम्हे लडके पढाने की आवश्यकता न पडेगी। कम-से-कम मेरे जीवित रहते तो नही, यह उत्तरदायित्व मेरा है।'

यह भरोसा द्विजदास के दिल मे भी पहले से था, पल-भर के लिए उसकी पलके अश्रुपूर्ण हो गयी, परन्तु उस मनोभाव को शीघ्रता से दबाकर उसने पूछा—'इन्होने कब यात्रा करने का निश्चय किया है? जब कभी जायेगी तब मुझे साथ जाना ही होगा, परन्तु माँ ने उस दिन स्पष्ट कह दिया था कि मुझ जैसे पापी को लेकर स्वर्ग जाने के लिए भी इच्छुक नही हैं। इसी को भाग्य की ईर्ष्या कहते हैं न?'

सती ने इस उलाहने का उत्तर न दिया, बल्कि मौन रह गयी।

द्विजदास ने कहा—'कुछ भी हो भाभी, तुम्हारी आज्ञा न टालूँगा, उनसे कह देना निश्चिन्त रहे।'

सती ने हँसकर कहा—'मुझे भेजकर ही वे निश्चिन्त हो गये हैं। मकान से निकलते ही तुम्हारे दादा की बोली कान मे पडी, वह उच्च स्वर से माँ से कह रहे थे—'आप निश्चिन्त होकर यात्रा की तैयारी करो माँ, जिसे दूत बनाया गया है, उसके सामने विवाद चलेगा नही। तुम देख लेना नीचा सिर करके वह स्वीकार कर लेगा।'

द्विजदास ने यह सुना तो क्रोध से पल-भर चुप रहकर बोला—'अस्वीकार नही कर सकूँगा, यह समझकर यदि उन लोगो ने यह तिकडम निकाला हो कि स्त्रियो के इस निरर्थक विचार को पूरा करने का साधन मुझे ही बनना पडेगा तो मेरी ओर से तुम भैया से कह देना भाभी, कि उन लोगो को शर्म आनी चाहिए।'

सती ने कहा—'कहने से कोई लाभ न होगा देवर, जमीदार बनकर जो रिआया का खून चूसते है उनकी यही नीति है। अपना स्वार्थ सिद्ध करते इन्हे शर्म नही लगती। धन के आधे के स्वामी होकर भी जब तुम्हे इनकी रियासत से रुपये लेने मे हिचक होती है तब एक ओर मुझे जैसा दु ख होता है, उसी प्रकार दूसरी ओर मन प्रसन्नता से भर उठता है। मैंने तुम्हारा नाम लेकर माँ को विश्वास दिलाया है कि उनके जाने मे किसी प्रकार बाधा न होगी, तुम साथ जाओगे। यात्रा से कुशलता से लौट आओ देवर, जितनी भी हानि होगी, मैं क्षतिपूर्ति करूँगी।'

द्विजदास चुपचाप चौकी से उठकर भाभी के पैर छूकर अपनी जगह आकर बैठा।

सती ने कहा—'अब तक तो दूसरो के लिए सिफारिश मे समय बीता, अब मेरा भी एक अनुरोध है।'

द्विजदास ने हँसकर पूछा—'तुम्हारा निजी? लेकिन भाभी, यह मुझसे होगा नही।'

सती ने हँसकर कहा—'कोई आश्चर्य की बात नही देवर, भय लगता है कही अस्वीकार न कर दो।'

'अच्छा, कहकर ही देख लो न।'

सती ने कहा—'मेरे एक म्लेच्छ चाचा है? अपने नही, पिताजी के चचेरे भाई हैं, वह विलायत गये थे। यदि यह सूचना उस समय यहाँ पहुँची होती तो मेरा इस घर मे प्रवेश न हो पाता। शायद इस बात को तुमने माँ के मुँह से सुना होगा।

''बहुत बार। यहाँ तक कि औसत मे प्रतिदिन एक बार का लेखा लगाया जाय तो इन पद्रह-सोलह वर्षो मे कम-से-कम पॉच-छ हजार बार।'

सती ने हँसकर कहा—'मेरा भी अनुमान ऐसा ही है। चाचा बम्बई में रहते हैं। उनकी एक कन्या वही पढती है। अगले वर्ष वह पढाई समाप्त करने के लिए विलायत जायेगी। तुम्हे जाकर उसे लाना होगा।'

'कहा से? बम्बई से?'

'हाँ! उसने लिखा है कि वह अकेली आ सकती है, परन्तु इतनी दूर अकेली आने के लिए कहने का साहस मुझे नही होता।'

'उसे पहुँचा देने के लिए वहाँ कोई नही है?'

'नहीं, चाचा को अवकाश नही मिल सकता।'

द्विजदास एकाएक तैयार न हो सका, कुछ सोचने लगा।

सती बोली—'जब मेरी शादी हुई तब वह सात-आठ वर्ष की बच्ची थी उसके बाद केवल एक बार ही भेंट हुई थी कलकत्ते मे, उस समय वह मैट्रिक पास करके आई०ए० मे पढ़ रही थी—उस बात को तो कई वर्ष हो गये। उसे मैं बहुत प्यार करती हूँ। देवर, यदि कष्ट उठाकर उसे यहाँ ला देते। बुलाने के लिए वह मुझे पत्र लिखती थी, लेकिन अवसर नही मिलता था।'

द्विजदास ने पूछा—'परन्तु इसी बीच अवसर कैसे मिल गया? क्या माँ सहमत हो गयी?'

इस प्रश्न का उत्तर तत्काल न दे सकने के कारण सती के मुँह पर घबराहट आ गयी। कुछ रुककर बोली—''माँ से कह दिया है। अभी सम्मति तो नही दी है, किन्तु अपनी तीर्थ-यात्रा मे इतनी फँसी है कि विश्वास है कि मना न करेगी। इसके अलावा जब स्वय नही रहेंगी तो सुगमता से मेरे पास वह दो-तीन महीने रह सकती है।'

द्विजदास ने मन ही मे जान लिया कि आज्ञा न मिलने पर भी इस अवसर पर अपनी प्रवासी बहिन को एक बार अपने पास बुलाना चाहती है। उसने पूछा—'तुम्हारे चाचा ब्रह्मसमाजी है क्या?'

सती ने उत्तर दिया—'नही। परन्तु हिन्दू-समाज भी उन्हे अपनाने के लिए प्रस्तुत नही है। वे असल मे कहा है, शायद इसका पता उन्हे भी नहीं है। इसी प्रकार दिन व्यतीत हो रहे हैं।'

यही दशा बहुतेरों की है। द्विजू मन-ही-मन अप्रसन्न होकर बोला—'मुझे जाने मे हिचक नही है भाभी। परन्तु मेरा कहना है कि माँ के रहते हुए तुम उसे यहाँ मत बुलाओ। माँ को तो जानती हो हो सकता है कि खान-पान, छुआछूत लेकर ऐसा झझट खडा कर दे कि बहिन के लिए तुम्हे लज्जित होना पडे। अच्छा तो यह होगा कि हमारे चले जाने के पश्चात् उसे बुलाने की व्यवस्था करो, सभी प्रकार से यही अच्छा रहेगा।'

यही राय अच्छी है, इसे सती स्वय जानती थी। किन्तु जब उसने स्वय पत्र लिखकर आने की प्रार्थना की है तो अनिश्चित भविष्य की आशा दिलाकर इस समय न आने के लिए कैसे पत्र लिखे, यह बात उसकी समझ मे न आयी। इसमे सकोच और क्लेश क्या कम होता है? कहने लगी—'अपनी बहिन होने के नाते ही नही कह रही हूँ देवर, उस बार महीने-भर कलकत्ते मे उसे अपने पास पाकर भली-भाँति से जान लिया है कि रूप-गुण मे वैसी लडकी पृथ्वी पर दुर्लभ है। बाहर से उसका चरित्र कैसा भी क्यो न दीख पडे, यदि माँ उसे दो दिन भी अपने पास देख लेती तो लडकियो के विषय मे उनका विचार ही बदल जाता। वह कभी उसका अपमान नहीं कर सकेगी।'

द्विजदास ने कहा—'किन्तु दो दिन ही तो माँ को दिखाना कठिन है भाभी। वे तो देखना ही नही चाहेगी। यह भी सच है।—

सती ने कहा—'किन्तु उसके सौन्दर्य पर उनकी दृष्टि तो पडेगी ही? आँख बन्द कर माँ इसे अस्वीकार तो नही कर सकेंगी? यह भी तो एक प्रकार का परिचय है।'

द्विजदास मौन रहा। सती ने कहा—'मेरा पक्का विश्वास है कि वन्दना की इस दुनिया मे कोई उपेक्षा नही कर सकता। माँ भी नही कर सकती।'

द्विजदास ने चकित होकर पूछा—'वन्दना नाम सुना हुआ जान पडता है भाभी? सम्भव है कही देखा है। ठहरो तो, समाचार पत्र मे—एक फोटो भी शायद '

बात समाप्त नही हुई थी, तभी महरी आवाज करती कमरे मे घुस कर बोली—'बहू, तुम यहाँ हो?

तुम्हारे एक चाचा अपनी लडकी लेकर बम्बई से आ पहुँचे हैं। बाहर कोई है नहीं, बडे बाबू भी नही। मैनेजर बाबू ने उन्हे नीचे वाले कमरे मे बिठा दिया है।'

घटना अचिन्तनीय है। 'अरे, क्या कहती है?' कहते हुए सती तूफानी चाल से कमरे से बाहर निकल गयी। द्विजदास पीछे-पीछे गया।

चार

पूरी साहबी पोशाक मे कुर्सी पर बैठे हुए अधेड पुरुष और बीस-इक्कीस वर्ष की कन्या उन्ही के बगल मे खडी दीवार पर टंगे जगद्धात्री देवी के एक सुन्दर चित्र को बडे ध्यान मे देख रही थी। सोलहो आने उसकी पोशाक मेमो की तरह न भी हो, परन्तु वह सहसा बंगाली कन्या भी नही जान पडती थी। खासकर शरीर का रग सफेदी लिए हुए इतना गोरा, बदन की बनावट सुडौल और मुँह पर अनोखा रूप। अभी सती जो गर्वपूर्ण देवर से कह रही थी कि उसका रूप तो सास की दृष्टि मे पडेगा ही, वास्तव मे यह बात सही है। बहिन की सुन्दरता पर गर्व किया जा सकता है।

कमरे मे जाकर सती ने प्रणाम करके कहा—'मझले चाचा, बहुत दिनो बाद बेटी के यहाँ पैरो की धूलि पडी?'

वे उठे और सती के सिर पर हाथ रखा और हँसकर बोले--''हा रे, बूडी (घरेलू नाम) पडी। कब चाचा को निमत्रण भेजकर बुलाया था, जो नही आया? कभी आने के लिए कहा भी है? जब स्वय आ पहुँचा तो अब कह रही हो चाचा के पैरो की धूलि पडी।' द्विजदास को देखकर पूछा—'कौन है ये?'

पीछे की ओर देखकर सती ने कहा—'मेरे देवर द्विजू हैं ये।'

दूर से ही द्विजदास ने नमस्कार किया। बडी बहिन को प्रणाम करके वन्दना हँसकर बोली—'हाँ, तो वह आप ही है, जिनके उत्पात से जमीदारी से हाथ धोने की नौबत आ रही है। ये ही कुटुम्ब और गोत्र की परवाह न करने वाले बडे स्वराजी हैं?'

'मेने ऐसी बात तुझे कब लिखी?'

'अभी उसी दिन तो इसी बीच भूल गयी?'

सती ने सिर हिलाकर कहा—'ये बाते मैंने नही लिखी हैं, तुझे याद नही है।'

द्विजदास इतनी देर तक एक प्रकार की हिचक के कारण लजाया हुआ था। अपरिचित युवती के सामने क्या करना चाहिए, क्या कहना ठीक होगा, कुछ भी नही कह पा रहा था। इसके पहले कभी ऐसा अवसर नहीं आया था आवश्यकता भी नही पडी थी। किन्तु नवागता युवती की आश्चर्यजनित स्वच्छन्दता मे उसे मानो एक नयी शिक्षा मिल गयी। उसकी अकारण और अशोभन जडता पल-भर मे दूर हो गयी। उसे एक स्वच्छ आनन्द का स्वाद मिला। कन्याओ को भी शिक्षा और स्वाधीनता की आवश्यकता तो है, इसे बुद्धि से वह सदा स्वीकार करता था और माँ तथा बडे भैया से तर्क छिड जाने पर यही तर्क पेश करता था कि नारी होने पर वह पुरुष है, शिक्षा और स्वतन्त्रता मे उनका भी पूरा अधिकार है। मूर्ख बनाकर उन्हे घरो मे बन्द रखना अन्याय है। परन्तु आज इस अतिथि तरुणी के अचानक परिचय से उसने पल-भर में पहली बार अनुभव किया कि उन साधारण अधिकारो के तर्क के अलावा सबसे बडी बात यह है कि पुरुष के चरम और परम प्रयोजन के लिए भी नारी को शिक्षा और स्वाधीनता की आवश्यकता है। उसे वंचित करके पुरुष कहाँ तक अपने को वंचित कर रहा है इस सत्य को इतने स्पष्ट रूप मे इससे पहले उसने कभी नही देखा था। तरुणी को पुकारकर उसने हँसते हुए कहा—'बात तो आपकी ही ठीक है, भाभी भूल गयी हैं। किन्तु इसके लिए विवाद से कुछ लाभ नही।' इतना कह बनावटी गम्भीरता से बोला—'भाभी, तुम्हारी ही शक्ति मेरी शक्ति है और तुम्हारे ही पत्र मे इस प्रकार की बाते ठीक है। तुम लोग मुझे छोड दो और मैं भी अपने कुछ हकों को छोड रहा हूँ। तुम्हारी जमीदारी सदैव बनी रहे। एक बार खुलकर आज्ञा दो, आज ही वकील पुकार कर सब लिखा-पढी करवा देता हूँ। यही गवाह रहे देखना कि मैं कर सकता हूँ या नही?'

साहब ने कहा—'तेरे देवर बडे स्वराजी हैं क्या सती?'

'हाँ, भयकर।'

'तेरे कहने से ही लिख-पढकर जमीदारी का हिस्सा भी त्याग देना चाहता है?'

सती ने सिर हिलाकर कहा—'वह बडी सरलता से कर सकते है। उनके लिए कुछ भी असाध्य

नही है।'

वन्दना ने पूछा—'क्या सच कह रहे हैं? सदैव के लिए समस्त त्याग सकते हैं?'

पल-भर उनके मुँह की ओर देखकर द्विजदास बोला—'सचमुच ही त्याग सकता हूँ। उसमें मेरा लेशमात्र भी लोभ नही है। देश के पचानवे प्रतिशत लोगो को एक समय भी भरपेट खाना नही मिलता—प्रात से सन्ध्या तक परिश्रम करने पर भी नही—और बिना हाथ-पैर डुलाये ही मेरे लिए मेवे-पकवानो का प्रबन्ध है। पाप का यह दाना मुझे नही भाता। गले मे अटक-सा जाना चाहता है। मेरी ऐसी रियासत का चला जाना ही ठीक है। फिर देश के और आदमियो के समान कमा-खाकर जीवन व्यतीत करूँगा। मिल जाय अच्छी बात है, न मिले तो उन्ही के साथ भूखे रहकर मृत्यु हो जाने पर किसी दिन स्वर्ग मे भी जा सकूँगा, परन्तु इस पथ पर चलने से उसकी आशा कदापि नही है।'

वन्दना सुन रही थी। बात समाप्त होने पर और नही बोली। सिर्फ एक **गहरी सास** ली।

सहसा सती चौंक उठी देवर को जैसे इसके अलावा कहने को और कुछ नही। कहते-कहते याद-सी हो आयी, वह बोली—'भाषण फिर देना देवर, अवसर मिलेगा। अभी तक शायद मझले चाचा ने हाथ-मुँह भी नही धोया। वन्दना, चल ऊपर जाकर कपडे बदल डाल।'

साहब ने पूछा—'दामाद तो दिखाई नही दे रहे हैं?'

सती ने कहा—'वह प्रात एक आवश्यक कार्य से बाहर गये हैं, शायद लौटने मे देरी होगी।'

वन्दना ने पूछा—'मझली दीदी, तुम्हारी सास तो दिखाई नही दी, घर ही मे हैं न?'

सती ने कहा—'अभी तो हैं, परन्तु शीघ्र ही कैलास मानसरोवर तीर्थ-यात्रा करने जायेंगी। सवेरे पूजा-पाठ मे लगी रहती हैं। थोडी देर बाद देख सकोगी।'

वन्दना ने पूछा—'वह प्राय धर्म-कर्म मे ही जुटी रहती है न?'

सती ने कहा—'हाँ।'

'ऐसा सुना है कि विधवा होने के बाद से घर-द्वार का काम कुछ भी नही देखती। क्या यह सच है?'

'सच ही तो है, सब-कुछ मुझे ही देखना पडता है।'

वन्दना ने उत्सुक होकर पूछा—'मझली दीदी, वह तुम्हारी सौतेली सास हैं न?'

सती ने हँसकर कहा—'आँख से तो देखा नही बहिन, लोग शायद झूठ कहते हैं।'

द्विजदास ने उत्तर देते हुए कहा—'झूठ ही कहते हैं। क्योंकि सौतेली सास का अर्थ होता है, बडे भैया की सौतेली माँ, न? झूठ बात है। सौतेली माँ तो हैं—पर बडे भैया की नही मेरी।' 'इस बात को छोडो, नहाने-धोने से समय पाकर फिर इसपर बातचीत होगी। चलिए, ऊपर चले। अच्छा, मैं जाकर देखूँ, भाभी। अब देर न करो, इन्हे ले आओ।' इतना कहकर द्विजदास तैयारी की देख-भाल करने जा रहा था कि तभी माँ को देखकर सहम गया।

सभव है कि दयामयी सूचना पाकर पूजा छोडकर ही चली आयी हैं। आयु अधिक न होने के कारण वह विधवा होने के पश्चात् भी प्राय गैर पुरुष के सामने नही आती थी। आड मे रहकर बातचीत करती हैं। परन्तु आज एकदम घर के बीच आकर खडी हो गयी। घूँघट माथे तक खिंचा हुआ था, परन्तु चेहरा पूरा दिखाई दे रहा था।

'यह मेरे मझले चाचा हैं माँजी और यह मेरी वन्दना बहिन।' कहते हुए सती ने पास आकर सहसा सास को प्रणाम किया। इस प्रकार बिना कारण प्रणाम करने की रीति भी नहीं है, और न कोई करता ही है। शायद दयामयी को मन-ही-मन कुछ आश्चर्य हुआ हो। परन्तु उन्होने बडे प्रेम से उनकी ठुड्डी छूकर अँगुलियो से किनारो को चूमकर आशीर्वाद दिया। किन्तु वन्दना पर दृष्टि पडते ही उनकी आँखो की दृष्टि रूखी हो गयी। दीदी की देखा-देखी उसने भी पास आकर प्रणाम किया। परन्तु उन्होने स्पर्श नही किया। सभव है छूने से बचने के लिए ही एक कदम पीछे हटकर धीरे से बोली—'जीती रहो।'

वह बोली—'नमस्कार समधी जी! बच्चो के अच्छे भाग्य जो आपके चरण-रज गिरे।'

सज्जन ने प्रति नमस्कार करके कहा—'अनेक कारणो से अवकाश नही मिलता समधिन जी, किन्तु बिना कहे-सुने अचानक आ जाने के लिए क्षमा करेगी। अब जब आऊँगा तब समय पर सूचना देकर ही आऊँगा।'

इन बातो का उत्तर दयामयी ने नही दिया, केवल बोली—'पूजा-पाठ से अभी अवकाश नही मिला,

समधी जी, फिर भेट होगी। बहू इन लोगों को ऊपर लिवा ले जाओ। देखना, खाने-पीने मे कष्ट न होने पावे। विपिन आ जाय तो तनिक मेर पास भेज देना।' इतना कहकर किसी ओर विना देखे ही वह कमरे से बाहर निकल गयी। वाहरी तौर से प्रचलित सौजन्य मे खास कोई भूल तो नही हुई। किन्तु भीतर से सभी ने अनुभव किया कि चाँदनी के वीचो-वीच काले वादल का एक टुकडा स्वच्छ आकाश में एक ओर से दूसरी ओर चला गया।

पाँच

वन्दना जव स्नान करके बैठक मे आयी तो देखा कि पिताजी पहले से ही तैयार बैठे हए हैं। एक वहुमूल्य आरामकुर्सी पर चश्मा लगाये बैठे वह समाचार-पत्र पढ रहे थे। बगल वाली छोटी मेज पर बहुत से समाचार-पत्र पडे हुए थे और पास की खडा द्विजदास उन्हें तिथि वार लगा रहा था। रेल की यात्रा और काम की अधिकता से उन्हें कई दिन के समाचारपत्र देखने का अवसर नही मिला था। लडकी को कमरे में आते देख गाँव उठाकर बोले—'बेटी, हमने दो बजे वाली गाडी से कलकत्ता जाने का निश्चय किया है। यदि दीदी के यहाँ कुछ दिन रहने का तुम्हारा मन है तो लौटते समय तुम्हे पहुँचाकर मैं सीधा बम्बई चला जाऊँगा। ठीक है न?'

'आपको कलकत्ते मे कितने दिन लगेंगे, पिताजी?'

'पाँच-सात दिन—आठ दिन इससे अधिक नही।'

'परन्तु इसके वाद मुझे वम्वई कौन पहुँचायेगा?'

'उसका प्रवन्ध आसानी से हो मकता है।' इतना कहकर वह फिर कुछ सोचकर कहने लगे—'ठीक बात है, इच्छा हो तो इतने दिनों तक तुम सती के पास ही रहो, वापस जाते समय मैं ही तुम्हे साथ ले जाऊँगा, ठीक रहेगा न?'

पल-भर चुप रहकर वन्दना बोली—'अच्छा, मझली दीदी मे पूछ लूँ।'

द्विजदास ने कहा—'भाभी रसोईघर मे गयी हैं, देर भी हो सकती है।' हाथ का पुलिन्दा दिखाते हुए कहा—'आपको दूँ?'

'समाचार-पत्र? मैं नही पढती।'

'समाचार-पत्र नही पढती?'

'नही, समाचार पढने की धीरता मुझमे नही है। सन्ध्या समय पिताजी से कहानियाँ सुनती हूँ, मेरी भूख उसी से मिट जाती है।'

'आश्चर्य की वात है! मैं समझता था कि आप बहुत अधिक पढती हैं।'

वन्दना ने कहा—'मेरे विषय मे कुछ भी विना जाने इस प्रकार क्यो सोचते हैं? यह तो घोर अन्याय है।

द्विजू अप्रतिभ हो रहा था, वन्दना हँसकर कहने लगी—'आप लोगो मे से किसने कितना देशोद्धार किया और उससे अग्रेजो के नेत्र कितने लाल हो गये, इसमे मेरी दिलचस्पी नही है। पिताजी तो उधर देखिए न समाचारपत्र मे एकदम बिल्कुल घुल गये हैं—वाहरी बातो का ध्यान ही नही।'

सम्भव है साहव के कानो मे विटिया का 'पिताजी' शब्द ही प्रविष्ट हुआ था, परन्तु नेत्र उठाने का अवसर नहीं मिला, बोले—'जरा सब्र रखो—बोलता हूँ—बस इसका उत्तर तो मैं खोज ही रहा था।'

सिर हिलाकर मुस्कराते हुए वेटी ने कहा—'तुम खोज-खोजकर दिनभर पढो पिताजी, मुझे कुछ भी जल्दी नही है।' द्विजदास को लक्ष्य करके बोली—'मझली दीदी से मालूम हुआ था कि आपका बहुत वडा पुस्तकालय है, वही चलिए, देखूँ आपके सग्रह मे कितने ग्रन्थ है।'

'चलिए।'

पुस्तकालय दोतल्ले पर था। जीना काफी चौडा था। द्विजदास चढते हुए बोला—'पुस्तकालय काफी वडा है, परन्तु मेरा नही, दादा का है। मैं केवल कौन-सी पुस्तक कहाँ प्रकाशित हुई, इसका पता लगाता हूँ। आज्ञा के अनुसार खरीद लेता हूँ।'

'किन्तु आप पढते तो हैं?'

'वस, नही के वरावर पढता हूँ, जिनका पुस्तकालय है, वे स्वय ही पढते हैं। आश्चर्यजनक शक्ति और उसी प्रकार अनोखी स्मरणशक्ति है उनकी।'

'कौन? दादा?'

'हाँ, विश्वविद्यालय की कोई विशेष डिग्री-विग्री उन्होने नही पायी है, यह सच है, किन्तु इतना भव्य पाण्डित्य कदाचित् इस देश के इने-गिने लोगो मे ही हो, सम्भव है न भी हो। वह आपके बहनोई हैं, उन्हे कभी नही देखा है आपने?'

'नही, देखने मे कैसे हैं वे?'

'एकदम मेरे उल्टे—जैसे दिन और रात्रि। मेरा रग काला है, उनका रग सोने के समान है। उनकी शारीरिक शक्ति इस इलाके मे बुलन्द है। लाठी, तलवार और बन्दूक चलाने मे इधर उनकी जोड का कोई है नही। केवल अकेली माँ को छोडकर उनके मुँह की ओर देखकर बाते करने का किसी का साहस नही होता।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'क्या मेरी मझली दीदी का भी नही।'

द्विजदास ने कहा—'नही, आपकी मझली दीदी का भी नहीं।'

'वडे गुस्सेवर हैं क्या ?'

'नही, ऐसे नही। अग्रेजी मे जो एरिस्टोक्रेट नामक एक शब्द है, दादा कदाचित् किसी जन्म मे उन्ही के राजा थे। कम-से-कम मेरा विचार ऐसा ही है।'

'क्रोधी हैं या नही, कभी आपने पूछा था?'

'किसी प्रकार क्रोध का अवसर ही उन्हे कहाँ रहता है।'

वन्दना ने कहा—'आप दादा के बडे भक्त हैं न?'

द्विजदास मौन रहा। कुछ देर के बाद बोला—'इसका उत्तर देना कभी सम्भव हुआ तो किसी और देन आपको दूँगा।'

विस्मय से वन्दना ने कहा—'इसका मतलब क्या?'

द्विजदास ने थोडा हँसकर कहा—'यदि मतलव बतला दूँ तो फिर दोबारा बतलाने की आवश्यकता नही पडेगी। आज के लिए रहने दे।'

शानदार पुस्तकालय है। जिस प्रकार मूल्यवान् आलमारियाँ, मेज, कुर्सियाँ और दूसरे सामान हैं, उसी प्रकार उसे अच्छे ढग से सजाया भी गया है। गॉव मे इतना बडा प्रबन्ध देखकर वन्दना को आश्चर्य हुआ। इसकी कमी वम्बई शहर में नही है। उसकी तुलना मे शायद वह उतना बडा भी नही है। पर गॉव मे रहते हुए किसी आदमी का केवल अपने ही लिए इतना बडा सग्रह सचमुच आश्चर्य की बात है। उसने पूछा—'क्या जीजाजी सचमुच इतनी पुस्तक पढ़ते हैं?'

द्विजदास ने कहा—'पढी हैं और पढते भी हैं। आलमारियाँ बन्द नही हैं, किसी भी पुस्तक को खोलकर देखिए, उनके पढने का निशान आपको दिखाई देगा।'

'इतना समय मिलता कब है? क्या दिन-रात यही काम किया करते हैं?'

सिर हिलाकर द्विजू बोला—'नहीं-कमसे कम मुझे नही मालूम। इसके सिवा हमारी रियायत उतनी बडी न होने पर बहुत छोटी नहीं है, उसमे कहाँ क्या है और क्या हो रहा है, सभी दादा की दृष्टि के सामने हैं। यह आज की बात नहीं है। पिताजी के समय से यही व्यवस्था चली आ रही है। समय कैसे मिलता है, इसका भेद मुझे भी अच्छी प्रकार नही मालूम। आप ही की भाँति मुझे भी कुछ कम आश्चर्य नही है। किन्तु यह सोचा करता हूँ कि दुनिया मे कुछ ऐसे आदमी भी पैदा होते हैं, जिनकी गिनती मामूली लोगो मे नही की जा सकती। उसी प्रकार के आदमी हैं। शायद हमारी तरह उन्हे कष्ट उठाकर पढ़ने की आवश्यकता नहीं पडती, छपे अक्षर नेत्रो के अन्दर जाकर दिमाग मे घुस जाते हैं। किन्तु दादा की बाते अभी रहने दे। उन्हें कभी अपनी ऑखो से आपने देखा नही। मेरे मुख से एक तरफा उनकी आलोचना अतिशयोक्ति मानी जा सकती है।'

'किन्तु सुनने मे मुझे बहुत ही भला लग रहा है।'

'परन्तु भला लगना ही तो सब-कुछ नही है। ससार में हम और दूसरे बहुतेरे मामूली आदमी भी तो हैं। यदि एक खास आदमी ही सारा स्थान घेरकर बैठ जाता है, तो हम कहाँ जाएँ? केवल मुँह दूसरों का यशगान करने के लिए ही तो भगवान् ने नही बनाया?'

वन्दना ने हँसकर कहा—'मतलब बडे दादा की बात छोडकर अब छोटे दादा का थोडा यशगान करना चाहते हैं—यही बात है न?'

द्विजू हँसकर बोला—'चाहता अवश्य हूँ, किन्तु अवसर कहाँ मिलता है? जो परिचित हैं वे तो कान ही नही देगे, अपरिचितो के सामने ही थोड़ा गुनगुनाया जा सकता है। किन्तु साहस नही होता, भय लगता है। आदत न होने से अपनी बडाई अपने ही मुख से शायद ठीक से नही होगी।'

वन्दना ने कहा—'धारा रुक भी नही सकती प्रयत्न तो कीजिए। मेरा विचार है मनुष्य इस विद्या मे निपुण है। अब विलब न करे, शुरू कीजिए।'

सिर हिलाकर द्विजू ने कहा—'नही, यह मुझसे नही हो सकेगा। इससे अच्छा होगा कि आप निराले स्थान मे बैठकर दो-चार किताबे देखे, मैं भाभी को भेज रहा हूँ।' इतना कह द्विजदास के जाने के लिए तैयार होते ही वन्दना ने तेज आवाज से कहा—'वाह! खूब रहे, आप! नही, मुझे अकेली न छोड जाना। किताबे मैं काफी पढ चुकी हूँ, इसकी आवश्यकता नही। आप कहानी सुनाये और मैं सुनूँ?'

'कौन-सी कहानी?'

'अपनी स्वयं की।'

तो थोडा धीरज धरिए, मैं भी नीचे जाकर बहुत अच्छी वक्ता को भेज रहा हूँ।

वन्दना ने कहा,—मझली दीदी को ही भेजिएग, न? उनकी आवश्यकता नही है। उन्हे जो कुछ बोलना था, वह पत्रों मे ही समाप्त हो गया। जो कुछ वे लिखती थी सच था या नहीं, अब तो यही सुनने की इच्छा है।'

द्विजदास ने कहा—'सच नहीं था। कम-से-कम बारह आने झूठ था। हाँ, क्या आप जल्दी ही विलायत जा रही हैं?'

दन्दना जान गयी, यह आदमी अपने प्रसग की आलोचना नही करना चाहता और हठ करने की धृष्टता दिखाना उचित न होगा। कहने लगी—'पिताजी की इच्छा यही है। स्कूल की पढ़ाई वह वही समाप्त करने को कहते हैं। आप भी चलिए न?'

द्विजदास ने कहा—'मुझे इन्कार नही है, पर रुपये कहाँ पायेगे? वहाँ लडके पढ़ाने से काम नहीं चल सकता और इतना बडा भार भाभी पर नहीं डालना चाहता। यह व्यर्थ की आशा है।'

यह सुनकर वन्दना हँसकर बोली—'द्विजू बाबू, ये बाते तो आपने नाराजगी में कही, नहीं तो आप लोगो के पास जो धन है, उससे केवल आप अकेले ही नही, चाहे तो गाँव के आधे आदमियो को साथ ले जा सकते है। ठीक है, मैं प्रबन्ध कर देती हूँ, जाने के लिए आप प्रस्तुत रहें।'

द्विजू ने कहा—'यह प्रबन्ध नही होने का। रुपये बहुत हैं किन्तु सब दादा के हैं, मेरे नही। मैं उनकी कृपा पर हूँ, यह कहना अत्युक्ति नही होगी।'

फिर हंसने की चेष्टा करती हुई वन्दना बोली—'अत्युक्ति क्या है और कौन-सी है यह मैं भी जानती हूँ किन्तु यह भी क्रोध की बात है। मझली दीदी के पत्र मे एक बार पढ़ा था कि जो धन आपने स्वयं नही कमाया उसेआप ग्रहण नही करना चाहते। क्या यह बात सच नही है?'

द्विजदास ने कहा—यदि सच है भी तो वह मनुष्य की धर्मबुद्धि की बात है, क्रोध की नही। किन्तु केवल यह सब कारण नही है।'

और क्या कारण है, सुनूँ तो जरा?'

द्विजदास मौन रहा। वन्दना पल-भर में उसकेमुख की ओर देखकर धीरे-धीरे बोली—'मुझे स्वभावत इतना कौतूहल नही है और मेरा यह आग्रह विचित्र है—यह मैं जानती हूँ, किन्तु जानने से ही दुनिया के सारे काम पूरे नहीं हो जाते—अभाव मुँह फाडे खडे रहते हैं। आपके विषय मे इतना सुना है कि जब आप पहले-पहल घर मे घुसे तो मुझे आपके अपरिचित होने का ध्यान ही नही हुआ। इतनी सरलता से आपको पहचान लिया, जैसे बहुत बार देखा हो। मझली दीदी से यह बाते कह सकते हैं और मुझसे नही? चाहे कुछ न भी हो, उनकी भाँति मैं भी तो एक आत्मीय हूँ।'

ये बाते सुनकर द्विजू अवाक् हो गया और सहसा सारा मामला याद आ जाने से उसके सकोच और आश्चर्य की सीमा न रही। एकदम अपरिचित युवती कुमारी से एकांत में इस तरह बातचीत करने का यह पहला अवसर था। दीवार पर लगी घड़ी से एक घण्टे से अधिक समय बीत गया। इस बीच यदि नीचे

किसी ने उन्हे खोजा होगा तो इस घर में इसका उत्तर वह क्या देगा, यह उसके दिमाग में नही आया। सम्भव है दादा घर लौट आये हों। माँ की पूजा भी समाप्त हो गयी हो। अचानक उसका सारा शरीर और मन बेचैन होकर जैसे पल-भर मे सीढ़ी की ओर दौड़ गया। किन्तु कुछ भी करने मे असमर्थ होकर उसी भाँति चुप बैठा रहा।

'बतलाया क्यो नही? बोलिए न?'

द्विजू चौंककर बोला—'यदि बताऊँगा तो पहले आपको ही बताऊँगा; आज तक भाभी से भी नही बताया।'

'उसका हिसाब वह स्वय लगायेगी। मैं तो बिना सुने. ''

बताना ठीक नही है, इसमें द्विजू के मन मे शका नही थी, किन्तु आग्रह की उपेक्षा करने की शक्ति भी उसमे नही थी।

किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह एक मिनट देखकर कहने लगा—'बात यह है कि पिताजी वास्तव मे मुझे कुछ भी दे नही गये।'

वन्दना विस्मित होकर बोली—'नही' यह झूठ बात है। ऐसा नही हो सकता।'

उत्तर मे द्विजू ने सिर हिलाकर कहा—हो सकता है।'

'किन्तु इसका कारण क्या है?'

शायद पिताजी का विचार हो गया था कि मुझे देने से उनका धन नष्ट हो जायगा।'

'इस विचार का कोई असली कारण था?'

'अवश्य था। एक बार मुझे बचाने मे उनके बहुत रुपये नष्ट हो गये थे।'

वन्दना को स्मरण हुआ, इस प्रकार का एक इशारा एक बार सती के पत्र में था। पूछा—'क्या पिताजी वसीयत लिख गये हैं?'

द्विजदास ने कहा—'यह बात केवल दादा ही जानते हैं। वह बताते नही।'

लम्बी साँस छोडते हुए वन्दना बोली—'फिर भी सतोष है, मैं सोचती हूँ वह सचमुच वसीयत लिखकर आपको वंचित तो नही कर गये हैं।'

द्विजदास ने कहा—'उनकी इच्छा थी, किन्तु जान पडता है कि दादा ने ही नही होने दिया।'

'आश्चर्य है कि दादा ने नही होने दिया।'

द्विजू ने हँसकर कहा—'दादा को जान लेने पर आश्चर्य न होगा। शाम हो गयी थी। अभी तक नौकर कमरे मे चिराग नहीं जला गया था। मैं पास वाले कमरे मे एक किताब खोज रहा था, सहसा पिताजी की बात कान मे पडी। दादा ने कहा—'नही।' पिताजी हठ करने लगे—'नही क्यो, विप्रदास? अपने पिता पितामह की सपत्ति मैं नष्ट नही होने दूँगा। वैकुण्ठ में रहने पर भी मुझे चैन नही मिलेगा।' फिर भी दादा ने उत्तर दिया—'नही, यह कभी नही हो सकता।' पिताजी ने कहा—'फिर भी मैं तुम्हारे ही हाथो में सब-कुछ सौंप जाता हूँ। इसके पश्चात् पिताजी दो तीन वर्ष जीवित रहे, किन्तु मुझे ठीक तौर से मालूम है कि उन्होंने अपनी राय बदली नही थी।'

वन्दना ने मधुर स्वर में प्रश्न किया—'क्या इस बात को दूसरा कोई जानता नहीं?'

'कोई भी नही। छिपकर सुन लेने के कारण केवल मैं जानता हूँ।'

बहुत देर तक चुप रहकर अस्फुट स्वर मे वन्दना बोली—'सचमुच ही आपके दादा असाधारण मनुष्य हैं।'

शान्त भाव से द्विजदास बोला—'हाँ! अब मैं नीचे जाऊँ, क्योंकि मुझे बहुत देर हो गयी है। आपको जब तक बुलाया न जाये, तब तक बैठ कर पढ़िये।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'इस समय पुस्तक पढ़ने को मन नही है। चलिए, मैं भी चलती हूँ कुछ नही तो आठ-दस दिन तो इस घर मे रहूँगी ही, पुस्तके पढ़ने के लिए बहुत समय मिल जायेगा।'

द्विजदास जाने के लिए प्रस्तुत हो गया था! लेकिन ठहरकर पूछा—'पिताजी के साथ आज कलकत्ता नही जाओगी?'

'नही। उनके लौट आने पर बम्बई जाऊँगी।'

द्विजदास ने कहा—'नही, उनके लौट आने पर भी आप यहाँ कुछ दिनों तक और रहें।'

वन्दना ने कहा—'पहले ऐसी ही इच्छा थी, किन्तु अब देखती हूँ इसमें बड़ी कठिनाई है। मुझे पहुँचा देने के लिए कोई है नहीं। यदि आप सहमत हों तो आप ही की बात स्वीकार कर लूँ।'

'परन्तु तब तक तो मैं रहूँगा नही। इसी सोमवार को माँ के साथ कैलास की तीर्थ-यात्रा करने चल दूँगा।'

वन्दना के नेत्र आनन्द और उत्साह से चमक उठे—'कैलास? कैलास जायेगे। सुना है वह बड़े आश्चर्य की चीज है। आप लोगो के साथ और कौन-कौन जा रहे हैं।'

'ठीक मालूम नही, शायद और कोई जायेगा नही।'

'मुझे साथ ले चलिएगा?'

'द्विजदास मौन रहा। वन्दना के अभिमान को जैसे चोट-सी लगी। वह जबरन हँसने की चेष्टा करती हुई बोली—'शायद इसीलिए मुझे यहाँ आकर रहने की सुपरामर्श दे रहे हैं!'

उसकी ओर देखते हुए शान्त भाव में द्विजदास ने कहा—'सचमुच ही इसीलिए यह राय दी है। भाभी ने इतनी बाते लिखी हैं, केवल यही नही लिखा की हमारा यह कितना घोर सनातनी परिवार है? इसके आचार-विचार की कठोरता की कोई झलक पत्र मे नही मिली?'

सिर हिलाकर वन्दना ने कहा—'नही?'

'नही?' आश्चर्य!' जरा रुककर द्विजदास ने कहा—'केवल मुझे छोडकर इस घर मे आपका छुआ जल पीने वाला व्यक्ति भी कोई नही।'

'दादा?'

'नही।'

'मझली दीदी?'

'नही, वह भी नही। हो सकता है मेरे चले जाने पर दो दिन यहाँ रह भी सकेंगी, किन्तु माँ के रहते हुए एक दिन भी आपका इस घर [illegible] होगा नही।

वन्दना उदास होकर बोली— [illegible] कह रहे हैं?'

'सच ही कह रहा हूँ।'

'ठीक इसी [illegible] मती के बुलाने का स्वर सुनाई पडा देवर! वन्दना! क्या कर रहे हो तुम दोनो जने?'

'आ रहा हूँ [illegible] जल्दी से जाने के तैयार हुआ। वन्दना ने कहा—'इन बातो का तो मुझे पता नही था। धन्यवाद।'

छः

नीचे आकर वन्दना ने देखा कि पिता आनन्दित होकर भोजन करने बैठ गये हैं, उसी बैठकखाने में ही एक छोटी-सी मेज पर चाँदी की थाली मे भोजन परोस दिया गया है। एक दीर्घाकृति बहुत ही सुन्दर व्यक्ति पास ही खडे हैं। उनके शरीर की मजबूत बनावट और अत्यन्त गौर वर्ण देखते ही वन्दना ने समझ लिया कि विप्रदास यही हैं। सती भी साथ ही आ रही थी, किन्तु उसने प्रवेश नही किया, द्वार की आड मे खडी होकर प्रणाम करने के लिए सकेत से कहा—'हाँ, यही तो हैं।'

बगाली कन्या के लिए यह सिखाने की बात नही है, और इसके पूर्व माँ को जिस प्रकार भूमिष्ठ होकर उसने प्रणाम किया था, उसी प्रकार बडे बहनोई को भी करती, किन्तु सहसा मानो उसका मन विद्रोह कर उठा। इनकी असाधारण विद्या और बुद्धि का विवरण द्विजदास के मुख से न सुनने पर शायद इस प्रचलित शिष्टाचार का उल्लघन करने की बात उसके दिल मे न आती; लेकिन इसी परिचय ने उसे कठोर बना दिया। बडी बहिन की मर्यादा के विचार से उसने हाथ उठाकर नमस्कार किया, परन्तु उससे उपेक्षा ही अधिक हो गयी. पिता से उसने कहा—'तुम अकेले ही भोजन करने बैठ गये, मुझे क्यों नही बुलवा लिया?'

सिर ऊपर उठाकर देखते हुए साहब ने कहा—'मेरी गाडी का वक्त जो हो गया है बिटिया, परन्तु तुम्हें तो कोई जल्दी नही है। मेरे चले जाने के पश्चात् तुम लोग निश्चिन्तता से भोजन कर लोगी।'

आड मे से हिलाकर सती ने इसका अनुमोदन किया। वन्दना उसे सकेत करके बोली—'मझली दीदी, चाँदी के इतने कीमती बर्तनो को क्यो बर्बाद किया पिताजी को एल्यूमिनियम या चीनी-मिट्टी के बर्तन मे

भोजन परोसने से भी तो काम चल सकता था।'

साहब का भोजन समाप्त हुआ। वह अत्यन्त सरल प्रकृति के मनुष्य हैं। बेटी की बात का अर्थ रत्ती-भर भी नहीं समझा, व्यस्त और लज्जित हो गये—जैसे अपराध उन्ही का है—'हाँ, ठीक बात तो यही है, इधर तो मेरा ध्यान ही नही गया—कहाँ गयी सती, डिश में खाना देना चाहिए था मुझे।'

विप्रदास का मुख क्रोध से कठोर और गम्भीर हो गया। उसका इतना बड़ा अपमान करने का साहस आज तक किसी ने नही किया, जैसे नवागत आत्मीय की इस कन्या ने। बर्तनो के नष्ट होने की चिन्ता तो केवल बहाना है। वास्तव मे यह तो उनके आचारनिष्ठ परिवार के प्रति निर्लज्ज व्यग्य है, और बहुत सम्भव है, उसी को लक्ष्य कर, यह चाल किसने चली। विप्रदास समझ नही सका, परन्तु कोई भी क्यों न चले, इस भले मानस बूढ़े आदमी को उपलक्ष्य बनाने की नीचता से उसकी घृणा की सीमा न रही। लेकिन इस मनोभाव का दमन करके जरा हँसकर कहा—'क्या तुमने अपनी दीदी से नही सुना कि यह सनातनी हिन्दू का मकान है? एलमूनियम कहो या चीनी-मिट्टी, ये चीजे यहाँ नही आ सकती।'

वन्दना ने कहा—'लेकिन कीमती बर्तन तो नष्ट हो गये हैं न?'

साहब ने दु खी होकर कहा—'लेकिन सुना है कि घी लगाकर जरा सेक देने से ही '

इस बात पर विप्रदास ने गौर नही किया, जिस प्रकार कह रहा था उसी प्रकार वन्दना को ही लक्ष्य करके कहा –'इस घर मे चाँदी के बर्तनो की कमी नही है, वे किसी विशेष काम में भी नही आते। तुम्हारे पिता रिश्ते मे मेरे गुरुजन हैं, इस घर के अत्यन्त सम्मानित अतिथि; चाँदी के बर्तनों का कितना भी मूल्य क्यो न हो, उनके मान के सामने वह बिल्कुल तुच्छ है। तुम लोगों के आने के उपलक्ष्य मे यदि कुछ नष्ट हो जाते हैं तो हो जायें। इतना कह तनिक हँसकर बोले—'तुम्हारी दीदी के समान यदि तुम्हारी भी किसी सनातनी कुटुम्ब मे ब्याह हो तो पिताजी क आने पर मिट्टी की थाली मे भोजन देना, फेक देने मे कोइ हिचक नही होगी। क्यो, बात ठीक है न वन्दना?'

'अच्छा, ऐसी बात है तो पिताजी के लिए मैं सोने का बर्तन बनवाकर रख लूँगी।'

विप्रदास ने हँसकर उत्तर दिया—'यह तुमसे होगा नही। जो ऐसा कर सकता है, पिता के सम्बन्ध मे वह ऐसी बाते मुँह पर नही ला सकता। यहाँ तक कि दूसरे का अपमान करने के लिए भी नही। जितना प्रेम तुम अपने पिता को करती हो, शायद उससे भी अधिक प्रेम एक व्यक्ति अपने चाचा को करता है।'

यह सुनकर साहब के हृदय का बोझ ही नही उतर गया, वरन् उनका दिल आनन्द से भर गया। वह बोले—'बेटा, तुम्हारी यह बात बिल्कुल सच है। दादा की जब अचानक मृत्यु हो गयी, उस समय तो यह बहुत ही छोटी थी। मै परदेश मे नौकरी करता था, हमेशा घर आना सम्भव नही था, और आने पर भी सामाजिक अनुशासन के कारण अकेला रहना पडता था। परन्तु सती अवसर पाते ही मेरे यहाँ आ जाती थी।'

वन्दना न शीघ्रता से रोककर कहा—'इन बातो को रहने दो पिताजी।'

'नही, नही, मुझे सारी बातें याद हैं, ये झूठ नही है। एक दिन मेरे साथ एक ही थाली में भोजन करने बैठ गयी। उसकी माँ तो यह देखकर. '

'आप क्या कहते रहते हैं, पिताजी, कुछ समझ में नही आता। कब मझली दीदी तुम्हारे पास कुछ भी तुम्हें याद नही।'

साहब ने प्रतिवाद किया—'वाह। याद नही है, और उसी को लेकर कोई गडबडी न हो, इसीलिए तुम्हारी माँ ने उस दिन किस प्रकार डरते हुए '

वन्दना ने कहा—'पिताजी, आज तुम्हें किसी प्रकार भी गाडी नही मिल सकती, कितना बजा होगा?'

साहब ने शीघ्रता मे घडी निकाली। देखकर निश्चिन्तता की साँस लेकर बोले—'तू तो इसी प्रकार डरा देती है कि व्याकुल हो जाना पडता हैं। अभी बहुत देर है—बडी सरलता से गाडी मिल जायेगी।'

हँसकर समर्थन करते हुए विप्रदास ने कहा—'हाँ, गाडी आने में अभी बहुत देर है। आप निश्चिन्त होकर भोजन करें, मैं स्वय जाकर गाडी पर बिठा आऊँगा।' इतना कहकर वह कमरे से बाहर निकल गया।

दरवाजे की आड मे सती के पास आकर खडे होते ही वन्दना ने आहिस्ता से पूछा—'मझली दीदी, पिताजी ने क्या कह डाला, सुना है?'

सिर हिलाकर सती ने कहा—'हाँ।

वन्दना ने कहा—'तुम्हारी सास के कानो मे पड़ने पर तुम्हे दु.ख उठाना पड सकता है। ठीक है न मझली दीदी?'

सती ने कहा—'तो होने दो। अभी रहने दो, चाचा सुन लेगे।'

'परन्तु तुम्हारे स्वामी?—वह भी तो अपनें कानो सब-कुछ सुन गये हैं, इस अपराध की क्षमा शायद उनके पास भी नही है?'

सती ने हँसकर कहा—'यदि सचमुच अपराध हुआ है तो मैं क्षमा क्यो माँगू? इसका निर्णय मैं उन्ही पर छोडकर निश्चिन्त हो गयी हूँ, यदि यहाँ रही तो अपनी आँखो ही से देख लोगी। बताओ, तुम्हारे लिए क्या ला दूँ, चाचाजी?'

साहब ने कहा—'बस, बस बेटी, मेरा भोजन हो गया, अब और कुछ नही चाहिए।' इतना कहकर वह उठ खडे हुए।

धीरे-धीरे स्टेशन जाने का समय हो आया। नीचे बरामदे मे मोटर खडी थी। बिस्तरा, बैग इत्यादि एक दूसरी मोटर मे रखवा दिये। पास ही खडे होकर साहब विप्रदास से बातचीत कर रहे थे। इसी समय वन्दना कपडे पहन, तैयार होकर पास आ खडी हुई और कहने लगी—'पिताजी, मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगी।'

पिता ने आश्चर्य चकित होकर कहा—'इस धूप मे स्टेशन जाने से क्या लाभ बिटिया?'

वन्दना ने कहा—'केवल स्टेशन तक ही नही, कलकत्ता चलूँगी, और जब बम्बई जाओगे तो मैं तुम्हारे ही साथ चली जाऊँगी।'

विप्रदास ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'कहती क्या हो? तुम कुछ दिनो तक रहोगी, मैं तो यह समझता था।'

वन्दना ने उत्तर मे केवल 'ना' भर कहा।

'किन्तु तुमने अभी तक भोजन नही किया?'

'नहीं, आवश्यकता नही, कलकत्ता पहुँचकर भोजन करूँगी।'

'तुम जा रही हो, तुम्हारी मझली दीदी को मालूम है न?'

वन्दना ने कहा—'अभी मालूम नही, पर मेरे चले जाने पर तो जान लेगी।'

विप्रदास ने कहा—'तुम्हारे बिना खाये इस प्रकार चले जाने से उसे बहुत क्लेश होगा।'

वन्दना ने कहा—'किस बात का क्लेश? मुझे कुछ निमन्त्रण देकर तो बुलाया नही गया था कि मेरे बिना खाये चले जाने से उनका भोजन नष्ट हो जायेगा। वह नासमझ नही हैं, समझ लेगी।' यह कहकर बात वही समाप्त करते हुए वह जल्दी से गाडी मे जाकर बैठ गयी।

मन-ही-मन साहब ने समझ लिया कि कुछ हुआ है, नही तो अचानक बिना कारण ही कुछ कर बैठने वाली लडकी नही है। वह केवल बोले—'मैं भी समझता था कि वह कुछ दिनो तक सती के पास रहेगी। लेकिन जब गाडी मे आकर बैठ गयी तो उतरेगी नही।'

विप्रदास बोले नही, चुपचाप मोटर मे जाकर बैठ गये।

गाडी चल पडी। अचानक ऊपर की ओर दृष्टि जाते ही वन्दना ने देखा कि दोतल्ले के लाइब्रेरी वाले कमरे की खिडकी की छड थामकर द्विजदास स्तब्ध खडा है। आँखे चार होते ही उसने हाथ जोडकर प्रणाम किया।

सात

गाँव से चलकर जब साहब स्टेशन पहुँचे तो मालूम हुआ कि कही किसी आकस्मिक दुर्घटना के कारण गाडी आज बहुत देर मे आयेगी, शायद एक घण्टे से अधिक देर लगेगी। परिचित स्टेशन-मास्टर के एकाएक बीमार हो जाने के कारण एक मद्रासी कल से उसके स्थान पर काम कर रहा था, वह भी ठीक प्रकार से कुछ बतला नही सका, केवल इतना अनुमान लगाया कि देर एक घण्टे की भी हो सकती है और दो घण्टे की भी। साहब की ओर देखकर विप्रदास ने कहा—'कलकत्ता पहुँचने तक रात हो जायेगी, आज गये बिना क्या काम चलेगा नही?'

'क्यो नही चलेगा? मुझे तो.. ।'

वन्दना बीच में बोल पडी—'नही पिताजी, ऐसा नहीं हो सकता। एक बार घर से आकर वापस नही जाया जा सकता।'

विप्रदास विनम्र स्वर में बोला—'वापस क्यों नही जाया जा सकता वन्दना? तुम बिना भोजन किये ही चली आयी हो, दिन उपवास करके ही बिता देना चाहती हो क्या?'

वन्दना ने सिर हिलाकर कहा—'मुझे भूख नही है। वापिस जाने पर मुझसे खाया न जा सकेगा।'

साहब मन-ही-मन दु खी हुए। बोले—'इसकी शिक्षा-दीक्षा ही दूसरे ढग की हुई है। एक बार हठ करने से डिगाया नही जा सकता।'

विप्रदास मौन रहा, फिर उन्होने अनुरोध नही किया।

X X X

स्टेशन बडा न होने पर भी एक छोटा-सा वेटिंग-रूम था। वहाँ पहुँचने पर दिखाई पडा कि एक कम आयु के बगाली साहब और उनकी स्त्री ने कमरे पर पहले से ही अधिकार जमा रखा है। साहब शायद बैरिस्टर है या डॉक्टर या विलायत पास प्रोफेसर भी हो सकते हैं। इस इलाके मे कहाँ से आये थे, यह भी एक रहस्य की बात है। आरामकर्सी के [illegible] पर दोनो परो को फैलाकर अर्द्धसुप्त दशा मे लेटे हुए हैं। अचानक लोगों के आने से केवल आँखें भर खोली—शिष्टता प्रदर्शित करने का प्रयत्न इससे अधिक अग्रसर नही हुआ। परन्तु महिला कुर्सी छोड शीघ्रता से उठ खडी हुई। शायद अभी तक मेम साहिबा नही बन पायी थी। लेकिन ऊँची एडी वाले जूते और पोशाक की तडक-भडक देखकर जान पडता था कि इस दिशा में चेष्टा की कमी नहीं होने पायी।

कमरे में एक आरामकुर्सी और भी थी, वन्दना पिता को उसपर बैठाकर स्वय एक बेच पर अधिकार कर बैठी और बहुत आदर से विप्रदास को बुलाकर बोली—'बहनोई जी, आप व्यर्थ खडे क्यो हैं, मेरे पास ही आकर बैठिये। लडकी मे दोष नही है, आपकी जात चली न जायगी।'

यह सुनकर वन्दना के पिता जरा हँसकर बोले—'विप्रदास क्या छुआछूत, आचार-विचार बहुत मानते हैं?'

विप्रदास ने स्वय भी हँसकर कहा—'आचार-विचार है, किन्तु क्या होने से अधिक होता है, यह बिना जाने इस प्रश्न का उत्तर कैसे दूँ?'

वृद्ध ने कहा—'अभी जो वन्दना ने कहा—वही ले लो।'

विप्रदास ने कहा—'बिना भोजन किये बहुत क्रोध मे है। स्त्रियाँ क्रोध में जो कुछ कहती हैं, उस पर तर्क नही हो सकता।'

वन्दना ने कहा—'मैं क्रोध में नही हूँ, रत्ती-भर भी क्रोध मुझे नही हुआ।'

विप्रदास ने कहा—'हो, और अत्यधिक क्रोध मे हो। वरना आज कलकत्ते न जाकर तुम घर वापिस चली जाती। इसके अलावा तुम्हें स्वय ही याद पड जाती कि अभी-अभी हम एक गाडी मे आये हैं। जात अगर जानी थी तो वह पहले ही चली गयी। बेन्च पर बैठने की बात केवल तुम्हारा बहाना ही है।'

वन्दना ने कहा—'बहाना है तो होने दीजिए, किन्तु सच बोलिए, मुखोपाध्याय महाशय! हम लोगों को छूने-छाने के कारण से वापस जाकर फिर आपको नहाना तो न पडेगा?'

'चलिए न, अपनी आँखो से ही घर जाकर देख लेना।'

'नहीं। आप जानते हैं। माँ को प्रणाम करने गयी तो वह छू जाने के भय से पीछे हट गयी थी।' इतना कहते हुए उसका मुँह क्रोध और शर्म से लाल हो गया।

यह विप्रदास ने देखा। उत्तर में शान्त भाव से बोला—'बात असत्य नही है। पर साथ ही सत्य भी नही है। इसका मुख्य कारण उनके पास रहे बिना तुम समझ न पाओगी। लेकिन इसकी आशा तो नही है।'

'हाँ, नही है।'

इस तीव्र अस्वीकृति का कारण इतनी देर के बाद विप्रदास के सामने स्पष्ट हो गया। मन-ही-मन, उसकी व्याकुलता की सीमा न रही। व्याकुलता कई कारणो से हुई। विमाता के विषय मे बात आंशिक रूप से सत्य ही है और वह स्वय भी मानो इससे कुछ सम्बन्धित है। परन्तु समझने का अवसर भी नही है और न समय ही है। दूसरी ओर शान्त चित्त से समझने की मनोवृत्ति का एकदम अभाव है। इसलिए चुप

रहने के अलावा कोई रास्ता नही था—विप्रदास बिल्कुल चुप रहा।

पैरो को नीचे करके साहब ने जँभाई लेते हुए पूछा—'आप ही जमीदार विप्रदास बाबू हैं न?'

'हॉ मैं ही हूँ।'

'मैंने आपका नाम सुना है। पास वाले गॉव मे मेरी पत्नी का ननिहाल है, बगाल मे जब आया ही हुआ तो उनका मन था कि एक बार भेट करती जाएँ। इसी कारण चला आया। मैं पजाब मे प्रैक्टिस कर रहा हूँ।'

विप्रदास ने देखा कि यह आदमी उसी की आयु का है, एक-आध साल का हेर-फेर हो सकता है, इससे अधिक नही।

साहब बोलने लगे—'कल ही आपके विषय मे बाते हो रही थी। लोग कहते हैं कि आप बडे भयकर, यानी बहुत बडे जमीदार हैं। गो कि, दो-चार ब्राह्मण-पण्डितो ने कट्टर हिन्दू होने के कारण बहुत प्रशसा की, अब देखता हूँ कि बात झूठी नही है।'

अपरिचित की इस आलोचना से वन्दना और उसके पिता दोनो को आश्चर्य हुआ, परन्तु विप्रदास ने कोई उत्तर नही दिया। शायद वह इतना उदास था कि ये बाते उसके कानो मे नही पहुँच पायी।

वह फिर कहने लगे—'अपने भाषणो मे अक्सर कहा करता हूँ कि रियल सॉलिड शिक्षा चाहिए। धोखेबाजी, ठगी नही। आपको एक बार यूरोप घूम आना चाहिए। वहॉ की जलवायु, वहॉ की फ्री एयर मे सॉस लिए बिना हृदय मे फ्रीडम नही आती। बुरे संस्कारो से मन मुक्त नही हो सकता। मैं पूरे पॉच वर्ष तक उस देश मे रहा हूँ।'

वन्दना के पिता अन्तिम बात से प्रसन्न होकर बोले—'यह बात सत्य है।' उत्साह पाकर वह जोश मे आकर बोले—'इस डेमोक्रेसी के युग मे सभी समान हैं, किसी से कोई छोटा नही, सभी को अपने अधिकार को एसर्ट करना चाहिए,कनसीक्वेंस कुछ भी क्यो न हो। मेरे पास रुपये होते तो मैं आपकी रियासत की सारी प्रजा को अपने व्यय से यूरोप की यात्रा करा लाता। अपने राइट किसे कहते हैं, इस बात को तब वे स्वय ही समझ जाते।'

शायद ये बाते वन्दना को बहुत बुरी लगी, उसने धीरे से कहा—'बहनोई जी अपनी प्रजा पर अत्याचार करते हैं इसकी सूचना आपको किसने दी? आशा करती हूँ कि आपके ममिया ससुर पर तो कोई अत्याचार नही हुआ?'

'अच्छा, शायद वह आपके बहनोई हैं, थैंक्स नही, उन्होने कोई शिकायत नही की।' अपनी पत्नी को लक्ष्य करके सहास्य बोले—'यदि तुम्हारी बहिने इस प्रकार की होती! शायद आप विलायत हो आयी हैं? नही गयी हैं? जाएँ, अवश्य जायें, फ्रीडम, साहस, शक्ति किसे कहते हैं, उस देश की युवतियॉ क्या हैं, एक बार अपनी ऑखों से देख आएँ। मैंने नेक्स्ट टाइम इन्हे भी ले जाने का निश्चय किया है।'

किसी के कुछ बोलने से पूर्व ही स्टेशन के उस रिलिविंग हैण्ड स्टेशनमास्टर ने गर्दन उठाकर कहा कि ट्रेन डिस्टैन्ट सिगनल पार कर चुकी है, वह आ रही है।

शीघ्रता से सभी प्लेटफार्म पर आ डटे।

ट्रेन खडी होने पर देखा गया कि अवकाश के कारण यात्रियो की अपार भीड़ है। कही भी जगह पाना मुश्किल है। फर्स्ट और सैकेण्ड क्लास के केवल एक-एक डिब्बे हैं, सैकेण्ड क्लास पर पूरी तरह कब्जा करके अग्रेज रेलवे-सरवेण्टो का एक दल किसी खेल के लिए कलकत्ते जा रहा है, और शायद उन्ही मे से कई स्थान के अभाव के कारण फर्स्ट क्लास मे जा घुसे हैं, शराब और बियर से चूर होने के कारण इनका चेहरा जैसा भयानक था, व्यवहार भी उतना ही उद्दण्ड। सभी ने डिब्बे के फाटको को रोककर जोरों से चिल्लाकर कहा—'गो, जाओ-जाओ, जगह नही है।'

स्टेशन-मास्टर आया, गार्ड आया, उन लोगो ने किसी की बात की ओर ध्यान नही दिया।

साहब ने कहा—'क्या करना चाहिए?'

डरते हुए वन्दना ने कहा—'चलिए, आज घर लौट चले।

विप्रदास ने कहा—'नही।'

'नही तो फिर? नही तो रात की ट्रेन से. '

नये साहब ने कहा—'इसके अलावा और रास्ता ही क्या है। कष्ट होगा, होने दो।'

विप्रदास सिर हिलाकर बोला—'नही, ट्रेन मे चार-पाँच आदमी हैं, चार-पांच के लिए और स्थान होना चाहिए।'

वन्दना के पिता दु खी होकर बोले—'चाहिए तो यही, मै भी यही समझता हूँ, परन्तु वे सभी मतवाले बने हैं।'

विप्रदास की सारी देह जैसे लोहे के समान कडी हो गयी। बोला—'शौक उनका है, हमारा नही। चलिए मैं भी संग चलूँगा।' और पल-भर मे डिब्बे के हेडल को पकडकर उसने फ़ाटक ढकेल दिया। वन्दना का हाथ पकडकर घसीटते हुए और नये साहब को पुकारकर कहा—'राइट एसर्ट करना चाहते हैं तो पत्नी को लेकर चढ़ आइए। अत्याचारी जमीदार के साथ रहते भय की बात नही।'

मतवाले साहब पल-भर इस आदमी की ओर देखकर चुपचाप उधर वाली बेच पर जाकर बैठ गये।

आठ

बगल वाले डिब्बे के सब साहब यात्री शोरगुल सुनकर प्लेटफार्म पर आ खडे हुए और एक ही साथ रूखे स्वर मे प्रश्न किया—'ह्वाट्स मैटर?' भाव यह था कि साथियो के लिए वे बहादुरी दिखाने को तैयार हैं।

विप्रदास ने बगल मे खडे हुए गार्ड को सकेत से पास बुलाकर कहा—'बहुत सम्भव है कि ये सभी लोग फर्स्ट-क्लास के यात्री नही हैं, तुम्हारी ड्यूटी है इन्हे हटा देना।'

वह बेचारा भी साहब ठहरा, परन्तु बहुत ही काला साहब। इसलिए ड्यूटी कुछ भी क्यो न हो, इधर-उधर झाँकने लगा। बहुत से लोग तमाशा देख रहे थे। वह मद्रासी रिलिविग हैण्ड के सकेत से उसे पास बुला पाँच रुपये का नोट देकर विप्रदास ने कहा—'मेरा नाम मेरे नोकर से पूछ लेना। अपने ऊपर वालो के पास एक तार भेज दो कि मतवाले फिरगियो का यह दल जबरदस्ती फर्स्ट क्लास मे घुसा है, उतरता नही। और यह सूचना भी उसे देना कि गार्ड खडा-खडा तमाशा देखता रहा, लेकिन किसी प्रकार की सहायता नही की।'

गार्ड ने समझ लिया कि मेरे ऊपर खतरा आने वाला है। साहस करके कुछ पास आकर बोला—डोन्ट यू सी दे आर बिग पीपल्स। तुम रेलवे के नोकर हो, रेलवे के फ्री पास से जा रहे हो, 'बी केयरफुल।'

मतवालो के लिए भी यह बात उपेक्षा योग्य नही थी। इसीलिए वे उतरकर बगल वाले कमरे मे चले गये, लेकिन प्रसन्नता से नही। दबे स्वर मे जो कुछ कह गये, उसे सुनकर आदमी शान्त नही रह सकता। जो कुछ हो पजाब के बैरिस्टर साहब गार्ड को धन्यवाद देते हुए बोले—'आप न होते तो शायद हमारा जाना ही न होता।'

'नही, नही, यह तो मेरी ड्यूटी है।'

ट्रेन के छूटने की घण्टी बजी। विप्रदास ने उतरने की तैयारी करते हुए कहा—'शायद अब मुझे साथ जाने की आवश्यकता नही। वे अब कुछ करेगे नही।'

बैरिस्टर साहब बोले—'अब कुछ नही होगा। नौकरी का भय जो है।' फाटक को रोककर खडी होकर वन्दना बोली—'नही, यह नही हो सकता, नौकरी का भय ही काफी गारण्टी नही है, आपको साथ जाना ही होगा।'

विप्रदास ने हसकर कहा—'पुरुष होती तो जान सकती कि इससे बढकर गारटी संसार मे दूसरी नही परन्तु मैं तो कुछ खाकर आया नही।'

'खाकर तो मैं भी नही आई।'

'वह तो तुम्हारी इच्छा थी। परन्तु थोडी देर के बाद होटल वाला बडा स्टेशन आयेगा, इच्छा हो तो वहाँ खा लेना।'

वन्दना ने कहा—'ऐसी इच्छा नही है। मैं भी उपवास कर सकती हूँ।'

विप्रदास ने कहा—'करने मे किसी पक्ष को लाभ नही—मैं उतरूँ।' बैरिस्टर साहब बोले—'आप तो साथ हैं ही, जरा देखिएगा। यदि आवश्यकता हो तो '

वन्दना ने कहा—'खतरे की जजीर खीचकर ट्रेन रोक लेगे? यह मैं भी कर सकती हूँ।' इतना कह खिडकी से मुँह निकालकर घर के नौकरो से बोली—तुम लोग जाकर माँ से कह देना कि वह हमारे साथ

जा रहे हैं। कल या परसो लौट आयेगे।'

गाडी चल पडी।

पास आकर ही वन्दना बैठ गयी, बोली—'अच्छा, मुखोपाध्याय जी, आप तो कम हठी नही है?'

'क्यो?'

'आपने तो हमे बलपूर्वक ट्रेन पर चढा दिया, लेकिन वे लोग तो मतवाले थे, यदि न उतरते और मार-पीट शुरू कर देते तो?'

विप्रदास ने कहा—'तो उनकी नौकरी चली जाती।'

वन्दना ने कहा—'परन्तु हमारा क्या जाता? शरीर की हड्डी-पसलियाँ यह सब तो नौकरी से किसी भी प्रकार कम नही हैं।'

विप्रदास और वन्दना दोनो हँसने लगे, दूसरी स्त्री ने थोडा-सा हँसकर मुँह फेर लिया। उसके पति पजाब के नये बैरिस्टर का मुख गभीर हो गया।

अब तक वन्दना के पिता ने इधर खास ध्यान नही दिया था, आलोचना का अन्तिम भाग उनके कानो मे जाते ही वह सँभलकर बैठते हुए बोले—'नही, नही। तमाशे की बात नही है, गाडी मे इस प्रकार की घटनाओ की सूचना प्राय अखबारो मे निकलती रहती हैं, इसीलिए तो जोर-जबर्दस्ती की तनिक भी इच्छा मुझे नही थी, रात की ट्रेन से जाने से सभी प्रकार की आसानी रहती।'

वन्दना ने कहा—'रात की ट्रेन मे भी यदि मतवाले साहब रहते तो पिताजी?'

पिता ने कहा—'ऐसा क्या सचमुच ही होता है रे? तब तो भले आदमियो को यात्रा बन्द कर देनी पडेगी।' यह कहकर वह एक सिगार जलाने लगे।

धीरे-धीरे वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी, भले आदमी की सज्ञा के बारे मे पिताजी से तर्क न कीजिएगा।'

हँसकर सिर हिलाते हुए विप्रदास ने कहा—नही। यह मैंने समझ लिया है।'

'अच्छा मुखोपाध्याय जी, कभी बचपन मे किले के मैदान मे क्या कभी गोरो से मारपीट की है? सच बोलिएगा?'

'नही, ऐसा सौभाग्य तो कभी हुआ नही।'

वन्दना ने कहा—'लोग कहते हैं गाँव वालो के लिए आप टेटर हैं। सुना है कि घर के सभी लोग आपसे ऐसा भय खाते हैं जैसे शेर से। क्या यह सत्य है?'

'लेकिन यह तुमने किससे सुना?'

धीरे से वन्दना बोली—'मझली दीदी से।'

'वह कहती क्या हैं?'

'कहती हैं, भय से खून पानी हो जाता है।'

'कैसा पानी? मतवाले साहबो को देखकर जैसे हमारा होता है, उसी प्रकार न?'

वन्दना हँसी; सिर हिलाकर बोली—'हाँ, बहुत कुछ उसी प्रकार।'

विप्रदास ने कहा—'उसकी आवश्यकता है। नही तो स्त्रियो को नियन्त्रण मे नही रखा जा सकता। तुम्हारी शादी हो जाने पर भाई साहब को यह विद्या सिखा आऊँगा।'

वन्दना ने कहा—'सिखा देना। लेकिन सभी विद्याएँ सभी पर नही चलती, यह भी याद रखना। मझली दीदी सदैव की नेक है, मैं होती तो मुझसे भयभीत होकर सभी लोगो को चलना पडता।'

विप्रदास ने कहा—'यानी तुम्हारे भय से घर के सभी लोगो का खून पानी हो जाता। कोई आश्चर्य की बात नही, क्योकि पल-भर मे ही जो आदर्श उपस्थित कर आयी हो, उससे तो बात पर भरोसा करने को ही मन होता है। कम-से-कम माँ तो सरलता से भूल न सकेगी।'

वन्दना मन-ही-मन जरा अप्रसन्न होकर बोली—'मालूम है आपकी माँ ने क्या किया। जब मै प्रणाम करने गयी तो वे पीछे हट गयी।'

विप्रदास ने कुछ भी विस्मय प्रकट नही किया। बोला—'मेरी माँ का इतना ही भर तुम देख सकी और कुछ देखने का अवसर तुम्हे नही मिला। मिलता तो देखती इसके लिए क्रोध कर, बिना खाये चले आने मे बढकर दूसरी कोई भूल नही।'

वन्दना ने कहा—'मनुष्य का निजी आत्म-सम्मान भी तो कोई चीज है?'

विप्रदास ने जरा हँसकर कहा—'आत्म-सम्मान की धारणा कहाँ से मिली? स्कूल-कॉलेज की मोटी पुस्तको को पढकर ही तो? परन्तु माँ तो अग्रेजी नही जानती, पुस्तके भी नही पढी हैं। उनके ज्ञान मे तुम्हारा विचार कैसे मेल खा सकता है?'

वन्दना ने कहा—'परन्तु मैं तो केवल अपना ही विचार लेकर चल सकती हूँ।'

विप्रदास ने कहा—'चलने मे प्राय गलती हो जाया करती हे, जैसे तुमने आज की हे। विदेशो की पुस्तको से जो कुछ सीखा है, उसी को एकदम सच मान लेने के कारण ही इस प्रकार चली आयी, वर्ना न आती। बिना कारण ही गुरुजनो का अनादर करने मे हिचकिचाहट होती। आत्ममर्यादा और आत्माभिमान मे अन्तर जानती।'

वन्दना अन्तर भले ही न समझे, लेकिन इतना समझ गयी कि उसके आज के व्यवहार मे विप्रदास के हृदय को चोट लगी है। अपने लिए नही, माँ के अनादर के लिए।

वन्दना ने पूछा—'माँ के समान आप भी अन्धविश्वासी हिन्दू हैं न?' विप्रदास ने कहा—'हाँ।'

'उसी प्रकार छुआछूत का विचार करके चलते हे?'

'हाँ, चलता तो हूँ।'

'प्रणाम करने के लिए जाने पर उन्ही के समान पीछे हट जाते हैं?'

'हट जाता हूँ। समय-असमय का विचार कर चलना पडता है। अपनी मझली दीदी से ही पूछ लेना। परिवार का नियम उन्हे भी मानकर चलना पडता है।'

वन्दना ने कहा—'यानी शेर से भयभीत हुए बिना कोई भी नही रह सकता।'

विपदास ने हँसकर कहा—'नही रह सकता। जिस प्रकार दिन की गाडी मे शेर के डर से आदमी को रात की गाडी से जाना पडता है—वह जीवन-धर्म का प्राकृतिक नियम है।'

वन्दना ने कहा—'दीदी नारी हैं, सहज ही दुर्बल है, उनपर सभी नियम लगाये जा सकते हैं। परन्तु सुना है, द्विजू बाबू भी तो परिवार के नियम मानकर नही चलते, इस विषय मे शेर साहब की क्या राय है?'

वन्दना ने चुभने के लिए ही प्रश्न किया था। और उसके चुभने की आशा ही उसने की थी, परन्तु विप्रदास के मुख पर उसका कोई चिह्न नही दिखाई पडा। उसी प्रकार हसकर कहा—'इन गूढ तथ्यो को अधिकारी व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरो के सामने प्रकट करना मना है।'

विप्रदास ने सिर हिलाकर कहा—'समय आने पर जानेगा। वह जानता है कि खून-मास मे शेर पक्षपात नही करता।'

पल-भर के लिए वन्दना का मुख सूख गया। इसके पश्चात् वह क्या प्रश्न करे यह उसकी बुद्धि मे नही आया।

यह परिवर्तन विप्रदास की तीव्र दृष्टि से नही बचा। पिताजी ने बुलाया—'बूडी, मुझे थोडा-सा पानी तो देना।'

वन्दना ने उठकर सुराही मे से जल दिया और फिर बैठ गयी। फिर द्विजदास की चर्चा करने मे उसे भय लगा। दूसरा प्रसग छेडते हुए बोली, 'मझली दीदी की सास के लिए नही, परन्तु मेरे न खाकर आने से यदि मझली दीदी को दु ख हुआ है तो मुझे भी दु ख होगा। मैं यही बात विचार रही हूँ।'

विप्रदास ने कहा—'मझली दीदी को कष्ट होगा, यही बडी बात हो गयी, और मेरी माँ लज्जित होगी, कष्ट अनुभव करेगी, यह तुच्छ बात हो गयी। इसका अर्थ यह है कि आदमी वास्तविक बात जानने पर कैसी विपरीत चिन्ता करने लगता है।'

वन्दना ने कहा—'इसको उल्टी चिन्ता क्यो कहते हैं? वरन् यह तो प्राकृतिक है।'

विप्रदास चुप रहा। उसके उदास मुख पर वन्दना की दृष्टि पडी।

बाहर अधेरा बढता जा रहा था। कुछ भी दिखाई नही दे रहा था, फिर भी खिडकी के बाहर देखती हुई वन्दना बहुत देर तक चुप रही। दूसरे दिन गाडी इस समय हावडा पहुँच जाती है, लेकिन आज अभी दो-तीन घण्टे की देर है। उसने मुख फेरकर देखा कि विप्रदास जेब से एक छोटी-सी नोट-बुक निकालकर कुछ लिख रहा है। पूछा—'अच्छा मुखोपाध्याय जी, एक बात का उत्तर देगे?'

कौन-सी बात था?'

आप कह रहे थे कि हमारा आत्म-सम्मान-बोध केवल स्कूल-कॉलेज की पुस्तको मे पढी धारणा है। लेकिन आपकी माँ ने तो स्कूल-कॉलेज मे नही पढा है, उनकी धारणा कहाँ की सीखी हुई है?'

विप्रदास को आश्चर्य हुआ लेकिन कुछ बोला नही।

वन्दना ने कहा—'उनके सम्बन्ध का कौतूहल हृदय से दूर कर नही पा रही हूँ। वह गुरुजन हैं, मैं मना नही करती, लेकिन ससार मे क्या यही सबसे बडी बात है?'

विप्रदास चुप ही बैठा रहा।

वन्दना बोलती गयी—'आज हम उनके घर मे बिना बुलाये अतिथि थे, ये तो मेरी पुस्तको मे पढी विदेशी शिक्षा नही हैं? फिर बाते कुछ भी नही हैं—केवल आयु मे छोटी होने के कारण ही क्या मेरे अपमान का आप लोग तिरस्कार करेंगे।'

फिर भी विप्रदास कुछ बोला नही—उसी प्रकार चुप रहा।

वन्दना ने कहा—'फिर भी मैं उनसे क्षमा माँग रही हूँ जिससे मेरे व्यवहार के लिए दीदी को दु ख न हो।' जरा रुककर बोली—'मेरे माँ-बाप विलायत गये थे, इसीलिए उनके मेम साहब होने के अलावा उन्हें वह और कुछ सोच नही सकती। सुना है इसके लिए आज भी मझली दीदी के तिरस्कार की समाप्ति नही हुई। उनके विचार से मेरा विचार नहीं मिलेगा, फिर भी उनसे कह दीजिएगा, मैं जो कुछ होऊँ तिरस्कार तिरस्कार के अलावा, कुछ नहीं। दीदी की सास के करने पर भी नहीं।' यह कहते-कहते उसकी आँखो के कोनो मे जल दीख पड़ने लगा।

विप्रदास ने कहा—'किन्तु उन्होने तो तुम्हारा अपमान किया नही?'

वन्दना तीव्र कण्ठ से बोली—'अवश्य किया है।'

विप्रदास ने तुरन्त उत्तर नही दिया, पल-भर चुप रहकर बोला—'नही, माँ ने तुम्हारा अपमान नही किया। लेकिन ह्दय उसके अलावा दूसरा कोई यह बात समझा नही सकेगा। तर्क करके नही, उनसे ही इस बात को समझ लेना होगा।'

वन्दना खिडकी के बाहर देखती रही।

विप्रदास ने कहा—'एक दिन पिताजी से माँ का झगडा हो गया। बात छोटी-सी थी, लेकिन हो गयी बहुत बडी। तुम्हे कुल बाते नही बतायी जा सकती किन्तु उस दिन जान सका था कि लिखना-पढना न जानने वाली इस माँ का आत्म-मर्यादा-बोध कितना गहरा है।'

एकाएक वन्दना ने मुख फेरकर देखा कि असीम मातृ-गर्व से विप्रदास का चेहरा मानो चमक उठा है। किन्तु वह कुछ बोली नही और खिड़की से बाहर की ओर देखती रही।

विप्रदास बोलता गया—'बहुत दिनो के पश्चात् किसी बात के सिलसिले मे एक दिन माँ से इसी बात को पूछा था—'माँ, इतना आत्ममर्यादा-बोध तुमने कहाँ से पाया?'

वन्दना ने बिना मुख फेरे ही कहा—'वह क्या बोली?'

विप्रदास ने कहा—'शायद ज्ञात हो कि मैं माँ का अपना बेटा नही हूँ। अपनी दो संतान हैं—'द्विजू और कल्याणी।' माँ बोली—'तुम तीनो जनो को जिन्होने एक बिछावन पर पालन-पोषण करने का भार दिया था, उन्होंने यह विद्या मुझे प्रदान की थी, और किसी दूसरे ने नही। उसी दिन से जानता हूँ माँ के इस गहरे आत्म-सम्मान-बोध ने एक दिन के लिए भी किसी को यह जानने नही दिया कि वह मेरी माता नही, विमाता हैं। समझ सकती हो इसका अर्थ?'

पल-भर चुप रहकर वह फिर कहने लगा—'प्रणाम के उत्तर मे किसने कितना हाथ ऊँचा किया, कितना पीछे हटकर खडा हो गया, नमस्कार के प्रति नमस्कार मे किसने कितना सिर झुकाया, इसको लेकर मर्यादा की लड़ाई सभी देशो मे है। 'अहकार के नशे की मात्रा तुम्हारी पढ़ने की किताबो के पन्ने-पन्ने में मिलेगी, किन्तु माँ न होकर भी दूसरे लडके की माँ होकर जिस दिन माँ ने हमारे विशाल परिवार मे प्रवेश किया, उसी दिन आश्रित आत्मीय परिजनो के कठ की विष की थैली मानो छलक उठी थी। किन्तु जिस चीज से उन्होने सारे जहर को अमृत बना दिया, वह घर की मालकिन का अभिमान नही था, वह गृहिणीपन का भय नही था, वह था माँ की मर्यादा। वह इतनी ऊँची है कि उसे कोई लाँघ नही सका। लेकिन यह तत्त्व है केवल हमारे ही देश मे। विदेशियों को इसका पता नही, वे अखबार की खबरे

देखकर उन्हें दासी कहते हैं, अन्त पुर की जंजीरो स जकडी बॉदी कहते हैं। सभवत बाहर से ऐसा ही जान पडता है—दोष उन्हे नही देता, किन्तु घर के दास-दासी की सेवा के नीचे यदि अन्नपूर्णा की राजेश्वरी मूर्ति उन्हे नही दिखाई देती तो क्या तुम्हे भी नही दिखाई देगी?'

वन्दना अभिभूत दृष्टि से विप्रदास के मुख की ओर देखती रही।

वैरिस्टर साहब अचानक ऊँचे कण्ठ से बोल उठे—'गाडी ने इतनी देर बाद हावडा प्लेटफार्म मे 'इन' किया।'

शायद वन्दना के पिता अलसा गये थे, आश्चर्य से देखकर बोले—'दुर्दशा से मुक्ति मिली।'

वन्दना ने धीमी आवाज मे कहा—'मुझे कलकत्ते मे उतरना तनिक भी अच्छा नही लग रहा है मुखोपाध्याय जी। मन होता है आपकी माँ के पास लोट जाऊँ। जाकर कहूँ—'माँ, मैंने अच्छा नही किया, मुझे क्षमा करो।'

विप्रदास केवल हँसा, बोला कुछ नही।

स्टेशन पर उतरकर उसने पूछा—'कहाँ जायेगे आप?'

रायसाहब ने कहा—'मैं तो बराबर ग्रैण्ड होटल मे ही ठहरा करता हूं, उन्हे तार भी दे दिया है—वही जाऊँगा।'

इस आदमी के सामने ग्रैण्ड होटल की बात से वन्दना को शर्म-सी लगी।

गाडी लेट होने के कारण पजाब के बैरिस्टर साहब अत्यधिक क्रोध प्रकट करते हुए बार-बार कहने लगे कि उन्हे बी एन. लाइन मे जाना पडेगा, इसलिए वेटिंग-रूम के अतिरिक्त और कोई चारा नही।

विप्रदास मौन ही खडा हुआ था, रायसाहब स्वय भी कुछ लज्जित होकर बोले—'लेकिन विप्रदास, तुम—तुम भी शायद हमारे साथ '

'ग्रैण्ड होटल मे?' कहकर विप्रदास हँस पडा, बोला—'मेरे लिए चिन्ता न करे। वहू बाजार मे द्विजू का एक घर है, प्राय आना पडता है, लोग आदि सभी हैं—अच्छा, आज वही क्यो न चला जाय?'

वन्दना प्रसन्न होकर बोली—'चलिए, सभी वही चले। उसके सिर से मानो एक बहुत बडा बोझ उतर गया। प्रसन्नता के कारण उसने अन्य दोनों सहयात्रियो से भी चलने का अनुरोध किया और सभी मोटर मे जाकर बैठ गये।

नौ

सवेरे उठकर वन्दना ने देखा कि इस घर के सम्बन्ध मे उसका विचार ठीक नही था। उसने समझा था कि पुरुषो के रहने का घर है, शायद घर के कोने-कोने में कूडा-करकट, सीढी पर थूक, पान की पीक के निशान, टूटी-फूटी चीजे, मैले बिछावन, कमरों मे गर्द, मकडी के जाले इसी प्रकार की अस्त-व्यस्तता का दृश्य देखने को मिलेगा। कल रात को धीमे प्रकाश और थोडे समय मे कुछ देखने का अवसर नही मिला, लेकिन आज घर की स्वच्छता देखकर सचमुच ही उसे आश्चर्य हुआ कि काफी बडा घर है, बहुत से कमरे और बरामदे हैं, सभी सफाई से चमक रहे हैं। द्वार पर बाहर एक विधवा खडी है, जो देखने मे भले घर की महिलाओ के समान लगती है। गले मे आँचल लपेटकर प्रणाम करते ही वन्दना सकोच से चचल हो उठी।

उसने कहा—'दीदी, आप ही के लिए खडी हूँ, चलिए, गुसलखाना दिखा दूं। मैं इस घर की सेविका हूँ।'

वन्दना ने पूछा—'पिताजी उठ गये?'

'नही, कल सोने मे देर हुई थी, शायद उठने मे देर लगेगी।'

'और जो दो जने हमारे साथ आये हैं?'

'नही, वे भी उठे नही हैं।'

'तुम्हारे बडे बाबू? क्या वह भी सो रहे हैं?'

दासी ने हँसकर कहा—'नही, वह गगास्नान, पूजा-पाठ समाप्त कर कचहरी के कमरे मे बैठे हैं। उन्हे सूचना दूं, क्या?'

वन्दना ने कहा—'नही, उसकी आवश्यकता नही।'

गुसलखाना थोडी दूर पर था, एक छोटे वरामदे को पार करके जाना पडता था। वन्दना ने जाते हुए कहा—'तुम्हारे यहाँ वाथरूम, सोने के कमरे के पास क्या नही हो सकता?'

महरी ने कहा—'नही। क्योंकि माँ वीच-वीच मे काली के दर्शन के लिए कलकत्ता आने पर इसी घर मे ठहरती हैं इसलिए ऐसा हो नही सकता।'

वन्दना ने मन-ही-मन कहा—'यहाँ भी वही प्रवल-प्रतापी माँ! आचार-अनाचार पर कठोर अनुशासन। वह वापस जाकर कपडे ले आयी, बोली—'यदि यहाँ दो-चार दिन रहना पडा तो तुम्हे क्या कहकर पुकारूँगी? शायद यहाँ तुम्हारे अतिरिक्त और कोई सेविका नही है?—

वह वोली—'है, परन्तु वह काम मे जुटी रहती है। ऊपर आने का अवकाश उसे नही मिलता। जिस वस्तु की आवश्यकता हो मुझे ही आज्ञा दे दीदी, मेरा नाम है अन्नदा। किन्तु गाँव की हूँ, शायद वहुत कुछ दोषत्रुटि हो।

उसके विनय-वाक्यो से वन्दना ने मन-ही-मन प्रसन्न होकर पूछा—'अन्नदा। तुम्हारा घर कहाँ है? और कौन-कौन है तुम्हारा?'

अन्नदा ने कहा—'इन्ही के गाँव—वलरामपुर मे ही मेरा घर है। एक वेटा है, उसे इन्ही लोगो ने लिखा-पढाकर काम दिया है, वहू के साथ वह घर पर ही रहता है। अच्छी प्रकार है दीदी।'

वन्दना ने कौतूहलवश प्रश्न किया—'तव तुम स्वय भी क्यो नौकरी करती हो, वहू-वेटे के साथ घर पर ही क्यो नही रहती?'

अन्नदा ने कहा—'इच्छा तो होती है दीदी, पर होता नही। दु ख के दिनो मे वावू लोगो को वचन दिया था कि यदि मेरा अपना लडका आदमी वन गया तो दूसरो के लडको को आदमी वनाने का भार अपने ऊपर लूँगी। उस वोझ को सिर से नही उतार सकी हूँ। गाँव के वहुत से लडके यहाँ पढते हैं। मेरे सिवाय उनकी देख-भाल करने वाला कोई है नही।'

'क्या वे इसी घर मे रहते हैं?'

'हाँ, इसी घर मे रहकर कॉलेज मे पढते हैं। किन्तु आपको देरी होती जा रही है, मैं वाहर ही हूँ। पुकारते ही आ जाऊँगी।'

वन्दना ने गुसलखाने मे जाकर देखा कि भीतर सव प्रकार का प्रवन्ध है। आसपास तीन कमरे हैं, स्पर्श-दोष वचाने के लिए जितने प्रकार के विचार आदमी के मस्तिष्क मे आ सकते है, उनकी कोई कमी नही की गयी। वह समझ गयी कि यह सव माँ के लिए है। पत्थर का फर्श, पत्थर की ही जल-चौकी, एक ओर तीन एक ताँवे के वडे-वडे हण्डे हैं, शायद गगाजल रखने के लिए नित्य माँजने के कारण चमक रहे है वह कव आयी थी और फिर कव जायेगी, इसे कोई जानता नही। फिर भी उपेक्षा लेशमात्र कही देखने को नही मिलती। ऐसी ठीक व्यवस्था है जैसे यही रह रही हैं। यह सव आदेश और शासन से ही नही होता, इसमे भी वडी कोई वस्तु नियत्रित कर रही है। इसका अनुभव वन्दना ने चारो ओर दृष्टि डालते ही कर लिया और यह माँ नाम की नारी इस परिवार मे हर एक की दृष्टि मे कितनी ऊँची है, इस वात को वह चुप खडी अपने मन मे वहुत देर तक सोचती रही। कहानी-निवन्ध पुस्तको मे भारतीय नारी जाति के अनेक दु खो की कहानी उसने पढी है उनकी हीनता मे नारी होने के नाते उसे मानसिक कष्ट हुआ है—यह असत्य भी नही है। इस घर मे अकेले खडे होकर उन सवको सच मान लेने मे उसे झिझक हुई।

वाहर निकल आने पर अन्नदा ने हँसकर कहा—'दीदी, वहुत देर हो गयी, लगभग दो घण्टे, वे सभी लोग खाने के कमरे मे प्रतीक्षा कर रहे हैं। चलो न।'

'तुम्हारे वडे वावू कचहरी-घर से आये?'

'हाँ, वह भी नीचे ही हैं।'

'सम्भवत हमारे साथ खायेंगे नही?'

अन्नदा ने हँसकर कहा—'खायेंगे भी तो दोपहर ही के वाद। लेकिन आज तो वह भी नही। एकादशी है शायद सन्ध्या के वाद कुछ फल-मूल खाये।'

वन्दना न जाने कैसे समझ गयी थी कि इस घर मे भी स्त्री ठीक दासी नही है। वोली—'वे तो व्राह्मण घर की विधवा नही है, एकादशी को किसलिए उपवास करेंगे? कल ट्रेन मे एकादशी न सही, दशमी का

उपवास तो इसी प्रकार हो गया।'

अन्नदा ने कहा—'होने दो, उपवास से उन्हे कष्ट नही होता। माँ कहती हैं कि पिछले जन्म में तपस्या करके विपिन ने इस जन्म मे उपवास सिद्ध कर वर पा लिया है। उनका खाना देखकर चुप हो जाना पडता है।' नीचे आकर वन्दना ने देखा कि उनके नित्य की चाय, रोटी, अण्डे इत्यादि से मेज सजी है, और पिता तथा स्त्री सहित पजाब के बैरिस्टर भूख से बेचैन हो रहे हैं। उनका अधैर्य अपनी अंतिम मंजिल पर पहुँच गया है, पल-भल मे अखबार फेककर शिकायत करते हुए साहब ने कहा—'इतनी देर बेटी, अब देखता हूँ सबेरे कोई काम हो नही सकेगा।'

विप्रदास अधिक दूर नही बैठा था, वन्दना ने पूछा—'मुखोपाध्याय जी, आप खायेगे नही?'

विप्रदास बात जान गया, हँसकर कहा—'चाय मैं पीता नही, खाता हूँ दाल-भात, उसका समय यह नही है—मेरे लिए चिंता न करो, तुम बैठो।'

इसका उत्तर वन्दना ने नही दिया, पिता और दोनो अतिथियो को सकेत करके कहा—'मुझसे अपराध हो गया है। कहलवा भेजना चाहिए था, मेरा खाने का मन नही है, अब आप लोग देर न करे—आरम्भ कर दे। मैं आप लोगो के लिए चाय बनाती हूँ।' इतना कहकर वह उसी दम काम मे जुट गयी।

सभी व्यस्त हो गये। नौकर एक ओर खडा था वह सहम गया, पिता ने बेचैन होकर पूछा—'बेटी बीमार तो नही हो गयी?' बैरिस्टर साहब के मस्तिष्क मे नही आया कि क्या कहे?

वन्दना ने चाय बनाते हुए कहा—'नही पिताजी, तबीयत खराब नही है, केवल खाने को मन नही हो रहा है।'

'तो आवश्यकता क्या है। कल रात को देर से खाया भोजन शायद हजम नही हुआ, इसके अलावा दिन मे भूख के समय भोजन जो नही किया।'

'यही हो सकता है। दोपहर को मुखोपाध्यायजी के साथ बैठकर दालभात खाऊँगी, इस घर मे शायद वह हजम कर सकूँगी।' किसी दूसरे ने इस बात पर ध्यान नही किया, लेकिन विप्रदास के चेहरे को पल-भर के लिए जैसे काली छाया पार करती हुई दौड गयी।

न जाने क्या सोचकर अचानक नौकर बोल उठा—'आज एकादशी है, सध्या को दो-चार फल-मूल के अलावा वह तो और कुछ खाते नही।'

अभी-अभी इस बात को वन्दना सुन आयी थी, फिर भी आश्चर्य का भाव बनाकर बोली—'केवल फल-मूल? अच्छा हल्का खाना है। यही शायद सबसे अच्छा होगा। ठीक है न मुखोपाध्याय जी?'

हँसकर विप्रदास ने सिर हिलाया, लेकिन बिना सकोच के कोई उनका मजाक उडा सकता है, आज पहली बार इस बात को जानकर वह मन-ही-मन चुप रह गये। उनके मुख की ओर देखकर कदाचित् वन्दना ने भी इसका अनुभव किया।

काम से अवकाश पाकर जब वन्दना दिभा के साथ घर लौट आयी, तब दोपहरी ढल चुकी थी। सपत्नीक बैरिस्टर साहब अजायबघर, चिड़ियाखाना, किले का मैदान, विक्टोरिया मेमोरियल आदि कलकत्ते के प्रधान दर्शनीय स्थानो को देखकर तब भी नही लौटे थे। रात की ट्रेन मे उनका जाने का विचार है परन्तु कार्यक्रम बदलकर अभी जाना उन्होने रोक दिया है।

कपडे बदलने के लिए रायसाहब अपने कमरे मे चले गये। अपने कमरे के सामने वन्दना की अन्नदा से भेट हो गई, वह हँसकर शिकायत के स्वर मे बोली—'दीदी, सारा दिन तो उपवास ही में बीत गया, आपका फल-मूल मँगा रखा है, जल्दी से मुँह-हाथ धो डालो तब तक मै ठीक कर दूँ। ठीक है न?'

'किन्तु बडे बाबू—मुखोपाध्याय जी? कहाँ हैं वह?'

अन्नदा ने कहा—'उनकी चिन्ता न करे दीदी, उनके लिए तो नित्य की बात है। न खाना उनका नियम है।'

'लेकिन वह है कहाँ?'

'दक्षिणेश्वर काली का दर्शन करने गये है। अभी आ जायेगे।'

वन्दना ने कहा—'वही ठीक रहेगा, आ जाने दो, किन्तु और सब लोग?'

'उनके लिए क्या प्रबन्ध हुआ? चलो तो अन्नदा, तुम्हारा रसोईघर तो देख लूँ।'

अन्नदा ने कहा—'चलिए, किन्तु इस समय उन लोगो का प्रबन्ध तो रसोईघर मे नही हुआ दीदी, वह तो होटल मे हुआ है, भोजन वही से आयेगा।'

वन्दना भौंचक्की-सी रह गयी—'यह क्या वात है? यह राय तुम लोगो को किसने दी है?'

'वडे वावू स्वय आज्ञा दे गये हैं।'

'किन्तु यह अखाद्य-कुखाद्य ये लोग खायेगे कहाँ? क्या इसी घर मे? तुम्हारी माँ सुनेगी तो क्या कहेगी?'

लज्जित होकर अन्नदा वोली—'नही, वात उनके कानो तक नही पहुँचेगी। नीचे के एक कमरे मे प्रबन्ध कर दिया है। होटल वाला अभी वर्तन ले आवेगा, किसी प्रकार का कष्ट न होगा।'

वन्दना ने कहा—'आज्ञा तो दे गये, लेकिन आज्ञा-पालन किसने की? 'उनके पास मुझे जरा पहुँचा सकती हो?'

'कौन-सी वडी वात है यह दीदी, चलिए, पहुँचा दूँ।'

'चलो।'

मुखोपाध्याय घराने का कलकत्ते मे वडा व्यवसाय है। नीचे के तल्ले मे चार कमरों मे दफ्तर है। मुनीम, गुमाश्ते, मुन्शी, प्यादे, मैनेजर इत्यादि व्यापार सम्बन्धी कार्य करते हैं। वन्दना के पहुँचते ही सभी उठकर खडे हो गये। आयु और पद के ढंग से मैनेजर नामक व्यक्ति को उसने सरलता से ही पहचानकर उसे वाहर वुलाकर कहा—'होटल मे ऑर्डर क्या आप स्वय दे आये थे?'

मैनेजर के सिर हिलाकर स्वीकार करने पर वन्दना ने कहा—'अब एक बार जाकर उन्हे मना कर आइये।'

मैनेजर को आश्चर्य हुआ, इधर-उधर करके कहा—'व्डे वावू के वापस न आने तक. '

वन्दना ने कहा—'शायद तब मना करने के लिए समय न रहेगा, मुखोपाध्याय जी अप्रसन्न होगे तो मुझपर होगे, आपको भय नही। जाइये, देर न कीजिए।' इतना कहकर वह उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही लौटने लगी। मैनेजर ने सोचा, क्या यह बुरा न होगा? विप्रदास के आदेश की अवहेलना करना असम्भव भी कह सकते हैं, लेकिन इस अपरिचित लडकी के बेधडक और सोच-समझकर दिये गये आदेश का पालन न करना लगभग उतना ही असभव है। कुछ देर वह सोचता रहा। फिर कहा—'तो जाकर मना कर आऊँ, कुछ पेशगी दे दिया था।'

'आप जाये, देर न करे।' इतना कहकर वह लौट पडी।

सन्ध्या के बाद लौटकर विप्रदास ने कुल बाते सुनी। प्रसन्न हो या अप्रसन्न एकाएक उसकी समझ मे आया नही। रसोईघर मे पहुँचकर देखा प्रबन्ध लगभग पूरा हो चला है। वन्दना एक छोटे स्टूल पर बैठी रसोइये से उलझी है। विप्रदास को देखकर उठ खडी हुई और दिखावटी विनय के स्वर मे वोली—'क्रोध मे मैनेजर वावू को कही नौकरी से पृथक् तो नही कर आये मुखोपाध्याय जी?'

विप्रदास वोला—'मुखोपाध्याय जी बदमिजाज हैं, यह सूचना तुम्हे किससे मिली!'

वन्दना ने कहा—'कहावत है, बाघ की गन्ध, एक कोस दूर से ही आने लगती है।'

विप्रदास हँसकर बोला—'लेकिन अतिथियो के लिए क्या होगा? इन सभी को रात मे डिनर की आदत है। इसका प्रबन्ध कैसे होगा?"

वन्दना ने कहा—"जिनका डिनर के विना चल ही नही सकता, उन्हे नौकर के साथ होटल मे भेज दे। विल के दाम मैं चुका दूँगी।"

"मजाक नही है वन्दना, ऐसा करना शायद सम्भव नही हुआ।"

"क्या उन सारी चीजो को इस घर मे ढ़ोकर लाने से अच्छा होता?" वतलाइये तो यदि माँ सुन लेती तो क्या कहती?"

विप्रदास ने इस बात पर विचार न किया, पर कुछ तय नही कर सका वोला—"वह नही जानती।"

वन्दना सिर हिलाकर वोली—"अवश्य जानती। मैं पत्र लिख देती।"

"क्यो?"

"क्यो? कभी जो किया नही, उसे दो दिन के लिए आये वाहर के इन आदमियो के लिए क्यो करने जायेगे? ऐसा कभी नही होगा।" सुनकर विप्रदास प्रसन्न ही नही हुआ, उसे आश्चर्य भी हुआ। थोडी देर

चुप रहकर बोला—"किन्तु तुमने तो कल से कुछ भी नही खाया वन्दना! क्रोध क्या ठडा न होगा?" इस बार उसका कठ-स्वर कुछ स्नेह मिश्रित-सा लगा।

वन्दना ने मृदु स्वर मे उत्तर दिया—"क्यो नाराज कर दिया था? किन्तु सुनिये, आपके खाने के लिए फल-मूल सब मँगा लिया गया है तब तक सन्ध्या-प्रार्थना से निबट ले, मैं जाकर तैयार कर दूँगी। यदि और कोई देता है तो मैं आज भी खाऊँगी नही बताये देती हू।"

"अच्छा, आओ।" कहकर विप्रदास ऊपर चला गया।

लगभग घण्टे-भर बाद वन्दना फल-मूल मिठाई की सफेद पत्थर की थाली लेकर विप्रदास के कमरे मे उपस्थित हुई। अन्नदा के हाथो मे पानी का गिलास था। उसने पानी से धोकर आसन ठीक कर दिया।

विप्रदास ने वन्दना की ओर आश्चर्य से देखकर पूछा—"क्या तुमने अभी स्नान किया है?"

"आप भोजन करिये।" कहकर उसने थाली उतारकर रख दी।

दस

आसन पर बैठकर विपदास ने फिर वही प्रश्न किया—"क्या सचमुच ही फिर स्नान कर आयी हो? बीमार पड जाओगी।"

"पडने दो। लेकिन मेरे हाथ से न खाने का बहाना मैं आपको न खोजने दूँगी, यही मेरी प्रतिज्ञा है। स्पष्ट रूप से कहना पडेगा कि तुम्हारा छुआ भोजन नही खाऊँगा, तुम म्लेच्छ घर की कन्या हो।"

हँसकर विप्रदास ने कहा—"दुरात्मा को बहाने बनाने की कमी नही होती यह क्या तुमने पढा नही?"

वन्दना ने कहा—"पढा है लेकिन आप दुरात्मा नही हैं, भयानक भी नही हैं, हमारी ही भाँति दोष-गुण युक्त मनुष्य हैं वर्ना सचमुच ही आज उन बेचारो का डिनर बन्द करने न जाती।"

"किन्तु असली कारण क्या है?"

"असली कारण ही आपको बतला दिया है। आपके परिवार मे ये चीजे नही चलती। न घर पर और न यहीं, आप किस कारण ऐसा काम करेगे।"

"किन्तु जानती हो वे सभी विलायत हो आये हैं। इसी प्रकार के खाने के अभ्यस्त हैं।"

वन्दना ने कहा—"अभ्यस्त कुछ भी हो, फिर वे बगाली हैं। बगाली अतिथि डिनर न मिलने के कारण मर गया, इस बात का कही उदाहरण नही है। इसलिए बहाना नही चलेगा। यह आपकी बेकार बात है।"

विपदास ने कहा—"लेकिन काम की बाते क्या हैं, सुनूँ तो?"

वन्दना ने कहा—"मुझे यह ठीक-ठीक मालूम नही। किन्तु शायद आप मुँह से जितनी बाते करते है, उन सबको मन मे मानते नही। वर्ना माँ से छिपाकर वह प्रबन्ध करने को कभी तैयार न होने। लोग व्यर्थ मे आपसे इतना भय खाते हैं। जिनसे भय करना चाहिए वह आप नही, आपकी माँ है।"

यह सुनकर विप्रदास को जरा भी क्रोध नही आया, बल्कि हँसकर बोला—"तुमने दोनो को पहचान लिया है। किन्तु प्रबन्ध माँ से छिपाकर किया जा रहा था। यह सूचना तुम्हे कैसे प्राप्त हुई?"

वन्दना ने नाम नही बताया, केवल कहा—"मैंने पूछकर मालूम कर लिया है। यह इतनी बडी दुर्घटना होती कि मझली दीदी कभी मुझे क्षमा नही करती, सदैव कोसती और कहती—"वन्दना के लिए ही ऐसा हुआ। इसीलिए मैं ऐसा काम आपको कभी नही करने दूँगी।"

विप्रदास ने कहा—"तुम परम आत्मीय, कुटुम्ब मे सबसे बडी हो। यह तुम्हारे योग्य बात है। लेकिन लुका-छिपाकर तुम्हारे हाथो का बनाया खाया जा सकता है या नही, यह तुमने उस आदमी से पूछा था? पूछ आओ जाकर तब तक मैं प्रतीक्षा करता हूँ।" इतना कहकर उसने थाली तनिक खिसका दी।"

पहले तो वन्दना का मुँह लज्जा से लाल हो गया, बाद मे सँभलकर बोली—"नही, यह बात उससे पूछने मैं नही जा सकूँगी, आपको खाने की आवश्यकता नही।"

विप्रदास ने कहा—"किन्तु कठिनाई की बात तो यह है कि अपने घर मे तुम्हे उपवास भी नही करने दे सकता।" इतना कहकर वह खाने के लिए प्रस्तुत हो गया।

वन्दना ने पल-भर चुप रहकर पूछा—"किन्तु इसके बाद क्या करेगे।"

"घर लौटकर गोबर खाकर प्रायश्चित्त करूँगा।" इतना कहकर वह हँसा, लेकिन हँसी के कारण

यह सच है या व्यंग्य, वन्दना निश्चित रूप से समझ न पायी, वह मौन ही रह गयी।

विप्रदास ने कहा—"माँ से समझौता होगा ही, किन्तु तुम्हारी बहिन के दण्ड से बचूँगा, यह उससे भी बडी बात है।" कहकर फिर हँसते हुए कहा—"क्या विश्वास नही हुआ? अच्छा, पहले शादी हो जाय तब मुखोपाध्याय जी की बाते समझ सकोगी।" इतना कहकर वह थाली को साफ करके उठ गया।

डिनर तो रद्द हुआ, किन्तु दूसरे प्रकार के स्वादिष्ट भोजनो की कमी न थी, इसलिए तृप्ति के विचार से कही भूल नही हुई। किन्तु काम करने के बाद बिछौने पर लेटकर वन्दना सोच रही थी, उसके प्रति विप्रदास का आचरण अप्रत्याशित भी नही है। शायद अनुचित भी नही और अपने आदमी होकर भी जिन कारणो से अब तक घनिष्ठता और परिचय नही था, वह भी इतनी प्राचीन कहानी है कि नये सिरे से आघात अनुभव करना केवल बाहुल्य नही, विडम्बना भी है। प्रणाम करने जाने पर विप्रदास की माँ छूने से बचने के लिए हट गयी थी, उसी के प्रतिवाद मे वन्दना बिना खाये ही क्रोध मे चली आयी है। अशिक्षित महिला के उद्धत धर्माचार से उसे धक्का न लगा हो, ऐसी बात नही। लेकिन इस मूर्खता को भी एक दिन भूल जाना सरल है, किन्तु विप्रदास ने जो कुछ किया उसके प्रत्युत्तर मे क्या करना चाहिए, यह वन्दना ठीक न कर सकी। उसके हाथ का फल-फूल, मिष्ठान्न उसने खाया है, लेकिन अपनी इच्छा से नही; लाचार होकर। कही बलरामपुर की अनहोनी यहाँ भी न हो जाय इस भय से, मानो पागल के हाथो से छुटकारा पाने के लिए। लेकिन इस अनाचार से विप्रदास को चोट पहुँची है, घर लौटकर वह प्रायश्चित्त करेगा, यह बात न जाने क्यो निश्चित समझकर वन्दना को नीद न आयी, किन्तु यह भी बहुत बार सोचा कि मामला इतना गम्भीर क्यो है? उनके चलने का मार्ग तो एक नही है—दुनिया मे दोनो के लिए काफी स्थान है। यदि एक दिन अचानक सघर्ष हो ही जाता है, तो हो जाये। इस प्रश्न का सामना करने की पुकार इस जीवन मे उसे भी कौन दे रहा है? इस प्रकार उसने अपने-आपको शान्त करने की चेष्टा की, किन्तु फिर भी इसकी नीरव अवज्ञा को किसी प्रकार अपने मन से दूर न कर पायी।

सोचते-सोचते वह सो गयी, किन्तु अस्वस्थ बाधाग्रस्थ निद्रा सहसा टूट गयी। अभी सबेरा नही हुआ था, निद्रा पूरी न होने के कारण नेत्र भारी थे, नेत्रो मे नीद भरी हुई थी। लेकिन बिस्तर पर भी न रह सकी, बाहर आकर बरामदे की रेलिग के सहारे खडी होकर देखा कि बीतती रात का अधकार और भी घना हो गया है, दूर बडी सडक पर कभी-कभी गाड़ियो का शब्द सुनाई पड जाता है, लोगो के चलने-फिरने मे अभी काफी देर है, सारा घर बिल्कुल स्तब्ध है। अचानक दिखाई पड़ा एक तल्ले पर माँ के पूजा-घर मे दीपक जल रहा है और उसी का एक सूक्ष्म प्रकाश बन्द खिडकी के सूराख से निकलकर सामने वाले खम्भे पर पडता है। एक बार सोचा कि शायद नौकर दीपक बुझाना भूल गये हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण स्मरण हुआ, शायद विप्रदास हैं—पूजा कर रहे हैं।

उससे कौतूहल रोका न जा सका। सोचा, अचानक भेट हो जाने पर लज्जा छिपाने को स्थान न मिलेगा, रात्रि मे घर छोडकर नीचे आने का कोई कारण नही बताया जा सकता, किन्तु उत्सुकता उससे रोकी नही जा सकी।

ध्यान की बात वन्दना ने पुस्तको मे पढी है, चित्रो मे देखी है, किन्तु इसके पहले कभी नेत्रो से नही देखी। रात्रि के एकान्त अंधकार मे वही दृश्य आज उसे दिखाई दिया। विप्रदास की दोनो आँखे बन्द हैं, उसका बलिष्ठ दीर्घ शरीर आसन पर है ऊपर के दीपक का प्रकाश मुँह और माथे पर पड रहा है—कोई खास बात नही, शायद और किसी समय देखने से वन्दना को हँसी ही आती, लेकिन तन्द्रा-युक्त नेत्रो को इस दृश्य ने मुग्ध कर लिया। इस प्रकार वह कितनी देर खडी रही इसका ध्यान न रहा, किन्तु सहसा जब चेतना हुई तो देखा पूर्व का आसमान साफ हो गया है, उसने सोचा कि कही नौकर-चाकरो से यहाँ सामना न हो जाय। अब वह रुकी नही, धीरे-धीरे ऊपर जाकर अपने कमरे मे जा लेटी। गहरी नीद आने में उसे कुछ भी देर न लगी।

कुछ देर बाद द्वार पर थपकियाँ देकर अन्नदा ने बुलाया—"दीदी, काफी दिन चढ आया।"

जल्दी मे द्वार खोलकर बाहर आ खडी हुई, सचमुच दिन चढ आया है, लज्जित होकर पूछा—"शायद वे लोग आज भी प्रतीक्षा कर रहे हैं? जरा सबेरे मुझे क्यो नही जगा दिया? नहाने के बाद एक घण्टे के पहले तो तैयार न हो पाऊँगी अन्नदा।"

उसके विस्मित मुख की ओर देखकर अन्नदा हँसकर बोली—"भय की कोई बात नही दीदी, आज वे

सह्य न कर सके। भोजन तैयार कर लिया है। अब जब तक चाहे नहाये, कोई बाधा न डालेगा।"

वन्दना ने सुना तो मानो छुट्टी पा गयी, उसने भी हँसकर कहा—"तुम लोगों की बहुत-सी बातें पसन्द नहीं करती हूँ यह ठीक है, किन्तु इसे करती हूँ। सभी लोग घडी की सूई के अनुसार नही खाते, यह बहुत बडी बात है।"

अन्नदा ने कहा—"दीदी, क्या सवेरे आपको भूख नही लगती?"

वन्दना ने कहा—"किसी दिन भी नही। पर बचपन मे ही नित्य खाती आ रही हूँ। अच्छा चलूँ, अब देर नही करूँगी।" कहकर चल दी। दो-एक घण्टे के बाद नीचे विप्रदास से उसकी भेट हुई, वह कचहरी-घर से काम समाप्त करके चले आ रहे थे। वन्दना ने कहा—"नमस्कार।"

"चाय पी ली न?"

"हाँ।"

"वे इन्तजार नही कर सके, किन्तु तुम लोगो ने ही ।"

वन्दना रोकर बोली , "उसके लिए तो शिकायत नही की है मुखोपाध्याय जी।"

विप्रदास ने हँसकर कहा—"स्वभाव प्रशसा के योग्य है। इसे अस्वीकार न करूंगा, किन्तु दोनों बहिनों मे अन्तर मानो चन्द्र-सूर्य-सा है। सुना है जल्दी ही विलायत जा रही हो, शिक्षा को मजबूत बनाने के लिए। जाओ, लौटकर तनिक सूचना देना, एक बार जाकर मूर्ति दर्शन कर आऊँगा।"

वन्दना सुनकर हँस पडी, किन्तु उत्तर न दिया।

विप्रदास ने कहा—"सुना है कि उस देश में दिन के बारह बजे तक सोना पडता है, कठिन साधना है, किन्तु तुम्हें तो कष्ट करके अभ्यास करना नही होगा, इसी देश मे तुम्हारी साधना पूर्ण हो चुकी है।"

इस बार भी वन्दना हँसी, किन्तु उसी भाँति चुप रहकर विप्रदास के मुख की ओर देखती रही। एकदम सीधी-सादी सरल आकृति, हम सबके समान हँसना-बोलना, स्नेह-भाव दिखाना, किन्तु कल रात्रि के सन्नाटे में सूने कमरे मे वह शात मौन-मूर्ति कितनी रहस्यमयी मालूम होती थी, दिन मे उस बात का स्मरण आते ही उसके कौतुक का ठिकाना न रहा।

"ये लोग कहाँ हैं मुखोपाध्याय जी? कोई भी तो दिखाई नही देता।"

विप्रदास ने कहा—"इसका मतलब है—वे लोग नही हैं। यानी ससुर जी और सपत्नीक बैरिस्टर महाशय—तीनो गये हैं हावडा स्टेशन—डिब्बे रिजर्व कराने।"

विस्मय के साथ वन्दना ने पूछा—"सपत्नीक बैरिस्टर साहब करा सकते हैं, किन्तु पिताजी क्यो कराने जायेंगे? उनकी छुट्टी समाप्त होने में अभी तो आठ-दस दिन की देरी है। इसके अलावा मुझसे बिना कहे ही?"

विप्रदास ने कहा—"कहने के लिए समय न मिला, शायद लौटकर बताये। सवेरे ही बम्बई के दफ्तर से आवश्यक तार आया है, चेहरा देखकर सदेह न रहा कि बिना गये काम नही चलेगा।"

"किन्तु मैं? इतनी जल्दी क्यो जाने लगी?"

उसी की बात दोहराते हुए विप्रदास ने कहा—"अवश्य, जाओगी क्यो? यही तो मैं भी कहता हूँ।"

बात वन्दना की समझ मे न आ सकी और जिज्ञासु की भाँति केवल देखती रही।

विप्रदास ने कहा—"एक तार बहिन को भेज दो न, देवर को साथ लेकर चली आये। तुम लोगों की खूब पटेगी भी, मैं भी अतिथि-सत्कार के झझटो से बच जाऊँगा।"

वन्दना ने डरते हुए व्याकुल कण्ठ से पूछा—"क्या यह सभव है? माँ कभी भी इसके लिए सहमत न होंगी? मुझे तो वह देखना भी नही चाहती।"

विप्रदास ने कहा—"एक बार करके ही देख लो न? कहो तो तार का एक फार्म भेज दूँ—ठीक रहेगा न?"

उत्सुक नेत्रो से क्षण-भर मौन रहकर अन्त मे जाने क्या सोचकर वन्दना ने कहा—"रहने दीजिए, यह मुझसे न होगा मुखोपाध्याय जी।"

"तो रहने दो।"

"न हो तो पिताजी के साथ चली जाऊँ?"

"यह ठीक रहेगा।" कहकर विप्रदास चल दिया।

खाने की मेज पर पिताजी का तार पडा हुआ था। वन्दना ने खोलकर देखा, सचमुच वम्वई के दफ्तर का तार है, वहुत आवश्यक है, देर नही की जा सकती।

वन्दना कमरे मे जाकर फिर एक बार अपने वक्स को ठीक करने लगी।

अभी पिता लौटे नही थे, कई घण्टे के वाद अन्नदा कमरे मे आकर वोली, "आपके नाम का तार आया है दीदी, यह लो।"

"मेरा तार?" आश्चर्य से हाथ मे ले खोलकर देखा—वलरामपुर से माँ ने उसी को तार भेजा है। साग्रह अनुरोध किया है—"वह किसी भी दशा मे पिता के साथ वापस चली न जाये। वहू जी द्विजू को साथ लेकर रात्रि की ट्रेन से यात्रा कर रही है।"

ग्यारह

मझली दीदी रात की ट्रेन से आ रही है, सग मे द्विजदास भी आ रहा है। वन्दना की प्रसन्नता का ठिकाना नही। उस दिन दीदी की ससुराल के अपने आचरण से मन-ही-मन वहुत लज्जित थी, किन्तु उसे कैसे सुधारा जाये, उपाय नही मिल रहा था। आज बिल्कुल न चाहते हुए उसे भी पिता के साथ बम्बई लौट आना पडता, अचानक ऐसे ढग से इसका समाधान हो गया जिसका उसे पता भी न था। तार के फार्म को वन्दना ने कई बार उलट-पुलटकर देखा, पढकर अन्नदा को सुनाया और उत्सुकता से पिता की प्रतीक्षा करती रही, उस छोटे-से फार्म को उनके हाथो मे देने के लिए। विप्रदास घर मे नही है, पूछने पर मालूम हुआ कि कुछ देर पहले वाहर गये हैं, यह प्रवन्ध उन्होने ही किया है। इसीलिए उन्हे बताने की कोई वात नही, फिर भी एक बार कह देना ही होगा। वह कैसे कहे, यही सोचती-विचारती रही, किन्तु उसे कुछ भी न सूझा। प्रसन्नता प्रकट करने का सरल मार्ग जैसे कभी का बन्द-सा हो गया। वहुतो की दृष्टि मे जमीदारी वर्ग का यह कडा और कट्टर सनातनी आदमी, शुरू से ही उसे अच्छा नही लगा। अव यह काफी दुर्वोध है, फिर भी धीरे-धीरे उनके हृदय मे एक परिवर्तन हो रहा था। वह देख रही थी कि इस आदमी का आचरण सीमित है, वात करता है, व्यवहार भद्र है और मधुर है, फिर भी वह औरो से भिन्न है, यह उसे प्रत्येक व्यवहार से जान पडता है। सबके बीच रहकर भी वह सबसे दूर ही पडता है। आश्रितजन, नौकर-चाकर, कर्मचारी लोग सभी उस पर श्रद्धा रखते हैं, आदर करते हैं, किन्तु सबसे वडी वात जो है कि सब उससे डरते हैं। उनके हृदय का भाव मानो इस प्रकार है—बडे बाबू अन्नदाता हैं, वडे वावू रक्षक है, वडे बावू दुर्दिन के अवलम्ब हैं, लेकिन बडे बावू किसी के अपने नही हैं। पितृ-वियोग की विपदा उन्हें बतलायी जा सकती है, किन्तु पुत्र के विवाहोत्सव मे भोजन के लिए निमन्त्रण नही दिया जा सकता। इस घनिष्ठ सम्वन्ध की वात वे सोच भी नही सकते।

कल वन्दना रसोईघर की नौकरानी को सीधी और बुद्धू समझकर बातचीत के सिलसिले मे इनका कारण पूछ रही थी, किन्तु वहुत कुछ पूछने पर भी केवल इतना ही मालूम कर सकी कि वह इसका कारण नहीं जानती। सभी डरते हैं, इसीलिए वह भी डरती है और दूसरो से प्रश्न करने पर भी शायद यही उत्तर मिलता। मुखोपाध्याय जी के परिवार मे यह मानो एक सक्रामक रोग है। उस दिन अचानक ही उस छोटी-सी घटना के अवसर पर विप्रदास का उक्त स्वभाव पल-भर के लिए प्रकट हुआ था। किन्तु बाद मे फिर उसका पता नहीं। गाडी मे उस दिन पास बैठकर हँसी की कितनी ही बाते हुई, किन्तु आज यह जान नही पडता कि वही मनुष्य इस घर का स्वामी है।

सहसा नीचे गोल-माल सुनाई पडा, किसी ने दौडकर सूचना दी कि उसके पिता रायसाहब स्टेशन से लगडे होकर लौट आये हैं। वन्दना ने खिडकी से झाँककर देखा कि पजाव के बैरिस्टर और उनकी स्त्री दोनो कन्धे पकडकर साहव को गाडी से उतार रहे हैं। उनके पैर का जूता और मोजा खुला हुआ है और उसमे दो-तीन भीगे रूमाल लिपटे हुए हैं। प्लेटफॉर्म मे भीड की रेल-पेल मे किसी ने उनके पैर पर लकड़ी का भारी संदूक गिरा दिया था। लोगो ने धर-धराकर उन्हें ऊपर लाकर बिछौने में लिटा दिया। दरबान डॉक्टर ने आकर पट्टी बाँधकर दवा दी और कहा—"कोई विशेष चोट नही है, किन्तु कुछ दिनो के लिए चलना-फिरना बन्द करना होगा।"

अगले दिन सध्या समय सती आ पहुँची। वन्दना वडे उत्साह से आवभगत करने जा रही थी, सहसा ठिठक गयी। और देखा कि मोटर से केवल मझली दीदी ही नही उतर रही, साथ मे सास दयामयी भी हैं।

आनन्द की लहर रुक-सी गयी। वन्दना भयभीत हुई। किसी प्रकार प्रणाम कर एकदम किनारे खड़ी होने जा रही थी, दयामयी ने पास आकर उसकी ठोढी का स्पर्श कर चुम्बन लेने के पश्चात् हँसकर पूछा—"अच्छी तो हो न बेटी?"

सिर हिलाकर वन्दना बोली—"अच्छी हूँ, अचानक कैसे आ गयी?"

दयामयी ने कहा—"बताओ तो न आऊँ तो क्या करूँ? मेरी एक पगली बेटी क्रोध करके बिना खाये ही चली आयी, उसे घर ले जाये बिना चैन कैसे पडता बेटी?"

वन्दना ने कुंठित भाव से मुस्कराकर कहा—आप कैसे समझ गयीं कि मै क्रोध करके चली आयी हूँ?

दयामयी ने कहा—"पहले लडके वाली हो, मेरी प्रकार उन्हे पाल-पोसकर बडे करो तब स्वयं ही जान जाओगी कि बेटी के क्रोध की बात माँ कैसे जान जाती है?"

इन बातो को उसने इतने मीठे स्वर मे कहा—"कि वन्दना कोई उत्तर न दे सकी। सिर नीचा किये हुए, उनके पैर छूकर प्रणाम किया। खडी होकर कहा—"पिताजी सख्त बीमार हैं माँ।"

"बीमार हैं? उन्हे हुआ क्या?"

"पैर मे चोट लगने के कारण वह कल से बिछौने पर पडे हुए हैं, उठ भी नही सकते।"

दयामयी घबराकर बोली—"उपचार मे कोई भूल तो नही हुई? चलो, जिस कमरे मे तुम्हारे पिताजी हैं, मुझे ले चलो। पहले उन्हे देख आऊँ तब और कुछ होगा।" इतना कह वह सती का साथ लेकर वन्दना के पीछे-पीछे ऊपर रायसाहब के कमरे मे गयी। आज उनके पैर मे कोई विशेष पीडा नही थी, इन लोगो को देखकर विस्तर पर बैठकर नमस्कार किया। दयामयी ने हाथ उठाकर नमस्कार का उत्तर दिया और मुस्कराते हुए कहा, "समधी जी का पैर किस प्रकार टूटा, कहाँ घुस गये थे।"

सती और वन्दना दोनो ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया, रायसाहब सीधे-सादे आदमी, समझाने लगे कि कही घुसने के कारण नही, स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर अचानक ही यह दुर्घटना घटी।

दयामयी ने हँसकर कहा—"जो होना था हुआ, अब कुछ दिन बेटियो की देखभाल मे घर मे बन्द पडे रहिए। कही एक बेटी आपको सँभाल न सके, इसलिए और एक को ले आयी हूँ। दोनो बारी-बारी से कुछ दिनो तक सेवा-शुश्रूषा किया करेंगी।"

इस बात पर रायसाहब ने विश्वास कर लिया। उन्होने इस कृपा और सहानुभूति के लिए बहुत धन्यवाद दिया।

"फिर भेंट होगी, अब जाकर हाथ-पैर धोऊँ।" इतना कहकर दयामयी अपने कमरे मे चली गयी।

द्विजदास और उसका भतीजा वासुदेव दूसरी मोटर से आये। मझली दीदी के लडके को उस दिन वन्दना न देख पायी थी। वह पाठशाला मे था और उसकी छुट्टी से पूर्व वन्दना घर से चली आयी थी। दादी को छोडकर वासुदेव नही रह सकता, इसीलिए साथ ही आया है और उन्ही के साथ घर लौट जायेगा।

चाचा के परिचय करा देने पर वासुदेव ने नमस्कार किया। वन्दना के पैरो के जूते देखकर मन-ही-मन आश्चर्य हुआ, लेकिन वह कुछ नही बोला। आठ-नौ वर्ष का लडका है, लेकिन सब कुछ समझता है।

प्रेम से छाती से लगाते हुए वन्दना ने पूछा, "मुझे पहचाना नही बासू?"

"मैंने पहचान लिया मौसी जी।"

"किन्तु तुम तो पाँच-छ वर्ष के थे, तुम्हे याद तो न रहना चाहिए।"

"फिर भी मुझे याद है मौसी, तुम्हे देखते ही पहचान लिया। हमारे घर से तुम क्रोध करके चली आयी वापस जाने पर तुम्हे देखा नही।"

"क्रोध करके चले आने की बात तुमने सुनी किससे?"

"दादी से चाचा कह रहे थे।"

वन्दना ने द्विजदास की ओर देखकर पूछा—"क्रोध करने की बात आपको मालूम कैसे हुई?"

द्विजदास ने कहा—"केवल मै ही नही घर के सभी लोग जानते हैं। इसके अतिरिक्त आपने छिपाने का भी तो कोई विशेष प्रयत्न नही किया।"

वन्दना ने कहा—"आप मेरे क्रोध करने की बात ही जानते हैं, उसका कारण भी मालूम है।

द्विजदास बोला—"सभी को चाहे मालूम न हो, लेकिन मुझे मालूम हैं। रायसाहब को अकेले मेज पर खाने को बिठाया गया, इसीलिए।"

वन्दना ने कहा—"यदि यही कारण है, तो मेरा क्रोध करना क्या उचित मानते हैं?"

द्विजदास ने कहा—"उचित मानता हूँ। यद्यपि इन लोगो के लिए भी दूसरा कोई मार्ग न था।"

"क्या आप मेरे पिताजी के साथ बैठकर भोजन कर सकते हैं?"

"कर सकता हूँ। लेकिन भैया के मना करने पर नही।"

"लेकिन क्या आप समझते हैं कि आपको मना करने का अधिकार दादा को है?"

द्विजदास ने कहा—"यह उनकी बात है, मेरी नही। दादा की बात का न मानना अनुचित है यह जानता हूँ।"

वन्दना न कहा—"जिसे कर्त्तव्य समझते है, क्या उसे करने का साहस आप मे नही है?"

क्षण-भर चुप रहकर द्विजदास ने कहा, "देखिए, साहस-वाहस की बात नही। स्वभाव से मैं कायर आदमी नही हूँ, किन्तु दादा के मना करने पर मैं उनकी अवहेलना भी नही कर सकता। बचपन मे पिताजी की कितनी ही बाते मैंने नही सुनी। इसके लिए दण्ड न मिला हो सो बात नही, लेकिन मेरे दादा दूसरे स्वभाव के आदमी हैं, मैं उनका कभी अपमान नही करता।"

"अपमान करने से क्या होता है?"

"क्या होता है वह जानता नही, किन्तु हमारे परिवार मे यह प्रश्न अब तक नही उठ पाया है।

वन्दना ने कहा—"मझली दीदी के पत्रो से जान पडता है कि देश के लिए आप बहुत कुछ करते हैं फिर जो दादा की इच्छा के विरुद्ध है, वह क्यो करते हैं?"

द्विजदास ने कहा—"उनकी इच्छा के विरुद्ध हो सकता है, लेकिन वे मना नही करते वर्ना नही कर सकता था।"

दो-तीन मिनट चुप रहकर वन्दना ने कहा—"दीदी के पत्र से आपके विषय मे जो कुछ समझा था, वह तो आप हैं नही। अब उन्हे साहस बँधा सकूँगी कि भय की कोई बात नही, आपकी देश-सेवा के अभिनय से मुखोपाध्याय परिवार की विशाल सम्पत्ति मे एक कौडी का भी किसी दिन घाटा नही होगा। दीदी निश्चिन्त रहे।"

द्विजदास ने हँसकर कहा—"दीदी का घाटा हो, क्या आप यही चाहती है?

वन्दना ने झल्लाकर कहा—"वाह ऐसा क्यो चाहूँ। मैं तो यह चाहती हूँ कि उनका भय दूर हो वे निर्भय हो।

द्विजदास ने कहा—"आप चिन्ता न करे वे निर्भय ही है। कम-से-कम भैया के विषय मे यह बात नि सकोच कह सकता हूँ कि भय नाम की किसी वस्तु को वह आज भी नही जानते वह उनके स्वभाव के विरुद्ध है।

वन्दना ने हँसकर कहा—"इसका तात्पर्य यह कि भय वस्तु को घर के आप सभी लोगो ने आपस मे बाँट लिया है और उनके भाग मे कुछ भी नही पडा यही न?

द्विजदास ने बात सुनी तो हँसकर कहा—"बहुत कुछ है। किन्तु आपको वंचित नही होना पडेगा, थोडा-सा जो शेष है, उतना आप भी पायेगी। तीन-चार दिनो से एक साथ हैं अभी उन्हे पहचान नही पायी?"

वन्दना ने कहा—"नही, आपसे उन्हे पहचानना सीखूँगी, इसी आशा मे हूँ।

द्विजदास ने कहा—"तो लीजिए पहला पाठ। इन जूतो को उतार दीजिए।

नौकर आकर बोला—"आप लोगो को माँ ऊपर बुला रही है।"

वन्दना ने चलते-चलते पूछा—"अचानक माँ क्यो आ गयी।"

द्विजदास ने कहा—"पहली बात है कैलास-यात्रा के सम्बन्ध मे मासियो से राय लेना, दूसरी आपका बलरामपुर लौटाकर ले जाना। देखिए, कही ना न कह बैठना।"

वन्दना ने कहा—"ठीक है ऐसा ही सही।"

द्विजदास ने कहा—"माँ के सामने आपको मिसराय नही कह सकता। आप आयु मे मुझसे छोटी है, इसलिए नाम लेकर ही पुकारूँगा क्रोध मे आकर कही कोई दूसरा अभिनय न कर बैठना।

वन्दना हंसकर बोली—"नहीं, क्रोध क्यों करूँगी। आप मेरा नाम लेकर ही बुलायें। किन्तु मैं आपको क्या कहकर बुलाऊँगी?"

द्विजदास ने कहा—"मुझे द्विजू बाबू ही कहा करें, लेकिन दादा को मुखोपाध्याय जी कहना ठीक न होगा। उन्हें सभी बड़े बाबू ही कहते हैं, आपको बड़े दादा कहना होगा। यह रहा आपका दूसरा पाठ।"

"क्यों?"

द्विजदास ने कहा—"तर्क करके सीखा नहीं जा सकता, मान लेना पड़ता है, पाठ याद हो जाने पर इसका कारण बताऊँगा, इस समय नहीं।"

वन्दना ने कहा—"किन्तु मुखोपाध्याय जी को स्वयं आश्चर्य होगा।"

द्विजदास ने कहा—"होने पर भी कुछ हानि नहीं, किन्तु माँ-भाभी तो बहुत प्रसन्न होंगी। सचमुच इसकी आवश्यकता है।"

'अच्छा, ऐसा ही होगा।"

सीढ़ी के एक ओर जूते खोलकर वन्दना दयामयी के कमरे में जा पहुँची, पीछे-पीछे द्विजदास और वासुदेव पहुँचे। वह बक्स खोलकर कुछ कर रही थी और पास ही खड़ी अन्नदा शायद गृहस्थी का ब्यौरा दे रही थी। दयामयी ने सिर उठाकर देखा, बिना किसी भूमिका के स्वाभाविक स्वर में पूछा! तुमने स्नान करके कपड़े बदल लिए, बेटी।'

"हाँ, माँ।"

"तो बिटिया तनिक रसोईघर में जाओ। इतने लोगों की पण्डित क्या व्यवस्था कर रहा है, नहीं जानती, मैं भी सन्ध्या से निवृत्त होकर आ रही हूँ।"

वन्दना नीरव होकर देखती रही, लेकिन दयामयी ने उधर देखा तक नहीं। कहने लगी—"द्विजू की तबीयत ठीक नहीं है सवेरे भी वह कुछ खाकर नहीं आया। देखना उसका खाना जरा जल्द हो बेटी।" यह कहकर वह अन्नदा को साथ लेकर पूजा के कमरे की ओर चली गयी, वन्दना के उत्तर की अपेक्षा भी नहीं की

वन्दना ने द्विजदास से पूछा—"क्या रोग है?"

द्विजदास ने कहा—"साधारण बुखार-सा है।"

"इस समय क्या खायेंगे?"

द्विजदास ने कहा— साबूदाना, बार्ली के अतिरिक्त जो कुछ देंगी।"

वन्दना ने पूछा— रसोईघर में जाऊँ तो कोई गोलमाल तो न होगा?"

द्विजदास ने कहा—"नहीं होगा। शायद अन्नदा दीदी ऐसा कुछ परिचय आपके बारे में दे चुकी है उसका कहना माँ कभी टालती नहीं, बहुत प्रेम करती है शायद म्लेच्छ होने का कलंक आपका दूर हुआ।

कुछ देर चुप रहकर वन्दना ने कहा—"बड़े आश्चर्य की बात है।"

द्विजदास ने स्वीकार करते हुए कहा—' हाँ इस बीच में आपने क्या किया है, अन्नदा दीदी ने माँ से क्या कहा है, नहीं जानता, किन्तु आश्चर्य आपसे भी अधिक मुझे हुआ है। पर अब अधिक देर न करें जाकर भोजन का प्रबंध करें फिर भेंट होगी।

इतना कहकर दोनों मां के कमरे से बाहर चले गये।

बारह

कैलाश की तीर्थ-यात्रा में मार्ग की कठिनाइयाँ सुनकर मामियाँ ठिठक गयीं, दयामयी में भी कोई खास जोश दिखाई नहीं पड़ा, फिर भी कलकत्ते में उनके पाँच-छः दिन दक्षिणेश्वर कालीघाट और गंगा स्नान में ही बीत गये। काम के आदमी के हाथों में ही काम का उत्तरदायित्व आता है, इस घर का करीब सारा बोझ वन्दना के सिर पर आ पड़ा। सती कुछ भी नहीं करती, सभी मामलों में बहिन को आगे कर देती है, स्वयं सास के साथ-साथ घूमती-फिरती है, फिर भी बाहर कहीं जाना होता है तो उसे बुलाकर कहती है— वन्दना हमारे साथ चलो न। तुम्हारे साथ रहने से किसी से कोई बात पूछने की आवश्यकता नहीं होती।

विप्रदास भी आज-कल करते-करते घर नहीं जा सका। माँ सदैव रोकर कहती—"विपिन के चले

जाने पर मुझे कौन घर ले जाएगा?'' उस दिन सन्ध्या को वह विक्टोरिया मेमोरियल देखकर आयी. विप्रदास को बुलवाकर उत्तेजना के साथ कहने लगी—विपिन, तुम कुछ भी क्यो न कहो भाई, शिक्षित लडकियो की बात कुछ और है।''

विप्रदास जान गया कि वह वन्दना की बात है। पूछा—''क्या हुआ है माँ?''

दयामयी ने कहा—''क्या हुआ! आज बडे तगडे लाल मुँहे सार्जण्ट ने आकर हमारी गाड़ी रोक दी। भाग्य से यह लडकी मेरे साथ थी, अग्रेजी मे दो बाते कहकर समझा दिया और उसने हमारी गाडी तुरन्त ही छोड दी, नही तो जाने क्या होता? सम्भव है आसानी से न छोडता, थाने तक खीच ले जाता, कैसा हँगामा होता। तेरा नया पजाबी ड्राइवर किसी योग्य नही।''

विप्रदास ने हँसकर उत्तर दिया—''तुम लोगो ने क्या किया था, धक्का मार दिया था क्या?''

वन्दना आकर खडी हो गयी, दयामयी ने सिर हिलाकर प्रसन्नता-भरे स्वर मे कहा—''तुम्हारी ही बात विपिन से कह रही थी बेटी, पढी-लिखी लडकियो की बात ही कुछ और होती है। यदि तुम साथ न होती तो आज सभी को कितनी विपदा मे पडना पडता। किन्तु सारा दोष उस मेम का है। चलना नही जानती फिर भी अकडकर चलती है, जानती नही, पर दिखाना तो होगा ही।''

विप्रदास ने हँसकर कहा—''शिक्षित लडकियो की बात ही ऐसी होती है माँ। मेम साहब अवश्य पढना-लिखना जानती होगी।''

माँ और वन्दना दोनो हँसी। वन्दना ने कहा—''मुखोपाध्याय जी, वह मेम साहब का दोष है, पढ़ने-लिखने का नही। मैं रसोईघर को तनिक देख आऊँ। कल द्विजू बाबू की रोटी रसोइए ने कडी कर दी थी, उन्हे खाने मे कठिनाई हुई।'' इतना कहकर वह चल दी।

दयामयी पल-भर स्नेहपूर्वक उसी ओर देखती रहकर बोली—''सभी ओर दृष्टि रहती है। केवल लिखना-पढना ही नही विपिन, ऐसा कोई काम नही जिसे यह लडकी न जानती हो और उसी प्रकार मीठी वाणी भी। कोई भी काम उस पर सौंपकर निश्चिन्त रह सकते हैं, घर की किसी बात को देखने की आवश्यकता नही पडती।''

विप्रदास ने कहा—''म्लेच्छ होने के कारण मे घृणा तो नही करती हो माँ?''

दयामयी ने कहा—''तेरी तो वही एक बात है! म्लेच्छ क्यो होने जाएगी, उसकी माँ एक बार विलायत गयी थी, इसीलिए लोगो ने मेम साहब कहकर बदनाम किया। वैसे तो वन्दना हम लोगो के समान ही बगाली के घर की लडकी है। जूते पहनती है तो क्या हुआ? परदेश मे सभी पहनते हैं। लोगो के सामने बाहर निकलती है तो इसमे कौन-सा दोष है? बम्बई मे पर्दे की प्रथा नही हैं। बचपन से जो सीखा है, वह कर रही है। जैसी मेरी बहू है, उसी प्रकार यह है। अपने बाप के साथ वापस चली जायगी सुनकर भैया का मन न जाने कैसा होने लगता है!''

विप्रदास ने कहा—''मन के होने से काम कैसे चलेगा माँ? वन्दना रहने नही आयी है, दो दिन के बाद उसे तो जाना होगा।''

दयामयी ने कहा—''जायेगी तो सही किन्तु छोड देने का तो मन होता नही। इच्छा होती है पकडकर सदैव के लिए रख लूँ।''

थोडी देर मौन रहकर विप्रदास बोला—''किन्तु ऐसा तो हो नही सकता माँ, पराई लडकी को इतना गले न लगाओ। दो दिन के लिए आयी है, रहे, यही अच्छा है।'' कहकर वह कुछ अन्यमनस्क भाव मे बाहर निकल गया।

बात दयामयी को अच्छी नही लगी। किन्तु वह क्षण-भर की बात थी। बलरामपुर वापस जाने का कोई नाम नही लेता। सबके दिन ऐसे बीत रहे है मानो कोई जल्सा हो, हँसी-खुशी, गप्प और सैर-सपाटे। हँसी-दिल्लगी मे सभी के साथ इतना घुलते-मिलते दयामयी को इससे पहले किसी ने देखा नही। उनके मन मे कही मानो आनन्द की नदी बह रही थी, उनकी आयु और स्वाभाविक गाम्भीर्य को मानो वह धारा कभी-कभी बहा ले जाना चाहती है। सती मे सकेत मे कुछ बातचीत होती है, जिसका अर्थ केवल सास-बहू ही समझती हैं, या अन्नदा। सपत्नीक पजाब के बैरिस्टर साहब इतने दिनो तक रहकर कल वापस घर गये। उन दोनो का ही नाम बसत है, इसे लेकर दयामयी ने जाते समय व्यग्य किया था और वचन ले लिया था कि पजाब वापस जाने के पहले फिर भेट करनी होगी, कलकत्ते मे या

बलरामपुर में। रायसाहब का पैर ठीक हो गया है, अगले सप्ताह वह बम्बई रवाना हो जायेंगे। दयामयी ने कह करके वन्दना के लिए कुछ दिनों का अवकाश स्वीकृत करा लिया है। बम्बई के बजाय बलरामपुर जाकर बहिन के साथ कम-से-कम एक महीना और रहेगी। इसकी निश्चित रूप से व्यवस्था हो गयी।

मुखोपाध्याय जी का मामला-मुकदमा हाईकोर्ट में लगा ही रहता है। एक बडे मामले की तारीख निकट आ रही थी, इसीलिए विप्रदास ने निश्चय किया कि अब घर न जाकर उस तारीख के बाद सभी का साथ लेकर ही घर जायेगा। भाँति-भाँति के कामों के लिए उसे सदैव बाहर रहना पडता है। आज रविवार था, दयामयी ने आकर, हँसकर कहा—"एक मजे की बात सुनी है विपिन?"

विप्रदास अदालती कागजात देख रहा था, चौकी छोडकर उठ खडा हुआ और पूछा—"कौन-सी बात माँ?"

दयामयी ने कहा—"द्विजू की आज न जाने कौन-सी सभा है, पुलिस न होने देगी पर वे करेंगे ही। मारपीट, सिर फुडव्वल की बात सुनते ही मेरे तो भय के मारे प्राण निकल पडते हैं?'

"क्या वह गया?"

"नही! वही बात तो तुझसे बतलाने आयी हूँ। किसी की बात मानी नहीं। यहाँ तक कि अपनी भाभी की भी नही, अन्त में वन्दना की बात माननी पड़ी।

'कितनी ही अच्छी सूचना क्यों न हो, माँ की मर्यादा को ठेस लगी थी। विप्रदास को मन-ही-मन विस्मय हुआ। लेकिन बोला—"सच?"

हँसकर दयामयी ने उत्तर दिया—"यही तो होते देखा। न जाने उन्होंने निश्चय किया था कि यहाँ उसमें से एक भी जूता नही पहनेगा, चाल-चलन में इस घर के नियम का उल्लघन नहीं करेगा और इसके बदले एक दूसरे का अनुरोध मानकर चलना होगा। वन्दना ने उसके कमरे में जाकर केवल कहा—"द्विजू बाबू, याद है न? आप किसी भी दशा में आज जा नही सकते।" द्विजू ने स्वीकार करते हुए कहा—अच्छी बात, न जाऊँगा। सुनकर मेरी चिन्ता दूर हो गयी विपिन। क्या कर बैठेगा, न जाने क्या झगडा होगा मालिक जीवित नही, उसे लेकर किस प्रकार भयभीत रहना पडता है, यह नहीं बता सकती।'

विप्रदास मौन रहा। माँ कहने लगी—'पहले उसे स्कूल-कॉलेज जाना, लिखना-पढना, परीक्षा पास करना था—अब इस झंझट से छुट्टी मिली। कोई काम न होने के कारण बाहर का कौन-सा झंझट कब खडा कर दे, कोई नही कह सकता, सोचती हूँ अन्त में इतने बडे घराने को वह कलक न बन जाय।'

हँसकर सिर हिलाते हुए विप्रदास ने कहा—"नही-नही, इसका भय मत करो, द्विजू कलक का कोई काम कभी करेगा नही।"

माँ ने कहा—'मान लो यदि अचानक जेल ही हो जाय! इसका भय गया नही है?'

विप्रदास ने कहा—"भय है जानता हूँ किन्तु जेल होने में तो कोई कलक नही है माँ कलक तो बुरे काम में है। वैसा काम वह कभी करेगा नही। मान लो, कभी मुझे ही जेल हो जाय, हो भी सकती है तो क्या मेरे लिए तुम लज्जित होगी? कहोगी विपिन मेरे परिवार का कलक है!

दयामयी को यह बात तीर-सी लगी। इसमें कोई निहित सकेत तो नही है? जिस लडके को हृदय से लगाकर इतना बडा किया, वह भली-भाँति जानती है कि सत्य के लिए, धर्म के लिए, ऐसा कोई काम नही जो विप्रदास न कर सकता हो। अन्याय का प्रतिवाद करने में वह किसी भी विपत्ति, किसी भी परिणाम की चिन्ता नही करता। जब उसकी आयु केवल अठारह वर्ष की थी, तभी एक मुसलमान घराने का पक्ष लेकर अकेले ऐसा काम किया कि जीवित कैसे लौट आया, यह आज भी दयामयी के लिए एक पहेली है। वन्दना के मुख से उस दिन की ट्रेन घटना सुनकर वह भय से एकदम मौन हो गयी थी। द्विजू के लिए उसे चिन्ता है अवश्य, लेकिन दिल में बहुत अधिक भय है अपने इस बडे लडके के लिए मन-ही-मन ठीक इसी बात को सोच रही थी। विप्रदास ने कहा—"क्यों माँ, कलक की दुश्चिन्ता दूर हो गयी? जेल अचानक किसी दिन मुझे भी हो सकती है?

अचानक व्याकुल होकर दयामयी ने कहा—"जुग-जुग जिओ बेटा, ऐसी अशुभ बातें तुम मुख से न निकाला करो।" इसके बाद ही बोली—"मेरे जीवित रहते तुझे जेल होगी? तो इतने दिनों तक देवी-देवताओं को मनाया क्यों? इतना धन है किसलिए? सब-कुछ बेच दूँगी, फिर भी ऐसा नही होने दूँगी, विपिन।

झुककर विप्रदास ने उनकी पद-धूलि ली, दयामयी उसे छाती मे लगा कर बोली—"द्विजू को जो होना हो सो हो, यदि तू मेरी आँखो से दूर हुआ तो गगा मे डूबकर प्राण दे दूँगी, यह मुझसे सहन न होगा, समझ ले।" कहते हुए उनके नेत्रो से जल की कई बूँदे टपक पडी।

'माँ, इस समय क्या?" कहते हुए वन्दना ने कमरे मे प्रवेश किया।

दयामयी ने तुरन्त उसे छोडकर आँसू पोछ लिए और वन्दना के मुख की ओर देखे हँसकर कहा—"बेटे को बहुत दिनो से हृदय मे नही लगाया था, इसलिए जरा हृदय मे लगा लेने की इच्छा हुइ।

वन्दना ने कहा—"किन्तु लडका बूढा है, यह मैं सबसे बता दूँगी।"

विरोध करते हुए दयामयी ने कहा—"लेकिन यह शब्द मुँह पर न लाना बेटी। अभी उस दिन की बात है, ब्याह कर आयी थी; मेरी फुफेरी सास जीवित थी, विपिन को मेरी गोद मे डालकर बोली—"यह लो अपने बड़े बेटे को। काम-काज मे बहुत देर से कुछ खाने को नही मिला, पहले उसे खिलाकर सुलाओ, तब दूसरा काम होगा। उन्होने शायद देखना चाहा था कि मुझसे होगा या नही, नही जानती, हो सका है या नही।" कहकर वह फिर हँस पडी।

वन्दना ने पूछा—"तब आपने क्या किया माँ?"

दयामयी ने कहा—"घूँघट के अन्दर से देखा सोने का एक जीवित खिलौना है, बडी-बडी आँखो से अचरज से मेरी ओर देख रहा है। हृदय से लगाकर दौड पडी नेग-चार बहुत से शेष थे, सभी चिल्ला उठे, किन्तु मैंने अनसुनी कर दी। घर-द्वार कुछ नही जानती थी। जो महरी साथ-साथ दौडकर आयी थी, उसने कमरा दिखा दिया। उसी से कहा— 'ला तो मेरे बेटे का दूध का कटोरा, उसे दूध पिलाये मै एक कदम भी आगे नही चलूँगी। उस दिन गाँव-पडोस की स्त्रियो मे से किसी ने कहा—बेशर्म है, किसी ने और कितने ही प्रकार की बाते कही, किन्तु मैने कोई चिन्ता न की। मन-ही-मन कहा—"कहने दो उन्हे। गोद मे पाये इस रत्न को अब कोई छीन तो सकेगा नही। मेरे उसी बेटे को तुम बूढा कहती हो।"

तीस वर्ष पहले की घटना याद आते ही आँसुओ और हँसी से उनका मुखमण्डल वन्दना को अपूर्व दिखाई पडा, बनावटी स्नेह का मर्म इस प्रकार समझने का सौभाग्य उसे और कभी मिला नही था। विस्मित नेत्रो से पल-भर देखकर उसने अपने को सँभाल लिया, और हँसकर बोली—"माँ अपने दोनो बेटो मे किसे अधिक प्यार करती हो, सच बताना?"

दयामयी हँसकर बोली—"असम्भव सच भी हो तो नही कहना चाहिए बिटिया, शास्त्र का निषेध है।"

वन्दना बाहर की लडकी है, अभी परिचय हुआ है, इसके सामने इन सारी पुरानी बातो की आलोचना से विप्रदास बेचैनी सी अनुभव कर रहा था। बोला—"बतलाने पर भी तुम नही समझ सकोगी वन्दना, तुम्हारी कॉलिज की पुस्तको मे ये बाते नही है, उनसे मिलाकर देखने पर माँ की बाते तुम्हें बहुत अनोखी लगेगी। रहने दो यह आलोचना।"

वन्दना को यह अच्छा न लगा, बोली—"अंग्रेजी पुस्तके आपने भी तो कुछ कम नही पढी हैं मुखोपाध्याय जी, तब आप ही कैसे समझ लेते हैं?"

विप्रदास ने कहा—"माँ की भाषा हम नही समझते वन्दना। ये सब बाते मेरी इस माँ की पोथी मे ही लिखी हैं, उसकी भाषा अलग है, अक्षर अलग हैं, व्याकरण अलग है। वह स्वय ही समझती हैं और कोई नही। अच्छा माँ, तुम क्या कहने आयी थी, कहो न।"

वन्दना जान गयी कि यह सकेत उसकी ओर है। बोली—"माँ इस समय की रसोई की बात आपसे पूछने आयी थी, मैं जा रही हूँ, आप भी तनिक जल्दी आये। फिर सब-कुछ भूलकर बेटे को गोद मे लेकर न बैठी रह जायँ।" कहकर विप्रदास पर जरा कटाक्ष करके चल पडी।

उसके चले जाने के पश्चात् दयामयी के मुख पर दुश्चिन्ता की छाप आ पडी, पल-भर इधर-उधर करके बोली— 'विपिन, तू तो बडा धार्मिक है, माँ को कभी ठगना नही चाहिए, यह जानता है न बेटा?'

विप्रदास ने कहा— 'भगवान् के लिए तुम बात न बनाओ माँ, जो कुछ पूछना चाहती हो पूछो न।"

दयामयी ने कहा— तूने अचानक यह कैसे कहा कि तुझे भी जेल हो सकती है। कैलास जाने का निश्चय अभी भी नही त्यागा, पर अब तो मैं एक दिन भी चल-फिर नही सकती।"

विप्रदास हँसकर बोला—"कैलास भेजने के लिए मैं भी बेचैन नही, किन्तु उसका दोष अन्त मे मेरे सिर मत मढना। वह तो केवल दृष्टान्त भर है, द्विजू की बात तुम्हे समझानी चाही थी कि केवल जेल जाने

से ही किसी के परिवार को कलंक नहीं लगता।"

दयामयी ने सिर हिलाकर कहा—"इससे मैं भुलावे में नहीं आ सकती विपिन। व्यर्थ की बातें करने वाला जीव तू है नहीं। या तो कुछ किया है, और या कुछ करना चाहता है। सच-सच बतला मुझे?"

विप्रदास बोला—"सच ही बतला रहा हूँ कि मैंने कुछ भी नहीं किया माँ। किन्तु आदमी के दिमाग में कितने प्रकार की बातें चक्कर काटती रहती हैं, इसे क्या ठीक-ठीक बतलाया जा सकता है?"

पहले की ही तरह सिर हिलाकर दयामयी बोली—"नहीं, यह भी नहीं। नहीं तो आजकल तुझे देखते ही क्यों मेरा मन न जाने कैसा होने लगता है? पाल-पोसकर तुझे बड़ा किया, मेरे जीवित रहते ही इतनी बड़ी नमकहरामी करेगा, बेटा?" कहते ही उनके दोनों नेत्र भर आये।

विप्रदास दुविधा में पड़कर बोला—"अमंगल का विचार करके यदि तुम ही डरती हो, तो मैं इसके लिए क्या कर सकता हूँ? तुम तो जानती हो कि तुम्हारी राय लिए बिना मैंने कभी कोई काम नहीं किया।"

दयामयी ने कहा—"नहीं किया, यह सच है, किन्तु कल द्विजू को बुलवाकर काम-काज लेने के लिए क्यों कहा?"

बड़ा हो गया, मेरी सहायता न करेगा?"

नाराज होकर दयामयी ने कहा—"उसमें कितनी योग्यता है? मुझे भुलावा मत दे विपिन, तू आज इतना थक गया कि तुझे उससे सहायता लेने की आवश्यकता पड़ गयी तो साफ बता कि तेरे मन में क्या है?"

विप्रदास चुप रह गया। उसने यह नहीं कहा कि आपने अभी-अभी द्विजदास के भविष्य के बारे में सोचने को कहा था। किन्तु इसी की झलक मिली दयामयी की बाद वाली बात में। कहने लगी—'हमारा यह घराना धर्म-कर्म का है। यहाँ अनाचार नहीं चल सकता। हमारे वंश के नियमों की कड़ाई के साथ तेरी शादी की गयी थी, सत्रह वर्ष की आयु में, वह भी तेरी सलाह लेकर नहीं, हमारी इच्छा थी इसलिए। किन्तु द्विजू कहता है वह शादी नहीं करेगा। उसने एम० ए० पास किया है, अच्छा-बुरा समझने की अब उसमें बुद्धि है। उसपर किसी का दबाव नहीं चल सकता। वह गृहस्थ नहीं होता तो उसपर मेरा भरोसा नहीं, मेरे ससुर की सम्पत्ति में वह दखल देने न पावे।"

विप्रदास ने पूछा—"द्विजू ने कब कहा कि वह शादी नहीं करेगा?"

"प्रायः कहा करता है। कहता है, "शादी करने के लिए बहुत से लोग हैं, वे करें। वह केवल देश के लिए काम करेगा। तुम लोग समझते हो यहाँ आकर मैं दिन-रात घूमती-फिरती हूँ, बड़े सुख में हूँ। किन्तु मैं सुखी नहीं हूँ। तिसपर आज तूने जेल का दृष्टान्त दिया, मानो मुझे समझाने के लिए तेरे सामने और कोई दृष्टान्त नहीं था। लेकिन एक दिन तुझे मालूम हो जायेगा विपिन।"

विप्रदास ने फिर कहा—"उसकी भाभी को आदेश देने के लिए कहो न माँ।"

"उसकी बात वह सुनेगा नहीं।"

"अवश्य सुनेगा माँ। समय आने पर सुनेगा।" तनिक हँसकर बोला—"और यदि मुझे आज्ञा दो तो उसके लिए लड़की भी ढूँढ़ सकता हूँ।"

"वन्दना आकर कमरे में घुसी, शिकायत के स्वर में बोली— 'आप आयीं नहीं माँ? मैं इतनी देर से बैठी हूँ।"

"चलो बेटी, आ रही हूँ।"

विप्रदास बोला—"हमारे अक्षय बाबू की वह लड़की तुम्हें याद है माँ? अब वह सयानी हो गयी है लड़की में जैसा रूप है वैसा ही गुण भी। घराने में भी हमारी बराबरी के हैं। कहो तो जाकर देख आऊँ, बातचीत करूँ। द्विजू को बुरी न लगेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।"

"नहीं-नहीं, अभी रहने दो।" कहकर दयामयी ने एक क्षण के लिए एक बार वन्दना के मुख की ओर देखकर कहा—"सती की इच्छा, नहीं नहीं, विपिन, बहू से बिना पूछे कुछ करने की आवश्यकता नहीं।"

शान्त नेत्रों से दोनों की ओर निहारकर वन्दना ने कहा—"इसमें क्या दोष है माँ? यहीं कलकत्ते में है, चलो न दीदी को लेकर हम देख आयें।"

विप्रदास बोला—"यह अच्छा प्रस्ताव है माँ, अक्षय बाबू धर्मनिष्ठ ब्राह्मण पण्डित, संस्कृत के अध्यापक हैं। लड़की को स्कूल-कॉलेज में तो नहीं पढ़ाया, घर पर बहुत कुछ सिखाया है। उनके यहाँ

एक दिन मेरा निमत्रण था। उस दिन लडकी से मैंने बहुत-सी बाते पूछी थी। जान पडा कि पिता की बड़ी साध से लडकी का नाम मैत्रेयी रखना असार्थक नही हुआ। जाओ न माँ, एक बार उसे देख आओ, तुम्हारी बडी बहू कम-से-कम मन-ही-मन लजायेगी कि उसके अलावा भी दुनिया मे रूपवती लडकियाँ हैं।"

माँ ने हँसना चाहा, किन्तु हँसी न आयी, मुख से बात भी न निकली। वन्दना ने फिर अनुरोध किया—"चलिये न माँ, हम चलकर एक बार मैत्रेयी को देख आये? अधिक दूर भी तो नही है।"

दयामयी ने देखा कि वन्दना के मुख पर अब वह सुन्दरता नही है, मानो छाया ने ढँक लिया है। अब इतनी देर के बाद उन्हे उत्तर मिला, बोली—"नही बेटी, अधिक दूर तो नही है जानती हूँ, किन्तु मुझे उतना समय भी नही है। चलो हम चले, इस समय क्या बनेगा, देखे?" कहकर वह उसका हाथ पकडकर कमरे से बाहर चल दी।

तेरह

सध्या-प्रार्थना से छुट्टी पाकर विप्रदास अभी अपनी लाइब्रेरी वाले कमरे मे आकर बैठा ही था, सवेरे की डाक से जो दस्तावेज घर से आये हैं, उन्हे देखना आवश्यक है, इसी समय माँ ने प्रवेश किया—"क्यो रे विपिन, तू कितना बढा-चढाकर बाते करने लगा है बेटा?"

विप्रदास कुर्सी से उठ खडा हुआ—"किस विषय मे माँ?"

"अक्षय बाबू की लडकी मैत्रेयी को हम तो देख आयी।"

"लडकी कैसी है?"

दयामयी तनिक इधर-उधर करके बोली—"नही, बुरी नही कहती। अक्सर इस प्रकार की लडकी दिखाई नही पडती यह सच है, किन्तु इसी से मेरी बहू से उसकी बराबरी की? बहू की बात जाने दे, क्या रूप मे वह वन्दना के सामने खडी हो सकती है?"

विप्रदास अचरज करके बोला—"तब शायद तुम लोग और किसी को देख आयी हो। वह मैत्रेयी नही है।" दयामयी ने हँसकर कहा—"नही, यह बात नही है, हमसे उसकी बहुत-सी बाते हुई, कितने यत्न से उसने बहू आदि को खिलाया, उसके बाद कितने ही लिखने-पढने की बाते वन्दना से उसकी हुई और तू कहता है, हम किसी और को देख आयी हैं।"

विप्रदास ने कहा—"शायद वन्दना ने स्कूल-कॉलेज मे कितनी पुस्तके पढकर कई परीक्षाएँ पास की है और उसने केवल पिता के पास बैठकर सीखा है। मुझमे और द्विजू मे भी यही अन्तर है।"

सुनकर दयामयी के दोनो नेत्र कौतुक से नाच उठे—"चुप रहो विपिन, चुप रहो। द्विजू उस कमरे मे सुन लेगा तो लाज के मारे घर छोडकर चला जायगा।" तनिक ठहरकर बोली—"तेरी माँ अनपढ है तो क्या, इतनी है कि कॉलेज मे पढी लडकी को ही चतुर्वर्ग्य समझ बैठेगी। बात ऐसी नही है रे, बल्कि छोटे-छोटे वाक्यो मे, मीठे स्वर मे उसने वन्दना की सभी बातो का उत्तर दिया, गाडी मे आते समय वन्दना ने उस लडकी की कितनी प्रशसा की। लेकिन मै कहती हूँ हमारे गृहस्थ के घर क्या आवश्यकता है बेटा उतने लिखने-पढने की? जैसी मेरी एक बहू है, उसी प्रकार की एक और होने से ही मेरा काम चल जायगा। नही तो विद्या के गुणगान से वह मन-ही-मन गुरुजनों को तुच्छ समझेगी, यह नही हो सकता।"

विप्रदास जान गया कि तर्क का उत्तर माँ ठीक-ठीक नही दे पा रही है। हँसकर कहने लगा—"इसका भय न करो माँ। जिनमे कम विद्या होती है, अभिमान उन्ही को अधिक होता है। यदि उसने बाप से सचमुच ही कुछ सीखा है, तो सबसे नम्रता का व्यवहार करेगी देख लेना।"

तर्क को माँ अस्वीकार न कर सकी। कहने लगी—"तेरी यह बात सच है, किन्तु पहले से कैसे जान लूँ बता? इसके सिवाय हमारे गाँव मे विद्या की कमी-बेशी की परीक्षा करने कोई नही आता, किन्तु दुलहिन को देखने वाली सभी नाक-भौं सिकोडकर कहेगी, बुढिया के क्या आखे नही थी कि वैसी बहू की बगल मे इस बहू को लाकर खडा किया। बेटे, यह मुझसे सहन नही किया जायगा।"

पल-भर चुप रहकर विप्रदास बोला—"किन्तु अक्षय बाबू को उत्तर तो देना होगा माँ। उस दिन उन्हे विश्वास दिलाया कि मेरी माँ को शायद नापसन्द न होगी।"

दयामयी सुनकर चिन्तित होकर बोली—"बात न कहते तभी ठीक होता विपिन। कुछ भी हो वह

की क्या साध है, सुनूँ, उसके बाद उनसे कह दिया जायगा।'

विप्रदास ने कहा—"अक्षय बाबू हमारे एकदम बेगाने नही है, अब तक परिचय नही था इसीलिए यह बात खुली नही थी। आत्मीयता के लिए कुछ भी नही कहता, लेकिन अपने एक लडके की जब शादी की थी, अपनी ही इच्छा से की, दूसरे किसी से पूछने नही गयी, और अब इसी के लिए ही राय जानने-सुनने की कौन-सी आवश्यकता आ पडी है माँ?"

तर्क मे हारकर दयामयी हँसकर बोली—"किन्तु अब बूढी जो हो गयी हू बेटा, और कितने दिनो तक जीवित रहूँगी बताओ तो सही। किन्तु जिसे लेकर हमेशा के लिए गृहस्थी चलाना होगा, उसकी राय न लेकर कैसे शादी कर सकती हूँ? नही, नही, हमे विचारने के लिए तू दो दिन का समय दे।" कहकर वह बाहर चली गयी। बाहर आकर दयामयी अपने कमरे की ओर न जाकर समधी के कमरे की ओर चल पडी, इन्ही कई दिनो की घनिष्ठता से वन्दना के पिता के सामने उनका सकोच बहुत कुछ दूर हो गया था, प्रात स्वय आकर उनका समाचार पूछ जाती। इधर सध्या पार हो चुकी है, सन्ध्या करने बैठ जायँगी तो शीघ्र उठ न सकेगी, सोचकर उनके कमरे मे प्रविष्ट हुई और बोली—"क्या हाल है '

बात समाप्त नही हो पायी थी। कमरे के दूसरे किनारे पर एक सुन्दर युवक वन्दना से धीरे-धीरे बातचीत कर रहा था। सुन्दर साहबी पोशाक वाले इस अपरिचित आदमी के सामने अचानक आ पडने के कारण दयामयी लज्जा के कारण पीछे हटना ही चाहती थी कि रायसाहब बोल उठे—"कहाँ भागी जा रही है समधिन जी, वह तो अपना सुधीर है। उससे शर्म की कौन-सी बात है? वह तो विप्रदास और द्विजदास के समान ही आपका बेटा है। मेरी बीमारी की सूचना पाकर मद्रास मे देखने आया है। सुधीर, आप वन्दना की दीदी की सास है, विप्रदास की माता। प्रणाम करो इन्हे।"

प्रणाम करने का सुधीर को अभ्यास नही है, उस पोशाक मे करना भी कठिन है। उसने पास आकर सिर झुकाकर किसी प्रकार आज्ञा का पालन किया।

उनकी सन्तान का सम्बन्ध इस लडके से कैसे हुआ, यही समझने के लिये रायसाहब कहने लगे—"उसका बाप और मै हम दोनो एक ही साथ विलायत मे पढते थे तभी से हम घनिष्ठ मित्र है। सुधीर स्वय भी विलायत से बहुत-सी परीक्षा पास कर मद्रास के शिक्षा-विभाग मे नौकरी करता है। इनकी शादी के बाद वह कुछ दिनो की छुट्टी लेकर वन्दना के साथ फिर विलायत जायेगा, वहाँ तबीयत हुई तो वन्दना कॉलेज मे भर्ती होगी, नही तो केवल देश घूमकर दोनो लौट आयेगे। देखना सुधीर, यदि तुम लोग इसी अगस्त-सितम्बर मे ही जाना निश्चय कर सको तो हो सकेगा कि मै भी तीन महीने की छुट्टी लेकर एक बार घूम आऊँगा। कैसा रहेगा बेटी ठीक होगा न?"

वही से धीरे-धीरे वन्दना ने कहा—'क्यो न होगा पिताजी तुम्हारे साथ रहने मे तो ठीक रहेगा।'

रायसाहब ने उत्साहित होकर कहा— 'उससे एक और आसानी यह रहेगी कि तुम्हारी शादी के बाद महीने-भर का समय मिलेगा, किसी प्रकार की जल्दबाजी नही करनी पडेगी। समझ लिया न सुधीर आसानी को?'

सुधीर तथा वन्दना दोनो ने ही इसमे सम्मति-सूचक सिर हिलाया। दयामयी इतनी देर बाद जान सकी कि यह लडका रायसाहब का भावी दामाद है। इसलिए भी इनका भी पुत्र स्थानीय है। उनका हृदय अचानक आनन्द से भर उठा, लेकिन वह विप्रदास की माँ है, जो बलरामपुर के प्रसिद्ध मुखोपाध्याय जी हैं, घर की मालकिन है, पल-भर मे अपने को सँभालकर लडके से पूछा— 'सुधीर तुम्हारा मकान कहाँ है बेटा?"

सुधीर ने कहा— 'इस समय बम्बई मे किन्तु पिताजी से सुना है कि पहले दुर्गापुर मे था लेकिन अब शायद हमारा कुछ भी नही रह गया।"

"कौन-सा दुर्गापुर सुधीर? जो वर्द्धमान जिले मे है?

सुधीर ने कहा—"हाँ, पिताजी से सुना तो यही है। कलकत्ते के पास कोई छोटा-सा गाँव है अब शायद वह इलाका मलेरिया से नष्ट हो गया है।'

क्षण-भर मौन रहने के बाद दयामयी ने पूछा—"तुम्हारे पिता का क्या नाम है?

सुधीर ने कहा—"मेरे पिता का नाम श्री रामचन्द्र बसु है।

दयामयी ने आश्चर्य से पूछा—" तुम्हारे बाबा का नाम हरिहर बसु था?

यह प्रश्न सनकर रायसाहब भी आश्चर्यचकित हो गये। बोले आप उन लोगो को जानती हैं क्या?

"हाँ, जानती हूँ। मेरा ननिहाल दुर्गापुर मे है। बचपन से नानी ने ही मेरा लालन-पालन किया था, इसीलिए उस गाँव के प्राय सभी को जानती हूँ। उनका मकान हमारे मुहल्ले मे था। किन्तु इस समय बातचीत करने का अवसर नही है, मेरी सध्या मे विलम्ब होता जा रहा है। लेकिन बिना कुछ खाये-पिये ही तुम चले न जाना, अभी मैं सब-कुछ करने के लिये बता रही हूँ।"

हँसकर सुधीर ने कहा—"वह अब तक शेष नही है, विप्रदास बाबू ने पहले ही वह काम समाप्त कर दिया है।"

"कर दिया है? अच्छा तो अब मै चलूँ।" कहकर दयामयी चल दी। वन्दना की ओर एक बार भी देखा नही, एक बात भी की नही।

अगले दिन सवेरे स्नान-सन्ध्या करके विप्रदास ने नित्य के अभ्यास के अनुसार माँ की पद-धूलि के लिए आज भी उनके कमरे मे प्रवेश करके अत्यन्त आश्चर्य से देखा कि उनकी चीज-वस्तुएँ बाँधी जा रही हैं।

"कही जाओगी क्या माँ?"

दयामयी ने कहा—"तू नही मिला, इसीलिए दत्त महाशय से पूछकर जान लिया कि साढे नौ बजे की गाडी मे रवाना हो जाने से सन्ध्या के पहले ही घर पहुँच जाऊँगी। किन्तु परसो तेरे मुकदमे की तारीख है, तू तो साथ नही जा सकेगा, द्विजू से हमे पहुँचा देने लिये कह दे।"

माँ के दोनो नेत्र लाल, और मुँह सूखा है, देखने से विप्रदास ने जान लिया कि सारी रात उन्हे गहरी चिन्ता मे बितानी पडी।

भयभीत विप्रदास ने पूछा—"अचानक क्या कोई आवश्यकता पड गयी है माँ?"

माँ ने कहा—"आयी थी दो दिन के लिए, आठ-दस दिन हो गये, उधर ठाकुर जी की पूजा का क्या हो रहा है, नही मालूम। पाँच-छ गायो के ब्याने का समय हो गया है, देखूँ उनका क्या हुआ, कोई सूचना नही मिली है। बासु स्कूल से अनुपस्थित हो रहा है—अब तो देर नही कर सकती विपिन।"

दयामयी के लिए वे सारी बाते छोटी नही है। यह सच है, किन्तु असल कारण उन्होने नही बतलाया, यह समझकर ही विप्रदास ने कहा, फिर भी क्या आज गये बिना काम चलेगा नही?"

"नही बेटा, मुझे तू रोक नही। द्विजू को साथ जाने के लिए कह दे, न हो तो और कोई हमे पहुँचा आवे।"

"ऐसा ही होगा माँ।" कहकर विप्रदास पदधूलि माथे से लगाकर कमरे से बाहर निकल गया। अपने सोने के कमरे मे आकर देखा कि सती बहुत व्यस्त है और पास ही बैठी अन्नदा मिठाई की हाँडी, फल-मूल और लडके के दूध का लोटा सँभालकर टोकरी मे रख रही है।

घूँघट खीचकर सती उठ खडी हुई। विप्रदास ने कहा—"अन्नदा दीदी, क्या बात है?"

' मैं तो कुछ भी नही जानती, दादा। सवेरे माँ ने मुझे बुलवाकर कह दिया कि बहू को खाने-पीने का कष्ट न हो, नौ बजे की गाडी से वह घर जायेगे।"

विप्रदास ने सती से कारण पूछा— उसने भी सिर हिलाकर बतलाया कि उसे भी कुछ नही मालूम।"

सुनकर विप्रदास स्तब्ध रह गया। अन्नदा को न मालूम हो, लेकिन बहू भी नही जानती, सास की ऐसी कौन-सी बात है? पल-भर चुप खडा रहकर वह नीचे चला गया। परेशान होकर यही सोचते हुए गया कि वे सारी बाते माँ के स्वभाव के विरुद्ध है। क्या जाने कौन-सा गहरा दु ख उनके इस बेतुके आचरण के भीतर छिपा रह गया, जिसे उन्होने किसी पर भी प्रकट नही किया।

दयामयी तैयारी करके जब नीचे आयी तब भी गाडी मे बहुत देर थी किन्तु आज उनसे देरी नही सही जाती, किसी प्रकार घर छोडने से ही मानो उन्हे चैन मिलेगा। सामने मोटर तैयार खडी है, दूसरी मे चीज-वस्तु लादकर नौकर-चाकर जा बैठे है, हाथ मे बैग लिए विप्रदास को आते देखकर उन्होने भारी कण्ठ स्वर से पूछा—"द्विजू कहाँ गया?"

विप्रदास ने कहा— 'वह नही जायगा माँ, मै ही तुम्हे पहुँचा दूँगा।"

"शायद जाने के लिये राजी नही हुआ?"

नम्रता से विप्रदास ने कहा—"उसके लिए ऐसी बात तुम्हे नही कहनी चाहिए, मा। तुम्हारी आज्ञा को

उसने कब नही माना, बतलाओ तो?"

"तो हुआ क्या? क्यों नही जायगा?"

"माँ, मैंने ही उसे जाने के लिए नही कहा।" विप्रदास कुछ हँसकर बोला—"जिस लिए तुम इतनी बेचैन हो गयी हो, तुम्हारे उन्ही ठाकुर जी का, तुम्हारी उन्ही गायो के झुण्ड का क्या हुआ, अपने नेत्रो से देखूँगा इसीलिए साथ चल रहा हूँ और कोई बात नही।"

किसी दूसरे अवसर पर दयामयी स्वय भी हँसकर शायद बहुत-सी बाते लडके से करती, किन्तु इस समय चुप रह गयी।"

वन्दना को बुलाने अन्नदा आयी थी, वह अभी-अभी नहाकर पिता के कमरे मे जा रही थी। अन्नदा के बुलाने पर जल्दी मे नीचे आयी और यह सब देखकर स्तब्ध रह गयी।

दयामयी ने कहा—"आज घर जाने की तैयारी है वन्दना।"

"घर? वहाँ हुआ क्या है माँ?"

"कुछ भी तो नही हुआ। पर दो दिन के लिए आयी थी और दस-बारह दिन हो गये, देर हो गयी, अब घर छोडकर रहा नही जाता। तुम्हारे पिताजी से भेट नही हुई वह सोकर जगे नही थे। समधी जी से मेरी ओर से क्षमा माँग लेना। द्विजू है, अन्नदा है, तुम भी देखना उन्हे किसी बात का कष्ट न होने पाये। चलो बहू, अब न देर करो।" इतना कहकर वह गाडी मे जा बैठी।

सती जो पीछे थी, वह पास आकर बहिन का हाथ पकडकर रो पडी—"हम चल रही हैं बहिन।" और अधिक उसके मुँह से न निकला, आँसू पोछते हुए वह अपनी सास की बगल में जा बैठी।

वन्दना हतबुद्धि-सी मौन भाव से पत्थर की मूर्ति के समान खडी रही, अचानक यह हुआ क्या?

जब बासू ने आकर उसको प्रणाम करके कहा—"मै जा रहा हूँ मौसी?" तब उसे चेत हुआ कि अभी तक उसने भी किसी को प्रणाम नही किया। शीघ्रता से बासू का मुख चूमकर उसने गाडी के फाटक के पास आकर हाथ बढा दयामयी और मझली दीदी की पद-धूलि ली। सती ने चुपचाप उसकी ठुड्डी पकडी, माँ ने मन-ही-मन आशीर्वाद दिया, किन्तु क्या बोली, यह समझ मे नही आया। मोटर चल पडी।

अन्नदा ने कहा—"चलो दीदी, हम ऊपर चले।"

उसके स्नेह सिंचित कण्ठ स्वर से वन्दना लज्जित हुई, पल-भर की विह्वलता को दृढता से दूर कर बोली—"तुम चलो अन्नदा, मै रसोईघर का काम सँभालकर आ रही हूँ।" यह कहकर वह उसी ओर चल दी।

कल सन्ध्या को भी बाते हुई थी कि रायसाहब के बम्बई जाने के बाद सभी एक-साथ बलरामपुर जायेगे। लेकिन आज उसका जिक्र तक नही, और भविष्य मे किसी एक दिन का बुलावा भी नही।

वन्दना घण्टे-भर बाद चाय का सामान लेकर पिता के कमरे मे गयी तो वह बहुत दु:ख के साथ बोल उठे—"समधिन जी बिना मिले चली गयी सबेरे उठ न सका बेटी, छि! छि! न जाने मेरे विषय मे उन्होंने क्या सोचा होगा।"

वन्दना ने कहा—"हम बम्बई कब जायेगे पिताजी?'

पिताजी ने कहा—"तुम्हारी बलरामपुर जाने की बात थी बेटी, क्यो नही गयी?'

वन्दना ने कहा—"तुम्हे अकेला छोडकर कैसे जाऊँ पिताजी, तुम तो आज तक अच्छे भी न हो पाये।"

"चगा तो हो गया हूँ बेटी। समधिन जी को वचन दिया है कि तुम जाओगी, न हो तो, मै जाते हुए तुम्हे बलरामपुर मे उतारता जाऊँगा। कैसा रहेगा बेटी।

"नही, यह नही होगा पिताजी। इतनी दूर अकेले तुम्हे जाने नही दूँगी।"

वन्दना की बात सुनकर पिताजी ने प्रसन्न होकर कहा—'दूर पगली, भेट होने पर, समधिन कहेगी कि बूढे बाप को बेटी नेत्रो से दूर नही करना चाहती। छि! छि!"

"तुम चाय पियो पिताजी, मै अभी आती हूँ।" इतना कहकर वन्दना वहाँ से चल दी।

चौदह

सन्ध्या अब समाप्त हो रही थी कि द्विजदास के कमरे के सामने खडे होकर वन्दना ने पुकारा, "क्या एक बार आ सकती हूँ, द्विजू बाबू?" अन्दर से आवाज आई—'आ सकती हो! एक बार नही, सौ

हजार बार, असख्य बार।"

वन्दना ने द्वार के किवाडो को बिल्कुल खोलकर प्रवेश किया और कमरे की सभी बत्तियाँ जलाकर खुले द्वार के सामने एक कुर्सी डालकर बैठ गयी।

द्विजदास हाथ की पुस्तक को एक ओर रख सीधा बैठकर बोला—"क्या आज्ञा है?"

"क्या पढ रहे थे?"

"भूत की कहानी।"

"अतिथि बडा है या भूत की कहानी?"

"भूत की कहानी बडी।"

वन्दना झल्लाकर बोली—"सदा हँसी अच्छी नही। हम आपके घर मे अतिथि हैं, क्या इसका ज्ञान आपको नही है?"

द्विजदास ने कहा—"तुम लोग दादा के घर मे अतिथि हो, इसे मैं भली-भाँति जानता हूँ। और मकान मालिक आज्ञा दे गये हैं कि तुम लोगो को किसी बात का कष्ट न होने पावे। कष्ट अवश्य न होता, किन्तु इस भूत की कहानी मे खो जाने से कर्तव्य मे किंचित् ढिलाई आ गयी थी। इसलिए अतिथि मे क्षमा चाहता हूँ।"

"जानते हो सारा दिन मुझे कितने कष्ट से बिताना पडा?"

"अवश्य जानता हूँ।"

"अवश्य जानते हैं? किन्तु दूर करने का कोई प्रयत्न किया है?"

द्विजदास ने कहा—"नही, करने का पहला सबब पहले ही निवेदन किया है। दूसरा कारण है—दूर करना शक्ति के बाहर है।"

"क्यो?"

"यह मुझे बतलाना न चाहिए।"

वन्दना ने पूछा—"माँ और मझली दीदी अचानक घर क्यो चली गयी?"

मझली दीदी गयी प्रबल शक्तिशाली सास की आज्ञा से ही, वर्ना वह बिल्कुल निर्दोष हैं।"

"और माँ क्यो गयी?"

"माँ को ही मालूम है।"

"क्या आप नही जानते?"

द्विजदास ने कहा—"बिल्कुल नहीं जानता, यह कहना असत्य बोलना होगा, क्योंकि भाभी ने कुछ अनुमान किया है और मैंने भी उसको ठीक ही समझा है।"

वन्दना ने कहा—"वह अनुमान ही आपको मुझे बतलाना होगा।"

पल-भर चुप रहकर द्विजदास ने कहा—"तब तो बडी कठिनाई मे डाल दिया वन्दना। क्या इस बात को बिना सुने नही बनेगा।'

"नही, यह नही हो सकता। आपको बतलाना ही पडेगा।"

"यदि न सुनोगी तो क्या होगा?"

वन्दना ने कहा—"देखिए द्विजू बाबू, हमने तय किया था कि इस घर मे मैं आपकी सभी बाते सुनूँगी, आप भी मेरी सारी बाते सुनेगे। आप जानते है कि आपकी एक भी आज्ञा का उल्लघन मैने नही किया।" कहते हुए उसके नेत्रो मे आँसू आ रहे थे और एक ओर देखकर उसने किसी प्रकार अपने को सयत किया।

दुःखी होकर द्विजदास ने कहा—"एकदम बेतुकी-सी बात है, इसीलिए कहने की मेरी इच्छा नही थी। माँ तुम्ही पर अप्रसन्न होकर चली गयी है सही, किंतु तुम्हारा कुछ भी दोष नही है। सारा दोष माँ का ही है। भाभी का भी कुछ है, क्योंकि प्रत्यक्ष न भी हो, परोक्ष रूप मे षड्यन्त्र मे शामिल हुई थी, ऐसा मेरा सन्देह है। लेकिन सबसे निर्दोष है बेचारा द्विजदास।"

वन्दना चिन्तित हो उठी—"षड्यन्त्र किस बात का है बतलाइए न?"

द्विजदास ने कहा—"षड्यन्त्र शब्द शायद उचित नही है। माँ ने मन-ही-मन हवाई किले बनाये थे, किन्तु हिसाब मे गडबड होने से जब भाग्य मे शून्य ही हाथ लगा तो सारे ससार पर बिगड उठी। अप्रसन्न होना ठीक न होगा, बहुत कुछ आशा टूटने से उत्पन्न चोट खाया कह सकते हैं।"

चुपचाप वन्दना देखती रही। द्विजदास कहता गया—"अवश्य जानती हो कि एक दिन तुम्हारे प्रति उनका जैसा बड़ा वैराग था और किसी दिन उसी प्रकार गहरा स्नेह उत्पन्न हुआ। रूप, गुण, विद्या, काम-काज, एक भाभी को छोडकर तुम माँ के सामने अद्वितीय हो गयी। तुम्हे म्लेच्छ कहे, यह किसका साहस? उसी दम माँ कमर कसकर प्रणाम करने बैठ जाती कि इतनी शिष्टावान् ब्राह्मण कन्या सारे भारतवर्ष को छान डालने मे भी नही मिलेगी।" इतना कहकर द्विजदास अपनी रसिकता के आनन्द मे हँसने लगा।

यह हँसी वन्दना को भी बुरी लगी, लेकिन फिर भी वह हँस पडी।

द्विजदास ने कहा—"असल मे वही तो सबके लिए भयानक बात हो गयी।"

वन्दना ने कहा—"किस कारण मे इतना खतरा?"

द्विजदास ने कहा—"मन लगाकर सुनो। दयामयी के दो बेटे हैं—बडा और छोटा। बडे के प्रति जिस प्रकार अगाध आशा और भरोसा है, छोटे के प्रति उसी प्रकार का असीम सन्देह और भय है। उनका विचार है कि निकम्मेपन मे छोटे के बराबर ससार मे कोई नही। किन्तु माँ हैं न? गर्भ मे धारण करके सन्तान को आसानी से तिलांजलि नही दे सकती, इस लिए मन-ही-मन पुत्र की भलाई का उपाय निकाला, तुम्हारे कन्धो पर उसे बिठाकर ससार की मरुभूमि निश्चिन्त होकर पार करा देगी। लेकिन विधाता वाम है, अचानक कल शाम को जान पडा कि कधा खाली है नही। वह छोटी नाव है, अर्थात् दयामयी के विचारो, सभी स्वप्न जालो को छिन्न-भिन्न कर कोई सुधीरचन्द्र वहाँ पहले ही से बैठे है, किसका साहस है जो उन्हे हिलाये?" इतना कहकर उसने एक बार फिर अट्टहास से कमरे को भर दिया।

वन्दना कुछ देर चुपचाप उसके मुख की ओर देखती रही, फिर पूछा—"इस प्रकार की विकट हँसी से आपका क्या तात्पर्य है?" माँ को नीचा देखना पडा है इसे या आपको छुटकारा मिल गया उसी की प्रसन्नता है? कौन-सा है?"

मुस्कराते हुए द्विजदास ने कहा—"यद्यपि इन दोनो मे एक भी नही, तब भी स्वीकार करने मे सकोच नही कि अचानक इस प्रकार पैर फिसलने से माता 'धराशायी' हुई है। इसमे दर्शन के तौर पर किंचित् विशुद्ध आनन्द रस का उपभोग किया है। पर उनकी विशेष हानि नही होगी, यदि इससे कम-से-कम उन्होने इतनी शिक्षा ली हो कि ससार मे बुद्धि नाम की वस्तु उन्ही की ही निजी सम्पत्ति नही है, उस पर और लोगो का अधिकार भी हो सकता है, क्योकि मुझे न सही दादा को भी यदि माँ अपने षड्यन्त्र का आभास दे देती तो और कुछ भले ही न होता, यह कर्म दण्ड तो उन्हे न मिलता। दादा और मैं दोनो ही जानते थे कि तुम दूसरे की वाग्दत्ता हो, परस्पर प्रणय-शृखला मे आवद्ध हो, इसलिए इस व्यवस्था मे हेर-फेर होना सभव भी नही। और उचित भी नही।"

वन्दना ने पूछा—"आप लोगो ने कब और किससे सुना?"

द्विजदास ने कहा—"तुम्हारे पिता से। हमारे यहाँ आने के दिन ही रायसाहब ने तुम्हारे प्रेम, वाग्दान और शीघ्र ही व्याह की मनभावनी आलोचना से हम दोनो भाइयो के चार कानो मे अमृत घोला था। नही-नही, अप्रसन्न मत होना, वन्दना, सीधे-सादे निरीह आदमी हैं, प्रसन्नता के कारण यह समवाद आत्मीय जनो से छिपा रखने का प्रयोजन अनुभव नही किया।"

कुछ देर तक चुप रहकर वन्दना ने पूछा—'क्या इसीलिए मुखोपाध्याय जी ने मैत्रेयी को देखने के लिए हमे भेजा था?"

द्विजदास ने कहा— यह मै ठीक-ठीक नही जानता, क्योकि दादा के मन की सभी बाते देवताओ को भी मालूम नही। केवल इतना जानता हूँ कि उनके मन मे मैत्रेयी देवी सर्वगुण सम्पन्न कन्या है। बलरामपुर के धनी और महामाननीय मुखोपाध्याय घराने के लिए अयोग्य नही है।"

वन्दना ने पूछा—' मैत्रेयी देवी के बारे मे आपका क्या विचार है।"

द्विजदास ने कहा—"इस घराने मे यह प्रश्न अवैध है। मै अन्य पुरुष हूँ। प्रथम और द्वितीय पुरुष अर्थात् माँ और दादा किसी भी लडकी के गले मे मुझे बाँध देगे, उसी के गले मे मै बडी प्रसन्नता से लटका रहूँगा। यही इस घर की सनातन रीति है। इसमे गडबड नही हो सकती।"

उसके बोलने के ढग से वन्दना हँस पडी और कहा—"और मान लीजिए, मैत्रेयी के बदले वन्दना के

गले मे ही आपको बाँध दे ना।

माथे को ठोककर द्विजदास ने कहा—"हाय वन्दना, यह आशा व्यर्थ है। दुष्ट राहु ने पूर्णचन्द्र को ग्रस लिया है : सुधीरचन्द्र ने कूदकर महल मे आग लगा दी। द्विजदास की स्वर्णपुरी नेत्रो के सामने जलकर राख हो गयी। इस प्रसग को वन्द करो कल्याणी, अभागे का हृदय विदीर्ण हो जायगा।"

उस नाटकीय उक्ति से वन्दना एक वार हँसकर बोली—"स्वर्णपुरी का सब-कुछ तो नही जल गया था द्विजू वाबू, अशोक कानन तो बच गया था। हृदय टूट भी नही सकता।"

द्विजदास ने सिर हिलाकर कहा—"यह आश्वासन व्यर्थ है. श्री रामचन्द्र का भाग्य बलवान् था, लेकिन मैं सर्वादिसम्मत मे हत्भाग्य द्विजदास हूँ। मेरे जले भाग्य मे सारी आशाएँ जलकर राख हो गयी हैं, कुछ भी शेष नही है।"

"हो नही गयी हैं।"

"क्या नही हो गयी है?"

जोर देकर वन्दना ने कहा—"जलकर तो कुछ भी राख नही हुआ है। द्विजदास हत्भाग्य है, पर वन्दना हत्भाग्य नही है। मेरे भाग्य को जलाकर राख कर दे, यह सामर्थ्य सुधीर मे नही है। दुनिया मे किसी मे भी नही, माँ मे भी नही और आपके दादा मे भी नही।"

उसकी शान्त दृढ आवाज से द्विजदास चुपचाप खडा देखता रहा।

"चुप क्यों हो गये? मेरे मन की वात का पता क्या आपको नही चला था, आज यह छलना करने की इच्छा है।"

"नही छालना नहीं करना चाहता, वन्दना, विचार किया था, यह स्वीकार करता हूँ; लेकिन संदेह भी प्रचुर हुआ था।'

वन्दना ने कहा—'आज उस सदेह को चला जाना चाहिए।' पल-भर उसके मुख की ओर देखकर बोली—"किन्तु मेरे मन में तो सन्देह नही था। उस पहले दिन से ही नही। घर मे अप्रसन्न होकर चली आयी, अकेले ऊपर वाले कमरे की खिडकी के सामने खडे हो हाथ उठाकर मुझे विदा किया। केवल एक बार का परिचय, फिर भी उसका अर्थ मेरे लिए क्या लेशमात्र भी अस्पष्ट था?"

द्विजदास को चुप देखकर वन्दना ने पूछा—"सन्देह दूर हुआ।"

द्विजदास ने कहा—"शायद जरा और हुडकने से चला जाएगा। किन्तु सोचता हूँ, मेरा सन्देह दूर करने की यह रीति क्या जीवन-भर रहेगी?"

वन्दना ने कहा—"जीवन-भर की व्यवस्था पहले हो तो, लेकिन सब-कुछ जानकर भी जो उपेक्षा का नाटक करे, उसे समझने के मेरे सामने और कोई चारा नही।"

"लेकिन वह मैं नही, माँ हैं। उन्हे कैसे समझाओगी?"

वन्दना ने कहा—"माँ स्वय समझ लेगी। मुझे वह पुत्री के समान प्यार करती हैं। आज अचानक कितनी भी बेचैन होकर क्यो न चली जाएँ, जो कुछ जानकर गयी हैं, वह सच नही है, यदि यही बात माँ को ही न समझा सकी तो, मैं किस चीज की आशा करती हूँ, बोलिए? मुझे कोई चिन्ता नही है द्विजू बाबू, किसी दिन सारी बाते उन्हे मैं समझाऊँगी ही।" कहते-कहते अचानक उसका गला रुँध गया और दोनो नेत्रो मे आँसू आ गये।

द्विजदास का सच और झूठ का संशय दूर होकर भी दूर नही हो रहा था, किन्तु इन आँसुओ और कण्ठ-स्वर के गूढ परिवर्तन से उसका सन्देह दूर हो गया—यह केवल हँसी नही है। आश्चर्य और दु ख से आन्दोलित होकर उसने कहा—"क्यो वन्दना, रोती क्यो हो तुम?"

वन्दना ने कहा—"नही।" केवल आँसू पोछकर दूसरी ओर देखने लगी।

द्विजदास स्वय भी बहुत देर तक चुप रहकर धीरे-धीरे बोला—"सुधीर ने कोई अपराध नही किया, वन्दना।"

मुँह फेरकर वन्दना ने उसकी ओर नही देखा, केवल बोली—"अपराध का निर्णय किसलिए बताओ न? क्या मैं उनके अपराध का वदला लेने बैठी हूँ?"

इसका कोई उत्तर द्विजदास को देते नही बन पडा, समझ गया कि प्रश्न बिल्कुल व्यर्थ हुआ है। फिर कुछ देर चुप रहकर बोला—"किन्तु सुधीर तुम्हारे अपने समाज का है, लेकिन शिक्षा, संस्कार, अभ्यास

वह त्रुटि ज्ञात होगी तो पश्चात्ताप की सीमा न रहेगी। तुमने मुझे कभी समझा है, नही मालूम, किन्तु भाभी, माँ, बडे भैया, हमारे ठाकुरजी, हमारी अतिथिशाला, हमारे आत्मीय स्वजन, मैं इन्ही मे से एक हूँ। अलग तो तुम किसी भी दिन मुझे नही पाओगी। अधिक दिनो तक तुम क्या इसे सह लोगी?"

वन्दना ने कहा—"सहन न होने पर आदमी के मरने का समय तो सदैव खुला रहता है, द्विजू बाबू। कोई भी कारागार उसे रोक नही सकता। किन्तु आपने मुझे भी क्या समझा है, नही मालूम, मैं अपनी सास, अपनी जेठानी, अपने जेठ, हमारे ठाकुर जी, अतिथिशाला, हमारे आत्मीय स्वजन-समाज इनसे अलग करके अपने पति को एक दिन भी पाना नही चाहती। वह सबसे घुल-मिलकर ही अपने बने रहें।"

द्विजदास अचरज करके बोला—"ये सारी धारणाएँ तो तुम लोगो की है नही, यह तुमने सीखा किससे वन्दना?"

वन्दना ने कहा—"मुझे तो किसी ने भी नही सिखाया, द्विजू बाबू किन्तु माँ की, मुखोपाध्याय जी को देखकर ये बाते मेरे दिल मे स्वय ही आयी हैं। इस परिवार मे सभी मामलों में सबसे बडी माँ है, उसके बाद मुखोपाध्याय जी, उसके बाद दीदी, उसके बाद आप, यहाँ अन्नदा का भी विशेष स्थान है। अगर इस घर मे कभी स्थान मिला तो, इनसे नीचे मिलेगा, किंतु यह मुझे कुछ भी अनुचित लगेगा नही।"

यह सुनकर द्विजदास को जैसा अच्छा लगा उसी तरह मन व्यथा से भर गया। लेकिन वन्दना के दिल की बात का इस प्रकार जान लेना अन्याय है, इस विषय की चर्चा बद होना आवश्यक है। अपने को सख्त करके उसने कहा—"किन्तु माँ को हमारी इन बातो को बतलाने से कोई लाभ नही है। वह तुम्हे बेटी के समान स्नेह करती हैं—यह मैं जानता हूँ, इसीलिए सोलहो आने उन्हे आशा थी कि तुम इस घर की छोटी बहू होगी, तुम दोनो बहिनो के हाथो मे अपने दोनो बेटो को सौंपकर वह कैलास जायेंगी, अगर वापस न आ सकी, इस दुर्गम-पथ मे ही यदि मृत्यु का बुलावा आया तो इस बात को मन मे लेकर तब निश्चिन्त हो जा सकेंगी कि उनके विशाल कुटुम्ब के उत्तरदायित्व के हस्तान्तरित करने में कहीं कोई भूल नहीं है। किन्तु अब यह नही हो सकता, उनके मतानुसार वाग्दान का अभिप्राय है सम्प्रदान। प्यार करके जिसे राय दी है, वही तुम्हारा स्वामी है। विवाह का मन्त्र पढा नही गया है, इसीलिए उसे छोड भी सकती हो, किन्तु उस खाली आसन पर दयामयी का पुत्र बैठ नही सकेगा।"

यह सुनकर वन्दना का मुख पीला पड गया, पूछा—"द्विजू बाबू, माँ यह सब क्या कह गयी हैं?"

द्विजदास ने कहा—"कम-से-कम कहना असम्भव नही समझता वन्दना। भाभी ने कहा था कि माँ को सबसे अधिक चोट लगी है कि सुधीर हमारी जाति का नही है, तुम लोग जाति मानते नही। इतनी बडी खाईं तो किसी प्रकार भरी न जा सकेगी।"

"क्या आप भी यही बात कहते हैं?"

"मैं तो गैर आदमी हूँ वन्दना, मेरे कहने से क्या होता है?"

रायसाहब के भोजन का समय निकट आ रहा था। वन्दना उठ खडी हुई। बाहर जाने से पहले बोली—"पिताजी की छुट्टी समाप्त हो गयी, कल वह चले जायेगे। क्या मैं भी उनके साथ चली जाऊँ द्विजू बाबू?"

द्विजदास ने कहा, "यह भी क्या मुझसे ही पूछोगी वन्दना? यदि जाती हो तो मुझे गलत न समझ बैठना। तुम्हारे जाने के बाद तुम्हारी ओर से अब सब बाते माँ को बतलाऊँगा। शरमाऊँगा नही। इसके बाद रह गयी आज हमारी सन्ध्या समय की याद, रहा वन्देमातरम् का हमारा मन्त्र।"

वन्दना मौन हो बिना उत्तर दिये कमरे से बाहर चल दी।

पन्द्रह

जब वन्दना अपने कमरे मे लौटकर आयी तो उसे अत्यन्त दु ख का अनुभव होने लगा। वह मतवाली हो गयी थी कि निर्लज्ज भिक्षुक के समान अपने हृदय को खोलकर, सारी आत्म-मर्यादा को तिलांजलि दे आयी? लेकिन द्विजदास मर्द होकर भी जैसा रहस्यमय था, उसी प्रकार बना रहा। उसके चेहरे के

हाव-भाव मे न आग्रह था और न हर्ष, उसने न तो आशा दी और न धीरज बँधाया। वरन् इसी के बहाने बार-बार यही कहा कि वह गैर आदमी है। उसकी इच्छा-अनिच्छा इस कुटुम्ब मे अप्रासंगिक है। केवल इतना ही माँ के नाम पर कहा कि वाग्दान का तात्पर्य है कन्यादान, निरपराध सुधीर के खाली आसन पर दयामयी का पुत्र नही बैठेगा! किन्तु अपमान पात्र इतने से ही भरा नही। उसके नेत्रो मे आँसू देखकर उसने आखिर में दयालु होकर इतना ही वचन दिया है कि वह वन्दना के निर्लज्जता की कहानी की चर्चा माँ के सामने करेगा।

लेकिन क्या बात यही समाप्त हुई? द्विजदास की बात के उत्तर मे उसने स्वय कहा था, इस कुटुम्ब मे जहाँ भी कोई हैं, सबसे छोटी होकर वह आना चाहती है। इससे आगे उससे सोचा नही गया, वही मौन होकर बैठी सोचती रही कि वह वास्तव मे बहुत छोटी हो गयी है—इतनी छोटी कि आत्महत्या करने पर भी वह हीनता का प्रायश्चित्त नही हो सकेगा।

किसी ने बाहर आकर सूचना दी कि रायसाहब उसे बुला रहे हैं। उठकर वह पिता के कमरे मे गयी, वहाँ बार-बार हठ करके उन्हे राजी किया कि कल ही उन लोगो को बम्बई चल देना होगा, यद्यपि तय था विप्रदास के वापस आने पर रात की गाडी से रवाना होने का। एकदम इस प्रकार से चला जाना उचित नही होगा। इसमे रायसाहब को सशय नही था—छुट्टी भी थी, खुशी से रहा भी जा सकता था, फिर भी बेटी की बात उन्हे माननी पडी।

बिस्तर पर पडे-पडे वन्दना के नेत्रो से आँसुओ की धारा बह चली, इसके बाद न जाने वह कब सो गयी। सबेरे उठकर उसने अपनी और पिता की चीज-वस्तुएँ बाँध डाली, फोन करके सीट रिजर्व करायी और बम्बई तार भेज दिया। शाम की गाडी थी, परन्तु किसी प्रकार भी विलम्ब उससे सहा नही जा रहा था।

इस समय तो नौ बजे थे, अन्नदा कमरे मे आकर अवाक् रह गयी "यह क्या?"

वन्दना मैले कपडे की तह लगाकर एक बक्स मे रख रही थी, बोली—"आज हम जायेगे।"

"आज तो नही जाना है दीदी। जाना तो कल है।"

"नही, आज ही जायेगे।" कहकर बिना मुँह उठाये वह काम करने लगी।

अन्नदा पल-भर चुप रहकर बोली—"आप उठिए, मैं सँभालकर धर देती हूँ आपको कष्ट हो रहा है।"

"कष्ट करने की आवश्यकता नही, अपने काम पर जाओ।" इस घर के सभी लोगो से मानो उसे कुछ घृणा हो गयी थी।

कारण न ज्ञात होने पर भी अन्नदा जानती थी कि कुछ क्रोध मे है। अचानक कल माँ घर चली गयी, आज वन्दना भी उसी प्रकार चली जाने के लिए प्रस्तुत है। किन्तु क्रोध के बदले क्रोध करना अन्नदा का स्वभाव नही है, वह जैसी ही सहनशील है वैसी ही सौम्य। कुछ देर तक मौन खडी रहकर टूटे स्वर मे बोली—"मुझसे भूल हो गयी है दीदी, आज समय पर न उठ पायी।"

सिर उठाकर वन्दना बोली—"मैंने तो उसका कारण पूछा नही अन्नदा, आवश्यकता हो तो इसका उत्तर अपने मालिक को देना। द्विजू बाबू से कहो, वे अपने कमरे मे ही हैं।" कहकर वह फिर काम मे लग गयी। वन्दना पिता की अकेली सन्तान होने के कारण कुछ अधिक लाड-प्यार मे ही पली थी। इसलिए सहनशक्ति उसमे बिल्कुल भी नही थी। साथ ही कडवी बाते कहने की कुशिक्षा भी उसे नही मिली थी और शायद जीवन मे इतनी कडवी बात भी उसने किसी को नही कही थी। इसलिए उक्त बात कहकर वह मन-ही-मन लज्जित हो रही थी, इसी समय अन्नदा ही सलज्ज कोमल स्वर मे कहने लगी—"डॉक्टर लोग गये, पौ फटने वाली थी, सोचा कि अब नही सोऊँगी सोई भी नही, किन्तु दीवार के सहारे बैठते ही कैसे नीद लग गयी, कब सबेरा हो गया, कुछ भी जान न सकी। और मालिक की बात कह रही है दीदी, लेकिन क्या आप भी मेरी मालकिन नही हैं? बतलाइए तो क्या यह गलती मुझसे और कभी क्या हुई है? उठिये, मैं सँभालकर रख दूँ।"

शायद अन्तिम बाते वन्दना के कानो मे नही गयी, अन्नदा की ओर देखकर बोली—"डॉक्टर लोग चले गये, इसका मतलब क्या?"

अन्नदा ने कहा—"कल रात द्विजू बाबू बहुत बीमार हो गये थे। यहाँ आने के पश्चात् ही उनकी

तबीयत खराब हुई थी, लेकिन परवाह ही नही करता। कल माँ आदि के घर जाने की बात सुन मुझे बुलाकर कहा, "माँ को ज्ञात न होने पावे, किन्तु बडे भैया से कहकर मेरा जाना ही रुकवा दो अनु दीदी, आज इतना दुर्बल हूँ कि मुझसे उठा नही जाता। उसे पाला-पोसा है, वह सब बाते मुझसे कहता है। डरकर पूछा—"तबीयत खराब है तो छिपाते क्यो हो?" उसका स्वभाव ही है हँसकर टाल दना। चाहे बात कितनी भी गम्भीर क्यो न हो। उसी प्रकार तनिक हँसकर बोला—"तुम उन लोगो को रवाना तो करो, तब अपने-आप अच्छा हो जाऊँगा।" माँ से उसकी पटती नही है, कही साथ नही जाना चाहता है, शायद उससे बचने का ही एक उपाय है। इसी कारण ओर कुछ कहा नही। दादा उन्हे साथ लेकर चले गये। इसके बाद सारा दिन उसने सोकर बिताया, कुछ नही खाया। दोपहर को जाकर पूछा—"द्विजू, कैसे हो?" बोला "अच्छा हूँ।" लेकिन उसका मुख इस बात की साक्षी नही दे रहा था। डॉक्टर बुलवाना चाहा, द्विजू ने किसी प्रकार बुलाने नही दिया, बोला—"क्यो व्यर्थ दादा का पैसा खर्च कराओगी, तुम्हारी फिजूलखर्ची सुनकर मालकिन अप्रसन्न होगी। माँ से उसका यह नाराज होना नही सहा गया। सारा दिन नही खाया, बिस्तर पर पडा रहा, सन्ध्या को जाकर पूछा—"द्विजू, तबीयत यदि सचमुच मे खराब नही है, तो सारा दिन बिस्तर पर पडे-पडे क्यो बिता रहे हो?" वह उसी प्रकार हँसकर बोला—"अनु दीदी, शास्त्र मे लिखा है कि बिस्तर पर पडे रहने से बढकर कोई पुण्य कार्य ससार मे नही है, इससे मुक्ति होती है। तनिक पारलौकिक मगल की चेष्टा मे हूँ। तुम भय मत करो।" सभी बातो मे उसे मजाक सूझता है, बातचीत मे उससे पार पाना कठिन है, गुस्सा होकर चली आयी, किन्तु मन का भय हटा नही। एक पुस्तक लेकर उसने पढनी आरम्भ कर दी।"

कुछ रुककर अन्नदा फिर कहने लगी—"शायद तब रात के बारह बजे थे, मेरे किवाड पर थपकी सुनाई दी। पूछा, "कौन है?" बाहर से उत्तर मिला—"मैं हूँ अनु दीदी। दरवाजा खोलो।" द्विजू इतनी रात को क्यो बुला रहा है, जल्दी से द्वार खोलकर बाहर निकल आयी—"द्विजू, यह कैसी सूरत है! आँखे अन्दर धँस गयी हैं, कण्ठ बैठ गया है, शरीर थरथरा रहा है, फिर भी हँसी! वह बोला—"अनु, तुमने ही मुझे बडा किया है इसलिए तुम्हारी नीद नष्ट की। अगर नेत्र मूँदने ही पडे तो तुम्हारी गोद मे ही सिर रखकर मूँदूँगा।" कहकर अन्नदा झरझर कर रो पडी। उसका रोना थमता ही नही था, ऐसा था भीतर का आवेग। स्वय को सँभालने मे उसे बहुत देर लगी तब उसके मुख से आवाज निकली, "हृदय से लगाकर उसे कमरे मे ले गयी, किन्तु जैसे खुश्क कै थी, उसी प्रकार पेट की पीडा—ऐसा मालूम होता था जैसे रात्रि व्यतीत न हो पायगी, कब दम निकल जायगा। डॉक्टरो को सूचना दी गयी, सब आ पहुँचे। इजेक्शन तथा दवा दी, गर्म पानी से सेकना शुरू हुआ—सब नौकर जाग उठे। सबेरे द्विजू सो गया। डॉक्टर बोले—"अब भय की बात नही। किन्तु रात्रि कैसे बीती दीदी, यह सोचने से ज्ञात होता है, कोई बुरा सपना देख रही हूँ—यह सब कुछ नही हुआ था।" कहकर फिर अन्नदा ने आँचल मे अपने नेत्र पोछे।

वन्दना ने धीरे-धीरे कहा—"मुझे कुछ भी मालूम न हो सका, मुझे क्यो नही जगाया?"

अन्नदा ने कहा—"सुबह इसी परेशानी मे बीती, आपको कष्ट नही दिया।" नही तो द्विजू ने कहा था।"

वन्दना ने इस प्रसग को छोड दिया, बोली—"कैसे हैं अब द्विजू बाबू?"

अन्नदा बोली—"ठीक है, नीद मे है। डॉक्टर लोग कह गये हैं कि शायद शाम के पहिले नीद न टूटेगी। बडे बाबू आ जायँ तो भय दूर हो दीदी।"

उन्हे खबर दे दी गयी है?

नही, दत्ता बाबू ने कहा कि इसकी जरूरत नही, वे स्वय ही आ जायेगे।

"उस कमरे मे तो आदमी है न?"

"हाँ दीदी, दो आदमी बैठे हैं।"

"अब डॉक्टर फिर कब आवेगे?"

"शाम के पहले ही आवेगे कह गये हैं कि अब भय की बात नही।"

डॉक्टर निडर कर गये हैं, वन्दना के लिए यही एक भरोसे की बात है। इसके अतिरिक्त उसके लिए करने को और रखा ही क्या है?"

द्विजदास की बीमारी की खबर वन्दना ने जाकर पिताजी को दी, किन्तु अधिक बोली नही।

उन्होने इतना ही सुना तो बेचैन होकर कहा—"मुझे तो कुछ भी नही मालूम हुआ?
नही, हमे नीद से जगाना किसी ने उचित न समझा।
किन्तु यह ठीक नहीं हुआ।"
वन्दना चुप रही। वहुत देर के बाद स्वयं ही बोले—"टिकट खरीदने के लिए भेजा है—सीट रिजर्व हो गयी। देखता हूँ कि हमारे जाने मे कुछ विघ्न हुआ।"
वन्दना ने कहा—"विघ्न क्यो होगा पिताजी, हम ठहरकर ही उन लोगो का कौन-सा उपकार कर सकेंगे?"
"नही, उपकार नही, किन्तु फिर भी ..."
"नही पिताजी, इसी प्रकार वरावर विलम्ब होता जा रहा है, अव तुम अपनी राय न बदलो।" इतना कहकर वन्दना बाहर आ गयी।"
दोपहर के वाद वन्दना के कमरे मे जाकर अन्नदा फर्श पर बैठ गयी। उनके जाने मे अभी दो घण्टे की देर थी। वन्दना ने पूछा—"अच्छे हैं न द्विजू बावू?"
अन्नदा ने कहा—"अच्छे हैं, सो रहे हैं।"
वन्दना ने कहा—"जाते समय किसी से हमारी भेट न हुई। शायद तब तक द्विजू की नीद नही खुलेगी और वडे वावू जब तक घर पर पहुँचेगे तब तक हम बहुत दूर चले जायेगे।"
हुँकारी भरती हुई अन्नदा बोली—"हाँ, रात के नौ बजे के लगभग आयेगे। वह आ जाये तो सभी को छुटकारा मिले। सभी का भय हटे।"
"किन्तु भय की कोई वात नही अन्नदा।"
अन्नदा ने कहा—"नही है, यह सच है। लेकिन बडे दादा का घर में रहना ही दूसरी बात है दीदी, तब किसी का भी कोई उत्तरदायित्व नही, सब उनका ही है। जैसी बुद्धि है वैसा ही विचार, वैसा ही साहस और वैसी ही गम्भीरता। सभी ऐसा अनुभव करते हैं मानो वरगद की छाया मे बैठे हैं।"
वही पहले की वात। मालकिन के विषय मे यह भावना मानो इसकी नस-नस मे समा गयी है। दूसरा अवसर होता तो वन्दना ताना देने से बाज न आती, किन्तु इस समय चुप रह गयी। अन्नदा कहने लगी—"और यह द्विजू—मानो दोनो भाई दुनिया के दो अग हैं।"
अचरज मे वन्दना ने पूछा—"क्यो?"
अन्नदा ने कहा—"और नही तो क्या दीदी, न है उत्तरदायित्व का विचार, न है झझट, न है गम्भीरता। भाभीजी कहा करती हैं कि वह जाडे का बादल है, न है विजली, न है पानी। उडता फिरता है, मामला कितना भी पेचीदा क्यो न हो, हँस-खेलकर वह समय काट ही लेगा। न गृहस्थ है, न वैरागी। कितने कर्जदारो ने उससे 'चुकता पाया' लिखवाकर मुक्ति पायी, इसका लेखा नही।"
वन्दना ने कहा—"मुखोपाध्याय जी क्रोधित नही होते?"
"होते जरूर हैं, खूब होते हैं, विशेषकर माँ। किन्तु उसका पता चलेगा कहाँ? कुछ दिनो के लिए इस प्रकार लापता हो जाता है कि भाभी रोना-पीटना शुरू कर देती है। तब ढूँढकर उसे पकड लाते हैं। लेकिन इस प्रकार से तो सदा नही चल सकता दीदी, उसकी शादी होगी, बाल-बच्चे होगे, तब ऐसा करने से दिवालिया ही होगा।"
वन्दना ने कहा—"यह वात तुम लोग उनसे कहते क्यो नही?"
अन्नदा ने कहा—"बहुत कुछ कहा-सुना गया, किन्तु वह सुनता कहाँ है! वह कहता है—"तुम लोग चिन्ता क्यो करते हो? यदि दिवालिया हुआ तो मैं हूँगा, भाभी तो दिवालिया होगी नही। तब सब मिलकर उनके कन्धे पर सवार होगे।"
वन्दना ने हँसकर पूछा—"क्या कहती हैं मझली दीदी?"
अन्नदा ने कहा—"देवर के लिए उनके प्रेम का ठिकाना नही। कहती हैं—हम खायेगे द्विजू क्या भूखा रहेगा? पाँच सौ रुपयो की मेरी आमदनी को तो कोई रोक नही सकेगा, गरीबी ढग से हमारा उसी से काम चल जायेगा। अपने लाखो रुपये लेकर वडे वावू सुख से रहे, हम उनसे माँगने नही जायेगे।"
यह सुनकर वन्दना को कितना अच्छा लगा, इसकी सीमा नही। जिसने कहा है वह उसी की बहिन है। किन्तु जिस समाज, जिस वायुमण्डल मे वह वडी हुई है, वहाँ ऐसी बात कोई न कहता है, और न

शायद सोच ही सकता है। कहने की कभी आवश्यकता पडती है या नही, यही किसे मालूम।

किन्तु अन्नदा जो कुछ कह रही थी, मानो वह पुराने समय की कोई कहानी थी। ये एक ही परिवार मे रहते हैं, केवल बाहरी आकार नहीं भीतरी आकार भी वैसा ही है। अन्नदा यहाँ केवल महरी ही नही है, वह द्विजदास की दीदी है। जबानी ही नही, आज भी उनकी सारी बातें इसी से होती हैं। इसी अन्नदा के पति इसी कुटुम्ब का काम करते-करते स्वर्ग सिधारे। उसका बेटा यही बडा होकर अपना जीवन-यापन कर रहा है। अन्नदा को काम की कमी नही है, फिर भी माया का बन्धन नही तोडा जाता। इस बडे धनी परिवार से ऐसे कितने ही परिवार पीढ़ियों से जुडे हैं। दयामयी की शरारती सन्तान द्विजदास ने भी कल कहा था—"उसकी माँ, बडे भैया, भाभी, अपने गृहदेवता, अतिथिशाला सभी लेकर ही वह हैं—उनसे पृथक् करके वन्दना किसी दिन उसे पायेगी, इसकी आशा नही है। तब वन्दना ने अस्वीकार नहीं किया था फिर आज ही एक बार उसके वास्तविक अर्थ को समझी।

बात समाप्त नही हुई थी, बहुत कुछ जानने के लिए उसकी इच्छा बलवती हो उठी, किन्तु बाधा पडी। नौकर ने आकर सूचना दी कि राय साहब बेचैन हो रहे हैं छ बजे हैं। रवाना होने के लिए एक घण्टे से अधिक का समय नही है। वन्दना को प्रस्तुत होने के लिए उठना पडा।

ठीक समय पर रायसाहब नीचे उतरे, उतरते हुए बेटी का नाम लेकर एक बार पुकारा, वन्दना के कानो मे उनकी आवाज पहुँची। अन्याय चाहे जितना बडा हो, अनिच्छा चाहे कितना ही कठिन हो, जाना पडेगा ही। बार-बार हठ करके यह प्रबन्ध उसने स्वय ही कराया है, उसमे हेरफेर अब नहीं हो सकता। कमरे से जब बाहर निकली तो यही बात सबसे पहले मन मे आयी कि भविष्य मे जहाँ तक दृष्टि जाती है, कभी किसी बहाने से यहाँ लौटने की आशा नहीं है, किन्तु उसके कितने ही सुखद स्वप्नो से यह घर भरा रहा, इसे वह कभी भुला नही सकेगी, सीधे रास्ते को छोडकर द्विजदास के बगल वाले बरामदे से घूमकर उतरते हुए उसने कमरे के अन्दर एक दृष्टि डाली। लेकिन जो खिडकी खुली हुई थी, उसके अन्दर द्विजदास दिखाई नही दिया।

दत्त जी मोटर के पास खडे हुए थे, रायसाहब ने उन्हे बुलाकर नौकरो को देने के लिए बहुत-से रुपये दिये और अचानक चले जाने के लिए दु ख प्रकट करके द्विजदास के समाचार शीघ्र ही भेजने के लिए प्रार्थना की।

गाडी मे बैठने के पहले अन्नदा को एक बार ले जाकर वन्दना ने कहा—"द्विजू की तुम वाहन हो, उन्हे पाल-पोसकर बडा किया है—अनु दीदी, यह अगूठी उनकी बहू को पहनने के लिए दे देना।" यह कह अगूठी निकालकर उसके हाथ मे देकर पिता की बगल मे जा बैठी।

मोटर चल पडी। वहाँ पर खडे नौकर और दत्त जी ने नमस्कार किया।

अचानक वन्दना ने आँखे ऊपर उठाईं। लेकिन आज वहाँ विदा करने के लिए द्विजदास नही था। आज वह बीमार है, और नीद मे बेहोश।

सोलह

दयामयी के व्यवहार में वन्दना के प्रति जो गुप्त लाछना तथा अपमान था, सती के हृदय मे यह बात जम गयी थी, लेकिन सास को कुछ कहना सुगम नही है, इसीलिए उसने एक पत्र लिखकर बहिन के हाथ मे देने के लिए स्वामी को कमरे में बुलाया। दोपहर की गाडी से विप्रदास कलकत्ता वापस जायेगा। इसी समय दयामयी आ उपस्थित हुई। ऐसा तो कभी करती नही हैं—बेटा और बहू दोनो को आश्चर्य हुआ—सती सिर पर आँचल खीचकर बाहर जाने को थी, माँ ने मना करते हुए कहा—'नही बहू, जाना नही। तुम्हारी अनुपस्थिति मे तुम्हारी बहिन की बुराई न करूँगी, जरा ठहरो। इतनी दु खी होकर घर क्यो चली आयी, यह विपिन को मालूम है?"

विप्रदास ने कहा—"अच्छी तरह नही मालूम माँ, किन्तु कही कुछ गडबडी हुई है इतना ही अनुमान लगाया है।"

माँ ने कहा—"गडबडी हुई नही, किन्तु हो सकती थी, इससे दुर्गा माता ने मेरी रक्षा की है। कल

समधी जी बम्बई चले जायेंगे, बात थी उसके बाद वन्दना आकर कुछ दिनो अपनी मझली दीदी के पास रहेगी, लेकिन लडकी के मस्तिष्क में यदि कुछ भी बुद्धि होगी तो यहाँ अब वह आना पसन्द न करेगी, पिता के साथ सीधी बम्बई चली जायेगी। यदि जाती नही है तो जाने के लिए कह देना। मन मे दु ख न करो बहू, ऐसी बहिन को वनवास दिया जा सकता है, लेकिन घर मे लाकर नहीं रखा जा सकता।"

विप्रदास चुपचाप देखता रहा, उसके आश्चर्य की सीमा न थी। दयामयी कहती गयी—"मेरा अभाग्य है कि उसे प्यार करने गयी थी, समझा था कि वह हम ही लोगो में से एक है। उसके आचरण मे त्रुटियाँ हैं—सोचा था वह सब स्कूल-कॉलेज में पढने का फल है—चन्द्रमा के सामने उडते बादलों के समान वायु लगने पर वह उड जायगा, ठहरेगा नहीं कुछ भी सही, सती की बहन तो हैं! किन्तु उसने कायस्थ के घर से वर चुन लिया, किसे मालूम था विपिन, ब्राह्मण के घर मे जन्म लेकर उनका इतना अधःपतन होगा।"

विप्रदास ने कहा—"बात यही है। यह खबर तो तुमने सुनी थी कि माँ कि वे जात-पाँत वे नही मानते।"

दयामयी ने कहा—"सुना तो था; लेकिन आँख से देखा नही था, शायद नानी की कहानी के समान भी न समझ सकी। किन्तु आँख से देखने से किसी पर किसी को इतना क्रोध हो जाता है वह बिल्कुल नही जानती थी।" इतना कहते-कहते मानो वह घृणा से काँप उठी। कहा—"चूल्हे मे जाय। जो मन हो करे, मेरी वह है कौन; लेकिन अब मेरे घर मे आ नही सकती।"

विप्रदास को चुप देखकर बोली—"उत्तर क्यो नही दिया विपिन?"

"उत्तर तो तुमने माँगा नही, माँ। आदेश दिया कि वन्दना न आये—ऐसा ही होगा।"

दयामयी ने उसकी बात सुनी तो बोली—"क्या मैं अनुचित आज्ञा दे रही हूँ?"

"अनुचित क्यों नही मालूम होता माँ! वन्दना ने अनुचित कुछ नही किया, सामाजिक आचार-व्यवहार मे हमसे उनका मेल नही खाता, वे जाति नही मानते, इस बात को जानते हुए ही उसे तुमने आने के लिए बुलाया था, प्यार भी किया था, शायद तुम्हें आशा थी, वे मुँह से कहते ही हैं, काम मे अमल नहीं करते—"यही तो तुमने भूल की, इसीलिए मन को चोट भी लगी है।"

दयामयी ने कहा—"सम्भव है सच हो; किन्तु उसकी शादी की बात सुनकर तुझे घृणा मालूम नही होती, विपिन? तेरा क्या कहना है, कह।"

मुस्कराते हुए विप्रदास ने कहा—"उसकी शादी अभी हुई नहीं है, किन्तु होने पर भी मुझे क्रोध करना उचित नही, माँ। बल्कि यह सोचकर श्रद्धा ही करूँगा कि उनका विश्वास अटल है। उन्होने किसी को धोखा नही दिया, लेकिन कलकत्ते मे बहुतेरों को देखा है जो शब्द-जाल में कुछ नही मानते, जाति-भेद का भरोसा नहीं करते, गालियाँ भी देते हैं, लेकिन काम के समय खोजने पर दर्शन नहीं होते। सबसे अधिक श्रद्धा मैं उन्हे ही करता हूँ! अप्रसन्न न हो माँ, तुम्हारा द्विजू इसी प्रकृति का है।"

दयामयी सुनकर मन-ही-मन अप्रसन्न हुई, ऐसी बात नही। द्विजू के विषय मे कहा—"वह ऐसे ही चकमेबाज हैं। अच्छा विपिन, यदि वन्दना से तू घृणा नही करता तो उसका छुआ कुछ क्यो नही खाता? उसे रसोईघर में भेजती थी, इसीलिए तू खाना छोड़कर मेरे घर मे खाने लगा। कोई दूसरा भले न समझे, क्या तू सोचता है कि मैं नहीं जानती?"

विप्रदास ने कहा—"तुम नही जानोगी तो माँ क्यों हुई थी। किन्तु मैं तो सचमुच ही जाति मानता हूँ माँ, मैं तो उसका छुआ खा नही सकता। जिस दिन नही मानूँगा, उसी दिन सबके हाथ का खाऊँगा, तनिक भी छिपाऊँगा नही।"

दयामयी ने कहा—"तू नही समझा विपिन कि किस प्रकार मैं उससे यह बात छिपाये फिरती थी। यहाँ लडकी आये चाहे न आये, लेकिन देखना यह बात वह कभी न जान पाये। उसे गहरी चोट लगेगी। तुम पर वह बहुत भक्ति करती है।" उनकी अन्तिम बाते मानो एकाएक स्नेह सिंचित हो गयी।

हँसकर विप्रदास ने कहा—"वह मुझ पर भक्ति करती है या नही मैं नही जानता, लेकिन उसका छुआ हुआ नही खाता, यह उसे मालूम है।"

"ऐसी अभिमानी लडकी, यह जानते हुए भी तुझपर इतनी भक्ति करती है।"

"भक्ति करने की बात तो तुम्ही लोग जानती हो माँ, किन्तु मे जानता हूँ वह बहुत बुद्धिमती है, तुम्हारी सारी लुका-छिपी वहाँ व्यर्थ हो गयी।"

क्षण-भर चुप रहकर दयामयी ने न जाने क्या सोचकर कहा—"शायद इसीलिए वह इतनी विनती करती थी?"

"कैसी विनती माँ?"

दयामयी ने कहा—"मैं विधवा हूँ, मेरा-भात-नमक से ही काम चल जाता है; वह ऐसा कभी न होने देगी। बाजार से भाँति-भाँति की नयी तरकारियाँ मँगावेगी, अपने हाथो से उसे धोकर काटेगी महाराजिन बुआ से बरबस बनवाकर ही छोडेगी। वह जानती थी कि जिसे सामने आकर नहीं दिया जा सकता, उसे दूसरे के हाथो से घूस भेजना चाहिए। क्यो, खाकर भी नही जान सका विपिन, उस प्रकार की रसोई महाराजिन के पुरखे भी नही बनाना जानते।"

हँसते हुए विप्रदास ने उत्तर दिया—"नही माँ, उतना ध्यान नही दिया। केवल बीच-बीच मे सन्देह होता था कि तुम्हारे अतिथियो के उस रसोईघर के विशाल आयोजन के कुछ टुकडे शायद हमारे इस रसोईघर मे आ पडते हैं, लेकिन वह दैवकृत नही, एक आदमी का इच्छाकृत है। यह खुशी की बात है। लेकिन अन्तिम आज्ञा बता दो माँ, गाडी का समय हो गया, मुझे अभी दौडना पडेगा, उसे बुलाती हो या नही?"

दयामयी ने सती से पूछा—"तुम्हारी क्या राय है बहू?"

लडकपन मे सती सास के सामने पति से बोला करती थी, किन्तु अब नही बोलती। अक्सर कतराकर चल देती है, या चुप रह जाती है, लेकिन आज धीरे से बोली—"रहने दो माँ, अब यहाँ लाने की उसे कोई आवश्यकता नही है।"

उत्तर सुनकर सास प्रसन्न न हो सकी। उसकी इच्छा दूसरी थी, लेकिन अपने मुँह से प्रकट भी नही कर सकती थी। कहने लगी—"बडे आदमी की बेटी क्या अप्रसन्न हो गयी?"

"अप्रसन्न नही माँ, किन्तु जो कुछ करके हम चली आयी हैं, उसके बाद अब उसे बुलाया नही जा सकता।"

"क्यो बहू, यदि त्रुटि एक हो ही गयी तो क्या उसका सुधार नही हो सकता?"

"सुधार नही हो सकता यह नही कहती, किन्तु आवश्यकता क्या है? पहले भी उसने कई बार आने की इच्छा की है, किन्तु कभी राजी नही हो सकी, अब भी सारी बाधाए वैसी ही बनी हुई हैं। वह घुसती थी इसीलिए उन्होने रसोई का जाना छोड दिया था, उसे यहाँ लाने की क्या आवश्यकता हे?"

विप्रदास ने कहा—"उसी की यह शिकायत है, तुम्हारी नही।" हँसकर कहा—"फिर भी वन्दना मुझ पर प्रचण्ड भक्ति करती है, माँ स्वय इसकी साक्षी है।"

सिर उठाकर सती ने देखा शायद भूल गयी कि सास हैं, कहने लगी—"केवल माँ क्यो, मैं भी उसकी गवाह हूँ। लडकियाँ जब भक्ति करती हैं, तब शिकायत नही करती। देवी-देवता भी कम कष्ट नही देते, फिर भी पूजा बन्द नही करती, कहती हैं—उन्होने अच्छाई के लिए ही दु ख दिया है।" सास ने कहा—"तुम पर भी वन्दना ने कम भक्ति नही किया है माँ, कम प्यार नही किया है। तुम्हारा विचार है तुम्हारे घर मे भोजन का प्रबन्ध करती थी, केवल उनके लिए? किन्तु बात ऐसी नही, वह करती थी तुम दोनो के लिए—तुम दोनो को प्यार करती थी, उस पर तुमने भी किया था। रसोईघर का भार—सभी को खिलाने का काम, लेकिन तुम्हारी उपेक्षा करके वह और सभी को पुलाव-कलिया नही खिला सकती थी माँ, भात-भर्ता सभी को निगलना पडता, किन्तु अब उसे लेकर खीचतान क्यो? जो हम लोगो ने चाहा था, उसकी आशा समाप्त हो गयी—वह अब नही लौटेगी।"—इतना कहकर सती जल्दी से चली गयी।

अचरज से विप्रदास और दयामयी दोनो मौन रह गये। ऐसी उक्ति, ऐसा आचरण सती के स्वभाव के लिए ऐसा अद्भुत है कि सोचा ही नही जा सकता कि वह अपने होश मे है। विप्रदास ने पूछा—"क्या मामला है माँ?"

दयामयी ने कहा—"मालूम तो है मुझे बेटा।"

"तुम लोगो ने किसलिए वन्दना की चाह की थी माँ? कैसी आशा की समाप्ति हो गयी?"

मन-ही-मन दयामयी लज्जा से भर गयी, किसी भी प्रकार अपने सकल्प को प्रकट न कर सकी।

केवल बोली—"वे बातें आज नही, किसी और दिन बताऊँगी।"

"अक्षय बाबू की कन्या के सम्बन्ध मे क्या कुछ तय किया, माँ कोई उत्तर तो उन्हें देना चाहिए?"

"मुझे उज्र नही विपिन, तुम लोगो की सलाह हो तो ठीक है। द्विजू से भी पूछना, वह क्या कहता है।" इतना कहकर वह भी घर से बाहर चली गयी। विप्रदास उधेड-बुन मे पडा रहा। बात कुछ विशेष स्पष्ट नही हुई, किन्तु स्पष्ट कर लेने के लिए अब समय भी नही था।

जब विप्रदास कलकत्ता गया तो देखा कि मकान खाली है। वन्दना और उसके पिता कुछ ही घण्टे पहले चले गये हैं। इसकी आशका उसे बिल्कुल नही थी। ऐसी बात नही, किन्तु इतनी आशका भी उसने नही की थी। अन्नदा को मालूम नही, केवल इतना जानती है कि रायसाहब का जाने का उतना मन नही था, लडकी हठ करके पिता को घसीट ले गयी है। वन्दना पर कोई दबाव नही है, रहने की जिम्मेवारी भी उसकी नही है, वह केवल मेहमान है, फिर भी वह भेट किये बिना ही पीड़ित द्विजदास को अचेत छोडकर अकारण व्यस्तता से चली गयी, सोचकर उन्हे खेद हुआ। क्रोध मे जैसे निर्दय कठोर कहकर मानो दण्ड देने का मन होता है, लेकिन जाहिर करना उनका स्वभाव नही, वह मनोभाव उसके मन मे ही रह गया।

भयानकर बुखार लेकर चार दिन के बाद विप्रदास हाईकोर्ट से लौटा। शायद मलेरिया है, अथवा और कुछ। नेत्र लाल हैं, सिर मे पीडा भी बहुत अधिक है, अन्नदा के पास आने पर वह बोला—"अनु दीदी, बीमार तो कभी होता नही, बहुत दिनो तक बीमारी को चकमा देता आया हूँ, इस बार शायद वह ब्याज के साथ वसूल करेगी। जान पडता है भुगतना पडेगा, सरलता से छुटकारा न मिलेगा।"

अन्नदा ने यह दशा देखी तो चिन्तित हो गयी, किन्तु निर्भय स्वर मे साहस देते हुए कहा—"नही दादा, तुम्हारा पुण्य का शरीर है, इसमे दैत्य-दानव का जोर चलेगा नहीं, तुम दो दिन मे चगे हो जाओगे। डॉक्टर को बुलवाऊं। मुझसे तो असावधानी नही हो सकती।"

"ऐसा ही करो दीदी।" कहकर विप्रदास बिस्तर पर लेट गया।

अन्नदा विपत्ति में पड गयी। उधर वासुदेव की बीमारी का समाचार सुनकर कल द्विजदास घर गया है, दत्त महाशय शहर मे नही है, मालिक के कार्य से वह भी ढाका में है। अकेली क्या करे, यह न समझकर विप्रदास के पास आकर बोली—"भाई विपिन, एक बात कहूँ, अप्रसन्न तो न होगे?"

"कभी तुम्हारी बात पर अप्रसन्न हुआ हूँ अनु दीदी?"

बगल मे बैठी अन्नदा सिर हाथ से सहलाते हुए बोली—"जान देकर बीमार की सेवा कर सकती हूँ, कुछ जानती तो नही, घर भी सूचना नही भेज सकती, लडका बीमार है, उसे छोडकर बहू कैसे आयेगी, लेकिन क्या वन्दना को सूचना नही भेजी जा सकती?"

हँसकर विप्रदास ने कहा—"बम्बई क्या आस-पास का मुहल्ला है दीदी। जो समाचार पाकर वह देखने आ जाएगी। शायद उसके आते-आते यहाँ दाल जल जायेगी, इसकी आवश्यकता नही।"

जीभ को दाँतो से काटकर अन्नदा ने कहा—"तुम्हारी उम्र दराज हो दादा, ऐसी बात मुख पर नही लायी जाती। वन्दना दीदी कलकत्ते मे हैं, अभी वह बम्बई नही गयी।"

"कलकत्ते मे ही है।"

"हाँ, बालीगज मे अपनी मौसी के घर है, मौसा पजाब मे बड़े डॉक्टर हैं, बेटी की शादी करने घर आये हैं। हावडा स्टेशन पर अचानक भेट हो गयी। वे गाडी से उतर रहे थे और ये लोग बम्बई जा रहे थे। मौसी जबरदस्ती घर लौटा लाकर बोली—"अचानक जब मिल गयी तो बेटी की शादी न होने तक किसी भी दशा मे जाने नही देगी। केवल एक दिन रोककर उसके पिता को उन्होंने विदा कर दिया।"

विप्रदास ने पूछा—"क्या मौसी को पहचानती हो?

हाँ, आपकी बडी मौसी हैं और दूर रहती हैं। सदा मिलाप नही होता, लेकिन आदमी हैं अपने ही।"

"अनु दीदी, इतनी बात तुमने कैसे जान ली?"

"वे कल घूमने आयी थी, द्विजू का समाचार जानने। दोपहर के समय ऊपर के बरामदे मे बैठी नाती के लिए कथरी सी रही थी, देखा बाहर के ऑगन में दो गाडियो मे बहुत से औरत-मर्द आये हैं। कौन हैं? झाँककर देखा अपनी वन्दना दीदी हैं। लेकिन पोशाक ऐसी बदल गयी है कि एकाएक पहचान मे नही आती। जैसे वह लडकी ही नही है। कैसे करूँ, कहाँ बिठाऊँ, परेशान हो गयी। थोडी देर बाद दीदी ऊपर

आयी , सबका कुशल मगल पूछा, बतलाया—उनके मुँह से ही सुना कि कम-से-कम एक महीना कलकत्ते मे ही रहेगी। बोली—"सब अच्छी प्रकार हैं। थियेटर, सिनेमा बागान-बाडी जाने का ठिकाना नही, नित्य नये-नये प्रबन्ध होते रहते हैं।"

क्षण-भर चुप रहकर विप्रदास ने कहा—"अनु दीदी, उसे सूचित करने से होगा क्या? मैं भी चगा हो ही जाऊँगा। इतने दिनो तक तुम अकेली मेरी देखभाल कर पाओगी?"

जोर देकर अन्नदा ने कहा—"क्यो नही कर पाऊँगी दादा, किन्तु फिर भी सोचती हूँ कि सूचना देनी चाहिए, वर्ना बहू जी को शायद दु ख होगा। कुछ भी क्यो न हो, फिर भी है तो बहिन ही।"

"पता मालूम है?"

"हमारा शोफर उन्हे पहुँचा आया था। उसे मालूम है।"

देर तक चुप रहकर विप्रदास बोला—"अच्छा, सूचित कर दो, किन्तु इतना ऐश-आराम छोडकर क्या वह आवेगी? विश्वास तो नही होता बहिन।"

"कुछ ठीक विश्वास तो मुझे भी नही होता दादा। उसकी पहनावे की बात ही स्मरण हो आती है। फिर भी समाचार भेज देती हूँ।"

अनुत्सुक भाव से विप्रदास बोला—"यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो सूचना भेज दो।"

सत्रह

एकाएक हावड़ा स्टेशन पर बड़ी मौसी से जब भेट हो गयी तो बम्बई जाना रोककर वन्दना को घर लौटा लाने मे मौसी को कोई कठिनाई नही हुई। वह लडकी के विवाह के सिलसिले मे स्वामी के कार्य-स्थल उत्तर पश्चिमाचल से घर आ रही थी। मौसी की बात को मानने के असल कारण के अलावा और एक बात थी, जिसे वहाँ बताना आवश्यक है। वंदना के इतने दिन परदेश में ही व्यतीत हुए हैं, उसकी शिक्षा-दीक्षा सभी वही की है, किन्तु जिस समाज के अन्दर वह है, उसका बडा अश कलकत्ते ही मे है, इससे आज भी उसका अधिक परिचय नही है। थोडा-सा परिचय जो है वह केवल समाचार-पत्र, मासिक पत्र तथा साधारण साहित्य कहानी उपन्यास के द्वारा। जिनका सदा कलकत्ते आना-जाना होता है, उनकी जबानी बहुत-सी बाते बीच-बीच मे उसके कानों मे पडती हैं—अनिता चटर्जी एम० ए, विनीत बैनर्जी बी०ए०, अनुसया, चित्रलेखा, प्रियम्वदा आदि बहुतेरे आडम्बरमय नाम और विचित्र कहानियाँ—बीसवी सदी के नवीनतम मनोभाव तथा रोमाचक जीवन-यात्रा का विवरण। किन्तु इसमे कितना अश सही है और कितना बनावटी, दूर से नि सशय अनुमान करना उसके लिए कठिन था। इसीलिए अपने समाज का एक चित्र उसके मन मे था अतिरंजित, पेचीदा, और एक था बिल्कुल फीका, इन्ही तस्वीरों को प्रत्यक्ष परिचय से स्पष्ट और सत्य कर लेने का अवसर मौसी की लडकी प्रकृति के विवाह के सिलसिले मे जब मिला तो वन्दना इसकी उपेक्षा न कर सकी, सहज ही में प्रसन्न होकर अपनी मौसी के बालीगज वाले घर मे आकर उपस्थित हुई। अपने दल के बहुतेरो से उसका परिचय है, विशेषकर प्रकृति ने यही के स्कूल-कॉलेजों मे पढ़कर बी० ए० उत्तीर्ण किया है, उसकी अपनी सखी-सहेलियो की तादाद भी एकदम कम नही है। अपने आने के पश्चात् इस दल के बीच ही वन्दना के कितने ही दिन बीते। पिता बम्बई लौट गये लेकिन सुधीर कलकत्ते मे ही रहा। निकट आये विवाह का आनन्दोत्सव नित्य ही चलता रहा, उस दिन बेलघरिया के एक बगीचे मे पिकनिक समाप्त करके दल के साथ घर लौटने के मार्ग मे वह द्विजदास का समाचार लेने के लिए इस घर मे आ उपस्थित हुई थी। उस दिन विप्रदास को यही सूचना अन्नदा ने दी थी।

मौसी के घर मे समाज के लोगो का आना-जाना, खाना-पीना, बातचीत की कमी नही। आज भी बहुतेरों की चाय की दावत थी। मेहमान लोग आ पहुँचे हैं, ऊपर के कमरे में घूमधाम के साथ चाय-पानी चल रहा है, इसी वक्त विप्रदास की शानदार मोटर आकर अन्दर दाखिल हुई। नौकर चौकन्ने हो गये, किन्तु शोफर के फाटक खोलने पर जो प्रौढ़ महिला उतरी उसकी साधारण वेशभूषा और साधारण पहनावा देखकर सभी अचम्भित और परेशान थे। मोटर से महिला का सामंजस्य नही है। अन्नदा बिना किनारी की सफेद धोती पहने हुए थी, शरीर पर उसी प्रकार की एक सफेद मोटी चादर थी, पैर नगे सिर पर कपडे के आधे माथे को ढँक लिया था—मानो वह खुद ही लज्जा-सकोच से कुछ घबराई थी। नौकर

बेयरों की बँगरखा पगडी की सजावट देखकर यह बतलाना कठिन है कि कौन कहाँ है, तब भी सामने वाले आदमी को बंगाली समझकर अन्नदा ने पूछा—"वन्दना दीदी घर में हैं?"

वह बंगाली ही था, बोला—"ऊपर चाय पी रही हैं, आप बैठिए।"

"नही, मैं यही खडी हूँ, क्या तनिक सूचना दे सकोगे?"

"अवश्य, कहना क्या होगा?"

"जाकर कहना कि विप्रदास के घर से अन्नदा आयी है।"

बेयरा चला गया। वन्दना ने तुरन्त नीचे अन्नदा का हाथ पकडकर घर मे ला बैठाया। ऐसा उसने कभी किया नही है, भूल गयी कि सामाजिक स्तर मे यह विधवा उससे बहुत छोटी है—उस घर की दासी मात्र है। अकारण ही उसके नेत्रो में जल भर आया, बोली—"अनु दीदी, यह मैंने नही सोचा था कि मेरी सुध लेने आओगी। सोचा था, तुम लोग मुझे भूल गये होंगे।"

"क्यो भूलूँ दीदी, भूली नही हूँ। बडे बाबू ने आपके पास मुझे यह कहने भेजा है कि · "

"नही अनु दीदी, मुझे 'आप' कहने से अब बोलूँगी नही।"

अन्नदा ने उज्र नही किया, केवल हँसकर बोली—"उन लोगो को पाला-पोसा है इसीलिए 'तुम' कहकर बुलाती हूँ, नही तो उस घर की सेविका ही तो हूँ।"

वन्दना ने कहा—"भले ही हो, किन्तु मुखोपाध्याय जी को कलकत्ते आये तो पाँच-छः दिन हो गये, स्वय क्या एक बार आ नही सकते थे। उन्हे मालूम है कि मैं बम्बई नही गयी।"

"हाँ, उन्होंने यह समाचार मेरे द्वारा ही सुना है। किन्तु जानती तो हो दीदी कि उन्हे कितना काम रहता है बिल्कुल ही अवकाश नही था।"

वन्दना को यह सुनकर प्रसन्नता नही हुई, बोली—"काम तो सभी को रहता है अनु दीदी। हम गये थे इसीलिए भद्रता के बहाने तुम्हे उन्होने भेजा है वर्ना मेरी याद भी न आती। उनसे जाकर कहो कि मेरी मौसी के पास उन लोगो जैसा ऐश्वर्य नही है, फिर भी मेरी सुध लेने यदि एक बार इस घर मे पैर धरते तो उनकी जात चली न जाती। मर्यादा भी कम न हो जाती।"

इन सब उलाहनो का उत्तर देना अन्नदा का काम नही है। यह उस घर मे वन्दना से जाने की प्रार्थना करने गयी, लेकिन सुनने का सब्र वन्दना मे नही है, अन्नदा की अधूरी बातो के बीच ही बोली—"नही, अनुदीदी, यह हो नही सकता। मुझे कहीं जाने के लिए आवश्यक नही है। परसो मेरी बहिन का विवाह है।"

"परसों?"

"हाँ परसो।"

इस अवसर पर बीमारी की सूचना देना उचित है या नही अन्नदा सोच रही थी; किन्तु वन्दना उसी समय पूछ उठी—"मुझे आने की आज्ञा किसने दी? छोटे बाबू ने तो नही, शायद बड़े बाबू ने? जाकर उनसे कहना कि आज्ञा करते-करते उनकी आदत बिगड गयी है। मैं कर्जदार भी नही हूँ, उनकी जमीदारी की प्रजा भी नही हूँ। स्वयं आकर मुझसे आग्रह करना चाहिए। मझली दीदी अच्छी है न?"

"हाँ, अच्छी है।"

"और लोग?"

अन्नदा ने कहा—"गॉव से समाचार आया है कि लडका बीमार है।"

"कौन बीमार है—बासु? उसे हुआ क्या है?"

"मुझे ठीक तरह मालूम नही।"

चिंतित होकर वन्दना ने कहा—"लडका बीमार है फिर भी मुखोपाध्याय जी स्वय न जाकर यहाँ कैसे बैठे हुए हैं? अदालत-मुकदमे और रुपये-पैसे के प्रति आकर्षण ही उनका इतना अधिक है अनु दीदी! कुछ हिताहित ज्ञान भी तो होना चाहिए।"

अन्नदा ने कहा—"रुपये का मोह नही दीदी, आज दो रोज से वह स्वयं भी खाट पकडे हुए हैं। लडके की बीमारी से लोग वहाँ परेशान हैं, खबर नही दी जा सकती, किन्तु यहाँ दत्त जी भी नही हैं · वह ढाका गये हैं, मैं अकेली मूर्ख औरत कुछ जानती-बूझती नही डरती हूँ, कि कही रोग बढ़ न जाय। शादी हो जाने पर तनिक आ सकोगी नही दीदी?"

वन्दना ने आशका से पूछा—"डॉक्टर आये हैं? वह क्या कहते हें?"

"कहा है कि भय की बात नही, लेकिन साथ ही डॉक्टर बुलाने के लिए भी कह गये।" अन्नदा के नेत्र जल से भर गये, वन्दना का हाथ दबाकर बोली—"ये दोनो दिन किसी भी प्रकार बिता लूँगी, लेकिन शादी हो जाने पर भी क्या आओगी नही? हम लोगो पर अप्रसन्न ही रहोगी? तुम लोगो का कहाँ क्या हो रहा है, यह मेरे जानने की बात नही है, जानती भी नही, किन्तु यह जानती हूँ कि भूल चाहे ओर किसी ने क्यो न की हो, लेकिन विपिन ने कभी नही की। उससे अनजान मे भूल हो सकती है, लेकिन जान लेने पर नही हो सकती।"

क्षण-भर चुप रहकर वन्दना उठ खडी हुई, बोली—"चलो, मैं अभी चलती हूँ।"

"अभी चलती हो?"

"हाँ, अभी नही तो फिर?"

"घर मे कहकर नही आओगी? लोग चिन्तित होगे तो?"

"कहने जाऊँगी तो देर हो जाएगी।तुम चलो अनु दीदी।" कहकर वह प्रतीक्षा न करके मोटर मे जा बैठी। सकेत से बेयरे को बुलाकर कह दिया मौसी से कहने के लिए वह मझली दीदी के घर गयी, वहाँ विप्रदास बाबू बीमार हैं।"

विप्रदास के कमरे मे आकर जब वन्दना ने प्रवेश किया, तब दिन ढल चुका, किन्तु दीपक-बत्ती का समय नही हुआ था। विप्रदास तकियो को इकट्ठा करके दीवार के सहारे बिस्तर पर बैठा हुआ था। चेहरा देखकर ऐसा नही जान पडता था कि अधिक बीमार है। मन-ही-मन चैन की साँस लेकर कहा—"मुखोपाध्याय जी, प्रणाम स्वीकार करे।" मझली दीदी उपस्थित होती तो अप्रसन्न होती, कहती, गुरुजनो की पद-धूलि लेकर ही प्रणाम करना चाहिए। किन्तु छूने मे भय लगता है कि कहीं छू न जाये।"

विप्रदास चुप रहा, केवल थोडा हँस दिया। वन्दना बोली—"क्यो बुलावा भेजा है—"सेवा करने के लिए? अनु दीदी कह रही थी, दवा पीने का समय हो गया है। किंतु मामला क्या है? डॉक्टरी दवा की शीशी क्यों? वैद्य की गोली कहाँ हे? आपको डॉक्टर बुलाने की सलाह किसने दी?"

विप्रदास ने कहा—"हमारी भाषा मे 'प्रगल्भ' नाम का एक शब्द हे। उसका अर्थ मालूम है वन्दना?"

वन्दना ने कहा—"मालूम है जी, मालूम है। आदमी होकर जो आदमी को घृणा से नही छूते, उन्ही को कहते हैं। क्या उनसे बढकर भी प्रगल्भ दुनिया मे ओर कोई हे?"

विप्रदास ने कहा—"है? जिनमे झूठ-सच के परख करने का सन्तोष नही है, बेकार ही निर्दोष को डक मारकर जो वाहवाही चाहते हैं, उस दल की प्रधान मुखिया तुम स्वय हो।"

"जरा बतलाइए तो कि निर्दोष व्यक्ति को डक मारा है। सुनूँ तो?"

"बतलाने की मुझे आवश्यकता न होगी वन्दना, समय आने पर तुम स्वय ही जान जाओगी।"

"अच्छा, उसी दिन की प्रतीक्षा मे रही।" कहकर वन्दना पलग के पास कुर्सी खीचकर बैठ गयी, बोली—"बतलाइए।"

"अच्छा हूँ, किन्तु ज्वर अभी है। जान पडता है, रात को कुछ और बढेगा।"

"फिर मुझे क्यो बुलवाया? मेरी क्या आवश्यकता है?"

"आवश्यकता मुझे नही, अनु दीदी को है, वह डर गयी है। उससे मालूम हुआ कि परसो तुम्हारी बहिन की शादी है। शादी समाप्त हो जाने पर एक दिन आना। तुम्हारी मझली दीदी ने कुछ कहा है वह सुना दूँगा।"

"क्या आज नही सुना सकेगे?"

"आज नही।"

दो-एक मिनट तक वन्दना मौन बैठी रही, फिर बोली—"मुखोपाध्याय जी आपकी बीमारी भयकर नहीं है, दो दिन मे ही अच्छे हो जाओगे। मैं जानती हूँ कि मेरी आवश्यकता नही है, फिर भी आपकी सेवा के लिए ही मैं रहूँगी वहाँ वापस नही जाऊँगी। अपना बाक्स लाने के लिए आदमी भेज दिया है, आपत्ति नही कर सकेंगे?"

हँसकर विप्रदास बोला—"किस बात की आपत्ति वन्दना, तुम्हारे रहने की, लेकिन बहिन की शादी है न?"

"मेरे साथ तो शादी है नहीं—मेरे न जाने पर बहिन की शादी रुक नही सकती।"

"क्या सचमुच ही शादी मे नही रहोगी?"

"नही।"

"लेकिन इसी के लिए तो कलकत्ते में ठहर गयी हो?"

वन्दना ने कहा—"बम्बई जा रही थी, स्टेशन से लौट आयी, किन्तु एकदम इसी के लिए ही नही। अपने समाज के प्राय किसी को पहचानती नही, लोगो के मुँह से कितनी बाते सुनती हूँ, कहानी-उपन्यासो मे क्या-क्या पढती हूँ, उनसे अपना मेल नही बैठा सकी, लगता है जैसे कि समाज से निकाले गये हैं मौसी ने बुलाया, सोचा प्रकृति की शादी के उपलक्ष्य में अचानक जो अवसर मिल गया और नही मिलेगा। इसीलिए वापस चली आयी।"

हँसकर विप्रदास ने कहा—"किन्तु वही शादी तो अभी शेष है, अभी समाज के लोगो को पहचानने का अवसर कहाँ मिला?"

"पूरा अवसर नही मिला है, यह सच है, किन्तु जितना मिला है, मेरे लिए उतना ही बहुत है।"

"इनसे अपने साथ कितना मेल हुआ वन्दना बता सकती हो?"

वन्दना हँसकर बोली—"आप ठीक हो जाये, तब खुलासा बताऊँगी।"

नौकर चिराग जला गया। सिरहाने की खिडकी बन्द करके वन्दना ने औषधि पिलायी। बोली—"अब बैठना नही, लेट जाइये।" इतना कहकर सिकुडे बिस्तर को झाडकर तकियो को ठीक कर दिया। विप्रदास के लेट जाने पर पैर से छाती तक चादर से ढँककर बोली—"अच्छे हो जाने पर अपने को पवित्र करने के लिए न जाने कितना गोबर-गगा जल आपके लिए लगेगा।"

दोनो हाथो को फैलाकर विप्रदास ने कहा—"इतना। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि सेवा-शुश्रूषा करना कुछ जानती हो, देखता हूँ।"

"थोडा जानती हूँ। लेकिन नही मुखोपाध्याय जी, यह हो ही नहीं सकता? इस विषय मे आपकी और तनिक खबर लेनी होगी।"

"यानी ?"

"यानी हमारी बुराई ही यदि करते हैं कि पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके ही करनी होगी। इस प्रकार आँखे बन्द कर मनमाना मैं बोलने नही दूँगी।"

विप्रदास ने परिहास की दबी हुई हँसी हँसकर कहा—"यह हमारे कौन हैं वन्दना! किसके विषय मे और जानकारी हासिल करनी होगी? जिनके यहाँ से अभी-अभी भाग आयी, उनके विषय मे?"

"मैं भाग आयी हूँ, कहता कौन है?"

"मैं कहता हूँ।"

"कैसे मालूम हुआ आपको?"

"तुम्हारा मुँह देखकर।'

क्षण-भर वन्दना उसके मुख की ओर देखकर बोली—'द्विजू बाबू ने एक दिन कहा था कि दादा की आँखो से कुछ बचता नही। बात कितनी सच है, मैंने विश्वास नही किया था। आपकी बीमारी मैं नही चाहती थी, किन्तु इसने सचमुच ही मेरा उद्धार किया है। सचमुच ही मैंने भागकर रक्षा पायी है। जितने दिन आप बीमार रहेगे, मैं आपके ही पास रहूँगी, इसके बाद सीधी पिताजी के पास चली जाऊँगी। मौसी के घर अब नही जाऊँगी। दूर से जिन्हे देखने की इच्छा थी, अब ऐसी इच्छा नही है कि एक दिन भी उनके यहाँ बिता आऊँ।'

विप्रदास चुपचाप देखता रहा। वन्दना कहती गयी—'वे साड़ी, गाड़ी और झूठे प्रेम की गप्प मारती थी, कहाँ नैनीताल और कहाँ मसूरी के वे होटल! उनके मुख पर उनके कैसे बेहूद इशारे रहते, सुनते-सुनते भाग जाने की इच्छा होती थी। आज इस घर मे बैठे यही जान पड रहा है कि ये कई दिन मानो बराबर अस्त-व्यस्त गर्द-रेत की आँधी मे बीते है। वे कैसे जीवित रहती है मुखोपाध्याय जी

विप्रदास ने कहा—"यह रहस्य मैं कैसे जान सकता हूँ। शायद उसी प्रकार जैसे रेगिस्तान मे कब्र बनी रहती है।"

लम्बी साँस लेकर वन्दना ने कहा—"दु ख का जीवन है। उनमे न तो धैर्य है और न किसी श्रम की परवाह। कुछ भी भरोसा नही करती, केवल सदेह करती हैं।' थोडा रुककर बोली—'समाचार-पत्र पढती है व जानती हैं बहुत कुछ दुनिया मे कहाँ क्या हो रहा है, सब-कुछ उन्हे मालूम है। किन्तु उन्हे तो स पढना नही। इसी कारण आधी बाते तो समझ ही मे नही आती थी। सुनते-सुनते जब सिर मे पीडा होने लगती थी तब वहाँ से हट जाने पर चैन पडती थी। किन्तु वे थकती नही, बकते-बकते वे लोग मानो मतवाली हो जाती थी।"

"लेकिन वन्दना यदि तुम्हारे पिताजी साथ होते तो सुविधा होती। अखबार की सारी खबरें उनसे पूछकर जान लेती। उनके सामने लज्जित न होना पडता।"

हँसकर समर्थन करते हुए वन्दना ने कहा—' हाँ पिताजी की यह बीमारी है। सारी खबरें पढे बिना उन्हे शान्ति नही मिलती। किन्तु हम लडकियो को आवश्यकता क्या है बतलाइए न? दुनिया मे दिन-रात, कहाँ क्या हो रहा है यह जानकर क्या मिलेगा?"

"तुम्हारी मझली दीदी को यह शोभा देती है, वन्दना तुम्हारे मुख से नही।" हँसकर विप्रदास ने कहा।

वन्दना बोली—"क्या वे मेरी मझली दीदी से अधिक जानती है ऐसा आप समझते है? कुछ भी नही! गगरी खाली रहने पर उसमे आवाज गूजती है। उनके विषय मे और कुछ भले ही न जान सकी होऊँ लेकिन यह जान लिया मुखोपाध्याय जी।"

"आखिर ज्ञान तो चाहिए।"

"नही चाहिए। ज्ञान के ढोग मे उनके मुख का शहद विष बना रहा है। मेरी मझली दीदी की तरह व सबको प्यार करना जानती नही। क्या मझली दीदी की तरह श्रद्धा कर सकती है? नही कर सकती। कोइ मित्र भी है? शायद कोइ है नही, ऐसा है आपमे विद्वेष। उनको कमी भी क्या है, यह बाहरी आडम्बर से जान ही न पडेगा कि अन्दर से वे इतनी खोखली है। उछल-कूद ये क्यो मचाती है? उनका सारा भेदभाव तो घुन मे जर्जरित हो गया है।"

नही, ठगा नही, उधार ली है।"

"कितनी?"

"अधिक नही, चार-पाँच सौ।"

"जानती हो न उनका नाम?"

"पहले याद था, लेकिन अब भूल गयी। हँसकर वन्दना ने कहा—"छि ! छि ! इतनी थोडी जान-पहचान मे भी कोई किसी से रुपये माँग सकता है, यह मैं सोच भी नही सकती। बोलने मे जबान रुकती नही; शर्म रेखा नेत्रो मे नही दिखाई देती, मानो वह उनके लिए नित्य की बात है! यह सम्भव होता है मुखोपाध्याय जी।"

विप्रदास का मुख गम्भीर हो गया। थोडी देर तक चुप रहकर बोला, 'उन्होने तुम्हारे मन को बहुत विषैला बना दिया है वन्दना, किन्तु सभी ऐसे नही हैं, मौसी जी का दल ही तुम्हारा सारा दल नही है। जो बाहर रह गये, शायद उन्हे भी किसी दिन खोजने पर पाओगी।"

वन्दना ने कहा—'पाऊँगी तो शायद अच्छा ही होगा। उस वक्त अपनी धारणा मे सशोधन कर लूँगी, किन्तु जिन्हे देखा वे सभी शिक्षित हैं, सभी पदस्थ लोगो के सम्बन्धी हैं। कहानी-उपन्यासो की रगीन भाषा मे सजकर ये दूर से मेरी दृष्टि मे कैसी आश्चर्यमय मालूम होती थी। मन मे गर्व की सीमा नही थी, सोचती थी हमारी लडकियो के पिछडे रहने का कलक अब दूर हुआ। अब मेरा वह भ्रम दूर हुआ मुखोपाध्याय जी।"

हँसते हुए विप्रदास ने कहा—"किस बात का भ्रम? ये तेजी से बढ चली हैं, यह असत्य नही है।"

वन्दना ने कहा—"नही, असत्य क्यों होगा, सत्य ही है। फिर भी मेरे लिए सन्तोष की बात यह है कि इनकी गिनती बहुत ही कम है, इनका किले के मैदान से मनुमेंट पर चढ़कर शोर-गुल मचाना जितना व्यर्थ है उतना ही हास्यकर।"

विप्रदास ने कहा—"और एक प्रकार की यह तुम्हारी कट्टरता है। अपना धर्म छोडने मे भय है वन्दना सावधान!"

इस बात पर वन्दना ने ध्यान नही दिया, कहती गयी—"इस तुच्छ दल के बाहर हैं बगाल का विशाल महिला-समाज। आज भी मैंने उसे नही देखा, शायद बाहर देखा भी नही जा सकता, फिर मालूम होता है कि वायु के समान वे ही बगालियो की मॉस मे घुली-मिली है। जानता हूँ, इनमे छोटी-बडी हैं—बडा उदाहरण है मेरी मझली दीदी, उनकी सास, इस बार कलकत्ता आना मेरा सार्थक हुआ मुखोपाध्याय जी। क्यो हँस रहे हैं?"

"रुपये का शोक आदमी को किस प्रकार वक्ता बना देता है यही सोचता हूँ। मुझमे भी यह दोष है।"

किन रुपयो का शोक— 'उन पॉच सौ का'?"

"जान तो यही पडता है।"

हँसकर वन्दना बोली—"रुपये के लिए अब घबराहट नही। आपकी सेवा करके पारिश्रमिक मे दूना वसूल करके रहूँगी। यदि आप न देगे तो मॉ से वसूल करूँगी।"

कमरे मे घुसकर अन्नदा ने कहा—"आठ बज रहे हैं, विपिन के भोजन का समय हो गया।"

परेशान होकर वन्दना ने कहा—"चलो अनु दीदी, चल रही हूँ, क्यो जाऊँ मुखोपाध्याय जी?"

हँसकर विप्रदास ने कहा—"जाओ, किन्तु सेवा मे त्रुटि होने पर मजदूरी काट ली जाएगी।"

"त्रुटि नही होगी।" इतना कहकर वह बाहर निकल गयी।

अट्ठारह

वन्दना ने पूछा—"भोजन तैयार है, ले आऊँ?"

हँसकर विप्रदास बोला—"तुम निरन्तर मेरा प्राण लेने का प्रयत्न कर रही हो। लेकिन सन्ध्या-प्रार्थना अभी तक नही की, पहले उसका प्रबन्ध करवा दो।"

"मैं स्वय कर दूँ मुखोपाध्याय जी?"

"तो-यहॉ और कौन है जो करे? लेकिन मॉ के पूजा-घर नही जा सकता, शरीर मे शक्ति नही है—इसी कमरे मे कर देना होगा। पहले मैं स्वय देखूँगा कैसा प्रबन्ध करती हो, कोई त्रुटि रहती है या नही, तब विचार कर देखूँगा कि भोजन तुम लाओगी या हमारे महाराज।"

वन्दना सुनकर फूली न समाई, बोली—"मैं इसी शर्त पर राजी हूँ। यदि परीक्षा मे पास हो जाऊँ तो झूठे बहाने से फेल नही कर पावेगे। वचन दीजिये।"

"वचन दिया। लेकिन मुझे अपने हाथो का बना खिलाने से तुम्हे क्या लाभ होगा?"

"यह मैं बताऊँगी नही।" कहकर वन्दना तेजी से चली गयी। दस मिनट के भीतर उसने स्नान कर अन्दर प्रवेश किया। कमरे के जिस ओर खुली खिडकी के पूर्व की धूप आकर पड रही है, उसी स्थान को जल से अच्छी प्रकार धोकर अपने ऑचल से पोछ दिया। पूजा-घर से आसन आदि लाकर सजाया, धूपदानी लाकर धूप जलायी, फिर विप्रदास को धोती, अँगोछा और हाथ-मुँह धोने के बर्तन ला उसके पास रखकर बोली—"आज फूल तोडकर माला गूँथने का समय नही मिला है, वर्ना गूँथ देती, कल यह त्रुटि नही होगी। किन्तु आधा घंटा समय दिया इससे अधिक नही। अभी नौ बजे हैं। ठीक साढे नौ बजे फिर आऊँगी। इसके बीच आपको कोई परेशान नही करेगा। मैं जा रही हूँ।" कहकर वह द्वार बन्द कर चल दी।

विप्रदास कुछ नही बोला—केवल देखता रह गया। आधा घण्टे के बाद वन्दना जब लौटकर आयी,तब सन्ध्या-प्रार्थना समाप्त करके विप्रदास एक आराम-कुर्सी के सहारे बैठा हुआ था।

"पास या फेल, मुखोपाध्याय जी?"

"पहली श्रेणी मे पास। मेरी मॉ को पराजित कर दिया है। किसका साहस है जो उन्हे म्लेच्छ कहे, म्लेच्छो के स्कूल-कॉलेज मे पढकर बी० ए० पास किया है।"

"तो अब भोजन लाऊँ?"

"लाओ, किन्तु उसके पहले इन्हे यथास्थान धर आओ।" कहकर विप्रदास ने कोशा-कोशी आदि की ओर इशारा किया।

"यह मुझे कहना नही होगा, महाशय जी, जानती हूँ।" कहकर पूजा के वर्तनों को हाथों से उठा लिया। ऐसे समय कमरे के बाहर बरामदे मे ऊँची एडी के जूतों का खट्खट् स्वर एकाएक कानो में पड़ा और दूसरे ही क्षण अन्नदा द्वार से गर्दन बढ़ाकर बोली—"वन्दना दीदी, तुम्हारी मौसी . "

इतने मे ही मौसी और दो-तीन लडकियाँ एकदम आ पहुँची, विप्रदाम ने उठकर कहा—"बैठिए।"

मौसी बोली, 'नीचे ही सूचना मिली थी, अच्छे हैं—विप्रदास बाबू '

विप्रदास ने कहा—"हाँ, अच्छा हूँ।"

आगन्तुक लड़कियो ने वन्दना को देखा तो वहुत आश्चर्य हुआ, पैरो मे जूते नही हैं, वदन पर कुर्ता नही, भीगे बालो,से कन्धे की साडी तर हो गयी है। खुले काले बाले पीठ पर फैले हुए हैं, दोनो हाथों मे पूजा की सामग्री। उसकीयहमूर्ति उनकी केवल पहले की अनदेखी अपरिचित ही नही है, अचिन्तनीय भी है। वन्दना वोली—"द्वार छोडकर आप लोग जरा हट जाये, मैं जाकर इन्हे रख आऊँ।"

एक लडकी बोल पडी—"छू जायेगा।"

"हाँ।" कहकर वन्दना चल दी।

पलभर बाद उसी वेश मे ही आकर विप्रदास की कुर्सी मे लगकर खडी हो गई। मोमी ने कहा, "हमे विना कहे ही तुम चली आयी, इसके लिए नाराज नही हुई किन्तु आज तुम्हारी बहिन की शादी है, तुम्हे चलना पडेगा।"

दोनो लडकियो ने कहा—"आपको पकडकर ले जाने के लिए हम आयी है।"

वन्दना ने कहा—"नही मोसी जी, मेरा जाना न हो मकेगा।"

"क्या कह रही हो वन्दना। न जाने से जानती हो प्रकृति को कितना दु ख होगा?"

"जानती हूँ, फिर भी मै नही जा मकती।"

आश्चर्य और दु.ख से वेचैन होकर मौसी ने कहा—"किन्तु इसी कारण तुम्हारा वम्बई जाना नही हो सका, इसीलिए तुम्हारे पिता तुम्हे मेरे पास छोड गये। वतलाओ तो, वे सुनेगे तो क्या कहेगे?"

उस लडकी ने कहा—"इसके अलावा सुधीर वाबू—मिस्टर डाटा—वहुत नाराज हुए हैं। आपका चले आना उन लोगो को पसन्द नही आया।"

उसकी ओर वन्दना ने देखा। लेकिन उत्तर दिया मौसी जी को—"मेरे न जाने मे प्रकृति की शादी रुक न सकेगी, पर जाने मे मुखोपाध्याय जी की सेवा-शुश्रूषा मे कमी होगी। यहाँ उनकी देख-भाल करने के लिए कोई है नही।"

"किन्तु वह तो ठीक हो गये हैं अव। तुम्हे जाने के लिए कहना चाहिए।" कहकर मोमी ने विप्रदास की ओर देखा। विप्रदास ने हँसकर कहा—"ठीक है। मुझे जाने के लिए कहना चाहिए,वन्दना को भी जाना चाहिए। बल्कि न जाना ही अनुचित होगा।"

सिर हिलाकर वन्दना ने कहा—"नही, मैं नही समझती कि अनुचित होगा। आप जाने के लिए कह रहे हैं, अच्छी बात है, मैं जाऊँगी; लेकिन रात को ही चली आऊँगी, वहाँ रह न मकूँगी। यही अनुमति मौसी जी को भी देनी होगी।"

"एक रात भी न रह सकोगी?"

"नही।"

अच्छा यही होगा। कहकर मोसी मन-ही-मन अप्रसन्न होकर दल-वल सहित चल दी।"

विप्रदास बोला—"देख लिया न, तुम्हारी मौसी अप्रसन्न होकर चली गयी। अचानक यह ख्याल कैसे आ गयी?"

वन्दना ने कहा—"यह जानती हूँ, अप्रसन्न होकर गयी, लेकिन केवल ख्याल मे आकर जानो चाह रही हूँ, ऐमी बात नही है। उनके मब-कुछ से मुझे घृणा हो गयी है। इसलिए अब वहाँ जाना नही चाहती।"

"वन्दना, यह तो तुम्हारा हठ है।"

"हठ है या नही, यह कठिन है। मैं सदैव अपने-आपसे पूछती हूँ, लेकिन भली प्रकार समझती हूँ कि उनके घर जाने से मुझे न तो खुशी मिलती है और न शान्ति। एक बार वम्बई मे कपडे की मिल देखने गयी थी, मुझे केवल वही वात स्मरण आती है। उसकी कितनी मशीने, कितने पहिए, इधर-उधर

आगे-पीछे बिना रुके घूम रहे हैं, जरा भी चूक जाने से मानो सिर से पैर तक मरोडकर अपने अन्दर खींचकर निगल जावेंगे। देखने मे वे अच्छे नहीं लगते, ऐसा नही, फिर भी लगता है कि बाहर जायँ तो जान मे जान आये। किन्तु अब देर न करूँगी। आपका भोजन लाऊँ?'' कहकर बाहर निकलने के लिए प्रस्तुत होते ही द्वार के पैरो की गर्द, जूतों का चिह्न दिखाई पडा, रुककर खडी होकर बोली—''भोजन लाना नहीं हुआ मुखोपाध्याय जी, तनिक धैर्य धरना होगा। नोकर से पहले यह धुलवा लूँ। कहकर वह कमरे मे बाहर जाने लगी तो विप्रदास ने आश्चर्य मे प्रश्न किया—''इतनी बातें किसमे सीखी हैं वन्दना?''

वन्दना को सुनकर भी आश्चर्य हुआ। बोली—''किसने सिखाया यह मुझे स्मरण नही है मुखोपाध्याय जी।'' कहकर तनिक चुप रहकर बोली—''शायद किसी ने कभी नहीं सिखाया। मुझे स्वय ही जान पड़ रहा है कि आपकी सेवा करने के ये अभिन्न अंग हैं, नही करने मे त्रुटि होगी।'' कहकर वह चल दी।

सध्या को ठीक समय पर सज-धज करके, वन्दना विप्रदास के कमरे के खुले द्वार के सामने खडी होकर बोली—''मुखोपाध्याय जी, अब मैं जा रही हूँ बहिन की शादी देखने! मौसी ने छोडा नही इसीलिए जाना पड रहा है।''

विप्रदास ने कहा, 'तुम जल्द हो इस अत्याचार का बदला ले सको यही आशीर्वाद देता हूँ। तब उस मौसी को पजाब मे घसीटकर बम्बई ले जाना।''

''मौसी पर क्रोध नही है, पर आपको घसीटकर खीच ले जाऊँगी। डरिये नही। किराया हम ही देगे, आपको नही देना पडेगा। किन्तु सब प्रबन्ध किये जाती हूँ, अन्याय होने पर आकर नाराज होऊँगी।''

''जरूर होगी। न होने से सबको आश्चर्य होगा। सोचोगी, तबीयत अच्छी नही है। शादी की दावत खाकर शायद बीमार हो गया हूँ।''

वन्दना हँस पडी। सिर हिलाकर बोली—''रहने दीजिए, मेरा गुण वर्णन करने को। लेकिन यह जाने दीजिए, आप सन्ध्या करने के लिए नीचे न जाइए इसी कमरे मे अनु दीदी सब ला देगी। उसके आधा घण्टे के बाद ही महाराज भोजन दे जायेगा, एक घण्टे बाद झडू दवा देकर बत्ती बुझाकर द्वार बन्द कर जायेगा। यह सबको समझाये जाती हूँ, समझ गये न?''

''हाँ, समझ लिया।''

अच्छा, अब जाती हूँ।''

''जाओ। किन्तु बहुत अच्छी लग रही हो वन्दना, यह बात माननी ही पडेगी। बात यह है कि जो पोशाक पहनी है, यही तुम्हारी असली है, जो पहने रहती हो वह नकली हैं।''

''यह क्या कहते हैं मुखोपाध्याय जी, वे कहते हैं कि लडकियो का जूता पहनना आप देखना भी पसन्द नही करते?''

''वे गलत कहते हैं, जैसे कि वे कहते हैं कि मैं तुम्हारे हाथ का नही खा सकता।''

आश्चर्य करके वन्दना ने पूछा—''गलत क्यो है मुखोपाध्याय जी, सचमुच ही मेरे हाथ का खाने से इन्कार था?''

विप्रदास ने कहा—''इकार था, किन्तु यदि इकार सच्चा होता तो वह आज भी रहता, दूर न हो जाता।''

वन्दना की समझ में बात न आयी, पर विप्रदास की बात को झूठ समझना भी कठिन है। बोली—''द्विजू बाबू ने एक दिन कहा था कि दादा के मन की बात कोई जान नही सकता, जो बाहरी है उसी को ही लोग जान सकते हैं, लेकिन जो अन्तर का है, वह अन्तर मे ही दबा रहता है। क्या यह सच है मुखोपाध्याय जी,?''

उत्तर मे विप्रदास थोडा-सा हँस दिया, फिर बोला—''वन्दना, तुम्हे देर हुई जा रही है। यदि सचमुच ही वहाँ न रहने की इच्छा हो तो, चली आना।''

''आ ही जाऊँगी मुखोपाध्याय जी, वहाँ नही रह सकूँगी।'' यह कहकर वन्दना अब देर न करके नीचे चली गयी।''

अगले दिन सबेरे भेंट होने पर विप्रदास ने पूछा—''बहिन का ब्याह निर्विघ्न समाप्त हो गया न?''

"हो गया—कुछ विघ्न नही हुआ।"

"तुमने अपनी ही हठ बनाये रखी, मोसी की बात नही मानी? कितनी रात गये लौटी?"

"तीन बजे थे रात के। मौसी की बात न मान सकी, रात को ही लौटना पडा।" तनिक रुककर शायद वन्दना ने सोच लिया कि बोलना उचित हे या नही, उसके बाद ही कहने लगी—"कुछ ही घण्टे वहाँ रही, लेकिन काम बहुत अधिक कर आयी हूँ। एक साल मे जो नही कर सकी, पाँच-छ मिनटो मे ही वह हो गया। सुधीर से समाप्त कर आयी हूँ।"

आश्चर्य से विप्रदास ने पूछा—"क्या कह रही हो?"

"वही तो। लेकिन उसे मझधार मे नही छोड आयी हूँ। कल सवेरे जिस लडकी को देखा था, उसका नाम है हेम। हेमनलिनी राय। उसी के हाथ सुधीर को सौंप आयी। फिर मुझे बम्बई के उसी कारखाने की याद हो आती है, उसी पकार उनके यहाँ भी प्रेग की खीचतान देखते-देखते मनुष्य के भविष्य का निर्माण हो जाता है? और उसी प्रकार टूटता भी है।"

विप्रदास ने उसी प्रकार विस्मय से कहा—"मामला क्या हुआ? सुधीर से अचानक समाप्त कर आने का क्या तात्पर्य हे?"

वन्दना ने कहा—"समाप्त कर आने का मतलब हे समाप्त करना। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि वहाँ अचानक नाम की कोई चीज है। उनकी चाल बहुत तेज होने के कारण ही बाहर से अचानक होने का शक होता है। पर वास्तव मे ऐसा नही। सुधीर ने मुझे बुलाकर कहा—"मुझसे बहुत बडी भूल हो गयी है, पूछा—"क्या भूल हुई है सुधीर?" वह बोला—"किसी को बिना सूचना दिये अर्थात् उन्हे बिना बताये अचानक इस घर मे, मेरा चला आना निन्दित कार्य हे। विशेषकर वहाँ जब विप्रदास के अलावा और कोई नही है। मैं बोली—"वहा अन्नदा दीदी है।" सुधीर ने कहा—"लेकिन वह महरी के अलावा तो और कुछ नही है।" मैंने कहा—"उस कुटुम्ब मे सभी उन्हे दीदी कहते है, सुनकर वह हेम नाम की लडकी जरा दबी हुई हंसी मे हंसकर बोली—"बम्बई मे उस प्रकार बुलाने की रीति है सुना है, लेकिन उसमे महरी-नौकरो का घमण्ड बढाने के अलावा ओर कुछ नही होता। वे स्वय भी बडे नही हो जाते।" सुधीर ने कहा—"इन लोगो से तुमने कहा है कि यहाँ नही रह सकोगी, रात को लौट जाओगी। लेकिन उस घर मे तुम्हारा अकेले रहना हममे से कोई पसन्द नही करता। तुम्हारे पिताजी सुनेगे तो क्या कहेगे?" बोली—"पिताजी क्या कहेगे, यह चिन्ता तुम्हारी नही मेरी है। किन्तु जो लोग पसन्द नही करते उनमे तुम क्या स्वय भी हो?" हेम ने कहा—"अवश्य है। सबको छोडकर पृथक् तो नही हैं। इस लडकी के बिना पूछे मन्तव्य का उत्तर देने की इच्छा नही हुई, इसीलिए सुधीर से कहा—"तुम्हारी इस बात के उत्तर मे मैं भी वह कह सकती थी कि व्यर्थ छुट्टी लेकर तुम्हारा कलकत्ते मे रहना मैं भी पसन्द नही करती। किन्तु यह मैं नही कहूँगी। हेम ने जो भद्दा इशारा किया, वह साधारण असभ्य समाज मे ही चलता है, मगर तुम लोगो के दल मे भी चलता है यह मैं नही जानती थी, पर मुझे अब अवकाश नही है गाडी तैयार है मै चली। उस लडकी ने कहा—"जो अशोभन है, अनुचित है, उसकी आलोचना छोटे-बडे सभी दलो मे चलती है।" बोली—"आप लोगो की जितनी इच्छा हो आलोचना करे, उज्र नही। मैं चली।" सुधीर अचानक न जाने कैसा हो गया—चेहरा पीला पड गया—अपने को सँभालकर बोला—"अपनी मौसी जी को भी बिना जताये जाओगी?" कहा—उनको कह ही रखा है, शादी हो जाने पर ही मैं चली जाऊँगी, चाहे रात कितनी भी क्यो न हो।"

सुधीर ने कहा—"क्या कल तुमसे एक बार भेट हो सकती है?" बोली—"नही।" वह बोला—"परसो?" बोली—"परसो भी नही।"

"उसके अगले दिन?"

"नही, उस दिन भी नही।"

"तुम्हे कब समय मिलेगा?"

"मुझे समय नही मिलेगा।"

"किन्तु मुझे एक आवश्यक बात कहनी हे।"

"शायद तुम्हे आवश्यक है, लेकिन मुझे नही है।" कहकर चल दी।

"मुझे सुधीर नही पहचानता, ऐसी बात नही है। साथ-साथ आगे बढ जाने का साहस न हुआ। वही

चुपचाप खडा रहा। मैं आकर गाडी मे वैठ गयी।"

विप्रदास जरा हँसकर वोला—"इसका मतलव क्या समाप्त कर देना है वन्दना? तनिक-सा झगडा। यदि सन्देह है तो भेट होने पर अपनी मझली दीदी से पूछ लेना।"

वन्दना हँसी नही, गम्भीर होकर वोली—"किसी से पूछने की आवश्यकता नही मुखोपाध्याय जी। मैं जानती हूँ कि हमारा मामला समाप्त हो गया है, अव यह पलटेगा नही।"

उसके मुख की ओर देखकर विप्रदास हत्वुद्धि हो गया—"क्या कहती हो वन्दना, इतनी वडी चीज क्या इतने थोडे मे ही समाप्त हो सकती है? एक वार सुधीर के आघात को ही विचार कर देखो न?"

वन्दना ने कहा—"सोच देखा है, मुखोपाध्याय जी, यह आघात सँभालने मे सुधीर को अधिक दिन नही लगेगे, मैं जानती हूँ वह हेम नाम की लडकी ही उसे मार्ग दिखा देगी। किन्तु मैं अपनी वात सोच रही थी। केवल गाडी मे ही वैठकर सोचा है ऐसा नही, कल विछौने पर लेटकर सारी रात मैं सो न पायी। वेचैनी अनुभव की है अवश्य, लेकिन मुझे कष्ट विल्कुल नही हुआ है।"

"क्रोध उतर जाने पर कष्ट होगा। तव इसी सुधीर के लिए ही फिर प्रतीक्षा करोगी।" कहकर विप्रदास हँसा।

इस हँसी मे वन्दना सम्मिलित नही हुई, शान्त भाव से वोली—"क्रोध मुझे नही है। केवल यही दु ख होता है कि वापस आते समय अगर कडी वात मुँह से नही निकलती। दिखा आयी कि दोष उसका है, जता आयी मानो मर्माहित होकर मैंने विदा ली। लेकिन यह तो सत्य नही है—इस मिथ्याचरण के लिए ही केवल लज्जा अनुभव करती हूँ मुखोपाध्याय जी, और किसी के लिए नही।" अन्तिम वात कहते-कहते नेत्रो मे जल आ गया।

विप्रदास के मन का आश्चर्य कई गुना वढ गया, यह रहस्य इतनी देर के वाद समझ पाया। वोला—"सचमुच ही सुधीर को अव तुम प्रेम नही करती हो?"

"नही करती।"

"अव तक तो प्रेम करती थी? इतनी सरलता से प्रेम कैसे छूटा?"

"इतनी सरलता से छूटा, इसलिए तो इतनी सरलता से इसका उत्तर मिला नही तो आपसे असत्य वोलना पडता।" यह कहकर वह कुछ देर मौन ही देखती रही। वोली—"आपने प्रश्न किया है कि मैंने किसी दिन सुधीर को सचमुच ही प्रेम किया है या नही? उस दिन सोचती थी सचमुच ही प्रेम करती हूँ। किन्तु उसके वाद ही और एक आदमी दृष्टि में आया, सुधीर लुप्त हो गया। शायद आपको सुनकर घृणा होगी, सोचोगे कि ऐसा चचल मन तो कभी देखा नही है। मैं लडकियो की लज्जा जानती हूँ। कोई भी लडकी इसे मानना नही चाहती है, मानो यह उसके चरित्र को ही कलंकित कर देता है। शायद मैं किसी के सामने 'स्वीकार' नही कर सकती थी, किन्तु न जाने क्यो आपके सामने कोई भी वात करने मे मुझे लज्जा नही लगती।"

विप्रदास चुप रहा। वन्दना कहने लगी—"शायद मेरा स्वभाव है, शायद वह मेरी अवस्था का स्वधर्म है। अन्तर शून्य नही रहना चाहता। चारो ओर खोजता फिरता हैं शायद यह सभी लडकियो का स्वभाव है, प्रेम का पात्र कौन है, जीवन-भर खोज नहीं पाती हैं।" यह कहकर स्थिर होकर मन-ही-मन मानो कुछ सोचने लगी, इसके वाद ही वोल उठी—"शायद यह खोजने की वस्तु नही है, यह मृगतृष्णा है, मुखोपाध्याय जी।"

उसी प्रकार विप्रदास मौन रहा। वन्दना की लज्जा तो खुल गयी है। कहने लगी—"पिछले वर्ष सुधीर ही के साथ मेरी शादी तय हो गयी थी, केवल उसकी माँ की वीमारी की वजह से ही न हो सकी। कल घर जाकर सोच रही थी अगर तब शादी हो जाती तो आज क्या मेरा मन उसे इसी प्रकार ठोकर लगा देता? कैसे मन को वश मे रखती? धर्म-बुद्धि से? सस्कार से? लेकिन मन यदि वश मे नही रहता, तव जिनके अन्दर ये कई दिन विता आयी क्या विल्कुल उन्ही के समान? इसी प्रकार के षड्यन्त्र और लुकाछिपी से मन को भरकर सूखी हँसी को हँसकर लोगो को भुलावा देती फिरती? इसी प्रकार आपस की वदनामी करके, डाह करके, शत्रुता करके? किन्तु आप क्यो नही वोल रहे हैं मुखोपाध्याय जी?"

विप्रदास ने कहा—"तुम्हारे हृदय के भीतर जो तूफान वह रहा है, उसकी भयानक गति के साथ मैं कैसे चल सकूँगा वन्दना, इसीलिए चुप हूँ।"

वन्दना ने कहा—"नही ऐसा नही होगा, इस प्रकार कतराकर मैं आपको न जाने दूँगी, दीजिए न उत्तर।"

"किन्तु बिना शान्त हुए उत्तर देने से क्या लाभ? तुम्हारी आज की दशा स्वाभाविक नही है, अत. तुम ठीक प्रकार न समझ पाओगी।"

"समझ क्यो नही सकूँगी मुखोपाध्याय जी, बुद्धि तो मेरी कही चली नही गयी।"

"चली नही गयी है लेकिन चकरा गयी है। अभी रहने दो, सध्या के बाद सब काम-धाम से अवकाश पाकर जब मेरे पास आकर निश्चिन्त होकर बैठोगी, तब बताऊँगा, तब इसका उत्तर दे सकता हूँ।"

"तब तो यही ठीक है, इस समय मुझे भी तो अवकाश नही है।" कहकर वन्दना बाहर चली गयी। असल मे उसके कामों की गिनती नही। अन्नदा सवेरे छुट्टी लेकर कालीघाट गयी है, आज उसके काम उसी के कधे पर आ पडे हैं। कितने नौकर-चाकर, कितने ही लडके यहाँ रहकर स्कूल-कॉलेज मे पढते हैं। उनकी कितनी ही प्रकार की आवश्यकताएँ हैं। अधिक काम के कारण उसे याद भी नही रहा कि वह सारी रात नही सोयी है, आज बहुत थकी हुई है।"

सन्ध्या के बाद विप्रदास का भोजन समाप्त हुआ, नीचे का सारा प्रबन्ध पूरा करके वन्दना उनके बिस्तर के पास एक कुर्सी पर बैठकर बोली—"क्या एक बात का सही-सही उत्तर दे सकेंगे मुखोपाध्याय जी?"

विप्रदास ने कहा—"प्राय उत्तर तो दिया ही करता हूँ। क्या प्रश्न है?"

वन्दना ने कहा—"आप मझली दीदी को क्या सचमुच ही प्रेम करते हैं, लडकपन मे आप लोगो की शादी हुई, बहुत दिनो की बात है, इसमे कभी कमी तो नही हुई?"

विप्रदास अवाक् रह गया। ऐसी बात किसी के मन मे आ सकती है, यह उसने सोचा भी नही था। किन्तु अपने को सँभालकर हँसकर बोला—"मझली दीदी से पूछना यह प्रश्न।"

वन्दना ने कहा—"वह कैसे जानेगी? सुना है आपके हृदय की ठीक बात कोई नही जान सकता। न बतलाना चाहते हो तो न बतलाएँ, मैं किसी प्रकार समझ लूँगी, यदि बतलाएँ तो सत्य बात ही आपको बतलानी पडेगी।"

"तब सत्य ही बताऊँगा, लेकिन क्या तुम मुझपर सन्देह करती हो?"

"अवश्य। आप बहुत बडे आदमी हैं, लेकिन फिर भी आदमी है। जान पडता है कही मानो एकदम अकेले हैं, वहाँ आपका कोई भी साथी नही। क्या यह बात सत्य नही?"

विप्रदास ने इस प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक नही दिया, बोला—"स्त्री को प्रेम करना तो मेरा धर्म है वन्दना।"

वन्दना ने कहा—"जहाँ तक धर्म फैला हुआ है, वहाँ तक आप खाटी हैं, किन्तु क्या ससार मे उससे भी बडा कुछ है नही?"

"दृष्टि मे तो नही आता वन्दना।"

वन्दना ने कहा—"मेरी दृष्टि मे आता है, मुखोपाध्याय जी? क्या उसे बतलाऊँ।"

विप्रदास का मुँह सहसा ही पीला पड गया, भरे गोरे मुँह पर मानो खून का नाम भी नही, दोनो हाथ को सामने बढाकर बोला—"नही, एक बात भी नही वन्दना। तुम अपने कमरे मे जाओ, कल हो, परसो हो, जब तुम्हारी आलोचना की बुद्धि लौट आयेगी तब इसका उत्तर दूँगा। तब शायद स्वय ही जान जाओगी कि जिन्होने मौसी के घर मे तुम्हारी बुद्धि को छिपाया है, वे ही सब कुछ नही है। धर्म जिनके लिए सर्वोपरि है वे भी हैं, इसी ससार मे वे भी रहते हैं। नही, नही तर्क न करो अब जाओ।"

वन्दना जान गयी कि इस आज्ञा का उल्लघन नही किया जा सकता। यह तो वही चीज है जिससे घर के सब लोग डरते हैं। वन्दना बिना बोले कमरे से बाहर निकल गयी।

उन्नीस

अगले दिन सन्ध्या समय वन्दना ने आकर कहा—"मुखोपाध्याय जी, फिर जा रही हूँ मौसी जी के यहाँ! अब की बार कई घण्टे के लिए नही, बल्कि जब तक मौसी मुझे बम्बई भेजने का प्रबन्ध नही कर

देती उतने समय के लिए।"

"यानी।"

"यानी आवश्यक तार आया है, पिताजी की आज्ञा है, कल ही सबेरे मौसी मुझे ले जाने के लिए गाडी भेजेगी।"

विप्रदास ने कहा—"यानी मालूम हुआ कि तुम्हारी मौसी मे प्रतिशोध का उत्साह और बुद्धि है। शायद यह उन्ही के जवावी तार का उत्तर है। तार को देखूँ तो जरा।"

नही, इसे मैं आपको नही दिखा सकती।"

विप्रदास ने सुना तो पलभर चुप रहा, फिर थोडा हँसकर बोला—"भगवान् किसी का घमण्ड सहन नही करते, यह उसी का उदाहरण है। इतने दिनो तक मेरी धारणा थी मुझे समेटा नही जा सकता, लेकिन देखता हूँ कि समेटा जा सकता है। कम-से-कम ऐसे आदमी भी हैं। तुम्हारी मौसी की तिकडम है। लाओ जरा पढ़कर देखूँ जुर्म कितना गंभीर है।" कहकर उसने हाथ बढ़ाया। अबकी बार वन्दना ने तार उसे दे दिया।

रायसाहब का लम्बा-चौडा तार है—तार को आदि से अन्त तक पढकर उसे लौटाकर विप्रदास बोला—"कुछ भी सही, लेकिन तुम्हारे पिता ने अनुचित कुछ भी नही लिखा है। नि स्वार्थ परोपकार मे भय रहता है। बीमार आत्मीय की सेवा करने आना भी दुनिया मे सरल काम नही।"

वन्दना ने पूछा—"क्या आप मुझे मौसी के घर लौट जाने की राय देते हैं?'

"तुम्हारे पिता की आज्ञा तो यही है, वन्दना। यह तो बलरामपुर के मुखोपाध्याओ का परिवार नही है—आदेश लेने वाले मालिक यहाँ तुम्हारे मुखोपाध्याय नही हैं—मौसी हैं—और आदेश दिया है दूसरे के मुँह से, इसीलिए पालन करना ही होगा।"

वन्दना ने कहा—"आप तो यह कहेगे ही। पिताजी को कुछ भी नही मालूम फिर भी यह आज्ञा, उचित-अनुचित कुछ भी हो, माननी पडेगी। मौसी का घर कहाँ है यह तो आपको मालूम ही है।"

विप्रदास ने कहा—"नही मालूम, लेकिन तुम्हारी ही जुबानी सुना है, अच्छी जगह नही है। मैं ठीक होता तो स्वय बम्बई जाकर तुम्हे पहुँचा आता, परन्तु इतनी शक्ति है कहाँ?"

क्या इस दशा मे ही आपको छोडकर चली जाऊँ! जिस मौसी को पहचानती भी नही, उसी का हठ बना रहेगा।"

"किन्तु उपाय क्या है?"

"उपाय यह है कि मैं जाऊँगी नही।"

"तब तो रहो। एक तार पिताजी को भेज दो। किन्तु मौसी ले जाने के लिए आवे तो उनसे क्या कहोगी?"

वन्दना ने कहा—"केवल यही कहूँगी कि मैं जा नही सकती। इससे अधिक नही।"

विप्रदास ने कहा—"किन्तु मौसी इतने ही से चुप न होगी। शायद इस बार घर पर मेरी माँ के पास तार भेजेगी।"

इसकी आशा वन्दना को नही थी, सुनकर चिन्तित हो उठी। बोली—"आप ठीक ही कह रहे है मुखोपाध्याय जी, शायद सब समाप्त हो ही गया है—कुछ करने मे मौसी ने बचा नही रखा है। लेकिन मालूम है क्यों?"

विप्रदास ने कहा—"जानना तो सभव नही है, किन्तु इतने का अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका यह प्रयत्न व्यर्थ भी नही है, केवल तुम्हारी भलाई के लिए भी नही है। उनके मन मे शायद कोई बात है।"

वन्दना ने कहा—"जो है वह मैं जानती हूँ। भतीजा बैरिस्टरी पास करके आया—मौसी ने हमारी बातचीत तथा परिचय करा दिया। उनका पक्का विश्वास है कि वही मेरे लिए योग्य वर है। क्योंकि पिता की मैं अकेली बेटी हूँ जो जायदाद छोड जायेगे, उसकी आमदनी से कुछ न कमाने पर भी भतीजे का काम मजे मे चल जायेगा।"

विप्रदास ने कहा—"भतीजे की भलाई की बात सोचना बुआ के लिए कोई दोष की बात नही है। लड़का कैसा है देखने मे?"

"अच्छा है।"

"मेरे जैसा ही होगा?"

वन्दना ने हँसकर कहा—"यह तो आप गर्व की बात कह रहे हैं। मन-ही-मन अच्छी तरह जानते है कि इतना रूप दुनिया मे नही है। किन्तु इसकी बरावरी करने पर तो ससार की सभी लडकियो को कुँआरी रहना पडेगा, मुखोपाध्याय जी। केवल आपकी ही ओर देखकर उन्हे दिन विताने पडेगे। फिर भी कह सकती हूँ कि अशोक देखने मे अच्छा ही है। दोष देखते फिरना मुझे अच्छा नही लगता।"

"तो यह कहो कि पसन्द आ गया?"

"यदि आया भी है तो उस नापसदगी को कोई दोष नही समझेगा, इतना कह सकती हूँ।" यह कहकर वन्दना हँसकर उठ खडी हुई। बोली—"पाँच बज गये। आपका बार्ली पीने का समय हो गया है—जाकर ले आऊँ। इस बीच मे अशोक की बात जरा और सोच ले।" कहकर वह चली गयी। पाँच मिनट के बाद जब वह लौट आयी, उसके हाथो मे चादी के कटोरे मे बार्ली थी—बरफ पर रखकर ठण्डी की हुई—बार्ली में नीबू का रस निचोडकर कहा—"यह सब पी लेना होगा। रखने से काम नही बनेगा। सेवा की त्रुटि दिखाकर कोई मुझसे विवरण माँगेगा, वह मैं न होने दूँगी।"

विप्रदास ने कहा—"जुल्म की विद्या सोलहो आने सीख ली है, देख रहा हूँ किसी से भी हारना न पडेगा।"

वन्दना ने कहा—"नही, कोई पूछेगा तो कहूँगी, मुखोपाध्याय जी पर हाथ साफ करके पक्की हो गयी हूँ।"

पानी समाप्त होने पर जूठे बर्तन को लेकर वन्दना चली जा रही थी, लौटकर पूछा—"मेरी एक बात का उत्तर देगे मुखोपाध्याय जी?"

"किस बात का उत्तर?"

"आपको ससार मे सबसे अधिक कौन प्यार करता है, बता सकते है?"

"बता सकता हूँ।"

"तो जरा उसका नाम बतलाइये?"

"नाम है वन्दना देवी।"

"सुनकर वन्दना क्षण-भर के लिए बाहर चली गयी, लेकिन लगभग पन्द्रह मिनट के बाद ही फिर लौटकर खाट के पास एक कुर्सी खीचकर बैठ गयी। हँसकर विप्रदास ने पूछा—"इस प्रकार क्यो भाग गयी थी, बोलो?"

पहले तो वन्दना उत्तर न दे सकी। फिर धीरे-धीरे बोली—"बात न जाने अचानक सहन न कर सकी मुखोपाध्याय जी, सोचा कि मानो मेरी कोई भद्दी चोरी अचानक आपने पकड ली है।"

"शायद इसीलिए इस समय भी सिर उठाकर देख नही पा रही हो?"

"क्यो नही देख सकूँगी?" कहकर तीव्र गति से सिर उठाकर वन्दना ने हँसना चाहा, किन्तु लज्जा से उसका सारा मुख लाल हो गया, बाद को सयत होकर बोली—"आपने इस बात को कैसे जान लिया, बोलिए तो?"

विप्रदास ने कहा—"यह प्रश्न व्यर्थ है वन्दना। मैं क्या ऐसा हो गया हूँ कि इतना भी नही समझ सकता? इसके अलावा अगर कभी सन्देह था भी तो आज तुम्हारी ओर देखकर अब तो मुझे नही रहा।"

फिर वन्दना ने सिर झुका लिया। विप्रदास ने कहा—"किन्तु यह नही हो सकता वन्दना, सिर उठाकर तुम्हे देखना ही होगा। शर्म के योग्य तुमने कुछ भी नही किया है, मुझसे तुम्हे लजाने की कोई आवश्यकता भी नही है। देखो, ऊपर सिर उठाओ, और मेरी बात सुनो।"

यह वही आज्ञा है। वन्दना ने सिर उठाकर देखा, पल-भर चुप रहकर बोली—"शायद आप मेरे ऊपर नाराज है न मुखोपाध्याय जी ?"

विप्रदास ने कहा—"कुछ भी नही। यह क्या नाराज होने की बात है? मुझे केवल यही आशा है कि यह भूल तुम किसी दिन स्वय ही जान लोगी। उसी दिन ही इसका प्रतिकार होगा।"

"यदि पकड मे न आ सकी और इसे यदि कभी भूल ही नही समझ सकी तो?"

"समझ जाओगी। इससे दुनिया मे कितने अनर्थों का आरम्भ होता है, यदि समझ नही सकी तो मै समझूँगा कि तुमने मुझे प्रेम नही किया है। सुधीर से प्रेम करने के समान यह भी तुम्हारी एक झक थी, हृदय के अन्दर किसी को खीच लाकर केवल अपने को भुलावा देना। इससे अधिक नही।"

वन्दना का मुख पल-भर मे फक हो गया, अत्यन्त दु खी स्वर मे वह बोली—"सुधीर से बराबरी न करें मुखोपाध्याय जी. यह मुझसे सहन न होगा। किन्तु इससे दुनिया मे अनर्थो का श्रीगणेश होता है, आपकी यह बात मानती हूँ। यह अमगल को खीच लाता है. किन्तु इसी कारण असत्य बोलकर नही। असत्य ही यदि होता तो आपका इतना प्रेम भी क्या पाती? मैंने क्या नही पाया?"

साँस बन्द किये विप्रदास इन बातो को सुन रहा था, सुनना समाप्त करके सिर उठाते ही वह विस्मित होकर बोल उठा—"क्यो नही पाया है वन्दना, तुमने बहुत-सा पाया है, वर्ना तुम्हारे हाथो का मैं कैसे खाता? तुम्हारी रात-दिन की सेवा मैं स्वीकार करता किस बूते पर? लेकिन इसीलिए क्या ग्लानि मे, अधर्ममर स्वयं उतर आऊँ, तुम्हें खीच लाऊँ?" जो लोग मेरी ओर देखकर सदा विश्वास से सिर ऊँचा किये हुए हैं, सब कुछ तोड-फोडकर क्या उन्हे नीचा दिखा दूँ? यही कहना चाहती हो?"

वन्दना ने कहा—"तो आप भी स्वीकार कीजिए, आप जो कुछ त्याग नही सकते हैं, वह है केवल अभिमान ही। सच-सच बतलाइए, उनकी दृष्टि मे जरा बडे बने रहने के मोह को ही आपने बडा समझा है। वर्ना ग्लानि किस बात की मुखोपाध्याय जी—जिस बात को हम अधर्म समझे? मनुष्य की एक गढत व्यवस्था—मनुष्य ने ही जिसे बार-बार माना है, बार-बार तोडा है—उसी को? आप चाहे माने लेकिन मुझसे यह नही होगा।"

"गम्भीर होकर विप्रदास ने कहा—"तुमसे चाहे न हो, मुझसे होगा, और इसी से हमारा काम चल जायेगा। अंग्रेजी पुस्तकें बहुत पढी हैं वन्दना, मौसी के घर मे आलोचना भी बहुत सुनी है, जान पडता है, उन्हे भूलने मे देर लगेगी।"

वन्दना ने कहा—"आप मेरी हँसी उडा रहे हैं, लेकिन मैंने जरा भी हँसी नही उडाई है मुखोपाध्याय जी, जो कुछ भी कहा है सब सच ही कहा है।"

"अब समझा, किन्तु यह पागलपन तुम्हारे दिमाग मे घुसा किसने दिया?"

"आपने ही तो।"

"यह कहती क्या हो! यह अधर्म-बुद्धि क्या मैंने ही दी?"

"हाँ, आपने ही दी है। शायद अनजाने, किन्तु आपके अलावा और दूसरा कोई नही।"

अब विप्रदास आश्चर्य से चुपचाप देखता रह गया। वन्दना कहने लगी—"जिसको अधर्म कहकर बुराई की, उसे तो मैं नही मानती— मैं जानती हूँ, धर्म जिसे समझ रहे हैं वह आपका केवल सस्कार है। बहुत गहरा सस्कार, फिर भी वह उससे बडा नही है।"

सिर हिलाकर विप्रदास ने स्वीकार करके कहा—"शायद तुम्हारी यह बात सत्य है वन्दना, यह मेरा सस्कार है, सुदृढ सस्कार है। किन्तु मनुष्य का धर्म जब इस सस्कार का रूप धारता है वन्दना, तभी वह सही होता है, तभी वह सरल होता है। जीवन के कर्त्तव्य मे जब मुठभेड नही होती, उसको मानने के लिए अपने साथ ही सघर्ष करके परेशान नही होना पडता। तब हो जाती है शान्ति, अबाध जलधारा की भाँति वह सरलता से ही बहता रहता है। शायद उस दिन यही कहा था, यह है विप्रदास का अत्याज्य धर्म—इसमे हेर-फेर नही हो सकता।"

"क्या कभी भी इसमे हेर-फेर नही होता, मुखोपाध्याय जी।"

"समझता तो यही हूँ वन्दना। आज भी सोच नही सकता कि इस जीवन मे इसका रूपान्तर है।"

इतने समय मे वन्दना के दोनो नेत्र भर आये, विप्रदास सावधानी से उसके हाथो को खीचकर बोला—"लेकिन इसके परिवर्तन की ही कौन-सी आवश्यकता है? तुम्हे प्रेम किया है—रहा तुम्हारा वह प्रेम मेरे हृदय मे, अब से वह मुझे दु.ख मे धैर्य देगा, दुर्बलता मे बल, जब अकेले बोझ ढोया न जा सकेगा तब तुम्हे बुलाऊँगा, आज से उसे भी तुम्हारे लिए रख छोडा। तब आओगी न?"

बायें हाथ से आँखे पोछकर वन्दना बोली—"आऊँगी यदि आने की शक्ति रही—तब भी यदि मार्ग खुला रहा—वर्ना नही आ सकूँगी मुखोपाध्याय जी।"

बात सुनकर विप्रदास मानो विस्मित हो गया बोला—"कहती तो ठीक हो। आने का मार्ग यदि खुला

रहेगा—सदैव के लिए यदि वह वन्द नही हो गया, किन्तु तव आना। अप्रसन्न होकर मुँह फेर न लेना।"

फिर नेत्रो के आँसू पोछकर वन्दना वोली—"मैं एक वात की भिक्षा माँगती हूँ मुखोपाध्याय जी, किसी से मेरी वात न कहिएगा।"

"नही, कहूँगा, नही। उन आदमियो में से मैं नही हूँ। तुम तो स्वय ही जानती हो।"

"जानती तो हूँ।"

कुछ देर तक दोनो ही चुप रहे। विप्रदास ने कहा—"इस दुनिया मे इतना अकेला हूँ यह वात तुमने कैसे समझ ली, वन्दना?"

वन्दना ने कहा—"न मालूम कैसे समझ ली। आप लोगो के घर से क्रोध करके चली आयी, आप साथ आये। गाडी के उन मतवाले साहवो की वात स्मरण आती है? वात कोई विशेष नही—फिर भी जान पडता है कि जिन्हे हम चारो ओर देखते हैं उनके घर के आप है नही, अकेला कोई वोझ कन्धो पर लेने मे आपको उज्र नही होता। उस दिन द्विजू वावू ने यही कहा था—मिलाकर देखा किसी से भी कुछ आप प्रत्याशा नही रखते हैं। रात को विस्तर पर लेटकर केवल आपकी ही वात याद आती रही—सो न सकी। रात के अन्तिम पहर में बैठे हुए देखा कि नीचे पूजाघर में दीपक जल रहा है, आप ध्यान मे वैठे हुए हैं। एकटक देखते-देखते सवेरा हो गया, नोकर-चाकर कही कोई देख न ले, डरती हुई अपने कमरे मे भाग आयी। आपकी वह तस्वीर फिर भुला न सकी मुखोपाध्याय जी, नेत्र वन्द करते ही मुझे दिखाई पडती है।"

हँसकर विप्रदास ने कहा—"क्या मुझे पूजा करते देखा था?"

वन्दना ने कहा—"पूजा करते तो आपकी माँ को भी देखा है, किन्तु यह वह नही है। वह कुछ और ही है। आप किसकी पूजा करते हैं, मुखोपाध्याय जी?"

फिर हँसकर विप्रदास ने कहा—"यह जानकर तुम करोगी क्या? तुम तो यह करोगी नही।"

"नहीं, करूँगी नही। फिर भी जानने का मन होता है।"

विप्रदास मौन रहा। वन्दना कहने लगी—मुझे उसी दिन जान पडा कि आप सवके अन्दर रहते हुए भी सवसे अलग हैं, आप अकेले हैं। जिस ऊँचाई पर पहुँचने से आपका साथी वना जा सकता है, उस ऊँचाई पर उनमे से कोई भी नही पहुँच सकता। एक वात और पूछूँ मुखोपाध्याय जी? वतलाएँगे न।"

"कौन-सी वात वन्दना?"

"स्त्रियो के प्रेम की शायद आपको आवश्यकता नही है न?"

"इस प्रश्न का मतलव?"

"मतलव नही जानती, योही पूछ रही हूँ। इसकी शायद अव आप इच्छा भी नही करते हैं—आपके लिए एकदम तुच्छ हो गया है। सच है या नहीं?"

विप्रदास ने उत्तर नही दिया, केवल हँसता हुआ देखता रहा।

अचानक नीचे आँगन मे गाडी की आवाज सुनाई पडी और सुनाई पडा द्विजदास का कण्ठ-स्वर—और दूसरे ही क्षण द्वार के पास आ पुकार कर अन्नदा वोली—"द्विजू आया है विपिन।"

"क्या अकेला ही? ओर कोई साथ आया है?"

"नही, अकेला ही तो देख रही हूँ और कोई नही दिखाई देता।"

सुनकर वन्दना चचल हो उठी। वोली—"चलूँ मुखोपाध्याय जी, देखूँ उनके भोजन की व्यवस्था ठीक है या नही।" इतना कहकर वह चल दी।

प्रात द्विजू ने आकर जव विप्रदास की चरण-धूलि लेकर प्रणाम किया तव कमरे मे एक कोने मे वैठी वन्दना पूजा की सामग्री तैयार कर रही थी, द्विजदास वोला—"इसी पञ्चमी को माँ पोखरे की प्रतिष्ठा करा जा रही हैं। वडी व्यवस्था है दादा।"

"माँ के कामो की व्यवस्था वडी ही होती है द्विजू, इसमें चिन्ता की कौन-सी वात है?" हँसकर विप्रदास ने कहा।

द्विजदास वोला—"वासू के अच्छे होने की मनौती की पूजा इस वार साथ ही होगी—वह भी एक अश्वमेध यज्ञ ही है। पण्डितो की विदाई की सूची तैयार हो रही है—आत्मीय-स्वजन, अतिथि-अभ्यागत की जो सक्षिप्त तालिका भाभी के मुख से सुनी, उससे सन्देह होता है कि आपकी थैली मे वे कुछ वडा हाथ

मारेंगी। समय रहते चेत जाइए।"

वन्दना ने सिर नही उठाया, सँभालने मे असमर्थ हो हँसकर लौट-पोट हो गई। विप्रदास सांसारिक आदमी है, विप्रदास कजूस है, यह शिकायत एक माँ के अलावा और कोई भी अवसर मिलने पर कहने मे नही चूकता। विप्रदास स्वयं भी इस हँसी मे शामिल होकर बोला—"इस बार तेरा नम्बर है। इस बार तेरा व्यय होगा।"

"मेरा? मुझे कोई उज्र नही, किन्तु इससे प्रवन्ध मे कुछ हेर-फेर करना पडेगा। विदाई जिनकी होगी, वह पाठशाला का पण्डित समुदाय नही, बल्कि पाठशाला का द्वार बन्द करके जिन्हे धक्के देकर बाहर रखा गया—वे होंगे।"

उसी प्रकार हँसकर विप्रदास बोला—"पाठशाला पर तू अप्रसन्न क्यो है? लोगो के मुँह से केवल निन्दा ही सुनी है, स्वय कभी नेत्रो से नही देखी। उनके दल का होने के कारण तेरे समय मे शायद मुझे रोटी न मिलेगी।"

द्विजदास ने और पास आकर एक बार फिर पद-धूलि ली, बोला—"ऐसा न कहे। आप दोनों दल के बाहर हैं, लेकिन तीसरा स्थान कौन-सा है, उसे भी मैं नही जानता। केवल यही जानता हूँ कि मेरे दादा मेरे निर्णय से दूर हैं।"

विप्रदास ने बात टाल दी। पूछा—"मेरी बीमारी की खबर माँ ने तो नही सुनी?"

"नही! बल्कि यह अच्छा होता, पोखरे की प्रतिष्ठा का हंगामा बन्द हो जाता।"

"रिश्तेदारो के लाने का प्रबन्ध हुआ?"

"हो रहा है। भूत, भविष्य, वर्तमान सभी का। लडकी सहित अक्षय बाबू को निमंत्रण दिया गया है। माँ समझती हैं बडे आयोजन में मैत्रेयी की अग्नि-परीक्षा हो जायेगी। उन्हे ले जाने का भार मेरे ऊपर दिया गया है।"

"और किसी को ले जाने की बात माँ ने कही है?—हाँ, अनु दीदी को ले जाना होगा। कॉलेज के लड़को मे यदि कोई जाना चाहता है, उन्हे भी "

"तेरी भाभी की कोई माँग नही है?"

"नही।"

फिर नीचे मोटर की आवाज सुनाई पडी। भोपू की पहचानी आवाज कानों मे जाते ही वन्दना खिड़की से गर्दन बढाकर बोली—"मौसी जी की गाडी है। मैं जाकर देखूँ तो मुखोपाध्याय जी। आप सन्ध्या-पूजा से अवकाश पा ले—विलम्ब होता जा रहा है।"

"मैं भी जाऊँ हाथ-मुँह धो लूँ। एक घण्टे बाद आऊँगा।" कहकर द्विजदास भी चला गया। विप्रदास की सन्ध्या-पूजा समाप्त हुई, आज वदना फल-मूल खाने के लिए दे गयी। मौसी के घर जो लडकी साथ ले जाने के लिए आयी है इसी को लेकर वन्दना व्यस्त है। उसी ने यह खबर दी।"

ठीक समय पर द्विजदास लौट आया। उसके हाथ मे बडी लम्बी सूची थी, कलकत्ते की आधी चीजे मोल लेकर गाडी मे भरकर भेजनी होगी। दोनों भाई जब इसी मे लगे हुए थे, उसी समय बाहर से आवाज आई—"अन्दर आ सकता हूँ मुखोपाध्याय जी! किन्तु मैं जूते पहने हूँ।"

जूते पहने ही चली आओ।" वन्दना कमरे मे आकर दाखिल हुई। जिस वेश में पहले वह बलरामपुर मे दिखाई पडी थी, यह वही है। विप्रदास ने आश्चर्य से पूछा—"कही जा रही हो.वन्दना?"

"हाँ, मौसी जी के घर।"

"कब वापस आओगी?"

"वापस आने की बात तो नही जानती मुखोपाध्याय जी।" कहकर उसने झुककर विप्रदास को प्रणाम किया, किन्तु और दिनो की भाँति पैरो को हाथो से छुआ नही। सिर नही उठाया, केवल हाथो को माथे से लगाकर द्विजदास को भी प्रणाम किया, इसके बाद कमरे से चल दी।

"अचानक वन्दना क्यो चली गयी? मेरा आ जाना ही क्या इसका कारण हे?" द्विजदास ने पूछा।

विप्रदास बोला—"उसके पिता ने तार दिया है मौसी के घर जाकर रहने के लिए, जब तक बम्बई लौट जाना नही होता।"

"किन्तु एकाएक मौसी कहाँ से टपक पडी? वन्दना ने मुझसे एक प्रकार बाते ही नही की, बराबर दूर-दूर रही और फिर सबेरा होते ही देखता हू वह चली गयी। हाँ, एक नमस्कार कर गयी, लेकिन वह भी मुँह फेरकर। मेरे विरुद्ध उन्हे क्या हो गया।"

इस प्रश्न का उत्तर विप्रदास ने टाल दिया और मौसी के मामले को सक्षेप करके बोला—"मेरी बीमारी से डरकर इसी मौसी के घर से अनु दीदी सेवा करने के लिए बुला लायी थी। बहुत सेवा की हे। तुम लोगो को उसका कृतज्ञ होना चाहिए।"

द्विजदास बोला—"नही होना चाहिए, यह नही कहता, किन्तु आपकी सेवा कर पाना भी तो सौभाग्य की बात है। यदि उसका मूल्य वह भी समझ सकी है तो कृतज्ञता उसके यहाँ भी हमारी शेप है।"

विप्रदास हँसकर बोला—"घोर नराधम हो तुम।"

द्विजदास से कहा, "निराधम हूँ पर मूर्ख नही हूं। मेरी बात ज़ाने दीजिए, किन्तु यह सेवा करने की बात माँ के कानो में गयी तो वे सदैव के लिए हमारी माँ को ही मोल ले लेंगी। यह क्या कोई साधारण सम्पत्ति है।"

विप्रदास ने हँसकर कहा—"तो यह कहो कि इतने दिनों के बाद तू माँ को पहचान पाया है?"

द्विजदास ने कहा—"यदि पहचान पाया भी हूँ तो केवल आप ही जाने, मैं माँ का कुपुत्र हूँ, कुलाँगार हूँ, उनके निकट मेरा यह परिचय रहने दे। इसे हिलाने-डुलाने की आवश्यकता नही।"

"आखिर क्यो? माँ तुम पर विश्वास कर सकती हैं, तुझे अच्छा समझ सकती हैं, यह क्या तू सचमुच ही नही चाहता? इस अप्रसन्नता मे लाभ क्या हैं, बता तो?"

"यह नहीं जानता लाभ क्या हे, लेकिन लोभ विशेष नही है। मुझे मिला है आपका स्नेह, भाभी का प्यार, यह मेरे लिए सात राजाओ की धनराशि के बराबर है, सात जन्मो मे भी दोनो हाथो से लुटाकर समाप्त नही कर पाऊँगा।" यह कहकर उसके नेत्र और मुख लज्जा से लाल हो गये। इन हृदय के भावो को प्रकट करने मे वह विमुख रहा है, सदा मौन मे घूमना ही उसका स्वभाव है। पल-भर में अपने को सँभालकर बोला—"किन्तु उन बातो पर तर्क करना व्यर्थ हे। जिसकी आवश्यकता है वह यह है कि मेरी निगाह मे वन्दना के चले जाने का हाव-भाव मुझे क्रोध से भरा लगा, इसका क्या कारण है?"

"शायद कारण यह है कि जब तू आ गया है तो उसकी आवश्यकता नही, अब से सेवा-शुश्रूषा का भार तेरे ऊपर रहा।" इतना कहकर विप्रदास हँसने लगा।

द्विजदास बोला—"आप हँसी कर रहे हैं, लेकिन मैं कहता हू कि ये अँग्रेजी दाँ लडकियाँ एक दिन इसी गर्व मे मरेंगी। बीमारी मे आपकी सेवा करने का दिन न आवे, पर आने पर प्रमाणित होने मे विलम्ब न लगेगा कि दादा की सेवा में द्विजू को हराना दस वन्दनाओ के लिए भी सम्भव नही होगा यह बात उससे कह दे।"

स्नेह-हास्य से विप्रदास का मुँह चमक उठा। बोला—"अच्छा, कह दूँगा, किन्तु विश्वास करेगी या नही, बता नही सकता। पर दादा के सामने इस परीक्षा की आवश्यकता नही है, केवल एक आदमी के सामने है, वह है माँ। तुम लोगो का समझौता होना आवश्यक है, समझा न द्विजू?"

द्विजदास बोला—"नही दादा, नही समझा लेकिन जब माँ है तब जीवित रहने पर समझौता एक दिन होगा ही, पर अभी आवश्यकता क्यो पड गयी, वही समझ मे नही आ रहा है।" यह कह क्षण-भर चुप रहकर बोला—"मेरे भाग्य मे सब-कुछ उलटा लिखा है। पिता ने जन्म दिया, किन्तु फटी कौडी भी नही दे गये—"वह दिया आपने। माँ ने गर्भ मे धारण किया, किन्तु पालन किया अन्नदा दीदी नें और सारे बोझो को ढोकर आदमी बनाया भाभी ने—दोनो ने दूसरे के घर मे आकर 'पिता स्वर्ग., पिता धर्म एव माता स्वर्गादपिगरीयसी'— इस श्लोक को याद कर मन को कितना ताजा रखूँ दादा, आप ही बताये?"

विप्रदास बोला—"माँ के मामले की पैरवी अब नही करूँगा, यह तू स्वय ही किसी दिन समझ

जायेगा, किन्तु पिता के बारे मे तेरा जो विचार है वह सही नही है। आधी सम्पदा का सचमुच तू ही अधिकारी है।"

द्विजदास बोला—"हो सकता है यह सच है, लेकिन पिता की मृत्यु के बाद क्या घर-द्वार बन्द करके आपने उनका वसीयतनामा जला दिया है।"

"तुझसे किसने कहा?"

"इतने दिनो तक जो मेरी सभी ओर से रक्षा करती आयी हैं, यह उन्ही से सुना है।"

"यह हो सकता है, किन्तु तेरी भाभी ने तो वह वसीयतनामा पढा नही था। ऐसा भी हो सकता है कि पिताजी मुझे ही सब-कुछ दे गये हो, मैंने क्रोध मे आकर उसे जला दिया। अनुचित तो है नही।"

खूब हँस लेने के बाद द्विजदास ने कहा—"दादा, आप तो कभी असत्य नही बोलते? द्वापर मे युधिष्ठिर की झूठ को नोट कर गये थे वेदव्यास और कलियुग मे आपके झूठ नोट कर रखेगा द्विजदास। दोनो ही बराबर होगे। जो कुछ भी हो यह समझ मे आ गया कि विपत्ति मे पडने पर सभी कुछ सम्भव होता है। अब मेरा पाप न बढ़ाइए, बतलाइए अब से मुझे क्या करना पडेगा?"

"अपना व्यवसाय, सम्पदा सभी तो देखना होगा।"

आखिर क्यो? बतलाइए न, किसलिए इतना बोझ ढोने जाऊँ। क्या अकेले आपसे नही हो रहा है? असम्भव है। मैं निकम्मा अपदार्थ होता जा रहा हूँ। नही—नही हो रहा हूँ। फिर भी माँ पूछे तो बता दे कि पदार्थ की मुझे आवश्यकता नही, अपदार्थ रहकर ही मैं अपने दिन बिता दूँगा, उन्हें चिन्ता न करनी होगी। रुपये-पैसे, जमीन, जायदाद का बोझ आपके रहते मैं न ढोऊँगा। आखिर मैं क्या आपकी भाँति सासारिक बन जाऊँगा। लोग कहेंगे उसकी नसो मे खून नही बहता, केवल रुपये की धारा बहती है।" किन्तु बोलते-बोलते उसने देखा कि विप्रदास उदास होकर न जाने क्या सोच रहा है उसकी बातो पर ध्यान नही है। अक्सर ऐसा होता नही है—यह विप्रदास का स्वभाव नहीं है। कुछ आश्चर्य करके बोला—"भैया क्या सचमुच चाहते हैं कि मैं जमीन-जायदाद देखूँ, अपने चिर दिन के स्वप्न देश-सेवा को तिलाञ्जलि दे दूँ?"

विप्रदास ने कहा—"तिलाञ्जलि दे दे, ऐसी बात तो कभी भी तुझे नहीं कही है द्विजू। जो तेरा स्वप्न है तेरा ही रहे, चिरदिन रहे—फिर भी कहता हूँ गृहस्थी का बोझ सँभाल ले।"

"आखिर क्यो बतलाइए न? बिना कारण जाने मैं किसी भी दशा में इस बात को मानूँगा नही।"

क्षण-भर मौन रहकर विप्रदास बोला—"इसका कारण तो बहुत साफ है द्विजू। आज मैं हूँ लेकिन ऐसा भी तो हो सकता है कि मैं न रहूँ।"

जोर देकर द्विजदास ने कहा—"न, यह कभी नही हो सकता।"

उसके विश्वास की प्रबलता ने विप्रदास पर प्रभाव किया, किन्तु हँसकर बोला—" ससार मे सब-कुछ ही होता है यहाँ तक कि असम्भव भी। इस बात को सोचने मे जो डरते हैं, वे स्वय अपने को ही ठगते हैं और ऐसा भी होता हे कि मैं थका हूँ, मुझे अवकाश की आवश्यकता है—"फिर भी तू देगा नही?"

"नही, दे नही सकूँगा दादा। उससे सरल है आपकी आज्ञा का पालन करना। बतलाइये, कब से मुझे क्या करना पडेगा?"

"आज ही से।"

"इतना शीघ्र? अच्छा, ऐसा ही सही। आपकी बात टाल नहीं सकता।" कहकर वह चल दिया।

विप्रदास बोला—"लेकिन दादा की बात सुनी—तुझे कहना नही पडेगा रे, मैं जानता हूँ कि मेरी बात टाल न सकेगा।"

द्विजदास ने काम शुरू कर दिया, वह असली है, अकर्मण्य उदासीन, यही सदा से सभी की शिकायत थी, किन्तु दादा के आदेश से माँ की व्रत-प्रतिष्ठा के विशाल अनुष्ठान को सम्पूर्ण करने का सभी प्रकार का दायित्व जब अकेले उसी पर आ पडा तो इस बदनामी को दूर करने मे इसे अधिक समय न लगा। इस अभ्यस्त भारी बोझ को वह इतनी आसानी से ढोवेगा, इतनी आशा विप्रदास ने नहीं की थी। किन्तु उसके निरालस, कार्य-पटुता से वह बिल्कुल विस्मित हो गया। जो कुछ मोल लेकर भेजना था उसे द्विजदास ने गाडी मे भरकर भिजवा दिया, जो साथ ले जाना था उसे साथ रखा, आत्मीय स्वजनो को इकट्ठा कर यथायोग्य आदर के साथ रवाना कर दिया। यहाँ के सारे कामो को समाप्त करके आज घर लौटने के दिन

उसने दादा का अन्तिम उपदेश लेने के लिए उनके कमरे मे प्रवेश करके देखा कि वहाँ बैठी हुई है वन्दना। उसके जाने के दिन से वह आयी नही, कामो के झझट में द्विजदास उसकी बात भूल गया था। आज अचानक उसे देखकर मन-ही-मन उसे अचरज हुआ, किन्तु उस मनोभाव को प्रकट न करके केवल एक मामूली नमस्कार कर शिष्टाचार समाप्त कर बोला—"दादा, आज रात्रि की ट्रेन से मैं घर जा रहा हूँ, साथ जा रहे हैं अक्षय बाबू उसकी स्त्री और बेटी मैत्रेयी। आपके कॉलेज के विद्यार्थी शायद कल-परसों जायेगे, उन्हे किराया दिये जा रहा हूँ।क्या अनु दीदी को आप ही साथ लेते आयेंगे? किन्तु तीन-चार दिन से अधिक देर न कीजिएगा।"

"क्या मुझे भी जाना ही होगा?"

"हाँ। न जाये तो एक जोडा खडाऊँ खरीद दे, ले जाकर भरत के समान सिहासन पर धर दूँगा।"

विप्रदास हँसकर बोला—"बड़ा शरारती हो गया है तू! किन्तु अक्षय बाबू की बात से आश्चर्य हुआ। वह जायेंगे कैसे? उनकी छुट्टी तो नही है—काम पर नागा जो हो जायगी?"

द्विजदास ने कहा—"हाँ, होगी, लेकिन हानि नही—उधर उससे भी बडा लाभ हैं, बड़े घर मे लडकी देने का। धनवान दामाद भविष्य का बहुत बडा भरोसा है—कॉलेज के वेतन से बहुत बडा।"

विप्रदास क्रोधित होकर बोला —"तेरी बाते जैसी रूखी हैं, वैसी ही कडवी। आदमी के सम्मान का विचार करके बातें नही करना जानता?"

द्विजदास ने कहा—"जानता हूँ या नही, भाभी से पूछ लो। सौजन्य का व्यर्थ अपव्यय नही किया है यही मेरा दोष है।"

विप्रदास सुनकर बिना हँसे न रह सका, बोला—"तेरा गवाह है केवल भाभी? जैसे मतवाले का गवाह कल्लाल?"

विप्रदास ने कहा—"होने दीजिए। किन्तु आपकी बातें भी मधुमय नही हो रही है दादा। क्योंकि न तो मैं मतवाला हूँ, वह भी शराब नही देती हैं। देती हैं अमृत, छिपाकर देती हैं बहुतेरे लोगों को अन्न, जो अनेक बडे आदमियों का किया नही होता है।"

विप्रदास ने कहा—"उन्हे करने की आवश्यकता भी नही है। प्रेम से देवर को जानवर बना डालने के सिवा बडे आदमियों को और भी दूसरे काम हैं।"

सिर नीचा करके वन्दना हँसने लगी। यह देखकर द्विजदास बोला—"इसे लेकर अब तर्क नही करूँगा दादा। आपकी भाभी नही हैं—बगालियो के घराने में उनका स्नेह कौन-सी वस्तु है, इसे आप एकदम ही नही जानते हैं। अन्धे को रोशनी दिखाने से कोई लाभ नही।" तनिक हँसकर बोला—"वन्दना आड मे हँस रही है. किन्तु मौसी के घर के बजाय यदि कुछ दिन हमारे घर में बिता आती तो शायद मेरी बाते समझती। लेकिन रहने दीजिए यह तर्क भी। बतलाइये, आप कब घर जा रहे हैं?"

"मैं बहुत थका हूँ द्विजू, माँ को समझाकर बता नही सकेगा?" विप्रदास का ऐसा निर्जीव निस्पृह कण्ठ-स्वर उसने कभी नही सुना था. विस्मित होकर देखा, धीमी हँसी की रेखाएँ अब भी होठे पर हैं—किन्तु मानो यह उसके दादा नही और कोई है। आश्चर्य और दुःख से व्याकुल होकर पूछा—"क्या अभी बीमारी अच्छी नही हुई दादा!"

"नही, अच्छी तो हो गयी है।"

"तब भी माँ के अनुष्ठान मे घर नही जा सकते, यह बात माँ को किस प्रकार समझाऊँगा? डरकर वह चली आयेगी, उनका सारा आयोजन नष्ट हो जायेगा।

पल-भर सोचकर विप्रदास बोला—"मुझे जाने के लिए तू कब कहता है?"

द्विजदास ने कहा—"आज, कल, परसो—जब भी ठीक हो सके। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं स्वयं आकर आपको ले जाऊँगा।"

विप्रदास हँसकर बोला—"अच्छा, ऐसा ही होगा। मैं स्वयं ही जा सकूँगा, तुझे आना न होगा।"

वन्दना ने द्विजदास के चले जाने पर पूछा—"यह क्या हुआ मुखोपाध्याय जी, घर जाने मे उज्र किसलिए किया?"

विप्रदास ने कहा—"कारण तो अपने ही कानो से सुन लिया।"

"सुना, किन्तु यह उत्तर दूसरों के लिए है, मेरे लिए नही। बतलाइएगा किसलिए घर जाना नही चाहते हैं? आपको बतलाना ही होगा?"

"मैं थका हूँ।"

"नही कैसे? थकावट पर सभी का दावा है, केवल मेरा ही नही, आपका भी है, लेकिन यह दावा सच होता तो सबसे पहले मैं समझ जाती। और सभी की आँखों को धोखा दे सकते हैं, केवल मेरी आँखो को न दे सकेगे। जाते समय मझली दीदी को पत्र लिख जाऊँगी कि यदि आप कभी भविष्य मे बीमार पडे तो मुझे बुला ले।"

"मझली दीदी स्वय बीमारी पकड नही सकेगी, पकडाना होगा। यह बात सुनकर वह प्रसन्न न होगी।'

वन्दना ने कहा—"प्रसन्न नही होगी सच है, लेकिन कृतज्ञ होगी। मेरी मझली दीदी हैं उस युग की महिला, उन्हें स्वामी खोजना-ढूँढना नहीं पडा, भगवान् ने आशीर्वाद की तरह अञ्जलि भर दिया था। तब से स्वस्थ शक्तिशाली पुरुष को लेकर वह चली आ रही हैं। किन्तु उसका भी अचानक एक दिन मन टूट सकता है, इसका पता उन्हें लगेगा?"

विप्रदास चुप रहा, केवल थोडा-सा हँस दिया।

वन्दना ने पूछा—"आप हँसे क्यो?"

विप्रदास ने कहा—"हँसी खुद आती है वन्दना। स्वामी ढूँढने पसद करने के अभियान मे आज तक जिन्हे तुमने देखा है उनके अतिरिक्त भी कोई और है, यह तुम नही सोच सकती। ससार मे सामान्य नियम को ही मानती हो, उसके अपवाद को मानना नही चाहती हो। पर इसीअपवाद के बल पर ही टिका हुआ है धर्म और पुण्य, काव्य साहित्य और अटल श्रद्धा-विश्वास। यह नहीतो पृथ्वी बिल्कुल रेगिस्तान हो जाती। आज भी इस सत्य को नही जानती।"

वन्दना विद्रूप के स्वर मे बोली—"यह अपवाद शायद स्वय ही है मुखोपाध्याय जी। किन्तु उस दिन तो कहा था कि मुझे आप प्रेम करते हैं?"

"आज भी वह कहता हूँ किन्तु प्रेम एकमात्र ही मार्ग तुम्हे दिखाई पडता है और बन्द रहते हैं, इसीलिए मेरी उस दिन की बातो को तुम न समझ सकी। तनिक देख आओ। द्विजू और उसकी भाभी को। यदि अँधी नही हुई तो देखोगी कि किस प्रकार श्रद्धा जाकर प्रेम मे मिल गयी है। हँसी-दिल्लगी, लाड-प्यार, घनिष्ठता से वह केवल उसकी भाभी ही नही है, वह उसकी बान्धवी है, वह उसकी माँ है। वह सबंध तो हमारा तुम्हारा भी है, ठीक उसी प्रकार तुम मुझे क्यो न देख सकी वन्दना।"

उसकी बोली मे था गम्भीर स्नेह के साथ मिला हुआ तिरस्कार का स्वर, वन्दना पर उसने गहरी चोट की। थोडी देर तक चुप रहने के बाद आँखें ऊपर करके बोली, 'आपको मैंने गलत समझा था मुखोपाध्याय जी, मेरी मझली दीदी से यदि आप सचमुच ही प्रेम करते तो मुझे दु ख न होता, लेकिन आप प्रेम तो नही करते हैं। आप केवल धर्म का पालन करते हैं, केवल कर्तव्य को मानकर चलते हैं। आपका स्वभाव कठोर है, किसी को प्रेम करना जानते नही। कितना भी गुप्त रखे, यह सचाई किसी दिन जाहिर ही होगी।'

थोडी देर चुप रहकर बोली—"आज मेरी शंका भी दूर हुई। अब शून्य मे हाथ बढाकर पुरुष खोजने न जाऊँगी, यही आशीर्वाद मुझे दे।"

विप्रदास ने हँसी मे हाथ बढाकर कहा—"तुम्हे यही आशीर्वाद दिया। आज से तुम्हारा पुरुष खोजना समाप्त हो, जो तुम्हारा चिरदिन का है, उसे वह तुम्हें प्रदान करे।"

बात को अपमानजनक हँसी समझकर वन्दना क्रोधित होकर बोली, 'आप भूल कर रहे हैं मुखोपाध्याय जी, पुरुष खोजना ही मेरा पेशा नही है, वे और हैं। किन्तु अचानक आज क्यो आयी हूँ अभी तक तो यह आपको बतलाया भी नही। एक प्रकार से सचमुच ही मेरी एक बहुत बड़ी शंका दूर हो गयी। यहाँ आप लोगो के ससर्ग मे आकर सोचा था कि ये आचार-विचार मानो सचमुच ही अच्छे हैं, खाने-पीने, छूने-छाने का नियम मानकर चलना, फूल तोडना, चन्दन घिसना, पूजा की सामग्री तैयार करना—और भी कितनी ही बातें—सोचती थी यह सचमुच ही मनुष्य को पवित्र कर देती हैं, किन्तु इस बार मौसी जी के घर जाकर मूर्खता दूर हो गयी। एक दिन कैसा पागलपन मुझपर सवार था मुखोपाध्याय जी! मानो सचमुच ही इसमें विश्वास करती हूँ, मानो हमारी शिक्षा मे, सस्कार मे सचमुच ही कही इससे अन्तर

नही है।" यह कहकर वह कृत्रिम हँसी हँसने लगी।

सोचा कि इस बात से विप्रदास को शायद गहरी चोट पहुँचेगी, लेकिन देखा एक-दम कुछ भी नही हुआ। उसकी बनावटी हँसी मे प्रसन्नता की हँसी मिलाकर वह बोला—"मुझे मालूम था वन्दना। मुझे क्या स्मरण नही है कि मैंने सावधान करते हुए एक दिन कहा था, यह सब तुम्हारे लिए नही है, इन्हे तुम करने मत जाओ। वह मूर्खता दूर हो गयी, सुनकर प्रसन्नता हुई। सोचा था कि सुनकर बहुत दु:ख होगा, किन्तु बात वैसी नही है। जिसके लिए जो स्वाभाविक नही है, उसे वह न करे तो मुझे दु:ख नही होता। तुम्हे तो याद है मैं किसका ध्यान करता हूँ—जब तुमने पूछा तो मैं चुप रह गया। बोलने मे रुकावट थी इसीलिए नही, बेकार है इसलिए। किन्तु ये बाते इस समय रहने दो। तुम्हारे बम्बई जाने का कोई दिन ठीक हुआ क्या?"

अभिमान से वन्दना का मुख लाल हो उठा, विप्रदास के प्रश्न के उत्तर मे वह केवल बोली—"नही।"

"अपनी मौसी के भतीजे अशोक की बात उस दिन कही थी। कहा था कि लडका तुम्हे अच्छा ही जँचा है। इन कई दिनो मे उसके सम्बन्ध मे और कोई बात जान सकी?"

"नही।"

"अगर तुम्हारी शादी होती ही है तो मैं आशीर्वाद दूँगा, किन्तु मौसी के दबाव मे कुछ मत कर बैठना। उनके जाल से थोडा सँभलकर रहना।"

वन्दना के नेत्रो मे आँसू आ गये, पर मुँह नीचा करके सँभलकर बोली, "ठीक है।"

विप्रदास ने कहा—"परसो मैं घर जाऊँगा। दो-तीन दिन से अधिक न रह पाऊँगा। वापस आने के बाद भी यदि कलकत्ते मे रहो तो एक बार आ जाना।"

वन्दना का मुँह झुका था, सिर हिलाकर कुछ उत्तर दिया, पर उसका स्पष्ट अर्थ समझ मे न आया।

विप्रदास बोला—"सुना तो है कि मेरी छुट्टी स्वीकार हो गयी—अब से सब भार द्विजू पर है। गृहस्थी के कोल्हू मे पिताजी ने मुझे लडकपन मे ही जोत दिया था, कभी कहीं जाने का अवसर न मिला। आज मालूम पडता है जैसे चैन की साँस लूँगा।"

मुँह उठाकर वन्दना ने पूछा—"क्या सचमुच ही साँस लेने की इतनी आवश्यकता पड गयी है मुखोपाध्याय जी, सचमुच ही आज आप इतने थके हैं?"

विप्रदास इस प्रश्न के उत्तर मे बात फेर गया। बोला—"अच्छी बात है वन्दना, अपनी बीमारी मे तुम्हारी सेवाओ की चर्चा करके कहा था, उन्हे तुम्हारा कृतज्ञ रहना चाहिए। इसका आधा भी उनमे से किसी से नही होता। द्विजू कृतज्ञता स्वीकार करते हुए भी तुम्हे कहने के लिए कह गया है कि यदि वैसा समय कभी आया तो दादा की सेवा मे उसके बराबर होना दस वन्दनाओ की शक्ति के बाहर की बात होगी।"

वन्दना बोली—"उनसे भी कह दीजिएगा कि मैने शर्त स्वीकार कर ली है, लेकिन परीक्षा का समय कभी आया तब शक्ल जरूर दिखाये।"

विप्रदास ने सुना तो हँसकर बोला—"दिखाई पडेगा वन्दना, वह पीछे पैर धरने वाला आदमी नही है। तुम उसे नही जानती।"

"जानती हूँ मुखोपाध्याय जी। भली प्रकार जानती हूँ, आपके काम मे प्रतिद्वन्द्वता करना वास्तव मे वन्दना की शक्ति की बात नही है।"

भाई के गर्व से विप्रदास का मुख चमक उठा। बोला—"मालूम है वन्दना, मेरा द्विजू साधु है।"

"आपसे भी क्या अधिक?"

"हाँ, मुझसे भी।" कहकर विप्रदास क्षण-भर उधर-उधर देखकर बोला—"किन्तु उसने कहा था कि तुम शायद उस पर नाराज हो गयी हो। बोली क्यो नही?"

"बोलने की आवश्यकता नही पडी मुखोपाध्याय जी।"

हँसकर विप्रदास बोला—"तब तो देखता हूँ कि तुम सचमुच ही नाराज हो। किन्तु आज तुमसे एक बात कहूँ वन्दना, द्विजू का व्यवहार रूखा है, बाते भी कोई मुलायम नही होती हैं, लेकिन इसके इस कडे आवरण को पार कर यदि कभी देख सको तो, देखोगी कि ऐसा मधुर पुरुष नही होता है। मेरी बात पर

भरोसा करो, ऐसा विश्वास करने के योग्य पुरुष भी तुम सरलता से पाओगी नही।"

वन्दना दूसरी ओर देखती रही, उत्तर नही दिया। अचानक वह खडी होकर वोली—"गाड़ी वहुत देर से खडी है मुखोपाध्याय जी, मैं जाऊँ। यदि रही तो आपके वापस आने पर भेट करूँगी। यदि न कर सकी तो यह मेरा अन्तिम नमस्कार स्वीकार करे।" कहकर उसने पद-धूलि ली ओर तेजी से चल दी। कुछ भी कहने का अवसर विप्रदास को नही दिया।

वरामदे को लॉघ करके सीढी के सामने जाकर अचरज से देखा कि द्विजदास हाथ जोडे खडा है।

हँसकर वन्दना ने पूछा—"अव क्या?"

"एक पार्थना है। एक वार दादा को साथ लेकर हमारे घर पर आपको जाना होगा।"

"मुझे साथ क्यो ले जाना होगा? इसका अर्थ?"

द्विजदास ने कहा—"वतलाने के लिए खडा हूँ। एक दिन विना वुलाये ही हमारे घर मे पदार्पण किया था, आज वही दया आपको करनी होगी।"

वन्दना ने क्षण-भर इधर-उधर किया, फिर वोली—"किन्तु मुझे जाने का निमंत्रण किसने दिया? माँ, भैया या स्वय आपने?"

"मैं स्वयं ही कह रहा हूँ?"

"किन्तु आप तो उस घर मे गैर आदमी हैं, वुलाने का आपको क्या अधिकार है?"

"जीवित रहने का अधिकार तो है। उसी अधिकार के वल पर यह प्रार्थना पेश की। वोलिए, स्वीकार किया? विना सख्त जरूरत के मैं किसी से कोई विनय नही करता।"

वहुत देर तक वन्दना दूसरी ओर देखती रही, फिर वोली—"अच्छा यही सही—जाऊँगी, किन्तु मान-अपमान का दायित्व आपके ऊपर रहा।"

कृतज्ञ होकर द्विजदास ने कहा—"मेरी शक्ति थोडी है, फिर भी वह भार लेता हूँ।"

वन्दना ने कहा—"विपत्ति के समय यह वात न भूलना।"

"नही , भूलूँगा नही।"

इक्कीस

कई दिन के वाद विप्रदास नीचे दफ्तर मे आकर वैठा है। सामने टेवुल पर कागजो का अवार लगा है। न जाने कितने दिनो का काम वाकी है। शरीर थका है, पर द्विजू के भरोसे तो नही छोडा जा सकता। एक मोटी वही लेकर वह पन्ने उलट रहा था तभी वाहर से मोटर के भोंपू की आवाज कानो मे पहुँची और तुरन्त पूरव के खुले फाटक से वन्दना ने प्रवेश किया। आज अकेली नही है, साथ मे एक अपरिचित युवक है, शरीर पर धोती-कुर्ता पैरो पर चप्पल और कधे पर टेढी लिपटी हुई मोटी सफेद चादर है अवस्था तीस के अन्दर है, शरीर की वनावट थोडी और लम्वी होती तो आसानी से सुन्दर पुरुष कहा जा सकता था। विप्रदास स्वागत करने के लिए कुर्सी से उठा।

वन्दना ने कहा—"यही मिस्टर चौधरी वार-एट-ला हैं मुखोपाध्याय जी। किन्तु यहाँ अशोक वावू कहने पर वुरा न मानेगे। इसी शर्त पर परिचय कराने के लिए राजी होकर साथ लायी हूँ। वाते करने के पहले अपने कर्तव्य को तो पूरा कर लूँ।" यह कहकर वह पास आकर नमस्कार करके वोली—"लेकिन पद-धूलि इनके सामने न ले सकी, कही समझ न वैठे कि मैं उनके समाज की कलक हूँ। किन्तु आप भी कही नाराज होकर यह न समझ वैठे कि नया नियम मैंने मौसी के यहाँ सीखा है। उनपर आपकी प्रसन्नता की गहराई मैं जानती हूँ न।"

विप्रदास ने कहा—"क्या अपनी मौसी जी के सामने मेरा इसी प्रकार गुणगान करती हो?' नवागत युवक की तरफ देखकर वोला—"वन्दना के मुख से आपके विषय मे इतनी वाते सुनी हैं कि वीमार न होता तो स्वय मिलने जाता! देखकर ही जान पडा कि चेहरे को मानो कितनी ही वार देखा है। ठीक ही हुआ जो वेकार की देरी न करके स्वय ही साथ ले आयी।"

सज्जन ने प्रत्युत्तर मे कुछ कहना चाहा, लेकिन इसके पहले ही वन्दना आदेश के स्वर मे अँगुली उठाकर वोली—"मुखोपाध्याय जी, अतिशयोक्ति को पार कर अव मिथ्या की सीमा मे आ गये, अव रुकिए, वर्ना हगामा मचा दूँगी।"

"मतलब?"

"मतलब यह कि हम वहुत साधारण लोगो के समान झूठ-सच जो मन मे आया आप वकने लगे आप हर्गिज असाधारण आदमी नही हैं, इन लोगो की भाँति ही साधारण आदमी हैं।"

विप्रदास ने कहा—"नही। पूछ देखो तो वे एक स्वर से स्वीकार करेगे कि तुम्हारा अनुमान अश्रद्धेय, अग्राह्य है।"

वन्दना ने कहा—"अव आपको ले जाकर उन्ही के पास वाहर की इस शेर की खाल को दोनो हाथो मे नोच डालूँगी। तव वे असली चेहरा देखेगे, और उनका भय दूर हो जाएगा। मुझे आशीर्वाद देकर कहेगे कि तुम राजरानी वनो।"

हँसकर विप्रदास ने कहा—"आशीर्वाद मे मुझे उज्र नही; यहाँ तक स्वय भी देने के लिए तैयार हूँ, किन्तु तुम लोग आशीर्वाद तो नही चाहती हो, कहती हो, वह बुरा सस्कार है, व्यर्थ की वात है।"

फिर वन्दना ने अँगुली उठाकर कहा—"फिर ताना देने का प्रयत्न!कौन कहता है गुरुजनों का आशीर्वाद हम नही चाहते हैं—कौन इसे बुरा सस्कार कहता है? लेकिन अव मचमुच ही क्रोध आ रहा है मुखोपाध्याय जी।"

गम्भीर होकर विप्रदास वोला—"क्या सचमुच ही क्रोध आ रहा है? तव रहने दो इन झमेले की वातो को। किन्तु अचानक सवेरे ही आगमन कैसा? क्या कोई काम है?"

वन्दना ने कहा—"वहुत से। पहला काम है आपसे यह विवरण लेना कि विना मेरी आज्ञा के नीचे आकर काम क्यो शुरू किया है?"

"शुरू नही किया है, करने का विचार भर किया था, यह रहा।" कहकर उम मोटी वही को विप्रदाम ने दूर खिसका दिया।

प्रसन्न होकर वन्दना वोली—"विवरण सन्तोषजनक है, इस वार तो क्षमा किया जाता है। भविष्य मे इसी प्रकार आज्ञाकारी रहे तो मेरा काम चल जायेगा। अव मन लगाकर सुनिये। तव तक वैठकर इनसे वातचीत कीजिए—मुखोपाध्याय के ऐश्वर्य का विवरण प्रजा-शासन की अनेक रोमाचक कहानियाँ—जो भी जी चाहे। अनु दीदी को साथ लेकर सव-कुछ ठीक-ठीक कर लेने के लिए मैं ऊपर जाती हूँ। कल प्रात की ट्रेन मे हम वलरामपुर जाएँगे, दिन ही दिन मे ठण्ड लगने का भय न रहेगा। मिस्टर चौधरी के साथ जाने की इच्छा है—वडे घर का वडा यज्ञ क्रिया-कलाप, घटाटोप कभी आँखो मे नहीं देखा है—और देखे भी तो कैसे?"

विप्रदास ने पूछा—तुमने अवश्य ही वहुत मे देखे हैं?"

वन्दना वोली—"यह प्रश्न विल्कुल अप्रासंगिक हैं। उन्होने नहीं देखा यही वात हो रही थी। तो सुनिए। उन्हे माथ चलने की अनुमति दी है, इससे इतने प्रमन्न हुए हैं कि इमके वाद मुझे माथ ले जाकर वम्वई पहुँचा देने के लिए राजी हो गये है।"

चेहरे को वहुत गम्भीर वनाकर विप्रदास ने कहा—"यह कहनी क्या हो? इतना त्याग हमारे ममाज मे देखने मे नही आता है, तुम्हारे अन्दर ही दिखाई पडता है। सुनकर आश्चर्य हो रहा है।"

वन्दना ने कहा—"आश्चर्य होने ही की तो वात है। जप-तप भी है, मोलहो आने ईर्ष्या भी है।" यह कहकर नेत्रो की एक चितवन मे विजली चमकाकर वाहर चली जा रही थी कि तभी विप्रदाम ने पुकारकर कहा—"यह मानो कथामाला (कहानियो की एक प्रमिद्ध पुस्तक) के उस मानी वाली नाँद के कुत्ते की कथा है। न तो वह स्वय खायेगा, न साँडो के झुण्ड को ही खाने देगा। वतलाओ तो मनुष्य कैसे जीवित रहे?"

किवाड के किनारे खडी होकर वनावटी क्रोध से भौहे तानकर वन्दना के कहा—"एकदम हम लोगों के ममान साधारण आदमी हैं, कुछ भी अन्तर नही। व्यर्थ ही लोग भय से परेशान रहते हैं।"

"इस वार जाकर तुम उनका भय दूर कर आओ।"

"इसीलिए तो जा रही हूँ और मानी से उपमा देने की दुर्बुद्धि का प्रतिशोध भी लेती आऊँगी।" यह कहकर वन्दना तीव्र कटाक्ष से फिर विजली चमकाकर ओझल हो गयी।

विप्रदास ने कहा—"मिस्टर।"

अशोक ने सविनय वाधा दी—"नही-नही, यह नही होगा। उसे छोड देने मे हिचकिचाहट नही

होगी। इसीलिए धोती-कुर्त्ता और चप्पल पहनकर आया हूँ विप्रदास बाबू। उन्होने विश्वास दिलाया था।''

मन-ही-मन प्रसन्न होकर विप्रदास ने कहा—''अच्छा ही हुआ अशोक बाबू, सम्बोधन सहज हो गया। देहात का आदमी हूँ, याद भी नही रहता और आदत भी नही है। अब मजे मे डटकर बाते होगी। सुना है आप हमारे देहात चलना चाहते हैं, सचमुच ही यदि चले तो कृतार्थ होऊँगा। हमारे कुटुम्ब की मालकिन मेरी माँ हैं, उनकी ओर से मैं सादर निमन्त्रण दे रहा हूँ।''

विप्रदास की विनीत बाते सुनकर अशोक बोला—''अवश्य जाऊँगा, कितने गरीब, अनाथ-दु खी न्यौती मे आयेगे, कितने ही अध्यापक, पण्डित उपस्थित होगे, विदाई लेने के लिए, आनन्दोत्सव मे कितनी ही प्रकार का खान-पान होगा, कितने ही विचित्र प्रबन्ध होगे ।''

हँसकर विप्रदास बोला—'सब बाते बढा-चढाकर कही गयी हैं अशोक बाबू, बन्दना ने केवल मजाक किया है।'

'मजाक करने से उसे लाभ क्या विप्रदास बाबू?'

'हमे असमजस मे डालना एक यही लाभ है। बलरामपुर के मुखोपाध्यायो पर मन-ही-मन वह नाराज है। दूसरा लाभ किसी भी बहाने बम्बई घसीट ले जाना।'

अशोक ने कहा— 'आवश्यकता पडी तो बम्बई तक मुझे साथ जाना पडेगा इसका वायदा है, किन्तु मुखोपाध्यायो पर वह नाराज हैं, आप लोगो को वह लज्जित करना चाहती हैं, यह नही हो सकता। कल भी बलरामपुर जाना निश्चित नही था। लेकिन आप लोगो की बात को लेकर मौसी से उसका तर्क हो गया था। मौसी बोली, 'विप्रदास की माँ ने यदि सर्वसाधारण के हितार्थ पोखरा खुदवाया है, तो इसकी प्रशसा करती हूँ, पर घटाटोप के साथ प्रतिष्ठा करना कोई अर्थ नही रखता। वह कुसस्कार है। कुसस्कार मे सम्मिलित होना मैं अन्याय समझती हूँ।' वन्दना बोली—'वे बडे आदमी हैं, बडे आदमियो के काज-प्रयोजन मे घटाटोप तो हुआ ही करता है मौसी जी, इसमे आश्चर्य की कौन-सी बात है?' मेरी बुआ बोली, 'बडे आदमिया का अपव्यय मैं मानती हूँ कोई आश्चर्य की बात नही है, किंतु बात तो केवल यही नही है, यह एक कुसस्कार भी तो है। तुम्हारे जाने मे ही मुझे उज्र है।' वन्दना बोली—'जो नही जानती, जानने की कभी इच्छा भी नही की है, उसका वैसे ही अन्याय करना भी कुसस्कार है।' उसका उत्तर सुनकर बुआजी क्रोध से आग-बबूला हो गयी, पूछा— अपने पिताजी की राय ली हैं?'

वन्दना ने उत्तर दिया—'मैं जानती हूँ पिताजी मना नही करेगे, मझली दीदी के पति बीमार हैं, उन्हे साथ ले जाने का भार मुझपर आया है।'

'सुनूँ तो किसने भार दिया? शायद उन्होने स्वय ही?' प्रश्न सुनकर वन्दना मानो चुप होकर देखती रह गयी, मुझे ऐसा मालूम हुआ, उसका रक्त खौल रहा है, अब न जाने क्या बोल बैठे। किंतु यह सब कुछ भी नहीं किया, धीरे-धीरे केवल बोली—'जिसका जो जी चाहे पूछे उसी का उत्तर देना होगा। बचपन से ही मुझे यह शिक्षा नही मिली है मौसी जी। परसो सवेरे मुखोपाध्याय जी को साथ लेकर मैं बलरामपुर जाऊँगी, अधिक कुछ भी नही कह सकती।'

बुआजी क्रोध से उठकर चली गयी। मैं बोला—'मुझे साथ ले चलेगी? अपनी इन आँखो से इन आचार अनुष्ठानो के देखने की मेरी बडी इच्छा होती है। वन्दना बोली—'लेकिन ये तो कुसंस्कार हैं अशोक बाबू! आँखो से देखने से भी आप लोगो की जात चली जाएगी।' बोला—'यदि आपकी जात नही जायेगी तो मेरी भी नही जायेगी। और यदि जाती है तो दोनो की एक साथ ही जात जाय। मेरी कोई हानि नही है।'

वन्दना ने कहा—'आप तो विश्वास नही करते, उन्हे आँखो से देखकर मन-ही-मन हँसेगे।'

बोला—'आप ही क्या विश्वास करती हैं?' वह बोली—'नही करती, लेकिन मुखोपाध्याय जी करते हैं। मैं केवल आशा करती हूँ कि उन्ही का विश्वास एक दिन सचमुच ही मेरा भी विश्वास बन जाय। वन्दना आपकी मन-ही-मन पूजा करती है विप्रदास बाबू। इतना विश्वास दुनिया मे वह किसी पर नही रखती।'

बात अनजानी नही है, नयी भी नही है, तथापि दूसरो के मुख से सुनकर विप्रदास का चेहरा एकदम सफेद हो गया।

पल-भर के बाद पूछा—'आप लोगो की जो शादी की बात हुई थी, क्या वह तय हो गयी? वन्दना ने क्या सम्मति दे दी है?'

'नही, किन्तु असम्मति भी पकट नही की है।'

'आशा की बात यही हे अशोक बाबू! चुप रहना अधिकाश मे सम्मति का द्योतक है।'

अशोक सकृतज्ञ आँखो से पल-भर मौन रहकर बोला—'नही, यह नही हो सकता।' फिर जरा रुककर बोला—'कठिनाई यह है कि मैं गरीब हूँ और वन्दना धनवती हे। ऐसा नही कि धन का लोभ मुझे नही है, लेकिन बुआजी के समान वही मेरा एकमात्र लक्ष्य नही है। यह कैसे समझाऊँ कि बुआजी के साथ मिलकर मैंने षड्यत्र नही किया है।'

इस मनुष्य के प्रति विप्रदास के मन मे अपमान का भाव था, उसकी बात की सरलता से वह कुछ कम हो गया। सरल कण्ठ स्वर मे बोला—'बुआ के षड्यत्र में आप सम्मिलित नही हुए हैं, यदि बात सत्य हुई तो वन्दना किसी दिन समझेगी ही, तब प्रसन्न होने मे भी उसे देर न लगेगी, धन के लिए भी तब बाधा न पडेगी।'

उत्सुक स्वर मे अशोक ने प्रश्न किया—'आपको वह निश्चित रूप से मालूम हे विप्रदास बाबू?'

इसका उत्तर देने मे विप्रदास ऊहापोह मे पड गया, कुछ सोचकर बोला—'उसे जितना जानता हूँ उतना ही मालूम होता है।'

अशोक ने कहा—'मुझे क्या लगता है जानते हैं? लगता है, उनकी निजी खुशी मे भी मुझे अधिक आवश्यकता है आपकी खुशी की। उसे जब पाऊँगा तो मुझे न मिलने योग्य कोई चीज न रह जायगी।'

विप्रदास सहास्य बोला—'मेरे प्रसन्न नेत्रो से यह स्वामी चुनेगी, ऐसा विचित्र संकेत किसने दिया—स्वय वन्दना ने? यदि दिया है तो कहूँगा कि एकदम मजाक किया है अशोक बाबू।'

'नही, मजाक नही हे, सही है।'

'किसने बताया?'

पल-भर मौन रहकर अशोक बोला—'ये बाते मुँह से कहने की नही हैं विप्रदास बाबू! उस दिन मौसी से झगडा करके वन्दना मेरे कमरे मे आयी—ऐसा कभी नही करती एक कुर्सी खीचकर बैठकर बोली—'मुझे बम्बई पहुँचा आना होगा।' बोला—जब भी आज्ञा दे तैयार हूँ। बोली—'बलरामपुर जा रही हूँ, समय आने पर उसके बाद कहूँगी।' बोला—'अच्छी बात हे, लेकिन मौसी को इस प्रकार नाराज क्यो कर दिया? उनके पूजा-पाठ, होम-जप, देव-देवता मे वे सचमुच ही विश्वास तो नही करती हैं, फिर बोली—'असत्य नही कहा है अशोक बाबू! उन लोगो के समान सचमुच ही यदि कभी विश्वास कर सकी जो कृतज्ञ हो जाऊँगी। मुखोपाध्याय जी की बीमारी मे सेवा की थी, उनसे एक दिन विश्वास का वरदान माँग लूँगी। इसके पश्चात् आपकी बात प्रारम्भ हुई। इतना विश्वास भी कोई किसी पर करता है, इसके पहले कभी कल्पना भी न की थी। बात ही बात में उन्होने एक दिन की घटना के विषय मे बताया। तब आप बीमार थे, आपकी सध्या-पूजा का प्रबन्ध वही करती थी, अधिक समय हो गया था, जल्दी आने मे पैरो से कुछ छू गया, जितना ही अपने को समझाती कि वह कुछ नही है उतनी समझ मे नही आता। कही आपके काम मे कोई भूल न हो जाय, इसीलिए स्नान करके सारा प्रबन्ध फिर शुरू से करना पडा। किन्तु आप उस दिन नाराज होकर बोले थे—'वन्दना, यदि सबेरे तुम्हारी नीद न खुलती हो तो अन्नदा दीदी को पूजा का प्रबन्ध करने देना। स्मरण है न विप्रदास बाबू?'

विप्रदास ने सिर हिलाकर कहा—'हाँ स्मरण है।'

अशोक कहने लगा—'इस प्रकार कितने दिन की छोटी-मोटी घटनाओ की चर्चा करते-करते उस दिन बहुत रात हो गयी, अन्त मे बोली—'मौसी ने उन लोगो के कुसस्कार का ताना दिया, मैंने स्वय भी एक दिन दिया था अशोकर बाबू, किन्तु आज और बुरा समझने मे चकरा जाती हूँ। खाने-पीने का विचार तो कभी किया नही है, जन्म-भर का विश्वास है इसका दोष नही, किन्तु मानो अब सकोच होता है। बुद्धि के कारण शर्म लगती है, लोगों से गुप्त रखना चाहती हूँ, किन्तु जिस क्षण याद आती है कि इन्हे वे नही चाहते हैं, उसी क्षण मन कैसे उससे मुँह मोड लेता है।'

विप्रदास का चेहरा सुनते-सुनते पीला पड गया, बरबस हँसने का प्रयत्न करके बोला—'तो वन्दना अब खाने-छूने का विचार करने लगी है। किन्तु उस दिन तो आकर गर्व के साथ कह गयी कि मौसी के घर

आकर उसमे अपना समाज अपनी सहज बुद्धि वापस आ गयी है, मुखोपाध्याय वश की हजारो प्रकार की कृत्रिमता से छुटकारा पा गयी है।' अशोक आश्चर्य से कुछ कहना चाहता था, लेकिन विघ्न हुआ। अन्दर घुसकर वन्दना वोली—'मुखोपाध्याय जी, सव-कुछ सँभालकर रख आयी। कल प्रात साढे नौ वजे ट्रेन है। पूजा-पाठ व्यर्थ के कामो को इसी के अन्दर समाप्त कर ले। इतनी विडम्वना भगवान् ने आपके भाग्य मे लिखी थी।'

हँसकर विप्रदास ने कहा—'शायद यही लिखी हो।'

'शायद नही, निश्चय ही। सोचती हूँ यदि कोई इन्हे आपके अन्दर से दूर कर देता? कल सुबह के भोजन का प्रवन्ध भी कर आयी—मैं स्वय आकर खिलाऊँगी फिर कपडे पहनाऊँगी, इसके वाद साथ लेकर घर जाऊँगी। कमजोर आदमी हैं इसीलिए। चलिए अशोक बाबू, हम लोग चले। पद-धूलि अब नही लूँगी मुखोपाध्याय जी, यह कुसस्कार है। सभ्य समाज मे नही चलता।' हँसकर दोनो हाथो को माथे से लगाकर वाहर चल दी।

बाईस

दूसरे दिन सवेरे ही सव लोग वलरामपुर के लिए रवाना हो गये। घर के पास आते ही दिखाई पडा कि द्विजदास ने राजसूय यज्ञ जैसा आयोजन किया है। सामने वाले मैदान मे कुटियो की कतार खडी हैं, कुछ तैयार हो गयी हैं और कुछ हो रही हैं। अभी से ही निमंत्रित तथा आमंत्रित लोगो से वहुत-सी भर गयी हैं। अभी कितने लोग आयेगे यह बताना कठिन है।

विप्रदास को देखकर माँ विस्मित हो गयी—'शरीर की यह क्या दशा बेटा, बिल्कुल आधा रह गया है!'

पद-धूलि लेकर विप्रदास बोला—'अब भय की बात नही माँ, अच्छा होने मे देर न होगी।'

'किन्तु कलकत्ता वापस जाने न दूँगी, तेरा कितना भी आवश्यक काम क्यो न हो। अब से अपनी आँखो के सामने रखूँगी।'

विप्रदास हँसकर चुप रह गया।

वन्दना के उन्हे प्रणाम करने पर दयामयी आशीर्वाद देकर बोली—आओ बेटी, आओ, चिरजीवी हो।'

किन्तु उनके कठ-स्वर मे उत्साह नही था, मालूम पडा कि यह साधारण शिष्टाचार से अधिक कुछ है नही। उसे आने का निमत्रण नही दिया गया है, वह स्वय आयी है, माँ को इतना ही मालूम था। इसके वाद उन्होने मैत्रेयी की चर्चा छेड़ी। लडकी के गुणो की सीमा नही। दयामयी को इस बात का दु ख है कि एक ही मुँह से उसकी सूची तैयार करना नही है। वोली—'कोई काम ऐसा नही है जो पिता ने न सिखाया हो, कोई काम ऐसा नही जो वह न जानती हो। बहू की तबीयत कुछ ठीक नही है, इसीलिए मानो उसने अकेले ही सारा भार अपने कधो पर ले लिया है। भाग्य की बात है कि उसे ले आया गया था विपिन, वर्ना क्या होता, इसे सोचने पर भी मुझे भय लगता है।

आश्चर्य से विप्रदास वोला—'ऐसी बात है।'

दयामयी ने कहा—'सत्य कहती हूँ बेटा। लडकी का काम-धाम देखकर जान पडता है कि मालिक जो भार मेरे कधो पर डाल गये हैं, उसके लिए अब चिन्ता नही। वहू को वह साथी मिल जाने पर सारा भार वह सरलता से सँभाल लेगी। कही कोई भूल न होगी। इस वर्ष तो अब हुआ नही, किन्तु जीवित रही तो अगली वार निश्चिन्त होकर कैलासपति का दर्शन करने मैं अवश्य जाऊँगी।'

विप्रदास चुप रहा, दयामयी की वाते शायद असत्य नही हैं, हो सकता है मैत्रेयी इसी प्रकार प्रशसा के योग्य हो, किन्तु यशोगान की भी तो सीमा है। उनका लक्ष्य कुछ भी हो, उपलक्ष्य भी गुप्त नही रहा। एक क्षुद्रता से उसकी सुपरिचित मर्यादा पर मानो कडी चोट की। अचानक बेटे के मुँह की ओर देखकर दयामयी ने अपनी इस भूल को जान लिया, किन्तु उसी दम प्रतिकार कैसे करे यह भी उसकी समझ मे न आया। द्विजदास दूसरे स्थान पर काम मे फँसा हुआ था सूचना पाकर आ गया।

विप्रदास ने कहा, 'कैसी भयानक घटना की है द्विजू, कैसे सँभालेगा?'

द्विजदास ने कहा—'वोझ तो आपने स्वयं नही लिया है भैया, मुझ पर दिया है। किस वात का भय है

आपको?'

वन्दना ने उत्तर दिया—'उन्हे चिन्ता हो रही हे कि खर्च के मारे रुपये यदि प्रजा की जेब से वसूल न किये गये तो खजाने मे हाथ डालना पडेगा। इससे भय न होगा द्विजू बावू।'

सभी हँस पडे और इस हास्य के अन्दर से माँ के मन का भार मानो कम हो गया, हँसकर बनावटी क्रोध से बोली—'उसे तग करने के लिए तुम भी क्या अपनी दीदी के समान हुई वन्दना। वह मेरा वडा धार्मिक वेटा है। सभी मिलकर उसे झूठा ताना दे, यह मुझे सहन न होगा।'

वन्दना ने कहा—'ताना झूठा होने पर नही लगता है माँ, इससे नाराज भी न होना चाहिए।'

'माँ ने कहा, 'नाराज तो वह नही होता, बल्कि वह सुनकर हँसता है।'

वन्दना ने कहा, 'इसका भी कारण हे माँ। मुखोपाध्याय जी को मालूम है कि पेट भरने पर पीठ पर चोट सहनी पडती है। क्यो, क्योकि ठीक कहती हूँ न मुखोपाध्याय जी?'

हँसकर विप्रदास बोला—'ठीक नही तो और क्या? मूर्ख की वात पर क्रोध करना मना है, शास्त्र मे उसके लिए दूसरी व्यवस्था हे।'

वन्दना ने कहा—'लेकिन मझली दीदी मुझसे मूर्ख हैं मुखोपाध्याय जी, शायद आपके शास्त्र की इस व्यवस्था के कारण ही सभी आपकी इतनी श्रद्धा करते हैं।' यह कह हँसकर उसने मुँह घुमा लिया। द्विजदास हँसी रोकने के लिए दूसरी ओर देखता रहा और दयामयी स्वय भी हँस पडी। बोली, 'वन्दना वडी नटखट लडकी है, उससे वातचीत मे जीत नही पाता।'

कुछ रुककर गभीर होकर वोली—'वेटी, मालिक के समय मे प्रजा पर बोझ विल्कुल न पडता था यह नही कहती, लेकिन तुम्हे तो वताया है कि विपिन मेरा वडा धार्मिक लडका हे, जो कुछ अन्याय है, जो यथार्थ मे उसका प्राप्य नही हैं, उसे वह किसी भी दशा मे ले नही सकता, किन्तु मुझे द्विजू से भय है वह ऐसा कर सकता है।'

विप्रदास वोला—'लेकिन तुम्हारा यह कहना अनुचित है माँ। द्विजू प्रजा को सतायेगा! प्रजा का पक्ष लेकर उसने एक वार हमारे विरुद्ध उन्हे भूमि-कर देने से मना कर दिया था, वह बात क्या तुम भूल गयी?'

माँ बोली—'भूली नही हूँ, इसीलिए तो कह रही हूँ जो न्याय देन चुकाने के लिए मना करता है, अन्याय वसूली वही कर सकता है विपिन, दूसरा नही। दया-माया उसे है, उसे थोडी अधिक भी मानती हूँ, फिर भी एक दिन देखेगा कि उसी के हाथो से प्रजा को बहुत अधिक दु ख मिलेगा।'

'नही, नही मिलेगा माँ, तुम देखना।'

दयामयी बोली—'भरोसा केवल इस बात का है कि तू है। वर्ना वह स्वय भी एक दिन डूबेगा, दूसरों को भी डुवा वैठेगा।'

इतनी देर तक द्विजदास मौन था। अव बोला—'तुम्हारी अन्तिम वात ठीक नही हुई माँ। स्वय डूबेगा शायद एक दिन सच हो, पर दूसरों को नही डुवाऊँगा, यह तुम पक्की जान लेना।'

माँ ने कहा—'इसमे भी प्रसन्नता की वात नही है कि द्विजू, असल मे तुझे चलाने के लिए एक आदमी का रहना आवश्यक है।'

द्विजदास ने कहा—'यही बात स्पष्ट कहो तो सवकी चिता दूर हो। मुझे चलाने के लिए किसी एक की आवश्यकता है। किन्तु इसका प्रवन्ध तुमने लगभग कर ही लिया है माँ।'

माँ ने कहा—'यदि सचमुच ही कर लिया है, तो इसे अपना सौभाग्य समझना।'

तर्क का असली अर्थ साफ-साफ सभी ने समझ लिया।

माँ कहती गयी—'इतनी बडी घटना कर डाली, किसी की वात नही सुनी।' बोली—'दादा की आज्ञा है। किन्तु दादा ने क्या अश्वमेध करने के लिए कहा था? अव कौन सँभालेगा बता न? मैत्रेयी आ गयी थी यही अच्छा हुआ?'

द्विजदास ने कहा—'काम पहले हो जाय माँ, तब जिसे मन हो, सनद देना, मैं भी उज्र न करूँगा। किन्तु जल्दी की क्या वात है?'

वन्दना ने पूछा—'तव सनद पर हस्ताक्षर कौन करेगा द्विजू बाबू, तीसरा तो नही?'

द्विजदास ने कहा—'नही, तीसरे पक्ष का क्या साहस। आज भी महापराक्रात पहले और दूसरे पक्ष जो

उसी प्रकार मौजूद हैं।' कहकर दोनो हँस पडे।

विप्रदास और माँ ने एक दूसरे का मुख देखा लेकिन मतलब समझ मे न आया।

अन्नदा ने आकर कहा—'वन्दना दीदी, बडे बाबू की दवाओ को कल सँभालकर उसे कागज के डिब्बे में रखा था, वह तो दिखाई नही दे रहा है। खो तो नही गया?'

'नही, खोया नही अनु दीदी, कलकत्ते के मकान मे ही छूट गया।'

दयामयी ने डरकर कहा—'कौन तदबीर की जाय वन्दना, इतनी बडी भूल हो गयी?'

वन्दना ने कहा—'भूल नही हुई है माँ, आते समय उन्हे जान-बूझकर ही छोड आयी हूँ।'

'जान-बूझकर छोड आयी! क्यों?'

'सोचकर कि दवा बहुत खायी है, अब रहने दे। तब माँ पास नही थी, इसलिए दवा की आवश्यकता पडी थी, अब बिना दवा के ही अच्छे हो उठने मे जरा भी देर न लगेगी।'

दयामयी को बाते बहुत भली लगीं। वह बोली, 'अच्छा नही किया बेटी, देहात है, डॉक्टर-वैद्य नही मिलते हैं आवश्यकता पडने पर

अन्नदा ने कहा, आवश्यकता अब नही होगी माँ। होने पर वह हर्गिज नहीं छोड आती। डॉक्टर-वैद्य से भी अधिक वन्दना दीदी जानती है।'

दयामयी प्रशंसा-भरी दृष्टि से मौन हो देखती रही। वन्दना बोली—'बढा-चढाकर कहना ही अनु दीदी का स्वभाव है माँ, वर्ना सचमुच मैं कुछ नही जानती। जो कुछ सीखा है, वह मुखोपाध्याय जी की सेवा करके ही सीखा है।'

अन्नदा बोली—'वह कैसी सेवा है माँ, इसे मैं ही जानती हूँ। अचानक एक दिन कैसे घोर सकट मे पड गयी। घर में कोई था नही, बासू की बीमारी का तार पाकर द्विजू यहाँ चला आया, दत्त जी ढाका गये थे, विपिन को ज्वर हो आया। पहले दो दिन किसी प्रकार बीते, किन्तु उसके बाद वाले दिन ज्वर अधिक बढ गया। डॉक्टर को बुलवा भेजा, उसने दवा दी, लेकिन चौगुना भय दिखाया। मूरख औरत हूँ, क्या करूँ, तुम्हे भी सूचना नही दे सकती थी, विपिन ने मना किया—बेचैन हो दौडकर वन्दना के पास गयी, उसकी मौसी के घर पर रोककर बोली—'दीदी क्रोध मत किये रहो। आओ चलो। मुखोपाध्याय जी बीमार हैं।' वन्दना दीदी जैसी थी, उसी तरह मेरी गाडी मे आ बैठी, मौसी को कह आने का समय भी उन्हे नही मिला। घर आकर विपिन का भार लिया। दिन-रात एक घटा भी उन्हे कई दिन तक दम लेने का अवकाश न मिला। केवल दवा पिलाना ही तो नही था, सबेरे के प्रबन्ध से लेकर रात को मच्छरदानी गिराकर सुलाने तक सब-कुछ करती थी। अब वन्दना दीदी यदि दवा नही देना चाहती हैं, तो माँ देने की आवश्यकता नही, वैसे ही विपिन अच्छा हो जायेगा।'

उसी दम हुँकारी भरकर विप्रदास ने गंभीर होकर कहा—'सचमुच ही अच्छा हो जाऊँगा माँ, तुम लोग अब उसे बाधा मत दो, उन्हे सुबुद्धि मिले, मुझे दवा पिलाना बन्द करे। मैं हृदय से आशीर्वाद दूँगा कि वन्दना राजरानी हो।'

दयामयी चुपचाप देखती रही। उसके नेत्रो मे मानो स्नेह और ममता छलकने लगी।

महरी ने आकर कहा—'माँ, बहू जी पूछ रही हैं कि कलकत्ते से अभी जो चीजे आयी हैं, वे कहाँ रखी जायेंगी।'

दयामयी के उत्तर देने से पहले ही वन्दना बोली—'माँ, मैं आपकी म्लेच्छ बेटी हूँ तो क्या इतने बड़े काम मे मुझे किसी चीज का भार नही मिलेगा, केवल चुपचाप बैठी रहूँगी? ऐसी कितनी चीजे हैं जो मेरे छूने से भी छू नही जायेगी?'

दयामयी ने उसकाहाथ पकडकर अपनी छाती से लगा लिया। आँचल से चाभियो का गुच्छा खोलकर उसके हाथ मे देकर बोली—'चुपचाप तुम्हे बैठने ही क्यों दूँगी? यह लो, तुम्हे अपने भण्डार की कुंजी दे रही हूँ जिसे बहू को छोड़ किसी दूसरे को नही दे सकती। आज इसका भार तुमपर रहा।'

'माँ, इस भण्डार मे क्या है?'

'चाभियो के इस गुच्छे से अत्यन्त परिचित हैं।' कनखियों से देखकर द्विजदास बोला—'जो कुछ है वह छुआछूत से परे है। है सोना-चाँदी, रुपया, पैसा, चेली-गरद-जोडा कपड़े आदि। जिसे तुम्हारे छू लेने पर भी घोर धार्मिक आदमी को भी सिर उठा लेने मे उज्र न होगी।'

वन्दना ने पूछा—'माँ, मुझे क्या करना होगा?'

दयामयी ने कहा—'अध्यापको की विदाई, अतिथि-अभ्यागतो की सम्मान-रक्षा, आत्मीय स्वजनो के कलेवे का प्रबन्ध और उसके साथ इस लडके पर भी निगरानी।' यह कहकर द्विजदास को दिखलाकर बोली—'मैं हिसाब नही जानती, इसीलिए उसने भुलावा देकर न जाने कितने रुपये व्यर्थ खर्च कर दिये हैं, इसका लेखा नही, यह तुम्हे बन्द करना पडेगा।'

द्विजदास ने कहा—'ऐसी बाते दादा के सामने मत कहा करो माँ। वे सोचेगे बात सच होगी। खर्च के खाते मे ठीक प्रकार से खर्च का लेखा लिखा जा रहा है, मिलान कर लेने से मालूम हो जायेगा।'

दयामयी ने कहा—'किससे मिलाऊँगी? खर्च का लेखा लिखा जा रहा है मानती हूँ लेकिन अपव्यय का लेखा कौन लिख रहा है बता न? यही बात मैं वन्दना को बता रही थी।'

वन्दना बोली—'जानकर ही क्या होगा माँ? रुपये उनके हैं, व्यर्थ खर्च करे तो मैं कैसे रोकूँगी?'

दयामयी ने कहा—'यह मैं नही जानती। तुमने भार लेना चाहा था, मैंने भार देकर छुट्टी पायी। किन्तु एक बात कहूँ वन्दना, तुम्हे भी एक दिन गृहस्थी चलानी होगी, तब व्यर्थ को रोकने का उत्तरदायित्व अगर आ पडा तो 'जानती नही' कहने से छुट्टी न मिलेगी।'

द्विजदास की ओर देखकर वन्दना बोली, 'माँ की आज्ञा सुन ली न?'

द्विजदास बोला—'अवश्य सुनी, लेकिन दादा ने खर्च करने का भार मुझे दिया है, माँ ने तुमपर खर्च न करने का भार दिया। इसलिए खण्ड युद्ध होगा ही तब दोष देने से काम नही बनेगा।'

हँसकर वन्दना बोली—'दोष देने की आवश्यकता न पडेगी द्विजू बाबू, हममे झगडा न होगा। आपके रुपयो को लेकर आपसे ही युद्ध करने की मूर्खता मुझमे नही हे। यह शिक्षा मुझे बगाल मे मिली है। झगडे के पहले माँ का दिया हुआ भार माँ के हाथो मे सौंपकर पृथक् हो जाऊँगी।'

पूरी तौर पर न समझने पर भी दयामयी इतना समझ गयी कि यह गुमान स्वाभाविक है। उदास होकर बोली—'भार मैं वापस लूँगी बेटी, तुम्हे इसे न ढोना पडेगा। लेकिन अब वहाँ नही, अन्दर चलो, तुम्हारा काम तुम्हे बता दूँ इतना कहकर उसे खीच ले गयी।

उस दिन वन्दना इस घर मे केवल कुछ ही घण्टे रही, कहाँ क्या है देखने का अवसर न मिला। आज देखा महलो पर महलो का जैसे ठिकाना नही है। आश्रित नातेदारो की गिनती कम नही है, बहू, महरी, दासी आदि को लेकर एक-एक परिवार है। उधर कचहरी और उसकी अनुसांगिक सारी व्यवस्था है। किन्तु इस हिस्से मे है ठाकुरबाडी, रसोई, दयामयी की शानदार गोशाला और ऊँची दीवार से गिरा बगीचा और पोखरा। पहले तल्ले के पूरब वाले कमरे दयामयी के हैं, उन्ही मे से एक के सामने वन्दना को लाकर वह बोली—'बेटी, यह कमरा तुम्हारा है, इसी का सारा भार तुमपर रहा।'

उधर वाले बरामदे मे बैठी सती और मैत्रेयी कुछ वस्तुओ को बडे ध्यान से देख रही थी। दयामयी की आवाज सुनकर सिर उठाकर देखा, और वन्दना को देखकर दोनो काम छोडकर पास आ खडी हुई। वह सचमुच ही आवेगी इसकी आशा किसी ने की न थी। दीदी के चरणो की धूलि ली और मैत्रेयी को नमस्कार किया। माँ बोली—'मेरी यह म्लेच्छ बिटिया किसी एक काम का भार चाहती है वहू, चुपचाप बैठी रहने के लिए यह सहमत नही है। तुम्हे कई प्रकार का काम दिया है, उसे भण्डार की चाभी दो।'

मैत्रेयी ने पूछा—'माँ, इस भण्डार मे क्या है?'

'ऐसी चीजे हैं जो म्लेच्छ बिटिया के छूने से छूत नही लगेगी।' कह कर दयामयी कौतुक के साथ हँसकर वन्दना से द्वार खुलवाकर भीतर आ खडी हुई। फर्श पर चाँदी के बर्तनो की थाक सजायी हुई है, ब्राह्मण-पंडितो को मर्यादा प्रदान करना होगा। कलकत्ते मे भुनाकर रुपये, चवन्नी आदि मँगायी गयी हैं, थैलियो का ढेर एक जगह लगा हुआ है, गरद आदि कीमती कपडे अभी बोरे मे बन्द पडे हैं, खोलने का अवकाश नही मिला है, इसके अलावा दयामयी की तिजोरी और बक्स इसी घर मे है। इशारे से दिखा, हँसकर बोला—'वन्दना उसी के अन्दर मेरा सब-कुछ है, उसी पर द्विजू को सबसे अधिक लोभ है। बेटी, तुम्हे सबसे अधिक पहरा वही देना होगा जिसमे तुम्हे भी वह मेरी तरह चकमा न दे सके।'

वन्दना के उदास मुख की ओर देखकर सती बहिन की ओर से बोली, 'माँ, क्या इतने बडे काम का भार उसे दिया जा सकता है? मामला बहुत रुपये-पैसे का है।'

उसकी बात समाप्त होने के पहले ही दयामयी बोली—'मामला बहुत रुपये-पैसे का है, इसीलिए,

उसके हाथो मे चाभी दी है वहू, वर्ना द्विजू दिवालिया कर देगा।'

'किन्तु वह तो बाहर से आयी है माँ?'

सती की यह बात समाप्त नही हुई, दयामयी ने हँसकर कहा—'बाहर से एक तुम भी आयी थी और उससे भी बहुत पहले इसी प्रकार बाहर से ही मुझे भी आना पडा था। यह कोई दु ख की बात नही है वहू। लेकिन मुझे अवकाश नही है, जाती हूँ।' इतना कहकर वह बाहर आकर नीचे उतर गयी।

वन्दना बोली—'तुम्हारे घर आकर यह किस जाल मे फँस गयी मझली दीदी। मुझे तो साँस लेने का भी अवकाश नहीं मिलेगा।'

'जान तो यही पडता है।' कहकर सती ने थोड़ा हँस दिया।

तेईस

दुनिया मे मुसीबत कहाँ रहती है और किस रूप मे और कब सामने आ जाती, सोचकर हैरान होना पडता है। काम के बीच मे कल्याणी आकर रोती हुई बोली—'माँ, वह कह रहे हैं कि उनके साथ मुझे अभी घर जाना होगा। गाडी का समय नही है, स्टेशन पर बैठे रहेगे, वह भी ठीक है, पर इस घर मे एक पल भी न ठहरेगे।'

तालाब की प्रतिष्ठा की शास्त्रीय क्रिया अभी-अभी समाप्त हुई है, अभी दयामयी ने मण्डप से आकर घर में पैर ही रखा है। कार्य व्यस्तता के बीच ठुमककर खडी हो गयी, बेटी की बात उनकी समझ ही में न आयी, अवाक् होकर बोली—'जाने के लिए तुझे किसने कहा है, शशधर ने? क्यो?'

'बडे दादा ने उनका घोर अपमान किया—घर मे निकाल दिया है।' कहकर कल्याणी फूट-फूटकर रोने लगी।

चारो ओर आदमी हैं कही भोजन का प्रबन्ध, कही गाने की महफिल, कही भिक्षुओ के झगडे, कही ब्राह्मण-पण्डितो का शास्त्रार्थ, असंख्य आदमियो का कोलाहल—उसी के बीच एकाएक यह मामला। सती और मैत्रेयी आयी, वन्दना भण्डार मे चाभी लगाकर पास आ खडी हुई, आत्मीय सबधी गणो मे बहुतेरो को कौतूहल हुआ, शशधर आ प्रणाम करके बोला—'माँ, मैं जाता हूँ। आपने आने की आज्ञा दी थी हम आये, लेकिन रह नही सकते।'

'क्यो बेटा?'

'अपने घर से विप्रदास बाबू ने मुझे निकाल दिया है।'

'किसलिए?'

'शायद कारण यह है कि वह बडे आदमी हैं। वह गर्व से आँख-कान से देख-सुन नही सकते हैं। सोचा है अपने घर मे बुलाकर अपमान करना आसान है। किन्तु आप अपने लडके को इतना समझा दे कि मेरे बाप भी जमीदारी छोड गये हैं, वह भी बिल्कुल छोटी नही है। मुझे भी घर-घर भीख नही माँगनी पडती।'

व्याकुल होकर दयामयी बोली—'विपिन को बुलवा रही हूँ बेटा, पूछूँ, क्या हुआ है? मेरा काम अभी समाप्त नही हुआ है, ब्राह्मण-भोज शेष है वैष्णव भिक्षुओ की विदाई नही हुई है, उसके पहले ही यदि तुम लोग नाराज होकर चले गये शशधर तो जिस तालाब की अभी प्रतिष्ठा की है, उसी मे डूबकर मर जाऊँगी, यह तुम सही जान लेना।' कहते हुए उनकी दोनो आँखे भर आयी।

शशधर पर सास के आँसुओ का कोई विशेष प्रभाव नही पडा। भद्र सतान होने पर भी शशधर की आकृति कोई भी भद्रोचित नही है। सटकर खडा होने मे संकोच होता है। उसका विशाल शरीर और विशालतर मुखमडल क्रुद्ध बिल्ली के समान फूलने लगा। बोला—'रह सकता हूँ यदि विप्रदास बाबू यहाँ आकर सबके सामने हाथ जोडकर मुझसे क्षमा माँगे वर्ना नही।'

प्रस्ताव इतना चिन्तनीय था जिसे सुनकर सभी मानो आश्चर्य से चुप हो गये। विप्रदास का क्षमा माँगना हाथ जोडकर और सबके सामने। कई क्षण सभी चुप रहे, अचानक पीले मुख अत्यन्त अनुनय के स्वर मे सती बोल उठी—'अभी नही ननदोई जी, काम-काज हो जाय, रात को माँ निश्चय ही इसका न्याय करेगी। तुम्हारा क्या कभी अपमान किया जा सकता है? गलती की होगी तो वह अवश्य क्षमा माँगेगे।'

वन्दना की आँखो के कोने कुछ चमक उठे, किन्तु शात स्वर मे बोली, 'मझली दीदी, वह गलती तो कभी करते नही।'

डॉटकर सती बोली—'तू चुप तो रह वन्दना। सभी से गलती होती है।'

वन्दना बोली—'नही, उनसे नही होती।'

सुनकर मैत्रेयी मानो आगबबूला हो गयी, कडे स्वर में बोली—'आपको क्या पता? वहाँ तो आप थी नही। तब क्या वह अपनी ओर से बनाकर कह रहे हैं?'

पल-भर उसकी ओर देखकर वन्दना बोली—'बनाकर बोलने की बात मैं नही कहती। मैं कहती हूँ कि मुखोपाध्याय जी से गलती नही होती।'

मैत्रेयी उत्तर मे उसी प्रकार वक्र विद्रूप करके बोली—'गलती सभी से होती है कोई भगवान् नही है। उन्होने पिताजी का भी असम्मान करना न छोडा।'

वन्दना ने कहा—'तो शशधर बाबू की भाँति उन्हे भी चला जाना चाहिए था, ठहरना उचित नही था।'

कडे स्वर मे मैत्रेयी ने उत्तर दिया—'यह विवरण आपको नही देगे, न्याय होगा द्विजू बाबू मे, जो बुलाकर लाये हैं।'

सती ने क्रोध के साथ वन्दना का तिरस्कार करते हुए कहा—'तेरे पैरो पडती हूँ, तू यहाँ से जा वन्दना, अपना काम कर।'

दयामयी को लक्ष्य कर शशधर बोला—'मैं न्याय-अन्याय के लिए कचहरी करने नही आया हूँ माँ, यह पूछने आया हूँ कि आपका बेटा हाथ जोडकर क्षमा माँगेगा या नही। वर्ना मैं चला, एक मिनट भी न रुकूँगा? आपकी लडकी मेरे साथ जा सकती है, और नही भी, किन्तु इसके बाद ससुराल का नाम मुँह से न ले। आज यही उसका अन्त समझ ले।'

कैसी सत्यानाशी बात है यह। शशधर के लिए कुछ भी असभव नही है—बेटी-दामाद को घर बुलाकर यह कैसी आफत। कल्याणी सामने खडी थी, रोने लगी, राय देने के लिए आदमी नही है, सोचने के लिए समय नही है त्रास, लज्जा और घोर अपमान से दयामयी की बुद्धि मन्द हो गयी। क्या करना चाहिए, यह समझ मे नही आने पर वह बोली—'तुम तनिक ठहरो बेटा, मैं विपिन को बुलवा रही हूँ। मैं जानती हूँ कही तुमने बडी गलती की है, यदि भरे गाँव मे यह कलक प्रकट हो गया तो मुझे आत्महत्या करनी पडेगी।'

शशधर ने कहा—'अच्छी बात है, बुलवाइए, मैं खडा हूँ। विप्रदास बाबू असत्य ही बोले कि यह काम उन्होने किया नही है।'

'वह असत्य नही बोलता है शशधर।' कहकर दयामयी ने विप्रदास को बुलवा भेजा। पाँच मिनट के बाद विप्रदास आ गया। उसी प्रकार शात, गभीर और आत्म समाहित। केवल नेत्रो की चितवन मे एक उदासीन क्लान्ति की छाया है—उसके हृदय मे कौन-सी बात छिपी है, यह बतलाना कठिन है।

भावावेश से दयामयी बोल उठी—शशधर क्या कहता है विपिन? कहता है कि तूने उसे घर से निकाल दिया है। क्या यह कभी सत्य हो सकता है?'

विप्रदास ने कहा—'सत्य नही तो क्या झूठ है माँ?'

'क्या सचमुच मेरे दामाद को घर से निकाल दिया? मेरे इस काम-काज के घर से।'

'हाँ, सचमुच ही निकाल दिया है और साथ ही यह भी कह दिया है कि कभी दुबारा इस घर मे पैर न धरे।'

दयामयी सुनकर वज्राहत की भाँति हो गयी। कुछ देर बाद व्याकुलता दूर होने पर पूछा-'क्यो'?

'तभी अच्छा होगा कि उसे आप न सुने माँ।'

सती चुप न रह सकी, व्याकुल होकर बोली-'हममे से कोई नहीं सुनना चाहता, लेकिन जीजाजी कल्याणी को लेकर अभी चले जाना चाहते हैं, इस घर भरे लोगो के बीच, सोचकर देखो यह कैसी बदनामी की बात होगी। उनसे कहो तुमसे अचानक अन्याय हो गया, उन्हे रहने के लिए कह दो।' पत्नी के मुँह की ओर पल-भर देखकर विप्रदास बोला- 'अचानक अन्याय मुझसे होता ही नही है।'

'अवश्य होता है, कुछ-कुछ अन्याय सभी से होता है। उन्हे ठहरने के लिए कह दो।' सिर हिलाकर विप्रदास ने कहा-'नहीं, अन्याय मुझसे नही हुआ।'

पति-पत्नी के कथोपकथन के बीच दयामयी चुप थीं, अचानक किसी ने मानो उन्हे झकझोर कर सचेत कर दिया, कड़े स्वर मे बोली- न्याय-अन्याय का झगडा रहने दो। मेरे बेटी-दामाद सदैव के लिए गैर हो जायेगे, यह मुझसे सहन न होगा। शशधर से क्षमा माँग लो विपिन।' 'माँ', यह नही हो सकता, असम्भव है।'

'संभव-असंभव मै नही जानती। तुम्हे उनसे क्षमा माँगनी ही होगी।'

विप्रदास उत्तर न देकर चुप रहा। दयामयी मन-ही-मन समझ गयी कि इस असंभव को सभव नही किया जा सकेगा, क्रोध की सीमा न रही, बोली-'विपिन, घर तुम्हारे अकेले का नही है। किसी को भगाने का अधिकार मालिक तुम्हे दे नही गये है। इस घर मे वे अवश्य रहेगे।'

विप्रदास ने कहा-'देखो माँ, मुझे न बुलवाकर यदि तुम यह आज्ञा देती तो मै चुप रहता, किन्तु अब रह नही सकता। यदि यहाँ शशधर रहता है तो मुझे यह घर छोडकर चला ही जाना होगा। फिर लौटा न सकोगी। बतलाओ कौन-सी बात चाहती हो ?

जीवन मे ऐसे भयंकर प्रश्न का उत्तर देने के लिए कभी किसी ने उन्हे नही कहा था, इतनी बडी दुर्भेद्य समस्या का सामना करने के लिए भी कभी किसी ने नही कहा था। एक ओर बेटी-दामाद है, दूसरी ओर उनका विपिन खडा है। जिस बच्चे को छाती से लगाकर बडा किया है, जो सभी आत्मीयो से बडा आत्मीय है, दुःख मे सान्त्वना, विपत्ति मे सहारा है, जो बेटा उन्हेंप्राणो से अधिक प्यारा है। यह अमर्यादा उन्हे मौत दे सकती है, लेकिन वचन से नही फिरा सकती। समझ गयी कि सर्वनाश का गहरा गड्ढा उनके पाँवों के नीचे है, इस भूल का उपाय नही हो सकता, वापस आने के लिए मार्ग नही है। इसका फल विधाता के लेख के समान अचूक, निर्मम और अनन्यगति है। फिर भी अपने को बस मे रख सकी, अदम्य क्रोध और अभिमान के झोके ने उन्हे सामने की ओर धकेल दिया, कटु स्वर मे बोली-'यह तुम्हारी गलत हठ है विपिन। तुम्हारे लिए बेटी-दामाद को जन्म-भर के लिए बेगाना कर दूँ, यह हो नही सकता बेटा। तुम्हारा जो मन हो करो। शशधर, तुम लोग मेरे साथ आओ- उसकी बातो पर ध्यान देने की आवश्यकता नही। यह घर केवल उसी का तो नही है।' यह कहकर कल्याणी और शशधर को साथ लेकर वह चल दी। उनके पीछे-पीछे गयी मैत्रेयी, मानो वह उन्हीं की अपनी है।

ऐसा जान पडा मानो सती अब टूट जायगी। लेकिन उसकी अडिग दृढता को देखकर वन्दना और विप्रदास को आश्चर्य हुआ। उसकी आखों मे आँसू नही है लेकिन चेहरा बहुत पीला है। वह बोली-'बहनोई जी ने क्या किया है मै नहीं जानती, पर व्यर्थ ही तुमने भी इतनी बडी घटना नहीं की है यह निश्चित रूप से जानती हूँ। मन मे यह मत समझना कि मै तुम्हे कभी दोष दूँगी।'

विप्रदास चुप रहा। सती ने पूछा,'क्या आज ही चले जाओगे तुम ?

'नही, कल जाऊँगा।'

'अब इस घर में नही आओगे ?

'इच्छा तो यही है।'

'मै ? बासु ?

'तुम्हे भी जाना पडेगा। यदि कल न हो सके तो और किसी दिन सही।'

'नही, किसी और दिन नहीं, हम भी कल चलेगे।' कहकर सती ने वन्दना से पूछा-'तू क्या करेगी वन्दना, कल ही चलेगी ?

वन्दना ने कहा-'नही। मैने तो झगडा नही किया है, मझली दीदी, जिससे दल मे शामिल

होकर कल ही जाना पडेगा।'

सती ने कहा—'झगडा तो मैंने भी नही किया है वन्दना, और न उन्होने ही किया। किन्तु जहाँ उनके लिए स्थान नही, वहाँ मेरे लिए भी नही। एक दिन के लिए भी नही। तू विवाहित होती तो यह बात समझ सकती थी।'

वन्दना ने कहा—'विवाहित न होने पर भी समझती हूँ मझली दीदी, पति के लिए स्थान न होने पर पत्नी के लिए भी नही होता। किन्तु भूल तो होती ही है, बिना समझे ही उसी को स्वीकार कर लेना स्त्री का कर्तव्य है, तुम्हारी बात न मानूगी।'

सास के प्रति सती के अभिमान की सीमा नही थी, बोली—'तुम्हारे पति होते तो मानती।' कहकर आँसू रोकने के लिए सती शीघ्रता से चल दी।

वन्दना ने कहा—'यह क्या किया मुखोपाध्याय जी?'

'इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नही था वन्दना।'

'लेकिन माँ से विच्छेद, इसकी तो कल्पना भी नही की जा सकती।'

विप्रदास ने कहा—'नहीं की जा सकती—सच है, लेकिन नया प्रश्न आकर जब मार्ग रोककर खडा हो जाता है तब नये समाधान की बात सोचनी ही होती है। बचकर निकल जाने का मार्ग नही रहता। तुम्हारी मझली दीदी मेरे साथ जायेगी ही, रोकना व्यर्थ है। पर तुम? क्या यहाँ दो-चार दिन और रहने का विचार है?'

वन्दना ने कहा—'कितने दिनो तक रहना होगा, मैं जानती नही। किन्तु नये प्रश्न आपके सामने जितने भी आवे, मैं उसी पुराने मार्ग पर ही उनके उत्तर की तलाश करूँगी जिस रास्ते को पहले दिन देखा। मैंने जिसकी तुलनी कही नही देखी, मेरे मन की धारा को सदैव के लिए बदल दिया है।'

विप्रदास ने इसका कोई उत्तर नही दिया, उसके होठो के कोने मे कुछ म्लान हँसी की रेखा दिखाई पडी। वह हँसी वेदना की है, वैसे ही निराशा की भी। बोला—'मैं बाहर जा रहा हूँ वन्दना फिर भेट होगी।'

वन्दना की आँखो मे पानी भर आया। बोली—'भेट हुई तो दूर मे ही आपको प्रणाम करूँगी। आपका कठोर स्वभाव है, मन कडा है न स्नेह है और न क्षमा। यदि तब बोल न सकूँ, सुयोग यदि न मिले अभी मै बोल दूँ मुखोपाध्याय जी। जिन्हे लेकर हम गृहस्थ हैं, हँसते होते हैं, मान-अभिमान करते हैं, उन्ही को लेकर रह सकूँ, इस जीवन मे अपना समझना सीखूँ। मृगतृष्णा के पीछे राह न खो दूँ।' कुछ रुककर बोली—'दूर से जब आपकी याद आयेगी, तब-तब एकाग्र होकर इस मन्त्र का जाप करूँगी, वह निर्मल हैं, वह निष्पाप हैं, वह महान् हैं। उनके मन की पाषाण शिला पर तनिक भी धब्बा नही पडता। ससार मे वह अकेले हैं, किसी के अपने वह नही हैं, ससार मे कोई उनका अपमान नही हो सकता।' यह कहकर दोनो आँखो को आँचल से ढँककर वह कमरे से बाहर निकल गयी।

उस दिन काम-काज बहुत रात को समाप्त हुआ। इस घर की सुश्रृखलाबद्ध धारा मे कही कोई गडबड नही हुई। बाहर से कोई जान भी न सका कि इस श्रृखला की सबसे बडी कडी आज चकनाचूर हो गयी। प्रात होने मे अधिक देर नही है, काम से थका-माँदा विशाल भवन बिल्कुल सुनसान है, जिसे जहाँ स्थान मिला, वही सोया है, भण्डार के भारी उत्तरदायित्व की समाप्ति कर वन्दना थके पैरो अपने कमरे मे जा रही थी, देखा उधर से बरामदे की बगल मे द्विजदास के कमरे मे बत्ती जल रही है। शका हुई कि ऐसे समय मे उचित है या नही, किसी की निगाह पडी तो सुविचार वह नही करेगा, बदनामी ही मुँह से फैलेगी, किन्तु रुक नही सकी, जिस उद्वेग ने उसे सारे दिन चचल और बेचैन कर रखा है, वह उसे खीच ले गया। बन्द दरवाजे के सामने खडी होकर पुकारा—'द्विजू बाबू, अब तक जाग रहे है?'

'हूँ! लेकिन इस समय आप कैसे?' भीतर से आवाज आयी।

'अन्दर आ सकती हूँ?'

'प्रसन्नता से।'

द्वार खोलकर अन्दर घुसकर देखा कि कागजात का ढेर लेकर द्विजदास बिस्तर पर बैठा है। पूछा—'क्या आज का हिसाब है? किन्तु हिसाब भाग तो जायेगा नही द्विजू बाबू, इतनी रात तक जागने से तबीयत खराब होगी।'

द्विजदास ने कहा—'होती तो छुट्टी मिलती, इन्हे आँखो से देखना न पडता।'
'क्या व्यय अधिक हो गया है? दादा के सामने भारी विवरण देना पडेगा?'
कागजात को एक ओर हटाकर द्विजदास सीधे होकर बैठा। बोला—'चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दु खानि च सुखानि च। श्री गुरु की कृपा से मेरे पहले के दिन अब नही रहे वन्दना देवी, कि दादा को विवरण दूँ। अब उल्टे मैं ही विवरण लूँगा। कहूँगा—लाओ जल्दी से हिसाब, जल्दी से रुपया लाओ, कहाँ क्या किया बताओ?'
वन्दना ने आश्चर्य से पूछा—'क्या मामला है?'
दोनो हाथो की मुट्ठी बाँध सिर पर उठाकर द्विजदास बोला—'मामला बड़ा भयकर है। माँ दयामयी मुझपर दया करे, बहनोई शशधर मेरे सहायक हो, सावधान विप्रदास! अब मैं तुम्हे धन-प्राण से वध करूँगा! हमारे हाथो से अब तुम्हारा छुटकारा नही।'
वन्दना की चिन्ता स्वतन्त्र हो उठी, फिर भी वह बिना हँसे न रह सकी, बोली—'सभी बातो मे हँसी-तमाशा? द्विजू बाबू, एक पल भी आप गम्भीर नही होना जानते?'
द्विजदास ने कहा—'नही जानता? तो लाओ, शशधर को लाओ, नही, उन्हे रहने दो। देखोगी, हँसी-तमाशा पल-भर मे भाग जायेगा सहारा मे, गाम्भीर्य से मुखमडल जगली सूरन जैसा भयानक न हो उठेगा। जाँच कीजिए।'
कुर्सी खीचकर वन्दना बैठ गयी—'तो आपने सब-कुछ सुना है?'
'सब-कुछ नही थोडा-सा। सब-कुछ जानते हैं दादा, पर वह गहन अरण्य है। शशधर जानता है। वह बोलेगा अवश्य, लेकिन कल अपनी ओर से गढकर असत्य बोलेगा।'
व्याकुल स्वर मे वन्दना बोली—'जो कुछ जानते हैं मुझे बतला नही सकते द्विजू बाबू? मैं सचमुच ही बहुत भयभीत हो गयी हूँ।'
द्विजदास ने कहा—'भय भी करना व्यर्थ है। दादा का दृढ निश्चय टलने का नही, उन्हे हमने गँवा दिया।'
दीपालोक मे दिखाई दिया कि अब आँसुओ से उमडी दोनो आँखो छल-छला उठी हैं, गर्दन घुमाकर किसी प्रकार पोछकर फिर सीधा होकर बैठ गया।
रुँधे स्वर मे वन्दना ने कहा—'विच्छेद इतने सहज मे आ जायेगा? क्या रोका नही जा सकेगा?'
सिर हिलाकर द्विजदास ने कहा—'नही, यह चीज जब आती है तब इसी प्रकार अबाध होकर, उसी प्रकार तेज चाल से आती है, मना करने से नही मानती। जिसे रोना होता है वह रोता है, लेकिन अन्त वही हो जाता है।' पल-भर चुप होकर बोला—'आप कारण जानना चाहती थी। अधिक नही जानता, लेकिन जितना जानता हूँ वह केवल आपको ही बतलाऊँगा और यदि सहायता कभी माँगनी पडी तो कही भी रहे, वह केवल आपसे ही माँगूँगा।'
'केवल मुझसे ही क्यो?'
'इसका भी कारण है। अगर हाथ फैलाना ही पडा, महत् के द्वार पर ही फैलाना शास्त्रीय नियम है।'
'लेकिन महत् क्या और कोई है नही?'
'शायद है, लेकिन पता नही मालूम। दादा की बात नही उठाऊँगा, या सदा से भाभी के सामने हाथ फैलाने की आदत थी, पर वह रास्ता भी बन्द हुआ। आप उनकी बहन हैं, इसी से मेरा दावा है।'
'लेकिन माँ?'
द्विजदास ने कहा—'रथ जब तेज चलता है, माँ उसकी असाधारण रथवान हैं पर पहिया जब कीचड मे बैठ जाता है, उनके पास उपाय नही है। उतरकर ढकेल नही सकती। उस बुरे समय मे आपके पास जाऊँगा। भीख नही देगी?'
'भीख का विषय जाने बिना उत्तर कैसे दूँ द्विजू बाबू?'
'उसे स्वय भी नही जानता वन्दना, आसानी से माँगने भी न जाऊँगा। जब कही न मिलेगी तभी जाऊँगा।'
वन्दना बहुत देर के बाद सिर ऊपर उठाकर बोली—'जो जानना चाहा था बतलायेगे नही?'
द्विजदास ने कहा—'सारी बाते नही जानता, जितना जानता हूँ शायद वह भी असत्य नही है। किन्तु

एक बात पर मुझे शक नही हे कि दादा आज कगाल हैं। सब-कुछ चला गया।'

वन्दना ने कहा—'मुखोपाध्याय जी कगाल? कैसे हुआ यह?'

द्विजदास ने कहा—'बडी सुगमता से उसी शशधर की साजिश से। साहा चोधरी कम्पनी जिस दिन अचानक दिवालिया हुई, दादा का सब-कुछ उसी मे डूब गया। पर यह केवल बाहरी घटना है जितना आँखो मे दिखाई पडा। भीतर दूसरा इतिहास छिपा रहा।'

व्याकुल होकर वन्दना ने कहा—'इतिहास रहने दीजिए द्विजू बाबू, केवल घटनाओ की ही बात कीजिए। बतलाइए सब-कुछ डूब जाना सत्य है या नही?'

'हाँ, सत्य है। इसमे कोई गलती नही।'

'लेकिन मझली दीदी? बासु? उनका कुछ भी दोष नही रह गया?'

'नही। रह गयी केवल भाभी के मायके की आमदनी। केवल थोडे से रुपये।'

लेकिन उसे तो मुखोपाध्याय जी लेगे नही द्विजू बाबू!'

'नही, इससे उपवास पर दादा को अधिक विश्वास है। जितने दिन चले।'

दोनो चुप रह गये। कुछ मिनट के बाद वन्दना ने पूछा—'किन्तु आप? क्या हुआ आपका?'

द्विजदास ने कहा—'बिल्कुल निर्भय और निरापद हूँ। भैया स्वय डूबे, पर मुझे उबार रखा। पानी का एक छीटा तक शरीर मे नही लगने दिया। कहेगी वह असम्भव सम्भव कैसे हुआ? हुआ माँ की सुबुद्धि से, दादा की साधुता से और मेरे शुभ ग्रहो के फल से। बात यह हे सुनिए—वह शशधर था दादा का बालमित्र सहपाठी। दोनो मे प्रेम की सीमा नही थी। बडे होकर उसके साथ दादा ने कल्याणी का व्याह कर दिया। यह अगुआई ही दादा के जीवन की अक्षय कीर्ति हे। सुनाई पडा शशधर के बाप की बडी जमीदारी है, विशाल सम्पत्ति और विशाल व्यवसाय है। इतना बडा धनी पावना के इलाके मे दूसरा नही। चार साल बीते अचानक एक दिन शशधर ने कहा कि जमीदारी, ऐश्वर्य व्यवसाय अतल तल मे डूबने मे देर नही, रक्षा करनी होगी। माँ ने कहा—'रक्षा करना ही उचित है, पर मेरा द्विजू नाबालिग है, उसके रुपये मे तो हाथ नही लगाया जा सकता बेटा।' वह बोला—'साल भी पूरा नही होने पावेगा माँ, अदा हो जायेगा।' माँ ने कहा—'आशीर्वाद देती हूँ यही हो लेकिन नाबालिग की सम्पत्ति हे, मालिक की आज्ञा नही है।'

रोकर कल्याणी दादा के पैरो पर जा गिरी। बोली—'दादा व्याह कराया था तुम्ही ने, आज बाल-बच्चे लेकर दर-दर भीख माँगती फिरूँगी, तुम अपनी आँखों से देखोगे? माँ देख सकती हैं, पर तुम?' जहाँ उनका धर्म है वहाँ उनका विवेक और वैराग्य है, वहाँ वह हम सबसे बड़े हैं, कल्याणी ने वही हृदय का स्पर्श किया। दादा अभय वचन देकर बोले, 'तू घर जा बहिन, जो बन पडेगा मैं करूँगा। उस अभय मन्त्र का जाप करती हुई कल्याणी घर लौट गयी। उसके बाद का इतिहास सक्षिप्त है वन्दना। लेकिन देखिए प्रात हो गया।' यह कह खुली खिडकी की ओर उसने निगाह उठायी।

वन्दना ने खडे होकर पूछा—'लेकिन आपके ये कागजात कैसे हैं?'

द्विजदास ने कहा—'मेरे निर्भय रहने के दस्तावेज हैं। आते समय दादा साथ लाये थे। आप भी क्या हमे छोडकर आज ही चली जायेगी?'

'सही-सही नही जानती द्विजू बाबू। समय नही है, मैं चली। फिर भेट होगी।' कहकर वह धीरे-धीरे बाहर निकल गयी।

चौबीस

वन्दना मझली दीदी को जबरदस्ती एक कुर्सी पर बैठाकर उनके पैरो मे महावर लगा रही थी। यह बात उसे सिखलाकर अन्नदा ने स्वय इसका भेद बता दिया है उसकी आँखे लाल हैं। अधिक आँसू बहने से पलके सूज आयी हैं, वन्दना के प्रश्न के उत्तर मे उसने थोडे मे कहा था—'बहू को मैं मुँह नही दिखा सकती।'

'तुम दिखा क्यो न सकोगी अनु दीदी, तुम्हे शर्म किस बात की है?'

'मुझे शर्म इस बात की है कि मैं इसके पहले ही मर क्यो न गयी? केवल द्विजू को ही बडा नही किया था, विपिन को भी किया था। उसकी माँ जब मर गयी, किसके हाथो मे दिया था अपने दो महीने के बच्चे को? मेरे हाथों मे। दयामयी कहाँ थी उस दिन? उनके बेटी-दामाद कहाँ थे?' बोलती हुई वह आँचल से

मुँह ढँककर शीघ्रता से कहीं चली गयी। फर्श पर बैठकर अपनी जाँघ पर वहिन के दोनों पैरो को रख वन्दना का महावर लगाना मानो समाप्त ही न होना चाहता है।

एक गरम आँसू टपककर सती के पैर पर गिरा। झुककर भी वह वन्दना का मुख न देख सकी। लेकिन हाथ वढाकर उसकी आँखे पोछकर वोली—'वन्दना तू क्यो रो रही है, वतला तो?'

वन्दना उसी प्रकार सिर नीचा किये किए रुँधे गले से बोली—'सभी तो रो रहे हैं मझली दीदी। कुछ मैं ही अकेली नही रो रही हूँ।'

सभी रो रहे हैं इसीलिए तुझे भी रोना चाहिए, पढ-लिखकर यही तेरा तर्क है?'

दीदी की वात सुनकर वन्दना ने पल-भर के लिए सिर उठाकर देखा, वोली—'तर्क करके रोना नही होगा तो आदमी रोयेगा भी नही, तुम्हारा तर्क क्या यही है मझली दीदी?'

हाथ से उसका सिर हिलाकर प्रेम से सती ने कहा—'तर्क करने वाले से तर्क मे पार नही पाया जा सकता। यह नही कहा है री, यह मैंने नही कहा है। उन्होने समझा है कि मेरा शायद सव-कुछ चला गया हैं। इसीलिए वे रो रहे है, किन्तु सचमुच मे यह वात नहीं है। मेरे एक ओर पति हैं, दूसरी तरफ है लडका। ससार मे मेरी कोई हानि नही है, मेरे लिए तू दु.ख मत कर, मुझे दु ख नही है।'

वन्दना ने कहा—'दु ख तुम्हारा न रहे मझली दीदी, लेकिन तुम्हारा दु ख ही दुनिया मे सव-कुछ नही है। तुम्हारी कितनी हानि हुई, इसे तुम्ही जानती हो, किन्तु रोते-रोते जिन्होने आँखे फोड डाली, उनकी हानि की पूर्ति कौन करेगा वतलाओ?'

कुछ रुककर वोली—'मुखोपाध्याय जी पुरुष हैं, जो जी मे आये कहे, किन्तु जाते समय आज सूखी आँखो से विदा मत होना दीदी। वह उन्हे वहुत अखरेगा।'

'किन्हे अखरेगा वन्दना?'

'किन्हे? उन्हे तुम जानती नही हो, नौ वर्ष की थी तो इस पराये के घर मे आयी थी,उस घर को वर्ष के वाद वर्षो मे जिन्होने तुम्हारा अपना वना दिया, उन्हे आज एक ही धक्के मे भूल गयी मझली दीदी? तुम्हारी सास, तुम्हारे देवर, तुम्हारे घर के नौकर-चाकर, आश्रित परिजन, ठाकुरवाडी, अतिथिशाला, गुरु-पुरोहित इनकी कमी क्या केवल पति-पुत्र से पूरी हो जायगी? और कोई जीवन मे नही है, केवल ये ही हैं?'

वन्दना फिर कहने लगी—'यह किनके मुँह की वात है जानती हो मझली दीदी, जिनके वीच मे मेरा लालन-पालन हुआ है। तुमने सोचा है पतिभक्ति की यह अन्तिम वात है? स्त्री के सोचने की कोई विशेष वात नही है? यह तुम्हारी गलती है। कलकत्ते मे मेरी मौसी के घर चलो, देखोगी वह वहाँ वात पुरानी हो गयी है, इसमे अधिक वे भी नही सोच सकती हैं, करती भी नही हैं।' कहकर बीच मे वह रुक गयी! सहसा उसे मालूम हुआ कि कोई पीछे खडा है, मुँह फेरकर देखा—द्विजदास हैं। कव धीरे से वह आकर खडा हो गया, दोनो मे कोई जान भी न सका। लज्जित होकर वन्दना कुछ कहना चाहती थी, द्विजदास रोक्कर वोला—'डरो मत, मौसी को भी नही पहचानता, उनके दल के किसी को नही जानता, आपकी वाते उनसे नही कहूँगा। किन्तु आप भूल कर रही हैं। दुनिया मे जन्तु-जानवरो का भी दल है, उनके आचरण को आज्ञावद्ध किया जा सकता है, किन्तु आदमी का दल नही है। उनके विषय मे कोई एक निर्णय नही किया जा सकता है। आज सवेरे से इसी वात को सोच रहा था। मौसी के दल से खीच लाकर अचानक ही दादा के दल मे भर्ती किया जा सकता है और फिर दयामयी के दल से लाकर सरलता से उस मैत्रेयी को आपकी मौसी के दल मे भेजा जा सकता है। शर्त रखकर कह सकता हूँ कि कही रत्ती-भर भी झगडा न होगा। वाह रे मनुष्य का मन! वाह री उसकी प्रकृति।

सती विस्मय करके वोली—'इस वात का मतलव क्या?'

द्विजदास कुछ अधिक अचरज प्रकट करके वोला—'तुम्हे मतलव वतलाना पडेगा? द्विजू के काम, द्विजू की वात को यदि मतलव ही होता तो भाभी, इतने दिनो तक दयामयी और विप्रदास के दरवार मे न जाकर तुम्हारे पास सारी प्रार्थना क्यो पेश करता? मतलव समझने की परवाह तुम्हे नहीं है। इसलिए तो आज जाने के दिन उतना ही रहने दो भाभी, गलती ही सही ये सूक्ष्म विचार रहने दो।' यह कहकर सामने आकर उसके पैरो पर सिर रखकर प्रणाम किया। ऐसा वह करता नही है। पैरो के कच्चे महावर का रग उसके माथे पर लग गया, सती व्यस्त होकर आँचल से पोछने लगी, किन्तु उसने गर्दन हिला, सिर

हटाकर कहा—'अपने आप ही यह दाग मिट जायगा भाभी, एक दिन रहता है तो रहने दो। कुछ भी बात नही है।' द्विजू ने हँसकर कहा, किन्तु वन्दना के नेत्रों में आंसू भर आये। छिपाने की चेष्टा में वह सिर ऊपर उठा न सकी।'

द्विजदास ने कहा—'मैं याद दिलाने आया था। समय हो रहा है, दादा व्यस्त हो गये हैं, चीजें भेज दी गयी हैं। वासु को कपडे पहनाकर गाडी मे बैठा दिया है, मगरा-कर्त्ता का आयोजन किसने करा दिया, मालूम नही किन्तु वह भी पास ही मिल गया। भयभीत था कि अनु दीदी डूबकर मर गयी होगी, सन्देह होता है कही जीवित है। वर्ना यह आया कहाँ से? पर जब उसका पता चलेगा तब उसकी आवश्यकता नही होगी। उधर दयामयी के कमरे की सिटकिनी बन्द है मुसीबत से छुटकारा पाने का जो मार्ग उन्होंने अपनाया है, उनमे करने के लिए कुछ नही है। किन्तु श्रीमती मैत्रेयी को कह सकने हो, बात यथासमय माँ के कानो तक पहुँच जायेगी। पर मैं कहता हूँ इसकी आवश्यकता भी कुछ नही है। अब तुम तनिक तत्पर होकर चलो, गाडी में बैठो तो भाभी, तुम्हे गाडी मे चढा आऊं तो मुझे भी अवकाश मिले अपना काम करूँ।'

सती फीकी हँसी हँसकर बोली—'मुझे विदा करने के लिए देवर को बहुत जल्दी है।'

'काम जो पडा हुआ है।'

'सुनूँ तो कौन-सा काम है?'

'इससे पहले तो कभी सुनना नही चाहा है भाभी। जब जो मांगा बिना पूछे ही सदा देती आयी हो। यह तुम्हारे सुनने लायक नही है?'

सती और वन्दना दोनों क्षण-भर चुप होकर उसकी ओर देखती रही, फिर सती बोली—'तुम जाओ देवर, अब मुझे देर नही होगी।' वन्दना से सती बोली—'तू भी यहाँ देरी न करना बहिन' जितनी जल्दी हो सके बम्बई चली जाना। कलकत्ता जाने की आवश्यकता नही, स्मरण रहे काका वहाँ अकेले हैं।'

वन्दना ने द्विजू के समान पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया, पदधूलि लेकर माथे पर लगायी। बोली, 'मझली दीदी, मौसी के घर अब नहीं जाऊँगी। वहाँ से पाठ समाप्त करके निकली थी, इसे कभी भूल नही सकती।' यह कहकर वह आँचल से आँसू पोंछकर बोली—'शायद कल ही बम्बई लौट जाऊँगी, किन्तु तुम भी जाने के पहले वचन दे जाओ मझली दीदी कि फिर हम शीघ्र ही तुम्हे देख सके।'

मन-ही-मन सती ने क्या आशीर्वाद दिया, यह वही जानती हैं। हाथ बढा ठुड्डी पकडकर चुम्बन किया, हँसकर बोली—'वह तो मेरे अपने ही हाथो मे है वन्दना। काका से कहना शादी का न्योता पाने पर, जहाँ भी रहूँ, आकर उपस्थित होऊँगी।' कुछ ठहरकर शायद मन में सोचा, कहना चाहिए या नही, फिर बोली—'बडी इच्छा थी, तू इसी घर मे आवेगी। देवर के हाथो सौंपकर तेरे हाथो मे गृहस्थी का भार वासु का भार, सब देकर माँ जी के साथ कैलास का दर्शन करने जाऊंगी, लौट न सकी तो कोई बात नही, किन्तु आदमी सोचता कुछ और है और होता है कुछ और।' यह कहकर वह मौन हो गयी। कुछ देर तक चुप रह फिर बोली—'इस घर मे मैंने जो कुछ पाया था, वह ससार मे किसी को नही मिलता है और सबसे अधिक पाया था अपनी सास को लेकिन सबसे अधिक बिलगाव उन्ही से हुआ। जाने के पहले प्रणाम भी न कर सकी। द्वार बन्द है।' चौखट की धूलि मस्तक पर लगाकर बोली—'माँ, इस लडकी पर तुम्हारे पैरो की धूलि लगी है, यह मेरा ।' बात समाप्त नही कर सकी, गला रुँध गया, वह बेचैन हो उठी, उसके दोनो नेत्रो से आँसुओं की धारा बह चली। दो-तीन मिनट सँभालने मे लगे, आँचल से आँखे पोछकर बोली—'अब अनु दीदी नही मिली। वह मेरी माँ से भी बडी है वन्दना। हम चले जाये तो उनसे कहना कि मैं अप्रसन्न हो गयी हूँ।' फिर आँखो मे पानी भर आया, फिर आँचल से उन्हे पोछा। निमू नाम की एक बिल्ली पाली थी। कामकाज के घर मे वह कहाँ गयी है पता नही। सवेरे से वह कई बार याद आयी। बोली—'निमू कहाँ छिपी है, देखकर नही जा सकी। अनु दीदी से कहना तो वन्दना।' यद्यपि थोडी देर पहले दावे के साथ कहा था कि उसके एक ओर हैं पति और दूसरी ओर सन्तान, ससार में उसकी कोई भी हानि नही हुई है। बात कितनी झूठ प्रतीत होती है।

'क्या कर रही हो भाभी?' बाहर द्विजदास ने फिर आवाज लगायी।

'आती हूँ भाई!' कहकर सती शीघ्रता से निकल गई।

द्विजदास जब अकेला स्टेशन से लौटा तब शाम बीत चुकी थी। घर-घर मे उसी प्रकार दीपक जले

हैं, उसी प्रकार सब अपने कामो मे लीन हैं, इस विशाल परिवार मे कहाँ क्या उथल-पुथल हो गयी है, कोई भी नही जानता। बाहर के खण्ड मे ऊपर विप्रदास के बैठकखाने की खिडकी बन्द है, उधर अँधेरा है। ऐसे कितने ही दिन दीपक नही जलता है, विप्रदास कलकत्ता रहते हैं, कोई अनहोती बात नही है, सीढी के बगल वाले कमरे मे रहता है अशोक, खिडकी से दिखाई पडा आरामकुर्सी पर पैर फैलाकर प्रकाश मे दत्तचित होकर कोई पुस्तक पढ रहा है। कॉलेज नागा करके अक्षय बाबू आज भी उपस्थित हैं, उनका घर है एक छोर पर, वह घर मे हैं या हवा खाने बाहर निकल गये हैं, यह मालूम नही हुआ। मोटर ने आँगन मे पैर रखते ही द्विजदास की दृष्टि दोतल्ले के पुस्तकालय के कमरे पर पडी। शाम के बाद प्राय इस कमरे मे अँधेरा रहता है, किन्तु आज खुली खिडकी से प्रकाश आ रहा है। उसे सन्देह नही रहा कि वहाँ वन्दना है, पुस्तक पढने नही, आँसू बहाने के लिए। लोगों से पिण्ड छुडाने के लिए उसने इस सुनसान कमरे मे आश्रय लिया है। आज की रात किसी प्रकार काटकर वह भी कल सुदूर बम्बई चली जायेगी, वहाँ इतनी बडी हुई, जहाँ उसके आत्मीय स्वजन, उसके कितने ही पुराने सखा और सहेली हैं। कभी किसी भी बहाने इस देहात मे उसका आना सम्भव है, यह सोचा भी नही जा सकता है। आने पर इस घर को वह सुगमता से भूलेगी नही। यह ससार विचित्र है, कितनी अचिन्तनीय बाते क्षण-भर मे हो जाती हैं। एक-एक करके उस पहले दिन से आज तक की सभी बाते याद आयी। वह अचानक आना और अचानक अप्रसन्न होकर चला जाना। बीच मे केवल कुछ घटो की बातचीत। उस दिन वन्दना ने सहास्य कहा था, 'केवल आँखो देखा परिचय नही है द्विजू बाबू, वर्ना देवर का गुणगान लिख भेजने मे मझली दीदी ने कुछ शेष नही रखा है। मैं सब-कुछ जानती हूँ। आपके विषय मे कोई भी बात मेरी अनजान नही है। जब कभी घर भर के लोगो को जितना परेशान किया है, उसकी सारी सूचनाएँ मेरे पास पहुँची हैं।' द्विजदास ने पूछा था—'हम एक-दूसरे को पहचानते नही, फिर भी आपके सामने मुझे बदनाम करने की कौन-सी सार्थकता थी?' वन्दना ने हँसकर उत्तर दिया था—'शायद वास्तव मे मझली दीदी आपको देख नही सकती थी, यह उसी का बदला है।'

इसके बाद दोनो ने हँसकर बात को हँसी मे बदल दिया था, किन्तु उस दिन दोनो मे किसी ने नही सोचा था कि यह था सती की वन्दना के प्रति द्विजू से मन मे आकर्षण की चतुरता। यदि बहिन कभी करीब आई, यदि कभी उसके हाथो अशान्त देवर को दिया जा सके, लेकिन ऐसा नही हुआ। उसकी छिपी भावना ही रह गयी। आज भी दोनो मे कोई भी उन पत्रो का अर्थ न लगा सका।

द्विजदास एकदम ऊपर चला गया। पर्दा हटाकर भीतर घुसकर देखा वन्दना की गोद मे पुस्तक खुली है, किन्तु वह खिडकी के बाहर एकटक देख रही है। एक लाइन पढी भी है या नही, इसमे सन्देह है, जानते हुए भी उसने बातचीत शुरू करने के लिए ही प्रश्न किया—'कौन-सी पुस्तक पढ रही थी?'

वन्दना ने पुस्तक बन्द करके मेज पर रखी और उठ खडी होकर बोली—'आपको लौटने मे इतनी देर क्यो हो गयी? कलकत्ते की गाडी तो कब की चली गयी।'

द्विजदास बोला—'देर भले ही हो, लौट तो आया हूँ। यदि न भी आ सकता था तो ।'

वन्दना ने कहा—'बडी प्रसन्नता से।'

द्विजदास क्षण-भर चुप रहकर बोला—'ठीक यही बात पहले मुझे स्मरण हुई थी। गाडी चल दी, खिडकी से गर्दन बढाकर बासु खडा हाथ हिलाने लगा, धीरे-धीरे उसके नन्हे हाथ मोड के पीछे छिप गये। पहले मन मे आया संग चला जाना ही तो ठीक होता ।'

वन्दना ने कहा—'आप बासु को बहुत प्रेम करते हैं न?'

द्विजदास कुछ सोचकर बोला—'देखिए, उत्तर क्या दूँ, इन चीजो का शायद मैं स्वरूप ही नही जानता। स्वभाव इतना रूखा है, इतना नीरस है कि पल-भर मे सब कुछ हवा होकर केवल सूखी बालू पहले की भाँति धू-धू करने लगती है। प्लेटफार्म पर खडा था, एक बार आँखो से आँसू भर कर आये किन्तु फिर उसी समय अपने आप सूख गये, कही कुछ भी नही रहा।'

वन्दना ने कहा—'यह [illegible] ार मे भावना का आशीर्वाद है।'

द्विजदास [illegible] किन्तु इसी बासु के भय से माँ ने कल से [illegible]
है। वर्ना [illegible] भाभी के लिए भी नही। माँ सो [illegible]
लालन-पा [illegible] गाकर देखे तो उसकी आयु का [illegible]

व्यतीत किया है। तब वह रहता कहाँ था? मेरे पास, टायफायड बुखार में सारी रात कौन जागा? मैं। आज जाने के समय किसने सजाया? मैं। मेरी आलमारी में उसके कपडे रहते हैं, उसकी पुस्तक स्लेट मेरी मेज पर रहती हैं, विस्तर मेरी खाट पर है। माँ घसीटकर ले जाती है, लेकिन कितनी ही वार नीद खुलने पर वह मेरे कमरे मे भागकर आ जाता है।'

वन्दना एकटक दृष्टि से देख रही थी, वोली—'फिर भी आँखों के आँसू सूखने मे तो पलभर से अधिक देर नही लगती।'

द्विजदास ने कहा—'हाँ, मेरा स्वभाव भी यही है। उसके लिए मुझे यही चिन्ता है कि वह अपने माँ-वाप के पास जा पडा। आप कहेंगी, ससार मे यही स्वाभाविक है, इसमे भय की कौन-सी वात है? किन्तु स्वाभाविक होने के कारण ही भय यह है कि इतनी बडी उलटी वात मैं लोगो को कैसे समझाऊँगा?'

वन्दना ने यह नही कहा कि समझाने की कौन-सी आवश्यकता पडी है, दूसरी ओर माँ-वाप के विरुद्ध इतने वडे कसूर पर यकीन कर लेना भी उसके लिए कठिन है, खासकर विप्रदास के विरुद्ध। लेकिन कोई तर्क न करके वह चुप ही रही।

दूसरे क्षण वात स्पष्ट करने के लिए द्विजदास स्वय वोला—'धीरज की वात है कि भाभी पास ही हैं, वर्ना दादा के हाथो मे सौंपकर मुझे रत्ती-भर भी शान्ति न मिलती।'

वन्दना ने कहा—'आप तो निर्विकार हैं, वासु की भलाई-बुराई के लिए आपका सिर क्यो इतना दर्द कर रहा है? जो हो, होने दो।'

यह सुनकर द्विजदास के मुख पर गहरे दुःख की रेखा दिखाई पडी, पर वह चुप रहा।

वन्दना ने कहा—'दादा के लिए गहरे विश्वास और श्रद्धा की वात एक दिन आपके मुख मे सुनी थी। वह भी क्या आँसू के समान पल-भर मे ही नष्ट हो गयी? या जो आदमी अपनी भूल मे सर्वस्वान्त होता है, क्या उस पर विश्वास नही किया जा सकता है, यही कहना चाहते हैं न?'

द्विजदास आश्चर्य और दुःख मे अभिभूत नेत्रों मे पल-भर उसकी ओर देखता रहा, फिर दोनो हाथो को मिलाकर माथा छूकर धीरे-धीरे वोला, 'नही, यह मैंने नही कहा है। मैं कह रहा था कि प्यास वुझाने के लिए आदमी को समुद्र के सामने हाथ नहीं फैलाना चाहिए। लेकिन दादा के विषय मे अव आलोचना नही। वाहर के लोग उसे समझेंगे नही।'

इस वात से वन्दना के दिल को अधिक चोट पहुँची, किन्तु प्रतिवाद करने के लिए कुछ न मिलने के कारण वह मौन हो गयी।

अव द्विजदास ने दूसरी वात छेडकर पूछा—'क्या आप कल ही वम्वई जायेंगी?'

वन्दना ने कहा—'हाँ।'

'अशोक वावू के ही साथ जायेंगी?'

'हाँ, उन्हे ही ले जाऊँगी।'

द्विजदास वोला—'वम्वई मेल यहाँ मे वहुत रात को जाती है, कल आप लोगों को स्टेशन पर पहुँचा आऊँगा। किन्तु दिन को न जा सकूँगा, कुछ काम है।'

'एक तार पिताजी को भेज देंगे।'

'ठीक है।'

दो मिनट विल्कुल मौन रहकर द्विजदास ने कहा—'एक वात आपसे प्राय पूछने की सोचता हूँ लेकिन अनेक कारणो से दिन वीतते जा रहे हैं, पूछ नही पाता हूँ। कल चली जायेंगी, अव अवसर न मिलेगा। यदि आप अप्रसन्न न हो तो पूछूँ?'

'पूछिए।'

देर होने लगी है।

वन्दना ने कहा—'अप्रसन्न न होऊँगी, आप निर्भय होकर कहिए।'

द्विजदास ने कहा—'कलकत्ते के घर से माँ एक दिन अप्रसन्न होकर भाभी को लेकर अचानक चली आयी, आपको याद है?'

'हाँ, याद है।'

'विना कारण जाने आपको आश्चर्य हुआ। चित्त अच्छा नही था, मेरे कमरे मे आकर उस दिन कहा था कि आपको अच्छी लगती हूँ याद आती है?'

'है, किन्तु वहुत लज्जा के साथ।'

'उस वात का कोई मूल्य नही है?'

'नही।'

द्विजदास पल-भर चुप रहकर वोला—'मैं भी यही सोचता हूँ कि उसका कोई मूल्य नही है।'

थोडी देर वाद वोला—'भाभी ने कहा था कि आपकी मौसी की साध है कि अशोक से आपकी शादी हो। क्या यह निश्चित हो गया है?'

वन्दना ने कहा—'यह हमारे परिवार की वात है। वाहर वालो के सामने यह आलोचना नही हो सकती।'

द्विजदास वोला—'आलोचना तो नही, केवल एक वात ही तो पूछ रहा था।'

कडवे स्वर मे वन्दना ने कहा—'आपसे ऐसा कोई निकट का सम्बन्ध नही है कि आप यह प्रश्न करे। द्विजू वावू, आप शिक्षित पुरुष हैं, आपका यह कौतूहल लज्जाजनक है।' सुनकर द्विजदास सचमुच ही लज्जित हुआ, उसका मुख म्लान पड गया। वोला—'मुझसे भूल हो गयी है वन्दना!स्वभावत मैं कौतूहली नही हूँ, पराये की वात सुनने का लोभ भी मुझे वहुत कम है। किन्तु कैसे, नही जानता, मुझे लगता था कि ससार मे जिसको किसी से नही कह सकता, आपसे कह सकता हूँ। जिस विपदा मे किसी को पुकारा नही जा सकता है, उसमे आपको पुकारा जा सकता है। आप '

उसकी वात के वीच ही मे वन्दना ने हॅसकर कहा—'किन्तु अभी कह रहे थे कि दादा के विपय मे वातचीत वाहर के लोगो के सामने आप नही करना चाहते हैं। मैं तो गैर हूँ, विल्कुल परायी।'

द्विजदास ने कहा—'यदि यही तो फिर आपने ही क्यो उनके विषय मे ताना दिया? जानती नही मुझे क्या हो रहा है?' दीपक के प्रकाश मे स्पष्ट ही दीख पडा कि उसकी ऑखो के कोने डवडवा आये हैं।

अचानक इसी समय मैत्रेयी ने कमरे मे प्रवेश किया। वोली—'द्विजू वावू, हममे से तो कोई जान भी नही सका कि आप कव घर आये।'

द्विजदास ने उसकी ओर मुँह फेरकर कहा—'जानने की क्या कोई विशेष आवश्यकता पड गयी थी?'

मैत्रेयी ने कहा—'ठीक वात कह रहे हैं। कल आपने खाया नही, आज भी नही और कोई न जाने मैं तो जानती हूँ। मॉ के कमरे मे चलिये।'

'लेकिन मॉ का कमरा तो वन्द है।'

मैत्रेयी ने कहा—'वन्द तो था, लेकिन मैंने खुलवाकर ही छोडा। सिर धुनकर किवाड खुलवाये हैं, उन्हे स्नान करवाया है, वरवस दो-चार फल पेट मे डालकर तव छोडा है। कह रही थी—'द्विजू न खायेगा तो नही खायेगी।' वोली—'यह नही हो सकता मॉ, आपके इस आदेश को मैं मान न सकूँगी, किन्तु तभी से हम सभी आपकी वाट देख रहे हैं। चलिए, आपका भोजन मॉ के कमरे मे रख दिया गया है।'

द्विजदास चुप हो गया। इसके पहले उसने इतनी वाते नही सुनी थी। कहा—'चलिए।'

मैत्रेयी ने वन्दना के उद्देश्य से कहा—'आप भी चलिए। आपको मॉ वुला रही हैं।' यह कहकर द्विजदास को एक ओर से पकडकर ले गयी। वन्दना सवसे पीछे गयी।

दयामयी अपने कमरे मे विस्तर पर पडी हुई थी। धीमी रोशनी मे उनके शोकाच्छन्न मुख की ओर देखकर दु ख होता था। सूजे हुए दोनो नेत्र लाल हैं, सद्य स्नान आर्द्र केश इधर-उधर विखरे हुए हैं कल्याणी सिरहाने वैठी सिर दवा रही थी, दूसरी ओर एक कुर्सी पर शशधर था, दूर एक दूसरी कुर्सी पर अक्षय वावू वैठे हुए थे। द्विजदास के कमरे मे प्रवेश करते ही दयामयी ने मुँह फेर लिया और दूसरे ही क्षण एक अस्फुट अवरुद्ध क्रदन से उनकी सारी देह कॉप उठी। वन्दना चुपचाप धीरे-धीरे जाकर उनके पैरो के पास वैठी, इतने वडे दु ख के दृश्य की कदाचित् वह कभी कल्पना भी नही कर सकती थी। वहुत देर तक सभी चुप रहे, इस चुप्पी को भग करके पहले शशधर वोला—'सुना है कल से कुछ खाया नही है, जो हो कुछ मुँह मे तो डाल लो।'

द्विजदास ने कहा—'हॉ।'

फर्श पर आसन तैयार करके मैत्रेयी सावधानी से भोजन लगा रही थी, उसी ओर देखकर शशधर

बोला—'तुम्हें लौटने में बहुत देर हो गयी। वे तो अभी अढ़ाई बजे की गाड़ी से चले गये।'

'हाँ।'

शशधर ने बनावटी हँसी हँसकर कहा—'लेकिन सुना है कि कलकत्ते का घर तो तुम्हारा है।'

द्विजदास ने कहा—'मेरे घर में दादा का आना मना है?'

शशधर ने कहा—'ऐसा तो नहीं, लेकिन वह ऐसा भाव दिखा गये हैं। उस घर को छोड़कर जाने की भी तो उन्हें आवश्यकता नहीं और समझौता कर लेने से तो झंझट मिट जाता।'

द्विजदास ने कहा—'समझौते का द्वार खुला हुआ था तो आपने क्यों नहीं कर लिया।'

'मैं समझौता करूँ?' शशधर बहुत आश्चर्य प्रकट करता बोला, 'यह कैसा प्रस्ताव है? मेरा उन्होंने अपमान किया और मैं ही समझौता करूँ? [illegible]' यह कहकर वह ठठाकर हँसने लगा।

हँसी रुकने पर द्विजदास ने कहा—'ठीक कहते हैं शशधर बाबू। स्त्रियाँ बातों में कहा करती हैं कि पहाड़ की आड़ में रहना। दादा वही पहाड़ थे और आप उन्हीं की आड़ में थे। अब आमने-सामने खड़े हैं आप और हम। मान-अपमान की बात समाप्त तो नहीं हो गयी, अभी तो केवल श्रीगणेश ही हुआ है।'

'इसका क्या मतलब?'

'इसका मतलब यह है कि मैं आपके बचपन का मित्र विप्रदास नहीं हूँ, मैं द्विजदास हूँ।'

शशधर की हँसी धीरे-धीरे लुप्त हुई, बड़े गम्भीर स्वर से प्रश्न किया, 'तुम्हारे कहने का मतलब क्या है, तनिक स्पष्ट करो न?'

दादा का मित्र होने के कारण शशधर के 'तुम' कहने पर भी द्विजदास उसे 'आप' कहकर ही सम्बोधन करता था। बोला—'आपकी इस बात को मानता हूँ कि मतलब साफ स्पष्ट हो जाना ही ठीक है। मेरे दादा उस प्रकार के आदमी हैं जो सचाई के लिए सर्वस्वान्त हो जाते हैं, आश्रितों के लिए देह का माँस भी दे देते हैं। जो करने के लिए प्रस्तुत न हों, वे एक प्रकार के पागल हैं, इसलिए यह दर्द गा सुई है। किन्तु मैं एकदम साधारण आदमी हूँ, आपसे कोई विशेष अन्तर नहीं है। एकदम आप ही की भाँति मुझमें भी ईर्ष्या है, घृणा है, बदला लेने की कुटिल बुद्धि है। इसलिए दादा को ठगा है तो आपको भी ठगूँगा, उनके नाम की जालसाजी की होगी तो प्रसन्नता से आपको कारागार की हवा खिलाऊँगा, कम-से-कम प्रयत्न में कोई कमी न होगी, जब तक हम दोनों आदमी एक दिन मार्ग के दर-दर के भिखारी नहीं बन जाते हैं। बूढ़ों से सुना है कि इसका फल ऐसा ही होता है। ऐसा ही हो।'

शशधर कड़ककर बोल उठा—'सुन रही हो न माँ, द्विज की बात?' उसके मुँह में जो कुछ भी आता है बोलने के लिए उसे रोको।'

द्विजदास ने कहा—'माँ से फरियाद करने से कोई लाभ नहीं शशधर बाबू। वह जानती है कि मैं विपिन नहीं हूँ, मातृवाक्य द्विज के लिए वेदवाक्य नहीं है, द्विज ताल ठोककर स्पर्द्धा का अभिनय नहीं करता है, इस बात को माँ जानती है।'

किसी के मुँह में आवाज नहीं, सहसा दोनों का यह वाद-विवाद मानो सम्पूर्ण रूप से एक युद्ध है। विस्मय और भय से सभी चुप हो गये थे। शशधर समझ गया कि यह हँसी नहीं कठोर संकल्प है। उत्तर देने में उसके कण्ठ-स्वर में पहले का-सा जोर नहीं था, फिर भी दावे के साथ बोल उठा, 'यह अन्तिम समय है। अब मैं यहाँ पानी तक न छुऊँगा।'

द्विजदास ने कहा—'इतनी देर तक यहाँ कैसे रहे, यही आश्चर्य की बात है शशधर बाबू।'

कल्याणी ने रोकर कहा—'छोटे दादा, आखिर में क्या तुम्हीं हमें मारना चाहते हो? सगे भाई हो, तुम्हीं हमारा सर्वनाश करोगे?'

द्विजदास ने कहा, 'तू समझती है कि बार-बार आँसू बहाकर सर्वनाश के हाथ से छुटकारा पाया जा सकता है? कहीं न्याय नहीं होगा तुम्हीं लोगों की बार-बार विजय होगी? सही है कि दादा नहीं हैं, फिर जब खाने को न मिले तो मेरे पास आना, तब तेरा रोना सुनूँगा, इस समय नहीं।'

दयामयी ने चुपचाप बहुत सहन किया था, अब नहीं रहा गया, चिल्लाकर कहा—'तू जा यहाँ से द्विजू। इसी प्रकार गाली-गलौज करने के लिए क्या विपिन तुझे सिखा गया है?'

'कौन सिखा गया, कह रही हो? विपिन?'

'हाँ वही तो। अवश्य वही।'

क्षण-भर में द्विजदास के होठ सिकुड़ गये, बोला—'मैं जा रहा हूँ, किन्तु माँ, अपने को तुमने बहुत छोटा किया है अब अधिक छोटा मत करो?' यह कहकर वह कमरे से बाहर चल दिया।

द्विजदास अपने कमरे में आकर चुप बैठा था, दो-एक घण्टे के बाद मैत्रेयी कमरे में आयी। हाथ में थाली थी, बोली—'फिर से भोजन बनाकर लायी हूँ; यहीं आसन बिछा दूँ, भोजन करिये।'

'यह किसने कह दिया आपने?'

'किसी ने नहीं। आपने कल से खाया नहीं है, यह क्या मैं जानती नहीं।'

'इतने आदमियों में आपको जानने की आवश्यकता?'

मैत्रेयी सिर नीचा किये मौन खड़ी रही। उत्तर न पाकर द्विजदास बोला—'अच्छा, वहाँ रख जाइये।' अभी भूख नहीं है, होगी तो थोड़ी देर में खा लूँगा।'

मैत्रेयी ने कमरे के एक ओर आसन बिछाया, भोजन को रखकर बड़ी सावधानी से सब-कुछ ढककर चल दी। आग्रह नहीं किया, बोली नहीं कि ठण्डा हो जाने पर खाने में असुविधा होगी।

रात्रि के शायद तब बारह बज गये हैं, द्विजदास कुर्सी पर से उठा।

थोड़ा-सा खाकर सो रहेगा, सोचकर हाथ-मुँह धोने के लिए बाहर आकर देखा द्वार के बाहर कोई बैठा है। बरामदे के धुँधले प्रकाश में नहीं पहचानकर पूछा—'कौन हैं?'

'मैं हूँ मैत्रेयी।'

द्विजदास के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, बोला—'इतनी रात को यहाँ कैसे आयी?'

'भोजन करते समय शायद किसी चीज की आवश्यकता पड़े इसीलिए बैठी हूँ।'

'यह बड़ा अन्याय है आपका। पहली बात है कि आवश्यकता नहीं है, और यदि पड़ी भी तो क्या और कोई है नहीं?'

मैत्रेयी ने धीरे से कहा—'कई दिनों के निरन्तर परिश्रम से सभी थके हैं। कोई जगा नहीं है, सभी सो रहे हैं।'

द्विजदास ने कहा 'आपने स्वयं भी कम परिश्रम नहीं किया है, फिर सोने क्यों नहीं गयी?'

मैत्रेयी ने उत्तर नहीं दिया, मौन ही बैठी रही।

द्विजदास का रूखा स्वर अब बहुत मंद पड़ गया, बोला, 'तुम्हारा इस प्रकार बैठा रहना बुरा दीखेगा। आप भीतर आकर बैठिए जब तक खाता हूँ देखिए।' यह कह हाथ-मुँह धोने के लिए पानी वाले कमरे में चला गया।

इसके पहले मैत्रेयी से द्विजदास ने बहुत कम बातचीत की थी। आवश्यकता नहीं थी, इच्छा नहीं थी। अब बातचीत कैसे शुरू करेगा, सोचते हुए लौटकर उसने देखा कि न तो भोजन है और न मैत्रेयी ही! इसी बीच में क्या हो गया, अनुमान करने से पहले ही वह वापस आकर खड़ी हुई, बोली—'ढक्कन खोलकर देखा सब सूख गया है इसीलिए फिर लाने चली गयी, बैठिए न।'

द्विजदास ने कहा—'देखता हूँ, भाँप निकल रही है। इतनी रात को ये कहाँ मिला?'

मैत्रेयी ने कहा, ठीक से ढँककर आयी थी। जब कहा कि भोजन में देर होगी तभी जानती थी कि इन सब चीजों को नहीं रखा तो खा न सकेंगे।'

द्विजदास ने भोजन करने से पहले रसोईघर की निपुणता की प्रशंसा की और मालूम किया कि इसमें कई चीजें मैत्रेयी ने स्वयं अपने हाथ से बनायी हैं। बार-बार आग्रह करके उसने द्विजदास को अधिक खिलाया। इस विद्या में वह चतुर है, भोजन खिलाना वह जानती है।

द्विजदास ने हँसकर कहा—'अधिक खाने में बीमार पड़ जाऊँगा।'

'नहीं, पड़ेंगे नहीं। कल से भूखे हैं, इसे अधिक खाना नहीं कहते।'

किन्तु केवल मैं अकेला ही तो बिना खाये नहीं हूँ इस घर में शायद बहुत से हैं।'

मैत्रेयी ने कहा, 'बहुतेरों की बात नहीं मालूम, लेकिन माँ को थोड़ा-सा कैसे खिलाया है, यह मैं ही जानती हूँ। मैं न होती तो न जाने बन्द किये कब तक वह व्रत करती, सोचने पर डर लगता है, लेकिन मुझे 'आप' न कहें, सुनकर शर्म आती है। कितनी छोटी हूँ मैं।'

द्विजदास ने कहा—'अच्छा बात है, अब 'आप' नहीं कहूँगा। किन्तु तुमने अन्नदा दीदी का पता लगाया था?'

मैत्रेयी ने कहा—'उसे हुआ क्या? क्या वह भी विना खाये है?'

अव तक मैत्रेयी की वाते उसे अच्छी लग रही थी, प्रसन्नता की हवा का एक झोका इस दु ख के वीच भी मानो उसके मन को छू जाता था, किन्तु इस आखिरी वात से उनका मन क्षण-भर मे विगड गया। वोला—'अनु दीदी के विपय मे इस तरह से वाते नही करनी चाहिए। शायद सुना होगा कि वह हमारी दासी है, किन्तु इस घर मे उससे वढकर मेरा अपना कोई है नही। उसने हमे मनुष्य वनाया है।'

मैत्रेयी ने कहा—'यह सुना है। किन्तु कितने ही घरो मे तो नौकर-नौकरानियाँ वाल-वच्चो को पाल-पोसकर वडा करती हैं। इनमे कौन-सी मुख्य वात है? अच्छा, आपका भोजन समाप्त हो जाये तो उसका पता लगाऊँगी?'

द्विजदास मौन हो पल-भर उसकी ओर देखता रहा। अचानक मन मे आया ठीक ही तो है, ऐसा तो वहुतेरे परिवारो मे हुआ ही करता है, जो अन्दर की वात नही जानता उसके लिए केवल वाहर की वात मे आश्चर्य की इसमे कौन-सी चीज है? कठोर विचार हल्का हो गया, वोला—'अनु दीदी ने नही खाया होगा तो अव इतनी रात को नही खायेगी। उनके लिए आज व्यस्त होने की आवश्यकता नही।'

फिर कई मिनट चुपचाप वीत जाने पर द्विजदास ने पूछा—'मैत्रेयी, पराये की ऐसी सेवा करना तुमने सीखा किससे? क्या अपनी माँ से?'

मैत्रेयी ने कहा 'नही' अपनी दीदी से। उनके समान पति की सेवा करते मैंने किसी को देखा नही।'

हँसकर द्विजदास वोला—'पति क्या पराया है? मैंने पराये की सेवा की वात पूछी थी।'

'अच्छा, पराया?' कहकर मैत्रेयी ने हँसकर सिर नीचा कर लिया।

द्विजदास वोला—'अच्छा, तो अपनी दीदी की वात वतलाओ।'

मैत्रेयी वोली—'दीदी तो जीवित नही है। तीन वर्ष हुए एक पुत्र और कन्याएँ छोडकर मर गयी। पर चौधरी जी ने एक वर्ष भी सतोष नही किया, पुन शादी कर ली। वतलाइए तो कितना घोर अन्याय है?'

द्विजदास वोला, 'पुरुष तो यही करते हैं। न्याय-अन्याय वे नही मानते।'

'क्या आप भी ऐसा ही करेंगे?'

'पहले एक तो करूँ फिर दूसरे की वात पर विचार करूँगा।'

मैत्रेयी ने कहा—'ऐसा कहने से तो काम न चलेगा। तव आपकी भाभी थी, लेकिन अव कोई नही। कौन देखेगा माँ को?'

द्विजदास ने कहा—'कौन देखेगा, नही जानता मैत्रेयी, शायद वेटी-दामाद देखेगे, या और कोई आकर उनका भार सँभालेगा, इस ससार मे कितनी असम्भव वाते सम्भव हैं, कोई वतला नही सकता। हमारी वाते जाने दो, अपनी वात कहो।'

'किन्तु अपनी वात तो कुछ भी नही है।'

'कुछ भी नही? एकदम ही कुछ भी नही?'

पहले तो मैत्रेयी कुछ सकपका गयी, फिर कुछ हँसकर वोली—'अच्छा मैं जान गयी। क्या आपने चौधरी की वात किसी से सुनी है! छि ! छि ! कैसा वेशर्म आदमी है, दीदी के मरने के वाद कहला भेजा, मुझसे शादी करेगा।'

उसके वाद?'

मैत्रेयी ने कहा—'चौधरी के पास वहुत धन हैं, माँ-वाप सहमत हो गये।' वोले—'और कुछ न सही लीला के वच्चे आदमी तो वन जायेंगे।' 'मानो दुनिया मे दीदी के वच्चो के लालन-पालन के अतिरिक्त मुझे और कोई काम है ही नही—'यदि यह वात तुम लोग मुख पर लाये तो मैं आत्महत्या कर लूँगा।'

'इतनी आपत्ति तुम्हे किसलिए थी?'

क्या आपत्ति न होगी? ससार मे इससे वढकर दु ख और कुछ है क्या?'

द्विजदास ने कहा—'तुम्हारी यह वात सत्य नही है। ससार मे सभी स्थानो पर दु ख नही होता है मैत्रेयी। मेरी माँ ने ही भैया को आदमी वनाया था।'

मैत्रेयी ने कहा—'लेकिन अन्त मे उसका परिणाम क्या निकला? आज जैसा दु ख का काण्ड इस घर मे कभी नही हुआ था क्यो?'

द्विजदास चुप रह गया। इसकी बात असत्य नही है, किन्तु सत्य भी बिल्कुल नही है। दो-तीन मिनट अभिभूत के समान बैठा रहा, अचानक मानो उसे चेत हुआ बोला, 'प्रतिवाद मैं नही करूगा। इस घराने मे महादु ख सचमुच ही आया है, फिर भी जानता हू कि तुम्हारी ये बातें साधारण लडकियो के अतिरिक्त तुच्छ सासारिक हिसाब-किताब से वडी हैं नही।' इतना कहकर ही उठ खडा हुआ, उसने भोजन कर लिया था।

अगले दिन दोपहर तक वह घर पर नही था, किस काम से कहाँ गया था, वही जानता है। शाम के अँधेरे मे चुपचाप घर लौटकर सीधे वन्दना के कमरे के सामने जाकर पुकारा—'अन्दर आ सकता हूँ?'

'कौन, द्विजू वावू? आइये न।'

द्विजदास ने भीतर जाकर देखा कि वन्दना ने वाक्स में चीजें सँभालकर जाने का प्रवन्ध लगभग पूरा कर लिया है। बोला—'तो सचमुच ही जा रही हो? क्या एक दिन भी नही रोका जा सकता?'

उसके मुख की ओर देखकर वन्दना को बोलने की इच्छा नही हुई, पर बोलना ही पडा—'जाना तो पडेगा ही, एक दिन और रहने से आपका क्या लाभ है? बोलिए न?'

द्विजदास ने कहा—'लाभ की बात तो नही सोची है, सोचता हू सभी गये, इतने वडे घर मे अव मित्र कोई नही रहा।'

वन्दना ने कहा—'पुराने मित्र चले जाते हैं, नये आते हैं, ससार ऐसा ही है द्विजू वावू। उसी आशा मे ससार रखना पडता है, चचल होने से काम चलता नही।'

द्विजदास उत्तर न देकर चुप रहा।

वन्दना ने कहा—'अधिक समय नही है काम की दो-चार बाते कर लूँ। शायद सुना होगा कि शशधर कल्याणी को लेकर चले गये?

'नही, सुना नही है, पर अनुमान किया था।'

'जाने के पहले उन्हे एक बूँद जल भी नही पिलाया जा सका। दोनो ने आकर माँ को प्रणाम करके कहा—'हम जा रहे हैं।' माँ ने कहा—'जाओ।' फिर दूसरी ओर मुँह फेर लिया। यह कहकर वन्दना मौन रही। किसलिये वह जा रहे हैं जो बाते द्विजू ने पिछली रात को माँ से कही थी उनकी चर्चा तक भी नही की।

कुछ देर वाद चुप रहकर फिर बोली—'माँ बिल्कुल वेचैन हो गयी हैं, देखकर दु ख होता है, लज्जा से मानो किसी के सामने मुँह नही दिखा पाती। मैत्रेयी ने उनकी जैसी सेवा की है, शायद वैसी अपनी वेटी भी नही कर सकती है। यदि माँ स्वस्थ होती हैं तो वह उसी की सेवा के कारण। लडकी वहुत भली है। उसे कुछ दिन पकडकर रखिये, यह मेरा अनुरोध हैं।'

'ऐसा ही होगा।'

'जाने के पहले एक अनुरोध और कर जाऊँगी द्विजू वावू।'

'अवश्य।'

'आपको अव शादी करनी पडेगी।'

'क्यों?'

वन्दना ने कहा—'वर्ना यह विशाल परिवार छिन्न-भिन्न हो जायेगा। जानती हूँ आपकी वहुत हानि हुई, लेकिन जो रह गया वह भी बहुत है। आप लोगो का कितना दान हैं, कितने सत्कार्य हैं, कितने आश्रित परिजन, कितने दीन-दु.खी लोगों के आप लोग सहारे हैं और वह भी क्या आज ही; कितने लम्बे समय से यह धारा चली आ रही है आपके परिवार मे, कभी बाधा नही हुई है, वह क्या आज बन्द हो जायेगी? दादा की भूल से जो चला गय वह व्यर्थ था, वह प्रयोजन के अलावा था, जाने दीजिये उसे। जितना रह गये, उसे ही शान्त होकर काफी समझिये। वह शेष ही आपका भण्डार अक्षय हो, प्रतिदिन के प्रयोज़न में ईश्वर कमी न दें, आज बिदा होने के पहले उनसे यही विनय करती हूँ।'

द्विजदास की आँखों मे जल आ गया।

वन्दना कहने लगी—'आपके पिता अखड विश्वास लेकर दादा के हाथों में सर्वस्व सौंप गये थे पर नही रहा। पिता के सामने दोषी बने रहे। लेकिन वह भूल यदि दीनता लाकर उनके पुण्य कार्य की

बाधाग्रस्त करती है तो किसी दिन भी मुखोपाध्यायजी अपने मन को समझा न सकेगे। इस अशान्ति से आपको उन्हें बचाना ही होगा।'

आँसू रोककर द्विजदास बोला—'भैया की बात इस प्रकार से किसी ने नही सोची है, वन्दना मैंने भी नही। बात कैसी विस्मय की है?'

ठीक ही हुआ है कि उसने बत्ती की छाया मे वन्दना का मुख न देखा। बोला—'दादा के लिए सभी दु ख झेल सकता हूँ, किन्तु उनके कर्मों का बोझ कैसे उठाऊँ, साहस जो नही होता। उन्ही को देखने आज चला था। उनका स्कूल, पाठशाला, टोल (सस्कृत पाठशाला) मुसलमान लडको के लिए मकतब और वह भी एक या दो हैं? बहुतेरे। खेतो को पानी देने के लिए एक नहर खोदी जा रही थी, बहुत दिन तक उसके रुपये खरचने पडेगे। कागजो मे एक लम्बी लिस्ट मिली है केवल दोनो के हिसाब। वे लोग मांगने आये तो क्या कहूँगा मालूम नही?'

वन्दना ने कहा—'उन्हे कह दे मिलेगा। देना ही पडेगा उन्हे। लेकिन पूछती हूँ, इतने रोज तक किसी से उन्होने कुछ नही कहा था?'

'नही।'

'इसका सबब।'

द्विजदास ने कहा, अच्छे कार्यों को गुप्त रखने की इच्छा से। किन्तु किससे कहे? दुनिया मे उनका तो कोई मित्र नही था। विपत्ति जब आयी तो उसे अकेले झेली, आनन्द जब आया उसे भी अकेले ही उपयोग किया। शायद जताया होगा अपने वही एक मित्र को।' कहकर उसने ऊपर की ओर देखकर कहा—'किन्तु यह सूचना आत्मीय मालूम कैसे होती? सिर्फ जानते हैं वह और उनके अन्तर्यामी।'

वन्दना ने कौतूहल के पूछा—'अच्छा द्विजू बाबू, आप क्या समझते हैं कि मुखोपाध्याय जी ने कभी किसी को प्रेम नही किया है। किसी एक को भी नही।'

द्विजदास ने कहा—'नही, वह उनके स्वभाव के विरुद्ध है। मानव ससार मे इतना नि सग मनुष्य दूसरा नही है?' इसके पश्चात् देर तक दोनो खामोश रहे।

मानो वन्दना ने एक भार को दूर फेकते हुए कहा—'होने दीजिए द्विजू बाबू। उनके सभी कामो को आपको अपने कन्धो पर लेना पडेगा, एक को भी नही छोड सकते।'

'किन्तु मैं तो दादा नही हूँ। अकेला कैसे ले सकूँगा वन्दना?'

अकेले तो नही, दो आदमी लेगे। इसीलिए तो कहती हूँ कि आपको शादी करनी होगी।'

'लेकिन प्रेम किये बिना शादी करूँगा कैसे।'

वन्दना ने आश्चर्य से उसके मुँह की ओर देखकर कहा—'यह क्या कह रहे हैं द्विजू बाबू! ऐसा तो अपने समाज के लोग ही कहा करते हैं, किन्तु आपके परिवार मे कब किसने प्रेम करके शादी की है जो आपके किये बिना नही चलेगा? यह बहाना न करिये।'

द्विजदास ने कहा—'यह रीति हमारे घराने की नही है लेकिन यह उदाहरण क्या बराबर मानना पडेगा? इसी से राजी हो जाऊँ इसका मुझे विश्वास नही है।'

वन्दना ने कहा—'विश्वास के विरुद्ध तर्क नही चल सकता, सुख की गारण्टी भी नही दे सकती, क्योकि वह धन जिसके हाथो मे है उसे नही जानती। उसकी विचार-पद्धति व्यर्थ है। किन्तु शादी के पहले नयन-मनोरजन पूर्वराग के केस बहुत देखे और एक दिन वह प्रेम किस घने जगल मे हवा हो गया, यह नाटक भी बहुत देखा है। मैं कहती हूँ उस जाल मे पैर रखने की आवश्यकता नही है। द्विजू बाबू, सोने का मायामृग जिस वन मे विचरण कर रहा है करने दीजिए, इस मकान मे ससमादर पूर्वक लाने की आवश्यकता नही।'

मुस्कराकर द्विजू ने कहा—'इसका मतलब है कि सुधीर बाबू ने आपके मन को बहुत दु खी कर दिया है।'

वन्दना ने भी हँसकर कहा—'हाँ! किन्तु फिर भी मन का जो कुछ शेष था, उसे आपने खिन्न कर दिया और इसके बाद आये अशोक। अब फूटे भाग्य मे वह भी डटे रहे तो धैर्य बँधे।'

'कौन है वह अशोक? आपको उनसे भय की कौन-सी बात है?'

'भय यह है कि उन्होंने भी अचानक प्रेम करना आरम्भ किया है।

कोई प्रेम के आस पास से होकर भी नहीं निकले यही आपकी प्रतिज्ञा है?'

'हाँ' यही मेरी प्रतिज्ञा है, शादी यदि करूँ भी तो बड़े सुख की आशा की विडम्बना में न पड़ूँ। इसीलिए कल अशोक बाबू को होशियार कर दिया है कि मुझे प्रेम करेंगे तो मैं चली जाऊँगी।'

सुनकर उन्होंने क्या कहा?'

'कहा कुछ नहीं, केवल देखते रहे। देखकर दु:ख हुआ।'

यदि सचमुच ही दु:ख हुआ है तो आज भी आशा है। लेकिन याद रखें कि यह सब केवल मौसी के घर की घोर सामाजिकता है।'

वन्दना ने कहा—'असम्भव नहीं है, हो सकता है। किन्तु सीखा बहुत, सोचती हूँ, सौभाग्य से कलकत्ते आयी थी वर्ना बहुत-सी बातें न जान पाती।'

कुछ देर तक चुप रहकर द्विजदास ने कहा—'अब अधिक समय नहीं हैं अब अन्तिम उपदेश दे जाइए कि मुझे क्या करना होगा।'

परिहास की मुद्रा में सिर को कई बार हिलाकर वन्दना ने कहा—'उपदेश लेना है? क्या सचमुच ही चाहिए?'

द्विजदास ने कहा—'हाँ, सचमुच ही चाहिए। मैं दादा नहीं हूँ मुझे मित्र की आवश्यकता है, उपदेश की आवश्यकता है। मुझे शादी करने के लिए कह गयी, मैं वही करूँगा। लेकिन प्रेम न मिले, मित्रता नहीं मिलने से बोझ डाले जा रही हो उसे कैसे सँभालूँगा?'

द्विजदास के मुख पर हँसी का चिन्ह भी नहीं है, इस स्वर-कण्ठ ने वन्दना को बेचैन कर दिया, बोली, भय की बात नहीं है द्विजू बाबू, मित्र मिलेगा, सचमुच ही, आवश्यकता पड़ने पर भगवान् उसे आपके द्वार पर पहुँचा जायेंगे, इसका विश्वास जानिए।

उत्तर में द्विजू कुछ कहने जा रहा था, लेकिन रुक गया। बाहर से मैत्रेयी का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा—'द्विजू बाबू हैं कमरे में? माँ आपको बुला रही हैं।' द्विजू उठकर बोला—'अभी बारह बजे है, साढ़े बारह बजे निकलना होगा। ठीक समय पर आकर आवाज दूँगा, याद रखना।' यह कहकर वह शीघ्रता से कमरे से निकल गया।

पच्चीस

वन्दना के सकुशल बम्बई पहुँचने की सूचना के उत्तर में कुछ दिन के बाद द्विजदास ने लिखा था कि बहुत से कामों में जुटे रहने की वजह से ठीक समय पर पत्र नहीं लिख सका। लिखने की कोई विशेष बात नहीं है। मैत्रेयी के पिता कलकत्ता लौट गये हैं, किन्तु यह स्वयं अभी इस मकान में है। माँ की सेवा-टहल में कहीं कोई कभी नहीं रहने पाती, गृहस्थी का भार उसी पर पड़ा है, अच्छी, तरह चल रही है। घर के सभी उससे प्रसन्न हैं। द्विजदास को अपनी ओर से अभी तक शिकायत करने का अवसर नहीं मिला है। अन्त में वन्दना और उसके पिता के प्रति शुभ कामना प्रकट-कर यथाविधि नमस्कारादि लिख, उसने चिट्ठी समाप्त की।

इसके बाद तीन महीने से भी अधिक समय बीत गया, लेकिन किसी ओर से भी पत्रों का आना-जाना नहीं हुआ। विप्रदास, मझली दीदी, बासु का समाचार जानने के लिए वन्दना का मन व्याकुल हो उठता है, लेकिन कोई मार्ग नहीं सूझता है। अपनी ओर से उन्होंने आज तक कोई समाचार नहीं भेजा है, कहाँ हैं कैसे हैं, सब-कुछ अज्ञात है। इसी की सिफारिश के लिए द्विजदास को आग्रह करके पत्र लिखने में इतनी बड़ी लज्जा है कि आन्तरिक इच्छा होते हुए भी यह काम उसे असाध्य मालूम हुआ है। अब बलरामपुर की स्मृति की तीक्ष्णता और वेदना की तीव्रता दोनों बहुत हल्की हो गयी हैं। यहाँ से चले जाने के बाद वह वहाँ से विरक्त होने का उपक्रम कर रही थी, किन्तु दिनों-दिन व्यथाहीन चित्त धीरे-धीरे जितना ही शान्त होता, उतनी ही उनसे उपलब्धि की है कि उसका रिश्ता कोई सच्चा रिश्ता नहीं है। इकट्ठे रहने के कारण से वे सुख-दु:खमय अनिर्वचनीय दिन विचित्र घनिष्ठता से मन के अन्दर जितना भी निविड़ता

के मोह का सचार करते हैं, पर उनकी आयु क्षणस्थायी है। इस वात को उसे समझना शेष नही है कि उस आचारवान-प्राचीन पथी मुखोपाध्याय घराने मे उसकी आवश्यकता नही हे, क्योंकि दोनों पक्षों की शिक्षा, सस्कार और सामाजिक आचार-विचार का अन्तर जितना सत्य है, उतना ही कठिन भी है।

इसी वीच पति के कर्मस्थल पजाव से मौसी आकर उपस्थित हुई है। स्वास्थ्य अच्छा नही है। पजाव मे वम्वई का जलवायु अच्छा है, यह राय किस डॉक्टर ने तुम्हे दी, वही जानती हैं। लेकिन आयी स्वास्थ्य के वहान मे। वम्वई आने के पहले वन्दना उनसे भेंट न कर आयी, यह वात उनके मन मे थी, किन्तु दीदी की वेटी के मिजाज का जितना परिचय उन्हे मिला है, उससे वहनोई से साहव के दरवार मे खुलेआम मुकदमा शुरू करने का साहस नही था, तव भी खाने की मेज पर वैठकर वात को उन्होंने सकेत से छेड ही दिया। वोली—'मिस्टर रे, इस वात को आपने लक्ष्य किया है या नही, लेकिन मैंने वहुत देखा कि इकलौती लडकी या लडका ऐसे हठी हो जाते हैं कि उनसे सहज ही मे पार नही पाया जा सकता।

उसी समय साहव ने स्वीकार कर लिया, और देखा कि उदाहरण उनके पास ही उपस्थित है। सानन्द उसकी चर्चा करके वोले—'यह जैसे मेरी वूडी है। एक वार यदि 'न' कह दिया तो 'हाँ' कहला दे किसका साहस? इसके वचपन से ही देखता आ रहा हूँ ।'

वन्दना ने कहा—'शायद इसीलिए अपनी वेटी से स्नेह नही करते हो पिता जी?'

साहव ने जोरो से प्रतिवाद किया—'तुम मेरी अवोध वेटी हो? हर्गिज नही, कोई कह नही सकता।'

वन्दना हँस पडी—'अभी-अभी तो तुमने स्वय कहा है पिताजी।

'मैंने? कभी नही।'

सुनकर मौसी से भी विना हँसे न रहा गया।

वन्दना ने पूछा—'अच्छा पिताजी, तुम्हारे समान क्या मेरी माँ भी मुझे देख नही सकती थी?'

साहव ने कहा—'तुम्हारी माँ? इसी वात पर उनसे मेरी कितनी वार कहा-सुनी हो गयी। वचपन मे एक वार तुमने मेरी घडी तोड दी थी, तुम्हारी माँ ने क्रोध करके कान मरोड दिया, तुम रोती हुई मेरे पास दौड आयी, मैंने हृदय मे लगाया। उस दिन से तुम्हारी माँ से मैं नही वोला।' कहते-कहते पूर्व स्मृति के भावावेग मे उठकर वेटी के सिर को हृदय से लगाकर उसे धीरे-धीरे हाथ से सहलाने लगे।

वन्दना ने कहा—'वचपन के समान अव क्यो नही प्यार करते पिताजी?'

साहव ने मौसी से कहा—'मिसेज घोपाल, वूडी की वात सुनी?'

वन्दना ने कहा—'प्राय कहा करते हो, शादी करके झझट का अन्त कर देना चाहते हो? मैं क्या तुम्हारी आँखो की किरकिरी हूँ?'

'लडकी की वात सुनी है मिसेज घोपाल?'

मौसी वोली—'सच है वन्दना। लडकी जव सयानी हो जाती है तो माँ-वाप को कैसी घोर दुश्चिन्ता होती है, अपनी लडकी होने पर किसी दिन जानोगी।'

'मैं जानना नही चाहती मौसी।'

'किन्तु पिता का कर्त्तव्य भी तो है वेटी! माँ-वाप तो सदा रहेगे नही, सन्तान के भविष्य की चिन्ता न करना उनके लिए अपराध है। तुम्हारे पिताजी के मन को शान्ति क्यो नही मिलती। उसे केवल जो स्वय माँ-वाप है वही समझते हैं। तुम्हारी वहन प्रकृति की जव तक मैंने शादी नही कर दी तव तक न खा सकी और न सो सकी। कितनी रातें जागकर वितायी, यह तुम नही जान सकोगी, लेकिन तुम्हारे पिताजी जानेगे। तुम्हारी माँ जीवित होती तो आज उनकी मेरी जैसी दशा होती।'

रे साहव ने सिर हिलाकर कहा—'विल्कुल सच कह रही है, मिसेज घोपाल।'

मौसी उन्ही के उद्देश्य से कहने लगी—'आज इसकी माँ जीवित होती तो वन्दना के लिए आपको वह परेशान कर डालती। मैंने स्वय भी उन्हे क्या कम परेशान किया है। अव याद आने पर भी शर्म लगती है।'

साहव ने समर्थन करते हुए कहा—'दोष आपका नही है। प्राय ऐसा हुआ ही करता है।'

मौसी कहने लगी—'यही समझती हूँ। केवल चिन्ता इस वात की होती है कि आयु वढ रही है, आदमी के जीने-मरने का कोई भरोसा नही, जिन्दा रहते यदि लडकी के लिए कुछ न कर जाऊँ तो उसे न जाने क्या हो। भय से वे तो एक वार सूख गये थे।'

वन्दना से अब सहन नही हुआ, देखा उसके पिता का मुख भी सूख गया है, खाना वन्द हो गया था, बोली—'तुमने व्यर्थ ही मौसी जी को तरह-तरह से भय दिखाया है मौसी जी, और अब पिताजी को दिखा रही हो। ऐसा हुआ क्या है वतलाओ न? पिताजी अभी वहुत दिनो तक जीवित रहेगे। अपनी वेटी के लिए जो कुछ अच्छा समझते हैं उसे कर जाने के लिए वहुत समय मिलेगा। व्यर्थ ही पिताजी की चिन्ता न वढाओ।'

मौसी पीछे हटने वाली जीव नही थी। खासकर रे साहव ने उन्ही का समर्थन करते हुए कहा—'तुम्हारी मौसी ठीक ही कह रही हैं वन्दना। सचमुच मेरी तवीयत अच्छी नही है, सचमुच ही इस शरीर पर अधिक विश्वास नही किया जा सकता। वह आत्मीय हैं, समय रहते वह सावधान न करेगी तो कौन करेगा वतलाओ न? कहकर उन्होने दोनो की ओर देखा। मौसी ने कनखियो से देखा कि वन्दना का मुख उदास हो गया है, अप्रतिभ कण्ठ-स्वर मे व्यस्तता से बोल उठी—'ऐसा कहना वहुत अनुचित है मिस्टर रे। आपकी सौ वर्ष की आयु हो, हम सभी प्रार्थना करते हैं, मैंने केवल कहना चाहा था।'

वात काटकर रे साहव ने कहा—'नही, आपने ठीक ही कहा है। सचमुच ही मेरा स्वास्थ्य अच्छा नही। समय रहते सतर्क न होना कर्त्तव्य की उपेक्षा करना मेरे लिए सचमुच अनुचित है।'

वन्दना ने क्रोध दवाकर कहा—'आज पिताजी नही खायेंगे मौसीजी।'

मौसीजी ने कहा,इन वातो को जाने दीजिए मिस्टर रे। यदि आप न खायेंगेतो मुझे वहुत दु ख होगा।

साहव को भोजन की इच्छा नही रही फिर भी वरवस उन्होने एक टुकडा माँस काटकर मुँह मे डाला। इसके वाद खाना चलता रहा।

साहव ने पूछा—'दामाद की प्रैक्टिस कैसी चल रहीं है।'

मौसी वोली—'अभी तो शुरू ही की है। सुनती हूँ वुरी नही है?'

फिर कुछ देर चुपचाप वीत जाने पर उन्होंने मुख का कौर निगलकर कहा—'प्रैक्टिस कैसे भी क्यो न हो मिस्टर रे, मैं इसी को वहुत वडी चीज नही मानता हूँ। मैं कहती हूँ कि उससे भी वहुत वडी चीज है मनुष्य का चरित्र। वह निर्मल नही है तो कोई लडकी किसी दिन सचमुच ही सुखी नही हो सकती।'

'क्या इसमे भी कुछ सन्देह हे?'

मौसी कहने लगी—'मैं परेशान हूँ, मेरे पीहर की शिक्षा सस्कार वहाँ के दृष्टान्त, मेरे दिल मे जम गये हैं। उससे कही एक तिल भी कम मुझसे देखा नही जाता है। मेरे अशोक को देखकर उसी नैतिक वातावरण की वात स्मरण आ जाती है, जिसमे पली थीं। मेरे पिता, मेरे वडे भाई, वह अशोक भी विल्कुल उन्ही के समान है—वैसा ही सरल, वैसा ही उदार, वैसा ही चरित्रवान।'

रे माहव ने सोलहो आने मान लिया, वोले—'मुझे ऐसा ही जान पडता है मिसेज घोषाल। लडका वहुत अच्छा है। छ. सात दिन यहाँ रहा, उसके चरित्र से मैं मुग्ध हो गया हूँ।' यह कहकर उन्होंने वन्दना की गवाह मानकर पूछा—क्यो बूडी, अशोक हमे कितना अच्छा लगा था। जिस दिन चला गया उस दिन मेरा मन उदास हो गया।'

वन्दना ने स्वीकार करके कहा—'हाँ पिताजी, वे वडे भले आदमी हैं। जैसे विनयी वैसे ही सज्जन। मेरे किसी अनुरोध मे कभी ना नही की। यदि मुझे वह वम्वई न पहुँचा जाते तो वडी कठिनाई मे पड जाती।'

मौसी ने कहा—'और एक वात शायद लक्ष्य की होगी वन्दना उसमे अभिमान नही है। बडे दु ख के साथ कहना पडता है कि यह चीज हममे मे वहुतेरो मे दिखाई देती है।'

वन्दना ने हँसकर कहा—'तुम्हारे घर मे तो कभी किसी मे नही देखा मौसीजी।'

मौसी जी ने हँसकर कहा—'देखा क्यो नही है वेटी। तुम वहुत बुद्धिमती हो, तुम्हे चकमा कैसे दे सकते हैं?'

सुनकर रे साहव हँसे, वात उन्हे वहुत भली लगी। बोले—'इतनी वुद्धि प्राय देखने मे नही आती मिसेज घोपाल। आपके मुँह से यह अहकार की-सी वात लगती है लेकिन विना वोले रहा भी नही जाता।'

वन्दना ने कहा—'इस चर्चा को तुम वन्द करो मौसीजी, वर्ना पिता जी को सम्भालना कठिन होगा। तुमने केवल वेटी के ही दोषो को देखा है। किन्तु यह नही देखा कि एक वेटी के वाप की तरह दाँभिक लोग ससार मे कम हैं। मेरे पिताजी का विचार है कि उनकी वेटी जैसी लडकी इस ससार मे दूसरी है नही।'

मौसी ने कहा, 'इस विचार की मैं भी एक बड़ी हिस्सेदार हूँ वन्दना। मजा मिलती है तो मुझे भी मिलनी चाहिए।'

पिता के मुख पर सन्तोष की मृदु मुस्कान है। बोले—'मै अभिमानी हूँ या नही, मालूम नही, किन्तु कन्या-रत्न पाकर मै सचमुच ही सौभाग्यवान हूँ। विरले ही बापो की ऐसी बेटी होती है।'

वन्दना ने कहा—'पिताजी, आज तो तुमने एक भी संदेश नही खाया, शायद अच्छा नही बना है।'

साहब ने प्लेट से आधा संदेश तोड़कर मुख मे डाला, बोले—'सब बूढ़ी ने अपने हाथो बनायी हैं। इस बार कलकत्ते से लौटने के बाद से उसने सभी खाना बदल दिया है। किससे सुना है, मालूम नही, अब घर मे माँस प्राय आने ही नही देती। कहती है—'पिताजी उससे बीमार हो जाते हैं। देखिए, मिसेज घोषाल, यह बगाली खाना खाकर मालूम होता है कि बुढ़ापे मे बड़े आराम मे हूँ। अब कुछ अच्छी भूख लगती है।'

वन्दना ने कहा—'मौसीजी की आदत नही ह, शायद कष्ट होता है।'

मौसी बोली—'न-न, कष्ट क्यो होगा, यह मुझे अच्छा ही लगता है। केवल ननवाय्‌ ही नही, भोजन बदलना भी बहुत आवश्यक है। इसलिए शायद मेरी तबीयत इतनी शीघ्र अच्छी हो गयी।'

'अच्छी हो गयी है न मौसी जी?'

'अवश्य हुई है कुछ भी सन्देह नही।'

'तब कुछ दिन ठहर जाइये। बिल्कुल ठीक हो जाय।'

'लेकिन अधिक दिनो तक नही रहा जा सकता है वन्दना। अशोक ने लिखा है कि इस महीने के अन्त मे वह पजाब मे चेंज के लिए आयेगा। इसके पहले मुझे लौट जाना चाहिए।'

भोजन समाप्त हो चुका था, साहब उठने की सोच रहे थे, मौसी मन-ही-मन चचल हो उठी। प्रस्ताव पेश करने के पक्ष म जो अनुकूल वातावरण बनाया था, उसे शर्म मे खो देने से वापस लाना कठिन होगा। सकोच का अतिक्रमण करके बोली—'मिस्टर रे, एक बात थी यदि समय ।'

साहब ने उस समय बैठकर कहा—'न-न, समय क्यो नही। कहिए बात क्या है?'

मौसी ने कहा—'मैंने सुना है वन्दना को तो कोई इन्कार नही है। अशोक पैसे वाला नही है, यह सच है, किन्तु सुशिक्षा और चरित्र बल मे सघर्ष करके वह एक दिन ऊपर अवश्य उठेगा, यह मेरा पूर्ण विश्वास है यदि आप उसे अपनी बेटी के अयोग्य न समझे ।'

आश्चर्य से साहब ने कहा—'किन्तु यह हो कैसे सकता है मिसेज घोषाल? अशोक आपका भतीजा है। सम्बन्ध मे वह भी तो वन्दना का ममेरा भाई है।'

मौसी ने कहा—'केवल नाम से, वर्ना बहुत दूर का सम्बन्ध है। मेरी नानी और वन्दना की माँ की नानी बहिनें थी, उसी नाते मै वन्दना की मौसी हूँ। यह विवाह टल नही सकता मिस्टर रे।'

कुछ देर तक साहब चुप रहे; शायद मन-ही-मन कुछ हिसाब लगाया, फिर बोले—'अशोक को जितना मैंने स्वय देखा है और जितना वन्दना के मुँह से सुना है, उससे अयोग्य नही समझता। बिट्टो की शादी एक दिन मुझे करनी ही पड़ेगी, किन्तु उसकी इच्छा भी जानना आवश्यक है।'

मौसी मृदु-कण्ठ स्वर मे उत्साहित करते हुए बोली—'शर्माओ मत बेटी, अपने पिताजी को बतलाओ तुम्हारी क्या इच्छा है?

वन्दना का चेहरा पल-भर मे लाल हो गया, किन्तु कहने लगी, 'अपनी इच्छा को मैंने विसर्जन कर दिया है, मौसीजी। उसे ढूँढने की आवश्यकता नही।

साहब ने डरते हुए कहा—'इसका अर्थ?'

वन्दना ने कहा—'अर्थ आप लोगो को ठीक-ठीक समझाकर मैं बतला नही सकती पिताजी, किन्तु इसलिए यह न समझ लेना कि मै विघ्न डाल रही हूँ।' तनिक रुककर बोली—'मेरी सती दीदी की शादी हुई थी जब वह नौ वर्ष की थी। माता-पिता ने जिनके हाथो मे पकड़ा दिया, मझली दीदी ने उसे स्वीकार कर लिया, अपने मन से नही चुना। फिर भी भाग्य से जो उन्हे मिला, वह पति ससार मे दुर्लभ है। मैं उसी भाग्य पर विश्वास करूँगी पिताजी। विप्रदास बाबू साधु आदमी हैं, आने के पहले मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा था—'जहाँ मेरा कल्याण होगा ईश्वर मुझे वही भेजेंगे।' उनकी यह बात कभी असत्य नही होगी। तुम मुझे जो आज्ञा दोगे मैं उसी का पालन करूँगी। दिल मे कोई सशय, कोई भय न रहने दूँगी।'

आश्चर्य करके साहब चुपचाप उसकी ओर देखते रहे।

मौसी ने कहा—'शादी के समय तुम्हारी मझली दीदी बालिका थी, इसीलिए उनकी राय का प्रश्न नही उठा था। लेकिन तुम तो वेनी नही हो सयानी हुई हो, अपने भले-बुरे का उत्तरदायित्व तो तुम्हारा अपना है, अब तो आँखे मूदकर भाग्य के हाथो कठपुतली बनना तुम्हे शोभा नही देता।'

'शोभा देता है या नही यह नही जानती मौसीजी, लेकिन उनके समान उसी प्रकार ही भाग्य को मै प्रसन्नता से मान लूँगी।'

'लेकिन इस प्रकार उदासीन होकर बाते करने से तुम्हारे पिताजी का मन कैसे स्थिर होगा?'

'जिस प्रकार उनके दादा ने किया था, सती दीदी के सम्बन्ध मे, जैसे उनके सभी पुरुषो ने अपने बेटे-बेटियो के व्याह किये थे, मेरे बारे मे भी पिताजी उसी प्रकार मन स्थिर रखे।'

'तुम स्वय न कुछ देखोगी और न सोचोगी?'

'सोचना-विचारना देखना-सुनना बहुत देखा मौसीजी। और नही। अब पिताजी पर निर्भर करूँगी और उस भाग्य पर जो भविष्य मे है अभी देखा नही है।'

निराश होकर मौसी तनिक कडवे स्वर मे बोली—'हम भी भाग्य को मानते है, लेकिन तुम्हारा समाज, शिक्षा, संस्कार सभी को डुबोकर मुखोपाध्याय का इन्ही कई दिनो का साथ तुम्हे इतना बदल देगा, यह नही सोचा था। तुम्हारी बात सुनने से जान नही पडता कि तुम हमारी वही वन्दना हो। मानो हम लोगो के समाज से अलग हो गयी हो।'

वन्दना ने कहा, 'नही मौसीजी, मै गैर नही हो गयी हूँ। उन लोगो को अपना बनाने के लिए मुझे किसी को गैर नही बनाना पडेगा। इस बात को पक्के तौर से जान गयी हूँ। मेरे विषय मे तुम लोग शका न करना?'

मौसी ने पूछा—'तो एक तार भेज दूँ अशोक को आने के लिए?'

'भेज दो न। मुझे तो कोई इन्कार नही।' कहकर वन्दना कमरे के बाहर निकल गयी।

'तो आपके ही नाम से तार भेजूँ मिस्टर रे?' कहकर मौसी ने सिर ऊपर उठाकर आश्चर्य से देखा कि साहब के दोनो नेत्र अचानक डबडबा आये है। इसका कारण उनकी समझ मे न आया और साहब ने धीरे-धीरे जब कहा कि तार रहने दीजिए मिसेज घोषाल। फिर भी कारण समझ न सकी बोली—'क्यो रहने दूँ मिस्टर रे, वन्दना ने तो सम्मति दे दी।'

'नही, आज रहने दो।' कहकर वह चुप रहे। यह नीरवता और उन आँसुओ के अन्दर-ही-अन्दर मौसी को अत्यन्त क्रुद्ध किया। एक चतुर पदस्थ व्यक्ति की ऐसी भावुकता वह सहन करने के लिए प्रस्तुत नही थी। उन्हे यह असह्य था। किन्तु जिद करने का साहस भी उन्हे न हुआ। दो मिनट चुप रहकर साहब ने कहा—'उसके पिता की बात मैने सोची है, लेकिन उसकी माँ नही है, उसकी बात भी मुझे ही सोचनी पडेगी मिसेज घोषाल, जरा कुछ समय चाहिए।'

मन-ही-मन मौसी ने कहा—'एक और मूर्खताभरी भावुकता।' साहब ने अनुमान किया या नही, पता नही, किन्तु तनिक म्लान हँसी हँसकर बोले—'परेशानी यह है कि उसकी बात मानो हममे से कोई ठीक तरह समझ नही पाता है। उसने सम्मति 'न' या 'हाँ' किसमे दी, समझ ही मे नही आया।'

'इसका तात्पर्य।'

'मतलब मै नही जानता। किन्तु भली प्रकार देखता हूँ कि बगाल से वह न जाने क्या साथ लायी है, वह दिन-रात उसे घेरे रहता है। उसका भोजन बदल गया है, बाते बदल गयी है, उसका चलना-फिरना तक मानो पहले जैसा नही है। प्रात स्नान करके मेरे कमरे मे आकर पद-धूलि लेकर सिर पर लगाती है। कहता हूँ—बूढी पहले तू यह सब नही करती थी?'

तब जानती नही थी पिताजी। अब तुम्हारे पैरो की धूलि लेकर दिन शुरू करती हूँ। अच्छी प्रकार जानती हूँ कि वह दिन-भर सभी कामो मे मेरी रक्षा करती है।' कहते-कहते उनके नेत्र फिर छलछला उठे।

मौसी-मन-ही-मन झुझलाकर बोली—'यह सब नयी बाते उन मुखोपाध्याय के घर मे सीख आयी है। जानते है, वे कैसे कट्टर सनातनी है? लेकिन उसे धर्म नही कहते है। क्या पूजा-पाठ भी करती है?'

साहब ने कहा—'नही मालूम करती है या नही। शायद करती नही है। वह मुझे भी कुसंस्कार ही

लगा है, मना भी करने गया, लेकिन बूडी पहले के समान तो तर्क नही करती है, केवल चुपचाप देखती रहती है। मेरा भी मुँह बन्द हो जाता है कुछ बोल नही पाता।'

मौसी ने कहा—'यह तो आपकी दुर्बलता है, किन्तु ठीक प्रकार से जान ले उसे धर्म नही कहते है, कुसस्कार को सहारा देना अन्याय है। यह अपराध है?'

साहब ने दुविधा मे धीरे-धीरे कहा—'हो सकता है। रिलिजन केवल मुँह से ही कहता हूँ, कभी भी अध्ययन नही किया है, प्रकृति क्या है उसे नही जानता, केवल कभी मौन होकर सोचता हूँ? बूडी सोलह आने कैसे बदल गयी? वह हँसी नही है, आनन्द की चचलता नहीं है, बरसात के खिलते हुए फूलो की तरह पखुडियो जैसे जल से भीगी है। कभी पुकार कर कहता हूँ—'बूडी, मुझसे छिपाना मत बेटी, तुझे रोग तो नही हो गया है? वैसे ही सिर हिलाकर कहती है—'नही पिता जी, मैं अच्छी हूँ, मुझे कोई बीमारी नही है।'हँसती हुई घर के कामो मे लग जाती है, पर मेरा हृदय टूक-टूक हो जाना चाहता है मिसेज घोषाल। यही एक बेटी है, मा नही है, अपने हाथो से पालकर इतना बडा किया है—सर्वस्व देकर भी यदि अपनी उस वन्दना को किसी प्रकार वापिस पाऊँ ।'

मौसी ने जोर देकर कहा—'पायेगे। मैं वचन देती हूँ पायेगे। वह केवल सामजिक सुख है, केवल उन लोगो के साथ रहने का क्षणिक विकार, शादी कर दीजिए, सब दो दिन मे ठीक हो जायगा। चिरकाल की शिक्षा ही मनुष्य मे रह जाती है मिस्टर रे, दो दिन की धुन दो दिन मे ही समाप्त हो जाती है।'

साहब आश्वस्त हुए तब भी सन्देह दूर नही हुआ। बोले—'उसे कहाँ किस से प्रेरणा मिली—नही जानता, किन्तु सुना है कि यदि वह जाती है तो सच्चे मनुष्य के हृदय मे किसी प्रकार भी गुप्त नही होती है। मानव के चिरकाल के अभ्यास को क्षण मे बदल देती है। नशा खून की धारा मे मिल जाता है, सारे जीवन मे वह ठहरता नही है। इसका मुझको भय है मिसेज घोषाल।'

जवाब मे मौसी तनिक अवज्ञा की हँसी हँसकर बोली—'बेकार, सब बेकार! मैंने बहुत देखा मिस्टर रे, दो दिन के बाद कुछ नही रह जाता है। किन्तु आगे बढने नही दिया जा सकता, आज ही अशोक को एक तार भेज दूँ, वह चला आये।'

'आज ही भेजोगी?'

'हाँ, आज ही और आपके ही पते से।'

साहब ने धीमे स्वर मे सम्मति प्रकट करते हुए कहा—'जो अच्छा समझे करे। मुझे मालूम है अशोक अच्छा लडका है। चरित्रवान, साधु नही होता तो उसे साथ लेकर आने के लिए वन्दना प्रस्तुत नही होती।'

इसी बात को मौसी ने और एक बार बढ़ा-चढ़ाकर कहना चाहा लेकिन विघ्न खडा हो गया। कमरे मे घुसकर वन्दना ने कहा—'पिताजी, आज हाजी साहब की लडकियो ने मुझे चाय के लिए न्यौता दिया है। दोपहर को जाऊँगी, सध्या को ऑफिस से लौटते हुए मुझे घर लिवा लाना।

मौसी ने पूछा—'उनके घर तो तुम कुछ खाओगी नही वन्दना?'

'हाँ, मौसीजी।

'क्यो?'

'मेरा मन नही होता। तुम भूल तो नही जाओगे पिताजी?'

'नही बूडी तुम्हे लाना भूल जाऊँगा ऐसा भी कभी हो सकता है?' कहकर साहब तनिक हँसे। बोले—'अशोक आ रहे हैं। आज उन्हे एक तार भेज दूँ।'

'अच्छी बात है पिताजी, भेज दो।'

मौसी ने कहा—'मैं ही जोर देकर उसे बुला रही हूँ। आने पर देखना कही अपमान न हो।'

'कोई भय की बात नही मौसीजी, हम किसी का भी अपमान नही करते हैं, अशोक बाबू स्वय ही जानते हैं।'

लडकी की बात सुनकर साहब प्रसन्न होकर बोले—'आफिस जाते हुए आज ही उसे एक तार दे दूँगा बूडी। आज शुक्रवार है, सोमवार को वह आ पहुँचेगा, यदि कोई अडचन न हुई।'

इस समय द्वारपाल डाक लेकर आया। अखबार, अगिनत स्थानो की चिट्ठी-पत्री भी कम नही हैं।

कुछ दिनो से डाक के प्रति वन्दना की उत्सुकता नही थी। वह जानती थी कि प्रतिदिन पत्र की आशा करना व्यर्थ है। उसे याद करके पत्र लिखने वाला कोई नही। वह चली जा रही थी, साहब ने बुलाकर कहा—'ये तुम्हारे नाम के दो पत्र। एक आपका भी है मिसेज घोपाल।'

अपने से दूसरे के पत्र के प्रति मौसी का कुतूहल अधिक है। मुह चढा देखकर बोली—'देखती हूँ एक तो अशोक का लिखा हुआ है। दूसरा किसका है?'

इस व्यर्थ प्रश्न का उत्तर वन्दना ने नही दिया, दोनो पत्रों को लेकर वह अपने कमरे मे चली गयी।

साहब ने मुस्कराकर कहा—'देखता हूँ अशोक से चिट्ठी-पत्री होती है, तार भेज दूँ वह चला आये। सचमुच ही लडका अच्छा है। उस पर विश्वास न करती तो वन्दना कभी पत्र न लिखती।'

मौसी भी गर्व के साथ हँस पडी। यानी जानती हैं, बहुत कुछ।'

सन्ध्या को आफिस से लौटते हुए हाजी साहब के घर से होकर साहब अकेले लौटे। वन्दना वहाँ गयी नही। मौसी सामने ही थी, बोली—'वन्दना पत्र लेकर तभी से जो अपने कमरे मे घुसी है तो फिर निकली नही।'

साहब ने व्याकुल होकर पूछा—'क्या खाना भी नही खाया?'

'नही, सवेरे वही दो-चार फल खाये थे बस?'

'साहब ने तेजी से जाकर लडकी के कमरे के किवाड खटखटाये और बोले— 'बूडी।'

वन्दना ने द्वार खोल दिये। उसके मुख की ओर देखकर पिता अवाक् हो गये—'हुआ क्या है री?'

वन्दना ने कहा—'पिताजी, आज रात की ट्रेन से मैं बलरामपुर जाऊँगी।'

'बलरामपुर! क्यों?'

'द्विजू बाबू ने एक पत्र लिखा है—'पढोगे पिताजी?'

'बूडी, तुम पढो मैं सुनूँ।' कहकर साहब कुर्सी खींचकर बैठ गये।

वन्दना उनसे लगकर खडी हो गयी। पत्र को पढकर सुनाने लगी . सुचरितासु।

आपके जाने के दिन की याद आती है। आँगन में गाडी खडी हुई है, बोली—'बीच-बीच मे समाचार देने के लिए। बोला—'मैं आलसी आदमी हूँ चिट्ठी-पत्री लिखना सुगमता से नही होता है, बढ़िया लिखना भी नही जानता। बल्कि यह भार और किसी को दे जाएँ।'

सुनकर मौन होकर देखती रही, फिर गाडी पर जा बैठी दूसरा अनुरोध किया। शायद सोचा लज्जा जो ऐसे समय भी एक अच्छी बात मुख पर नही लाने देती है उससे कहने के लिए क्या है?

ऐसा ही हूँ मैं। फिर भी आशा थी कि यदि लिखना ही पडे तो ऐसा कुछ लिख सकूँ जो ठीक हो, वह लिखना, जिससे अनायास ही मेरे सभी अपराधो के लिए क्षमा हो।

दिल मे सोचता था—मनुष्य के लिए क्या केवल दु:ख ही है, सुख क्या संसार में नही है?

दादा के इष्ट-देवता केवल आँख मूँदे ही रहेंगे कभी खोलकर देखेंगे नही? अनहोनी जो हुई वही चिरस्थायी होकर रहेगी, उसे टालने की शक्ति क्या किसी में नही है?

मैंने देखा कि यह शक्ति कहीं भी नही है। न तो भगवान डिगे और न उनका भक्त डिगा। निष्कम्प दीप शिखा आज भी उसी प्रकार जल रही है, लेशमात्र भी कमी नही हुई।

यह चर्चा क्यो, यही बतलाऊँ। तीन दिन हुए दादा घर वापस आये हैं। सवेरे जब गाडी से उतरे उनके पीछे उतरा वासु। नंगे पैर, गले में उत्तरीय (शोक-वस्त्र)। गाड़ी लौट गयी और कोई नहीं उतरा। सवेरे की धूप में छत पर खडा था, आँखों के समाने सारा संसार अँधेरा हो गया—ठीक दिखाई पडा, फिर सब स्पष्ट हो गया! ऐसा भी होता है, इसके पहले मैं नही जानता था।

नीचे उतर आया, दादा बोले, 'तेरी भाभी कल सवेरे मर गयी, द्विजू! हाथ मे रुपये-पैसे विशेष नही हैं, साधारण ढग से उनका श्राद्ध का प्रबन्ध कर दे। कहा है माँ?'

'अपनी बेटी के घर ढाका में।'

'ढाका में?' तनिक चुप होकर बोले—'क्या जानूँ, शायद आ न सकेंगी। लेकिन मातृदाय का एक पत्र वासु उन्हें लिख दे?'

बोला—देना क्या नहीं?

दासु ने दौडकर मेरे गले से लिपट मुँह छिपा लिया। फिर रोने लगा जैसे उस क्रन्दन की भाषा नही है, उसी प्रकार पत्र मे उसे प्रकट करने को भी भाषा नही है, शिकार का पशु मरने के पहले अपनी अन्तिम फरियाद जिस भाषा मे छोड जाता है, बहुत कुछ उसी प्रकार। मैं उसे गोद मे लेकर अपने कमरे मे चला गया। वह उसी प्रकार कलेजे से मुँह लगाये रोने लगा। मन-ही-मन बोला— अरे दासु, हानि की दृष्टि मे तूने ही बहुत कुछ खो दिया ऐसा नही, और एक आदमी की हानि की मात्रा तुमसे भी बढ गयी। फिर भी तुझे समझाने के लिए आदमी मिलेगे, किन्तु उसे नही मिलेगा। केवल एक आशा है कल्पना, यदि समझती है।'

इसी प्रकार कुछ समय बीता। अन्त मे आँसू पोछकर बोला— दादा की बात नही रे, माँ न हो बाप न हो, लेकिन मैं तो हूँ। उनका ऋण उतार नही सकूँगा लेकिन अस्वीकार कभी नही करूँगा। आज सबसे अधिक दु ख सबसे अधिक क्षति के दिन यह रही तेरे चाचा की शपथ।'

परन्तु इसे लेकर अब बात बढाऊँगा नही, बात है ही क्या। बचपन मे पिताजी कहा करते थे गँवार, माँ कहती थी पगला, कितनी बार दादा अप्रसन्न हुए-अनादर उपेक्षा से कितने ही दिन यह घर विरक्त हो गया, तब भाभी पास आती बोलती, देवर, क्या चाहिए बतलाओ तो सही? अप्रसन्न होकर उत्तर दिया है, कुछ नही चाहिए भाभी, मै यहाँ से चला जाऊगा।'

'कब?'

'आज ही।'

वह हँसकर बोलती—'जाने की आज्ञा नही है। जाओ तो देखूँ मेरी बात टालकर।'

फिर जाना नही हुआ। किन्तु उन्ही जाने का दिन जब सचमुच ही आया तो वह चली गयी। सोचता हूँ, केवल मेरे लिए आज्ञा है? उन्हे आज्ञा देने के लिए क्या ससार मे कोई था नही?

दादा से पूछा—'मृत्यु कैसे हुई?' बोले कलकत्ते मे ही तबीयत खराब हुइ, शायद मन-ही-मन बहुत सोचा करती थी पश्चिम मे ले गया। लेकिन कही भी सुविधा नही हुई, अन्त मे हरिद्वार मे ज्वर हो आया, काशी लेकर चला आया। वही उनकी मृत्यु हो गयी।'

'बस।'

पूछा—'दवा-दारू की थी दादा?'

बोले—'यथासम्भव हुइ थी।'

किन्तु यह यथासम्भव कितनी है, यह दादा के अतिरिक्त और कोई जानता नही।

इच्छा हुई कि पूछूँ—मुझे इतनी बडी सजा क्यो दी? मैने क्या किया था? किन्तु उनके मुँह की ओर देखकर यह प्रश्न मुँह से न निकला।

पूछा—'किसी को कुछ नही कह गयी हे दादा?'

बोले—'हाँ। मरने के दस-एक घण्टे पहले तक होश था, पूछा, 'सती, माँ को कुछ कहोगी?'

बोली—'नही।'

'द्विजू को?'

हाँ। उसे मेरा आशीर्वाद देना।' मैं सन्न रह गया और दौडकर भाभी के स्तब्ध कमरे मे चला आया। फोटो खिचवाने मे वह बहुत लजाती थी, केवल एक फोटो उनकी आलमारी की आड मे छिपी हुई थी। मेरी ली हुई फोटो थी। सामने खडा होकर बोला—'धन्य हो गया भाभी, समझ गया तुम्हारी आज्ञा। इतनी जल्दी चली जाओगी, नही समझा था, यदि कही हो तो देखोगी तुम्हारी आज्ञा की उपेक्षा नही की है। केवल इतनी शक्ति देना, तुम्हारे शोक मे किसी के सामने और आँसू न निकले। किन्तु आज यही तक उनकी कहानी रहे।

अब रहा मै। जाने के समय आपने अनुरोध किया था शादी करने के लिए क्योकि इतना भार अकेला ढो नही सकूँगा—साथी की आवश्यकता है। वह साथी मैत्रेयी होगी, यही आपके मन मे आशा थी। उज्र नही किया था, सोचा था दुनिया का पन्द्रह आना सुख ही यदि समाप्त हो गया तो एक आने के लिए अब खीचातानी नही करूँगा, किन्तु वह भी नही होना चाहता, भाभी की मौत ने एक अलग बाधा खडी कर दी। बाधा कैसी? मैत्रेयी भार ले सकती है, वह बोझ नही ढो सकती। यह जान लिया है। अब तो मेरा बोझ बहुत भारी है। फिर भी कहूँगा—कष्ट के दिन मे उसने हमारा कुछ किया है, मैं उसका ऋणी हूँ।

कल बहुत रात का नींद टूट जाने पर वासु रोने लगा। उसे सुलाकर दादा के कमरे में गया। देखा—तब भी जागकर वे पुस्तक पढ़ रहे हैं। —'कौन-सी पुस्तक है दादा,' पुस्तक बन्द करके रखते हुए हँसकर बोले, बतला, क्या करने आया है?' उनकी ओर देखकर जो कहने आया था, वह कहा नहीं गया। सोचा, मौत से वासु रो पड़ा तो उससे विप्रदास को क्या? पूछा—'श्राद्ध के बाद कहाँ जायेंगे दादा? कलकत्ता?'

बोले—'नहीं, तीर्थयात्रा मे जाऊँगा।'

'कब लौटेंगे?'

फिर तनिक हँसकर दादा ने कहा—'नहीं लौटूँगा।'

मैं अवाक् होकर उनके मुख की ओर देखता खड़ा रहा। सन्देह नहीं रहा कि यह सकल्प टलने का नहीं। दादा ने गृहस्थ त्याग दी।

लेकिन अनुनय-विनय, रोना-पीटना किसके आगे? इसी निस्पृह निष्ठुर सन्यासी के आगे? इससे बढ़कर भी कोई अपमान है?

'किन्तु वासु?'

दादा ने कहा—'हिमालय के पास एक आश्रम का पता लगा है वे छोटे बच्चों का भार लेते हैं। शिक्षा भी वे ही देते है। उनके हाथो मे उसे सौंप दूँगा।'

उन्हे सौंप देगे इसे? और मैंने इसका लालन-पालन किया। इसके बाद दोनो हाथो से कानो को बन्द करके कमरे से भाग आया। उन्होंने क्या उत्तर दिया, सुना नहीं।

सारी रात वासु के पास बैठा सोचता रहा। इसका अन्त कहाँ होगा कुछ समझ मे नहीं आया। तुम्हारी बात स्मरण हो गयी। कह गयी थी मित्र की जब सच्ची आवश्यकता होगी, तब भगवान उसे स्वयं द्वार पर पहुँचा देंगे। इस बात पर विश्वास करने के लिए कहा था। मित्र कौन है कब वह आयेगा, नहीं मालूम फिर भरोसा किये बैठा हूँ, मेरे इस कठिन समय में वह दिन अवश्य आवेगा।

—द्विजदास

पढ़ना समाप्त होने पर देखा गया, साहब के नेत्रो से आँसू गिर रहे हैं। रूमाल से नेत्र पोंछकर बोले, 'आज ही जाओ बेटी, मैं बाधा नहीं दूँगा। दरवान और तुम्हारा बूढ़ा हिमू भी साथ जायेगा।'

उनके पैरो की धूलि लेकर वन्दना ने कहा—'जाने का प्रबन्ध करूँ।'

छब्बीस

विराजदत्त मैनेजर स्टेशन पर उपस्थित थे। वन्दना को आदर के साथ ट्रेन से उतारकर मोटर पर ला बैठाया।

वन्दना ने पूछा—'क्या आज भी माँ घर नहीं पहुँची दत्तजी?'

'नहीं दीदी।'

'मैत्रेयी?'

'नहीं, लिवाने तो उन्हे गया नहीं।'

'वासु अच्छी प्रकार है न?'

'हाँ, अच्छा है।'

'मुखोपाध्यायजी? द्विजू बाबू?'

'बड़े बाबू तो अच्छे हैं, लेकिन छोटे बाबू अच्छे नहीं जान पड़ते।'

वन्दना ने पूछा—'ज्वर तो नहीं हो गया है?'

दत्त ने कहा—'ठीक से नहीं जानता। वैसे सब काम तो करते हैं।'

कुछ देर तक चुप रहकर वन्दना ने कहा—'दत्तजी, जान पड़ता है कि माँ शायद इस दुःख के बीच आवेगी नहीं। लेकिन दुःख जितना भी हो श्राद्ध के लिए प्रबन्ध तो करना ही होगा। क्या कुछ हो रहा है?'

'क्यो, नही हो रहा है दादी। जैसा मालिक के श्राद्ध मे हुआ था, लगभग उसी प्रकार का प्रबन्ध हो रहा है।'

वात जव समझ मे न आयी तो वन्दना ने आश्चर्य से पूछा—'किसके समान कह रहे हैं, क्या मुखोपाध्याय के श्राद्ध के समान? उसी प्रकार का बडा प्रवन्ध?'

दत्त वोले, 'हॉ लगभग वैसा ही। जाकर देखोगी। वडे वावू ने बुलाकर कहा—पागलपन मत करना द्विजू, सभी चीजो की एक मात्रा होती है। छोटे वावू बोले—मात्रा है, जानता हूँ, किन्तु मात्रा का कारण सभी का एक ही प्रकार का नही होता दादा। बडे वावू ने हँसकर कहा—किन्तु तू तो सब लोगो की सभी मात्राओ को लॉघता आ रहा है। छोटे वावू बोले—तो आप लोगो से यह बिनती है कि एक वार के लिए मुझे क्षमा कीजिए। मैं मात्रा को लॉघ सकता हूँ, पर भाभी की मर्यादा का उल्लघन मुझसे नही किया जायेगा। इस पर कोई कुछ न बोला, अव यदि आप कुछ कर सके, तो करे। बीस-पचीस हजार से कम खर्च नही हो सकता।

'खर्च क्या सव छोटे वावू करेगे?'

'हॉ।'

वन्दना ने पूछा—'क्या वह उनके लिए वहुत अधिक मालूम होता है, दत्त जी?'

विराजदत्त बोले—'वहुत अधिक न होने पर भी हाल ही मे खर्च भी अधिक हुआ है दीदी। अव सँभलकर चलने की आवश्यकता है। इस पर दूसरी विपत्ति आने मे देर क्या लगती है?'

'अव दूसरी विपत्ति कैसी?'

पल भर चुप रहकर दत्त बोले—'क्या आपने नही सुना कि बहनोई जी से मुकदमा चल रहा है? इन सव चीजो का परिणाम तो जानती हैं, लेकिन कोई बतला नही सकता कि निर्णय क्या होगा।'

'तो मना क्यो नही किया?'

'मना? वे वडे वाबू नही है दीदी जो कहना मान लेगे। उन्हे मना करने वाला एक ही थी, वह अब स्वर्ग मे है।' कहकर दत्त ने लम्बी सॉस ली।

वन्दना ने आगे कुछ नही पूछा। घर के निकट आकर देखा, सामने वाले मैदान की ओर चीरी गयी लकडी के ढेर लगे है। उस दिन दयामयी के व्रत के उपलक्ष्य मे जो झोपडे वनाये गये थे, उसकी मरम्मत हो रही है। वाहर के ऑगन मे बडा मण्डप बनाया जा रहा है, वहॉ वहुतेरे लोग बहुत से कामो मे जुटे हुए हैं। विराजदत्त ने अत्युक्ति नही की है, वह उसने जान लिया।

मोटर से उतरकर वह सीधी ऊपर चली गयी। पहले द्विजदास के कमरे मे गयी। तकिये के सहारे वह लेटा हुआ था, पर्दा हटाने की आवाज से ऑखे खोल उठ बैठा, बोल—'मित्र स्वय ही घर के द्वार पर आ गया।'

वन्दना ने कहा—'हॉ आ तो गयी, लेकिन इस समय क्यो लेटे हुए हैं?'

द्विजदास ने कहा—'ऑखे मूँदकर तुम्हारा ध्यान कर रहा था और मन-ही-मन कह रहा था वन्दना, मेरे दु खो की सीमा नही है। शरीर मे शक्ति नही है, दिल मे विश्वास नही है, शायद धक्के न सह सकूँगा, किश्ती मझधार मे ही डूबेगी उस पार नही हो सकेगा।'

वन्दना ने कहा—'होगा ही। तुम्हे अवकाश देकर अव किश्ती मैं खेऊँगी।'

'अच्छी बात तो है! नाराज होकर फिर कही चली न जाना।

इसके वाद वन्दना ने पास आ घुटने टेककर प्रणाम किया फिर पदधूलि माथे पर लगा उठ खडी हुई, दोनो के ऑखो से ऑसुओ की धार बह चली। इस प्रकार से यह प्रणाम उसने पहली वार किया। वोला—तुम्हारी ऑखो से पानी गिरते हैं यह मुझे मालूम न था।'

द्विजदास ने कहा—'मैं तो नही जानता। शायद उसके आने का मार्ग अब तक बन्द था। पहले उस दिन खुला जव मैत्रेयी को लाकर गृहस्थी का भार देने के लिए कहकर चली गयी। ओट मे ऑसू पोछकर मन-ही-मन वोला—'इतना वडी चोट जो नि सकोच कर सकती है, उससे कभी भिक्षा नही मॉगूँगा। किन्तु मेरी वह प्रतिज्ञा रही नही। भाभी स्वर्ग चली गयी, दादा ने घर त्यागने की इच्छा प्रकट की, पलभर के भूकम्प से मानो सव कुछ मिट्टी मे मिल गया। इसे भी सहा, किन्तु जव सुना कि वासु भी घर त्यागकर अनजाने आश्रम मे चला जायगा, तो सहन न हो सका। अब सोचा कि जो कुछ है उसे भी कल्याणी के पुत्रो को देकर मैं भी किसी ओर चला जाऊँगा, तव अचानक तुम्हारे आने के पहले की अन्तिम बात याद

आई—कहा था कि विश्वास करने के लिए बान्धवी की सख्त जरूरत हुई, तो वह स्वय द्वारपर आयेगी। सोचा इसी का तो मुझे अन्तिम प्रयोजन है, अव प्रयोजन किस दिन होगा? इसीलिए तुम्हे पत्र लिखा। मनं मे सन्देह उठना चाहते थे, उन्हे दूर भगाकर कहता, बान्धवी आवेगी ही। वर्ना उनकी बात असत्य होगी, मिथ्या हो जायगा भाभी का आशीर्वाद। जो भार वह छोड गयी उसे मैं किस वल पर ढोऊँ।' कहते हुए ऑसू के दो बूँद उसकी ऑखो से लुढक पडे।

वन्दना ने कहा—'सभी कहते हैं कि वडे निष्ठुर हो, भाभी के अलावा और किसी की बात कभी नही सुनी है।'

द्विजदास ने कहा—'तुम्हे इसी का भय है? किन्तु न जाने क्यो नही सुना, भाभी होती तो इसका उत्तर देती।' इतना कहकर ऑखे पोछ डाली।

वन्दना ने कुछ देर मौन रहकर उसकी ओर देखकर कहा—'तुम्हारा उत्तर मिल गया। अब मुझे सन्देह नही है।' यह कहकर उसने द्विजदास के हाथ को अपने हाथो मे खीच कुछ देर मौन रहकर कहा—'तुम्हारे चारो ओर ही भूकम्प नही आया है, मेरे अन्दर भी इसी प्रकार का प्रबल भूकम्प आया है। जो कुछ भूमिसात् होना था, वह मिट्टी मे मिल गया, जो टूटने का नही, डिगने का नही, वह अटल आज प्राप्त हुआ। अब जाऊँ दादा के पास, जाने के दिन उन्होने मुझे आशीर्वाद देकर कहा था, जो तुम्हारा अपना है, मेरा आशीर्वाद उसे ही एक दिन तुम्हारे हाथो मे लाद दे। साधु की बात पर मैंने विश्वास नही किया था। निश्चित रूप से जानती थी कि उनकी यह बात सत्य ही होगी केवल यह नही सोचा था कि वह आशीर्वाद ऐसे दु ख के अन्दर से अपने आत्मीय को ला देगा। जाकर उन्हे प्रणाम कर आऊँ।'

'द्विजू, वन्दना आई है न?' यह कहकर आवाज देती हुई अन्नदा ने प्रवेश किया।

'हाँ आयी हूँ अनु दीदी।' कहकर वन्दना ने उसकी ओर देखा जो अन्नदा के गभीर शोकाच्छन्न मुख की ओर देखकर वन्दना चकित हो गयी, पास जा उसकी छाती पर सिर रखकर अस्फुट स्वर मे बोली—'तुम्हारी इस मूर्ति की मैं कल्पना भी नही कर सकी अनु दीदी।' कहने के बाद फूट-फूटकर रोने लगी।

अन्नदा की ऑखो से ऑसू वह रहे थे। धीरे-धीरे बहुत देर तक उसकी पीठ पर हाथ सहलाते हुए मृदु स्वर मे बोलने लगी—'अब अचानक चली मत जाना वन्दना, कुछ दिनो तक रहो, और अधिक तुमसे मैं क्या कहूँ?'

वन्दना कुछ बोली नही। उसकी छाती मे उसी तरह सिर छिपाये हुए स्वीकार किया। इसी प्रकार और बहुत समय बीत गया। फिर सिर उठाकर ऑचल से ऑखे पोछ बोली, 'अनु दीदी, बासु कहाँ है?'

'उसे पोखर मे नहलाने नौकर ले गये हैं।'

'उसे, खाना कौन बनाकर देता है?'

अन्नदा ने कहा—'द्विजू और वे दोनो साथ ही खाते हैं एक साथ सोते हैं।' कहते हुए फिर उनकी ऑखो मे ऑसू आ गये, पोछकर बोली, 'माँ तो केवल बासु की ही नही मरी है उसकी भी मरी है।' फिर ऑखो को पोछकर बोली—'सभी कहते हैं कि असमय मे घर की बहू मरी है, बच्चो के श्राद्ध मे इतनी धूम-धाम क्यो? उसे सभी मना करते हैं—सब कुछ अधिक देखकर सभी के शरीर मे आग-सी लग जाती है, सोचते हैं, यह तो ठीक नही है। पर जानते नही कि वह दूसरे जन्म मे उसकी माँ थी। कोई भी पुत्र उस मर्यादा मे कलक लगाना कैसे सहन कर सकता है?'

द्विजदास ने वन्दना की ओर इशारा करते हुए कहा—'अब भय की बात नही अनु दीदी, वन्दना आ गयी है, अब सारा भार उसके कधो पर डालकर मैं अलग हो जाऊँगा।'

अन्नदा ने कहा—'पराये घर की बेटी एक साथ ही इतना भार सभालोगी कैसे?'

'पराये की बेटियाँ ही तो भार ढोती है अनु दीदी। उन्होने बुलाकर कह दिया है कि इतने दु ख का भार मुझसे ढोया नही जायगा, इस पर भी यदि बासु चला जाता है तो तुम लोगो का बलरामपुर के मुखोपाध्याय का घर, रहा उनके सात पुश्त का गौरव—शशधर के लडको को बुलाकर उस गृहस्थी से मैं त्याग-पत्र दे दूँगा। केवल दादा कर सकते हैं, ऐसी बात नही है, द्विजू भी कर सकता है। संन्यास नही ले सकता, यह सही है उसे मैं समझता नही हूँ। किन्तु रुपये-पैसे के बोझ को मैं सरलता से फेककर चला जाऊँगा यह सत्य है।

वन्दना के दोनो हाथो को पकडकर अन्नदा ने कहा—'दीदी, विपिन के समान नही कर सकोगी? बासु

'रख सकूँगी अनु दीदी।'

'बहनोई जी से जो यह मुकदमा लगा हुआ है, उसे रुकवा न सकोगी?'

'हाँ, यह भी करूँगी अनु दीदी।' पल भर चुप रहकर बोली—'वह कभी मेरी बातों को टालेंगे नहीं, इस शर्त पर इस घर की छोटी बहू होने के लिए सहमत हुई अनु दीदी।'

बात को अच्छी प्रकार न समझ पाकर अन्नदा चुप हो देखती रही।

वन्दना ने कहा—'जो गया सो गया ही। इस पर क्या माँ को भी खो देना चाहिए? मुकदमा नहीं रुका तो मैं उसे लौटा लाऊँगी?'

द्विजदास ने तकिये के नीचे से चाभियों का गुच्छा निकालकर वन्दना के पैरों के पास फेंककर कहा—'यह लो! तुम्हारी बातों को टालूँगा नहीं, यह प्रतिज्ञा तुम्हारे सामने ही करता हूँ।'

वन्दना ने चाभियों के गुच्छे को लेकर आँचल में बाँध लिया। अब अन्नदा ने इसका अर्थ समझा। वन्दना को हृदय से लगा चुप रही फिर दोनों आँखों से आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें गिरने लगीं।

विप्रदास के कमरे में जाकर वन्दना ने उन्हें प्रणाम किया। बोली—'मैं आ गयी हूँ बड़े दादा।'

यह नया सम्बोधन विप्रदास के कानों में पहुँचा। किन्तु उसके विषय में कुछ न कहकर पूछा-'सुना था कि तुम आ रही हो, तुम्हारे पिताजी का तार मिला था। रास्ते में कष्ट तो नहीं हुआ?'

नहीं।

साथ में कौन आया?'

हमारा दरबान और बूढ़ा नौकर हीमू।'

पिताजी अच्छी तरह हैं?

हाँ अच्छे हैं।

विप्रदास चुप रहकर बोले, देखा द्विजू कैसा पागलपन कर रहा है?'

वन्दना बोली— आप श्राद्ध की बात कर रहे हैं न? लेकिन पागलपन कैसा है? आयोजन बड़ा ही तो होना चाहिए। ऐसा न होने से उनकी मर्यादा खण्डित जो हो जाती।'

'किन्तु सम्भालेगा कैसे वन्दना ?'

वही नहीं सम्भालेगा तो मैं सम्भालूँगी बड़े दादा।'

विप्रदास ने हँसकर कहा—'वह शक्ति तुममें है मानता हूँ। किन्तु दिमाग बिगड़ जाने से कठिन हो जायेगा। कहीं अचानक नाराज होकर चली न जाओ तो मन में विश्वास हो।'

वन्दना ने कहा—उस दिन पराये के समान आयी थी कन्धों पर कोई उत्तरदायित्व नहीं था। किन्तु आज आयी हूँ इस घर की छोटी बहू होकर अप्रसन्न कर देने से अप्रसन्न हो भी सकती हूँ, पर अब चली कैसे जाऊँगी? वह मार्ग जो बन्द हो गया।' यह कहकर उसने चाभियों का गुच्छा दिखाकर कहा— यह देखिये इस घर की सभी अलमारियों और बक्सों की चाभियाँ हैं। स्वयं उठाकर अपने आँचल में बाँधी है।

आनन्द और आश्चर्य से विप्रदास मौन हो देखते रहे। वन्दना कहने लगी— आप से लजाकर या छिपाकर बोलने को कुछ भी नहीं है। आपको अपने आशीर्वाद की याद आती है? जाने के दिन मुझे कहा था कि जो तुम्हारा वास्तव में अपना है, एक दिन तुम उसे पाओगी। उस दिन से मेरी चंचलता दूर हो गयी, शान्त हृदय से इसी बात को सोचा है कि जो जितेन्द्रिय हैं जो आजन्म शुद्ध सत्यवादी साधु हैं, उनके आशीर्वाद से अब मुझे किसी बात का भय नहीं रहा। जो मेरे स्वामी हैं वह मुझे अवश्य मिलेंगे।' इतना कह उसके दोनों नेत्रों में जल भर आया।

पास आकर विप्रदास ने उसके सिर पर हाथ रखकर मौन आशीर्वाद दिया और आज यह पहली बार वन्दना ने उनके चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। उठ खड़ी होने पर विप्रदास ने कहा—'आज तुमने जिसे पाया है वन्दना , उससे दुर्लभ वस्तु संसार में और नहीं है। मेरी इस बात को सदैव याद रखना।।

वन्दना ने कहा—'याद रखूँगी बड़े दादा। एक दिन के लिए भी नहीं भूलूँगी।'

कुछ ठहरकर बोली—'एक दिन बीमारी में आपकी सेवा की थी, आपने पुरस्कार देना चाहा था किन्तु तब नहीं लिया था—स्मरण है न वह बात?

'हाँ, स्मरण है।'

'आज वह पुरस्कार दीजिए। आसु को मैंने लिया।'

विप्रदास ने हँसकर कहा— 'ले लो।'

'मैं माँ कहकर बुलाना उसे सिखाऊँगी।'

'ऐसा ही करना। उसकी माँ और बाप दोनों को ही आज तुमसे छोड़े जाता हूँ और छोड़े जाता हूँ इस मुखोपाध्याय वंश की विशाल मर्यादा को तुम्हारे हाथों में।'

वन्दना ने पल भर सिर नीचा करके इस भार को मानो मौन होकर ग्रहण किया फिर बोली—'एक प्रार्थना और है। आपको न पहचान कर एक दिन आपके सामने अपराध किया था। अब मोह दूर हो गया, आज क्षमा चाहती हूँ?'

'क्षमा तो बहुत दिन पहले ही कर दिया है वन्दना। मैं जानता था कि तुम्हारे अन्तर ने जिसे हृदय से चाहा है, एक दिन तुम उसे पहचानोगी ही। इसीलिए मेरे सामने तुम्हें लज्जा करने की कोई बात नहीं।'

वन्दना के नेत्र फिर डबडबा रहे थे, जोर से अपने को रोककर बोली, 'एक भिक्षा और। हमारी गृहस्थी में अब क्या एक दिन भी नहीं रहेंगे? अभिमान, संकोच से किसी दिन भी जी खोलकर आपकी सेवा नहीं कर सकी लेकिन वह बाधा तो दूर हुई, अब तो मुझे लज्जा नहीं है—कुछ दिनों तक मेरे पास रहिए न? दो दिन पूजा करूँ।' यह कह सजल नेत्रों से देखती रही—उसका दुःखी कण्ठ-स्वर मानो हृदय को पार कर बाहर निकल आया।

विप्रदास चुपचाप हँसते रहे।

वन्दना ने कहा—'इस हँसमुख चुप्पी से ही मैं सबसे अधिक भयभीत हूँ बड़े दादा। कितना कठोर है आपका मन। इसे न तो पिघलाया जा सकता है, न डिगाया जा सकता है। उत्तर नहीं देंगे।'

विप्रदास हँस दिया। हँसी जैसी स्निग्ध थी, वैसी ही सुन्दर वैसी ही निर्मल। उन्हें इस प्रकार हँसते वन्दना ने पहली बार देखा। बोली—'उत्तर मिल गया, आपको तंग नहीं करूँगी। किन्तु बतला दीजिये हृदय को कैसे शान्त करूँ? वह केवल रो देना चाहता है।'

विप्रदास ने कहा—'हृदय स्वयं शान्त होगा वन्दना, जिस दिन निःसंशय होकर समझ लोगी कि तुम्हारे बड़े दादा दुःख में कूद पड़ने के लिए गृह त्यागी नहीं हुए हैं, लेकिन इससे पहले नहीं।

'किन्तु इसे मैं कैसे समझूँगी।'

'केवल मुझ पर विश्वास करके जाननी हो तो बहन मैं असत्य नहीं बोलता।'

वन्दना चुप रही। दो मिनट बाद लम्बी साँस लेकर बोली—'ऐसा ही होगा। आज से प्रयत्न करके अपने को समझाऊँगी, बड़े दादा सत्य बात कह गये हैं, वह सत्यवादी हैं, स्वयं बातों से भुलावा देकर चले गये हैं। जहाँ मानव का चरम श्रेय है उसी तीर्थ में चले गये।'

विप्रदास ने कहा—'हाँ। अपने मन को समझा कर कहो जो सबसे सुन्दर है, सबसे सच है, सबसे मधुर है, बड़े भैया उसी पथ की खोज में गये हैं। उन्हें रोकना नहीं चाहिए, उन्हें भात नहीं करना चाहिए उनके लिए शोक करना अपराध है।

वन्दना के नेत्रों में फिर जल भर गया, शीघ्रता से पोंछकर बोली—'ऐसा ही होगा, ऐसा ही होगा। यदि जीवन में फिर कभी दर्शन न मिले तो फिर भी कहूँगी भ्रम नहीं है, उनके लिए दुःख मानना अपराध है।'

पर्दे के बगल से मुँह निकालकर विराजदत्त ने कहा—'एक आवश्यक बात है दीदी, तनिक इधर तो आइये।'

'आ रही हूँ विराज बाबू। बड़े दादा, अब चलती हूँ। कहकर वन्दना कमरे से बाहर निकल गयी।

धूमधाम से सती का श्राद्ध समाप्त हुआ भिखारी, कंगाल सभी सती-साध्वी का गुणगान करते हुए वापस चले गये सभी बोले—मुखोपाध्याय वंश का कामकाज इसी प्रकार होता है।

प्रातः स्नान से अवकाश पा वन्दना प्रणाम करने के लिए विप्रदास के कमरे में जाकर आश्चर्य से ठमक कर खड़ी हो गयी—उनकी बगल में बैठी है दयामयी। प्रातः की गाड़ी से घर लौटी है, अभी तक किसी को मालूम नहीं। माँ की मूर्ति देखकर वन्दना को चोट लगी। सोने का रंग काला पड़ गया है, सिर के छोटे-छोटे केश रूखे गर्द भरे हैं, नेत्र धँस गये हैं, माथे पर रेखाएं खिंच गयी—दुःख शोक की ऐसी दुःख से भरी मूर्ति वन्दना ने पहले कभी नहीं देखी थी। उसे याद आयी उस दिन की वह ऐश्वर्यवती सर्वमयी

स्वामिनी विप्रदास की माता की। अभी कितने दिनो की बात है। आज उनका सारा गौरव मानो मार्ग की धूल मे मिल गया है। पास जाकर प्रणाम करके बोली—'कब आयी माँ? मुझे पता नही चला।'

उसकी ठुड्डी स्पर्श करके दयामयी ने चुम्बन लिया, बोली—'मेरे आने की सूचना किसलिए वन्दना ? तब आती थी विप्रदास की माँ, इसलिए गाँव घर के सभी बच्चे-बूढ़े जान जाते थे। विपिन, काम तो समाप्त हो गया बेटा चलो, माँ-बेटे आज ही चल दे।'

सुनकर विप्रदास ने हँसकर कहा—'डरो मत माँ, माँ-बेटे के जाने मे बाधा नही होगी, लेकिन आज जाना नही हो सकता। वन्दना के पिता कल आ रहे हैं, अपनी छोटी बहू को गृहस्थी समझाकर सौंपे बिना कैसे जाओगी?'

बहुत देर तक चुप रहकर दयामयी ने कहा—'ऐसा ही होगा विपिन, मुझसे सहा नही जायेगा, ऐसा असत्य मुँह से नही निकालूँगी। किन्तु अब कितने दिन शेष हैं?'

'केवल सात दिन। फिर आज ही के दिन हम चल देगे।'

वन्दना ने कहा—'घर मे अपने कमरे मे चलिए माँ।'

दयामयी ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया—'तुम्हारी यह बात रख नही सकूँगी बेटी। जितने दिन हूँ, मैं यही रहूँगी और जाने का दिन आवेगा तो इसी बाहर के कमरे से हम दोनो जने चले जायेगे। अन्दर जो कुछ है बेटी वह सारा तुम्हारा है।'

वन्दना ने आग्रह नही किया, केवल एक बार फिर उनकी पद-धूलि लेकर सिर झुकाये कमरे से बाहर चली गयी।

विप्रदास का पत्र पाने के बाद वन्दना के पिता रे साहब, एक सप्ताह की छुट्टी लेकर बलरामपुर आ गये और बूडी को द्विजू के हाथो मे सौंपकर फिर अपनी नौकरी पर वापिस चले गये।

इस शादी मे शहनाई नही बजी, वर पक्ष और कन्या मे लडाई नही हुई, लडकियो ने उलुध्वनि अस्फुट स्वर मे की, शख भी धीमे कण्ठ से बजा।

एकान्त मे द्विजदास के उदास मुख की ओर देखकर वन्दना ने पूछा—'सोच क्या रहे हो बताओ?'

द्विजदास बोला—'तुम्हारी बात सोच रहा हूँ कि तुम मुझसे बहुत बडी हो।'

'क्यो?'

'वर्ना तुमसे नही होता। बरबादी से बचाने के लिए कितने दु ख भरे पथ को पार करके पास आयी हो।'

वन्दना ने पूछा—'तुम नही आते?'

'नही आता।'

वन्दना ने कहा—'झूठ बात है। किन्तु जानते हो मैंने क्या सोचा था? तुम्हारे गले मे माला पहनाते हुए सोच रही थी, ऐसा कौन-सा पुण्य किया था कि तुम्हारे जैसा पति मिला। पाया बासु को, माँ को दादा को पाया और पाया इस बडे परिवार का सा भार। किन्तु जिस समाज की मैं लडकी हूँ उसे कितना पाना चाहिए मालूम है?'

द्विजदास ने कहा—'मालूम नही।'

वन्दना ने बोलना चाहा पर सहसा रुक गयी। बोली—'लेकिन आज नही। अपने परम सौभाग्य के दिन दूसरे की दीनता पर कटाक्ष नही करूँगी। दोष होगा।'

'नही होगा बोलिए।'

सिर हिलाकर वन्दना ने अस्वीकार किया, 'बोली,'आज तुम थके हो, तनिक सो जाओ, तुम्हारा सिर दाब दूँ।'

दो-एक मिनट के बाद कहा—'मेरी मझली दीदी की बात याद आती है, उस दिन बडे दादा के साथ उसी दम चली जाना चाहा, यह देखकर बोली—'तुमने तो झगडा नही किया है मझली दीदी तुम क्यों जाओगी? मझली दीदी बोली—'जहाँ स्वामी के लिए स्थान नही है, वहाँ स्त्री के लिए नही। एक दिन के लिए भी नही। मेरे स्वामी होते तो इस बात को जानती। उस दिन शायद इस बात को ठीक-ठीक नहीं समझा था, किन्तु आज समझ रही हूँ, तुम जहाँ नहीं होगे, वहाँ मैं एक दिन नहीं रह सकती।'

कुछ ठहर कर वोली—'अभी कुछ ही घण्टे पहले पुरोहित के साथ-साथ कुछ मन्त्रो का उच्चारण करती गयी। किन्तु जान पडता है कि जैसे मेरी देह का प्रत्येक रक्त-कण तक वदल गया।'

द्विजदास ने आँखे उठाकर उसकी ओर देखा। उसका हाथ अपनी छाती पर खीच फिर आँखे वन्द किये। कुछ कहा नही।

फिर रविवार आया। आज विप्रदास और दयामयी के जाने का दिन है। दयामयी का तीर्थ-भ्रमण एक दिन समाप्त होगा। उसका गृहस्थी का आकर्षण उन्हे शायद इसी घर मे खीच लावेगा। किन्तु विप्रदास की यात्रा समाप्त न होगी, अव उसे कोई इस घर मे वापस नही ला सकेगी। इस वात को वहुतो से सुना है। किसी ने विश्वास किया, किसी ने नही किया।

आँगन मे कार खडी है। पास-दूर सव के सव खडे हैं। स्त्रियाँ एक तल्ले के वरामदे मे खडी आँसू पोछ रही हैं, विप्रदास ने उठकर पूछा—'द्विजू नही दिखाई दे रहा है?'

कोई वोल पडा—'वह घर पर नही है, वाहर किसी काम से गये हैं।'

सुनकर विप्रदास ने हँसकर कहा—'भाग गया। वह केवल मुँह से गँवार ही है, वर्ना कायरो का गुरु है।'

वासु वन्दना का हाथ पकडे खडा था। वोला—'आप फिर कव आयेगे वावूजी? जरा शीघ्र ही आइयेगा।'

विप्रदास ने प्रश्न का उत्तर न दिया। हँसकर उसका सिर हाथ से सहला दिया।

वन्दना ने सास की पंग-धूलि ली। वोली—'वासु रहा, द्विजू रहा और रहे मन्दिर मे तुम्हारे ससुर के कुल देवता राधागेविन्द जी। कभी लौट सकी तो इन्हे तुमसे वापस लूँगी।' इतना कहकर उन्होने आँचल से आँखे पोछी।

वन्दना ने दूर से ही विप्रदास को प्रणाम किया। फिर पास आकर सजल आँखो से भरे गले से वोली—'कलकत्ते के पूजाघर मे आपकी मूर्ति को एक दिन छिपकर देखा था, आज आपकी वही मूर्ति दिखाई पड़ी वडे दादा। अव मुझे दु ख नही है, आपका पता भले ही न मालूम हो, जानती हूँ मन से जिस दिन पुकारूँगी आप अवश्य आयेगे कितना ही ना-ना क्यो न कहे, यह वात किसी प्रकार भी असत्य सिद्ध नही हो सकती।'

विप्रदास ने केवल थोडा-सा हँस दिया और जिस प्रकार पुत्र की वात का उत्तर टाल गये, उसी प्रकार वन्दना की वात का भी।

तभी गाडी चल पडी।

सुनकर सब ही खुश हुए। तब से आशु बाबू की गाड़ी और मोटर जब-तब और जिस-तिस के घर जाने आने लगी, और मर्द-औरतों को घर से लाने और घर पहुँचाने लगी। बातचीत, हँसी-मजाक, गाना-बजाना और देखने लायक चीजें बार-बार देखने की दिलचस्पी ऐसी जमने लगी कि इस बात को भूलने में किसी को भी एक सप्ताह से ज्यादा समय नहीं लगा कि ये लोग परदेशी या बहुत बड़े आदमी हैं। मगर एक बात, शायद कुछ संकोचवश और कुछ व्यर्थ-सी समझकर किसी ने स्पष्ट तौर से नहीं पूछी कि आप लोग सनातनी हैं या ब्रह्मसमाजी। और परदेश में, इनकी ऐसी कोई बड़ी जरूरत भी नहीं होती। फिर भी आचार-व्यवहार से जितना समझा जा सकता है, सबने एक तरह से समझ लिया था कि ये हों चाहे किसी भी समाज के, पर अधिकांश उच्च-शिक्षित उच्च बंगाली परिवारों के समान कम से कम खाने-पीने के विषय में इनके कोई भेद-भाव नहीं है। यह बात सबको मालूम न होने पर भी कि घर में मुसलमान बावर्ची है, इतना सब समझ गये कि इतनी उम्र तक जिन्होंने लड़की को क्वाँरी रखकर कालेज में पढ़ाया है, वे असल में किसी भी समाज के क्यों न हों, अनेक तरह की संकीर्णताओं से छुटकारा पा चुके हैं।

अविनाश मुखर्जी कालेज का प्रोफेसर है। बहुत दिन हुए उसकी स्त्री का देहान्त हो गया है,— फिर उसने ब्याह नहीं किया। घर में दस साल का एक लड़का है। अविनाश कालेज में पढ़ाता है और मित्र-दोस्तों के साथ आनन्द करता फिरता है। आर्थिक स्थिति अच्छी है,— निश्चिन्त और निरुपद्रव जीवन है। दो साल पहले विधवा साली मलेरिया बुखार से पीड़ित होकर आब-हवा बदलने बहनोई के घर आयी थी। बुखार ने छोड़ दिया, पर बहनोई ने नहीं छोड़ा। फिलहाल वही घर की मालकिन है। लड़के की देख-भाल करती है, घर-गृहस्थी सँभालती है। मित्र लोग सम्बन्ध की आलोचना करके मजाक उड़ाते हैं। अविनाश हँस देता है; कहता है—"भाई, व्यर्थ में शरमिन्दा करके अब न जलाओ। तकदीर है तदबीर' नहीं तो कोशिश करने में तो कोई कसर रखी नहीं। अब सोचता हूँ, इस की बदनामी से डकैत मार डालें, तो भी मेरे लिए अच्छा है।"

अविनाश अपनी स्त्री को बहुत ज्यादा चाहता था। मकान-भर में सर्वत्र नाना आकार और नाना भंगिमाओं के उसके फोटोग्राफ टँगे हुए हैं। सोने के कमरे में एक बड़ी तस्वीर टँगी हुई है। आईल पेण्टिंग है, कीमती फ्रेम में जड़ी हुई। अविनाश हर बुधवार को सबेरे उस पर माला लटका देता है। इस दिन उसकी मृत्यु हुई थी।

अविनाश सदा आनन्दित किस्म का आदमी है। ताश-चौपड़ से उसकी अत्यधिक आसक्ति है। इसीसे छुट्टी के दिन उसके घर लोगों का खूब समागम होता है। आज किसी त्योहार की वजह से कालेज-कचहरी बन्द है। खाने-पीने के बाद प्रोफेसरों का झुण्ड आ धमका है। दो आदमी नीचे की गद्दी पर शतरंज बिछाये बैठे हैं और दो आदमी औंधे लेटकर उसे देख रहे हैं, बाकी के सब लोग डिप्टी और मुन्सिफ की विद्या-बुद्धि की स्वल्पता के अनुपात से मोटी तनखा की नाप-तौल करके उच्च कोलाहल के साथ गवर्नमेण्ट के प्रति 'गड्चुअस इण्डिग्नेशन' और अश्रद्धा प्रकट करने में लगे हुए हैं। इतने में एक भारी-भरकम मोटरकार दरवाजे पर आ लगी। दूसरे ही क्षण अपनी कन्या के साथ आशु बाबू के भीतर प्रवेश करते ही सबने सम्मान के साथ उनका स्वागत किया। 'गड्चुअस इण्डिग्नेशन' पानी हो गया और गद्दी का शतरंज का खेल फिलहाल स्थगित कर दिया गया। अविनाश ने हाथ जोड़कर कहा, "मेरा परम सौभाग्य है कि आप लोगों के पाँवों की धूल इस घर में पड़ी।— पर अचानक असमय कैसे आना हुआ?" इतना कहकर मनोरमा के लिए उसने एक कुर्सी आगे बढ़ा दी।

आशु बाबू पास की आराम-कुर्सी पर अपने शरीर का विपुल भार रखते हुए अकारण उच्च हास्य से कमरे को गुञ्जायमान करके बोले—"आशु वैद्य (बंगालियों की एक जाति-विशेष) के लिए असमय? मेरी ऐसी बदनामी तो मेरे छोटे चाचा भी नहीं कर सके अविनाश बाबू!"

मनोरमा हँसती हुई सिर झुकाकर बोली—"कह क्या रहे हो पिताजी?" आशु बाबू ने कहा—"तो जाने दो छोटे चाचा की बात। कन्या को आपत्ति है, लेकिन इनसे बढ़कर कोई अच्छा उदाहरण बिटिया के बाप की भी ताकत नहीं कि दे सके।" इतना कहकर उन्होंने अपनी रसिकता में आनन्दोच्छ्वास के द्वारा फिर घर फाड़ डालने की तैयारी की। हँसी रुकने पर बोले—"मगर क्या कहूँ साहब, गठिया से पंगु हूँ। नहीं तो जिन चरणों की धूल का आपने इतना गौरव बढ़ा दिया है, आशु गुप्त के उन्हीं पाँवों की धूल

बुहारने के लिए आपको एक नौकर रखना पडता अविनाश बाबू! लेकिन आज बैठने का वक्त नही, अभी जाना होगा।"

इस अवकाशाभाव के कारण के लिए सभी उनके मुँह की ओर देखने लगे। आशु बाबू ने कहा–"एक निवेदन है। मजूर कराने के लिए बिटिया तक को घसीट लाया हूँ। कल भी छुट्टी का दिन है। शाम के बाद घर पर जरा गाने-बजाने का आयोजन किया है। सपरिवार पधारना होगा। उसके बाद जरा मीठा मुँह–"

लडकी से बोले–"मणि, भीतर जाकर जरा आज्ञा ले आओ बेटी। देर करने से काम न चलेगा। एक बात और है भाई, यग फ्रेण्ड्स, स्त्रियो के लिए न सही, हम मरदो के लिए दोनों तरह के खाने-पीने की व्यवस्था की गयी है, यानी समझिए,– प्रेजुडिस् अगर न हो तो,– समझ गये न?

सभी समझ गये, और एक स्वर से सभी ने प्रकट कर दिया कि उन लोगो को कोई प्रेजुडिस् नही है।

आशु बाबू ने खुश होकर कहा–"नही ही होना चाहिए।" लडकी से कहा–"मणि, खाने के सबध मे माँ-लक्ष्मियों* से भी राय ले आनी है, यह न भूल जाना। हर एक के घर जाकर लोगो की अभिरुचि जानने और आज्ञा लेकर घर लौटने तक शायद आज हम लोगो को शाम हो जायगी। जरा जल्दी काम खतम कर आओ बेटी।"

मनोरमा भीतर जाने के लिए उठना ही चाहती थी कि अविनाश कह उठे–"हमारा घर तो, बहुत दिन हुए, सूना हो गया है। मेरी साली हैं, पर वे विधवा हैं, गाना सुनने का शौक काफी है, इसलिए जायँगी जरूर। लेकिन खाना–"

आशु बाबू झट से बोल उठे–"उसकी भी कमी न होगी। अविनाश बाबू, हमारी मणि जो है। मास-मछली, प्याज-लहसुन तो यह छूती तक नही।"

अविनाश ने आश्चर्य के साथ पूछा–"ये मास-मछली नही खातीं?"

आशु बाबू ने कहा–"खाती सब-कुछ थी, लेकिन दामाद साहब की इच्छा नही,– वे जरा कुछ सन्यासी ढग के आदमी हैं–"

क्षण-भर मे मनोरमा का सारा चेहरा सुर्ख हो उठा। वह पिता की असमाप्त बात मे बाधा देकर बोली–"तुम यह सब क्या कहे जा रहे हो बाबूजी!"

पिता अप्रतिभ-से हो गये, पर कन्या के कण्ठ-स्वर की स्वाभाविक मृदुता उसके भीतर की तिक्तता को छिपा न सकी।

इसके बाद फिर बातचीत जमी नही, और भी दो-चार मिनट जो ये लोग बैठे रहे, उस बीच आशु बाबू तो बात करते रहे, पर मनोरमा कुछ अन्यमनस्क रही। इन दोनो के चले जाने पर कुछ देर के लिए सभी के मन के ऊपर जैसे एक अप्रिय विषाद का भार लदा रहा।

मित्रो मे से किसी से किसी ने भी स्पष्ट कुछ नही कहा, मगर सभी सोचने लगे कि सहसा एक दामाद साहब कहाँ से आ धमके? आशु बाबू के कोई लडका नहीं, मनोरमा ही एक-मात्र सन्तान है, इस बात को सभी जानते थे। मनोरमा आज तक कुँआरी है,– विवाहिता या सधवा का कोई चिन्ह उसमें मौजूद नही है। बात स्पष्ट तौर से पूछकर किसी ने जान लेना नही चाहा था, पर इस विषमय सशय की हवा भी तो किसी के मन तक नहीं फटकी थी। तो फिर?

मगर फिर भी, ये सन्यासी ढग के दामाद साहब चाहे जो हो और चाहे जहाँ हो, मामूली आदमी नही हैं। कारण, उनकी मनाही नही, सिर्फ अनिच्छा के जोर से ही इतने बडे विलासी और ऐश्वर्यशाली व्यक्ति की एकमात्र शिक्षिता कन्या का मास-मछली और प्याज-लहसुन खाना एकबारगी बन्द हो गया है।

इसमे शरमाने और छिपाने की कौन-सी बात है? पिता मारे सकोच के जड हो गये, कन्या चेहरा सुर्ख करके स्तब्ध हो रही, सारा मामला सबके मन मे मानो एक अवाञ्छित और अप्रिय रहस्य की तरह चुभकर रह गया और आगन्तुक परिवार के साथ मिलने-जुलने की जो सहज और स्वच्छन्द धारा बह रही थी, मानो उसमे अकस्मात् एक बाधा-सी आ पडी।

---

* बगाल में यह स्त्रियों के प्रति सम्मान और स्नेहसूचक शब्द समझा जाता है।

२

मालूम तो ऐसा हुआ था कि शायद आशु वावू शहर के किसी को भी नही छोडेगे, लेकिन देखा गया कि वगालियो में जो विशिष्ट लोग हैं, वे ही निमन्त्रित हुए हैं। प्रोफेसरो का दल गिरोह वॉधकर आ पहुँचा और उनके घर की स्त्रियो को पहले से ही मोटर भेजकर वुला लिया गया है।

एक वडे कमरे के फर्श पर लम्वा-चौडा कीमती कार्पेट विछाकर लोगो के वैठने के लिए जगह की गयी है। उस पर दो-तीन देशी उस्ताद बैठे साज का स्वर वॉध रहे हैं। वहुत से वच्चे उन्हे घेरे बैठे हैं। घर के मालिक साहव अन्यत्र कही थे, खवर पाते ही दौडे-दौडे आये, और दोनो हाथ उठाकर थियेट्रिकल ढग से वोले—"स्वागत सज्जनगण! मोस्ट वेलकम्!"

फिर उस्तादो को इशारे से दिखलाकर और ऑख मिचकाकर धीमे स्वर से वोले—"डरने की कोई वात नही। सिर्फ इन्ही लोगो की म्यॉऊँ-म्यॉऊँ सुनने के लिए ही आप लोगो को निमन्त्रण देकर नही वुलाया है। ऐसा गाना सुनायेगे कि मुझे आप लोग आशीर्वाद देते हुए घर लौटेगे।"

सुनकर सभी खुश हुए। सदा-प्रसन्न अविनाश वावू का चेहरा आनन्द से चमक उठा। वोले—"कहते क्या हैं आशु वावू? इस अभागे देश के तो सभी लोगो को मैं जानता हूँ, अकस्मात् यह रत्न पा कहाँ से गये?"

"आविष्कार किया है साहव, आविष्कार किया है। आप लोग भी बिलकुल ही न पहचानते हो, सो वात नही है,— अव शायद भूल गये होगे। चलिए, दिखाता हूँ।" अपनी बैठक का परदा हटाकर सवको वे एक तरह से ढकेलते हुए ही भीतर ले गये।

आदमी तो कुछ सॉवले रग का है, पर रूप का अन्त नही। जैसा लम्वा छरहरा शरीर, वैसा ही सारे अवयवो का निर्दोष गठन। नाक, ऑखे, भौहें, ललाट, अधरो की तिरछी रेखा तक सारी विशेषताएँ एक ही मानव-शरीर मे सुविन्यस्त हो चुकने पर वह कैसी विस्मय की वस्तु हो जाती है, यह वात उस आदमी को वगैर देखे कल्पना नही की जा सकती। देखते ही सहसा दग रह जाना पडता है। उमर शायद वत्तीस के आस-पास पहुँची होगी, मगर पहले वह और भी कम मालूम होती है। सामने के सोफे पर बैठे वे मनोरमा से वात कर रहे थे, अव सीधे होकर वैठ गये और मुसकराकर वोले—"आइए।"

मनोरमा ने उठकर आगन्तुक अतिथियो को नमस्कार किया परन्तु अकस्मात् सव ऐसे विचलित हो उठे कि प्रति नमस्कार की वात भी किसी के मन मे न आयी।

अविनाश वावू उमर मे भी वडे थे और कालेज के लिहाज से पद-गौरव में भी सवसे श्रेष्ठ थे। सवसे पहले उन्होने वात की। वोले—"आगरे कव लौटे शिवनाथ वावू? वहरहाल, हम लोगो को तो खवर भी नही लगी।"

शिवनाथ ने कहा—"नही मिली? आश्चर्य है!" और फिर मुसकराकर वोले—"मैं नही समझता था अविनाश वावू कि मेरे आने की वाट देखते हुए आप लोग इतने उद्विग्न हो रहे थे।"

उत्तर सुनकर अविनाश वावू ने यद्यपि हँसने की कोशिश की, किन्तु उनके सहयोगियो के चेहरे, क्रोध से भीषण हो उठे। किसी भी कारण से हो, ये लोग पहले से ही इस प्रियदर्शन गुणी व्यक्ति से प्रसन्न नहीं हैं। यह वात आभास से मालूम होने पर भी एककी इस वक्रोक्ति के भीतर से और सवकी कठिन मुखच्छवि की व्यजना से इतनी कटु, अप्रिय और स्पष्ट हो उठी कि सिर्फ मनोरमा और उसके पिता ही नही वल्कि सदानन्द-प्रकृति के अविनाश तक लज्जित हो गये।

परन्तु मामला आगे नही वढ पाया, यही रुक गया।

वगल के कमरे से उस्तादजी की आवाज सुनाई दी और दूसरे ही क्षण घर के गुमाश्ते ने आकर विनय के साथ कहा, "सव तैयार है, सिर्फ आप लोगो के पहुँचने भर की देर है।"

पेशेवर उस्तादो का सगीत साधारणत जैसा हुआ करता है, यहाँ भी वैसा ही हुआ, विशेषताहीन मामूली। मगर कुछ देर वाद इस छोटी-सी सगीत-सभा मे थोडे-से श्रोताओ के वीच शिवनाथ का गाना सचमुच ही अपूर्व सुनाई दिया। सिर्फ उसका अतुलित, अनवद्य कठस्वर नही, वास्तव मे वह इस विद्या मे असाधारण सुशिक्षित और पारदर्शी है। उसके गाने का आडम्वर-शून्य सयत ढग, स्वर की स्वच्छन्द सरल गति, चेहरे पर अदृष्टपूर्व भावो की छाया, ऑखो की अभिभूत उदासीन दृष्टि सव वातो ने एक ही

समय में केन्द्रीभूत होकर सर्वांगीण लय और तान से परिशुद्ध जब वह संगीत समाप्त किया तब मालूम हुआ कि श्वेतभुजा ने अपने दोनों हाथ खाली करके सारा का सारा आशीर्वाद इस साधक के माथे पर उड़ेल दिया है।

कुछ देर तक सभी लोग वाक्यहीन स्तब्ध हो रहे, सिर्फ वृद्ध अमीर खाँ ने धीरे से कहा—'ऐसा कभी नहीं सुना।'

मनोरमा को बचपन से ही गाने-बजाने का शौक है। संगीत में वह अपटु नहीं थी। अपने छोटे से जीवन में उसने बहुत-कुछ सुना है, लेकिन यह बात उसे नहीं मालूम थी कि संसार में ऐसी चीज भी मौजूद है और संगीत के छन्द-छन्द की कसक हृदय के भीतर इस तरह भी उठ सकती है। उसकी दोनों आँखें भर आयीं और उसे छिपाने के लिए मुह फेरकर वह चुपचाप उठकर चली गयी।

अविनाश ने कहा—"शिवनाथ गाने को जल्दी तैयार नहीं होता, उसका गाना हम लोगों ने पहले भी सुना है लेकिन उसकी इससे कोई तुलना ही नहीं हो सकती। इस सारा-भर के अन्दर तो उसने इर्नाफिनिट्ली इम्प्रूव किया है।"

हरेन्द्र ने कहा—"हाँ।'

अक्षय इतिहास के अध्यापक हैं। कठोर सच्चे आदमी के रूप में मित्र-मण्डली में उनकी ख्याति है। गाना-बजाना अच्छा लगना उनके मत से मन की कमजोरी है। वे निष्कलंक साधु आदमी हैं। इसी से सिर्फ अपना ही नहीं, दूसरों की चरित्र-सम्बन्धी पवित्रता के प्रति भी उनकी अत्यन्त सजग तीक्ष्ण दृष्टि है। शिवनाथ के अकस्मात् वापस लौट आने के कारण शहर की आब-हवा फिर से कलुषित न हो जाय इस आशंका से उनकी गंभीर शांति क्षुब्ध हो गयी है। खासकर इस बात की सम्भावना से उनका मन बहुत उद्विग्न हो उठा कि घर में औरतें आ गयी हैं, वे भी परदे की ओट से गाना सुनेंगी, चेहरा देखेंगी और वह उन्हें भी पीलिकर लगेगा। वे बोले—"गाना तो सुना था मधु बाबू का। यह गाना आप लोगों को चाहे जितना भी मीठा लगा हो, पर इसमें प्राण नहीं है।"

सब चुप रहे। कारण एक तो अज्ञात मधु बाबू का गाना किसी ने सुना नहीं था और दूसरे गाने में प्राण रहने न रहने की सुनिर्दिष्ट धारणा अक्षय की तरह और किसी के निकट स्पष्ट नहीं थी। गुण-मुग्ध आशु बाबू उत्तेजनावश तर्क करने को तैयार थे, पर अविनाश ने आँखों के इशारे से उन्हें रोक दिया।

संगीत ही के विषय में आलोचना होने लगी। कब, किसने, कहाँ, कैसा गाना सुना था, उसकी व्याख्या और वर्णन किया जाने लगा। बातों ही बातों में रात बढ़ने लगी। भीतर से खबर आयी कि औरतें सब भोजन कर चुकीं, और उन्हें घर भेजा जा रहा है। वृद्ध सब-जज साहब रात हो जाने की वजह से घर चल दिये और अजीर्ण रोगग्रस्त सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब भी जल और पान-मात्र मुँह में देकर उनके साथी हुए। रह गया सिर्फ पार्टनर-दल। क्रमशः उनकी भी भोजन के लिए बुलाहट हुई। ऊपर के खुले बरामदे में आसन बिछाकर पत्तलें लगायी गयी हैं, सबके साथ आशु बाबू भी बैठ गये। मनोरमा औरतों की तरफ से छुट्टी पाकर देख-रेख के लिए आ पहुँची।

शिवनाथ को भूख भले ही हो, पर खाने में रुचि नहीं थी। वह बिना खाये ही घर लौटने को तैयार था, मगर मनोरमा ने किसी भी तरह उसे छोड़ा नहीं, कह-सुनकर सबके साथ बिठा दिया। आयोजन बड़े आदमियों जैसा ही था, इस बात का विस्तार के साथ वर्णन करके कि रेल से आते वक्त टूण्डला में शिवनाथ के साथ कैसे आशु बाबू का परिचय हुआ और मात्र दो दिन की बातचीत में कैसे वह परिचय घनिष्ठ आत्मीयता में परिणत हो गया, आशु बाबू ने अपना कृतित्व प्रमाणित करने के लिए कहा—"अजी, सबसे बढ़कर खूबी है मेरे कानों की। उनके गले की अस्फुट मामूली-सी गुंजन-ध्वनि से ही मैं निश्चित समझ गया कि कोई गुणी पुरुष, असाधारण व्यक्ति हैं।"—इतना कहकर उन्होंने कन्या को साक्षी के तौर पर बुलाकर कहा—"क्यों बेटी, कहा नहीं था तुमसे, शिवनाथ बाबू भारी गुणी आदमी हैं? कहा नहीं था मणि, इनके साथ जान-पहचान होना जीवन में एक सौभाग्य की बात है?"

लड़की का चेहरा मारे आनन्द के दीप्त हो उठा, बोली—"हाँ बाबूजी, तुमने कहा था। तुमने गाड़ी से उतरते ही मुझे बताया था कि—"

'मगर देखिए आशु बाबू—"

वक्ता थे अक्षय। सब चकित हो गये। अविनाश ने व्यग्र होकर रोकने की कोशिश की—'ओ हो

रहने दो अक्षय। रहने दो आज यह सब चर्चा—"।

अक्षय ने आँखें मींचकर आखों के लिहाज की बला टालकर कई बार सिर हिलाया और कहा— "नहीं अविनाश बाबू, दबाने से काम नहीं चलेगा। शिवनाथ बाबू की सारी बातें प्रकट कर देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। आप—"

"ओ हो हो,—करते क्या हो अक्षय, कर्तव्य का ज्ञान तो हम लोगों को भी है साहब,—और किसी दिन देखा जायगा—" इतना कहकर अविनाश ने उसे एक धक्का देकर रोकने की कोशिश की, पर सफलता नहीं मिली। धक्के से अक्षय का शरीर हिल गया, पर कर्तव्यनिष्ठा नहीं हिली। बोले—"आप लोग जानते हैं कि व्यर्थ का संकोच मेरे नहीं है। अनीति को प्रश्रय मैं दे ही नहीं सकता।"

असहिष्णु हरेन्द्र बोल उठा—"अरे, सो क्या हम भी प्रश्रय देना चाहते हैं? लेकिन उसके लिए क्या कोई स्थान-काल नहीं?"

अक्षय ने कहा—"नहीं। ये अगर इस शहर में फिर से न आते, अगर उच्च परिवार में घनिष्ठता बढ़ाने की कोशिश न करते, खासकर कुमारी मनोरमा का अगर कोई सम्बन्ध न होता—"

उद्वेग के कारण आशु बाबू व्याकुल हो उठे और अज्ञात आशंका से मनोरमा का चेहरा फीका पड़ गया।

हरेन्द्र ने कहा—"इट इज टू मच।"

अक्षय ने जोर के साथ प्रतिवाद किया—"नो, इट इज नॉट।"

अविनाश बोल उठे—"ओ हो—कर क्या रहे हो तुम लोग।"

अक्षय ने किसी बात पर ध्यान ही नहीं दिया। बोले—"आगरे में ये भी किसी दिन प्रोफेसर थे। इनको आशु बाबू को बतलाना चाहिए था कि कैसे वह नौकरी छूटी।"

हरेन्द्र ने कहा—"अपनी इच्छा से छोड़ दी। पत्थर का कारोबार करने के लिए।

अक्षय ने खण्डन किया—"झूठी बात है।"

शिवनाथ चुपचाप भोजन कर रहा था, मानो इन सब वितण्डा-वाद से उसका कोई सम्बन्ध ही न हो। अब उसने मुँह उठाकर देखा और अत्यन्त स्वाभाविक भाव से कहा— बात तो झूठी ही है। कारण, प्रोफेसरी अपनी इच्छा से नहीं छोड़ता तो दूसरों की यानी आप लोगों की इच्छा से छोड़नी पड़ती। और सो ही हुआ।

आशु बाबू ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्यों?"

शिवनाथ ने कहा—"शराब पीने की वजह से।"

अक्षय ने इस बात का प्रतिवाद किया—"नहीं, शराब पीने के कसूर पर नहीं, मतवाले होने के कसूर से।"

शिवनाथ ने कहा— "जो शराब पीता है, वही तो कभी-न-कभी मतवाला होता है। जो नहीं होता, वह या तो झूठ बोलता है, या शराब के बदले पानी पीता है।" कहकर वह हँसने लगा।

अक्षय मारे क्रोध के कठोर हो उठा। बोला— निर्लज्ज की तरह आप हँसना चाहें तो हँस सकते हैं। मगर इस कसूर को हम लोग माफ नहीं कर सकते।"

शिवनाथ ने कहा— "आप माफ कर सकते हैं। ऐसा दोष मैं लगा नहीं सकता। इस सत्य को मैं स्वीकार करता हूँ कि स्वेच्छा से मुझसे नौकरी छुड़ाने के लिए आप लोगों ने स्वेच्छा से काफी परिश्रम किया था।"

अक्षय ने कहा— तो आशा है कि और भी एक सत्य आप इसी तरह स्वीकार कर लेंगे। आपको शायद मालूम नहीं कि हम लोग आपकी बहुत-सी बातें जानते हैं।"

शिवनाथ ने गर्दन हिलाकर कहा—"नहीं, मुझे नहीं मालूम। फिर भी इतना अवश्य जानता हूँ कि औरों के विषय में आपका कुतूहल जैसा अपरिसीम है, दूसरों की बात जानने का अध्यवसाय भी वैसा ही विपुल है। क्या स्वीकार करना होगा, फरमाइए?"

अक्षय ने कहा—"आपकी स्त्री मौजूद है। उसे छोड़कर आपने फिर ब्याह किया है। सच है या नहीं?"

आशु बाबू सहसा गुस्सा हो पड़े— "आप यह सब क्या कह रहे हैं अक्षय बाबू? ऐसा भी कहीं हुआ है या हो सकता है?

शिवनाथ खुद ही बीच में टोककर बोले—"पर ऐसा ही हुआ है आशु बाबू। उन्हे छोडकर, मैंने फिर से व्याह किया है।"

"कहते क्या हैं? क्या हुआ था?"

शिवनाथ ने कहा—"विशेष बात नही। वे हमेशा बीमार रहती हैं, उमर भी तीस हो चली। औरतों के लिए इतना ही काफी है। उस पर लगातार बीमारी भुगतने के कारण दाँत गिर गये, बाल पक गये, बिलकुल बूढ़ी हो गयी हैं। इसीलिए उन्हें छोडकर दूसरा व्याह करना पडा।"

आशु बाबू विह्वल दृष्टि से उसके चेहरे की तरफ देखते रह गये—"ऐं! सिर्फ इसीलिए? उनका और कोई अपराध नही?"

शिवनाथ ने कहा—"नही। कोई झूठा दोष लगाने से लाभ ही क्या है आशु बाबू?" उसकी इस निर्मल सत्यवादिता से अविनाश मानो पागल हो उठा—"लाभ ही क्या है आशु बाबू! पाखण्डी कही के! तुम्हारा लाभ-नुकसान चूल्हे मे जाय, एक बार झूठ ही बोल जाते कि उसने गम्भीर अपराध किया था, इसी से उसे छोड दिया है। एक झूठ से तुम्हारा पाप नही बढ जाता!"

शिवनाथ गुस्सा नही हुआ। सिर्फ इतना ही बोला—"मगर इस तरह की गलत बात में नही कह सकता।" हरेन्द्र सहसा जल-भुन गया, बोला—"विवेक जैसी चीज क्या आपके अन्दर है ही नही शिवनाथ बाबू?"

शिवनाथ को इतने पर भी गुस्सा न आया। उसने शान्त भाव से ही कहा—"ऐसा विवेक अर्थहीन है। झूठे विवेक की जजीर पैरो मे डालकर अपने को पगु बना डालने का हिमायती में नही हूँ। हमेशा दुःख भोगते चलना ही तो जीवन-धारण का उद्देश्य नही है?"

आशु बाबू इस गम्भीर व्यथा से आहत होकर बोले—"मगर आप अपनी स्त्री का दुःख तो जरा सोच देखिए। उनका रोगी रहना परिताप का विषय हो सकता है, लेकिन सिर्फ इसी वजह से,—बीमार रहना तो कोई कसूर नही शिवनाथ बाबू! बिना किसी दोष!"

"बिना किसी दोष के मैं ही भला दुःख क्यो सहता रहूँ? ऐसा विश्वास मेरा नही है कि एक का दुःख और किसी के सर पर लाद देने से न्याय होता है।"

आशु बाबू ने आगे बहस नही की। वे सिर्फ एक गहरी साँस लेकर चुप हो रहे।

हरेन्द्र ने पूछा—"यह व्याह हुआ कहाँ?"

गाँव ही मे।"

"सौत के होते हुए लडकी दे दी! शायद इसके माँ-बाप नही है?"

शिवनाथ ने कहा—"नही। हमारे यहाँ की नोकरानी की विधवा लडकी है।"

"घर की नौकरानी की लडकी है? खूब! खूब! जात क्या है?"

"ठीक नही मालूम। शायद जुलाहिन-उलाहिन होगी।"

अक्षय बहुत देर से बोला नही था अब पूछ उठा—"उसको अक्षर-बोध भी नही होगा शायद?"

शिवनाथ ने कहा—"अक्षर-बोध के लोभ मे तो व्याह किया नही, किया है रूप के लिए। और इस चीज का शायद उसमे अभाव नही है।"

इस उक्ति के बाद मनोरमा ने फिर एक बार उठने की कोशिश की, परन्तु इस बार भी उसके पाँव पत्थर की तरह भारी हो रहे। कुतूहल और उत्तेजनावश किसी ने उसकी तरफ देखा नही। देखते तो शायद डर जाते।

हरेन्द्र ने कहा—"तो, यह शायद सिविल व्याह ही हुआ?"

शिवनाथ ने गरदन हिलाकर जवाब दिया—"नही, व्याह हुआ शैवमत से।"

अविनाश ने कहा—"यानी धोखा देने का रास्ता दसो दिशाओ मे खुला रक्खा, क्यो न शिवनाथ?"

शिवनाथ ने हँसकर कहा—"यह तो क्रोध की बात है अविनाश बाबू! नही तो, पिताजी खुद अपनी मौजूदगी में मेरा जो व्याह कर गये हैं, उसमे तो कोई धोखेबाजी नही थी। मगर फिर भी धोखा तो रह ही गया था। उसे ढूँढ निकालने की आँखे होनी चाहिए।"

अविनाश से कोई उत्तर देते न बन पडा सिर्फ उसका चेहरा मारे क्रोध के सुर्ख हो गया।

आशु बाबू चुपचाप सिर झुकाये बैठे हुए सोचने लगे—यह क्या हुआ! यह क्या हुआ!

दो-तीन मिनट तक किसी के भी मुँह से कोई बात नही निकली, निरानन्द और कलह की घुटती हुई हवा से घर भर गया। बाहर से एक जोर का हवा का झोका आये बिना बेचैनी दूर नही हो सकती, ऐसा ही कुछ मनोभाव लिये हुए अविनाश बाबू अकस्मात् बोल उठे—"जाने दो ये सब बाते। हाँ, तो शिवनाथ अब वही पत्थर का काम कर रहे हो क्या।"

शिवनाथ ने कहा—"हाँ।"

तुम्हारे मित्र के नाबालिग लडके-लडकियो का इन्तजाम तो तुम्ही को करना पडता होगा? उनकी माँ है न? हालत कैसी है? उतनी अच्छी तो नही है शायद?"

"नही, बहुत ही खराब है।"

अविनाश ने कहा—"उफ्, अचानक मर गये,— हम लोगो ने सोचा था कि रुपया-पैसा कुछ छोड गये होगे। लेकिन हाँ, तुम्हारे मित्र जरूर थे। अकृत्रिम, सुहृद, जिगरी दोस्त!"

शिवनाथ ने गर्दन हिलाकर कहा—"हाँ, हम दोनो पाठशाला मे एक साथ ही पढे थे।"

अविनाश ने कहा—"इसी से उस समय वे तुम्हारे लिए इतना कर सके थे ।" जरा ठहरकर कहा—"लेकिन खैर, जो भी कुछ हो शिवनाथ, अब अकेले तुम्ही को जब सारा कारोबार देखना पडेगा तो इसमे अपना कुछ हिस्सा रखने का क्यो नही दावा करते? तनखाह की तरह—"

शिवनाथ ने बात खतम नही होने दी। बोला—"हिस्सा काहे का? कारोबार तो मेरा अकेले का है।"

प्रोफेसरो का दल मानो आसमान से गिर पडा। अक्षय ने कहा—"पत्थर का कारोबार अचानक आपका हो कैसे गया शिवनाथ बाबू?"

शिवनाथ ने गम्भीर होकर जवाब दिया—"मेरा तो है ही।"

अक्षय ने कहा—"किसी तरह नही। हम सभी जानते हैं, योगीन्द्र बाबू का है।"

शिवनाथ ने जवाब दिया—"जानते हैं तो अदालत मे जाकर गवाही क्यो नही दे आये? कोई डॉकुमेंट था? सुना था?"

अविनाश ने चौककर प्रश्न किया—"नही, सुना तो कुछ भी नही। लेकिन मामला क्या अदालत तक पहुँच गया था?"

शिवनाथ ने कहा—"हाँ। योगीन्द्र के साले ने नालिश की थी। डिग्री मुझको ही मिली है।"

अविनाश साँस छोडकर बोला—"अच्छा हुआ। आखिरकार विधवा को कुछ देना नही पडा।"

शिवनाथ ने कहा—"नही। खालिम ने 'चाप' तो खूब बनाये हैं भई। और भी दो-एक ले आओ।"

आशु बाबू भावाविष्ट की भाँति बैठे थे, चौंककर बोले—"यह क्या, आप लोग तो कुछ भी नही खा रहे हैं?"

भोजन की रुचि और भूख सभी की गायब हो चुकी थी। मनोरमा चुपके से उठकर जा रही थी, शिवनाथ ने बुलाकर कहा—"वाह, हम लोगो का खाना खतम नही हुआ और आप चली जा रही हैं?"

मनोरमा ने इस बात का उत्तर नही दिया मुडकर देखा तक नही, मारे घृणा के उसके सारे शरीर मे काँटे उठ आये।

३

उस घटना को बीते एक सप्ताह हो चुका। दो दिन से असमय मे बादल घिर-घिर आते हैं और वर्षा शुरू हो जाती है, आज भी सबेरे से बीच-बीच मे पानी पड रहा है। दोपहर को कुछ देर बन्द रहा, मगर बादल हटे नही। आकाश की हालत ऐसी है कि किसी समय वर्षा शुरू हो सकती है, इतने मे मनोरमा घूमने के लिए तैयार होकर अपने पिता के कमरे मे जा पहुँची। आशु बाबू मोटी-सी एक चादर ओढे आराम कुरसी पर बैठे थे,उनके हाथ मे एक किताब थी। लडकी ने आश्चर्य के साथ पूछा—"वाह पिताजी, तुम अभी तक तैयार ही नही हुए। आज तो हम लोगों की एतवारी खाँकी कब्र देखने जाने की बात थी।"

"बात तो थी बेटी, लेकिन आज मेरी कमर मे वात का दर्द—"

"तो मोटर वापस ले जाने के लिए कह दूँ? फिर कल ही चले चलेगे, क्यो ठीक है न पिताजी?"

पिता ने टोकते हुए कहा—"नहीं, नही, न घूमने से तेरा सिर दुखने लगेगा। तू न हो तो, थोडा

घूम-फिर आ। मैं तब तक यह मासिक-पत्रिका देख लूँ। कहानी लिखी अच्छी है।"

"अच्छा, मैं जाती हूँ। पर लौटने मे मुझे देर नही होगी। आकर तुमसे कहानी सुनूँगी, सो अभी कहे जाती हूँ।" यह कहकर वह अकेली ही घूमने निकल गयी।

घण्टे-भर के अन्दर ही मनोरमा घर लौट आयी और पिता के कमरे मे घुसते-घुसते बोली—"कैसी कहानी है पिताजी? खतम हो गयी? किसने लिखी है?"

मगर बात मुँह से निकलने के बाद ही वह चौंक पडी, देखा कि कमरे मे पिता अकेले नही है, सामने शिवनाथ बैठा है।

शिवनाथ ने उठकर नमस्कार किया और कहा—"कहाँ तक घूम आयी?"

मनोरमा ने जवाब नही दिया, सिर्फ नमस्कार के बदले मे जरा-सा सिर हिलाकर उसकी तरफ पूरी तरह से पीठ करके पिता से कहा—"पूरी पढ चुके पिताजी? कैसी लगी?"

आशु बाबू ने इतना ही कहा—"नही।"

कन्या ने कहा—"तो मैं ले जाऊँ, पढके अभी तुम्हे वापस दे जाऊँगी।" इतना कहकर वह पत्रिका हाथ मे लेकर चल दी। परन्तु अपने सोने के कमरे मे आकर वह चुपचाप बैठी रही। कपडे बदलना, हाथ मुँह धोना वगैरह सब काम पडा रहा, पत्रिका एक बार खोलकर देखी तक नही कि कौन-सी कहानी है, किसने लिखी है अथवा कैसी लिखी है।

इस तरह बैठी-बैठी वह क्या सोचने लगी, कोई ठिकाना नही। कुछ देर बाद नौकर को सामने से जाते देख उसने पूछा—"अरे, पिताजी के कमरे से वह आदमी चला गया?"

बेहरा ने कहा—"जी हाँ।"

"कब गया?"

"पानी पडने से पहले ही।"

मनोरमा ने खिडकी का परदा हटाकर देखा, बात ठीक है। फिर वर्षा शुरू हो गयी है, पर ज्यादा नही। ऊपर की ओर देखा, पश्चिम के आकाश मे बादल घनघोर होते आ रहे हैं और इस बात की सूचना दे रहे हैं कि रात को मूसलाधार पानी पडेगा। पत्रिका हाथ मे लिए पिता की बैठक मे जाकर देखा कि वे चुपचाप बैठे हैं। पत्रिका उनकी आराम कुरसी के हाथे पर धीरे से रखकर बोली—"तुम तो जानते हो, यह सब मुझे अच्छा नही लगता।"

इतना कहकर वह पास की चौकी पर बैठ गयी।

आशु बाबू ने मुँह उठाकर कहा—"क्या सब बेटी?"

मनोरमा ने कहा—"तुम ठीक समझते हो कि मैं क्या कह रही हूँ। गुणी का आदर करना मैं भी कम नही जानती बापूजी, लेकिन शिवनाथ बाबू जैसे एक दुष्ट, दुश्चरित्र शराबी को क्या समझकर प्रश्रय दे रहे हो?"

आशु बाबू मारे शरम और सकोच के एक बारगी पीले पड गये। कमरे के एक कोने मे टेबिल पर बहुत-सी पुस्तको का ढेर पडा था, मनोरमा समय के अभाव से उन्हे यथास्थान सजाकर अब तक रख नही सकी थी। उस तरफ आँख का इशारा करके वे सिर्फ इतना कह सके—"वे हैं न अभी—"

मनोरमा ने भय के साथ उधर मुँह फेरकर देखा, शिवनाथ टेबिल के पास खडा हुआ कोई किताब ढूँढ रहा है। नौकर ने उसे गलत खबर दी थी। मनोरमा मारे शरम के मानो जमीन मे धँसने लगी। शिवनाथ के पास आकर खडे होने पर वह ऊपर मुँह उठाकर देख न सकी। शिवनाथ ने कहा—"किताब मुझे मिली नही आशु बाबू। तो अब चला।"

आशु बाबू से और कुछ कहा नही गया, सिर्फ इतना ही कहा—"बाहर पानी बरस रहा है।"

शिवनाथ ने कहा—"बरसने दीजिए। ज्यादा नही है।" इतना कहकर वह जा ही रहा था कि अकस्मात् ठिठककर खडा हो गया। मनोरमा को लक्ष्य करके बोला—"मैंने दैवात् जो सुन लिया है वह मेरा दुर्भाग्य भी है और सौभाग्य भी। इसके लिए आप लज्जित न हो। ऐसी बाते अकसर सुननी पडती हैं। फिर भी यह मैं निश्चित् जानता हूँ कि बाते मेरे सम्बन्ध मे कही जाने पर भी मुझे सुनाकर नही कही गयी। इतनी निर्दय आप हरगिज नही हैं।"

फिर जरा ठहरकर कहा—"मगर मेरी और एक शिकायत है। उस दिन अक्षय बाबू वगैरह प्रोफेसरो

के गुट ने मेरे विरुद्ध इशारा किया था कि मानो मैं किसी खास मतलब को लेकर इस घर से घनिष्ठता बढाने की कोशिश कर रहा हूँ। पर एक तो सब लोगो के औचित्य की धारणा एक-सी नही होती,— दूसरे बाहर मे कोई एक घटना जैसी दिखाई देती है, वह उसका पूर्ण रूप नहीं होता। पर बात जो भी हो, आप लोगों मे प्रवेश करने की कोई गूढ दुरभिसन्धि उस दिन भी मेरे अन्दर नही थी और आज भी नही है।" फिर सहसा आशु बाबू को लक्ष्य करके कहा—"मेरा गाना सुनना आपको अच्छा लगता है,— घर मेरा ज्यादा दूर नही, अगर किसी दिन सुनने की तबीयत हो जाय तो वहाँ चरण-रज दीजिएगा, मुझे खुशी ही होगी।" इतना कहकर फिर से नमस्कार करके शिवनाथ बाहर चला गया। पिता या कन्या दोनो मे से कोई एक भी बात का जवाब न दे सका। आशु बाबू के हृदय मे से बहुत-सी बाते एक साथ निकलने को धक्कम-धक्का करने लगी, किन्तु निकल न सकी। बाहर तब वर्षा जोर की हो रही थी, यह बात भी उनके मुँह से न निकली कि शिवनाथ बाबू, जरा ठहरकर जाइएगा।

नौकर चाय का सामान लेकर हाजिर हुआ। मनोरमा ने पूछा—"तुम्हारी चाय क्या यही बना दूँ पिताजी?"

आशु बाबू ने कहा—"नही, मेरे लिए नही, शिवनाथ बाबू ने जरा चाय पीने को कहा था।"

मनोरमा ने नौकर को चाय वापस ले जाने के लिए इशारा किया। मन की चचलता के कारण आशु बाबू कमर मे दर्द होते हुए भी चौकी से उठकर कमरे मे चहलकदमी करने लगे। इतने मे सहसा खिडकी के पास ठिठककर खडे हो गये और क्षण-भर गौर से देखकर बोले—"उस पेड के नीचे जो खडा है सो शिवनाथ ही है न? जा नही सका है, भीग रहा है।"

फिर दूसरे ही क्षण बोल उठे—"साथ मे कोई स्त्री भी खडी है। बगालियो के जैसे कपडे पहने, वह बेचारी और भी भीगी जा रही है?"

इसके बाद तुरन्त उन्होंने नौकर को बुलाया और कहा—"यदु, देख तो आ, गेट के पास पेड के नीचे खडे भीग कौन रहे हैं? जो बाबू अभी-अभी यहाँ से गये हैं, वही हैं क्या?— लेकिन, ठहर-ठहर—"

बात उनकी बीच मे ही रुक गयी, अकस्मात् मन मे भयानक सन्देह उठा,— वह औरत शिवनाथ की वही स्त्री तो नही है?

मनोरमा ने कहा—"ठहरेगा क्यो पिताजी, जाकर शिवनाथ बाबू को बुला ही लावे न।" और वह उठकर खुली खिडकी के किनारे पिता के पास जा खडी हुई बोली—"वह चाय पीना चाहता था, अगर जानती तो मैं हरगिज उसे जाने नही देती।"

लडकी की बात के जवाब मे आशु बाबू धीरे से बोले—"सो तो ठीक है मणि मगर, मुझे डर है कि वह स्त्री जो साथ खडी है, शायद उसकी वही स्त्री हो। साथ लाने की हिम्मत नही पडी। अभी तक वह बाहर खडी-खडी बाट देख रही थी।"

बात सुनकर मनोरमा को निश्चित मालूम हुआ कि वह वही स्त्री है। एक बार उनके मन मे दुविधा आयी कि इस घर मे उसे किसी बहाने से बुलाया जा सकता है या नही, पर पिता के मुँह की तरफ देखकर उसने वह सकोच दूर कर दिया। नौकर से कहा—"यदु, जाकर उन दोनो को ही बुला लाओ। शिवनाथ बाबू अगर पूछे कि किसने बुलाया है तो मेरा नाम बता देना।"

नौकर चला गया। आशु बाबू का जी उत्कण्ठा से भर उठा। बोले—"मणि, यह काम शायद ठीक नहीं हुआ।"

"क्यो पिताजी?"

आशु बाबू ने कहा—"शिवनाथ यो चाहे जैसा हो, पर आखिर एक उच्च शिक्षित और शरीफ आदमी है,— उसकी बात और है। पर उसके सिलसिले मे इस औरत से भी परिचय करना क्या ठीक हो सकता है? जाति की ऊँचता-नीचता हम लोग भले ही उतनी न मानते हों, पर भेद तो है ही। नौकर-नौकरानियो के साथ तो बन्धुत्व नही किया जा सकता बेटी।"

मनोरमा ने कहा—"बन्धुत्व करने की जरूरत नही बापूजी। विपत्ति के समय रास्ते के राहगीर को भी कुछ घटो के लिए आश्रय दिया जाता है। हम लोग सिर्फ उतना ही करेगे।"

आशु बाबू के मन की दुविधा नही मिटी। कई बार सिर हिलाकर बोले—"बात ठीक इतनी ही नही है। मेरी समझ मे यह भी तो नही आ रहा है कि उस स्त्री के आ जाने पर तुम उसके साथ कैसा व्यवहार

करेगी।"

मनोरमा ने कहा—"मेरे ऊपर क्या तुम्हारा विश्वास नही है पिताजी?"

आशु बाबू जरा सूखी हँसी हँसकर बोले—"सो तो है। फिर भी बात जरा ठीक से समझ में नही आ रही है। तुम जानती हो जो तुम्हारी बराबर की श्रेणी के हैं, उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाता हे, और इतना बहुत कम लडकियाँ ही जानती होगी। नौकर-नौकरानियो के प्रति व्यवहार भी तुम्हारा निर्दोष हे, मगर यह जरा और बात है।—समझी बेटी, शिवनाथ पर मैं स्नेह करता हूँ, मैं उसके गुणो का अनुरागी हूँ,— दैव की विडम्बना से आज बिना कारण वह बहुत कुछ लाञ्छन सह गया है, अब फिर घर मे बुलाकर मैं उसे और सताना नही चाहता।"

मनोरमा ने समझा कि यह उसी के प्रति शिकायत है। उसने कहा—"अच्छा पिताजी, वैसा ही होगा।"

आशु बाबू ने हँसकर कहा—"होना क्या आसान है बेटी? कारण, मेरे मन पर भी इसकी खूब स्पष्ट धारणा नही रही है कि उसके साथ क्या व्यवहार होना उचित है। सिर्फ यही खयाल आ रहा है कि शिवनाथ को अब हमारे घर और कष्ट न मिले।"

मनोरमा कुछ कहना ही चाहती थी कि अचानक चौंककर बोली—"हाँ, लो, ये आ ही तो गये।"

आशु बाबू व्यस्त-से होकर बाहर आ गये। बोले—"खूब शिवनाथ बाबू भीगकर तो बिल्कुल—"

शिवनाथ ने कहा—"हाँ, अचानक पानी जोर का पडने लगा,—सो मुझसे भी बहुत ज्यादा ये भीगी हैं।" कहते हुए साथ की स्त्री को दिखा दिया। मगर कौन है, यह परिचय न तो उन्होंने ही साफ दिया और न इन्ही लोगो ने साफ पूछा।

वस्तुत उस स्त्री की देह पर सूखा कहने लायक कही भी कुछ नहीं बचा था। सबके सब कपडे भीगकर भारी हो गये हैं माथे के घने काले बालो से पानी की धारा गालों पर से बह रही है,— पिता और पुत्री इस नवागता रमणी के चेहरे की तरफ देखकर असीम विस्मय से निर्वाक् हो गये। आशु बाबू खुद कवि नहीं हैं, किन्तु यह देखते ही लगा कि ऐसे ही नारी-रूप की शायद प्राचीन काल के कवि "शिशिर से धुले पद्म" के साथ तुलना कर गये हैं, एवं जगत मे इतनी अधिक सच्ची तुलना भी शायद और नही है। उस दिन जब अक्षय के नाना तरह के प्रश्नो के उत्तर मे शिवनाथ ने अस्थिर होकर यह जवाब दिया था कि उन्होने शिक्षिता होने की वजह से नही, रूप के लिए ब्याह किया है, तब किसी ने नही सोचा था कि यह बात कितनी ज्यादा सच है। पर अब स्तब्ध होकर आशु बाबू शिवनाथ की उस बात को बार-बार याद करने लगे। उन्हे सचमुच ही ऐसा जान पडा कि इनकी जीवन-यात्रा की प्रणाली शिष्ट और नीति-सम्मत भले ही न हो, पति-पत्नी सम्बन्ध की पवित्रता भी इनके बीच भले ही न हो, मगर इस नश्वर जगत् मे नर-नारी के नश्वर शरीरो का ही आश्रय लेकर सृष्टि का यह कैसा अविनश्वर सत्य प्रस्फुटित हुआ है! परम आश्चर्य की बात है यह कि जिस देश मे रूप चुन लेने का कोई विशिष्ट मार्ग नही, जिस देश मे अपनी आँखो को बन्द करके औरो की आँखो पर ही निर्भर रहना पडता है, ऐसे अन्धकार मे इन दोनो को परस्पर एक-दूसरे की खबर लग कैसे गयी? परन्तु इस मोहाच्छन्न भाव को काट फेकने मे उन्हे एक क्षण से ज्यादा समय नही लगा। व्यस्त होकर बोले—"शिवनाथ बाबू, भीगे कपडे तो बदल लीजिए। यदु, बाबू को हमारे बाथ-रूम मे ले जा।"

बेहरा के साथ शिवनाथ चला गया। मुश्किल आयी अब मनोरमा की युवती की उमर लगभग मनोरमा के बराबर होगी, और भीगे कपडे बदल डालने की उसे भी सख्त जरूरत थी। परन्तु उसके वश और जन्म का जो परिचय उस दिन शिवनाथ के मुँह से सुना है, उससे मनोरमा की कुछ समझ मे न आया कि वह क्या कहकर इसको सम्बोधन करे। रूप इसमे चाहे कितना ही क्यो न हो, शिक्षा संस्कारहीन नीच-जातीय इस दासी-कन्या को 'आओ' कहकर बुलाने मे भी पिता के सामने उसे सकोच मालूम हुआ, और 'आइए' कहकर सम्मान के साथ अपने कमरे मे ले जाने मे तो उसे और भी घृणा मालूम होने लगी। किन्तु सहसा इस समस्या की मीमासा कर दी स्वय उस युवती ने। मनोरमा की तरफ देखकर उसने कहा—"मेरा भी सब कुछ भीग गया है, मेरे लिए भी एक धोती मँगा देनी पडेगी।"

"देती हूँ।" कहकर मनोरमा उसे भीतर ले गयी, और महरी को बुलाकर बोली कि इन्हे नहान-घर मे ले जाकर जो कुछ चाहिए सो सब दे दे।"

उस स्त्री ने मनोरमा को ऊपर से नीचे तक बार-बार देखकर कहा—"मुझे एक साफ धोबी की धुली धोती देने के लिए कह दीजिए।"

मनोरमा ने कहा—"वही देगी।"

स्त्री ने महरी से पूछा—"उस घर मे साबुन है न?"

महरी ने कहा—"है।"

"लेकिन मैं किसी का लगाया हुआ साबुन नही लगाती, महरी।"

इस अपरिचित स्त्री का मन्तव्य सुनकर पहले तो महरी को आश्चर्य हुआ, फिर वह बोली—"वहाँ नये साबनो का बॉक्स पडा हुआ है। लेकिन, वह दीदी रानी का अपना नहान-घर है। उनका साबुन लगाने में क्या बुराई है?"

स्त्री ने ओठ सिकोडकर कहा—"नही, यह मुझसे नही होता, मुझे बडी नफरत मालूम होती है। इसके सिवा हर एक का साबुन लगाने से बीमारी हो जाती है।"

मनोरमा का चेहरा क्रोध से सुर्ख हो उठा, पर एक क्षण के लिए ही। दूसरे ही क्षण निर्मल हँसी की छटा से उसकी दोनो आँखे चमकने लगी। उसके मन पर से मानो एक मेघ दूर हो गया। हँसकर पूछा—"यह बात तुमने सीखी किससे?"

स्त्री ने कहा—"सीखूँगी किससे? मैं खुद ही सब जानती हूँ।"

मनोरमा ने कहा—"सच? तो जरा हमारी इस महरी को भी कुछ अच्छी बाते सिखा देना। यह बिलकुल ही मूरख है।" कहते-कहते उसे फिर हँसी आ गयी।

महरी भी हँस दी। बोली—"चलो पण्डितानीजी, साबुन-आबुन लगाकर पहले तैयार हो लो, फिर तुम्हारे पास बैठकर बहुत-सी अच्छी-अच्छी बाते सीख लूँगी। दीदी रानी कौन हैं ये?"

मनोरमा हँसी दबाने के लिए अगर दूसरी तरफ मुँह न फेर लेती तो सम्भव है कि वह इस अपरिचिता अशिक्षिता स्त्री के मुँह पर कौतुक और प्रच्छन्न उपहास का भाव ताड जाती।

४

मनोरमा आशु बाबू की सिर्फ लडकी है, हा. लो बात नही। वह उनकी साथी, सगी, मत्री, मित्र, एक साथ सब-कुछ थी। इसीसे पिता के सम्मानरक्षार्थ, भारतीय समाज में जो सकोचसहित दूरत्व सन्तान के लिए अवश्य पालनीय माना जाता है, अधिकाश मौको पर उसकी रक्षा न हो पाती थी। बीच-बीच मे ऐसी आलोचनाएँ दोनों मे होने लगती थी जो बहुत से पिताओं को खटकेंगी, पर इनके कानो मे नही खटकती थीं। लडकी को आशु बाबू इतना प्यार करते हैं कि उसकी सीमा नही। वे स्त्री-वियोग के बाद फिर से ब्याह करने की मन मे कल्पना भी नही कर सके, इसका भी एकमात्र कारण यह लडकी ही है। मगर मित्र मण्डली में बात छिडने पर खेद के साथ वे कहते—"एक तो साढ़े तीन मन का यह भारी शरीर और सो भी बात-रोग के कारण पगु। अब और क्यों इसके लिए एक लडकी का सर्वनाश किया जाय भाई। जो दु:ख सर पर लेकर मणि की माँ स्वर्ग सिधार गयी है, सो मुझे मालूम है। इस आशु के लिए वही काफी है।"

मनोरमा यह बात सुनती तो घोर आपत्ति करती। कहती—"पिताजी, तुम्हारी यह बात मुझे नही सुहाती। यहाँ ताजमहल देखकर कितने आदमियो को न जाने क्या-क्या याद आता है, पर मुझे याद आती है तुम्हारी और माँ की। मेरी माँ स्वर्ग मे क्या दु:ख सहकर गयी है?"

आशु बाबू कहते—"तू तो तब कुल दस-बारह साल की बच्ची थी, तू तो सब जानती है। एक के गले में दूसरे की माला गिरने का जो किस्सा है सो सिर्फ मैं ही जानता हूँ बिटिया।" कहते-कहते उनकी आँखे डबडबा आतीं।

आगरे मे आकर वे बिना किसी सकोच के सबके साथ हिल-मि[illegible] उनकी हार्दिक मैत्री हुई है अविनाश बाबू के साथ। अविनाश सहिष्णु और सयत प्रकृति का आदमी है। उसके चित्त मे ऐसी एक स्वाभाविक शान्ति और प्रसन्नता थी कि वह सहज ही सबकी श्रद्धा आकर्षित कर लेता। मगर आशु बाबू मुग्ध हुए थे कुछ और ही कारण से। उनकी तरह उसने भी दूसरी बार ब्याह नही किया था और पत्नी-प्रेम के निदर्शन केलिए घर मे सर्वत्र अपनी स्त्री के चित्र लगा रखे थे। आशु बाबू उससे कहते—"अविनाश बाबू, लोग हमारी प्रशंसा करते हैं। सोचते हैं हम लोगो का कैसा आत्मसयम

है, मानो हम लोगो ने कोई बहुत बडा कठिन काम कर डाला हो। पर, मैं मोचता हूँ कि यह प्रश्न उठना ही कैसे है? जो लोग दूसरी बार व्याह करते हैं, वे कर सकते हैं इसीलिए करते हैं। उन्हे मैं दोष भी नही देना और न छोटा ही ममझता हूँ। मैं मोचता हूँ कि मैं कर नही मकता। मिर्फ इतना ही जानता हूँ कि मणि की माँ की जगह और किमी को स्त्री के रूप में ग्रहण करना मेरे लिए सिर्फ कठिन ही नही, अमम्भव भी है। पर इसकी उन्हे क्या खबर? वात ऐमी ही है न अविनाश वावू? अपने मन से पूछ देखिए जरा, ठीक वात कहता हूँ या नही।"

अविनाश हँस देता। कहता—"लेकिन मैं तो जुटा नही सका हूँ आशु वावू। मास्टरी करके गुजर करता हूँ, वक्त भी नही मिलता और उमर भी हो चुकी है,— लडकी देगा कौन?"

आशु वावू खुश होकर कहते—"ठीक यही वात है अविनाश वावू, यही वात है। मैं भी सबको कहता फिरा हूँ कि देह का वजन साढे तीन मन है, वात का पगु हूँ, कव कहाँ चलते-फिरते हार्ट फेल हो जाय कोई ठिकाना नही, लडकी देगा कौन? लेकिन जानता हूँ कि लडकी देने वालो की कमी नही है, मिर्फ लेने वाला मनुष्य ही मर गया है। ह ह ह ह ,— अविनाश भी मर चुका और आशु भी,— ह ह ह ह !"कहकर ठहाका मारकर ऐमे जोर से हँसते कि घर की खिडकियाँ और उनके शीशे तक काँप उठते

रोज शाम को आशु वावू अपनी कन्या के साथ घूमने निकलते, पर अविनाश के मकान के मामने आकर उतर पडते, कहते—"अव शाम के वक्त ठडी हवा लगना मेरे लिए ठीक नही वेटी, वल्कि तुम लौटते वक्त मुझे अपने माथ ले जाना।"

मनोरमा हँसकर कहती—"ठडी कहाँ है पिताजी, आज तो काफी गरमी है।"

पिताजी कहते—"मो भी तो अच्छा नही वेटी, वूढो के स्वास्थ्य के लिए गरम हवा भी तो हानिकारक है। तुम जरा घूम फिर आओ, हम दोनो वूढे मिलकर तब तक दो-चार बाते ही करे।"

मनोरमा हँसकर कहती—"वाते तुम लोग दो-चार छोड दो-चार सौ करते रहो, मुझे उसमे कोई एतराज नही। लेकिन, तुम दोनो मे से कोई अभी वूढा नही हुआ, मो मैं याद दिलाये जाती हूँ।" इतना कहकर वह चली जाती।

वात की वजह से जिस दिन आशु वावू किसी भी तरह नही आ पाते, उम दिन अविनाश को जाना पडता। गाडी भेजकर, आदमी भेजकर, चाय का निमन्त्रण देकर—जैसे भी वनता आशु वावू का अनिवार्य अनुरोध उनके पास पहुँचता और उसे वे किसी भी तरह टाल नही सकते। दोनो के इकट्ठे होने पर और-और बातो के साथ शिवनाथ का भी अकमर जिक्र छिड जाता। इसकी वेदना आशु वावू के मन से दूर नही होती थी कि उस दिन उमे निमन्त्रण देकर घर वुलाया और सभी ने मिलकर अपमानित करके उसे विदा कर दिया। शिवनाथ विद्वान् आदमी है, गुणी है, उसका सारा शरीर यौवन, स्वास्थ्य और सौन्दर्य से भरा हुआ है,— यह सब क्या कुछ भी नही? तो फिर किस लिए इतनी सम्पदा भगवान् ने उसे दोनो हाथो से उठाकर दे दी है? क्या इसीलिए कि मनुष्य समाज से उसे उठाकर दूर फेंक दिया जाय? शरावी हो गया है तो इससे क्या? शराव पीकर मतवाले तो वहुतेरे हो जाया करते हैं। यौवन मे यह कसूर तो उनसे भी वन पडा है, इसके लिए किसने उन्हे त्याग दिया है?

आदमी की त्रुटियो, आदमी के अपराधो पर गौर करने की अपेक्षा उसे क्षमा करने की तरफ उनके हृदय का झुकाव वहुत ज्यादा होता जाता था, इमीलिए वे अविनाश के माथ अकसर इस विषय की वहम किया करते थे। प्रकट रूप मे शिवनाथ को निमन्त्रण देने का अव उन्हे माहस नही होता, किन्तु मन उनका हमेशा उसकी मगत के लिए तड़पा करता। अविनाश की सिर्फ एक वात का उससे कोई जवाव देते नही वनता, कि "वह जो एक वीमार स्त्री को छोडकर दूमरी स्त्री घर मे ले आया है, सो यह क्या है?"

आशु वावू लज्जित होकर कहते—"यही तो सोचता हूँ कि शिवनाथ जैसा आदमी यह काम कर कैसे सका? लेकिन क्या जाने अविनाश वावू, शायद, भीतर कोई रहस्य हो,— हो सकता है,— और मभी वाते क्या मवके आगे कही जा सकती हैं, या कहना उचित है?"

अविनाश कहता—"मगर उसकी स्त्री निर्दोष थी, यह तो उसने अपनी ही जवान से कवूल किया था?"

आशु वावू परास्त होकर गरदन हिलाते हुए कहते—"सो तो किया ही था।"

अविनाश ने कहा—"और यह जो मरे हुए मित्र की विधवा को धोखा देना, सारे रोजगार को अपना

बनाकर उन पर दखल कर लेना,—यह क्या था?"

आशु बाबू मारे शरम के जमीन मे गड जाते, जैसे खुद उन्होने यह दुष्कार्य कर डाला हो। फिर अपराधी की तरह धीरे से कहते—"लेकिन बात यह है न अविनाश बाबू, शायद भीतर कोई रहस्य हो,— अच्छा फिर अदालत ने क्या समझकर उन्हे डिग्री दे दी? उसने क्या कुछ भी विचार नही किया होगा?"

अविनाश कहता—"अंग्रेजी अदालत की बात छोड दीजिए आशु बाबू। आप खुद भी जमीदार हैं, वहाँ सबल के आगे दुर्बल कब विजयी हो सका है, बता सकते हैं मुझे?"

आशु बाबू कहते—"नही-नही, यह ठीक बात नही। यह बात ठीक नही। मगर हाँ, यह भी नही कह सकता कि आपकी बात झूठ है। लेकिन बात यह है न—"

अचानक मनोरमा आ जाती तो हँसकर कहती—"बात जो है सो सभी जानते हैं। पिताजी, तुम खुद भी मन ही मन जानते हो कि अविनाश बाबू मिथ्या तर्क नही करते।"

इसके बाद आशु बाबू के मुँह से फिर कोई बात नही निकलती।

शिवनाथ के विषय में मनोरमा की ही विमुखता मानो सबसे ज्यादा थी। मुँह से वह ज्यादा कुछ नहीं कहती थी, पर पिता सबसे ज्यादा डरते थे उसी से।

जिस दिन शाम को शिवनाथ और उसकी स्त्री पानी मे भीगकर इस घर मे आश्रय लेने को बाध्य हुए थे उसके बाद दो दिन तक आशु बाबू वात के प्रकोप से एकदम खाट पर पडे रहे। न तो वे खुद ही कही जा सके और न अविनाश ही काम की झंझट की वजह से उनके पास आ सके। परन्तु उनके आते ही आशु बाबू वात के असह्य दर्द को भूलकर आराम कुरसी पर सीधे होकर बैठ गये और बोले—"अजी अविनाश बाबू, शिवनाथ की स्त्री के साथ तो हम लोगो का परिचय हो गया। लडकी है बिलकुल लक्ष्मी की मूर्ति। ऐसा रूप कभी नही देखा भाई। मालूम हुआ, जैसे उन दोनो को भगवान् ने किसी उद्देश्य से ही मिलाया है।"

"कहते क्या हैं!"

"हाँ, हाँ। दोनों को अगल-बगल खडा कर दो,तो देखते ही रह जाना पडता है! आप आँखे हटा ही नही सकते, इतना मैं कहे देता हूँ अविनाश बाबू।"

अविनाश ने हँसते हुए कहा—"हो सकता है। लेकिन आप प्रशंसा करने लगते हैं तो उसकी सीमा नहीं रखते।"

आशु बाबू क्षण-भर उनके मुँह की ओर देखते रहे, फिर बोले—"यह दोष मुझमे है। सीमा से बाहर जा सकता होता तो इस मामले मे भी जरूर जाता, मगर शक्ति नही है। इन दोनो के बारे मे कितना ही क्यो न कहा जाय, सब सीमा की बायी तरफ ही रहेगा, दाहिनी तरफ नही पहुँचने का।"

अविनाश ने इस पर पूरा विश्वास कर लिया हो सो बात नही, परन्तु पहले का परिहास का ढग भी अब न रहा। बोले—"तो फिर उस दिन शिवनाथ ने अकारण दम्भ नही किया, क्यो? मगर परिचय हुआ किस तरह?"

आशु बाबू ने कहा—"बिलकुल दैवी घटना हुई। शिवनाथ को काम था मुझसे। स्त्री साथ थी, पर मकान के अन्दर लाने की हिम्मत नही हुई, बाहर ही एक पेड के नीचे उसे खडा कर आया। लेकिन दैव टेढा हो तो आदमी की चतुराई काम नही देती, असम्भव बात भी सम्भव हो जाती है। हुआ वही।" यह कहकर उन्होने उस दिन की आँधी-पानी की सारी की सारी घटना विस्तार के साथ कह सुनाई, फिर कहा—"हमारी मणि लेकिन खुश नही हो सकी। उसकी कम-उम्र ही थी, शायद कुछ बडी भी हो,— मगर मणि का कहना है कि उस दिन शिवनाथ बाबू ने सच्ची बात ही कही थी,— लडकी वास्तव मे अशिक्षित, किसी दासी की लडकी है। कम से कम हमारे शिष्ट समाज की तो नही है, इसमे कोई सन्देह नही।"

अविनाश को हुआ, "सो कैसे जाना?"

आशु बाबू ने कहा—"उसने शायद भीगी धोती के बदले साफ धुली धोती माँगी थी, और कहा था कि मैं किसी का इस्तेमाल किया हुआ साबुन नही लगा सकती,— मुझे नफरत मालूम होती है।"

अविनाश समझ नही सके कि इसमे शिष्ट-समाज के नियमो के बाहर की कौन-सी बात है।

आशु बाबू ने भी ठीक यही बात कही—"इसमे असगत कौन-सी बात हुई, मैं अब तक नही समझ

सका। मगर मणि कहती है, बात मे नही पिताजी, कहने के ढग मे एक ऐसी बात थी जो बिना सुने नही जानी जा सकती। इसके सिवा, स्त्रियो की ऑखो और कानो को धोखा नही दिया जा सकता। हमारे वहाँ की नौकरानी तक भी समझ गयी कि यह उसी की जात की है, उसके मालिको की कोई नही। बिलकुल नीचे से अचानक एकदम ऊपर चढ़ा देने से जैसा होता है, इसके भी ठीक वैसा हुआ है।"

अविनाश ने कुछ देर चुप रहकर कहा—"दु ख की बात है। मगर आपके साथ परिचय हुआ किस तरह? आपसे बोली थी क्या?"

आशु बाबू ने कहा—"जरूर। भीगी धोती बदलकर सीधी मेरे कमरे मे आकर बैठ गयी। झिझक की बला थी ही नही,— मेरी तबीयत कैसी है, क्या खाता हूँ, क्या इलाज चल रहा है, जगह यह अच्छी लग रही है या नही,— पूछने का क्या ही सहज-स्वच्छन्द भाव था। बल्कि शिवनाथ तो कुछ सकुचित भी हो रहे थे, मगर उसमे जडता का चिन्ह तक देखने मे नही आया। न बातचीत मे, न आचरण मे।"

अविनाश ने पूछा— "मालूम होता है मनोरमा तब उपस्थित नही थी।"

"नही। उसे न जाने कैसी अश्रद्धा-सी हो गयी है, कहा नही जाता। उन लोगो के चले जाने पर मैंने कहा—"मणि, उन्हे बिदा करने भी एक बार बाहर नही आयी?" मणि ने कहा—"और जो कुछ कहो कर सकती हूँ पिताजी, लेकिन घर के नौकर-चाकर या दास-दासियो को 'बैठिए' कहकर अभ्यर्थना नही कर सकती और फिर 'आइएगा' कहकर बिदा भी नही दे सकती। अपने घर आने पर भी नही।" इसके बाद कहने को और क्या रह जाता है!"

कहने को और क्या रह जाता है, सो अविनाश को खुद भी ढूँढे न मिला, सिर्फ मृदु कठ से इतना कहा—"बताना मुश्किल है आशु बाबू। पर मालूम होता है कि मनोरमा ने ठीक ही कहा था। इस तरह की औरतो से हम जैसो के घरो की स्त्रियो की जान-पहचान न होना ही अच्छा है।"

आशु बाबू चुप रहे।

अविनाश कहने लगे—"शिवनाथ के सकोच का कारण भी शायद यही है। उसे तो सभी बातें मालूम है,—उसे डर था कि कही कोई भद्दी, न निकालने लायक बात उसकी स्त्री के मुँह से न निकल जाय।"

आशु बाबू हँस दिये, बोले—"हाँ, हो भी सकता है।"

अविनाश ने कहा—"जरूर यही बात है।"

आशु बाबू ने प्रतिकार नही किया, सिर्फ कहा—"लडकी लेकिन लक्ष्मी की सी प्रतिमा थी।" कहकर उन्होने एक छोटी-सी सॉस छोडी और वे आराम-कुरसी से पीठ लगाकर लेट रहे।

कुछ देर चुप रहकर अविनाश ने कहा—"मेरी बात से क्या आपको क्षोभ हुआ?"

आशु बाबू उठकर बैठे नही, उसी तरह अधलेटी हालत मे पडे हुए धीरे-धीरे बोले—"क्षोभ नही अविनाश बाबू, पर न जाने कैसी एक व्यथा-सी मालूम हुई। इसीसे तो आपसे मिलने के लिए इस तरह तडफडा रहा था। बाते भी कैसी मीठी थी उसकी—सिर्फ रूप ही नही।"

अविनाश ने हँसते हुए उत्तर दिया—"मगर मैंने तो उसका रूप भी नही देखा और बाते भी नही सुनी, आशु बाबू।"

आशु बाबू ने कहा—"पर वैसा मौका अगर कभी हाथ आयगा तो आप समझ जायँगे कि उन्हे त्याग देने मे कितना अन्याय हुआ है। और कोई भले ही न समझे, पर मैं निश्चित जानता हूँ कि आप जरूर समझेगे। जाते वक्त उस लडकी ने मुझसे कहा—'जब आप मेरे पति का गाना सुनना पसन्द करते हैं, तब क्यो उन्हे कभी-कभी बुलवा नही लेते? इस बात का ख्याल ही आप न करे कि मैं कौन हूँ, मैं तो आप लोगो के बीच आने का दावा करती नही।"

अविनाश को कुछ आश्चर्य हुआ, बोले—'यह तो बिलकुल अशिक्षितो जैसी बात नही आशु बाबू। सुनने मे मालूम होता है, इसके निज के सम्बन्ध मे हम चाहे कैसी भी व्यवस्था करे पर पति को वह शिष्ट समाज मे चला देना चाहती है।"

आशु बाबू ने कहा—"वास्तव मे उसकी बात सुनकर मालूम हुआ कि उसे सब मालूम है। हम लोगो ने जो उस दिन उसके पति को अपमानित करके बिदा किया था, इस बात को शिवनाथ ने उससे छिपाया नही है। शिवनाथ ज्यादा छिपा-छिपकर चलने वाला शख्स भी नही है।"

अविनाश ने मजूर करते हुए कहा—"स्वभाव मे वह ऐसा ही है। लेकिन एक चीज उसने जरूर छिपाई है। यह लडकी चाहे जो हो, इससे उसने वास्तव मे व्याह नही किया है।"

आशु बाबू ने कहा—"शिवनाथ ने तो कहा है वह उसकी स्त्री है, और उसने भी ऐसा ही परिचय दिया कि वह उसका पति है।"

अविनाश ने कहा—"परिचय दिया करे। मगर वह सच नही है। इसके अन्दर जो गम्भीर रहस्य है, अक्षय बाबू उसका भेद किसी-न-किसी दिन खोले बिना न रहेगे।"

आशु बाबू ने कहा—"इसमे तो मुझे भी शक नही। कारण अक्षय बाबू शक्तिशाली पुरुष हैं। मगर इनको परस्पर की स्वीकारोक्ति मे सत्य नही, सत्य केवल छिपे हुए रहस्य को दुनिया के सामने उघाड देने मे ही है? अविनाश बाबू, आप तो अक्षय नही हैं। आपसे तो मै ऐसी प्रत्याशा नही करता।"

अविनाश लज्जित होकर बोले—"मगर समाज भी तो है। उसकी भलाई के लिए भी तो—"

परन्तु वक्तव्य उनका खतम नही हो पाया था कि पास के दरवाजे को खोलकर मनोरमा ने प्रवेश किया। अविनाश को नमस्कार करके उसने कहा—"बाबूजी, मैं घूमने जा रही हूँ, तुम शायद आज बाहर निकल नही सकोगे?"

"नही बिटिया, तुम जाओ।"

अविनाश उठकर खडे हुए, बोले—"मुझे भी आज काम है। बाजार के पास जरा नही उतार दे सकती मनोरमा?"

"जरूर,— चलिए।"

जाते समय अविनाश कह गये कि बहुत ही जरूरी काम से उन्हे कल ही दिल्ली जाना पडेगा और शायद एक सप्ताह के पहले वहाँ से लौटना नही होगा।

५

दस दिन बाद अविनाश दिल्ली से लौट आये। उनके नौ-दस साल के पुत्र जगत ने आकर हाथ मे एक छोटी-सी चिट्ठी दी। उसमे सिर्फ एक वाक्य लिखा था—"शाम को जरूर आइएगा।— आशु।"

जगत की विधवा मौसी ने दरवाजे के परदे को हटाकर खिले हुए गुलाब जैसा मुँह निकालकर कहा—"आशु वैद्य की राह मे क्या आँखे बिछाये ही बैठे थे जो घर मे आते-न-आते तलब कर लिये गये।— अभी ही जाना होगा?"

अविनाश ने कहा—"शायद कोई खास काम है।"

"काम खाक है। वे लोग तो जैसे मुखर्जी साहब को निगल ही जाना चाहते हैं।"

अविनाश अपनी छोटी साली को लाड से कभी 'छोटी बहू' कहते हैं और कभी उसका नाम 'नीलिमा' लेकर पुकारते हैं। हँसके बोले—"छोटी बहू, अमृत फल अनादर के साथ पेड तले पडा हुआ हो तो उसे देखकर बाहर के लोगो को लोभ जरा हो ही जाता है?"

नीलिमा हँस दी, बोली—"तब तो यह बात उन लोगो को जता देना जरूरी हो जाती है कि वह इन्द्रायण (कौवाठोठी) फल है, अमृत फल नही।"

अविनाश ने कहा—"अच्छा, जता देना। पर वे विश्वास नही करेगे, लोभ और भी बढ़ जायगा, हाथ बढाने मे भी कसर न रक्खेगे।"

नीलिमा ने कहा—"उससे लाभ न होगा मुखर्जी महाशय, सब लोगो की पहुँच के बाहर अब की बार मजबूत-सा बेडा बनवा रखूँगी।" इतना कहकर वह हँसी दबा के परदे की ओट मे चली गयी।

"दूसरी यह कि आज किसी पर्व के उपलक्ष्य मे हिन्दुस्तानी नारी-कुल यमुना के कूल पर इकट्ठा हुआ है और हरेन्द्र, अक्षय आदि पण्डितसमाज ने निर्लिप्त निर्विकार चित्त मे वहाँ अभी-अभी अभियान किया है।'

"अच्छा, ठीक है। तीसरी दशा का हाल सुनाइए।"

"दर्शनेच्छु आशुतोष अत्यन्त उत्कण्ठित हृदय मे अविनाश की प्रतीक्षा कर रहा है, प्रार्थना है कि वे अस्वीकार न करे।"

अविनाश ने हँसते हुए कहा—"उन्होने प्रार्थना मजूर कर ली। अब चौथी दशा का वर्णन कीजिए।"

आशु बाबू ने कहा—"यह जरा कुछ भारी है। चिरजीव महोदय ने विलायत से भारत मे पदार्पण किया है और वे काशी होते हुए परसो इसी आगरा नगर मे पधारे हैं। सम्प्रति मोटर की मशीन बिगड गयी है और चिरजीव स्वय मरम्मत के काम मे लगे हुए हैं। मरम्मत समाप्तप्राय है और वे अब आते ही होगे। अभिलाषा है, पहली चाँदनी रात मे सब एक साथ आज का ताजमहल का निरीक्षण करे।"

अविनाश का हँसता हुआ चेहरा गम्भीर हो उठा, पूछा— 'ये चिरजीवी साहब कौन हैं आशु बाबू? क्या इन्ही की बात उस रोज कहते-कहते अचानक रुक गये थे?"

आशु बाबू ने कहा—"हाँ। मगर आज कहने मे, कम से कम आपसे कहने मे कोई रुकावट नही। अजितकुमार मेरे भावी जमाई हैं, इन दोनो का प्रेम ससार की एक अपूर्व वस्तु है। लडका क्या है रत्न है।"

अविनाश स्थिर होकर सुनने लगे और आशु बाबू कहने लगे—"हम ब्रह्मसमाजी नही हैं। सब क्रिया-कर्म सनातनी-म[illegible]नुसार करते हैं। यथासमय अर्थात् चार साल पहले ही इन दोनो के व्याह हो जाने की बात थी। होता भी यही, मगर नही हुआ। जिस तरह इन दोनो का परिचय हुआ वह भी एक विचित्र घटना है, विधि-लिपि कहा जाय तो अत्युक्ति नही होगी पर उस बात को अभी जाने दीजिए।"

अविनाश पूर्ववत् स्तब्ध बैठे रहे। आशु बाबू बोले—"मणि की हल्दी चढ गयी थी कि इतने मे रात की गाडी से काशी से छोटे काका आ पहुँचे। पिता की मृत्यु के बाद वे ही घर के बडे थे, बाल-बच्चा कोई था नही, काकी को लेकर बहुत दिनो से काशीवास कर रहे थे। ज्योतिष पर उनका अखण्ड विश्वास था, आकर बोले—"यह व्याह अभी हो ही नही सकता। उन्होने खुद तथा और पण्डितो से निर्भूल गणना करा देखी है कि इस व्याह के होने से तीन साल तीन महीने के अन्दर ही मणि विधवा हो जायगी।

"घर मे एक ऊधम-सा मच गया, सारी तैयारियाँ घोटाले मे पड गयी, मगर मैं काका को जानता था, समझ गया कि इसमे जरा भी इधर-उधर नही होने का। अजित खुद भी एक बहुत बडे घर का लडका है, उसकी एक विधवा काकी के सिवा ससार मे और कोई न था, वे भी बहुत गुस्सा हुई, अजित मारे दु ख और अभिमान के इजीनियरिंग पढने के बहाने विलायत चला गया और सबने जान लिया कि यह सम्बन्ध हमेशा के लिए टूट गया।"

अविनाश ने रुकी हुई सास छोडकर पूछा—"इसके बाद, फिर?"

आशु बाबू ने कहा—"फिर हम सब हताश हो गये, हुई नही। एक दिन मणि खुद मुझसे आकर बोली—"पिताजी, ऐसी क्या बडी बात हो गयी है जिसके लिए तुमने खाना-पीना-सोना छोड दिया है? तीन साल ऐसा क्या बडा समय है?" उसके मन को कितनी जबरदस्त [illegible] पहुचा था, सो मै जानता था। मैंने कहा—"बेटी, तेरी बात ही सार्थक हो पर इन सब बातो मे [illegible], तीन साल तो दरकिनार, तीन दिन की रोक भी बुरी होती है।' मणि ने हँसकर कहा—"तुम्हे डरने की जरूरत नही पिताजी, मैं उन्हे पहचानती हूँ।' अजित हमेशा से जरा कुछ सात्त्विक प्रकृति का [illegible] आदमी है, भगवान् पर उसका अचल विश्वास है। जाते समय [illegible] का एक छोटी चिट्ठी लिखकर चला गया। इन चार सालो मे फिर उसने दूसरी चिट्ठी ही नही लिखी। न लिखे, पर मन ही मन म[illegible] सब जानती थी, और तब से उसने ब्रह्मचारिणी का जीवन ग्रहण कर लिया। एक दिन के लिए भ्रष्ट नही हुई। जबकि बाहर से कोई कुछ समझ ही नही सकता। समझे अविनाश बाबू?"

अविनाश श्रद्धा से विगलित-चित्त होकर बोले, "हाँ, वास्तव मे नही समझ सकता, मैं आशीर्वाद देता हूँ कि ये लोग जीवन में सुखी हो।"

आशु बाबू ने कन्या की तरफ से ही मानो सिर झुकाकर उसे ग्रहण किया और कहा—"ब्राह्मण का आशीर्वाद निष्फल नही होगा। अजित सबसे पहले काका साहब के पास गया था। उन्होंने अनुमति दे दी है। नही

तो, यहाँ शायद वह आता ही नही।"

इसके वाद, दोनो कुछ देर चुप रहे, फिर आशु वावू कहने लगे—"अजित के विलायत चले जाने पर जव दो साल तक उसका कोई समाचार नही आया तव मैंने भीतर-ही-भीतर वर की खोज न की हो सो वात नही। पर मणि को अकस्मात् मालूम हो गया और उसने मना कर दिया। कहा—"पिताजी, इसकी कोशिश तुम मत करो। मेरा तुमने प्रकट रूप से सम्प्रदान भले ही न किया हो, पर मन से तो कर ही दिया था।' मैंने कहा, "ऐसा तो कितने ही विवाहो मे हुआ करता है, वेटी।' लेकिन लडकी की आँखो मे मानो पानी भर आया। वोली, "नही होता पिताजी। सिर्फ वातचीत ही होती है, उससे ज्यादा कुछ नही,—नही मेरे भाग्य मे भगवान् ने जो लिखा है उसे मैं सह सकूँ, यही काफी है, मुझे और कोई आदेश तुम मत देना।' दोनो की ही आँखो मे आँसू गिरने लगे, पोछकर मैंने कहा—"कसूर हो गया वेटी, अपने नासमझ पिता को तू क्षमा कर।"

अकस्मात् पूर्व-स्मृति के आवेग से उनका कण्ठ रुद्ध हो गया। अविनाश खुद भी कुछ देर तक वात नही कर सके, उसके वाद धीरे-धीरे वोले—"आशु वावू, ससार मे हम लोग न जाने कितनी गलतियाँ किया करते हैं और न जाने कितनी अनुचित धारणाएँ मन मे पालते रहते हैं।"

आशु वावू ठीक समझ न सके—"कैसी?"

"यही, जैसे, हममें से वहुत-से ऐसा समझा करते हैं कि लडकियाँ उच्च शिक्षा पाकर मेम-साहव वन जाती हैं, हिन्दुओं के प्राचीन मधुर सस्कारो के लिए उनके हृदय मे जैसे स्थान ही नही रहता। यह कितना वडा भ्रम है, सोचिये?"

आशु वावू ने गरदन हिलाकर कहा—"भ्रम वहुतेरी जगह होता जरूर है। मगर आप जानते हैं अविनाश वावू, क्या शिक्षा और क्या अशिक्षा, असल चीज है प्राप्त करना। इस प्राप्त करने न करने के ऊपर ही सव वाते निर्भर हैं। नही तो एक का अपराध दूसरे पर आरोप करने से ही गडवड होता है।—आ गये अजित, मणि कहाँ है?"

तीस साल का एक सुन्दर वलिष्ठ युवक कमरे के भीतर दाखिल हुआ। उसके कपडो पर कालिख के दाग लग गये थे। उसने कहा—"मणि अव तक मेरी मदद कर रही थी, उनके कपडो मे भी कालिख लग गयी है, कपडे वदलने गयी हैं। मोटर ठीक हो गयी है, शोफर से सामने लाकर खडी करने को कह दिया है।" आशु वावू ने कहा—"अजित, ये मेरे परम मित्र हैं, श्रीयुत अविनाश मुखोपाध्याय। यहाँ के कॉलेज के प्रोफेसर हैं, व्राह्मण हैं, इन्हे प्रणाम करो।"

आगन्तुक युवक ने अविनाश को पाँव छूकर प्रणाम किया। फिर खडे होकर आशु वावू को लक्ष्य करके कहा—"मणि के आने मे पाँचेक मिनट से ज्यादा देर न लगेगी। अव आप ज़रा जल्दी से तैयार हो लीजिए। देर होने पर सव-कुछ देखने का समय नही मिलेगा। लोग कहते हैं, ताजमहल देखते-देखते जी ही नही भरता।"

आशु वावू ने कहा—"जी न भरने की ही चीज है, तुम्ही को अभी कपडे वदलना वाकी हैं।"

युवक ने हँसकर कहा—"सो रहने दीजिए। यह तो हमारा पेशा है। कपडो पर कालिख लगने से हम लोगो का कोई अगौरव नही होगा।"

वात सुनकर आशु वावू मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुए और अविनाश भी युवक की विनम्र सरलता पर मुग्ध हो गये।

इतने मे मणि आ पहुँची। सहसा उसकी तरफ देखकर अविनाश चौंक उठे। कई दिनो से उन्होने उसे देखा नही था और इस वीच में ही यह अप्रत्याशित आनन्द की घटना हुई थी। खासकर, उसके पिता के मुँह से अभी-अभी जो वाते सुनी थीं, उससे उन्होने समझ लिया था कि मनोरमा के चेहरे पर आज शायद ऐसी कोई वात देखेंगे जो अनिर्वचनीय होगी और जीवन मे कभी देखी न होगी। मगर वहाँ कुछ भी नही था, विलकुल सीधी-सादी पोशाक। छिपे हुए आनन्द का छिपा आडम्वर कही से आत्म प्रकाश करता हुआ नहीं दिखाई दिया। सुगभीर प्रसन्नता की शान्त दीप्ति चेहरे पर कही भी विकसित होती नही दिखाई दी, वल्कि, न जाने कैसी एक क्लान्तिकी छाया ने ही आँखो की दृष्टि को म्लान कर रखा था। अविनाश को ऐसा जान पडा कि पितृ-स्नेहवश शायद आशु वावू ने अपनी कन्या को गलत समझा है, या फिर किसी दिन जो सत्य था वह आज झूठ हो गया है।

थोडी देर बाद एक बडी भारी मोटर मे बैठकर सब चल दिये। यमुना के घाट-घाट पर पुण्य-लुब्ध नारियो और रूप-लुब्ध पुरुषो की भीड तब तक लगभग कम हो चुकी थी। सुन्दर और सुदीर्घ मार्ग में सर्वत्र ही उनकी सज-धज और विचित्र रग-बिरगी पोशाक अस्तमान रवि-करो से विशेष सुन्दर हो उठी थी। उस दृश्य को देखते हुए जब वे विश्वविख्यात अनन्तसौन्दर्यमय ताजमहल के सिंहद्वार के सामने आ पहुँचे तब हेमन्त ऋतु का छोटा-सा दिन अवसान की ओर बढ़ा जा रहा था।

यमुना-किनारे जो कुछ देखने का था सो सब देख-भालकर अक्षय का दल पहले से ही वहाँ हाजिर हो गया था। ताज उन लोगो ने बहुत बार देखा है, देखते-देखते अरुचि हो गयी है इसी से वे ऊपर न जाकर नीचे के बाग मे एक किनारे बैठ गये थे। इन लोगो को आते देख उन सबने उच्च कोलाहल के साथ स्वागत किया। वातव्याधि-पीडित आशु बाबू अपनी भारी-भरकम देह को घास पर रखते हुए गहरी उसास छोडकर बोले—"ओ फू, अब जी में जी आया। अब जिसकी जितनी तबीयत हो, मुमताज बेगम की कब्र देखकर आनन्द प्राप्त करते रहो बाबा। आशु वैद्य यही से बेगम साहिबा को कोर्निश बजा लाता हे। इससे ज्यादा और उससे कुछ नही हो सकता।"

मनोरमा ने क्षुब्ध कण्ठ से कहा—"सो नही होगा पिताजी, तुम्हे अकेला छोडकर हममे से कोई भी नही जा सकता।"

आशु बाबू हँसकर बोले-"डर की बात नही बेटी, तुम्हारे बूढ़े बाप को कोई चुरा नहीं लेजायगा।

अविनाश ने कहा—"नही, इसकी आशका नही। बदस्तूर क्रेन और लोहे की जजीर लाये बगैर वह उठा ही कैसे सकेगा?'

मनोरमा ने कहा—"मेरे पिताजी को कोई नजर न लगाये। आप लोगो की ही नजर मे पिताजी यहाँ आकर बहुत-कुछ दुबले हो गये हैं।'

अविनाश ने कहा—"ऐसा अगर हुआ हो तो हम लोगो से अन्याय हुआ है, यह बात माननी ही पडेगी। कारण दृष्टव्य के लिहाज से इस चीज की इज्जत ताजमहल से किसी कदर कम नही है।"

सब कोई हँस दिये। मनोरमा ने कहा—"सो नही होगा पिताजी, तुम्हे साथ-साथ चलना होगा। तुम्हारी आँखो से देखे बिना इस चीज का आधा सौंदर्य ढँका ही रह जायगा। कोई कितनी ही बाते क्यो न बतावे पर तुमसे ज्यादा असली बातें और कोई नही जानता।"

अविनाश के सिवा इस बात का मर्म और कोई नही जानता कि इसके मानी क्या हैं। वे भी यही अनुरोध करने जा रहे थे। इतने मे सहसा सबकी दृष्टि पडी एक अप्रत्याशित चीज पर। ताज के पूर्व की ओर से घूम कर अकस्मात् शिवनाथ और उसकी स्त्री सामने आ पडे। शिवनाथ अनदेखी करके दूसरी तरफ जाना ही चाहता था कि स्त्री उसकी दृष्टि आकर्षित करके खुश हो उठी और बोली—"आशु बाबू और उनकी लडकी भी आयी हैं, देखो तो सही।"

आशु बाबू ने जोर की आवाज लगाकर उन्हे पुकारा—"आप लोग कब आये शिवनाथ बाबू? इधर आइए।"

स्त्री के साथ शिवनाथ पास आ खडा हुआ। आशु बाबू ने उनका परिचय देकर कहा—"ये हैं शिवनाथ की स्त्री। आपका नाम लेकिन नही मालूम।"

"मेरा नाम है कमल। मगर मुझसे 'आप' न कहा करे आशु बाबू।"

आशु बाबू बोले—"कहना उचित भी नही है कमल, ये लोग मेरे मित्र हैं, तुम्हारे पति के भी परिचित हैं। बैठो।"

कमल ने अजित की तरफ इशारा करके कहा—"मगर इनका परिचय तो दिया ही नही।"

आशु बाबू ने कहा—"क्रमश दूँगा। ये मेरे,—ये मेरे परम आत्मीय हैं। नाम अजितकुमार राय। कुछ ही दिन हुए, विलायत से वापस आकर हम लोगो से मिलने आये हैं। कमल, तुमने क्या आज पहले पहल ताजमहल देखा है?"

कमल ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

आशु बाबू ने कहा—"तब तो तुम भाग्यवती हो। अजित तुमसे भी भाग्यवान् है क्योंकि यह परम आश्चर्य की चीज उसने अभी तक देखी नही, अब देखेगा। लेकिन उजाला घटता जाता है, ज्यादा देर करना तो अब ठीक नही, अजित।"

मनोरमा ने कहा—"देर तो सिर्फ तुम्हारे लिए ही हो रही है पिताजी उठो।"
"उठना तो आसान काम नही है वेटी, उसके लिए तो आयोजन करना पडेगा।"
"तो फिर वही आयोजन करो न, पिताजी।"
"करता हूँ। अच्छा कमल, देखकर कैसा मालूम हुआ?"
"आश्चर्य की चीज ही मालूम हुआ?"
मनोरमा उसके साथ वोली नही, यहाँ तक कि उससे परिचय है, इस बात का आभास भी उसके आचरण से प्रकट नही हुआ। पिता से ताकीद करते हुए उसने कहा—"शाम हुई जा रही है पिताजी, उठो अव?"
"उठता हूँ वेटी।" कहकर आशु वावू उठने का जरा भी उद्योग न करके बैठे ही रहे। कमल जरा हँसी, मनोरमा की तरफ देखकर वोली—"इनकी तवीयत भी अच्छी नही है, और चढना-उतरना भी आसान नही। इससे अच्छा है कि हम लोग वैठे-वैठे बाते करे, आप लोग देख आइए।"
मनोरमा ने इस प्रस्ताव का जवाब नही दिया, सिर्फ पिता से ही जिद के साथ कहा—"नही पिताजी, सो नही होने का। उठो अव तुम।"
मगर देखा गया कि उठने की कोशिश लगभग किसी ने भी नही की। जो जीवित आश्चर्य इस अपरिचित रमणी के सर्वांग मे व्याप्त होकर अकस्मात् मूर्तिमान् हो उठा, उसके सामने वह निकट ही खडा हुआ संगमरमर का अव्यक्त आश्चर्य मानो एक क्षण मे धुधला-सा पड गया!
अविनाश की अन्यमनस्कता दूर हो गयी। वोले—"इनके विना गये काम न चलेगा। मनोरमा की धारणा है कि पिता की आँखो से देखे वगैर ताज का आधा सौन्दर्य भी हृदयगम नही किया जा सकता।"
कमल ने अपनी सरल आँखे उठाकर पूछा—"क्यो?" फिर आशु वावू से कहा—"आप शायद इस विषय के विशेषज्ञ हैं? और शायद सब बाते जानते हैं?"
मनोरमा मन ही मन विस्मित हुई; बाते ठीक अशिक्षित दासी-कन्या जैसी तो नही मालूम होती!
आशु वावू पुलकित होकर बोले—"मैं कुछ भी नही जानता। विशेषज्ञ तो हूँ ही नही, और सौन्दर्य तत्त्व का सिर-पैर तक नही जानता। उस तरफ से तो मैंने इसे देखा तक नही कमल। मैं देखता हूँ बादशाह शाहजहाँ को। मैं देखता हूँ, उनकी असीम व्यथा को जो मानो इसके हर पत्थर के अग-अग मे समाई हुई है। मैं देखता हूँ उनके एकनिष्ठ पत्नी-प्रेम को, जो इस मर्मर-काव्य की सृष्टि करके चिरकाल के लिए अपनी प्रियतमा को विश्व के सामने अमर कर गया है।"
कमल ने अत्यन्त स्वाभाविक कण्ठ से उनके चेहरे की तरफ देखकर कहा—"मगर उनकी तो सुना है, और भी वहुत-सी वेगमे थी। वादशाह को मुमताज पर जैसा प्रेम था, वैसा औरो पर भी था। हो सकता है कि उससे कुछ ज्यादा हो, पर एकनिष्ठ प्रेम तो उसे नही कहा जा सकता आशु बावू। उनमें वह वात नही थी।"
इस अप्रचलित भयानक मन्तव्य से सब चौंक उठे। आशु बाबू या और कोई इसका जवाब खोजकर भी न पा सके।
कमल ने कहा—"बादशाह कवि थे, वे अपनी शक्ति, सम्पदा और धैर्य से इतनी बडी विराट् सौन्दर्य की वस्तु प्रतिष्ठित कर गये हैं। मुमताज तो एक आकस्मिक उपलक्ष्य-मात्र थी। वह न होती तो भी ऐसा सौन्दय-सौध वे किसी भी घटना को लेकर रच सकते थे। धर्म के नाम पर होता तो भी कोई नुकसान नही था और हजारो-लाखो आदमियो की हत्या करके दिग्विजय-प्राप्ति की स्मृति के रूप मे होता तो भी इसी तरह चला जाता। यह एकनिष्ठ प्रेम का दान नही है, यह तो वादशाह का निजी आनन्द-लोक का अक्षय दान है। बस, इतना ही हमारे लिए काफी है।"
आशु वावू के दिल पर चोट-सी लगी। बार-बार सिर हिलाकर कहने लगे—"काफी नही कमल, हरगिज ऐसा नही था। तुम्हारी बात ही अगर सच हो, बादशाह के मन मे एकनिष्ठ प्रेम अगर न था तो इस विलास स्मृति-मन्दिर का कोई अर्थ ही नही रह जाता। फिर वे चाहे जितनी बडी सौन्दर्य की सृष्टि क्यो न कर जाते, मनुष्य के हृदय मे वैसी श्रद्धा का आसन उनके लिए नही रह जाता।"
कमल ने कहा—"अगर न रहे तो वह मनुष्य की मूढता है। मैं नही कहती कि निष्ठा का कोई मूल्य ही नही, पर जो मूल्य युग-युग से लोग उसे देते आये हैं, वह उसका प्राप्य मूल्य नही है। एक दिन जिससे प्रेम

किया है, फिर किसी दिन किसी भी कारण मे उसमे किमी परिवर्तन का अवकाश नही हो सकता मन का यह अचल-अडिग जड-धर्म न तो स्वस्थ है और न सुन्दर ही।"

सुनकर मनोरमा के विस्मय की सीमा न रही। मूर्ख दासी-कन्या कहकर इसकी उपेक्षा करना कठिन है, मगर इतने पुरुषो के सामने उसी जैसी एक नारी के मुँह मे निकली हुई इस तरह की लज्जाहीन बात ने उसे जबरदस्त चोट पहुँचाई। अब तक वह कुछ बोली नही थी, पर अब वह अपने को रोक न सकी, कठोर किन्तु दबी जबान से बोली—"मैं मानती हूँ, ऐसी मनोवृत्ति और किसी के न सही, पर आपके लिए स्वाभाविक है। मगर औरो की दृष्टि मे न तो यह सुन्दर है और न शोभन।"

आशु बाबू मन ही मन अत्यन्त क्षुण्ण होकर बोले—"छि, बेटी।"

कमल गुस्सा नही हुई, बल्कि जरा हँस दी। बोली—"बहुत दिनो के बद्ध-मूल सस्कार पर आघात लगने से आदमी सहसा सह नही सकता। आपने सच ही कहा है, हमारे निकट यह बात बहुत ही स्वाभाविक है, क्योकि हमारे शरीर और मन मे यौवन परिपूर्ण है, हमारे मन मे प्राण है। जिस दिन जानूँगी कि आवश्यकता होने पर भी उसमे परिवर्तन की कोई शक्ति बाकी नही रही उस दिन समझ लूँगी कि उसका खातमा हो चुका है,—वह मर चुका है।" कहकर ज्यो ही उसने आँखे उठाई त्यों ही देखा कि अजित की आँखो से जैसे चिनगारियाँ निकल रही हैं। मालूम नही वह दृष्टि मनोरमा ने देखी या नही, किन्तु वह बात के बीच ही मे अकस्मात् बोल उठी—"पिताजी, अब दिन नही है, मुझसे जितना बनेगा मैं अजित बाबू को तब तक कुछ थोडा दिखा लाती हूँ।"

अजित की अन्यमनस्कता दूर हो गयी। उसने कहा—"चलो, हम लोग देख आये।"

आशु बाबू खुश होकर बोले—"अच्छी बात है, जाओ बेटी, हम लोग यही बैठे हैं। लेकिन जरा जल्दी ही लौट आना, न होगा तो कल फिर जरा जल्दी आ जायँगे।"

६

अजित और मनोरमा जब 'ताज' देखकर लौटे तब सूर्य अस्त हो चुका था, पर उजाला खतम नही हुआ था। सब खब गिरोह बाँधकर जमे थे, और तर्क घोरतर हो उठा। ताजमहल की बात, घर लौटने की बात, यहाँ तक कि अजित मनोरमा की बात का भी उन्हे खयाल नही था। अक्षय चुप बैठा उफन रहा था। देखकर मालूम होता था कि इसके पहले वह काफी शोर मचा चुका है ओर अब दम ले रहा है। आशु बाबू देह के अधोभाग को चक्र के बाहर की ओर पसार कर और उर्ध्व भाग को दोनो हाथो पर रखकर गुरु-भार वहन करने का एक तरीका निकालकर अत्यन्त दिलचस्पी के साथ सुन रहे हे। अविनाश सामने की ओर झुककर तीव्र दृष्टि मे कमल के चेहरे की तरफ देख रहे हैं। समझ मे आया कि फिलहाल सवाल-जवाब इन्ही दोनो के बीच चालू हैं। सबने आगन्तुको की ओर मुँह उठाकर देखा। किसी ने जरा गरदन हिलायी और किसी को उतनी भी फुरसत नही मिली। कमल और शिवनाथ,— इन दोनो ने भी मुँह उठाकर देखा। किन्तु आश्चर्य यह है कि एक की आँखो की दृष्टि जैसे शिखा की तरह जल रही है, दूसरे की दृष्टि वैसे ही क्लान्त और मलिन हो रही है। मानो वह कुछ देख ही नही रहा है, न कुछ सुन ही रहा है। इस दल मे बैठा हुआ भी शिवनाथ जैसे न जाने कहाँ कितनी दूर चला गया है।

आशु बाबू ने कहा—"बैठो।" पर वे कहाँ बैठे, ओर बैठे या नही, यह देखने की भी उन्हे फुरसत नही मिली।

अविनाश ने शायद अक्षय की युक्ति-माला का छिन्न सूत्र हाथ मे ले लिया और कहा—"बादशाह शाहजहाँ का प्रसग अभी रहने दो। मैं मानता हूँ कि उनके सम्बन्ध मे विचार करने की जरूरत है और प्रश्न जरा जटिल है। मगर प्रश्न जहाँ उस सामने के सगमरमर के समान सफेद, पानी की तरह साफ, सूर्य के प्रकाश की तरह स्वच्छ और सीधा है,— ले लीजिए हमारे आशु बाबू का जीवन, किसी भी दिशा मे भी कोई कमी नही थी, बन्धु-बान्धव की कोशिश मे भी कोई त्रुटि नही थी, मालूम तो है ही सब,— लेकिन यह बात ये सोच ही न सके कि अपनी मृत स्त्री की जगह और किसी को लाकर किसी तरह बिठाया जा सकता है। यह बात इनकी कल्पना मे भी बाहर है। बताइए, नर-नारी के प्रेम का यह कितना बडा आदर्श है? कितना ऊँचा स्थान है इसका?"

कमल कुछ कहना ही चाहती थी कि पीछे से एक मृदु स्पर्श का अनुभव करके उधर देखने लगी। शिवनाथ ने कहा—"अब यह अलोचना बन्द करो।"

कमल ने पूछा—"क्यो?"

शिवनाथ ने उत्तर मे सिर्फ इतना कहा—"ऐसे ही कह रहा हूँ।" और वे चुप हो गये। उनकी बात पर किसी ने विशेष ध्यान नही दिया,— उन उदास अन्यमनस्क ऑखो के अन्तराल मे कौन-सी बात दबी रह गई किसी को मालूम भी न हुई, और न किसी ने जानने की कोशिश ही की।

कमल ने कहा—"अच्छा, ऐसे ही। तुम्हे घर चलने की जल्दी पडी है शायद? पर घर तो साथ मौजूद है।" और हँस दी।

आशु बाबू सहम गये, हरेन्द्र और अक्षय ओठो ही ओठो मे मुसकराये, मनोरमा दूसरी तरफ आँखे फेर ली, किन्तु जिसको लक्ष्य करके यह बात कही गयी थी, उस शिवनाथ के आश्चर्यजनक सुन्दर चेहरे पर एक रेखा का भी परिवर्तन नही हुआ,— मानो वह बिलकुल पत्थर का बना हो,— न तो उसे कुछ दिखाई देता है और न सुनाई।

अविनाश से देर नही सही जा रही थी। उन्होने कहा—"मेरे सवाल का जवाब दो!"

कमल ने कहा—"पर पति की मनाही है जो। उनकी मंशा के खिलाफ चलना क्या उचित है?" यह कहकर वह हँसने लगी। अविनाश से स्वय भी बिना हँसे न रहा गया। बोले—"इस मामले मे अपराध न माना जायगा। हम इतने आदमी मिलकर तुमसे अनुरोध कर रहे हैं, जवाब दो।"

कमल ने कहा—"आशु बाबू को आज मिलाकर सिर्फ दो दिन देखा है, पर इसी बीच मे मन ही मन मैं उन्हे चाहने लगी हूँ।" फिर शिवनाथ की तरफ इशारा करके कहा—"अब समझ मे आया न, कि क्यो ये मुझे बोलने के लिए मना कर रहे थे?"

आशु बाबू ने खुद इसमे रुकावट डाली। बोले—"पर मेरी तरफ से तुम्हे सकोच या दुविधा करने का कोई कारण नही। बूढा आशु वैद्य बडा निरीह आदमी है कमल। सिर्फ दो ही दिन देखकर तुमने उसे बहुत-कुछ समझ लिया होगा, और दो दिन देखोगी तो समझ जाओगी कि उससे डरने जैसी भूल ससार मे शायद ही कोई हो। तुम स्वच्छन्दता मे कहो,— ये सब बाते सुनने मे वास्तव मे मुझे बहुत आनन्द आता है।"

कमल ने कहा—"लेकिन ठीक इसीलिए तो ये मना कर रहे थे, और इसीलिए अविनाश बाबू की बात का जवाब देने मे अब तक मेरी जबान रुकती थी कि नर-नारी के प्रेम के व्यापार मे न तो मैं इसे बडी चीज समझती हूँ और न आदर्श ही मानती हूँ।"

अब अक्षय का मुँह खुला। उसके प्रश्न के ढंग मे श्लेष था—"सम्भव यही है कि आप लोग नही मानते, मगर क्या मानते हैं, जरा बताएँगी क्या?"

कमल ने उसकी तरफ देखा जरूर, पर ठीक उसी को उत्तर दिया हो, सो बात नही। वह बोली—"एक दिन आशु बाबू अपनी स्त्री से प्रेम करते थे, जो इस समय जीवित नही हैं। पर अब उन्हे न तो कुछ दिया ही जा सकता है और न उनसे कुछ पाया ही जा सकता है। उन्हे अब न तो सुखी किया जा सकता है और न दु ख दिया जा सकता है। वे हैं ही नही, प्रेम -पात्र का निशान तक पुँछ गया है। उन्हे किसी दिन प्रेम किया था, मन मे सिर्फ यह घटना-मात्र रह गयी है। मनुष्य नही है, उसकी केवल स्मृति है। उसी को अहोरात्र मन में पालते रहकर वर्तमान की अपेक्षा अतीत को ही ध्रुव जानकर जीवन बिताने मे कौन-सा बडा भारी आदर्श है, मेरी तो कुछ समझ मे नही आता!"

कमल के मुँह से ऐसी बात सुनकर आशु बाबू को फिर चोट पहुँची। वे बोले—"मगर, हमारे देश की विधवाओ के हाथ में सिर्फ यही एक चरम पूँजी रहती है। पति चल बसता है, पर उसकी स्मृति को लेकर ही तो विधवा-जीवन की पवित्रता बनी रहती है। इसे क्या तुम नही मानती?"

कमल ने कहा—"नही। एक बडा नाम दे देने से ही तो कोई चीज ससार मे सचमुच बडी नही हो जाती। बल्कि यो कहिए कि इस देश मे इसी तरह वैधव्य-जीवन बिताने का रिवाज है, इसे मैं अस्वीकार नही करूँगी।"

अविनाश ने कहा—"अगर ऐसा ही हो, लोग अगर उन्हे ठगते ही आ रहे हो, विधवा के ब्रह्मचर्य मे,— खैर जाने दो, ब्रह्मचर्य का नाम अब न लूँगा,— लेकिन उसके आमरण सयत जीवन को क्या हम

विराट् पवित्रता का भी सम्मान न देगे?"

कमल हँस दी, बोली—"अविनाश बाबू, यह भी एक उसी शब्द का मोह है। 'सयम' शब्द बहुत दिनो से बहुत ज्यादा इज्जत पा-पाकर ऐसा फूल उठा है कि उसके लिए अब स्थान-काल कारण-अकारण नही रह गया है। उसके उच्चारण-मात्र से सम्मान के बोझ से आदमी का सिर झुक जाता है। परन्तु अवस्था-विशेष मे यह भी एक थोथी आवाज से ज्यादा कुछ नही है। यह शब्द मुँह मे निकालते ही साधारण लोगो को भले ही डर लगे, पर मुझे नही लगता। मैं उस दल की नही हूँ। सिर्फ इसीलिए कि बहुत-से लोग बहुत दिनो से कोई एक बात कहते आ रहे हैं, मैं उसे मान नही लेती। पति की स्मृति को छाती से चिपटाये रहकर विधवाओ को दिन काटने चाहिए, इसके समान स्वत सिद्ध पवित्रता की धारणा को स्वीकार करने मे मुझे तब तक हिचकिचाहट रहेगी जब तक कि उने कोई प्रमाणित नही कर देगा।"

अविनाश को जवाब ढूँढे न मिला और क्षण-भर विमूढ़ की भाँति देखते रह गय। फिर बोले—"तुम कहती क्या हो?"

अक्षय ने कहा—"दो और दो चार होते है, इसे भी शायद प्रमाणित किये बगैर आप नही मानेगी?"

कमल ने न तो जवाब दिया और न गुस्सा ही हुई, सिर्फ हँस दी।

और भी एक सज्जन जो गुस्सा नही हुए, वे थे आशु बाबू। किन्तु कमल की बात से ज्यादा व्यथित भी वे ही हुए।

अक्षय फिर बोला—"आपकी ये सब गन्दी धारणाएँ हमारे शिष्ट-समाज में नही हैं, यहाँ ये चल नही सकती।"

कमल ने पूर्ववत् हँसते चेहरे से ही उत्तर दिया—"शिष्ट समाज में अचल हें, यह मैं जानती हूँ।"

इसके बाद कुछ देर तक सबके सब मौन रहे। आशु बाबू धीरे-धीरे बोले—"और एक बात तुमसे पूछता हूँ कमल। पवित्रता-अपवित्रता के लिए नही कह रहा, किन्तु स्वभावत जो और कुछ कर नही सकता, जैसे मुझको ही ले लो, मणि की स्वर्गीय माँ की जगह और किसी को ला विठाने की तो मैं कभी कल्पना ही नही कर सकता।"

कमल ने कहा—"आप वूढे जो हो गये हैं आशु बाबू।"

आशु बाबू ने कहा—"मानता हूँ, आज बूढ़ा हो गया हूँ, किन्तु उस दिन तो बूढ़ा नही था। पर तब भी तो यह बात नही सोच सकता था?"

कमल ने कहा—"उस दिन भी ऐसे ही बूढे थे। देह से नही, मन से। कोई-कोई आदमी होते हैं जो बूढा मन लिये ही पैदा होते हैं। उस बूढ़े के शासन के नीचे उनका जीर्ण-शीर्ण विकृत-यौवन हमेशा लज्जा से सिर नीचा किये रहता है। बूढा मन खुश होकर कहता है, अहा! यही तो अच्छा है, कोई हगामा नही, उन्माद नही,— यही तो शान्ति है, यही तो मनुष्य के लिए चरम तत्त्व की बात है। उसके लिए कितने तरह के अच्छे-अच्छे विशेषण हैं, कितनी वाहवाही का आडम्बर है। ऊँचे स्वर से उसकी ख्याति का बाजा बजता है, पर इस बात को वह जान भी नही पाता कि यह उसके जीवन का जय-वाद्य नहीं, आनन्दलोक के विसर्जन का बाजा है।"

सभी को मन ही मन लगा कि इसका एक कडा जवाब देना जरूरी है। एक स्त्री के मुँह मे यौवन के उन्माद की इस निर्लज्ज स्तुति से सभी के कान जलने लगे, पर जवाब देने लायक बात किसी को ढूँढे नही मिली।

तब आशु बाबू ने मृदु कण्ठ से पूछा—"कमल, बूढा मन तुम किसे कहती हो? देखूँ, अपने साथ जरा मिलाकर। यह सचमुच ही वही है या नही।"

कमल ने कहा—"मन का बुढापा मै उसी को कहती हूँ आशु बाबू, जो अपने सामने की ओर नही देख सकता, जिसका हारा-थका जराग्रस्त मन भविष्य की समस्त आशाओ को जलांजलि देकर सिर्फ अतीत के अन्दर ही जिन्दा रहना चाहता है। मानो उसे कुछ करने की, कुछ पाने की चाह ही नही है,— वर्तमान उसकी दृष्टि मे लुप्त है, अनावश्यक है, और भविष्य अर्थहीन। अतीत ही उसके लिए सब कुछ है। वही उसका आनन्द, वही उसकी वेदना और वही है उसका मूलधन। उसी को भुना-भुनाकर गुजर करके जीवन के बाकी दिन बिता देना चाहता है। देखिए तो आशु बाबू, अपने साथ जरा तुलना करके।'

आशु बाबू हँसे। बोले—"यथासमय एक बार जरूर देखूँगा।"

अजितकुमार ने अब तक की इतनी बातचीत के बीच मे एक भी बात नही कही थी, वह सिर्फ निष्फलक दृष्टि कमल के मुँह की तरफ देख रहा था। सहसा न जाने उसे क्या हो गया, अपने को वह सँभाल न सका, बोल उठा—"मेरा एक प्रश्न है, देखिए मिसेज—"

कमल ने सीधे उसकी तरफ देखकर कहा—"मिसेज किसलिए? मुझे आप कमल ही कहिए न।"

अजित मारे शरम के सुर्ख हो उठा—"नही नही, सो कैसे,— ऐसा कैसे—"

कमल ने कहा—"ऐसा-वैसा कुछ भी नही। माँ-बाप ने मेरा यह नाम रखा था पुकारने के लिए ही तो! इससे मैं नाराज नही होती।" अकस्मात् मनोरमा के मुँह की ओर देखकर बोली—"आपका नाम मनोरमा है,— मनोरमा कहकर बुलाने से आप नाराज होती हैं क्या?'

मनोरमा ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ, मैं नाराज होती हूँ।"

ऐसे जवाब की उससे किसी ने भी उम्मीद नही की थी, आशु बाबू तो मारे सकोच के म्लान हो गये। सिर्फ कमल स्वय सकुचित नही हुई। बोली—"नाम तो और कुछ नही एक शब्द है, जिससे समझा जाता है कि एक आदमी बहुतो में से किसी एक आदमी को बुला रहा है। पर हाँ, यह सच है कि बहुतो के अभ्यास से यह खटकती है। वे इस शब्द को नाना रूप से अलकृत करके सुनना चाहते हैं' देखने नही राजा लोग अपने नाम के आगे न जाने कितने निरर्थक शब्द जोडकर, कितने 'श्री' जोडकर, तब कही उसे दूसरे को उच्चारण करने देते हैं। नही तो उनकी मर्यादा नष्ट होती है।" इतना कहकर वह सहसा हँस पड़ी और शिवनाथ की तरफ इशारा करके बोली—"जैसे ये। कभी इनसे कमल कहते नही बनता, कहते हैं शिवानी। अजित बाबू, आप बल्कि मुझे मिसेज शिवनाथ न कहकर शिवानी कहिए। शब्द भी छोटा है, और सब समझ भी लेगे। कम से कम मैं तो समझ ही जाऊँगी।"

परन्तु न जाने क्या हुआ कि ऐसा सुस्पष्ट आदेश पाकर भी अजित से कुछ बोला नही गया, प्रश्न उसके मुँह मे ही अटक रहा।

उस वक्त सध्या समाप्त होकर कातिक-पूनो के वाष्पाच्छन्न आकाश मे स्वच्छ चाँदनी छिटक रही थी। उस तरफ देखकर पिता की दृष्टि आकर्षित करते हुए मनोरमा ने कहा—"पिताजी, ओस पडनी शुरू हो गयी है, बस, उठिए अब।"

आशु बाबू बोले—"यह लो, उठता हूँ बिटिया।"

अविनाश ने कहा—"शिवानी नाम बहुत अच्छा है। शिवनाथ गुणी पुरुष है, इसी से नाम भी मीठा दिया है, अपने नाम के साथ मेल भी खूब मिलाया है।"

आशु बाबू खिल उठे। बोले—"अजी ये शिवनाथ नही—अविनाश, ऊपर के वे।" और एक बार आकाश की ओर देखकर बोले—"आदि-काल के उस बूढ़े घटक ने इन दोनो का सब तरफ से मेल कराने के लिए आहार-निद्रा तक छोड दी थी। जीते रहो।'

अकस्मात् अक्षय सीधा होकर बैठ गया और दो-तीन बार सिर हिलाकर अपनी छोटी-छोटी आँखो को यथाशक्ति फाडकर बोला—"अच्छा, आपसे एक प्रश्न कर सकता हूँ क्या?"

कमल ने कहा—"कौन-सा प्रश्न?"

अक्षय ने कहा—"आपके लिए सकोच नाम की तो कोई बला है नही, इसी से पूछता हूँ—शिवानी नाम तो अच्छा है, मगर, शिवनाथ बाबू के साथ क्या आपका वास्तव मे व्याह हुआ है?"

आशु बाबू का चेहरा स्याह पड गया। बोले—"यह क्या कह रहे हो अक्षय बाबू?"

अविनाश ने कहा—"तुम पागल हो गये हो?"

हरेन्द्र ने कहा—"ब्रूट" (जगली)।

अक्षय ने कहा—"आप तो जानते हैं, मेरे आँखो का झूठा लिहाज नही।"

हरेन्द्र ने कहा—"झूठा सच्चा किसी तरह का भी नही। पर हम लोगों को तो है।"

लेकिन कमल हँसने लगी। जैसे यह कोई बडे विनोद की बात हो। उसने कहा—"इसमे नाराज होने की कौन-सी बात है हरेन्द्र बाबू? मैं बताती हूँ अक्षय बाबू। बिलकुल कुछ हुआ ही न हो, सो बात नही। व्याह जैसी कोई बात हुई जरूर थी। जो लोग देखने आये थे, वे लगे हँसने। बोले—'यह व्याह ही नही,—धोखा है। इनसे पूछने पर इन्होने कहा, शैव मत से व्याह हुआ तो इसमें चिन्ता की कौन-सी बात है?"

अविनाश सुनकर दुःखित हुए। उन्होंने कहा—"लेकिन शैव-विवाह तो अब हमारे समाज मे होता नही न, इसलिए अगर ये किसी दिन 'नही हुआ' कहकर उसे उडा देना चाहे, तो प्रमाणित करने लायक तुम्हारे पास कुछ रह नही जाता कमल।"

कमल ने शिवनाथ की तरफ देखकर कहा—"क्यो जी, करोगे क्या तुम ऐसा किसी दिन?"

शिवनाथ ने कुछ जवाब नही दिया। वह पहले की तरह उदास और गम्भीर चेहरा लिये बैठा रहा। तब कमल ने हँसी के बहाने माथे पर हाथ मारकर कहा—"हाय रे भाग्य! ये जायँगे 'नही हुआ' कहकर अस्वीकार करने और मैं जाऊँगी उसी को 'हुआ है' कहकर दूसरो के पास न्याय कराने? उसके पहले गले मे फाँसी डालने लायक एक रस्सी भी न जुटेगी क्या?"

अविनाश ने कहा—"जुट सकती है, मगर आत्म-हत्या तो पाप है?"

कमल ने कहा—"पाप नही खाक है। मगर ऐसा होगा नही। मैं आत्म-हत्या करने जाऊँगी, यह मेरे विधाता भी नही सोच सकते।"

आशु बाबू कह उठे—"यह तो मनुष्य की सी बात है कमल।"

कमल ने उनकी तरफ देखकर शिकायत करने के ढग से कहा, "देखिए तो अविनाश बाबू का अन्याय।" फिर शिवनाथ की तरफ इशारा करके कहा, "ये करेंगे मुझे अस्वीकार, और फिर मैं जाऊँगी गर्दन पकड के इन से स्वीकार कराने? सत्य तो डूब जायगा, और जिस अनुष्ठान को मानती नही, उसी की रस्सी लेकर इन्हें बाँधना चाहूँगी मैं? मैं करूँगी ऐसा काम?" कहते-कहते उसकी दोनो आँखे चमक उठी।

आशु बाबू ने आहिस्ते से कहा—"शिवानी, ससार मे सत्य ही बडा है, इस बात को हम सभी मानते हैं, पर अनुष्ठान भी तो मिथ्या नही है?"

कमल ने कहा—"मिथ्या तो कह नही रही मैं। जैसे कि प्राण भी सत्य हैं और देह भी है,—लेकिन प्राण जब निकल जाते हैं तब?"

मनोरमा ने पिता का हाथ खीचते हुए कहा—"पिताजी, बहुत ज्यादा ओस पडने लगेगी, अब बिना उठे काम नही चलेगा।"

"अभी उठा, बेटी।"

शिवनाथ सहसा खडा होकर बोला—"शिवानी, अब और देर मत करो।"

कमल इसी वक्त उठकर खडी हो गयी और सबको नमस्कार करके बोली—"आप लोगो से परिचय हुआ मानो सिर्फ बहस करने के लिए। कुछ खयाल न करें।"

शिवनाथ को इतनी देर बाद अब जरा हँसी आयी, कहा—"बहस ही सिर्फ की शिवानी, सीखा कुछ भी नही?"

कमल ने विस्मय के स्वर मे कहा—"नही। मगर सीखने को था ही क्या, मुझे तो कुछ खयाल नही पडता।"

शिवनाथ ने कहा—"खयाल पडने की बात भी नही थी, वह ओट का ओट मे ही रह गया। हो सके तो आशु बाबू के जरा ग्रस्त बूढ़े मन के प्रति जरा श्रद्धा रखना सीखना। उससे बढ़कर सीखने को और कुछ नही है।"

कमल ने विस्मय के साथ कहा—"यह तुम कह क्या रहे हो आज?"

शिवनाथ ने जवाब नही दिया, फिर भी सबको नमस्कार करके कहा—"चलो।"

आशु बाबू ने एक गहरी साँस लेकर कहा—"आश्चर्य है!"

७

आश्चर्य तो है ही। इसके सिवा मन की बात व्यक्त करने के लिए और शब्द ही कौन-सा था? वास्तव मे, वे दोनो चले क्या गये एक अति आश्चर्यजनक नाटक के बीच के ही अक मे यवनिका डाल गये,—परदे के उस पार विस्मय की न जाने कितनी बाते अज्ञात रह गयी। सभी के मन मे यही एक बात उथल-पुथल मचाने लगी और सभी को ऐसा मालूम हुआ मानो इसीलिए वे यहाँ आये थे। आकाश मे चन्द्रमा उदित हुआ है, हेमन्त ऋतु की ओस से भीगी हुई चाँदनी के पास के ताजमहल का सफेद

सगमरमर मायापुरी की भाँति उद्भासित हो उठा है, पर उधर किसी की दृष्टि भी नही है।

मनोरमा ने कहा—"अब नही उठोगे तो सचमुच तुम्हारी तबीयत खराब हो जायगी पिताजी।"

अविनाश ने कहा—"ओस पड रही है, उठिए।"

सबके सब उठके खडे हो गये। फाटक के बाहर आशु बाबू की बडी मोटर खडी थी; पर अक्षय हरेन्द्र के ताँगेवाले का पता नही था? शायद इसी बीच मे वह ज्यादा किराये की सवारी पाकर चम्पत हो गया था। लिहाजा, किसी तरह सट-सटाकर सबको मोटर मे ही बैठना पडा। कुछ देर तक सब चुप रहे, अन्त मे बात की सबसे पहले अविनाश ने। वे बोले—"शिवनाथ ने झूठ कहा था। कमल हरगिज किसी दासी की लडकी नही है। असम्भव है।" कहकर वे मनोरमा के मुँह की ओर देखने लगे।

मनोरमा के मन मे भी ठीक यही प्रश्न उठ रहा था, पर वह मौन रही। अक्षय ने कहा—"झूठ बोलने का कारण? स्त्री का यह परिचय तो गौरव का नही है अविनाश बाबू!"

अविनाश ने कहा—"यही तो सोच रहा हूँ।"

अक्षय ने कहा—"आप लोग अचम्भे मे आ गये, पर मैं नही आया। यह सब शिवनाथ की प्रतिध्वनि है। इसी से उसकी बातो मे 'ब्रैवाडो' बहुत ज्यादा था, चीज कुछ नही थी। असल और नकल जान लेता हूँ। इतना आसान नही है मुझे धोखा देना।"

हरेन्द्र बोल उठा—"बाप रे! आपको धोखा देना? एकदम मोनोपॉली पर हस्तक्षेप?"

अक्षय ने उस पर एक तीव्र क्रुद्ध दृष्टि डालकर कहा—"मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उसमे उच्च घराने का 'कलचर' (सस्कृति) पाई-भर नही है। औरतो के मुँह से ये सब बाते 'इमॉरल' ही नही, अश्लील भी हैं।"

अविनाश ने प्रतिवाद के तौर पर कहा—"यह दूसरी बात है। उसकी सब बाते औरतो के मुँह से ठीक शोभन न लगे पर उन्हे अश्लील नही कह सकते अक्षय।"

अक्षय ने कठोर होकर कहा—"वे दोनो ही एक से हैं अविनाश बाबू। देखा नही, ब्याह इन लोगो के लिए तमाशे की चीज बन गयी है। जब सबने आकर कहा कि यह ब्याह नही है, धोखेबाजी है, तब उन्होने सिर्फ हँस के कहा, ऐसी बात है क्या? उनका एब्सोल्यूट इण्डिफरेन्स (सम्पूर्ण उपेक्षा-भाव) आप लोगो ने क्या नोटिस नही किया? यह क्या कभी कुलीन कन्या के लिए शोभा दे सकता है, या कभी सम्भव हो सकता है?"

बात उसकी सच थी, इसी से सब चुप रहे। आशु बाबू अब तक कुछ बोले नही थे। सब कुछ वे सुन रहे थे। वे अपनी ही उधेड-बुन मे थे। सहसा इस स्तब्धता से उनका ध्यान भग हुआ। धीरे-धीरे बोले—"विवाह के प्रति नहीं बल्कि उसके 'फार्म' पर शायद कमल की उतनी आस्था नही है। अनुष्ठान कुछ भी हो, जो हो गया सो उसके लिए ठीक है। पति से कहा, "ये लोग कहते हैं, यह, ब्याह धोखेबाजी है।" पति ने कहा—"विवाह हुआ है हम लोगो का शैव मत से।" कमल खुश होकर बोली—"शिव के साथ ब्याह अगर शैव मत से हुआ हो तो अच्छा है।" बात मुझे ऐसी मीठी लगी अविनाश बाबू कि पूछिए नही।"

भीतर-ही-भीतर अविनाश का मन भी इसी स्वर मे बँधा था। वे बोले—"और उसी शिवनाथ के मुँह की तरफ देखकर हँसते-हँसते पूछना, 'क्योजी, करोगे क्या तुम ऐसा? दोगे क्या तुम मुझे धोखा? उसके बाद तो कितनी ही बाते हो गयी। आशु बाबू, लेकिन उसकी गूँज अभी तक मेरे कानो मे गूँज रही है।"

प्रत्युत्तर मे आशु बाबू ने हँसकर सिर्फ सिर हिला दिया।

अविनाश ने कहा, "और उसका वह शिवानी नाम? वह क्या कम मीठा है?"

अक्षय से मानो सहा नही गया। वह बोला—"आप लोगो ने तो मुझे दग कर दिया अविनाश बाबू! उनका जो कुछ है सब मधुर है। यहाँ तक कि शिवनाथ के नाम के साथ एक 'नी' जोड देने से भी मधु झरने लगा।"

हरेन्द्र ने कहा—"सिर्फ 'नी' जोड देने से ही नही होता अक्षय बाबू, आपकी स्त्री को 'अक्षयनी' कहकर पुकारने से ही क्या मधु झरने लगेगा?"

उसकी बात सुनकर सभी हँस पडे, यहाँ तक कि मनोरमा ने भी रास्ते की तरफ मुँह फेरकर हँसी

छिपाई।

अक्षय मारे क्रोध से पागल-सा हो उठा। गरजकर बोला—"हरेन्द्र बाबू, 'डोण्ट यू गो टू फार'। किसी उच्च वशीय महिला के साथ ऐसी स्त्रियो की तुलना इशारे मे करने को भी मैं अत्यन्त अपमानजनक समझता हूँ, सो आपसे स्पष्ट कहे देता हूँ।"

हरेन्द्र चुप रहा। वहस करने का उसका स्वभाव न था और न अपनी युक्तियो मे प्रमाणित करने की ही उसकी आदत थी। बीच मे अचानक कुछ कहकर वह ऐसा नीरव हो जाता कि हजार कोचने पर भी कोई उसके मुँह से एक शब्द भी नही निकलवा सकता। हुआ भी ऐसा ही। अक्षय बचे हुए रास्ते मे शिवानी को छोडकर हरेन्द्र के पीछे पड गया। वह कहता रहा कि उसके शिष्ट महिला का शिष्टताहीन गन्दा मजाक उडाया है। शिवनाथ की शैवमत से विवाहिता स्त्री की वात मे और व्यवहार मे आभिजात्य की बू तक नही, वल्कि उसकी शिक्षा और सस्कार मे जघन्य हीनता का ही परिचय मिलता है,— आदि वातो को वह अत्यन्त अप्रिय तरीके से वार-वार प्रमाणित करने लगा। इतने मे गाडी आशु वावू के दरवाजे पर आकर खडी हो गयी, फिर अविनाश तथा और सवों को उतारकर हरेन्द्र, अक्षय आदि को पहुँचाने चली गयी।

आशु वावू उद्विग्न होकर वोले—"गाडी मे दोनो के दोनो कही मार-पीट न कर बैठें।"

अविनाश ने कहा—"इसका कोई डर नही। यह तो रोजमर्रा की वात है और इससे उनकी मित्रता मे कोई फर्क नही पडता।"

भीतर जाकर चाय पीने वैठे तो आशु वावू ने धीरे से कहा—"अक्षय वावू की प्रकृति वडी कठोर है। इससे बढकर कठोर बात उनकी जवान पर और क्या आती?" सहसा लडकी की ओर देखकर वोले—"अच्छा मणि, कमल के सम्बन्ध मे तुम्हारी पहले की धारणा क्या आज भी नही बदली?"

"कैसी धारणा पिताजी?"

"यही, जैसे,—जैसे—"

"मगर मेरी धारणा से तुम लोगों को क्या काम पिताजी?"

पिता ने फिर कुछ नही कहा। वे जानते थे कि इस स्त्री के सम्बन्ध मे मनोरमा का चित्त अत्यन्त विमुख है। यह वात उन्हे पीडा पहुँचाती है, पर इस वात को लेकर नयी तरह से आलोचना करने बैठना उनके लिए जिस तरह अप्रिय है, वैसे ही निष्फल भी है।

अकस्मात् अविनाश वोल उठे—"मगर एक विषय पर आप लोगों ने शायद ध्यान नहीं दिया। वह है शिवनाथ के अन्तिम शब्द। कमल का सब कुछ ही अगर दूसरे की प्रतिध्वनि मात्र होता तो यह वात शिवनाथ को कहने की जरूरत नही पडती कि वह आप पर श्रद्धा रखना सीखे।" इतना कहकर उनने खुद भी गम्भीर श्रद्धा के साथ आशु वावू के मुँह की तरफ देखकर कहा—"कहने मे क्या हर्ज है वास्तव मे आप जैसे भक्ति के पात्र ससार मे हैं कितने? सिर्फ इसी के लिए मैं उसके अनेक अपराध क्षमा कर सकता हूँ आशु वावू, कि इतने-से मामूली परिचय मे शिवनाथ ने इतने बड़े सत्य को हृदयगम कर लिया।"

सुनकर आशु वावू चचल हो उठे। उनका विपुल कलेवर लज्जा से मानो सकुचित हो गया। मनोरमा ने कृतज्ञता से दोनों आँखे भरकर वक्ता के मुँह की तरफ मुँह उठाकर देखा और कहा—"अविनाश वावू, यही पर उनके साथ उनकी स्त्री का सचमुच भेद है। आज मैं जान गयी कि उस दिन धोती और साबुन माँगने के बहाने वह मेरा सिर्फ उपहास ही कर गयी थी। उस दिन का उसका अभिनय मैं समझ नही सकी थी।—पर उसका यह सब छल-छन्द, सब व्यग्य व्यर्थ है पिताजी, अगर तुम्हे वह आज सबसे वडा जानकर न पहचान सकी हो?"

आशु वावू व्याकुल हो उठे—"तू यह सब क्या कह रही है बेटी?"

अविनाश ने कहा—"अतिशयोक्ति तो इसमे कही भी नही आशु वावू। जाते वक्त शिवनाथ ने यही वात अपनी स्त्री से कहने की कोशिश की थी। आज उसने वात नही की, पर उसकी इस एक ही वात से मुझे मालूम हो गया है कि उन दोनो मे परस्पर यही सवसे बडा मतभेद है।"

आशु वावू ने कहा—"ऐसा अगर हो तो शिवनाथ का ही दोष है, कमल का नही।"

मनोरमा सहसा वोल उठी—"यह तो तुम्ही जानोपिताजी कि तुमने किन आँखो से उसे देखा है, मगर

तुम जैसे मनुष्य को जो श्रद्धा नही कर सकती उसे क्या कभी क्षमा किया जा सकता है?"

आशु बाबू ने लडकी के चेहरे की तरफ देखकर कहा—"क्यो बेटी? मुझ पर अश्रद्धा करने का भाव तो उसके एक भी आचरण से जाहिर नही हुआ।"

"पर श्रद्धा तो नही दिखाई दी?"

आशु बाबू ने कहा—"दिखाई देने की कोई बात भी नही थी मणि। बल्कि दिखाई देती तो उसका वह मिथ्याचार होता। मेरे अन्दर जिस चीज को तुम लोग शक्ति की बहुलता समझकर मुग्ध होते हो, उसकी नजर में वह खालिस शक्ति की कमी है। यही बात उसने मुझसे कही है कि कमजोर आदमी को स्नेह के सहारे प्यार किया जा सकता है,— परन्तु मेरा जो मूल्य उसकी दृष्टि मे नही है, जबरदस्ती उसे देकर उसने मुझे भी नीचे नही गिराया और न अपना ही अपमान किया। यही तो ठीक है, इसमे व्यथित होने की तो कोई बात ही नही मणि।"

अब तक अजित अन्यमनस्क-सा था, इस बात पर उसने इधर देखा। वह कुछ भी जानता नही था और जान लेने की फुरसत भी उसे नही मिली थी। सारी बाते उसके लिए धुँधली-सी थी,— अब आशु बाबू ने जो कुछ कहा, उससे भी स्पष्ट नही हुआ, फिर भी उसका मन मानो जाग उठा।

मनोरमा चुप रही, किन्तु अविनाश बाबू उत्तेजना के साथ पूछ उठे—"तो क्या फिर स्वार्थ त्याग का कोई मूल्य ही नही?"

आशु बाबू हँस दिये, बोले—"प्रश्न ठीक प्रोफेसरो जैसा नही हुआ। जो भी हो,— उसके लिए उसका मूल्य नहीं है।"

"तो फिर आत्म-सयम की भी कोई कीमत नही?"

"उसकी दृष्टि मे नही है। सयम जहाँ अर्थहीन है वहाँ सिर्फ निष्फल आत्म-पीडन है। और उसी को लेकर अपने को बड़ा मानना सिर्फ अपने को ठगना नही बल्कि दुनिया को ठगना है। कमल के मुँह से जो कुछ सुना उससे मुझे लगा कि वह इसी बात को बार-बार कहना चाहती है।" इतना कहकर वे क्षण-भर मौन रहे, फिर बोले—"मालूम नही उसे कहाँ से यह धारणा मिली पर सहसा सुनने से बडा आश्चर्य होता है।"

मनोरमा बोल उठी—"केवल आश्चर्य होता है! सारे शरीर मे जलन नही होने लगती? पिताजी, क्या कभी कोई भी बात तुम जोर के साथ नही कह सकोगे? जो जिसके मन मे आयेगा, कहेगा और तुम उस पर हाँ कह दोगे?"

आशु बाबू ने कहा—"हाँ तो नही कहा बेटी। लेकिन मन मे राग-द्वेष भरकर विचार करने से सिर्फ एक ही नही ठगाया जाता, दूसरा पक्ष भी ठगाया जाता है। जो बातें हम कमल के मुँह मे ठूँस देना चाहते हैं ठीक वे ही बाते उसने नही कही। उसने जो कुछ कहा उसका निष्कर्ष शायद यही है कि इन लम्बे सस्कारो मे सत्य समझकर जिस तत्त्व को हमने अपने खून के अन्दर प्राप्त किया है, वह प्रश्न का सिर्फ एक ही पहलू है। मगर उसका दूसरा पहलू भी है। आँख मीचकर सिर्फ सिर हिला देने से ही कैसे चल सकता है मणि?"

मनोरमा ने कहा—"पिताजी, भारतवर्ष मे इतने दिनो से क्या उस पहलू को देखने वाला कोई दूसरा हुआ ही नही?"

उसके पिता जरा हँसकर बोले—"यह अत्यन्त क्रोध की बात है बेटी। नही तो तुम खुद भी अच्छी तरह जानती हो कि सिर्फ एक हमारे देश के ही नही, दुनिया के किसी भी देश के पूर्वगामी 'शेष प्रश्न' का जवाब दे गये हैं, ऐसा हो भी नही सकता क्योंकि तब तो फिर सृष्टि ही रुक जाती। इसके चलने का कोई अर्थ ही नही रह जाता।"

सहसा उन्होने देखा कि अजित एकटक देख रहा है। बोले—"तुम शायद कुछ भी समझ नही रहे हो,— क्यो?"

अजित के गरदन हिलाने पर आशु बाबू ने घटना की पुनरावृत्ति करते हुए समझाकर कहा, "अक्षय ने न जाने कैसी एक होमकुण्ड की-सी पवित्र आग जला दी कि लोग उसकी तरफ देखना तो दूर रहा धुएँ के मारे आँख तक नही खोल सके। मजा यह कि हम लोगो का मामला है शिवनाथ के विरुद्ध, और दण्ड दिया गया है कमल को। वे थे यहाँ के एक प्रोफेसर, शराब पीने के अपराध मे उनकी नौकरी गयी, रुग्ण स्त्री को त्यागकर घर ले आये कमल को। बोले—"विवाह हुआ है शैव मत से।" अक्षय बाबू ने

भीतर-ही-भीतर पता लगाकर जाना कि सब धोखा है। पूछा गया—"लडकी क्या कुलीन घराने की है? शिवनाथ ने कहा—"वह उनके घर की दासी की कन्या है।" पूछा गया—"लडकी क्या शिक्षित है? शिवनाथ ने जवाब दिया—"शिक्षा के लिए विवाह नही किया, किया है रूप के लिए।" बात सुनी। कमल का अपराध मुझे कही ढूँढ़े नही मिला अजित, और फिर उसी को हम लोगो ने सब ससर्गो से दूर कर दिया। हम लोगो की घृणा जाकर पडी सबसे अधिक उसी पर। और यही हुआ समाज का न्याय!"

मनोरमा ने कहा—"उसे क्या समाज के अन्दर बुला लेना चाहते हो पिताजी?"

आशु बाबू ने कहा—"मेरे ही चाहने से आ जायगी क्या बेटी? समाज मे अक्षय बाबू भी तो मौजूद हैं,—उन्ही का पक्ष तो प्रबल है।" लडकी ने पूछा—"तुम अकेले होते तो बुला लेते शायद?"

पिता ने इसका स्पष्ट जवाब नही दिया, बोले—"बुलाने से ही क्या सब आ जाया करते हैं बेटी?"

अजित ने कहा—"आश्चर्य तो यह है कि आपके साथ ही उनका सबसे ज्यादा विरोध है, और मजा यह कि आपका स्नेह उन्हे सबसे ज्यादा मिला है।"

अविनाश ने कहा—"इसका कारण है अजित बाबू। कमल के बारे मे हम लोग कुछ जानते नही. जानते हैं तो सिर्फ उसके विद्रोही मत को! और जानते हैं उसके अखण्ड बुराई के पहलू को। इसी से उसकी बाते सुनने से हमे डर भी लगता है और गुस्सा भी आता है कि अब गया शायद सब-कुछ।"

फिर आशु बाबू को उद्देश करके कहने लगे—"इनका शरीर निष्पाप है, मन निष्कलुष है, सन्देह की छाया तक इस पर नही पडती, न भय का दाग ही लगता है। महादेव के लिए चाहे विष हो चाहे अमृत, एक ही बात है,—गले मे ही लगा रहेगा, पेट मे नही जायगा। चाहे देवताओ का दल आ जाय और चाहे दैत्य-दानव आकर घेर ले, ये निर्लिप्त निर्विकार-चित्त रहेगे,—सिर्फ गठिया के पजे से बचे रहे तो ये खुश हैं। मगर हम लोगो को तो—"

बात पूरी न हो पायी कि अचानक आशु बाबू ने दोनो हाथ उठाकर उन्हे रोक दिया। बोले—"आगे अब और कुछ न कहिएगा, आपके पैरो पडता हूँ। लगातार एक युग का युग विलायत मे बिता आया हूँ, वहाँ क्या किया है क्या नही, सो खुद मुझे भी याद नही,—पर यह बात अक्षय के कानो तक पहुँच गयी तो खैर नही। एकदम नाडी-नक्षत्र तक ढूँढकर निकाल लायेगा। तब क्या होगा?"

अविनाश ने आश्चर्य के साथ कहा—"आप क्या विलायत भी गये थे?"

आशु बाबू ने कहा—'हाँ, वह कुकर्म भी मुझसे हो चुका है।"

मनोरमा ने कहा—"बचपन से ही पिताजी का सारा एजुकेशन योरोप मे हुआ है। पिताजी बैरिस्टर हैं, पिताजी डॉक्टर हैं।" अविनाश ने कहा—"कहती क्या हो?"

आशु बाबू उसी तरह कह उठे—"डरने की कोई बात नही, डरने की कोई बात नही प्रोफेसर, लिखा-पढा सब भूल गया हूँ। दीर्घकाल से यायावर-वृत्ति अवलम्बन करके लडकी के साथ जहाँ-तहाँ लोटा-डोरी लेकर घूमता रहा, और जैसा कि आपने कहा, सारा चित्त-पट बिलकुल धुल-पुछकर निष्पाप निष्कलुष हो गया है, धब्बा-अब्बा कही कुछ भी बाकी नही है। खैर, जो भी हो, इस बात को अक्षय बाबू के कर्णगोचर न कीजिएगा।" अविनाश ने हँसते हुए कहा—"अक्षय से आपको डर है?"

आशु बाबू ने तुरत स्वीकार किया—"हाँ। एक तो गठिया के मारे यो ही जीना कठिन है, उस पर उनका कही कुतूहल जाग्रत हो गया तो बिलकुल ही मारा जाऊँगा।"

मनोरमा गुस्से मे भी हँस दी, बोली—"पिताजी, यह तुम्हारा अन्याय है।"

पिताजी ने कहा—"अन्याय भले ही हो बेटी, पर आत्म-रक्षा का सभी को अधिकार है।"

सुनकर सबके सब हँस पडे। मनोरमा ने पूछा—"अच्छा पिताजी, मनुष्य समाज मे क्या अक्षय बाबू जैसे आदमी की तुम जरूरत ही नही समझते?"

आशु बाबू ने कहा—"तुम्हारा यह 'जरूरत' शब्द तो बेटी ससार मे सबसे ज्यादा गोलमाल की चीज है। पहले इसकी मीमासा हो जाय तब तुम्हारे प्रश्न का यथार्थ उत्तर दिया जाय। मगर वह तो कभी होने का नही। हमेशा से उसको लेकर तर्क चलता आ रहा है, मीमासा अब तक हुई ही नही।'

मनोरमा क्षुण्ण होकर बोली—"तुम सब बातो के जवाब मे ऐसे ही बचकर निकल जाते हो पिताजी, कभी साफ-साफ कुछ कहते ही नही। यह तुम्हारा बडा अन्याय है।"

आशु बाबू हँसते-हँसते बोले—"साफ कहने लायक विद्या-बुद्धि तेरे पिता मे नही है, मणि,—यह

तेरी तकदीर है। अब मेरे ऊपर गुस्सा करने मे क्या लाभ है, बता?"

अजित अचानक उठ खडा हुआ, बोला,– सिर मे दर्द हो रहा है, जरा बाहर घूम आऊँ।"

आशु बाबू चचल होकर बोल उठे,– सिर का इसमे कोई अपराध नही बेटा,–"मगर इतनी ओस मे? ऐसे अँधेरे मे?"

दक्षिण की एक खुली खिडकी से बहुत-सी स्निग्ध जोत्स्ना नीचे के कार्पेट पर बिखर रही थी, अजित ने उसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हुए कहा–"ओस शायद थोडी बहुत पडती होगी, पर अँधेरा नही है। जाऊँ, जरा घूम आऊँ।"

"पर पैदल मत घूमना।"

"नही। गाडी मे ही जाऊँगा।"

"गाडी का ढकना चढा देना अजित, कही ओस न लग जाय।"

अजित राजी हो गया। आशु बाबू ने कहा–"तो फिर अविनाश बाबू को भी उधर पहुँचाते जाना। लेकिन लौटने मे देर न हो।"

"अच्छा"। कहकर अजित अविनाश बाबू को साथ लेकर बाहर चला गया। उसके चले जाने पर आशु बाबू ने मुसकराते हुए कहा, "देखता हूँ, इस लडके की मोटर मे घूमने की सनक अभी गई नही है। ऐसी ठण्ड मे चल दिया घूमने को।"

८

पन्द्रह दिन बाद की बात है। शाम होने मे देर नही है, आशु बाबू और मनोरमा को अविनाश बाबू के घर उतारकर अजित अकेला घूमने निकला है। अकसर ऐसा वह किया करता है। जो सडक शहर के उत्तर से आकर कॉलेज के सामने से कुछ दूर जाकर सीधी पश्चिम की ओर चली गयी है, उसी पर एक निराली जगह सहसा उच्च नारी-कण्ठ से अपना नाम सुनकर अजित चौंक पडा। गाडी रोक दी। देखा,–"शिवनाथ की स्त्री है। सडक के किनारे टूटा-फूटा पुराने जमाने का एक दुमजिला मकान है, उसके सामने वैसा ही श्रीहीन फूलो का बगीचा है और उसी के एक किनारे खडी कमल हाथ उठाकर उसे पुकार रही है। मोटर ठहरने पर वह उसके पास आयी, बोली–"एक दिन और भी आप ऐसे ही अकेले जा रहे थे। मैंने कितना पुकारा, पर आप सुन ही नही पाये। पायेगे कैसे? बाप रे बाप! इतने जोर से जाते हैं,– देखने से मालूम होता है जैसे दम रुक जायगा। आपको डर नही लगता?"

अजित गाडी से नीचे उतर आया। बोला–"आप अकेली कैसे? शिवनाथ बाबू कहाँ है?"

कमल ने कहा–"वे घर पर नही हैं। पर आप भी अकेले कैसे निकले? उस दिन भी देखा था, साथ मे कोई नही था।"

अजित ने कहा–"नही। इधर कई दिनो से आशु बाबू की तबीयत ठीक नही थी, इसी से वे लोग निकले नही। आज उन लोगों को अविनाश बाबू के यहाँ उतारकर मैं घूमने निकला हूँ। शाम को तो मुझे घर मे रहना अच्छा नही लगता।"

कमल ने कहा–"मेरा भी यही हाल है। मगर 'अच्छा नही लगता,' कहने से ही तो नही चलता,– गरीबो को तो बहुत-कुछ 'अच्छा लगाना' पड़ता है।" कहकर वह अजित के मुँह की तरफ देखने लगी। फिर सहसा बोल उठी–"ले चलिएगा मुझे साथ मे? जरा घूम आऊँगी।"

अजित मुसीबत मे पड गया। साथ मे आज शोफर तक नही था और यह वह पहले ही सुन चुका था कि शिवनाथ बाबू भी घर पर नही हैं, मगर 'ना' भी कहते नही बनता। जरा कुछ दुविधा के साथ बोला–"यहाँ आपका साथी-सगी भी शायद कोई नही है?"

कमल ने कहा–"सुनो इनकी बात! साथी-सगी कहाँ पाऊँ? देख नही रहे हैं मुहल्ले की दशा। यह स्थान शहर के बिलकुल बाहर ही समझिए। पास ही शाहगज मे, या कुछ ऐसा ही नाम है, कही चमडे का कारखाना है,–हमारे पडोसी सब मोची ही मोची हैं, कारखाने जाते हैं, शराब पीते हैं और सारी रात हल्ला मचाते हैं;–यही मेरा मुहल्ला है।"

अजित ने पूछा–"इधर शरीफ लोग हैं ही नही क्या?"

कमल ने कहा–"शायद नही हैं। और हों तो क्या,– मुझे वे अपने घर क्यों जाने-आने देगे? तब तो कभी-कभी जब बहुत सूना-सूना-सा मालूम होता था, आप लोगो के यहाँ भी चली जा सकती थी।"–

कहते-कहते वह गाडी के खुले दरवाजे से खुद ही भीतर जाकर बैठ गयी और बोली—"आइए, मैं बहुत दिनो से मोटर पर नही चढी। लेकिन आज मुझे बहुत दूर तक घुमा लाना होगा।"

अजित को कुछ सूझा नही कि क्या करना चाहिए। सकोच के साथ बोला—"ज्यादा दूर जाने से रात बहुत हो जायगी। शिवनाथ बाबू घर लौटकर आपको न देखेगे तो शायद कुछ खयाल करेगे।"

कमल ने कहा—"नही, खयाल करने की कोई बात ही नही।"

अजित ने कहा—"ड्राइवर के पास न बैठकर पीछे बैठिए न?"

कमल ने कहा—"ड्राइवर तो आप खुद ही हैं। पास बिना बैठे बात कैसे करूँगी? इतनी दूर पीछे बैठकर मुँह बन्द करके कही जाया जाता है? आप बैठिए, अब देर न कीजिए।"

अजित बैठ गया और गाडी चलाने लगा। रास्ता सुन्दर और निर्जन है, कदाचित् एक-आध आदमी दिखाई दे जाता है,— बस। गाडी की तेज चाल क्रमश और तेज होने लगी। कमल ने कहा—"आप तेज चलाना पसन्द करते हैं, न?"

अजित ने कहा—"हाँ।"

"डर नही लगता?"

"नही। मुझे आदत पड गयी है।"

"आदत ही सब कुछ है।" कहकर कमल क्षण-भर मौन रही, फिर बोली—"मगर मुझे तो आदत नही, फिर भी यह मुझे अच्छा लग रहा है। शायद स्वभाव है, इसीलिए न?"

अजित ने कहा—"हो सकता है।"

कमल ने कहा—"जरूर। हालाँकि विपत्ति आ सकती है, जो चढ़ते हैं उन पर भी और जो दब जाते हैं उन पर भी ठीक है न?"

अजित ने कहा—"नही, दबेगे क्यो?"

कमल ने कहा—"दब भी जायँ तो क्या नुकसान है अजित बाबू? तेजी का भी एक भारी आनन्द है, क्या गाडी की और क्या इस जीवन की। मगर जो डरपोक हैं, वे नही चल सकते। वे सावधानी से धीरे-धीरे चलते हैं। सोचते हैं, पैदल चलने का कष्ट जो बच गया, वही उनके लिए काफी है। मार्ग को धोखा देकर वे खुश हैं, अपने को धोखा देने का उन्हे भान ही नही होता। ठीक है न अजित बाबू?"

बात अजित की कुछ समझ मे नही आयी, उसने कहा—"इसके माने।"

कमल उसके मुँह की तरफ देखकर जरा हँस दी। क्षण-भर बाद सिर हिलाकर बोली—"माने नही, यो ही।"

इतना-भर समझ मे आया कि बात वह खुलासा नही समझाना चाहती और कुछ नही।

अँधेरा और भी गाढा होता आ रहा है, अजित ने लौटना चाहा, कमल ने कहा—"अभी से? चलिए और थोडा जायँ।"

अजित ने कहा—" बहुत दूर आ गये हैं, वापस पहुँचने मे काफी रात हो जायगी।"

कमल ने कहा—"हो जाय तो क्या हर्ज है?"

"लेकिन शिवनाथ बाबू नाखुश होगे।"

कमल ने कहा—"हो जाने दीजिए।"

अजित मन ही मन विस्मित हुआ, बोला—"मगर आशु बाबू वगैरह को घर ले जाना है। देर हो जाने से अच्छा नही होगा।"

कमल ने जवाब दिया—"आगरा शहर मे तो गाडियो की कमी है नही, वे आसानी से जा सकते हैं। चलिए और भी जरा।" इस तरह कमल मानो उसे जबरदस्ती क्रमश आगे की ओर धकेल-धकेलकर ले जाने लगी।

क्रमश सुनसान रास्ता अत्यन्त जनशून्य और रात का अँधेरा गाढे से गाढतर होने लगा, और चारों तरफ का दिगन्त-विस्तृत मैदान अत्यन्त स्तब्ध हो उठा। सहसा अजित ने एक क्षण मे उद्विग्न चित्त से गाडी की रफ्तार रोक दी, और कहा—"अब और नही, लौट चलिए।"

कमल ने कहा—"चलिए।"

वापस लौटते हुए उसने धीरे-धीरे कहा—"सोच रही थी, मनुष्य झूठ के साथ समझौता करके जीवन

की कितनी सम्पदा नष्ट कर डालता है। मुझे अकेली ले जाने मे आपको कितना असीम सकोच हो रहा था। मैं भी अगर उसी डर से पीछे हट जाती तो मेरे भाग्य मे ऐसा आनन्द थोडे ही बदा था।''

अजित ने कहा—''पर अन्त तक बिना देखे निश्चय-पूर्वक तो कुछ कहा नही जा सकता। घर जाकर आनन्द के बदले निरानन्द भी तो भाग्य मे बदा हो सकता है।''

कमल ने कहा—''इस अन्धकारमय निर्जन पथ मे अकेली आपके पास बैठकर ऊर्ध्वश्वास से न जाने कितनी दूर तक घूम आयी। आज मुझे कितना अच्छा लगा है, कुछ कह नही सकती।''

अजित ने समझा, कमल ने उसकी बात पर ध्यान नही दिया, मानो वह अपनी बात अपने को ही सुनाती जा रही है। सुनकर वास्तव मे शरमाने की बात उसमे शायद कुछ भी न हो, किन्तु फिर भी पहले वह मानो सकुचित-सा हो उठा। इस स्त्री के सम्बन्ध मे विरुद्ध कल्पना और अशुभ जनश्रुति के सिवा, शायद कोई भी कुछ नही जानता,—जितना जानते हैं वह भी सभव है बहुत कुछ झूठ हो,— और सत्य जो कुछ है, उसमे भी शायद असत्य की छाया ऐसी घनघोर पड गई हो कि पहचानने का कोई रास्ता ही न रहा हो। और जो जी चाहे तो जाँचकर बता सकते हैं वे बताते नही, उनके लिए सबका सब बिलकुल बकवास है।

अजित चुप रहा, इसी से कमल को मानो चैतन्य-सा हो आया। बोली,—''हाँ, क्या कह रहे थे, घर जाकर आनन्द के बदले निरानन्द भाग्य मे बदा हो सकता है? हो क्यो नही सकता।''

अजित ने कहा—''तब फिर?'

कमल ने कहा—''तब भी उससे यह साबित नही होता कि जो आनन्द आज मिला है, वह नही मिला।''

अबकी बार अजित हँस दिया। बोला—''साबित नही होता, मगर यह साबित ज़रूर होता है कि आप कम तार्किक नही हैं। आपके साथ बातो मे जीतना मुश्किल है।''

''अर्थात् जिसको कि कूट-तार्किक कहते हैं, मैं वही हूँ?''

अजित ने कहा—''नही, सो बात नही, किन्तु यह भी आप जरूर ही मानती होगी कि अन्तिम फल जिसका दुःख मे ही समाप्त होता है, उसके आरम्भ मे चाहे कितना ही आनन्द क्यो न हो, उसे सचमुच का आनन्द-भाग नही कहा जा सकता?''

कमल ने कहा—''नही, मैं नही मानती। मैं मानना चाहती हूँ कि जब जितना पाऊँ, उसी को सच्चा समझकर मान सकूँ। दुख का दाह मेरे बीते हुए सुख की ओस की बूँदो को सुखा न डाले। वह चाहे कितना भी क्यो न हो और परिणाम उसका ससार की दृष्टि मे चाहे कितना ही तुच्छ क्यो न गिना जाय, फिर भी मैं उसे अस्वीकार न करूँ। एक दिन का आनन्द दूसरे दिन के निरानन्द के सामने शरमाये नही।'' इतना कहकर वह क्षण-भर स्तब्ध रही, फिर कहने लगी, ''इस जीवन मे सुख-दुःख दोनो मे से कोई भी सत्य नही अजित बाबू, सत्य है सिर्फ उनके चचल क्षण, सत्य है सिर्फ उनके चले जाने का छन्द-मन्त्र! बुद्धि और हृदय से उनको पाना ही तो यथार्थ का पाना है। क्या यही ठीक नही है?''

इस प्रश्न का उत्तर अजित न दे सका, किन्तु उसे लगा कि अन्धकार मे भी दूसरे की दोनो आँखे अत्यन्त आग्रह के साथ उसकी तरफ देख रही हैं। मानो वह निश्चित कोई बात सुनना चाहती है।

''क्यो, जवाब नही दिया?''

''आपकी बाते खूब साफ समझ मे नही आयी।''

''नही आयी?''

''नही।''

उसने एक दबी साँस ली, और फिर धीरे-धीरे कहा,—''इसके माने यह कि साफ-साफ समझने का अभी आपका समय नही आया। अगर कभी आये तो उस समय मेरी याद कर लीजिएगा। करेंगे?''

अजित ने कहा—''करूँगा।''

गाड़ी आकर टूटे-फूटे फूल-बाग के सामने खडी हो गयी। अजित दरवाजा खोलकर खुद सडक पर खडा हो गया। घर की तरफ देखकर बोला—''कही भी जरा उजाला नही मालूम होता। मालूम होता है, सब सो गये।'' कमल ने उतरते हुए कहा—''शायद।''

अजित ने कहा—''देखिए, आपकी ज्यादती है न! किसी को जता भी नही आयी। शिवनाथ बाबू न

जाने कितनी दुश्चिन्ता मे पडे होगे।

कमल ने कहा—"हाँ, वे दुश्चिन्ता'के वोझ से सो गये हैं।"

अजित ने कहा—' ऐसे अँधेरे मे जायँगी कैसे? गाडी मे एक हाथ-लालटेन है, उसे जलाकर साथ चलूँ?"

कमल ने अत्यन्त खुश होकर कहा—"तव तो फिर कहना ही क्या है अजित बावू। आइए-आइए। आपको जरा चाय पिला दूँ।"

अजित ने अनुनय के स्वर मे कहा—"और जो भी हुक्म करेगी,।तामील करूँगा, मगर इतनी रात मे चाय पीने की आज्ञा न कीजिए। चलिए, आपको पहुँचाए आता हूँ।"

वाहर का दरवाजा हाथ लगाते ही खुल गया। भीतर के वरामदे मे वही की एक दासी सो रही थी, वह आहट पा जागकर वैठ गयी। दोमंजिला मकान है। ऊपर छोटे-छोटे दो कमरे हैं। अत्यन्त सकीर्ण जीना है, उसके नीचे हरीकेन लालटेन टिमटिमा रही है। उसे हाथ मे उठाकर कमल ने अजित को ऊपर वुलाया। वह मारे सकोच के व्याकुल होकर वोला—"नही नही, अव जाता हूँ। वहुत रात हो गयी है।"

कमल जिद करने लगी—"सो नही होने का, आइए।"

अजित फिर भी दुविधा कर रहा है, देखकर कमल ने कहा—"आप सोच रहे हैं, आने से शिवनाथ वावू के सामने वडी शर्म की वात होगी। मगर यह क्यो नही सोचते कि नही आने से मेरे लिए तो और भी ज्यादा लज्जा की वात होगी? आइए। नीचे से ही इस तरह अनादर के साथ आपको जाने देने से रात को मुझे नीद न आयेगी।"

अजित ने ऊपर आकर देखा कि घर मे चीज वस्तु नही के वरावर है। एक कम कीमत की आराम-कुरसी, एक छोटी-सी टेविल, एक स्टूल, कई ट्रक, एक किनारे पुरानी लोहे की खाट और उस पर विस्तर-तकियो का ढेर पडा हुआ है। वे ऐसे वेढगे तौर पर रखे हैं, जैसे साधारणत उन सवकी कोई जरूरत ही नही पडती। घर सूना है, शिवनाथ वावू नही है।

अजित को आश्चर्य हुआ, किन्तु मन ही मन उसने सन्तोष की साँस ली, वोला,—"कहाँ, वे तो अभी तक आये नही हैं।"

कमल ने कहा—"नही।"

अजित ने कहा—"आज शायद हम लोगो के यहाँ उनका गाना-वजाना खूब जोर से चल रहा होगा।"

"कैसे जाना?"

"कल परसो दो दिन गये नही हैं। आज उन्हे पाकर आशु वावू शायद सारी क्षति-पूर्ति ले रहे हैं।"

कमल ने पूछा—"रोज जाते हैं, इधर दो दिन से क्यो नही?"

अजित ने कहा—"इसकी खवर हम लोगो से आपको ही ज्यादा होगी। सम्भवत आपको छोडा नही होगा, इसी से नही जा पाये होगे। नही तो उन्हे देखने से ऐसा तो नही मालूम होता कि अपनी इच्छा से गैरहाजिर हुए हो।"

कमल कुछ क्षण उसके चेहरे की तरफ देखकर अकस्मात् हँस दी। वोली—"यह किसे मालूम कि वे वहाँ जाते हैं गाने के लिए। वास्तव मे किसी आदमी को पकडकर रखना वडा अन्याय है। है न?"

अजित ने कहा—"जरूर।"

कमल ने कहा—"वे भले आदमी हैं, इसी से। अच्छा, आपको अगर कोई पकडकर रखना तो आप रहते?"

अजित ने कहा—"नही। इसके सिवा मुझे पकडकर रखनेवाला भी तो नही है?"

कमल हँसती हुई दो-तीन वार सिर हिलाकर वोली—"यही तो मुश्किल है। पकडकर रखनेवाला कौन कहाँ छिपा रहता है, जानने का उपाय ही नही। यही देखिए न, मैंने जो शाम मे आपको पकड रक्खा है, इसकी आपको खवर ही नही। खैर रहने दीजिए, सभी वातो पर तर्क करने से लाभ क्या होगा? मगर वातों-ही-वातो मे देर हुई जा रही है। जाऊँ मैं, उस कमरे मे से आपके लिए चाय वना लाऊँ?"

"और यहाँ मैं अकेला चुप मारे वैठा रहूँ? सो नही होने का।"

"होने की जरूरत भी क्या है? इतना कहकर कमल उसे अपने साथ दूसरे कमरे मे ले गयी और

उसके बैठने के लिए नया आसन बिछाकर बोली—"बैठिए। पर विचित्र हैं इस दुनिया की बाते, अजित बाबू। उस दिन इस आसन को अपनी पसन्द से खरीदते वक्त सोचा था कि इसे बिछाकर किसी से बैठने के लिए कहूँगी— लेकिन वह बात तो और किसी से कही नही जा सकती अजित बाबू, फिर भी आपको बैठने के लिए बिछा ही दिया। भला बतलाइए, कितने-से समय का अन्तर है यह।"

इसके माने क्या हुए, सोचना बडा मुश्किल है! हो सकता है कि बहुत ही आसान हो, और यह भी सम्भव है कि उससे भी ज्यादा 'दुरूह' हो 'फिर भी, अजित मारे शर्म के सुर्ख हो उठा। कहने मे हिचकिचाया, मगर फिर भी बोला—"उन्हे बैठने को दिया क्यो नही?"

कमल ने कहा—"यही तो आदमी की जबरदस्त भूल है। सोचता हूँ, सब कुछ उसी के अपने हाथ मे है, लेकिन कहाँ बैठा हुआ कौन सारा हिसाब-किताब उलट-पलट देता है, कोई पता ही नही। आपकी चाय मे क्या चीनी ज्यादा डालूँ?"

अजित ने कहा—"डाल दीजिए। चीनी और दूध के लोभ से ही तो मैं चाय पीता हूँ, नही तो उससे मुझे कोई दिलचस्पी नही।"

कमल ने कहा—"मैं भी ऐसी ही हूँ। क्यो लोग यह पिया करते हैं, मेरी तो कुछ समझ मे ही नही आता। और मजा यह कि इसी के देश मे मेरा जन्म है।"

"आपकी जन्म-भूमि क्या आसाम में है?"

"सिर्फ आसाम मे ही नही, एकदम चाय के बगीचे मे।"

"तो भी चाय मे रुचि नही?"

"बिल्कुल नही। लोग दे देते हैं तो पी लेती हूँ, सिर्फ शराफत के खातिर।"

अजित चाय का प्याला हाथ मे ले चारो तरफ देखकर बोला—"यह शायद आपका रसोईघर है?"

कमल ने कहा—"हाँ।"

अजित ने पूछा—"आप खुद ही बनाती होगी? मगर कहाँ, आज तो बनाने का वक्त नही मिला?"

कमल ने कहा—"नही।"

अजित बगले झाँकने लगा। कमल उसके मुँह की ओर देखकर हँसती हुई बोली—"अब पूछिए कि तब आप खायँगी क्या? उसके जवाब मे मैं कहूँगी, रात को मैं खाती ही नही। दिन मे सिर्फ एक ही बार खाती हूँ।"

"सिर्फ एक ही बार?"

कमल ने कहा—"हाँ। मगर इसके बाद ही आपको खयाल होना चाहिए कि 'तो फिर शिवनाथ बाबू घर आकर क्या खायेगे? उनका तो कोई एक-आध बार खाने का मामला नहीं। तब फिर?' इसके उत्तर मे मैं कहूँगी कि 'वे तो आप ही लोगो के यहाँ खा-पी आते है,— उन्हे क्या फिकर है?' आप कहेगे 'सो तो ठीक है, मगर रोज तो ऐसा नही होता?' सुनकर मैं सोचूँगी, 'इस बात का जवाब दूसरो को देने से लाभ ही क्या?' पर इससे आपको सन्तुष्ट नही किया जा सकता। तब मजबूर होकर कहना ही पडेगा, अजित बाबू, आप लोगो के लिए डरने की कोई बात नही। वे यहाँ अब नहीं आते। शैव-विवाह की शिवानी का मोह शायद अब दूर हो चुका है।"

अजित वास्तव मे इस बात के माने नही समझ सका। गम्भीर विस्मय के साथ उसके मुँह की तरफ देखकर पूछने लगा,—"इसके माने? आप क्या गुस्से मे कह रही हैं?"

कमल ने कहा—"नही, गुस्से मे नही। गुस्सा करने लायक शायद आज मुझमे जोर भी नही रहा। मैं समझती थी, पत्थर खरीदने के लिए वे जयपुर गये हैं, आपसे ही पहले-पहल यह खबर मिली कि वे आगरा छोडकर अब तक कही नही गये हैं। चलिए, उस कमरे मे चलकर बैठे।"

उस कमरे मे जाकर कमल ने कहा—"यही हम लोगो का सोने का कमरा है। तब भी इससे ज्यादा एक भी चीज यहाँ नही थी,— आज भी नही है। किन्तु उस दिन इन सब चीजो का चेहरा देखते तो आज मुझे कहना भी नही पडता कि मैं गुस्सा नही हुई। लेकिन आपको तो बहुत ज्यादा रात हो रही है अजित बाबू, अब तो देर करने से काम नही चलेगा।"

अजित उठ खडा हो गया। बोला—"हाँ तो फिर आज चलता हूँ मैं।" कमल साथ-साथ उठ खडी हुई।

अजित ने कहा—"अगर आज्ञा हो तो कल आऊँ?"

"हाँ, आइएगा।" कहती हुई वह पीछे-पीछे नीचे उतर आयी।

अजित कुछ देर तक बगले झाँककर बोला—"अगर कुछ कसूर न समझें तो एक बात पूछूँ, शिवनाथ बाबू कितने दिन हुए नही आये?"

"हो गये बहुत दिन।" कहती हुई वह हँस दी। अजित को लालटेन के उजाले में स्पष्ट दिखाई दिया कि इस हँसी की जात ही अलग किस्म का है। उसके पहले की हँसी से इसका कही भी कोई सादृश्य नही।

९

अजित जब घर लौटा तब रात गहरी हो गयी थी। सडक सुनसान थी, सन्नाटा छाया हुआ था दुकाने सब बन्द हो चुकी थी,— आदमी का कही नाम-निशान तक न था। घडी खोलकर देखा तो मालूम हुआ कि वह चाबी के अभाव मे आठ ही बजे बन्द हो चुकी है। अभी शायद एक बजा होगा, या दो बजे होगे,— ठीक कितने बजे हैं, कुछ अन्दाज नही कर सका। यह निश्चित है कि आशु बाबू के घर अब तक सब अत्यन्त चिन्तित हो रहे होगे, सोने की बात तो दूर रही, खाना-पीना तक शायद बन्द होगा। घर पहुँचकर वह क्या कहेगा, कुछ सोच न सका। सत्य घटना तो कही नही जा सकती, यह तर्क व्यर्थ है कि क्यो नही कही जा सकती।— बल्कि झूठ कहा जा सकता है, मगर, झूठ बोलने की उसे आदत नही थी। नही तो मोटर मे अकेले निकलकर देर होने का कारण ढूँढ निकालने मे इतनी चिन्ता नही करनी पडती।

गेट खुला था। दरबान ने सलाम करके कहा कि शोफर नही है, वह आपको ढूढने गया है। गाडी अस्तबल मे रखकर अजित आशु बाबू की बैठक मे गये। घुसते ही देखा कि वे अभी तक सोने नही गये हैं, अस्वस्थ शरीर लिए अकेले बैठे उसकी बाट देख रहे हैं। वे उद्वेग से सीधे होकर बैठ गये और बोले—"आ गये। मैं बार-बार यही सोच रहा था कि कोई एक्सिडेंट हो गया होगा। कितनी बार तुमसे कह चुका हूँ कि दूर के रास्ते मे कभी अकेले नही निकलना चाहिए। बूढ़े की बात आखिर सामने आयी न! शिक्षा तो मिली?"

अजित शरमिन्दा होकर जरा हँस दिया। बोला—"आप लोगो को इतनी दुश्चिन्ता में डाल दिया, इसके लिए मैं अत्यन्त दुखित हूँ।"

"दुख कल करना। घडी की तरफ नजर उठाकर देखो, दो बज रहे हैं। थोडा-बहुत खा-पीकर सो जाओ। कल सुनूँगा सारी बाते। यदु, ओ यदुआ!— वह नालायक चला गया क्या तुम्हे ढूँढने?"

अजित ने कहा—"देखिए तो आप लोगो की कितनी ज्यादती है। इतने बडे शहर मे भला वह कहाँ मुझे गली-गली ढूँढ़ता फिरेगा?"

आशु बाबू ने कहा—"तुमने तो कह दिया 'ज्यादती है, मगर हम लोगो को कैसा लग रहा था सो हम ही जानते हैं। ग्यारह बजे शिवनाथ का गाना खतम हुआ, तबसे—मणि गयी कहाँ? उसे भी तो तबसे नहीं देख रहा हूँ?"

अजित ने कहा—"शायद सो गयी होगी।"

"सोयेगी कैसे जी? अभी तक उसने खाया भी नहीं है।" कहते-कहते सहसा उन्हे एक बात याद आ गयी बोले—"अस्तबल मे कोचवान को देखा था क्या?"

अजित ने कहा—"नही तो।"

"तब तो हो गया!" कहकर वे दुश्चिन्ता के मारे फिर एक बार उठकर सीधे बैठ गये। बोले—"जो सोचा था वही हुआ। मालूम होता है, गाडी लेकर वह भी गयी ढूँढने। देखो तो कैसी परेशानी में डाल गयी। इस डर से कि कही मैं मना न कर दूँ, जरा कुछ कह तक नही गयी, चुपके-से चली गयी। कौन जाने कब लौटेगी! आज की रात, मालूम होता है, कोरी आँखो ही बीतेगी।"

"मैं देखता हूँ, गाडी है या नहीं।" कहता हुआ अजित बाहर चला गया। अस्तबल मे जाकर देखा कि गाडी मौजूद है और घोडे बीच-बीच मे पैर पटकते हुए मजे मे घास खा रहे हैं। उसकी एक दुश्चिन्ता मिटी।

नीचे के बरामदे के उत्तर की तरफ कुछ विलायती झाऊ और पाम के पेड जबरदस्त लापरवाही के साथ खडे थे। उनके ऊपर ही मनोरमा का सोने का कमरा है। यह देखने के लिए कि अब तक कमरे में

वत्ती जल रही है या नही, अजित उस तरफ से घूमकर आशु वावू के पास जा रहा था। इतने मे झाडी मे से किसी की आवाज सुनाई दी। अत्यन्त परिचित कण्ठ था। बात हो रही थी किसी एक गाने के स्वर के विषय मे। कोई बुरी वात नही थी,—किन्तु फिर भी उसके लिए पेड-पौधो के झुरमुट मे बैठने की जरूरत नही थी। क्षण-भर के लिए अजित के दोनो पैर निर्जीव हो गये, पर क्षण-भर के लिए ही। आलोचना चलने लगी और वह जैसे चुपचाप आया था वैसे ही चुपके से चल दिया। उन दोनो मे से कोई भी न जान सका कि उनके इस निशीथकालीन विश्रम्भालाप का कोई साक्षी है।

आशु वावू ने व्यग्र होकर पूछा—"पता लगा?"

अजित ने कहा—"गाडी-घोडा अस्तवल मे ही है। मणि बाहर नही गयी।"

"खैर जान मे जान आयी." कहकर आशु बाबू ने निश्चिन्त परितृप्ति का दीर्घ श्वास लिया, फिर कहा—"रात बहुत हो चुकी है, शायद वह थक-थकाकर घर मे जाके सो गयी होगी। देखता हूँ कि आज लडकी का खाना नही हुआ। जाओ बेटा, थोडा-बहुत खाकर तुम भी सो जाओ।"

अजित ने कहा—"इतनी रात गये मैं अब न खाऊँगा, आप सोने जाइए।"

"जाता हूँ। पर तुम कुछ भी न खाओगे? जरा कुछ खा-पीकर—"

"नही, कुछ नही। आप देर न करे। सोने जायँ।" इतना कहकर उस रुग्ण आदमी को भीतर भेजकर अजित कमरे मे चला गया और वहाँ खुली हुई खिडकी के पास जाकर खडा रहा। वह निश्चित जानता था कि स्वर-सम्बन्धी आलोचना खतम होने पर पिता की खबर लेने को मनोरमा इधर एक बार जरूर ही आयेगी।

मणि आई, पर लगभग आध घंटे बाद। उसने पिता की बैठक के सामने जाकर देखा, कमरे मे अँधेरा है। यदु शायद पास ही कही जाग रहा था. मालिक के पुकारने पर उसने जवाब तो नही दिया था, पर उनके चले जाने पर बत्ती बुझा दी थी। मनोरमा ने क्षण-भर इधर-उधर करके मुँह फेरा तो देखा कि अजित अपने कमरे मे खुली खिडकी के पास चुपचाप खडा है। उसके कमरे मे भी बत्ती जल रही थी लेकिन सहन के ऊपर के बरामदे से क्षीण प्रकाश की किरणे आकर उसकी खिडकी पर पड रही थी।

"कौन?"

"मैं हूँ, अजित।"

"वाह! कब आ गये? पिताजी शायद सोने चले गये।" कहकर मनोरमा ने मानो जरा चुप रहने की कोशिश की; परन्तु असमाप्त बात की रफ्तार ने उसे रुकने नही दिया। कहने लगी—"देखो तो तुम्हारा कैसा अविचार है! घर-भर के लोग मारे फिक्र के परेशान होते रहे,—जरूर कुछ-न-कुछ हुआ होगा। इसी से पिताजी बार-बार मना करते हैं अकेले जाने के लिए।"

इन सब प्रश्नो और मन्तव्यो का अजित ने कुछ भी जवाब नही दिया।

मनोरमा ने कहा—"मगर उन्हें नींद हरगिज न आयी होगी। जरूर जाग रहे होगे। उन्हे जरा खबर तो कर दूँ।"

अजित ने कहा—"जरूरत नही। वे मुझे देखकर ही सोये हैं।"

"देखकर सोये हैं? तो फिर मुझे खबर क्यो नही दी?"

"उन्होने समझा कि तुम सो गयी हो।"

"सो कैसे जाती? अब तक तो मैंने खाया भी नही है।"

"तो खाकर सो जाओ। रात अब ज्यादा नही है।"

"तुम नही खाओगे?"

"नही।" कहकर अजित खिडकी के पास से हट गया।

"वाह, अच्छे रहे!" इससे ज्यादा बात उसके मुँह से न निकली। मगर भीतर से भी फिर कोई जवाब न आया। बाहर मनोरमा स्तब्ध खडी रही। उसमे मनाकर गुस्सा होकर अपनी जिद कायम रखने लायक जोर नही रहा,—न मालूम किसने उसका मुँह कसकर बन्द कर दिया। अजित रात खतम करके घर लौटा है, घर-भर मे सबकी दुश्चिन्ता का अन्त नही। उसी ने खुद इतना बडा अपराध करके उसके अपमान की हद करदी, और फिर भी जरा-सा प्रतिवाद करने की भाषा तक उसकी जबान पर न आयी। सिर्फ जीभ ही निर्वाक् नही हुई, बल्कि सारी देह ही मानो कुछ क्षणो के लिए लाचार हो रही। खिडकी पर कोई वापस

नही आया। यह जानने की भी किसी ने जरूरत नही समझी कि वह रही या चली गयी। गहरी निशिथ रात्रि मे उसी तरह चुपचाप खडी रहकर बहुत देर बाद वह धीरे-धीरे चली गयी।

सवेरे ही नौकर के जरिए आशु बाबू को मालूम हुआ कि कल रात को अजित या मनोरमा दोनो मे से किसी ने भी नही खाया। चाय पीते वक्त उन्होने उत्कंठा के साथ पूछा—"कल जरूर ही कोई जबर्दस्त एक्सिडेण्ट हो गया था, हुआ था न?"

अजित ने कहा—"नही।"

"तो फिर अचानक तेल निबट गया होगा?"

"नही तेल काफी था।"

"तो फिर इतनी देर कैसे हो गयी?"

अजित ने सिर्फ कहा—"ऐसे ही।"

मनोरमा खुद चाय नही पीती। उसने पिता को चाय देकर एक प्याला चाय और नाश्ते की तश्तरी अजित की ओर बढा दी, पर न तो कोई बात पूछी और न मुँह उठाकर उसकी ओर देखा। दोनो के इस भाव-परिवर्तन को पिता ताड गये। नाश्ता करके अजित जब नहाने चला गया तब लडकी को एकान्त मे पाकर उद्विग्न कण्ठ से बोले—"नही बेटी, यह बात अच्छी नही। अजित के साथ हम लोगो का सम्बन्ध चाहे जितना भी घनिष्ठ क्यो न हो, फिर भी घर मे वे अतिथि हैं। अतिथि के योग्य सम्मान उनका होना ही चाहिए।"

मनोरमा ने कहा—"देना नही चाहिए, ऐसा तो मैंने नही कहा, पिताजी।"

"नही नही, नहीं कहा' यह सच है, लेकिन हमारे आचरण मे किसी तरह की विरक्ति या लापरवाही होना भी अपराध है।"

मनोरमा ने कहा—"सो मानती हूँ। पर तुमने किससे सुना कि मेरे आचरण से अपराध बन पडा है?"

आशु बाबू इस प्रश्न का जवाब न दे सके। उन्होने सुना कुछ भी नही, न कुछ जानते ही हैं, सब-कुछ उनका अनुमानमात्र है। फिर भी मन उनका प्रसन्न न हुआ। कारण, इस तरह से बहस की जा सकती है, किन्तु उत्कण्ठित पिता के चित्त को नि शक नही किया जा सकता। थोडी देर बाद उन्होने धीरे-धीरे कहा—"उतनी रात मे अजित ने फिर खाना नही चाहा, और मैं भी सोने चला गया, तुम पहले ही सो गयी थी,—न जाने कहाँ से, हो सकता है, हम लोगो की तरफ से ही कोई लापरवाही जाहिर हुई हो। उनका मन आज वैसा प्रसन्न नहीं मालूम होता।"

मनोरमा ने कहा—"वे अगर सारी रात राह मे बिताना चाहे तो हम लोगो को भी क्या उनके लिए घर मे जागते रहना होगा? यही क्या अतिथि के प्रति गृहस्थ का कर्तव्य है पिताजी?"

आशु बाबू हँस दिये। अपनी तरफ इशारा करके बोले—"गृहस्थ के माने अगर यह गठिया का रोगी हो बेटी तो उसका कर्तव्य है कि आठ बजे के अन्दर ही सो जाय। नही तो वह भी बहुत बडे सम्मानित अतिथि गठिया के प्रति असम्मान दिखाना होगा। और उसके माने अगर और किसी के हो तो उसका कर्तव्य बताने वाला मैं कोई नही। आज बहुत दिन पहले की एक घटना याद आ गयी मणि, तुम्हारी माँ तब जिन्दा थी। एक बार मैं मछली पकडने गुप्तिपाडा गया तो लोट नही सका। सिर्फ एक रात ही नही, तुम्हारी माँ ने उसी पर पूरी की पूरी तीन रातें खिडकी मे बैठे-बैठे बिता दी। उसको यह कर्तव्य किसने सुझाया था,तब पूछा नही जा सका, यदि फिर कभी मुलाकात हुई तो यह बात पूछना भूलूँगा नही।" इतना कहकर उन्होने क्षण-भर के लिए मुँह फेरकर लडकी की निगाह मे अपनी आँखो को छिपा लिया।

यह कहानी कोई नयी नही थी। किस्से के तोर पर इस घटना का वे बहुत बार लडकी के सामने उल्लेख कर चुके हैं, मगर फिर भी वह पुरानी नही होती। जब कभी याद आ जाती है तभी वह नयी बनकर दिखाई दे जाती है।

इतने मे नौकरानी आकर दरवाजे के पास खडी हो गयी। मनोरमा उठ खडी हुई। बोली—"पिताजी, तुम जरा बैठो, मैं रसोई का इन्तजाम कर आऊँ।" और वह जल्दी से चली गयी। बातचीत बहुत आगे न बढ पाई, इससे उसे आराम मालूम हुआ।

दिन-भर मे आशु बाबू ने कई बार अजित के बारे मे पूछा। एक बार मालूम हुआ कि वह किताब पढ रहा है, फिर खबर मिली कि वह अपने कमरे मे बैठा चिट्ठी-पत्री लिख रहा है, दोपहर के भोजन के समय

उसने लगभग बात ही नही की और खाना खतम होते ही वह उठकर चल दिया। अन्य दिनो की तरह वह जितना रूखा था उतना ही आश्चर्यजनक।

आशु बाबू के क्षोभ की सीमा नही रही। बोले—"बात क्या है मणि?"

मनोरमा आज बराबर पिता की दृष्टि से बचकर चल रही थी, अब भी खासकर किसी तरफ बिना देखे ही बोली—"मालूम नही पिताजी।"

वे क्षण-भर अपने मन मे कुछ सोच-विचारकर मानो अपने आपसे ही कहने लगे—"उसके वापस आने तक मै जाग ही रहा था। खाने के लिए भी कहा था, पर बहुत रात हो जाने से उसने खुद ही नही खाया। तुम्हारा सो जाना ठीक नही हुआ बेटी,—लेकिन इसमे ऐसा क्या अपराध हो गया, मेरी तो कुछ समझ में नही आता। इससे बढकर आश्चर्य और क्या होगा कि इस तुच्छ कारण को उसने इतना बडा मान लिया।"

मनोरमा चुप रही। आशु बाबू खुद भी कुछ देर मौन रहकर भीतर की लज्जा को दबाते हुए बोले—"बात तुमने उससे पूछी क्यो नही?"

मनोरमा ने जवाब दिया—"पूछने की कौन-सी बात है,—पिताजी?"

पूछने की बहुत-सी बाते हैं, पर पूछना भी कठिन है, खासकर मणि के लिए। इसे वे समझते थे, फिर भी उन्होने कहा—"यह तो बिलकुल साफ है कि वह नाराज है। शायद उसने सोचा है कि तुमने उसकी उपेक्षा की है। इस तरह की गलत धारणा तो उसके मन मे रहने नही दी जानी चाहिए बेटी।"

मनोरमा ने कहा—"मेरे बारे मे अगर गलत धारणा उन्होने कर ली हो तो यह उनका अपराध है। एक आदमी के अपराध को सुधारने की गरज क्या दूसरे आदमी को अपने ऊपर ले लेनी चाहिए पिताजी?"

पिता इस प्रश्न का उत्तर नही दे सके। लडकी को वे जिस ढग से पालते आये हैं, उससे उसके आत्म-सम्मान पर चोट पहुँचे, ऐसा कोई आदेश वे नही दे सकते। उसके उठ जाने पर इसी बात पर भीतर-ही-भीतर ऊहापोह करते-करते वे अत्यन्त उदास हो गये। बार-बार इस बात को दुहराते हुए भी कि ऐसा हुआ ही करता है और यह भ्रम क्षणिक है, उन्हे भीतर से जोर नही मिला। अजित को भी वे जानते थे। वह सिर्फ सब तरह से सुशिक्षित ही नही है, बल्कि उसमे ऐसी एक चारित्रिक सत्यपरता उन्होने पायी थी कि आज के अकारण विराग से किसी तरह भी उसका सामजस्य नही बैठता था। इसका निर्णय करना कठिन हो गया कि क्यो सबके असीम उद्वेग का कारण बनकर भी वह शरमिन्दा होने के बदले नाराज हो गया और ऐसी असम्भव बात कैसे उसमे सम्भव हुई।

शाम के समय एक ताँगे को गेट के अन्दर घुसते देख आशु बाबू ने दरियाफ्त किया तो मालूम हुआ कि वह अजित के लिए आया है। अजित को उन्होने बुला भेजा और उसके आने पर मुश्किल से जरा-सा हँसकर पूछा—"ताँगे का क्या होगा अजित?"

"जरा एक दफे घूमने निकलूँगा।"

"क्यो, मोटर क्या हुई? फिर बिगड गयी क्या?"

"नही। लेकिन उसकी आप लोगो को जरूरत पड सकती है।"

"अगर पडे भी तो उसके लिए बग्घी मौजूद है।" और फिर एक क्षण-भर चुप रहकर बोले—"बेटा अजित, मुझे सच बता दो। मोटर के बारे मे कोई बात हुई है क्या?"

अजित ने कहा—"कहाँ, मुझे तो नही मालूम। लेकिन आज भी तो आपके यहाँ गाने-बजाने का आयोजन है। लोगो को लाने के लिए सबको घर पहुँचाने के लिए मोटर की ही जरूरत है। बग्घी मे ठीक न रहेगा।"

सवेरे से तरह-तरह की दुश्चिन्ताओ के कारण आशु बाबू इस बात को भूल-से गये थे। अब याद आयी कि कल सभा भग होने के बाद आज के लिए भी उन सबको आमन्त्रित कर दिया गया था और शाम के बाद ही मजलिस बैठेगी। साथ-साथ यह भी खयाल आ गया कि सबको खिलाने-पिलाने की कल्पना भी मनोरमा के मन में उदित हुई थी पर वे मन ही मन जरा हँसकर रह गये। कारण, ढकी हुई कलह की मानसिक अस्वच्छन्दता की वजह से इस बात का खयाल उन्हे खुद ही नही रहा था और जब याद भी आयी तो उससे तबीयत प्रसन्न नही हुई। उस समय लड़की के लिए ये सब बाते कितनी विरक्तिकर हैं,

इस बात को स्वत सिद्ध की भाँति अनुमान करके वे बोले—"आज वह सब कुछ नही होगा अजित।'

अजित ने कहा—"क्यो?"

"क्यो? मणि को ही पूछ देखो एक बार।" कहकर उन्होने बेहरा को जोर से पुकारकर लडकी को बुलाने भेज दिया, और फिर जरा हँसकर कहा—"तुम नाराज हो बेटा, गाना-आना सुनेगा कौन? मणि? अच्छा, वह सब और किसी दिन होगा, अभी जाओ तुम मोटर लेकर जरा घूम आओ। लेकिन ज्यादा देर नही लगा सकते। और कह देता हूँ कि तुम्हारा अकेले जाना भी नही होगा। ड्राइवर नालायक बिलकुल आलसी होता जा रहा है। इतना कहकर वे एक कठिन समस्या की अचिन्तनीय मीमासा करके उज्ज्वल आनन्द से आराम-कुरसी पर चित पड गये और जोर की एक सन्तोष की साँस छोडने के साथ बोले— 'तुम जाओगे ताँगा किराये का करके घूमने? छि ।"

मनोरमा कमरे मे पैर रखते ही अजित को देख गरदन टेढी करके खडी हो गयी। आहट पाकर आशु बाबू फिर सीधे होकर बैठ गये और सकौतुक स्निग्ध हँसी से चेहरे को चमकाकर बोले—"मैं पूछता हूँ, आज की बात याद तो है बेटी, या बिलकुल भूल-भाल के निश्चिन्त बैठी हो?"

"क्या पिताजी?"

"आज सबको निमन्त्रण दे रखा है? तुम लोगो का गाना-आना खतम होने के बाद, उन लोगो को जो आज खिलाना है,— सो भी कुछ ख्याल है?"

मनोरमा ने सिर हिलाकर कहा—"है क्यो नही । मोटर भेज दी है उन लोगो को ले आने के लिए।"

'मोटर भेज दी है ले आने के लिए? मगर खाने-पीने का इन्तजाम?"

मणि ने कहा—"सब ठीक है, कोइ त्रुटि न होगी।"

"अच्छा।" कहकर वे फिर कुरसी पर पड रहे। उनके मुँह पर मानो किसी ने स्याही-सी पोत दी।

मनोरमा चली गयी। अजित भी बाहर जा रहा था कि आशु बाबू ने उसे इशारे से मना किया और वे बहुत देर तक चुप रहे। बाद मे उठकर बैठे और कहने लगे—"अजित, लडकी की तरफ से क्षमा माँगने मे मुझे लज्जा आती है। पर उसकी माँ जिन्दा नहीं हैं,— वे होती तो मुझे यह बात कहनी नही पडती।"

अजित चुप रहा। आशु बाबू बोले— यह बात वे ही तुम्हारे मुँह से निकाल लेती कि उससे तुम क्यो गुस्सा हो, मगर वे तो हैं नहीं,— मुझसे क्या वह बात कही नही जा सकती?"

उनका स्वर ऐसा करुण था कि सुनकर हृदय व्यथित हो उठा। फिर भी अजित चुप रहा।

आशु बाबू ने पूछा—"उससे क्या तुम्हारी कोई बातचीत नहीं हुई?"

अजित ने कहा— 'हुई थी।'

आशु बाबू व्यग्र हो उठे— हुई थी? कब हुई? मणि अचानक कल जो सो गयी थी, सो क्या तुमसे उसने कहा था?"

अजित ने कुछ देर चुप रहकर शायद यही सोच लिया कि क्या जवाब देना चाहिए, फिर आहिस्ते से कहा—"उतनी रात तक जागते रहना न आसान ही था, और न उचित। सो जाती तो अविचार न होता, मगर वे सोयी नही थी। आपके सोने चले जाने पर थोडी देर बाद ही उनसे भेट हुई थी।"

'फिर? '

'फिर और कोई बात आपसे नही कहूँगा।" कहकर वह चल दिया। दरवाजे के बाहर से वह कहता गया,—' शायद कल-परसो तक मैं यहाँ से चला जाऊँगा।"

आशु बाबू कुछ भी समझ न सके, सिर्फ इतना ही उनकी समझ मे आया कि कोई भयकर दुर्घटना हो गयी है।

अजित को लेकर ताँगा बाहर चला गया और उसकी आवाज उन्होने सुन ली। कुछ मिनटो के बाद जोर का शोर मचाती हुई मोटर निमन्त्रितो को लेकर आ पहुँची। उसका शोर भी उन्होने सुन लिया। पर वे हिले-डुले नही, जहाँ के तहाँ मूर्ति की तरह निश्चल बैठे रहे। मजलिस लगने पर नौकर ने जाकर सवाद दिया 'बाबू साहब की तबीयत ठीक नही है, वे सो गये हैं।'

उस दिन गाना नहीं जमा, खाने-पीने का उत्साह भी म्लान हो गया — सबको बार-बार यही ख्याल आने लगा कि घर का एक व्यक्ति घूमने के बहाने बाहर चला गया है और दूसरा व्यक्ति अपने विपुल शरीर और प्रसन्न स्निग्ध हास्य के साथ सभा की जिस जगह को उज्ज्वल बनाये रखता था, आज वह

सूनी पड़ी है।

१०

इधर अजित का ताँगा कमल के घर के सामने आकर खड़ा हो गया। कमल सड़क वाले सकीर्ण बरामदे पर खड़ी थी, आँखे चार होते ही हाथ उठाकर उसने नमस्कार किया। ताँगे को इशारे से बताते हुए चिल्लाकर बोली—"उसे बिदा कर दीजिए। सामने खड़ा-खड़ा बार-बार लौटने की जल्दी मचाएगा।"

जीने मे सामने ही फिर भेट हुई। अजित ने कहा—"बिदा तो कर दिया, पर लौटते वक्त दूसरा मिल तो जायगा?"

कमल ने कहा—"नही। ऐसी कितनी दूरी है, पैदल ही चले जाइएगा।"

"पैदल जाऊँगा?"

"क्यो डर लगेगा क्या? न हो तो मैं खुद जाकर आपको घर तक पहुँचा आऊँगी। आइए!" कहकर वह उसे साथ लेकर रसोई घर मे गयी और बैठने के लिए कल वाला वही आसन बिछाकर बोली—"जरा देखिए तो सही, सारे दिन मैंने कितने व्यजन बनाये हैं। आप न आते तो मैं गुस्से मे यह सब मोचियो को बुलाकर बाँट देती।"

अजित ने कहा—"आपका गुस्सा कम नही है। मगर उससे इन व्यजनो का इसकी अपेक्षा विशेष अच्छा उपयोग होता।"

"इसके माने?" कहकर कमल कुछ देर तक अजित के चेहरे की तरफ देखती रही और फिर अन्त मे खुद ही बोली—"अर्थात् आपको तो किसी चीज की कमी नही,—शायद इसमे से ही बहुत-कुछ फेकना पड़ेगा,—लेकिन उन लोगो के बड़ी भारी कमी है। वे तो इसे खाकर जैसे नया जीवन प्राप्त करेगे। लिहाजा, उन्हे खिलाना ही रसोई का सर्वोत्तम उपयोग है, यही न?"

अजित ने गर्दन हिलाकर कहा—"इसके सिवा और क्या माने हो सकते हैं?"

कमल ने कहा—"यह हुआ साधु सज्जनो का भलाई-बुराई का विचार,—पुण्यात्माओ की धर्म-बुद्धि की युक्ति। परलोक के खाते मे वे लोग इसी का सार्थक व्यय मानकर लिख रखना चाहते हैं। यह नही समझते कि असल मे यही अन्त सारशून्य थोथा व्यय है। इस बात को वे कहाँ से जानेगे कि सच्चे आनन्द का सुधा-पात्र तो अपव्यय के अविचार से ही ऊपर तक भर उठता है?"

अजित ने आश्चर्य के साथ कहा—"मनुष्य के कर्तव्य की भावना के अन्दर क्या आनन्द है ही नही?"

कमल ने कहा—"नही, नही है। कर्तव्य के अन्दर जो आनन्द मालूम होता है वह आनन्द नही, आनन्द का भ्रम है, वास्तव मे वह दुःख का ही नामान्तर है। उसे बुद्धि के शासन से जबरदस्ती आनन्द मानना पड़ता है। पर वह तो बन्धन है। नही तो, यह जो शिवनाथ का आसन लाकर आपको बिठाया है, प्रेम के इस अपव्यय मे आनन्द कहाँ से पाती? यह जो दिन भर भूखे रहकर मैंने इतनी चीजे बनायी हैं,—आप आकर खायेंगे इसलिए ही तो? फिर इतने बड़े अकर्तव्य के अन्दर मुझे तृप्ति कहाँ से मिलती? अजित बाबू, आज मेरी सब बाते आप नही समझेगे, समझने की कोशिश करने से भी कुछ फायदा नही होगा; मगर इतनी बड़ी उलटी बात के माने अगर कभी अपने आप आपकी समझ मे आ जाय तो उस दिन मेरी याद कीजिएगा। पर यह सब जाने दीजिये, आप खाने बैठिए।" और उसने थाल भरकर बहुत तरह के भोज्यवस्तु उसके सामने रख दिये।

अजित ने बहुत देर तक चुप रहकर कहा—"यह ठीक है कि आपके कुछ अन्तिम शब्दो का अर्थ मैं ठीक से समझ नही सका, लेकिन मालूम होता है कि वे बिलकुल ही अबोध्य हो सो बात नही। समझा देने मे समझ भी सकता हूँ।"

कमल ने कहा—"कौन समझा देगा अजित बाबू? मैं? मुझे जरूरत?" और हँसते हुए उसने बाकी पात्र उसके आगे बढ़ा दिये।

अजित खाने मे मन लगाकर बोला—"आपको शायद मालूम नही कि कल मेरा खाना नहीं हुआ।"

कमल ने कहा—"जानती तो नही, पर मुझे डर था कि इतनी रात में जाकर शायद आप खायेगे नही। यही हुआ। मेरे अपराध से ही कल आपने तकलीफ पायी।"

"लेकिन आज ब्याज-समेत वसूल हो रहा है।" बात करते ही उसे याद आ गयी कि कमल अभी तक भूखी है। मन-ही-मन लज्जित होकर बोला—"पर मैं बिलकुल जानवरो जैसा स्वार्थी हूँ। दिन-भर आपने कुछ खाया नही, उसका मैंने जरा भी ख्याल नही किया और मजे से खाने बैठ गया।"

कमल ने हँसते चेहरे से जवाब दिया—"पर यह तो मेरे अपने खाने मे भी बढकर है। इसी से तो झटपट आपको बिठा दिया है अजित बाबू।" फिर जरा ठहरकर कहा—"और यह मास-मछली का मामला,—मैं तो खाती नही।"

"फिर खायँगी क्या आप?"

"यह है न।" उसने एक ओर ढककर रखे हुए एनमिल के कटोरे को हाथ के इशारे से दिखाते हुए कहा—"उसके अन्दर मेरे लिए चावल-दाल-आलू उबले हुए रखे हैं। वही मेरा राज-भोग है।"

इस विषय मे अजित का कुतूहल दूर नही हुआ, साथ ही उसे सकोचने रोका भी। इस डर से कि कहीं वह गरीबी का जिक्र न कर बैठे, उसने दूसरी ही बात छेड दी। कहा—"आपको देखकर मुझे शुरू से ही ऐसा आश्चर्य हुआ कि कुछ कह नही सकता।"

कमल हँसी पडी। बोली—"वह तो मेरा रूप है। पर उसने भी हार कबूल कर ली अक्षय बाबू के आगे। वह उन्हे परास्त नही कर सका।"

अजित शर्मिन्दा होकर भी हँस दिया। बोला—"मालूम तो नही होता। वे गोलकुण्डा के हीरा हैं। उनके ऊपर खरोच नही पडती। लेकिन मुझे तो सबसे बढकर आश्चर्य हुआ था आपकी बात सुनकर। सहसा मानो धैर्य-सा छूट जाता है,—गुस्सा आ जाता है। मालूम होता है, किसी भी सत्य को आप टिकने नही देना चाहती। हाथ बढाकर रास्ता रोकना ही जैसे आपका स्वभाव हो।"

कमल शायद क्षुब्ध हुई। बोली—"हो सकता है। पर मुझसे भी बडा एक आश्चर्य वहाँ था,—वह था दूसरा पहलू। जैसी विपुल देह थी, वैसी ही विराट् शान्ति। धैर्य का जेसे हिमालय हो। उत्ताप की भाप तक वहाँ नही पहुँचती। ऐसा जी होता है कि मैं अगर उनकी लड़की होती—"

बात अजित को बहुत ही अच्छी लगी। आशु बाबू के प्रति वह अन्त करण मे देवता की भाँति भक्ति रखता है। फिर भी उसने कहा—"आप दोनो की ऐसी विपरीत प्रकृति मिली कैसे?"

कमल ने कहा—"मालूम नही। मैंने सिर्फ अपनी इच्छा की ही बात कही हे। मणि की तरह में भी अगर उनकी लडकी होकर पैदा होती!" फिर कुछ देर चुप रहकर बोली—"मेरे अपने पिताजी भी कम नही थे। वे ऐसे ही धीर, ऐसे ही शान्त आदमी थे।'

कमल दासी की कन्या है, छोटी जात की लडकी है,—सबके मुँह से अजित ने यह बात सुनी थी। अब स्वय कमल के मुँह से उसके पिता के गुणो का उल्लेख सुनकर उसका जन्म-रहस्य जानने की आकाक्षा प्रबल हो उठी, मगर इस डर से कि पूछने-ताछने से कही उसकी व्यथा के स्थान पर असावधानी से चोट न पहुँचे, वह कुछ पूछ न सका, परन्तु मन उसका भीतर-ही-भीतर स्नेह और करुणा से ऊपर तक भर आया।

खाना खतम हुआ, किन्तु उठने के लिए कहने पर अजित ने इनकार कर दिया। बोला—"पहले आप खा ले। उसके बाद।"

"क्यो तकलीफ पा रहे हैं अजित बाबू, उठिए। बल्कि हाथ-मुँह धो आइए, फिर बैठिए,—मैं खा रही हूँ।"

"नही, सो नही होगा। आपके बगैर खाये मैं आसन छोडकर एक कदम भी इधर-उधर न होऊँगा।"

"अच्छे आदमी हैं आप।" कहकर कमल हँसती हुई अपना भोजन उघाड कर खाने बैठ गयी। अजित ने देखा कि उसने रचमात्र भी अत्युक्ति नही की थी। चावल, दाल और उबले हुए आलू ही थे। सूखकर बदरग हो गये थे। और दिन वह क्या खाती-पीती है उसे नही मालूम। पर आज इतनी तरह की और काफी तैयारियो के बीच भी उसके इस स्वेच्छाकृत आत्म-पीडन से अजित की आँखो मे पानी भर आया। कल उसने सुना था कि दिन मे वह सिर्फ एक बार ही खाती है और आज जाना कि वह यही है जो सामने दीख रहा है। लिहाजा, युक्ति और तर्क के छल से कमल के मुँह से चाहे जो भी कहे, वास्तव मे भोग के क्षेत्र में उसके इस कठोर आत्म-सयम से अजित की अभिभूत और मुग्ध आँखे माधुर्य और श्रद्धा से

अपूर्व-सुन्दर हो उठी और वंचना, असम्मान और अनादर से जिन व्यक्तियो ने उसे लांछित किया था उन सबके प्रति उसकी घृणा की सीमा न रही। कमल के खाने की तरफ देख-देखकर अपने इस भाव को वह दवा न सका। उफनते हुए आवेग के साथ कहने लगा—"अपने को वडा मानकर जो लोग अपमान करके आपको दूर रखना चाहते हैं, जो लोग अकारण ग्लानि करते फिरते हैं, वे तो आपके पॉव छूने योग्य भी नही। ससार मे देवी का आसन अगर किसी के लिए हो तो वह आपके लिए है।"

कमल ने अकृत्रिम विस्मय के साथ मुँह उठाकर पूछा—"क्यो?"

"क्यो, सो मैं नही जानता, मगर शपथ के साथ कह सकता हूँ।"

कमल का विस्मय का भाव दूर नही हुआ, मगर वह चुप रही।

अजित ने कहा—"अगर क्षमा करे तो एक वात पूछूँ।"

"क्या वात?"

"पापिष्ठ शिवनाथ के द्वारा अपमान और वचना पाने के बाद ही क्या आपने यह कृच्छ्र-व्रत लिया है?"

कमल ने कहा—"नही तो। मेरे पहले पति के मरने के वाद से ही मैं यह खाया करती हूँ। इससे मुझे कष्ट नही होता।"

अजित के मुँह पर जैसे किसी ने स्याही पोत दी। उसने कुछ देर स्तव्ध रहकर अपने को सँभालते हुए धीरे-धीरे पूछा—"आपका एक बार पहले और भी विवाह हुआ था क्या?"

कमल ने कहा—"हाँ। वे एक आसामी क्रिश्चियन थे। उनके मरने के वाद ही मेरे पिता भी मर गये अकस्मात् घोडे से गिरकर। उस समय, शिवनाथ के एक चाचा थे। चाय-बगीचे के हेड-क्लार्क। उनकी स्त्री नहीं थी, माँ को उन्होंने अपने यहाँ आश्रय दिया। मैं भी उनके घर मे आ गयी। इस तरह, तरह-तरह के दु ख कष्टो के बीच रहते-रहते एक वक्त खाने की ही मेरी आदत पड गयी है?" कृछ्र-व्रत तो क्या, पर इससे शरीर और मन दोनो अच्छे रहते हैं?"

अजित ने एक साँस लेकर कहा—"मैंने सुना है, जाति आपकी जुलाहा है?"

कमल ने कहा—"लोग तो यही वताते हैं। पर माँ कहती थी कि उनके पिता आप लोगो की जाति के ही एक कविराज थे। अर्थात् मेरे वास्तविक मातामह जुलाहे नही, वैद्य थे।" और वह जरा हँसकर वोली—"सो वे चाहे जो भी रहे हो, अव गुस्सा होना भी व्यर्थ है और अफसोस करने से भी कोई लाभ नही।"

अजित ने कहा—"सो तो ठीक है।"

कमल ने कहा—"माँ के पास रूप था, पर रुचि नही थी। ब्याह के वाद कोई ब(द)नामी हो जाने के कारण उनके पति उन्हें लेकर आसाम के चाय बगीचे मे भाग गये थे। पर वहाँ वे जी नही सके, कुछ ही महीने मे वुखार ही बुखार मे मर गये। तीन साल वाद मेरा जन्म हुआ बगीचे के वडे साहब के घर।"

कमल के वंश और जन्म का वर्णन सुनकर अजित का क्षण-भर पहले का स्नेह और श्रद्धा से खिला हुआ हृदय अरुचि और सकोच के मारे सिकुड़कर बूँद-सा रह गया। उसे सवसे ज्यादा यह बात अखरी कि अपनी और माँ की इतनी वडी शर्म की बात कहने मे भी इसे रत्ती भर लज्जा नही आयी। अनायास ही कह गयी, माँ मे रूप था, पर 'रुचि' नही थी। जिस आधार पर एक स्त्री मारे शर्म के जमीन मे धँस जाती है, वह इसके निकट 'रुचिका विकास' मात्र है। इससे ज्यादा कुछ नही।

कमल कहने लगी—"पर मेरे पिता थे साधु-सज्जन आदमी। चरित्र मे, पाण्डित्य मे, सचाई मे,—ऐसे आदमी मैंने वहुत कम देखे हैं अजित वाबू, जीवन के उन्नीस साल मैंने उन्ही के पास बिताये हैं।"

अजित को एक वार सन्देह हुआ था कि शायद यह परिहास कर रही है। पर यह कैसा तमाशा? वोला—"यह सब क्या आप सच कह रही हैं?"

कमल ने जरा कुछ आश्चर्य के साथ ही जवाब दिया—"मैं तो कभी झूठ बोलती नही अजित वाबू।" पिता की स्मृति लहमे-भर के लिए चेहरे पर एक स्निग्ध-दीप्ति फैला गयी। फिर कहा—"इस जीवन मे कभी किसी भी कारण झूठी चिन्ता, झूठे अभिमान, झूठी बात का सहारा मुझे न लेना पडे,—पिताजी यही शिक्षा मुझे वार-वार दे गये हैं।"

अजित फिर भी मानो विश्वास न कर सका, बोला—"आप एक अँग्रेज के पास ही अगर इतनी बडी हुई हैं तो आपको अँग्रेजी भी आनी चाहिए?"

उत्तर मे कमल सिर्फ जरा मुसकरा दी। बोली—"मेरा खाना हो गया, चलिए उस कमरे में चले।"

"नही, अव मैं जाऊँगा।"

"बैठेगे नही? आज इतनी जल्दी चले जायँगे?"

"हाँ, आज अव और बैठने का समय नही रहा।"

इतनी देर बाद कमल ने मुँह उठाकर उसके चेहरे की अत्यन्त कठोरता पर ध्यान दिया। शायद, कारण का भी अनुमान कर लिया। वह कुछ दूर निर्निमेष दृष्टि से देखती रही, फिर धीरे से बोली—"अच्छा, जाइए।"

इसके बाद अजित क्या कहे, कुछ समझ मे न आया। अन्त में बोला—"आप क्या अव आगरे मे ही रहेगी?"

"क्यो?"

"मान लीजिए, शिवनाथ बाबू आइन्दा अगर नही आये। उन पर तो आपका जोर हे नही?"

कमल ने कहा—"नही।" फिर जरा स्थिर रहकर कहा—"आप लोगो के यहाँ तो वे रोज जाते हैं, गुप्त रूप से जानकर क्या मुझे जता नही सकते?"

"उससे क्या होगा?"

कमल ने कहा—"होगा और क्या, घर का किराया इस महीने का दिया ही हुआ है, फिर मैं कल-परसो तक चली जा सकती हूँ।"

"कहाँ जायँगी?"

कमल ने इस प्रश्न का उत्तर नही दिया, चुप रही।

अजित ने पूछा—"आपके हाथ मे शायद रुपये नही हैं?"

कमल ने इस प्रश्न का भी कोई उत्तर नही दिया।

अजित खुद भी कुछ देर मौन रहकर बोला—"आते वक्त आपके लिए कुछ रुपये साथ लेता आया था, लीजिएगा?"

"नही।"

"नही क्यो? मुझे निश्चित मालूम है कि आपके हाथ मे कुछ नही है। जो भी कुछ था, सो आज मेरे ही लिए खतम हो गया।"

इसका भी कुछ उत्तर न पाकर वह फिर बोला—"जरूरत पडने पर क्या मित्रों मे कोई कुछ लेता नही?"

कमल ने कहा—"पर मित्र तो आप नही हैं?"

"न सही। पर अ-मित्रो से भी लोग कर्ज लिया करते हैं और फिर चुका देते हैं। तो आप वैसे ही ले लीजिए।"

कमल ने गरदन हिलाकर कहा—"आपसे कह चुकी हूँ, मैं कभी झूठ नही बोलती।"

बात कोमल थी, किन्तु तीर के फल की तरह तीक्ष्ण। अजित ने समझ लिया कि इसमें कुछ रद्दोबदल नही हो सकता। उसकी तरफ गौर से देखा तो मालूम हुआ कि पहले दिन उसके शरीर पर जो मामूली-सा जेवर था वह भी आज नही हैं। सम्भवत घर का किराया चुकाने में और इधर कई दिनो का खर्च चलाने मे वह खतम हो चुका हे। सहसा व्यथा के भार से उसका मन भीतर से रो उठा। उसने पूछा—"पर जाना ही आपने तय कर लिया है क्या?"

कमल ने कहा—"इसके सिवा और उपाय क्या है।"

उपाय क्या है, यह उसे नही मालूम, और इसीलिए उसे कष्ट होने लगा। अन्तिम चेष्टा के तौर पर उसने कहा—"दुनिया में क्या कोई भी ऐसा नही है जिससे इस समय आप कुछ सहायता ले सके?"

कमल ने ज़रा सोचकर कहा—"हैं, और लडकी की तरह सिर्फ उन्ही के पास जाकर हाथ पसारकर माँग सकती हूँ। पर आपकी तो रात हुई जा रही है। साथ चलकर पहुँचा दूँ क्या?"

अजित चचल होकर बोला—"नहीं नही, मैं अकेला ही जा सकूँगा?"

"तो जाइए। नमस्कार।" कहकर वह अपने सोने के कमरे मे चली गयी।

अजित दो-एक मिनट वहाँ स्तब्ध होकर खडा रहा। फिर चुपचाप धीरे-धीरे नीचे उतर गया।

११

दिन का तीसरा पहर है। शीत की सीमा नही। आशु बाबू की बैठक की कॉच की खिडकियॉ सारे दिन बन्द रहती हैं। वे आरामकुरसी के दोनो हथेलो पर पैर फैलाकर गहरे मनोयोग के साथ पडे-पडे कुछ पढ रहे थे। हाथ के कागज पर पीछे के दरवाजे की तरफ से एक छाया पडते ही वे समझ गये कि अब उनके नौकर की दिवा-निद्रा समाप्त हुई हैं। बोले—"कच्ची नीद मे तो नही उठ बैठे यदु, नही तो सिर दुखेगा। खास तकलीफ न मालूम हो तो रजाई से जरा इस गरीब के पैर ढक दो।"

नीचे कार्पेट पर रजाई पडी थी, आगन्तुक ने उसे उठाकर उनके पैर नीचे तलवो तक अच्छी तरह ढक दिये।

आशु बाबू ने कहा—"हो गया, हो गया, ज्यादा जतन की जरूरत नही। अब एक चुरट देकर और थोडा सो लों— अभी तो दिन बाकी है। पर समझ रखना कि—कल, हाँ, कल।"

अर्थात् कल तुम्हारी नौकरी चली ही जायगी। कोई जवाब नही आया, कारण मालिक के इस तरह के मन्तव्य से नौकर अभ्यस्त हो चुका है। जैसे उसका प्रतिवाद करना व्यर्थ है, वैसे ही विचलित होना भी फिजूल है।

आशु बाबू ने हाथ बढाकर चुरट ले लिया और दियासलाई जलने के शब्द के साथ ऊपर मुँह उठाकर देखा। कुछ क्षण अभिभूत की तरह दग रहकर बोले, "यही तो सोच रहा था कि यह क्या यदुआ का हाथ है! इस तरह पैर ढकना तो उसकी चौदह पीढ़ियॉ भी न जानती होगी।"

कमल ने कहा—"पर इधर जो हाथ जला जा रहा है!"

आशु बाबू ने व्यस्तता के साथ उसके हाथ से जलती हुई दियासलाई लेकर फेक दी और उस हाथ को अपने हाथ मे लेकर उसे जोर से सामने खीच लियां। बोले—"इतने दिनों से तुम्हे देखा क्यो नही बेटी?"

यह उन्होने पहले-पहल उसे 'बेटी' कहकर पुकारा। परन्तु यह उन्हें कहने के बाद स्वय मालूम हो गया कि उनके प्रश्न के कोई अर्थ नही है।

कमल एक कुरसी खीचकर जरा दूर बैठना चाहती थी, पर उन्होने उसे ऐसा नही करने दिया। कहा—"वहाँ नही बेटी, तुम मेरे बिलकुल पास आकर बैठो।" और उसे बिलकुल पास खीचकर बोले—"आज अचानक कैसे कमल।" कमल ने कहा—"आज बहुत जी चाहने लगा आपको देखने का,—इससे चली आयी।"

आशु बाबू ने उत्तर मे सिर्फ कहा—"अच्छा किया।" और इससे ज्यादा वे न बोल सके। अन्यान्य सभी लोगो के समान उन्हे भी मालूम था कि कमल का कोई सगी-साथी नही है, कोई उसको चाहता नही, किसी के घर जाने का उसे अधिकार नही,—नितान्त निःसंग जीवन ही इस लडकी को बिताना पडता है, फिर भी यह बात उनके मुँह से न निकली कि 'कमल' तुम्हारी जब तबीयत हो, खुशी से चली आया करो, और चाहे जिससे हो, पर मेरे पास तुम्हे कोई सकोच नही होना चाहिए।' इसके बाद शायद शब्दो के अभाव से ही वे दो-तीन मिनट तक मानो अन्यमनस्क की तरह मौन रहे। उनके हाथ के कागज नीचे खिसक जाने पर कमल ने उन्हें उठा लिया और उनके हाथ मे देते हुए कहा, "आप पढ रहे थे, मैंने असमय मे ही आकर शायद विघ्न डाल दिया।"

आशु बाबू ने कहा—"नही। मैं पढ चुका। जो कुछ थोडा-बहुत बाकी है उसे बगैर पढे भी काम चल सकता है, और पढने की इच्छा भी नही है।" जरा ठहरकर फिर कहा "इसके सिवा तुम्हारे चले जाने पर मुझे अकेला रहना पडेगा, उससे अच्छा तो यह है कि तुम बाते करो, मैं सुनूँ।"

कमल ने कहा—"मैं आपसे दिन-भर बात कर सकूँ तो कहना ही क्या है। पर और सब जो नाराज होगे?"

उसके मुँह पर हँसी होने पर भी आशु बाबू को चोट पहुँची। बोले—"बात तुम्हारी झूठ नही कमल। पर जो लोग नाराज होगे, उनमे से यहाँ कोई मौजूद नही हे। यहाँ के नये मजिस्ट्रेट एक बगाली हैं। उनकी स्त्री से मणि की मित्रता है, दोनो साथ-साथ कालेज मे पढी हैं। दो दिन हुए वे यही पति के पास आई हैं,—

मणि उन्ही के यहाँ घूमने गयी है, शायद रात को लौटेगी।"

कमल ने हँसते हुए पूछा—"आपने कहा, कि जो लोग नाराज होगे—सो एक तो मनोरमा हुई, और बाकी के और कौन हैं?"

आशु बाबू ने कहा—"सभी हैं। यहाँ ऐसो की कमी नही। पहले मालूम होता था कि अजित की तुम्हारे प्रति नाराजगी नही है, पर अब देखता हूँ कि उसका विद्वेष ही सबसे बढकर है। उसने तो अक्षय बाबू को भी मात कर दिया है।"

यह देखकर कि कमल चुपचाप सुन रही है, वे कहने लगे—"जब आया था तब उसे ऐसा नही देखा था, अचानक दो ही तीन दिन मे मानो वह बिलकुल बदल गया है। अब अविनाश को भी ऐसा ही देख रहा हूँ। इन सबो ने मिलकर मानो तुम्हारे विरुद्ध षडयन्त्र-सा रच रखा है।"

अबकी बार कमल हँस दी। बोली—"अर्थात्, कुशाकुर के ऊपर बज्राघात। पर मुझ जैमी समाज और दुनिया से बहिष्कृत एक तुच्छ औरत के विरुद्ध षड्यन्त्र किसलिए? मैं तो किसी के घर जाती नही।"

आशु बाबू ने कहा—"सो तो ठीक है। शहर मे यह भी कोई नही जानता कि तुम्हारा घर कहाँ है, पर इसीलिए तुम तुच्छ नही हो कमल। और इसीलिए ये लोग तुम्हे भूल ही सकते हैं और न माफ ही कर सकते हैं। तुम्हारी चर्चा बगैर किये, तुम्हे कोचे बगैर इन्हे न चैन मिलता है न शान्ति।" कहते-कहते वे अकस्मात् हाथ के कागजो को उठाकर बोले—"यह क्या है, जानती हो? अक्षय बाबू की रचना है। अँग्रेजी मे नही होती तो तुम्हे सुनाता। नाम-धाम नही है, पर शुरू से आखिर तक सिर्फ तुम्हारी ही बाते हैं, तुम्ही पर हमला है। कल मजिस्ट्रेट साहब के घर पर, सुनते हैं, नारी-कल्याण-समिति का उद्घाटन होगा, यह उसी का मगल अनुष्ठान है।" यह कहकर उन्होने उसे दूर फेंक दिया और कहा—"यह सिर्फ निबन्ध ही नही है, बीच-बीच मे किस्से के तौर पर पात्र-पात्रियो के मुँह से इसमे तरह-तरह की बाते भी कहलवायी गयी हैं। इसकी मूल नीति के साथ किसी का विरोध नही,— विरोध हो भी नही सकता। पर इसमे वही बात नही, व्यक्ति विशेषपर कदम-कदम पर आघात करते रहने मे ही मानो इसका आनन्द है। पर अक्षय का आनन्द और मेरा आनन्द एक नही है, कमल। इसे तो मैं अच्छा नही कह सकता।"

कमल ने कहा—"पर मैं तो इस लेख को सुनने नही जाऊँगी,— फिर मुझ पर चोट करने की सार्थकता क्या हुई?"

आशु बाबू ने कहा—"कुछ भी सार्थकता नही, इसी से शायद उन लोगो ने मुझे पढने को दिया है। सोचा होगा 'डूबते मे से मुट्ठी भर ही सही।' इस बूढे को दु ख देकर जितना क्षोभ मिटाया जा सके उतना ही अच्छा।" कहते हुए उन्होने हाथ बढाकर फिर एक बार कमल को अपनी ओर खीचा। इस स्पर्श मात्र मे कितनी बाते थी, कमल सबकी सब तो नही समझ सकी फिर भी उसका अन्त करण न जाने कैसा हो उठा। वह जरा ठहरकर बोली—"आपकी कमजोरी को तो उन लोगो ने भाँप लिया, पर आपके भीतर के असल आदमी को वे नही पहचान सके।"

"क्या तुमने पहचान लिया है बेटी?"

"शायद उन लोगो से ज्यादा।"

आशु बाबू ने इसका उत्तर नही दिया, बहुत देर तक नीरव रहकर वे धीरे-धीरे कहने लगे—"सभी सोचते हैं कि हमेशा खुश रहने वाले इस बूढे के समान सुखी कोई नहीं। बहुत रुपया है, काफी जमीन-जायदाद—"

"पर यह तो झूठ नही।"

आशु बाबू ने कहा—"झूठ नही। धन और सम्पत्ति मेरे काफी है, पर यह आदमी के लिए कितना-सा है कमल?"

कमल हँसती हुई बोली—"बहुत है आशु बाबू।"

आशु बाबू ने गरदन फेरकर उसकी तरफ देखा, फिर कहा,—"अगर कुछ ख्याल न करो तो तुमसे एक बात कहूँ,—"

"कहिए?"

"मैं बूढा आदमी हूँ, और तुम मेरी मणि की उमर की हो। तुम्हारे मुँह से अपना नाम मेरे खुद के कानो मे न जाने कैसा खटकता है कमल। तुम्हे कोई एतराज न हो तो तुम मुझे 'चाचाजी' कहा करो।"

कमल के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। आशु बाबू कहने लगे—"कहावत है कि बिलकुल मामा न होने से तो काना मामा ही अच्छा; मैं काना न सही, पर लगडा जरूर हूँ, गठिया से लाचार। बाजार मे आशु वैद्य की कानी कौडी कीमत नही।" फिर उन्होने हँसकर कौतुक के साथ हाथ का अँगूठा हिलाते हुए कहा—"न हो तो क्या है बेटी, लेकिन जिसके पिता जिन्दा नही उसके इतने शक्की होने से काम नहीं चलेगा। उसके लिए लँगडा चाचा भी अच्छा।"

दूसरे पक्ष से जवाब न पाकर वे फिर कहने लगे—"कोई अगर चिढाये कमल, तो उसे विनय के साथ कहना, 'मेरे लिए इतना ही बहुत है।' कहना 'गरीब के लिए राँगा ही सोना है'।"

उनकी कुरसी के पीछे बैठी कमल छत की ओर आँखे किये आँसू रोकने की कोशिश करने लगी, कुछ जवाब न दे सकी। इन दोनो मे कही से भी कोई मेल नही, और सिर्फ अनात्मीय-अपरिचयका ही जबर्दस्त फासला नही है, बल्कि शिक्षा, संस्कार, रीति-नीति, गार्हस्थिक और सामाजिक व्यवस्था मे भी दोनो मे कितनी जबर्दस्त जुदाई है। जहाँ कोई सम्बन्ध ही नही, वहाँ सिर्फ एक सम्बोधन के छल से ही उसे बाँध रखने की चतुराई को देख कमल की आँखो मे बहुत दिनो बाद आज आँसू भर आये।

आशु बाबू ने पूछा, "क्यो बिटिया, कह सकोगी?"

कमल ने उमडते हुए आँसुओ को सँभालते हुए सिर्फ इतना कहा—"नही।"

"नही? नही क्यो?"

कमल ने इस प्रश्न का उत्तर नही दिया, दूसरी बात छेड दी। बोली—"अजित बाबू कहाँ है?"

आशु बाबू कुछ देर चुप रहकर बोले—"क्या मालूम, शायद घर पर ही होगा।" फिर कुछ देर मौन रहकर धीरे-धीरे कहने लगे—"कई दिन से मेरे पास विशेष आता जाता नही और शायद वह यहाँ से जल्दी ही जायगा।"

"कहाँ जायँगे?"

आशु बाबू ने हँसने का प्रयास करते हुए कहा—"बूढे आदमी को सब लोग क्या सब बाते बताते हैं, बेटी? नही बताते। शायद जरूरत ही नही समझते बताने की।" जरा ठहरकर बोले—"सुना होगा शायद, मणि के साथ उसका सम्बन्ध बहुत दिनो से तय था; सहसा मालूम हो रहा है कि दोनो मे किसी बात पर झगडा हो गया है। कोई किसी के साथ अच्छी तरह बात ही नही करता।"

कमल चुप हो रही। आशु बाबू एक गहरी साँस लेकर बोले—"जगदीश्वर मालिक हैं, उनकी इच्छा। एक गाने-बजाने मे उन्मत्त है और दूसरा अपने पुराने अभ्यासो को मय ब्याज के ठीक करने मे लग गया है। इस समय यही तो चल रहा है।"

कमल से चुप नही रहा गया, कुतूहल के मारे पूछ बैठी—"पुराने अभ्यास क्या?"

आशु बाबू ने कहा—"बहुत से हैं। पहले गेरुआ पहनकर सन्यासी हुआ, फिर मणि से प्रेम किया, देशोद्धार के काम मे जेल गया, विलायत जाकर इजीनियर हुआ, वहाँ से वापस आने के बाद गृहस्थ होने की इच्छा हुई,— पर फिलहाल शायद वह इच्छा कुछ बदल गयी है। पहले मास-मछली नही खाता था, उसके बाद खाने लगा था, अब देखता हूँ कि कल-परसो से फिर छोड बैठा है। यदु कहता है, बाबू घण्टे-घण्टे भर कमरे मे बैठे नाक दबाकर योगाभ्यास करते हैं!"

"योगाभ्यास करते हैं?"

"हाँ। नौकर ही कह रहा था, देश लौटते समय शायद काशी उतरकर समुद्र-यात्रा के लिए प्रायश्चित्त करता जायगा।"

कमल ने अत्यन्त आश्चर्य के साथ कहा—"समुद्र-यात्रा के लिए प्रायश्चित्तकरेगे? अजित बाबू?"

आशु बाबू ने सिर हिलाते हुए कहा—"वह कर सकता है। उसमे सर्वतोमुखी प्रतिभा है।"

कमल हँस दी। कुछ कहना ही चाहती थी कि इतने मे दरवाजे के पास किसी आदमी की छाया दीख पडी और जिस नौकर ने इतने विभिन्न प्रकार के सवाद मालिक को पहुँचाये थे वही सशरीर आ खडा हुआ, और उसी ने सबसे बढकर कठोर सवाद यह दिया कि अविनाश, अक्षय, हरेन्द्र, अजित आदि बाबुओ का दल आ रहा है।— सुनकर सिर्फ कमल का ही नही, बल्कि, बन्धुवर्ग के आगमन होने पर उच्छ्वसित उल्लास से अभ्यर्थना करना जिनका स्वभाव है, उन आशु बाबू तक का मुँह सूख गया। क्षण-भर बाद आगन्तुक शिष्टसमुदाय कमरे मे घुसते ही आश्चर्यचकित हो गया। कारण, यह बात

उनकी कल्पना के बाहर थी कि यह औरत यहाँ इस तरह मिल सकती है। हरेन्द्र हाथ उठाकर कमल को नमस्कार करके कहा—"अच्छी तो हैं? बहुत दिनो से आपको देखा नही।"

अविनाश ने हँसने जैसी मुखाकृति करके एक बार इधर और एक बार उधर गरदन हिलाई जिसका कोई अर्थ ही समझ मे नही आया। अक्षय सीधा आदमी ठहरा। वह सीधे मार्ग से आया और सीधे अभिप्राय से पत्थर की तरह क्षण-भर सीधे कडे रहकर एक आँख से अवज्ञा और दूसरी से विरक्ति बरसाता हुआ एक कुरसी खीचकर बैठ गया। आशु बाबू से उसने पूछा—"मेरा आर्टिकल पढा?' यह पूछने के बाद ही उसकी नजर मिट्टी मे लोटते हुए अपने लेख पर पडी। उसे वह खुद ही उठाने जा रहा था कि हरेन्द्र उसे रोकते हुए कहा—"रहने दीजिए न अक्षय बाबू, झाडू लगाते वक्त नौकर ही फेंक देगा।"

उसका हाथ अलग करके अक्षय ने कागज उठा लिये।

"हाँ पढ लिया।" कहते हुए आशु बाबू उठकर बैठ गये। आँख उठाकर देखा कि अजित ने उधर के सोफे पर बैठकर कलके अखबार पर नजर दौडाना शुरू कर दिया है। अविनाश ने कुछ कहने का मौका पा जाने से एक सन्तोष की साँस ली और कहा—"मैंने भी अक्षय का लेख शुरू से आखिर तक ध्यान से पढ़ा है आशु बाबू। अधिकाश बाते सच और मूल्यवान् हैं। देश की सामाजिक व्यवस्था का अगर सुधार किया जाय तो उसे अच्छी तरह जाने हुए और पक्के मार्ग पर ही करना चाहिए। हम मानते हैं कि यूरोप के समागम से हमने बहुत-सी अच्छी चीजे पायी हैं और बहुतेरी त्रुटियो को हमने देखा है, परन्तु हमारा सुधार हमारे अपने मार्ग पर ही होना चाहिए। दूसरो के अनुकरण से हमारा कल्याण नही हो सकता। भारतीय नारी की जो विशिष्टता है, जो उसकी अपनी चीज है, अगर लोभ और मोह के वश होकर हम उससे उसे भ्रष्ट करे, तो हम हर तरफ से असफल होगे।— ठीक है कि नही, अक्षय बाबू?"

बाते अच्छी हैं और सब अक्षय बाबू के लेख की हैं। विनय-वश उन्होंने मुँह से और कुछ नही कहा, पर आत्म-गौरव की अनिर्वचनीय तृप्ति से आधे मुँदे नेत्रो से कई बार सिर हिलाया।

आशु बाबू ने निष्कपटता से स्वीकार करते हुए कहा—"इस विषय मे तो कोई तर्क नही, अविनाश बाबू। अनेक मनीषी अनेक दिनो से यह बात कहते आये हैं, और शायद भारत का कोई भी आदमी इसका विरोध नही करता।"

अक्षय बाबू ने कहा—"करने का रास्ता ही नही, और इसके अलावा और भी एक विषय है जो इस लेख मे लिखा नही गया है, किन्तु कल नारी-कल्याण समिति मे मैं अपने भाषण मे कहूँगा।"

आशु बाबू ने कमल की तरफ मुँह फेरकर कहा—"तुम्हारे लिए तो समिति की तरफ से निमन्त्रण आया नही है, तुम वहाँ नही आओगी। मैं भी गठिया से लाचार हूँ। मैं भले ही न जाऊँ, पर है वह तुम्ही लोगो की भलाई-बुराई की बात। अच्छा कमल, तुम्हें तो इस बात पर आपत्ति नही होगी?"

और किसी समय होता तो आज के दिन कमल चुप ही रहती, पर, एक तो उसका मन यो ही ग्लानि से भरा हुआ था, दूसरे इतने आदमियो की इस पौरुषहीन सघबद्धता और दम्भपूर्ण प्रतिकूलता से उसके मन मे एक आग-सी जल उठी। परन्तु अपने को यथासाध्यसयतकरके वह मुँह उठाकर हँसती हुई बोली—"कौन-सी बात पर आशु बाबू? अनुकरण पर या भारतीय विशिष्टता पर?"

आशु बाबू ने कहा—"मान लो कि दोनो ही पर?"

कमल ने कहा—"अनुकरण चीज अगर सिर्फ बाहर की नकल हो तो वह धोखा है, अनुकरण है ही नही, क्योंकि तब वह आकृति से मेल खाते हुए भी प्रकृति से नही मिलती। मगर, भीतर-बाहर से वह अगर एक-सी हो तो 'अनुरकरण' होने के कारण लज्जित होने की उसमे कोई भी बात नही।"

आशु बाबू ने सिर हिलाते हुए कहा—"है क्यो नही कमल, है। उस तरह सर्वांगीण अनुकरण मे हम अपनी विशेषता खो बैठते हैं। उसका अर्थ है अपने को बिलकुल ही खो बैठना। इसमे अगर दुःख और लज्जा नही, तो किसमे है, बताओ?"

कमल ने कहा—"भले ही खो बैठे आशु बाबू! भारत के वैशिष्टय और यूरोप के वैशिष्टय मे बडा भारी भेद है, परन्तु किसी देश के किसी वैशिष्टय के लिए मनुष्य नही है, बल्कि मनुष्य के लिए ही उस वैशिष्टय का आदर है। असल बात विचारने की यह है कि वर्तमान समय मे वह वैशिष्टय उसके लिए कल्याणकर है या नही। इसके सिवा और सब बाते सिर्फ अन्ध-मोह हैं।"

आशु बाबू ने व्यथित होकर कहा—"सिर्फ अन्ध-मोह ही हैं कमल, उससे ज्यादा कुछ नही?"

कमल ने कहा—"नही, उससे ज्यादा कुछ नही। सिर्फ इसीलिए कि किसी एक जाति की कोई एक विशेषता बहुत दिनो से चली आ रही है, क्या उस देश के मनुष्यो को अपने कल्याण-अकल्याण का खयाल किये बगैर उसी साँचे मे हमेशा ढलते रहना होगा? इसके क्या मानी? मनुष्य से बढकर मनुष्य की विशेषता नही हो सकती, और इस बात को जब भूल जाते हैं तब विशेषता भी जाती रहती है और मनुष्य को भी हम खो बैठते हैं। यही पर तो वास्तविक लज्जा है आशु बाबू।"

आशु बाबू मानो हतबुद्धि से हो गये, बोले—"तब तो फिर सब एकाकार हो जायगा? भारतीय के रूप मे तो फिर हमे पहचाना भी नही जा सकेगा। इतिहास मे ऐसी घटनाओ की साक्षी भी मौजूद है।"

आशु बाबू के कुण्ठित और विक्षुब्ध चेहरे की तरफ देखकर कमल ने हँसते हुए कहा—"तब मुनि-ऋषियो के वशधर के रूप मे भने ही न पहचाना जाय, पर मनुष्य के रूप मे तो हमे पहचाना ही जायगा और जिसे आप ईश्वर कहा करते हैं, वह भी पहचान लेगा, उससे भी गलती न होगी।"

अक्षय ने उपहास के ढग से चेहरे को कठोर बनाकर कहा—"ईश्वर सिर्फ हम ही लोगो का है? आपका नही?"

कमल ने जवाब दिया—"नही।"

अक्षय ने कहा—"यह सिर्फ शिवनाथ की प्रतिध्वनि है, सिखाई हुई बात है।"

हरेन्द्र बोल उठा—"ब्रूट!"

"देखिए हरेन्द्र बाबू—"

"देख रहा हूँ। बीस्ट!"

आशु बाबू सहसा मानो स्वप्नोत्थित की भाँति जाग उठे। बोले—"देखो कमल, दूसरो की बात मैं नही कहना चाहता, पर हमारा वैशिष्ट्य सिर्फ बात-ही-बात नही है। इसका चला जाना कितनी जबरदस्त क्षति है, उसका हिसाब लगाना दु साध्य है। कितने धर्म, कितने आदर्श, कितने पुराण-इतिहास, काव्य, उपाख्यान, शिल्प,—कितनी-कितनी अमूल्य सम्पदाएँ,—सब कुछ इसी वैशिष्ट्य पर ही तो आज तक जीवित है। फिर इनमे से तो कुछ भी नही रह जायगा?"

कमल ने कहा—"रहने रखने के लिए आखिर इतनी व्याकुलता क्यो? जो जाने वाले नहीं, सो नही जायँगे। मनुष्य की आवश्यकताओ के अनुसार फिर वे नवीन रूप, नवीन सौन्दर्य, नवीन मूल्य लेकर दिखाई देगे। वही होगा उनका सच्चा परिचय। अन्यथा, सिर्फ इसीलिए कि बहुत दिनो से कोई चीज है, उसे और भी बहुत दिनों तक पकडे रहना होगा—यह कैसी बात है?"

अक्षय ने कहा—"इसके समझने की शक्ति नही है आप मे।"

हरेन्द्र ने कहा—"आपके अशिष्ट व्यवहार पर मुझे आपत्ति है अक्षय बाबू।"

आशु बाबू ने कहा—"यह मैं नही कहता कमल कि तुम्हारी युक्तियो मे सत्य नही, पर जिसकी तुम अवज्ञा से उपेक्षा कर रही हो उसके भीतर भी बहुत-सा सत्य है। नाना कारणो से हमारे सामाजिक विधि-विधानो पर तुम्हारी अश्रद्धा हो गयी है। मगर एक बात मत भूलो कमल कि बाहर के बहुत-से उत्पात हमे सहने पडे हैं, फिर भी जो आज तक हम अपनी सम्पूर्ण विशेषताओ को लिये जिन्दा हैं सो केवल इसीलिए कि हमारा आधार सत्य था। ससार की बहुत-सी जातियाँ बिलकुल लुप्त हो चुकी हैं।"

कमल ने कहा—"तो इसमे भी दु ख किस बात का है? हमेशा उन्हे जगह घेरे बैठे रहने की भी क्या आवश्यकता है?"

आशु बाबू ने कहा—"यह दूसरी बात है कमल।"

कमल कहने लगी—"भले ही हो। पिताजी से मैंने सुना था कि आर्यों की एक शाखा यूरोप में जाकर रहने लगी थी, आज वह नही है। मगर उनके बदले जो हैं, वे और भी बडे हैं। ऐसा ही अगर यहाँ होता तो उनकी तरह ही हम लोग भी आज पूर्व पितामहो के लिए शोक करने न बैठते और न अपने सनातन वैशिष्ट्य पर दम्भ करते हुए दिन ही गुजारते। आप कह रहे थे अतीत के उपद्रवो की बात, पर यह भी तो सत्य नही कहा जा सकता कि उनसे भी बढकर उपद्रव भविष्य मे हमारे भाग्य मे नहीं बदे हैं, या हमारी सारी बाधाएँ कट चुकी हैं। तब हम लोग जीवित रहेगे किसके बल पर, बताइए भला?"

आशु बाबू ने इस प्रश्न का उत्तर नही दिया, मगर अक्षय बाबू उद्दीप्त हो उठे। बोले—"तब भी हम

जीवित रहेगे अपने उस आदर्श की नित्यता के वल पर जो कि हजारो युगो मे हमारे मन मे अविचलित वना हुआ है। जो आदर्श हमारे दान मे, हमारे पुण्य मे, हमारी तपस्या मे मौजूद है, जो आदर्श हमारी नारी जाति के अक्षय सतीत्व मे निहित है, हम उसी के वल पर जीवित रहेगे। हिन्दू कभी नही मरते।"

अजित हाथ का अखवार फेंककर उनकी तरफ आँखे फाड-फाडकर देखता रहा, और क्षण-भर के लिए कमल भी चुप हो रही। उसे खयाल आ गया कि निवन्ध लिखकर इसी आदमी ने उस पर अकारण आक्रमण किया है। उसे वह कल नारी जाति के कल्याण के लिए अनेक नारियो के समक्ष दभ के साथ पढ़ेगा, और उसमें के सारे के सारे कटाक्ष सिर्फ उसी को लक्ष्य करके किये हैं। दुर्जय क्रोध से उसका चेहरा सुर्ख हो उठा, परन्तु इस बार भी उसने अपने को सँभाल लिया और स्वाभाविक स्वर में कहा—"आपके साथ वात करने की मेरी इच्छा नही होतीं अक्षय वावू, मेरे आत्म-सम्मान में चोट लगती है।" यह कहकर वह आशु वावू की तरफ मुँह फेरकर कहने लगी—"यही वात मैंने आपसे कहनी चाही थी कि कोई भी आदर्श सिर्फ इसीलिए कि वह बहुत काल तक स्थायी रहा है नित्य स्थायी नही हो सकता और उसके परिवर्तन में भी लज्जा की कोई वात नही, उससे जाति की विशिष्टता भी अगर जाती हो, तो भी। एक उदाहरण देती हूँ। अतिथि सत्कार हमारा एक बड़ा आदर्श है। कितने काव्य, कितने कथानक, कितनी धर्मकथाएँ इस पर रची जा चुकी हैं। अतिथि को खुश करने के लिए दाता कर्ण ने पुत्र तक की हत्या कर दी थी। इस बात पर न जाने कितने आदमियों ने आँसू बहाये होंगे। फिर भी, यह कार्य आज सिर्फ कुत्सित ही नही वल्कि वीभत्स माना जायगा। एक सती स्त्री ने पति को कंधे पर रखकर गणिकालय पहुँचा दिया था,—सतीत्व के इस आदर्श की भी किसी दिन तुलना नही थी,—मगर आज ऐसी घटना कही हो जाय तो वह मनुष्य के हृदय में सिर्फ घृणा ही उत्पन्न करेगी। आपका अपने जीवन का जो आदर्श, जो त्याग, लोगों के मन में श्रद्धा और विस्मय का कारण हो रहा है, किसी दिन ऐसा आ सकता है जव यह सिर्फ अनुकम्पा की वात रह जायगी और उस निष्फल आत्म-निग्रह की ज्यादती पर लोग उपहास करके चले जायँगे।"

इस आघात की निर्ममता से लहमे भर के लिए आशु वावू का चेहरा वेदना से पीला पड गया। वे बोले—"कमल, इसे निग्रह के रूप मे ले क्यों रही हो, यह तो मेरा आनन्द हे। यह तो मेरा उत्तराधिकार-सूत्र से प्राप्त अनेक युगो का धन है।"

कमल ने कहा—"हो अनेक युगो का। सिर्फ वर्ष गिनकर ही आदर्श का मूल्य नही आँका जाता। अचल, अटल गलतियो से भरे समाज के हजारो वर्ष भी, सम्भव है, भविष्य के दस वर्ष के गति-वेग मे वह जायँ। वे दस वर्ष ही उन हजारों वर्षों से वहुत ज्यादा वडे हैं, आशु वावू।"

अजित अकस्मात् मनुष्य के छोडे हुए तीर की तरह सीधा खडा हो गया, वोला—"आपकी वातो की उग्रता से इन लोगो के शायद आश्चर्य का ठिकाना न रहा होगा; मगर मुझे जरा भी आश्चर्य नही हुआ। मैं जानता हूँ कि इस विजातीय मनोभाव का मूल स्रोत कहाँ है? किसलिए हमारे समस्त मगल-आदर्शों के प्रति आपको इतनी जवरदस्त घृणा है? मगर चलिए, अब हमारे पास व्यर्थ देर करने का वक्त नही है, पाँच वज गये।"

अजित के पीछे-पीछे सभी लोग चुपचाप कमरे से वाहर निकल गये। किसी ने उससे अभिवादन तक नही किया, और न किसी ने उसकी तरफ मुड़कर देखा ही। युक्तियाँ जव हार मानने लगी तव इस तरह से पुरुषों के दल ने विजय-घोषणा करके अपने पौरुष को कायम रखा। उन लोगो के चले जाने पर आशु वावू ने धीरे-धीरे कहा,—"कमल, मुझ पर ही आज तुमने सवसे ज्यादा चोट पहुँचाई है, किन्तु मैंने ही आज तुम्हे मानो सम्पूर्ण हृदय से प्यार किया है। मेरी मणि से मानो किसी अंश मे भी तुम कम नही हो वेटी।"

कमल ने कहा—"इसका कारण यह है कि आप सचमुच मे महान् पुरुष हैं चाचाजी। आप तो इन लोगो की तरह मिथ्या नहीं हैं। पर मेरा भी समय निकला जा रहा है, मैं जाती हूँ।" इतना कहकर उसने उनके पाँवो के पास जाकर झुक के प्रणाम किया।

प्रणाम वह साधारणत. किसी को भी नही करती। आज उसके इस अनहोने आचरण से आशु बाबू चचल हो उठे। आशीर्वाद देते हुए वोले—"अव कव आओगी वेटी?"

"अव शायद मेरा आना न होगा चाचाजी।" इतना कहकर वह कमरे से वाहर चली गयी और आशु वावू उसकी तरफ देखते हुए चुपचाप वैठे रहे।

आगरे के नये मजिस्ट्रेट की स्त्री का नाम है मालिनी। उन्ही के प्रयत्न से और उन्ही के मकान पर नारी-कल्याण-समिति की स्थापना हुई। प्रथम अधिवेशन की तैयारियाँ जरा कुछ समारोह के साथ ही हुई थी, किन्तु अधिवेशन अच्छी तरह सम्पन्न तो हुआ नही, बल्कि उसमे न जाने कैसी एक विशृंखला-सी पैदा हो गयी। बात मुख्यत यह थी कि यद्यपि आयोजन सब स्त्रियो के लिए ही था, पर पुरुषो के शरीक होने की भी मनाही नही थी, बल्कि देखा जाय तो इस आयोजन मे पुरुष ही कुछ विशेषता से निमन्त्रित हुए थे। अविनाश पर इसका भार था। मननशील लेखक के तौर पर अक्षय का नाम था, और लेखो का दायित्व उन्हीने ग्रहण किया था। अतएव, उन्ही के परामर्श के अनुसार एक शिवनाथ के सिवा और किसी को भी छोडा नही गया था। अविनाश की छोटी साली नीलिमा घर-घर जाकर धनी से लेकर गरीब तक शहर की सभी वगार्नी शिष्ट महिलाओ से आने के लिए अनुरोध कर आयी थी। सिर्फ, जाने की इच्छा नही थी आशु बाबू की, पर गठिया के दर्द ने आज उनकी रक्षा नही की, मालिनी खुद आकर उन्हे पकड ले गयी। अक्षय अपना व्याख्यान हाथ मे लिए तैयार था, मामूली विनय-भाषण के प्रचलित दो-चार शब्दों के बाद वह सीधा और कठोर होकर खडा हो गया और व्याख्यान पढने लगा। थोडी ही देर मे ऐसा लगा कि उसका वक्तव्य विषय जैसा अरुचिकर है, वैसा ही लम्बा भी। साधारणत. जैसा हुआ करता है, प्राचीन काल की सीता-सावित्री आदि का उल्लेख करके उसने आधुनिक नारी-जाति की आदर्श-हीनता पर कटाक्ष किये थे। एक आधुनिक और शिक्षिता महिला के घर पर उन्ही की 'तथाकथित' शिक्षा के विरुद्ध कडवी बाते कहने मे उसे सकोच नही हुआ। कारण अक्षय को गर्व था कि अप्रिय सत्य कहने मे वह डरता नही। लिहाजा, व्याख्यान मे सत्य हो, चाहे न हो, अप्रिय वचनो की कमी नही थी। और उस 'तथाकथित' शब्द की व्याख्या के लक्ष्य मे विशिष्ट उदाहरण की नजीर थी कमल। इस अमांत्रित स्त्री के प्रति अक्षय के व्याख्यान मे इतना अपमान था कि जिसकी हद नही। अन्त के अश मे वह गहरे दु ख के साथ ये शब्द कहने के लिए मजबूर हो गया कि इसी शहर में ठीक ऐसी ही एक स्त्री मौजूद है, जो शिष्ट समाज में बराबर प्रश्रय पा रही है। ऐसी स्त्री, जिसने अपने दाम्पत्य-जीवन को अवैध जानकर भी लज्जित होना तो दूर रहा, सिर्फ उपेक्षा की हँसी-हँसी है, जिसके लिए विवाह-अनुष्ठान सिर्फ अर्थहीन सस्कारमात्र है और पति-पत्नी का अत्यन्त एकनिष्ठ प्रेम जिसकी दृष्टि मे महज मानसिक कमजोरी है। उपसंहार मे अक्षय ने इस बात का भी उल्लेख किया कि नारी होकर भी जो नारी के गम्भीरतम आदर्श को अस्वीकार करती है, तथाकथित उस शिक्षित नारी के उपयुक्त विशेषण और वास-स्थान के निर्णय में वक्ता को अपनी तरफ से कोई सशय न होने पर भी सिर्फ सकोचवश वह उसे बताने में असमर्थ है। इस त्रुटि के लिए वह सबसे क्षमा चाहता है।

वर्तमान महिला-समाज मे मनोरमा के सिवा और किसी ने उसे आँखो से नही देखा था। परन्तु उसके रूप की ख्याति और चरित्र की अख्याति हरेक पुरुष के मुँह पर चढकर व्याप्त होने मे कसर नही रखी। यहाँ तक कि इस नव-प्रतिष्ठित नारी-कल्याण-समिति की सभानेत्री मालिनी के कानो मे भी वह पहुँच चुकी थी। इस विषय को लेकर नारी-मण्डल मे परदे के भीतर और बाहर कुतूहल की सीमा न रही थी। इसलिए रुचि और नीति के सम्यक् विचार के उत्साह से उद्दीप्त प्रश्नमाला की प्रखरता से व्यक्तिगत आलोचना तीव्र हो उठने मे शायद देर न लगती, किन्तु वक्ता का परम मित्र हरेन्द्र ही इसमे कठोर प्रतिबन्धक हो उठा। वह सीधा उठके खडा हो गया और बोला—"अक्षय बाबू के इस निबन्ध का मैं पूर्णत प्रतिवाद करता हूँ। सिर्फ अप्रासंगिक होने की वजह से ही नही,—किसी भी महिला पर उसकी गैरमौजूदगी मे आक्रमण करने की रुचि बीस्टली और उसके चरित्र का अकारण उल्लेख करना अशिष्ट और हेय है। नारी-कल्याण-समिति की तरफ से इस निबन्ध-लेखक को धिक्कार देना चाहिए।"

इसके बाद ही एक विचित्र उपद्रव उठ खडा हुआ। अक्षय हिताहित ज्ञानशून्य होकर जो मन मे आया, कहने लगा और उसके उत्तर मे स्वल्प-भाषी हरेन्द्र बीच-बीच मे 'बीस्ट' और 'ब्रूट' कहकर जवाब देने लगा।

मालिनी नयी-नयी ही इनके सम्पर्क मे आयी थी, सहसा इस तरह के वाक् वितण्डा की उग्रता से बडी

आफत मे पड गयी, और इस उत्तेजना के प्रवाह मे अपना मतामत प्रकट करने मे किसी ने भी कजूसी से काम नही लिया। चुप रहे सिर्फ एक आशु बाबू। निबन्ध पढ़े जाने के प्रारम्भ से ही जो वे गरदन झुकाकर बैठे सो सभा खतम होने तक फिर उन्होने मुँह नही उठाया। और फिर एक आदमी ने इस तर्कयुद्ध में साथ नही दिया, और वे थे हरेन्द्र-अक्षय की बातचीत के नित्य-अभ्यस्त अविनाश बाबू।

इस बात को मालिनी जानती थी कि व्यक्ति-विशेष के चरित्र की भलाई-बुराई का निरूपण करना इस समिति का लक्ष्य नही है और इस प्रकार की आलोचना से नर-नारी मे से किसी का भी कल्याण नही होता। इस बात को भी अच्छी तरह मालिनी समझ गयी कि निबन्ध मे आशु बाबू पर भी विशेष कटाक्ष किया गया है और इससे उनको अत्यन्त क्लेश हुआ है। सभा भग होने के बाद वह चुपके से अपना आसन छोडकर इस प्रौढ़ व्यक्ति के पास आकर बैठ गयी और लज्जित मृदु कण्ठ से बोली—"निरर्थक आज आपकी शान्ति नष्ट करने के लिए दु खित हूँ आशु बाबू।"

आशु बाबू ने हँसने की कोशिश करते हुए कहा—"घर मे भी मैं अकेला ही बैठा रहता। यहाँ कम से कम समय तो कट गया।"

मालिनी ने कहा—"वह इससे अच्छा था।" फिर जरा ठहरकर कहा—"आज वे हैं नही यहाँ, मणि यहाँ से खा-पीकर जायगी।"

"अच्छी बात है, मैं यहाँ से जाकर गाडी भेज दूँगा? लेकिन और सब स्त्रियाँ!"

"वे भी सब आज यही भोजन करेगी।"

अविनाश और अजित के साथ आशु बाबू गाडी मे बैठ ही रहे थे कि हरेन्द्र और अक्षय आ धमके। उन्हे भी पहुँचा देना होगा। राजी होना पडा। रास्ते-भर आशु बाबू मौन रहे। निरन्तर उन्हे इस बात का खयाल होता रहा कि कमल को लक्ष्य करके स्त्रियो के बीच अक्षय ने उन पर अशिष्ट कटाक्ष किया है।

गाडी घर पर पहुँची। नीचे के बरामदे मे एक परिचित आदमी बैठा था। बम्बई वालो जैसी उसकी पोशाक थी। पास जाकर आशु बाबू का उसने अँग्रेजी मे अभिवादन किया।

"क्या है?"

जवाब में उसने एक परचा हाथ मे देते हुए कहा—"चिट्ठी है।"

चिट्ठी उन्होने अजित के हाथ मे दे दी। अजित ने उसे मोटर की बत्ती के सामने ले जाकर पढ़ा, बोला—"कमल की चिट्ठी है।"

"कमल की? क्या लिखा है कमल ने?"

"लिखा है, पत्र ले जाने वाले से सब मालूम होगा।"

आशु बाबू के जिज्ञासु चेहरे की तरफ देखते हुए उसने कहा—"उनकी इच्छा नही थी कि यह चिट्ठी और किसी के हाथ पडे। आप उनके अपने आदमी हैं। मेरे उन पर कुछ रुपये चाहिए थे।"

बात खतम भी न हुई थी कि आशु बाबू सहसा अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे, बोले—"मैं उसका अपना आदमी नही हूँ, असल मे वह मेरी कोई नही होती। उसकी तरफ से मैं क्यो रुपये देने लगा?"

गाडी मे से अक्षय ने कहा—"जस्ट लाइक हर।"

बात सभी के कान में पडी। पत्रवाहक भला आदमी था। लज्जित होकर बोला—"रुपये आपको नही देने होगे, वे ही देगी। आप सिर्फ कुछ दिनो के लिए जमानतदार बन जायँ तो—"

आशु बाबू का गुस्सा और भी बढ गया। उन्होने कहा—"जमानतदार होने की गर्ज मेरी नही है, उनके पति हैं. कर्ज की बात उन्ही से करिएगा।"

भला आदमी अत्यन्त विस्मित हुआ, बोला—"उनके पति के बात तो मैंने सुनी नही।"

"पता लगाने से सुन लेगे। गुड् नाइट्। आओ अजित, अब देर न करो।" कहकर वे उसे लेकर ऊपर चले गये। ऊपर के सहन वाले बरामदे से झाँककर फिर एक बार ड्राइवर को याद दिला दिया कि मजिस्ट्रेट साहब की कोठी पर गाडी पहुँचाने मे देर नही होनी चाहिए। अजित सीधा अपने कमरे में जा रहा था, पर आशु बाबू उसे अपनी बैठक मे ले गये। बोले—"बैठो। देख लिया मजा?"

इस बात के माने क्या हुए, अजित समझ गया। वास्तव मे उनकी स्वाभाविक सहृदयता, शान्तिप्रियता और चिराभ्यस्त सहिष्णुता के साथ उनकी इस क्षण-भर पहले की अकारण और अनचाही रूक्षता ने एक अक्षय के सिवा शायद और किसी को भी आघात पहुँचाने मे कसर नही रखी। बगैर कुछ

जाने एक दिन इस रहस्यमयी तरुणी के प्रति अजित का अन्त करण श्रद्धा और विस्मय से भर उठा था। मगर जिस दिन कमल ने निशीथ रात्रि मे अपने विगत नारी जीवन का कच्चा चिट्ठा अनायास ही खोलकर रख दिया, उस दिन से अजित के मन मे विराग और घृणा की सीमा न रही। इसी तरह उसके ये कई दिन बीते हैं, और इसीसे आज नारी-कल्याण-समिति के उद्घाटन के अवसर पर आदर्शवादी अक्षय ने जो नारीत्व का आदर्श दिखाने के बहाने इस स्त्री पर जितने भी कटाक्ष और कटूक्तियाँ की थी, उनसे अजित को दु ख नही हुआ था। मानो उसने ऐसी ही आशा कर रखी थी। फिर भी अक्षय की क्रोधान्ध बर्बरता मे चाहे जितना भी तीक्ष्ण शूल क्यो न हो, आशु बाबू अभी-अभी जो कर बैठे उससे कमल के मानो कान रगड दिये गये,—केवल अनचाही होने के कारण ही नही, पुरुष के अयोग्य होने के कारण भी। कमल को वह अच्छा नही कहता। उसके मतामत और सामाजिक आचरण की सुतीव्र निन्दा मे अजित ने अन्याय नही देखा। वह अपने अन्दर इस रमणी के विरुद्ध कठोर घृणा का भाव ही परिपुष्ट होता देख रहा है। वह कहता है, शिष्ट समाज मे जो चलता नही, उसे छोड़ देने मे अपराध छूता तक नही। मगर इससे क्या हुआ?—दुर्दशा मे पडी एक कर्जदार स्त्री की बुरे दिनो मे माँगी गयी मामूली-सी कुछ रुपयो की भीख को लात मार देने मे मानो वह पुरुष मात्र के चरम असम्मान का अनुभव करके मन ही मन जमीन मे गड गया। उस रात की सारी बातचीत उसे याद आ गयी। उसे बडे जतन से खिलाते वक्त कमल ने जो उसे चाय बगीचे की आप-बीती सारी घटनाएँ सुनायी थी, उसकी माँ का किस्सा, उसका अपना इतिहास, अँग्रेज-मैनेजर साहब के घर पैदा होने का वर्णन,—सब बाते उसके दिमाग में घूमने लगी। वे जितनी अद्भुत थी, उतनी ही अरुचिकर। मगर वह सब कहने की उसे जरूरत क्या थी? और छिपा रखती तो नुकसान ही क्या होता? मगर दुनिया की इस सहज सुबुद्धि के जमा-खर्च का हिसाब शायद कमल के ख्याल मे नही आया। अगर आया भी हो तो उसने उसकी परवाह नही की।

और सबसे बढकर आश्चर्यजनक उसका कठोर से कठोर धैर्य है। दैवक्रम से उसी के मुँह से पहले-पहल मालूम हुआ कि शिवनाथ कही बाहर नही गया, इसी शहर मे छिपा हुआ है। और सुनकर वह चुप रही। चेहरे पर न तो वेदना का आभास दिखाई दिया और न जबान से शिकायत की भाषा निकली। इतने बडे मिथ्याचार के विरुद्ध उसने दूसरे के सामने शिकायत करने का नाम तक नही लिया।—उस दिन सम्राट्-महिषी मुमताज के स्मृति-सौध के किनारे बैठकर जो बाते उसने हँसते हुए हँसी-हँसी मे मुँह से निकाली थी, उनका बिलकुल अक्षरश पालन किया।

आशु बाबू खुद भी शायद क्षण-भर के लिए अनमने हो गये थे, सहसा सचेत होकर पहले प्रश्न की पुनरावृति करते हुए बोले—"मजा देख लिया न अजित! मैं निश्चय के साथ कहता हूँ कि यह उस शिवनाथ की ही चालाकी है।"

अजित ने कहा—"नही भी हो। बिना जाने कुछ कहा नही जा सकता।"

आशु बाबू ने कहा—"हाँ, हो सकता है। मगर मेरा विश्वास है कि यह चाल शिवनाथ की है। मुझे वह बडा आदमी जानता है न?"

अजित ने कहा—"यह तो सभी को मालूम है। कमल खुद भी न जानती हो, सो बात नही।"

आशु बाबू ने कहा—"तब तो और भी ज्यादा बुरा है। पति से छिपाना तो अच्छी बात नही।"

अजित चुप रहा। आशु बाबू कहने लगे—"पति से छिपाकर और शायद उसकी राय के खिलाफ दूसरे से रुपये उधार लेना स्त्री के लिए कितनी बुरी बात है। इसे हरगिज प्रश्रय नही दिया जा सकता।"

अजित ने कहा—"उन्होने रुपये माँगे नही, सिर्फ जमानतदार होने के लिए अनुरोध किया था।"

आशु बाबू ने कहा—"दोनो बाते एक ही है।" क्षण-भर मौन रहकर वे फिर बोले—"और फिर मुझे अपना आदमी बताकर उस आदमी को धोखा किसलिए दिया? वास्तव मे मैं तो उसका कोई लगता नही।"

अजित ने कहा—"शायद वे आपको सचमुच ही अपना समझती हो। मालूम होता है, उनका किसी को धोखा देने का स्वभाव नही है।"

"नही-नही, मैंने ठीक वैसी बात नही कही अजित।" कहकर मानो उन्होने अपने प्रति जवाबदेही की। उस आदमी को सहसा झोक मे आकर विदा कर देने से उन्हे भी मन-ही-मन बडी भारी ग्लानि-सी हो रही थी। बोले—"अगर वह मुझे अपना ही समझती थी और दो-चार सौ रुपयो की जरूरत ही आ पडी थी तो वह सीधी खुद आकर ले जाती। बेकार एक बाहर के आदमी को सबके सामने भेजने की क्या

जरूरत थी? और चाहे जो हो, पर उस लडकी मे विवेक विलकुल नही।"

नौकर ने आकर कहा कि भोजन तैयार है। अजित उठना चाहता था कि आशु वावू ने कहा—"तुमने उस आदमी को मार्क किया था अजित, कैसा भद्दा चेहरा था,—मनी-लेण्डर ठहरा न! वहाँ जाकर शायद तरह-तरह की बाते वनाकर कहेगा।"

अजित ने हँसकर कहा—"वनाने की जरूरत नही पडेगी,—सच-सच कह देना ही काफी है।" यह कहकर ज्यो ही वह जाने को तैयार हुआ कि आशु वावू सचमुच विचलित हो उठे, वोले—"यह अक्षय तो विलकुल ही नुईसन्स मालूम होता है। आदमी की सहन-शक्ति की सीमा लाँघ जाता है। वल्कि एक काम करो अजित, यदु को वुलाकर उस ड्रॉअर को खोलकर देखो तो क्या है। कम से कम पाँच-सात सौ रुपया,—फिलहाल जो हो, भेज दो। अपना ड्राइवर शायद उन लोगो का घर जानता है,—शिवनाथ को कभी-कभी पहुँचा आया है।" कहकर उन्होने खुद ही जोर-जोर से नौकर को पुकारना शुरू कर दिया।

अजित ने रोकते हुए कहा—"जो होना था सो हो चुका,—अव रात मे यह रहने दीजिए, कल सवेरे विचार कर देखिएगा।"

आशु वावू ने प्रतिवाद किया—"तुम समझते नही अजित, कोई खास जरूरत के विना रात ही को वह आदमी हरगिज न भेजती।"

अजित क्षण-भर स्थिर खडा रहा। अन्त मे वोला—"ड्राइवर तो अभी है नही यहाँ, मनोरमा को लेकर न जाने कब लौटे। इस बीच कमल को सब मालूम हो ही जायगा। उसके वाद रुपया भेजना उचित न होगा। शायद आपसे अव वे सहायता लेगी भी नही।"

"मगर वह तो सिर्फ तुम्हारा अनुमान ही है अजित?

"हाँ, अनुमान तो है ही।"

"लेकिन, परदेस मे रुपये की जरूरत तो उसके लिए इससे भी ज्यादा हो सकती है?"

"सो हो सकती है, मगर वह जरूरत शायद आत्म-सम्मान मे वढकर न भी हो।"

आशु वावू ने कहा—"लेकिन यह भी तो तुम्हारा सिर्फ अनुमान ही है?"

अजित ने सहसा कोई उत्तर नही दिया। क्षण-भर सिर झुकाये चुप रहकर वह वोला—"नही, यह अनुमान से भी वढकर है। यह मेरा विश्वास है।" इतना कहकर वह धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गया।

आशु वावू ने अबकी उसे रोका नही, सिर्फ वेदना से दोनो आँखे फैलाकर वे उसकी ओर देखते रहे। इस वात को वे खुद भी जानते हैं कि कमल के सम्वन्ध मे ऐसा विश्वास होना न असम्भव है और न असगत। निरुपाय पश्चात्ताप उनके अन्त करण को मानो खरोचने लगा।

१३

नारी-कल्याण-समिति से लौटने पर नीलिमा अविनाश वावू को ले वैठी, "मुखर्जी महाशय, कमल से एक वार मिलूँगी। मेरी वडी इच्छा है, उसे निमन्त्रण देकर खिलाऊँ।"

अविनाश ने आश्चर्य के साथ कहा—"तुम्हारी हिम्मत तो कम नही है छोटी मालकिन! सिर्फ जान-पहचान ही नहीं, एकवारगी निमत्रण तक कर देना चाहती हो?"

"क्यो, वह कोई वाघ-भालू है? उससे इतना डर किसलिए?"

अविनाश ने कहा—"बाघ-भालू इस प्रान्त मे नही मिलते, नही तो तुम्हारे हुक्म से उन्हे भी निमन्त्रण दे आता। मगर इन्हे नही दे सकता। अक्षय सुन लेगा तो फिर खैर नही। मुझे देश-निकाला देकर ही पिण्ड छोडेगा।"

नीलिमा वोली—"अक्षय वावू से मैं नही डरती।"

अविनाश ने कहा—"तुम्हारे न डरने से कोई नुकसान नही, उसका काम मेरे अकेले डरने से चल जायगा।"

नीलिमा ने जिद करते हुए कहा—"नही, सो नही होगा। तुम न जाओगे, तो मैं खुद जाकर उन्हे लिवा लाऊँगी।"

"मगर मैं तो उनका घर जानता नही।"

नीलिमा बोली—"लालाजी जानते हैं। मैं उनके साथ चली जाऊँगी। वे तुम जैसे डरपोक नही हैं।"

फिर जरा सोचकर कहने लगी—"तुम लोगो के मुँह से जो सुना करती हूँ, उससे तो मालूम होता है कि शिवनाथ बाबू का ही कुसूर है। सो उन्हे तो मैं निमत्रण देना नही चाहती। मैं चाहती हूँ कमल को देखना, उनसे बातचीत करना। कमल अगर आने को राजी हो जाय तो मजिस्ट्रेट साहब की स्त्री,—वे भी आने के लिए कहती हैं, समझे?"

अविनाश समझ तो सब गये, पर साफ-साफ सम्मति न दे सके और न उनकी रोकने की ही हिम्मत हुई। नीलिमा पर वे सिर्फ स्नेह और श्रद्धा ही करते हो सो बात नही, मन-ही-मन उससे डरते भी थे।

दूसरे दिन सवेरे हरेन्द्र को बुलवाकर नीलिमा ने कहा—"लालाजी, तुम्हे एक काम और करना होगा। तुम कुँआरे आदमी ठहरे, घर मे बहू तो है नही जो सदाचार के नाम पर तुम्हारे कान ऐंठ देगी। बासे मे रहते हो, बिना माँ-बाप के अनाथ लड़को के झुण्ड मे—तुम्हे डर किस बात का हैं?"

हरेन्द्र ने कहा—"डर की बात पीछे होती रहेगी, पहले बताइए, काम क्या करना होगा?"

नीलिमा ने कहा—"कमल से मैं मिलूँगी, बातचीत करूँगी, घर बुलाकर खिलाऊँगी। तुम उनका घर जानते हो क्या? मुझे साथ लेकर उन्हें निमन्त्रण दे आना होगा। किस वक्त चलोगे, बताओ?"

हरेन्द्र ने कहा—"जिस वक्त हुक्म करोगी उसी वक्त। लेकिन घर के मालिक यानी भाई साहब का अभिप्राय क्या है?" कहकर उसने बरामदे के उस तरफ बैठे हुए अविनाश की तरफ इशारा किया। वे इजी चेयर पर पडे हुए, 'पायोनियर' पढ रहे थे। सुना सब कुछ, पर बोले कुछ नही।

नीलिमा ने कहा—"वे अपना अभिप्राय अपने पास रक्खे—मुझे उसकी जरूरत नही। मैं उनकी साली हूँ, साली की बहन नही जो 'पति परमगुरु' की गदा घुमाकर मुझ पर शासन करेगे! मेरे जी मे जिसे आयेगा, उसे खिलाऊँगी। मजिस्ट्रेट की बहू ने कहा है कि उन्हे खबर मिल गयी तो वे भी आयेगी। उन्हे अच्छा न लगे तो उतना समय वे और कही जाकर बिता आवे।"

अविनाश ने अखबार पर से दृष्टि बिना हटाये ही जवाब दिया—"लेकिन यह काम अच्छा नही होगा। हरेन्द्र, कल की बात याद है न? आशु बाबू जैसे सदाशिव आदमी को भी सावधान होना पड़ता है।"

हरेन्द्र ने कुछ जवाब नही दिया और डर से कि कही कल की वह रुपयो वाली बात न उठ खडी हो और नीलिमा को भी न मालूम हो जाय, उसने इस प्रसग को चट से दबाकर कहा—"एक काम क्यो न करे भाभी, उन्हे मेरे घर पर आने का निमन्त्रण दे आइए और आप बन जाइए उस घर की मालकिन। लक्ष्मीहीन घर मे कम से कम एक दिन तो लक्ष्मी का आविर्भाव हो जाय। मेरे लडके भी थोडी-बहुत बुरी-भली चीजे खाकर खुशी मना ले।"

नीलिमा ने अभिमान के स्वर मे कहा—"अच्छी बात है, ऐसा ही सही—मैं भी भविष्य मे उलाहनो से बच जाऊंगी।"

अविनाश उठकर बैठ गये। बोले—"अर्थात् छीछालेदर होने मे फिर कोई कसर ही न रह जायगी। कारण शिवनाथ को छोडकर सिर्फ उन्ही को तुम्हारे घर निमंत्रित करने की फिर कोई कैफियत ही नही दी जा सकेगी। इससे तो बल्कि, यही सुनने में बहुत अच्छा लगेगा कि औरते आपस मे जान-पहचान रखना चाहती हैं।"

बात सचमुच ही युक्तिसगत थी। इसलिए यही तय हुआ कि कालेज की छुट्टी होने के बाद हरेन्द्र नीलिमा को साथ ले जाकर कमल को न्योता दे आवे।

शाम को हरेन्द्र ने आकर कहा कि अब तकलीफ उठाकर वहाँ जाने की कोई जरूरत नही। कल रात को न्योते की बात उनसे कही जा चुकी है और वे आने को राजी हो गयी हैं।

नीलिमा उत्सुक हो उठी। हरेन्द्र कहने लगा—"कल घर लौटते वक्त अचानक उनसे रास्ते मे भेट हो गयी। साथ मे पल्लेदार के सर पर एक भारी भरकम सन्दूक था। मैंने पूछा कि इसमे क्या है? कहाँ जा रही हो? उन्होने कहा—"जा रही हूँ जरा काम से। तब फिर मैंने आपका परिचय देते हुए कहा—"भाभी ने आपको कल शाम के लिए न्योता भेजा है। औरतो का मामला ठहरा, आपको जाना ही पडेगा। जरा चुप रहकर उन्होने कहा—अच्छा। मैंने कहा—तय हुआ है कि मेरे साथ चलकर वे आपको बाकायदा न्योता दे आये—अब उनके आने की जरूरत है क्या? जरा हँसकर उन्होने कहा—नही। मैंने पूछा—अकेली तो

आप आ नही सकेंगी, कब किस वक्त आकर मैं आपको लिवा जाऊँ? सुनकर वे वैसे ही हँसने लगी। वोली—"अकेली ही मैं पहुँच जाऊँगी, अविनाश बाबू का मकान मैं जानती हूँ।

नीलिमा पिघल गई। बोली—"लडकी ऐसे तो बहुत अच्छी मालूम होती है। घमण्ड विलकुल नही।"

वगल के कमरे मे अविनाश बाबू कपडे बदलते हुए कान लगाकर सब सुन रहे थे, वही मे पूछने लगे—"और कुली के सिर पर वह भारी वकस? उसका इतिहास तो बताया ही नही भाई साहव?"

हरेन्द्र ने कहा—"पूछा नही।"

"पूछते तो अच्छा करते। शायद वेचने या गिरवी रखने जा रही होंगी।"

हरेन्द्र ने कहा—"हो सकता है। आपके पास गिरवी रखने आवें तो आप इतिहास पूछ लीजिएगा।" इतना कहकर वह चला ही जा रहा था कि सहसा दरवाजे के पास खडा होकर वोला—"भाभी, अपनी नारी-कल्याण-समिति मे अक्षय का व्याख्यान तो आपने सुन ही लिया होगा? हम लोग उसे 'ब्रूट' कहा करते हैं। मगर उस वेचारे में और थोडी-सी पाखण्ड वुद्धि होती तो वह समाज मे वडी आसानी से साधु-महत के रूप मे चल जाता। क्यो, ठीक है न भाई साहव?"

अविनाश भीतर से ही गरज उठे—"हाँ जी, नित्यानन्द श्रीगौरांग महाप्रभु जी, इसमें सन्देह ही क्या है? वन्धुवर को वह कौशल सिखा दो न जाकर।"

"कोशिश करूँगा। लेकिन अव चल दिया भाभाजी, कल फिर यथासमय हाजिर होऊँगा।" कहकर वह चला गया।

नीलिमा ने तैयारी मे कोई कसर नही उठा रखी। मनोरमा शुरू से ही कमल के वहुत खिलाफ थी। यह जानकर कि वह किसी भी हालत में नही आयेगी, आशु बाबू के घर में किसी से भी नही कहा गया था। मालिनी को खबर भेजी गयी थी, पर अचानक अस्वस्थ हो जाने से वे भी नही आ सकी।

कमल ठीक वक्त पर आ गयी। यान-वाहन पर नही, अकेली और पैदल आ पहुँची। घर-मालकिन ने उसे आदर के साथ विठाया। अविनाश सामने खडे थे। कमल को उन्होंने बहुत दिनों से देखा नही था, आज उसके चेहरे और कपडो की तरफ देखकर आश्चर्यचकित रह गये। गरीबी की छाप उन पर साफ पडी हुई थी। आश्चर्य प्रकट करते हुए वोले—"रात को अकेली ही पैदल चली आ रही हो क्या, कमल?"

कमल ने कहा—"इसका कारण अत्यन्त साधारण है अविनाश बाबू समझने में जरा भी कठिनाई नही।"

अविनाश बाबू लज्जित हो गये, और लज्जा छिपाने के लिए चट से वोल उठे—"नही-नही, क्या कह रही हो तुम? काम ठीक नही हुआ। लेकिन छोटी बहू, ये ही हैं कमल। इन्ही का दूसरा नाम है शिवानी। इन्ही को देखने के लिए तुम इतनी उतावली हो रही थी। चलो, भीतर चलकर बैठो। तैयारी तो तुम्हारी सब हो चुकी होगी छोटी मालकिन, फिर निरर्थक देर करने से क्या फायदा? ठीक समय पर इन्हे फिर घर भी तो पहुँचना है।"

इस सब उपदेश और पूछ-ताछ मे वहुत कुछ ज्यादती थी। न तो इसमें जवाव की कोई जरूरत थी और न इसकी कोई उम्मीद ही करता था।

हरेन्द्र ने आकर कमल को नमस्कार किया। वोला—"अतिथि को स्वागत के साथ ग्रहण करते वक्त मैं पहुँच नही पाया भाभीजी, कसूर हो गया। अक्षय आया था, उसे यथोचित मीठे वाक्यो से परितुष्ट करके विदा करने मे देर हो गयी।" और वह हँसने लगा।

भीतर जाकर कमल ने भोजन-सामग्रियो का प्राचुर्य देखा तो क्षण-भर चुपचाप खडी रह गयी और वोली—"मेरे लिए चीजे तो ये खूब वनायी हैं, लेकिन मैं तो यह सब खाती नही।" इस पर सब व्यस्त हो उठे तो वह वोली—"आप लोग जिसे हविष्यान्न कहते हैं, मैं सिर्फ वही खाती हूँ।"

सुनकर नीलिमा दग रह गयी, वोली—"यह क्या बात कही आपने? आप हविष्य खायेगी, किस दु ख के कारण?"

कमल ने कहा—"वात ठीक है। दु ख नहीं है, सो बात नही, लेकिन यह सब खाती नही हूँ, इसलिए मेरी जरूरतें भी कम हैं। आप कुछ खयाल न करे।"

"पर बिना खयाल किये काम भी तो नही चलता।" नीलिमा ने क्षुण्ण होकर कहा—"नही खाने से

इतनी चीजें मेरी नष्ट जो होगी?"

कमल हँस दी। बोली—"जो होना था सो तो हो चुका, उसे लौटाया नही जा सकता। उस पर फिर खाकर खुद क्यो नष्ट होऊँ?"

नीलिमा ने विनय के साथ अन्तिम चेष्टा करते हुए कहा—"सिर्फ आज-भर के लिए। सिर्फ एक दिन के लिए भी क्या नियम भग नही कर सकती?"

कमल ने सिर हिलाकर कहा—"नही।"

उसके हँसते हुए मुँह के सिर्फ एक ही शब्द को सुनकर सहसा किसी को कुछ भी ठीक ख्याल नही आ सकता कि उसमे दृढ़ता कितनी जबरदस्त थी। परन्तु इस दृढता की भनक पडी हरेन्द्र के कान मे और सिर्फ वही समझा कि इसमें किसी तरह का फेरफार नही हो सकता। इसी से घर-मालकिन की तरफ से अनुरोध की पुनरुक्ति होते ही उसने टोक दिया। बोला—"रहने दो भाभी, अब मत कहो। चीज आपकी कोई बिगडेगी नही, मेरे यहाँ के लडके आकर पोछ-पाँछ के सब साफ कर जायँगे। पर इनसे अब आग्रह मत करो। बल्कि जो कुछ खायँ उसका इन्तजाम करो।"

नीलिमा गुस्सा होकर बोली—"सो किये देती हूँ। पर मुझे अब तसल्ली देने की जरूरत नही लालाजी, तुम रहने दो। यह घास-फूस नही है जो तुम अपने झुण्ड के झुण्ड भेड-बकरो को चरा दोगे। इसे मैं रास्ते में फेंक दूँगी, पर उन्हे न खिलाऊँगी।"

हरेन्द्र ने हँसते हुए कहा—"क्यो, आपकी इतनी नाराजगी उन पर क्यो है?"

नीलिमा ने कहा—"उन्ही की बदौलत तो तुम्हारी यह दुर्गति है। बाप रुपया छोड गये हैं, खुद भी पैदा कम नही करते,—अब तक बहू आती तो लडके वालो से घर भर जाता। ऐसा अभागा काण्ड तो न होता। खुद भी जैसे कुँआरे कार्तिक महाराज हो, दल भी वैसा ही लायक तैयार हो रहा है। तुमसे कहे देती हूँ, उन्हे मैं हर्गिज न खिलाऊँगी।—जाने दो, मेरा सब बिगड जाने दो।"

कमल कुछ भी न समझ सकी, आश्चर्य से देखती रह गयी। हरेन्द्र लज्जित होकर बोला—"भाभीजी की बहुत दिनो से मुझ पर जो नालिश चल रही है, यह उसी की सजा है।" कहते हुए संक्षेप मे मामला सुलझाना चाहा। बोला—"वे बिना माँ-बाप के मेरे अनाथ छात्र हैं। मेरे पास रहकर स्कूल और कालेज मे पढते हैं। उन्ही पर इनका सारा का सारा गुस्सा उतर रहा है।"

कमल ने अत्यन्त आश्चर्य के साथ कहा—"यह बात है क्या? कहाँ, मैंने तो आज तक कभी सुना नही?"

हरेन्द्र ने कहा—"सुनने लायक इसमे कुछ नही। लेकिन वे हैं सब चरित्रवान् अच्छे लडके। उन पर मेरा स्नेह है।"

नीलिमा क्रुद्ध स्वर मे बोल उठी—"उनका प्रण है कि बडे होकर वे सब देश सेवा करेगे। अर्थात् गुरु जैसे ब्रह्मचारी वीर बनकर दिग्विजय करेगे।"

हरेन्द्र ने कहा—"चलेगी एक दिन उन्हे देखने? देखकर प्रसन्न होगी।"

कमल उसी वक्त राजी होकर बोली—"अगर आप ले जायँ तो मैं कल ही जा सकती हूँ।"

हरेन्द्र ने कहा—"नही, कल नही, और किसी दिन। हमारे आश्रम के राजेन्द्र सतीश काशी गये हैं, उन लोगो के आ जाने पर आपको ले जाऊँगा। मैं दावे के साथ कहता हूँ, उन्हे देखकर आप खुश हो जायँगी।"

अविनाश अभी-अभी आकर खड़े हुए थे। उसकी बात सुनकर वे आँखे फाडकर बोले—"कुछ अभागे आवारो का अड्डा अभी से आश्रम भी हो गया क्या? न जाने कितना पाखण्ड रचना तुझे आता है रे हरेन्द्र।"

नीलिमा नाराज हो गयी। यह तुम्हारी गदी आदत है मुखर्जी साहब! लालाजी तो तुमसे आश्रम के लिए चन्दा माँगने आये नही जो पाखण्डी कहकर गाली दे रहे हो? अपने खर्चे से पराये लडको को आदमी बनाना पाखण्ड नही है। बल्कि जो ऐसा आक्षेप करते हैं, उन्ही को पाखण्डी कहना चाहिए।"

हरेन्द्र हँसता हुआ बोला—"भाभी, अभी-अभी आप ही तो उन्हे भेड-बकरो का झुण्ड बताकर तिरस्कार कर रही थी, अब आपकी ही बात की प्रतिध्वनि करने में भाई साहब को यह पुरस्कार मिल रहा है?"

नीलिमा ने कहा—"मैं कह रही थी गुस्से मे। लेकिन उन्होने ऐसा क्या सोच कर कहा? पाखण्ड किसे कहते हैं, पहले अपने अन्दर स्पष्ट कर ले, फिर दूसरे से कहे।"

कमल ने पूछा—"आपके तो सभी लडके स्कूल-कालेज मे पढ़ते होगे?"

हरेन्द्र ने कहा—"हाँ, बाहर से तो ऐसा ही है।"

अविनाश बोल उठे—"और भीतर से क्या सब प्राणायाम और रेचक-कुम्भक की चर्चा करते हैं? उसे भी साथ-साथ क्यो नही कह देते?"

यह बात सुनकर सब हँस दिये। नीलिमा ने अनुनय के स्वर मे कमल से कहा—"मुखर्जी महाशय का आज का मिजाज देखकर उन के विषय मे कोई धारणा न बना लीजिएगा। कभी-कभी इनका दिमाग बहुत ठण्डा रहता है, नही तो बहुत पहले ही मुझे यहाँ से भागकर जान बचानी पडती।" कहकर वह हँसने लगी।

कही पर जरा कुछ उत्ताप की भाप जमती जा रही थी, इस स्निग्ध परिहास के बाद मानो वह उड गयी। इतने मे महाराज ने आकर खबर दी कि कमल का भोजन तैयार है। अतएव, वर्तमान आलोचना स्थगित रखकर सबको उठना पडा।

करीब दो घण्टे बाद भोजनादि हो चुकने पर सब आकर जब बाहर के कमरे मे बैठे, तब कमल ने पूर्व-प्रसग के सिलसिले मे पूछा—"लडके आपके रेचक-कुम्भक नही करते तो न सही, पर कालेज की पुस्तके कण्ठस्थ करने के सिवा और जो भी कुछ करते हैं सो क्या है?"

हरेन्द्र ने कहा—"करते जरूर हैं। इस बात की कोशिश मे भी वे लापरवाही नही करते जिससे कि भविष्य मे वास्तव मे आदमी बन सके। मगर जिस दिन आपके पॉवो की धूल वहाँ पडेगी, उस दिन सब बाते समझा दूँगा। आज नही।"

इस स्त्री का इतना ज्यादा सम्मान किया जा रहा था कि अविनाश का सारा बदन ईर्ष्या से जलने लगा, मगर वे चुप ही बने रहे।

नीलिमा ने कहा—"आज कहने मे आखिर अडचन क्या है, लालाजी? अपनी शिक्षा-पद्धति को इनके सामने नही खोलना चाहते तो न सही, पर यह बताने मे क्या दोष है कि प्राचीन काल के भारतीय आदर्श पर अपनी तरह सबको ब्रह्मचारी बनने की शिक्षा दे रहे हो? तुमसे तो मैंने आभास के रूप मे यही सुना था?"

हरेन्द्र ने विनय के साथ कहा—"झूठ सुना है, यह तो मैं नही कह रहा भाभीजी।" कहते-कहते उसे उस दिन की बहस की बात याद आ गयी। कमल को देखकर बोला—"आपको भी शायद मेरे काम मे सहानुभूति न होगी।"

कमल ने कहा—"काम आपका क्या है, बगैर ठीक से मालूम किये तो कुछ कहा नही जा सकता हरेन्द्र बाबू। मगर यह तो कोई युक्ति नही है कि प्राचीन काल के ढाँचे मे ढाल देना ही वास्तव मे मनुष्य बना देना है—"

हरेन्द्र ने कहा—"परन्तु वही तो हमारे भारतवर्ष का आदर्श है।"

कमल ने जवाब दिया, "पर यह किसने तय कर दिया कि भारत का आदर्श ही चिर-युग का चरम आदर्श है—बताइए?"

अविनाश अब तक कुछ बोले नही थे। अब गुस्से को दबाकर बोले—"हो सकता है कि चरम आदर्श नही भी हो, लेकिन कमल, यह हमारा पूर्वपुरुषो का आदर्श जो है। भारतवासियो का यह हमेशा का लक्ष्य है, यही उन लोगो के चलने का एकमात्र मार्ग है। हरेन्द्र के आश्रम की बात मैं नही जानता, लेकिन उसने यही लक्ष्य अगर ग्रहण किया है तो मैं उसे आशीर्वाद देता हूँ।"

कमल कुछ देर तक चुप बैठी उनके मुँह की तरफ देखती रही, फिर बोली—"मालूम नही, क्यो आदमी से यह गलती होती है। अपने सिवा मानो वे और किसी भारत-वासी को ऑखो से देखते ही नही। भारत मे और भी तो बहुत-सी जातियाँ रहती है, वे इस आदर्श को भला क्यो अपनाने चली?"

अविनाश कुपित हो उठे, बोले—"चूल्हे मे जायँ वे। मेरे पास ऐसा आवेदन निष्फल है। मैं तो सिर्फ अपना ही आदर्श अगर स्पष्टता से देख सका तो उसी को काफी समझूँगा।"

कमल ने धीरे से कहा—"यह आपकी बहुत ही गुस्से की बात है अविनाश बाबू। नही तो, आपको इतना बडा अन्धभक्त समझने की मेरी प्रवृत्ति नही होती।" फिर जरा ठहरकर कहने लगी—"मगर, क्या मालूम, शायद पुरुष सबके सब इसी तरह विचार किया करते हो। उस दिन अजित बाबू के सामने भी अकस्मात् यही प्रसग छिड गया था। भारत की सनातन विशिष्टता और उसकी स्वतन्त्रता नष्ट होने के उल्लेख मे उनका तमाम चेहरा मारे वेदना के सफेद फक पड गया था। किसी दिन वे उत्कट स्वदेशी थे—आज भी भीतर-ही-भीतर शायद वही हैं—यह बात उनके लिए सिर्फ प्रलय का दूसरा नाम है।" इतना कहकर उसने लम्बी सांस ली और चुप रह गयी। अविनाश शायद कुछ जवाब देने को थे, पर कमल उधर बिना देखे ही कहने लगी—"लेकिन मैं सोचती हूँ कि इसमे डर किस बात का है? किसी एक देश विशेष मे पैदा होने की वजह से ही उसका आचार-व्यवहार छाती से क्यो चिपटाये रहना पडेगा? चली ही गयी उसकी अपनी विशेषता, तो इसमे हर्ज किस बात का? इतनी ममता क्यो? विश्व के समस्त मानव अगर एक ही विचार, एक ही भाव, एक ही विधि-विधान की ध्वजा थामकर खडे हो जायँ, तो इसमे हानि ही क्या है? यही डर है न कि फिर भारतीय के तौर पर हम पहचाने नही जायँगे? न पहचाने जायँ, न सही। इस परिचय पर तो कोई आपत्ति नही करेगा कि विश्व की मानव-जाति मे के हम एक हैं, उसका गौरव क्या कुछ कम है?"

अविनाश को सहसा कोई जवाब ढूँढे न मिला, बोले—"कमल, तुम जो कह रही हो, खुद ही उसका अर्थ नही समझती। इससे मनुष्य का सर्वनाश हो जायगा।"

कमल ने जवाब दिया—"मनुष्य का नही होगा अविनाश बाबू, जो लोग अभिमान मे अन्धे हो रहे हैं उनके अहकार का सर्वनाश होगा।"

अविनाश ने कहा—"ये सब कोरी शिवनाथ की बाते हैं।"

कमल ने कहा—"यह तो मुझे नही मालूम कि वे भी यही बात कहते हैं।"

इस बार अविनाश अपने को सँभाल न सके। व्यग्य से चेहरे को स्याह करके बोले—"खूब मालूम है, सब बाते कण्ठस्थ कर रखी है, और जानती नही कि किसकी हैं?"

उनके इस भद्दे अशिष्ट व्यवहार का कमल ने कोई जवाब नही दिया, जवाब दिया नीलिमा ने। बोली—"बाते चाहे जिसकी भी हो मुखर्जी साहब, मास्टरी के काम मे कडी बात की धमकी देकर छात्रो का मुँह बन्द किया जा सकता है, पर उससे समस्या का हल नही होता। प्रश्न का जवाब न दे सकते हो लालाजी, तो इसमे शरमाने की कोई बात नही, पर शिष्टता को लाघ जाने मे, जरूर शरम आनी चाहिए।—एक गाडी बुलवाने भेजो किसी को भइया। तुम्हे इन्हे घर तक पहुँचा आना पडेगा। तुम ब्रह्मचारी आदमी ठहरे, तुम्हे साथ भेजने मे तो कोई डर है ही नही।" कहते हुए उसने कटाक्ष से अविनाश की तरफ देखा, और बोली—"मुखर्जी साहब का चेहरा जैसा मीठा हो उठा है, उसको देखकर अब ज्यादा देर करना ठीक नही।"

अविनाश गम्भीर होकर बोले—"अच्छी बात है, तुम लोग बैठी गप्पे करो, मैं सोने जा रहा हूँ।" और वे उठकर चल दिये।

नौकर गाडी लाने गया था। हरेन्द्र ने कमल के प्रति लक्ष्य करके कहा—"मेरे आश्रम मे मगर एक दिन आना ही होगा। उस दिन लिवाने जाऊँ तो आप 'ना' नही कर सकेगी।"

कमल ने हँसते हुए कहा—"ब्रह्मचारियो के आश्रम मे मुझे क्यो घसीट रहे हैं हरेन बाबू? मैं न गयी तो न सही।"

"नही, सो नही होगा। ब्रह्मचारी होने से हम लोग ऐसे भयानक नही, बिलकुल सीधे-साधे हैं। गेरुआ नही पहनते, जटा-वल्कल वगैरह भी कुछ नही। सर्वसाधारण के बीच मे हम उन्ही के साथ मिले हुए हैं।"

"मगर यह भी तो अच्छा नही। असाधारण होकर साधारण मे आत्मगोपन की कोशिश करना भी एक तरह का अयुक्त आचरण है। शायद अविनाश बाबू ने इसी को पाखण्ड कहा होगा। इससे तो बल्कि जटा-वल्कल, गेरुआ वगैरह कही अच्छा। उसी से आदमी के पहचानने मे सहूलियत होती है, और ठगाये जाने की भी कम सम्भावना है।"

हरेन्द्र ने कहा—"आपके साथ तर्क मे जीतना मुश्किल है,—हारना ही पडेगा। मगर वास्तव मे क्या

आप हमारी संस्था को अच्छा नही समझती? सफल होऊँ चाहे न होऊँ, इसका आदर्श तो महान् है?"

कमल ने कहा—"सो तो मैं नही कह सकती हरेन्द्र बाबू। अन्य सभी सयमो की तरह यौन-सयम मे भी सत्य है, मगर वह गौण सत्य है। धूमधाम या समारोह के साथ उसे जीवन का मुख्य सत्य बना देने से वह भी एक तरह का असयम हो जाता है। उसका दण्ड भी है। आत्म-निग्रह के उग्र दम्भ से आध्यात्मिकता क्षीण होने लगती है।—तो ठीक है, मैं आऊँगी आपके आश्रम मे एक दिन।"

हरेन्द्र ने कहा—"आना ही होगा, न आने से मैं छोड़ूँगा नही। लेकिन एक बात कहे देता हूँ, हमारे यहाँ आडम्बर नही है, पदर्शन के तौर पर हम कुछ नही करते।" कहते-कहते सहसा नीलिमा की तरफ इशारा करके बोला—"मेरी आदर्श तो ये हैं। इन्ही की तरह हम लोग स्वाभाविकता के पथिक हैं, वैधव्य का कोई बाह्य प्रकाश इनमे नही है,—बाहर से मालूम होगा कि मानो विलासिता मे ये मग्न हो रही है, मगर मैं जानता हूँ इनका दु साध्य आचार-विचार, इनका कठोर आत्म-शासन—"

कमल मौन रही। हरेन्द्र भक्ति और श्रद्धा से विगलित होकर कहने लगा—"आप भारत के अतीत युग के प्रति श्रद्धा सम्पन्न नहीं हैं, भारत का आदर्श आपको मुग्ध नही करता, परन्तु बताइए तो भला कि नारीत्व की इतनी बडी महिमा,—इतना बडा आदर्श और किस देश मे है? इस घर की ये गृहिणी हैं, भाईसाहब की मातृहीन सन्तान की ये जननी के समान हैं। इस घर की सारी जिम्मेवारी इन्ही पर है। यह सब होते हुए भी, इनका कोई स्वार्थ नही, कोई बन्धन नही। बताइए न, किस देश की विधवाएँ इस तरह पराये काम में अपने को खपा सकती हैं?"

कमल का चेहरा स्मित हास्य से विकसित हो उठा। उसने कहा—"इसमे भलाई की कौन-सी बात है हरेन बाबू? हो सकता है कि पराये घर की नि स्वार्थ गृहिणी और पराये बच्चो की नि स्वार्थ जननी होने का दृष्टान्त ससार मे और कही न हो। नही होना अद्भुत हो सकता है, मगर अद्भुत होने के कारण ही अच्छा हो जायगा, किस तरह?"

सुनकर हरेन्द्र दग रह गया, और नीलिमा मारे आश्चर्य के एकटक उसके चेहरे की तरफ देखती रह गयी। कमल ने उसी को लक्ष्य करके कहा—"वाक्यो की छटा से, विशेषणो के चातुर्य से लोग इसे चाहे जितना गौरवान्वित क्यो न कर डाले, पर गृहिणीपने के इस मिथ्या अभिनय मे सम्मान नही है। इस गौरव को छोड देना ही अच्छा है।"

हरेन्द्र ने गम्भीर वेदना के साथ कहा—"यह तो एक सुश्रृखल घर-गृहस्थी' को नष्ट करके चले जाने का उपदेश है। इस बात की आपसे कोई आशा नही रखता था।"

कमल ने कहा—"मगर घर-गृहस्थी तो इनकी अपनी है नही, होती तो ऐसा उपदेश न देती। और मजा यह कि इसी तरह से कर्म-भोग के नशे मे पुरुष हमे मतवाली बनाये रखते हैं। उनकी वाहवाही की तेज शराब पीकर हमारी आँखो पर नशा छा जाता है। सोचती हैं, यही शायद नारी-जीवन की चरम सार्थकता है। हमारे यहाँ के चाय के बगीचो के हरीश बाबू की बात याद आ गई। उनकी जब सोलह साल की छोटी बहिन का पति मर गया तब उसे घर लाकर वे अपने झुण्ड के झुण्ड बाल-बच्चे दिखाकर रोते हुए बोले—"लक्ष्मी, बहन मेरी, अब ये ही तेरे बाल-बच्चे हैं। फिकर किस बात की बहन इन्हे पाल-पोसकर आदमी बनाओ, इनकी अपनी माँ की तरह।—इस घर की सर्वे-सर्वा बनकर आज से तू सार्थक हो, यही मेरा आशीर्वाद है।' हरीश बाबू बडे भले आदमी हैं, बगीचे-भर मे सब लोग धन्य-धन्य कर उठे।—सभी ने कहा—"लक्ष्मी के भाग्य अच्छे हैं।'—अच्छे तो हैं ही। सिर्फ स्त्रियाँ ही समझ सकती हैं कि इतना बडा दुर्भाग्य,—इतनी बडी धोखेबाजी और कुछ हो ही नही सकती। मगर एक दिन जब वह विडम्बना पकडी जाती है तब प्रतिकार का समय निकल जाता है?"

हरेन्द्र ने कहा—"फिर?"

कमल ने कहा—"फिर की बात मुझे नही मालूम हरेन्द्र बाबू। लक्ष्मी की सार्थकता का अन्त मैं नही देख पायी,—उसके पहले ही वहाँ से मुझे चला आना पडा था। लेकिन बस, अब तो गाडी आ गयी है। चलिए, रास्ते मे जाते-जाते बताऊँगी। नमस्कार।" कहकर वह उसी क्षण उठकर खडी हो गयी।

नीलिमा चुपचाप नमस्कार करके खडी रही। उसकी आँखो के तारे मानो अगारे की तरह जलने लगे।

'आश्रम' शव्द कमल के सामने हरेन्द्र के मुँह से अचानक ही निकल गया था। उसे सुनकर अविनाश ने जो मजाक उडाया था वह अन्याय नही था। लोगो को यही मालूम था कि कुछ गरीब विद्यार्थी वहाँ रहकर विना खर्च के स्कूल-कालेज मे पढते हैं। वास्तव मे अपने वासस्थान को बाहरवालो के सामने इतने वडे गौरव के पद पर प्रतिष्ठित करने का सकल्प हरेन्द्र के मन मे नही था। वह विलकुल ही एक मामूली वात थी और शुरू-शुरू मे उसका श्रीगणेश भी साधारण तौर पर ही हुआ था। परन्तु इन सव चीजों का स्वभाव ही ऐसा है कि दाता की कमजोरी से अगर एक वार भी इनमें गति पैदा हो गयी तो फिर उस गति में विराम नही आता। कठोर जगली पौधे की तरह मिट्टी का सारा का सारा रस खींचकर जड से लेकर पत्तो तक व्याप्त होने मे फिर देर नही लगती। हुआ भी यही। इस विषय मे यहाँ कुछ और कह देना ठीक होगा।

हरेन्द्र के कोई भाई-वहन नही है। पिता वकालत करके धन-सचय कर गये थे। उनकी मृत्यु के वाद घर-भर मे रह गयी सिर्फ हरेन्द्र की विधवा माँ। वे भी तव परलोक सिधार गयी जवहरेन्द्र की पढाई खतम हुई। लिहाजा अपना कहने लायक घर मे कोई न रहा जो उसे व्याह करने के लिए तंग करता, अथवा स्वयं मेहनत और आयोजन करके उसके पाँवों में वेडी डाल देता। इसलिए पढाई जव खतम हो गयी तव महज कोई काम न रहने के कारण ही हरेन्द्र ने देश और देशवासियों की सेवा मे मन लगाया। काफी साधु-सगति की, वैंक मे पडी रकम का व्याज निकाल-निकालकर एक दुर्भिक्ष-निवारण समिति कायम की, वाढ-पीडितो की सहायता के लिए आचार्यदेव के दल मे शामिल हो गया, सेवक-सघ मे मिलकर लूले-लगडे, काने-वहरे, गूँगे भूखो को ला-लाकर उनकी सेवा करने लगा। इस तरह जैसे-जैसे उसका नाम जाहिर होने लगा वैसे-वैसे भले आदमियो का दल आ-आकर उससे कहने लगा—"रुपया दो, परोपकार करे।" वढती रुपये खतम होने को थे, पूँजी मे हाथ लगाये विना अव कोई चारा नही था। ऐसी अवस्था जव आ पहुँची, तव अकस्मात् एक दिन अविनाश के साथ उसकी भेंट हुई और परिचय हो गया। सम्वन्ध चाहे जितनी दूर का हो, पर उसी दिन उसे पहले-पहल पता चला कि उसकी दुनिया मे अव भी एक आदमी ऐसा है जिसे वह आत्मीय कह सकता है। अविनाश के कालेज मे तव एक अध्यापक की जगह खाली थी, कोशिश करके वे उस काम पर उसको नियुक्त करा कर अपने साथ आगरा ले गये। इस प्रान्त मे आने का यही उसका इतिहास है। पछाँह की तरफ मुसलमानी राज्य के शहरो मे पुराने जमाने के वहुत से वडे-वडे मकान अब भी कम किराये पर मिल जाया करते हैं, और उन्ही मे से एक हरेन्द्र ने ले लिया। यही उसका आश्रम है।

यहाँ आकर कई दिन उसने अविनाश के घर विताये, इसी बीच नीलिमा के साथ उसका परिचय हो गया। उस रमणी ने उसे विना जान-पहचान का आदमी समझकर एक दिन भी ओट मे रहकर नौकर-नौकरानी की मारफत आत्मीयता दिखलाने की कोशिश नही की। एकबारगी पहले ही दिन सामने निकल आयी। वोली—"तुम्हे कव क्या चाहिए लालाजी, मुझसे कहने मे शरमाना मत। मैं घर की गृहिणी नही हूँ, मगर गृहिणी-पन का सारा भार मेरे ही ऊपर है। तुम्हारे भाई साहव कहते थे—"छोटे वावू की खातिरदारी मे कमी रह गयी तो तनखा कट जायगी। सो इस गरीविनी का नुकसान मत करा देना भाई, अपनी जरूरतो से वाकिफ करते रहना।"

हरेन्द्र क्या जवाव दे, उसकी कुछ समझ मे न आया। मारे शरम के वह ऐसा सिकुड गया कि जो इन मीठी वातो को अनायास ही हँसती हुई कह गयी उसके मुँह की तरफ देख भी न सका। पर शरम दूर होने मे भी उसे दो-एक दिन से ज्यादा देर न लगी। मालूम हुआ, जैसे उसे विना दूर किये दूसरा कोई चारा ही नही। इस रमणी की जैसी स्वच्छन्द और अनाडम्बर प्रीति है वैसी ही सहज स्वाभाविक सेवा। एक तरफ जैसे यह वात उनके चेहरे-मोहरे, ओढाव-पहनाव और मधुर आलाप-आलोचना से नही मालूम हो सकती कि वे विधवा हैं, इस घर मे उनका कोई वास्तविक आश्रय नही. वे भी इस घर मे गैर हैं,—वैसे ही यह भी मालूम पडता कि उनका यही सव कुछ है जो वाहर से दीख रहा है।

उमर भी उनकी विलकुल कम हो, सो वात भी नही है। शायद तीस के लगभग पहुँच चुकी है। उस उमर के योग्य गम्भीरता उनमें खोज निकालना मुश्किल है—जैसे हल्का हँसी-खुशी का मेला हो। और मजा यह कि जरा-सा ध्यान देने से ही यह वात साफ समझी जा सकती है कि एक ऐसा अदृश्य आच्छादन

उन्हे दिन-रात घेरे रहता है जिसके भीतर प्रवेश करने का कोई रास्ता ही नही। न तो घर के नौकर-चाकर या दास-दासी ही वहाँ घुस सकते हैं और न मालिक ही।

इस घर मे, इसी आब-हवा के बीच हरेन्द्र के दो सप्ताह बीत गये। सहसा एक दिन यह सुनकर कि उसने अलग एक मकान किराये पर ले लिया है, नीलिमा ने नाराज होकर कहा—"इतनी जल्दी क्यों कर डाली लालाजी, यहाँ ऐसा कौन तुम्हे पकड रखना चाहता था?"

हरेन्द्र ने लज्जित होकर कहा—"एक दिन तो जाना ही पडता भाभीजी।"

नीलिमा ने जवाब दिया—"सो तो शायद जाना पडता। मगर देश-सेवा के नशे का रग अभी तक तुम्हारी ऑखो से गया नही लालाजी, और भी कुछ दिन भाभी की हिफाजत मे रह लेते तो अच्छा था।"

हरेन्द्र ने कहा—"सो तो रहूँगा ही भाभीजी। यही तो हूँ, यहाँ से मिनट का रास्ता है, आपकी निगाह से बचकर जाऊँगा कहाँ?"

अविनाश घर के भीतर बैठे काम कर रहे थे, वही से बोले—"जाओगे जहन्नुम मे। बहुत मना किया कि और कही मत जा रे, यही रह। मगर सो कैसे हो?—इज्जत बडी है या भाई साहब की बात बडी है? जा, नये अड्डे मे जाकर दरिद्र-नारायण की सेवा मे चढ़ा जो कुछ पास है सो।—छोटी-मालकिन, उससे कहना-सुनना व्यर्थ है। वह ठहरा मडक का सन्यासी—पीठ छिदाकर चरखी की तरह घूमे बगैर इन लोगो का जीना ही गलत है।"

नये मकान मे आकर हरेन्द्र ने नौकर, रसोइया वगैरह रखकर अत्यन्त शान्त शिष्ट निरीह मास्टरो की तरह कालेज के काम में मन लगाया। बहुत बडा मकान है, उसमे बहुत-से कमरे हैं। दो-एक कमरो के सिवा बाकी के सब यो ही खाली पड रहे। महीने भर बाद ही ये सूने कमरे उसे पीडा देने लगे। किराया देना ही पडता है और काम कुछ आते नही। लिहाजा चिट्ठी गयी राजेन्द्र के पास। वह था उनकी दुर्भिक्ष निवारिणी-समिति का मत्री। देशोद्धार के लिए विशेष आग्रह के कारण दो साल की सजा भुगतकर पॉच-छ महीने हुए छूटा था और पुराने बन्धु-बान्धवो की तलाश मे घूम रहा था। हरेन्द्र की चिट्ठी और रेल का किराया पाकर वह उसी वक्त चला आया। हरेन्द्र ने कहा—"देखूँ, अगर तुम्हारे लिए कोई नौकरी-औकरी दिला सकूँ।" राजेन्द्र ने कहा—"अच्छी बात है।" उसका परम मित्र था सतीश। वह किसी तरह हवालात से बचकर मेदिनीपुर जिले के किसी एक गाँव मे ब्रह्मचर्याश्रम खोलने की उधेड-बुन मे लगा था। राजेन्द्र का पत्र पाते ही वह एक हफ्ते के अन्दर अपने साधु-सकल्प को स्थगित रख आगरे चला आया और अकेला ही नही आया, कृपा करके गाँव से एक भक्त को भी साथ लेता आया। सतीश ने इस बात को युक्ति और शास्त्र-वचनो के बलपर बडी खूबी के साथ साबित कर दिया कि भारतवर्ष ही एकमात्र धर्म-भूमि है। मुनि-ऋषिगण ही इसके देवता हैं। हम लोग ब्रह्मचारी होना भूल गये हैं। इसी से हमारा सब कुछ चला गया है। इस देश के साथ ससार के किसी भी देश की तुलना नही हो सकती। कारण, हम ही लोग एक दिन थे जगत् के शिक्षक और हम ही लोग थे मनुष्य के गुरु। लिहाजा, वर्तमान मे भारतवासियो के लिए एकमात्र करने लायक काम है गाँव-गाँव और नगर-नगर में असख्य ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित करना। देशोद्धार करना अगर कभी सभव हुआ तो वह इसी रास्ते से सभव होगा।

उसकी बाते सुनकर हरेन्द्र मुग्ध हो गया। सतीश का नाम तो उसने सुन रखा था, परन्तु परिचय न था, इसलिए इस सौभाग्य के लिए उसने मन ही मन राजेन्द्र को धन्यवाद दिया। इसके लिए भी अपने को धन्य समझा कि पहले उसका ब्याह नही हो गया। सतीश सर्ववादि सम्मत अच्छी-अच्छी बाते जानता था और कई दिनो तक वही बाते चलती रही। हम ही लोग इस पुण्य-भूमि के मुनि-ऋषियों के वशधर हैं, हमारे ही पूर्वपुरुष एक दिन ससार के गुरु थे,—अतएव फिर एक दिन गुरु-पद के हम ही उत्तराधिकारी हो सकते हैं। कौन आर्य-रक्त से उत्पन्न पाखण्डी इस बात का विरोध कर सकता है?—नही कर सकता। और कर सकने लायक दुर्मतिसम्पन्न आदमी भी वहाँ कोई न था।

हरेन्द्र उन्मत्त-सा हो गया, परन्तु तपस्या और साधना की चीज होने के कारण आश्रम की सारी बाते यथासाध्य गुप्त रखी जाने लगी, सिर्फ राजेन्द्र और सतीश बीच-बीच मे बाहर जाकर लडके सग्रह करके ले आने लगे। जो उमर मे छोटे थे वे स्कूल मे भरती हो जाते और स्कूल की शिक्षा पूरी करके उत्तीर्ण हो जाते वे हरेन्द्र की कोशिश से किसी-न-किसी कालेज मे दाखिल करा दिये जाते। इस तरह थोडे ही समय

मे लगभग सारा मकान नाना उमर के लड़को से भर गया। बाहर के लोग विशेष कुछ जानते भी न थे और न कोई जानने की कोशिश ही करता था। उडती हुई खबर से सिर्फ इतना ही सुन लेते थे कि हरेन्द्र के घर मे रहकर कुछ गरीब बगाली लडके पढते-लिखते हैं। इससे ज्यादा अविनाश को भी मालूम न था और न नीलिमा को पता था।

सतीश के कठोर शासन मे घर मे मांस-मछली आने का कोई रास्ता न था, ब्राह्म मुहूर्त मे उठकर सबको स्तोत्र पाठ, ध्यान, प्राणायाम आदि शास्त्र-विहित प्रक्रियाएँ करनी पडती थीं, उसके बाद पढना-लिखना और नित्य-कर्म। मगर अधिकारियो का इससे भी मन नही भरा, और साधन-मार्ग क्रमश कठोरतर हो गया। रसोइया महाराज भाग खडे हुए, नौकर को बरखास्त कर दिया गया और उनका काम पारी-पारी से लडको पर आ पडा। किसी दिन एक ही तरकारी होती तो किसी दिन वह भी नही, लडको का पढना-लिखना जाता रहा,—स्कूल मे उन पर फटकार भी पडने लगी, किन्तु कठोर बँधे हुए नियमो मे शिथिलता नही आयी। सिर्फ एक विषय मे अनियम था और वह बाहर से कही निमन्त्रण आने पर। नीलिमा के किसी एक व्रत-उद्यापन के उपलक्ष्य मे इस व्यतिक्रम को हरेन्द्र ने जबरदस्ती कायम किया था। इसके सिवा और कही भी किसी विषय मे क्षमा के लिए स्थान न था। लड़के नगे पाँव रहते और बाल रूखे रखते। इस विषय मे सतीश की अत्यन्त सतर्क आँखे हरदम पहरा देने लगी कि कही किसी छिद्र-पथ से उनमे विलासिता का अनधिकार प्रवेश न हो जाय। इसी तरह आश्रम के दिन बीत रहे थे। सतीश का तो कहना ही क्या। हरेन्द्र के मन मे भी आत्म-गौरव की सीमा न रही थी। बाहर के किसी आदमी के सामने वे विशेष कोई बात प्रकट नही करते थे, परन्तु अपने अन्दर हरेन्द्र आत्म-प्रसाद और परितृप्ति के उच्छ्वसित आवेग मे अकसर यह कह दिया करते कि इनमे से एक भी लडके को अगर वे आदमी बना सके तो समझेगे कि इस जीवन की चरम सार्थकता उन्हे प्राप्त हो गयी। यह सुनकर सतीश कुछ बोलता नही, विनय मे सिर्फ अपना सिर झुका लेता।

सिर्फ एक विषय मे हरेन्द्र और सतीश दोनो को पीडा का अनुभव होता था। दोनो ही इस बात का अनुभव करते थे कि कुछ दिनो से राजेन्द्र का आचरण पहले जैसा नही रहा है। आश्रम के किसी काम मे अब वह उतनी दिलचस्पी नही लेता, सवेरे के साधन-भजन मे अब वह प्राय अनुपस्थित रहता हैं और पूछने पर कहता है कि तबीयत ठीक नही है। इस पर मजा यह है कि तबीयत खराब होने के कोई लक्षण नही दिखाई देते। क्या उसकी शिकायत है, क्यो वह ऐसा हुआ जा रहा है,—पूछने पर भी कुछ जवाब नही मिलता। किसी दिन सुबह ही उठ कर कही चला जाता है, दिन भर आता ही नही, और रात को जब घर लौटता है तब उसका चेहरा ऐसा होता है कि हरेन्द्र तक को कारण पूछने की हिम्मत नही पडती। और मजा यह कि ये सब बाते आश्रम के नियमो के सर्वथा विरुद्ध हैं। इस बात को राजेन्द्र अच्छी तरह जानता था कि एक हरेन्द्र के सिवा शाम के बाद और किसी को भी बाहर रहने का अधिकार नही है,—फिर भी उसे कोई परवाह नही। आश्रम का सेक्रेटरी था सतीश, उसी पर श्रृखला-रक्षा का भार है। इन सब अनाचारो के विरुद्ध वह हरेन्द्र से ठीक शिकायत के तौर पर तो कुछ कह सकता नही; किन्तु बीच-बीच मे आभास और इशारे से यह भाव प्रकट कर देता है कि उसे आश्रम मे रखना अब उचित नही है।—लडके बिगड सकते हैं। यह बात नही कि हरेन्द्र खुद भी न समझता हो, किन्तु मुँह खोलकर कुछ कहने की हिम्मत उसमे नही थी। एक दिन सारी रात वह लापता रहा, सवेरे जब वह घर लौटा तब उसी की बात को लेकर खूब जोर की आलोचना होने लगी; हरेन्द्र ने आश्चर्य के साथ उससे पूछा—''बात क्या है, राजेन, कल रात-भर थे कहाँ?''

उसने जरा हँसने की कोशिश करते हुए कहा—''एक पेड़ के नीचे पडा था।''

''पेड के नीचे? पेड के नीचे क्यो?''

''बहुत रात हो गयी थी। उस वक्त शोर मचा आप लोगो को जगाकर परेशान नही किया।''

''अच्छा। इतनी रात कैसे हो गयी?''

''ऐसे ही घूमते-घामते।'' कहकर वह अपने कमरे मे चला गया।

सतीश पास ही बैठा था। हरेन्द्र ने पूछा—''क्या बात है, बताओ तो?''

सतीश ने कहा—''आपकी बात टालकर चला गया। कुछ परवाह ही नही की। फिर भला मैं कैसे जान सकता हूँ?''

"वात तो ठीक है भाई, इतनी ज्यादती तो ठीक नही।"

सतीश मुँह भारी करके कुछ देर तक चुप रहा, फिर वोला—"आप एक वात तो जानते होगे कि पुलिस ने उसे दो साल जेल मे रखा था?"

हरेन्द्र ने कहा—"जानता हूँ, लेकिन वह तो झूठे सन्देह पर रक्खा था। उसका कोई अपराध नही था।"

सतीश ने कहा—"मैं सिर्फ उसका मित्र होने की वजह से ही जेल जाते-जाते वच गया था। पुलिस की दृष्टि ने उसे आज भी छुटकारा नही दिया है।"

हरेन्द्र ने कहा—"असम्भव कुछ नही।"

उत्तर मे सतीश ने जरा विषभरी हँसी हँसकर कहा—"मैं सोचता हूँ, उसके कारण कही हमारे आश्रम पर पुलिस को मोह न हो जाय।"

सुनकर हरेन्द्र चिन्तित चेहरे से चुप रहा। सतीश खुद भी कुछ देर चुप रहकर सहसा पूछ बैठा—"आपको शायद मालूम होगा कि राजेन्द्र ईश्वर का अस्तित्व तक नही मानता।"

हरेन्द्र दग रह गया, वोला—"नही तो।"

सतीश ने कहा—"मुझे मालूम है, वह नहीं मानता। आश्रम के काम-काज और विधि-निषेधों पर उसकी रचमात्र श्रद्धा नही। इसमे तो वल्कि उसकी कही नौकरी-औकरी लगा दीजिए तो अच्छा।"

हरेन्द्र के कहा—"नौकरी तो पेड का फल नही सतीश कि जव चाहूँ तव तोडकर हाथ में दे दूँ। उसके लिए काफी कोशिश करनी पडती है।"

सतीश ने कहा—"तो वही कीजिए। आप जव कि आश्रम के प्रतिष्ठाता और प्रेसिडेण्ट हैं और मैं सेक्रेटरी हूँ, तव सभी विषय आपको जताते रहना मेरा कर्तव्य है। आप उससे अत्यन्त स्नेह करते हैं और मेरा भी वह मित्र है। इसीसे उसके विरुद्ध कोई कहने की अव तक मेरी प्रवृत्ति नही हुई, मगर अव आपको सावधान कर देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।"

हरेन्द्र मन ही मन डरकर वोला—"लेकिन मैं जानता हूँ कि उसका चरित्र निर्मल है—"

सतीश ने गर्दन हिलाकर कहा—"हाँ। इस तरफ से तो उसको उसका वडे से वडा शत्रु भी दोषी नही ठहरा सकता। राजेन्द्र आजीवन कुँवारा है, लेकिन वह ब्रह्मचारी भी नही है। असल कारण यह है कि इस वात को सोचने का भी उसके पास वक्त नही कि स्त्री नाम की कोई चीज भी ससार मे है।" फिर क्षण-भर चुप रहकर वोला—"उसके चरित्र की शिकायत मैं नही करता, वह अस्वाभाविक रूप से निर्मल है, लेकिन—"

हरेन्द्र नें पूछा—"आखिर तुम्हारे 'लेकिन' का मतलव क्या?"

सतीश ने कहा—"कलकत्ते के वासे में हम दोनो एक साथ रहा करते थे। वह तव कैम्बेल कॉलेज का छात्र था और घर पर वी० एस-सी० पढ़ता था। सभी जानते थे कि वही फर्स्ट पास होगा, लेकिन परीक्षा के पहले अकस्मात् न जाने वह कहाँ चला गया—"

हरेन्द्र ने विस्मित होकर पूछा—"वह डॉक्टरी पढता था क्या? मगर मुझसे तो कहता था कि वह शिवपुर इजीनियरिग कालेज मे भरती हुआ था, पर वहाँ की पढ़ाई वडी सख्त होने से उसे भाग आना पडा।"

सतीश ने कहा—"लेकिन तलाश करें तो मालूम होगा कि कालेज में थर्ड ईयर मे वही अव्वल आया था और विना कारण चले आने के कारण वहाँ के सभी शिक्षक अत्यन्त दु खित हुए थे। उसकी वूआ धनी घर में व्याही हैं, वे ही पढ़ने का खर्च दे रही थी। इस तरह की हरकतो से नाराज होकर उन्होंने खर्च देना वन्द कर दिया, उसके वाद ही शायद आपसे उसका परिचय हुआ है। लगभग दो साल घूम-फिरकर जव वह घर पहुँचा तव उसकी वूआने उसी की राय से उसे डाक्टरी स्कूल में भरती कर दिया। क्लास मे प्रत्येक विषय में वह फर्स्ट हो रहा था, फिर भी तीन साल वाद सहसा एक दिन सव छोड-छाड अलग हो गया। यही उसमें एक ऐव है। वडा कठोर है। मैं उससे पार नही पा सकता। वहाँ से छोड-छाड कर हमारे यहाँ आकर खूँटा गाडा है। मुझसे वोला—'लड़के पढ़ाकर बी० एस-सी० पास करूँगा और कही किसी गाँव में जाकर मास्टरी करके जीवन विताऊँगा।' मैंने कहा—'अच्छी वात है, यही करो।' उसके वाद, पन्द्रह-वीस दिन पढ़ने में ऐसी मेहनत की कि न नहाने का ठीक न खाने का, आँखो की नीद तक गायव हो

गयी,–ऐसी मेहनत की कि देखकर आश्चर्य होता है। सब कहने लगे, ऐसा वगैर किये क्या कोई प्रत्येक विषय मे फर्स्ट हो सकता है?''

हरेन्द्र को पूरा हाल मालूम न था, उसने साँस रोके हुए ही कहा–''फिर?''

सतीश कहने लगा–''उसके वाद जो कुछ उसने शुरू किया वह भी अद्भुत है। किताबे तो फिर उसने छुई ही नही। न जाने कहाँ रहता है–कुछ पता ही नही। जव लौटकर आता है तव उसका चेहरा देखने से डर लगने लगता है। मानो इतने दिनो तक उसने नहाया-खाया ही न हो।''

''फिर एक दिन दलवल के साथ पुलिस आ धमकी और उसने मकान भर मे जैसे दक्ष-यज्ञ शुरू कर दिया। उसे छोडकर उसे वखेरती, उसे खोलकर इसे वन्द करती, किसी को डॉटती, किसी को रोकती, ऐसा ऊधम मचाया कि विना अपनी आँखो देखे कोई उसका अनुमान भी नही कर सकता। मेस मे रहनेवाले प्राय सभी क्लर्की का काम करते थे, मारे डरके दो जनो को तो जुकाम हो गया। सभी ने सोच लिया कि अव बचना मुश्किल है, पुलिसवाले आज सभी को पकडकर फॉसी पर लटका देगे।''

''फिर क्या हुआ?''

''फिर लगभग तीसरे पहर पुलिस राजेन को और राजेन का मित्र होने के कारण मुझे पकड ले गयी। मुझे चार दिन बाद छोड दिया पर उसका फिर कोई पता नही लगा। छोडते वक्त साहव ने मेहरबानी करके मुझे वार-वार सावधान कर दिया कि 'वन स्टेप, ऑनली वन स्टेप!–तुम्हारे घर से इस जेल का फासला सिर्फ एक कदम का रहा है!' गो।' मैं गगा स्नान करके, मॉ काली के दर्शन करके घर लौट आया। सबने कहा–''सतीश तुम वडे भाग्यवान् हो।' ऑफिस पहुँचा, साहव ने दो महीने की तनखा हाथ मे थमाकर कहा–'गो'। सुना कि इस बीच मे मेरी वहुत-कुछ तलाशी हो चुकी है।''

हरेन्द्र स्तव्ध रह गया। कुछ देर उसी तरह रहकर अन्त मे धीरे-धीरे बोला–''तो क्या तुम्हे निश्चित मालूम होता है कि राजेन–''

सतीश ने विनती के स्वर मे कहा–''मुझ से मत पूछिए। मेरा वह मित्र है।''

हरेन्द्र खुश नही हुआ। बोला–''मेरा भी तो वह भाई की तरह है।''

सतीश ने कहा–''एक बात विचार देखने की यह है कि उन लोगो ने मुझे बेकसूर पकडकर परेशान जरूर किया था, पर छोड भी दिया।''

हरेन्द्र ने कहा–''बेकसूर परेशान करने का भी तो कानून नही है। जो लोग वह कर सकते हैं, वे यह क्यो नही कर सकेगे?'' यह कहकर वह उस समय तो कालेज चला गया, परन्तु उसके मन मे अशान्ति वनी रही। सिर्फ राजेन्द्र के भविष्य की चिता करके ही नही, वल्कि इसलिए भी कि देश-सेवा के काम मे देश के लडको को आदमी बनाने का यह जो आयोजन चल रहा है, कही विना कारण नष्ट न हो जाय।। हरेन्द्र ने तय किया कि वात झूठ हो या सच, पुलिस की दृष्टि अकारण आश्रम पर आकर्षित करना हरगिज उचित नही। खासकर जव कि वह साफ-साफ यहाँ के नियम भग करता जा रहा है, तव कही नौकरी लगवाकर या और किसी बहाने उसे अन्यत्र हटा देना ही वांछनीय है।

इसके कई दिन वाद ही मुसलमानो के किसी त्योहार पर दो दिन की छुट्टी थी। सतीश काशी जाने की अनुमति लेने आया। भारत मे सर्वत्र आश्रम-के अनुरूप आदर्श पर सस्थाएँ सगठित करने की विशाल कल्पना हरेन्द्र के मन मे थी और उसी उद्देश्य को लेकर सतीश काशी जा रहा था। राजेन्द्र ने सुना तो वह भी आकर कहने लगा–''हरेन्द्र भइया, सतीश के साथ मैं भी कुछ दिनो के लिए काशी घूम आऊँ।''

हरेन्द्र ने कहा–''उसे काम है, इसीलिए जा रहा है।''

राजेन्द्र ने कहा–''मुझे काम नही है, इसी से जाना चाहता हूँ। जाने का रेलभाडा मेरे पास है।''

हरेन्द्र ने पूछा–' लेकिन वापस आने का?''

राजेन्द्र चुप रहा। हरेन्द्र ने कहा–''राजेन्द्र, कुछ दिन से तुम्हे एक बात कहना चाहता हूँ, पर कह नही पाता।''

राजेन्द्र ने जरा हँसकर कहा–''कहने की जरूरत नही हरेन्द्र भइया, मैं जानता हूँ।'' कहकर वह चला गया।

रात की गाडी से वे जानेवाले थे। घर से निकलते वक्त हरेन्द्र ने दरवाजे के पास आकर अकस्मात् उसके हाथ मे एक कागज की पुडिया थमाते हुए चुपके से कहा–''तुम वापस न आओगे तो मैं बहुत

दुःखित होऊँगा राजेन्द्र।" और इतना कहकर वह लहमे-भर मे अपने कमरे मे चला गया।

इसके दस-बारह दिन बाद दोनो ही जने लौट आये। हरेन्द्र को एकान्त मे बुलाकर सतीश ने प्रफुल्ल चेहरे से कहा—"उस दिन आपका उतना ही कहा काम कर गया हरेन्द्र भइया। काशी मे आश्रम स्थापित करने के लिए राजेन ने इन कुछ दिनो मे अमानुषिक परिश्रम किया है।"

हरेन्द्र ने कहा—"परिश्रम करता है तो वह अमानुषिक ही करता है।"

हॉ, यही किया उसने। पर उसका चौथाई हिस्सा भी अगर हमारे इस आश्रम के लिए मेहनत करे तो क्या कहने हैं!"

हरेन्द्र ने आशान्वित होकर कहा—"करेगा भई, करेगा। अबतक शायद वह ठीक बात को ध्यान मे नही ला सका। मैं निश्चय से कहता हूँ, तुम देख लेना, अबसे उसके काम की हद न रहेगी।"

सतीश ने खुद भी यह विश्वास कर लिया।

हरेन्द्र ने कहा—"तुम्हारे वापस आने की प्रतीक्षा मे एक काम स्थगित पड़ा हुआ है। जानते हो, मैंने मन-ही-मन क्या तय किया है? हमारे आश्रम का अस्तित्व और उद्देश्य छिपाये रखने से अब काम नही चल सकता। देश की और दस जनो की सहानुभूति प्राप्त करना हमारे लिए जरूरी है। इसकी विशिष्ट कार्य-पद्धति का जन-साधारण मे प्रचार करना आवश्यक है।"

सतीश ने सन्दिग्ध कण्ठ से कहा—"परन्तु उससे क्या काम मे विघ्न न आयेगा?"

हरेन्द्र ने कहा—"नही। इसी रविवार को मैंने कुछ लोगो को आमन्त्रित किया है, वे सब देखने आयेगे। ऐसा करना होगा कि आश्रम की शिक्षा, साधना, सयम और विशुद्धता के परिचय से उस दिन हम उन्हे मुग्ध कर दे सके,—तुम्हारे ही ऊपर सब दायित्व है।"

सतीश ने पूछा—"कौन-कौन आयेगे?"

हरेन्द्र ने कहा—"अजित बाबू, अविनाश दादा, भाभीजी। शिवनाथ बाबू फिलहाल यहाँ हैं नही, सुना है कि किसी काम से जयपुर गये हैं। पर उनकी स्त्री कमला का नाम सुना होगा, वे आयेगी। अगर तबीयत ठीक रही तो शायद आशु बाबू को भी पकड ला सकूँगा। जानते तो हो, ये लोग कोई ऐसे-वैसे आदमी नही हैं। इस बात का ख्याल रखना है कि उस दिन इन लोगो से हम वास्तविक श्रद्धा वसूल कर सके। इसका भार तुम्ही पर है।"

सतीश विनय से सिर हिलाता हुआ बोला—"आशीर्वाद दीजिए कि ऐसा ही हो।"

रविवार को शाम के पहले ही अभ्यागत लोग आ पहुँचे। आये नही सिर्फ आशु बाबू। हरेन्द्र दरवाजे से उन सबको सम्मान के साथ स्वागतपूर्वक भीतर ले आया। लडके उस समय आश्रम के नित्य-कार्यो मे लगे हुए थे। कोई बत्ती जला रहा था, कोई चूल्हा सुलगा रहा था, कोई पानी भर रहा था और कोई रसोई की तैयारियाँ कर रहा था। हरेन्द्र ने अविनाश के प्रति लक्ष्य करके हँसते हुए कहा—"भाई साहब, आप जिन्हे अभागे आवारों का दल कहा करते हैं, ये ही हैं वे हमारे आश्रम के लडके। हमारे यहाँ नौकर रसोइयाँ नही हैं, ये ही लोग सब काम अपने हाथो से करते हैं।—भाभीजी, चलिए हमारी भोजनशाला मे। आज हमारे यहाँ पर्व का दिन है, वहाँ का आयोजन देख आइए, एक बार चलिए।"

नीलिमा के पीछे-पीछे सब रसोई-घर के सामने जा खडे हुए। एक दस-बारह साल का लडका चूल्हा सुलगा रहा था और उसी उमर का दूसरा लडका हँसिया से आलू चीर रहा था। दोनो ने उठकर नमस्कार किया। नीलिमा ने लडको से स्नेह से सम्बोधन करते हुए पूछा—"आज तुम लोगो के यहाँ क्या-क्या रसोई बनेगी, बेटा?"

एक लडके ने प्रसन्न मुख से उत्तर दिया—"आज रविवार के दिन हमारे यहाँ आलूदम बनते हैं।

"और क्या-क्या बनता है?"

"और कुछ नही।"

नीलिमा ने व्याकुल होकर पूछा—"सिर्फ आलू दम बस? दाल, झोल या और कुछ—"

लडके ने कहा—"दाल हमारे यहाँ कल बनी थी।"

सतीश पास ही खडा था। उसने समझाते हुए कहा—"हमारे आश्रम मे एक चीज से ज्यादा बनाने का नियम नही है।"

हरेन्द्र ने हँसते हुए कहा—"होने की गुजाइश भी नही भाभीजी, होगा कहाँ से? हमारे भाई साहब इसी तरह दूसरो के आगे आश्रम का गौरव बढाया करते हैं।"

नीलिमा ने पूछा—"नौकर-चाकर भी नही होगे शायद?"

हरेन्द्र ने कहा—"नही। उन्हे रखा जायगा तो आलूदम विदा कर देना पडेगा। लडके उसे पसन्द नही करेगे।"

नीलिमा ने आगे कुछ नही पूछा। उन लडको की सूरत की तरफ देखकर उसकी आँखे डबडबा आयी। बोली—"लालाजी, और कही चलो।"

सबने इस बात के मतलब समझे। हरेन्द्र पुलकित होकर बोला—"चलिए, मैं निश्चय के साथ जानता था भाभी कि यह आपसे सहा नही जायगा।" फिर उसने कमल की तरफ देखकर कहा—"लेकिन आप तो खुद ही इसमे अभ्यस्त हैं,—सिर्फ आप ही समझेगी इस सयम की सार्थकता को। इसी से उस दिन इस ब्रह्मचर्याश्रम मे आने का विनय के साथ आपको आमत्रण दिया था।"

हरेन्द्र के गम्भीर चेहरे की तरफ देखकर कमल हँस पडी। बोली—"मेरी खुद की बात और है, लेकिन इन सब बच्चो को इतने आडम्बर के साथ इस तरह की निष्फल दरिद्रता का आचरण कराने का नाम क्या आदमी बनाना है हरेन्द्र बाबू? ये ही है शायद यहाँ के ब्रह्मचारी? इन्हे आदमी बनाना हो तो साधारण और स्वाभाविक मार्ग से बनाइए। झूठे दु:ख का बोझ सिर पर लादकर असमय मे ही इन्हे बौना या कुबडा न बना डालिए।"

कमल के शब्दो की कठोरता से हरेन्द्र तिलमिला गया, अविनाश ने कहा—"कमल को बुलाना तुम्हारा ठीक नही हुआ हरेन्द्र।"

कमल शरमा गई, बोली—"सचमुच, मुझे बुलाना किसी के लिए भी ठीक नही हुआ।"

नीलिमा ने कहा—"मगर मै उन किसी में शामिल नही हूँ कमल। मेरे घर मे कभी तुम्हारा अनादर न होगा। चलो, हम लोग ऊपर चल कर बैठें। देखे, लालाजी के आश्रम मे और क्या-क्या आतिशबाजियाँ निकलती हैं?" यह कहकर उसने अपने स्निग्ध हास्य के आवरण से कमल की लज्जा ढक दी।

दूसरी मंजिल पर काफी लम्बा-चौडा आश्रम का खास कमरा था। पुराने जमाने का नक्काशी का काम छत के नीचे और दीवारो पर अब भी मौजूद है। बैठने के लिए एक बेच और चार-पाँच कुर्सियाँ हैं, पर साधारणत उनपर कोई बैठता नही। फर्श पर एक दरी बिछी हुई है। आज खास दिन होने के कारण उस पर सफेद चादर बिछा दी गयी है और उसपर पडोसी लालाजी के यहाँ से बडे-बडे तकिये मँगाकर रख दिये हैं। बीच में उन्ही के यहाँ से लाया हुआ बेल-बूटेदार बारह डालियोवाला शमादान और एक कोने मे हरे रग के शेडसे ढकी हुई दीवारगिरी जल रही है। नीचे की अन्धकारमय और आनन्दहीन आब-हवा मे से इस कमरे मे आकर सभीलोग खुश हुए।

अविनाश ने एक तकिये का सहारा लिया और दोनो पैर सामने की ओर पसारकर सतोष की साँस लेते हुए कहा—"उफ! जान मे जान आयी।"

हरेन्द्र पुलकित होकर बोला—"हमारे आश्रम का यह कमरा कैसा है भाई साहब?"

अविनाश ने कहा—"यही तो तुमने मुश्किल मे डाल दिया हरेन्द्र। कमल मौजूद है, उसके सामने किसी चीज को अच्छा बताने की हिम्मत नही पडती—हो सकता है कि तीव्र प्रतिवाद के जोर से वह अभी साबित कर दे कि इसके छत की नक्काशी से लेकर फ़र्श तक सब कुछ बुरा है।" इतना कहकर वे कमल के मुँह की तरफ देखकर जरा हँस दिये और बोले—"इसे तो तुम भी मानोगी कि मेरे पास और कोई पूँजी भले ही न हो, पर उमर की पूँजी मैंने खूब जमा कर रखी है। उसी के बल पर तुम से एक बात कहता हूँ। मैं अस्वीकार नही करता कि सच बात बहुधा अप्रिय होती है, पर इसका यह अर्थ नही कि प्रिय बात-मात्र सत्य नही होती कमल। तुम्हे बहुत-सी बाते शिवनाथ ने सिखाई हैं, सिर्फ यही एक बात सिखाना बाकी रख छोडा है।"

कमल का चेहरा सुर्ख हो उठा, पर इसका जवाब दिया नीलिमा ने। बोली, "शिवनाथ की जो इतनी त्रुटि रह गयी है मुखर्जी साहब, हम उनपर जुरमाना करके उसका बदला लेगे, मगर गुरुगीरी मे तो कोई भी पुरुष कम नही मालूम होता। इसलिए, प्रार्थना है कि अब आप उमर की पूँजी मे से और भी दो-एक प्रिय वाक्य बाहर निकाले। हम लोग सुनकर धन्य हो।"

अविनाश भीतर से जल-भुन गये। इतने आदमियो के बीच उनका जो अपमान किया गया, केवल उसी के कारण नही, बल्कि इस वक्रोक्ति के तीरके भीतर जो तीक्ष्ण फन छिपा हुआ था, उसने विद्ध करके ही दम नही लिया, अपमान भी किया। कुछ दिनो से एक तरह के असन्तोष की गरम हवा न जाने कहाँ से आकर दोनो के बीच मे बह रही थी। वह आँधी की तरह भीषण नही थी, पर घास-तिनके, धूल-रेत उडाकर कभी-कभी दोनो की आँखो मे झोक देती थी। काम हिलते हुए दाँतो की तरह चबाने का काम तो चलता था, परन्तु चबाने के आनन्द मे दोनो वंचित थे। हरेन्द्र को लक्ष्य करके उन्होने कहा—"नाराज तो नही हो सकता हरेन्द्र, तुम्हारी भाभी ने बिलकुल झूठ नही कहा कि मुझे पहचानने मे तो अब उनके लिए कुछ बाकी नही है, उन्हे ठीक ही मालूम है कि मेरी पूँजी जो कुछ है पुराने जमाने की सीधी-सादी है, उसमे वस्तु होनेपर भी रस-रंग कुछ नही।"

हरेन्द्र ने पूछा—"इसके माने क्या भाई साहब?"

अविनाश ने कहा—"तुम सन्यासी आदमी ठहरे, माने ठीक समझोगे नही। मगर छोटी मालिकिन अचानक कमल की जैसी भक्त हो उठी हैं, उससे आशा की जाती है कि अगर वे उनके अनुभव से काम लेगी तो धन्य होने का रास्ता अपने आप साफ हो जायगा।"

इस व्यग्य की कदर्यता स्वय उन्हे अपने कानो मे भी खटकी थी, और दुर्विनयकी स्पर्धा से वे और भी कुछ कहना चाहते थे कि हरेन्द्र ने उन्हें रोक दिया। उसने व्यथित-कण्ठ से कहा—"भाई साहब आज आप सभी यहाँ के अतिथि हैं। इस बात को अगर आप लोग भूल गये कि इनको हम आश्रम की तरफ से सम्मान के साथ निमंत्रित करके लाये हैं तो फिर हमारे दुःख की सीमा न रहेगी।"

नीलिमा ने कहा—"तो फिर मेरे सम्बन्ध में कृपाकर उन्हे स्मरण करा दो लालाजी कि अगर कोई किसी को छोटी-मालकिन कहकर पुकारने लग जाय तो वह उनकी सचमुच की गृहिणी नही हो जाती। उसे उस पर शासन करने की मात्रा का भी ज्ञान रहना चाहिए। मेरी तरफ से मुखर्जी साहब के अनुभव के भण्डार मे इतना आज और जमा करा दिया जाय—भविष्य मे वह काम मे आ सकता है।"

हरेन्द्र ने हाथ जोडकर कहा, 'रक्षा कीजिए भाभी साहिबा, सारीकी सारी अनुभव-अभिज्ञता की लडाई क्या आज मेरे ही यहाँ आकर लडी जायगी? जितनी बाकी बची है, उतनी रहने दीजिए, घर जाकर पूरी कर लीजिएगा, नही तो हम लोग तो वैसे ही मारे जायेगे। जिस बात के डर से अक्षय को नही बुलाया, आखिर क्या वही बात तकदीर मे बदी है?"

सुनकर अजित और कमल दोनो ही हँस पडे। हरेन्द्र ने पूछा—"अजित बाबू, सुना है, कल आप अपने घर जायँगे?"

"पर आपने सुना किससे?"

"आशु बाबू को बुलाने गया था। उन्होने कहा कि शायद कल आप जा रहे हैं।"

अजित ने कहा—"शायद। पर कल नही, परसो। यह भी निश्चित नहीं कि घर जाऊँगा या और कही। हो सकता है कि शामतक स्टेशन पहुँच जाऊँ और उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम जिस तरफ की गाडी मिल जाय उसी पर यात्रा शुरू कर दूँ।"

हरेन्द्र ने हँसते हुए कहा-"लगभग वैरागी होने के ढगपरअर्थात् गन्तव्य स्थान का कोई निश्चयनही

अजित ने कहा—"नही।"

"लेकिन लौटने का?"

"नही, उसका भी फिलहाल कोई निश्चय नही।"

हरेन्द्र ने कहा—"अजित बाबू, आप भाग्यवान् आदमी हैं। परन्तु बोरिया-बिस्तर ढोने के लिए अगर चाहिए तो मैं एक आदमी दे सकता हूँ, परदेश के लिए ऐसा मित्र मिलना मुश्किल है।"

कमल ने कहा—"और रसोइये की जरूरत हो तो मैं भी एक ऐसा व्यक्ति दे सकती हूँ जिसकी जोडी मिलना मुश्किल है। आप भी स्वीकार करेगे कि हाँ, है तो अहकार करने लायक ही।

अविनाश को कुछ भी अच्छा नही लग रहा था, वे बोले—"हरेन्द्र, अब देर काहे की है, चलने की तयारी करो न। क्या कहते हो?"

हरेन्द्र विनय के साथ कहा—"लडको के साथ जरा परिचय न कीजिएगा? थोडा-बहुत उपदेश उन्हे न दे जाइएगा भाई साहब?"

अविनाश ने कहा—"उपदेश देने तो मैं आया नहीं, आया था सिर्फ इन लोगों का साथी बनकर। शायद उसकी भी अब जरूरत नहीं रही।"

सतीश बहुत-से लडकों के साथ ऊपर आ पहुँचा। दस-बारह वर्ष से लेकर उन्नीस-बीस वर्ष के युवक तक उसमें थे। जाड़े के दिन और बदन पर सिर्फ एक कुरता, पाँव में जूते तक नहीं—शायद इसलिए कि जीवन-धारण के लिए उनका कोई विशेष प्रयोजन नहीं। खाने-पीने की व्यवस्था पहले ही दिखा दी गई है। ब्रह्मचर्याश्रम में यह सब शिक्षा के ही अंग हैं। हरेन्द्र ने आज एक सुन्दर भाषण रट रखा था। वह मन ही मन उसी को दुहराते हुए यथोचित गाम्भीर्य के साथ बोला—"इन लडकों ने देश के काम में जीवन अर्पण कर दिया है। यही आशीर्वाद आप लोग हमें दीजिए कि आश्रम का यह महान् आदर्श भारत के नगर-नगर और गाँव-गाँव में ये प्रचार कर सकें।"

सबने मुक्त कण्ठ से आशीर्वाद दिया।

हरेन्द्र ने कहा—"अगर समय मिला तो अपना वक्तव्य मैं पीछे सुनाऊँगा।" यह कहकर उसने कमल को लक्ष्य करके कहा—"आपको ही आज खास तौर से आमन्त्रण देकर हम लोगों ने बुलाया है, कुछ सुनने की आशा से। लडके आशा लगाये हुए हैं कि आपके मुँह से आज वे ऐसी कोई बात सुनेंगे जिससे उनके जीवन का व्रत अधिकतर उज्ज्वल हो उठे।"

मारे संकोच और दुविधा के कमल सुर्ख हो उठी। बोली—"मैं तो व्याख्यान नहीं दे सकती हरेन बाबू।"

इसका उत्तर दिया सतीश ने, बोला—"व्याख्यान नहीं उपदेश चाहते हैं हम। देश के काम में जो चीज इनके सबसे ज्यादा काम में आयेगी, सिर्फ उसी के बारे में।"

कमल ने उसी से पूछा—"देश के काम से आपका तात्पर्य क्या है, पहले यह बताइए?"

सतीश ने कहा—"जिससे देश का सर्वांगीण कल्याण हो वही तो देश का काम है।'

कमल ने कहा, "मगर कल्याण की धारणा तो सबकी एक-सी होती नहीं। आपके साथ मेरी धारणा का अगर मेल न बैठा तो मेरा उपदेश आपके काम नहीं आ सकता।"

सतीश संकट में पड गया। इस बात का ठीक उत्तर उसे ढूँढे न मिला। उसका इस संकट से उद्धार करने के लिए हरेन्द्र ने कहा—"देश की मुक्ति जिससे मिले वही है, देश का एकमात्र कल्याण। देश में ऐसा कौन होगा जो इस सत्य को न मानता हो?"

कमल ने कहा—"कहने में डर लगता है हरेन बाबू कि सबके सब भडक उठेंगे। नहीं तो मैं ही कहती कि अपने आपको और दूसरों को भूलभुलैया में डालने वाला इस 'मुक्ति' शब्द के समान और कोई छल ही नहीं। किससे मुक्ति हरेन बाबू? त्रिविध दुःख से या भव-बन्धन से? बताइए कि किस देश का एकमात्र कल्याण समझकर आश्रम-प्रतिष्ठा में आप लोग नियुक्त हुए हैं? यही क्या आपकी स्वदेश-सेवा का आदर्श है?"

हरेन्द्र व्यस्त होकर बोला—"नहीं, नहीं, नहीं, यह सब नहीं, यह सब नहीं, यह कामना हमारी नहीं।"

कमल ने कहा—"तो फिर ऐसा कहिए कि यह हमारी कामना नहीं, कहिए कि हमारा आदर्श इससे भिन्न है। कहिए कि संसार-त्याग और वैराग्य-साधन हमारा लक्ष्य नहीं। हमारी साधना है संसार का सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण सौन्दर्य, सम्पूर्ण जीवन लेकर जीवित रहना? मगर उसकी शिक्षा क्या यही है? बदन पर कपडे नहीं, पाँवों में जूते नहीं, फटे-पुराने कपडे पहन रखे हैं, रूखे बाल हैं, एक वक्त अध-पेट खाकर जो लडके अस्वीकार के बीच बढ रहे हैं, प्राप्ति के आनन्द का जिनके भीतर चिन्ह तक नहीं रहा है, देश की लक्ष्मी क्या उन्हीं के हाथ अपने भण्डार की चाबी सौंप देगी? हरेन्द्र बाबू, संसार की तरफ एक बार मुँह उठाकर देखिए तो सही। जिन्हें बहुत मिला है, उन्होंने ही आसानी से दिया है। उन लोगों को ऐसी अकिंचनता का स्कूल खोलकर त्याग का ग्रेजुएट नहीं बनाया गया था।"

सतीश हतबुद्धि-सा हो गया। बोला—"क्या आप कहना चाहती हैं कि देश के मुक्ति-संग्राम में धर्म की साधना और त्याग की दीक्षा की कतई जरूरत नहीं?"

कमल ने कहा, "मुक्ति-संग्राम का अर्थ तो पहले स्पष्ट हो जाय?"

सतीश बगलें झाँकने लगा। कमल हँसती हुई बोली—"आपके भावों से मालूम होता है कि आप

विदेशी राजशक्ति के बन्धन से मुक्त होने को ही देश का मुक्ति-संग्राम कह रहे हैं। अगर यही तो सतीश बाबू तो मैं ने न तो कभी धर्म की साधना की है और न त्याग की दीक्षा ही ली है, फिर भी आपसे कहे देती हूँ कि मुझे आप सबसे आगे सामना करेवालो के दल में पाइएगा—आप लोग तब ढूँढ़े भी न मिलेंगे।"

सतीश कुछ बोला नही। वह न जाने कैसा घबड़ा-सा गया। उसकी चंचल दृष्टि का अनुसरण करती हुई कमल कुछ देर के लिए जिस व्यक्ति की ओर से आँखे न फेर सकी वह था राजेन्द्र। सतीश के सिवा किसी ने उधर लक्ष्य ही नही किया था कि कब वह चुपके से दरवाजे के पास आ खड़ा हुआ था। वह भावाच्छन्न की भाँति निष्पलक दृष्टि से अबतक कमल की ओर देख रहा था, और अब भी ठीक उसी तरह देख रहा था। उसका चेहरा एक बार देखकर फिर भूलना मुश्किल था। उमर शायद पचीस-छब्बीस के लगभग होगी, रग बिलकुल साफ गोरा, सहसा देखने में अस्वाभाविक-सा मालूम पड़ता है। ऊँचा प्रशस्त ललाट इसी उमर में बाल उड़ जाने के कारण सामने की तरफ बहुत बड़ा दिखाई देता है। आँखे गहरी और खूब छोटी-छोटी हैं जैसे अँधेरे बिल में से चूहे की आँखे चमक रही हों। नीचे का मोटा ओंठ सामने की ओर झुककर मानो अन्त करण के कठोर सकल्प को किसी तरह दबाये हुए है। सहसा देखने से ऐसा लगता है कि इस आदमी से बचकर चलना ही अच्छा है।

हरेन्द्र ने कहा—"ये ही मेरे मित्र हैं राजेन्द्र—सिर्फ मित्र ही नही बल्कि छोटे भाई जैसे। इतना कर्मठ कार्यकर्ता, इतना बड़ा स्वदेशभक्त, इतना निडर और साधुचित्त पुरुष मैंने दूसरा नही देखा। भाभीजी, इन्ही का जिक्र मैं उस रोज आपसे कर रहा था। यह जैसे हँसते-खेलते पाता है, वैसे ही हँसते-खेलते फेंक देता है। आश्चर्यजनक आदमी है। अजित बाबू, इन्ही को मैं आपके साथ दे रहा था भार वहन करने लिए।"

अजित कुछ कहना ही चाहता था कि एक लड़के ने आकर खबर दी, "अक्षय बाबू आये हैं।"

हरेन्द्र विस्मय होकर बोला—"अक्षय बाबू?"

अक्षय ने घर मे घुसते हुए कहा—"हाँ जी, हाँ—तुम्हारा, परम मित्र अक्षय कुमार!" फिर सहसा चौंककर कहा—"ऐ! आज बात क्या है? यहाँ तो सभी लोग इकट्ठे हैं! आशु बाबू के साथ कार में घूमने निकला था, सहसा ख्याल आया, हरि घोष की गोशाला तो जरा देखते जायँ। इसी से चला आया चलो, अच्छा ही हुआ।"

इन सब बातो का किसी ने जवाब नही दिया, कारण उसमें न तो कुछ जवाब देने लायक था और न उस पर किसी ने विश्वास ही किया। अक्षय का न तो यह रास्ता ही है और न उधर वह कभी आता है।

अक्षय ने कमल की तरफ देखकर कहा—"तुम्हारे यहाँ कल सवेरे ही जाने की सोच रहा था, लेकिन मकान तो मुझे मालूम नही—अच्छा ही हुआ जो भेंट हो गयी। एक शुभ सवाद है।"

कमल चुपचाप देखती रही, हरेन्द्र ने पूछा—"शुभ सवाद क्या है, सुनाओ तो सही। यह निश्चय है खबर जब शुभ है तो गोपनीय तो होगी नही।"

अक्षय ने कहा—"नही, छिपाने लायक अब रह ही क्या गया है। रास्ते मे आज उस सिलाई की मशीन बेचनेवाले कम्बख्त पारसी से भेंट हो गयी जो उस दिन कमल की तरफ से रुपये उधार लेने गया था। गाडी रोककर मामला पूछा गया।" फिर कमल की तरफ इशारा करके कहा—"आप उधार में एक मशीन खरीद कर फतुई-वतुई सीकर खर्च चला रही थी।—शिवनाथ मोज में लापता है।—मगर इकरार के मुताबिक किश्त तो वक्तपर चुकनी ही चाहिए, इसी से वह मशीन छीन ले गया। आशु बाबू ने आज उसे पूरी कीमत देकर खरीद लिया है। कमल, कल सवेरे ही आदमी भेजकर मशीन मँगा लेना। खाने-पहनने से भी तग हो, हम लोगो से तो यह बात कहनी थी?"

इसके कहने की बर्बर निष्ठुरता से सबके सब मर्माहत हुए। कमल के लावण्यहीन शीर्ण चेहरे का कारण जानकर मारे शरम के अविनाशतकका चेहरा लाल हो उठा।

कमल ने मृदु कण्ठ से कहा—"मेरी तरफ से कृतज्ञता जताकर उन्हे मशीन वापस कर देने को कह दीजिएगा। अब मुझे उसकी जरूरत नही।"

हरेन्द्र ने कहा—"अक्षय बाबू, आप चले जाइये इस घर से। आपको मैंने बुलाया नही था और न चाहा ही था कि आप यहाँ आये। फिर भी, आप चले आये। आदमी की ब्रूटेलिटी (पशुता) की क्या कहीं कोई हद ही नही?"

कमल ने सहसा मुँह उठाते ही देखा कि अजित की दोनो आँखे आँसुओ से भर आयी हैं। बोली—"अजित बाबू, क्या आपकी गाडी साथ है, कृपाकर मुझे पहुँचा दीजिएगा?"

अजित कुछ बोला नहीं। उसने सिर्फ सिर हिलाकर हाँ कर दी।

कमल ने नीलिमा से नमस्कार करके कहा—"अब शायद जल्दी भेट न होगी, मैं यहाँ से जा रही हूँ।"

पूछने का किसी को साहस नही हुआ कि कहाँ? नीलिमा ने सिर्फ उसका हाथ लेकर अपने हाथ मे दबा दिया और दूसरे क्षण कमल हरेन्द्र को नमस्कार करके अजित के पीछे-पीछे कमरे से बाहर निकल गयी।

१५

मोटर मे बैठकर कमल अन्यमनस्क-सी होकर आकाश की ओर देख रही थी। गाडी थमते ही इधर-उधर देखकर उसने पूछा—"यह कहाँ आ गये अजित बाबू, मेरे घरका रास्ता तो यह नही है?"

अजित ने उत्तर दिया—"नही, यह घरका रास्ता नही।"

"नही है? तो लौटना पडेगा शायद?"

"सो आप जाने। हुक्म करते ही लौट पडूँगा।"

सुनकर कमल आश्चर्य मे पड गयी। इस अद्भुत उत्तर के कारण उतनी नही जितनी उसके कण्ठ की अस्वाभाविकता से वह विचलित हो उठी। क्षण-भर मौन रहकर उसने अपने को दृढ किया और फिर हँसते हुए कहा, "राह भूलने का अनुरोध तो मैंने किया नही अजित बाबू, जो सशोधन का हुक्म मुझको ही देना होगा? ठीक जगह पहुँचा देने का दायित्व आपका है,—मेरा कर्तव्य है सिर्फ आप पर विश्वास किये रहना।"

"मगर दायित्व-बोध की धारणा मे अगर भूल कर बैठा होऊँ कमल, तो?"

"'मगर' के ऊपर तो कोई विचार चल नही सकता अजित बाबू। भूल के बारे मे पहले नि सशय हो जाने दो, उसके बाद इसका विचार करूँगी।"

अजिन ने अस्फुट स्वर मे कहा—"तो विचार ही कीजिए, मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" इसके बाद वह क्षण-भर स्तब्ध रहकर सहसा बोल उठा—"कमल, उस दिन की बात याद है तुम्हे? उस दिन भी ठीक ऐसा ही अन्धकार था।"

"हाँ, ऐसा ही अन्धकार था।" कहकर कमल ने गाडी का दरवाजा खोला, वह पीछे से उतरी और अजित की बगल मे सामने की सीट पर जा बैठी। सुनसान अन्धकार, रात्रि बिलकुल नीरव थी। कुछ देरतक दोनो मे से कोई कुछ बोला नही।

"अजित बाबू?"

"हूँ।"

अजित की छाती के भीतर आँधी उठ रही थी, जवाब देने मे बात उसकी मुंह की मुँह मे ही हिलग रही।

कमल ने फिर पूछा, "क्या सोच रहे हैं, बताइए न?"

अजित का कण्ठ काँपने लगा, बोला—"आशु बाबू के मकान मे उस दिन का मेरा आचरण तुम्हे याद है? उस दिन सोचा था कि तुम्हारा अतीत ही शायद तुम्हारा सबसे बडा अश है, मैं उसके साथ समझौता कैसे कर सकता हूँ? पीछे की ही छाया को सामने बढाकर मैंने तुम्हारा चेहरा ढक लिया था और इस बात को भूल गया था कि सूर्य घूमा करता है। मगर उसे जाने दो—लेकिन आज क्या सोच रहा हूँ, तुम नही समझ सकती?"

कमल ने कहा—"स्त्री होकर इसके बाद भी न समझ सकूँगी, मैं क्या इतनी निर्बोध हूँ? राह जब भूले, मैंने तो तभी समझ लिया था।"

अजित धीरे-धीरे उसके कधेपर बायाँ हाथ रखकर चुप हो रहा। कुछ देर बाद उसने कहा—"कमल, मालूम होता है, आज अब मैं अपने को संभाल नही सकूँगा?"

कमल हटकर नही बैठी। उसके आचरण में विस्मय या विह्वलता का नाम तक न था।

सहज-स्वाभाविक शात कण्ठ से बोली—"इसमे आश्चर्य की कोई बात नही अजित बाबू, ऐसा तो हुआ ही करता है। लेकिन आप तो सिर्फ पुरुष ही नही हैं, न्याय-निष्ठ शिष्ट पुरुष हैं। इसके बाद फिर मुझे कंधे से उतारिएगा कैसे? इतना छोटा काम तो आप कर नही सकेगे।"

अजित गाढे स्वर मे बोला—"ऐसी आशका तुम करती ही क्यो हो कमल कि ऐसा काम करना ही पडेगा?"

कमल हँस दी और बोली—"आशका मैं अपने लिए नही करती अजित बाबू, करती हूँ सिर्फ आपके लिए। आपसे करते बनता तो मुझे कोई डर न था, चिता इसी की है कि करते नही बनेगा। सिर्फ एक रात की गलती के बदले इतनी बडी सजा आपके सिर लाद देने में मुझे तरस आता है। अब नही, चलिए लौट चले।"

बात अजित के कान तक पहुँची, पर हृदय तक नही पहुँची। लहमे-भरमे उसकी नसो का खून पागल हो उठा,—अपनी छाती के पास जोर से उसे खीचकर मत्त कण्ठ से बोल उठा—"मुझ पर क्या तुम विश्वास नही कर सकती कमल?"

क्षण-भर के लिए कमल की साँस रुक गयी, बोली—"कर सकती हूँ।"

"तो किसलिए लौटना चाहती हो कमल? चलो, हम चले चले।"

"चलिए।"

गाडी चलाते वक्त अजित ने सहसा रुककर पूछा—"घर से साथ लेने लायक क्या तुम्हारे पास कुछ भी नही?

"नही। लेकिन आपके?"

अजित को सोचना पडा। जेब मे हाथ डालकर बोला—"रुपये-पैसे तो कुछ साथ हैं नही,—उनकी तो जरूरत पडेगी।"

कमल ने कहा—"गाडी बेच देने से रुपये आ जाएँगे।"

अजित ने आश्चर्य के साथ कहा—"गाडी बेचूँगा? मगर यह तो मेरी नही है—आशु बाबू की है।"

कमल ने कहा—"इससे क्या? आशु बाबू मारे लज्जा और घृणा के गाडी का नाम तक जबान पर न लायेगे। कोई चिता मत कीजिए—चले चलिए।"

सुनकर अजित स्तब्ध हो रहा। उसका दायाँ हाथ तब भी कमल के कधे पर था, वह खिसककर नीचे जा पडा। बहुत देर चुप रहकर वह बोला—"तुम क्या मेरा मजाक उडा रही हो?"

"नही तो, सच कह रही हूँ।"

"सच कह रही हो और सच ही समझ रही हो कि मैं गाडी चुरा सकता हूँ? यह काम तुम खुद कर सकती?"

कमल ने कहा—"सकने न सकने पर अगर आप निर्भर करते अजित बाबू, तो मैं इसका जवाब देती। परायी चीज हडप लेने की हिम्मत आप मे नही हे। चलिए, गाडी घुमाकर मुझे घर पहुँचा दीजिए।"

लौटते वक्त अजित ने धीरे से पूछा—"परायी चीज हडप लेने को क्या बहुत बडी बात समझती हो तुम?'

कमल ने कहा—"बडी -छोटी की बात नही की मैंने। यह साहस आप मे नही है, बस यही कहा है।"

"नही नही है, और उसके लिए मैं लज्जा का अनुभव भी नही करता।" यह कहकर अजित जरा रुका और फिर बोला—"बल्कि होता तो उसे मैं लज्जा की बात समझता और मेरा तो विश्वास है कि सभी शिष्ट व्यक्ति इस बात को स्वीकार करेगे।"

कमल ने कहा—"क्योंकि स्वीकार करना बहुत आसान है। उसमें वाहवाही जो मिलती है।"

"सिर्फ वाहवाही ही? उससे ज्यादा कुछ नही? शिक्षा और सस्कार नाम की क्या कोई चीज ही नही देखी तुमने कभी?"

"अगर देखी भी हो तो उसकी आलोचना अगर कभी मौका आया तो और किसी दिन करूँगी, आज नही।" और वह क्षण-भर मौन रहकर बोली—"आपके तर्क पर अगर और कोई होता तो व्यग्य से कहता कि 'कमल को हडप लेने की कोशिश मे तो शिक्षा और संस्कार को सकोच हुआ नही?' मगर मैं ऐसा नही कर सकती, क्योंकि, कमल किसी की सम्पत्ति नही है। वह सिर्फ अपनी ही है, और किसी की भी

नही।"

"किसी दिन शायद हो भी नही सकती?"

"यह तो भविष्य की वात है अजित वावू—"आज कैसे इसका जवाव दूँ?"

"जवाव शायद किसी भी दिन नही दे सकोगी। मालूम होता है, इसीलिए शिवनाथ की इतनी वडी निर्ममता भी तुम्हे नही खटकी। बहुत ही आसानी से उसे तुमने झाड फेका।" कहकर अजित ने जोर-की साँस ले ली।

मोटर के उजाले मे दिखा कि सामने कई एक वैलगाडियाँ खडी हैं। पास ही शायद गाँव है, किसान जैसी की तैसी गाडियाँ सडक पर ढील कर, वैल लेकर घर चले गये हैं।

अजित सावधानी से उस जगह को पार करके वोला—"कमल, तुम्हे समझना कठिन है।"

कमल ने हँसकर कहाँ—"कठिन कैसे? ठीक ही तो समझे थे कि राह भूलते ही मुझे भुलाकर ले जाया जा सकता है।"

"शायद वह समझना मेरी भूल थी।"

कमल ने हँसते हुए कहा—"रास्ता भूलना भूल, मुझे भुलाकर ले जाने की कोशिश भूल, और अपनी भी भूल? इतना वडा भूलका बोझा आपका दूर होगा कव? अजित वावू, अपने पर श्रद्धा रखना सीखिए। इस तरह से अपने सामने अपने को छोटा मत वनाइए।"

"मगर अपनी भूल को अस्वीकार करना ही क्या अपने पर श्रद्धा रखना है, कमल?"

"नही, सो नही। पर अस्वीकार करने की भी एक रीति है। ससार सिर्फ अपने को लेकर ही तो है नही। ऐसा होता तो फिर सब झझट ही मिट जाता। यहाँ और भी दस जनो का वास है, उनकी भी इच्छा-अनिच्छा—उनके भी काम की धारा हमारी देह से आ टकराती है। इसी से, अन्तिम फलाफल अगर मनके माफिक न हो, तो उसे भूल जानकर धिक्कार देते रहना अपना ही अपमान करना है। अपने प्रति इससे वढकर अश्रद्धा, वताइए, और क्या प्रकट की जा सकती है?"

अजित ने क्षण-भर चुप रहकर पूछा—"लेकिन जहाँ सचमुच की भूल हो? शिवनाथ के सम्वन्ध मे भी क्या तुम्हे आत्म-पश्चात्ताप नही हुआ कमल? और यही क्या मुझे तुम विश्वास करने को कहती हो?"

कमल ने इस प्रश्न का शायद ठीक से उत्तर नही दिया। वोली—"विश्वास करने न करने की गर्ज तो आपकी है। उनके विरुद्ध तो किसी के पास किसी दिन मैंने शिकायत की नही।"

"शिकायत करनेवाली तुम स्त्री नही हो। पर भूल के लिए क्या अपने आप भी कभी अपने को नही धिक्कारा?"

"नही।"

"तो इतना ही सिर्फ मैं कह सकता हूँ कि तुम अद्भुत हो, तुम असाधारण हो।"

इस मन्तव्य का कमल ने कोई जवाव नही दिया, वह चुप हो रही।

दस मिनट वीत जाने के वाद अजित सहसा पूछ बैठा—"कमल, ऐसी भूल अगर फिर भी कर बैठूँ, तो भी क्या तुमसे भेट होगी?"

" 'अगर' का जवाब तो 'अगर' से ही दिया जा सकता है अजित बावू। अनिश्चित प्रस्ताव के निश्चित समाधान की आशा नही करनी चाहिए।"

"अर्थात्, यही तुम्हारा विश्वास है कि यह मोह मेरा कलतक टिकेगा नही?"

"मुझे लगता है, ऐसा होना कमसे कम असम्भव तो नही।"

अजित मन ही मन आहत होकर वोला—"मैं और चाहे जो भी होऊँ कमल, शिवनाथ नहीं हूँ।"

कमल ने जवाव दिया—"सो मैं जानती हूँ अजित बावू, और शायद आपसे भी ज्यादा जानती हूँ।"

अजित ने कहा—"जानती होती तो यह विश्वास न कर लेती कि आज मैंने तुम्हे झूठ से वहकाना चाहा था, इसमे सत्य कुछ भी नही था।"

कमल ने कहा—"झूठ की वात तो हो नही रही अजित वावू, मोह की वात हो रही थी। ये दोनो एक चीज नही। आज मोह के वश होकर अगर आपने किसी को वहकाना चाहा हो तो वह अपने को ही

बहकाना चाहा है। मुझको बहकाना नही चाहा,—जानती हूँ।"

"पर अन्त मे ठगाई तो तुम ही जाती कमल। इसे निश्चित समझकर भी कि मेरा रात का मोह दिन के उजाले मे कट जायगा, तुमने साथ चलने से इनकार नही किया? यह क्या सिर्फ उपहास ही था?"

कमल जरा हँस दी—"जाँच कर देख क्यों नही लिया? रास्ता खुला था, एक बार भी तो मैं मना नही किया था।"

अजित जोर की एक साँस छोडकर बोला—"अगर नही किया तो मैं यही कहूँगा कि तुम्हे समझना वास्तव मे ही कठिन है। एक बात मैं तुमसे कहता हूँ कमल कि जैसे नारी का प्रेम हृदय को आच्छन्न कर देता है, वैसे ही उसके रूप का मोह भी बुद्धि को बेहोश कर डालता है। किया करे, पर इनमे से एक जितना बडा सत्य है, दूसरा उतना ही बडा असत्य है। तुम तो जानती थीं कि यह मेरा प्रेम नहीं है, सिर्फ क्षणिक मोह है। फिर कैसे तुम इसे बढ़ावा देने को तैयार हो गयी? कमल, कुहरा चाहे जितने बडे समारोह के साथ सूर्य के प्रकाश को ढक दे, फिर भी वह असत्य है। ध्रुव सत्य तो सूर्य ही है।"

कमल अन्धकार मे क्षण-भर निर्निमेष दृष्टि से उसकी तरफ देखती रही, उसके बाद शात कण्ठ से बोली—"यह तो कवि की उपमा है अजित बाबू, कोई युक्ति नही, सत्य भी नही। मालूम नही, किस आदिम काल मे कुहरे की सृष्टि हुई थी, पर आज भी वह उसी तरह मौजूद है। सूर्य को उसने बार-बार ढका है और बार-बार ढकता रहेगा। मालूम नही सूर्य ध्रुव है या नही, पर कुहरा भी असत्य प्रमाणित नही हुआ। दोनो ही नश्वर हैं,और हो सकता है कि दोनों ही नित्य हो। इसी तरह भले ही मोह क्षणिक हो, पर क्षण भी तो असत्य नही। क्षण-भर का सत्य लेकर ही वह बार-बार वापस आया करता है। मालती फूल की आयु सूर्यमुखी की तरह लम्बी नहीं, पर उसे असत्य कहकर कौन उडा सकता है? यही अगर आपकी शिकायत हो कि मैंने एक रात के मोह को बढ़ावा क्यो देना चाहा था, तो मैं पूछती हूँ कि आयुष्य-काल की लम्बाई ही क्या जीवन का इतना बडा सत्य है?"

यह जानकर भी कि ये बाते अजित समझ नही रहा है, वह कहने लगी, "आपके लिए मेरी बाते समझने का दिन अब भी नही आया। इसी से शिवनाथ के प्रति आपके क्रोध की सीमा नहीं, मगर मैंने उन्हे क्षमा कर दिया है। इसकी मुझे जरा भी शिकायत नही कि जितना उनसे मैंने पाया है उससे ज्यादा मुझे क्यो नही मिला।"

अजित ने कहा, "यानी मनको इतना निर्विकार बना डाला है! अच्छा, ससार मे किसी के विरुद्ध क्या तुम्हे कोई भी शिकायत नही?"

कमल उसके मुँह की ओर देखकर बोली, "है, सिर्फ एक के विरुद्ध।"

"किसके विरुद्ध, बताओ तो सही कमल?"

"क्या करेंगे आप परायी बात सुनकर?"

"परायी बात? कोई भी हो, फिर भी कमसे कम निश्चिन्त हो सकूँगा कि मुझपर तुम्हारा गुस्सा नही है?"

कमल ने कहा—"निश्चिन्त होने से ही क्या आप खुश हो जायँगे? पर उसके लिए अब समय नही रहा, हम लोग आ पहुँचे, गाडी रोकिए, मैं उतर जाऊँ।"

गाडी रुक गयी। अँधेरे मे सडक के किनारे कोई खडा था, पास आते ही दोनों चौंक पडे। अजित डरा हुआ बोला—"कौन?"

"मैं हूँ, राजेन्द्र। वही जिसे आज हरेन्द्र भइया के आश्रम मे देखा था।"

"अच्छा, राजेन्द्र? इतनी रात मे यहाँ कैसे?"

"आप लोगो की ही बाट देख रहा था। आप लोगो के आने के बाद ही आशु बाबू के यहाँ से आदमी आया था आपको ढूँढने।" यह कहकर वह कमल की तरफ देखने लगा।

"कमल ने कहा—"मुझे ढूँढने का कारण?"

उसने कहा—"आपने शायद सुना होगा कि चारो तरफ जोरका एन्फ्लुएंजा फैल रहा है, और बहुत-से लोग मर रहे हैं। शिवनाथ बाबू बहुत ज्यादा बीमार हैं। अचानक उन्हे मैं डोली मे लिटाकर आशु-बाबू के घर पहुँचा आया हूँ। आशु बाबू ने सोचा होगा कि आप आश्रम मे होगी, इसीसे वहाँ बुलाने भेजा था।"

"अभी क्या वक्त होगा?"

"शायद तीन बज चुके हैं।"

कमल ने हाथ बढाकर गाडी का दरवाजा खोला और कहा—"भीतर बैठिए, रास्ते मे आपको आश्रम मे उतारते चलेगे।"

अजित ने एक शब्द भी मुँह से नही निकाला। काठ के पुतले की तरह चुपचाप गाडी चलाता हुआ हरेन्द्र के घर कें सामने जाकर ठहर गया। राजेन्द्र के उतरने पर कमल ने कहा—"आपको धन्यवाद। मुझे खबर देने के लिए आज आपको बहुत कष्ट हुआ।"

"यह तो मेरा काम ही है। जरूरत होते ही खबर दीजिएगा।" कहकर वह चला गया। न कोई भूमिका, न कोई आडम्बर—सीधे-सादे शब्दो मे जता गया कि यह उसके कर्तव्य के अन्तर्गत है। आज ही शाम को हरेन्द्र के मुँह से इस लडके के विषय मे जो कुछ उसने सुना था, सब याद आ गया। एक तरफ उसकी परीक्षा पास करने की असाधारण दक्षता, और दूसरी तरफ सफलता के सामने पहुँचते ही उसे त्याग देने की उदासीनता। उमर भी कम, हाल ही यौवन मे कदम रखा है—और इसी उमर मे 'अपना' कहने को कुछ भी हाथ मे नही रखा, पराये काम मे सब बाँट दिया।

अजित तबसे चुप ही था। यह सुनने के बाद कि रात के तीन बज चुके हैं, किसी बात पर ध्यान देने लायक शक्ति उसमे नहीं थी। एक असम्बद्ध काल्पनिक प्रश्नोत्तर-माला के आघात-प्रतिघात के नीचे इस निशीथ अभियान की निरवच्छिन्न कुत्सितता से उसका अन्त.करण काला हो उठा। जहाँ तक सम्भव है, कोई भी उससे कुछ पूछेगा नही, और हो सकता है कि पूछने की हिम्मत भी किसी की न पडे, पर, सिर्फ अपनी इच्छा, अभिरुचि और विद्वेष की तूलिका से लोग अज्ञात घटना की कहानी आद्योपान्त पूरी की पूरी बना लेगे। इससे भी ज्यादा उसे व्याकुल कर रखा था इस लज्जाहीन नारी की निर्भय सत्यवादिता ने। इस दुनिया मे झूठ बोलने की इसे आवश्यकता ही नही। यह मानो सारी दुनिया को सकट में डालने और लांछित करने के लिए ही पैदा हुई है।

उधर उसे नही मालूम कि शिवनाथ की बीमारी मे कौन और कैसे-कैसे लोग आये होगे। यह कल्पना करके कि इस स्त्री से सब लोग इतनी देर होने का कारण पूछ रहे हैं, उसका खून ठण्डा हो गया। सहसा उसे खयाल आया कि वह कमल से घृणा करता है और इसी के लुब्ध आश्वासन से उसने आत्म-विस्मृत उन्मत्त की तरह क्षणभर के लिए ही सही, अपना होश खो दिया था। मन-ही-मन यह कहकर वह बार-बार अपने को अभिशाप देने लगा कि जरूर इसकी उसे सजा मिलनी चाहिए।

गेट के अन्दर घुसते ही उसकी नजर पडी खुली खिड़की के सामने खडे हुए आशु बाबू पर। शायद वे उसी की प्रतीक्षा मे उत्कण्ठित हैं। गाडी की आहट से नीचे की ओर देखकर बोले—"अजित आ गये? साथ में कौन है कमल?"

"हाँ।"

"यदु, कमल को शिवनाथ के कमरे मे ले जाओ। —सुना होगा शायद, वे बीमार हैं?" कहते-कहते वे खुद ही उतर आये, और बोले—"यह ऋतु बदलने का समय ऐसा खराब है कि अचानक चारों तरफ बीमारी शुरू हो गयी है और काफी लोग मर रहे हैं। मेरी अपनी तबीयत भी आज सवेरे से ठीक नही, हरारत सी मालूम पड़ रही है।"

कमल उद्विग्न होकर बोली—"तो आप जाग रहे हैं? यहाँ देख-रेख करनेवालो की तो कमी नही है?"

"कौन है, बताओ? डॉक्टर आकर देख-भाल गये हैं, मुझे सोने भेजकर मणि स्वयं ही बैठी जाग रही है। पर मुझे नीद ही नही आती थी और तुम्हारे आने मे देर होने लगी। कमल, पति की बीमारी के समय भी क्या अभिमान रखा जाता है? लडाई-झगडा तो होता ही रहता है, पर तुमने खबरतक नही ली कि तीन-चार दिन से कहाँ किस मकान मे वह बुखार मे पडा हुआ है? छि! यह काम अच्छा नही हुआ, अब अकेली तुम्ही को तो सब भुगतना पडेगा।"

सुनकर कमल को बडा आश्चर्य हुआ, और समझ गयी कि इस सरलचित्त व्यक्ति को भीतर की कोई भी बात मालूम नही। वह चुप रही; आशु बाबू उसके अभिमान को शात करने के अभिप्राय से कहने लगे—"हरेन्द्र बाबू के मुँह से सुना कि तुम घर पर नही हो, तभी मैं समझ गया कि अजित ने तुम्हें छोडा नही। वह खुद खूब घूमना पसन्द करता है, तुम्हे भी ले गया होगा। लेकिन सोचो तो जरा, अँधेरे में

अचानक कोई दुर्घटना हो जाती तो तुम लोग कैसी आफत मे पडते?"

अजित की छाती पर से पत्थर-सा उतर गया। आशु बाबू के लिए वह सोचने लगा—किसी बुराई की तरफ मानो उनका मन जाना ही नही चाहता; निष्कलुष अन्त करण हरदम अकलक शुभ्रता से चमका करता है। स्नेह और श्रद्धा से उसने मन-ही-मन उन्हे नमस्कार किया। लेकिन, कमल ने उनकी सब बातों पर ध्यान नही दिया, इसकी जरूरत भी नही समझी। उसने पूछा—"वे अस्पताल न जाकर यहाँ क्यों आये?"

आशु बाबू ने आश्चर्य के साथ कहा—"अस्पताल? यह देखो? अभी तक तुम्हारा गुस्सा नही गया।"

"गुस्से की बात नही कह रही आशु बाबू, जो सगत और स्वाभाविक है, वही कह रही हूँ।"

"यह स्वाभाविक नहीं है, और सगत तो है ही नही। हाँ, इतना मानता हूँ कि मणिको उचित था कि यहाँ न लाकर वह तुम्हारे पास भेज देती।"

कमल ने कहा—"नहीं, उचित नही था। मणि जानती है कि इलाज कराने की शक्ति नही है मेरी।"

इस बात से उन्हे और एक बात याद आ गयी और उससे वे अत्यन्त लज्जित से हो गये। कमल कहने लगी—"सिर्फ मनोरमा ही नही शिवनाथ बाबू भी जानते हैं कि सेवा से ही रोग नही जाता, दवा-दारू की भी जरूरत पडती है। शायद यह अच्छा ही हुआ कि खबर मेरे पास न जाकर मणि के पास पहुँची। उनकी आयु का जोर समझिए।"

आशु बाबू लज्जा से म्लान होकर सिर हिलाते हुए बार-बार कहने लगे, "यह बात नही कमल,—सेवा ही सब कुछ है। तीमारदारी सबसे बडी दवा है। नही तो, डॉक्टर-वैद्य तो महज एक उपलक्ष्य हैं।" उन्हे अपनी स्वर्गीया पत्नी की याद आ गयी, बोले—"मैं तो भुक्तभोगी हूँ कमल, बीमारी भुगतते-भुगतते मुझे इसकी शिक्षा मिल चुकी है। घर चलो, तुम्हारी चीज है, जैसा तुम ठीक समझोगी वैसा ही होगा। मेरे रहते दवा-दारू की तकलीफ नही होगी।" और उसे वे रास्ता दिखाते हुए आगे ले चले। अजित किंकर्तव्यविमूढ़ होकर, बगैर समझे ही उनके साथ हो लिया। इस डर से कि रोगी के कमरे मे शोर होने से कही उसके विश्राम मे विघ्न न हो, सबने दबे-पॉव प्रवेश किया। देखा, शय्या के पास कुरसी पर बैठी मनोरमा रात्रि-जागरण की क्लान्ति से रोगी की छाती पर अपना थका हुआ मस्तक रखकर शायद अभी-अभी सो गयी है और उसकी गरदन मे परस्पर सन्नद्ध दोनो बाँहे डाले शिवनाथ भी सो रहा है।

इस स्वप्नातीत दृश्य पर अकस्मात् जैसे ही पिता की आँखें पडी, वैसे ही उनपर मानो घनान्धकार का जाल उतर आया। क्षण-भर बाद ही वे बहाँ से भाग खडे हुए। अजित और कमल आँख उठाकर परस्पर एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे और उसके बाद जैसे आये थे वैसे ही चुपचाप बाहर चले गये।

१६

जाने आने के रास्ते के पास ही एक छायादार बरामदा है। रोगी के कमरे से निकलकर अजित और कमल वही रुक गये। एक छोटी-सी घिसे कॉच की लालटेन वहाँ झूल रही थी, जिसके अस्पष्ट प्रकाश मे स्पष्ट दीख पडा कि अजित का चेहरा सफेद फक पड गया है, अकस्मात् धक्का खाकर मानो सारा खून कही हट गया है। तीसरा कोई व्यक्ति वहाँ नही था फिर भी अजित ने एक अनात्मीया शिष्ट महिला के योग्य सम्मान दिखाते हुए कमल से पूछा, "आप क्या अभी घर लौट जाना चाहती हैं? अगर जाना चाहे तो मैं उसका इन्तजाम कर सकता हूँ।"

कमल उसके मुँह की तरफ देखकर चुप रह गयी। अजित ने कहा—"इस मकान मे अब तो आपका एक क्षण भी रहना ठीक न होगा।"

"और आपका रहना ठीक होगा?"

"नही, मेरा रहना भी नही। कल सबेरे ही मैं और कही चला जाऊँगा।"

कमल ने कहा—"यही अच्छा है। मैं भी तभी जाऊँगी। फिलहाल, इस कुरसी पर बैठकर रात बिता दूँगी, आप जाकर आराम करे।"

छोटी कुरसी की तरफ देखकर अजित बगले झाकने लगा, बोला, "लेकिन—"

कमल ने कहा—" 'लेकिन' रहने दीजिए अजित बाबू, उसमे बडा झझट है। इस वक्त न घर जाना

ही सम्भव है और न आपके कमरे मे। आप जाइए, देर न कीजिए।"

सवेरे वेहरा आकर अजित को आशु बाबू के सोने के कमरे मे बुला ले गया। अबतक वे खाट से उठे भी न थे। पास ही एक कुरसी पर कमल वैठी थी, उसे पहले ही बुला लिया गया था।

आशु बाबू ने कहा—"तवीयत कल से ही ठीक नहीं थी। आज मालूम होता है मानो—अच्छा बैठो अजित।"

उसके बैठने पर वे कहने लगे—"मैंने सुना कि आज सवेरे ही तुम जा रहे हो, पर तुम्हे रहने के लिए भी मैं नही कहता। ठीक है,—गुड बाइ। भविष्य में शायद कभी भेट न हो, पर यह निश्चय समझो कि मैंने तुम्हे सर्वान्त करण से आशीर्वाद दिया है कि हम लोगो को क्षमा करके तुम जीवन में सुखी हो सको।"

अजित ने अवतक उनके मुँह की तरफ देखा नही था, अब जवाब देने के लिए मुँह उठाते ही उससे कुछ कहते नही बना। वल्कि यो कहना चाहिए कि अकस्मात् मानो वह अपनी बात को भूल गया। इस बात की कल्पना भी न कर सका कि एक रात के कुछ ही घण्टो मे किसी में इतना जबरदस्त परिवर्तन हो सकता है।

आशु बाबू खुद भी दो-तीन मिनट मौन रहकर कमल से कहने लगे, "तुम्हे बुलवा तो लिया, पर तुम्हारी आँखों मे आँखे मिलाने मे मेरा सिर नीचा हुआ जा रहा है। सारी रात मेरे मन मे क्या-क्या होता रहा है—क्या-क्या सोचता रहा हूँ सो मैं किससे कहूँ?"

फिर जरा ठहरकर बोले—"अक्षय ने एक दिन कहा था कि शिवनाथ शायद तुम्हारे यहाँ अकसर नही रहते। उस बात पर मैंने ध्यान नही दिया था, सोचा था कि वह शायद उसकी अत्युक्ति है—उसके विद्वेष की ज्यादती है तुम रुपयो की कमी के कारण सकट मे थी, तब उसका कारण मैं नही समझा था, मगर आज सब-कुछ स्पष्ट हो गया है—कही भी कोई सदेह नही रहा।"

दोनो ही चुप हो रहे। थोडी देर बाद आशु बाबू कहने लगे—"तुम्हारे साथ मैं कई बार अच्छा व्यवहार नही कर सका, पर उस दिन प्रथम परिचय के दिन से ही मैं तुम पर स्नेह करने लगा था कमल। इसी से आज बार-बार ख्याल आ रहा है कि आगरा न आता तो अच्छा था।"

कहते-कहते उनकी आँखो मे आँसू आ गये, उन्हे हाथ से पोछते हुए वे बोले—"जगदीश्वर!"

कमल उठकर उनके सिरहाने जा बैठी और माथेपर हाथ रखकर बोली—"आपको तो बुखार है आशु बाबू!"

आशु बाबू ने उसका हाथ अपने हाथ मे लेकर कहा—"रहने दो कमल, मैं जानता हूँ, तुम अत्यन्त बुद्धिमती हो। मेरा कोई एक किनारा तुम कर दो। इस घर मे उस आदमी का अस्तित्व मेरे सारे शरीर मे आग-सी लगाये दे रहा है।"

कमल ने अजित की ओर देखा—वह नीचे को सिर झुकाये बैठा है। उसकी तरफ से कोई इशारा न पाकर वह क्षणभर मौन रही, फिर बोली—"मुझे आप क्या करने को कहते हैं? कहिए।" परन्तु कोई जवाब न पाकर वह क्षणभर चुप बैठी रही, फिर बोली—"शिवनाथ बाबू को आप यहाँ रखना नही चाहते, पर वे बीमार हैं। इस हालत मे या तो उन्हे अस्पताल भेज दीजिए या फिर उनके घर। और अगर आप समझते हैं कि मेरे घर भेजने से ठीक रहेगा तो वहाँ भेज सकते हैं, मुझे कोई आपत्ति नही, मैं जी-जान से सिर्फ सेवा ही कर सकती हूँ, उससे ज्यादा कुछ नही।"

आशु बाबू कृतज्ञता से भर उठे, बोले—"कमल, मालूम नही क्यो, पर ऐसे ही उत्तर की मैंने तुमसे आशा की थी। यह मैं जानता था कि पाखण्डी को जवाब देने मे तुम खुद पत्थर न हो सकोगी। तुम अपनी चीज अपने घर ले जाओ, इलाज के खर्चे की तुम फिकर मत करो, इसका भार मेरे ऊपर रहा।"

कमल ने कहा—"पर इस विषय मे एक बात पहले से ही स्पष्ट हो जानी चाहिए।"

आशु बाबू चटसे कह उठे—"तुम्हे कहने की जरूरत नही कमल, मैं जानता हूँ। एक-न-एक दिन सारी गदगी दूर हो जायगी। तुम कोई चिता मत करो, मेरे जीते जी इतना बड़ा अन्याय अत्याचार तुम पर मैं नही होने दूँगा।"

कमल उनके मुँह की तरफ देखती हुई स्थिर बैठी रही, कुछ बोली नही।

"क्या सोच रही हो कमल?"

"सोच रही थी कि आप से कहने की जरूरत है या नही। पर मालूम होता है कि जरूरत है, नही तो

कुछ भी स्पष्ट न होगा, उलझन बढ़ती ही जायगी। आपके पास रुपया है, हृदय हे, दूसरो के लिए खर्च करना आपके लिए कोई मुश्किल नही, लेकिन यह भ्रम अगर आपके अन्दर हो कि इस तरह आप मुझ पर दया कर रहे हैं, तो वह दूर हो जाना चाहिए। किसी भी बहाने में आपकी दी हुई भीख नही लूँगी।"

आशु बाबू को सिलाई की मशीन की बात याद आ गयी, वे व्यथित होकर बोले—"मुझसे गलती अगर कभी हो भी गयी हो, तो क्या उसके लिए क्षमा नही कर सकती?"

कमल ने कहा—"गलती शायद इतनी तब नही की जितनी कि आप अब करने जा रहे हैं। आप सोचते होंगे कि शिवनाथ बाबू को बचाना प्रकारान्तर मे मुझको ही बचाना है,—मुझपर ही अनुग्रह करना है। मगर असल मे बात ऐसी नही। इसके बाद आपकी जो इच्छा हो, कर सकते हैं, मुझे कोई आपत्ति नही।"

आशु बाबू ने सिर हिलाते हुए कहा—"ऐसा ही गुस्सा आता है कमल, यह कोई अस्वाभाविक बात नही और न अन्याय ही है। अच्छी बात है, मैं शिवनाथ को ही बचाना चाहता हूँ, तुमपर अनुग्रह नही करता। अब तो ठीक है न?"

कमल के चेहरे पर विरक्ति का भाव दिखाई दिया। उसने कहा—"नही, यह ठीक नही। आपको जब कि मैं समझा नही सकती तो फिर कोई उपाय नही। उन्हे आप अस्पताल नही भेजना चाहते, तो हरेन्द्र बाबू के आश्रम मे भेज दीजिए। वे बहुतो की सेवा किया करते हैं, इनकी भी करेगे। आपको जो कुछ खर्च करना हो, वही कीजिएगा। मैं खुद भी बहुत ज्यादा थक गयी हूँ, अब चलती हूँ।" इतना कहकर वह सचमुच ही जाने को तैयार हो गयी।

उसकी बात और आचरण से आशु बाबू मन ही मन क्रुद्ध हो उठे बोले—"यह तुम्हारी ज्यादती है कमल। तुम्हारे दोनो के कल्याण के लिए जो कुछ मैं करने जा रहा हूँ, उसे तुम अकारण विकृत करके देख रही हो। एक ओर तो मेरे लिए लज्जा की सीमा नही,—और मैं जानता हूँ कि इस कदाचार को अकुर से नष्ट किये बिना मेरी असीम ग्लानि बनी ही रहेगी,—दूसरी ओर यह भी सच नही कि मेरी लडकी का इससे सम्बन्ध है, इसीलिए मैं किसी तरह बच निकलने का रास्ता देख रहा हूँ। शिवनाथ को मैं बहुत तरह से बचा सकता हूँ, मगर सिर्फ इतना ही मैं नही चाहता। मैं चाहता हूँ कि ऐसे सकट के दिनो मे तुम सर्वान्त करण से उसकी सेवा करके उसे फिरसे पूर्ववत् पा जाओ। इसीलिए मेरा यह प्रस्ताव है। —सिर्फ अपने स्वार्थवश ही मैं ऐसा नही कह रहा हूँ।"

बाते सब सच थी, सकरुण और आन्तरिकता से पूर्ण। मगर कमल के मनपर कोई असर नही पडा। उसने कहा—"ठीक यही बात मैं आपको समझाना चाहती थी आशु बाबू। सेवा करने से मैं इनकार नही करती। चाय के बगीचे मे रहते हुए मैंने बहुतो की सेवा की है, इसका मुझे अभ्यास है। लेकिन मैं उन्हे फिर से पाना नही चाहती, न सेवा करके, और न बिना सेवा किये। यह मेरी अभिमान की आग नही, और न झूठा दर्प ही है,—असल मे हम दोनो का सम्बन्ध टूट गया है; उसे मैं जोड़ नही सकती।"

जो कुछ उसने कहा, उसमे न तो किसी तरह की गरमी थी न उच्छ्वास,—बिलकुल सीधी-सादी बात थी। परन्तु इसी ने आशु बाबू को दग कर दिया। क्षण-भर बाद उन्होने कहा—"यह कैसी बात कह रही हो कमल? इस मामूली-सी बात पर पति को त्याग देना चाहती हो? यह शिक्षा तुम्हें किसने दी?"

कमल चुप रही। आशु बाबू कहने लगे—"बचपन मे यह शिक्षा तुम्हे चाहे जिसने भी दी हो, उसने गलत शिक्षा दी है, यह अन्याय है, असगत है,—यह भारी अपराध है। चाहे किसी भी घर मे तुम पैदा हो, तुम भारतीय कन्या हो। यह मार्ग तुम्हारा-हमारा नही है,—इसे तुम्हे भूलना ही होगा। जानती हो कमल, एक देश का धर्म दूसरे देश के लिए अधर्म है। और 'स्व-धर्म मे मृत्यु भी श्रेय' है।" कहते-कहते उनकी आँखे चमक उठी। और बात खतम करके वे हाँफने लगे। परन्तु जिसे लक्ष्य करके ये बाते कही गयी वह रच-मात्र भी विचलित नही हुई।

आशु बाबू कहने लगे—"यह मोह ही एक दिन हमें रसातल की ओर खीचे लिये जा रहा था। पर भ्रान्ति पकडायी दे गयी कुछ मनीषियो की दृष्टि में। देशवासियो को बुलाकर बार-बार वे सिर्फ एक ही बात कहने लगे—"तुम लोग उन्मत्त की तरह जा कहाँ रहे हो? तुम्हे किसी बात की कमी नही, दीनता नही, किसी के आगे हाथ पसारने की जरूरत नही, सिर्फ एक बार घर की तरफ मुडकर देखो। पूर्वपुरुष तुम्हारे लिए सब-कुछ छोड गये हैं, सिर्फ एक बार हाथ बढाकर उठा भर लो। विलायत का तो सभी कुछ मैं

अपनी आँखो से देख आया हूँ, अब सोचता हूँ कि ठीक समय पर ऐसी सावधान-वाणी अगर वे नहीं घोषित कर गये होते, तो आज देश की क्या दशा होती? बचपन की सभी बाते याद हैं,—उफ्—शिक्षित लोगो की तब कैसी दशा थी!" इतना कहकर उन्होने स्वर्गीय मनीषियो को लक्ष्य करके हाथ जोडकर नमस्कार किया।

कमल ने मुँह उठाकर देखा कि अजित मुग्ध दृष्टि से आशु बाबू की ओर देख रहा है। कल्पना के आवेश मे मानो उसे होश ही नही रहा, ऐसी हालत थी।

आशु बाबू का भावावेश अबतक दबा नही था। कहने लगे—"कमल, और कुछ भी अगर वे न कर जाते, तो भी, सिर्फ इतने के ही कारण देशवसियो के हृदय मे वे प्रात.स्मरणीय बने रहते।"

"क्या सिर्फ इतनी ही बात के लिए वे प्रात.स्मरणीय हैं?"

"हॉं, सिर्फ इतनी ही बात के लिए। बाहर से हटाकर सिर्फ घर की तरफ आँख उठाकर देखने को कहा था, इसी के लिए।"

कमल ने पूछा—"बाहर अगर प्रकाश हो रहा हो और पूर्व-आकाश मे अगर सूर्योदय हो रहा हो, तो भी पीछे मुडकर पश्चिम के स्वदेश की ओर देखना पडेगा? और वही होगा स्वदेश-प्रेम?"

मगर यह प्रश्न शायद आशु बाबू के कानो तक नही पहुँचा, वे अपनी ही झोक मे कहते गये—"हमारे देश का धर्म, देश के पुराण-इतिहास, देश का आचार-व्यवहार, रीति-नीति विदेश के दबाव से लुप्त होने जा रही थी, उसके प्रति हमारे अन्दर जो आज फिर से श्रद्धा और विश्वास वापस आया है, सो सिर्फ उन्ही की भविष्य-दृष्टि का फल है। जाति के हिसाब से हम ध्वस की ओर बढ़ते चले जा रहे थे, उससे बच जाना क्या मामूली बचना है कमल? यह ज्ञान हमे किसने दिया कि उसे फिरसे सब प्राप्त किये बगैर किसी भी तरह हम बच नही सकते,—बताओ तो?"

अजित उत्तेजिना के मारे अकस्मात् उठ खडा हुआ, बोला, "मैंने कभी इसकी कल्पना भी नही की थी कि इन सब बातो का विचार भी आपके मन मे कभी स्थान पा सकता है। मुझे बडा भारी दु ख है कि अबतक मैंने आपको पहचाना नही, आपके चरणो मे बैठकर कभी उपदेश ग्रहण नहीं किया।" वह और भी बहुत-कुछ कहने जा रहा था, पर बीच मे विघ्न आ पडा। नौकर ने आकर खबर दी कि हरेन्द्र बाबू वगैरह भेट करने आ रहे हैं; और दूसरे ही क्षण हरेन्द्र, सतीश और राजेन्द्र के साथ आ पहुँचा। कहा—"मालूम हुआ कि शिवनाथ बाबू सो रहे हैं। आते वक्त डॉक्टर के यहाँ भी होता आया हूँ। उनका कहना है कि सीरीयस (खतरनाक) नही, जल्दी आराम हो जायगा।" कहते हुए उसने कमल को नमस्कार किया और अपने साथियो के साथ एक तरफ बैठ गया।

आशु बाबू ने सिर हिलाया, पर उनकी दृष्टि थी अजित की तरफ, और उसी को लक्ष्य करके वे बोले—"मेरा सारा यौवन विलास मे बीता है, इस बात को तुम लोग भूल क्यो जाते हो? ऐसी बहुत-सी चीजे हैं जो नजदीक से नही दिखाई देती, दूर जाकर खडे होने से ही दिखाई देती हैं। मैंने जो स्पष्ट देखा है वह है शिक्षित मानस का परिवर्तन। इन्ही हरेन्द्र के आश्रम को ही देखो न, इनका जो नगर-नगर मे शाखा-प्रशाखाएँ विस्तार करने का आयोजन है, उसके मूल मे क्या वही भावना नही है? विश्वास न हो, इन्ही से पूछ देखो। वही ब्रह्मचर्य, वही सयम की साधना, वही पुरानी रीति-नीति का पुन. प्रवर्तन—यह सब हमारे उस अतीत काल की पुन प्रतिष्ठा का उद्यम नही तो और क्या है? उसी को अगर हम भूल जायँ, उसी के प्रति अगर हम अपनी आस्था खो बैठे तो फिर आशा करने के लिए हमारे पास बाकी ही क्या रह जाता है? तपोवन का आदर्श सिर्फ हमारे ही यहाँ था। ससार छान डालने पर भी क्या उसका जोड कही मिल सकता है अजित? किसी जमाने मे जिन लोगो ने हमारे समाज का निर्माण किया था, हमारे वे शास्त्रकार व्यवसायी नहीं थे; सन्यासी थे, उनके दान कों बिना किसी संशय के नममस्तक होकर ग्रहण करने मे ही हमारी चरम सार्थकता है;— यही हमारे कल्याण का मार्ग है कमल, इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं।"

अजित स्तब्ध हो रहा। सतीश और हरेन्द्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा,—यह साहबी चाल-चलन का आदमी आज कह क्या रहा है! राजेन्द्र तो समझ ही न पाया कि अकस्मात् क्यों और कैसे यह प्रसंग छिड गया। सभी के मुँहपर एक निष्कपट श्रद्धा का भाव प्रस्फुटित हो उठा।

स्वय वक्ता को भी कम आश्चर्य नही हुआ। सिर्फ कहने की शक्ति के लिए ही नही, बल्कि इसलिए कि इस तरह किसी से कहने का उन्हे पहले कभी मौका ही नही मिला,—उनके मन मे एक तरह की अनिर्वचनीय तृप्ति की लहर दौडने लगी। क्षण-भर के लिए वे क्षण-भर पहले का दुःख भूल गये।

बोले—"समझी कमल, क्यों मैं तुम से ऐसा अनुरोध कर रहा था?'

कमल ने सिर हिलाकर कहा—"नही।"

"नही? नही क्यो?"

कमल ने कहा—"सिर्फ यही एक समाचार आप परमानन्द के साथ सुना रहे थे कि विदेशी शिक्षा के प्रभाव को दूर कर फिर पुरानी व्यवस्था की ओर लौटने की चेष्टा शिक्षितो मे प्रचलित होती जा रही है। आपकी धारणा है कि इससे देश का कल्याण होगा परन्तु कारण आपने कुछ भी नही बतलाया। बहुत-सी प्राचीन नीतियाँ लुप्त होती जा रही थी, हो सकता है कि यह सच हो कि उनके पुनरुद्धार का उद्योग हो रहा है, मगर भला इसका प्रमाण क्या है आशु बाबू कि उससे हमारा भला ही होगा? कहाँ, यह तो आपने बताया ही नही?"

"बताया कैसे नही?"

"नही, नही बताया। जो कुछ आप कह रहे थे, वह तो सभी सुधार-विरोधी और प्राचीनता के अन्धस्तुतिकार कहा करते हैं। इसका कोई भी प्रमाण नही कि सभी लुप्त वस्तुओ का पुनरुद्धार अच्छा ही होगा। मोह के नशे मे बुरी चीजो का पुनरुद्धार भी ससार मे होते देखा जाता है।"

आशु बाबू को इसका जवाब ढूँढे न मिला, परन्तु अजित ने कहा—"बुरी चीज का उद्धार करने मे कोई शक्ति का क्षय नही करता।"

कमल ने कहा—"बहुत लोग करते हैं। बुरी के लिए नही, बल्कि पुरानी वस्तु-मात्रको स्वत सिद्ध अच्छी चीज समझकर करते हैं। एक बात आप से पहले ही कहना चाहती थी, पर आपने ध्यान नही दिया। चाहे लौकिक आचार-अनुष्ठान हो और चाहे पारलौकिक धर्म-कर्म, अपने देश की चीज समझकर उसे गले लगाये रहने मे स्वदेश-भक्ति की वाहवाही तो मिल सकती है, पर स्वदेश के कल्याण के देवता उससे खुश नही किये जा सकते। बल्कि वे इससे नाराज ही होते हैं।"

आशु बाबू दग रह गये। बोले—"तुम कह क्या रही हो कमल? अपने देश का धर्म, अपने देश का आचार-अनुष्ठान त्यागकर यदि हम बाहर से भीख माँगने लगे तो फिर अपना कहने को हमारे पास बाकी ही क्या रह जायगा? फिर हम ससार मे मनुष्यत्व का दावा करने के लिए अपना क्या परिचय देगे?"

कमल ने कहा—"दावा खुद हमारे घर आ जायगा, परिचय की जरूरत न होगी। फिर विश्व-जगत् हमे बिना परिचय ही जान जायगा।"

आशु बाबू व्याकुल होकर बोले—"तुम्हे तो मैं समझ ही न सका कमल।"

"समझने की बात भी नही आशु बाबू, ऐसा ही होता है। इस चलनशील ससार मे प्रगतिशील मानव-चित्त को कदम-कदम पर जो सत्य नित्य नये-नये रूप मे दिखाई देता है, उसे सभी नही पहचान सकते। सोचते हैं, यह आफत कहाँ से आ गयी? आपको उस दिन की ताजमहल की छाया के नीचे खडी शिवानी की याद है? आज कमल के भीतर उसे पहचाना भी नही जा सकता। मन-ही-मन कहेगे, जिसे उस दिन देखा था वह गयी कहाँ? किन्तु यही मनुष्य का सच्चा परिचय है,—मैं तो यही चाहती हूँ कि हमेशा इसी भाव से लोगों मे परिचित हो सकूँ।"

जरा ठहरकर फिर बोली—"पर तर्क-वितर्क की आँधी मे हमारी असल बात तो उड ही गयी—मूल विषय से हम बहुत दूर जा पडे हैं। लेकिन मैं बहुत थकी हुई हूँ, अब जाती हूँ।"

आशु बाबू से कुछ जवाब देते न बना, विह्वल की भाँति देखते रह गये। इस स्त्री को कही उन्होने अस्पष्ट समझा और कही बिलकुल ही नही समझ पाया। उन्हे ऐसा लगने लगा कि अभी-अभी उसने जिस आँधी का जिक्र किया था, उसकी प्रचण्ड झझा मे तिनके की तरह उनका सब तरह का आवेदन-निवेदन उडकर कही का कही चला गया।

कमल उठ खडी हुई। अजित को इशारे से बुलाकर बोली—"साथ लाये थे, अब चलिए न पहुँचा दीजिए।"

मगर आज वह मारे सकोच के सिर भी न उठा सका। कमल मन-ही-मन जरा हँसकर आगे बढ़ी और सहसा राजेन्द्र के कधे पर हाथ रखकर बोली—"राजेन्द्र बाबू, तुम चलो न भाई, मुझे पहुँचा आओ।"

इस आकस्मिक भाई के सम्बोधन से राजेन्द्र ने विस्मित होकर एक बार उसकी तरफ देखा और

उसके बाद कहा—"चलिए।"

दरवाजे के पास जाकर कमल सहसा खड़ी हो गयी, बोली—"आशु बाबू, अपना प्रस्ताव मैंने वापस नहीं लिया है। उसी शर्त पर इच्छा हो तो भेज दीजिएगा, मैं यथासाध्य कोशिश कर देखूँगी। बच जायें तो अच्छा ही है, न बचें तो उनका भाग्य।" इतना कहकर वह चली गयी। सबके सब स्तब्ध होकर बैठे रहे। अस्वस्थ आशु बाबू की आँखो के आगे प्रभात का प्रकाश भी विवर्ण और विस्वाद हो उठा।

आधे रास्ते मे राजेन्द्र ने विदा ले ली और कहा—"मैं घण्टे-भर मे अपना एक काम निबटाकर वापस आता हूँ।" कमल ने अन्यमनस्कता के कारण ही शायद कोई आपत्ति नही की, या हो सकता है कि और कोई वजह हो। जल्दी-जल्दी घर पहुँचकर उसने देखा कि सीढीवाले दरवाजे मे ताला बन्द है, घर खोला नही गया है। रास्ते के उस तरफ मोदी की दूकान मे तलाश करने पर मालूम हुआ कि नौकरानी बीमार पड गयी है, काम करने नही आयी और उसकी छोटी नातिन सवेरे आकर घर की चाबी रख गयी है।

घर खोलकर कमल घर के काम-धधे मे लग गयी। एक तरह से कल से ही वह बगैर-खाये थी, उसने तय किया था कि झटपट किसी तरह कुछ बना-खाकर आराम करेगी, आराम करने की उसे सख्त जरूरत भी थी, पर घरका काम इतना पडा था कि वह खतम ही नही होता था। चारो तरफ इतना कूडा-करकट जमा हो रहा था कि उसे देखकर वह हैरान हो गयी।—इतनी विश्रृंखला मे उसके दिन कट रहे थे कि इधर उसका ध्यान ही नहीं गया था। आज जिस किसी चीज पर भी उसकी नजर पडी, वही मानो उसका तिरस्कार करने लगी। छत के नीचे से पुराना चूना झडकर खाट पर आ पडा है, उसे साफ करना जरूरी है, चिडियो के घोसलो का बचा हुआ मसाला बिछौने पर पडा है, उसे भी साफ करना है, चादर बदलनी है; तकिये के खोल बहुत मैले हो गये हैं, उन्हे भी बदलना है, टेबुल-कुरसी स्थान भ्रष्ट हो रही हैं, दरवाजे पर पडे पावपोश पर मिट्टी जमी हुई है; आईने की ऐसी हालत है कि साफ करते-करते शाम हो जायगी, दावात की स्याही सूख गयी है, कलम का पता ही नही, पैड का ब्लॉटिंग पेपर लापता है,—इस तरह जिधर आँख उठाकर देखा, उधर ही ऐसी गदगी मालूम हुई कि उसे खुद ही लगा कि इतने दिनो से यहाँ कोई आदमी रहता है या और कोई? नहाना-खाना यो ही पडा रहा, किधर से कैसे और कब दिन बीत गया,—कुछ मालूम ही नही पड़ा। सब काम निबटाकर जब वह नीचे से नहा-धोकर ऊपर आयी तब शाम हो चुकी थी। इतने दिनो से वह निश्चित समझ रही थी कि यहाँ उसे नही रहना है। रहना सम्भव भी नही और उचित भी नही। महीने के महीने किराया कहाँ से दिया जाय? जाना तो पडेगा ही, पर सिर्फ जाने के दिन तक पहुँचना ही मानो उसके लिए मुश्किल हो रहा था,—रात के बाद सवेरा और सवेरे के बाद रात आ-आकर उसे कदम बढाने का समय नही दे रहे थे।

घर से कोई ममता नही, फिर भी किसलिए वह दिन-रात मेहनत करती रही, अकस्मात् इसकी क्या जरूरत आ पडी—इसी तरह की एक धुँधली-सी जिज्ञासा उसके मन मे घूम रही थी। काम छोडकर वह छज्जे पर जा बैठती और शून्य दृष्टि से सडक की तरफ देखती हुई न जाने क्या भूलने की कोशिश करती, और फिर भीतर आकर काम मे लग जाती। इसी तरह आज उसका काम और दिन दोनों खतम हुए। दिन तो रोज ही खतम होता है, पर इस तरह नही। शाम के बाद बत्ती जलाकर उसने रसोई चढा दी और महज समय काटने के लिए एक किताब उठाकर बिस्तर के सहारे बैठी-बैठी उसके पन्ने उलटने लगी। लेकिन आज उसकी थकावट की कोई हद न थी, इसका पता भी नही चला कि कब किताब के पन्नो के साथ-साथ उसकी आँखो के पलक बन्द हो गये। जब पता लगा तब कमरे की बत्ती बुझ चुकी थी और खिडकी मे से अरुण प्रकाश ने आकर सारे कमरे को आरक्त कर दिया था। दिन चढने लगा, पर महरी नही आयी। इसलिए बासा तलाश करके उसकी भी खबर-सुध लेने की आवश्यकता मालूम हुई। कपडे बदलकर वह निकल ही रही थी इतने में जीने पर किसी के चढने की आहट हुई। उसका कलेजा धडक उठा।

वहीं से किसी ने पुकारा, "घर हैं क्या? आ सकता हूँ?"

"आइए।"

जो आये, उनका नाम है हरेन्द्र। कुरसी खीचकर उसपर बैठ गये और बोले—"कही बाहर जा रही थी क्या?"

"हाँ। जो बुढ़िया मेरे यहाँ काम करती थी, वह बीमार है। उसी को देखने जा रही थी।"

"अच्छी खबर है। इन्फ्लुएजा के सिवा और कुछ नहीं। मालूम होता है आगरे मे भी शायद

एपिडेमिक फार्म शुरू हो गया है। बस्तियो मे तो मौते भी शुरू हो गयी हैं। यदि मथुरा-वृन्दावन की तरह शुरू हुआ तो भागना पडेगा। बुढ़िया रहती कहाँ है?"

"मालूम नही। सुना है कि यही पास ही कही रहती है, ढूँढ़ना पडेगा।"

हरेन्द्र ने कहा—"बडी छूतैल बीमारी है, जरा सावधान रहिएगा। उधर की खबर मिली होगी शायद?"

कमल ने गरदन हिलाकर कहा—"नही तो।"

हरेन्द्र उसके मुँह की तरफ देखकर क्षण-भर चुप रहा, फिर बोला—"डरो मत, डर की ऐसी कोई बात नही। कल ही आना चाहता था, पर समय नही मिला। हमारे अक्षय बाबू कालेज नही आये, सुना है कि उनकी भी तबीयत खराब है। आशु बाबू बिस्तर पर पड़े हैं, सो आप कल देख ही आयी हैं,—उधर अविनाश भइया को कल शाम से बुखार है, भाभी का चेहरा भी देखा कि सूखा-सूखा-सा हो रहा है। वे खुद कभी बीमार न पड जायँ।"

कमल चुप बैठी उसकी तरफ देखती रही। इन सब खबरो पर मानो वह अच्छी तरह ध्यान ही न दे सकी।

हरेन्द्र कहता गया—"इसके अलावा शिवनाथ बाबू भी पड़े हैं। इन्फ्लुएंजा का मामला है, कुछ कहा नही जा सकता। अस्पताल भी नही जाना चाहते। कल शाम को उनके घर पर ही उन्हे रिमूव कर दिया गया है। आज एक बार जाकर खबर लेनी है।"

कमल ने पूछा—"वहाँ है कौन?"

"एक नौकर है। ऊपर की कोठरी मे कुछ पंजाबी रहते हैं, जो ठेकेदारी का काम करते हैं। सुना है आदमी अच्छे हैं।"

कमल एक उसास लेकर चुप रह गयी। थोडी देर बाद बोली—"एक बार राजेन्द्र बाबू को मेरे पास भेज सकते हैं?"

"भेज सकता हूँ, पर वह मिलेगा कहाँ? आज तडके से ही निकल पडा है। उधर कही मोचियो के मुहल्ले में जोर की बीमारी फैल रही है, वह गया है उनकी सेवा करने। आश्रम मे अगर खाने आया तो कह दूँगा।"

"उन्हें घर पहुँचाया किसने? आपने?'

"नही, राजेन्द्र ने। उसी के मुँह से सुना कि पंजाबी लोग उनकी देख-भाल कर रहे हैं। फिर भी, वे करे या न करें, पर राजेन्द्र को जब कि पता लग गया है तो वह किसी बात की त्रुटि नही होने देगा,—सम्भव है, खुद ही तीमारदारी करने लग जाय। एक बात का पक्का भरोसा है कि उसे रोग नहीं पकडता। पुलिस न पकडे तो वह अकेला ही एक सौ के बराबर है। वह केवल उन्ही लोगों से घबराता है,—नही तो उसे काबू कर सके ऐसा तो दुनिया मे कोई दिखाई नही देता।"

"पकडे जाने की आशका है क्या?"

"आशा तो की जाती है। कम से कम इससे आश्रम की तो रक्षा हो जायगी।"

"उन्हे कह क्यो नही देते कि चले जायँ?"

"यही तो मुश्किल है। कहने से उसी वक्त चला जायगा और ऐसा जायेगा कि फिर सर दे मारने पर भी वापस न आयेगा।"

"न आवे तो नुकसान ही क्या है?"

"नुकसान? उसे तो आप जानती नही, बगैर जाने उस नुकसान का अन्दाजा नही लगाया जा सकता। आश्रम न रहे तो सहा जा सकता है, लेकिन मुझ से उसका नुकसान न सहा जायगा।" इतना कहकर हरेन्द्र मिनट-भर चुप रहा, फिर सहसा प्रसग बदलकर बोल उठा—"एक बडे मजे की बात हो गयी है। किसी की मजाल नही कि उसकी कल्पना भी कर सके। कल भाई साहब के यहाँ से लोटकर रात को घर आया तो देखता क्या हूँ कि अजित बाबू पधारे हैं। मैं तो डर गया कि आखिर मामला क्या है? बीमारी बढ़ गयी क्या? मालूम हुआ कि नही ऐसी कोई बात नही, बकस-बिस्तर वगैरह सब साथ ले आये हैं। आश्रम के नियमानुसार आश्रम के काम में ही अपना जीवन बितायेंगे। यह उनकी प्रतिज्ञा है, इसमें कोई भी व्यतिक्रम नही हो सकता। ऐसे बडे आदमी मिले तो हमारे लिए अच्छा ही है, पर शका होती है कि भीतर कोई गडबड न हो। सवेरे आशु बाबू के पास गया, सुनकर उन्होने कहा कि 'सकल्प तो

वहुत ही उत्तम है, पर भारत मे आश्रमो की कोई कमी नही, वह आगरा छोड़ कर और कही जाकर यह वृत्ति अवलम्वन करता तो मैं कुछ दिन और यहॉ टिका रहता। देखता हूँ, अब मुझे यहॉ से जाना ही पडेगा।"

कमल ने किसी तरह का आश्चर्य प्रकट नही किया, चुप रही।

हरेन्द्र ने कहा—"उन्ही के यहॉ से सीधा आ रहा हूँ, वापस जाकर अजित बाबू से क्या कहूँगा?"

कमल समझ गयी कि शिवनाथ बाबू को स्थानान्तरित करने के विषय मे बहुत कठोर वाद-विवाद हो गया है। शायद प्रकट मे और स्पष्ट रूप से शब्द भी न कहा गया होगा, सब कुछ चुपचाप ही किया गया होगा, फिर भी इसमे सदेह नही कि कर्कशता मे वह सब तरह के कलह को लॉघ गया होगा। परन्तु एक बात का भी उसने उत्तर नही दिया, जैसी की तैसी चुप बनी रही।

हरेन्द्र कहने लगा—"मालूम होता है, आशु बाबू ने सब कुछ सुन लिया है। शिवनाथ का आपके प्रति जो आचरण हुआ है उससे वे मर्माहत हुए हैं। लगभग जबरदस्ती ही उन्हे घर से विदा किया है। मनोरमा की शायद ऐसी इच्छा नही थी,—शिवनाथ उसके सगीत के गुरु हैं,—पास रखकर इलाज कराने का ही उसका विचार था, पर वैसा हो नही सका। अजित बाबू ने शायद इस पक्ष का अवलवन करके ही झगडा कर डाला है।"

कमल जरा हँस दी, वोली—"आश्चर्य नही। पर आप ने यह सब सुना किससे? राजेन्द्र ने कहा था?"

"राजेन्द्र? भला राजेन्द्र कहेगा! वह ऐसा आदमी ही नही। जानता होगा तो भी न वतायेगा। यह मेरा ही अनुमान है। इसी से सोच रहा हूँ आखिर समझौता तो होगा ही, फिर अजित को चिढाने से क्या लाभ? चुपचाप रहना ही ठीक है। जितने दिन वह आश्रम मे रहेगा, हमारी तरफ से स्वागत-सत्कार मे त्रुटि न होगी।"

कमल ने कहा—"यही ठीक है।"

हरेन्द्र ने कहा—"अच्छा, तो अव चला। भाई साहव के लिए चिता है, वहुत थोडे मे घवरा जाते हैं। समय मिला तो कल एक वार आऊँगा।"

"आइएगा।" कहकर कमल ने उठकर नमस्कार किया और कहा—"राजेन्द्र को भेजना न भूलिएगा। कहिएगा, मैं वडी मुसीवत मे पडकर वुला रही हूँ।"

"मुसीवत मे पडकर बुला रही हैं?" हरेन्द्र आश्चर्य के साथ बोला—"भेट होते ही उसी वक्त भेज दूँगा; लेकिन वह मुसीवत क्या मुझसे नही कही जा सकती? मुझे भी आप अपना अकृत्रिम बन्धु समझिएगा।"

"सो समझती हूँ। लेकिन उन्ही को भेज दीजिएगा।"

"भेज दूँगा, जरूर भेज दूँगा।" कहकर हरेन्द्र आगे बात न वढाकर चला गया।

तीसरे पहर राजेन्द्र आ पहुँचा।

"राजेन्द्र, मेरा एक काम करना होगा।"

"कर दूँगा। पर कलतक तो मेरे नामके साथ 'बाबू' था, आज वह भी उडा दिया गया?"

"अच्छा ही तो हुआ, हलके हो गये। मजूर न हो कहो, जोड दूँ?"

"नही, कोई जरूरत नही। मगर आपको मैं क्या कहकर पुकारा करूँ?"

"सभी 'कमल' कहके पुकारते हैं और इससे मेरे सम्मान की हानि नही होती। नामके आगे-पीछे वोझ लादकर अपने को भारी बनाने मे मुझे लज्जा आती है। 'आप' कहने की भी जरूरत नही। मुझे सहज नाम से ही पुकारा करे।"

इसके स्पष्ट जवाब को बचाते हुए राजेन्द्र ने कहा—"मुझे क्या करना होगा?"

"मेरा वन्धु होना होगा। लोग कहते हैं, तुम क्रांतिकारी हो। यह अगर सच हो तो मेरे साथ तुम्हारी मित्रता अक्षय रहेगी।"

"यह अक्षय मित्रता मेरे किस काम आयेगी।"

कमल विस्मित हुई। यह सशय और उपेक्षा की ध्वनि उसके कानो मे खटकी, बोली—"ऐसी बात नही कहनी चाहिए। मित्रता जैसी चीज ससार मे दुर्लभ है, और मेरी मित्रता उससे भी ज्यादा दुर्लभ है। जिसे पहचानते नही, उस पर अश्रद्धा करके अपने को छोटा मत वनाओ।"

मगर इस शिकायत ने उस युवक को कुण्ठित नही किया, उसने मुसकराते चेहरे से स्वाभाविक स्वर मे ही कहा—"अश्रद्धा के कारण नही,—मित्रता की आवश्यकता नही समझने के कारण ही कहा था और अगर आप समझें कि यह चीज मेरे काम आ सकती है, तो मैं अस्वीकार भी नही करूँगा। लेकिन सोच यही रहा हूँ कि क्या काम आयेगी।"

कमल का चेहरा सुर्ख हो उठा। जैसे किसी ने चाबुक मारकर उसे अपमानित किया हो। वह उच्च शिक्षिता, अत्यन्त सुन्दरी और प्रखर बुद्धिशालिनी है। उसकी धारणा थी कि वह पुरुष के लिए कामना का धन है, उसका निष्कपट विश्वास था कि उसका दिप्त तेज अपराजेय है। ससार मे नारियो ने उससे घृणा की है, पुरुषो ने आतकं की आग से भस्म करना चाहा है, और अवज्ञा का ढोंग भी न किया हो सो बात नही, मगर यह तो कुछ और ही चीज है। आज इस युवक के सामने अपनी तुच्छता महसूस करके मानो वह जमीन मे गड गयी। शिवनाथ ने उसे धोखा दिया है, वंचित किया है; मगर इस तरह दीनता का चीर उसके शरीर पर नही लपेटा।

कमल के मन मे एक सदेह प्रबल हो उठा, उसने पूछा—"मेरे सम्बन्ध मे शायद तुमने बहुत-सी बातें सुनी होगी?"

राजेन्द्र ने कहा—"हाँ, ये लोग प्राय कहा तो करते हैं।"

"क्या कहते हैं?"

उसने जरा हँसने की कोशिश करते हुए कहा—"देखिए, इन बातों मे मेरी स्मरणशक्ति बहुत ही खराब है। प्राय. कुछ भी याद नही है।

"सच कहते हो?"

"सच ही कह रहा हूँ।"

कमल ने जिरह नही की, विश्वास कर लिया। समझ गयी कि स्त्रियो की जीवन-यात्रा के सम्बन्ध में अबतक इस आदमी के मन में किसी तरह का कुतूहल ही पैदा नही हुआ। उसने जैसे सुना है वैसे भूल भी गया है। और भी एक बात उसकी समझ मे आयी। 'तुम' कहने का अधिकार दिये जाने पर भी क्यों उसने उसे स्वीकार नही किया और अब भी 'आप' कहकर सम्बोधन कर रहा है। असल मे उसके अकलक पुरुष-चित्त की भूमिका पर अब भी नारी-मूर्ति की छाया नहीं पड़ी है,—इसी से 'तुम' कहकर घनिष्ठ होने के लोभ का उसे भान नही हुआ है। कमल ने मन-ही-मन मानो सतोष की साँस ली। थोडी देर बाद वह बोली, "शिवनाथ बाबू ने मुझे त्याग दिया है, मालूम है?"

"मालूम है।"

कमल ने कहा—"उस दिन हमारे विवाह के अनुष्ठान में तो धोखा था, पर मन में धोखा नही था। लोगो ने सदेह करके तरह-तरह की बातें कही, कहा कि यह विवाह पक्का नही हुआ। लेकिन मैं डरी नही, मैंने कहा—"होने दो कच्चा। हमारे भीतर के मन ने जब मान लिया है तब हमे यह देखने की जरूरत नही कि बाहर की गाँठ में कितने फेरे पडे, बल्कि मैंने तो सोचा, यह अच्छा ही हुआ कि जिसे पति के रूप मे स्वीकार किया हे उसे ऊपर से नीचे तक कसकर बाँधा नही। उसकी मुक्ति की अर्गला अगर थोडी ढीली ही रह गयी तो रहने दो। मन ही अगर दिवानिया हो जाय, तो फिर पुरोहित के मत्र को महाजन बना के खडा करने से सूद भले ही अदा हो जाय, पर असल तो डूब ही जायगा। मगर यह सब तुम से कहना व्यर्थ है, तुम समझोगे नही।"

राजेन्द्र चुप रहा। कमल कहने लगी—"तब सिर्फ यही बात मैं नही जानती थी कि उन्हे रुपयो का लोभ इतना जबरदस्त है। जानती होती तो कम से कम लाछना की आफत से बच जाती।"

राजेन्द्र ने पूछा—"इसके माने?"

कमल ने सहसा अपने को रोक लिया, बोली—"रहने दो माने। तुम सुनकर क्या करोगे?"

कुछ देर हुई सूर्य अस्त हो चुका है, घर मे बाहर का अधेरा घना होता जा रहा है। कमल ने बत्ती जलायी और उसे टेबिल के एक किनारे रखकर अपनी जगह पर आते हुए कहा—"खैर, जो भी हो, मुझे एक बार उनके घर पर ले चलो।"

"क्या करेंगी जाकर?"

"अपनी आँखो से एक बार देखना चाहती हूँ। अगर जरूरत होगी तो रह जाऊँगी। नही तो तुम पर

भार सौंप कर निश्चिन्त हो जाऊँगी। इसीलिए तुम्हे बुलाया था। तुम्हारे सिवा यह काम और कोई नही कर सकता। उनके प्रति लोगो की नफरत की हद नही।" कहते-कहते कमल सहसा बत्ती को जरा बढा देने की गरज से उठी और राजेन्द्र की तरफ पीठ करके खडी हो गयी।

राजेन्द्र ने कहा—"अच्छी बात है, चलिए। मैं एक ताँगा कर लाऊँ।" और वह चला गया।

ताँगे पर सवार होकर राजेन्द्र ने कहा—"शिवनाथ बाबू की सेवा का भार मुझ पर सौंपकर आप निश्चिन्त होना चाहती हैं, सो मैं यह भार तो ले सकता था, लेकिन अब यहाँ मेरा रहना नही होगा, बहुत जल्द चला जाना पड़ेगा। आप और कोई इन्तजाम करने की कोशिश करे तो अच्छा हो।"

कमल ने उद्विग्न होकर पूछा—"क्यो, पुलिस शायद पीछे लग के परेशान कर रही है?"

"उसकी आत्मीयता का तो मैं आदी हो गया हूँ, इसके लिए नही।"

कमल हरेन्द्र की बाते याद करके बोली—"तो क्या आश्रम के लोग जाने के लिए कहते हैं? लेकिन पुलिस के डर से जो लोग इस तरह आतंकित रहते हैं, उन्हे इतने समारोह के साथ देश के काम मे उतरना ही नही चाहिए। फिर तुम्हे यहाँ से चले ही क्यो जाना पडेगा? इसी आगरे शहर मे एक ऐसा व्यक्ति है जो तुम्हे जगह देने मे जरा भी नही डरेगा।"

राजेन्द्र ने कहा—"सो शायद खुद आप ही हैं। इसे सुन लिया, सहज ही भुला नही सकूँगा। लेकिन इस उपद्रव से डरते न हो, भारत मे ऐसे आदमी बिरले ही हैं। अगर होते तो देश की समस्या बहुत कुछ सहल हो जाती।"

जरा ठहरकर फिर बोला—"मगर मैं इस वजह से नही जा रहा हूँ। आश्रम को भी दोष नही दे सकता। और चाहे जिसके मुँह से निकल जाय, पर मेरे लिए चले जाने की बात हरेन्द्र दादा के मुँह से नही निकल सकती।"

"तो क्यो जा रहे हो?"

"जा रहा हूँ अपने ही लिए। वह है जरूर देश का काम, पर मेरा उनके साथ मत नही मिलता, और न काम की धारा ही मेल खाती है। मेल हे सिर्फ प्रेम की दृष्टि से। हरेन्द्र दादा को मैं सहोदर से प्रिय हूँ, उससे भी ज्यादा अपना हूँ। किसी दिन इसका व्यतिक्रम भी नही होने का।"

कमल की दुश्चिन्ता दूर हो गयी। बोली—"इससे बढकर और क्या हो सकता है राजेन्द्र? मन जहाँ मिल गया, वहाँ मत का मेल न हो, न सही, काम की धारा न मिले न सही, इससे क्या आता-जाता है? सब कोई एक ही तरह से सोचेगे, एक ही तरह का काम करेंगे और तभी एक साथ रहेगे, यह क्यो? और हम अगर दूसरे के मत पर श्रद्धा न कर सके तो फिर शिक्षा ही क्या हुई? मत और कर्म दोनो ही बाहर की चीजे हैं राजेन्द्र, एक मन ही सत्य है। और, इन बाहर की चीजे को ही बडा मानकर अगर तुम दूर चले जाओ तो तुम जो कह रहे थे कि तुम्हारे प्रेम मे कोई व्यतिक्रम नही होने का, सो इस तरह तो उसे अस्वीकार करना होगा। यह जो किताब मे लिखा है कि 'छाया के लिए काया छोडी,' सो यह भी ठीक वैसी ही बात होगी।"

राजेन्द्र कुछ बोला नही, सिर्फ हँस दिया।

"हँसे क्यो?"

"हँसा इसलिए कि तब हँसा नही था। आपने अपने खुद के विवाह के मामले मे मन के मेल को ही एकमात्र सत्य स्थिर करके बाह्य अनुष्ठान को बेमेल 'कुछ नही' कहके उडा दिया था। वह सत्य नही था, इसलिए आज आप दोनो का सब कुछ असत्य हो गया।"

"इसके माने?"

राजेन्द्र ने कहा—"मन के मेल को मैं तुच्छ नही समझता, मगर उसी को अद्वितीय कहकर उच्च स्वर से घोषित करने की भी आजकल एक ऊँचे ढग का फैशन हो गया है। इससे उदारता और महत्ता दोनो ही प्रकट होती हैं, परन्तु सत्य नही प्रकट होता। यह कहना गलत है कि ससार मे सिर्फ एक मन ही है और उसके बाहर जो कुछ है, सब छाया है।"

जरा ठहरकर वह फिर कहने लगा—"अभी-अभी विभिन्न मतवादो के प्रति श्रद्धा रख सकने को ही बडी भारी शिक्षा बता रही थी, मगर आप जानती हैं कि सब तरह के मतो पर श्रद्धा कौन रख सकता है? जिसके अपने मतका कोई बल नही, वही रख सकता है। शिक्षा के द्वारा विरुद्ध मत की चुपचाप उपेक्षा की जा सकती है, पर उस पर श्रद्धा नही की जा सकती।"

कमल को अत्यन्त विस्मय हुआ, वह अवाक् रह गयी। राजेन्द्र कहने लगा—"हमारी ऐसी नीति नही है, झूठी श्रद्धा से हम ससार का सर्वनाश नही करते—मित्र के मत पर भी नही, उस श्रद्धा को तोड-फोडकर चकनाचूर कर डालते हैं। यही हम लोगो का काम है।"

कमल ने कहा—"इसी को तुम लोग 'काम' कहते हो?"

राजेन्द्र ने कहा—"हॉ, कहते हैं। मत का वेमेल अगर हमारे काम मे वाधा पहुँचाता रहे तो मन के मेल मे हमे क्या करना है? हम चाहते हैं मत की एकता, कामकी एकता,—हमारे लिए भावो के विलास का कोई भी मूल्य नही शिवानी—"

कमल आश्चर्य-चकित होकर वोली, "मेरा यह नाम भी तुम्हे मालूम हो गया है?"

"हॉ। कर्म के जगत् मे आदमी के व्यवहार का मेल ही वडा मेल है, मन का नहीं। मन हो तो वना रहे, अन्त करण का विचार अन्तर्यामी करेंगे, हमारा काम व्यावहारिक एकता के विना नही चल सकता। यही हमारी कसौटी है,—इसी से हम जॉच करते हैं। वाहर से अगर स्वर मे मेल न हो तो केवल दो जनों के मन के मेल से सगीत सृष्टि नही होती, वह तो सिर्फ कोलाहल ही कहलायेगा। राजा की जो सेनाएँ युद्ध करती हैं, उनकी वाहर की एकता ही राजा की शक्ति है। मन से उसे कोई मतलव नही। नियम का शासन सयम है—और यही हम लोगो की नीति है। इमे छोटा वनाने मे मन के नशे के लिए खुराक जुटाई जा सकती है, और कुछ नही। यह उच्छृखलता का ही नामान्तर है। ताँगेवाले, रोको-रोको,—शिवानी, यही है उनका घर।"

सामने एक पुराना टूटा-फूटा मकान है। दोनों चुपके मे उतरकर नीचे की एक कोठरी मे पहुँचे। आहट सुनकर शिवनाथ ने आँख खोलकर देखा, पर दिये के धुँधले उजाले मे शायद पहचान न सका। क्षण-भर वाद ही उसने आँखे मीच ली और तन्द्राच्छन्न हो रहा।

१७

चारों तरफ देख-भालकर कमल सन्न रह गयी। घर की शकल क्या हो रही है। सहसा किसी को विश्वास नही हो सकता कि यहाँ कोई आदमी भी रहता है। किसी के आने की आहट सुनाई दी और एक सत्रह-अठारह साल का लडका आ खडा हुआ। राजेन्द्र ने उसका परिचय देते हुए कहा—"यह शिवनाथ वाबू का नौकर है। पथ्य वनाने से लेकर दवा खिलाने तक सव इसी की ड्यूटी मे है। सूर्यास्त से ही शायद सोना शुरू किया था इसने, अभी उठकर आ रहा है। रोगी के सम्वन्ध में अगर कुछ उपदेश देना हो तो इसी को दीजिए। मालूम होता है कि समझ तो जायगा, विलकुल वेवकूफ नही है। नाम कल पूछा तो था पर याद नही रहा। क्या नाम है रे?"

"फगुआ।"

"आज दवा दी थी?"

लडके ने वाये हाथ की दो उँगलियाँ दिखाते हुए कहा—"दो खुराक दी है।"

"और कुछ दिया है।"

"हाँ,—दूध भी पिला दिया है।"

"वहुत अच्छा किया। ऊपर के पजावी वावुओ में से कोई आया था?"

लडके ने याद करके कहा—"शायद दोपहर को एक वावू आये थे।"

"शायद? तव तुम क्या कर रहे थे, सो रहे थे?"

कमल ने कहा—"फगुआ, यहाँ झाड़ू-आड़ू कुछ है या नही?"

फगुआ सिर हिलाकर झाड़ू लेने चला गया। राजेन्द्र बोला—"झाड़ू का क्या करेगी? उसे पीटेगी क्या?"

कमल ने गम्भीर होकर कहा—"यह क्या मजाक का वक्त है? माया-ममता क्या तुम्हारे बिलकुल है ही नही?"

"पहले थी। फ्लड और फेमिन रिलीफ में उन्हें झाड-पोछकर अलग फेक आया हूँ।"

फगुआ झाड़ू लेकर हाजिर हुआ। राजेन्द्र ने कहा—"मैं भूख के मारे मरा जा रहा हूँ, कही जाकर कुछ खा आऊँ। तब तक झाड़ू और इस लडके का जो उपयोग कर सके, आप कीजिए, वापस आकर आपको मैं घर पहुँचा दूँगा। डरिएगा नही, मैं डेढ-दो घण्टे मे लौट आता हूँ।" कहकर वह जवाब की परवाह किये बगैर ही चल दिया।

शहर के किनारे का यह स्थान थोडी ही देर मे नि शब्द और निर्जन हो गया। जो लोग ऊपर रहते हैं उनका कोलाहल और चलने-फिरने का शब्द भी बन्द हो गया। मालूम होता है कि वे सब सो गये हैं। शिवनाथ की खबर लेने कोई नही आया। बाहर अधेरी रात्रि और भी गहरी होने लगी। जमीन पर कम्बल बिछाकर फगुआ ऊँघने लगा। बाहर का दरवाजा बन्द करने का समय हो रहा था। तभी सडकपर साइकिल की घण्टी सुनाई दी और दूसरे ही क्षण दरवाजा धकेलकर राजेन्द्र भीतर आ गया। उसने इधर-उधर देखा और इस थोडे-से समय मे सारे कमरे मे काफी परिवर्तन देखकर कुछ देर चुपचाप खडा रहा, फिर हाथ की पोटली बगल की तिपाई पर रखता हुआ बोला—"आपको जैसा सोचा था दूसरी स्त्रियो की तरह, वैसी आप नही हैं। आप पर भरोसा किया जा सकता है।"

कमल ने कुछ जवाब नही दिया, चुपके से उसके मुँह की ओर देखा। राजेन्द्र ने कहा—"इस बीच मे आपने तो विस्तरतक बदल डाला है। और सब कुछ तो आपने ढूँढ़-खोजकर निकाल लिया, पर इन्हे उठाकर उस पर सुलाया कैसे?"

कमल ने आहिस्ते से कहा—"तरकीब मालूम हो तो यह काम मुश्किल नही।"

"मगर मालूम कैसे हो? मालूम होने की तो कोई बात नही थी।"

कमल ने कहा, "मालूम करना क्या सिर्फ तुम्ही लोगो के हाथ की बात है? बचपन मे चाय बगीचे मे मैंने बहुत-से रोगियो की सेवा की है।"

"अच्छा, यह बात है!" कहकर उसने चारो तरफ नजर दौडायी, फिर कहा—"आते वक्त साथ मे कुछ खाने को लेता आया हूँ। देख गया था कि सुराही में पानी है, लीजिए, खा लीजिए, मैं बैठा हूँ।"

कमल उसके चेहरे की तरफ देखकर जरा हँस दी, बोली—"खाने के बारे मे तो मैंने कहा नही था। अचानक यह बात सूझ कैसे गयी?"

राजेन्द्र बोला—"बात सच है, सूझा तो अचानक ही। जब मेरा पेट भर गया। तब न जाने क्यो ऐसा लगा कि आपको भी भूख लगी होगी। आते वक्त दूकान से थोडा-सा लेता आया। देर न कीजिए, खाने बैठिए।" कहकर वह खुद ही सुराही उठा लाया। पास ही कलईदार गिलास रखा था। बोला—"ठहरिए, बाहर से इसे माँज लाऊँ।" कहता हुआ उसे बाहर ले गया। वह कल ही जान गया था कि इस घर मे कहाँ क्या रखा है। लौटा तो खोजकर साबुन का टुकडा उठा लाया और बोला—"आपने बहुत व्यवस्था की है, जरा सावधान रहना अच्छा है। मैं पानी देता हूँ, आप पहले हाथ धो लीजिए।"

कमल को अपने पिता की याद आ गयी। उनकी भी बातो मे इसी तरह रसकस कुछ नही होता था, मगर वे हार्दिकता से भरी रहती थी। उसने कहा—"हाथ धोने मे मुझे कोई आपत्ति नही, पर खा नही सकूँगी भाई। तुम्हे तो शायद मालूम है कि मैं खुद अपने हाथ से बनाकर खाया करती हूँ और दूसरे, यह सब कीमती अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ भी मैं नही खाती। मेरे लिए व्यस्त होने की जरूरत नही, मैं तो हमेशा की तरह घर जाकर ही खाऊँगी।"

"तो फिर ज्यादा रात न करके अब घर ही लौट चलिए, आपको पहुँचा दूँ।"

"आप फिर यही लौटकर आएँगे?"

"हाँ।"

"कबतक रहिएगा?"

"कम से कम कल सवेरे तक। ऊपर के पजाबी भाइयो के हाथ कुछ रुपये दे गया था, उनसे एक बार मुलाकात बगैर किये नही हिलने का। जरा थक गया हूँ, पर इसकी कुछ परवाह नही। मुझे नही मालूम था कि इतनी लापरवाही होगी। उठिए, फिर ताँगा नही मिलेगा, पैदल जाना पडेगा। लौटते वक्त मोचियो के मुहल्ले मे भी जरा देखने जाना है। दो के मरने की बात थी, देखना है, उन लोगो ने क्या किया?"

कमल को फिर उस बात का खयाल आ गया कि इस आदमी के हृदय में अनुभूति नाम की कोई बला

ही नही। लगभग यत्र-सा काम करता है। न जाने कौन-सी अज्ञात प्रेरणा इसे बार-बार कार्य मे जोत देती है, और यह काम करता चला जाता है! अपने लिए नही, और शायद कोई आशा लेकर भी नही करता। कार्य इसके रक्त मे तथा सारे शरीर मे जल-वायु की भाँति ही सहज स्वाभाविक हो गया है। मजा यह कि औरो के आश्चर्य का ठिकाना नही, वे सोचते हैं कि ऐसा होता कैसे है? कमल ने पूछा—"राजेन्द्र, आप खुद भी तो डॉक्टर हैं?"

"डॉक्टर? नही तो। सिर्फ जरा डॉक्टरी स्कूल मे कुछ दिन पढा था।"

"तो फिर उन लोगो का इलाज कौन करता है?"

"यम।"

"और आप क्या करते हैं?"

"मैं उनके कार्य मे मदद करता हूँ, उनका गुण-लुब्ध परम भक्त हूँ।" कहकर वह कमल के विस्मयाच्छन्न चेहरे की तरफ क्षण-भर देखता रहा, फिर जरा हँसकर बोला—"यम नही, वे हैं यम-राज। बलिहारी है उसकी प्रतिभा की जिसने राजा कहकर इन्हें पहले पहल अभिनन्दित किया था। सचमुच है तो राजा ही। जैसी दया है, वैसा ही विवेक। मैं होड बदकर कह सकता हूँ कि विश्व-जगत् मे कोई अगर सृष्टिकर्ता है तो वे उसकी सर्वश्रेष्ठ सृष्टि हैं।"

कमल ने आहिस्ते से पूछा—"क्या आप मजाक कर रहे हैं राजेन्द्र?"

"कतई नही। सुनकर सतीश दादा मुँह गम्भीर बना लेते हैं, हरेन्द्र दादा गुस्सा हो जाते हैं, मुझे 'सिनिक' कहते हैं। और अपने आश्रम मे उन सबने मिलकर कृच्छ्रता, सयम, त्याग और अद्भुत कठोरता के तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र पैनाकर मानो यम-राज के विरुद्ध विद्रोह घोषित कर रखा है। वे समझते हैं कि मैं उनका उपहास कर रहा हूँ। मगर सो बात नही है। गरीब दुखियो के मुहल्लो मे वे जाते नही, अगर जाते तो मेरा विश्वास है कि वे भी मेरी तरह परम राज-भक्त हो जाते और श्रद्धा से झुककर यम-राज का गुण-गान करते, अकल्याण समझ कर उन्हे गाली देते न फिरते।"

कमल ने कहा—"यही अगर तुम्हारा वास्तविक मत हो तो तुम्हे 'सिनिक' कहने मे बुराई क्या है?"

"बुराई का विचार पीछे होगा। चलेगी एक बार मेरे साथ मोचियो के मुहल्लो मे? कतार की कतार पड़ी है, सिर्फ आजकल के एन्फ्लुएजा की वजह से ही नही—हैजा, चेचक, प्लेग—कोई भी बहाना-भर मिलना चाहिए। औषधि नही, पथ्य नही, सोने के लिए बिस्तर नही, ढकने के लिए कपडा नही, मुँह मे पानी देने के लिए आदमी नही,—देखते ही एकाएक घबरा जाना पडता है कि आखिर इसका किनारा कहाँ है? पर उसी वक्त किनारा नजर आ जाता है, चिंता दूर हो जाती है और मन-ही-मन कहने लगता हूँ,—कोई डर नही भाई, कोई डर नही।—समस्या चाहे कितनी ही गम्भीर क्यो न हो, उसका समाधान करने की जिन पर जिम्मेदारी है, वे आ ही रहे होगे। अलग-अलग देशो मे अलग-अलग व्यवस्थाएँ हैं, पर हमारी इस देव-भूमि मे सारी की सारी जिम्मेदारी यमराज ने ले रक्खी है, स्वय राजाधिराज यमराज ने। एक हिसाब से हम बहुत ज्यादा सौभाग्यवान् हैं।—लेकिन न जाने कहाँ से यह सब बाते निकल आयी। चलिए, बहुत रात होती जा रही है। बहुत-सा रास्ता पैदल तै करना है।"

"मगर तुम्हे तो फिर उसी रास्ते वापस भी आना है?"

"सो तो आना ही है।"

"तुम्हारा मोची-मुहल्ला है कितनी दूर?"

"पास ही है, याने यहाँ से एक मील के भीतर।"

"तो तुम साइकिल से घूम आओ—मैं बैठी हूँ।"

राजेन्द्र को आश्चर्य हुआ, बोला—"सो कैसे! आपने तो दो दिन से खाया नही है?"

"किसने दी तुम्हे यह खबर?"

"अभी-अभी ख्याल की बात हो रही थी न, उसी से। पर खबर मैंने खुद ही प्राप्त की है। आते वक्त आपका रसोईघर एक बार झाँककर देख आया था, आलू-भात तैयार रखा था,—बटलोई का चेहरा देखने से सदेह नही रहा कि वह गत रात्रि का बनाया हुआ है। अर्थात्, दो दिन से आपका कोरा उपवास चल रहा है। लिहाजा या तो चलिए या फिर जो लाया हूँ उसे खा लीजिए। आज हाथ से बनाने का बहाना अवैध है।"

बाँधकर रोक सकती हूँ या रो-पीटकर अनर्थ खड़ा कर सकती हूँ? ऐसा मेरा स्वभाव नहीं, सो तो तुम अच्छी तरह जानते ही थे. फिर कहकर क्यों नहीं आये?"

शिवनाथ थोडी देर नीरव रहकर बोला—"काम की झंझट के कारण यहाँ रोजगार के खातिर कुछ दिनों के लिए अलग मकान लेकर रहने लगना ही क्या त्यागना हो गया? मै तो सोचता था—"

शिवनाथ की वात मुँह की मुँह में ही रह गयी। कमल बीच में ही बोल उठी—"रहने दो, मैं नही जानना चाहती।" पर कहने के साथ ही वह अपनी उत्तेजना से आप ही लज्जित हो गयी। कुछ देर चुप रहकर अपने को शात करके अन्त मे बोली—"तुम क्या सचमुच ही बीमार थे?"

"सच नही तो क्या झूठ?"

"सचमुच ही अगर बीमार थे तो वहाँ न जाकर आशु बाबू के घर किसलिए गये? तुम्हारे एक कामने तो मुझे व्यथा ही पहुँचाई है, पर दूसरे कामने मेरा इतना अपमान किया है कि जिसकी हद नही! मैं जानती हूँ, यह सुनकर कि मुझे दु ख हुआ है तुम हँसोगे, पर यह जानना ही मेरे लिए सान्त्वना है। तुम इतने ओछे हो सिर्फ इसीलिए, मैंने सह लिया, नही तो मुझ से नही सहा जाता।"

शिवनाथ चुप रहा, कमल उसके चेहरे की तरफ एकटक देखती रही और बोली—"तुम जानत हो, मुझे सब सहन हुआ, पर तुम्हें घर से निकाल देना मुझसे नही सहा गया। इसी से तुम्हारी सेवा करने आयी थी,—तुम्हे रिझाने नही।"

शिवनाथ ने धीरे-धीरे कहा—"तुम्हारी इस दया के लिए मैं कृतज्ञ हूँ शिवानी।"

कमल ने कहा—"तुम मुझे 'शिवानी' कहकर मत पुकारो, कमल कहकर पुकारा करो।"

"क्यो?"

"सुनने मे मुझे घृणा होती है, इसीलिए।"

"मगर एक दिन तो तुम इसी नाम को सवसे ज्यादा पसद करती थी।" कहते हुए शिवनाथ ने कमल का हाथ अपने हाथ मे ले लिया। कमल चुप रही। अपने हाथ को लेकर खीचातानी करने मे उसे सकोच मालूम हुआ।

"चुप हो रही, जवाब क्यों नही देती?"

कमल पूर्ववत् चुप रही।

"क्या सोच रही हो वताओ न शिवानी?"

क्या सोच रही हूँ, जानते हो? सोच रही हूँ कि इन वातो की याद दिलानेवाले आदमी को कितना वडा पाखंडी होना चाहिए।"

शिवनाथ की आँखो मे आँसू छलक आये, उसने कहा—"पाखडी मैं नही हूँ शिवानी। एक दिन आयेगा जव अपनी भूल तुम आप ही समझ जाओगी,—उस दिन तुम्हारे पश्चात्ताप की सीमा न रहेगी। क्यो मैंने अलहदा कमरा किरायेपर लिया है—"

"लेकिन अलहदा कमरा किराये पर लेने का कारण तो तुम से मैंने एक वार भी नही पूछा? मैंने तो सिर्फ इतना ही जानना चाहा था कि यह वात तुम मुझे जताकर क्यो नही आये? तुम्हें एक दिन के लिए भी मैं पकडकर नहीं रखती।"

शिवनाथ की आँखों से आँसू ढलक पडे। उसने कहा—"कहने की मुझे हिम्मत नही पडी शिवानी?"

"क्यो?"

शिवनाथ कुरते की आस्तीन से आँखे पोछता हुआ बोला—"एक तो रुपयों की तगी, उसपर आये दिन वाहर जाना पड़ता पत्थर खरीदने। माल लादने-उतारने के लिए स्टेशन के पास एक—"

कमल विस्तर से उठकर दूर एक कुर्सी पर जा वैठी। वोली—"मुझे अपने लिए अब दु:ख नही होता। होता है एक दूसरे आदमी के लिए। पर आज तुम्हारे लिए भी दु ख हो रहा है शिवनाथ बाबू!"

बहुत दिन वाद फिर आज उसने नाम लेकर पुकारा। वोली—"देखो, कोरी वचना को ही मूल-धन मानकर दुनिया मे रोजगार नहीं किया जा सकता। मेरे साथ, हो सकता है कि फिर कभी तुम्हारी मुलाकात न हो, लेकिन मेरी तुम्हे याद आयेगी। जो होना था सो तो हो चुका, वह अब वापस नही आ सकता; परन्तु भविष्य में जीवन को और एक पहलू से देखने की कोशिश करोगे तो हो सकता है कि तुम्हारा भला हो, तुम अच्छी तरह रहो।"

कमल ने बडी मुश्किल से अपने आँसू रोके। यह बताकर कि आशु वाबू ने क्यो उसे अपने घर से हटा
"अवैध?" कमल जरा हँसकर बोली—"मगर मेरे लिए तुम्हे इतना सिर दर्द क्यों?"

"सो नही जानता। कारण अभी खुद ही तलाश कर रहा हूँ, पता लगते ही आपको खवर दूँगा।'

कमल थोडी देर कुछ सोचती रही, उसके बाद बोली—"जरूर देना। शरमाना मत।" फिर कुछ देर चुप रहकर उसने कहा—"राजेन्द्र, तुम्हारे आश्रम के भाई-साहब ने तुम्हे बहुत कम पहचाना है, इसी मे वे तुम्हे उपद्रव समझते हैं। पर मैं तुम्हे पहचानती हूँ। लिहाजा, मुझे भी पहचान रखना तुम्हारे लिए जरूरी है। लेकिन, उसके लिए समय चाहिए, वह परिचय वाद-विवाद करने से नही होगा।" और फिर जरा स्थिर रहकर कहने लगी—"मैं खुद अपने हाथ से बनाकर खाती हूँ, एक बेर खाती हूँ, सो भी अत्यन्त गरीबी का खाना,— मुट्ठी-भर दाल-भात, बस। पर यह मेरा व्रत नही है, इसलिए तोड भी सकती हूँ। लेकिन सिर्फ इसीलिए नियम भग नही करूँगी कि दो दिन से खाया नही है। तुम्हारे इस स्नेह को मैं नही भूलूँगी, पर तुम्हारी बात भी न रख सकूँगी राजेन्द्र। इसके लिए तुम नाराज मत होना, भला!"

"नही।"

"क्या सोच रहे हो, बताओ तो सही?"

"सोच रहा हूँ, परिचय की भूमिका का यह अश बुरा नही रहा। देखता हूँ, सहज मे भुलाया नही जा सकेगा।"

"सहज मे मैं तुम्हे भूलने कब दूँगी?" कहकर कमल सहसा हँस पडी। बोली—"मगर अब देर मत करो, जाओ। जितनी जल्दी हो सके, लौट आओ। उस बडी आराम कुर्सी पर कम्बल बिछा रखूँगी—दो-चार घटे सोने के बाद जब सवेरा होगा तब हम लोग घर चलेगे, क्यो ठीक है न?"

राजेन्द्र सिर हिलाकर कहा, "अच्छी बात है। मैंने सोचा था कि आज की रात भी कोरी आँखो बितानी पडेगी, लेकिन छुट्टी मजूर हो गयी,—सेवा का भार आपने खुद अपने ही ऊपर ले लिया। अच्छा हुआ, लौटने मे शायद मुझे ज्यादा देर न लगेगी, पर इस बीच मे आप सो मत जाइएगा।"

कमल ने कहा—"नही। पर यह खबर आपको किसने दी कि ये मेरे पति हैं? यहाँ के भले आदमियों ने शायद? किसी ने भी दी हो, उसने मजाक किया है। विश्वास न हो तो किसी दिन इन्ही से पूछ लीजिएगा, मालूम हो जायगा।"

राजेन्द्र ने कुछ जवाब नही दिया। चुपके से बाहर चला गया।

शिवनाथ मानो इसी की बाट देख रहा था। उसने करवट बदल आँखे खोल कर देखा और कहा—"यह कौन है?"

सुनकर कमल चौंक पडी। कण्ठ का स्वर स्पष्ट था, जडता का चिन्ह भी न था। आँखों की चितवन मे थोडी-बहुत सुस्ती जरूर थी, पर चेहरा बिलकुल स्वाभाविक था। अधूरी नीद उचट जाने से जैसा आच्छन्न भाव रहता है, उससे ज्यादा कुछ नही था। पर कमल सहसा इस बात पर विश्वास न कर सकी कि इतनी जबरदस्त बीमारी इतनी आसानी से और इतनी जल्द खत्म हो गयी। इसी से जवाब देने मे उसे देर लगी। शिवनाथ ने फिर पूछा—"यह कौन आदमी है शिवानी? तुम्हे साथ लेकर यही आये हैं?"

"हाँ। मुझे भी लाये हैं और तुम्हे भी कल यहाँ पहुँचा गये हैं। वही हैं।"

"नाम क्या है?"

"राजेन्द्र।"

"तुम दोनो क्या अभी तक एक ही मकान मे रह रहे हो?"

"कोशिश तो यही कर रही हूँ। मगर रह जायँ तो मेरा भाग्य।"

"हूँ। उसे यहाँ क्यो लायी हो?"

कमल ने इसका कोई जवाब नही दिया। शिवनाथ ने भी फिर कोई प्रश्न नही किया, आँख मीचे पडा रहा। बहुत देर तक सन्न रहने के बाद शिवनाथ ने पूछा—"यह बात तुमने किसके मुँह से सुनी कि मेरे साथ तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही रहा? मैंने कहा है,—ऐसा लोग कह रहे हैं क्या?"

कमल ने इस बात का कोई जवाब नही दिया, किन्तु इस बार उसने खुद ही प्रश्न किया—"मुझ से तुम ने ब्याह नही किया, सो मैंने इस पर भले ही विश्वास न किया हो, तुम तो करते थे? पर मुझे छोडकर चले आते वक्त यह बात तुम मुझसे कह क्यों नहीं आये? यही सोच रक्खा था क्या तुमने कि मैं तुम्हे

मकी।

बाहर साइकिल की घण्टी सुन पडी। शिवनाथ बिना कुछ बोले चुपचाप करवट बदलकर सो रहा।

भीतर आकर राजेन्द्र ने धीमे स्वर से कहा—"अच्छा, सचमुच ही जाग रही हैं आप। रोगी का क्या हाल है? दवा-अवा कुछ खिलायी-पिलायी क्या?"

कमल ने सिर हिलाकर कहा—"नही, कुछ नही खिलाया।"

राजेन्द्र ने उँगली से इशारा करके कहा—"चुप। नीद उचट जायगी, नीद खराब होना अच्छा नही।"

"नही। पर तुम्हारे मोचियों ने क्या किया?"

"वे भले आदमी थे, बात रख ली। मेरे पहुँचने के पहले ही यमराज के भैंसे आकर दो आत्माओ को ले गये। सवेरे दोनो मुर्दो को म्युनिसिपालिटी के भैंसो के हवाले कर छुट्टी पा लूँगा। और भी आठ-दस साँसे भर रहे हैं, कल एक वार आपको ले जाकर दिखा लाऊँगा। आशा है, आपको पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होगा। मगर आराम-कुरसी पर मेरा कम्वल का विछौना कहाँ है? भूल गई?"

कमल ने कम्वल विछा दिया।

"ओ.फ्—जान में जान आयी।" कहकर उसने एक लम्वी साँस ली और हथेलो पर पाँव पसारकर वह पड रहा। वोला—"दौड-धूप करते-करते पसीने से लथपथ हो गया हूँ, पखा-वखा कुछ है क्या?"

कमल हाथ मे पखा लेकर कुरसी खीचती हुई उसके सिरहाने वैठ गयी और वोली—"मैं हवा कर रही हूँ, तुम सो जाओ। रोगी के लिये दुश्चिन्ता करने की जरूरत नही, वे अच्छे हैं।"

"वाह! तव तो सव तरफ शुभ-ही-शुभ समाचार हैं।" कहते हुए उसने आँखे मीच ली।

१८

इन्फ्ल्युएजा इस देश मे विल्कुल नयी वीमारी नही है, 'डेगू' या हड्डी तोड बुखार के नाम से यहाँवाले इसे वहुत कुछ अवज्ञा और उपहास की दृष्टि से देखते रहे हैं। लोगो की यही धारणा थी कि दो-तीन दिन तकलीफ देने के सिवा उसका और कोई गहरा उद्देश्य नही होता। परन्तु इसकी किसी को कल्पनातक न थी कि सहसा ऐसी दुर्निवार महामारी के रूप मे उसका प्रकोप हो सकता है। लिहाजा, इस वार अकस्मात् इसी अपरिमेय शक्ति की सुनिश्चिन्त कठोरता से लोग पहले तो हतवुद्धि-से हो गये, वाद मे जिसमे जिधर वन सका, भाग खडा हुआ। अपने और पराये मे ज्यादा भेद-भाव न रहा। वीमार की तीमारदारी करना तो दूर रहा, मरते वक्त मुँह मे पानी देनेवाला भी वहुतो के भाग्य मे न जुटा। शहर और गाँव सर्वत्र ही एक-सी दशा थी। आगरे के भाग्य मे भी अन्यथा कुछ नही हुआ। उस समृद्ध जन-वहुल प्राचीन नगरी की शकल कुछ ही दिनो मे विलकुल ही वदल गयी। स्कूल-कॉलेज वन्द हो गये हैं, वाजार और मण्डियो की दूकानो मे ताले लग गये हैं, जमुना का किनारा सुनसान है,—हिन्दू और मुसलमान शववाहको के शकाकुल त्रस्त पैरो की आवाज के सिवाय सडको पर विलकुल सन्नाटा है। किसी भी तरफ देखने से यही मालूम होता है कि मारे भय और आशका के सिर्फ आदमियो की ही नही, वल्कि मकानो और पेड़-पौधों तक की शकल-सूरत विगड गयी है। शहर की ऐसी हालत में चिना, दु ख और शोक की ज्वाला के कारण वहुतो के साथ वहुतो का समझौता हो गया है,—कोशिश करके वातचीत द्वारा या मध्यस्थ मानकर नही, वल्कि यो ही अपने आप। आज भी जो लोग जिदा हैं, अभी तक इस दुनिया से अलग नही हुए, वे सभी मानो परस्पर एक-दूसरे के परम आत्मीय हो गये हैं। वहुत दिनो से जिनमे वातचीत तक वन्द थी, सहसा रास्ते मे भेट होते ही उनकी भी आँखों में आँसू छलक आते हैं।—किसी का भाई मर गया है तो किसी का लडका, किसी की स्त्री मर गयी है तो किसी की लडकी, नाराजी से मुँह फेर लेने की ताकत अब किमी मे नही रह गयी,—कभी किसी से वात हुई और कभी वह भी नही हुई, चुपचाप मन-ही-मन एक-दूसरे की कल्याण-कामना करके विदा ले ली है।

मोचियो के मुहल्ले मे अव ज्यादा आदमी नही वचे हैं। जितने मरे उतने ही भाग गये हैं। वाकी के

लिए राजेन्द्र अकेला ही काफी है। उनकी गति और मुक्ति का भार स्वय उसी ने अपने जिम्मे ले लिया है। सहकारिणी के तौरपर कमल हाथ बँटाने आयी थी। उसी का उसको भरोसा था कि बचपन मे चाय के बगीचे मे बीमार कुलियों की उसने सेवा की थी, पर दो-ही-तीन दिन मे वह समझ गयी कि उस पूँजी से यहाँ काम नही चल सकता। उ.फ् मोचियो की वह कैसी दुर्दशा थी! भाषा मे उसका वर्णन करके विवरण देना असम्भव है। झोपडियो में पॉव धरते ही सारा शरीर कॉप उठता था,—कही भी बैठने को जगह नही। वहाँ आने के पहले कमल नही जानती थी कि गदगी कैसा भयकर रूप धारण कर सकती है। इस बात की कल्पना को भी वह अपने मन में स्थान न दे सकी कि इन सबके मध्य में हरदम रहते हुए, अपने को सावधानी से बचाये रखकर, रोगियो की सेवा और देख-भाल की जा सकती है। बडे दर्प के साथ वह राजेन्द्र के साथ यहाँ आयी थीं। दुस्साहसिकता मे वह किसी से कम नहीं थी,—संसार की किसी बात से वह डरती नही थी,—मौत से भी नही, और उसने झूठ भी नही कहा था; पर यहाँ आकर उसने समझा कि इसकी भी एक सीमा है। कुछ दिनो मे ही डर के मारे उसकी देह का खून सूखने लगा। फिर भी बिलकुल ही दिवालिया होकर घर लौट आने के पहले राजेन्द्र उसे आश्वासन देते हुए बार-बार कहने लगा—"ऐसी निर्भीकता मैंने जीवन मे नही देखी। ठीक तूफान के मुँह को ही आपने सभाल लिया। पर अब जरूरत नही,—आप घर जाकर कुछ दिन आराम कीजिए। इनके लिए जो कुछ आप किये जा रही हैं उसका ऋण ये अपने जीवन मे न चुका सकेगे।"

"ओर तुम?"

राजेन्द्र ने कहा—"इन बचे हुओ को महायात्रा कराकर मैं भी भागूँगा। नही तो, आप चाहती हैं कि इनके साथ मैं भी मर जाऊँ?"

कमल को जवाब ढूँढे न मिला। क्षण-भर उसकी तरफ देखती रही, फिर चली आयी। मगर इसके माने यह नही कि वह इन कई दिनो मे अपने घर बिलकुल नही आ सकी हो। रसोई बनाकर साथ ले जाने के लिए उसे रोज एक बार अपने घर आना पडता था। पर आज यह जानकर कि उसे फिर उस भयानक स्थान मे वापस न आना पडेगा, एक ओर जैसे उसे तसल्ली हुई, वैसे ही दूसरी ओर अव्यक्त उद्वेग से उसका सारा जी भर उठा। आते वक्त वह राजेन्द्र से खाने के बारे मे पूछना भूल गयी थी। मगर यह त्रुटि चाहे कितनी ही बडी क्यो न हो, जहाँ उसे वह छोड आयी है, उसके लेखे कुछ नही थी।

स्कूल कालेज बन्द होने के समय से हरेन्द्र का ब्रह्मचर्याश्रम भी बन्द है। ब्रह्मचारी बालको को किसी निरापद स्थान मे पहुँचा दिया गया हे और देख-रेख के लिए सतीश उनके साथ है। अविनाश की बीमारी के कारण हरेन्द्र खुद नही जा सका। आज वह कमल के घर आया और नमस्कार करके बोला—"पाँच-छ दिनो से रोज आ रहा हूँ, आपसे भेट ही नहीं होती। कहाँ थी?"

कमल ने मोचियो के मुहल्ले का नाम लिया तो वह अत्यन्त विस्मित हुआ, बोला—"वहाँ? वहाँ तो, सुनते हैं बहुत लोग मर रहे हैं! यह सलाह आपको दी किसने? पर किसी ने भी दी हो, अच्छा काम नही किया।"

"क्यो?"

"क्यो क्या? वहाँ जाने का अर्थ हे लगभग आत्म-हत्या। मैं तो यह सोच रहा था कि शिवनाथ बाबू आगरे मे चले गये हैं, सो शायद आप भी कही चली गयी होगी। पर कुछ दिनो के लिए ही, नही तो मकान खाली किये बगैर नही जाती—अच्छा राजेन्द्र का पता हे कुछ? वह क्या यहीं हे या और कही चला गया? अचानक ऐसा गोता मारा कि कोई पता ही नही मिलता।"

"उनसे क्या आपको कोई खास काम है?"

"नही, खास काम के माने जो साधारणत समझे जाते हैं, वैसा तो कोई काम नहीं। फिर काम ही समझिए। कारण मैं भी अगर उसकी खोज-खबर लेना बन्द कर दूँ तो सिवा पुलिस के और कोई उसका आत्मीय-जन नही रह जाता। मुझे विश्वास है, आपको मालूम है कि वह कहाँ है।"

कमल ने कहा, "मुझे मालूम है। पर आपको बताने में कुछ फायदा नहीं। यह अनुसधान करना अनुचित कुतूहल है कि जिसे घर से भगा दिया है, अब वह बाहर निकलकर कहाँ गया।"

हरेन्द्र कुछ देर चुप रहा। फिर बोला—"मगर वह मेरा घर नहीं, आश्रम है। वहाँ उसे स्थान नहीं दे सका। मगर इसकी शिकायत दूसरे के मुँह से सुनना भी मुझे गवारा नही। अच्छी बात हे, मैं जाता हूँ।

उसे पहले भी बहुत बार ढूँढ निकाला है और इस बार भी ढूँढ लूँगा। आप ढकके नही रख सकेगी।''

यह बात सुनकर कमल हँस दी। बोली—''जैसा कि आप कह रहे हैं हरेन्द्र बाबू, फिर अगर उन्हे मैं ढक रखूँगी तो क्या आप समझते हैं कि उससे मेरा दु ख दूर हो जायगा?''

हरेन्द्र खुद भी हँस दिया, पर उस हँसी के इर्द-गिर्द कुछ खोखलापन रह गया, उसने कहा—''मेरे सिवा इस प्रश्न का जवाब देनेवाले आगरे मे और भी बहुतेरे हैं। वे क्या कहेगे, मालूम है? कहेंगे—कमल, आदमी का दुख तो एक तरह का है नहीं, बहुत तरह का है। उनकी प्रकृतियाँ भी भिन्न हैं और दु ख दूर करने के रास्ते भी भिन्न हैं। लिहाजा, उन दु खी लोगो के साथ अगर कभी मुलाकात हो जाय तो बातचीत करके उन्ही से निर्णय कर लीजियेगा।'' फिर वह जरा ठहरकर बोला—''लेकिन असल में आप भूल रही हैं। मैं उस दल का नहीं हूँ। व्यर्थ परेशान करने मैं नही आया क्योंकि ससार मे जितने लोग आप पर सचमुच श्रद्धा रखते हैं, उन्ही में से मैं भी एक हूँ।''

कमल ने उसके चेहरे की तरफ एक नजर डालकर धीरे से पूछा—''मुझपर आप सचमुच श्रद्धा रखते हैं सो किस नीति से? मेरे मत या आचरण, किसी के भी साथ तो आप लोगो का मेल नही।''

हरेन्द्र ने उसी वक्त उत्तर दिया—''नही, कोई मेल नही। मगर फिर भी मैं गहरी श्रद्धा रखता हूँ। क्यो? यही आश्चर्य की बात मैं अपने आप से बार-बार पूछा भी करता हूँ।''

''कोई उत्तर नही पाते?''

''नही। मगर विश्वास है कि किसी-न-किसी दिन पा लूँगा जरूर।'' फिर जरा ठहरकर बोला—''आपका इतिहास कुछ-कुछ आप के निज के मुँह से सुना है, कुछ अजित बाबू से मालूम हुआ है,—हाँ, आपको मालूम होगा शायद, वे अब हमारे आश्रम मे ही रहने लगे हैं।''

कमल ने सिर हिलाकर कहा—''सो तो आप पहले ही बता चुके हैं।''

हरेन्द्र कहने लगा—''आपके जीवन-इतिहास के विचित्र अध्याय ऐसी उदार सरलता से सामने आ खडे हुये हैं कि उनके विरुद्ध सरसरी राय जाहिर करने मे डर लगता है। अब तक जिन बातो को बुरा मानना सीखा है, आपके जीवन ने मानो उन्ही के विरुद्ध मामला दायर कर दिया है। इन बातो का न्याय करनेवाला कहाँ मिलेगा और उसका नतीजा क्या होगा सो मुझे कुछ भी नही मालूम, किन्तु भला बताइए तो सही कि इस तरह से जो निर्भयता से आ सकती हैं और घूँघट की कोई आवश्यकता ही नही समझती, उनके प्रति श्रद्धा किये बगैर कैसे रहा जा सकता है?''

कमल ने कहा—''निर्भयता से आपके सामने खडा हो जाना ही क्या कोई बहुत बडा काम है? दो कन-कटो की कहानी क्या आप ने नही सुनी? वे भी बीच सडक से चलते थे। आपने नही देखा, लेकिन मैंने चाय-बगीचो के साहबो को देखा है। उनका निर्भय, नि सकोच बेहयापन देखकर दुनिया मे लज्जा को भी लज्जा आती है। लज्जा को उन्होने मानो गर्दनिया देकर बाहर निकाल दिया है। उनके दु.साहस की तो सीमा नही,—मगर उनकी यह बात क्या आदमी के लिए श्रद्धा की चीज है?''

हरेन्द्र को ऐसे उत्तर की आशा और चाहे किसी से रही हो, इस स्त्री से नही थी। सहसा मानो उसे कोई बात ढूँढे न मिली, बोला—''वह और बात है।''

कमल ने कहा—''कैसे जाना कि और बात है? बाहर से मेरे पिता को भी लोग इन्ही मे से एक समझा करते थे। मगर मैं जानती हूँ, वह सच नही था। लेकिन सच तो सिर्फ जानने पर ही निर्भर नही है,—दुनिया के आगे उसका प्रमाण क्या है?''

हरेन्द्र इस प्रश्न का भी उत्तर न दे सका और चुप रहा।

कमल कहने लगी—''मेरा इतिहास आप सबने सुना है, और खूब सम्भव है कि उस कहानी का परमानन्द के साथ उपभोग भी किया है। पर इस विषय मे आप मौन हैं कि मेरे काम सब अच्छे हुए या बुरे, जीवन मेरा पवित्र है या कलुषित,—मगर हाँ, वे काम गुप्तरूप से न होकर सब लोगो की आँखो के सामने,—सबकी उपेक्षा दृष्टि के नीचे हुए हैं,—मेरे प्रति आपकी श्रद्धा के आकर्षण का कारण यही है। हरेन्द्र बाबू, दुनिया मे आदमी की श्रद्धा मैंने इतनी ज्यादा नही पायी कि लापरवाही से बिना कहे-सुने उसका अपमान कर सकूँ, पर आप मेरे सम्बन्ध में जैसे और भी बहुत कुछ जानते हैं, वैसे ही यह भी जान रखिए कि अक्षय बाबुओं की अश्रद्धा से बढकर यह श्रद्धा ही मुझे पीडा पहुँचाती है। अश्रद्धा मुझसे सही जाती है, पर इस श्रद्धा का भार मेरे लिए दु:सह है।''

हरेन्द्र पहले की तरह ही क्षण-भर मौन रहा। कमल के वाक्यो से, खासकर उसके कण्ठस्वर की शात-कठोरता से मन-ही-मन उसे अपनेअपमानका वोध हुआ। थोडी देर वाद उसने कहा—"क्या इसपर आपको विश्वास नही होता कि विचार और व्यवहार से अनैक्य होते हुए भी किसीपर श्रद्धा की जा सकती है, कमसे कम मैं कर सकता हूँ?"

कमल ने बहुत ही सरलता से उसी वक्त जवाब दिया,—"ऐसा तो मैंने नही कहा हरेन्द्र वावू कि विश्वास नही होता। मैंने तो सिर्फ यही कहा है कि ऐसी श्रद्धा मुझे पीडा पहुँचाती है।" फिर जरा ठहरकर कहा,—"आचार और विचार के लिहाज से अक्षय वावू और आप मे कोई विशेष भेद नही। उनमें बहुत जगह अनावश्यक और अत्यधिक कठोरता न होती तो आप सब एक-से ही होते।और अश्रद्धा के लिहाज से भी आप सब एक-से हैं। मेरे सिर्फ इस साहस ने कि मैं लज्जा और सकोच के मारे छिपी-छिपी नही फिरती, आप लोगो का आदर प्राप्त किया है। मगर इसकी कितनी-सी कीमत है हरेन्द्र वावू? वल्कि यह सोचकर कि आप लोग इसी के लिए अबतक मेरी वाहवाही करते आ रहे हैं, मेरे मन मे एक अरुचि ही पैदा होती है।"

हरेन्द्र ने कहा,—"इसके लिए वाहवाही अगर हो तो क्या वह असगत है? साहस क्या दुनिया मे कोई चीज नही?"

कमल ने कहा,—"आप लोग हर एक प्रश्न को इतना एकागी करके क्यो पूछते हैं? यह तो मैंने नही कहा कि साहस कोई चीज ही नही, मैंने तो कहा था कि यह चीज ससार मे दुर्लभ है और दुर्लभ होने से ही यह आँखो में चकाचौंध पैदा कर देती है। पर इससे भी वडी एक और चीज है, और वह चीज सहसा वाहर से साहस के अभाव जैसी ही मालूम देती है।"

हरेन्द्र ने सिर हिलाते हुए कहा,—"समझ नही सका। आपकी बहुत-सी वाते वहुधा मुझे पहेली-सी मालूम देती हैं, लेकिन आज की वाते तो उन्हे भी लॉघ गयी हैं। मालूम होता है, आज आप वहुत ही अन्यमनस्क हैं। इसका आपको कुछ खयाल ही नही कि किसका जवाब किसे दिये चली जा रही हैं।"

कमल ने कहा,—"ठीक यही वात है।" फिर क्षण-भर स्थिर रहकर वोली, "हो भी सकता है। सचमुच की श्रद्धा पाना क्या चीज है, सो शायद अबतक मैं खुद ही नही जानती। उस दिन सहसा चौंक-सी गयी। हरेन्द्र वावू, आप दुखी न हो, परन्तु उसके साथ तुलना करने से और सब वाते आज परिहास-सी ही मालूम होती हैं।" कहते-कहते उसकी आँखों की प्रखर दृष्टि छायाच्छन्न-सी हो आयी, और सारे चेहरेपर ऐसी एक स्निग्ध सजलता प्रवाहित हो उठी कि हरेन्द्र को अनुभव हुआ कि कमल की ऐसी मूर्ति उसने पहले कभी देखी ही न थी। अब उसे जरा भी सशय न रहा कि ये वाते कमल किसी अनुद्दिष्ट व्यक्ति को लक्ष्य करके कह रही है। वह सिर्फनिमित्त मात्र है और इसीलिए शुरू से आखिरतक सब-कुछ उसे पहेली-सा मालूम हो रहा है।

कमल कहने लगी,—"अभी-अभी आप मेरी दुर्दम निर्भीकता की प्रशसा कर रहे थे अच्छी वात है। आपने सुना है कि शिवनाथ मुझे छोडकर चले गये हैं?"

हरेन्द्र का मारे शर्म के सिर झुक गया। वोला,—"हाँ।"

कमल ने कहा,—"हम दोनो मे मन-ही-मन एक शर्त थी कि सम्वन्ध-विच्छेद का दिन अगर कभी आयेगा तो सहज ही दोनो अलग हो जाएँगे। नही-नही, किसी दस्तावेजपर लिखा-पढ़ी करने की जरूरत न होगी, यो ही।"

हरेन्द्र ने कहा,—"ब्रूट।"

कमल ने कहा,—"सो तो आपके मित्र अक्षय बाबू हैं। शिवनाथ गुणी आदमी हैं, उनके विरुद्ध मुझे अपनी तरफ से कोई वडी शिकायत नही। और शिकायत करने से लाभ ही क्या है? हृदय की अदालत में इकतरफा फैसला ही होता है, उसकी तो कोई अपील-कोर्ट है नही।"

हरेन्द्र ने कहा,—"इसके मानी यह हुए कि प्रेम के सिवा और किसी वन्धन को आप नही मानती?"

कमल ने कहा,—"पहली वात तो यह कि हमारे मामले मे कोई और वन्धन था या नही, और दूसरी, यदि होता भी तो उसे मजूर कराने से फायदा क्या था? देह का जो हिस्सा लकवे से बेकाम हो जाता है उसके लिए बाहर का वन्धन भारी बोझ हो उठता है। उसके द्वारा काम कराना ही सबसे ज्यादा खटकता है।" कहकर क्षण-भर वह चुप रही और फिर कहने लगी,—"आप सोचते होंगे कि सचमुच का ब्याह

नही हुआ, इसी से ऐसी बात मुँह से निकाल रही हूँ, हुआ होता तो न निकाम सकती। परन्तु यह बात नही है। हुआ होता तो भी निकाल सकती थी, पर हाँ, तब इतनी आसानी से इस समस्या का हल न कर पाती। नाकाम हिस्सा भी शायद देह से जुड़ा रह जाता, और अधिकाश स्त्रियो के सम्बन्ध मे जैसा होता है, मुझे भी उसी तरह आमरण उस दु:ख का बोझा लिये यह जिन्दगी बितानी पड़ती। मैं बच गयी हरेन्द्र बाबू, भाग्य से छुटकारे का दरवाजा खुला था, सो मुक्ति पा गयी।''

हरेन्द्र ने कहा,–''आपको शायद मुक्ति मिल गयी। लेकिन इस तरह सभी अगर मुक्ति का द्वार खुला रखना चाहे तो संसार मे समाज-व्यवस्था की बुनियादतक उखड जायगी। ऐसा कोई नही जो उस अवस्था की भयंकर मूर्ति को कल्पना में भी अंकित कर सके। इस सम्भावना को सोचा भी नही जा सकता।''

कमल ने कहा,–''सोचा जा सकता है, और एक दिन ऐसा आयेगा जब सोचा जायगा। इसका कारण यह है कि मनुष्य के इतिहास का शेष अध्याय अभीतक पूरा लिखा नही गया। एक दिन के किसी एक अनुष्ठान के जोर से अगर उसका छुटकारे का रास्ता सारे जीवन के लिए रोक दिया जाय तो वह श्रेय की व्यवस्था नही माना जा सकता। संसार मे सभी भूल-चूको के सुधार की व्यवस्था है, कोई उसे बुरा नही बताता, फिर भी जहाँ भ्रान्ति की सम्भावना सबसे ज्यादा है और उसके निराकरण की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक है, वही लोगो ने अगर सारे उपायो को अपनी इच्छा से बन्द कर रखा हो तो वह अच्छा कैसे मान लिया जाय, बताइए भला?''

इस स्त्री की तरह-तरह की दुर्दशाओ के कारण हरेन्द्र के मन मे गहरी सहानुभूति थी। विरुद्ध आलोचना मे वह जल्दी शामिल नही होता और जब विरोधी दल तरह-तरह की गवाहियो और प्रमाणो से उसे हीन सावित करने की कोशिश करता तब वह प्रतिवाद भी करता। विरोधी लोग कमल के प्रकट आचरण और वैसी ही निर्लज्ज उक्तियो की नजीरे दे-देकर जब धिक्कारते तब हरेन्द्र तर्क-युद्ध मे परास्त होकर भी जी-जान से यह समझाने की कोशिश किया करता कि कमल के जीवन मे हर्गिज यह सच नही हो सकता। कही-न-कही कोई एक निगूढ रहस्य है जो एक-न-एक दिन अवश्य ही व्यक्त होगा। इसपर वे व्यग्य से कहते, कृपाकर उसे व्यक्त कर दीजिए तो प्रवासी बंगाली समाज मे हम लोग बदनामी से बच जायँ। और यदि कही अक्षय मौजूद होता तो क्रोध से पागल होकर कहता, आप लोग सभी समान हैं। मेरे जैसी विश्वास की शक्ति किसी मे भी नही है, आप लोग उसे अपना भी नही सकते, छोड भी नही सकते। आजकल के कुछ उग्र विलायती विचारो के भूत ने आप लोगो को ग्रस्त कर रक्खा हैं।

अविनाश कहते,–''ये विचार कमल के मुँह से नये ही सुने हो, सो बात भी नही है अक्षय, मैंने तो वे पहले से ही सुन रक्खे हैं। आज-कल की दो-चार अँग्रेजी की अनुवादित पुस्तके पढ लेना ही इसके लिए काफी है। विचारों की इसमे कोई करामात नही।''

अक्षय कठोर होकर पूछता,–''तो किसकी करामात है? कमल के रूप की? अविनाश बाबू, हरेन्द्र अविवाहित छोकरा है, उसे माफ किया जा सकता है; मगर आश्चर्य तो यह कि बुढापे मे आकर आप लोगों की आँखे भी चौंधिया गयी।'' इतना कहकर वह कनखियो से आशु बाबू की तरफ देखता और कहता, ''मगर यह 'प्रेत-नीर'* का उजाला है आशु बाबू, सड़े कीचड से इसकी पैदाइश है। साफ दिखाई दे रहा है कि उस कीचड मे ही किसी दिन बहुतो को खीच ले जाकर मारेगा वह, सिर्फ अक्षय को वह भुलावा नही दे सकता। वही असल-नकल पहचानता है।''

आशु बाबू मुसकराकर रह जाते, पर अविनाश मारे क्रोध के लाल हो जाते। हरेन्द्र कहता,–''आप बडे बहादुर हैं अक्षय बाबू, आपका जयजयकार हो। हम सब मिलकर जब कीचड़ मे डुबकियाँ लेने लगे तब आप किनारे पर खडे-खडे बगले बजाकर नाचिएगा, हममे से कोई भी आपकी निन्दा न करेगा।''

अक्षय जवाब देता,–''निन्दा का काम मैं करता ही नही हरेन्द्र। गृहस्थ आदमी हूँ, मैं सहज-सीधी बुद्धि से समाज को मानकर चलता हूँ। न तो मैं व्याह की कोई नयी व्याख्या करना चाहता हूँ और न दुनिया-भर के वाहियात लडको को जमाकर ब्रह्मचारी-गिरी ही दिखाता फिरता हूँ। आश्रम मे चरणो की धूल का वजन और जरा बढा लेने की कोशिश करो दादा, फिर साधन-भजन के लिए चिन्ता न करनी होगी। देखते-देखते सारा का सारा आश्रम विश्वामित्र ऋषि का तपोवन बन जायगा और शायद हमेशा के लिए

* दलदल वाले स्थानों में एकाएक पैदा होने वाला और बुझ जाने वाला प्रकाश जो एक नैसर्गिक चमत्कार है।

तुम्हारी एक कीर्ति रह जायगी।"

अविनाश गुस्सा भूलकर जोर से हँस पडते और निर्मल दबी मुसकान से आशु बाबू का चेहरा चमक उठता। हरेन्द्र के आश्रमपर किसी की भी आस्था नही थी, उसे इन लोगो ने एक व्यक्तिगत खामख्याली भर समझ रखा था।

जवाब मे हरेन्द्र मारे गुस्से के लाल होकर कहता,—"पशु के साथ तो युक्ति-तर्क चल नही सकता, उसके लिए दूसरी विधि है। मगर, उसकी व्यवस्था करते नही बनती, इसीलिए आप चाहे जिसे सीग मारते फिरते हैं। छोटे-बडे, नीच-ऊँच, स्त्री-पुरुष किसी का भी खयाल नही करते।" और यह कहते हुए अन्य दो-चार जनो को लक्ष्य करके कहता,—"पर आप लोग इसे प्रश्रय क्यो कर देते हैं? इतना बडा एक कुत्सित इंगित भी मानो कोई परिहास का विषय हो।"

अविनाश अप्रतिभ-से होकर कहते,—"नही-नही, प्रश्रय क्यो देने लगे, पर तुम जानते ही हो, अक्षय को बोलते वक्त उपयुक्त काल और क्षेत्र का ज्ञान नही रहता।"

हरेन्द्र कहता,—"यह काण्ड-ज्ञान सच पूछा जाय तो उसकी अपेक्षा आप लोगो को और भी कम है। मनुष्य के मन का चेहरा तो दिखाई देता नही दादा, नही तो हँसी-मजाक कम ही लोगो के मुँह से शोभा देता। विवाह के बहाने शिवनाथ ने कमल को ठग लिया, मगर मेरा दृढ विश्वास है कि उस धोखे को भी कमल ने सत्य के समान ही मान लिया। गार्हस्थिक लेन-देन के नफे-नुकसान का बखेडा करके उसने उसे लोगो की निगाह मे नीचे नही गिराना चाहा। पर उसके न चाहनेपर भी आप लोग क्यो छोडने लगे? शिवनाथ उसके प्रेम की निधि हो सकता है, पर आप लोगो का कौन है? क्षमा का अपव्यय आप लोग न सह सके। यही है न आप लोगो की घृणा का मूल कारण,—असल पूँजी? सो उसी को भँजा-भँजाकर आप लोगो से जितना चलाया जाय, चलाइए, पर मैं बिदा लेता हूँ।" इतना कहकर हरेन्द्र उस दिन गुस्सा होकर चला गया।

उसके मन मे इस बात का दृढ विश्वास था कि किसी दिन कमल के मुँह से यह बात व्यक्त होगी कि शैव-विवाह को वास्तविक विवाह मानकर ही वह धोखे से छली गयी थी। अपनी इच्छा से, सब कुछ जानते हुए एक गणिका की तरह उसने शिवनाथ का आश्रय नही लिया था। परन्तु आज उसके विश्वास की यह भीत भी मिट्टी मे मिल गयी। हरेन्द्र कोई अक्षय या अविनाश नही था। बिना किसी भेदभाव के नर-नारी सबके प्रति उनकी तबी[illegible]त मे एक तरह की विस्तृत और गहरी उदारता थी। इसीलिए देश और दस के कल्याण के लिए सब तरह के अनुष्ठानो मे उसने बचपन से अपने को लगा रखा था। उसके ब्रह्मचर्य-आश्रम, उसका उदार दान, सबके साथ अपना सब कुछ बाँट लेना,— इन सबकी जड मे उसकी वही उदार भावना काम कर रही है और उसकीइस प्रवृत्ति ने ही उसे शुरू से कमल के प्रति श्रद्धान्वित रखा था। परन्तु इसकी उसने कल्पना भी नही की थी कि आज वह उसी के मुँहपर उसी के प्रश्न के उत्तर मे ऐसा भयानक जवाब दे बैठेगी। भारत के धर्म, नीति, आचार,—उसके स्वातन्त्र्य और विशिष्ट सभ्यता के प्रति हरेन्द्र के मन मे अच्छेद्य स्नेह और अपरिमेय भक्ति थी, फिर भी, लम्बी पराधीनता और वैयक्तिक कमजोरियो के कारण उत्पन्न होनेवाले उसके व्यतिक्रमो को भी वह अस्वीकार नही करता था। परन्तु कमल के द्वारा ऐसी उग्र अवज्ञा के साथ उसके मूलभूत सिद्धान्तो तक के अस्वीकार किये जाने के कारण उसकी वेदना की सीमा नही रही। इस बात की याद करके कि कमल के पिता यूरोपीय थे और माता कुलटा थी,—उसकी नसो मे व्यभिचार का खून डोल रहा है, मारे घृणा के वह मन-ही-मन स्याह पड गया। दो-तीन मिनट चुप रहकर धीरे से बोला,—"तो अब जाता हूँ—"

कमल हरेन्द्र के मन के भाव को ठीक से ताड न सकी, सिर्फ एक परिबर्तनपर उसका ध्यान गया। धीरे से उसने पूछा,—"मगर जिस काम के लिए आये थे, उसका तो कुछ किया ही नही?"

हरेन्द्र ने सिर उठाकर पूछा,—"क्या काम?"

कमल ने कहा,—"राजेन्द्र की खबर जानने आये थे, पर बगैर जाने ही चले जा रहे हैं। अच्छा, यहाँ उनके रहने के कारण क्या आप लोगो मे बहुत भद्दी आलोचना हुआ करती है? सच बताइएगा?"

हरेन्द्र ने कहा,—"यदि कभी होती भी है तो उसमे शरीक नही होता। मेरे लिए यही काफी है कि वह पुलिस के हाथ मे न पडे। उसे मैं पहचानता हूँ।"

"लेकिन मुझे?"

"लेकिन आप तो ऐसी बातो का ख्याल करती नही, और न आपके ऐसे विश्वास ही हैं।"

बहुत कुछ ऐसा ही है। यानी ऐसी कोई कडी शपथ मैंने नहीं ले रखी है कि इन बातो का ख्याल करूंगी ही। पर मित्र का ही ख्याल करने से काम नही चलता हरेन्द्र बाबू, और एक आदमी का भी ख्याल करना जरूरी है।"

"इसे मैं व्यर्थ समझता हूँ। बहुत दिनो के बहुत काम-काजो मे जिसे मैंने बिना किसी सशय के पहिचान लिया है, उसके सम्बन्ध मे मुझे कोई आशका नही। उसकी जहाँ तबीयत हो, रहे; मैं निश्चिन्त हूँ।"

कमल ने उसके चेहरे की तरफ क्षण-भर चुप रहकर देखा और कहा,—"आदमी को बहुत परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं हरेन्द्र बाबू। उसका एक दिन पहले का प्रश्न सम्भव है कि दूसरे दिन के उत्तर से मेल न खाय। किसी के सम्बन्ध मे भी अपने विचार को इस तरह शेष बनाकर नही रखना चाहिए, धोखा खाना पडता है।"

हरेन्द्र ने अनुमान किया कि कमल ने ये बातें सिर्फ तत्त्व-दृष्टि से ही नही कही, इनमे कुछ एक इशारा भी है। परन्तु पूछ-ताछ करके उस इशारे को स्पष्ट करने की उसे हिम्मत नही पडी। राजेन्द्र के प्रसग को बन्द करके उसने सहसा दूसरा प्रसग छेड दिया। बोला —"हम लोगों ने निश्चय किया है कि शिवनाथ को उचित दण्ड दिया जाय।"

कमल सचमुच ही आश्चर्य से पड गयी। उसने पूछा,—"हम लोगो ने किसने?"

हरेन्द्र ने कहा,—"जो भी हो, उनमें मैं भी एक हूँ। आशु बाबू बीमार हैं, उन्होने वचन दिया है कि अच्छे होनेपर वे मेरी सहायता करेगे।"

"वे बीमार हैं?"

"हाँ, आज सात-आठ दिन हुए उनकी तबीयत खराब है। मनोरमा पहले से ही चली गयी है। आशु बाबू के चाचा काशीवास कर रहे हैं, वे ही आकर उसे ले गये हैं।"

सुनकर कमल चुप हो रही। हरेन्द्र कहने लगा,—"शिवनाथ जानता है कि कानून की रस्सी उसतक पहुँच नही सकती। इसी बलपर उसने अपने मरे हुए मित्र की स्त्री को धोखा दिया, अपनी बीमार स्त्री को त्याग दिया और फिर बेखटके आपका सर्वनाश किया। कानून को वह बहुत अच्छी तरह समझता है, सिर्फ यही नही जानता कि दुनिया मे कानून ही सब कुछ नही है, उसके बाहर भी कुछ और मौजूद है।"

कमल ने हँसते हुए कौतुक के साथ पूछा,—"लेकिन आप लोगो ने दण्ड उनके लिए क्या तय किया है? उन्हे पकड लाकर फिर एक बार मेरे साथ जोड देगे, यही न?" और वह जरा हँस दी। उसका यह प्रस्ताव हरेन्द्र को भी ऐसा हास्यकार प्रतीत हुआ कि उससे भी बगैर हँसे न रहा गया। बोला,—"मगर यह भी तो नही हो सकता कि वह जिम्मेदारी को इस तरह छोडकर अपने मन के माफिक बिना किसी बाधा-विघ्न के बचकर निकल जाय और इसके भी कोई माने नही कि आपके साथ उसे जोड ही देना होगा।"

कमल ने कहा,—"तो आखिर उन्हे लाकर आप करेंगे क्या? मुझपर पहरा देने के काम मे लगायेगे, या उनकी गरदन पकडेगे और नुकसान वसूल कर मुझे दिलायेगे? पहली बात तो यह कि रुपये मैं लूँगी नही, दूसरी वह चीज उनके पास है भी नही। शिवनाथ कितने गरीब हैं सो और कोई भले ही न जाने, मैं तो जानती हूँ।"

"तो क्या इतने बडे अपराध का कोई दण्ड ही न होगा? और कुछ हो चाहे न हो पर यह तो उन्हे जता देना जरूरी है कि बाजार से आज भी चाबुक खरीदा जा सकता है।"

कमल व्याकुल होकर कहने लगी,—"नही-नही, ऐसा न कीजिएगा। उससे मेरा इतना बडा अपमान होगा कि मैं उसे सह नही सकूँगी।" फिर उसने कहा,—"इतने दिन मैं गुस्से मे ही जल-भुन रही थी कि इस तरह चोर की भाँति भागे फिरने की क्या जरूरत थी और साफ-साफ मुझसे कहके जाते तो क्या मैं उन्हे रोक लेती? तब मुझे यह चोरी-छिपते रहने का असम्मान ही मानो पर्वत के बराबर बनकर दिखाई देता था। उसके बाद सहसा एक दिन मौत के मुहल्ले से बुलाहट आयी। वहाँ न जाने कितनी मौते अपनी आँखो देखकर आयी। आज मेरी चिन्ता की धारा एक दूसरे ही रास्ते से बहने लगी है। अब सोचती हूँ कि उनमे जो कहकर जाने का साहस नही था, सो वही तो मेरा सम्मान है, उनका छिपना, छल-कपट और सारे मिथ्याचार ने मेरी मर्यादा बढा देने का ही काम किया है। पाने के दिन उन्होने मुझे धोखा देकर

ही पाया था, लेकिन छोडने के दिन उन्हें ब्याज और मूल सब चुकता करके जाना पडा है। अब मुझे कोई शिकायत नही, मेरा सबका सब वसूल हो गया है। आशु बाबू को नमस्कार जताकर कहिएगा कि मेरी भलाई करने की कामना से कही वे मेरा नुकसान न करे।"

हरेन्द्र एक भी बात न समझ सका, अवाक होकर देखता रहा।

कमल ने कहा,—"ससार की सब चीजे सबके समझने की नही होती हरेन्द्र बाबू, आप दु खित न हों। पर मेरी बात अब न कीजिए। दुनिया मे सिर्फ शिवनाथ और कमल ही हों, सो बात नही। यहाँ और भी लोग रहते हैं, और उनके भी सुख-दु ख हैं।" कहते हुए उसने निर्मल औरप्रशान्तहँसी से मानो दु ख और वेदना की घनी भाप एक मुहूर्त-भर मे दूर कर दी। बोली,—"कौन कैसे हैं सो खबर भी तो दीजिए?"

हरेन्द्र ने कहा,—"पूछिए?"

"अच्छी बात है। पहले बताइए कि अविनाश बाबू का क्या हाल है? सुना था कि वे बीमार हैं, अब अच्छे हो गये?"

"हाँ। पूरी तरह अच्छे न होनेपर भी बहुत अच्छे हैं। उनके एक चचेरे भाई रहते हैं लाहौर, स्वास्थ्य ठीक करने के लिए वे लडके को साथ लेकर वही गये हैं। लौटने मे शायद दो-एक महीने की देर होगी।"

"और नीलिमा? वे भी क्या साथ गयी हैं?"

"नही, वे यही हैं।"

कमल ने आश्चर्य के साथ पूछा,—"यही हैं? अकेली, उस मकान मे?"

हरेन्द्र ने पहले तों जरा इधर-उधर किया, फिर कहा,—"भाभी की समस्या सचमुच ही जरा कठिन हो गयी थी, पर भगवान् ने बचा लिया, आशु बाबू की तीमारदारी के बहाने उन्हे यही छोड जाने का सुयोग मिल गया।"

यह सवाद इतना बेडौल था कि कमल आगे कुछ पूछ न सकी, सिर्फ विस्तृत विवरण की आशा से जिज्ञासु-मुख से उसकी तरफ देखती रह गयी। हरेन्द्र की दुविधा मिट गयी और जब वह बोला तब उसके स्वर से गूढ़ क्रोध का चिन्ह प्रकट हुआ। कारण इस मामले मे अविनाश के साथ उसका जरा-कुछ कलह-सा भी हो गया था। हरेन्द्र ने कहा,—"परदेश मे अपने डेरेपर जो चाहे सो किया जा सकता है, पर इसी कारण वयस्का विधवा साली को लेकर चचेरे भाई के घर जाकर नही रहा जा सकता। उन्होने कहा,—'तुम भी तो मेरे अपने जन हो, तुम्हारे घर क्या—' मैंने जवाब दिया कि पहले तो मैं तुम्हारा अपना आदमी हूँ, सो बहुत दूर के नाते से,—पर उनका कोई भी नही। दूसरे वह मेरा घर नही, आश्रम है, वहाँ रखने का नियम नही। तीसरे फिलहाल लडके सब बाहर चले गये हैं, मैं अकेला हूँ।' सुनकर भाई साहब को ऐसी चिन्ता हुई जिसकी हद नही। आगरे मे भी नही रहा जा सकता,—चारो तरफ महामारी फैल रही है, और उनके भाई के यहाँ से बार-बार चिट्ठी और तार आ रहे हैं—भाई साहब बडे सकट मे पड गये।"

कमल ने पूछा—"पर सुना है कि नीलिमा का मायका भी तो है?"

हरेन्द्र ने सिर हिलाकर कहा—"है। और सुनते हैं, एक बडी भारी-सी सुसराल भी है। पर उन सबका कोई जिक्र ही नही उठा। अचानक एक दिन इसका विचित्र समाधान हो गया। प्रस्ताव किस तरफ से पेश हुआ था, मुझे नही मालूम, पर, बीमार आशु बाबू की सेवा का भार भाभी ने ले लिया।"

कमल चुप रही।

हरेन्द्र हँसता हुआ बोला—"मगर हाँ, आशा है कि भाभी की नौकरी नही जायगी। उन लोगों के वापस आने पर फिर वे अपने पुराने गृहिणी-पद पर बहाल हो सकेंगी।"

कमल ने इस श्लेषका भी कोई उत्तर नही दिया। वैसे ही मौन बनी रही।

हरेन्द्र कहने लगा—"मैं जानता हूँ, भाभी वास्तव मे सच्चरित्र महिला हैं। अविनाश [illegible]वे उनके बुरे से बुरे दिनो मे छोडकर नही जा सकी थी, और उस रह जाने के कारण ही उधर के उनके सब रास्ते बन्द हो गये हैं। मगर इधर भी देखा कि विपत्ति के दिनो मे उनके लिए रास्ता खुला नही है। इसी मे सोचता हूँ कि बिना किसी अपराध के भी इस देश की स्त्रियाँ कितनी बेबस हैं।"

कमल उसी तरह चुप मारे बैठी रही, कुछ बोली नही।

हरेन्द्र ने कहा—"ये बाते सुनकर आप शायद मन-ही-मन हँस रही हैं, क्यो?"

कमल ने सिर्फ सिर हिलाकर कहा—"नही।"

हरेन्द्र बोला—"मैं अकसर जाया करता हूँ आशु बाबू को देखने। वे दोनो ही आपकी खबर जानना चाहते थे। भाभी के आग्रह की तो कोई सीमा ही नही,—एक दिन चलिएगा वहाँ?"

कमल उसी वक्त राजी हो गयी। बोली—"आज ही चलिए न हरेन्द्र बाबू, उन्हे देख आये।"

"आज ही चलेगी? चलिए। अगर मिल जाय तो मैं ताँगा ले आऊँ," कहकर वह बाहर जा ही रहा था कि कमल ने उसे वापस बुलाकर कहा—"ताँगे में हम दोनो के साथ जाने से शायद आश्रम के हितैषी लोग नाराज होगे। चलिए, पैदल ही चले चले।"

हरेन्द्र ने पीछे को मुडकर कहा—"इसके माने?"

"माने कुछ नही,—ऐसे ही। चलिए, चले।"

१९

लगभग तीसरे पहर हरेन्द्र और कमल दोनो आशु बाबू के घर पहुँचे। खाट पर अधलेटी अवस्था मे पडे हुए अस्वस्थ घर-मालिक उस दिन का 'पायोनियर' पढ़ रहे थे। कई दिन से उन्हे बुखार नही है, अन्यान्य शिकायते भी दूर होती जाती हैं, सिर्फ शारीरिक कमजोरी अभीतक नही गयी। इन दोनो के अन्दर पहुँचते ही वे अखबार फेक, उठकर बैठ गये और कितने खुश हुए सो उनके चेहरे से साफ मालूम हो गया। उनके मन मे डर था कि कमल शायद अब न आयेगी। इसी से हाथ बढाकर उसे ग्रहण करते हुए बोले—"आओ, मेरे पास आकर बैठो।" और हाथ पकडकर उसे अपनी खाट के पास पडी कुरसी पर बिठाते हुए कहा, "कैसी हो, बताओ तो कमल?"

कमल ने हँसते चेहरे से जवाब दिया—"अच्छी ही हूँ।"

आशु बाबू ने कहा—"सो तो भगवान् का आशीर्वाद है। नही तो जैसे कुदिन आये हैं, उसमे यह सोचा भी नही जा सकता कि कोई अच्छी तरह होगा। इतने दिन थी कहाँ, बताओ तो? हरेन्द्र से रोज ही पूछता हूँ और रोज ही वह जवाब देता है—घर मे ताला पडा है, उनका कोई पता नही। नीलिमा को शक हो रहा था कि तुम कुछ दिनो के लिए कही बाहर चली गयी हो।"

हरेन्द्र ने उसका जवाब दिया। कहा—"और कही नही, इसी आगरे मे मोचियो के मुहल्ले मे सेवा-कार्य मे लगी हुई थी। आज भेट हो गयी सो पकड लाया।"

आशु बाबू भय-व्याकुल कण्ठ से बोले—"मोचियो के मुहल्ले मे! पर अखबार मे खबर है कि वह मुहल्ला बिलकुल उजाड हो गया है। इतने दिन वही थी? अकेली?"

कमल ने सिर हिलाते हुए कहा—"नही, अकेली नही थी, साथ मे राजेन्द्र भी थे।"

सुनते ही हरेन्द्र ने उसके मुँह की तरफ देखा, पर कुछ कहा नहीं। इसका तात्पर्य यह था कि तुम्हारे बगैर कहे ही मैंने अन्दाजा लगा लिया था। इस बात को मैं नही जानूँगा तो और कौन जानेगा कि जहाँ दैव का इतना जबरदस्त निग्रह शुरू हो गया है, वहाँ के उन अभागोको छोडकर वह एक कदम भी इधर-उधर नही जा सकता।

आशु बाबू ने कहा—"अद्भुत आदमी है यह लडका। उसे मैंने दो-तीन बार से अधिक नही देखा, उसके बारे मे कुछ जानता भी नही, फिर भी ऐसा लगता है कि वह किसी अजीब धातु का बना हुआ है। उसे ले क्यो नही आयी, सब पूछता। अखबारो से तो सब बाते मालूम पडती नही।"

कमल ने कहा—"नही। लेकिन उनके आने मे अब भी देर है।"

"क्यो?"

"मुहल्ला अभीतक पूरा का पूरा खतम नही हुआ है। उनका प्रण है कि जो लोग अभी बचे हुए हैं, उन सबको रवाना किये बगैर वे वहाँ से छुट्टी न लेंगे।"

आशु बाबू ने उसके मुँह की तरफ देखते हुए पूछा—"तो फिर तुम्हे कैसे छुट्टी मिल गयी? क्या तुम्हे वहाँ फिर जाना पडेगा? मैं मना तो नही कर सकता, पर यह तो बडी चिंता की बात है कमल!"

कमल ने सिर हिलाते हुए कहा—"चिंता की कोई बात नही आशु बाबू, चिंता कहाँ नही है, बताइए।

पर मेरी घडी मे जितनी चावी भरी थी, उसे समाप्त कर तव मैं आयी हूँ। फिर से वहां जाने का सामर्थ्य मुझ मे नही है। अव अकेले राजेन्द्र वहाँ रह गये हैं। किसी-किसी के शरीर-यत्र मे प्रकृति ऐसी अनिवट चावी भरकर दुनिया मे भेज देती है कि न तो वह कभी खतम ही होती है और न वह यत्र ही कभी विगडता है। राजेन्द्र उन्हीं मे से एक हैं। शुरू-शुरू मे ऐसा लगा कि इस भयानक मुहल्ले मे वे जीते रहेंगे कैसे? और कितने दिन जीते रहेगें? वहाँ से जव अकेली चली आयी तो किसी भी तरह मेरी चिना न मिटी. पर अब मुझे कोई डर नहीं है। न जाने कैसे मैं निश्चित समझ गयी हूँ कि प्रकृति ही खुद अपनी गर्ज से ऐसे लोगो को जिलाये रखती है। नही तो गरीब-दुखियो के झोपडो मे जव वाढ़ की तरह मौत आ घुसती है तव उसकी ध्वस-लीला का गवाह कौन रहेगा? आज ही हरेन वावू से सव किस्सा कह रही थी। शिवनाथ वावू के घर से आखिरी रात जव लज्जा से सिर झुकाये चली आयी—"

जाशु वावू इन घटनाओ को सुन चुके थे। वोले—"इसमे तुम्हारे लिए लज्जा की क्या वात है कमल? सुना है, उनकी सेवा करने के लिए ही तुम विना कहे अपने आप उनके घर पहुँच गयी थी,—"

कमल ने कहा—"लज्जा उस वात की नही आशु वावू! लज्जा तो मुझे तव हुई जव मैंने देखा कि उन्हे कोई वीमारी ही नही है, सव ढोग है। किसी वहाने से आप लोगों की कृपा पाना ही उनका उद्देश्य था जो सफल न हो पाया। आखिर आपने अपने घर से उन्हे निकाल ही दिया। तव मेरा क्या हाल हुआ सो मैं आपको समझा नही सकती। राजेन्द्र साथ था उसे भी यह वात वता नही सकी, सिर्फ किसी तरह रात के अधकार मे उस दिन चुपचाप वहाँ से निकल आयी। रास्ते मे वार-वार सिर्फ एक ही वात का ख्याल आता रहा कि इस अति क्षुद्र कगाल आदमी को गुस्से मे आकर सजा देना न तो धर्म है और न इसमे सम्मान है।"

आशु वावू ने विस्मयापन्न होकर कहा—"कह क्या रही हो कमल? शिवनाथ की वीमारी क्या सिर्फ एक वहाना था? सच नही थी?"

परन्तु जवाव देने के पहले ही दरवाजे के पास पैरो की आहट सुनकर सवने उधर देखा कि नीलिमा आ रही है। उसके हाथ मे दूध का कटोरा है। कमल ने हाथ उठाकर नमस्कार किया। उसने हाथ का कटोरा पलग के सिरहाने तिपाई पर रखकर प्रति नमस्कार किया और यह समझकर कि इन लोगो की वातचीत मे उसने वाधा पहुंचायी है, खुद कुछ न वोलकर एक तरफ बैठ गयी।

आशु वावू ने कहा—"लेकिन यह तो कमजोरी है कमल! यह चीज तो तुम्हारे स्वभाव से मेल नही खाती। मैं वरावर सोचता था कि जो कार्य अनुचित है, जो मिथ्याचार है, उसे तुम माफ नही करती।"

हरेन्द्र ने कहा—"इनके स्वभाव का तो मुझे पता नही, मगर मोची-मुहल्ले की मौते देखकर इनकी धारणा वदल गयी है और यह खवर इन्ही से मिली है। पहले इनके मन मे चाहे जो वात रही हो, पर अव किसी के भी खिलाफ शिकायत करने मे ये नाराज है।"

आशु वावू ने कहा—"मगर उसने जो तुम्हारे प्रति इतना वडा अत्याचार किया, उसका क्या होगा?"

कमल ने मुँह उठाते ही देखा कि नीलिमा उसकी तरफ एकटक देख रही है। जवाव सुनने के लिए वही मानो सवसे ज्यादा उत्सुक है। नही तो शायद वह चुप रहती, हरेन्द्र ने जितना कहा है उससे ज्यादा एक शब्द भी नही कहती। उसने कहा—"यह प्रशन मेरे लिए अव असगत मालूम होता है। सिर्फ इसके लिए कि जो नही है, वह क्यो नहीं. आँसू वहाने मे मुझे शरम आती है। इस वात पर झगडा करने में कि जितना वे कर सके उससे ज्यादा उन्होने क्यो नहीं किया, मेरा सिर झुक जाता है। आप लोगो से सिर्फ इतनी प्रार्थना है कि मेरे दुर्भाग्य को लेकर उनसे खीचातानी न करे।" इतना कह उसने मानो सहसा थककर कुरसी की पीठ से लगकर और आँखे मीच ली।

घर की नीरवता भग की नीलिमा ने। उसने आँख के इशारे से दूध का कटोरा दिखाते हुए आहिस्ते से कहा, "यह जो विलकुल ही ठडा हुआ जा रहा है। देखिए, पी सकेगे या नही, नही तो फिर से गरम कर लाने के लिए कह दूँ।"

आशु वावू ने कटोरा मुँह से लगाकर जरा-सा पिया और फिर रख दिया। नीलिमा ने मुँह उठाकर देखा और कहा—"रख देने से काम नही चलेगा, डॉक्टर की व्यवस्था मैं तोडने नही दूँगी।"

आशु वावू थके हुए-से होकर मोटे तकिये के सहारे पड रहे। वोले—"यह वात तुम्हे भूलनी नही चाहिए की डाक्टर से भी वडा व्यवस्थापक हे हमारा अपना शरीर।"

"मैं नही भूलती, भूल जाते हैं आप खुद।"

"सो तो मेरी उमर का दोष है नीलिमा, मेरा नही।"

नीलिमा ने हँसते हुए कहा—"सो तो है ही। दोष लादने लायक उमर पाने मे अब भी आपको बहुत देरी है। अच्छा, कमल को लेकर हम जरा उस कमरे मे जा रही हैं। गप-शप करेगी, आप आँखे बन्दकर जरा आराम कीजिए। क्यो? जायँ?"

आशु बाबू की शायद ऐसी इच्छा नही थी, फिर भी उन्हे सम्मति देनी पडी, बोले—"मगर एकदम तुम लोग चले मत जाना, आवाज देने पर सुन लेना।"

"अच्छी बात है। चलो जी छोटे बाबू, हम लोग बगलवाले कमरे मे चलकर बैठे।" यह कह वह सबको साथ लेकर चली गयी। नीलिमा की बाते स्वभावत ही मधुर होती हैं और कहने के ढग मे भी ऐसी एक विशिष्टता होती है जो सहज ही दिखाई दे जाती है, परन्तु आज के ये थोडे-से शब्द मानो उससे भी बढकर आगे निकल गये। हरेन्द्र ने उधर ध्यान नही दिया, पर कमल ने गौर किया। पुरुष की दृष्टि मे जो नही आया, वह पकडायी दे गया स्त्री की दृष्टि मे। नीलिमा तीमारदारी करने आयी है, और यह भी ठीक है कि साधारण लोगो की दृष्टि मे इस बीमार आदमी की तन्दुरुस्ती की तरफ खास सावधानी रखने मे कोई आश्चर्य की बात नही, मगर उन साधारण जनो मे कमल का शुमार नही किया जा सकता। नीलिमा की इस अत्यन्त सावधानी की अपूर्व स्निग्धता से मानो उसे एक अचिन्त्य विस्मय का सामना करना पडा। विस्मय सिर्फ एक तरफ से नही, बहुत तरफ से हुआ। ऐसे सदेह को कि सम्पत्ति के मोह ने इस विधवा को मुग्ध कर लिया है, कमल अपनी कल्पना मे भी स्थान न दे सकी, क्योंकि नीलिमा का इतना परिचय तो वह पा ही चुकी थी। आशु बाबू के यौवन और रूप का प्रश्न तो इस मामले मे सिर्फ असगत ही नही बल्कि हास्यकर है। तब फिर इसका पता कहाँ मिलेगा, मन-ही-मन कमल उसकी खोज करने लगी। इसके अलावा एक पहलू और भी है। वह है आशु बाबू का अपना पहलू। लोगो का दृढ विश्वास था कि इस सरल और सदाशिव भले आदमी के हृदय के नीचे की गहराई मे पत्नी-प्रेम का आदर्श ऐसी अचंचल निष्ठाके साथ नित्य पूजित होता आ रहा है कि किसी दिन कोई भी प्रलोभन उसपर दाग नही लगा सकता। जिस दिन मनोरमा की माँ की मृत्यु हुई थी, उन दिनो आशु बाबू की उमर ज्यादा न थी तबतक यौवन बीता नही था, उसी दिन से उस लोकान्तरित पत्नी की स्मृति को उखाडकर नवीन की प्रतिष्ठा करने के लिए घरवालो और इष्ट-मित्रों ने प्रयत्न करने मे कुछ उठा नही रक्खा था, मगर फिर भी उस दुर्भेद्य दुर्ग का द्वार तोडने का कौशल किसी कोभी ढूँढे नही मिला। ये सब बाते कमल ने बहुतों के मुँह से सुनी थीं। और दूसरे कमरे मे आकर वह अन्यमनस्क-सी चुपचाप बैठी सिर्फ यही सोचने लगी कि नीलिमा के इस मनोभाव का लेशमात्र भी इस आदमी के ध्यान मे आया है या नही? अगर आया हो तो दाम्पत्य के जिस सुकठोर व्रत की वे अत्याज्य धर्म की तरह एकाग्र सावधानी के साथ आजीवन रक्षा करते आये हैं, आसक्ति की इस नवजाग्रत चेतना से वह लेशमात्र विक्षुब्ध हुआ है या नही?

नौकर चाय-रोटी और फल वगैरह दे गया। अतिथियो के सामने उन सबको रखती हुई नीलिमा तरह-तरह की बातें करने लगी। आशु बाबू की बीमारी, उनकी तन्दुरुस्ती, उनकी सहज सज्जनता और बच्चो जैसी सरलता के छोटे-मोटे विवरण, और इसी तरह की और भी बहुत-सी बाते जो इधर कई दिनों मे उसकी निगाह से गुजरी हैं। श्रोता के तौरपर हरेन्द्र स्त्रियो के लिए लोभ की चीज था; उसके साग्रह प्रश्नो के उत्तर मे नीलिमा की वाक्शक्ति उच्छ्वसित आवेग से शतमुखी होकर फूट निकली। उसके कहने की आन्तरिकता से हरेन्द्र ऐसा मुग्ध हुआ कि उसे फिर ध्यान ही नही रहा कि जिस भाभी को उसने अविनाश के घर देखता आया है, वह यही है या नही। वह परिणत यौवन का स्निग्ध गाम्भीर्य, वह कौतुकपूर्ण उज्ज्वल परिमित परिहास, वैधव्य की वही सीमित सयम बातचीत, वही सुपरिचित स्वभाव —यह सबका सब इन्ही कई दिनो में छोड-छोडकर जो अकल्पित वाचालता से बालिका की तरह प्रगल्भ हो उठी है सो क्या उसकी वही भाभी है?

बातें करते-करते नीलिमा की नजर कमल पर पड़ी, देखा कि चाय के प्याले मे मुँह लगाने के सिवा उसने और कुछ खाया नही है। क्षुण्ण-स्वर मे उसको उलाहना देते ही कमलने हँसते हुए जवाब दिया—"इतने मे ही मुझे भूल गयी क्या?"

"भूल गयी? इसके माने?"

"इसके माने यह कि मेरे खाने-पीने की बात आपको याद नही रही है। मैं तो बेवक्त कुछ खाती-पीती नही।"

"और हजार अनुरोध करने पर भी उसमे फर्क नही पडता।" हरेन्द्र ने और पीछे से जोड दिया।

उत्तर मे कमल ने वैसे ही हँसते हुए कहा—"यह दर्प तो मैं नही करती हरेन्द्र बाबू, कि इस हठ मे कोई परिवर्तन नही हो सकता, पर हाँ, यह मानती हूँ कि साधारणत इस नियम का मुझे अभ्यास हो गया है।"

रास्ते मे निकलकर कमल ने हरेन्द्र से पूछा—"अब आप जा कहाँ रहे हैं, बताइए न?"

हरेन्द्र ने कहा—"डरिए मत, आपके घर नही जाऊँगा, पर जहाँ से आपको लाया हूँ वहाँ न पहुँचा दूँ तो अनुचित होगा।"

तब काफी रात हो चुकी थी, रास्ते मे लोगो का आना-जाना नही के बराबर था। चलते-चलते अकस्मात् अत्यन्त घनिष्ठ की तरह कमल ने हरेन्द्र का एक हाथ अपने हाथ मे लेते हुए कहा—"चलिए मेरे साथ। उचित-अनुचित का विचार आपका कितना सूक्ष्म हो गया है, परीक्षा दीजिएगा।"

हरेन्द्र मारे संकोच के व्यस्त हो उठा। स्पष्ट देखने लगा कि यह अच्छा नही हुआ। इस तरह रास्ते मे चलना खतरे मे खाली नही, और अगर कोई परिचित कही से सामने आ पडा तो शर्मका-ठिकाना न रहेगा, परन्तु बगैर कहे हाथ छुडा लेने की अशोभन कठोरता को भी वह मन मे स्थान न दे सका। मामला अशोभन सा प्रतीत हो रहा था और उसे सकट की अवस्था मानकर ही वह उसके घर के दरवाजे पर जा पहुँचा। जब उसने बिदा माँगी तो कमल ने कहा—"इतनी जल्दी क्यो है? आश्रम में अजित बाबू के सिवा तो और कोई है नही?"

हरेन्द्र ने कहा—"नही। आज वे भी नही हैं, सबेरे की गाडी से दिल्ली गये हैं, सम्भवत कल लौट आयेगे।"

कमल ने पूछा—"जाकर खायेगे क्या? आश्रम मे रसोइया रखने की तो व्यवस्था है नही?"

हरेन्द्र ने कहा—"नही, हम लोग अपने हाथ से बनाते हैं।"

"अर्थात् आप और अजित बाबू?"

"हाँ। पर आप हँसती क्यो हैं? निहायत खराब नही बनाते हम लोग।"

"अजित बाबू नही हैं, इसलिए घर जाकर आपको खुद ही बनाकर खाना होगा। मेरे हाथ की खाने मे अगर आपको घृणा न हो तो मेरी बडी इच्छा है कि आपको निमंत्रित करूँ। खायेगे मेरे हाथ की?"

हरेन्द्र ने अत्यन्त क्षुण्ण होकर कहा—"यह गलत धारणा है। आप क्या सचमुच ही समझती हैं कि मैं घृणा से नामजूर कर सकता हूँ?" और वह क्षण-भर चुप रह कर बोला—"आपको यह बताने में मैंने कोई कसर नही रख छोडी है कि जो लोग आपको वास्तव मे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, मैं उन्ही मे से एक हूँ। मेरी तरफ से आपत्ति सिर्फ इतनी ही है कि बेवक्त मैं आपको तकलीफ नही देना चाहता।"

कमल ने कहा—"सो आप खुद ही देख लीजिएगा, मुझे कोई खास तकलीफ नही होगी। आइए।"

रसोई बनाते हुए कमल ने कहा—"मेरी तैयारियाँ बहुत मामूली हैं, लेकिन आश्रमो मे आप लोगो का जो कुछ देख आयी हूँ उसे भी प्रचुर नही कहा जा सकता। लिहाजा, मुझे भरोसा है कि यहाँ अगर खाने-पीने की कोई तकलीफ भी हो तो औरो की तरह वह आपको असह्य न होगी।"

हरेन्द्र ने खुश होकर जवाब दिया—"हमारे यहाँ खाने-पीने की व्यवस्था वही है जो आप देख आयी हैं। सचमुच ही हम लोग बहुत कष्ट के साथ रहते हैं।"

"मगर रहते क्यो हैं? अजित बाबू बडे आदमी हैं, आपकी अपनी अवस्था भी ऐसी बुरी नही,—फिर कष्ट पाने की तो कोई वजह नही?"

हरेन्द्र ने कहा—"वजह न हो, जरूरत तो है ही। मेरा विश्वास है कि इस जरूरत को आप भी समझती हैं और इसीलिए आपने अपने सम्बन्ध मे भी वही व्यवस्था कर रखी है। अगर कोई बाहरवाला आश्चर्य के साथ आपसे इसका कारण पूछ बैठे तो उसे क्या आप इसका कारण बता सकती हैं?"

कमल ने कहा—"बाहरवालो को भले ही न बता सकूँ, पर भीतरवाले को तो बता ही सकती हूँ। बात यह है कि मैं सचमुच ही बहुत गरीब हूँ, अपने भरण-पोषण के लिए कमाने की जितनी मुझमे शक्ति है, उसमे इससे ज्यादा नही किया जा सकता। पिताजी मुझे कुछ भी नही दे जा सके, पर वे मुझे दूसरो के अनुग्रहो से बचने का यह बीज-मत्र दे गये हैं।"

हरेन्द्र उसके मुँह की तरफ चुपचाप देखता रहा। इस परदेश मे कमल कैसी निरुपाय है, वह जानता है। सिर्फ रुपये-पैसे के लिए ही नही, समाज, सम्मान, सहानुभूति, किसी तरफ भी ताकने के लिए उसके

पास कुछ नही है। मगर इस सत्य को भी वह याद किये बगैर न रह सका कि इतनी जबरदस्त नि:सहायता भी इस रमणी को लेशमात्र दुर्बल नही कर सकी है। आज भी वह किसी से भीख नही माँगती, बल्कि भीख देती है। जो शिवनाथ उसकी इतनी बड़ी दुर्गति का मूल कारण है, उसे भी दान करने लायक पूँजी अबतक उसकी खतम नहीं हुई। हरेन्द्र ने शायद साहस और सान्त्वना देने के अभिप्राय से ही उससे कहा—"आपके साथ मैं तर्क नहीं करना चाहता कमल, मगर इसके सिवा मैं और कुछ सोच भी नही सकता कि हमारी तरह आपकी गरीबी भी वास्तविक नही है, एक बार भी आप चाहे तो आपका यह दुःख मरीचिका की तरह दूर किया जा सकता है। पर ऐसी इच्छा आप में नहीं है, कारण आप भी जानती हैं कि स्वेच्छा से ग्रहण किये हुए दुःख को ऐश्वर्य के समान भोगा जा सकता है।"

कमल ने कहा—"हाँ, भोगा जा सकता है। मगर क्यों, आप जानते हैं? क्योंकि वह अनावश्यक दुःख है,—क्योंकि वह दुःख का सिर्फ एक अभिनय है। सभी अभिनयों मे थोड़ा-बहुत कौतुक रहता है, इसलिए उसका उपभोग करने मे कोई बाधा भी नही।" इतना कहकर वह खुद कौतुक से हँस पडी।

उसका हँसना सहसा न जाने कैसा बेसुरा-सा मालूम पडा। इस व्यंग्य को सुनकर हरेन्द्र क्षण-भर चुप रहा। फिर बोला—"मगर यह तो आप मानती हैं कि बहुतायत के भीतर जीवन तुच्छ होने लगता है, दु:ख-दैन्य में से गुजरकर मनुष्य का चरित्र महान् और सत्य हो जाता है।"

कमल ने 'स्टोव' पर से कड़ाही उतार कर नीचे रख दी और एक दूसरा बरतन चढ़ाकर कहा—"सत्य बनने के लिए उधर भी तो थोडा-बहुत सत्य रहना चाहिए हरेन्द्र बाबू! आप लोग बडे आदमी हैं, वास्तव में आपको कोई कमी नही, फिर भी छद्म-अभाव की तैयारी में व्यस्त हैं। और फिर उसमें अजित बाबू भी जा मिले हैं। आपके आश्रम की फिलासफी मेरी तो कुछ समझ में आती नही, पर इतना समझती हूँ कि गरीबी के कष्ट भोगने की विडम्बना से कभी महत्त्व को नही पाया जा सकता, हाँ, पाया जा सकता है तो थोडे-से दम्भ और अहम्मन्यता को। सस्कारो से अन्धे न होकर जरा आँख खोल कर आप देखें तो यह चीज स्पष्ट दिखाई दे जायगी। इसके दृष्टान्त के लिए भारत-भ्रमण की जरूरत न होगी।—पर बहस अभी छोड़िए, रसोई बन चुकी, आप खाने बैठिए।"

हरेन्द्र ने हताश होकर कहा—"मुश्किल तो यह है कि भारतवर्ष की फिलासफी समझना आपके बूते से बाहर की बात है। आपकी शिराओं में म्लेच्छ-रक्त बह रहा है।—हिन्दुओं का आदर्श आपकी दृष्टि में तमाशा ही मालूम देगा। दीजिए, क्या बनाया है, खाने को दीजिए।"

"देती हूँ।" कहकर कमलने आसन बिछा दिया। जरा भी नाराज नही हुई।

हरेन्द्र उसकी तरफ देखकर सहसा बोल उठा—"अच्छा, मान लीजिए कि कोई अगर वास्तव मे अपना सब कुछ दान कर सचमुच के अभाव और दैन्यमें अपने को घसीट लाये, तब तो अभिनय कहकर उसका मजाक नहीं किया जा सकेगा? तब तो—"

कमल ने बीच में ही रोकते हुए कहा—"तब फिर मजाक नहीं, तब तो सचमुच का पागल मानकर उसके लिए सिर धुन-धुनकर रोने का समय आ जायगा। हरेन्द्र बाबू, कुछ दिन पहले मैं भी कुछ-कुछ आप ही जैसा विचार किया करती थी, उपवास के नशे की तरह मुझे भी उसने मोहित कर रखा था, पर अब वह संशय मेरा जाता रहा है। गरीबी या अभाव इच्छा से आवे या इच्छा के विरुद्ध आवे, उसमें गर्व करने लायक कुछ नहीं होता। उसके भीतर है शून्यता, उसके भीतर है कमजोरी और उसके भीतर है पाप। अभाव मनुष्य को कितना हीन और कितना छोटा बना देता है, सो मैंने अपनी आँखों से देखा है, इस महामारी में मोचियों के मुहल्ले में जाकर। और भी एक आदमी ने यह देखा है, वे हैं आपके मित्र राजेन्द्र। पर उनसे तो कुछ मिलने का नहीं,—आसाम के गहरे जगल की तरह क्या-क्या वहाँ छिपा हुआ है, कोई नहीं जानता। मैं अकसर सोचा करती हूँ कि आप लोगो ने उन्हीं को विदा कर दिया! कहावत है न, हीरे को फेंककर काँच के टुकडे को गिरह में बाँध लेना,—आप लोगो ने ठीक वही किया है। आपने भीतर कहीं से भी निषेध नहीं पाया? आश्चर्य!"

बोला—"शिक्षा, सस्कार, रुचि और प्रवृत्ति को देखते इन दोनो मे चाहे कितना ही भेद क्यो न हो, पर सेवा और ममता मे दोनो विलकुल एक-सी हैं। असल मे वे वाहर की चीजे हैं, इसलिए विषमता का अन्त नही और तर्क भी खतम नही होता, परन्तु नारी की जो विलकुल अपनी चीज है, जो सब तरह के मतामत के घेरे के वाहर की वस्तु है, नारी के उस गूढ अन्त करण का रूप देखने से आँखे एकदम जुडा जाती हैं। नाना कारणो से आज हरेन्द्र को भूख न थी, सिर्फ एक को प्रसन्न करने के लिए ही उसने बूते से वाहर खा लिया। कोई एक तरकारी 'बहुत अच्छी लगी है' कहकर उसने उसके वरतन को विलकुल साफ कर दिया। बोला—"बहुत बार असमय मे जा-जाकर भाभी का मैंने ठीक इसी तरह नाको दम कर दिया है, कमल!"

"किसका नीलिमा का?"

"हाँ।"

"उनके नाक मे दम आता था।"

"जरूर, पर मानती न थी।"

कमल ने हँसकर कहा—"सिर्फ आपकी ही नही, सभी पुरुषो की ऐसी मोटी अक्ल हुआ करती है।"

हरेन्द्र ने वहस के ढग पर कहा—"मैंने अपनी आँखो से देखा है।"

कमल ने कहा—"सो मैं जानती हूँ। और इन आँखो देखने के घमण्ड मे ही आप लोग मरे जा रहे हैं।"

हरेन्द्र ने कहा—"घमण्ड आप लोगो को भी कम नही। तव भाभी खाये विना रह जाती, उपासी रात बिता देतीं, फिर भी हार नही मानती।"

कमल चुपचाप उसके मुँह की तरफ देखती रही। हरेन्द्र कहता रहा—"आप लोगों के आशीर्वाद से मोटी अक्ल ही हम लोगो के सदा वनी रहे, इसीमे ज्यादा फायदा है। आप लोगों की सूक्ष्म वुद्धि की डाह से उपवासी मरना हमे मंजूर नही।"

कमल ने इस बात का भी कुछ जवाव नही दिया। हरेन्द्र वोला—"अवसे मैं आपकी सूक्ष्म बुद्धि को भी वीच-वीच मे परीक्षा लिया करूँगा।"

कमल ने कहा—"सो आप नही ले सकेंगे, गरीव होने से आपको मुझ पर दया आ जायगी।"

सुनकर हरेन्द्र पहले तो लज्जित -सा हुआ। फिर वोला—"देखिए, इस बात का जवाव देने मे जवान रुकती है। क्यो, जानती हैं? जिसे राज-रानी होना शोभता, उसे यह कगालपना अच्छा नही मालूम देता। मालूम होता है, आपकी गरीवी दुनिया की तमाम अमीर स्त्रियो का मजाक उडा रही है।"

वात तीर की तरह कमल के कलेजे मे जा लगी। हरेन्द्र कुछ और कहना चाहता था कि कमल ने उसे रोकते हुए कहा—"आप भोजन कर चुके हो तो उठिए। उस कमरे मे जाकर सारी रात गप्प सुनूँगी, तबतक इस कमरे का काम खतम कर लूँ।"

थोडी देर वाद सोने के कमरे मे आकर कमल ने कहा—"आज आपकी भाभी का सारा इतिहास सुने वगैर आपको छोडूँगी नही, चाहे कितनी ही रात क्यो न हो जाय। सुनाइयेगा?"

हरेन्द्र सकट मे पड गया। वोला—"भाभी की सारी वाते तो मैं जानता नही। उनके साथ पहली जान-पहिचान मेरी इसी आगरे मे हुई है अविनाश भइया के घर। वास्तव मे उनके सम्वन्ध मे मुझे लगभग कुछ भी नही मालूम। जो कुछ यहाँ के लोग जानते हैं, उनना ही मैं जानता हूँ। सिर्फ एक वात शायद ससार मे सबसे ज्यादा जानता हूँ, और वह है उनकी अकलक शुभ्रता। जब उनके पति मरे थे तब उनकी उमर उन्नीस-वीस साल की थी। भाभी ने उन्हे सर्वान्त करण से पाया था। वह स्मृति अवतक पुँछी नही है और न कभी पुँछ ही सकती है,—जीवन के अन्तिम दिनतक वह अक्षय वनी रहेगी। पुरुषो मे जब आशु वावू की वात उठती है—मैं मानता हूँ, उनकी निष्ठा भी असाधारण है—लेकिन—"

"हरेन्द्र वावू, रात बहुत हो गयी है, अब तो आपका घर जाना हो नही सकता,—इसी कमरे में आपके लिए विस्तर कर दूँ?"

हरेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा—"इसी कमरे मे? और आप?"

कमल ने कहा—"मैं भी यही सोऊँगी। और तो कोई कमरा है नही।"

हरेन्द्र मारे शरम के पीला पड गया। कमल ने हँसते हुए कहा—"आप ब्रह्मचारी जो हैं। आपको भी क्या डरने का कोई कारण हो सकता है?"

हरेन्द्र स्तब्ध होकर एकटक उसके चेहरे की तरफ देखता रह गया। यह कैसा प्रस्ताव है, उससे कल्पना करते भी न बना। स्त्री होकर मुँह से यह बात निकली कैसे?

उसकी हद से ज्यादा विह्वलता ने कमल को धक्का दिया। उसने कुछ क्षण चुप रहकर कहा—"मेरी ही गलती हुई, हरेन्द्र बाबू, अपने घर जाइए। इसी कारण आपकी असीम श्रद्धा की पात्री नीलिमा को आश्रम मे जगह नही मिली, जगह मिली तो आशु बाबू के घर में। सूने घर मे अनात्मीय नर-नारी का सिर्फ एक ही सम्बन्ध आपको मालूम है,—पुरुष के निकट औरत सिर्फ औरत ही है, उसके बारे मे इससे ज्यादा खबर आप तक आज तक नहीं पहुँची।—ब्रह्मचारी हो जाने पर भी नही। जाइए, अब देर न कीजिए, आश्रम जाइए।" इतना कहकर वह खुद ही बाहर के अंधेरे बरामदे मे जाकर अदृश्य हो गयी।

हरेन्द्र मूढ की तरह दो-तीन मिनट खडा रहा, फिर धीरे-धीरे नीचे उतर गया।

२०

लगभग एक महीना बीत गया। आगरे मे इन्फ्लुएंजा की विकराल महामारी का रूप शात हो गया है, कही-कही दो-एक नये आक्रमण होने की बात सुनी तो जाती है, पर ऐसे खतरनाक रूप में नही। कमल घर मे बैठी सिलाई का काम कर रही थी, इतने मे हरेन्द्र आ गया। उसके हाथ मे एक पोटली थी। उसे पास ही जमीन पर रखते हुए बोला—"आपकी मेहनत देखकर तकाजा करने मे शरम लगती है, मगर आदमी भी ऐसे बेहया हैं कि भेट होते ही पूछते हैं 'बन गया?' मैं साफ-साफ जवाब दे देता हूँ कि अभी बहुत देर है। बहुत जरूरी हो तो कहिए, कपड़ा वापस ला दूँ। मगर मजे की बात तो यह है कि आपके हाथ की चीज जिसने एक बार बरती वह और कही सिलाना नही चाहता। यह देखिए न, लालाजी के घर से उनका नौकर फिर गरद रेशम का थान और नमूने का कुरता दे गया है,—"

कमल ने सिलाई पर से आँख उठाकर कहा—"ले क्यों लिया?"

"लिया क्या यो ही? कह दिया है कि छह महीने से पहले नही होगा,—उस पर भी राजी हो गया। बोला—छह महीने बाद तो मिल जायगा? कोई हर्ज नही। यह देखिए न, सिलाई के रुपये तक हाथ पर रख गया है।" कहते हुए जेब से उसने एक नोट में मुडे हुए रुपये निकाल कर कमल के सामने पटक दिये।

कमल ने कहा—"इतना ज्यादा काम आता रहा तो मैं देखती हूँ, मुझे आदमी रखना पडेगा।" फिर उसने पोटली खोलकर पुराना पजाबी कुरता उठाकर देखा और कहा—"किसी बडी दुकान का सिला हुआ मालूम होता है,—बडे कारीगर का काम है,—मुझसे तो ऐसा सीते न बनेगा। कीमती कपडा है, खराब हो जायगा, इसे वापस दे दीजिएगा।"

हरेन्द्र ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"आपसे बढ़कर कारीगर और भी है क्या कोई?"

"यहाँ न हो, कलकत्ते मे तो है। वही भेज देने को कहिए।"

"नही नही, सो नही होगा। आपसे जैसा बने वैसा बना दीजिए, उसी से काम चल जायगा।"

"बनेगा नही हरेन्द्र बाबू, बनता तो बना देती।" कहकर वह अकस्मात् हँस पडी, बोली—"अजित बाबू बडे आदमी हैं और शौकिन-मिजाज ठहरे। ऐसा-वैसा बना देने से उनसे पहना कैसे जायगा? व्यर्थ मे कपडा खराब करने से कोई फायदा नही, आप वापस ले जाइए।"

हरेन्द्र को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, उसने कहा—"कैसे जाना कि यह अजित बाबू का है?"

कमल ने कहा—"मैं ज्योतिष जो जानती हूँ। गरद-रेशम का थान, पेशगी रुपया और फिर छह महीने बाद मिले तो भी हर्ज नही! यहाँ के लाला लोग ऐसे मूर्ख नही होते हरेन्द्र बाबू। उनसे कह दीजिएगा कि उनका कुरता बनाने लायक योग्यता मुझमे नही है, मैं तो सिर्फ गरीबो के सस्ते दाम के कपडे ही सीना जानती हूँ। यह नही सी सकती।"

हरेन्द्र सकट मे पड गया। अन्त मे बोला—"उनकी बडी इच्छा है कि आपके हाथ का सिला हुआ कुरता पहने। लेकिन, आप कहीं जान न जायँ और यह न समझ बैठे कि हम लोग किसी तरह आपकी सहायता करने की कोशिश कर रहे हैं, इससे मैं बहुत दिनों से इसे ला नही रहा था। उनसे कहा था कि

कम दाम का कोई मामूली कपडा दें। पर वे राजी नही हुए। बोले—यह कोई मेरी रोज की पहनने की मिरजई थोडे ही है। यह तो कमल के हाथ की सिली हुई चीज़ है जो सिर्फ किसी विशेष पर्व के दिन पहनने के काम आयगी और रख छोडी जायगी। इस ससार मे उनसे बढ़कर आप पर शायद ही कोई दूसरा श्रद्धा करता हो।"

कमल ने कहा—"कुछ दिन पहले उनके मुँह से शायद ठीक इससे उलटी बात ही बहुतो ने सुनी होगी! ठीक है कि नही? जरा कोशिश करें तो शायद आपको भी स्मरण हो सकता है। जरा याद कर देखिए न?"

कुछ ही दिन पहले की बात थी, हरेन्द्र को सब याद था। वह कुछ लज्जित-सा होकर बोला—"झूठ नही, मगर ऐसी धारणा तो एक दिन बहुतो की थी। शायद अकेले आशु बाबू की भले ही न हो, लेकिन उन्हे भी एक दिन विचलित होते देखा गया है। खुद मुझको ही देखिए न,—आज तो कोई प्रमाण पेश करने की जरूरत नही, पर उस दिन की कसौटी पर आज भी अगर कोई मेरी भक्ति-श्रद्धा की जाँच करने लगे तो बताइए मैं कहाँ खडा हो सकूँगा?"

कमल ने पूछा—"राजेन्द्र का पता लगा?"

हरेन्द्र ने समझ लिया कि यह हृदय-सम्बन्धी आलोचना, पहले की तरह, आज़ फिर स्थगित रही। उसने कहा—"नहीं, अब तक तो नहीं लगा। उम्मीद है कि कही से आ खडा होगा तो लग जायगा।"

कमल ने कहा—"सो तो मैं जानना चाहती नही, मैंने तो आपसे सिर्फ इतना ही पता लगाने को कहा था कि वह पुलिस का मेहमान हुआ है या नहीं।"

हरेन्द्र ने कहा—"सो तो पता लगा लिया। फिलहाल उसके हाथ से वो बचा हुआ है।"

यह सुनकर कमल निश्चिन्त तो नहीं हो सकी, पर उसे कुछ तसल्ली जरूर हुई। पूछा—"वे कहाँ गये हैं और कब गये हैं, मोचियों के मुहल्ले में जरा जा करके क्या उनका पता नही लगाया जा सकता? हरेन्द्र बाबू, उनके प्रति आपको स्नेह कितना है, सो मैं जानती हूँ, इस बारे में पूछना ज्यादती होगी! पर इधर कई दिनो से मेरी ऐसी दशा हो गयी है कि इसके सिवा और कुछ सोच ही नही सकती।" इतना कहकर उसने ऐसी व्याकुल दृष्टि से हरेन्द्र की ओर देखा कि वह विस्मित हो गया। पर दूसरे ही क्षण वह आँख नीची करके पहले की तरह अपने सिलाई के काम में लग गयी।

हरेन्द्र चुपचाप खडा रहा। खडे-खडे उसके मन मे एक-एक करके कई प्रश्न उठते रहे और कुतूहल भी होता रहा। मुँह से शब्दों ने भी निकलना चाहा; पर उसने अपने को हर बार सभाल लिया। किसी तरह वह तय नही कर पाया कि इस पूछने का नतीजा क्या होगा। इस तरह पाँच-सात मिनट बीत जाने पर कमल ने खुद ही बात की। सिलाई को एक तरफ रखकर समाप्ति की एक साँस लेकर उसने कहा—"रहने दो, अब नही करती।" मुँह ऊपर उठाते ही आश्चर्य के साथ बोली—"यह क्या? खडे क्यों हैं? कुर्सी खीचकर बैठा भी नही गया आपसे?"

"बैठने को तो कहा नही आपने।"

"अच्छे रहे। कहा नहीं, सो बैठेंगे भी नही?"

"नही, बगैर कहे बैठना उचित नही।"

"मगर खडे रहने के लिए भी तो मैंने नही कहा, फिर खडे क्यो हैं?"

"ऐसा अगर आप कहती हैं तो मेरा न खडा होना ही उचित था। अपना कसूर मजूर करता हूँ।"

कमल हँस दी। बोली—"तो मैं भी अपना कसूर मान लेती हूँ। अब तक अन्यमनस्क रहना मेरा अपराध है। अब बैठिए।"

हरेन्द्र कुर्सी खीचकर उस पर बैठ गया। कमल सहसा जरा गम्भीर हो गयी। एक बार कुछ सोचा, फिर बोली—"देखिए हरेन्द्र बाबू, मैं जानती हूँ और आप भी जानते हैं कि असल में इसके अन्दर कुछ है नही। फिर भी बात खटकती ही है। यह जो मैं बैठने के लिए कहना भूल गयी,—जो आदर अतिथि को देना चाहिए था, वह नही दिया। हजार घनिष्ठता के होते हुए भी इस त्रुटि पर आपकी निगाह पड ही गयी। नही नही, आप नाराज़ हुए हैं, सो मैं नही कहती,—मगर फिर भी न जाने क्यो मनमे कुछ लगता ही है। मनुष्य का यह संस्कार जाने पर भी नही जाना चाहता, कही-न-कही थोड़ा-बहुत रह ही जाता है। क्यो, ठीक है?"

हरेन्द्र इसका मतलव न समझ सका, आश्चर्य के साथ उसके मुँह की तरफ देखता रह गया। कमल कहने लगी—"इससे संसार मे न जाने कितना अनर्थ हो रहा है और मजा यह कि इसी को लोग सबसे ज्यादा भूलते हैं। क्यों, है न यही वात?"

हरेन्द्र ने पूछा—"यह सव आप मुझसे कह रही हैं, या अपने आपसे? अगर मेरे लिए हो तो जरा और खुलासा करके कहिए। यह पहेली मेरे मगज मे घुस नही रही है?"

कमल हँसने लगी। वोली—"है तो पहेली ही। सीधा-सरल रास्ता होता है, मालूम ही नही होता कि विपत्ति आँखे लाल कर रही है। चलते-चलते ठोकर लगती है और उँगली से खून निकलने लगता है, तब कही जाकर होश आता है, कि और जरा देखकर चलना चाहिए था। क्यों, है न यही वात?"

हरेन्द्र ने कहा—"रास्ते के बारे मे तो यह ठीक है। कम से कम आगरे के रास्तों पर तो जरा होश संभालकर ही चलना अच्छा, ऐसी दुर्घटनाएँ आश्रम के लडकों पर प्राय: घटती हैं। मगर पहेली ही रह गयी; भीतरी मतलव तो कुछ समझ मे नही आया?"

कमल ने कहा—"उसका कोई चारा नही हरेन्द्र बाबू। बता देने से ही सभी बातों का मतलब समझ मे नही आ जाता। मुझको ही देखिए न, मुझे तो किसी ने वताया नही, फिर भी मतलब समझने में मुझे कोई अड़चन नही हुई।"

हरेन्द्र कहा—"इसका अर्थ यह है कि आप भाग्यवती हैं और मैं अभागा। या तो ऐसी भाषा में कहिए कि साधारण आदमी के दिमाग मे भी घुस जाय या फिर रहने दीजिए, कुछ मत बोलिए। चीनी आतिशवाजी की तरह जितना इसे खोलना चाहता हूँ उतनी ही यह उलझती जा रही हैं। अज्ञात अज्ञेय विरोध से शुरु होकर वक्तव्य अब कहाँ आकर रुका है, इसका ओर-छोर नहीं मिला। ये सब बातें क्या आप राजेन्द्र की याद करके कह रही हैं? उसे मैं भी तो जानता हूँ, सरल बना करके कहे तो शायद कुछ-कुछ समझ भी सकूँ। नही तो फिर इस तरह एक स्वप्नमय आदमी की वक्तृता सुनते-सुनते मुझे अपनी बुद्धिपर विश्वास ही न रह जायगा।"

कमल हँसते मुँह से बोलीं—"किसकी बुद्धिपर? मेरी पर या अपनी पर?"

"दोनो की ही।"

कमल ने कहा—"सिर्फ राजेन्द्र की ही नही। मालूम नही क्यों, सवेरे से आज मुझे सभी की याद आ रही है—आशु वावू, मनोरमा, अक्षय, अविनाश, नीलिमा, शिवनाथ,—यहाँ तक कि अपने पिताजी की—"

हरेन्द्र ने टोका—"इस तरह नही चल सकता। आप फिर गम्भीर होतीं जा रही हैं। आपके माता-पिता स्वर्ग गये हैं, उनको इस मामले से घसीटना मुझसे नही सहा जायगा। हाँ, जो जिन्दा हैं उनकी वात कीजिए। आप राजेन्द्र की वात कहना चाहती थी, उसी की कहिए, मैं सुनूँ। वह मेरा मित्र है, उसे मैं जानता हूँ, पहचानता हूँ, प्यार भी करता हूँ; मेरा विश्वास कीजिए, मैं चाहे आश्रम चलाता होऊँ या और कुछ करता होऊँ, आपको धोखा नही दूँगा। संसार में और लोगो की तरह मैं भी प्रेम की, कहानी सुनना पसन्द करता हूँ।"

कमल की गम्भीरता सहसा हँसी में परिणत हो गयी, उसने पूछा—"सिर्फ दूसरों की ही सुनना पसन्द करते हैं? उससे आगे कुछ नहीं चाहते?"

हरेन्द्र ने कहा—"नहीं। मैं ब्रह्मचारियों का पण्डा हूँ, अक्षय का दल सुन लेगा तो मुझे खा ही जायगा।"

यह उत्तर सुनकर कमल फिर हँस पड़ी—बोली, "नहीं, वे नहीं खायेंगे। मैं उसका उपाय कर दूँगी।"

हरेन्द्र ने सिर हिलाते हुए कहा—"आप नही कर सकेंगी। आश्रम तोड़कर भाग जाने पर भी मेरा छुटकारा नहीं है। अक्षय ने एक वार जव कि मुझे पहचान लिया है, तब जहाँ भी मैं जाऊँगा, वहाँ मुझे वह सन्मार्गपर लगाये ही रखेगा। इससे अच्छा यह है कि आप अपनी ही वात कहें। राजेन्द्र को आप अपने मन से किसी तरह भुला ही नहीं सकती। उसकी बात के सिवाय और कोई वात सोच ही नहीं सकती, तो फिर वही से शुरू कीजिए। किस तरह उस अभागे छोकरे को आप इतना चाहने लगी हैं, यह सुनने की मुझे बड़ी साध है।"

कमल ने कहा—"ठीक यही प्रश्न मैं बार-बार अपने से भी कर रही हूँ।"

"कुछ पता नही पा रही हैं?"

"नही।"

"पाने की बात भी नही, और मुझे विश्वास भी नही होता कि यह सच है।"

"क्यो, विश्वास क्यो नही होता?"

"खैर, छोडिए इस बात को। शायद एक बार मैं कह भी चुका हूँ कि इससे भी अच्छे 'कैण्डिडेट' मौजूद हैं। आखिरी निर्णय करने के पहले उनके 'केसो' पर भी जरा नजर डाल देखिएगा। यही प्रार्थना है।"

"मगर केसो पर केवल अनुमान के आधार पर तो विचार किया नही जा सकता हरेन्द्र बाबू, बाकायदा गवाह और प्रमाणो की जरूरत होती है। सो कौन हाजिर करेगा?"

"वे खुद ही करेगे। गवाह और सुबूत के लिए वे तैयार हैं, पुकार होते ही हाजिर हो जायँगे।"

कमल ने जवाब नही दिया। ऊपर मुँह उठाकर देखा और हँस दी।

उसके बाद पूरे और अधूरे सीये कपडो की एक-एक करके ठीक से तह की, उन्हे एक बेतकी टोकनी मे जँचा कर रख दिया और उठके खडी हो गयी। बोली—"आपका शायद चाय पीने का वक्त हो गया हरेन्द्र बाबू, जरा-सी चाय बनाकर ले आऊँ, आप बैठिए।"

हरेन्द्र ने कहा—"बैठा तो हूँ ही। लेकिन आप तो जानती हैं, चाय पीने के लिए मेरा कोई वक्त बेवक्त नही। मिले तो पी लेता हूँ, न मिले तो कोई बात नही। इसके लिए आपको तकलीफ उठाने की जरूरत नही। एक बात आपसे पूछूँ?"

"खुशी से।"

"बहुत दिनो से आप किसी के यहाँ गयीं नही, सो क्या जान बूझकर जाना बन्द कर दिया है?"

कमल को आश्चर्य हुआ। बोली—"नही तो। मुझे इसका ख्याल ही नही।"

"तो फिर चलिए न, आज जरा आशु बाबू के मकान तक घूम आवे। वे सचमुच ही बहुत खुश होंगे। जब वे बीमार थे तब एक बार आप गयी थी, अब तो वे अच्छे हो गये हैं। सिर्फ डॉक्टर ने मना कर दिया है कि बाहर नही निकले। नही तो शायद वे किसी दिन खुद ही यहाँ आ जाते।"

कमल ने कहा—"वे न आवें तो कोई आश्चर्य की बात नही। जाना मुझे ही चाहिए था, लेकिन काम की झझट से जा नही सकी। बडी गलती हो गयी।"

"तो आज ही चलिए न?"

"चलिए। मगर शाम होने दीजिए। आप बैठिए, चटसे एक प्याला चाय बनाये लाती हूँ।" इतना कहकर वह बाहर चली गयी।

शाम के झुटपुटे मे दोनो घर से निकल पडे। रास्ते में हरेन्द्र ने कहा—"जरा दिन रहते चलते तो अच्छा रहता।" कमल ने कहा—"नही, जान-पहचान का शायद कोई देख लेता।"

"भले देख लेता। इन सब बातो की अब मैं परवाह नही करता।"

"पर मैं तो करती हूँ।"

हरेन्द्र ने समझा कि मजाक किया जा रहा है। वह बोला—"लेकिन जान-पहचानवाले ही अगर सुनेगे कि आप मेरे साथ अकेली निकलने में आजकल सकोच करने लगी हैं, तो वे क्या सोचेगे?"

"शायद यही सोचेगे कि मैंने मजाक किया होगा?"

"मगर आपको जो पहचानता है, वह क्या और कुछ सोच सकता है? बताइए?'

कमल चुप रही।

जवाब न पाकर हरेन्द्र ने कहा—"आज आपको क्या हो गया है, मालूम नही, सब कुछ दुर्बोध्य हो रहा है।"

कमल ने कहा—"जो समझने का नही है, उसे न समझना ही अच्छा है। राजेन्द्र को भूलना चाहकर भी भूलती नही। इसका सबसे ज्यादा भान होता है आपके आनेपर। उसके लिए आश्रम मे स्थान नही हुआ, हालाँ कि किसी पेड के नीचे पडे रहने से भी उसका काम चल जाता। सिर्फ मैंने ही वहाँ रहने नही दिया और आदर के साथ मैं उसे बुला लायी। मेरे घर आया, कही से भी उसके मनको कोई रुकावट नही आयी। हवा और प्रकाश की तरह उसके आने पर भी सब दिशाएँ खुली रही, पुरुष का मानो एक नया परिचय मिला। यह सोचने को मुझे समय ही नही मिला कि यह अच्छा है या बुरा, शायद समझने मे देर भी लगे।"

हरेन्द्र ने कहा—"यह वडी भारी सान्त्वना है।"
"सत्दना क्यो है?"
"सो नहीं मालूम।"
फिर कोई भी कुछ नही बोला, दोनो ही न जाने कैसे अन्यमनम्क-से वने रहे।
हरेन्द्र ने शायद जान-बूझकर ही जरा घुमाव का रास्ता अख्तियार किया था। जब वे आशु वाबू के घर पहुँचे तव शाम बीते बहुत देर हो चुकी थी। भीतर जाने के लिए खबर देने की जरूरत न थी, पर पाँच-छह दिन से हरेन्द्र आ नही सका था इसलिए नौकर को सामने पाकर बोला—"बाबू साहब की तवीयत अच्छी है?"
उसने नमस्कार करके कहा--"जी हाँ, अच्छी है।"
"अपने कमरे मे ही हैं क्या?"
"नही, ऊपर के सामनेवाले कमरे मे सवके साथ बैठे बाते कर रहे हैं।"
जीने पर चढते कमल ने पूछा—"सब कौन।"
हरेन्द्र ने कहा—"भाभी तो हैं ही, और भी शायद कोई होगा, मालूम नही।"
परदा हटाकर भीतर घुसते ही दोनो को जरा आश्चर्य हुआ। एसेन्स और चुरुटकी तेज गन्ध ने एक साथ कमरे की हवा को भारी कर दिया था। नीलिमा मौजूद नही थी, आशु बाबू वड़ी आराम-कुरसी के हथेलो पर पैर फैलाये चुरुट पी रहे थे और पास ही सोफे पर सीधी बैठी एक अपरिचित महिला बाते कर रही थी। कमरे की आबहवा की तरह ही उसके मुँह का भाव भी तेज था। बगालिन थी, पर बगला बोलने की उसमें रुचि नही थी। शायद आदत भी न हो। हरेन्द्र और कमल ने कमरे मे कदम रखते ही सुन लिया कि वह अनर्गल अंगरेजी बोल रही है।
आशु वाबू ने मुँह उठाकर देखा। कमल पर निगाह पडते ही उनका सारा चेहरा आनन्द से उज्ज्वल हो उठा। शायद एक बार उठकर वैठने की भी कोशिश की, पर सहसा बैठा नही गया। मुँह का चुरुट फेंककर बोले—"आओ कमल, आओ।" और अपरिचिता रमणी को निर्दिष्ट करके बोले—"ये मेरी एक रिश्तेदार हैं। परसों आयी हैं, सम्भव है इन्हें कुछ दिन यहाँ रख भी सकूँ।"
जरा ठहरकर फिर बोले—"वेला, ये कमल हैं। मेरी लडकी की तरह।"
दोनों ने दोनों के लिए हाथ उठाकर नमस्कार किया।
हरेन्द्र ने कहा-"और मैं?"
"ओ हो, तुम तो रह ही गये! ये हरेन्द्र हैं, प्रोफेसर अक्षय के परम मित्र। बाकी परिचय यथासमय होता रहेगा, चिता की कोई बात नही हरेन्द्र।" और कमल को इशारे से पास बुलाते हुए बोले—"यहाँ मेरे पास आओ कमल, तुम्हारा हाथ लेकर कुछ देर चुप वैठा रहूँ। इसके लिए कई दिनो से मेरा जी तडफडा रहा है।"
कमल हँसती हुई उनके पास जाकर वैठ गयी और दोनों हाथ बढ़ाकर उसने उनके मोटे भारी हाथ को अपनी गोद में रख लिया।
आशु बाबू ने पूछा—"खा-पीकर आयी हो क्या?"
कमल ने सिर हिलाकर कहा—"नही।"
आशु बाबू ने छोटी-सी एक साँस लेकर कहा—"पूछने से फायदा ही क्या? यहाँ तुम्हे खिला तो सकता नही!"
कमल चुप रही।

२१

बेला के मुँह की तरफ देखकर आशु वाबू जरा हँसे और बोले—"क्यो, वर्णन मेरा मिल तो गया? इसे बुढापे की 'एकस्ट्रावेगन्स' (बुडभस) कहकर मजाक उडाना तो तुम्हारा ठीक नही हुआ, अब तो मान गयी?"
महिला चुप रही। आशु वाबू कमल का हाथ हिलाने-डुलाने लगे और बोले—"इस लडकी को बाहर

से देखकर जैसा आश्चर्य होता है, भीतर से देखकर वैसे ही दग रह जाना होता है। क्यों हरेन्द्र, ठीक है न?"

हरेन्द्र चुप रहा। कमल ने हँसते हुए जवाब दिया—"ठीक है कि नही, इसमे सन्देह है, लेकिन किसी ने अगर बुढापे की 'एकस्ट्रावेगन्स' कहके आपको कामो का मजाक किया हो तो इतना तो बेखटके कहा जा सकता है कि वह ठीक नही है। मात्रा-ज्ञान आपका इस दुनिया मे अचल है।"

"ओह, ऐसा है!" आशु बाबू ने गम्भीर स्नेह के स्वर में कहा—"जानता हूँ कि इस घर मे मैं तुम्हे खिला-पिला कुछ भी न सकूँगा, पर यह तो बताओ अपने घर तुमने क्या-क्या खाया है?"

"जो रोज खाया करती हूँ वही।"

"फिर भी, सुनूँ तो सही? बेला सोच रही थी कि यह भी मैंने बढा-चढ़ा के कहा है।"

कमल ने कहा—"यानी मेरे विषय मे मेरी अनुपस्थिति मे बहुत-कुछ चर्चा हो चुकी है?"

"सो तो हुई है, अस्वीकार नही करूँगा।" इतने मे चाँदी की रकाबी मे एक छोटा कार्ड लिये हुए बेहरा आ गया। उसकी लिखावट पर सबकी निगाह पड गयी और सभी को आश्चर्य हुआ। इस घर मे अजित एक दिन घर के लडके की तरह था, पर आगरे में रहते हुए भी वह नही आता और शायद यही स्वाभाविक है। इस न आने की लज्जा और सकोच के द्वारा दोनो तरफ से ऐसा एक व्यवधान उठ खडा हुआ है कि उसके इस अप्रत्याशित आगमन से सिर्फ आशु बाबू ही नही, उपस्थित सभी जरा चौंक-से पड़े। आशु बाबू के चेहरे पर उद्वेग की एक गहरी छाप पड गयी।—बोले, "उन्हे इसी कमरे मे ले आ।"

थोडी देर बाद अजित आ पहुचा। एक साथ इतने परिचित और अपरिचित जनो की उपस्थिति की सभावना का विचार या आशका उसने नही की थी।

आशु बाबू ने कहा—"बैठो अजित। अच्छे तो हो?"

अजित ने सिर हिलाते हुए कहा—"जी हाँ। आपकी तबीयत अब कैसी है? अब तो अच्छी मालूम होती है?"

आशु बाबू ने कहा—"बीमारी तो अच्छी हो गयी मालूम होती है।"

परस्पर का कुशल-प्रश्नोत्तर यही खतम हो गया। कमल न होती तो शायद और भी दो-एक बाते हो सकती थी, परन्तु चार आँखे होने के डर से अजित ने उधर कमल की ओर आँख उठाकर देखने का साहस ही नही किया। दो-तीन मिनट तक सब लोग चुप रहे। हरेन्द्र सबसे पहले बोला, पूछा—"यहाँ आप क्या अभी सीधे घर से ही आ रहे हैं?"

कुछ बोलने का मौका पाकर अजित के जी मे जी आ गया। बोला "नही, ठीक सीधा नही आ रहा हूँ, आपको खोजते हुए जरा घूम-फिरकर आ रहा हूँ।"

"मुझे खोजते हुए? क्या काम है?"

"काम मेरा नही, और एक सज्जन का है। वे राजेन्द्र की खोज में दोपहर से शायद चार बार आ चुके। उनसे बैठने के लिए कहा था, पर वे राजी नही हुए। स्थिरता से बैठकर प्रतीक्षा करना शायद उनको सहन नहो है।" हरेन्द्र ने शंकित होकर पूछा—"था कौन? देखने मे कैसा था? कह क्यो नही दिया कि यहाँ नही है?

अजित ने कहा—"यह खबर तो उन्हें दे चुका हूँ। पर शायद उन्होने विश्वास नही किया।"

हरेन्द्र का चेहरा उद्विग्नता से भर उठा, वह उठ खड़ा हुआ और कमल को घर पहुँचाने का भार आशु बाबूपर छोडकर चल दिया। उसके चले जाने पर आशु बाबू ने कहा—"कमल, इस लडके राजेन्द्र को मैंने दो-तीन बार से ज्यादा नही देखा, बिना किसी सकट मे पडे उसके दर्शन ही नही होते, पर ऐसा लगता है कि उससे मैं काफी स्नेह करने लगा हूँ। मालूम नही कौन-सी महामूल्य वस्तु वह अपने साथ लिये फिरता है, और मजा यह है कि हरेन्द्र के मुँह से सुना करता हूँ कि वह बिलकुल 'वाईल्ड' है, पुलिस उसे सन्देह की दृष्टि से देखती है। डर रहता है, न जाने कब क्या उपद्रव खडा कर बैठे और शायद उसकी खबर भी न मिले। यही देखो न, किसी को पता ही नही लग रहा है कि अचानक कहाँ गायब हो गया।"

कमल पूछ बैठी—"अचानक अगर मालूम हो जाय कि वे सकट मे पड गये हैं, तो आप क्या करेगे?"

आशु बाबू ने कहा—"क्या करूँगा, सो जवाब तो सिर्फ तभी दिया जा सकता है, अभी नही। बीमारी के दिनो में नीलिमा ने और मैंने उसके बहुत-से किस्से हरेन्द्र के मुँह से सुने हैं। दूसरो के लिए सचमुच ही अपने आपको किस तरह विलीन कर दिया जा सकता है, समर्पित किया जा सकता है, सुनते-सुनते मानो

उसकी तसवीर-सी खिच जाती थी सामने। भगवान् से प्रार्थना है कि उसपर कभी कोई आफत न आवे।"

ऊपर से किसी ने कुछ नही कहा, पर मन-ही-मन शायद सभी ने इस प्रार्थना मे साथ दिया।

कमल ने पूछा—"नीलिमा को आज देख नही रही हूँ? शायद काम मे व्यस्त होगी?"

आशु बाबू ने कहा, "काम-काजी ठहरी, दिन-रात काम-धन्धे मे ही लगी रहती हैं, मगर आज सुना है कि सिर-दर्द से विस्तर पर पडी हैं। तबीयत शायद कुछ ज्यादा खराब है। नही तो पडे रहने का उनका स्वभाव नहीं। अपनी आँखो से देखे बगैर विश्वास नही किया जा सकता कि कोई आदमी लगातार इतनी सेवा, इतना परिश्रम कर सकता है।"

फिर क्षण-भर चुप रहकर कहा—"अविनाश के साथ मेरी जान-पहचान आगरे मे हुई। बीच-बीच मे आता-जाता रहा हूँ। कितना-सा परिचय है। फिर भी आज सोचता हूँ कि ससार मे अपने-पराये का जो व्यवहार चल रहा है, वह कितना अर्थहीन है। दुनिया मे अपना-पराया कोई नही। कमल, यह कोई नही जानता कि ससार के इस महासमुद्र के बहाव मे पडकर कौन कहाँ से बहता हुआ पास आ जाता है और कौन बहकर दूर चला जाता है।"

सिर्फ उस अपरिचित स्त्री बेला के सिवा दोनो ही समझ गये कि यह बात किसको लक्ष्य करके और किस दु ख से कही गयी है। आशु बाबू कुछ-कुछ मानो अपने मन-ही-मन कहने लगे—"इस बीमारी से उठने के बाद से ससार की बहुत-सी चीजे मानो कुछ दूसरी ही तरह की नजर आने लगी हैं। ऐसा लगता है कि क्यो इतना खीच-तान, सग्रह करना और इतना भले-बुरे का वाद-विवाद किया जाता है? क्यो मनुष्य अपने चारो तरफ बहुत-सी भूलो और बहुत-से धोखो को जमा करके स्वेच्छा से अन्धा बन रहा है? अब भी उसे बहुत युगो का अज्ञात सत्य ढूँढ निकालना होगा, तब कही वह सच्चे अर्थो मे मनुष्य हो सकेगा। आनन्द तो नही, बल्कि निरानन्द ही मानो उसकी इस सभ्यता और भद्रता का अन्तिम लक्ष्य बन गया है!"

कमल आश्चर्य से उनकी तरफ देखती रही। यह बात नही कि उनकी बात का मतलब वह बिना किसी सशय के समझ रही हो। उसे ठीक ऐसा लगता था जैसे कि कुहरे के बीच किसी आगंतुक का चेहरा अस्पष्ट-सा दीखता हो; मगर पैरो की चाल बिलकुल परिचित हो।

आशु बाबू खुद ही रुके। शायद कमल की विस्मित दृष्टि ने उन्हे सचेतन किया। बोले—"तुम्हारे साथ मुझे और भी बहुत-सी बाते करनी हैं कमल, किसी दिन फिर आना।"

"आऊँगी। आज जाती हूँ।"

"अच्छा। गाडी नीचे खडी है, तुम्हे वह पहुँचा देगा, इसी से बासुदेव को छुट्टी नहीं दी है। अजित, तुम भी साथ क्यो नही चले जाते, लौटते वक्त तुम्हे आश्रम मे उतारता आयेगा?"

दोनो नमस्कार करके बाहर निकल आये। बेला साथ-साथ गाडी तक आयी, बोली—"आपके साथ बातचीत करने का आज वक्त नही रहा, मगर अगली बार जब आयेगी तब मैं नही छोडूँगी।"

कमल ने हँसकर सिर हिलाते हुए कहा—"यह मेरा सौभाग्य है। लेकिन डर लगता है, परिचय पाकर कही आपका मन न बदल जाय?"

मोटर मे दोनो जने पास-पास बैठे। चौराहे से मुडते वक्त कमल ने कहा—"उस दिन की रात भी ऐसी ही अँधेरी थी; याद है?"

"हाँ, याद है।"

"और उस दिन का पागलपन?"

"सो भी याद है।"

"मैं राजी हो गयी थी, सो याद है?"

अजित ने हँसकर कहा—"नही। मगर आपने जो व्यग्य किया था, सो याद है।" कमल ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"व्यग्य किया था? नही तो!"

"जरूर किया था।"

कमल ने कहा—"तो आपने गलत समझा था। खैर, उसे छोडिए। आज तो व्यग्य नही कर रही? चलिए न, आज ही दोनो जने चल दे?"

"धत्। आप बडी शरीर हैं।"

कमल ने हँसकर कहा—"शरीर कैसी? बताइए, मेरे जैसी शान्त-सीधी स्त्री कहाँ मिलेगी? अचानक हुक्म किया—कमल, चलो चले, और मैं उसी वक्त राजी होकर बोली, चलिए।"

"लेकिन वह तो सिर्फ मजाक था।"

कमल ने कहा—"अच्छा, मजाक ही सही, लेकिन बताइए, अचानक ऐसा क्या कसूर हो गया जो 'तुम' छोडकर अब 'आप' कहना शुरू कर दिया है? कितनी मुसीबत से दिन काट रही हूँ, भला आप ही लोगो के कपडे सी-सीकर किसी तरह पेट चला रही हूँ, और आपके पास रुपयो का शुमार नही,—पर एक दिन भी आपने मेरी सुधि ली? मनोरमा ऐसी तकलीफ मे पडती तो क्या आपसे रहा जाता? देखिए, दिन-रात मेहनत-मजदूरी कर-कर के कितनी दुबली हो गयी हूँ?" इतना कहकर जैसे ही उसने अपना बायॉ हाथ अजित के हाथ पर रखा वैसे ही अजित चौंक पडा और उसका सारा शरीर सिहर उठा। अस्फुट स्वर मे उसके मुँह से कुछ निकला ही चाहता था कि कमल सहसा अपना हाथ उठाकर चिल्ला उठी—"ड्राइवर, रोको-रोको, यहाँ पागलखाने के पास कहाँ आ पडे? गाडी घुमा लो। अँधेरे मे कुछ खयाल ही नही रहा।"

अजित ने कहा—"हाँ, कुसूर अँधेरे का ही है। तसल्ली सिर्फ यही है कि चाहे उसपर हजार अन्याय होता रहे, पर बेचारा प्रतिवाद नही कर सकता। इस अधिकार से वह वचित है।" और वह हँस दिया।

सुनकर कमल भी हँस दी, बोली, "सो तो ठीक है। लेकिन न्याय-विचार ही ससार मे सब कुछ नही है। यहाँ अन्याय अविचार के लिए भी स्थान है, इसीसे आज तक दुनिया चल रही है, नही तो न जाने वह कबकी रुक गयी होती।—ड्राइवर, रोको।"

अजित ने दरवाजा खोल दिया। कमल सडकपर उतरकर बोली—"अँधेरे का इससे भी बढकर एक और अपराध है अजित बाबू, उसमे अकेले जाने मे डर मालूम होता है।"

इस इशारे पर अजित नीचे उतरकर पास जा खडा हुआ। कमल ने ड्राइवर से कहा—"अब तुम घर जाओ, इन्हे जाने मे अभी कुछ देर होगी।"

"सो कैसे! इतनी रात मे मुझे गाडी कहाँ से मिलेगी?"

गाडी चली गयी। अजित बोला—"मुझे मालूम है, कोई भी इन्तजाम न होगा। मुझे अँधेरे मे तीन-चार मील पैदल चलकर ही जाना पडेगा। और अभी मैं आपको पहुँचाकर आसानी से घर जा सकता था।"

"नही जा सकते थे। कारण बगैर खिलाये मैं आपको उस आश्रम की अनिश्चितता मे नही भेज सकती। चलिए, आइए।"

घरपर नौकरानी आज बत्ती जलाये बाट देख रही थी, पुकारते ही उसने दरवाजा खोल दिया। ऊपर रसोई-घर मे जाकर कमल ने उसी सुन्दर आसन को बिछाते हुए अजित से बैठने के लिए कहा। सामान सब तैयार था, स्टोव जलाकर कमल ने रसोई चढा दी और पास ही बैठकर बोली—"ऐसे ही और एक दिन की बात याद है?"

"जरूर।"

"अच्छा, उस दिन के साथ आज कहाँ क्या फर्क है, बता सकते हैं? बताइये तो देखे?"

अजित कमरे मे इधर-उधर देखकर याद करने की कोशिश करने लगा कि कहाँ क्या था।

कमल ने हँसते हुए कहा—"उधर रात भर भी ढूँढ के न बता सकेंगे। किसी दूसरी ही तरफ देखना पडेगा।"

"किधर, बताइए तो?"

"मेरी तरफ।"

अजित सहसा मारे शरम के सकुचित-सा हो गया। आहिस्ते से—"एक दिन भी मैंने आपका मुँह अच्छी तरह नही देखा। और सब देखा करते थे, पर मालूम नही क्यो, मुझसे देखते नही बनता था।"

कमल ने कहा—"औरो के साथ आप मे यही तो फर्क है। वे जो देख सके उसका कारण यह था कि उनकी दृष्टि मे मेरे प्रति सम्मान का भाव नही था।"

अजित चुप रहा। कमल कहने लगी—"मैंने तय किया था कि कैसे भी होगा आपको खोज निकालूँगी। मुझे आशा नही थी कि आशु बाबू के घर आज आपसे भेट हो जायगी, पर सयोग से जब भेट

हो गयी तव जान लिया कि पकड़ ही लाऊँगी। भोजन कराना तो महज एक छोटा-सा उपलक्ष्य है, इसलिए भोजन कर चुकने पर भी छुट्टी नही मिलेगी। आज रात को मैं आपको कही भी न जाने दूँगी, इसी घर में बन्द कर रखूँगी।"

"पर इससे आपको फायदा क्या होगा?"

कमल ने कहा—"फायदे की वात पीछे वतलाऊँगी, पर आप मुझ से 'आप' कहते हैं तो सचमुच ही मुझे व्यथा होती है। एक दिन 'तुम' कहके बोलते थे, उस दिन मैंने निहोरा नही किया था, आपने ही इच्छा से कहा था। आज उसे वदल देने लायक कोई भी कुसूर मैंने नही किया है। रूठकर अगर उत्तर न दूँ तो आप ही कष्ट पायेगे।"

अजित ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ, शायद पाऊँगा।"

कमल ने कहा—" 'शायद' नही, निश्चय से पायेगे। आप आगरे आये थे मनोरमा के लिए। पर वह जव इस तरह से चली गयी तव सवने सोचा कि अव आप एक क्षण भी यहाँ नही ठहरेगे। सिर्फ एक मैं ही जानती थी कि आप नही जा सकेगे। अच्छा, इस वातपर कि मैं आपको प्यार करती हूँ, आप विश्वास करते हैं?"

"नही, नही करता।"

"जरूर करते हैं। इसी से आपके खिलाफ मेरी वहुत-सी नालिशे हैं।"

अजित ने कुतूहल के साथ कहा—"वहुत-सी नालिशे? एक-आध सुनाओगी भी?"

कमल ने कहा—"सुनाऊँगी, इसलिए मैंने जाने नही दिया। पहले अपनी वात कहती हूँ। और कोई चारा नही, इससे गरीवो के कपडे सीकर अपनी गुजर करती हूँ, यह सव मुझे सह्य है। पर इसलिए कि सकट मे पडी हूँ, यह कैसे सहा जा सकता है कि आपके भी कुरते सीकर दाम लूँ?"

"पर तुम किसी का दान तो लेती नही हो।'

"नही. दान मैं किसी का नही लेती, यहाँतक कि आपका भी नही। लेकिन दान के सिवा क्या ससार मे और देने का कोई रास्ता खुला ही नही? आपने आकर जोर देकर क्यो नही कहा कि कमल, यह काम मैं तुम्हे नही करने दूँगा। मैं उसका क्या जवाव देती? दुर्दैव से आज अगर मेरी मेहनत-मजूरी करके खाने की शक्ति जाती रहे तो फिर आपके जीते जी भी क्या मैं दर-दर भीख माँगती फिरूँगी?"

इस दर्दभरी वात ने अजित को व्याकुल कर दिया, उसने कहा—"यह नही हो सकता कमल, मेरे जीते जी यह असम्भव है। तुम्हारे विषय मे मैंने एक दिन भी इस तरह नही सोचा। अव भी मानो मन मे यह वात वैठती नही कि जिस कमल को हम सव जानते हैं, वही तुम हो।"

कमल ने कहा—"और लोग चाहे जो जानते रहे, पर आप क्या उन्ही मे से एक हैं ? उनसे ज्यादा कुछ नही?"

इस प्रश्न का उत्तर नही मिला। शायद अत्यन्त कठिन होने के कारण, और इसके बाद दोनों चुप हो रहे। शायद, दोनो ने यह अनुभव किया कि दूसरे से पूछने की अपेक्षा यह बात अपने से ही पूछने की ज्यादा जरूरत है।

कितना-सा राँधना था! तैयार होने मे देर न लगी। खाते-खाते अजित ने गम्भीर होकर कहा—"फिर भी, मजा यह कि पास चाहे कितना ही रुपया क्यो न हो, तुम्हारी कमाई का अन्न हाथ पसारकर खाये वगैर किसी को छुटकारा नही मिलता, और तुम न किसी का लेती हो न किसी का खाती हो, कोई सिर पटक कर मर जाय तव भी नही।"

कमल ने हँसकर कहा, "आप खाते ही क्यो हैं? इसके अलावा आपने सिर कव पटका है?"

अजित ने कहा—"सिर पटकने की इच्छा वहुत वार हुई है। तुम्हारा खाता इसलिए हूँ कि जबरदस्ती में तुम से जीत नहीं पाता। आज मैं अगर कहूँ कि कमल, आज से मैंने तुम्हारा सारा भार अपने ऊपर ले लिया, यह उञ्छ-वृत्ति अव मत करो,तो सम्भव है कि तुम कोई ऐसी वात कह बैठो कि मेरे मुँह से फिर दूसरा कोई वाक्य ही न निकले।"

कमल ने कहा—"यह बात क्या कही थी कभी आपने?"

"शायद कही थी।"

"और मैंने सुनी नहीं वह वात?"

"नही।"

"तो आपने सुनने लायक तरीके से नहीं कही। शायद, मन-ही-मन सिर्फ इच्छा ही की, मुँह से वह जाहिर नही हुई।"

"अच्छा, मान लीजिए, आज ही अगर कहूँ?"

"और मैं भी अगर कहूँ कि नही?"

अजित ने हाथ का कौर नीचे रखते हुए कहा—"यही तो मुश्किल है। तुम्हें एक दिन के लिए भी हम लोग समझ नही सके। जिस दिन ताजमहल के सामने पहले देखा था, उस दिन भी जैसे तुम्हारी बातें समझ मे नही आयीं, वैसे ही आज भी हम लोगो के लिए तुम 'रहस्य' ही बनी हुई हो। अभी तुमने कहा था कि मेरा भार सँभाल लो और अभी की अभी कह रही हो नही!"

कमल हँस दी, बोली—"ऐसी 'नही' जरा आप भी कह देखिए न? कहिए कि आज तो खाया है, फिर कभी न खाएँगे, देखूँ, कैसे आपकी बात रहती है?"

अजित ने कहा—"रहेगी कैसे? बगैर खिलाये तुम तो छोडोगी नही।"

इस बार कमल नहीं हँसी। शान्त भाव से बोली—"आपके लिए मेरा भार उठाने का समय अभी नही आया। जिस दिन आयेगा उस दिन मेरे मुँह मे भी 'ना' नही निकलेगा। रात बढती जा रही है, आप खा लीजिए।"

"खाता हूँ। वह दिन कभी आयेगा या नही, बता सकती हो?"

कमल ने सिर हिलाते हुए कहा—"सो मैं नही बता सकती। जवाब आपको खुद ही एक दिन खोज लेना पडेगा।"

"इतनी शक्ति मुझ मे नही है। एक दिन बहुत खोजा था, पर मिला नहीं। इसी आशा से कि जवाब तुम्ही से मिलेगा, मैं हाथ पसारे बैठा रहूँगा।"

इसके बाद वह चुपचाप खाने लगा। थोडी देर बाद कमल ने पूछा, "इस घर के होते हुए भी अचानक हरेन्द्र के आश्रम मे रहने क्यों पहुँचे?"

अजित ने कहा—"कही-न-कही तो पहुँचना ही था। तुम खुद ही जानती हो, आगरा छोडकर मैं कही जा नही सकता था।"

"तो जानती हूँ न?"

"हाँ, जानती तो हो ही।"

"और यही अगर सच हो, तो सीधे मेरे पास क्यो न चले आये?"

"अगर आता, तो सचमुच ही जगह दे देती?"

"सचमुच तो आये नही? खैर, इसे छोडिए, पर हरेन्द्र के आश्रम में तो असुविधाओं का ओर-छोर नही, वही उनकी साधना ठहरी, मगर इतनी असुविधाएँ आप कैसे सह लेते हैं?

"मालूम नही, कैसे सह लेता हूँ, पर आज मुझे उन सब बातों का मन में खयाल भी नही आता। अब तो मैं उन्ही मे से एक हो गया हूँ। हो सकता है कि यही मेरा भविष्य का जीवन हो। अबतक चुप भी नही बैठा था। आदमी भेजकर जगह-जगह आश्रम कायम करने की कोशिश करता रहा हूँ। तीन-चार जगह से उम्मीद भी मिली है, जी चाहता है, एक बार खुद जाके घूम आऊँ।"

"यह सलाह आपको दी किसने? हरेन्द्र ने शायद?"

अजित ने कहा—"अगर दी भी हो तो निष्पाप होकर ही दी है। देश का सर्वनाश जिन लोगों ने अपनी आँखो से देखा है, दारिद्रय का निष्ठुर दु ख, धर्महीनता की गहरी ग्लानि, कमजोरी से उत्पन्न दयनीय भीरुता—"

कमल बीच में ही बोल उठी—"हरेन्द्र ने यह सब देखा होगा, मैं इनकार नही करती, पर आपके निकट तो ये सब सुनी हुई बातें हैं। अपनी आँखों से तो आपको कभी कुछ देखने का मौका मिला नही?"

"पर बातें तो ये सब ठीक हैं?"

"सच नही है, सो मैं नही कहती, पर उसके प्रतिकार का उपाय क्या इन आश्रमों की प्रतिष्ठा में है?"

"नही क्यो? भारतवर्ष का अस्तित्व सिर्फ उत्तर मे हिमालय और तीनो ओर समुद्र से घिरा हुआ थोडा-सा भूखण्ड ही तो नही? यहाँ की प्राचीन सभ्यता, यहाँ की धार्मिक विशिष्टता, यहाँ की नैतिक

पवित्रता, न्याय-निष्ठा की महिमा—यही तो भारत है। इसी से इसका नाम है देवभूमि, इसे अत्यन्त हीन दशा से वचाने के लिए तपस्या के सिवा और क्या मार्ग है? ब्रह्मचर्य-व्रतधारी निष्कलंक बच्चों के लिए जीवन मे सार्थक होने और धन्य होने के—''

कमल ने उसे रोक दिया। वोल उठी—''आप भोजन कर चुके हो तो हाथ-मुह धोकर उठिए। उस कमरे मे चलिए। उठिए, अव नही।''

''तुम नही खाओगी?''

''मैं क्या दोनो वक्त खाती हूँ जो खाऊँगी? चलिए।''

''पर मुझे तो आश्रम वापस जाना है।''

''नही, नही जाना है, उस कमरे मे चलिए। वहुत-सी बाते आप से मुझे सुननी हैं।''

''अच्छा, चलो। लेकिन बाहर रहने का हमारा नियम नही है—कितनी ही रात क्यो न हो, आश्रम मे वापस जाना ही पडेगा।''

कमल ने कहा—''वह नियम दीक्षित आश्रमवासियो के लिए है, आपके लिए नही।''

''मगर लोग क्या कहेगे?''

इस उल्लेख से कि लोग क्या कहते हैं, कमल का धैर्य छूट जाता है। उसने कहा—''लोग सिर्फ आपकी निन्दा ही करेगे, रक्षा नही कर सकते। जो रक्षा कर सकेगी उसके निकट आपको कोई डर नही। आपके 'उन लोगो' से मैं कही ज्यादा आपकी अपनी हूँ। उस दिन आपने साथ चलने को कहा था, पर मैं जा नही सकी, आज बगैर चले मेरा काम नही चलेगा। चलिए उस कमरे मे, मुझसे कोई डर नही। मैं उनकी जाति की नही हूँ जो पुरुष के भोग की ही वस्तु हैं। उठिए।''

उस कमरे मे ले जाकर कमल ने अजित के लिए विलकुल नये कपडो से पलंग पर सुन्दर बिस्तर कर दिये और अपने लिए जमीनपर मामूली-सा विछौना कर लिया। फिर उठकर बाहर जाते हुए उसने कहा—''मैं अभी आती हूँ। दस मिनट लगेगे, मगर आप तो मत जाइएगा।''

''नही।''

''नही तो मैं झकझोर कर जगा दूँगी!''

''उसकी जरूरत न होगी कमल, नीद मेरी आँखो से उड गयी है।''

''अच्छा, उसकी परीक्षा हो जायगी।''—कहकर वह कमरे से बाहर चली गई। रसोई के बर्तन यथास्थान उठाके रखना, जूठे वरतन बरण्डे मे धरना, घर-गृहस्थी के ऐसे ही सब छोटे-मोटे काम जो वाकी थे उन्हे उसने पूरा किया, तव जाके कही उसकी छुट्टी हुई।

सूने कमरे मे कमल के हाथ से वडे जतन से विछाई शुभ्र-सुन्दर शय्यापर बैठकर सहसा उसने एक गहरी साँस ली। इसका खास कोई गहरा कारण नही था, सिर्फ मन के अन्दर 'अच्छा लगने' की एक तृप्ति थी। हो सकता है कि उसमे थोडा-सा कुतूहल भी मिला हुआ हो, पर आग्रह का उत्ताप नही था। मालूम होता था कि मानो एक शान्त आनन्द का मधुर स्पर्श चुपके से उसके सारे शरीर मे फैल गया है।

अजित धनाढच-घर की सन्तान है, जन्म से विलास के भीतर ही वह इतना बडा हुआ है, परन्तु हरेन्द्र के ब्रह्मचर्य-आश्रम मे भरती होने के वाद से गरीबी और आत्म-निग्रह के दुर्गम मार्ग से भारतीय वैशिष्टच की मर्मोपलब्धि की एकाग्र साधना ने उधर से उसकी दृष्टि हटा दी है। सहसा उसकी नजर तकिये पर पड़ी, देखा कि उसकी खोलीपर चारों तरफ पीले सूत से छोटे चन्द्रमल्लिका के फूल कढे हुए हैं। बिछौने की चादर का जो कोना नीचे लटक रहा है, उसपर सफेद रेशम से कढी हुई किसी अज्ञात लता की तसवीर बनी हुई है। जरा-सी कारीगरी थी, मामूली वात, जो न जाने और कितने आदमियो के घर होगी। फुरसत के वक्त कमल ने इसे अपने हाथ से काढा है। देखकर अजित मुग्ध हो गया। हाथ से उसे हिला-डुला रहा था कि कमल बाहर का काम निबटाकर कमरे मे आ खडी हुई। अजित उसके चेहरे की तरफ देखकर बोल उठा—''वाह, बहुत सुन्दर है!''

कमल ने आश्चर्य के स्वर मे कहा—''क्या सुन्दर है? यह बेल?''

''हाँ, और यह पीले रग के फूल। तुमने अपने हाथ से काढ़े हैं, न?''

कमल ने हँसते हुए कहा—''खूब पूछा। अपने हाथ से नही काढती तो क्या बाजार से कारीगर बुलाकर तैयार कराती? आपको चाहिए ऐसा?''

"नही, नही, मुझे नहीं चाहिए। मैं क्या करूँगा?"

उसके इस आकुल और सलज्ज इनकार से कमल हँस पडी। बोली—"आश्रम मे जाकर इसपर सोइएगा और कोई पूछे तो कहिएगा कमल ने रात-भर जागकर इसे बना दिया है।"

"धुत्!"

"धुत् क्यो? ये सब चीजे कोई अपने लिए थोडे ही बनाता है, दूसरे ही किसी आदमी के लिए बनायी जाती हैं। तकलीफ झेलकर जो फूल काढे थे, सो क्या अपने सोने के लिए? एक-न-एक दिन कोई-न-कोई आता ही,उसी के लिए ये चीजे उठा के रख दी थी। सवेरे जब आप जाने लगेगे तब ये आपके साथ रख दूँगी।"

अबकी बार अजित भी हँस दिया, बोला—"अच्छा कमल, तुमने क्या मुझे बिलकुल ही मूर्ख समझ रखा है?"

"क्यो?"

"क्या इस बातपर भी मैं विश्वास कर लूँ कि तुमने मेरी ही याद करके ये सब चीजे तैयार की थी?"

"क्यो नही करेगे?"

"इसलिए कि बात सच नही है।"

"पर अगर कहूँ कि मैं सच कह रही हूँ, तो विश्वास करेगे, कहिए?"

"जरूर करूँगा। मगर तुम्हारे मजाक की कोई हद नही,—कही भी तुम्हे हिचकिचाहट नही होती। उन दिन की मोटर पर घूमने की बात याद आते ही लज्जा की हद नही रहती। वह बात दूसरी है, पर इसका मुझे भरोसा है कि मजाक के सिवाय और किसी बात के लिए तुम झूठ नही बोलोगी।"

"अगर मैं कहूँ कि वास्तव मे मैंने मजाक नही किया, बिलकुल सच कह रही हूँ, तो विश्वास करेगे?"

"जरूर करूँगा।"

कमल ने कहा, "अगर करे तो आज मैं आपसे सच्ची बात ही कहूँगी। तबतक राजेन्द्र नही आया था, अर्थात् आश्रम से निकलकर तब तक उसने मेरे यहाँ आश्रय नही लिया था। मेरी भी वही दशा थी। आप लोगो ने मिलकर जब मुझे घृणा से दूर कर दिया, इस परदेश मे जब किसी के पास जाकर खडे होने का उपाय नही रहा, उसी समय का ही,—उन गम्भीर दु ख के दिनो का ही यह काम है। शायद मुझे कभी मालूम भी न होता कि उस दिन ठीक किस की याद करके ये फूल काढे थे। लगभग भूल ही चुकी थी, मगर आज बिस्तर बिछाते वक्त अचानक ऐसा लगा कि नही-नही, उसपर नही,—जिसपर कोई किसी दिन सो चुका है उसपर मैं आपको हर्गिज नही सुला सकती। '

"क्यो नही सुला सकती?"

"मालूम नही क्यो, जैसे कोई धक्का देकर यह बात कह गया हो।" कहकर वह क्षणभर मौन रही और फिर बोली—"उसी समय सहसा इन चीजो की याद आयी कि ये बकस मे रखी हैं। आप तब बाहर हाथ-मुँह धो रहे थे। इस डर से कि आप झट से आ पहुँचेगे, मैंने जल्दी-जल्दी इन्हे निकालकर बिछाना शुरू कर दिया। तब मेरे जी मे पहले-पहल यह खयाल आया कि उरा दिन जिसकी याद करके रात-भर जागकर यह फूल-पत्ती बेले काढी थी वह आप ही थे।"

अजित कुछ बोला नही। सिर्फ एक रगीन आभा उसके चेहरे पर दिखाई दी और उसी क्षण विलीन हो गयी।

कमल खुद भी कुछ देर चुप रही, फिर बोली—"चुपचाप क्या सोच रहे हैं, बताइए न?"

अजित ने कहा—"सिर्फ चुप ही हूँ, कुछ सोच नही रहा हूँ।"

"इसकी वजह?"

"वजह? तुम्हारी बाते सुनकर मेरी छाती के भीतर मानो आँधी-सी उठ खडी हुई है। सिर्फ आँधी ही, न तो आया आनन्द और न बँधी आशा ही।"

कमल चुपचाप उसकी तरफ देखा कि अजित धीरे-धीरे कहने लगा, "कमल, एक किस्सा कहता हूँ सुनो। मेरी माँ को एक बार हमारे गृह-देवता राधावल्लभजी ने पूजावाले कमरे मे मूर्ति धारण करके दर्शन दिये और माँ के हाथ से भोग लेकर सामने बैठकर खाया। यह उनकी अपनी आँखो देखी बात थी, फिर भी घर मे हम लोगो मे से कोई उसपर विश्वास नही कर सका। सबने समझा कि सपना होगा, मगर

हमारे इस विश्वास का दु.ख उन्हे मरते दम तक बना रहा। आज तुम्हारी बात सुनकर मुझे वही बात याद आ रही है। मैं जानता हूँ कि तुम हँसी नही कर रही हो, मगर फिर भी, मेरी माँ की तरह तुमसे भी कही बडी भारी गलती हो गयी है। मनुष्य के जीवन मे ऐसा बहुत-सा समय चला जाता है जब वह अपने सम्बन्ध मे अँधेरे मे रहता है। फिर शायद सहसा एक दिन आँख खुलती है। मेरा भी वही हाल है। यो तो मैं अबतक दुनिया मे और भी बहुत जगह घूमता रहा हूँ, लेकिन सिर्फ इस आगरे मे आकर ही मैंने ठीक से अपने को पहचाना है। मेरे पास है तो सिर्फ रुपया और वह भी पिता की कमाई का। इसके सिवा ऐसी कोई भी चीज मेरी अपनी नही, जिसके लिए तुम मेरी गैर जानकारी मे मुझ से प्रेम कर सकती।"

कमल ने कहा—"रुपयो की कोई फिकर न कीजिए आप। आश्रम-वासियो को जब कि एक मरतबा उसका पता चल गया है तब उसकी सब व्यवस्था वे ही कर डालेगे।" कहते-कहते वह जरा हँसी और फिर बोली—"लेकिन और सब तरफ से आप ऐसे नि.स्व हैं, सो इसकी खबर मैंने क्या पहले खाक पाई थी? अगर पाई होती तो क्या कभी प्रेम करने आती? इसके सिवा आपके स्वभाव की भलाई-बुराई समझने का वक्त ही कहाँ मिला था मुझे? मन मे सिर्फ एक सन्देह था, जिसका पता नही चल रहा था, पर अभी-अभी दस मिनट हुए, अकेली बिस्तर के सामने खडी थी कि अकस्मात् कोई ठीक खबर मेरे कान मे आकर सुना गया।"

अजित ने गहरे आश्चर्य के साथ पूछा—"सच कह रही हो? सिर्फ दस मिनट हुए? पर अगर सच हो तो यह पागलपन है।"

कमल ने कहा—"पागलपन तो है ही। इसी से तो आपसे कहा था कि मुझे और कही ले चलिए। ऐसी भीख तो मैंने माँगी नही कि ब्याह करके मेरे साथ घर-गृहस्थी कीजिए।"

अजित अत्यन्त कुण्ठित हो गया। बोला—"भीख क्यों कहती हो कमल, यह भीख माँगना नही है, यह तुम्हारा प्रेम का अधिकार है। मगर अधिकार का दावा तुमने नही किया, माँगी ऐसी चीज जो पानी के बुदबुदे की तरह अल्पायु है, और उसी की तरह मिथ्या।"

कमल ने कहा—"हो भी सकता है कि उसकी आयु कम हो, मगर इससे वह मिथ्या क्यो होगी? आयु की दीर्घता को ही जो सत्य समझकर जकडे रहना चाहते हैं, मैं उनमे से नही हूँ।"

"पर इस आनन्द मे तो कुछ भी स्थायित्व नही, कमल!"

"न रहे। लेकिन जो लोग, इस डर से कि असली फूल जल्दी से सूख जाते हैं, देरतक रहने वाले नकली फूलो का गुच्छा बनाते और फूलदानी मे सजाकर रखते हैं, उनके साथ मेरे मत का मेल नही खाता। आप से पहले भी मैंने एक बार ठीक यही बात कही थी कि किसी भी आनन्द में स्थायित्व नही है। स्थायी हैं सिर्फ उस आनन्द के क्षणस्थायी दिन, और वे दिन ही तो मानव-जीवन के चरम सचय हैं। उस आनन्द को बाँधने चले कि वह मरा। इसी से ब्याह मे स्थ.यित्व तो है, पर उसका आनन्द नही। दु सह स्थायित्व की मोटी रस्सी गले मे बाँधकर वह आनन्द आत्महत्या करके मर मिटता है।"

अजित को याद आया कि ठीक यही बात उसने पहले भी कमल के मुँह से सुनी थी। सिर्फ मुँह की बात ही नही है यह, -यही उसके अन्त करण का विश्वास है। शिवनाथ ने उससे ब्याह नही किया, किन्तु धोखा दिया था, इस बात को लेकर एक दिन के लिए भी उसने कोई शिकायत नही की। क्यो नही की? आज यह पहले पहल अजित ने बिना किसी सशय के समझा कि इस धोखे मे कमल की अपनी भी राय थी। ससार-भर की मानव-जाति के इस प्राचीन और पवित्र सस्कार के प्रति इतनी जबरदस्त अवज्ञा के कारण अजित का मन धिक्कार से भर उठा।

क्षणभर मौन रहकर वह बोला—"तुम्हारे सामने गर्व करना मुझे शोभा नही देता। पर तुम से अब मैं कोई बात छिपाऊँगा नही। ये लोग कहते हैं कि संसार मे कामिनी-काञ्चन का त्याग ही पुरुष का सबसे बडा पुरुषार्थ है। बुद्धि की तरफ से मैं इसपर विश्वास करता हूँ और यह भी मानता हूँ कि इस साधना में सिद्धि प्राप्त करने की अपेक्षा और कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु नही। काञ्चन मेरे पास काफी है, उसकी मुझे इच्छा नही, परन्तु जब मैं सोचता हूँ कि मुझे अपने सम्पूर्ण जीवन मे न कोई प्यार करने वाला मिला और न कोई मिलेगा तब मेरा हृदय मानो सूख जाता है। डर लगता है कि हृदय की इस कमजोरी को शायद मैं मरते दमतक न जीत सकूँगा। भाग्य मे यही अगर किसी दिन घटा तो मैं आश्रम छोड़कर कही चला

जाऊँगा। पर तुम्हारा आह्वान तो उससे भी बढ़कर मिथ्या है। उस पुकार का मैं अनुकूल जवाब न दे सकूँगा।"

"इसे आप मिथ्या क्यो कह रहे हैं?"

"मिथ्या तो है ही। मनोरमा का आचरण समझ मे आता है, क्योकि वास्तव मे कभी उसने मुझे प्यार नही किया, किन्तु शिवनाथ के प्रति शिवानी का प्यार तो मैंने अपनी आँखो से देखा है। उस दिन मानो उसकी कोई सीमा ही नही थी, पर आज उसका निशानतक मिट गया है।"

कमल ने कहा—"आज वह अगर मिट ही गया हो तो उस दिन का क्या सिर्फ मेरा छल ही आपकी निगाह मे आया था?"

अजित ने कहा—"सो तो तुम्ही जानो, पर आज मुझे लगता है कि नारी के जीवन मे इससे बढ़कर मिथ्या और कुछ है ही नही।"

कमल की दृष्टि प्रखर हो उठी। उसने कहा—"नारी-जीवन के सत्यासत्य निर्णय का भार नारीपर ही रहने दीजिए। उसके निर्णय का दायित्व पुरुष को लेने की जरूरत नही—न मनोरमा का और न कमल का। इसी तरह से ससार में न्याय चिरकाल से विडम्वित होता आ रहा है, नारी असम्मानित होती रही है और पुरुष का चित्त सकीर्ण और कलुषित होता गया है। इसी से इस झूठे मामले का आजतक फैसला नही हुआ। अविचार से सिर्फ एक ही पक्ष क्षतिग्रस्त नहीं होता अजित वावू, दोनों पक्षों का सर्वनाश होता है। उस दिन शिवनाथ ने जो कुछ पाया था, दुनिया के वहुत कम पुरुषों के भाग्य में उतना बडा होता है, पर आज वह नही है। यह तर्क उठाकर कि क्यों नही है, पुरुष अपने मोटे हाथ से मोटा डण्डा घुमाकर शासन भले ही कर ले, पर उसे पा नही सकता। उस दिन का होना जितना वडा सत्य था, आज का न होना भी ठीक उतना ही वडा सत्य है। क्योंकि शठता की फटी गुदडी ओढ़ाकर इसे ढक देने मे शरम आती है, इसी वजह से पुरुष के विचार से यह हो गया नारी-जीवन का सवसे वडा मिथ्या? क्या इसी सुविचार की आशा से हम आप लोगो का मुँह ताका करती हैं?"

अजित ने जवाव दिया—"मगर उपाय क्या है? जो इतना क्षणस्थायी है, इतना क्षणभंगुर है, उसे इससे ज्यादा सम्मान मनुष्य देगा ही क्यों?"

कमल ने कहा—"देगा नही, यह मैं जानती हूँ। हमारे आँगन के किनारे जो फूल खिलते हैं उनका जीवन एक छाकसे ज्यादा नही। उससे वल्कि वह मसाला पीसने का सिल-लोढ़ा कहीं ज्यादा टिकाऊ है, कही ज्यादा दीर्घस्थायी है। सत्य की जाँच का इससे ज्यादा मजवूत माप-दण्ड आप लोग और पा ही कहाँ सकते हैं?"

"कमल, यह ठीक उदाहरण नही है, यह तो सिर्फ गुस्से की बात है।"

"गुस्सा किस वात का अजित वावू? सिर्फ स्थायित्व लेकर ही जिनका कारोवार है, वे इसी तरह कीमत आँका करते हैं। मेरे आह्वानपर जो आप से 'हाँ' कहते नही वना, उसकी जड़में भी यही सशय है। दस्तखत करके जो चिरकाल के लिए वन्धन नही लेना चाहती, उसपर आप विश्वास करेंगे किस तरह? फूल को जो नही जानता उसके लिए वह सिल-लोढ़ा ही सबसे वडा सत्य है, क्योंकि उस सिल-लोढ़े के सूखकर झड जाने की आशंका नहीं है। फूल की आयु सिर्फ एक छाक की है और सिल-लोढ़ा हमेशा के लिए है। रसोईघर की जरूरत के मुताविक वह हमेशा रगड-रगडकर मसाला पीस दिया करेगा, रोटी निगलने के लिए तरकारी का वह उपकरण जो ठहरा, उस पर भरोसा किया जा सकता है। उसके न होने से ससार वेस्वाद हो जायगा।"

अजित उसके मुँह की तरफ देखता हुआ बोला—"यह व्यग्य किसलिए कमल?"

कमल के कानो तक शायद यह प्रश्न पहुँचा ही नही, वह मानो अपने आप ही कहने लगी—"मनुष्य यह समझ ही नही पाता कि हृदय लोहे से बना नही होता, इस तरह निश्चित निर्भयता से उसपर सारा बोझा नही लादा जा सकता। उसमें दु:ख न होता हो सो वात नही—पर यही हृदय का धर्म है, यही उसका सत्य है। फिर भी यह वात कही भी नहीं जा सकती और न मानी ही जा सकती है। इससे बढ़कर अनीति ससार में और क्या है? इसीसे तो किसी की समझ में न आया कि शिवनाथ को कैसे मैं सर्वान्तःकरण से क्षमा कर सकी हूँ! रो-रोकर यौवन मे जोगन वनना उनकी समझ मे आ जाता, पर यह उनसे नही सहा गया, अरुचि और अवहेलना से सारा मन उनका कडुआ हो गया। पेड के पत्ते सूख के झड जाते हैं और

उनके क्षत को नये पत्ते आकर भर देते हैं; यह तो हुआ मिथ्या और बाहर की लता मर जानेपर भी पेड से लिपटी रहती है,—कसके चिपटी रहती है, यह हो गया सत्य?"

अजित एक मन से सुन रहा था, उसकी बात खतम होते ही एक गहरी साँस छोडकर बोला—"एक बात हम लोग अकसर भूल जाया करते हैं कि असल मे तुम हमारी अपनी नही हो। तुम्हारा खून, तुम्हारा सस्कार, तुम्हारी सारी शिक्षा विदेश की है। इसके प्रचण्ड सघात को काटकर तुम किसी तरह ऊपर उठ नही सकती और इसी जगह हमारी तुम्हारे साथ निरन्तर खटक होती है। रात बहुत हो गयी कमल, इस निष्फल झगडे को बन्द करो।—यह आदर्श तुम्हारे लिए नहीं है।"

"कौन-सा आदर्श? आपके ब्रह्मचर्य आश्रम का?"

इस ताने की चोट से अजित मन-ही-मन गुस्सा हो गया। बोला—"अच्छा, सो ही सही। लेकिन इसे तुम नही समझोगी कि इसका गूढ तत्व विदेशियो के लिए नही है।"

"आपकी शागिर्दी करनेपर भी नही।"

"नही।"

कमल हँस पडी। मानो अब वह पहले की रही ही नही। बोली—"अच्छा, यह तो बताइए कि उन साधुओ के अड्डे मे से आपका नाम कैसे कटवा सकती हूँ? वास्तव मे वह आश्रम मेरी आँख का काँटा बन गया है।"

अजित विस्तर पर पड़ रहा। बोला—"राजेन्द्र को बुलाकर तुमने अनायास ही जगह दे दी। तुम्हे कुछ भी हिचकिचाहट न हुई, क्यो?"

"हिचकिचाहट क्यो होती?"

"इन सब बातो की तुम परवाह ही नही करती क्या?"

"क्या परवाह नही करती? आप लोगो के मतामत की? सो तो नही करती।"

"अपने सम्बन्ध मे भी शायद कभी किसी बात से डरती नही?"

कमल ने कहा—"यह तो नही कह सकती कि कभी डरती ही नही, पर ब्रह्मचारी से डर किस बात का?"

"हूँ।" कहके अजित चुप हो गया।

फिर कुछ देर बाद एकाएक बोल उठा—"केंचुआ मिट्टी के नीचे अँधेरे मे रहता है, वह जानता है कि बाहर के उजाले मे निकलने से उसका बचना मुश्किल है। उसे लील जाने के लिए बहुत से मुँह बाये फिर रहे हैं। छिपने के सिवा आत्मरक्षा का और कोई उपाय उसे मालूम नही। पर तुम जानती हो कि आदमी केंचुआ नही, यहाँ तक कि औरत होने पर भी नही। शास्त्रो मे लिखा है, अपने स्वरूप को जान लेना ही परम शक्ति है—और तुम्हारा यह अपना स्वरूप-ज्ञान ही तुम्हारी असल शक्ति है,—क्यो है न ठीक?"

कमल कुछ बोली नही, चुप रही।

अजित ने कहा—"स्त्रियाँ जिस चीज को अपने इहजीवन का सर्वस्व समझती हैं, उसपर तुम्हारी ऐसी एक सहज उदासीनता है कि चाहे कोई कितनी ही निन्दा किया करे, वह तुम्हारे चारो तरफ आग की चहारदीवारी बनकर प्रतिक्षण तुम्हे रखाया करती हैं। तुम तक पहुँचने के पहले ही वह निन्दा खुद जलकर भस्म हो जाती है। अभी-अभी तुम मुझसे कह रही थी कि जो पुरुष के भोग की वस्तु हैं उनकी जाति की तुम नही हो। आज की रात मे तुम्हारे साथ आमने-सामने बैठकर उस बात का अर्थ स्पष्ट होता आ रहा है। मैं यह भी समझ रहा हूँ कि लोगो की निन्दा प्रशसा की अवज्ञा करने की हिम्मत तुम्हे कहाँ से मिला करती है।"

कमल ने कृत्रिम आश्चर्य से मुँह ऊपर कर कहा—"आपको हुआ क्या है अजित बाबू, बाते तो आज बहुत कुछ ज्ञानवानो की-सी कर रहे हैं?"

अजित ने कहा—"अच्छा कमल, सच्ची बताओ, तुम्हारे लिए मेरा मतामत भी क्या और लोगो की तरह ही तुच्छ है?"

"पर यह बात जानकर आप क्या करेंगे?"

"कमल, अपने को शक्तिमान् समझकर मैने कभी तुम्हारे आगे घमण्ड नही किया। वास्तव मे

भीतर-भीतर मैं जितना कमजोर हूँ, उतना ही असहाय भी। किसी काम को जोर से कर डालने की ताकत मुझमे नही है।

कमल हँसकर बोली—"सो तो मैं आपसे बहुत ज्यादा जानती हूँ।"

अजित ने कहा—"मुझे क्या लगता है जानती हो? लगता है कि तुम्हे पाना जितना सरल है, गँवा देना भी उतना ही आसान है।"

कमल ने कहा—"यह भी मुझे मालूम है।"

अजित अपने मन-ही-मन सिर हिलाकर बोला, "यही तो मुश्किल है। तुम्हें आज पा लेना ही तो सब कुछ नही है। एक दिन अगर इसी तरह गँवा देना पडा तो क्या होगा?"

कमल ने शान्त कण्ठ से कहा—"कुछ भी न होगा, उस दिन गँवाना भी ऐसा ही सहज हो जायगा। जितने दिनतक पास रहूँगी, उतने दिन आपको वही विद्या सिखाया करूँगी।"

अजित भीतर से चौंक पडा। बोला—"विलायत में रहते हुए मैंने देखा हे कि वहाँ वाले कितनी आसानी से,—कितने मामूली कारणो से हमेशा के लिए विच्छिन्न हो जाया करते हैं। मन मे सोचता हूँ, क्या उन्हे जरा भी चोट नही लगती? और यही अगर उनके प्रेम का परिचय है तो वे सभ्यता का गर्व कैसे किया करते हैं?"

कमल ने कहा—"अजित बाबू, बाहर मे अखबारो मे वह जितना सहज दीखता है, असल मे वह उतना सहज नही है। मगर फिर भी, मैं तो यही कामना करती हूँ कि नर-नारी का यह परिचय ही किसी दिन जगत् मे प्रकाश और हवा की तरह सहज-स्वाभाविक बन जाय।"

अजित चुपचाप उसके मुँह की तरफ ताकता रह गया, कुछ बोला नही। उसके बाद आहिस्ते से दूसरी तरफ मुँह फेरकर लेटते ही, मालूम नही क्यो, उसकी आँखो मे आँसू भर आये।

शायद कमल भाप गयी। उठकर वह पलग के सिरहाने के पास जा बैठी और उसके माथेपर हाथ फेरने लगी। मगर सान्त्वना का एक शब्द भी उसने मुँह से नही निकाला।

सामने की खुली हुई खिडकी से दिखाई दिया कि पूर्व का आकाश स्वच्छ होता आ रहा है।

"अजित बाबू, सोने का अब शायद समय नही रहा।"

"नही, अब उठता हूँ।" कहकर वह आँख मीचता हुआ उठकर बैठ गया।

२२

आशु बाबू ने शायद अपने विधाता के आगे भी कभी इससे ज्यादा का दावा न किया होगा कि वे ससार के साधारण आदमियो मे से एक हैं। जैसे शान्ति आनन्द के साथ उन्होने अपनी बडी भारी पैतृक धन-सम्पत्ति को ग्रहण किया था, वैसे ही अपने विराट् देह-भार और उसके साथी वात-रोग को भी साधारण दु ख के रूप मे स्वीकार कर लिया था। और इस सत्य को उन्होने सिर्फ बुद्धि से ही नही, किन्तु, हृदय से भी अनुभव किया था कि ससार के सुख-दु ख विधाता ने केवल उन्ही को लक्ष्य करके नहीं गढे हैं बल्कि वे अपने नियमानुसार हुआ करते हैं, और इसकी प्राप्ति के लिए भी उन्हे कोई तपस्या नही करनी पडी—उनमे यह बात स्वाभाविक सस्कार के रूप मे आयी है। उस दिन, जिस दिन कि आकस्मिक स्त्री-वियोग की दुर्घटना से सारा ससार उनकी दृष्टि मे फीका और सूखा दिखाई दिया था, जैसे उन्होने अपने भाग्य-देवता को हजारों धिक्कारो से लाछित नही किया, वैसे ही आज भी जब कि उनकी अत्यन्त स्नेह की पूँजी मनोरमा ने उनकी तमाम आशा-कामनाओ मे आग लगा दी, वे सिर धुन-धुन के रोने नही बैठे। क्षोभ और दु सह नैराश्य के बीच भी उनके मन मे न जाने कौन मानो अत्यन्त परिचित कण्ठ से बार-बार कहता रहा कि यह ऐसा ही होता रहता है, ऐसे ही बहुत दु ख मनुष्यों के भाग्य मे बहुत बार आये हैं। ऐसे ही ससार चलता है। इस सुख-दु ख की परम्परा मे कोई नवीनता नही है,—यह उतनी ही सनातन है जितनी कि सृष्टि। उफनते हुए शोक की लहरो को फिर से नवीन बनाने और ससार मे उन्हे फैला देने मे न तो कोई पौरुष है, और न इसकी कोई जरूरत ही है। इसी से सब तरह के दु ख अपने आप शान्त होकर, उनके भीतर-चारो तरफ ऐसी एक स्निग्ध-प्रसन्नता की वेष्टनी बना लेते हैं कि उसके भीतर

पहुँचते ही सबका, सब तरह का बोझ मानो अपने आप ही हलका और अकिञ्चित्कर हो जाता है।

इसी तरह आशु बाबू की सारी जिन्दगी बीती है। आगरे मे आकर अनेक उलट-फेरो के बीच भी उसमे कोई फर्क नही आया; पर इधर कुछ दिनो से इसमें व्यतिक्रम लोगो की निगाह मे आने लगा है। अकस्मात् देखने मे आता है कि उनके आचरण मे धैर्य की कमी अधिकांश स्थलो पर दबी रहना नही चाहती मालूम होता है कि बातचीत मे अकारण ही रूखापन आ जाता है, यहाँतक कि नौकर-चाकरो तक को उनका कोई-कोई मन्तव्य तीक्ष्ण और अद्भुत-सा सुनाई पडता है। पर ऐसा क्यों हो रहा है, यह भी समझना मुश्किल है। रोग की ज्यादती मे भी उनमे ऐसी विकृति आ जाना अविश्वास्य मालूम देता, फिर भी अब वे अच्छे हो गये हैं। परन्तु कारण कुछ भी क्यो न हो, जरा ध्यान से देखा जाय तो मालूम होगा कि उनके अन्तस्तल मे मानो आग जल रही है और उसकी चिनगारियाँ कभी-कभी बाहर प्रकट हो जाती हैं।

प्रकट रूप मे आज तक उन्होने साफ-साफ जाहिर तो नही किया, पर मालूम होता है कि अब उनके आगरे मे रहने के दिन खतम हो गये। शायद जरा और स्वस्थ होने की देर है। उसके बाद सहसा जैसे एक दिन यहाँ आ पहुँचे थे वैसे ही अचानक एक दिन चल देगे।

शाम के वक्त आजकल बहुत से पदाधिकारी बगाली सज्जन मुलाकात करने और राजी-खुशी पूछने आ जाया करते हैं।सस्त्रीक मजिस्ट्रेट साहब, रायबहादुर, सदरआला, कॉलेज की अध्यापक-मण्डली, नाना कारणो से जो आगरा छोड नही सके हैं वे, हरेन्द्र, अजित और बगाली मुहल्ले के वे लोग जो आनन्द के दिनों मे बहुत-सा पुलाव-मास आदि खा गये हैं,—कोई-न-कोई आते ही रहते हैं। आता नही तो सिर्फ अक्षय, सो भी इसलिए कि यहाँ वह है नही। महामारी के शुरू होते ही वह सस्त्रीक देश चला गया है और शायद बीमारी शान्त होने की खबर की बाट देख रहा है। कमल भी नही आती। उस दिन जो आयी थी, उसके बाद फिर नही आयी।

आशु बाबू मजलिसी आदमी हैं, फिर भी पहले की तरह अब वे मजलिस मे शरीक नही हो पाते,—मौजूद रहने पर भी लगभग चुप बैठे रहते हैं। उनकी स्वास्थ्यहीनता का खयाल करके लोग आनन्द के साथ उन्हे माफी भी दे देते हैं। एक दिन जो काम मनोरमा किया करती थी, अब वे रिश्तेदार होने से बेला को ही करने पडते हैं। आतिथ्य मे कही कोई त्रुटि नही होती। बाहर के लोग आकर सिर्फ उसका रस ही लेते हैं, और शायद मजलिस खतम होनेपर परितृप्त चित्त से इस निरभिमान गृहस्वामी को मन-हीं-मन धन्यवाद देते हुए आश्चर्य के साथ सोचते हैं कि आव-भ-गत की ऐसी त्रुटिशून्य व्यवस्था इस बीमार आदमी से रोजमर्रा कैसे बन पडती है!

यह कैसे सभव होता है, इसका इतिहास छिपा का छिपा ही रह जाता है। नीलिमा सबके सामने निकलती नही, इसकी उसे आदत भी नही और न वह निकलना पसन्द ही करती है! परन्तु परदे की ओट में होते हुए भी उसकी जाग्रत दृष्टि इस घर मे सर्वत्र प्रतिक्षण व्याप्त रहा करती है। वह दृष्टि जैसी निगूढ होती है वैसी ही नीरव। शिराओ मे प्रवहमान रक्तधार की तरह वह नि शब्द प्रवाह शायद आशु बाबू को छोडकर दूसरा कोई अनुभव भी नही कर पाता।

शीत ऋतु का प्रथमार्द्ध बीत चला है, परन्तु फिर भी चाहे किसी भी कारण से हो, इस साल जाडा उतना कडाके का नही पडा। लेकिन आज सवेरे से ही थोड़ी-थोडी वर्षा हो रही है, और शाम के वक्त तो खूब जोंर से वर्षा होने लगी। ऐसी बरसात इसकी कोई सम्भावना ही न रही कि बाहर से कोई आ सकेगा। घर की खिड़कियाँ असमय मे ही बन्द कर दी गयी हैं और आशू बाबू पैरो पर दुशाला डाले आराम-कुरसी पर पडे कोई किताब पढ रहे हैं। बेला शायद कुछ विरक्ति के कारण बोल उठी—"इस अभागे देश मे सभी कुछ उलटा है। कुछ दिन पहले—जून या जुलाई महीने मे जब यहाँ आयी थी तब वर्षा के लिए देशभर मे ऐसा जबरदस्त हाहाकार मचा हुआ था कि बगैर ऑखो देखे उसकी कल्पना भी नही की जा सकती। इसी से सोचती हूँ कि ऐसे कठोर शुष्क देश मे आदमी ताजमहल बनाने बैठे सो किस अक्लमदीपर?"

नीलिमा पास ही एक कुरसीपर बैठी कुछ सी रही थी, बगैर ऑख उठाये ही उसने कहा—"इसका कारण क्या सभी जान सकते हैं? सब नहीं जान सकते।"

बेला ने सरल चित्त से पूछा—"क्यो?"

नीलिमा ने कहा—"तमाम बडी चीजे आदमी के हाहाकार मे से ही पैदा होती हैं, ससार के

आमोद-प्रमोद में जो लोग मगन रहते हैं, उन्हे यह सूझ ही कैसे पड सकता है?"

उसका यह जवाब ऐसे कल्पनातीत रूप मे कठोर था कि सिर्फ बेला ही नही, बल्कि आशु बाबू तक आश्चर्य-चकित हो गये। उन्होने किताबपर से मुँह उठाया तो देखा, नीलिमा पूर्ववत् सीने के काम मे लगी हुई है। मानो यह बात उसके मुँह से कतई निकली ही नही।

एक तो बेला कलहप्रिय स्त्री नही और दूसरे वह सुशिक्षिता है। उसने बहुत कुछ देखा-सुना है और उमर भी शायद पैंतीस के ऊपर पहुँच चुकी है; किन्तु सयत्न-सतर्कता से उसने अपने यौवन के लावण्य को आज भी पश्चिम की ओर ढलने नही दिया है। अकस्मात् ऐसा मालूम होता है कि शायद वह वैसा ही बना हुआ है। रंग उज्ज्वल है, चेहरेपर एक विशिष्ट रूप है, पर गौर से देखने मे मालूम हो जाता है कि कोमलता के अभाव ने मानो उसे रूखा बना रखा है। आँखो की दृष्टि हास्य-कौतुक में चपल-चचल है, निरन्तर बहते फिरना ही जैसे उसका काम है, किसी भी चीजपर स्थिर होने लायक न तो उसमे भार है और न तलदेश में कोई जड ही। आनन्द-उत्सव मे ही वह शोभती है, सहसा दु ख के बीच आ जाने पर घर-मालिक को लज्जित होना पडता है।

जब बेला की विमूढ़ता का भाव दूर हो गया तब क्षण-भर के लिए मारे क्रोध के उसका चेहरा तमतमा उठा। पर नाराज होकर झगडा करना उसकी शिक्षा और सौजन्य के खिलाफ है, इसलिए उसने अपने को सँभालते हुए कहा—"मुझपर कटाक्ष करने से कोई लाभ नही। सिर्फ इसलिए ही नही कि यह अनधिकार-चर्चा है, बल्कि हाहाकार करते फिरना चाहे जितनी बडी ऊँची बात क्यो न हो, वह मुझसे करते नही बनती और उससे कोई अभिज्ञता सचय करने में भी मैं असमर्थ हूँ। मेरा आत्म-सम्मान-ज्ञान बना रहे, उससे बढ़कर मैं कुछ नही चाहती।"

नीलिमा अपने काम मे ही लगी रही, कुछ जवाब नही दिया।

आशु बाबू भीतर से क्षुण्ण हो गये थे, पर इस डर से कि बात आगे न बढे व्यस्त होकर बोल उठे—"नही नही, तुमपर कोई कटाक्ष नही किया बेला, इसमें कोई शक नही कि बात उन्होने साधारण भाव से ही कही है। नीलिमा का स्वभाव तो मुझे मालूम है, ऐसा हो ही नही सकता मैं तुमसे कहता हूँ न, ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता।"

बेला ने संक्षेप में सिर्फ इतना ही कहा—"न हो यही अच्छा है। इतने दिन से एक साथ रह रही हूँ, ऐसा तो मैं सोच भी नही सकती।"

नीलिमा ने 'हाँ-ना' कुछ भी जवाब नही दिया, अपने काम मे वह ऐसी तन्मय रही मानो उस जगह और कोई है ही नहीं। कमरे में बिलकुल सन्नाटा छा गया।

बेला के जीवन का एक इतिहास है जिसे यहाँ देना आवश्यक है। उसके पिता वकालत का पेशा करते थे, पर अपने पेशे मे वे यश या धन दोनो में से कुछ भी प्राप्त न कर सके थे। उनका धर्म क्या था, कोई भी नही जानता, और समाज की दृष्टि से भी देखा जाय तो वे हिन्दू, ब्राह्मण या क्रिस्तान किसी समाज को मानकर न चलते थे। लडकी को वे बहुत ज्यादा प्यार करते थे। उन्होने सामर्थ्य के बाहर खर्च करके उसे शिक्षा देने की कोशिश की थी। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि उनकी वह कोशिश बिलकुल व्यर्थ नही हुई। 'बेला' नाम उन्होने अपने शौक से रक्खा था। किसी समाज को न मानने पर भी एक दल तो उनका अपना था ही। सुन्दरी और शिक्षिता होने की वजह से बेला का नाम उस दल मे सब की जबान पर चढ़ गया, और इसलिए उसे धनी पात्र मिलने मे देर न हुई। वे हाल ही विलायत से कानून पास करके लौटे थे। कुछ दिन देखाभाला और परस्पर मन निरखने-परखने का सिलसिला चलता रहा, उसके बाद कानून के अनुसार रजिस्टरी करके ब्याह हो गया। इस तरह कानून के प्रति गहरे अनुराग का एक अक खतम हुआ। दूसरे अक मे भोग-विलास, साथ-साथ देशभ्रमण, पृथक्-पृथक् वायुपरिवर्तन,—आदि ऐसी ही बहुत-सी बाते हुईं। दोनो तरफ से तरह-तरह की अफवाहे सुनी गईं, परन्तु उनकी आलोचना यहाँ अप्रासंगिक होगी। लेकिन उनमें जो अश प्रासंगिक था, वह शीघ्र ही प्रकट हो गया। वरपक्ष हाथो-हाथ पकडा गया और कन्या-पक्ष विवाह-विच्छेद का मामला दायर करने की सोचने लगा। मित्र-मण्डली मे आपस मे समझौता कराने की कोशिश हुई, किन्तु शिक्षिता बेला नर-नारी के समानाधिकार-तत्त्व की सबसे बडी पण्डा थी। लिहाजा उसने इस असम्मान के प्रस्ताव पर कतई ध्यान नही दिया। पति बेचारा चरित्र की दृष्टि से चाहे जैसा भी हो, आदमी के लिहाज से बुरा नही था, स्त्री को वह

शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार प्यार ही करता था। उसने शर्म के साथ अपना कसूर मजूर करके अदालत की दुर्गति से छुटकारा पाने के लिए हाथ जोडकर क्षमा-प्रार्थना की, पर स्त्री ने क्षमा नही दी। अन्त मे बड़े दु खपूर्ण ढग से फैसला हुआ। एकमुश्त नगद और खाने-पहनने के लिए मासिक खर्च देना कबूल करके उसने किसी तरह मामले से अपना पिण्ड छुडाया। इधर दाम्पत्य-युद्ध मे विजय पाकर बेला भग्न स्वास्थ्य की मरम्मत के लिए शिमला, मसूरी, नैनीताल आदि पार्वत्य प्रदेशो मे दर्प के साथ सैर करने चल दी। उस बात को आज लगभग छह-सात साल हो गये। इसके थोडे ही दिन बाद उसके पिता का देहान्त हो गया। इस मामले मे उनकी राय नही थी, बल्कि इससे वे अत्यन्त मर्माहत भी हुए थे। आशु बाबू की स्वर्गीया पत्नी के साथ उनका कोई दूर का रिश्ता था और उसी सम्बन्ध से बेला आशु बाबू की भी रिश्तेदार थी। उसके ब्याह मे भी आशु बाबू निमंत्रित होकर गये थे, और उसके पति से भी परिचित होने का उन्हें मौका मिला था। इस तरह कई रिश्तो के सिलसिले मे बेला आगरा आयी थी; न बिलकुल गैर होकर आई थी और न निराश्रित होकर ही। तुलना मे इसी जगह नीलिमा के साथ उसका काफी अन्तर था।

फिर भी, हालत इससे बिलकुल दूसरे तरह की हो गयी थी। इस विषय मे कि इस घर मे किसका कहाँ स्थान है, घर के किसी व्यक्ति को रच-मात्र भी सन्देह न था। पर उसका हेतु जैसा अज्ञात था, कर्तृत्व भी वैसा ही अविसवादी था।

बहुत देरतक मौन रहकर बेला ही ने पहले बात की। कहा—"यह मैं मानती हूँ कि साफ-साफ कुछ नही कहा, पर इस विषय मे मुझे जरा भी सन्देह नही कि मुझे धिक्कारने के लिए ही नीलिमा ने ऐसी बात कही है।"

आशु बाबू के मन मे भी शायद सन्देह न था, फिर भी विस्मय के स्वर में उन्होने पूछा—"धिक्कार? धिक्कार किसलिए बेला?"

बेला ने कहा—"आपको तो सब कुछ मालूम है। निन्दा करनेवालो की उस दिन भी कमी नही थी, और आज भी नही है। परन्तु अपने सम्मान की सम्पूर्ण नारी-जाति के सम्मान की रक्षा के लिए उस दिन भी मैंने किसी की परवाह नही की, आज भी नही करूँगी। मैं अपनी इज्जत-आबरू खोकर पति की घर-गृहस्थी चलाने को राजी नही हुई थी, इसलिए उस दिन ग्लानि-प्रचार का काम सबसे बढकर स्त्रियो ने ही किया था, और आज भी उन्ही के हाथ से निस्तार पाना मेरे लिए सबसे कठिन हो रहा है। मगर चूँकि मैंने अनुचित कार्य नही किया, इसलिए उस दिन भी जैसे मैं नही डरी, आज भी उसी तरह निडर हूँ। अपनी विवेक-बुद्धि के आगे मैं बिलकुल चोखी हूँ।"

नीलिमा ने सिलाईपर से ऑख नही उठायी, किन्तु आहिस्ते से कहा—"एक दिन कमल कह रही थी कि विवेक-बुद्धि ही संसार मे सबसे बडी चीज नही है। विवेक की दुहाई देने से ही समस्त उचित-अनुचित की मीमासा नही हो जाती।"

आशु बाबू ने आश्चर्य मे आकर कहा—"वह कहती है क्या?"

नीलिमा ने कहा,—"हाँ। कहती हैं कि वह तो सिर्फ मूर्खो के हाथ का अस्त्र है। आगे-पीछे दोनो तरफ चलाया जा सकता है, उसका कोई ठीक-ठिकाना नही।"

आशु बाबू ने कहा, "वह कहती है तो उसे कहने दो, पर ऐसी बात तुम अपने मुँह से न निकालो नीलिमा।"

बेला ने कहा—"इतने बडे दुस्साहस की बात तो मैंने कभी सुनी ही नही।"

आशु बाबू क्षण भर मौन रहकर धीरे-धीरे कहने लगे—"दुस्साहस तो है ही। उसके साहस का अन्त नही। वह अपने नियम पर चलती है, उसकी सब बाते न सब समय समझ मे आती हैं और न मानी ही जा सकती हैं।"

बेला ने कहा—"अपने नियमपर तो मैं भी चलती हूँ आशु बाबू। इसी से बाबूजी की भी मनाही न मान सकी। मैंने पति को त्याग दिया, पर सिर न झुका सकी।"

आशु बाबू ने कहा—"इसमे शक नही कि यह गहरे पश्चात्ताप का विषय है, परन्तु तुम्हारे पिता के सम्मति न देनेपर भी मुझसे तो बिना दिये रहा नही गया।

बेला ने कहा, "थेक्स, सो मुझे याद है आशु बाबू!"

आशु बाबू बोले—"उसकी वजह थी। स्त्री-पुरुष के समान दायित्व और समान अधिकार पर मैं पूरा विश्वास करता हूँ। हमारे हिन्दू समाज मे एक वडा भारी दोष यह है कि सौ-सौ अपराध करने पर भी पति को न्याय-विचार या दण्ड का डर नही और तुच्छ से तुच्छ दोषपर स्त्री को दण्ड देने के हजारो मार्ग खुले हुए हैं। इस व्यवस्था को मैं एक दिन के लिए भी उचित नही मान सका। इसीसे बेला के पिता ने मेरे पास राय जानने के लिए चिट्ठी लिखी थी उस वक्त मैंने उत्तर मे यही बात कही थी कि हालाँ यह कोई शोभा की बात नही और न सुख की ही, परन्तु वह अगर अपने असच्चरित्र पति को सचमुच ही त्याग देना चाहती है, तो मैं अनुचित कहकर मना नही कर सकता।"

नीलिमा ने अकृत्रिम विस्मय से आँख उठाकर प्रश्न किया—"आपने सचमुच यही बात जवाब मे लिखी थी?"

"सचमुच नही तो क्या?"

नीलिमा स्तब्ध हो रही।

उस निस्तब्धता मे आशु बाबू को न जाने कैसी एक प्रकार की अशान्ति-सी मालूम होने लगी। उन्होने कहा "इसमे आश्चर्य करने की तो ऐसी कोई बात नही नीलिमा। बल्कि न लिखना ही मेरी तरफ से अनुचित होता।"

फिर जरा ठहरकर कहा—"तुम खुद भी तो कमल की बडी भक्त हो, बताओ, वह खुद ऐसी हालत मे क्या करती? क्या जवाब देती? इससे तो उस दिन जब बेला से उसका परिचय कराया था, तब इस बातपर मैंने जोर दिया था कि कमल, तुम्हारी तरह विचार करने और तुम्हारी तरह साहस का परिचय देने मे मैंने सिर्फ एक ही लडकी को देखा है, और वह है यह बेला।"

नीलिमा की आँखे सहसा व्यथा से भर आयी। बोली—"वह बेचारी शिष्ट समाज से बाहर—यहाँतक कि बस्ती के बाहर पडी हुई है। उसे आप लोग क्यो घसीटते हैं?"

आशु बाबू व्यस्त हो उठे। बोले—"नही-नही, घसीटने की बात नही नीलिमा, यह तो सिर्फ एक उदाहरण देना है।"

नीलिमा ने कहा—"यही तो घसीटना है। अभी-अभी आपने कहा था कि उसकी सब बाते सब समय समझ मे भी नही आती और न मानी ही जा सकती हैं।—माना कुछ नही जा सकता, सिर्फ उदाहरण ही दिया जा सकता है?"

आशु बाबू को अपनी बात मे दोष की कोई बात नजर नही आ रही थी। वे क्षुण्ण कण्ठ से बोले "किसी भी कारण से हो, आज तुम्हारा मन शायद बहुत ही अस्वस्थ हो रहा है। इस समय किसी विषय की आलोचना करना ठीक नही।"

नीलिमा ने इस बातपर ध्यान नहीं दिया, यह बोल उठी—"उस दिन आपने इनके विवाह-विच्छेद मे अपनी राय दी थी और आज बिना किसी सकोच के कमल का दृष्टात दे रहे हैं। इनकी-सी हालत मे कमल क्या करती सो तो वही जाने, मगर उसके दृष्टात का वास्तव मे अनुसरण करने के लिए आज इन्हे कुलीमजदूरो के कपडे सी करके अपनी गुजर करनी पडती, सो भी शायद हमेशा नही जुटते। कमल और चाहे जो करती, पर जिस पति को वह लाञ्छन लगाकर घृणा से छोड देती उसी के दिये हुए अन्न का ग्रास मुँह मे देकर और उसी के दिये कपडो से आबरू बचाकर हरगिज न जीना चाहती। अपने को इतनी छोटी या ओछी बनाने के पहले वह आत्म-हत्या करके मर जाती।"

आशु बाबू जवाब देने के बदले भावाविष्ट से हो गये, और बेला ठीक वज्राहत की भाँति निश्चल हो रही। नीलिमा के दिन हँसी मजाक मे ही कट जाते हैं सबका मुँह ताकना ही मानो उसका काम है, दोनो मे से कोई भी इस बात की उपलब्धि नही कर सका कि वह सहसा इस तरह निर्मम हो सकती है।

नीलिमा क्षण-भर स्थिर रहकर फिर बोली—"आप लोगो की मजलिस मे मैं नही बैठती, लेकिन लोगो को लेकर जो सब तरह की आलोचनाएँ हुआ करती हैं। वे मेरे कानो तक पहुँच जाती हैं। नही तो मैं कोई बात कहती भी नही। कमल ने एक दिन के लिए भी शिवनाथ की निन्दा नहीं की, एक भी आदमी के आगे अपना दुखडा नही रोया—"क्यो, जानते हैं?"

आशु बाबू ने विमूढ की भाँति पूछा—"क्यो?"

नीलिमा ने कहा—"क्यो, सो कहना व्यर्थ है। आप लोग समझ नही सकेगे।" फिर जरा ठहरकर

कहा—"आशु बाबू, यह एक अत्यन्त मोटी बात है कि पति-पत्नी का अधिकार समान है, मगर इसके माने यह न सोचिएगा कि स्त्री होकर स्त्रियो की तरफ से इस दावे का मैं प्रतिवाद कर रही हूँ। प्रतिवाद मै नही करती, मैं जानती हूँ कि वह सत्य है, मगर साथ ही यह भी जानती हूँ कि सत्य-सत्य चिल्लानेवाले एक सत्य-विलासी गिरोह ने नर-नारी के मुँह के द्वारा और तरह-तरह के आन्दोलनो से उस सत्य को ऐसा गन्दा कर दिया है कि आज उसे मिथ्या कहने को ही जी चाहता है। आज मेरी हाथ जोडके प्रार्थना है कि सबके साथ मिलकर आप कमल के विषय मे कोई चर्चा न किया करे।"

आशु बाबू ने जवाब देना चाहा, पर उनके कुछ कहने के पहले ही वह सिलाई की चीजे लेकर भीतर चली गयीं।

तब क्षुब्ध-विस्मय मे एक लम्बी उसॉस लेकर आशु बाबू सिर्फ यह कहकर रह गये—"उसने कब क्या सुना है मालूम नही, पर मेरे विषय में यह बिलकुल असत्य दोषारोप है।"

बाहर कुछ देर के लिए वर्षा रुक गयी थी, किन्तु ऊपर के मेघाच्छन्न आकाश ने घर के भीतर असमय मे अन्धकार फैला दिया। नौकर जब बत्ती जला गया तब आशु बाबु ने फिर एक बार पुस्तक उठाकर आँखो के सामने रख ली। हर छापे के अक्षरो से मन लगाना सम्भव न था और इधर बेला के साथ आमने-सामने बैठकर बातचीत करना और भी असम्भव मालूम दिया।

इतने मे भगवान् ने दया की। एक ही छतरी मे रास्ते-भर धक्कमधक्का करते हुए कृच्छ्रव्रतधारी हरेन्द्र, अजित ऑधी की तरह कमरे मे आ घुसे। दोनो जने आधे-आधे भीग चुके थे। हरेन्द्र बोला—"भाभी कहाँ हैं?"

आशु बाबू के मानो चॉद हाथ लग गया। उनको विश्वास नही था कि आजके दिन कोई आयेगा। साग्रह उठकर बैठ गये और स्वागत के स्वर मे बोले—"आओ अजित, बैठो हरेन्द्र—"

"बैठता हूँ। भाभी कहाँ हैं?"

"ओह! दोनो के दोनो खूब भीगे मालूम होते हो।"

"जी हाँ वे हैं कहाँ?"

"बुलवाता हूँ।" कहकर आशु बाबू ने ज्यो ही पुकारने का उद्योग किया कि भीतर से परदा हटाती हुई नीलिमा स्वय ही बाहर निकल आयी। उसके हाथ मे दो धोतियाँ और एक कुरता था।

अजित ने कहा—"यह क्या? आप ज्योतिष भी जानती हैं क्या?"

नीलिमा ने कहा—"ज्योतिष जानने की जरूरत नही लालाजी, खिडकी से ही देख लिया था। एक टूटी छतरी में जिस तरह एक-दूसरे की तकलीफ का ख्याल रखते हुए तुम दोनो चले आ रहे थे, उसे एक मैं ही क्यो, शायद शहरभर के लोगो ने देखा होगा।"

आशु बाबू ने कहा—"एक छतरी मे दो-दो जने? तभी तो लोगो को भीगना पडा है।" और वे हँस दिये।

नीलिमा ने कहा—"शायद दोनों जने समानाधिकार-तत्त्वपर विश्वास करते हैं, अन्याय नही करते—इसी से छतरी का ठीक-ठीक बँटवारा करके रास्ता चल रहे थे। लो लालाजी, कपडे बदल लो।" कहते हुए उसने कपडे हरेन्द्र के हाथ मे दे दिये।

आशु बाबू चुप रहे। हरेन्द्र ने कहा—"धोतियाँ तो दो दे दी, लेकिन कुरता एक ही है?"

"कुरता बहुत बडा है लालाजी, एक से ही काम चल जायगा।" कहकर वह गम्भीर बनकर पास की कुरसी पर बैठ गयी।

हरेन्द्र ने कहा—"कुरता आशु बाबू का है, लिहाजा इसमे दो ही क्यो, और चार जने समा सकते हैं, मगर तब इसे मसहरी की तरह लटकाना पडेगा, यह पहना नही जा सकेगा!"

बेला अबतक विषण्ण-मुख से चुपचाप बैठी थी, हँसी रोक न सकने के कारण बाहर उठकर चली गयी और नीलिमा खिडकी के बाहर देखती हुई चुप बैठी रही।

आशु बाबू छद्म-गम्भीर्य के साथ कहने लगे—"बीमारी मे पड़ा-पडा सूख के आधा रह गया हूँ हरेन्द्र, अब तुम टोको मत। देखते नही, औरतो को कैसा बुरा मालूम हुआ, एक तो उठ के बाहर चली गयी और एकने मारे गुस्से के मुँह फेर लिया।"

हरेन्द्र ने कहा—"खोदाई नही की आशु बाबू, विराट की महिमा गाई है। खोदने का दुष्प्रभाव तो सिर्फ हमारे जैसी नर-जाति को ही विपत्ति मे डाल सकता है, आप लोगो को छू भी नही सकता। अतएव, चिरस्तूयमान हिमालय के समान यह देह अक्षय बनी रहे, स्त्रियाँ नि:शंक हो और आधी पानी के बहाने, समागत जनो के भाग्य मे जो दैनन्दिन मिष्टान्नादि बदा है, उसमे आज भी रचमात्र कमी न हो।"

नीलिमा ने इधर मुँह उठाया और हँस दी। बोली—"बडो का स्तुतिवाद तो अनादि काल से चला आ रहा है छोटे देवरजी, वही निर्दिष्ट धारा है और उसमे तुम सिद्धहस्त हो, पर आज जरा नियम मे व्यतिक्रम करना पडेगा आज छोटो की खुशामद बगैर किये इतर जनो के भाग्य मे मिष्टान्न की जगह कोरा शून्य पडेगा।"

बेला बरामदे मे लौटकर भीतर आ बैठी।

हरेन्द्र ने पूछा—"क्यो भाभी?"

गम्भीर स्नेह से नीलिमा की आँखे भर आयी, बोली—"ऐसी मीठी बात बहुत दिनो से सुनी नही है भाई, इसी से सुनने को जी लुभाता है।"

"तो शुरू कर दूँ क्या?"

"अच्छा अभी रहने दो। पहले तुम लोग उस कमरे मे जाकर कपडे बदल लो, मैं कुरता भेजे देती हूँ।"

"मगर कपडे बदल चुकने के बाद? फिर क्या होगा?"

नीलिमा ने हँसते हुए कहा—"फिर कोशिश करके देखूँगी कि इतर जनो के भाग्य से ही अगर कहीं से खाने-पीने को कुछ जुटा पाऊँ।"

हरेन्द्र ने कहा—"तकलीफ उठाकर कोशिश करने की जरूरत न पडेगी भाभी, सिर्फ एक बार आँख खोलके देख-भर लीजिएगा। आपकी अन्नपूर्णा की-सी दृष्टि जहाँ पडेगी, वही अन्न का भण्डार निकल पडेगा। चलो अजित, अब कोई फिकर की बात नही, हम लोग तब भीगे कपडे बदल आये।" कहकर अजित को पकडकर बगल के कमरे मे खीच ले गया।

२३

अजित ने कहा—"पानी थमने का तो कोई लक्षण नही दिखाई देता?"

हरेन्द्र ने कहा—"नही। लिहाजा फिर हम दोनो को उसी टूटी छतरी मे सिर से सिर भिडाकर समानाधिकार तत्त्व की सत्यता प्रमाणित करते हुए अन्धकार-मार्ग मे चलते हुए अन्त मे आश्रम पहुँच जाना चाहिए। अवश्य ही उसके बाद की चिन्ता नही रही, उसे यही पूरा कर चुके हैं, लिहाजा, फिर से एक बार भीगे कपडे बदलना और सो जाना रह जायगा।"

आशु बाबू व्यग्र होकर बोले—"तो फिर तुम लोगो ने पेट भर के ही क्यो नही खा लिया?"

हरेन्द्र कह उठा—"नही-नही, रहने दीजिए, इससे क्या हुआ? आप इसके लिए कोई चिन्ता न करे।"

नीलिमा पहले तो खिलखिलाकर हँस पडी, उसके बाद शिकायत के स्वर मे बोली—"लालाजी, क्यो यो ही रोगी आदमी की व्याकुलता बढा रहे हो?" फिर आशु बाबू से बोली—"ये सन्यासी आदमी ठहरे, वैरागीगिरी मे पक्के हो गये हैं—लिहाजा खाने-पीने की तरफ इनकी त्रुटि किसी के नजर नही आ सकती। हाँ, अजित बाबू के लिए जरूर सोच है। इनका आज का खाना देखकर समझा जा सकता है कि ऐसे ससर्ग मे भी ये जल्दी पक नही पाये हैं।"

हरेन्द्र ने कहा—"शायद मन मे पाप होगा, इससे। पकडे तो जायँगे ही किसी-न-किसी दिन।"

अजित का चेहरा मारे शरम के सुर्ख हो उठा। बोला—"आप न जाने क्या कह रहे हैं हरेन्द्र बाबू!"

नीलिमा क्षण-भर हरेन्द्र के मुँह की तरफ देखती रही और बोली—"तुम्हारे मुँहपर फूल-चन्दन पडे लालाजी, ऐसा ही हो। उनके मन मे थोडा-बहुत पाप हो और किसी दिन पकडे जायँ तो मैं कालीघाट जाकर ठाठ से पूजा दे आऊँ।"

"तो फिर तैयारियाँ करना शुरू कर दीजिए।"

अजित वहुत ही नाराज हो गया। बोला—"आप क्या वाहियात वक रहे हैं हरेन्द्र बाबू, बड़ा भद्दा मालूम होता है।"

हरेन्द्र ने फिर कुछ नही कहा। अजित के मुँह की तरफ देखकर नीलिमा का कुतूहल तीक्ष्ण हो उठा, पर वह भी चुप रही!

इसके कुछ देर बाद हरेन्द्र ने नीलिमा को लक्ष्य करके कहा—"हमारे आश्रम पर कमल बहुत नाराज हैं। आपको शायद याद होगा भाभी?"

नीलिमा ने सिर हिलाते हुए कहा—"हाँ, है। अब भी उनका वही रुख है क्या?"

हरेन्द्र ने कहा—"वही रुख नही, वल्कि उससे भी जरा बढ गया है, इतना फर्क है।" फिर वोला—"और सिर्फ हम ही लोगो पर नही, सब तरह की धार्मिक सस्थाओपर उनका आत्यंतिक अनुराग है। चाहे ब्रह्मचर्य को ले लीजिए, चाहे वैराग्य की वात लीजिए; या ईश्वर की चर्चा कीजिए, सुनते ही अहेतुक भक्ति और प्रीति की बहुलता से वे अग्निवत् हो उठती हैं। और मिजाज अनुकूल हो तो वूढो और वच्चो के खेल मे भी कौतुक का आनन्द लेने मे वे असमर्थ नही। कमाल ही समझिए।

वेला चुप बैठी सुन रही थी, बोल उठी—"ईश्वर भी उनके लिए लडको का खेल है और आप उन्ही के साथ मेरी तुलना कर रहे थे, आशु वावू?" इतना कहकर उसने एक तरफ से सब के मुँह की ओर देखा, पर किसी की तरफ से कोई उत्साह नही मिला। उसका रुका स्वर किसी के कानतक पहुँचा या नही, सो भी ठीक समझ मे नही आया।

हरेन्द्र कहने लगा—"और मजा यह कि उनके अपने अन्दर एक ऐसा निर्द्वन्द सयम, नीरव मिताचार और नि शंक तितिक्षा है कि देखकर आश्चर्य होता है। आपको शिवनाथ का मामला तो याद होगा आशु बावू? वह हम लोगो का कौन था? फिर भी इतना वड़ा अन्याय हम से सहा नही गया और दण्ड देने की आकाक्षा से हमारे मन के भीतर आग जल उठी। पर कमल ने कहा—'नहीं।' उसका उस दिन का चेहरा स्पष्ट याद है। उसकी 'नही' मे विद्वेष नही था, जलन नही थी. ऊपर से हाथ वढाकर दान देने की श्लाघा नही थी और क्षमा का दम्भ भी नही था,—उसका दाक्षिण्य मानो अविकृत करुणा से भरा हुआ था। शिवनाथ ने चाहे कितना ही वडा अन्याय क्यो न किया हो, फिर भी, मेरे प्रस्तावपर कमल ने चौंककर सिर्फ यही कहा—'छि छि.,—नही नही, ऐसा नही हो सकता।' अर्थात् एक दिन जिसे उसने प्यार किया है, उसके प्रति निर्ममता की तुच्छता की वह कल्पना ही न रह सकी, और सब की निगाह के ओझल उसके सब दोष चुपके से विलकुल पोछकर फेक दिये। उसमे न कोई कोशिश थी न चञ्चलता थी, और न शोकाच्छन्न हाहाकार का कोई भाव था,—मानो पहाड के शिखर पर से जल की धारा लीलामात्र मे स्वत ही वह आई हो।"

आशु वावू ने एक गहरी साँस ली और कहा—"सच्ची बात है।"

हरेन्द्र कहने लगा, "पर मुझे ज्यादा गुस्सा तव आता है जब वह सिर्फ हमारे आदर्श को ही नही वल्कि हमारे धर्म, इतिहास, रीति, नैतिक अनुशासन आदि सब को मजाक मे उडा देना चाहती है। मैं जानता हूँ कि उसके शरीर मे उत्कट विदेशी खून है और मन मे भी वैसी ही उग्रता के साथ पर-धर्म का भाव प्रवाहित है, फिर भी उसके मुँह के सामने खडे होकर जवाब नही दे पाता। उसके कहनेमे न मालूम कैसी एक दृढ निश्चय की दीप्ति फूट निकलती है कि मालूम होता है मानो उसने जीवन के तत्त्व को खोज लिया है। शिक्षा के जरिये नही, और न अनुभव-उपलब्धि के जरिये ही, बल्कि ऐसा लगता है कि तत्त्व को जैसे वह आँखो से साफ-साफ प्रत्यक्ष देख रही हो।"

आशु बावू खुश होकर वोले—"ठीक यही वात मेरे भी मन मे अनेक वार आयी है। यही वजह है कि जैसी उसकी वाते हैं वैसे ही उसके काम हैं। वह अगर असत्य भी समझी हो तो वह असत्य भी गौरवपूर्ण हो उठा है।" फिर जरा ठहरकर बोले,—"देखो हरेन्द्र, एक तरह से अच्छा ही हुआ जो वह पाखंडी चला गया। उसको हमेशा ढककर रखने से न्याय की मर्यादा नही रहती। सूअर के गले मे मोती की माला की तरह यह भी अपराध होता।"

हरेन्द्र ने कहा—"और फिर, दूसरी तरफ ऐसी माया-ममता है कि सिर्फ एक भाभी को छोडकर मैं और किसी स्त्री को उसके समान नही पाता। सेवा मे ऐसी समझिए जैसे लक्ष्मी। शायद पुरुषो से वहुत-सी वातो में वहुत वडी होने के कारण ही वह अपने को उनके सामने ऐसी साधारण वनाये रखती है

कि आश्चर्य होता है। मन लुढककर मानो पैरोंपर लोट जाना चाहता है।"

नीलिमा ने हँसते हुए कहा—"लालाजी, तुम पहले जनम मे शायद किसी राजरानी के स्तुति-पाठक थे इसी से इस जनम मे भी वह सस्कार दूर नही हुआ। लडके पढ़ाने का काम छोडकर अगर यह रोजगार करते तो इससे कही ज्यादा आराम पाते।"

हरेन्द्र हँस दिया। बोला—"क्या करूँ भाभी, मैं सरल सीधा आदमी हूँ, जो मन मे सोचता हूँ वही कह डालता हूँ। लेकिन, आप इन अजित बाबू से पूछ देखिए जरा, अभी आस्तीन चढ़ाकर मारने को तैयार हो जायँगे।—भले हो जायँ, पर जिन्दा रही तो देख लीजिएगा किसी दिन—"

अजित क्रुद्ध कण्ठ से बोल उठा—"आह, आप क्या कहते हैं हरेन्द्रबाबू, आपके आश्रम से तो मालूम होता है, अब चला ही जाना पडेगा किसी दिन।"

हरेन्द्र ने कहा—"सो मैं जानता हूँ। पर जबतक गये नही हैं तबतक तो सहन करना पडेगा।"

"तो आप कहते जाइए जो तबीयत मे आवे, मैं जाता हूँ।"

नीलिमा ने कहा—"लालाजी, तुम अपने ब्रह्मचर्याश्रम को उठा क्यो नही देते? तुम भी बच जाओ और लडको की भी जान बचे।"

हरेन्द्र ने कहा—"लडके तो बच सकते हैं भाभी, पर मेरे बचने की कोई आशा नही; कमसे कम अक्षय के जीते जी तो कतई नही। वह मुझे यमराज के हवाले किये बगैर पीछा नही छोडने का।"

आशु बाबू ने कहा—"तब तो, मालूम होता है, अक्षय से तुम लोग डरते हो?"

"जी हाँ, डरते है। विष खाना सहज है, पर उसके कटाक्ष हजम करना असाध्य है। इन्फ्लुएन्जा में इतने आदमी मर गये, पर वह नही मरा। ठीक वक्त पर भाग गया।"

सब हँस पडे। नीलिमा ने कहा—"अक्षय बाबू से मैं बोलती नहीं, पर अबकी बार बाहर निकलकर तुम्हारी तरफ से मैं क्षमा की भीख माँग लूँगी। भीतर-ही-भीतर जल-भुनकर खाक हुए जा रहे हो।"

हरेन्द्र ने कहा—"हम लोग ही तो पकडे जायँगे भाभी, आप लोग तो सब जलने-भुनने के परे पहुंच चुकी हैं। विधाता ने आग की सृष्टि सिर्फ हम ही लोगो को जलाने के लिए की थी, आप लोग उसके इलाके से बाहर हैं।"

नीलिमा मारे शर्म के सुर्ख हो उठी, बोली—"और नही तो क्या।"

बेला ने कहा—"ठीक तो है। बाहर तो हैं ही।"

क्षण-भर सब चुप रहे। अजित ने कहा—"उस दिन ठीक इसी विषयपर एक बडी सुन्दर कहानी पढ़ी थी।" फिर आशु बाबू की तरफ देखकर पूछा—"आपने नही पढ़ी क्या?"

"कौन-सी, याद तो नही पडता।"

"आपके जो मासिक पत्र विलायत से आते हैं, उन्ही में से किसी में है। किसी फ्रान्सीसी लेखिका की कहानी का अँग्रेजी अनुवाद है। लेडी-डॉक्टर अपने परिचय में कहती है—"मैंने यौवन पार करके प्रौढ़त्व मे कदम रक्खा है।'—वह है सामने के शेल्फपर—" कहता हुआ वह पत्रिका उठा लाया।

आशु बाबू ने पूछा—"कहानी का नाम क्या है?"

अजित ने कहा—"नाम जरा अजीब-सा है—"एक दिन · जिस दिन में नारी थी।"

बेलाने कहा—"इसके माने? लेखिका अब पुरुषों मे शामिल हो गयी है क्या?"

अजित ने कहा—"लेखिका ने आप-बीती लिखी है और शायद डॉक्टर होने की वजह से नारी-देह के क्रम-विकास का जो चित्र खीचा है वह कही-कही रुचि को चोट पहुँचाता है। जैसे—"

नीलिमा चट से बोल उठी—" 'जैसे' बताने की जरूरत नही अजित बाबू, रहने दीजिए।"

अजित ने कहा—"रहने दीजिए। मगर उन्होंने नारी के भीतर का, यानी उसके हृदय का जो चित्र खीचा है, वह मधुर न होते हुए भी आश्चर्यजनक है।"

आशु बाबू को कुतूहल हुआ। बोले—"अच्छी बात है अजित, जरा-कुछ काट-छाँट करके सक्षेप में सुनाओ तो सुनें। वर्षा भी अभी रुकी नही और रात भी ज्यादा नही हुई।"

अजित ने कहा—"कहानी बहुत बडी है, इसलिए काट-छाँट कर ही पढ़ी जा सकती है—आप चाहे तो पीछे पढ़ लीजिएगा।"

बेलाने कहा, "पढ़िए, जरा सुने। कम से कम वक्त तो कटेगा।"

नीलिमा के मन मे आयी कि उठकर चली जाय, पर जाने का कोई बहाना न मिलने के कारण वह सकोच के साथ वही बैठी रही।

वत्ती के सामने बैठकर अजित किताव खोलकर कहने लगा—"शुरू-शुरू मे जरा भूमिका-सी है, उसें संक्षेप मे कह देना जरूरी है। जिसकी यह आत्म-कहानी है वह सुन्दरी है, सुशिक्षिता है और बडे घर की लडकी है। चरित्र निष्कलक था या नही, इसका कहानी मे स्पष्ट उल्लेख नही है, पर इतना नि.सदेह समझ में आ जाता है कि अगर उसके कोई दाग किसी दिन किसी कारण से लगा भी हो तो वह यौवन के प्रारम्भ में,—बहुत दिन पहले लगा होगा।

"उस दिन उसको बहुतो ने चाहा था,—एकने तो समस्या का कोई हल न पाकर आत्म-हत्या कर ली और एक चला गया समुद्र के उस पार कनाडा मे। चला तो गया, पर आशा न छोड सका। दूर से कृपा-भिक्षा माँगते हुए उसने इतनी चिट्ठियाँ लिखी कि उन्हे अगर इकट्ठा किया जाता तो एक समूचा जहाज भर जाता, लेकिन जवाब की आशा उसने नही की और न जवाब पाया ही। उसके बाद एक दिन दोनो में मुलाकात हुई। देखते ही सहसा मानो वह चौंक पडा। इस बीच पन्द्रह वर्ष बीत गये थे, और इसकी-उसे धारणा ही नही थी कि जिसे वह पचीस साल की युवती देखकर विदेश चला गया था, उसकी उमर अब चालीस साल की हो गयी है। कुशल-प्रश्न अनेक हुए, उलाहने भी कम पेश नही किये गये, परन्तु पहले आँखे चार होते ही उसकी आँखो के कानो से जो चिनगारियाँ निकलने लगती थी और उन्मत्त-कामना का जो झंझावात समस्त इन्द्रियो के वन्द दरवाजो को तोडकर बाहर निकलना चाहता था,—आज उसका कोई चिन्हतक कही दिखाई नही दिया। अब वह न जाने कब का स्वप्न-सा मालूम देने लगा। स्त्रियो को और सब विषयो मे धोखा दिया जा सकता है, पर इस विषय मे नही।—यही से कहानी शुरू होती है।" कहकर अजित आगे पढने के विचार से किताब के पन्नेपर झुक पडा।

आशु बाबू ने टोकते हुए कहा—"नहीं-नही, अँग्रेजी नही अजित, अँग्रेजी नही। तुम्हारे मुँह से बंगला मे कहानी का सहज भाव बहुत मीठा लग रहा है, तुम बाकी का हिस्सा भी इसी तरह कहते जाओ।"

"मुझसे बनेगा कैसे?"

"बनेगा, बनेगा। जैसे अभी कह रहे थे वैसे ही कहते जाओ।"

अजित ने कहा—"हरेन्द्र बाबू की तरह मुझे भाषा का ज्ञान नही, भाषा के दोष से अगर सारा का सारा कडुआ हो जाय तो उसमे मेरी ही असमर्थता समझिएगा।" इसके बाद वह कभी किताब के पन्ने की तरफ देखकर और कभी बगैर देखे ही कहने लगा।

"फिर वह घर पहुँची। उस आदमी को उसने कभी प्यार नही किया था और न करना चाहा था, बल्कि, सर्वान्त करण से उसने हमेशा यही प्रार्थना की थी कि भगवान् किसी दिन उसे मोह-मुक्त कर दे, उसे इस निष्फल प्रणय के दाह से छुटकारा दे दे,—असम्भव वस्तु के लुब्ध आश्वासन से वह अब तकलीफ न पाये। देखा गया, कि भगवान् इतने दिनो वाद उसकी वही प्रार्थना मजूर की है। कोई बात नही हुई, मगर फिर भी इतना तो नि सन्देह समझ मे आ गया कि वह कनाडा वापस जाय या न जाय, पर दीनता से प्रणय की भीख माँगकर न अब वह खुद ही निरन्तर दु ख पायेगा और न उसे ही दु ख देगा। दु साध्य समस्या की आज मानो अन्तिम मीमासा हो गयी। हमेशा से 'नही' कहकर बराबर वह स्त्री अस्वीकार ही करती आयी है, और आज भी उसमे व्यतिक्रम नहीं हुआ, किन्तु वह अन्तिम 'नही' आज आयी उलटी तरफ से। उस स्त्री ने इसकी स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी कि दोनो 'नही' मे इतना जबरदस्त प्रभेद होगा। पुरुषो की लोलुप दृष्टि ने हमेशा उसे परेशान ही किया है, लज्जा से पीडित ही किया है,—आज ठीक उसी दिशा से अगर उसे मुक्ति मिली हो, और शरीर-धर्म के कारण उसके अस्तप्राय यौवन ने अगर पुरुषो की उद्दीप्त कामना, उन्माद और आसक्ति का रास्ता रोक दिया हो तो इसमें शिकायत की कौन-सी बात है? मगर फिर भी, घर लौटते समय, रास्ते मे मानो आज सारा विश्व-संसार उसे बिलकुल अपरिचित मूर्ति धारण करके दिखाई देने लगा। प्रेम नही, हृदय मे एकान्त मिलने की व्याकुलता नही,—ये सब तो दूसरी बातें हैं, बडी बाते हैं। किन्तु आज के पहले उसे इसकी क्या खबर थी कि जो बडी नही, जो रूपज हैं, अशुभ हैं, असुन्दर हैं, अत्यन्त क्षणस्थायी हैं—उन सब कुत्सित बातो के लिए भी उस नारी के अविज्ञात चित्त के नीचे इतना बडा आसन बिछा हुआ था। और उनके कारण पुरुष की विमुखता उसे ऐसे निर्मम अपमान से आहत कर सकती है!"

हरेन्द्र ने कहा—"अजित कहते तो बडे अच्छे ढग से हैं। कहानी को खूब ध्यान मे पढा है।

स्त्रियाँ चुपचाप बैठी सिर्फ देखती रही, उन्होने कुछ राय जाहिर नही की।

आशु बावू ने कहा—"हाँ। उसके बाद, अजित?"

अजित कहने लगा—"फिर उस महिला को अचानक ख्याल आया कि सिर्फ एक ही पुरुष तो उसे नही चाहता था, बहुत-से लोग बहुत दिनो से उससे प्रेम करते आ रहे थे, प्रार्थना करते आ रहे थे,—उस दिन उसकी जरा-सी मुसकान और मुँह के एक शब्द के लिए उनकी व्याकुलता की हद न थी। प्रतिदिन के प्रत्येक पदक्षेप मे से वे न जाने कहाँ से और किस जमीन को फोडकर बाहर निकल आते थे। पर वे सब भी आज कहाँ गये? कही भी तो नही गये,—अब भी तो कभी-कभी दिखाई दे जाते हैं। तो क्या उसके अपने कण्ठ का स्वर बिगड गया है? उसकी हँसी का रूप बदल गया है? अभी-अभी उस दिन की बात ही तो है,—दस-पन्द्रह वर्ष, सो ऐसे कितने दिन हो गये?—इतने मे क्या उसका सब कुछ बीत गया, सब कुछ खो गया?"

आशु बावू सहसा बोल उठे—"गया कुछ भी नही अजित, गया हो तो शायद उसका यौवन, उसकी माँ होने की शक्ति खो गयी होगी।"

अजित उनकी तरफ देखकर बोला—"यही बात है। कहानी आपने पढी थी?"

"नही।"

"नही तो ठीक यही बात आपने कैसे जान ली?"

आशु बावू उत्तर मे सिर्फ हँस दिये, बोले—"तुम आगे पढो।"

अजित कहने लगा—"घर लौटकर वह अपने शयनागार मे खूब बडे आईने के सामने बत्ती जलाकर खडी हो गयी। बाहर जाने की पोशाक उतारकर रात के सोने के कपडे पहनते-पहनते अपनी छायापर आज पहले-पहल उसकी नजर पडी और पडते ही एकाएक मानो उसकी दृष्टि ही बदल गयी। इस तरह धक्का खाये बगैर शायद अब भी उसे दिखाई न देता कि नारी की जो सबसे बडी सम्पदा है,—आप जिसे बता रहे थे कि उसकी माँ होने की शक्ति,—वह शक्ति आज बिलकुल निस्तेज और म्लान हो चुकी है; वह आज सुनिश्चित मृत्यु के मार्गपर कदम बढ़ाये खडी है; इस जीवन मे अब उसे वापस नही लाया जा सकता। उसकी निश्चेतन देह के ऊपर से अविच्छिन्न जल-धारा की तरह बहकर वह सम्पदा प्रतिदिन की व्यर्थता मे क्षय हो चुकी है। यह बात उसे आज इस शेष समय मे मालूम हुई कि इतना बडा ऐश्वर्य इतना स्वल्पायु है।"

आशु बावू ने एक गहरी उसाँस ली और कहा—"ऐसा ही होता है अजित, ऐसा ही होता है। जीवन की बहुत-सी बड़ी चीजो को हम पहचान पाते हैं जब उन्हे खो देते हैं। हाँ, फिर?"

अजित कहने लगा—"फिर उस आईने के सामने खड़ी-खडी वह अपने यौवनान्त शरीर का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण करती है। एक दिन क्या थी और अब क्या होने जा रही है? मगर उस वर्णन को न मैं कह सकता हूँ और न पढ़ ही सकता हूँ।"

नीलिमा पहले की भाँति ही व्यस्त होकर बोल उठी—"न न न, अजित बाबू उसे रहने दीजिए। उसे छोडकर आगे कहिए।"

अजित कहने लगा—"उस महिला ने विश्लेषण के अन्त मे कहा है कि जिस तरह नारी के दैहिक सौन्दर्य के समान सुन्दर वस्तु इस समार मे नही है, उसी तरह इसकी विकृति के समान असुन्दर वस्तु भी शायद ही पृथ्वीपर कोई हो।"

आशु बावू ने कहा—"यह जरा कुछ ज्यादती है अजित।"

नीलिमा ने सिर हिलाते हुए प्रतिवाद किया—"नही, जरा भी ज्यादती नही। बिलकुल सच है।"

आशु बावू ने कहा—"मगर उसकी जो उमर है उसे तो विकृति की उमर नही कहा जा सकता, नीलिमा।"

नीलिमा ने कहा है—"कहा जा सकता है। कारण वह तो कोई सालों की गिनती से स्त्रियो के जीने का हिसाब नही है; इस बात को और चाहे जो भूल जाय, पर स्त्रियो के भूलने से काम नही चलेगा कि यौवन का आयुष्काल अत्यन्त ही कम है।"

अजित सिर हिलाकर और खुश होता हुआ बोला—"ठीक यही उत्तर उसने खुद दिया है। कहा—"आज से समाप्ति की शेष प्रतीक्षा करते रहना ही होगा। अवशिष्ट जीवन का एकमात्र सत्य है। मैं जानती हूँ कि इसमे कोई सान्त्वना नही, आनन्द नही, आशा नही,—फिर भी उपहास की लज्जा से तो बच ही जाऊँगी। ऐश्वर्य का भग्न स्तूप आज भी शायद किसी अभागे का मन हर सके, परन्तु वह मुग्धता जैसे उसके लिए विडम्बना के सिवा कुछ नही, वैसे ही मेरे लिए भी वह मिथ्या है, झूठ है। यह मुझ से नही होगा कि रूप का सचमुच का प्रयोजन खतम हो चुका है, उसी को नाना प्रकार से, नाना वेशभूषा से सजाकर कहूँ कि 'खतम नही हुआ' तथा अपने को और दूसरो को धोखा देकर ठगती फिरूँ।"

इसपर और किसी ने कुछ नही कहा, सिर्फ नीलिमा बोल उठी—"बहुत सुन्दर है। ये शब्द उसके मुझे बहुत ही सुन्दर लगे अजित बाबू।"

अन्य लोगो की तरह हरेन्द्र भी खूब ध्यान से सुन रहा था, वह इस मन्तव्य से खुश न हुआ। बोला—"यह आपका भावावेश का उफान है भाभी, खूब सोचविचारकर नही कहा आपने। ऊँची डालपर सेमर का फूल भी सहसा सुन्दर दीख पडता है, फिर भी फूलो के दरबार मे उसकी कोई कदर नही। रमणी की देह क्या ऐसी तुच्छ चीज है कि इसके सिवा उसका और कोई उपयोग ही न हो?"

नीलिमा ने कहा—"नही है, सो तो लेखिका ने कहा नही। यह आशका उसे खुद भी थी कि अभागे आदमियो की आवश्यकता आसानी से नही मिटती।"

फिर जरा हँसकर कहा, "और उफान की जो बात कह रहे थे छोटे बाबू, सो अक्षय बाबू मौजूद नही, वे होते तो समझ जाते कि उफान की ज्यादती किस ओर है।"

हरेन्द्र ने जवाब दिया,—"आप गाली-गलौज करती रहेगी तो मैं ऊब जाऊँगा, सो नहीं होगा भाभी।"

सुनकर आशु बाबू खुद भी जरा हँस दिये। बोले,—"वास्तव में हरेन्द्र, मुझे भी ऐसा लगता है कि इस कहानी मे लेखिका ने स्त्रियो के रूप के वास्तविक प्रयोजन की तरफ़ ही इशारा किया है।"

"मगर, क्या यही ठीक है?"

"ठीक नही, यह बात दुनिया की तरफ देखते खयाल करना कठिन है।"

हरेन्द्र उत्तेजित हो उठा, कहने लगा, "दुनिया की तरफ़ देखकर आप चाहे कुछ भी खयाल करे, मनुष्य की तरफ़ देखकर इसे स्वीकार करना मेरे लिए भी कठिन है। मनुष्य का प्रयोग जगत् के साधारण प्रयोजन को पार करके बहुत दूर चला गया है, इसी से तो उसकी समस्या ऐसी विचित्र, ऐसी दुरूह होती जा रही है। इसी मे तो उसकी मर्यादा है आशु बाबू कि चलनी से छानकर उसे अलग नही किया जा सकता?"

"सो हो सकता है। कहानी का बाकी हिस्सा क्या है, सुनाओ तो अजित।"

हरेन्द्र क्षुण्ण हो गया। बाधा देते हुए बोला—"सो नही होगा आशु बाबू। यह मैं नही होने दूँगा कि इस बात को तुच्छ समझकर आप जवाब देने से बच जायँ। या तो मेरी बात स्वीकार कीजिए या फिर मेरी गलती दिखा दीजिए। आपने बहुत कुछ देखा है, बहुत पढा है,—बहुत बडे विद्वान् हैं आप, यह मुझ से नही सहा जायगा कि इस अनिर्दिष्ट ढीली-ढाली बात की सेधमे से भाभी जीत जायँ। कहिए?"

आशु बाबू हँसते हुए बोले—"तुम ब्रह्मचारी आदमी ठहरे,—रूप के विवेचन में हार भी जाओ तो इसमे तुम्हारे लिए लज्जा की कोई बात नही हरेन्द्र।"

"नही, सो मैं नही सुनूँगा।"

आशु बाबू क्षण-भर चुप रहे, फिर धीरे-धीरे बोले—"तुम्हारी बात को अप्रमाणित ठहराने के लिए कमर बाँधकर बहस करने मे मुझे शर्म आती है। वास्तव मे यही अच्छा है कि नारी के रूप का निगूढ अर्थ अपरिस्फुट ही रहे।" फिर जरा चुप रहकर बोले—"अजित की कहानी सुनते-सुनते मुझे बहुत दिन पहले की एक दु.ख की कहानी याद आ रही थी। बचपन मे मेरे एक अँग्रेज मित्र थे, वे एक पोलिश स्त्री को प्यार करते थे। लडकी बहुत ही सुन्दर थी; छात्राओं को पियानो सिखाकर जीविका चलाती थी। सिर्फ़ रूप में ही नही, अनेक गुणो मे गुणवती भी थी। हम सभी उनकी शुभ कामना करते थे और निश्चित जानते थे कि उनके विवाह में कही भी कोई विघ्न न आयेगा।"

अजित ने पूछा, "विघ्न कैसे आया?"

आशु बाबू ने कहा—"सिर्फ उमर की बातपर। देश से एक दिन उसकी माँ आ पहुँची। उसी के मुँह से बातो ही बातो मे अचानक पता लगा कि उसकी उमर पैंतीस पार कर चुकी है।"

सुनकर सब चौंक पडे। अजित ने पूछा—"उस महिला ने क्या आप लोगो से अपनी उमर छिपायी थी?"

आशु बाबू ने कहा—"नहीं। मेरा विश्वास है कि पूछनेपर वह छिपाती नही, उसकी ऐसी प्रकृति ही न थी, मगर पूछने की बात किसी के ध्यान मे ही न आयी। उसकी देह की गठन ऐसी थी, चेहरे की ऐसी सुकमार श्री थी और ऐसा मधुर कण्ठस्वर था कि कभी किसी को आशका ही न हुई कि उसकी उमर तीस से ज्यादा हो सकती है।"

बेला ने कहा—"आश्चर्य है! आप लोगो मे से किसी के क्या आँख ही न थी?"

"थी क्यो नही। मगर दुनिया के सभी आश्चर्य आँखो से नही पकडे जा सकते। इसे उसी का एक दृष्टान्त समझो।"

"और उस आदमी की उमर क्या थी?"

"वह मेरी ही उमर का था,—तब शायद अट्ठाइस-उन्तीस से ज्यादा न होगी उसकी उमर।"

"फिर?"

आशु बाबू ने कहा—"फिर की घटना अत्यन्त सक्षिप्त है। उस युवक का सारा हृदय एक ही क्षण मे उस प्रौढा रमणी के विरुद्ध मानो पाषाण बन गया। उस बात को जमाना बीत गया, पर आज भी सोचता हूँ तो मन मे एक तरह की टीस उठती है। कितने आँसू, कितनी हाय-हाय, कितना जाना-आना, कितना मनाना-रिझाना होता रहा, पर उसके मन से उस नफरत को जरा भी हिलाया-डुलाया नही जा सका। इस बात के आगे वह और कुछ सोच ही न सका कि यह ब्याह असम्भव है।"

क्षण-भर सभी चुप रहे। नीलिमा ने पूछा—"मगर बात इससे ठीक उल्टी होती तो शायद असम्भव न होता?"

"शायद न होता।"

"पर ऐसा ब्याह क्या उस देश मे एक भी नही होता? ऐसे पुरुष क्या वहाँ हैं ही नही?"

आशु बाबू ने हँसते हुए जवाब दिया, "हैं क्यो नही। इस कहानी की लेखिका ने शायद खास तौर से ऐसे पुरुषो को लक्ष्य करके 'अभागे' विशेषण का प्रयोग किया है। लेकिन अब रात तो बहुत हो गयी अजित, इसका अन्त क्या है?"

अजित ने चौंककर उनकी ओर देखा, और कहा—"मैं आपकी ही कहानी की बात सोच रहा था। इतना प्रेम होते हुए क्यो वह उसे ग्रहण नही कर सका? इतनी बडी सत्य वस्तु किधर से कैसे एक क्षण मे झूठी हो गयी?—जिन्दगी-भर शायद वह महिला यही सोचती रही होगी, 'एक दिन, जिस दिन मैं नारी थी।' इसके पहले शायद उस विगतयौवना नारी ने कभी इस बात की चिन्ता भी न की होगी कि नारीत्व की वास्तविक समाप्ति नारी के बिना जाने ही कब और कैसे हो जाती है।"

"लेकिन तुम्हारी कहानी का शेष?"

अजित शान्त भाव से बोला—"रहने दीजिए। यौवन का वह शेष अभीतक नि शेष नही हुआ,—अपने और दूसरो के आगे स्त्रियो की इसप्रतारणा की करुणकहानी के साथ कहानी खतम होती है। अब आज रहने दीजिए, फिर किसी दिन सुनाऊँगा।"

नीलिमा ने सिर हिलाते हुए कहा, "नही नही, इससे तो बल्कि उसे असमाप्त ही रहने दीजिए।"

आशु बाबू ने हाँ मे हाँ मिला दी, वेदना के साथ बोले—"वास्तव मे स्त्रियो के लिए यही समय निसग जीवन होने के कारण सबसे बुरा होता है। इसीसे शायद असहिष्णु, कपटी,पर-छिद्रान्वेषी,—यहाँ तक कि निष्ठुर होकर सब देश के पुरुष इन अविवाहिता प्रौढ़ा स्त्रियो से बचकर चलना चाहते हैं नीलिमा।"

नीलिमा ने हँसकर कहा—"ऐसा कहना ठीक नही आशु बाबू, बल्कि यो कहिए कि तुम जैसी पति-पुत्रहीना अभागी स्त्रियो से बचकर चलना चाहते हैं।"

आशु बाबू ने इसका कोई जवाब नही दिया, पर इशारे को स्वीकार कर लिया। बोले—"पर मजा तो यह है कि जो पति-पुत्र से सौभाग्यवती हैं, वे स्नेह-प्रेम और सौन्दर्य-माधुर्य से ऐसी परिपूर्ण हो उठती हैं

कि उन्हे पता भी नही लग पाता कि जीवन का इतना-बडा सकट-काल कब और किस रास्ते से निकल गया।''

नीलिमा ने कहा, ''उन भाग्यवतियो से मैं डाह नही करती आशु बाबू, ऐसी प्रेरणा आजतक मन मे कभी नही आयी, पर भाग्य के दोष से जो हमारी तरह भविष्य की सारी आशाओ को जलाञ्जलि दे चुकी हैं, बता सकते हैं कि उनके मार्ग का निर्देश किस तरफ है?''

आशु बाबू कुछ देरतक तो स्तब्ध हुए बैठ रहे, फिर बोले—''इसके जवाब मे मैं सिर्फ बडो की बात की प्रतिध्वनि मात्र कर सकता हूँ नीलिमा, उससे ज्यादा मुझमे शक्ति नही। वे कह गये हैं कि दूसरो के लिए अपने को उत्सर्ग कर देना चाहिए। ससार मे न तो दुःख का ही अभाव है और न आत्मनिवेदन के दृष्टान्तो का असद्भाव है। यह सब मैं भी जानता हूँ,—परन्तु इसे मैं आज तक नि सशय होकर नही जान पाया कि इसके भीतर नारी का सचमुच का अविरुद्ध कल्याणमय आनन्द है या नही।''

हरेन्द्र ने पूछा, ''यह सन्देह क्या आपका शुरू से ही था?''

आशु बाबू मन-ही-मन कुछ कुण्ठित-से हुए। जरा ठहरकर बोले—''ठीक याद नही पडता हरेन्द्र। मनोरमा को गये तब दो-तीन दिन हुए होगे। मन बोझिल था और शरीर विवश। इसी कुरसीपर चुपचाप पडा था, अचानक देखा कि कमल आ पहुँची है। आदर से बुलाकर उसे पास बिठाया। मेरी व्यथा की जगह को सावधानी से बचाते हुए उसने निकल भी जाना चाहा, पर वह निकल नही सकी। बातो ही बातो मे कुछ ऐसा प्रसंग उठ खडा हुआ कि फिर उसे कुछ होश ही न रहा। तुम लोग तो उसे जानते ही हो, जो भी कुछ प्राचीन है उसपर उसे कैसी प्रबल वितृष्णा है! उसे झकझोरकर तोड डालना ही मानो उसका 'पैशन' है। मन गवाही नही देना चाहता, हमेशा का सस्कार मारे डरके सिकुड जाता है। फिर भी जवाब ढूँढ़े नही मिलता और हार माननी पडती है। याद है, उस दिन भी मैंने उसके सामने स्त्रियो के आत्मोत्सर्ग का उल्लेख किया था, मगर उसने उसे मंजूर ही नही किया। कहने लगी—'स्त्रियो की बात मैं आपसे ज्यादा जानती हूँ। वह प्रवृत्ति उनमे है, पर वह उनके भीतर की पूर्णता से नही आती, आती है सिर्फ शून्यता से और उठती है हृदय खाली करके। वह तो स्वभाव नही अभाव है और अभाव के आत्मोत्सर्गपर मैं कानी-कौडी का भी विश्वास नही करती।' मेरी तो समझ मे ही न आया कि इसका क्या जवाब दूँ, फिर भी मैंने कहा—'कमल, सभ्यता की मूल वस्तु से तुम्हारा परिचय होता तो आज शायद तुम्हे मैं समझा देता कि त्याग और विसर्जन की दीक्षा मे सिद्धि प्राप्त करना ही हमारी सबसे सफलता है और इसी मार्ग का अनुसरण कर हमारी कितनी ही विधवा स्त्रियाँ जीवन की सर्वोत्तम सार्थकता अनुभव कर गई हैं।'

इसपर कमल हँसकर बोली—'करते हुए देखा है आपने? एकआध नाम तो बताइए?' मुझे नही मालूम था कि वह ऐसा प्रश्न कर बैठेगी, बल्कि मैंने तो यह सोचा था कि शायद वह बात को मान लेगी। मैं बडे चक्कर मे पड गया—''

नीलिमा बोल उठी—''खूब! आपने मेरा नाम क्यो नही बता दिया? याद नही आयी होगी शायद?''

कैसा कठोर परिहास है! हरेन्द्र और अजित ने सिर झुका लिया, और बेलाने दूसरी तरफ मुँह फेर लिया।

आशु बाबू कुछ अप्रतिभ-से तो हुए, पर उन्होने यह जाहिर नही होने दिया, बोले—''नही, याद ही नही आयी। आँखो के सामने की चीजपर जैसे कभी-कभी नजर नही पडती वैसे ही। तुम्हारा नाम ले लेने से सचमुच ही उसका माकूल जवाब हो आता, किन्तु तब वह याद ही नही आया।''

''तब कमल ने कहा—'मुझे जिस शिक्षा का आपने उलाहना दिया है, खुद आप लोगो के सम्बन्ध मे भी क्या वह सोलहो आने सच नही है? सार्थकता का जो आइडिया बचपन से ही लड़कियो के दिमाग मे आप लोग भरते आये हैं, उसकी रटी हुई बातो को ही तो वे दर्प के साथ दुहराकर सोचा करती हैं कि शायद वही सत्य है। नतीजा यह होता है कि आप लोग भी धोखा खाते हैं और आत्मप्रसाद के व्यर्थ अभिमान से वे खुद भी मर मिटती हैं।'

''इतना कहके वह फिर बोली—'सहमरण की बात तो आपके ध्यान मे आनी चाहिए। जो स्त्रियाँ जलकर मरती थी और जो उन्हे प्रेरणा दिया करते थे; दोनो ही पक्षो का दम्भ उस दिन यह सोचकर आकाश से जा छूता था कि वैधव्य जीवन के इतने बड़े आदर्श का दृष्टान्त ससार मे और है कहाँ!'

''इसका मैं क्या उत्तर देता, कुछ समझ मे ही न आया। मगर उसने उत्तर की अपेक्षा भी नही की, खुद ही कहने लगी—'उत्तर है ही नही, देगे क्या?' फिर जरा ठहरकर मेरे मुँह की तरफ देखकर बोली—'लगभग सभी देशो मे आत्मोत्सर्ग शब्द से एक तरह का बहुव्याप्त और बहुप्राचीन पारमार्थिक मोह है। उस मोह का नशा जिसे चढता है, उसकी दृष्टि मे परलोक की असाधारण अवस्तु भी इस लोक की सकीर्ण साधारण वस्तु को ढक देती है,—वह उसे सोचने ही नही देती कि उसमे नर और नारी इन दोनो मे से किसी के सस्कार उससे मानो कान पकडवा के मनवा लेते हैं,—उसी तरह जिस तरह कि लगभग सहमरण को उन्होने मनवा लिया था। बस अब और नही, मैं जाती हूँ।' कहकर उसे सचमुच ही चले जाते देखकर मैंने व्यस्त होकर कहा—'कमल, प्रचलित नीति और समस्त प्रतिष्ठित सत्य को अवज्ञा से चूर -चूर कर देना ही मानो तुम्हारा व्रत है। यह शिक्षा जिसने तुम्हे दी है उसने जगत् का कल्याण नही किया है।'

''कमल ने कहा—'मेरे पिता ने दी है'।

''मैंने कहा— 'तुम्हारे ही मुँह से सुना है कि वे ज्ञानी और विद्वान् आदमी थे। यह बात क्या उन्होने कभी तुम्हे सिखाई ही नंही कि अन्ततक सर्वस्व दान करके ही आदमी सत्य-रूप मे अपने को पाता है? स्वेच्छा से दु ख स्वीकार करने मे ही आत्मा की यथार्थ प्रतिष्ठा है।'

''कमल ने कहा—'वे तो यही कहा करते थे कि आदमी का सर्वस्व चूस लेने का जिन्होने षड्यत्र रच रक्खा है, जिन्हे दु ख का अनुभव नही, वे ही दु ख स्वीकार करने की महिमा गाने में पंचमुख हो जाया करते हैं। वह दु ख ससार के दुर्लघ्य शासन का नही है—वह तो मानो उसे स्वेच्छा से जान-बूझकर बुला लाना है,—अर्थहीन शौक की चीज की तरह महज एक लडको का खेल है वह। उससे बडा नही'।

मैं तो आश्चर्य से हतबुद्धि-सा हो गया। बोला—'कमल, तुम्हारे पिता क्या तुम्हे शुद्ध भोग का मत्र ही दे गये हैं, और जगत् मे जो कुछ महान् है, उसपर अश्रद्धा से अवज्ञा करने को ही कह गये हैं?'

''कमल ने इस तरह के दोषारोप की शायद मुझ से आशा नही की थी। उसने क्षुण्ण होकर उत्तर दिया—'यह आपकी असहिष्णुता की बात है आशु बाबू। आप निश्चित जानते हैं कि कोई भी पिता अपनी कन्या को ऐसा मत्र नही दे जा सकता। मेरे पिता के प्रति आप अविचार कर रहे हैं। वे साधु पुरुष थे।'

''मैंने कहा—'जैसा कि तुम कह रही हो, यदि वास्तव मे यह शिक्षा वे तुम्हे दे गये हो तो उनके प्रति सुविचार करना भी कठिन है। मनोरमा की जननी की मृत्यु के बाद अन्य किसी स्त्री को जो मैं प्यार न कर सका इसे सुनकर तुमने कहा था कि यह चित्त की कमजोरी है, कमजोरी को लेकर गर्व नही किया जा सकता। मृत पत्नी की स्मृति के सम्मान को तुमने निष्फल आत्म-निग्रह कहकर उपेक्षा की दृष्टि से देखा था। सयम के कोई माने ही उस दिन तुम्हारे ध्यान मे नही आये थे।''

''कमल ने कहा, 'आज भी नही आते आशु बाबू। जो सयम उद्धत आस्फालन से जीवन के आनन्द को म्लान कर देता है, वह तो कोई चीज ही नही, महज मन की एक लीला है, उसे बाँधने की जरूरत है। सीमा मानकर चलना ही तो सयम है। शक्ति की स्पर्धा मे भी सयम की सीमा को लाँघ जाना सम्भव है। तब फिर उसे उतनी इज्जत नही दी जा सकती। यह बात क्या आपने कभी विचार करके नहीं देखा कि अति-सयम भी एक तरह का असयम है?'

''विचार करके नही देखी, यह सच था। इसीसे विचार करके देखने की बात चट से याद आ गयी। मैंने कहा, 'यह तो सिर्फ तुम्हारी बातो की जादूगरी है, उसी भोग की वकालत से भरी हुई। पर आदमी जितना ही ज्यादा जकड-पकड के भोग को लील जाना चाहता है, उतना ही उसे खो बैठता है। उसकी भोग की भूख तो मिटती नही,—बल्कि निरन्तर अतृप्ति ही बढती चलती है। इसी से हमारे शास्त्रकार कह गये हैं कि उस मार्ग मे शान्ति नही है, तृप्ति नही है, उससे मुक्ति की आशा व्यर्थ है। उनका कहना है कि 'न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति, हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।' आग मे घी देने से जैसे वह और भी जोर से जलने लगती है, वैसे ही भोग-उपभोगो के द्वारा कामना बढती ही जाती है, कभी घटती नही।''

हरेन्द्र उद्विग्न होकर बोल उठा, ''उसके सामने शास्त्र-वाक्य आप क्यो कहने गये? हाँ, फिर?''

आशु बाबू ने कहा—''तुमने ठीक कहा। सुनकर वह हँस पडी और बोली, 'शास्त्र मे ऐसी बात है

क्या? सो तो होगी ही। उन्हें यह भी तो मालूम था कि ज्ञान की चर्चा से ज्ञान की इच्छा बढती है, धर्म की साधना से धर्म की प्यास भी उत्तरोत्तर बढती जाती है, पुण्य के अनुशीलन से पुण्य का लोभ भी क्रमश उग्र होता जाता है—मालूम होता है मानो अभी वहुत वाकी है। इसकी भी ठीक वही हालत है। यह कामना भी शान्त नही होती। इसलिए, इस क्षेत्र मे भी वे लोग क्यो यही आक्षेप नही कर गये?—उनमे विवेक था, शायद इसलिए?'

हरेन्द्र, अजित, वेला और नीलिमा चारो के चारो हँस पडे।

आशु वावू वोले—"हँसने की वात नही। लडकी के उपहास और व्यंग्य से मानो मैं हतवाक् हो गया, अपने को संभालकर वोला—'नही, उनका यह अभिप्राय नही, वे तो यही निर्देश कर गये हैं कि भोग से तृप्ति नही हो सकती, कामना से निवृत्ति नही हो सकती।'

"कमल जरा रुककर बोली—'मालूम नही, ऐसे वाहुल्य का इंगित वे क्यो कर गये? यह क्या वाजार मे वैठकर 'यात्रा' के गान सुनना है या पडोसी के घर का ग्रामोफोन है जो बीच मे ही मालूम हो जायगा कि जाने दो, काफी तृप्ति हो चुकी, अव जरूरत नही। इस तृप्ति-अतृप्ति की असल सत्ता तो वाहर के भोग मे है नही, उसका स्रोत तो है जीवन के मूल मे। वही से वह हमेशा, जीवन की आशा, आनन्द और रस जुटाया करती है और शास्त्र का धिक्कार व्यर्थ होकर दरवाजे पर पडा रह जाता है—उसे छू तक नही पाता।'

"मैंने कहा—'सो हो सकता है, मगर है तो आखिरकार वह शत्रु ही, हमे उसे जीतना तो चाहिए ही?'

"कमल ने कहा—'मगर शत्रु कहके गाली देने से ही तो वह छोटा न हो जायगा। प्रकृति के लिखे पक्के पट्टे के अनुसार वह दखलदार है, उसके किस स्वत्व को कव कौन सिर्फ विद्रोह करके ही उड़ा सका है? दु.ख से घवराकर आत्महत्या करना तो दु.ख को जीतना नही है? फिर भी मजा यह कि ऐसी ही युक्तियो के वलपर आदमी अकल्याण के सिंहद्वारपर शान्ति का रास्ता टटोलता फिरता है। इससे शान्ति तो मिलती नही, स्वस्थता भी चली जाती है।'

"सुनकर मुझे ऐसा लगा कि शायद वह सिर्फ मुझको ही कोंच रही है।" इतना कहके वे क्षण-भर चुप रहे, फिर कहने लगे—और न जाने मेरा कैसा जी हो गया कि मुँह से चटसे निकल पडा—'कमल, तुम अपने जीवनपर तो एक वार विचार कर देखो।' वात मुँह से निकल जाने के वाद खुद मुझे ही अपने कानो को खटकी, कारण कटाक्ष करने लायक उसके पास कुछ था ही नही,—कमल को खुद भी आश्चर्य हुआ, पर वह न तो गुस्सा हुई, न रूठी, शान्त चेहरे से मेरी तरफ देखती हुई वोली—'मैं प्रतिदिन ही विचार कर देखती हूँ आशु वावू। दु.ख नही पाती हूँ सो मैं नहीं कहती, पर मैंने उस दु.ख को ही जीवन का चरम नहीं मान लिया है। शिवनाथ को जो कुछ देना था, वे दे चुके, मुझे जो मिलना था, सो मिल गया। आनन्द के वे छोटे-छोटे क्षण ही मेरे मन मे मणि-माणिक्य की तरह संचित है। न तो निष्फल मानसिक दाह से मैंने उन्हें जलाकर खाक किया और न सूखे झरने के नीचे रीते हाथ पसारकर भीख माँगने के लिए ही खडी हुई। उनके प्रेम की आयु जब खतम हो चुकी तो शान्त मन से मैंने उन्हे विदा दे दी; पछतावे और शिकायत के धुएँ से आकाश काला करने की मेरी प्रवृत्ति ही नहीं हुई। इसी से उनके सम्वन्ध मे मेरा उस दिन का आचरण आप लोगों को अद्भुत-सा लगा। आप लोगों ने सोचा था कि इतने वडे अपराध को कमल ने माफ कैसे कर दिया? मगर मेरे मन मे उस दिन उनके अपराध से वढ़कर अपने ही दुर्भाग्य की वात ज्यादा आयी थी!"

"सुनते-सुनते मुझे ऐसा लगा कि मानो उसकी आँखे से आँसू छलक आये हैं। हो सकता है कि सच हो, या शायद मेरी भूल हो। उस वक्त मेरा हृदय मानो वेदना से ऐठ गया, उसमे और मुझ मे प्रभेद ही कितना-सा था! मैंने कहा—"कमल ऐसे मणि-माणिक्यो का सचय मैंने भी अपने मन मे किया है, वही तो मेरे लिए सात राज्यो का धन है, अव हम लोग किसके लिए लोभ करने जायँ बतलाओ'?

"कमल चुपचाप देखती रह गयी। मैंने पूछा—'इस जीवन मे क्या अव तुम और किसी को प्यार कर सकती हो कमल? इस तरह समस्त देह-मन से अगीकार कर सकती हो और किसी को'?

—कमल ने अविचलित कण्ठ से जवाव दिया—'कम से कम जिन्दा तो यही आशा लेकर रहना पडेगा आशु वावू। असमय मे वादलो की ओट मे आज अगर सूर्य अस्त हो गया-सा मालूम दे तो क्या वह अन्धकार ही सत्य हो जायगा और कल प्रभात मे अरुण प्रकाश से अगर आकाश छा जाय तो क्या अपनी

आँखो को वन्द करके यह कह दूँगी कि यह प्रकाश नही है, अन्धकार है? जीवन को क्या ऐसे ही बच्चो के खेल-खेल मे खतम कर दूँगी?'

''मैंने कहा—'रात तो सिर्फ एक ही नही होती कमल, प्रभात का प्रकाश खतम करके वह तो दुवारा भी आ सकती है'?।

''उसने कहा, 'आया करे। तब भी प्रभातपर विश्वास करके फिर रात विता दूँगी।'

''मैं तो मारे आश्चर्य के सन्न होकर बैठा रहा। कमल चली गयी।''

''बच्चो का खेल! सोचा था, शोक मे से गुजारकर हम दोनो की चिन्ता-धारा शायद एक ही स्रोत मे मिल गयी है। परन्तु देखा कि नही, सो बात नही है। जमीन-आसमान का फर्क है। उसके दृष्टिकोण से तो जीवन का अर्थ ही अलग है,—हम लोगो के साथ उसका कोई मेल ही नही। वह न तो अदृष्ट को ही मानती है और न अतीत की स्मृति उसके आगे का रास्ता ही रोकती है, उसके लिए अनागत ही सब कुछ है, जो आजतक आया नही है। इसी से उसकी आशा भी जितनी दुर्निवार है, आनन्द भी उतना ही अपराजेय है। सिर्फ इसी वजह से कि किसी गैर ने उसके जीवन को धोखा दिया है, वह अपने जीवन को धोखा देने या वंचित रखने के लिए किसी तरह तैयार नही।''

सब चुप रहे।

उठते हुए दीर्घ नि श्वास को दबाकर आशु बाबू फिर कहने लगे—''विलक्षण लडकी है! उस दिन नफरत और पछतावे का ठिकाना न रहा, पर साथ ही यह बात भी मन-ही-मन स्वीकार किये विना न रहा गया कि सिर्फ बाप से सीखकर रटी हुई भाषा नही है। जो कुछ उसने सीखा है, विलकुल निं सशय होकर पूरी तरह खुद ही सीखा है। ऐसी विशेष उमर भी नही, पर फिर भी मालूम होता है कि अपनी आत्मा को उसने इसी उमर मे पूरी तरह उपलब्ध कर लिया है।''

फिर जरा ठहर कर कहने लगे—''और बात भी सच है। वास्तव मे जीवन कोई बच्चो का खेल तो है नही। भगवान का इतना वडा दान इसलिए नहीं आया। ऐसी बात भी भला मैं कैसे कह सकता था कि कोई एक आदमी किसी दूसरे के जीवन मे विफल हो गया तो उसी शून्यता की जिन्दगी-भर जय-घोषणा करता रहे?''

बेला ने आहिस्ते से कहा—''बात तो वडी सुन्दर है।''

हरेन्द्र चुपके से उठके खडा हो गया। बोला—''रात काफी हो गयी, वर्षा भी कम हो गयी,—आज इजाजत मिले।''

अजित भी उठ खडा हुआ, कुछ बोला नही। दोनो नमस्कार करके बाहर हो गये।

बेला सोने चली गयी। नीलिमा को छोटे-मोटे दो-एक काम करने वाकी थे, पर आज वे यो ही अधूरे पडे रहे और अन्यमनस्क की तरह वह भी चुपचाप चल दी।

नौकर की प्रतीक्षा मे आशु बाबू आँखोपर हाथ धरे पडे रहे।

वडा भारी मकान था। बेला और नीलिमा के सोने के कमरे आमने-सामने थे। दोनो कमरो मे बत्ती जल रही थी, इतनी सबकी सब बाते और आलोचनाएँ सूने नि सग कमरो मे पहुँचने के बाद मानो धुँधली-सी हो गयी, फिर भी, परम आश्चर्य की बात यह है कि कपडे बदलने के पहले दर्पण के सामने जाकर खडे होनेपर दोनो नारियो के मन मे, एक ही समय में, ठीक एक ही प्रश्न उठ खडा हुआ, 'एक दिन, जिस दिन मैं नारी थी।'

२४

दस-बारह दिन हुए कमल आगरा छोडकर कही बाहर चली गयी है। इधर आशु बाबू को उसकी सख्त जरूरत है। थोडी बहुत चिन्ता तो सभी को हुई थी, पर उद्वेग के काले बादल सबसे ज्यादा हरेन्द्र के ब्रह्मचर्य-आश्रम के माथेपर मँडराये। ब्रह्मचारी हरेन्द्र और अजित व्याकुलता की प्रतिस्पर्धा में ऐसे सूखने लगे कि शायद उनका 'ब्रह्म' भी खो जाता तो ऐसे परेशान न होते। अन्त में उन्होने एक दिन उसे ढूँढ ही निकाला। घटना अत्यन्त साधारण थी। कमल का चाय के बगीचे का एक घनिष्ठ परिचित फिरगी साहब वहाँ का काम छोडकर टूँडला मे रेलवे की नौकरी करने आया है, उसके स्त्री नही है, दो-ढाई साल की एक छोटी लडकी है। वडी परेशानी में पडकर वह कमल को टूँडला ले गया है। उसकी घर-गृहस्थी ठीक करने मे कमल को इतनी देर लग गयी। आज सबेरे वह घर लौटी है और तीसरे पहर उसके लिए मोटर भेजकर आशु बाबू बाट देख रहे हैं।

सिलाई करते-करते नीलिमा सहसा बोल उठी—"उस आदमी के घर मे स्त्री नही, एक नन्ही-सी लड़की के सिवा और कोई औरत भी नही,—फिर भी उसके घर कमल ने आसानी से दस देन बिता दिये।"

आशु बाबू ने बडी मुश्किलो से सिर घुमाकर उसकी तरफ देखा, पर वे समझ न सके कि इस बात का तात्पर्य क्या है।

नीलिमा मानो अपने मन-ही-मन कहने लगी—"वह तो मालूम होता है, नदी की मछली है जिसके पानी मे भीगने-न-भीगने का कोई प्रश्न ही नही उठता, खाने-पहनने की उसे चिन्ता नही,—बिलकुल स्वाधीन है।' आशु बाबू ने सिर हिलाते हुए मृदु कठ से कहा—"बात तो करीब-करीब ऐसी ही है।"

"उसके रूप-यौवन की सीमा नही, बुद्धि भी वैसी ही अनन्त है। राजेन्द्र के साथ उसकी कितने दिन की जान-पहचान थी, मगर उपद्रव के डर से जब कही उसे जगह नही मिली, तो उसे भी उसने बिना किसी सकोच के अपने घर बुला लिया। किसी के मतामत की परवाह ने उसके कर्तव्य मे विघ्न नही डाला। जो किसी से नहीं बना, उसे वह बड़ी आसानी से कर गुजारी। सुनकर ऐसा लगा जैसे सब उससे छोटे हो गये हैं, इसके लिए दूसरी औरतो को न जाने कितने-कितने बातो का ख्याल रखना पड़ता है!"

आशु बाबू ने कहा, "ख्याल तो रखना ही चाहिए नीलिमा?"

बेला ने कहा—"हम भी चाहे तो वैसी ही बेपरवाह और स्वाधीन बन सकती हैं।"

नीलिमा ने कहा "नही, नही बन सकतीं। मैं भी नही बन सकती और आप भी नही। कारण दुनिया हमपर जो स्याही उडेल देगी, उसे धो-पोछकर साफ कर डालने की शक्ति हम लोगो मे नही है।"

जरा ठहरकर नीलिमा कहने लगी—"वैसी इच्छा एक दिन मेरी भी हुई थी, इससे सब ओर से मैंने इस बात को सोच देखा है। पुरुषो के बने हुए अविचार और अत्याचार से हम जल-जल मरी हैं और कितनी जली है, यह कह नहीं सकतीं, सिर्फ जलना ही सार हुआ है। पर समाज के इस अत्याचार का असली रूप कमल को देखने के पहले हमे कभी नही दिखाई दिया। स्त्रियो की मुक्ति, स्त्रियो की स्वाधीनता तो आजकल हरएक स्त्री-पुरुष की जबानपर है, पर वह जबान के आगे एक कदम भी आगे नही बढ़ती। सो क्यों, जानती हैं? अब मालूम हुआ है कि स्वाधीनता तत्त्व-विचार से नही मिलती, न्याय और धर्म की दुहाई देने से भी नही मिल सकती, सभा मे खडे होकर पुरुषों के साथ कलह करने से भी नही मिलती, असल मे स्वाधीनता जैसी चीज कोई किसी को दे ही नही सकता, लेने-देने की वह चीज ही नहीं। कमल को देखते ही दीख जाता है कि यह स्वाधीनता हमारी अपनी पूर्णता से, आत्मा के अपने विस्तार से, स्वत ही आती है। बाहर से अण्डे का छिलका तोडकर भीतर के जीव को मुक्ति देने से वह मुक्ति नहीं पाता, बल्कि मर जाता है। हमारे साथ यहीपर उसका पार्थक्य है।"

फिर बेला से बोली—"अभी जो वह दस-बारह दिन के लिए न जाने कहाँ चली गयी, सबों ने डर का ठिकाना न रहा, पर यह आशका किसी को स्वप्न में भी न हुई कि ऐसा कोई काम वह कर सकती है जिससे उसकी इज्जतपर बट्टा लगे? बताइए, हम होती तो आदमी के दिलो मे इतना जबरदस्त विश्वास का जोर कहाँ पाती? यह गौरव हमे कौन देता? न पुरुष ही देते, न औरते ही।"

आशु बाबू आश्चर्य के साथ उसके मुँह की तरफ क्षण-भर देखते रहे, फिर बोले—"वास्तव मे यह सच है नीलिमा।"

बेला ने पूछा—"लेकिन उसका पति होता तो वह क्या करती?"

नीलिमा ने कहा—"उसकी सेवा करती, रसोई बनाती-खिलाती, घर-द्वार झाडती-बुहारती, बच्चे होते तो उनकी परवरिश करती, और क्या करती? अभी तो वह अकेली है और रुपये-पैसे से भी तग है, नही तो वैसी हालत मे, मैं तो समझती हूँ, समय के अभाव मे वह हम लोगो से मिलने-जुलने तक न आ सकती।"

बेला ने कहा—"तब फिर?"

नीलिमा—"तब फिर क्या?" कहकर हँस दी और बोली—"घर का कामकाज नही करे, तगी या शिकायत कुछ रहे नही, हरदम सैर-सपाटा करती फिरे, क्या यही स्त्रियो की स्वाधीनता का मान-दण्ड है? स्वय विधाता के भी काम-काज का अन्त नही, लेकिन कोई क्या इस कारण उन्हे पराधीन सोचता है? इस ससार मे हमारी खुद की मेहनत-मशक्कत भी क्या कुछ कम है?"

आशु बाबू गहरे आश्चर्य के साथ मुग्ध दृष्टि से उनकी तरफ देखते रहे। असल मे इस ढग की कोई

वात अवतक उन्होने नीलिमा के मुँह से नही सुनी थी।

नीलिमा कहने लगी—"कमल वैठी रहना तो जानती ही नही, तव वह पति-पुत्र और घर-गृहस्थी के कामों मे तल्लीन हो जाती, आनन्द की जलधारा की तरह घर-गृहस्थी उसके माथेपर से बही चली जाती उसे पता भी न लगता। मगर जिस दिन समझती कि पति का काम बोझ बनकर उसके सिर पर सवार हो गया है, उस दिन मैं सौगन्ध खाकर कह सकती हूँ कि उसे ससार मे कोई एक दिन के लिए भी पकडकर नही रख सकता।"

आशु वावू आहिस्ते से वोले—"सो ही ठीक है। ऐसा ही मालूम होता है।"

इतने मे परिचित मोटर का हॉर्न सुनाई दिया। वेला ने खिडकी से झाँककर देखा और कहा—"अपनी ही गाडी है।"

थोडी देर बाद नौकर बत्ती रखने आया और कमल के आने की खबर दे गया।

कई दिन से आशु वावू उसी की प्रतीक्षा कर रहे थे; मगर फिर भी खवर पाते ही उनका चेहरा अत्यन्त म्लान और गम्भीर हो गया। अभी-अभी वे आराम-कुरसी पर सीधे होकर वैठे थे, अव फिर पीठ टेककर लेट गये।

भीतर आकर कमल ने सबको नमस्कार किया, और आशु बाबू के पास की कुरसीपर जाकर बैठ गयी। वोली—"मैंने सुना कि आप मेरे लिए वडे व्यस्त हैं, किसे मालूम था कि आप लोग मुझे इतना चाहते हैं,—नही तो जाने के पहले अवश्य ही आपको खवर दे जाती।" कहते हुए उसने आशु वावू का शिथिल हाथ वडे स्नेह के साथ खीचकर अपने हाथ मे ले लिया।

आशु वावू का मुँह दूसरी ओर था, और अब भी वह उधर ही रहा। उसकी वात का वे कुछ भी उत्तर न दे मके।

कमल ने पहले तो समझा कि उनके सम्पूर्ण स्वस्थ होने के पहले ही वह चली गयी थी और अबतक कोई खवर-सुध नही ली, इसी से उनका यह अभिमान है। फिर उसने उनकी मोटी उँगलियो मे अपनी चम्पा की कली-सी उँगलियाँ उलझाते हुए कान के पास मुँह ले जाकर चुपके से कहा—"मेरी गलती हुई है, मैं माफी माँगती हूँ।" मगर इसका भी जब कोई जवाब नही मिला। तब उसे सचमुच ही बडा आश्चर्य हुआ और साथ ही डर भी लगा।

वेला जाने के लिए कदम वढा चुकी थी, खडे होकर उसने विनय के साथ कहा—"अगर मालूम होता आप आयेगी तो आज मालिनी का निमत्रण मैं हर्गिज स्वीकार न करती, लेकिन अव तो न जाने से उन लोगो को वडी निराशा होगी।"

कमल ने पूछा—"मालिनी कौन?"

नीलिमा ने जवाव दिया—"यहाँ के मॅजिस्ट्रेट साहव की स्त्री,—नाम शायद तुम्हे याद नही रहा।" फिर वेला की तरफ मुखातिव होकर कहा—"सचमुच ही आपका जाना जरूरी है। नही जाने से उनकी गाने की सारी महफिल विलकुल मिट्टी हो जायगी।"

"नही नही, मिट्टी नही होगी, मगर हाँ, रज जरूर होगा। सुना है कि उन्होने और भी दो-चार मज्जनो को आमन्त्रित किया है। अच्छा तो आज तो वही जाती हूँ, फिर और किसी दिन वातचीत होगी। नमस्कार।" कहकर वह जरा कुछ व्यग्रना के साथ वाहर चली गयी।

नीलिमा ने कहा—"अच्छा ही हुआ जो आज उनका वाहर निमन्त्रण था, नही तो सव बाते खुलासा करने मे हिचकिचाहट होती। अच्छा कमल तुम्हे मैं 'आप' कहती थी या 'तुम' कहकर पुकारती थी?"

कमल ने कहा, " 'तुम' कहकर। मगर मैं तो कोई ऐसे निर्वासन मे नही गयी थी जो इस वीच मे ही भूल जाती?"

"नही, सिर्फ जरा खटका हो गया था। और होने की बात भी है। खैर, इसे जाने दो। सात-आठ दिन मे तुम्हे हम लोग ढूँढ रहे थे। हमारा यह सिर्फ खोजना ही नही था, बल्कि मेरी तो यह तुम्हे पाने के लिए मन-ही-मन की तपस्या थी।"

परन्तु तपस्या का शुष्क गाम्भीर्य उसके चेहरेपर न था, इसलिए अकृत्रिम स्नेह के मीठे परिहास की कल्पना करके कमल हँसती हुई वोली—"इस सौभाग्य का कारण? मैं तो सवकी परित्यक्ता हूँ दीदी, शिष्ट-ममाज का तो कोई मुझे चाहता तक नही।"

उसका यह 'दीदी' का सम्बोधन बिलकुल नया था। नीलिमा की आँखे सहसा भर आयीं, पर वह चुप रही।

आशु बाबू से न रहा गया, उसकी तरफ मुँह करके बोले—"शिष्ट-समाज को जरूरत होगी तो इस अनुयोग का जवाब वही देगा; लेकिन मैं जानता हूँ, जीवन मे किसी ने अगर वास्तव मे तुम्हें चाहा है तो नीलिमा ने ही चाहा है। इतना प्रेम तुमने शायद किसी का भी न पाया होगा कमल।"

कमल ने कहा—"सो मैं जानती हूँ।"

नीलिमा चचल पैरो से उठ खडी हुई। कही जाने के लिए नही, बल्कि इसलिए कि इस ढग की आलोचना मे व्यक्तिगत इशारे से वह हमेशा कुछ अस्थिर-सी हो जाया करती है, बहुत से मौकोपर प्रिय जनो को इससे गलतफहमी हुई है, फिर भी ऐसा ही उसका स्वभाव है। बात को झटपट दबाकर उसने कहा—"कमल, तुम्हे आज दो खबरे सुनाती हैं।"

कमल उसके मन का भाव समझ गयी, हँस कर बोली—"अच्छी बात है, सुनाइए।"

नीलिमा ने आशु बाबू की तरफ इशारा करके कहा—"ये शरम के मारे तुम से मुँह छिपाये हुए हैं, इससे मैंने ही भार लिया है सुनाने का। मनोरमा के साथ शिवनाथ का ब्याह होना स्थिर हो गया है, पिता और भावी श्वसुर की अनुमति और आशीर्वाद पाने के लिये दोनो ने पत्र दिये है।"

सुनते ही कमल का चेहरा फक पड गया, पर उसी क्षण अपने को सँभालते हुए उसने कहा—"इसमे इनके लिए लज्जा की क्या बात है?"

नीलिमा ने कहा—"इनकी लडकी है इसलिए। और चिट्ठी पाने के बाद से इन कई दिनों मे इनके मुँह से सिर्फ एक ही बात बार-बार निकली है कि आगरे मे इतने आदमी मर गये, भगवान् ने मुझपर दया क्यो नही की? अपनी जान मे किसी दिन कोई अनुचित काम नही किया, इसीसे इनका अनन्य विश्वास था कि ईश्वर मुझपर भी सदय हैं। और यह अभिमान की व्यथा ही मानो इनकी सारी वेदनाओ से बढ गयी है। मेरे सिवा किसी से कुछ कह नही सके हैं, रात-दिन मन-ही-मन सिर्फ तुम्ही को पुकार रहे हैं। शायद, इनकी धारणा है कि सिर्फ तुम ही इससे परित्राण का रास्ता बता सकती हो।"

कमल ने झुककर देखा कि आशु बाबू की मिची ऑखो के कोनो से ऑसू ढलक रहे हैं, हाथ से उन ऑसुओ को चुपचाप पोछकर वह खुद भी स्तब्ध हो रही।

बहुत देर बाद बोली—"एक खबर तो यह हुई और दूसरी?"

नीलिमा ने कुछ परिहास के ढगपर बात कहनी चाही, पर ठीक से कहते नही बना, बोली—"मामला जरा अचिन्तनीय जरूर है, पर ऐसा कुछ भयकर नहीं। हमारे मुकर्जी महाशय के स्वास्थ्य के विषय में सब कोई बहुत चिन्तित थे, सो वे स्वस्थ हो गये हैं और उसके बाद उनके भाई और भाभी ने मिलकर उनकी इच्छा के सर्वथा विरुद्ध जबरन् उनका ब्याह कर दिया है। और बडी शर्म के साथ उन्होंने यह सवाद आशु बाबू को अपने पत्र मे लिखा है, बस।" इतना कहकर अबकी बार वह खुद ही हँसने लगी।

उसकी इस हँसी मे न तो सुख ही था और न कौतुक ही। कमल उसके मुँह की तरफ देखकर बोली, "दोनों ही ब्याह की खबरे हैं। एक हो गया है, और एकका होना तय हो गया है—लेकिन मेरी पुकार क्यो हुई? इनमे से किसी को भी तो मैं रोक नही सकती?"

नीलिमा ने कहा—"पर, रुकवाने की कल्पना करके ही शायद ये तुम्हे ढूँढ रहे थे। लेकिन् मैंने तुम्हे नही ढूँढा बहन, मैं तो काय-मन से भगवान् से यही चाह रही थी कि भेट होनेपर तुम्हारी प्रसन्न दृष्टि प्राप्त कर सकूँ। इस देश मे स्त्री के रूप मे जन्म लेकर भाग्य को दोष देने चलूँ तो उसका किनारा न खोज पाऊँगी, अपनी बुद्धि के दोष से मायका और ससुराल दोनो ही खो दिये हैं,—उसपर ऊपरी नुकसान जो हुआ है उसका विवरण नही दे सकूँगी।—अब बहनोई का आश्रय भी जाता रहा।" फिर आशु बाबू की तरफ इशारा करके कहा—"इनके तो दया-दाक्षिण्य की हद ही नही, जितने दिन ये यहाँ हैं, किसी तरह दिन कट ही जायँगे। मगर उसके बाद मुझे अन्धकार के सिवा अपनी ऑखो के आगे और कुछ नही सूझ रहा है। सोचा है, अबकी बार तुम्ही से जगह देने को कहूँगी, और न मिली तो मर जाऊँगी। अब पुरुषो से कृपाभिक्षा मॉगती हुई नदी के कूडे की तरह घाट-घाट टकराती हुई आयु के अन्ततक प्रतीक्षा न कर सकूँगी।" कहते-कहते उसका स्वर भारी हो आया, पर ऑखो का पानी उसने किसी तरह जबरदस्ती दबा लिया।

कमल उसके मुँह की तरफ देखकर सिर्फ जरा हँस दी।

"हँसी क्यो?"

"इसलिए कि हँसना जवाब देने की अपेक्षा सहज है।"

नीलिमा ने कहा, "सो जानती हूँ, पर आजकल बीच-बीच मे न जाने कहाँ अदृश्य हो जाया करती हो? डर तो इस बात का है।"

कमल ने कहा—"होती रहूँ अदृश्य, लेकिन जरूरत पडनेपर मुझे ढूँढने नहीं जाना पडेगा दीदी, मैं ही आपको देश-भर मे ढूँढने निकल पड़ूँगी। इस विषय मे आप निश्चिन्त रहे।"

आशु वाबू ने कहा—"अब इसी तरह मुझे भी अभय दो कमल, मैं भी जिससे इनकी तरह निश्चिन्त हो सकूँ।"

"आदेश दीजिए, मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ?"

"तुम्हे और कुछ नही करना होगा कमल, जो करना होगा मैं खुद ही करूँगा। मुझे सिर्फ इतना उपदेश दो कि पिता के कर्तव्य के खिलाफ मैं कोई अपराध न कर बैठूँ। इतना ही नही कि इस व्याह में सिर्फ राय ही नही दे सकता, बल्कि मैं उसे होने भी नही दे सकता।"

कमल ने कहा—"राय आपकी है, सो आप नही भी दे। पर व्याह नहीं होने देगे, सो कैसे? लडकी तो आपकी बडी हो चुकी है।"

आशु बाबू अपनी उत्तेजना को दबा न सके, कारण, यह बात उनके मन मे भी दिन-रात चक्कर काटती रही है कि अस्वीकार करने का कोई उपाय नही। बोले—"सो मैं जानता हूँ। लेकिन लडकी को भी मालूम होना चाहिए कि बाप से बडा नही हुआ जा सकता। सिर्फ मतामत ही मेरी अपनी चीज नही कमल, सम्पत्ति भी मेरी अपनी है। आशु वैद्य की कमजोरी के परिचय का ही लोगो को अभ्यास हो गया है, पर उसका एक दूसरा पहलू भी है, उसे लोग भूल गये हैं।"

कमल ने उनके मुँह की तरफ देखकर स्निग्ध कण्ठ से कहा—"आपके उस पहलू को लोग भूले ही रह तो अच्छा, आशु बाबू। लेकिन, अगर ऐसा न हो, तो क्या उसका परिचय सबसे पहले अपनी लडकी को ही देना होगा?"

"हाँ, अबाध्य लडकी को।" वे क्षण-भर चुप रहकर बोले—"वह मेरी मातृहीन एकमात्र सन्तान है, किस तरह मैंने उसे आदमी बनाया है, इसे वे ही जानते हैं जिन्होने पितृ-हृदय की सृष्टि की है। इसकी मार्मिक व्यथा कितनी बडी है, उसे अगर मुँह से व्यक्त किया जाय तो उसकी विकृति सिर्फ मेरा ही नही, बल्कि सबके पिता के जो पिता हैं उनतक का उपहास करने लगेगी। इसके सिवा इसे तुम समझ भी कैसे सकती हो! लेकिन पिता के स्नेह ही नही है, कमल, उसका कर्तव्य भी तो है? शिवनाथ को मैं पहचान गया हूँ। उसके सत्यानाशी ग्रास से लडकी को बचाने का इसके सिवा और कोई रास्ता ही मुझे नजर नही आता। कल उन लोगो को चिट्ठी मे लिख दूँगा कि इसके बाद मणि मुझ से एक कौडी की भी आशा न रक्खे।"

"पर उस चिट्ठीपर अगर वे विश्वास न करे? अगर सोच ले कि यह गुस्सा ज्यादा दिन न रहेगा,—एक दिन आप अपनी गलती को खुद ही सुधार लेगे,—तब?"

"तब वे उसका फल भोगेगे। लिखने की जिम्मेदारी मेरी है, विश्वास करने का दायित्व उनपर है।"

"यही क्या आपने वास्तव मे तय किया है?"

"हाँ।"

कमल चुप बैठी रही और प्रतीक्षा मे सिर ऊपर उठाए आशु बाबू खुद भी कुछ देरतक चुप मन-ही-मन व्याकुल हो उठे। बोले—"चुप हो रही कमल, जवाब नही दिया?"

"कहाँ, आपने तो कोई प्रश्न नही किया? ससार मे यह व्यवस्था तो प्राचीन काल से ही चली आ रही है कि एक के साथ जब दूसरे के मत का मेल नही खाता, तो जो शक्तिशाली होता है, वह कमजोर को दण्ड देता है। इसमे कहने की क्या बात है?"

आशु बाबू के क्षोभ की सीमा न रही। बोले "यह तुम्हारी कैसी बात है कमल? सन्तान के साथ पिता का शक्ति-परीक्षा का सम्बन्ध तो है नही, जो उसके कमजोर होने के कारण ही मैं उसे दण्ड देना चाहता हूँ? कठोर होना कितना कठिन है, सो सिर्फ पिता ही जानता है, फिर भी मैंने जो इतना बडा कठोर सकल्प

किया है वह सिर्फ इसलिए कि उसे गलती से वचा लूँ। सचमुच ही क्या तुम इसे समझ नही सकी हो?"

कमल ने सिर हिलाते हुए कहा—"समझ तो सकी हूँ, पर अगर आपकी बात न मानकर वह भूल ही कर वैठे, तो उसका दु ख भी तो वही पायेगी। अगर उस दु ख को दूर न कर सके तो इसलिए क्या आप गुस्से मे आकर उसके दु ख के वोझ को और भी हजार-गुना बढा देना चाहेगे?"

फिर जरा ठहर कर कहा—"आप उसके सब आत्मीयो से बढकर परमात्मीय हैं। जिस आदमी को आपने वहुत ही वुरा समझ लिया है, क्या उसी के हाथ अपनी लडकी को हमेशा के लिए नि.स्व निरुपाय करके विसर्जित कर देगे?— किसी दिन लौटने का कोई रास्ता ही किसी तरफ से खुला न रहने देगे?"

आशु वावू विह्वल दृष्टि से सिर्फ देखते रह गये, एक शव्द भी उनके मुँह से न निकला—सिर्फ देखते-देखते उनकी दोनो आँखो से आँसुओ की बडी-वडी बूँदे ढुलक पडीं।

कुछ देर इसी तरह वीत जानेपर उन्होने अपनी आस्तीन से आँखे पोछी और रुके हुए कण्ठ को साफ करके धीरे-धीरे सिर हिलाकर कहा, "लौटने का रास्ता अभी ही है, बाद मे नही। पति को त्यागकर जो लौटना है, जगदीश्वर करे कि वह मुझे अपनी आँखो से न देखना पडे।"

कमल ने कहा—"यह अनुचित है वल्कि, मैं तो यह कामना करती हूँ कि भूल अगर उसे कभी अपनी आँखो से दिखाई दे जाय, तो उस दिन उसके सशोधन का मार्ग किसी भी तरफ से वन्द न रहे। इसी तरह तो मनुष्य अपने को सुधारते -सुधारते आज मनुष्य हो सका है। भूल से तो कोई डर नही आशु वावू, जवतक कि दूसरी तरफ का मार्ग खुला है। वह मार्ग आँखो के सामने वन्द दिखाई देता है तभी तो आज आपकी आशंका की सीमा नही है।"

मनोरमा उनकी कन्या न होकर अगर और कोई होती तो यह सीधी-सी वात सहज ही में उनकी समझ मे आ जाती; परन्तु एकमात्र सन्तान के भयकर भविष्य की निस्सन्दिग्ध दुर्गति की कल्पना ने कमल के सम्पूर्ण आवेदन को विफल कर दिया।

उन्होने अनुनय के स्वर मे कहा—"नही कमल, इस व्याह को रोकने के सिवा और कोई रास्ता मुझे नही सुझाई देता। इसका कोई भी उपाय क्या तुम नही वता सकती?"

"मैं?" उनका इशारा इतनी देर वाद कमल की समझ मे आया, और उसी को स्पष्ट करने मे उसका स्निग्ध कण्ठ क्षण-भर केलिए गम्भीर हो उठा, पर वह सिर्फ एक ही क्षण के लिए। नीलिमा की तरफ नजर जाते ही उसने अपने को सँभालते हुए कहा—"नही, इस विषय मे कोई भी सहायता मैं आपकी न कर सकूँगी। नही जानती कि उत्तराधिकार से वंचित करने का डर दिखाने से वह डरेगी या नही। पर अगर डर जाय तो मैं कहूँगी कि आपने खिला-पिलाकर और स्कूल-कालेज की किताबे रटाकर लडकी को वडा भले ही किया हो पर उसे मनुष्य नही वनाया। उस अभाव को दूर करने का सुयोग दैव ने आज ला ही दिया हो, तो मैं उसके बीच मे अन्तराय वनने क्यो जाऊँ?"

वात आशु वावू को अच्छी नही लगी। उन्होने कहा—"तो क्या तुम यह कहना चाहती हो कि रोकना मेरा कर्तव्य नही?"

कमल ने कहा—"कम से कम डर दिखाकर रोकना तो नही। फिर भी मैं इतना कह सकती हूँ कि अगर मैं आपकी लडकी होती और शायद वाधा पाती, तो इस जीवन मे फिर कभी आपपर श्रद्धा न कर सकती। मेरे पिता मुझे इसी तरह से गढ गये हैं।"

आशु वावू ने कहा—"इसमें कोई असम्भव वात नहीं कमल, तुम्हारे कल्याण का मार्ग उन्होने इधर ही देखा होगा। पर मुझे नही दीखता। फ़िर भी, मैं पिता हूँ कमल, मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि शिवनाथ से वह यथार्थ प्रेम नही कर सकती, यह उसका मोह है। यह मिथ्या है और जिस दिन इस क्षणस्थायी नशे की खुमारी दूर होगी, उस दिन मणि के दु ख का अन्त नही रहेगा। मगर तव उसे वचाओगी कैसे?"

कमल ने कहा—"नशे मे ही चिन्ता की वात है, पर जब नशा दूर हो जायगा और वह स्वस्थ हो जायँगी तव तो फिर डर की कोई वात रह नही जायगी। तब तो वह स्वस्थता ही उनकी रक्षा करेगी।"

आशु वावू ने अस्वीकार करते हुए कहा—"यह सब बातचीत का दाँव-पेच है कमल, युक्ति नही। सत्य इससे वहुत दूर है। भूल का दण्ड उसे बडे रूप मे पाना ही होगा, वकालत के जोर से उससे उसे छुटकारा नही मिल सकता।"

कमल ने कहा—"छुटकारे की वात मैंने नही कही आशु वावू! मै जानती हूँ कि भूल का दण्ड पाना ही

पडता है। पर उस दण्ड पाने मे दु ख है, लज्जा नही, क्योंकि मणि ने किसी को ठगना नही चाहा। यही भरोसा आपको मैंने दिलाना चाहा था कि भूल मालूम होनेपर वह अगर जहाँ की तहाँ लौट आना चाहे तो उसे सिर नीचा करके न आना पडे।"

"फिर भी तो भरोसा नही हो रहा है कमल। मैं जानता हूँ, उसे भूल मालूम पडे बिना न रहेगी, लेकिन उसके बाद भी तो उसे लम्बे समय तक जिन्दा रहना है, तब जीयेगी क्या लेकर? किस आधार पर दिन काटेगी?"

"ऐसी बात न कहिए। मनुष्य का दु ख ही यदि दु ख पाने का अन्तिम परिणाम होता तो उसका कोई मूल्य नही था। एक तरफ का नुकसान दूसरी तरफ के भारी लाभ से पूरा हो जाता है; नही तो, मैं ही भला आज कैसे जी सकती? बल्कि आप तो यह आशीर्वाद दीजिए कि किसी दिन भूल अगर मालूम पडे तो वह अपने को मुक्त कर ले सके, तब उसे कोई लोभ, कोई भय राहुग्रस्त न कर रक्खे।"

आशु बाबू चुप हो रहे। जवाब देने मे उन्हे हिचकिचाहट-सी हुई, पर स्वीकार करने मे वे भी ज्यादा हिचकिचाये। बहुत देर बाद बोले—"पिता की दृष्टि से मैं मणि का भविष्य-जीवन अन्धकारमय देख रहा हूँ। इस पर भी तुम क्या यही कहोगी कि वास्तव मे मुझे रुकावट न डालना चाहिए, और चुपचाप मान लेना ही मेरा कर्तव्य है?"

"मैं माँ होती तो अवश्य मान लेती। उसके भविष्य की आशका से शायद आप जैसी ही व्यथा पाती, फिर भी इस तरीके से रुकावट डालने को तैयार न होती। और यह भी मुझे स्वीकार करना होगा कि मैं तब मन-ही-मन कहती कि इस जीवन मे जिस रहस्य के सामने आकर आज वह खडी हुई है, वह मेरी समस्त दुश्चिन्ताओ से बढकर है।"

आशु बाबू फिर कुछ देर मौन रहे, और बोले—"फिर भी मैं न समझ सका कमल। शिवनाथ का चरित्र और उसकी सभी दुष्कृतियो का हाल मणि जानती है,—एक दिन इस घर मे आने देने मे भी उसे आपत्ति थी, मगर आज जिस सम्मोहन से उसका हिताहित-ज्ञान,—उसकी सारी की सारी नैतिक बुद्धि ढँक गयी है वह यथार्थ प्रेम नही है, वह जादू है, वह मोह है,—यह असत्य, चाहे जैसे भी हो, दूर करना ही पिता का कर्तव्य है।"

अबकी बार कमल एकदम स्तब्ध हो रही। इतनी देर मे जाकर दोनो की चिन्ता-धारा के मौलिक भेदपर उसकी दृष्टि पडी। इन दोनो चिन्ता-धाराओं की जाति ही अलग-अलग है, और चूँकि यह भेद तक की चीज नही है, इस कारण अब तर्क की इतनी आलोचना और बातचीत बिलकुल विफल सिद्ध हुई। कमल इस बात को समझ गयी कि जिस तरफ उनकी दृष्टि लगी हुई है, उधर हजारो वर्ष देखने रहनेपर भी इस सत्य का साक्षात्कार नही हो सकता, और समझ गयी कि इसमे वही बुद्धि की जाँच, वही हिताहित-बोध, वही भले-बुरे और सुख-दु ख का अतिसतर्क हिसाब, वही मजबूत नीव डालने के लिए इजीनियर बुलाना है,—इसके सिवा और कुछ नही। गणित फैलाकर ये लोग प्रेम का फल या नतीजा निकालना चाहते हैं। अपने जीवन मे आशु बाबू ने अपनी पत्नी को अत्यन्त एकान्त भाव से प्रेम किया था। उनकी स्त्री को मरे जमाना बीत गया, फिर भी आजतक शायद उस प्रेम की जड उनके हृदय मे शिथिल नही हुई। ससार मे इसकी तुलना बहुत कम मिलती है। फिर भी यह सब-कुछ सत्य होते हुए भी, यह मानना पडता है कि ये हैं दोनों भिन्न जातीय।

इन दोनो धाराओं की भलाई-बुराई का प्रश्न उठाकर बहस करना निष्फल है। अपने दाम्पत्य जीवन मे एक दिन के लिए भी पत्नी के साथ आशु बाबू का मत-भेद नही हुआ—हृदय मे मालिन्य तक ने स्पर्श नही किया। निर्विघ्न शान्ति और अविच्छिन्न सुख-चैन के साथ जिनका दीर्घ विवाहित जीवन बीता है उनके गौरव और माहात्म्य को भला कौन गर्व कर सकता है? ससार ने मुग्धचित्त से उनका स्तव-गान किया है, उनकी दुर्लभ कहानियाँ लिखकर कवि अमर हो गये हैं और अपने जीवन मे इसी को प्राप्त करने की व्याकुलतापूर्ण वासना से मनुष्य के लोभ की सीमा नही रही है। जिसकी नि सन्दिग्ध महिमा स्वत.सिद्ध प्रतिष्ठा से चिरकाल अविचलित है, उसे कमल तुच्छ करेगी किस बिरतेपर? किन्तु मनोरमा? जिस दु शील अभागे के हाथ अपने को वह विसर्जन करने को तैयार है, उसका सब कुछ जानते हुए भी सम्पूर्ण जानने के बाहर कदम बढाते हुए उसे डर नही मालूम होता। दु खमय परिणाम की चिन्ता से पिता शंकित हैं, इष्टमित्र दु.खित हैं,—सिर्फ वह अकेली नि शक है। आशु बाबू जानते हैं कि इस

विवाह में सम्मान नही है, यह शुभ भी नही है—वचनापर इसकी नीव है। यह स्वल्पकाल-व्यापी मोह जिस दिन दूर हो जायगा, उस दिन आजीवन लज्जा और दु:ख रखने को जगह न रहेगी। हो सकता है कि आशु बाबू की यह चिन्ता सत्य हो, किन्तु यह बात आशु बाबू को वह कैसे समझावे कि सब कुछ खोने के बाद भी इस प्रवंचित लड़की के पास जो वस्तु बाकी बचेगी, वह पिता के शान्ति सुखमय दीर्घ-स्थायी दाम्पत्य जीवन की अपेक्षा बडी है। परिणाम ही जिसकी दृष्टि मे मूल्य-निर्णय का एकमात्र मान-दण्ड है, उसके साथ तर्क कैसे चल सकता है? कमल के मन में एक बार आया कि कहे, आशु बाबू, मोह भी मिथ्या नही है। हो सकता है कि कन्या के चित्ताकाश मे क्षण-भर के लिए भी चमक जानेवाली बिजली की रेखा-दीप्ति की तुलना मे आपके हृदय मे प्रतिष्ठित अनिर्वापित दीपशिखा को भी लाँघ जाय। पर उससे यह कहते नही बना और वह चुप बैठी रही।

पिता के कर्तव्य के सम्बन्ध मे अपना अन्यन्त स्पष्ट अभिमत प्रकट करके आशु बाबू उत्तर की प्रतीक्षा मे अधीर हो रहे थे, परन्तु कमल को वैसे ही निरुत्तर और सिर झुकाये बैठे देख उनकी समझ मे आ गया कि वह वाद-विवाद नही करना चाहती। इसलिए नही कि उसके पास शब्द नही, बल्कि इसलिए कि अब इसकी जरूरत नही। पर इस तरह एक के चुप हो जाने से तो दूसरे के मन मे शान्ति नही आती। वास्तव मे इस प्रौढ आदमी के गहरे अन्त करण मे सत्य के प्रति एक वास्तविक निष्ठा है। एकमात्र सन्तान के भावी बुरे दिनो की आशका से लज्जित और उद्भ्रान्त-चित्त वे मुँह से चाहे कुछ भी क्यो न कहें, पर वास्तव में बलप्रयोग को वे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। कमल को उन्होने जितना देखा है, उतना ही उनका आश्चर्य और श्रद्धा बढ़ती गई है। लोकदृष्टि में वह हेय है, निन्दित है; शिष्ट-समाज द्वारा परित्यक्ता है, सभाओं मे शरीक होने का उसे निमन्त्रण नहीं मिलता; फिर भी इस लड़की की नीरव अवज्ञा का उन्हे सबसे ज्यादा डर है, उसी के सामने उनका संकोच नही मिटता।

आशु बाबू ने कहा—"कमल, तुम्हारे पिता यूरोपियन थे, फिर भी तुम कभी उस देश में नही गयी हो। मगर मैंने उन लोगो मे बहुत दिन विताये हैं, उनका बहुत कुछ देखा है। बहुत-से प्रेम के विवाहोत्सवो मे भी जब कभी निमन्त्रण मिला है, आनन्द के साथ शामिल हुआ हूँ, और जब वह सम्बन्ध अनादर और अनाचार से टूटा है तब भी मैंने ऑसू पोछे हैं। वहाँ जाती तो तुम भी ऐसा ही देखती।"

कमल ने उनकी तरफ मुँह उठाकर कहा—"बगैर गये भी देखा करती हूँ आशु बाबू! सम्बन्ध-विच्छेद की नजीरें उस देश में प्रतिदिन पुजीभूत हुआ करती हैं—और होने की बात भी है, मगर जैसे यह सच है, वैसे ही उन नजीरो के द्वारा वहाँ के समाज के स्वरूप को समझने की कोशिश भी भूल है। विचार की यह पद्धति ही नही आशु बाबू।"

आशु बाबू अपनी गलती को समझकर जरा अप्रतिभ हुए। इस तरह इसके साथ तर्क नही चल सकता। बोले—"उसे जाने दो, पर हमारे अपने देश की तरफ भी जरा गौर से ऑख पसारकर एक बार देखो। जो प्रथा चिरकाल से चली आ रही है, उसके सृष्टिकर्ताओ की दूरदर्शिता को भी जरा देखो। यहाँ वर-कन्यापर दायित्व नही होता, दायित्व होता है माँ-बाप और गुरुजनोंपर। इसी कारण विचार-बुद्धि यहाँ आकुल-असंयम से भ्रष्ट नही हो जाती, बडे-बूढ़ों की एक शान्त और अविचलित मंगल-भावना जीवन-भर सदा उनके साथ बनी रहती हैं।"

कमल ने कहा—"मगर मणि तो मगल का हिसाब लगाने नही बैठी आशु बाबु, उसने चाहा है प्रेम, एक का हिसाब बुजुर्गों की सुयुक्तियो से मिल जाता है, पर दूसरे का हिसाब हृदय के देवता के सिवा और कोई नही जानता। लेकिन मैं बहस करके व्यर्थ में आपको परेशान कर रही हूँ।—जिसके घर में पश्चिम की खिडकी के सिवा और सब खिडकियाँ बन्द हैं, वह प्रभात मे सूर्य का आविर्भाव नही देख पाता, देख पाता है सिर्फ सन्ध्या का अवसान। परन्तु सन्ध्या के उस चेहरे और रंग का सादृश्य मिलाकर अगर वह प्रभातपर तर्क करता रहे तो सिर्फ बात ही बढेगी, मीमांसा नही हो सकती। मुझे लेकिन रात हुई जा रही है, अब जाती हूँ।"

नीलिमा अबतक चुप थी। इतनी देरतक इतनी बाते हुई पर किसी भी बात मे उसने योग नहीं दिया। अब बोली—"मैं भी सब बातें तुम्हारी साफ-साफ नही समझ पायी कमल, पर इतना महसूस कर रही

हूँ कि घर की और खिडकियाँ भी खोल देना चाहिए। पर यह तो आँखो का दोष नही—दोष है वन्द खिडकियो का। नही तो, जिधर खुला है उधर मृत्युकाल पर्यन्त खडे-खडे देखते रहनेपर भी, जो दिखाई दे रहा है, उसको छोडकर कभी कोई चीज दिखाई नही देगी।"

कमल उठके खडी हो गयी तो आशु वावू व्याकुल कण्ठ से कह उठे—"जाओ मत कमल, और जरा बैठो। मुँह मे अन्न नही जाता, आँखो मे नीद नही,—लगातार छाती के भीतर ऐसा कुछ हो रहा है कि तुम्हे मैं समझा नही सकता। तो भी, और एक वार कोशिश कर देखूँ, तुम्हारी वातें अगर सचमुच ही समझ सकूँ। तुम क्या यथार्थ ही कह रही हो कि मैं चुप रहूँ, और यह भद्दी घटना हो जाने दी जाय?"

कमल ने कहा—"मनोरमा यदि वास्तव मे उनसे प्रेम करती हैं तो मैं उसे भद्दा नही कह सकती।"

"मगर यही तो मैं तुम्हे सौ-सौ वार समझाना चाहता हूँ कमल, कि यह मोह है, यह प्रेम नही,—यह गलती उसकी दूर होगी ही होगी।"

कमल ने कहा—"सिर्फ गलती ही—सिर्फ मोह ही दूर होता है सो नही आशु वावू, सचमुच प्रेम भी ससार में नष्ट हो जाया करता है। इसी मे अधिकाश प्रेम के विवाह क्षणस्थायी हो जाते हैं। इसीलिए उस देश की इतनी वदनामी है और इतने विवाह-विच्छेद के मामले वहाँ चला करते हैं।"

सुनकर आशु वावू को सहसा मानो एक प्रकाश दिखाई दिया। उच्छ्वसित आग्रह के साथ वे कह उठे—"यही कहो, यही कहो। यह तो मैं अपनी आँखों से देख आया हूँ।"

नीलिमा अवाक् होकर उनकी तरफ देखती रही।

आशु वावू ने कहा—"मगर हमारे देश की विवाह-प्रथा? उसे तुम क्या कहोगी? यह तो सारी जिन्दगी नही टूटता?"

कमल ने कहा—"टूटने की वजह भी नही आशु वावू। वह तो अनभिज्ञ यौवन का पागलपन नही, वहुदर्शी वड़े-वूढो का हिसाव से किया गया कारोवार है। स्वप्न का मूलधन नही,—आँखो-देखी पक्के आदमी की जाँच-पडताल की हुई खालिस चीज है। गणित करने में कोई साघातिक गलती जवतक न हो गयी हो तवतक उसमे दरार नही पडती। क्या इस देश मे और क्या उस देश मे, सभी जगह वह वडी मजवूत चीज होती है,—जिन्दगी-भर वज्र की तरह टिकी रहती है।"

आशु वावू एक उसाँस लेकर स्थिर हो रहे। कोई उत्तर उनकी जवानपर न आया।

नीलिमा चुपचाप देख रही थी, अव उसने धीरे से पूछा—"कमल, तुम्हारी वात ही अगर सच हो, सचमुच का प्रेम भी अगर भूल के प्रेम के समान ही टूट जाता हो तो मनुष्य खडा काहेपर होगा? उसके पास आशा करने के लिए फिर वाकी क्या रह जायगा?"

कमल ने कहा, "जिस स्वर्गवास की मियाद निवट चुकी है, रह जायगी उसी की एकान्त मधुर स्मृति और रह जायगा उसी की वगल में व्यथा का समुद्र। आशु वावू के मुख और शान्ति की सीमा नहीं थी, लेकिन उससे अधिक उनकी और पूँजी नही है। भाग्य ने जिन्हे इतनी-सी पूँजी देकर विदा कर दिया है, उनके लिए हम सिवा क्षमा करने के और कर ही क्या सकती हैं दीदी?"

फिर जरा ठहरकर वोली—"लोग वाहर से सहसा ऐसा समझ लेते हैं कि गया, अब सव गया और इष्ट-मित्रो के डर का ठिकाना नही रहता। फिर तो वे दोनों हाथो से उसका रास्ता रोकना चाहते हैं; और निश्चित समझ लेते हैं कि उनके हिसाव के वाहर सिवा शून्य के और कुछ है ही नही। पर शून्य नही होता दीदी। सव चला जानेपर भी जो वच जाता है, वह मणि-माणिक्य की तरह मुट्ठी मे ही आ जाता है। मगर हाँ, दर्शकों का दल जव देखता है कि चीजों की भरमार से रास्ता भर के जुलूस तो निकाला नही जा सकता तव वे उसे धिक्कारते हुए अपने-अपने घर लौट जाते हैं और कहते हैं, यही तो सर्वनाश है।"

नीलिमा ने कहा—"कहने का कारण है कमल, असल मे मणि-माणिक्य सवके पास नही होता, और न वह सर्व साधारण के लिए है। पाँव से लेकर चोटीतक सोने-चाँदी के गहने मिले विना जिनका मन ही नही भरता, वे तुम्हारे उस मुट्ठीभर मणि-माणिक्य की कदर नही समझेगी। जिन्हे वहुत चाहिए वे गाँठपर वहुत-सी गाँठे लगाकर निश्चिन्त हो सकते हैं। उनके लिए वहुत-सा वोझ, वहुत-सा आयोजन, वहुत-सी जगह घिरनी चाहिए तव कहीं वे चीज की कीमत का अन्दाज लगा सकते हैं। पश्चिम का दरवाजा खोलकर सूर्योदय दिखाने की कोशिश व्यर्थ होगी कमल, वन्द करो यह चर्चा।"

आशु वावू के मुँह से फिर एक दीर्घ निःश्वास निकल पडी। धीरे-धीरे वोले, "व्यर्थ क्यो होगी

नीलिमा, व्यर्थ नही होगी। अच्छी बात है,—न हो तो मैं चुप ही रहूँगा।"

नीलिमा ने कहा—"नही, सो आप मत कीजिएगा। सत्य क्या सिर्फ कमल के विचारो मे ही है, और पिता की शुभ-बुद्धि मे नही है? ऐसा हो ही नही सकता। कमल के लिए जो सत्य है, मणि के लिए वह सत्य नही भी हो सकता है। स्त्री के दुश्चरित्र पति को त्याग देने में चाहे जितना भी सत्य हो, यह मैं जोर के साथ कह सकती हूँ कि बेला के पति-परित्याग में रत्ती-भर भी सत्य नही। सत्य न तो पति के त्याग मे है, और न पति की दासी-वृत्ति करने मे, ये दोनो ही सिर्फ दाये-बाये के रास्ते हैं, गन्तव्य स्थान तो अपने आप ढूँढ लेना पडता है, तर्क करके उसका पता नही लगाया जा सकता।"

कमल चुपचाप उसकी ओर देखती रही।

नीलिमा कहने लगी—"सूर्य का उदय होना ही उसका सब कुछ नही है, उसका अस्त होना भी उतना ही महत्व रखता है। रूप और यौवन का आकर्षण ही अगर प्रेम का सर्वस्व होता तो लडकी के सम्बन्ध मे बाप की दुश्चिन्ता की कोई जरूरत ही न थी, मगर ऐसा नही है। मैने किताबे नही पढी, ज्ञान-बुद्धि भी कम है, तर्क से मैं तुम्हे समझा नही सकती, लेकिन मुझे मालूम होता है कि असल चीज का पता तुम्हे अभी तक मिला ही नही। श्रद्धा, भक्ति, स्नेह, विश्वास,—इन्हे कडाई करके नही पाया जा सकता; बड़े दुःख सें और बहुत देर मे ये दिखाई देते हैं। मगर जब दिखाई देते हैं कमल, तब रूप यौवन का प्रश्न जाने कहाँ मुँह छिपाकर दुबक जाता है, कुछ पता ही नही पडता।"

तीक्ष्ण-बुद्धि कमल एक क्षण मे यह समझ गयी कि उपस्थित आलोचना मे उसका यह कथन अग्राह्य है। यह न तो प्रतिवाद ही है और न समर्थन ही,ये सब नीलिमा की अपनी बाते हैं। उसने देखा कि उज्ज्वल दीपालोक मे नीलिमा के बिखरे हुए घने काले बालो की श्यामल छाया ने उसके चेहरेपर एक अकल्पित सुन्दरता ला दी है और उसकी प्रशान्त आँखो की सजल दृष्टि सकरुण स्निग्धता से ऊपरतक लबालब भर उठी है। कमल ने मन-ही-मन कहा, यह पूछना व्यर्थ है कि यह नवीन सूर्योदय है या थके हुए सूर्य का अस्त-गमन, रक्तिम आभा से आकाश की जो दिशा आज रंगीन हो उठी है,—पूर्व-पश्चिम दिशा का निर्णय किये बिना ही उसके लिए मेरा श्रद्धा के साथ नमस्कार है।

दो-तीन मिनट बाद आशु बाबू सहसा चौंककर बोले—"कमल, तुम्हारी बाते मैं फिर एक बार अच्छी तरह विचार कर देखूँगा, पर हमारी बातो की भी तुम इस तरह अवज्ञा मत करना। अनेकानेक मानवो ने इसे सत्य मानकर स्वीकार किया है, असत्य के द्वारा कभी इतने आदमियो को नही बहकाया जा सकता।"

कमल ने अन्यमनस्क की भाँति जरा हँसकर सिर हिला दिया; लेकिन जवाब दिया उसने नीलिमा को। बोली—"जिस चीज से एक बच्चे को बहकाया जा सकता है, उसी से लाखो बच्चो को भी बहकाया जा सकता है। सख्या का बढ जाना ही बुद्धि बढने का प्रमाण नही, दीदी। एक दिन जिन लोगो ने कहा था, कि नर-नारी के प्रेम का इतिहास ही मानव-सभ्यता का सबसे सत्य इतिहास है, उन्ही ने सबसे बढकर सत्य का पता पाया था, किन्तु जिन लोगो ने यह घोषणा की कि पुत्र के लिए भार्या की आवश्यकता है, वे स्त्रियो का सिर्फ अपमान ही करके शान्त नही हुए, बल्कि अपने बडे होने का रास्ता भी वे चिरकाल के लिए बन्द कर गये। और चूँकि उस असत्यपर ही उन्होने सारी भीत उठायी थी, इसलिए आजतक भी उनकी सन्तान को दु ख का कोई किनारा नही मिला।"

"पर यह बात मुझे क्यो कह रही हो कमल?"

"क्योंकि, आज मुझे आपको ही जताने की सबसे ज्यादा जरूरत है। हमे चाटु-वाक्यो मे नाना अलकार पहनाकर जिन लोगो ने यह प्रचार किया था कि मातृत्व मे नारी की चरम सार्थकता है, उन लोगो ने समस्त नारी-जाति को धोखा दिया था। जीवन मे किसी भी अवस्था मे क्यो न पडना पडे, दीदी, पर इस मिथ्या नीति को हर्गिज न मानना। यही मेरा अन्तिम अनुरोध है। पर अब नही, मैं जाती हूँ।"

आशु बाबू ने थकेस्वर मे कहा "अच्छा जाओ। नीचे तुम्हारे लिए गाडी खडी है, पहुँचायेगी।"

कमल ने व्यथा के साथ कहा,—"आप मुझसे स्नेह करते हैं, पर हम दोनो मे कही भी तो मेल नही।"

नीलिमा ने कहा—"है क्यो नही कमल। पर वह मालिक की फरमाइश के अनुसार काँट-छाँट कर बनाया हुआ मेल नही, विधाता की सृष्टि का मेल है। चेहरा अलग-अलग है, पर खून एक ही है,—आँखो की ओझल नसो मे बहा करता है वह। इसी से तो बाहर का अनैक्य चाहे कितनी गडबडी क्यो न पैदा करे,

भीतर का प्रचण्ड आकर्षण हर्गिज नही छूटता।"

कमल ने पास आकर आशु बाबू के कधे पर हाथ रख कर धीरे-धीरे कहा—"लडकी के बदले आप मेरे ऊपर गुस्सा नही हो सकेगे, मैं कहे देता हूँ।" आशु बाबू कुछ बोले नही, सिर्फ स्तब्ध होकर बैठे रहे।

कमल ने कहा, "अँग्रेजी मे एक शब्द है, 'इमेसिपेशन'। आप तो जानते हैं, प्राचीन काल मे पिता की कठोर अधीनता से सन्तान का मुक्त किया जाना भी उसका एक बडा अर्थ था। उस जमाने के लडके-लडकियो ने मिलकर इस शब्द का आविष्कार नही किया था, आविष्कार किया था जो आप जैसे महान् पिता थे उन्होंने—अपनी बन्धन की रस्सी ढीली करके जिन्होने अपनी कन्याओ को मुक्ति दी थी, उन्होने। आज भी इमेन्सिपेशन के लिए,चाहे कितनी ही स्त्रियाँ मिलकर झगडा क्यो न करती रहे, देनेवाले असल मालिक पुरुष ही हैं, हम स्त्रियाँ नही। जगत्-व्यवस्था के इस सत्य को मैं एक दिन के लिए भी नही भूलती। मेरे पिता अकसर कहा करते थे कि ससार के क्रीत दासो को उनके मालिको ने ही एक दिन स्वाधीनता दी थी, और उस दिन उनकी तरफ से लडे भी थे, वे ही जो उनके मालिको की जाति के थे—दासो ने युद्ध के बलपर या युक्तियो के बलपर स्वाधीनता नही पायी। ऐसा ही होता है। विश्व का नियम ही यह है, शक्तिमान ही शक्ति के बन्धन से दुर्बलो को परित्राण देते हैं। उसी तरह नारियो को भी पुरुष ही मुक्ति दे सकते हैं। दायित्व तो उन्ही का है। मनोरमा को मुक्ति देने का भार आपके हाथ में है। मणि विद्रोह कर सकती है, पर पिता के अभिशाप मे तो सन्तान की मुक्ति नही रहती, उसकी मुक्ति तो उनके आशीर्वाद मे ही निहित है।"

आशु बाबू भी कुछ न बोल सके। इस उच्छृखल प्रकृति की लडकी ने ससार मे असम्मान और अमर्यादा के बीच मे ही जन्म-लाभ किया है, किन्तु जन्म की उस लज्जाजनक दुर्गति को हृदय से सम्पूर्ण विलुप्त करके अपने लोकान्तरित पिता के प्रति उसने जो भक्ति और स्नेह का भाव सचित कर रक्खा है उसकी सीमा नही है।

कमल के पिता को उन्होने देखा नही, और अपने सस्कार और प्रकृति के अनुसार उस आदमीपर श्रद्धा करना भी कठिन है, फिर भी उस व्यक्ति के लिए उनकी आँखो मे पानी भर आया। अपनी लडकी का विच्छेद और विद्धाचरण उनके हृदय मे शूल की तरह चुभा हुआ है, मगर फिर भी, इस पराई लडकी के मुँह की तरफ देखकर मानो उन्हे इस बात का आभास-सा मिला कि सब बन्धन तोडकर भी आदमी को कैसे हमेशा के लिए बाँध के रखा जा सकता है, और वे अपने कन्धेपर का उसका हाथ खीचकर क्षण-भर चुपचाप बैठे रहे।

कमल ने कहा—"अब मैं जाऊँ?"

आशु बाबू ने हाथ छोड दिया, कहा—"जाओ।"

इसमे ज्यादा उनके मुँह से और कुछ निकला ही नही।

२५

जाडो का सूर्य अस्त हो गया है। सन्ध्या की छाया ने घर के भीतर का हिस्सा धुँधला-सा कर दिया है। सिलाई का एक जरूरी काम थोडा-सा बचा है, जिसे कमल दिया-बत्ती के पहले ही पूरा कर देना चाहती है। पास ही,कुरसीपर अजित बैठा है। उसकी भाव-भगी से मालूम होता है कि कोई बात कहते-कहते अचानक रुक गया है और व्याकुल आग्रह के साथ उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है।

मनोरमा और शिवनाथ का मामला सबको मालूम हो चुका है। आज का प्रसग उसी विषय को लेकर शुरू हुआ है। अजित ने शुरू-शुरू मे कहा था कि उसने आगरे मे आते ही सन्देह किया था कि अन्त में जाकर ऐसी ही बात होगी।

पर सन्देह के कारण के सम्बन्ध मे कमल ने कोई उत्सुकता नही दिखाई।

उसके बाद अजित अनर्गल बकते-बकते अन्त मे ऐसी जगह आकर रुका जहाँ दूसरी तरफ से उत्तर पाये बिना नही बढा जा सकता।

कमल अत्यन्त तल्लीनता के साथ सिलाई करने मे ही लगी रही, मानो उसे सिर उठाने की भी फुरसत नही।

दो-तीन निकट सन्नाटे मे बीते। आगे न जाने और कितनी देर लगे, इसलिए अजित को फिर कोशिश करनी पडी, बोला—"आश्चर्य तो यह है कि शिवनाथ का आचरण तुम्हारी निगाह में पकडाई नही दिया।"

कमल ने मुँह नही उठाया, किन्तु सिर हिलाकर कहा—"नही।"

"तुम ऐसी भोली-भाली हो कि तुम्हे कुछ सन्देह नही हुआ, इसपर क्या कोई विश्वास कर सकता है?"

"और कोई कर सकता है या नही, मुझे नही मालूम। पर क्या आप भी नही कर सकते?"

अजित ने कहा—"शायद कर सकता हूँ, लेकिन तुम्हारे मुँह की ओर देखकर—ऐसे ही नही।"

अब कमल ने मुँह ऊपर किया और हँसकर कहा—"तो देखिए, और कहिए, कर सकते हैं या नही?"

अजित की आँखे चमक उठी। बोला—"तुम्हारी बात सच है। उसपर अविश्वास नही किया, उसी का यह नतीजा हुआ।"

"हुआ है सो मैं मानती हूँ, पर यह भी तो खुलासा कर बताइए कि आपने अपने सन्देह का अच्छा नतीजा किस परिमाण मे पाया?" कहकर वह फिर जरा हँसी और काम मे लग गयी।

इसके बाद अजित सबद्ध और असबद्ध बहुत-सी बाते दस-पन्द्रह मिनटतक लगातार कहता रहा। अन्त मे थककर बोला—"कभी हाँ, कभी ना, पहेली बुझाने के सिवा क्या तुम सीधी बात करना जानती ही नही?"

कमल ने सिलाई का काम सीधा करते हुए कहा—"स्त्रियाँ पहेली बुझाना ही पसन्द करती हैं, उनका यह स्वभाव है।"

"तो उस स्वभाव की मैं तारीफ नही कर सकता। स्पष्ट करना भी जरा सीखो, उसके बिना ससार मे काम नही चलता।"

"आप भी पहेली समझना जरा सीखिए, अन्यथा दूसरे पक्ष को भी ऐसी ही असुविधा होती है।" कमल ने हाथ की चीज तह करके टोकनी मे रखते हुए कहा, "स्पष्ट कहने का लोभ जिन्हे बहुत ज्यादा होता है, वे अगर वक्ता हुए तो अखबार मे वक्तृता छपाते हैं, लेखक हुए तो अपने ग्रथ की भूमिका लिखते हैं और अगर नाट्यकार हुए तो खुद ही अपने नाटक के नायक बनकर अभिनय करते हैं।—सोचते हैं; शब्दो से जो व्यक्त नही हो सका उसे हाथ-पैर हिलाकर व्यक्त कर देना चाहिए—पर सिर्फ यही मैं नही जानती कि अगर वे प्रेम करते हैं तो क्या करते हैं? लेकिन जरा बैठिए आप, मैं बत्ती जला लाऊँ।" कहकर वह जल्दी से दूसरे कमरे मे चली गयी।

पाँच-छह मिनट बाद वह लौट आयी और टेबिलपर बत्ती रखकर जमीनपर बैठ गयी।

अजित ने कहा—"वक्ता, लेखक या नाटककार, इनमे से मैं कोई भी नही, लिहाजा, उनकी तरफ से मैं कैफियत नही दे सकता, लेकिन अगर वे प्रम करते हैं तो क्या करते हैं, सो मैं जानता हूँ। वे शैव विवाह का कूट-कौशल नही रचते, बल्कि साफ और जानी हुई राहपर कदम रखकर चलते हैं। वे इस बात का खयाल रखते हैं कि उनके पीछे कही घरवालो को खाने-पहनने की तकलीफ न उठानी पड़े, आश्रय के लिए किसी मालिक-मकान का मुँह न ताकना पडे, असम्मान की चोट—"

कमल बीच ही मे रोककर बोल उठी—"बस-बस, हो गया।" और फिर हँसते हुए कहा—"यानी वे शुरू से आखिरतक इमारत को ऐसे भयंकर रूप से ठोस और मजबूत बना देते हैं कि कब्र के मुरदे के सिवा उसमें जिन्दा आदमी के लिए दम लेने की भीं सन्धि नही रहती। वे साधु पुरुष हैं—"

सहसा दरवाजे के बाहर से अनुरोध आया—"हम लोग भीतर आ सकते हैं?"

हरेन्द्र की आवाज थी। पर 'हम लोग' कौन?

"आइए, आइए।" कहती हुई कमल अभ्यर्थना के लिए दरवाजे के पास जा खड़ी हुई।

हरेन्द्र था और साथ मे एक और युवक। हरेन्द्र ने कहा—"सतीश को हमारे आश्रम मे तुमने सिर्फ एक दिन देखा था, फिर भी आशा है कि भूली न होगी।"

कमल ने मुसकराते हुए जवाब दिया—"नही। फर्क सिर्फ इतना है कि उम दिन कपडे सफेद थे, आज हैं पीले।"

हरेन्द्र ने कहा—"यह तो उच्चतर भूमिपर आरोहण की बाह्य-घोषणा मात्र है और कुछ नही।

काशी धाम से सद्य प्रत्यागत हुए हैं—दो घण्टे से ज्यादा नही हुए। एक तो थके हुए हैं, और दूसरे तुम्हारे प्रति प्रसन्न नही, फिर भी मुझे यहाँ आते देख आवेग का सवरण न कर सके। यह हम ब्रह्मचारी लोगो के मत का औदार्य है और कुछ नही।" कहते हुए उसने भीतर की तरफ झाँका, और कहने लगा, "अरे आप हैं! यहाँ तो और भी एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी पूर्वाह्न मे ही समुपस्थित हैं। खैर, अब कोई आशका का कारण नही। मेरा आश्रम तो टूट रहा है, लेकिन दूसरा नया पैदा हुआ ही समझो।" यह कहकर वह भीतर घुसा, दूसरी कुरसी सतीश को दिखाता हुआ बोला—"बैठो" और आप खाटपर जा डटा। यह देखकर कि कमल खडी है, और तीसरा आसन है नही, सतीश बैठने मे दुविधा कर रहा था, हरेन्द्र इस बात को न समझा हो सो बात नही, फिर भी वह हँमकर बोला—"बैठो जी सतीश, जाति न जायगी। काशी हो आने के कारण तुम चाहे जितने भी ऊँचे चढ गये हो, पर इस बात को न भूलो कि ससार मे उससे भी ऊँची कोई जगह है।"

"नही नही, इसलिए नही?" कहकर सतीश अप्रतिभ-सा होकर बैठ गया।

उसका मुँह देखकर कमल हँसी। उसने कहा—"किसी पर व्यग्य करना आपके मुँह से शोभा नही देता हरेन्द्र बाबू। आश्रम के प्रतिष्ठाता भी आप हैं और महन्त-महाराज भी आप ही हैं। ये लोग उमर मे भी छोटे हैं और पण्डागिरी में भी पीछे हैं। इनका काम तो सिर्फ आपके उपदेश और आदेश के अनुसार चलना है। इसीलिए--"

हरेन्द्र ने कहा—"आपका यह 'इसलिए' तो बिलकुल ही अनावश्यक है। आश्रम का प्रतिष्ठाता शायद मैं ही हूँ, पर महन्त और महाराज हैं ये ही दोनो मित्र सतीश और राजेन्द्र। एक का काम है मुझे उपदेश देना और दूसरे का काम था यथासाध्य मेरी न मानकर चलना। एक का तो पता ही नही और दूसरे लौटे हैं बहुत ज्यादा तत्त्व-सचय करके। मुझे डर है कि इनके साथ कदम से कदम मिलाकर शायद ही मैं चल सकूँगा। अब सिर्फ उन अर्ध उपासे लडको की चिन्ता है जिन्हे काशी-काची-भ्रमण कराकर ये वापस ले आये हैं। मैंने उनकी तरफ देखते ही समझ लिया कि इस बीच मे उनकी आचार-निष्ठा मे रच-मात्र भी त्रुटि नही हुइ। क्षोभ सिर्फ इतना ही है कि और जरा जोर से तपस्या करा दी जाती तो वापस आने का रेल-किराया मेरा नही लगता।"

कमल ने हार्दिक-वेदना के साथ पूछा—"लडके बहुत दुबले हो गये होगे?"

हरेन्द्र ने कहा—"दुबले?"—आश्रम की परिभाषा मे शायद उसके लिए एक अच्छा-सा शब्द है,—सतीश को मालूम होगा,—आधुनिक काल मे अंकित किया हुआ 'शुक्राचार्य के तपोवन मे कचका चित्र' क्या तुमने देखा है?—नही देखा?—तो तुम मेरी बात नही समझ सकोगी।—मैंने जब ऊपर के बरामदे मे देखा तो मालूम हुआ कि कचो का एक झुण्ड सहसा पक्तिवार स्वर्ग से उतरकर आश्रम मे प्रवेश कर रहा है। मुझे आशा बँध गयी कि आश्रम जब टूट जायगा तब, खाना-पीना न मिलनेपर भी वे न मरेगे, देश के किसी भी चित्रकारी के स्कूल मे जाकर चित्र के लिए मॉडेल का काम दे सकेंगे।"

कमल ने कहा,—"लोग कहते हैं कि आप आश्रम बन्द कर रहे हैं। यह क्या सच है?"

"सच है। तुम्हारे वाक्य-बाण मुझ से सहे नही जाते। सतीश के यहाँ आने का यह भी एक कारण है। इसकी धारणा है कि तुम असल मे भारतीय रमणी नही हो। इसलिए भारत की निगूढ सत्य वस्तु को पहचान ही नही सकती। तुम्हे यह यही बात समझा देना चाहता है। समझोगी या नही सो तो तुम्ही जानो, पर इसे मैंने आश्वासन दे दिया है कि मैं कुछ भी क्यो न करूँ, उन लोगो के लिए डर की कोई बात नही। कारण, मालूम नही, चतुर्विध आश्रमो मे से अजितकुमार स्वय कौन-सा आश्रम ग्रहण करेगे, पर फिर भी, परम्परा से इतनी खबर मुझे मिल गयी है कि वे बहुत-सा अर्थ-व्यय करके ऐसे और भी दस-बीस आश्रम जगह-जगह खोल देना चाहते हैं। उनके पास अर्थ भी है और देने की सामर्थ्य भी। सो उनमे से एक का नायकत्व तो सतीश को मिल ही जायगा।"

कमल भीतर-ही-भीतर मुसकराती हुई बोली,—"दानशीलता जैसी दुष्कृति को ढँकने के लिए इससे अच्छा आच्छादन और नही हो सकता। पर भारत की सत्य वस्तु को मुझे समझाने से सतीश बाबू को क्या फायदा होगा? हरेन्द्र बाबू मे मैंने आश्रम बन्द कर देने के लिए भी नही कहा, और रुपयो के बलपर भारत-भर मे आश्रम खोलने के लिए भी अजित बाबू को मैं मना नही करूँगी। मेरी आपत्ति तो सिर्फ उसी को सत्य मान लेने मे है। उसमे किसी का क्या नुकसान?"

सतीश विनीत स्वर मे बोला,—"नुकसान का परिणाम बाहर से नही दिखाई देता। बहस के लिए

नही, वल्कि शिक्षार्थी के तौरपर मैं आपसे अगर कुछ प्रश्न करूँ तो क्या आप उनका उत्तर देगी?"

"मगर आज तो मैं बहुत थकी हुई हूँ सतीश वावू।"

सतीश ने उसकी वातपर कुछ ध्यान ही नही दिया बोला—"हरेन्द्र भइया ने अभी-अभी हँसी के तौरपर कहा था कि मैं काशी जाकर चाहे जितना भी ऊँचा चढ गया होऊँ, ससार मे उससे भी ऊँचा और स्थान है सो, वह यही घर है। मैं जानता हूँ कि आपके प्रति इनकी श्रद्धा असीम है। आश्रम टूट जाने से हानि नही, किन्तु आपकी वातो से इनका अगर मन टूट गया तो नुकसान की पूर्ति होना कठिन है।"

कमल चुप रही। सतीश कहने लगा,—"राजेन्द्र को आप अच्छी तरह जानती होगी, वह मेरा मित्र है। मूल विषय पर मत का मेल न होता तो हम दोनो की मित्रता होती ही नही। उसी के समान मैं भी चाहता हूँ कि भारत की सर्वांगीण मुक्ति मे से स्वजाति का परम कल्याण हो। उसी आशासे हम लडको को सघवद्ध करके गढना चाहते हैं। हमे मृत्यु के वाद कल्पकालतक वैकुण्ठवास करने का लोभ नही, लेकिन नियम के कठोर वन्धन के विना सघकी सृष्टि हरगिज नही हो सकती। और सिर्फ लडको के लिए ही नही, उस वन्धन को हम लोगो ने स्वय अपने ऊपर भी लागू किया है। कष्ट वहाँ जरूर है,—और रहेगा ही, क्योंकि वहुत 'श्रम' करके महान् वस्तु को प्राप्त करने के स्थान को ही तो 'आश्रम' कहते हैं। इसमे उपहास की तो कोई वात नही।"

कोई जवाव न पाकर सतीश फिर कहने लगा,—"हरेन्द्र भैया का आश्रम चाहे जैसा भी हो, उसके विषय मे मैं आलोचना नही करूंगा; कारण, तव उसके व्यक्तिगत हो जाने पर डर है। परन्तु इसे तो अस्वीकार नही किया जा सकता कि क्री भारतीय आश्रमो मे भारत के अतीत के प्रति निष्ठा और परम श्रद्धा निहित होनी चाहिए। त्याग, व्रह्मचर्य, सयम,—ये सव शक्तिहीन असमर्थो के धर्म नही हैं। जाति-गठन के प्राण और उपादान उस समय इन्ही मे निहित थे, और आज इस युग मे भी वे उपेक्षा की सामग्री नही। मरणोन्मुख भारत को सिर्फ एक इसी मार्ग से पुनर्जीवित किया जा सकता है। आश्रम के आचार और अनुष्ठान के द्वारा हम अपने इसी विश्वास और इसी श्रद्धा को जगाये रखना चाहते हैं। एक दिन इस मन्त्र-मुखरित, होमाग्नि-प्रज्वलित, तपस्या-कठोर भारत मे जो आश्रमो की प्रतिष्ठा हुई थी वह जाति-जीवन के एक मौलिक कल्याण को सफल करने के उद्देश्य से ही हुई थी और इस सत्य को कौन ऐसा मूर्ख होगा जो स्वीकार नही करेगा कि वह प्रयोजन आज भी मिटा नही है?"

सतीश की वक्तृता मे हार्दिकता का जोर था। उसकी वाते अच्छी थीं और निरन्तर कहते रहने के कारण कण्ठस्थ हो गयी थी। आखिर मे उसका मुलायम स्वर तेज हो गया और मारे उत्तेजना के काला चेहरा बैंगनी हो उठा। उसी की तरफ चुपचाप और निष्पलक दृष्टि से देखते रहने के कारण एक प्रकार के धार्मिक जोश से अजित का आपाद-मस्तक रोमांचित हो उठा; साथ ही हरेन्द्र भी, यद्यपि इसके पहले वह अपने आश्रम के विरुद्ध कितना ही मौखिक आस्फालन कर चुका है, आश्रम के विगत गौरव के वर्णन से विश्वास और अविश्वास के वीच आँधी के वेगसे झूलने लगा। उसी के मुँह की तरफ तीक्ष्ण दृष्टि रखकर सतीश कहने लगा,—"हरेन्द्र-भैया, हम भले ही मर जायँ, पर इस सत्य को कि इस तरह के आश्रमो मे ही हमारे नव-जन्म-लाभ का विज्ञान है, आप भूले जा रहे हैं, किस युक्तिपर? आप तोडना चाहते हैं, पर तोडना ही क्या बड़ी वात है? आप ही वताइए कि बनाना क्या उससे बहुत वडी वात नही है?"

फिर कमल के मुँह की तरफ देखकर उसने पूछा, —"जीवन मे कितने आश्रम आपने अपनी आँखो देखे हैं? और कितनो के साथ आपका यथार्थ गूढ परिचय हुआ है?"

कठिन प्रश्न है। कमल ने कहा,—"वास्तव मे एक भी नही देखा और आप लोगो के आश्रम के सिवा और किसी के साथ मेरा कोई परिचय भी नही हुआ।"

"तव वताइए?"

कमल ने हँसते चेहरे से कहा,—"आँखो से क्या सभी कुछ देखा जा सकता है? आप लोगो के आश्रम का 'श्रम' ही आँखो से देख आयी थी, मगर उससे किसी महान् वस्तु के प्राप्त करने की वात तो ओट की ओट में ही रह गयी।" सतीश ने कहा,—"आप फिर हँसी उडा रही हैं।"

उसका क्रुद्ध चेहरा देखकर हरेन्द्र स्निग्ध स्वर मे वोल उठा,—"नही-नही सतीश, हँसी नही उडा रही, यो ही सिर्फ विनोद कर रही हैं। यह तो इनका स्वभाव है।"

सतीश वोला,—"स्वभाव है? पर स्वभाव कहने से ही कैफियत नहीं हो जाती हरेन्द्र भैया। यह तो

भारत के अतीत काल का जो भी कुछ नित्य पूजनीय और नित्य-आचारणीय तत्त्व है, उसी का अपमान—उसी के प्रति अश्रद्धा दिखाना है। उसकी तो उपेक्षा नहीं की जा सकती।"

हरेन्द्र ने कमल की तरफ इशारा करके कहा,—"इस बातपर इनसे अनेक बार बहस हो चुकी है। इनका कहना है कि अतीत का इसमे कोई महत्त्व नही। वस्तु अतीत होती है काल के धर्म से, मगर अच्छी होती है अपने गुण से। सिर्फ प्राचीन होने से ही वह पूज्य नही हो जाती। जो बर्बर जाति किसी जमाने मे अपने बूढे माँ-बाप को जिन्दा गाड देती थी, वह आज भी अगर उस प्राचीन अनुष्ठान की दुहाई देकर मनुष्य के कर्तव्य का निर्देश करना चाहे तो उसे भी तो रोका नही जा सकता सतीश।"

सतीश क्रोध मे आकर ऊँचे स्वर मे कह उठा,—"प्राचीन भारत के साथ बर्बरो की तुलना नही हो सकती हरेन्द्र दादा।"

हरेन्द्र ने कहा,—"सो मैं जानता हूँ। पर यह तो युक्ति नही सतीश, यह तो गले के जोर की बात है।"

सतीश और भी उत्तेजित हो उठा। बोला,—"यह हम लोगो ने स्वप्न मे भी न सोचा था हरेन्द्र दादा कि आपको भी एक दिन इस नास्तिकता के चक्कर मे पडना पडेगा।"

हरेन्द्र ने कहा,—"तुम जानते हो कि मैं नास्तिक नही हूँ। लेकिन यह गाली देकर सिर्फ अपमान ही किया जा सकता है सतीश, मत की प्रतिष्ठा नही की जा सकती। कठोर बात ही दुनिया मे सबसे ज्यादा कमजोर होती है।"

सतीश शर्मिन्दा हो गया। उसने झुककर हरेन्द्र के पाँव छू लिये और कहा, "अपमान मैंने नही किया हरेन्द्र भइया। आप तो जानते हैं, हम लोग आपकी कितनी भक्ति करते हैं, मगर हमे दुख होता है जब सुनते हैं कि भारत की शाश्वत तपस्यापर भी आप अविश्वास करने लगे हैं! एक दिन जिन उपादानो और जिस साधना से उन तपस्वियो ने भारत की इस विशाल जाति और विराट् सभ्यता का निर्माण किया था, वह सत्य कभी विलुप्त नही हुआ। सुनहले अक्षरो मे लिखा हुआ मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि वही भारत का मज्जागत धर्म है, वही हमारी अपनी चीज है। इस ध्वसोन्मुख विराट जाति को फिर उन्ही उपादानो से जिलाया जा सकता है हरेन्द्र भइया, और कोई मार्ग नही।"

हरेन्द्र ने कहा,—"न भी जिलाया जा सके, सतीश। यह तुम्हारा विश्वास है,—और इसकी कीमत सिर्फ तुम्हीं तक सीमित है। एक दिन ठीक इसी ढग की बात के जवाब मे कमल ने कहा था,—'जगत् के आदिम युग मे एक दिन विराट् अस्थि, विराट् क्षुधावाले एक विराट् जीव की सृष्टि हुई थी, उसी देह और क्षुधा से वह ससार को जय करता फिरता था, और उस दिन वे थे उसके सत्य उपादान। किन्तु फिर एक दिन ऐसा आया कि उसी देह और उसी क्षुधाने उसकी मृत्यु ला दी। एक दिन के सत्य के उपादानो ने दूसरे मिथ्या उपादान बनकर उसे ससार से निश्चिन्ह कर दिया,—जरा भी दुविधा नही की। उसकी अस्थि आज पत्थर मे परिणत हो गयी है, और अब वह सिर्फ पुरातत्व के विद्वानो की गवेषणा की चीज रह गयी है।"

सतीश को सहसा जवाब ढूँढे न मिला। वह कहने लगा,—"तो क्या हमारे पूर्व-पुरुषो का आदर्श भ्रान्त था? उनके तत्त्व-निरूपण मे सत्य नही था?"

हरेन्द्र ने कहा,— हो सकता है कि उस दिन उसमे सत्य रहा हो, पर आज उस सत्य के न रहने मे कोई बाधा नही। उस दिन जो पथ स्वर्ण का पथ था अगर आज वही हमें यमराज के दक्षिण द्वार पर पहुँचा दे तो मुँह फुलाने का मैं तो कोई कारण नही देखता, सतीश।"

सतीश अपने गूढ क्रोध को जी-जान से दबाकर बोला,—"हरेन्द्र दादा, यह सब सिर्फ आप लोगो की आधुनिक शिक्षा का फल है और कुछ नही।"

हरेन्द्र ने कहा,—"असम्भव नहीं। किन्तु आधुनिक शिक्षा अगर आधुनिक काल मे हमे कल्याण का मार्ग दिखा सके तो मैं उसमें लज्जा की कोई बात नही देखता सतीश।"

सतीश बहुत देरतक निर्वाक् होकर स्तब्ध बैठा रहा, फिर धीरे-धीरे बोला,—"मगर मैं तो लज्जा का बल्कि महा लज्जा का कारण देखता हूँ, हरेन्द्र दादा। भारत का ज्ञान और भारत का प्राचीन तत्त्व इस भारत का ही वैशिष्ट्य और प्राण है। उस तत्त्व को तिलाजलि देकर अगर देश को स्वाधीनता प्राप्त करना हो तो वह स्वाधीनता भारत की जय न होगी, बल्कि उससे तो सिर्फ पाश्चात्य नीति और पाश्चात्य सभ्यता की ही जय होगी। वह तो पराजय का ही नामान्तर है। उससे तो मृत्यु अच्छी।"

वन्दनीयो के लिए नमस्कार किया, उसमे आश्चर्य की कोई वात नही थी। अजित ने मृदु स्वर मे कहा,—"नही तो शायद वहुत से लोग उस समय ईसाई हो जाते। सिर्फ उन्ही के कारण ऐसा न हो सका।" वात कहने के वाद ही उसने कमल के मुँह की तरफ देखा,—उसकी ऑखों मे इसका अनुमोदन नही था, सिर्फ तिरस्कार का भाव ही दिखाई दिया। फिर भी वह चुप ही रही। शायद, जवाव देने की इच्छा भी नही थी। अजित को वह जानती थी,—पर हरेन्द्र ने इसी की अस्फुट प्रतिध्वनि-सी की, तव उसकी कुछ देर पहले कही हुई वातों के साथ यह ससकोच जडता ऐसी भद्दी दीख पडी कि वह चुप न रह सकी। वोली,—"हरेन्द्र वावू, कुछ ऐसे आदमी होते हैं जो भूत तो नही मानते, पर भूत से डरते जरूर हैं। आप उन्ही मे से एक हैं और इसी का नाम है भाव के घर चोरी। इतना अनुचित और कुछ हो ही नही सकता। इस देश मे आश्रम जैसी सस्थाओ के लिए न कभी रुपयो की कमी होगी और न लडको का अकाल पडेगा, इसलिए, आपके बिना भी सतीश वावू का काम चल जायगा मगर इन्हे त्याग देने का मिथ्याचार आपको हमेशा खलता रहेगा।"

फिर जरा ठहरकर वोली, "मेरे पिता ईसाई थे, पर मैं कौन हूँ, इस वात की खोज न तो कभी उन्होने की और न मैंने ही। उन्हे इसकी कोई जरूरत नही थी, और मुझे कुछ याद न था। मैं तो यही कामना करती हूँ कि धर्म को आमरण इसी तरह भूली रह सकूँ। परन्तु अभी-अभी उच्छृखल और अनाचारी कहकर आपने जिनका तिरस्कार किया और वन्दनीय कहकर जिन्हे नमस्कार किया, उनमे से स्वदेश के सर्वनाश मे किनका दान भारी है, इस प्रश्न का जवाव लोग किसी-न-किसी दिन अवश्य चाहेगे।"

सतीश की देहपर मानो किसी ने कसकर चावुक मार दिया। तीव्र वेदना से वह अकस्मात् उठकर खडा हो गया और वोला,—"आप जानती हैं उनके नाम? कभी सुने हैं किसी के मुँह से?"

कमल ने सिर हिलाकर कहा,—"नहीं।"

"तो, पहले जान लीजिए।"

कमल ने हँसते हुए कहा,—"अच्छा। पर नाम का मोह मुझे नही है। नाम जानने को ही मैं जानने का शेष नही मान सकती।"

प्रत्युत्तर मे सतीश अपनी ऑखो से सिर्फ अवज्ञा और घृणा वरसाता हुआ तेज कदमो से वाहर चला गया।

वह गुस्से मे चला गया है, इसमे कोई सन्देह नही रहा। इस अप्रीतिकर घटना को कुछ हलका करने के लिए कुछ देर वाद हरेन्द्र ने हँसने की कोशिश करते हुए कहा,—"कमल की आकृति तो प्राच्य की है पर प्रकृति विलकुल प्रतीच्य की। एक तो दिखाई देती है और दूसरी विलकुल ऑखो के ओझल रह जाती है। यही आदमी को गलतफहमी होती है। इनकी परोसी हुई चीज खायी तो जा सकती है, पर हजम करते वक्त पेट की वत्तीसो नाडियो मे मानो मरोडा उठने लगता है। हमारी किसी भी प्राचीन चीजपर न तो इन्हे विश्वास है और न सहानुभूति। वेकाम कहकर रद कर देने मे इन्हे जैसे कुछ दर्द ही नही मालूम होता। लेकिन, इस वात को ये समझ ही नही सकती कि सूक्ष्म कॉटा हाथ आ जाने से ही सूक्ष्म वजन करना नही आ जाता।"

कमल ने कहा,—"समझ सकती हूँ, लेकिन सिर्फ दाम देते वक्त एकके वदले दूसरी चीज नही ले सकती। मेरी आपत्ति वही है।"

हरेन्द्र ने कहा,—"मैंने तय कर लिया है कि आश्रम जरूर उठा दूँगा। मुझे सन्देह हो गया है कि उस शिक्षा से लडके आदमी वनकर देश की मुक्ति और परम कल्याण को पुन प्राप्त कर सकेगे या नही। लेकिन समझ मे नही आता कि दीनहीन घरो के जिन लडको को सतीश घर छुडाकर ले आया है उनका क्या करूँ? सतीश के हाथ सौंप देना भी मुझसे नही हो सकता।"

कमल ने कहा,—"सौंपने की कोई जरूरत नही। जरूरत सिर्फ इस वातकी है कि उनके द्वारा कोई असाधारण या अलौकिक वात करवा डालने की ख्वाहिश न रखी जाय। दीन-दु खी घरो के लडके सभी देशों में हैं, वहाँ वाले जैसे उन्हें वडा करते हैं वैसे ही आप भी इन्हे आदमी वनाने की कोशिश करते रहें।"

हरेन्द्र ने कहा,—"इस विषय मे भी अभीतक मैं नि.सशय नही हो सका हूँ कमल। शिक्षक लगाकर मैं उन्हें पढ़ा-लिखा सकता हूँ, पर इसका मुझे भय है कि जिस संयम और त्याग की शिक्षा उन्हे दी जा रही थी उससे दूर करके भी उन्हें आदमी बनाया जा सकता है या नही।"

कमल ने कहा,—"हरेन्द्र बाबू, सभी बातो को आप लोग इस तरह एकान्त रूप मे सोचा करते हैं, इसी से किसी प्रश्न का सीधा उत्तर आप लोगो को नही मिल सकता। आपका खयाल है कि लडके या तो देवता बनेगे, या फिर बिलकुल ही उच्छृखल पशु बन जायँगे। जगत् का सहज सरल स्वाभाविक सौन्दर्य आपकी दृष्टि के सामने आता ही नही। आप लोग दूसरो के हाथ के मनगढन्त अन्याय की अनुभूति से अपने सम्पूर्ण चित्त को शका से त्रस्त और मलिन रखा करते हैं। उस दिन मैं आश्रम मे जो कुछ देख आयी हूँ यह क्या संयम और त्याग की शिक्षा है? उन लोगो को मिला ही क्या है? सिर्फ दूसरो का दिया हुआ दु ख का बोझ ही तो मिला है, अनधिकार मिला है, और मिली है प्रवंचित की क्षुधा। चीन देश मे लडकियो के पाँव जन्म से छोटे बनाये जाते हैं। मेरे लिए यह सह्य है कि पुरुष वर्ग उन्हे सुन्दर बतावे, पर वहाँ की स्त्रियाँ ही जब अपने उन पगु और विकृत पैरो की सुन्दरता पर खुद मोहित हो जाती हैं, तब फिर सुधार की कोई आशा शेष नही रह जाती। इस समय आप लोग अपने कृतित्व पर खुद ही मुग्ध हो रहे हैं। मैंने उन लोगो से पूछा,—"बच्चो, कैसे रहते हो तुम लोग, बताओ?' लडको ने एक साथ जवाब दिया,—'बहुत अच्छी तरह।' उन्होने एक बार भी नही सोचा कि 'अच्छी तरह' किसे कहते हैं। सोचने विचारने की शक्ति भी उनकी जाती रही है,—ऐसा जबर्दस्त शासन है उनपर। नीलिमा दीदी ने मेरी तरफ देखकर शायद इसका उत्तर चाहा था, पर छाती पीटकर रोने के सिवा मुझे इस बात का कोई जवाब ही ढूँढे न मिला। मन-ही-मन सोचने लगी, ये ही लोग क्या भविष्य मे देश की स्वाधीनता अर्जन करेगे?"

हरेन्द्र नें कहा,—"लडको की बात जाने दो, लेकिन राजेन्द्र-सतीश वगैरह तो युवक हैं? ये भी तो सर्व-त्यागी हैं?'—

कमल ने कहा,—"राजेन्द्र को आप लोग पहचानते नही, लिहाजा उसकी चर्चा छोडिए। बात असल मे यह है कि वैराग्य-यौवन के सरपर ही ज्यादा सवार होता है। वह जहाँ शक्ति बनकर बैठा हुआ है वहाँ विरुद्ध शक्ति के बिना उसे वश मे कौन करेगा?"

हरेन्द्र ने कहा—"गुस्सा मत होना कमल—"तुम्हारे खून मे तो वैराग्य है ही नही। तुम्हारे पिता यूरोपियन थे और उन्ही के हाथ से तुम्हारा शिशु-जीवन गढा गया है। माँ इस देश की थी, पर उनका जिक्र न करना ही अच्छा है। इसी से, पश्चिम की शिक्षा से तुमने भोग को ही जीवन की सबसे बडी चीज समझ लिया है।"

कमल ने कहा—"गुस्सा मैं नहीं करती, हरेन्द्र बाबू। पर ऐसी बात आप न कहे। सिर्फ भोग को ही जीवन की सबसे बडी चीज समझकर संसार मे कोई भी जाति बडी नही हो सकती। मुसलमानो ने जिस दिन ऐसी गलती की, उस दिन उनका त्याग भी गया और भोग भी छूट गया। ऐसी ही गलती यदि पश्चिमवालो ने की. तो वे भी मरेगे। पश्चिम भी तो कोई दुनिया से अलग नही है। अगर वे इस विधान की उपेक्षा करके चलेगे तो उनके भी जीने का फिर कोई रास्ता नही रह जायगा।"

थोडी देर मौन रहकर फिर कहने लगी—"लेकिन तब, मन-ही-मन मुस्कराकर आप लोग कहेगे—"क्यो, कहा था न! हम तो पहले से ही जानते थे कि यह थोड़े ही दिन की उछल-कूद है इनकी, सो किसी-न-किसी दिन खतम हो जायगी। लेकिन, इधर देखो, हम लोग शुरू से आखिरतक वैसे ही टिके हुए हैं।" और कहते-कहते सुनिर्मल हँसी से उसका सारा का सारा चेहरा विकसित हो उठा।

हरेन्द्र बोला—"ऐसा ही हो, वही दिन आये।"

कमल ने कहा—"ऐसी बात नही कहना चाहिए हरेन्द्र बाबू। इतनी बडी जाति अगर गिर जाय, तो उसकी धूल से ही ससार के बहुत-से प्रकाश-स्तम्भ म्लान हो जायँगे। मनुष्य जाति के लिए वे बहुत ही बुरे दिन साबित होंगे।"

हरेन्द्र उठ खडा हुआ। बोला,—"उसे अभी देर है, पर अपने बुरे दिनो का आभास मैं अभी से ही पा रहा हूँ। बहुत-से प्रकाश-स्तम्भ बुझते दिखाई दे रहे हैं। अपने पिता से तुमने उन्हे बुझाने का ही कौशल सीखा है कमल, जलाने की विद्या नही सीखी। अच्छा, अब चल दिया। अजित बाबू को अभी देर होगी शायद?"

अजित उठने के लिए जरा हिला-डुला, पर उठा नही।

कमल ने कहा,—"हरेन्द्र बाबू, प्रकाश स्तम्भ का प्रकाश रास्ते पर न पडकर अगर आँखोपर पडे तो ठोकर खाकर नाली मे गिरना पडता है। उस प्रकाश को जो बुझा देता है उसे हितैषी मित्र ही

समझिएगा।"

हरेन्द्र ने एक गहरी साँस ली और कहा,—"बहुत बार ख्याल आता है कि तुम्हारे साथ बुरे क्षण में परिचय हुआ था। विश्वास का इतना जोर तो मुझमे नही है जितना कि तुम मे है, फिर भी मैं कह सकता हूँ कि वे विद्या, बुद्धि, ज्ञान और पौरुष की चाहे जितनी चकाचौंध दिखलावे, भारत के सामने वह कुछ भी नही,—सब अकिञ्चित्कर है।"

कमल ने कहा,—"यह तो ऐसी बात हुई जैसे क्लास मे प्रमोशन न पानेवाले विद्यार्थी का एम० ए० पास करने वाले को धिक्कार देना। हरेन्द्र बाबू, 'आत्म-सम्मान-ज्ञान' जैसे एक शब्द है, वैसे ही 'बडाई करना' भी एक शब्द है।'

हरेन्द्र को क्रोध आ गया। कहने लगा,—"शब्द तो बहुत हैं। लेकिन यह भारत ही एक दिन सारे जगत् का गुरु था। बहुतो के पुरखे तो तब शायद पेडों की डालियो पर उछला करते थे। और, फिर एक दिन ऐसा आयगा जब भारतवर्ष ही जगत् के शिक्षक का आसन ग्रहण करेगा। करेगा, अवश्य ही करेगा।"

कमल को गुस्सा नही आया, वह हँस दी। बोली,—"आज तो वे लोग डालियोपर मे नीचे उतर आये हैं। पर यदि इसी आलोचना का आनन्द उठाना हो कि कौन-से महा-अतीत काल मे किसके पूर्वपुरुष जगत् के गुरु थे और कौन-से महा-भविष्य काल मे उनके वशधर फिर पैतृक पेशा अख्तियार कर लेंगे, तो अजित बाबू को जाकर पकडिए। मुझे बहुत काम करना है।"

हरेन्द्र ने कहा,—"अच्छा, नमस्कार।"

और वह विषण्ण गम्भीर चेहरा लिये घर से निकल गया।

२६

आठ दिन बाद कमल आशु बाबू के घर मिलने गई। जिन लोगो को लेकर यह कहानी है, उनके जीवन मे इधर कई दिनो मे एक उलट-फेर हो गया है। किन्तु न तो उसे आकस्मिक कहा जा सकता है और न अप्रत्याशित ही। इधर कुछ दिनो से जो आकाश मे इधर-उधर से हवा मे उडते हुए बादलो के टुकडे जमा हो रहे थे, उनके परिणाम के सम्बन्ध मे विशेष सशय न था,—और हुआ भी वही।

फाटकपर दरवान हाजिर नही है। नीचे के बरामदे मे साधारणत. कोई बैठता न था फिर भी वहाँ कुछ मेजे और कुर्सियाँ पडी रहती थी, दीवारपर बडे आदमियो की कई एक तसवीरे भी थी,—किन्तु आज वे सब नदारद हैं। सिर्फ छत से एक काली-कलूटी लालटेन लटक रही है। जगह-जगह कूडा-करकट जमा हो रहा है, उसे साफ करने की अब शायद आवश्यकता नही रह गयी है। न जाने कैसा एक श्रीहीन वातावरण है, जिसे देखकर सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि मकान-मालिक अब यहाँ से पलायन कर रहे हैं।

कमल ऊपर जाकर आशु बाबू की बैठक मे पहुँची। दिन ढल रहा था। आशु बाबू आराम-कुर्सीपर पैर फैलाये पड़े थे। कमरे मे और कोई न था। परदा हटने के शब्द से उन्होने आँखे खोली और वे उठकर बैठ गये। कमल के आने की शायद उन्होने आशा नही की थी, इससे कुछ ज्यादा खुश होकर उन्होंने अभ्यर्थना की। बोले,—"कमल हो! आओ बेटी, आओ।"

उनके चेहरे की तरफ देखकर कमल के हृदय मे चोट पहुँची। उसने कहा,—"यह क्या? आप तो बूढ़े-से दिखाई देने लगे हैं, चाचाजी?"

आशु बाबू हँस दिये। बोले,—"बूढा? यह तो भगवान् का आशीर्वाद है कमल। भीतर-ही-भीतर जब कि उमर बढती है तब मनुष्य के लिए इससे बढकर दुर्भाग्य और नही हो सकता कि बाहर से बूढा न दिखाई दे। यह अवस्था बचपन मे ही गजे हो जाने जैसी करुण है।"

"लेकिन तबीयत भी तो अच्छी नही दीख रही है?"

"नही।"

परन्तु, इसके बाद, फिर उन्होने आगे प्रश्न करने का मौका नही दिया, बोले,—"तुम कैसी हो, सो तो बताओ?"

"अच्छी हूँ। मैं तो कभी बीमार पडती नही, चाचाजी।"

"सो तो मालूम है। न देह और न मन, तुम्हारे दोनो ही बीमार नही होते। कारण इसका है कि तुम्हे लोभ नही। तुम कुछ भी चाहती नही, इसी से भगवान् ने तुम्हे दोनो हाथो से सब कुछ उँडेल कर दे दिया है।"

"मुझे? क्या देते देखा आपने, बताइए तो?"

आशु बाबू ने कहा,—"यह डिप्टी माहव की अदालत नही जो धमकी देकर मामला जीत जाओगी। खैर, कुछ भी हो, पर मैं मानता हूँ कि दुनिया के विचार से मैंने खुद भी कम नही पाया। यही तो मैं आज सवेरे से थैली झाडकर और फर्द मिला-मिलाकर देख रहा था। देखा कि शून्य के अको ने ही इतने दिनो से तहवील फुला रही थी,—अन्त सारहीन थैली के भारी-भरकम आकार ने आदमियो की आँखो को महज धोखा ही दिया,—भीतर कोई चीज उसमे थी ही नही। लोग सिर्फ गलती से ही सोचा करते हैं बेटी, कि गणित-शास्त्र के अनुसार शून्यो की भी कीमत है। मैंने तो देखा कि उनकी कोई भी कीमत नही। एक के अक की दाहिनी तरफ वे अगर पक्तिवार खडे हो जायँ तो उस एक को ही एक करोड बना देते हैं, पर अगर सिर्फ शून्य ही अपनी सख्या के जोर से चाहे कि करोड हो जायँ तो नही हो सकते। जहाँ कोई और अक नही, वहाँ तो वे सिर्फ माया ही हैं। मेरा पाना भी ठीक उन शून्यो को पाने जैसा है।"

कमल ने बहस नही की, वह उनके पास कुरसी खीचकर बैठ गयी। आशु बाबू ने अपना दाहिना हाथ कमल के हाथपर रखते हुए कहा,—"बेटी, अब तो सचमुच ही मेरे जाने की पारी आ गयी, कल-परसोतक चला जाऊँगा। बूढा हो गया,—न जाने अब फिर कब भेट होगी। पर इतना तुम भरोसा दो कि मुझे कभी भूलोगी नही।"

कमल ने कहा,—"नही, भूलूँगी नही। और भेट भी होगी फिर कभी। आपको अपनी थैली सूनी मालूम पड रही है, पर मैंने अपनी थैली शून्यो से नही भर रखी है चाचाजी, उसमे सचमुच की चीज है,—माया नही।"

आशु बाबू ने इस बात का कुछ जवाब नही दिया, पर मन मे समझ लिया कि लडकी ने रचमात्र भी झूठ नही कहा।

कमल ने कहा,—"मैं घर मे घुसते ही समझ गयी कि आप यहाँ हैं जरूर, पर आपका मन यहाँ से बिदा हो गया है। इसलिए अब आपको पकडकर नही रखा जा सकता। कहाँ जायँगे?—कलकत्ते?"

आशु बाबू धीरे से सिर हिलाते हुए बोले —"नही, वहाँ नही। इस बार जरा दूर जाने की सोची है। पुराने मित्रो को वचन दिया था कि अगर जिन्दा रहा तो फिर एक बार मिल जाऊँगा। यहाँ तुम्हे तो कोई काम नही कमल, चलोगी बिटिया, मेरे साथ विलायत? अगर वहाँ से मैं न लौट सका तो तुम्हारे मुँह से कोई खबर तो सुन ही लेगा।"

इस अनुद्दिष्ट सर्वनाम का उद्दिष्ट कौन है, सो कमल को समझने मे देर न लगी; परन्तु इस अस्पष्टता को सुस्पष्ट कर देना भी उसने अनावश्यक समझा।

आशु बाबू कहने लगे,—"डर की कोई बात नही बेटी, इस बूढे की तुम्हे सेवा न करनी होगी। इस अकर्मण्य देहकी कीमत ही क्या है? इसे ढोते रहने के लिए मैं अपने ऊपर किसी का ऋण नही बढ़ाना चाहता। पर कौन जानता था कमल, कि इस मास-पिण्ड को लेकर भी प्रश्न जटिल हो सकता है? ऐसा लगता है कि मारे लज्जा के जमीन मे गडा जा रहा हूँ। इस दुनिया मे इतनी बडी आश्चर्य की बात भी होती है, सो भला कब कौन सोच सकता है, बताओ?"

कमल सन्देह से चौंक पडी। बोली,—"नीलिमा दीदी को नही देख रही हूँ चाचाजी, वे कहाँ हैं?"

आशु बाबू ने कहा,—"शायद अपने कमरे मे होगी, कल सबेरे से ही नही दिखाई दे रही है। सुना है कि हरेन्द्र आकर उसे अपने घर ले जायगा।"

"अपने आश्रम मे?"

"आश्रम अब नही रहा। सतीश चला गया है, कुछ लडको को भी अपने साथ ले गया है। सिर्फ चार-पाँच लडको को हरेन्द्र ने नही जाने दिया है, वे यही हैं। उनके माँ-बाप, नाते-रिश्तेदार कोई भी नही हैं, वह चाहता है कि उन्हे वह अपने आयडिया के अनुसार नवीन ढग से तैयार करे। तुमने सुना नही शायद?—सुनती भी किससे?"

जरा ठहरकर फिर कहने लगे,—"परसो शाम को लोगो के चले जानेपर अधूरी चिट्ठी पूरी करके नीलिमा को सुनाने लगा। कई दिनो से वह बरावर कुछ अन्यमनस्क-सी रहती थी, इधर उसे देख भी कम पाता था। चिट्ठी थी कलकत्ते के अपने कर्मचारी के नाम, मेरे विलायत जाने का सारा आयोजन जल्दी पूरा करने के लिए। एक नये वसीयतनामे का मसविदा भी भेजा था,—शायद यही मेरा आखिरी वसीयतनामा,—अटर्नी को दिखाकर पक्का करके दस्तखत के लिए वापस भेजने को लिखा था। और भी वहुत-सी आशाएँ थी। नीलिमा कुछ सी रही थी। उसकी तरफ से भला-वुरा कुछ भी उत्तर न पाकर मैं मुँह उठाकर उसकी तरफ देखने लगा तो देखा, उसके हाथ का सिलाई का कपडा जमीनपर पडा है, सिर चौकी के एक किनारे लुढक गया है, आँखे मिची हैं और चेहरा विलकुल सफेद हो गया है। मेरी कुछ समझ ही मे न आया कि अचानक क्या हो गया, झटपट उठकर जमीनपर लिटाया, गिलास मे पानी था उसके मुँह और आँखोपर छीटे मारे। पखा था नही, सो अखवार उठाकर उससे हवा करने लगा,—नौकर को पुकारना चाहा, मुँह से आवाज ही न निकली। शायद दो-तीन मिनट ही यह अवस्था रही, ज्यादा नही, इसके वाद उसने आँखे खोली और झिझक के साथ उठकर बैठ गयी। एक वार सारा शरीर काँप उठा और फिर वह औंधी होकर मेरी गोद में मुँह छिपाकर जोर से रोने लगी! ऐसी रोयी कि कुछ पूछो मत। मालूम हुआ कि जैसे उसकी छाती ही फट जायगी। वहुत देर वाद मैंने उठाकर विठाया,—कितने दिनो की कितनी ही वाते और कितनी ही घटनाएँ याद आ गयी, फिर मुझे समझने मे कुछ भी वाकी न रह गया।"

कमल चुपचाप उनके मुँह की तरफ देखती रही।

आशु वावू ने क्षण-भर अपने को सँभालने में लगाया और फिर कहा,—"मैं समझता हूँ, इस तरह दो-तीन मिनट वीते होगे। मेरे यह सोचने के पहले ही कि ऐसी हालत में मुझे क्या कहना चाहिए, वह तीर की तरह उठ खडी हुई,—मेरी ओर एक वार देखातक नही,—और कमरे से वाहर निकल गयी। न तो उसने कोई वात कही और न मैं ही कुछ वोल सका। उसके वाद फिर मुलाकात नही हुई।"

कमल ने कहा,—"यह क्या आप पहले समझ नही पाये थे?"

आशु वावू ने कहा,—"नही। कभी स्वप्न मे भी न सोचा था। और कोई होता तो सन्देह करता कि महज छल है, स्वार्थ है। पर उसके विषय मे ऐसी वात सोचना भी अपराध है। यह स्त्रियो का मन कितनी आश्चर्यजनक चीज है! इससे बढकर ससार में और क्या आश्चर्य की वात होगी कि यह रोगातुर शरीर, ऐसा अक्षम और अवसन्न मन, जीवन की यह सन्ध्या वेला जिसमे जीवन की कानीकौडी भी कीमत नही,—इसपर भी किसी सुन्दरी युवती का मन आकृष्ट हो? फिर भी, यह सच है, जरा भी झूठ नही।"

इतना कहकर वह सदाचारी प्रौढ आदमी क्षोभ, वेदना और निष्कपट लज्जा से एक साँस लेकर चुप हो रहा। आशु वावू कुछ देर इसी तरह रहकर फिर कहने लगे,—"मगर मैं यह निश्चित जानता हूँ कि यह वुद्धिमती नारी मुझ से कुछ भी प्रत्याशा नही करती। वह सिर्फ चाहती है मेरी सेवा करना, और वह भी इसलिए कि सेवा के अभाव मे मेरे जीवन के वाकी दिन कही दु ख मे न वीते। केवल दया और अकृत्रिम करुणा, वस।"

कमल को चुप देख वे कहने लगे,—"वेला ने विवाह-विच्छेद का जव मामला चलाया था तव मैंने अपनी सम्मति दी थी। वातो ही वातो मे उस दिन जव प्रसग उठ पडा तो नीलिमा बहुत नाराज हुई और उसके वाद से तो वेला उसके लिए असह्य हो गयी। अपने पति को इस तरह सर्वसाधारण के सामने लज्जित और वेइज्जत करने की प्रतिहिंसा को नीलिमा हृदय से पसन्द न कर सकी। उसने कहा कि 'पति को त्याग देना कोई बडी वात नही, उसे फिर से पाने की साधना ही स्त्री के लिए परम सार्थकता है। अपमान का वदला लेने मे ही स्त्री की वास्तविक मर्यादा नष्ट होती है, अन्यथा, वह तो कसौटी है जिसपर जाँचकर प्रेम की कीमत आँकी जाती है। और फिर यह कैसा आत्म-सम्मान का भाव कि जिसे असम्मान के साथ अलग कर दिया, उसी मे अपने खाने-पहनने का खर्च हाथ पसारकर लिया जाय? क्या गले में फाँसी डालने के लिए रस्सी भी नही जुटी?' सुनकर मैंने सोचा था कि नीलिमा की यह बात वेजा है, ज्यादती है। पर आज सोचता हूँ कि प्रेम क्या नही कर सकता। रूप, यौवन, सम्मान, सम्पदा,—यह सव कुछ नही वेटी, क्षमा ही उसकी वास्तविक आत्मा है। जहाँ क्षमा नही, वहाँ प्रेम सिर्फ विडम्बना है,—वहाँपर रूप-यौवन का विचार-वितर्क उठता है और वहीपर आता है आत्मसम्मान ज्ञान का 'टग

ऑफ्-वार'।"

कमल उनके मुँह की तरफ देखती हुई चुप हो रही।

आशु बाबु कहने लगे,—"कमल, तुम ही उसकी आदर्श हो,—पर चाँद की चाँदनी मानो सूर्य-किरणो से भी बढ गयी है। तुमसे जो कुछ उसने पाया है, अपने हृदय के रस मे भिगोकर स्निग्ध माधुर्य के साथ उसने उसे न जाने कितनी तरफ बिखेर दिया है। मैंने इन दो दिनो में दो सौ वर्ष की चिन्ता की है, कमल। स्त्री का प्रेम मैंने पाया था, उसका स्वाद मैं पहचानता हूँ, स्वरूप जानता हूँ; परन्तु इस नवीन तत्त्व ने, कि नारी के प्रेम का वह सिर्फ एक ही पहलू था, सहसा आज मुझे आच्छन्न कर दिया है। इसमे न जाने कितनी बाधा है, न जाने कितनी व्यथा है, अपने को विसर्जन करने की न जाने कितनी विनजानी तैयारियाँ हैं। यद्यपि मैं उसे हाथ पसारकर ले नही सका, पर क्या कहके उसे नमस्कार करूँ सो भी मेरी समझ मे नही आ रहा है कमल।"

कमल समझ गयी कि पत्नी-प्रेम की सुदीर्घ छाया ने इतने दिन जिन दिशाओं मे अँधेरा कर रखा था, आज वे ही दिशाएँ धीरे-धीरे उज्ज्वल होती जा रही हैं।

आशु बाबू ने कहा,—"ठीक है; मणि को मैंने क्षमा कर दिया है। बाप के अभिमान को मैं अब उसके आगे लाल आँखे न करने दूँगा। मैं जानता हूँ कि वह दुःख पायेगी, जगत् का विधिवद्ध शासन उसे छुटकारा नही देगा। अनुमति तो नही दे सकूँगा, पर जाते समय यह आशीर्वाद छोड़ जाऊँगा कि दुःख मे मे वह फिर अपने को किसी दिन खोज कर पा ले। उसकी भूल भ्रान्ति और प्रेम, भगवान् उन लोगो का सुविचार करें।" कहते-कहते उनका गला भारी हो आया।

इसी तरह नीरवता मे बहुत क्षण कट गये। उनके मोटे हाथपर कमल धीरे-धीरे हाथ फेर रही थी। बहुत देर बाद उसने मृदु कण्ठ से कहा,—"चाचाजी, नीलिमा दीदी के विषय मे आपने क्या निर्णय किया?"

आशु बाबू अकस्मात् सीधे होकर बैठ गये। जैसे किसी ने उन्हे ठेलकर उठा दिया हो, बोले—"देखो बेटी, तुम्हें मैं पहले भी नहीं समझा सका हूँ और अब भी न समझा सकूँगा और शायद अब सामर्थ्य भी नही है। पर ऐसा संशय मेरे मन मे कभी नही आया कि एकनिष्ठ प्रेम का आदर्श मनुष्य का सच्चा आदर्श नहीं। नीलिमा के प्रेमपर मैं सन्देह नही करता, पर जैसे वह सत्य है वैसे ही उसे अस्वीकार करना भी मेरे लिए वैसा ही सत्य है। किसी तरह भी मैं इसे निष्फल आत्म-वचना नही कह सकता। तर्क से इसका मेल नही खायेगा, पर यह सच है कि निष्फलता मे से होकर मनुष्य आगे बढेगा। मैं नही मानता कि कहाँ जायगा, पर जायग जरूर। यद्यपि वह मेरी कल्पना से अतीत है, पर मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि इतनी बडी व्यथा का प्रतिफल मनुष्य किसी-न-किसी दिन पायेगा अवश्य। नही तो ससार असत्य, सृष्टि असत्य हो जायगी।"

वे कहने लगे,—"इसी नीलिमा को ही ले लो, किसी भी आदमी के लिए जो नारी अमूल्य सम्पदा हो सकती है—उसके लिए कही भी खड़े होने की ज़गह नही। उसकी व्यर्थता मेरे बाकी दिनों को शूल की तरह चुभती रहेगी। इसी से सोचता हूँ, अगर वह और किसी से प्रेम करती। यह उसकी कैसी भूल है!"

कमल ने कहा,—"भूल सुधार के दिन तो अभी उसके खतम नही हो गये चाचाजी!"

"कैसे? तुम समझती हो, अब क्या वह फिर किसी से प्रेम कर सकती है?"

"कमसे कम, असम्भव तो नहीं है। इसे भी क्या आपने कभी सम्भव समझा था कि आपके अपने जीवन मे कभी ऐसी घटना हो सकती है?"

"लेकिन नीलिमा? उसके जैसी स्त्री?"

कमल ने कहा,—"सो नही जानती। पर उसके लिए क्या आप यही प्रार्थना करेगे कि जिसे उसने पाया नही, और पा सकती नही, उसी की याद मे सारा जीवन व्यर्थ निराशा मे काट दे?"

आशु बाबू के चेहरे की दीप्ति बहुत कुछ मलिन हो गयी। बोले,—"नही, ऐसी प्रार्थना नही करूँगा।" फिर क्षण-भर चुप रहकर कहने लगे,—"मगर मेरी बात भी तुम नही समझोगी, कमल। मैं जो कर सकता हूँ, वह तुम नहीं कर सकती। सत्य का मूलगत संस्कार तुम्हारे और मेरे जीवन का एक नही है,—बिलकुल भिन्न है। इस जीवन को ही जिन लोगो ने मानव-आत्मा की परम प्राप्ति समझा है,

उनके लिए प्रतीक्षा करना मुश्किल है, वे तो आजन्म-भोग की अंतिम बूँदतक इसी जीवन मे पी लेना चाहेगे, परन्तु हम जन्मान्तर मानते हैं, प्रतीक्षा करने का समय हमारे लिए अनन्त है,—उसमे औंधे होकर पीने की जरूरत नही पडती।"

कमल ने शान्त कण्ठ से कहा,—"यह बात मैं आपकी मानती हूँ चाचाजी। लेकिन, सिर्फ इसी कारण तो आपके सस्कार को युक्ति के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता, और आकाश-कुसुम की आशा से विधाता के दरवाजेपर हाथ पसारे जन्मान्तर-कालतक प्रतीक्षा करने लायक धैर्य भी मुझमें नही है। जिस जीवन को सबके बीच सहज-बुद्धि से पाया है, वही मेरे लिए सत्य है, वही महान् है। फूल-फल और शोभा-सम्पदा से मेरा यह जीवन भर उठे, परलोक के विशाल लाभ की आशा से मैं जीवन की उपेक्षा, अवज्ञा और अपमान न करूँ,—इतना ही मैं ठीक समझती हूँ। चाचाजी, इसी तरह आप लोग आनन्द से और सौभाग्य से स्वेच्छापूर्वक वंचित रहा करते हैं। आप लोग इहलोक को तुच्छ समझते हैं, इसी से इहलोक ने भी आप लोगो को सारे जगत् के सामने तुच्छ बना रखा है। नीलिमा जीजी से भेट होगी या नही, सो नही मालूम, अगर होगी तो मैं उनसे यही बात कह जाऊँगी।"

कमल उठकर खडी हो गयी। आशु बाबू ने सहसा जोर से उसका हाथ पकड लिया। बोले,—"जा रही हो बेटी? यह सोचते ही कि 'तुम जा रही हो' मेरी छाती के भीतर हाहाकार-सा मच जाता है।"

कमल बैठ गयी। बोली,—" पर आपको तो मैं किसी भी तरफ से तसल्ली दे नही पाती चाचाजी, देह और मन से जब कि आप अत्यन्त अस्वस्थ हैं, और सान्त्वना देना ही जब कि सबसे जरूरी वस्तु है, तब मैं सब तरफ से मानो आपको चोट ही पहुँचाया करती हूँ। फिर भी, यह सच है कि मैं आपको किसी से भी कम प्यार नही करती चाचाजी।"

आशु बाबू ने इसे मन-ही-मन स्वीकार करते हुए कहा,—"इसके सिवा नीलिमा,—वह भी क्या साधारण आश्चर्य है! पर जानती हो इसका कारण क्या है कमल?"

कमल ने मुसकराते हुए कहा,—"शायद आपके अन्दर दलदल नही है,—इसी से दलदल अपने शरीर का भी बोझ नही ढो सकता—पाँवो के नीचे से अपने को हटाकर अपने आपको डुबा देता है। लेकिन ठोस मिट्टी लोहे और पत्थर का भी बोझ झेल लेती है,—इमारत उसीपर बनायी जा सकती है। नीलिमा दीदी को सब स्त्रियाँ नही समझ सकती; हाँ जिनके अपने को लेकर खेल खेलने के दिन बीत चुके हैं और सिर का बोझ उतार कर जो सहज नि श्वास लेती हुई जीना चाहती हैं, वे उन्हे समझ सकेगी।"

"हाँ।" कहकर आशु बाबू ने एक गहरी साँस ली, और कहा,—"और शिवनाथ?"

कमल ने कहा,—"जिस दिन से मैंने उन्हे सचमुच समझा है, उस दिन से क्षोभ और अभिमान मेरे मन से बिलकुल धुल-पुँछ गया है,—ज्वाला बुझ गयी है। शिवनाथ गुणी आदमी हैं, कलाकार हैं,—कवि हैं। चिरस्थायी प्रेम कलाकारो के मार्ग का विघ्न है, उनकी सृष्टि के लिए अन्तराय है, उनके स्वभाव का परम विरोधी है। यही बात उस दिन ताज के सामने खडी होकर मैं कहना चाहती थी। स्त्रियाँ तो एक उपलक्ष्य-मात्र हैं,—नहीं तो, असल मे वे प्रेम करते हैं सिर्फ अपने आप से। अपने मन को दो भागो मे विभक्त करके उनकी दो दिन की लीला चलती है,—उसके बाद वह खत्म हो जाती है। इसीलिए उनके गले का स्वर ऐसा विचित्र होकर बजता है,—अन्यथा वह बजता नही, सूखकर जम जाता। मैं तो समझती हूँ, शिवनाथ ने उसे नही ठगा, मनोरमा ने अपने आप ही भूल की है। सूर्यास्त के समय बादलो पर जो रग खिलने लगता है चाचाजी, वह न तो स्वार्थी होता है और न उमका वह स्वाभाविक रग ही है। लेकिन फिर भी उसे झूठ कौन कह सकता है?"

आशु बाबू ने कहा,—"सो मालूम है, पर केवल रग से ही तो आदमी के दिन नही कटते बेटी, और न उपमा से उसकी व्यथा ही मिटती है। बताओ बेटी, इसका क्या उपाय है?"

कमल का चेहरा क्लान्ति से मलिन हो गया, उसने कहा, "इसी से घूम-फिरकर एक ही प्रश्न बार-बार सामने आ जाया करता है चाचाजी, वह जैसे शेष ही नही होता। बल्कि यही ठीक है कि जाते समय आप अपना यही आशीर्वाद छोड जायँ कि मणि दु ख के दिनो मे अपने आपको ढूँढ निकाले, जो झडनेवाला है उसके झड जाने के बाद वह बिना किसी सशय के अपने को पहचान सके। और आपसे भी मैं कहूँगी कि ससार मे होनेवाली अनेक घटनाओ मे से विवाह भी एक घटना है, उससे ज्यादा कुछ नहीं। उसी को जिस दिन से नारी का सर्वस्व मान लिया गया है उसी दिन से स्त्रियो के जीवन की सबसे बडी

ट्रेजडी शुरू हो गयी है। विदेश जाने के पहले अपने मन की असत्य की जजीर से अपनी लडकी को मुक्त कर जाइए। चाचाजी, यही आपसे मेरी अन्तिम प्रार्थना है।"

सहसा दरवाजे के पास किसी के पैरो की आहट सुनकर दोनो उधर देखने लगे। हरेन्द्र ने भीतर आकर कहा,—"भाभीजी को मैं लिवाने आया हूँ, आशु बाबु, वे भी तैयार हैं,—ताँगा लाने के लिए आदमी भेज दिया है।"

आशु बाबू का चेहरा फक पड गया। बोले,—"अभी? लेकिन दिन तो अब नही रहा?"

हरेन्द्र ने कहा—"दस-बीस कोस नही है, पाँच मिनट मे पहुँच जायँगी।"

उसका चेहरा जैसा गम्भीर था बाते भी उसकी वैसी ही नीरस थी।

आशु बाबू ने आहिस्ते से कहा,—"सो तो ठीक है। पर शाम का वक्त है—आज जाये बगैर नहीं चलेगा ?"

हरेन्द्र ने जेब मे से कागज का एक टुकडा निकालकर आगे बढाते हुए कहा, "आप ही विचार कीजिए।"

उसमे लिखा था,—"लालाजी, यहाँ से मुझे ले जाने का उपाय अगर तुम न कर सको, तो मुझे खबर दे देना। पर कल मत कहना कि मुझसे कहा क्यों नही?—नीलिमा।"

आशु बाबू सन्न रह गये।

हरेन्द्र ने कहा,—"निकट-आत्मीय के रूप मे तो मैं दावा नहीं कर सकता, परन्तु उन्हे तो आप जानते हैं उनकी इस चिट्ठी के पाने के बाद देर करने की भी हिम्मत नही पडती।"

"तुम्हारे ही घरपर तो रहेगी?"

"हाँ, कम से कम उससे अच्छी व्यवस्था जबतक न हो सके तबतक। सोचा कि इस घर मे उनके इतने दिन बीत गये तो उस घर मे भी कुछ अनुचित न होगा।"

आशु बाबू चुप रहे। इतना भी न कहा कि यह सुबुद्धि अबतक कहाँ रही?

इतने मे बेहरा आया और बोला,—"मेम साहब का सामान लेने मजिस्ट्रेट साहब के यहाँ से आदमी आया है।"

आशु बाबू ने कहा,—"उनका जो कुछ सामान है सब बता दो।"

कमल की आँखो से आँखे मिलते ही उन्होने कहा,—"कल सबेरे बेला यहाँ से चली गयी है। मजिस्ट्रेट की स्त्री उसकी सहेली है। तुम्हे एक सुसवाद देना तो भूल ही गया कमल, बेला के पति आये हैं उसे लेने के लिए, मालूम होता है शायद आपस मे उनका 'रिकन्सोलिएशन' हो गया है।"

कमल ने जरा भी आश्चर्य प्रकट न करते हुए कहा,—"लेकिन यहाँ क्यो नही आये?"

आशु बाबू ने कहा,—"शायद आत्म-गौरवपर आँच आती। जब विवाह-बन्धन तोडने का मामला चला था तब बेला के पिता की चिट्ठी के उत्तर मे मैंने अपनी तरफ से सम्मति दी थी। उसके पति शायद इस बात को क्षमा न कर सके होगे।"

"आपने सम्मति दी थी?"

आशु बाबू ने कहा,—"इसमे आश्चर्य की बात क्या है कमल? जो पति चरित्रदोष का अपराधी है, उसे त्यागने मे मैं अन्याय नही देखता। मैं नही मान सकता कि यह अधिकार सिर्फ पति को ही है, स्त्री को नही।"

कमल चुप हो रही। उसे फिर एक बार स्मरण हो आया कि इस आदमी की विचार-धारा मे किसी तरह का कपट नही, मन और वचन एक ही स्वर मे बँधे हुए हैं।

नीलिमा दरवाजे के पास से नमस्कार करके चली गयी। न तो भीतर आयी, और न उसने किसी की तरफ आँख उठाकर देखा ही।

बहुत देरतक कमल उसी तरह आशु बाबू के हाथपर हाथ फेरती रही, कुछ बोली-चाली नही। अन्त में जाने के पहले, उसने धीरे से कहा,—"यदु के सिवा इस घर मे पुराना और कोई नहीं रह गया।"

"यदु?"

"हाँ, आपका पुराना नौकर।"

"पर वह तो यहाँ है नही, बिटिया। उसका लडका बीमार है, सो चार-पाँच दिन हुए छुट्टी लेकर घर

गया है।"

फिर बहुत देरतक कोई बातचीत नही हुई। आशु बाबू अकस्मात् पूछ बैठे,—"अच्छा, वह राजेन्द्र लडका कहाँ है, कुछ मालूम है तुम्हे, कमल?"

"नही, चाचाजी।"

"जाने के पहले उसे एक बार देखने की इच्छा हो रही है। तुम दोनो मानो बहन-भाई हो, एक ही पेड के दो फूल-से लगते हो।" इतना कहकर वे चुप होना चाहते थे कि सहसा एक बात याद आ गयी, बोले,—"तुम लोगो का दारिद्रय ऐसा लगता है जैसे महादेव का दारिद्रय। तुम्हारे धन-ऐश्वर्य काफी है, पर अन्यमनस्क-से होकर जैसे उसे कही भूल आये हो। ऐसी उदासीनता कि उसे ढूँढने की भी कोई गर्ज नही।"

कमल ने हँसते हुए कहा,—"ऐसा क्यो कहते हैं चाचाजी? राजेन्द्र की बात मैं नही जानती, पर मैं तो पैसे-पैसे के लिए दिन-रात मेहनत किया करती हूँ।"

आशु बाबू ने कहा, "सो मैंने सुना है। यही तो बैठा सोचा करता हूँ।"

* * * *

उस दिन कमल को घर लौटने मे काफी देर हो गई। आते समय आशु बाबू ने कहा, "डरने की कोई बात नही बेटी, जो आजतक कभी मुझे छोडकर नही रही, आज भी वह मुझे छोडकर न जायगी। निरुपाय का उपाय वही करेगी।" कहते हुए उन्होने हाथ उठाकर सामने की दीवारपर टँगी हुई अपनी स्वर्गीया धर्म-पत्नी की तस्वीर दिखा दी और चुप हो रहे।

* * * *

कमल ने घर पहुँचकर देखा कि ऊपर जाने का रास्ता ही बन्द है, बक्सो का ढेर सीढ़ी के सामने अडा पडा है। एकाएक उसकी छाती के भीतर छौंक-सा लग गया। किसी तरह रास्ता निकालकर वह ऊपर पहुँची। रसोई घर मे शोरगुल सुनकर उसने झाँककर देखा कि अजित ने नौकरानी की मदद से 'स्टोव' जलाकर चाय के लिए पानी चढा दिया है, और चाय-चीनी आदि की तलाश मे घर-भर की तमाम चीजे उथल-पुथल कर डाली हैं।

"यह क्या कर रक्खा है?"

अजित ने चौंककर कमल की ओर देखा। बोला,—"चाय-चीनी वगैरह क्या तुम लोहे की तिजोरी मे बन्द रक्खा करती हो? पानी सब कब से खौलकर मिट्टी हुआ जा रहा है।"

"लेकिन मेरे घर की चीज आपको मिलेगी कैसे, सो तो बताइए? चलिए, इधर आइए, मैं तैयार किये देती हूँ।"

अजित हटकर अलग खडा हो गया।

कमल ने कहा,—"पर आज बात क्या है? बक्स-ट्रक, गठरी-पोटली,—यह सब किसका सामान है?"

"मेरा। हरेन्द्र बाबू ने नोटिस दे दिया है।"

"नोटिस दिया है तो वहाँ से चले जाने का दिया होगा। पर यहाँ आने की बुद्धि किसने दी?"

"वह मेरी अपनी है। इतने दिनों से पराई बुद्धिपर ही चलता आ रहा हूँ, अब मैंने अपनी बुद्धि ढूँढ निकाली है।

कमल ने कहा,—"अच्छा किया है। पर सामान क्या सब नीचे ही पडा रहेगा? कोई चुरा नही ले जायगा वहाँ से?"

सुनते ही अजित चचल हो उठा। बोला,—"चुरा तो नही ले गया कोई कुछ? एक चमडे के सूट-केस मे बहुत-से रुपये रक्खे हैं।"

कमल ने सिर हिलाकर कहा,—"बहुत अच्छा किया है। एक खास जाति के आदमी होते हैं जो अस्सी

वर्ष की उमरतक भी बालिग नही हुआ करते; उनके सरपर एक-न-एक अभिभावक होना ही चाहिए। पर इसकी व्यवस्था भगवान् स्वयं कृपा करके कर देते हैं। चाय रहने दीजिए, चलिए, नीचे चलिए पहले,—किसी तरह पकड-थामकर सामान ऊपर लाने की कोशिश की जाय।"

२७

मकानवाला अभी-अभी पूरे महीने का किराया लेकर गया है। इधर-उधर बिखरे हुए सामान के बीच, विश्रृंखल कमरे के एक किनारे, केन्वास की आरामकुरसीपर अजित आँखे मीचे पडा है। मुँह सूखा हुआ है, देखते ही पता चल जाता है कि उसके चिन्ताग्रस्त मन मे सुख का लेश भी नही है। कमल सिलसिलेवार बँधी चीजो को फर्द से मिलाकर एक कागजपर लिख रही है। स्थान छोडने का समय सन्निकट है, इस कारण उसके काम मे किसी तरह की चन्चलता नही आयी है। ऐसा लगता है मानो यह उसका रोजमर्रा का काम हो। सिर्फ नीरवता कुछ अधिक है।

इतने मे हरेन्द्र के यहाँ से शाम के भोजन का निमंत्रण आया। किसी आदमी के मारफत नही, डॉकसे। अजित ने चिट्ठी खोलकर पढी। आशु बाबू की विदाई के उपलक्ष्य मे यह आयोजन है। बहुत-से परिचित लोगो को आमत्रित किया गया है। नीचे के एक कोने मे छोटे हरफ मे लिखा है। 'कमल, जरूर आना बहन। —नीलिमा।'

अजित ने उसे दिखाते हुए पूछा,—"जाओगी क्या?"

"जाऊँगी क्यों नहीं। मेरी कदर इतनी थोडे बढ गयी है कि निमत्रण जैसी चीज की उपेक्षा कर सकूँ। मगर तुम?"

अजित ने दुबिधा के स्वर मे कहा —"यही सोच रहा हूँ। आज तबीयत कुछ—"

"तो जरूरत नही जाने की।"

अजित की निगाह अबतक चिट्ठीपर ही थी। नही तो वह कमल के ओठोपर आयी हुई कौतुकपूर्ण मुस्कराहट जरूर देख लेता।

चाहे जैसे भी हो, बगाली-समाज मे यह खबर सबको लग गयी है कि ये दोनो आगरा छोडकर कही जा रहे हैं। पर इस विषय मे कि किस तरह और कहाँ, लोगो का कुतूहल अभीतक सुनिश्चित मीमांसापर नही पहुँचा है। असमय के बादलो की तरह वह अन्दाज और अनुमान की हवा मे ही उड-उडकर भटक रहा है और मजा यह कि जानना कोई कठिन बात नही थी,—कमल से पूछने से ही मालूम हो सकता था कि फिलहाल उनका गन्तव्य स्थान अमृतसर है।—पर पूछने का किसी को साहस न हुआ।

अजित के पिता गुरु गोविन्दसिंह के परम भक्त थे। इसीसे सिखों के महातीर्थ अमृतसर मे उन्होने खालसा-कालेज के पास खुले मैदान मे एक बगला बनवाया था। समय और सुविधानुसार वे वहाँ जाकर रहा करते थे। उनकी मृत्यु के बाद बगला किरायेपर उठा दिया गया था, पर अब वह खाली है। दोनो वही जाकर कुछ दिन रहेगे। असबाब सब लॉरी मे जायगा, और शेष-रात्रि मे पौ फटते-फटते ये दोनो मोटर मे रवाना होगे, उसी प्रथम दिन की स्मृति मे,—यही कमल की अभिलाषा है।

अजित ने कहा,—"हरेन्द्र के यहाँ क्या तुम अकेली ही जाओगी?"

"जाऊँगी नही? आश्रम का दरवाजा तो तुम्हारे लिए हमेशा ही खुला रहेगा, जब चाहो तब भेट कर आ सकते हो। पर मेरे लिए तो उसके खुलने की आगे कोई आशा नही,—अंतिम बार जाकर मिल आऊँ, क्यो, क्या कहते हो?"

अजित चुप रहा। उसे स्पष्ट ही दिखाई देने लगा कि वहाँ तरह-तरह के छल से तथा व्यक्त और अव्यक्त इशारो से तीखे और कडुए वाक्य-बाण आज सिर्फ उसी को लक्ष्य करके छूटेगे और उन आक्रमणो के सामने इस अकेली रमणी को छोड देना कितनी बडी कायरता है। पर उसमे साथ देने की भी हिम्मत नही थी और मना करना भी उतना ही कठिन था।

नयी मोटर खरीदी गयी है; शाम होने के कुछ देर बाद शोफर कमल को लेकर चला गया।

हरेन्द्र के घर, दूसरी मंजिलपर लम्बा हॉल था। उसी मे नया कीमती कार्पेट बिछाकर अतिथियो के लिए इन्तजाम किया गया है। बहुत-सी बत्तियाँ जल रही हैं, कोलाहल भी कम नही हो रहा है। बीच मे

आशु बाबू हैं, और उन्हे घेरे हुए कुछ सज्जन बैठे हैं। बेला आयी है और उनके साथ एक और महिला,—मजिस्ट्रेट की स्त्री मालिनी भी आयी हैं। एक सज्जन इधर की ओर पीठ किये हुए उनसे बाते कर रहे हैं। नीलिमा नही है, शायद अन्यत्र कही काम मे फँसी हुई होगी।

हरेन्द्र भीतर पहुँचा और पहुँचते ही उसने देखा कि दरवाजे के पास कमल खडी है। आश्चर्य के साथ उसने मीठे स्वर मे उसका स्वागत किया,—"ओ हो, कमल आ गयी! कब आयी? अजित कहाँ हैं?"

सबकी दृष्टि एकाग्र होकर उसी तरफ मुड गयी। कमल ने देखा कि जो व्यक्ति महिलाओ के साथ बातचीत कर रहा था वह और कोई नही, स्वय अक्षय है। कुछ दुबला हो गया है। इन्फ्लुएन्जा से तो बच गया, पर बंगाल के मलेरिया से न बच सका। अच्छा ही हुआ जो वह लौट आया, नही तो अन्तिम बार उससे भेट न हो पाती, मन मे पछतावा रह जाता।

कमल ने कहा,—"अजित बाबू नही आये, तबीयत जरा ठीक नही है। मैं तो बहुत देर की आयी हूँ।"

"बहुत देर की? कहा थी?"

"नीचे। लडको की कोठरियाँ घूम-घूमकर देख रही थी। देख रही थी कि धर्म को तो धोखा दिया है, साथ ही कर्म को भी धोखा दिया या नही।" कहकर वह हँसती हुई कमरे के भीतर जाकर बैठ गयी।

मानो वह वर्षा ऋतु की वन्य-लता हो जो दूसरों की आवश्यकता के लिए नही, बल्कि अपनी ही आवश्यकता के लिए आत्मरक्षा का सम्पूर्ण सचय लेकर मिट्टी फोडकर ऊपर सिर उठाती आ रही हो। पारिपार्श्विक विरोध का उसे न तो जरा डर है, और न चिन्ता है,—काँटो का घिराव बनाकर उसकी रक्षा की कोशिश ही मानो ज्यादती है। आखिर वह ऐसी क्या थी!—परन्तु फिर भी जब भीतर जाकर बैठी तब ऐसा मालूम हुआ जैसे रूप, रस और गौरव से उसने अपनी महिमा का एक स्वच्छन्द प्रकाश सब चीजोपर बिखेर दिया है।

ठीक यही भाव हरन्द्र की बात से भी प्रकट हुआ। अन्य दो नारियो के सामने शालीनता मे भले ही कुछ त्रुटि हो गयी हो, पर वह आवेग मे आकर कह ही बैठा—"अब कही हमारी मिलन-सभा पूर्णता को प्राप्त हुई।" कमल के सिवा शायद वह और किसी के लिए ऐसी बात नही कह सकता था।

अक्षय ने कहा,—"क्यो?" इससे दर्शनशास्त्र का ऐसा कौन-सा सूक्ष्म तत्त्व परिस्फुटित हो गया, जरा कहो तो सही?"

कमल ने हरेन्द्र से हँसते हुए कहा,—"अब बताइए? दीजिए इसका जवाब?"

हरेन्द्र तथा औरों ने भी मुँह फेरकर अपनी-अपनी हँसी छिपाने की कोशिश की।

अक्षय ने नीरस-कण्ठ से पूछा,—"क्यो कमल, मुझे पहचाना कि नही?"

आशु बाबू मन-ही-मन असन्तुष्ट हुए। बोले,—"तुम पहचान लो इतना ही काफी है। तुमने तो पहचान लिया न?"

कमल ने कहा,—"यह प्रश्न आपका बेजा है आशु बाबू। आदमी पहचानना तो इनका खास पेशा है। इसमें भी सन्देह करना इनके पेशेपर चोट पहुँचाना है।"

बात उसने इस ढग से कही कि अब की बार किसी से हँसी दबाये नही दबी, मगर साथ ही इस डर से कि यह दुःशासन आदमी कही कुछ कुत्सित बात न कह बैठे, सब शंकित हो उठे। आज के दिन अक्षय को बुलाने की हरेन्द्र की इच्छा नही थी, पर यही सोचकर निमंत्रण दे दिया गया था कि वह बहुत दिन बाद घर मे आया है, न देने से बहुत ही भद्दा दीखेगा। हरेन्द्र ने डरते हुए और विनय के साथ कहा,—"हमारे इस शहर से—अथवा यो कहिए कि इस देश से ही आशु बाबू चले जा रहे हैं। इनके साथ परिचित होना किसी भी आदमी के लिए सौभाग्य की बात है और वह सौभाग्य हम लोगो को प्राप्त हुआ है। आज आपकी तबीयत ठीक नही है, मन भी अवसन्न है, इसलिए हमे आशा करनी चाहिए कि आज हम आपको सहज-सौजन्य के साथ विदा कर सकेंगे।"

बाते साधारण-सी थी पर उस शान्त सहृदय प्रौढ व्यक्ति के चेहरे की तरफ [illegible] ही वे सबके हृदय मे पैठ गयी।

आशु बाबू को संकोच मालूम हुआ। इस आशंका से कि बातचीत का सिलसिला कही उन्ही के विषय में न चल पडे, उन्होने चट से दूसरी बात छेड दी; बोले,—"अक्षय, शायद तुम्हे मालूम हो गया होगा कि हरेन्द्र का ब्रह्मचर्याश्रम अब नही रहा। राजेन्द्र तो पहले से ही लापता है और सतीश भी उस दिन चलता बना। जो कुछ दो-चार लडके रह गये हैं, हरेन्द्र की इच्छा है कि उन्हे ससार के सीधे रास्ते से ही आदमी बनाया जाय। तुम सब लोग बहुत दिनोतक बहुतसी बाते करते रहे, पर नतीजा कुछ नही हुआ। अब तुम लोगो का कर्तव्य है कि कमल को धन्यवाद दो!"

अक्षय भीतर से जल गया और सूखी हँसी हँसता हुआ बोला,—"आन्त मे फल फला शायद इनकी बातो से? लेकिन कुछ भी कहिये आशु बाबू, मुझे जरा भी आश्चर्य नही हुआ। यह अनुमान तो मैंने बहुत पहले से ही कर रखा था?"

हरेन्द्र ने कहा,—"सो तो करते ही, क्योंकि आदमी पहचानना आपका पेशा ठहरा!"

आशु बाबू बोले,—"फिर भी, मैं समझता हूँ, तोडने की कोई जरूरत नही थी। सभी धर्म या मत मूलत एक ही हैं,—सिद्धि प्राप्त करने के अर्थ वे सिर्फ कुछ प्राचीन आचार-अनुष्ठान ही तो हैं? जो उन्हे मानते नही या पालते नही, वे न माने या न पाले; पर जिनमे मानने या पालने का अध्यवसाय है उन्हे निरुत्साह करने से क्या लाभ? क्या कहते हो अक्षय?"

अक्षय ने कहा,—"जरूर।"

आशु बाबू ने कमल की तरफ देखा। उनके देखते ही वह जोर से सिर हिलाकर बोल उठी,—"आपका यह दृढ विश्वास तो नही हुआ आशु बाबू, बल्कि यह तो अविश्वास-उपेक्षा की बात हुई। इस तरह सोच सकती तो मैं आश्रम के विरुद्ध एक शब्द भी न कहती, मगर बात ऐसी नहीं है। यह कहना कि आचार-अनुष्ठान मनुष्य के लिए धर्म से भी बडी वस्तु हैं, वैसा ही है जैसा कि राजा से बढ़कर राजा के कर्मचारियो को बडा बताना।"

आशु बाबू ने हँसते हुए कहा,—"माना कि यह ठीक है, पर इससे क्या तुम्हारी उपमा को ही युक्ति मान लूँ?"

यह बात कमल के चेहरे से ही जाहिर थी कि उसने परिहास नही किया। उसने कहा,—"क्या सिर्फ उपमा ही है आशु बाबू, उससे ज्यादा कुछ नही? इसे मैं मानती हूँ कि सभी धर्म असल मे एक हैं, सर्व कालो और सर्व देशो मे वे उसी एक अज्ञेय वस्तु की असाध्य साधना हैं। उन्हें मुट्ठी के अन्दर तो पाया जा नही सकता। प्रकाश और हवा को लेकर मनुष्य का विवाद नही होता, विवाद होता है अन्न के बँटवारे के लिए,—जिसे कि अपने अधिकार मे लिया जा सकता है या दखल करके अपने वशधरो के लिए इकट्ठा किया जा सकता है। इसी से तो जीवन की आवश्यकताओ मे वह इतना बडा सत्य हो रहा है। यह तो सभी जानते हैं कि विवाह का मूल उद्देश्य सभी क्षेत्रो मे एक ही है, पर इससे क्या सब उसे मान सकते हैं? आप ही बताइए न अक्षय बाबू, ठीक है कि नही?" इतना कहने के पश्चात् उसने हँसकर मुँह फेर लिया।

इसका भीतरी अर्थ सभी समझ गये। क्रुद्ध अक्षय ने इसके जवाब मे कोई कडी बात कहनी चाही, पर वह उसे ढूँढे न मिली।

आशु बाबू ने कहा,—"पर मुश्किल तो यह है कमल, कि तुम कुछ भी मानना नही चाहती। सभी आचार-अनुष्ठानो के प्रति तुम्हारे अन्दर अवज्ञा का भाव है। इसी से तो तुम्हे समझाना कठिन है।

कमल ने कहा,—"कुछ भी कठिन नही। एक बार सामने का परदा हटा दीजिए और फिर कोई समझे या न समझे, आपको समझने मे देर न लगेगी। यह नहीं होता तो आपका स्नेह मैं कैसे पा सकती? बीच मे कुहरे की ओट न हो सो बात नही, मगर फिर भी वह प्रेम मुझे मिला है। मैं जानती हूँ आपको चोट पहुँचती है, लेकिन आचार-अनुष्ठान को मैं झूठा बताकर उडा देना नही चाहती, मैं करना चाहती हूँ सिर्फ उसमें परिवर्तन। समय के धर्मानुसार आज जो अचल हो रहा है, चोट पहुँचाकर मैं उसी को सचल कर देना चाहती हूँ। गह जो मेरी अवज्ञा है, वह इसीलिए है कि उसका मूल्य मैं समझती हूँ। झूठ समझती होती तो झूठ के साथ स्वर मिलाकर झूठी श्रद्धा से सबके साथ मेल मिलाकर ही जीवन बिता देती, जरा भी विद्रोह न करती।"

जरा ठहरकर वह फिर कहने लगी,—"यूरोप के उन रेनेसास के दिनो की तो याद कीजिए। उन लोगो ने नयी सृष्टि करनी चाही, पर आचार-अनुष्ठान को हाथ भी न लगाया। पुराने की देहपर ही ताजा

रग चढाकर भीतर-ही-भीतर करने लगे उसकी पूजा। भीतर जड पहुँची नही, और यह फैशन दो ही दिन मे गायब हो गया। डर था हमारे हरेन्द्र बाबू को कि कही उच्च अभिलाषा इसी तरह बिला न जाय। पर अब कोई डर नही, वे सँभल गये हैं।" और वह हँसने लगी।

इस हँसी में हरेन्द्र शरीक न हो सका, गम्भीर हो रहा। उसने काम तो कर डाला है, पर भीतर से अब भी समर्थन नही मिल रहा है, और अब भी मन रह रहकर भारी हो उठता है। वह बोला,—"मुश्किल तो यह है कि तुम भगवान् को नही मानती और मुक्तिपर भी तुम्हारा विश्वास नही। मगर जो लोग तुम्हारी उस 'अज्ञेय वस्तु' की साधना मे लगे हुए हैं और उसके तत्त्व-निरूपण मे व्यग्र हैं, उनके लिए कठोर आचार-पालन के सिवा और कोई मार्ग भी तो नही है। आश्रम उठा देकर मैं अहकार नही करता; उस दिन जब लडको को लेकर सतीश चला गया तब मैंने अपनी कमजोरी ही महसूस की है।"

कमल ने कहा,—"तब तो आपने अच्छा नही किया हरेन्द्र बाबू। मेरे पिता कहा करते थे कि जिन लोगो का भगवान् जितना ही अधिक सूक्ष्म और अधिक जटिल है, वे लोग उतने ही ज्यादा उलझकर मरते हैं और जिन लोगो के भगवान् जितने ही अधिक स्थूल और सहज हैं, वे लोग उलझनो से उतनी ही दूर, किनारे के निकट हैं। ईश्वर को मानना असल मे नुकसान का कारोबार है। कारोबार जितना ही विस्तृत और व्यापक होगा, नुकसान भी उतना ही बढ जायगा। उसे समेटकर छोटा कर डालने मे यद्यपि लाभ ज्यादा नही होता किन्तु नुकसान की मात्रा जरूर घट जाती है। हरेन्द्र बाबू, आपके सतीश से मैंने बातचीत कर देखी हैं। आश्रम मे उन्होने अनेक प्रकार के प्राचीन नियमो का प्रवर्तन किया था, मन की कामना थी कि उसी प्राचीन युग मे लौटा जाय। उन्होने सोचा था कि दुनिंया की उमर मे से दो हजार वर्ष पोछ डालने से ही परम लाभ अपने आप आ पहुँचेगा। योरोप मे भी एक दिन ऐसे ही झूठे लाभ की स्कीम बाँधी थी प्यूरिटनो के एक दलने। सोचा था कि भागकर अमेरिका चले जायँगे और पिछली सत्रह शताब्दियाँ बिना किसी झझट के आनन्द के साथ बाइबिल का सत-युग कायम कर लेगे। किन्तु उनके लाभ का हिसाब आज बहुतो को मालूम हो गयाहै, नही मालूम है तो मठाधीशो के दल को। पिछले जमाने के दर्शन-शास्त्र से जब वर्तमान विधि-विधानो का समर्थन किया जाने लगता है तभी उन विधि-विधानो के वास्तव मे टूटने का दिन आ जाता है। हरेन्द्र बाबू आपके आश्रम को शायद नुकसान पहुँचाया हो मैंने, पर उस टूटे हुए आश्रम से जो बाकी बच रहे हैं उनका मैंने नुकसान नही किया।"

प्यूरिटनो का इतिहास अक्षय को मालूम था, क्योंकि वह इतिहास का प्रोफेसर था। इस बार और सब चुप रहे, सिर्फ उसीने सिर हिलाकर इसका समर्थन किया।

आशु बाबू कहने लगे,—"पर उस युग के इतिहास का जो उज्ज्वल चित्र है—"

कमल बीच मे ही बोल उठी—"चाहे जितना उज्ज्वल हो वह चित्र, पर है तो चित्र ही, उससे ज्यादा कुछ नही। ऐसी पुस्तक आजकल ससार मे लिखी ही नही गयी आशु बाबू, जिससे समाज के यथार्थ प्राणो का परिचय प्राप्त किया जा सकता। आलोचना करके हम गर्व अनुभव कर सकते हैं, पर पुस्तक से मिलामिलाकर समाज नही गढ सकते। श्रीरामचन्द्र के युग का भी नही, युधिष्ठिर के युग का भी नही। 'रामायण' और 'महाभारत' मे चाहे जितनी ही बाते लिखी हो पर उनके श्लोको को टटोलने से उस जमाने के साधारण मनुष्य के दर्शन नही मिल सकते, और माँ की कोख चाहे जितनी ही निरापद क्यो न हो, बडे होनेपर उसमे वापस नही जाया जा सकता। ससार की सम्पूर्ण मानव-जाति को मिलाकर ही तो मनुष्य का अस्तित्व है, वह तो आपके चारो तरफ है। कम्बल ओढकर क्या हवा के दबाव को रोका जा सकता है?"

बेला और मालिनी चुपचाप बैठी सुन रही थी। इस स्त्री के सम्बन्ध म बहुत-सी बाते उन लोगो ने सुन रखी थी, पर आज आमने-सामने बैठकर इस परित्यक्ता और निराश्रया [illegible] के वाक्यो की नि सशय निर्भयता देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

दूसरे ही क्षण यही भाव आशु बाबू के मुँह से प्रकट हुआ। उन्होने कहा,—"बहस मे हम चाहे जो भी कहा करे कमल, पर तुम्हारी बहुत-सी बाते हम मानते हैं। जिसे हम नही कर सकते, हृदय से उसकी अवज्ञा भी नही करते। इसी घर मे किसी दिन स्त्रियो का दरवाजा बन्द था और सुना है, एक दिन तुम्हारे आ जाने से सतीश ने इस जगह को कलुषित समझ लिया था। मगर, आज हम सभी यहाँ आमन्त्रित होकर आये हैं, किसी के आने की रोक-टोक नही—"

इतने मे एक लडका दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। साफ-सुथरी पोशाक पहने था, चेहरेपर आनन्द और सन्तोष का भाव झलक रहा था; बोला,—"बहनजी ने कहा है, रसोई तैयार है, आसन बिछाये जायँ?"

अक्षय ने कहा,—"हाँ-हाँ, बिछाये जायँ। कहो जाकर, रात भी तो हो रही है।"

लडका चला गया। हरेन्द्र ने कहा,—"जब से भाभी जी आयी हैं, खाने-पीने की चिन्ता किसी को नही करनी पडती। उनके लिए तो कही जगह न रह गयी थी, पर सतीश गुस्सा होकर चला गया।"

आशु बाबू का चेहरा क्षण-भर के लिए सुर्ख हो उठा।

हरेन्द्र कहने लगा,—"और मजा यह कि सतीश के लिए भी और कोई उपाय नही था। वह त्यागी ब्रह्मचारी आदमी ठहरा,—उसकी साधना मे यह सम्पर्क विघ्न था। पर मुश्किल तो यह है कि मेरी कुछ समझ ही मे नही आ रहा कि वास्तव मे कौन-सा काम ठीक हुआ।"

कमल ने तुरन्त नि संकोच स्वर मे क[illegible]—"यही काम हरेन्द्र बाबू, यही काम ठीक हुआ है। सयम जब सहज स्वाभाविक न रहकर दूसरे पर आघात करने लगता है, तब वह दुर्वह हो उठता है।" कहते-कहते उसने लहमे भरके लिए आशु बाबू की तरफ देखा, शायद कोई एक गुप्त इशारा था,—पर फिर उसने हरेन्द्र से कहा,—"भगवान् के रूप मे वे अपने आपको ही बढाकर देखते हैं, अपने आपको ही खीच-तानकर वे अपने भगवान् की सृष्टि करते हैं। इसी से उनकी भगवान् की पूजा, बार-बार सिर झुकाकर, अपनी ही पूजा पर उतर आती है। इसके सिवा उनके लिए और कोई रास्ता भी नही। मनुष्य न तो सिर्फ पुरुष ही है और न सिर्फ स्त्री ही, दोनो मिलकर ही एक होने हैं। आधे को बाद देकर शेष आधा जब सिर्फ अपने को ही विशाल रूप मे पाना चाहता है, तब वह अपने को भी नही पाता और भगवान को भी खो बैठता है। सतीश बाबू के लिए दुश्चिता मत रखिए हरेन्द्र बाबू, उनकी सिद्धि स्वय भगवान के जिम्मे है।"

सतीश को लगभग कोई भी देख न पाता था, इसी से अन्तिम बात पर सबके सब हँस पडे। आशु बाबू भी हँसे, परन्तु बोले—"हमारे हिन्दू-शास्त्रो मे जो सबसे बडी बात है कमल, वह है आत्म-दर्शन। अर्थात्, अपने को गम्भीरता के साथ जान लेना। ऋषियो का कहना है कि इसकी खोज मे ही विश्व की सम्पूर्ण जानकारी,—सम्पूर्ण ज्ञान भरा पडा है। भगवान को पाने का यही एक मार्ग है और इसी के लिए ध्यान का उपदेश है। तुम ईश्वर को नही मानती,—पर जो मानते हैं, विश्वास करते हैं, उन्हे चाहते हैं,—वे अगर ससार के अनेक विषयो से अपने को वंचित न रखे तो एकाग्रचित होकर ध्यान मे सफल नही हो सकते। सतीश की बात मैं नही कहता,—पर कमल, यह तो हिन्दुओ का अविच्छिन्न-परम्परा से प्राप्त सस्कार है, और यही तो योग है। समुद्र से लेकर हिमालय तक सम्पूर्ण भारत अविचल श्रद्धा से इसी तत्त्व पर विश्वास करता है।"

भक्ति, विश्वास और भाव के आवेग से उनकी दोनो आँखे छलछला आयी। सब तरह के बाहरी साहबी ठाठ के नीचे उनका जो दृढनिष्ठ विश्वास-परायण हिन्दू-चित्त निवात दीप-शिखा की तरह जल रहा था, कमल ने क्षण-भर के लिए उसका अनुभव किया। वह कुछ कहना चाहती थी, पर संकोच के मारे कह न सकी। सकोच और किसी बात का नही, सिर्फ इसी बात का कि इस सत्यव्रती सयतेन्द्रिय वृद्ध पुरुष को व्यथा पहुँचाना ठीक नही। परन्तु उत्तर न पाकर जब वे खुद ही पूछने लगे—"क्यो कमल, क्या यह सत्य नही?" तब उसने सिर हिलाते हुए कहा, "नही, आशु बाबू, यह सच्च नही। सिर्फ हिन्दू धर्म मे नही, यह विश्वास सभी धर्मो मे है। मगर सिर्फ विश्वास के जोर से ही तो कोई बात कभी सत्य नही हो जाती। न त्याग के जोर से ही वह सच हो सकती है और न मृत्यु वरण करने के जोर से ही। ससार मे अत्यन्त तुच्छ-तुच्छ मत-भेदो के कारण बहुत से प्राणो का बहुत बार लेना-देना हो चुका है। उससे जिद का जोर ही प्रमाणित हुआ है, विचारो की सत्यता प्रमाणित नही हुई। योग किसे कहते हैं सो मैं नही जानती, लेकिन, अगर वह निर्जन स्थान मे बैठाकर केवल आत्म-विश्लेषण और आत्म-चितन करना ही है तो मैं यही बात जोर के साथ कहूँगी कि इन दो सिहद्वारो से ससार मे जितने भ्रम और जितने मोह ने प्रवेश किया है, उतना और कही से नही। और ये दोनो अज्ञान के ही सहचर हैं।"

सुनकर, सिर्फ आशु बाबू ही नही, हरेन्द्र भी मारे आश्चर्य और दुखके चुप हो रहा।
इतने मे उस लडके ने फिर आकर कहा—"थाली परोस दी गयी है; चलिये।"
सब नीचे चले गये।

२८

भोजन हो चुकने के बाद कमल को क्षण-भर के लिए एकान्त मे पाकर अक्षय ने चुपके से कहा—"सुना है कि आप यहाँ से चली जा रही हैं। लगभग सभी परिचितो के घर आप एक-आध बार हो आयी हैं, सिर्फ मेरे ही—"

'आप!' कमल के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सिर्फ स्वर मे ही परिवर्तन हो, सो बात नही, सम्बोधन मे भी 'आप'! इस बात पर कि क्यो सब लोग उससे 'तुम' कहकर बोलते हैं, उसे न तो कोई शिकायत थी और न किसी से वह नाराज ही होती थी। परन्तु अक्षय की बात ही और थी। वह इस स्त्री के लिए 'आप' कहना ज्यादती समझता था, बल्कि उसकी तो यहाँ तक धारणा थी कि ऐसा करना शिष्टता का दुरुपयोग है। कमल को यह बात मालूम थी, पर इस अति तुच्छ ओछेपन की तरफ देखने मे भी उसे शर्म आती थी। उसे डर था कि कही इसी विषय को लेकर कोई बहस न छिड जाय।

कमल ने हँसते हुए कहा—"आपने तो कभी मुझे बुलाया नही?"

"नही। यह मेरा कसूर है। जाने के पहले क्या अब आपको वक्त न मिलेगा?"

"कैसे मिल सकता है बताइए, हम लोग कल भोर मे ही रवाना हो रहे हैं।"

"भोर मे ही?" फिर जरा ठहर कर कहा—"भविष्य मे इधर अगर फिर कभी आना हो तो मेरे घर आपका निमत्रण रहा।"

कमल ने हँसते हुए कहा—"क्या एक बात आप से पूछ सकती हूँ अक्षय बाबू? अचानक मेरे विषय मे आपकी राय कैसे बदल गयी? बल्कि अब तो आपको और भी कठोर होना चाहिए था?"

अक्षय ने कहा—"साधारण तौर से वैसा ही होता। लेकिन अबकी बार देश से कुछ अनुभव इकट्ठा कर लाया हूँ। आप ने जो प्यूरिटनोका दृष्टान्त दिया न, सो मेरे हृदय मे जाकर बिध गया। और किसी ने समझा या नही, मैं नही कह सकता,—और न समझना कोई आश्चर्य की बात भी नही, मगर, मैं तो उस सम्बन्ध मे बहुत-कुछ जानता हूँ। एक बात और है। हमारे गाँव मे लगभग चौदह-आने मुसलमान हैं, वे आज भी अपने डेढ हजार वर्ष के पुराने सत्य पर दृढ हैं,—वही सब विधि-निषेध, कायदे-कानून, आचार-अनुष्ठान हैं, कुछ भी व्यत्यय नही हुआ है।"

कमल ने कहा—"उनके सम्बन्ध मे मुझे लगभग कुछ भी नही मालूम, जानने का मौका कभी नही मिला। पर अगर आपकी बात सच हो, तो मैं सिर्फ यही कह सकती हूँ कि उनके लिए भी अब सोचने-समझने के दिन आ पहुँचे हैं। यह सत्य की सीमा किसी एक बीते-दिन मे ही सुनिर्दिष्ट नही हो गयी है, उन्हे भी किसी-न-किसी दिन मानना ही पडेगा। लेकिन, ऊपर चलिए।"

"नही, मैं यहाँ से बिदा लूँगा। मेरी स्त्री बीमार है। इतने आदमियो से भेट की है आपने, एक बार उससे भी भेट न कीजिएगा?"

कमल कुतूहलवश पूछ बैठी—"कैसी हैं वे देखने मे?"

अक्षय ने कहा—"ठीक नही मालूम। हमारे परिवारो मे ऐसा प्रश्न कोई नही करता। पिताजी नौ साल की उमर मे उसे पुत्र-वधू बनाकर घर ले आये थे। पढने-लिखने का न तो समय ही मिला, न जरूरत ही समझी गयी। रसोई बनाना, घर के काम-धधे, व्रत-उपवास, पूजा-पाठ,—इसी मे लगी रहती हैं,—मुझको ही इहलोक-परलोक का देवता समझती हैं, बीमार होने पर दवा नही खाना चाहती; कहती है, 'पति के पादोदक से ही सब बीमारियाँ अच्छी हो जाती हैं। अगर न अच्छी हो तो समझना चाहिए कि स्त्री की आयु खतम हो चुकी।'

कमल को इसका थोडा-बहुत आभास हरेन्द्र से मिल चुका था, उसने कहा—"तब तो आप भाग्यवान् हैं,—कम से कम स्त्री के भाग्य से। इतना जबरदस्त विश्वास इस युग मे दुर्लभ है।"

अक्षय ने कहा—"शायद ऐसा ही हो, ठीक नहीं जानता। संभव है, इसी को स्त्रीभाग्य कहते हो। पर कभी ऐसा मालूम होता है कि ससार मे मेरा कोई नही, मैं अकेला हूँ,—बिलकुल नि सग अकेला!—अच्छा नमस्कार।"

कमल ने हाथ उठाकर प्रति-नमस्कार किया।

अक्षय एक कदम बढाकर फिर मुड पडा, बोला, "एक अनुरोध करूँ?"

"कहिए।"

"अगर कभी समय मिले, और मेरी याद रहे तो एक पत्र लिखिएगा? आप खुद कैसी हैं, अजित बाबू कैसे हैं,—यही सब आप लोगो की बात मैं अकसर सोचा करूँगा। अच्छा अब जाता हूँ, नमस्कार।" इतना कहकर अक्षय जल्दी से चला गया और कमल वही स्तब्ध होकर खडी रही। भले-बुरे का विचार करके नही, उसे सिर्फ इसी बात का ख्याल हुआ कि यह वही अक्षय है! और मनुष्य की जानकारी के बाहर इस भाग्यवान् का दाम्पत्य-जीवन निर्विघ्न शांति के साथ इस तरह बहा चला जा रहा है। एक चिट्ठी के लिए उसे इतना कुतूहल, ऐसी विनीत और सच्ची प्रार्थना!

ऊपर जाकर देखा कि नीलिमा के सिवा और सब यथास्थान बैठे हैं। यह नीलिमा का स्वभाव है,—इस पर कोई कुछ ख्याल भी नही करता। आशु बाबू ने कहा—"हरेन्द्र ने एक मजे की बात कही थी कमल, सुनने से पहले तो सहसा वह एक पहेली-सी मालूम होती है, पर बात असल मे सच है। कह रहे थे, लोग इतना भी नही समझ सकते कि समाज के प्रचलित विधि-विधानो के उल्लघन करने का दु'ख सिर्फ चरित्र-बल और विवेक-बुद्धि के बल पर ही सहन किया जा सकता है। मनुष्य बाहर के अन्याय को ही देखता है, अन्त करण की प्रेरणा की कुछ खबर ही नही रखता। और यही पर समस्त द्वन्द्व और विरोधो की सृष्टि होती है।"

कमल ने समझा कि इसका लक्ष्य वह खुद और अजित है, इसलिए वह चुप रही। उसने यह बात नही कही कि उच्छृखलता के जोर से भी समाज के विधि-विधानो का उल्लघन किया जा सकता है। दुर्बुद्धि और विवेक-बुद्धि दोनो एक चीज नही हैं।

बेला और मालिनी उठ खडी हुई, उनके जाने का समय हो गया। कमल की बिलकुल उपेक्षा करके उन्होने हरेन्द्र और आशु बाबू को नमस्कार किया। इस स्त्री के सामने उन्होने हमेशा अपने को छोटा समझा है, इसलिए अत मे उसका बदला चुकाया उपेक्षा दिखाकर। उनके जाने पर आशु बाबू ने स्नेह के साथ कहा—"कुछ ख्याल मत करना बेटी, इसके सिवा उनके पास और कुछ है ही नहीं। मैं भी तो उसी दल का आदमी हूँ। सब जानता हूँ।"

आशु बाबू ने हरेन्द्र के सामने आज पहली बार उसे 'बेटी' कहकर पुकारा। कहा—"दैवयोग से वे पदस्थ व्यक्तियो की स्त्रियाँ हैं, हाई सर्किल की महिलाए ठहरी। अग्रेजी बातचीत मे, चाल-चलन और पहनाव-उढाव मे अप-टू-डेट हैं। यह भूल जाने से तो उनकी मूल पूँजी पर चोट पडती है, कमल। उन पर गुस्सा होना भी अन्याय है।"

कमल ने हँसते हुए कहा—"गुस्सा तो मैं नही हुई।"

आशु बाबू ने कहा—"सो मैं जानता हूँ। गुस्सा मुझे भी नही आया, सिर्फ हँसी आयी। पर, घर कैसे जाओगी बेटी, मैं उतारता जाऊँ तुम्हे?"

"वाह, नही तो मैं जाऊँगी कैसे?"

कही लोगो की निगाह न पड जाय, इस डर से उसने अपनी मोटर लौटा दी थी।

"अच्छी बात है। पर, अब देर करना भी शायद ठीक न हो, क्यो ठीक है न?"

होती। हम लोग भोर मे ही चले जा रहे हैं।"

"भोर मे? आज की रात बीते?"

"हाँ। सब तैयारियाँ हो चुकी हैं। यही से हम लोगो की यात्रा शुरू होगी।"

बात किसी से छिपी हुई नही थी, फिर भी सबके सब मानो लज्जा से म्लान हो उठे।

इतने मे दबे-पाँव चुपके से नीलिमा आ पहुँची और एक तरफ बैठ गयी। सकोच दूर करके आशु बाबू ने आँख उठाकर देखा। जो बात वे कहना चाहते थे, वह एक बार उनके गले मे अटकी, फिर धीरे-धीरे वे बोले—"हो सकता है कि हम लोगो की अब फिर कभी भेट न हो, तुम दोनो मेरे स्नेह के पात्र हो, अगर तुम लोगो का व्याह हो जाता तो मैं देख जाता।"

अजित को सहसा मानो किनारा नजर आ गया; वह व्यग्र कण्ठ से बोल उठा—"यह चीज मैं नही चाहता आशु बाबू यह तो मेरे लिए कल्पना के बाहर की बात है। विवाह के लिए मैंने बार-बार कहा है, और बार-बार सिर हिलाकर कमल ने अस्वीकार कर दिया है। अपनी सारी सम्पत्ति, जो कुछ मेरे पास है सब,—उसके नाम लिखकर मैं मजबूती से पकडाई देने को तैयार था, पर कमल, राजी नही हुई। आज इन सबके सामने मैं फिर प्रार्थना करता हूँ कमल, तुम राजी हो जाओ। मैं अपना सर्वस्व तुम्हे देकर जी जाऊँ। धोखे के कलक से छुटकारा पा जाऊँ?"

नीलिमा अवाक् होकर देखती रह गयी। अजित स्वभावत झेपू प्रकृति का आदमी था, सबके सामने उसकी ऐसी असीम व्याकुलता देख सबके सब मारे आश्चर्य के दग रह गये। आज वह अपने को बिलकुल नि स्व कर देना चाहता है। अपनी कहने को कोई चीज अपने हाथ मे रखने की आज उसे कोई आवश्यकता ही नही मालूम हो रही है।

कमल ने उसके मुँह की तरफ देखकर कहा—"क्यो तुम्हे इतना डर किस बात का हो रहा है?"

"डर आज न सही, पर—"

"'पर' का दिन पहले आये तो सही।"

"आने पर तो फिर तुम हर्गिज कुछ लोगी नही, मैं जानता हूँ।"

कमल ने हँसते हुए कहा—"जानते हो? तो वही होगा तुम्हारे लिए सबसे बडा और मजबूत बन्धन।"

जरा ठहरकर फिर कहने लगी—"तुम्हे याद नही, मैंने एक दिन कहा था कि बहुत ज्यादा मजबूत बनाने के लोभ से बिलकुल ठोस और निच्छिद्र मकान बनाने की कोशिश मत करो। उससे मुरदे की कब्र भले ही बन जाय, पर जीवित मनुष्य का शयनागार नही बन सकता।"

अजित ने कहा—"कहा था, मुझे याद है। जानता हूँ, तुम मुझे बाँधना नही चाहती—पर मैं जो बँधना चाहता हूँ। नही तो फिर मैं तुम्हे किस चीज से बाँध रखूँगा कमल? मुझ मे कहाँ है इतना जोर?'

कमल ने कहा—"जोर की जरूरत नही। बल्कि तुम अपनी कमजोरी से ही मुझे बाँध रखना। मैं इतनी निष्ठुर नही कि तुम जैसे आदमी को दुनिया मे यो ही बहाकर चली जाऊँ।" फिर पलकमात्र आशु बाबू की तरफ देखकर बोली—"भगवान् को तो मैं नही मानती, नही तो उनसे प्रार्थना करती कि तुम्हे ससार के समस्त आघातो की ओट में रखकर ही मैं एक दिन मर सकूँ।"

नीलिमा की आँखो मे आँसू भर आये। आशु बाबू ने भी अपनी आँसुओ से व्याकुल आँखो को पोछते हुए रुँधे हुए कण्ठ से कहा—"तुम्हे भगवान् मानने की भी जरूरत नही कमल। सब एक ही बात है बेटी। यह आत्म-समर्पण ही तुम्हे एक दिन गौरव के साथ उनके पास पहुँचा देगा।"

कमल हँस दी, बोली—"वह तो मेरी ऊपरी प्राप्ति होगी। हक की प्राप्ति से भी उसकी ज्यादा इज्जत है।"

'सो ठीक है, बेटी। पर यह जान रखना कि मेरा आशीर्वाद निष्फल नही होने का।"

हरेन्द्र ने कहा—"अजित, खाकर तो आये नही होगे, चलो नीचे।"

आशु बाबू हँसते हुए बोले—"तुम्हारी अक्ल भी खूब है। ऐसा भी कभी हो सकता है कि अजित बिना खाये-पीये ही चला आये और कमल यहाँ खा-पीकर निश्चिन्त हो जाये।"

अजित ने लज्जा के साथ स्वीकार किया कि बात दर-असल ऐसी ही है। वह बिना खाये नही आया।

इस बात का स्मरण आते ही कि यही शेष रात्रि है, किसी का जी नही चाहता था कि सभा भग हो, परन्तु आशु बाबू के स्वास्थ्य का ख्याल करके आखिर उठने की तैयारी करनी पडी। हरेन्द्र ने कमल के

पास आकर धीमे स्वर मे कहा—"इतने दिनो बाद अब असल चीज पायी कमल, मेरा अभिनन्दन ग्रहण करो।"

कमल ने उसी तरह चुपके से जवाब दिया—"पायी है? कम से कम यही आशीर्वाद दीजिए।"

हरेन्द्र ने आगे और कुछ न कहा। परन्तु कमल के कण्ठ से जैसा चाहिए वैसा दुविधाहीन परम नि.सशय स्वर झंकृत नही हुआ और यह बात उनके कानो को खटकी। मगर फिर भी ऐसा ही हुआ करता है। विश्व का विधान ही ऐसा है।

कमल को दरवाजे की ओट मे बुलाकर नीलिमा ने अपनी आँखे पोछते हुए कहा—"कमल, मुझे भूल न जाना कही।" इससे ज्यादा उससे कहते नही बना।

कमल ने उसे झुककर नमस्कार किया और कहा—"दीदी, मैं फिर आऊँगी, पर जाने के पहले मै आपके पास एक प्रार्थना रख जाऊँगी कि जीवन मे कल्याण को कभी अस्वीकार न करना। उसका सत्य रूप आनन्द का रूप है। उसी रूप मे वह दिखाई देता है—वह और किसी भी तरह पहचाना नही जा सकता। तुम और चाहे जो भी करो दीदी, पर अविनाश बाबू के घर की बेगार करने को अब राजी न होना।"

नीलिमा ने कहा—"ऐसा ही होगा कमल।"

आशु बाबू गाडी मे जाकर बैठे तो कमल ने हिन्दू-रीति से उनके पाँव छूकर प्रणाम किया। आशु बाबू ने उसके माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। कहा—"तुमसे मुझे एक वास्तविक तत्त्व का पता लगा कमल। अनुकरण से मुक्ति नही मिलती, मुक्ति मिलती है ज्ञान से। इससे डर लगता है कि तुम्हे जिसने मुक्ति मिला दी है, कही अजित को वही असम्मान मे न डुबो दे। उससे इसकी रक्षा करना बेटी। आज से इसका भार तुम्ही पर है।"

कमल ने इशारा समझ लिया।

आशु बाबू फिर कहने लगे—"तुम्हारी ही बात मैं तुम्हे याद दिलाये देता हूँ कमल! उस दिन से मैंने इस बात पर बार-बार विचार किया है कि प्रेम की पवित्रता का इतिहास ही मनुष्य की सभ्यता का इतिहास है—उसका जीवन है। यही उसके महान् होने का धारावाहिक वर्णन है। फिर भी शुचिता की संज्ञा या व्याख्या को लेकर मैं चलते वक्त तर्क नही करूँगा। अपने क्षोभ के निःश्वास से तुम लोगो की बिदा की घडियों को मैं मलिन नही करना चाहता। मगर इस बूढे की इतनी-सी बात याद रखना कमल, कि आदर्श या आइडिया सिर्फ दो-चार आदमियो के लिए ही है—इसी से उसकी कीमत है। उसे साधारण के बीच खीच लाने से फिर वह पागलपन हो जाता है, उसका शुभ मिट जाता है और बोझ दु सह हो उठता है। बौद्ध युग से लेकर वैष्णव युग तक इसकी बहुत-सी दु.खद नजीरे ससार मे फैली पडी हैं। क्या तुम फिर से वही दु ख का विप्लव ससार मे खीच लाना चाहती हो बेटी?"

कमल ने मृदु कण्ठ से उत्तर दिया, "यह तो मेरा धर्म है चाचा जी!"

"धर्म? तुम्हारा यह धर्म है?"

कमल ने कहा—"हाँ। जिस दु ख से आप डर रहे हैं चाचाजी, उसी मे से फिर उससे भी बडा आदर्श पैदा होगा। और उसका भी काम जिस दिन खतम हो जायगा, उस दिन उसके मृत शरीर के सार मे से उससे भी महान् आदर्श की सृष्टि होगी। इसी तरह ससार मे आजका शुभ कल के शुभतर के चरणो मे आत्म-विसर्जन करके अपना ऋण चुकाता रहता है। यही तो मनुष्य की मुक्ति का मार्ग है। देखते नही चाचाजी, सती-दाह का बाहरी चेहरा राजशासन से बदल गया है, पर उसके भीतर की आग आज भी ज्यों की त्यो धधक रही है और उसी तरह भस्म किये जा रही है। यह बुझेगी किस चीज से?"

आशु बाबू से कुछ बोला न गया, वे एक गहरी साँस लेकर रह गये। परन्तु दूसरे ही क्षण बोल उठे—"कमल, मणि की माँ का बधन मैं आजतक नही तोड सका, सो इसे तुम कहा करती हो कि मोह है,—मालूम नही वह क्या है, पर यह मोह जिस दिन जाता रहेगा उस दिन उसके साथ-साथ मनुष्य का बहुत-कुछ चला जायगा, बेटी। मनुष्य की यह बहुत तपस्या की पूँजी है कमल! अच्छा, अब जायें। चलो वासुदेव।"

इतने मे टेलिग्राफ-पियून सामने आकर साइकिल से उतरा। अर्जेण्ट तार है।

हरेन्द्र ने गाड़ी की बत्ती के सामने जाकर तार खोलकर पढा। लम्बा टेलिग्राम है, मथुरा जिले के एक

छोटे सरकारी अस्पताल के डाक्टर ने भेजा है। उसमे लिखा है,

"गॉव के एक मन्दिर मे आग लग गयी थी। बहुत दिनों की बहुजनपूजित प्रतिमा ध्वंस होने को थी। रक्षा का कोई भी उपाय न रह गया था कि इतने मे उस जलते हुए मन्दिर के अन्दर राजेन्द्र घुस पड़ा और मूर्ति को बाहर ले आया। देवता की रक्षा हो गयी, पर उनके रक्षा-कर्ता की रक्षा न हो सकी। दो दिन चुपचाप अव्यक्त यातना सहता हुआ आज सवेरे वह बैकुण्ठ चला गया। दस हजार जनता ने मिलकर कीर्तन-भजनादि के साथ जुलूस निकाल कर यमुना-तट पर उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न की है। मरते समय राजेन्द्र आपका समाचार देने के लिए कह गया है।"

स्वच्छ नील आकाश मे वज्र गिरा।

रुलाई से हरेन्द्र का गला रुक गया, और स्वच्छ चाँदनी रात मुहूर्त-भर मे अंधकार से एकाकार हो गयी।

आशु बाबू रो पडे, बोले—"दो दिन,—अड़तालीस घंटे,—इतने नजदीक, फिर भी उसे खबर नही दी?"

हरेन्द्र आँखे पोछता हुआ बोला—"जरूरत नही समझी। कुछ किया तो जा नही सकता था, इसी से शायद उसने किसी को दुःख देना नही चाहा।"

आशु बाबू ने अपने दोनो हाथ माथे से लगाकर कहा—"उसका अर्थ यह है कि सिवा देश के, किसी आदमी को उसने अपना आत्मीय नही माना। सिर्फ देश,—समग्र भारतवर्ष। फिर भी, भगवान्, तुम अपने चरणो मे उसे स्थान देना। तुम और चाहे जो भी करो, पर इस राजेन्द्र की जाति को संसार से न मिटाना।—वासुदेव, चलो।"

इस शोक की मार्मिक चोट कमल से बढ़कर शायद और किसी को न पहुँची होगी, परन्तु वेदना की भाप से उसने अपने कण्ठ को रुँधने नही दिया। उसकी आँखो से चिनगारियाँ-सी निकलने लगीं। बोली—"दुःख किस बात का? वह बैकुण्ठ गया है।" फिर हरेन्द्र से बोली—"रोइए मत हरेन्द्र बाबू, अज्ञान की बलि हमेशा इसी तरह होती है।

कमल के स्वच्छ कठोर स्वर ने पैने छुरे की तरह सबके कलेजे को छेद दिया।

आशु बाबू चले गये। उस शोकाच्छन्न स्तब्ध-नीरवता के बीच कमल अजित के साथ गाड़ी मे जा बैठी। बोली, "रामदीन—चलो।"

अरक्षणीया

१

मझली मौसी, माँ ने महाप्रसाद भेजा है—लो।

कौन है रे, अतुल? आ बेटा आ, कहकर दुर्गामणि रसोईघर से निकली। अतुल ने प्रणाम करके पदधूलि ग्रहण की।

निरोग होओ बेटा, दीर्घजीवी होओ। अरी ज्ञानदा, तेरे अतुल भैया लौट आये हैं। एक आसन बिछाकर महाप्रसाद को घर मे रख दे बेटी। कल रात को साढे नौ-दस बजे आम सड़क पर घोडागाडी की आवाज सुनकर सोचा, कौन आया? अगर तब जानती, दीदी आई हैं तो दौडकर उनके चरणो की धूल ले लेती। इस तरह के मनुष्य क्या अब संसार मे मिलते हैं? दीदी अच्छी तो हैं न बेटा? इस समय पुरी से आ रहे हो न? क्या कर रही है बेटी, तेरे अतुल भैया जो खडे हैं।

माँ के बुलाने पर एक बारह-तेरह वर्ष की साँवली लडकी कमरे से एक आसन लेकर निकली, जितना हो सका गर्दन झुकाकर उसने ओसारे मे आसन बिछा दिया और अतुल के पैरो के पास आकर प्रणाम किया। बोली भी नही और न सिर उठाकर देखा। प्रणाम करके उठी और महाप्रसाद के पात्र को हाथ मे लेकर धीरे-धीरे भीतर चली गयी। लेकिन जरा ध्यान से देखने पर पता चलता कि जाते समय लडकी के मुख-मण्डल से मानो दबी हँसी छलकी पड रही थी।

और केवल लडकी ही नही, इधर जरा ध्यान देने से दिखाई पडता कि इस सुन्दर लडके के चेहरे पर भी अपनी छटा विकसित करके बिजली का एक अदृश्य प्रवाह क्षण-भर मे विलीन हो गया।

आसन पर बैठकर अतुल तीर्थयात्रा की कहानी सुनाने लगा। उसके पिता उस जमाने के सदर आला थे। काफी रुपया पैसा और दूसरी सम्पत्ति पैदा करके पेंशन लेकर घर आ बैठे थे। वे परलोकवासी हो गये हैं। बी० ए० की परीक्षा देकर अतुल दो महीने पहिले माँ को लेकर तीर्थाटन को निकला था। हाल मे ही रामेश्वर, पुरी होता हुआ कल घर लौटा है।

कहानी सुनकर दुर्गामणि ने एक लम्बी साँस लेकर कहा, "और एक महापातकिन मैं हूँ जो और कुछ न हो एक बार काशी जाकर बाबा विश्वेश्वर के ही चरणो का दर्शन कर आती, सो इस जन्म मे यह साध भी पूरी नही हुई।"

अतुल ने कहा, "मझली मौसी, काशी की कहो या और कही की, एक बार सब कुछ छोड-छाडकर घर से जबरदस्ती निकल पडे बिना कुछ नही होता। मैं यदि इस प्रकार जोर देकर न ले जाता तो क्या मेरी माँ का ही जाना कभी हो सकता था?"

दुर्गामणि ने एक लम्बी साँस लेकर कहा, "बेटा, तू तो सब कुछ जानता है। जोर ही करूँ तो भला किस बिरते पर बतला तो? तीस रुपये की नौकरी मे खा पहिन कर, लोकाचार, नाता-रिश्ता, दवा-दारू का खर्च जुटा कर भला क्या बच रहता है? और देखते-देखते यह लडकी तेरह मे पहुँच गयी। तुझसे सच

कह रही हूँ अतुल, इसकी ओर देखते ही मेरे सीने का खून सूख जाता है। ओफ्! इतने बड़े शत्रु को गर्भ मे धारण करके माँ को लालन-पालन करना पड़ता है! कहते-कहते उनकी दोनो आँखें डबडबा आयीं।

- लेकिन अचरज की बात है कि इतनी बड़ी दुश्चिन्ता और कातरतामय बाते सुनने के बाद भी अतुल हँस पड़ा और बोला, "मौसीजी, आप बाते बढ़ाकर कह रही हैं। अच्छा, लड़की क्या औरों के नहीं होती? सिर्फ एक तुम्हारे ही हुई है जो ससार-भर की चिन्ता तुम्ही पर आ पड़ी है?"

दुर्गामणि ने कहा, "मेरी यह दुश्चिन्ता भी नही कहा जा सकता अतुल, यह तो हमारी मृत्यु-पीड़ा है। समाज को मैं जानती हूँ। लड़की का व्याह न कर पाने से जात चली जायगी। लेकिन व्याह करूँ तो कैसे? रुपये चाहिए, मगर पाऊँ कहाँ? इस मकान के एक हिस्से को छोड़कर अपना कहने के लिए मेरा कुछ भी तो नही है बेटा!"

आध घण्टा पहले इस लड़की को लेकर पति-पत्नी मे झगड़ा हो चुका था। पति आधा ही पेट खाकर थाली ठेलकर दफ्तर चले गये थे। उस व्यथा मे दुर्गामणि का हृदय आलोड़ित हो उठा और टप-टप करके आँसू की दो बूँदे कपोलो पर से होकर उनकी गोद में गिर पड़ी। हाथ से आँसू पोंछकर बोली, "पहले जन्म मे न जाने कितनी स्त्री-हत्या, ब्रह्महत्या की थी अतुल, जो मैंने इस जन्म मे लड़की को गर्भ में धारण किया।"

"नही, मझली मौसी, मैं चला, नहीं तो तुम नही रुकोगी।"

एक बार और आँखे पोछ कर दुर्गामणि ने कहा, "नहीं बेटा, जरा बैठ, थोड़ी देर तेरे सामने रोने से हृदय का भार कुछ हल्का हो जाय। इसीलिए कहती हूँ, भगवान, अभागी को अगर मेरी गोद मे भेजा ही था तो रग जरा साफ करके क्यो नही भेजा? काली होने से कोई भी उसे आश्रय नहीं देना चाहता। सभी सुन्दरी लड़की चाहते हैं। अरे अत्याचारी समाज, तू अगर कुल-शील, स्वभाव-चरित्र कुछ भी नहीं देखेगा, किसी लड़की को केवल इसलिए अपने घर मे स्थान नहीं देगा कि वह काली है, तो उस लड़की के व्याह न होने पर माँ-बाप को क्यो दण्ड देगा?"

अतुल ने कहा, "काली लड़की का क्या व्याह नही होता? भौंरा भी काला होता है, कोयल भी काली होती है। क्या इनका आदर नहीं होता? ये सब तो चिरकाल के दृष्टान्त हैं मझली मौसी!

दुर्गामणि ने कहा, "इसीलिए ये दृष्टान्त ही अमर बने हुए हैं बेटा, और कुछ नही। इनसे अब न तो कोई सान्त्वना मिलती है और न बल ही मिलता है अतुल! गिरीश भट्टाचार्य की लड़की का व्याह अपनी आँखो देखकर मेरे प्राण सूख गये। उनकी हालत भी ठीक मेरी भी जैसी थी—न तो रुपयो का बल और न लड़की ही रूपवती। इसलिए वर की उम्र भी मिली साठ के करीब करीब। उसकी माँ का रोना मानो आज भी मेरे कानो मे गूँज रहा है।"

अतुल ने अचरज से पूछा, "साठ के करीब? कहती क्या हो?"

साठ का क्यो न होगा बेटा! उस मुहल्ले का निताई चटर्जी हरी चक्रवर्ती का नत-दामाद है। उसके भी एक आठ-दस वर्ष की लड़की है! अब जरा हिसाब लगाकर देख लो!

बात सुनकर अतुल स्तब्ध होकर ताकता रह गया।

दुर्गामणि कहने लगी, "वह लड़की अगर मन की ग्लानि के कारण जहर खा ले फाँसी लगा ले, या कुल में दाग लगाकर निकल जाये तो माँ होकर हृदय के अन्तस्तल से उसे कैसे अभिशाप दूँ बतलाओ तो बेटा!"

अतुल चुप रहा। दुर्गामणि ने अचानक उसका हाथ जोर से पकड़कर कहा, "बेटा अतुल, आजकल सभी कहते हैं कि तुम लड़को में दया-धरम है। देखना, तुम्हारे स्कूल-कॉलिज का कोई लड़का अगर नितान्त दया करके ही इस लड़की को अपने चरणो मे जरा-सा स्थान दे दे। ऐसा हुआ तो मैं आजीवन तुम्हारे हाथो बिक जाऊँगी।"

उतावली के साथ अपना हाथ छुड़ाकर अतुल उनके चरणो की धूल लेकर गीले गले से बोल उठा, "इतनी व्यग्र क्यो हो रही हो मझली मौसी? मैं वचन देता हूँ—"

लेकिन वचन नही दे सका। एकाएक लज्जा से उसके कान लाल हो गये और गला रुध गया। दुर्गामणि का ध्यान यद्यपि उधर नही गया, लेकिन अगर कोई दूसरा वहाँ उपस्थित होता तो शायद उसके दिल में सन्देह उठता कि अतुल तरग मे आकर ऐसी कोई बात कहने जा रहा था जिसे मुँह से निकाल कर

भी पूरा किये बिना ही रुक गया।

अपने आपको सँभाल कर अतुल उठ खडा हुआ और स्वाभाविक भाव से बोला, "अच्छा मौसी, मैं पूरी कोशिश करूँगा।—क्यों री ज्ञानदा, कहाँ है तू? एक बीडा पान तो ला दे—अब घर चलूँ।'

दुर्गामणि ने चिल्ला कर कहा, "अपने अतुल भैया को एक बीडा पान दे जा री गेनी। मुँहजली लडकी न तो रूप है और न गुण ही। भला यह सब बाते भी सिखलानी पडेगी? महाप्रसाद लेकर जो घर मे घुसी, सो फिर बाहर निकली ही नही। जल्दी पान ले आ।"

"अच्छा, मैं ही जाकर पान ले लेता हूँ। तू किस कमरे मे है री ज्ञानदा?" इस तरह ऊँची आवाज दे अतुल सोने के कमरे मे जा पहुँचा।

सामने पान का सामान लेकर लडकी चुप बैठी थी। अतुल ने कमरे मे घुसते ही गम्भीर होकर कहा, "मझली मौसी ने कहा, मुँहजली गेनी के न तो रूप है और न गुण। एक साठ साल के बूढ़े के साथ इसका व्याह करना होगा।"

ज्ञानदा ने कोई जवाब नही दिया। मुँह नीचा किये ही पान-दान से दो पान लेकर उसने हाथ ऊपर कर दिया।

ज्ञानदा के पीछे आकर उसके हाथ से पान लेते हुए अतुल ने कहा, "पान अच्छा लगाया होगा तो इस बार माफ कर दिया जायगा। साठ को घटा कर बीस-इक्कीस तक लाया जा सकेगा।

ज्ञानदा ने लज्जा के मारे सिर झुकाकर उसे पान-दान से मिला दिया। अतुल धीमी आवाज से बोला, "मौसी के आगे और जरा सा होता तो मैंने कह ही डाला था। अच्छा, दोपहर हो चला, अब चलता हूँ।"

ज्ञानदा ने इसका भी कोई उत्तर नही दिया। वह जैसे सिकुड कर सिर नीचा किए बैठी थी, वैसी ही बैठी रही।

"कोई बात नही कही? अच्छा," कह कर अतुल ने लडकी के भींगे हुए केशो का एक गुच्छा खीचते हुए कहा, "लेकिन आ रहा है हरि चक्रवर्ती जैसा ही एक बूढा—मैं चला," और वह हँसते-हँसते कमरे से बाहर हो गया। लेकिन आँगन मे पैर रखते ही ऊँचे स्वर से वह फिर बोल उठा—"मझली मौसी, ज्ञानो के लिए बम्बई मे माँ ने एक जोडी चूडियाँ खरीद दी हैं। बाहर आकर जरा देखो तो।"

चूडियो का रग और उन पर किया गया काम देख कर दुर्गामणि अत्यन्त पुलकित होकर दाता की भूरी-भूरी प्रशसा करने लगी। चूडियो की जोडी थी तो काच की ही, मगर उस तरह की कीम्ती और शौकीनी चूडियाँ गाँवो की कौन कहे, कलकत्ते मे भी तब तक नही आ पहुँची थी। वस्तुतः उनकी बनावट, चमक-दमक और खूबसूरती देख कर माँ का बहाना करके अतुल अपने रुपये से ही उन्हे बम्बई से खरीद लाया था।

माँ के बार बार पुकारने पर ज्ञानदा बाहर निकल आयी। सिर नीचा किये हुए स्नेह के इस प्रथम उपहार को उसने ग्रहण करने के लिए हाथ बढाये तो वे काँप उठे। इसके बाद दाता के चरणो मे नमस्कार करके वह धीरे-धीरे वहाँ से चल दी। उसके मुँह से एक भी शब्द नही निकला। लेकिन आज उसके अंतःकरण की बात अन्तर्यामी ने जान ली। पीछे खडे हुए केवल यही दो प्राणी सस्नेह मुग्ध नेत्रो से इस किशोरी के अनिन्द्य गठन और गति भंगिमा को देखते रह गये।

२

बडे भाई गोलोकनाथ की मृत्यु के बाद उनकी विधवा स्वर्णमजरी मैके की जो थोडी बहुत सम्पत्ति थी, उसे बेच बाँचकर और मुट्ठी मे कुछ रुपये करके छोटे देवर अनाथनाथ के आश्रय में आ रही थी। पिछले साल ठीक इसी समय मझले भाई प्रियनाथ ने जब अनाथ से झगडा करके मकान को बाँटकर आँगन मे एक दरवाजा तक रखने की जरूरत महसूस नही की तब विधाता निश्चय की आड मे बैठे हँस रहे थे। कारण, एक वर्ष भी नही बीत पाया कि दीवार उठाने के सारे उद्देश्यो को निष्फल करके केवल सात दिनो के बुखार मे बिना इलाज के ही प्रियनाथ ने प्राण त्याग दिये।

प्रियनाथ की मृत्यु के एक दिन पहले की बात हैं। उनके मरने के बारे मे किसी को कोई सन्देह नही रह गया था। इसीलिए उन्हे अंतिम बार देखने के लिए गाँव के सारे लोगो की भीड उनके मकान मे घुसकर दरवाजे पर खडी अस्पष्ट और करुण स्वर मे हाय-हाय कर रही थी। प्रियनाथ उस समय भी सर्वथा अचेत नही हुए थे। अतुल गाँव मे नही था। कलकत्ते की मेस मे खबर पाकर वह आज दौडा आया था। भीड ठेलकर वह रोगी के कमरे में घुसने का प्रयत्न कर रहा था कि ज्ञानदा दौडती हुई आयी, पछाड खाकर गिर पडी और उसके पैरो पर सिर पीटने लगी। जो लोग तमाशा देखने आये थे वे तो यह एक और अभावनीय फाऊ* पाकर और विस्मित होकर मन ही मन तर्क-वितर्क करने लगे। लेकिन अतुल इतने आदमियो के सामने दु ख और लज्जा के कारण हतबुद्धि हो गया।

क्षणभर के बाद जब अतुल कुछ स्वाभाविक अवस्था मे आया और ज्ञानदा को पकडकर उठाने लगा तब वह अपनी समस्त शक्ति लगाकर अतुल के चरणो से लिपटी रही और दोनो पैरो के बीच मुँह छिपाये रोते-रोते बोली, "पिता की मृत्यु के समय तुम अपने मुँह से कुछ सान्त्वना दिये जाओ। मेरी तकदीर मे जो कुछ भी क्यो न लिखा हो, पर इस समय मेरे लिए उन्हे जो चिन्ता है, मेरे समान उसे भी यही छोडकर जा सके, यही मेरा इच्छा है। मैं तुमसे और कुछ नही माँगूगी।" इतना कहकर ज्ञानदा फिर सिर पटककर रोने लगी।

उसके दुश्चिन्ता-ग्रस्त अभागे पिता अत्यन्त अकाल के असमय मे मर रहे हैं। आज उसे भले-बुरे का ज्ञान नही रह गया था। इतने आदमियो के सामने वह क्या कर और कह रही है कुछ भी सोच नही सकी, वह लगातार सिर पीट रही थी। लेकिन अतुल सयमी आदमी था। ज्ञानदा के इस व्यवहार से अन्त करण मे वह चाहे कितने ही क्लेश का अनुभव क्यो न कर रहा हो, मगर बाहर से इतनी कौतूहलपूर्ण आँखो के सामने वह कठोर हो गया। जोर करके उसने पैरो को छुडाकर एक मीठी फटकार बतलाते हुए कहा, "छि , शान्त हो जाओ, इस तरह रोओ-धोओ मत। मुझे जो कुछ कहना है वह सब मैं कहूँगा ही।" इतना कह वह मरणासन्न के बिस्तर के एक किनारे जा बैठा। दुर्गामणि पति के सिरहाने बैठी हुई थी। अतुल के मुँह की ओर देखकर वह चुपचाप रोने लगी।

पडोसी नीलकण्ठ चटर्जी द्वार पर खडे थे। अतुल को बोलने मे विलम्ब करते देख बोले, "प्रियनाथ को अभी थोडा बहुत होश है भैया, जो कुछ कहना चाहते हो खूब जोर से चिल्लाकर कहो। तभी वह तुम्हारी बात समझ पावेगा। कहने की जरूरत नही कि वृद्ध के इस प्रस्ताव का दो एक व्यक्तियो ने तत्काल ही अनुमोदन कर दिया।"

भीड को देखकर अतुल एक तो पहले ही क्रुद्ध हो उठा था, दूसरे इन लोगो के इन नितान्त अशोभन कुतूहल से मन ही मन आग बबूला होकर बोला, "आप लोग निरर्थक भीड लगाकर तो कोई उपकार कर नही सकेगे। जरा-सा बाहर जाकर बैठ जाये, तो मुझे जो कुछ कहना है मैं कह डालूँ।" नीलकण्ठ गरम होकर बोल उठे—निरर्थक कैसे जी? पडोसी के सकट मे पडोसी ही तो आया करता है। तुम्ही ऐसा कौन-सा सार्थक उपकार करने के लिए बिस्तर पर जा बैठे हो बाबू?" अतुल ने खडे होकर दृढतापूर्ण स्वर मे कहा, "मैं कोई उपकार करूँ या न करूँ, मगर आप लोगो को इस तरह हवा रोककर अपकार करने दूँगा। आप सभी लोग बाहर जाइए।"

अतुल का रुख देखकर नीलकण्ठ दो कदम पीछे हटकर खडे हो गये और बोले, "तुम अभी कल के छोकरे हो, इस तरह बढ बढकर बाते करते हो। नीलकण्ठ आड मे खडा कोई बोल उठा—"एल० ए० बी० ए० पास किया है न।" एक दस बारह साल का लडका झाँक रहा था। किसी की बात का कोई उत्तर न दे अतुल ने उसे ठेल दिया। वह बाहर एक दूसरे आदमी के ऊपर जा गिरा और वह दबे स्वर मे 'बडे सदरआला का बेटा' इत्यादि कहता हुआ बाहर चला गया। नीलकण्ठ आदि सज्जनो ने जब देखा कि अतुल की बातो को सुन सकने की कोई आशा नही है तो वे मन ही मन उसको धमकियाँ देते हुए चले गये।

जब वहाँ बाहर का कोई आदमी नही रह गया तब अतुल ने मरणासन्न रोगी के मुँह पर झुककर कहा, "मौसाजी।" प्रियनाथ अपनी लाल आँखे खोले देखते रहे। अतुल ने फिर ऊँची आवाज मे कहा,

---

* मूल्य के बदले मे जो प्राप्य होता है, उससे अतिरिक्त द्रव्य। बगाल मे उसे 'फाऊ' कहते हैं।

"मुझे पहचान रहे हैं आप?" प्रियनाथ ऑखे मूँद अस्पष्ट स्वर मे बोले, "अतुल।
"अव कैसे हैं?"

प्रियनाथ सिर हिलाकर वैसे ही अस्पष्ट स्वर मे बोले, "अच्छा नही हूँ।"

अतुल की दोनो ऑखे डबडबा आयी। वह बडी कठिनाई से अपने आपको सँभाल कर ऑसुओ से रुँधे हुए स्वर मे बोला, "मौसाजी, एक बात आपको बताये दे रहा हूँ। आप निश्चिन्त हो जायँ, ज्ञानदा का भार आज से मैंने लिया। प्रियनाथ अतुल की बात को समझ नही पाये। इधर उधर देखकर बोले, "कहाँ है ज्ञानदा?"

दुर्गामणि पति के मुँह पर झुककर ऑसुओ से आर्द्र रुदन भरे कण्ठ से बोली, "देखोगे एक बार ज्ञानदा को?" प्रियनाथ ने पहले कोई जवाब नही दिया। बाद मे कहा, "नही।"

दुर्गामणि रो पडी, बोली, "अतुल ने क्या कहा, सुना न? वह तुम्हारी ज्ञानदा का भार लेने आया है। अव तुम चिन्ता मत करो। उस अभागी को बहुत कुछ कोस चुके हो, आज एक बार बुलाकर आशीर्वाद दे जाओ।"

प्रियनाथ चुपचाप देखते रहे। दुर्गामणि के फिर उन्ही बातो का दोहरा जाने के बाद उनकी ऑखो से ऑसुओ की बूँदे चू पड़ी। अपने अक्षम हाथ को बडे कष्ट से उठाकर अतुल के मस्तक को छूकर उन्होने करवट बदली। उनके मुँह से कोई बात नही निकल पायी सही, मगर इस आसन्न-मृत्युकाल मे उनके हृदय के एक बहुत बडे बोझ को निस्सन्देह रूप से मैंने उतार लिया है इसका अनुभव करके अतुल अकस्मात् बालक की तरह उच्छ्वासित होकर रो पडा। साक्षी रही दुर्गामणि और भगवान्।

दूसरे दिन शाम को अस्सी फीसदी भद्र बगाली जो करते हैं वही प्रियनाथ ने भी किया। दफ्तर की तीस रुपये की नौकरी की माया छोडकर छब्बीस वर्ष की विधवा तथा तेरह वर्ष की अविवाहिता कन्या का भार तदपेक्षा दुर्भागी किसी सम्बन्धी के सिर पर डालकर छत्तीस साल की उम्र मे एक प्रकार से बिना इलाज के ही अस्सी वर्ष जैसी एक कंकालसार देह को तुलसी की वेदी के नीचे छोडकर 'गगा-नारायण ब्रह्म' नाम सुनते-सुनते, शायद हिन्दुओ के विष्णु-लोक को सिधार गये।

३

छोटे भाई अनाथनाथ को मजबूर होकर ऑगन की दीवार मे एक दरवाजा खोलना पडा। बडे भाई के क्रि-कर्म हो जाने के पन्द्रह-सोलह दिन बाद की बात है। दफ्तर जाते हुए चौखट पर खडे खडे पान चबाते-चबाते अनाथनाथ बोले—"अब बिना कहे तो नही रहा जाता भाभी। तुम तो सब कुछ समझ-बूझ रही हो। भैया ने मेरे साथ चाहे जितना भी बुरा व्यवहार क्यो न किया हो, पर मैं तुम्हे एक बेला मुट्ठी भर अन्न देने से मुँह नही मोडूँगा। परन्तु यह बात निश्चित है कि मैं इतनी बडी लड़की के ब्याह का भार नही ले सकता। कहने को मुझे डेढ सौ रुपये महीने मिलते हैं। लेकिन बाल-बच्चे भी तो कम नही हैं। इसके सिवाय मेरी लडकी भी बारह की हो गयी, देख रही हो न? इसीलिए मैं कहता हूँ कि लडकी को लेकर इस समय तुम्हे कुछ दिनो के लिए हरिपाल चला जाना चाहिए।

दुर्गामणि रसोई घर मे एक खम्भे के सहारे किसी तरह खडी थी। डरते-डरते सकोच के साथ बोली—"भैया की हालत तो तुम जानते हो देवर। उनके पास कुछ भी नही है। इतनी बडी विपत्ति की बात सुनकर भी एक बार देखने के लिए नही आ सके। और दूसरी बात यह कि वे जब तक आकर ले नही जाते तब तक जाऊँ कैसे?"

बडी बहू स्वर्णमजरी देवर के बगल मे दीवार की आड मे खडी थी। जरा ऊँची आवाज मे बोली—"भैया की हालत तो तुम जानते हो देवरजी। उनके पास कुछ भी नही है। इतनी बडी विपत्ति की मझली बहू! और ये कहने के लिए ही डेढ सौ रुपये पाते हैं। गृहस्थी को जिस तरह चलाती हूँ इसे तो मैं जानती हूँ न! और यह भी कह दूँ कि इतनी बडी सयानी लडकी तुम्हारे सिर पर है। ऐसी हालत मे भला किसे पडी है कि तुम्हे बुलाकर अपने यहाँ ठौर देगा बतलाओ तो? लेकिन इसीलिए मान-अभिमान करके घर मे बैठे रहने से भी तो काम नही चलेगा।"

दुर्गामणि ने धीरे-धीरे कहा—"नहीं दीदी, मेरा अब मान-अभिमान क्या?"

स्वर्ण ने बायें हाथ से देवर को पीछे ठेलकर खुद आगे बढकर कहा—"मैंने तुम्हे कोई बुरी बात तो कही नही मझली बहू कि इस तरह चबा-चबाकर बातें करती हो तुम। तुम्हे चाहे गुस्सा आये, चाहे बुरा लगे, तुम्हारी इस पर-कटी परी का ब्याह हमारे किये न होगा। लडकी तो एक छोटी बहू के भी है। यदि कोई एक बार भी देख ले तो मजाल क्या कि आँखें फेरकर चला जाय। सच्ची बात कह देती हूँ मझली बहू। जैसा तुम्हारी लडकी का चेहरा है वैसे ही हरिपाल जाकर जैसा भी हो किसी किसान-विसान को पकडकर ब्याह कर दो, बला दूर हो। सुना है कि वहाँ के लोग रूप-रग नही देखते, बस लडकी-भर कोई मिल जाय।

दुर्गामणि चुप रही। जिस विष की ज्वाला से उन्हे एक दिन अलग होना पडा था, उन्हीं विषैले दातो को फिर उद्यत देखकर वह डर के मारे काठ हो गयी। स्वर्ण बोली—"जैसा जिसका हो। तुम्हारी तो कोई निन्दा कर नही सकेगा। हाँ, हमारी अवश्य करेगे। तीन इम्तहानो से कम पासशुदा दामाद अगर घर में लायी तो चारो ओर निन्दा होने लगेगी। सभी कहेगे कि क्या किया। इतनी बडी ताई के रहते देवांगना जैसी प्रतिमा को पानी में डुबो दिया। सच कहती हूँ न देवर, कहो?" कहकर स्वर्ण ने अनाथ को कनखियो से देखा।

"ठीक ही तो कहती हो।" कहकर अनाथ ने महामाननीया भाभी की मर्यादा की रक्षा करके दफ्तर जाने का समय हो जाने के बहाने प्रस्थान कर दिया।

स्वर्ण ने कहा—"अपने भाई को घेर-घारकर किसी तरह किसी के गले मढ़ दो। इसमे तुम्हारे लिए लज्जा की बात नही मझली बहू। तुम्हारी कोई निन्दा नही कर सकेगा। कुल तीस रुपये की ही तो नौकरी थी। उन्हे कौन ऐसा जानता-पहचानता था। इन लोगो का भाई होने के कारण ही लोग जानते थे। मैं कहती हूँ कि कल का दिन अच्छा है। कल ही चली जाओ।"

दुर्गामणि ने मन ही मन अतुल की बातों पर विचार किया, मगर जेठानी और देवर के सामने कुछ कहा नही। क्योंकि इसी बडी जेठानी के नाते अतुल से उनका नाता था। स्वर्ण अतुल की माँ की ममेरी बहन थी।

उस दिन ज्ञानदा अतुल के पैरो पडकर जिस तरह रोई-धोई थी माँ ने उसे देखा था सही, लेकिन इतनी बड़ी विपत्ति को सिर पर लादे वे यह नही सोच सकी कि ज्ञानदा के ऐसा करने का कोई विशेष अर्थ है। दुखिया के घर तो एकाग्र होकर शोक करने का भी अवसर नही। इसीलिए पति की मृत्यु के अगले दिन से ही वे इस बात को सोच रही थी। कमरे मे जाकर देखा कि लडकी चुपचाप जमीन पर बैठी है। धीरे-धीरे उसके पास बैठकर बोली—"दीदी ने जो कुछ कहा, सुना है तूने?"

लडकी ने सिर हिलाकर जवाब दिया। लेकिन इसके बाद क्या कहे, यह उनकी समझ मे नही आया। लेकिन लड़की ने स्वय इस बात के लिए उन्हे मौका दिया उसने कहा—"माँ मायके तो कभी गयी नहीं, चलो एक बार हो आये।"

माँ बोली—"माँ जिन्दा नहीं है। भैया हैं, उन्होंने कभी कोई खोज-खबर ली नही। इतनी बडी विपत्ति की बात सुनकर एक चिट्ठी तक नही लिखी। इस हालत मे स्वेच्छा से भला कैसे चलूँ बेटी?"

लडकी ने कहा—"दुखियो की खोज-खबर कोई अपने मन से नही लेता माँ। उन्होने नही ली है—ये लोग भी तो नही लेते। ये लोग तो बल्कि जाने के लिए ही कह रहे हैं। हमारा मान-अभिमान पिता के साथ ही चला गया माँ, चलो, वही चलकर रहे।"

माँ की आँखो से आँसू बहने लगे। लडकी ने उन्हे सस्नेह पोछकर कहा—"मैं जानती हूँ कि सिर्फ मेरे ही लिए तुम कही जाना नही चाहती। नही तो ताई की बात सुनकर तुम एक दिन भी यहाँ नही रहती। मेरे लिए तुम्हे इतना नही सोचना होगा माँ। चलो, कुछ दिनो के लिए और कही चली जायँ। यहाँ रहने से तो तुम मर जाओगी।"

माँ से अब न रहा गया। लडकी को खीचकर हृदय से लगा लिया और सिसक-सिसककर रोने लगीं। लडकी ने उन्हे रोका नही, शान्त करने के लिए चेष्टा नही की। माँ की छाती पर मुँह रखकर चुपचाप बैठी रही। बहुत देर के बाद दुर्गामणि खुद ही बहुत कुछ शान्त होकर आँखे पोछकर बोली—"मैं तुझसे सच कहती हूँ ज्ञानदा, तू अगर न होती तो मुझे जहाँ सूझता, वही मैं उसी दिन चली जाती जिस दिन कि वे

लडकी चुपचाप मुँह झुकाये बैठी रही; उसने उत्तर नहीं दिया।

राखाल ने एक क्षण ठहर कर कहा—कहाँ जाओगी, ससुराल?

लडकी ने गरदन हिलाकर कहा—नही।

तो क्या अपने बाप के घर जाना चाहती हो?

उसने उसी तरह सिर हिला कर कहा, नही।

राखाल अधीर हो उठा—यह तो वहुत ही मुश्किल है। यहाँ के अपने डेरे पर भी न जाओगी, ससुराल भी नही जाओगी, बाप के घर भी नही जाना चाहती—किंतु चिरकाल अस्पताल मे रहने की तो व्यवस्था नहीं है शारदा। कही तो जाना ही पड़ेगा?

प्रश्न पूरा करके ही उसने देखा लड़की के घुटने के पास बहुत-सा कपड़ा आँखो के आँसू से भर गया है और इसी कारण वह बात न कह कर केवल सिर हिला कर अब तक उत्तर दे रही थी।

यह क्या शारदा, रोती क्यो हो, मैंने कोई अनुचित बात तो नही कही।

सुनते ही उसने झटपट आँखें पोछ डाली, किंतु उसी क्षण बात न कह सकी। रूँधे गले को साफ करने में समय लगा। उसने कहा—मैं और सोच नही सकती—मुझे किसी ने मरने भी नहीं दिया।

राखाल मन ही मन असहिष्णु होता जा रहा था। किंतु अन्तिम बात से नाराज हो गया—यह अभियोग मानो उसी पर है। तो भी अपने कंठस्वर को पहले की ही तरह संयत रख कर कहा—मनुष्य एक बार ही बाधा दे सकता है शारदा, बार बार नहीं। जो मरना ही चाहेगा, उसे किसी तरह भी बचाया नहीं जा सकता। और सोचना भी यदि चाहती हो, तो उसके लिए भी बहुत समय पाओगी। अब अच्छा है कि डेरे पर चलो। मैं गाडी ठीक करके तुमको पहुँचा आऊँ। मुझे और भी बहुत से काम हैं।

इन व्यंग्योक्तियो को लडकी ने अनुभव किया या नही समझ में नही आया, राखाल के मुँह की तरफ देखकर उसने कहा—मैं किराया न दे सकूँगी देवता।

ने दे सको तो मत देना।

आप क्या माँ को कह दीजियेगा?

राखाल ने कहा—नही, लडकपन मे बाबूजी के मर जाने पर तुम्हारी तरह असहाय होकर मैं भी एक दिन उनके पास भीख माँगने गया था। उन्होंने क्या भीख दी जानती हो? जिन चीजों की जरूरत थी, जो कुछ मैंने माँगा सब मिला। उसके बाद हाथ पकड कर अपनी ससुराल ले गयी—अन्न देकर, वस्त्र देकर, विद्यादान करके मुझे इतना बडा बनाया। आज मैं उनके पास जाऊँ दूसरे के लिए दया की अर्जी पेश करने? नहीं, यह मैं न करूँगा। जो करना उचित होगा, वे आप ही करेगी। किसी से तुमको सिफारिश न करानी पडेगी।

लडकी ने थोडी देर तक चुप रह कर पूछा—आपको कभी तो मैंने इस मकान मे नहीं देखा?

राखाल ने पूछा—तुम लोग कितने दिनों से इस मकान मे आये हो।

प्राय दो वर्ष से।

राखाल ने कहा—इसके बीच मुझे आने का अवसर नहीं मिला।

लडकी ने फिर कुछ क्षण स्थिर रहकर कहा—कलकत्ते मेंकितने ही लोग नौकरी करते हैं, मेरे लिए क्या कही भी एक दासी का काम नही मिल सकता?

राखाल ने कहा—मिल सकता है, किंतु तुम्हारी उम्र कम है। तुम्हारे ऊपर उपद्रव हो सकते हैं। तुम लोगों के घर का भाडा कितना हे?

शारदा ने कहा—पहले था छः रुपया किंतु अब देना पडता है केवल तीन रुपया।

राखाल ने पूछा—अचानक घट गया कैसे? मकानमालिको का तो ऐसा स्वभाव नही है?

शारदा ने कहा—जानती नही, शायद इन्होने कभी उनके दु ख की बात कह दी हो।

राखाल उछल पडा, बोला—तो इसीलिए देखो। मैं कहता हूँ तुमको चिता की बात नही है, तुम चलो। अच्छा, खाने पहिनने में तुम्हारा खर्च कितना लगता है?

शारदा ने कुछ सोच विचार किये बिना ही कहा—शायद और तीन चार रुपया लगेगा।

राखाल हँसने लगा, बोला—तुमने शायद एक वक्त ही खाने की बात सोच रखी है शारदा, किंतु

कभी न चलेगा। अच्छा, तुम क्या बँगला लिखना पढ़ना नहीं जानती?

शारदा ने कहा—जानती हूँ, मेरे हाथ की लिखावट भी खूब साफ है।

राखाल खुश हो उठा, बोला—तब तो कोई चिता ही नही है। तुमको मैं लेख ला दूँगा, यदि नकल करके दे सको तो मैं तुमको दस-पन्द्रह बीस रुपये तक स्वच्छन्दता से दिला सकूँगा। किंतु यत्नपूर्वक लिखना पडेगा, खूब साफ निर्भल होना चाहिये। ऐसा, कर सकोगी तो।

शारदा ने प्रत्युत्तर मे केवल सिर हिला दिया, किंतु आनन्द से उसका समूचा चेहरा चमक उठा। देखने पर राखाल एक बार फिर चौंक पडा। अंधेरे कमरे मे आकस्मिक बिजली के प्रकाश मे, इस लड़की के आश्चर्यजनक सौन्दर्य की मानो अति आश्चर्यजनक मूर्ति से उसने भेट कर ली।

राखाल ने कहा—जाऊँ, अब गाडी ठीक करके ले आऊँ।

लडकी ने कहा—हाँ, जाइये। अब मुझे कोई चिता नही है। शायद इसीलिए मैं जा नही सकी, भगवान ने मुझे वापस कर दिया।

राखाल गाडी लाने चला गया, सोचते सोचते गया, शारदा ने मेरे ऊपर विश्वास किया है। एक तरफ ये कई रुपये, और दूसरी तरफ—तुलना कर सकने लायक कोई भी चीज उसे याद नही पडी।

डेरे पर आकर राखाल ने नयी माँ की खोज मे ऊपर जाकर सुना वे घर पर नही हैं। कब और कहाँ गयी हैं दासी खबर न दे सकी। केवल इतना ही बता सकी कि घर की मोटर अस्तबल मे ही पडी हुई है, इसलिए या तो रास्ते मे उन्होने कोई दूसरी गाडी किराये पर ले ली है, या तो पैदल ही चली गयी हैं।

राखाल ने घबडाकर पूछा—उनके साथ कौन गया है?

दासी ने कहा—कोई भी नही। दरवान को देखा है कि बाहर ही बैठा है।

और रमणी बाबू?

दासी ने कहा—हमारे बाबू? वे तो रोज नही आते। आने पर भी रात के नौ-दस बज जाते हैं।

राखाल ने पूछा—रोज नही आते इसका माने? नही आते तो रहते कहाँ हैं?

दासी जरा मुँह दबाकर मुसकरा पडी, बोली—क्यो, क्या उनका घर-द्वार नही हैं क्या?

राखाल ने फिर दूसरा प्रश्न नही किया, मन ही मन समझ गया, असल बात इन लोगो से छिपी नहीं है। नीचे आकर उसने देखा वहाँ शारदा को घेर कर औरतो की बडी भीड जमा है। और बच्चो का दल, जो अबतक सोये नही थे, उनके आनन्द कोलाहल का बाजार बैठा हुआ है। उसको देखकर सभी खिसक गये—जिस प्रौढ़ा महिला के पास शारदा के कमरे की चाभी थी, उसने आकर ताला खोल दिया। राखाल ने पूछा—तुम्हारे पति की कोई खबर नही मिली?

शारदा ने कहा—नही।

आश्चर्य है।

नही, ऐसा कोई आश्चर्य क्या है?

कहती क्या हो शारदा, इससे बडा आश्चर्य और कुछ है क्या?

शारदा ने इसका जवाब नही दिया। कहा—मैं बत्ती जलाती हूँ। आप मेरे कमरे मे आकर जरा बैठिये। तबतक माँ को एक बार प्रणाम कर आऊँ।

राखाल ने कहा—माँ घर पर नही हैं।

शारदा ने कहा—नही है? कही हैं शायद। या तो कालीघाट गयी हैं, या दक्षिणेश्वर गयी है—इसी तरह प्राय ही जाती हैं—किंतु अभी ही लौटेगी। मैं बत्ती जला लूँ, हाथ मुँह धोने के लिए जल ला दूँ—जरा बैठिये, मेरे कमरे मे आपके पैरो की धूलि पड जाय।

राखाल ने हँसते हुए कहा—पैरो की धूलि पडना बाकी नही है, शारदा, वह तो पहले ही पड चुकी है।

शारदा ने कहा—यह मैं जानती हूँ। किंतु वह मेरी अनजान हालत मे—आज जानकारी मे पड जाय मैं आँखो से देखूँ।

राखाल क्या कहे सोचने पर ठीक न कर सका। बात अचिन्तनीय भी नही थी, अवाक् होने लायक भी नही थी—उसने उसे मृत्यु के मुँह से बचाया है, और बचने का रास्ता दिखा दिया है—यह लडकी देहात की जितनी ही अल्पशिक्षिता क्यो न हो, उसके सकृतज्ञ चित्ततल मे ऐसी एक सकरुण प्रार्थना अत्यन्त

स्वाभाविक है। कितु उस बात के लिए तो नही, कहने की अपरूप विशिष्टता से राखाल ने अत्यन्त आश्चर्य अनुभव किया। और बहुत सी परिचित स्त्रियो के मुँह और वहुपरिचित कंठस्वर उसकी आँखो की पलक गिरते ही याद पड गये। थोडी देर बाद उसने कहा—अच्छा, बत्ती जला दो। कितु, आज मुझे काम है—कल परसो मैं फिर आऊँगा।

बत्ती जलायी जाने पर वह क्षणकाल के लिए अन्दर आकर चौकी पर बैठ गया। जेब से कुछ रुपये निकाल कर उसके पास रखकर उसने कहा—यह है तुम्हारे पारिश्रमिक का कुछ अग्रिम शारदा।

कितु मुझसे आपका काम चलने लगे तभी तो। पहले शायद खराब होगा, कितु मैं अवश्य ही सीख लूँगी। देखियेगा मेरे हाथ की लिखावट? लाऊँ दावात कलम।

यह कह कर वह उसी क्षण उठ कर जा रही थी, कितु राखाल ने घबडा कर रोक दिया—नही, नही अभी रहने दो। मैं जानता हूँ, तुम्हारी लिखावट अच्छी है, मेरा काम अच्छी तरह चल जायगा।

शारदा केवल जरा हँस पडी। उसने पूछा—आपके मकान मे कौन कौन हैं देवता?

राखाल ने जवाव दिया—यहाँ तो मेरा मकान नहीं है, मेरा डेरा है। मैं केवल अकेला रहता हूँ।

उन लोगो को यहाँ ले आते क्यो नही?

राखाल विपद मे पड गया। यह प्रश्न उससे वहुतो ने पूछा है, जवाब देने मे उसने चिरकाल ही लज्जा अनुभव किया। इसके भी उत्तर मे उसने कहा—शहर मे लाना क्या सहज है?

सहज नही है यह वात लडकी स्वय ही जानती है। शायद उसे भी किसी देहाती हलके की बात याद पड गयी। थोडी देर तक चुप रहकर उसने पूछा—यहाँ कौन आप का काम कर देता है।

राखाल ने कहा—नौकरानी है।

रसोई कौन बनाता है? ब्राह्मन है?

राखाल ने हँसते हुए कहा—तभी हो चुका। मामूली एक प्राणी के लिए एक ब्राह्मन? मैं खुद ही पका लेता हूँ। कूकर नाम की एक चीज का नाम तुमने सुना है? उसमे आप ही आप रसोई बन जाती है। केवल खाने की सामग्री सजाकर रख देने से ही हो जाता है।

शारदा ने कहा—मैं जानती हूँ। उसके बाद खाना हो चुकने पर नौकरानी मांज-धोकर रख जाती है?

हाँ, ठीक यही बात है।

वह और क्या काम करती है?

राखाल ने कहा—जो जरूरत पडती है, सब कर देती है। मैं उसे पुकारता हूँ नानी—मुझे कुछ सोचना नही पड़ता। अच्छा, तुम्हारा आज क्या खाना होगा बताओ तो? घर मे चीज सामग्री तो कुछ है नही, दूकान से लाकर दे जाऊँ?

शारदा ने कहा—नही, आज मेरे लिए सभी के घर निमंत्रण है। किंतु आपको जाकर तो रसोई की चेष्टा करनी पडेगी?

राखाल ने कहा—नही, नही पडेगी। जिसे करना है उसने कर रखा है?

अच्छा, मान ले यदि वह बीमार हो?

नही, नही, है। उसकी बूढ़ी हड्डी खूब मजबूत है। तुम लोगो की तरह थोडी ही बात से टूट नही जाती।

कितु दैवयोग की बात तो कही नही जाती, हो भी तो सकती है—तो उस हालत मे?

राखाल ने हँस कर कहा—तो भी कोई चिंता नहीं है। मेरे डेरे के पास ही हलवाई की दूकान है, वह मुझे प्यार करता है, कष्ट उठाने नही देता।

शारदा ने कहा—आपको सभी प्यार करते हैं। उसी क्षण उसने कहा—आप चाय पीना खूब पसंद करते हैं—

तुमसे किसने कहा—

आपने खुद ही उस दिन अस्पताल मे कहा था। आपको याद नही है। बहुत देर से आपने कुछ भी खाया नही, तैयार करके ले आऊँ? जरा बैठियेगा।

किंतु चाय की व्यवस्था तुम्हारे घर मे नही है, कहाँ पाओगी।

मैं खूब पाऊँगी।

यह कह कर शारदा द्रुतपद से उठ कर जा रही थी, राखाल उसे मना करके कहा—ऐसे समय मे मैं चाय नही पीता शारदा, मुझसे सही नही जाती।

तो कुछ जलपान ला दूँ—लाऊँ? बहुत देर से आपने कुछ भी नही खाया, अवश्य ही आपको खूब भूख लगी है।

किंतु कौन ला देगा? तुम्हारे पास तो आदमी नही हैं।

हारू मेरी बात खूब सुनता है, उसको कहने से ही दौडकर चला जायगा।

यह कह कर ही वह फिर पहले ही की तरह व्यस्त होकर जा रही थी, किंतु इस बार भी राखाल ने मना किया। शारदा ने जिद तो नही की जरूर, किंतु उसके उदास मुख की तरफ देखकर राखाल को फिर उन सब बहुपरिचित स्त्रियो की बात याद आ गयी। उनके बीच उसका बहुत आना-जाना, बहुत जान-पहचान, अनेक सभ्यता-शिष्टता का लेन-देन है, किंतु ठीक इस चीज को वह मानो बहुत दिन हुए भूल गया है। उसे अपनी जननी की स्मृति अत्यन्त क्षीण है, अति शैशवकाल मे ही वे स्वर्ग को चली गयी हैं—एक फूस के घर के सामने बेढा लगाकर एक छोटा सा रसोईघर बना है, वहाँ लाल पाढ़ की धोती पहन कर कौन मानो रसोई पकाती थी—उसी माँ के अत्यन्त अस्पष्ट मुख का चित्र हठात् मानो उसकी दृष्टि में दिखाई देने लगा। मन के भीतर कैसा कर उठने के साथ ही वह झटपट उठ खडी हुई और बोली—कुछ खयाल मत करना शारदा, आज मैं जाता हूँ। फिर जिस दिन मुझे समय मिलेगा मैं स्वय आकर याचना करके तुम्हारे यहाँ चाय पी जाऊँगा और जलपान भी करूँगा।

शारदा ने गले मे आँचल डालकर प्रणाम करके कहा—लिखने का काम आप मुझे कब ला देगे?

इसके बीच ही एक दिन दे जाऊँगा।

अच्छा।

तो भी किसी बात के लिए वह मानो इधर-उधर कर रही है अनुमान करके राखाल ने पूछा—तुम और कुछ पूछोगी।

शारदा ने क्षणकाल मौन रह कर धीरे-धीरे कहा—पहले शायद मुझसे बहुत गलतियाँ होगी, आप किंतु नाराज मत होइयेगा। नाराज होकर मुझे छोड देने से तो फिर मेरे लिए खडी रहने की जगह ही नही है।

उसके सभय कठ की सकातर प्रार्थना से दया से विगलित होकर राखाल ने कहा—नहीं शारदा, मैं नाराज नही होऊँगा। किंतु तुम सीख लेने की चेष्टा करो।

प्रत्युत्तर मे इस बार उसने केवल सिर हिलाकर सम्मति दी। उसके बाद चुप होकर खडी रही।

लौटते वक्त राखाल पैदल ही चलने लगा। ट्राम गाडी मे बहुतो के बीच बैठने की आज उसे किसी तरह भी इच्छा नही हुई।

वह गरीब है, उल्लेख करने योग्य विद्या की पूजी भी नही हैं, नाम लेने लायक आत्मीयस्वजन भी नही है, तो भी वह इस शहर मे बहुत से गृहों मे बहुत से सभ्रान्त परिवारों में लोगो का स्वजन बन सका था, यह केवल उसके अपने ही गुण की बदौलत। उन लोगो के स्नेह, सहृदयता का अभाव नही था, अनुकम्पा भी खूब अधिक थी, किंतु अन्तर्निहित किसी अनिश्चित उपेक्षा के व्यवधान के कारण किसी ने भी उसे इसकी अपेक्षा अधिक निकट खींच नही लिया। क्योंकि वह था केवल राखाल—इससे अधिक नही। मेसो में रहता है। वह कहाँ है, यह न जानने पर भी उसके डेरे के ठिकाने से बरात का निमत्रणपत्र डाक के जरिये अनेक आते हैं। प्रीतिभोज के निमत्रणों मे उसका नाम नही छूटता। और न जाने से उस दिन भले ही न हो, दो दिनों के बाद भी यह बात उन लोगो को याद पड जाती है। कामकाज के घरों मे उसकी अनुपस्थिति वस्तुत खराब लगती है। जीवन मे अनेक विवाहो की अगुआई उसने की है, अनेक पात्र-पात्रियो को ढूँढ़कर चुन दिया है—उस परिश्रम की सीमा नही है। आनन्द से विभोर पितामाताओ ने साधुवाद से दोनो कानो को भरकर उसको कहा है, राखाल बहुत अच्छा आदमी, राखाल बडा परोपकारी है। कृतज्ञता के पारितोषिक इसी तरह चिर दिन यही पर समाप्त हुए हैं। इसके लिए उसके मन में विशेष कोई अभियोग था, ऐसी बात भी नही है। केवल, कभी-कभी, शायद नौकरी की निष्फल उम्मेदवारी के

दिन उसे याद पडते थे। किंतु वह कौन सी बड़ी बात है।

भीड के बीच चलते चलते आज फिर बार बार उन सब परिचिता औरतो की बाते याद पडने लगीं। उनकी पोशाक और उनके पहनावे, हावभाव, आलाप-आलोचना, पढना-सुनना, हॅसना-रोना—ऐसी ही कितनी क्या। व्यक्त अव्यक्त कितनी ही प्रणय की कहानियाँ, मिलन-विच्छेद के कितने ही ऑसुओ से भीगे हुए विवरण।

कितु राखाल? वेचरा वहुत ही अच्छा आदमी है, वहुत उपकारी है। बच्चो लडको को पढ़ाता है—मेसटेस मे रहता है।

और आज? क्या कह दिया शारदा ने? कहा—देवता, मुझसे बहुत गलतियाँ होगी, किंतु तुम छोड़ दोगे तो मेरे लिए खडी रहने की जगह नही है।

शायद सचमुच ही नही है। अथवा—एकाएक उसे बहुत अधिक हॅसी आ गयी। अपने ही मन में खिलखिलाकर हॅसकर बोला—राखाल बहुत अच्छा आदमी है—राखाल वहुत परोपकारी है।

उसके पास का अपरिचित पथिक अवाक् होकर उसके मुँह की तरफ देखने लगा। वह भी हॅस पडा। लज्जित राखाल एक और गली से द्रुतवेग से चला गया।

पांच

डेरे पर पहुॅचने पर राखाल को दो पत्र मिले—दोनो ही विवाह सबंधी थे। एक मे ब्रजविहारी ने खबर दी है, रेणु का विवाह इस समय स्थगित रहा, और यह समाचार नयी बहू को वना देना चाहिये। दूसरी कुछ मामूली बातो के बाद उन्होने चिट्ठी के अन्त मे लिखा है—तरह तरह के हगामो मे इन दिनो मैं अत्यन्त व्यस्त हूॅ, अगले शनिवार को संध्या के लगभग स्वयं तुम्हारे डेरे पर आकर सभी बातो को विस्तारपूर्वक कहूॅगा। दूसरी चिट्ठी आयी है मालिक के पास से। अर्थात् जिसके लडके-लडकियो को वह पढ़ाता है। भतीजे का विवाह अचानक ठीक हो गया है दिल्ली मे, कितु उतनी दूर जाना उसके लिए संभव नही है और वैसा विश्वासी आदमी भी कोई नही है। इसलिए वर का अभिभावक बनकर राखाल को जाना पडेगा। अगले रविवार को यात्रा किये विना काम नही चल सकता, अतएव शीघ्र आकर मुलाकात करो। इधर के कई दिन नागा होने से लडके-लडकियो की पढाई का जो नुकसान हुआ है उसका उल्लेख उन्होंने नही किया है, इसे ही राखाल यथेष्ट समझ लिया। जो भी हो, कम से कम दोनो ही समाचार अच्छे हैं। रेणु के विवाह के विषय मे उनके मन मे बहुत ही घबराहट थी। इस समय स्थगित रहने का अर्थ खूब स्पष्ट न होने पर भी पागल वर के साथ विवाह नही हुआ, इसी से वह पुलकित हो गया। दूसरी वात है, दिल्ली जाना। यह भी निरानन्द की बात नही है। जहाँ प्राचीन दिनों के बहुत से स्मृति चिह्न विद्यमान हैं, इतने दिनो तक, केवल पुस्तको मे ही वह उन सब बातो को पढाता रहा है, और लोगों के मुँह से सुनता रहा है। इस बार इसी उपलक्ष्य मे वे सभी ऑखो से दिखाई पडेगी।

दूसरे दिन सवेरे ही उसने चिट्ठी लेकर नयी माँ से मुलाकात की। उन्होने हॅसते हुए कहा, शुभ समाचार सवेरे ही मिल गया था, किंतु विस्तृत विवरण की प्रतीक्षा मे प्रति क्षण अधीर हो उठी हूॅ। एक प्रवल वाधा तो निस्सदेह थी, तो भी किस तरह उस शात, दुवले प्रकृति के मनुष्य ने अकेले इतनी वडी वाधा काट डाली, यह सचमुच ही आश्चर्यजनक है।

राखाल ने कहा—रेणु ने अवश्य ही अपने वाप के साथ सहयोग किया था नयी माँ, नही तो, किसी तरह भी यह विवाह बंद नही किया जाता।

नयी माँ ने धीरे-धीरे कहा—जानती तो नही हूॅ उसको, हो भी सकता है बेटा।

राखाल ने जोर लगा कर कहा—कितु, मैं तो जानता हूॅ, तुम देख लेना माँ, मेरा अनुमान ही सच है। वह स्वय न मदद देती तो उसके सिवा दूसरा कोई हेमन्त बाबू को रोक नही सकता।

नयी माँ ने तर्क नही किया, कहा—जो भी हो, शनिवार की शाम को मैं भी तुम्हारे यहाँ जाकर हाजिर हो जाऊँगी राजू, सब घटना अपने ही कानों से सुनूँगी। और भी एक काम होगा बेटा—फिर एक बार तुम्हारे काकाजी के पैरों की धूलि सिर पर चढा आ सकूँगी।

उनसे विदा होकर वह निचले तल्ले में शारदा के कमरे मे चला गया। वहाँ उसने देखा कि इस बीच वह लडको से कागज कलम लेकर एकाग्र मन से हाथ की लिखावट ठीक करने में लग गयी है। राखाल को देखकर घबडा कर उसने उन सबको छिपाने की चेष्टा नहीं की, बल्कि यथोचित मर्यादा के साथ उसको चौकी पर बैठा कर कहा—देखिये तो देवता, इससे क्या आपका काम चलेगा?

शारदा का हस्ताक्षर इतना सुन्दर हो सकता है ऐसी बात राखाल ने सोची नही थी। खुश होकर बार बार प्रशसा करके उसने कहा—यह मेरी अपनी लिखावट से भी अच्छी है शारदा, हम लोगों का खूब काम चलेगा। तुम मन लगा कर लिखना पढ़ना सीखो, तुमको खाने पहिनने की चिंता न रहेगी। हो सकता है कि तुम ही कितने लोगो के खाने पहनने का भार ले लोगी।

सुन कर अकृत्रिम आनन्द से लडकी का मुँह चमक उठा। राखाल दो मिनट तक चुपचाप देखते रहने के बाद जेब से एक दस रुपये का नोट निकाल कर बोला—यह रुपया तुम अपने पास रखो शारदा, यह तुम्हारा ही है। मैं एक मित्र का विवाह कराने दिल्ली जा रहा हूँ, लौटने में शायद दस बारह दिनो की देर होगी—आने पर तुम्हारे लिए लेख ला दूँगा—क्या कहती हो? कुछ भी चिता मत करो—कैसा?

शारदा ने कहा—मुझे रुपये की अभी जरूरत नही थी देवता—वही अब तक खर्च नही हुआ है।

रहने दो, रहने दो—यह रुपया भी आप ही आप चुकता हो जायगा। यदि अचानक जरूरत पड गयी तो तुम किससे माँगोगी बताओ? किंतु मेरे लिए तुम चिता मत करना, मैं जितना शीघ्र हो सकेगा चला आऊँगा। आते ही तुम को दे जाऊँगा।

शारदा से विदा होकर राखाल अपने मालिक के घर जा पहुँचा। वहाँ मालिक गृहिणी और उसमे बहुत वादानुवाद होने के बाद निश्चय हुआ कि सब दलबल लेकर उसे रविवार की रात की गाडी से ही यात्रा करनी पडेगी। गृहिणी ने कह दिया—राखाल, तुम्हारे अपने इष्ट मित्र कोई जाना चाहे तो स्वच्छन्दता से लेते जाना—सब खर्च हम लोगो का ही रहेगा। याद रखो, इस पक्ष के मालिक तुम ही हो। रुपया-पैसा, गहना पहनावा, सामान असबाब, सभी का दायित्व तुम्हारे ऊपर है।

राखाल को सब से पहले याद पड गयी तारक की बात। वह चतुर आदमी है, उसे साथ लेना होगा, बिना खर्च का यह सुअवसर नष्ट न किया जायगा। केवल एक आशका थी उस मनुष्य की नैतिक बुद्धि की। वहाँ उचित-अनुचित का प्रश्न उठ खडा होने पर उसे राजी करना कठिन होगा। किंतु इस बीच वह मास्टरी स्वीकार कर बर्दवान चला जा सकता है, यह बात उसे याद ही नही पडी। क्योंकि उसके लौट आने की प्रतीक्षा भले ही न कर सके, एक चिट्ठी भी लिख कर न दे जायगा ऐसा हो ही नही सकता। रविवार आने मे अभी तीन दिन बाकी है, इसके बीच वह आकर भेट करेगा ही, नही तो कल एक बार समय निकाल कर उसे खुद ही तारक के मेस मे जाकर खबर दे आनी पडेगी। डेरे पर आकर राखाल तरह तरह के कामों मे फस गया। वह शौकीन आदमी है, इन कई दिनो की लापरवाही से घर मे बहुत विश्रृखला बढ़ गयी है, जाने के पहले उन सबको ठीक कर देना चाहिये। साहब के घर से एक बडा बक्स खरीदना जरूरी है, विदेश मे ताला खोलकर कोई कुछ चुरा न सके। वर का अभिभावक बनने योग्य कपड़े पहनावे क्या क्या हैं, देख लेना आवश्यक है—न रहने से झटपट तैयार कराने की अत्यन्त आवश्यकता है और केवल तारक को ही नही, योगेश बाबू को भी एक बार कह देना पडेगा। पश्चिमभारत जाने की साध उनकी बहुत दिनो की है, केवल अर्थभाव से ही उसे वे मिटा न सके हैं। आफिस के बडे बाबू को पकडकर यदि दस दिन की छुट्टी मजूर करायी जा सके तो योगेश आजीवन कृतज्ञ बना रहेगा। मालिक के घर भी कम से कम एक बार जाना चाहिये, नही तो छोटी मोटी भूल पकडी जायगी क्यो? आलोचना जरूरी है, क्योंकि विदेश मे समूचा दायित्व तो उसी पर है। इस संक्षिप्त समय मे इतना काम वह किस तरह पूरा कर सकेगा, सोच कर ठीक न कर सका। शनिवार के सायकाल को तो केवल नयी माँ और ब्रजबाबू के ही लिए रखना पडेगा। उस दिन शायद और कुछ भी न किया जा सकेगा। इसके बीच याद करके डाकघर से कुछ रुपया निकालना पडेगा, क्योंकि अपना सबल न लेकर

राह चलना विपज्जनक है। कामो की अधिकता और उनके तकाजो से राखाल मानो अधेरा देखने लगा। किंतु उसका एक कान प्रति क्षण दरवाजे पर लगा ही रहता है तारक के जजीर खटखटाने और गले की आवाज की प्रतीक्षा मे। किंतु उसका दर्शन ही नही मिलता। इधर गुरुवार पार होकर शुक्रवार आ गया। वह दोपहर को डाक घर मे रुपया निकालने के लिए गया। कुछ ज्यादा निकालना होगा। याद पड गया यदि तारक कह दे कि बाहर जाने लायक कपडे मेरे पास नही हैं तो किसी तरह यह फालतू रुपया उसके हाथ मे ठूँस देना पड़ेगा। इसमे दिक्कत है। वह उधार नहीं लेता, दान भी नही चाहता, उपहार भी नही लेता। एक ही आशा है, राखाल के बार बार के अनुरोध से वह अन्त मे हार मान लेता है, समय नष्ट करने से काम नही चलेगा। डाकघर से एक टैक्सी लेनी पडेगी। तारक कुछ नाराज तो होगा ही—होने दो।

किंतु रुपया निकालने मे अधिक देर हो गयी। विरक्त चेहरे से बाहर आकर गाडी का भाडा ठीक कर रहा था कि उसी समय मुहल्ले के डाकिये ने हाथ में एक चिट्ठी दे दी—लिखावट तारक की थी। खोलकर देखा उसने बर्दवान के किसी गाँव से उस हेडमास्टरी का समाचार भेजा है और आने के पहले मुलाकात करके न आ सका इसके लिए दु:ख प्रकट किया है। नयी माँ और ब्रजबाबू को प्रणाम जताया है और पत्र के उपसहार मे आशा प्रकट की है कि शीघ्र ही कुछ दिनो की छुट्टी लेकर आवेगा और न कह कर चले आने के अपराध के लिए स्वय आकर क्षमायाचना करेगा। यह भी लिखा है कि रेणु का विवाह रुक जाने का समाचार जानकर ही वह गया है। राखाल ने चिट्ठी को जेब मे रखकर एक लम्बी साँस ले ली, जो हो टैक्सी भाडा से तो बच गया।

दूसरे दिन सवेरे राखाल नये बक्स मे कपड़े पहनावे सजा सजाकर रख रहा था, लौटने मे दस बारह दिन की देर होगी। नयी माँ उसी समय वहाँ आ गयी। राखाल ने प्रणाम करके कुर्सी आगे बढ़ायी। उन्होने बैठकर पूछा—कल रात को ही तुम लोगो को जाना पडेगा बेटा?

हाँ माँ, कल ही सबको लेकर रवाना हो जाना पडेगा।

लौटने मे आठ नौ दिन की देर होगी शायद?

हाँ माँ, आठ दस दिन तो लगेगे।

नयी माँ ने क्षण काल मौन रह कर पूछा—कितने बज गये हैं राजू?

राखाल ने दीवार की घडी की तरफ देख कर कहा—पाँच बज गये हैं। मुझे भय था, आपको आने मे ही शायद देर हो जायगी, किंतु आज काका जी ही देर कर रहे हैं।

देर होने दो बेटा, उनके आने से ही बच जाऊँगी।

राखाल ने हँस कर कहा—पागल के साथ जब कि विवाह बन्द हो गया है, तब सोच करने की तो और कोई बात नही है माँ। उनके न आ सकने से भी तो कोई क्षति नही है।

नयी माँ ने सिर हिलाकर कहा—नही बेटा, केवल रेणु ही तो नही, तुम्हारे काकाजी भी तो मौजूद हैं। मैं केवल यही सोचती हूँ कि वे निरीह शात मनुष्य अकेले कितनी लाछना कितना उत्पीडन सह रहे हैं। यह कहते कहते उनकी आँखे आँसू से भर गयी।

राखाल मन ही मन मामा जी हेमन्त बाबू के पहिये की तरह वृहदाकार मुँह का याद करके चुप हो रहा। यह काम सहज ही मे नही हुआ है यह सुनिश्चित है।

नयी माँ कहने लगी—यह विवाह स्थगित हो गया, केवल यही बात उन्होने लिखी है। किंतु चिर दिन के लिए या कुछ दिन के लिए यह बात तो अभी तक जानी नही जा सकी है राजू।

राखाल बोल उठा—चिर दिन के लिए माँ, चिर दिन के लिए। उन पागलो के घर मे आप की रेणु कभी नही पडेगी, आप निश्चित हो जाइये।

नयी माँ ने कहा—भगवान् ऐसा ही करे। किंतु उस दुर्बल मनुष्य की बात सोच कर मैं मन मे किसी तरह भी शांति नही पा रही हूँ राजू। दिन रात कितनी ही चिताएँ कितने प्रकार के भय ही उत्पन्न होते हैं यह मैं किससे कहूँ?

राखाल ने कहा—किंतु उनको क्या आप खूब दुर्बल मनुष्य समझती हैं माँ?

नयी माँ ने जरा म्लान हँसी हँसकर कहा—वे तो चिर दिन ही दुर्बल प्रकृति के हैं राजू। इसमे और सदेह ही क्या है।

राखाल ने कहा—दुर्बल मनुष्य क्या इतना आघात चुपचाप सह सकता है माँ? जीवन मे कितनी 'व्यथाएँ काकाजी ने सहन की हैं, यह आप नही जानतीं, किंतु मैं जानता हूँ। वह देखो, वे आ रहे हैं।

खुले दरवाजे के भीतर से उसने ब्रजबाबू को देख लिया था। झटपट उठकर दरवाजा खोल दिया और उनके अन्दर आ जाने पर वह एक तरफ हट खडा हुआ। नयी माँ उनके पास आकर गले मे आँचल डालकर प्रणाम करके पैरो की धूलि मस्तक पर चढ़ाकर उठ खडी हुई।

ब्रजबाबू चेयर खीचकर बैठ गये। बोले—रेणु का विवाह मैंने वहाँ नही किया, सुना है तो नयी बहू?

हॉ, सुना है। शायद बहुत ही गडबडी हुई?

यह तो होगी ही नयी बहू।

तुम निर्विरोधी शात मनुष्य हो, मुझे बडी चिंता थी, किस तरह तुम यह विवाह बन्द करोगे।

ब्रजबाबू ने कहा—शांति ही मैं पसद करता हूँ, विरोध करने की कभी इच्छा नही होती, यह बात सच है। किंतु तुम्हारी लडकी है, फिर भी तुमको बाधा देने का अधिकार नही है। इसीलिए सब भार आ पडा मेरे ऊपर, अकेले मुझे ही उसको ढोना पडा। उस दिन बार-बार मुझे कौन सी बात खयाल आ रहा था जानती हो नयी बहू, खयाल आ रहा था आज यदि तुम घर मे रहती सब बोझा तुम्हारे कधे पर फेंक कर मैं गड के मैदान मे एक बेच पर लेट कर रात बिता देता। उन लोगो को लक्ष्य करके मन ही मन मैंने कहा, आज उसके रहने पर तुम लोग समझते कि जुलुम करने की एक सीमा है—सबके ऊपर सब कुछ चलाया नही जा सकता।

सविता मुँह नीचे किये चुपचाप बैठी रही। उस दिन का पूरा-पूरा विवरण पूछ कर जान लेने का साहस उनको नही हुआ। राखाल भी उसी तरह निर्वाक् स्तब्ध हो रहा। ब्रजबाबू ने अपने से ही इससे अधिक खोल कर नही कहा।

दो तीन मिनट तक सबके चुप रहने के बाद राखाल ने कहा—काकाजी, आंज आप बडे ही थके-मादे दिखाई पड रहे हैं।

ब्रजबाबू ने कहा—इसका कारण भी यथेष्ट है राजू। इन छः सात दिनो तक कार-बार के कागज पत्र लेकर बहुत खटना पडा है।

राखाल ने डरकर पूछा—सब ठीक है तो काकाजी?

ब्रजबाबू ने कहा—ठीक बिलकुल ही नही है। सविता को लक्ष्य करके बोले—तुम्हारा वह रुपया मैंने एक साल पहले उठा कर बैंक मे रख दिया था, सोचा था, मेरे अपने कारोबार की अपेक्षा इन लोगो के हाथ मे ही भय की सभावना कम है। अब देखता हूँ कि मैंने ठीक ही सोचा था। अब इस पर भी भरोसा है नयी बहू, इसे न लेने से काम चलेगा ही नही।

सविता ने इस बार मुँह ऊपर उठाकर देखा, कहा—न देने से क्या नष्ट होने का डर है?

है तो जरूर ही नयी बहू—कहा तो नहीं जा सकता।

सविता चुप हो रहीं।

ब्रजबाबू ने कहा—क्या कहती हो नयी बहू, तुम चुप हो रही क्यो?

सविता ने दो मिनट निरुत्तर रहकर कहा—मैं अब क्या कहूँ मझले मालिक, रुपया तुमने ही दिया था, तुम्हारे काम से ही यदि जायगा तो जाने दो। किंतु मेरे पास भी तो और कुछ नही है।

सुनकर ब्रजबाबू मानो चौंक पडे। थोडी देर बाद धीरे-धीरे बोले—ठीक बात है नयी बहू, यह दुस्साहस करना मुझसे नही हो सकता। तुम्हारा रुपया मैं तुमको ही लौटा दूँगा। कल एक बार आओगी?

यदि आने को कहो तो आऊँगी।

और तुम्हारे गहने?

तुम क्या नाराज होकर कह रहे हो मझले मालिक?

ब्रजबाबू सहसा उत्तर न दे सके। उनकी आँखो की दृष्टि वेदना से मलिन हो उठी। उसके बाद उन्होने कहा—नयी बहू, जिसकी चीज है उसे लौटाने जा रहा हूँ नाराज होकर—ऐसी बात आज तुम भी सोच सकी?

सविता मुँह झुकाये चुप हो रही। ब्रजबाबू ने कहा—मैं जरा भी नाराज नही हुआ नयी बहू, सरल

मनसे ही लौटा देना चाहता हूँ। तुम्हारी चीज तुम्हारे पास रहे, उस भार को ढोते फिरने की सामर्थ्य अब मुझमे नही है।

सविता तब भी पहले की ही तरह निर्वाक् हो रही—कुछ भी जवाब नही दे सकी।

सध्या हो गयी, ब्रजबाबू उठ खडे हुए, बोले—आज अब जाता हूँ। कल इसी समय एक बार आ जाना—मेरे अनुरोध को मत टालना नयी बहू।

राखाल ने उनको प्रणाम करके कहा—एक मित्र का विवाह कराने मैं कल रात की गाडी से दिल्ली जा रहा हूँ काकाजी, लौटने मे शायद आठ दस दिन की देर होगी।

ब्रजबाबू ने कहा—भले ही हो, किंतु विवाह क्या केवल कराते ही घूमते रहोगे, खुद न करोगे?

राखाल ने हँस कर कहा—मुझे लडकी देगा, ऐसा अभागा संसार मे कौन है काकाजी?

सुनकर ब्रजबाबू भी हँस पडे, बोले—है राजू। जिन लोगों ने मुझे लडकी दी थी, संसार से वे लोग आज भी लुप्त नही हुए हैं। तुमको लडकी देने का दुर्भाग्य उनकी अपेक्षा अधिक नही है। विश्वास न हो तो अपनी नयी माँ से आड मे पूछ लो, वे समर्थन करेगी। जाता हूँ नयी बहू, कल फिर भेट होगी।

सविता ने उनके पास आकर पैरो की धूलि लेकर प्रणाम किया। वे अस्पष्ट शब्दो मे शायद आशीर्वाद देते-देते ही बाहर चले गये।

दूसरे दिन ठीक ऐसे ही समय मे ब्रजबाबू आ पहुँचे। उनके हाथ मे सीलमुहर किया हुआ एक टीन का बक्स था। सविता पूर्वाह्न मे ही आ गयी थी। बक्स को उनके सामने मेज पर रख कर उन्होंने कहा—यह इतने दिनो से बैंक मे ही जमा था। इसके अन्दर तुम्हारे सभी गहने ही मौजूद हैं देख लोगी। और यह लो अपने बावन हजार रुपये का चेक। आज मैं छुटकारा पा गया नयी बहू। बोझा ढोते फिरने की मेरी पारी खतम हो गयी।

किंतु तुमने तो कहा था इन सब गहनो को रेणु पहनेगी?

ब्रजबाबू ने कहा—गहने तो मेरे नही हैं नयी बहू, तुम्हारे हैं। यदि वह दिन कभी आ जाय उसको तुम देना।

राखाल बार-बार घडी की तरफ देख रहा था। ब्रजबाबू ने यह देख कर कहा—तुम्हारा शायद समय हो चला राजू?

राखाल ने लज्जित होकर स्वीकार कर के कहा—उस मकान से होते हुए सबको लेकर स्टेशन जाना पडेगा कि नही—

तो अब मैं उठता हूँ। किंतु लौटने पर एक बार भेट करना राजू।

यह कह कर वे उठ खड़े हुए। हठात् बात याद पड जाने पर बोले—किंतु आज तो तुम्हारी नयी माँ का अकेले जाना उचित नही है। कोई पहुँचा न देने से—

राखाल ने कहा—अकेले नही काका जी। नयी मा का दरवान, अपनी मोटर, सब कुछ गेट पर ही खडे हैं।

ओ.—हैं? अच्छा, अच्छा। नयी बहू, तो मैं जाऊँ?

सविता ने पास जाकर कल की तरह प्रणाम करके पैरो की धूलि ले ली, धीरे-धीरे बोलीं—फिर कब देख सकूँगी मझले मालिक?

जिस दिन बुला भेजोगी आऊँगा। कोई काम है क्या नयी बहू?

नही, काम कुछ भी नही है।

ब्रजबाबू ने हँस कर कहा—केवल यो ही देखना चाहती हो?

इस प्रश्न का जवाब क्या था? सविता गरदन झुकाये रह गयी।

ब्रजबाबू ने कहा—मैं कहता हूँ इन सबकी जरूरत नही है नयी बहू। मेरे लिए अपने मन में और तुम पछतावा मत रखो, जो भाग्य में लिखा था, वह हो चुका—गोविन्द ने उसकी मीमांसा भी एक प्रकार से कर दी है—आशीर्वाद देता हूँ, तुम लोग सुखी हो। मेरे ऊपर अविश्वास मत करो नयी बहू मैं सच्ची बात कह रहा हूँ।

सविता पहले की ही

राखाल को याद पड गया, अब देर करना ठीक नही है। अविलम्ब ही गाडी ठीक कर के सारा सामान लादना पडेगा और यही बात कहते-कहते वह घबडाहट मे पडा हुआ बाहर चला गया।

सविता ने मुँह ऊपर उठा कर देखा, उनकी दोनों आँखो से आँसू की धारा बह रही थी। ब्रजबाबू कुछ हट कर खडे हो गये, बोले—अपनी रेणु को क्या एक बार देखना चाहती हो नयी बहू?

नही मझले मालिक, यह प्रार्थना मैं नही करती।

तो रो क्यो रही हो? तुम मुझसे क्या चाहनी हो?

जो चाहूँगी दोगे बताओ?

ब्रजबाबू उत्तर न दे सके। केवल उसके मुँह की तरफ देखते हुए खडे रहे।

सविता ने कहा—कब तक जीवित रहूँगी मझले मालिक, मैं क्या लेकर रहूँगी।

ब्रजबाबू इस प्रश्न का भी उत्तर न दे सके, सोचने लगे। ऐसे ही समय मे बाहर से राखाल की आहट आवाज सुनाई पडी। सविता ने झटपट आँचल से आँखे पोछ डाली और दूसरे ही क्षण दरवाजे ठेल कर वह अन्दर आ गया बोला—नयी माँ, आपका ड्राइवर पूछ रहा है, अब कितनी देर है? चलिंगे न इस बक्स को आपकी गाडी पर रख आऊँ?

नयी मा ने कहा—राजू मुझे बिदा कर सकने पर ही बच जायगा। मैं इसके लिए आफत बला हूँ।

राखाल ने हाथ जोड कर जवाब दिया—मा के मुँह से वह नालिश बेकार है नयी मा। यह रह गया आप के राजू का दिल्ली जाना, बचपन की तरह फिर एक बार आज मा की गोद में ही मैंने आश्रय लिया। यहा से अब जाने नही देता मा—जितना ही कष्ट लडके के घर मे क्यो न हो।

सविता मानो लज्जा से मर गयी। राखाल कह चुकने के बाद तुरन्त ही अपनी गलती समझ गया था, किंतु भले आदमी ब्रजबाबू ने उसे लक्ष्य भी नही किया। बल्कि, उन्होने कहा—समय बीत रहा है नयी बहू, राजू बकस को तुम्हारी गाडी पर रख आवे, मैं तब तक इसकी रखवाली करूँ।

यह कह कर उन्होने खुद ही बकस उसके हाथ पर रख दिया।

प्रश्न का उत्तर दबा रह गया। राखाल के पीछे नयी मा बाहर चली गयी।

छः

विवाह कराकर राखाल दस बारह दिनो के बाद दिल्ली से लौट आया। यह कहना निरर्थक है कि, वर को अभिभावकता मे उससे त्रुटि नही हुई और मालिक-मालकिन दोनो का ही उसकी कार्यकुशलता से यत्परानास्ति आनन्द लाभ हुआ।

किंतु उसके इतने दिनो के दिल्ली-प्रवास की केवल यही एक घटना ही नही है। वहाँ वह यथाविधि प्रभाव-प्रतिष्ठा बढा आया है। उसका एक फल यह हुआ है कि विवाह योग्य इच्छित पात्र की हैसियत से उसको कई लडकियाँ दिखायी गयी हैं। वे साधारण मामूली गृहस्थ घर की लडकियाँ हैं। पश्चिम मे रह कर उनका स्वास्थ्य और उम्र बढ गयी है, किंतु अभिभावको की तरह-तरह की असुविधाओं के कारण अभी तक उनका विवाह न हो सका है। बार-बार के अनुरोधो के उत्तर मे राखाल कह आया है कि कलकत्ते मे अपने काका जी और नयी मा की राय जान कर बाद को चिट्ठी लिखूँगा।

उसके इस सौभाग्य का कारण उसका मित्र योगेश है। वह बराती दल मे शामिल होकर बिना खर्च के ही दिल्ली हस्तिनापुर, किला, कुतुबमीनार आदि अब तक के केवल लोगो के मुँह से सुने हुए दर्शनीय स्थानो और वस्तुओ को देख सका है, अतएव मित्र का कार्य उसने बाकी नही छोड़ा है। कृतज्ञता का ऋण सोलहो आने चुका दिया है। लोगो ने वहाँ उससे पूछा, राखाल बाबू ने अभी तक विवाह नही किया क्यो? योगेश ने जवाब दिया है, उसका शौक। हमलोगो की तरह साधारण जनो के साथ उनका मत मिलेगा

ऐसी आशा करना ही अन्याय है। कन्यापक्षवालो ने सकोच के साथ प्रश्न किया वे कलकत्ते मे करते क्या हैं? योगेश ने उसी क्षण उत्तर दिया है, विशेष कुछ भी नही उसके वाद मुसकुरा कर फिर कहा—करने की जरूरत ही क्या है?

इस बात के अर्थ तरह-तरह के हैं। कलकत्ते के विशिष्ट लोगो के दिविध तथ्य राखाल के मुँह पर है। घरो की स्त्रियो तक के नाम जानता है। नये बैरिस्टर, हाल के पास किये आई०सी०एस० लोगो का उल्लेख वह पुकारने के नाम से करता है। पचू बोस, डम्बलसेन, पटल बनर्जी—सुन कर उतनी दूर के प्रवासी साधारण नौकरी पेशेवाले बंगाली अवाक् हो जाते हैं। कितु अब तक विवाह की बात पर राखाल ने केघल मुँह से ही आपत्ति की है ऐसी ही बात नही है, उसके मन मे भी भय है। क्योंकि अपनी अवस्था के सवध मे भी वह अचेतन नही है। वह जानता है, इस कलकत्ता शहर में अपने परिचित मित्रो की परिधि को यथेष्ट सकुचित किये विना परिवार पालन करना उसकी शक्ति के बाहर है। जिस वातावरण मे उसने इतने दिनो से विचरण किया है वहाँ छोटा वन कर रहने की कल्पना करने मे भी वह पराड्मुख है। फिर भी. नि.सग जीवन के तरह-तरह के अभाव उसे खलते हैं। वसंत काल मे विवाहोत्सव की बाँसुरी बीच-बीच में उसे उदास कर देती है। बराती बनने के साधारण आमत्रण से उसका मन संभवतः उदास हो जाता है। समाचार-पत्र मे कहाँ किस आत्महत्या करने वाली अनूढ़ा कन्या का पीला चेहरा अधिकाश समय मे उसे दिखाई पड़ने लगता है, शायद अकारण अभिमान से किसी समय उसे ख्याल आता है कि ससार की इतनी प्रचुरता, इतने अभाव, इतने साधारण इतने निरन्तरो के बीच केवल वही क्या किसी की नजर मे नही पडता? केवल उसी को वरमाला पहनाने के लिए क्या कही कोई भी कुमारी नही है?

कितु ये सब मनोभाव उसके क्षणमात्र के ही लिए है। मोह कट जाता है। फिर वह अपने को वापस पा लेता है—हँसने लगता है, आमोद करता है, लडका पढाता है, साहित्य की आलोचना मे योग देता है, वुलाहट आने पर विवाह की बैठक सजाने दौड पडता है, नव वर-वधू को फूलो का गुच्छा देकर शुभकामना प्रकट करता है। फिर दिन पर दिन जैसे बीतते थे वैसे ही बीतने लगते हैं। इतने दिनो के इस मनोभाव में इस बार परिवर्तन हुआ है। दिल्ली से लौटने पर इस बार उसने देखा है कलकत्ता ही समूची दुनिया नही है। इसके भी बाहर बगाली लोग रहते हैं—वे लोग भी मनुष्य हैं। उसको भी कन्या देने वाले माता-पिता हैं। कलकत्ते मे जिस समाज मे और जिन लड़कियो के सम्पर्क मे वह इतने दिनो तक रहता आया है, प्रवास के साधारण घरों की उन लडकियो को सभवतः बहुत सी बातों मे हीन कह कर परिचय कराने में आज भी उसे लज्जा मालूम होगी, तो भी इस नयी अभिज्ञता ने उसे सांत्वना दी है, बल प्रदान किया है, भरोसा दिया है।

ससार में किसी का भी भार ग्रहण करने की शक्ति उसमे नही है। दूसरे के मुँह से सीखे हुए इस आत्म-विश्वास ने इतने दिनो तक सभी विषयो मे ही उसे दुर्बल वनाया है। उसने सोचा है स्त्री-पुत्र कन्या—उनकी कितनी दिशाओं में कितने प्रकार की आवश्यकताए हैं, खाने पहिनने, मकान किराये से लेकर रोग शोक पढ़ना लिखना—मांगो का अन्त नही है। इनकी पूर्ति करेगा वह कहाँ से? कितु उसके सदेह मे पहले कुल्हाडी चला दी है शारदा ने—अकूल समुद्र के बीच उसने जिस दिन उसका आश्रय लिया है—प्रत्युत्तर में उसको भी उस दिन उसने अभय देकर कहा है, तुमको डर नही है शारदा, मैं तुम्हारा भार लेता हूँ। शारदा उस पर विश्वास कर के अपने घर लौट गयी है—बचने की इच्छा की है। इस दूसरे के विश्वास ने ही इतने दिनो के बाद उसे अपने प्रति विश्वासवान बना दिया है। फिर यही चीज उसकी बहुत गुनी बढ़ गयी है इस बार प्रवास से लौटने पर। उसे केवल यही खयाल आया है कि वह असमर्थ नही है, दुर्बल नही है, ससार मे बहुतों की तरह वह भी बहुत कुछ कर सकता है। इस नवजाग्रत चेतना का वलिष्ठ चित्त लेकर पहले ही भेट करने गया शारदा के साथ। कमरे मे ताला बन्द था। एक छोटासा बच्चा खेल रहा था। उसने कहा—भाभी ऊपर मालकिन के घर गयी हैं, रात को हम सभी लोगो के लिए निमत्रण है।

राखाल ने ऊपर जाकर देखा तैयारियो की धूम है—लोगो को खिलाने पिलाने का आयोजन चल रहा है। रमणी बाबू अकारण ही अत्यन्त व्यस्त हैं—काम बनाने से अधिक अकाज ही कर रहे हैं। और शारदा कमर मे धोती लपेट कर चीज—सामान भडार घर मे सिलसिलेवार रख रही है। रमणी बाबू मानो बच

गये—राजू तो आ गया। नयी बहू?

सविता अन्यत्र थी, चिल्लाहट सुन कर पास आ खडी हुई। रमणी बाबू साँस छोड़कर बोले—जाने दो जान बची—राजू आ गया है। बेटा, अब से सब भार तुम्हारे ऊपर है।

सविता ने कहा—यह भी अच्छा हुआ, तुम अब अपने कमरे मे जाकर जरा आराम करो। हमलोगो को छुटकारा मिले।

शारदा छिपेतौर से जरा हँस पडी, राखाल से उसने पूछा—कब आये?

कल।

कल? तो फिर कल ही क्यो नही आये?

बहुत काम था, समय नही मिला।

सविता ने हँसते हुए कहा—उसको मरने से बचाया है इसीलिए राजू का उस पर खूब दबाव है।

शारदा मिठाई की टोकरी लेकर चली गयी। राखाल ने रमणी बाबू को नमस्कार किया और सविता को प्रणाम करके पूछा—इतनी धूमधाम किस बात के लिए है नयी मा?

सविता ने मुसकुरा कर कहा—यो ही।

रमणीबाबू ने कहा—हूँ, यो तो है ही। वही स्त्री हो तुम। बाद को उनको दिखा कर कहा—इन्होने आधे दाम मे एक बहुत बडी सम्पत्ति खरीद ली है, यह उसी का भोज है। मेरे सिगापुर के पार्टनर आये हैं कलकत्ते मे—बी० सी० घोषाल का नाम तुमने सुना है? सुना नही है—अच्छा, आज रात को तुम उनको देखोगी, करोडपति हैं। और भी हैं मेरे यहाँ के इष्टमित्र, वकील अटर्नी, दो-तीन बैरिस्टर तक थोडा सा गाना बजाना भी होगा—खूब अच्छा गा रही है आजकल मालती माला—सुन कर सुख पाओगी जी।

सविता ने ज्यो ही कुछ बाधा देने की चेष्टा की त्यो ही वे बोल उठे—रहने दो, कपट छोड़ो। किंतु भाग्य तो खूब अच्छा पा गयी थी। गाँव मे रहते समय किसी साले को अनेक रुपये उधार दिये थे, वे ही रुपये एकाएक वसूल हो गये। डूबी हुई कौडी—ऐसा कभी होता नही। एकदम ही भाग्य का जोर। उल्लू ने डर कर कैसे दे दिया। किंतु उससे ही क्या पूरा पड गया? दस हजार के लगभग कम पड गये, मुझे प्रेम के दावे से पकड कर इन्होने कहा—छोटे बाबू, यह रकम तुम दे दो। मैंने कहा—श्री चरण के लिए अदेय क्या है बताओ तो? यह शरीर मन प्राण सब ही तो तुम्हारे हैं।

यह कह कर वे इस अत्यन्त अरुचिकर स्थूल रसिकता के आनन्द से आप ही आप हि हि कर के ठहर-ठहर कर हँसने लगे। राखाल ने लज्जा के मारे अपना मुँह फेर लिया।

रमणीबाबू के चले जाने पर सविता ने कहा—दिन चढ आया, यहाँ ही नहाकर कुछ खा लो बेटा, उस वक्त तुमको फिर बहुत मेहनत करनी पडेगी। बहुत से काम हैं।

राखाल ने कहा—काम से मैं डरता नही हूँ मा, मेहनत करने को भी राजी हूँ, किंतु इस बेला को नष्ट न कर सकूँगा। मुझे उस मकान मे जरा जाना पडेगा।

कल जाने से नही होगा?

नही।

तो आओगे कब बताओ?

आऊँगा अवश्य ही किंतु कब कैसे बताऊँ माँ?

तारक यहाँ नही है शायद?

नही, वह बर्दवान की मास्टरी मे जाकर भरती हो गया है। रहने पर भी शायद नही आता। उसके तीव्र भावान्तर को सविता ने लक्ष्य किया था। जरा खुश करने के लिए कहा—उस पर क्रोध मत करो राजू, उन लोगो की बाते ऐसी ही होती हैं।

इस वकालत से राखाल मन ही मन और भी चिढ गया, बोला—नही मा, क्रोध नही, एक बैल पर क्रोध करूं किसलिए?

यह कह कर ही वह चला गया। सीढी से उतरते-उतरते उसने कहा—नही—कृतज्ञता का ऋण याद रखना कठिन है।

यद्यपि, राखाल मन ही मन समझ गया था कि जिस मनुष्य ने नयी मा को इतने रुपये [illegible]

चुका दिया है, उसका नाम रमणीवावू नही जानते तो भी, उस धार्मिक सदाशय मनुष्य के प्रति ऐसी अशिष्ट भाषा को वह क्षमा न कर सका। किंतु, नयी मा ने उस पर ध्यान ही नही दिया, मानो वह कोई वात ही नही है। अन्त मे उनके ही प्रति उस मनुष्य की भद्दी रसिकता। किंतु इस बार उसको क्रोध नही हुआ, वल्कि उसी से मानो उसके मन की जलन हलकी हो गयी। उसने मन ही मन कहा—यह ठीक ही हुआ है। यही उनका पावना है। मैं झूठमूठ ही जल कर मर रहा हूँ।

वह वाजार मे ट्राम से उतर कर गली मे घुस कर व्रजबिहारी वावू के मकान के सामने पहुँच कर राखाल के मन मे खयाल हुआ कि मेरी दृष्टि भुलावे मे पड गया है—मैं किसी दूसरी जगह आ गया हूँ। यह क्या! दरवाजे पर ताला लगा है। ऊपर की खिड़कियाँ सव बन्द हैं—एक नोटिस लटक रही है—मकान खाली है किराये पर दिया जायगा।

वह वहुत देर तक खडा रहा अपने को प्रकृतिस्थ करके। वह गली के मोड पर मोदी की दूकान पर जा पहुँचा। दूकानदार वहुत दिनो का है। इस मुहल्ले के सभी भले आदमियो के घरों मे वह सामान जुटा देता है। जाकर उसने पुकारता हुआ पूछा—नवद्वीप, काकाजी का मकान किराये पर दिया जायगा कैसे?

नवद्वीप ने उसे अन्दर ले जाकर पूछा—आप क्या कुछ जानते नही हैं राखाल वावू?

नही, मै यहाँ नही था।

नवद्वीप ने कहा—कर्ज चुकाने के लिए वावू ने मकान वेच दिया है।

मकान वेच दिया! किंतु वे लोग हैं कहाँ?

मालकिन अपनी लडकी को साथ लेकर अपने वाप के घर चली गयी हैं। व्रजबाबू ने रेणु को लेकर मकान किराये पर लिया है।

मकान पहचानते हो नवद्वीप?

पहचानता हूँ कह कर उसने हाथ से दिखाकर कहा—इधर ही सीधे जाकर वाये हाथ की गली के दो मकानो के बाद ही सत्रह नम्बर का मकान।

सत्रह नम्बर के मकान पर पहुँच कर राखाल ने दरवाजे की कडी खटखटायी। दासी खोलकर उसे देखते ही रोने लगी। राखाल ने पूछा—फटिक की मा, काका जी कहाँ हैं?

ऊपर रसोई पका रहे हैं।

वाह्मण नही है?

नही।

नौकर?

माधू है। वह गया है दवा लाने?

दवा क्यो?

वहिन जी को ज्वर है, डाक्टर देख रहा है।

राखाल ने कहा—ज्वर का अपराध नही है। कब यहाँ आना हुआ?

दासी ने कहा—चार दिन हुए। चार दिनो से ही ज्वर से भोग रही है।

भीगे सीड से भरे समूचे आगन मे सभी चीजे विखरी पडी है। सीढी टूटी है। राखाल ने ऊपर चढ कर देखा, सामने के वरामदे के एक कोने मे लोहे का चूल्हा जला कर व्रजवावू पसीने से लथपथ हैं। सागू उतार लिया गया है, रसोई भी प्राय. तैयार हो चला है, किंतु हाथ जल गया है, तरकारी जल गयी है निचले हिस्से मे जलकर दुर्गन्ध निकल रही है।

राखाल को देख कर व्रजवावू लज्जा छिपाने के लिए वोल उठे—यह देखा राजू, फटिक की मा का काण्ड। चूल्हे मे इतना कोयला रख दिया है कि आँच का अन्दाज न लगा सका। माड तो मानो कुछ गध सी मालूम हो रही है न?

राखाल ने कहा—होने दो आप उठिये तो काका जी, वारह वज रहे हैं—गोविन्द की पूजा कर लीजिये, मैं तब तक फिर से भात चढा दूँ—पक जाने मे दस मिनट से ज्यादा देर न लगेगी। रेणु कहाँ है?

यह कह कर वह पास के कमरे मे घुस गया। वहाँ उसने देखा कि वह अपने विछौने पर लेटी हुई है। राजू भैया को देखकर उसकी दोनो आँखे आँसू से भर गयी। राखाल ने किसी तरह अपनी रुलाई रोक कर

कहा—रुलाई किस लिए? क्या किसी को ज्वर नही होता? यह तो दो दिनो मे अच्छा हो जायगा। और मैं तो मर नही गया हूँ रेणु, चिता की कौन सी बात है? उठकर बैठ जाओ। मुँह धोना, कपडा बदलना हो चुका है तो?

रेणु के सिर हिलाते ही राखाल ने चिल्ला कर पुकारा—फटिक की मा, अपनी बहिन जी को सागू दे जाओ—बहुत देर हो गयी। उसके आने पर कहा—भात लग गया है फटिक की मा, उससे काम न चलेगा तुम हो, मधु है और काका जी हैं—चार आदमियो के खाने लायक चावल धो डालो। मैं नीचे से झटपट स्नान कर के आता हूँ। कच्ची तरकारी कुछ है तो?

है।

अच्छी बात है, उसे भी कुछ काट डालो, एक चडचडी बना लूँ—मैं एक ही तरकारी से भात खा नही सकता।

रेलिग के ऊपर फीची हुई धोती सूख रही थी। राखाल उसे खीच कर नीचे चला, कहते-कहते गया, देर मत कीजियेगा, शीघ्र उठ पडिये। रेणु, नहा कर आते ही मैं देखना चाहता हूँ कि तुम्हारा खाना हो गया है। मधु के आ जाने से ही हो जाता—

उदास सन्नाटे कमरे मे एकाएक कहाँ से मानो चीखने-चिल्लाने की आँधी बह चली। स्नान के कमरे मे जाकर किवाड बन्द करके राखाल ने भीगी फर्श पर लेटकर दो-तीन मिनट तक हाऊ-हाऊ करके रोना शुरू कर दिया—बचपन मे अकस्मात् जिस दिन हैजे की बीमारी से उसका बाप मर गया था, ठीक उसी दिन की तरह। उसके बाद उठकर बैठ गया। दो चार लोटे पानी माथे पर उडेल कर धोती बदल कर बाहर चला आया। बिलकुल ही सहज आदमी—कौन कहेगा कि कमरे मे किवाड बन्द करके वह बालक की भाँति जमीन पर लेटकर क्या ही काण्ड मचा रहा था।

रसोई पानी में राखाल अनजान नही है। अपने लिए यह काम उसको प्रतिदिन करना पडता है। थोडी ही देर मे उसने सब बना डाला। उसके तकाजे से ठाकुर पूजा, भोग लगाना आदि काम पूरे होने मे भी आज अनुचित रीति से विलम्ब नही हुआ। राखाल परोस कर सबको खिलाकर खुद खाकर नीचे से हाथ मुँह धोकर फिर जब ऊपर आ गया तब दिन के तीन बज चुके थे। रेणु पास ही बैठ कर सब देख रही थी। सारा काम समाप्त होने पर उसने कहा—राजू भैया, तुमने हमलोगो को भी हरा दिया। तुम्हारी जो दुलहिन बनेगी वह भाग्यवती होगी। किंतु तुम क्या विवाह न करोगे?

राखाल ने हँस कर कहा—क्या करूँ बहिन, इतनी बडी भाग्यवती से भेट होगी तभी तो?

नही, यह नही होगा। बाबू जी से कह कर मै इस बार जरूर तुम्हारा विवाह करा दूँगी।

अच्छा, करा देना, पहले तुम अच्छी तो हो लो। विनोद डाक्टर ने आज क्या कहा? ज्वर छोड क्यो नही रहा है?

फटिक की मा खडी थी, उसने कहा—डाक्टर साहब आज तो आये नही, आये थे परसो। वही एक ही दवा चल रही है। सुनकर राखाल स्तब्ध हो रहा उसके शंकित चेहरे को देखकर रेणु ने लज्जित होकर कहा—प्रतिदिन दवा बदलाना क्या अच्छा है। और झूठमूठ डाक्टर को रुपया देते रहने से ही क्या बीमारी अच्छी हो जाती है फटिक की मा? मैं इसी से अच्छी हो जाऊँगी तुम देख लेना।

राखाल ने कोई बात नही कही। वह समझ गया कि दुर्दशा मे पडकर यह अपने पिता के पास जो थोडे से रुपये हैं उन्हे खर्च कराना नही चाहती।

तुम क्या जा रहे हो राजू भैया?

आज जा रहा हूँ बहिन, कल सवेरे ही फिर आऊँगा।

जरूर आओगे तो?

जरूर आऊँगा। जबतक मैं न आऊँ तुम काका जी को चूल्हे के पास तक भी मत जाने देना रेणु।

सुनकर रेणु मानो कितनी कुण्ठित हो उठी। उसने कहा—कल यदि मुझे ज्वर नही आया तो मैं रसोई बनाऊँगी राजू भैया?

किसी हालत में भी नही। दासी को सावधान करके उसने कहा—मैं जबतक न आऊँ तबतक किसी को कुछ भी मत करने देना फटिक की मा।

यह कहकर वह बाहर चला गया। विनोद डाक्टर मुहल्ले का ही रहनेवाला है, थोड़ी ही दूरी पर उसका मकान है—निचले तल्ले मे डिसपेन्सरी है, वहा उससे भेट हुई। राखाल ने पूछा—रेणु का ज्वर कैसा है डाक्टर साहब? आज तक भी छूटा क्यो नही?

विनोदबाबू ने कहा—आशा करता हूँ सहज है। किंतु आज भी जब कि—तब दो तीन दिन न बीतने से ठीक कहा नही जा सकता राखाल।

डाक्टर इस परिवार के बहुत दिनो के चिकित्सक हैं। सभी को जानते हैं। इसके बाद ब्रजबाबू की आकस्मिक विपत्ति की चर्चा करके उन्होने दु.ख प्रकट किया, अन्त मे कहा—तुम जब कि आ गये हो राखाल तब चिंता नही है। मैं कल सबेरे ही जाऊँगा।

अवश्य ही जाइयेगा डाक्टर साहब, हमारे पास आपको बुला ले जाने वाला कोई आदमी नही है।

बुलाने की जरूरत नही है राखाल, मैं स्वयं ही जाऊँगा।

वहाँ से लौट कर राखाल अपने डेरे पर जाकर सो रहा। मन बिलकुल टूट गया है। ब्रजबाबू की दुर्दशा कितनी बडी है और सर्वनाश का परिणाम कैसा गभीर है तरह-तरह के कामों में रहने से इस बात पर अबतक कभी सोच विचार करने का अवकाश उसे नहीं मिला है। निर्जन कमरे मे इस बार उसकी दोनों आँखो से हर-हर करके अश्रुधारा बहने लगी। इसका किनारा कहाँ है और इस दु ख के दिन मे वह क्या कर सकता है, इसका बहुत सोचने पर निश्चय न कर सका। किस तरह इतनी शीघ्र ऐसी घटना हो गयी यह कल्पनातीत था। उस पर से रेणु बीमार पडी है। मुहल्ले मे टाइफायड ज्वर फैल रहा है यह खबर वह जानता था, डाक्टर के कथन मे भी ऐसे ही एक संदेह का इंगित उसने लक्ष्य किया है। उपदेश देने का आदमी नही है, शुश्रूषा करने वाला कोई नही है, चिकित्सा करने के लिए रुपया भी शायद पास नही है। इस निरीह निर्विराधी मनुष्य के बारे मे शुरू से आखिर तक सोचकर उसने मन मे ससार मे धर्म विषयक बुद्धि, भगवत् भक्ति, साधुता सभी पर मानो घृणा उत्पन्न हो गयी। वह सोच रहा था दिल्ली से लौटने पर तरह-तरह की फजूलखर्ची से मेरा अपना हाथ भी खाली है, डाकघर मे जो कुछ मामूली बचा हुआ है उस पर तो एक दिन भी निर्भर नही किया जा सकता। फिर भी, यह रेणु मेरे ही पास रह कर किसी दिन सयानी हुई थी। किंतु वह बात आज छोडा। उसी की चिकित्सा के लिए उसी के पास जाकर मैं हाथ फैलाऊँगा किस तरह! यद्रि न रहे? वह जानता है जिसके यहाँ मैं लडका पढ़ाता हूँ, वे लोग अत्यन्त कृपण हैं। इष्टमित्र अनेक हैं, यह सच है, किंतु उनके पास आवेदन करना वैसा ही निष्फल है। अनेक 'बडे आदमी' छिपेतौर से मेरे ही कर्जदार हैं। उस कर्ज का खुद मैं न भूल जाने पर भी वे लोग तो भूल ही गये हैं।

एकाएक याद पड गयी नयी मा। किंतु दीपशिखा जलते ही फिर बुझने लगी—वहाँ दो कहकर खडे होने की कल्पना ने भी उसे कुण्ठित कर दिया। कारण पूछने पर वह क्या कहेगा ही क्या और कहेगा कैसे? यह रास्ता नही है, किंतु दूसरा रास्ता भी उसकी दृष्टि मे नही पडा। किंतु कह देने से तो काम चलेगा नही, रास्ता तो उसे मिलना ही चाहिये। दासी ने आकर खाने के लिए कहा तो उसने मना करके कहा, दूसरी जगह से निमत्रण आया है। प्राय ही ऐसा रहता है।

दासी के चले जाने पर उसने भी दरवाजे पर ताला लगा दिया। राखाल शौकीन आदमी है। वेश-भूषा की साधारण गंदगी भी उससे सही नही जाती, किंतु आज वह बात उसे याद ही नही पडी, जिस हालत मे था उसी मे वह बाहर चला गया।

नयी मा के घर जिस समय वह पहुँचा उस समय सध्या उत्तीर्ण हो चुकी थी। सामने कुछ मोटरे खडी थी, वृहत् अट्टालिका बहुसख्यक विधुत् दीपको के प्रकाश से समुज्ज्वल हो रही थी, दुमजिले के कमरे से वाद्ययत्र के ठोके जाने की आवाज उठ रही थी, गृह-स्वामिनी अतिशय व्यस्त थी—कही भाग्यवान आमन्त्रित व्यक्तियो के आदर-सत्कार मे कोई त्रुटि न हो—राखाल को देख कर क्षणभर ठिठक कर खडी हो जाने के बाद उन्होने पूछा—इतनी देर के बाद शायद हमलोगो की याद आ गयी बेटा?

इधर कई दिनो मे उसने नयी मा को जिस दशा मे देखा था, वे मानो यह नही हैं। अभिनव और बहुमूल्य वेशभूषा की सजावट् ने उनकी अवस्था को मानो दस वर्ष पीछे ठेल दिया है। राखाल किस तरह एक प्रकार हतबुद्धि सा खडा रह गया, एकाएक कोई उत्तर न दे सका। उन्होने उसी समय फिर कहा—आज थोडा सा काम कर देने के लिए कहा था, इसीलिए २॥थद ।बलकुल ही रात कर के आ गये

राजू?

राखाल ने नम्रता के साथ कहा—काम पूरा करने मे देर हो गयी मा। इसके सिवा मेरे न आ सकने से नुकसान तो कुछ भी नही हुआ।

नही नुकसान तो नहीं हुआ यह सच है। किंतु उस समय कह कर जाने से ही अच्छा होता। उसके कठस्वर मे इस बार कुछ विरक्ति का सुर मिला हुआ था।

राखाल ने कहा—उस समय खुद भी मैं नही जानता था नयी मा। उसके बाद फिर समय नही मिला।

किसी के पुकारने से सविता चली गयी। पॉच मिनट के बाद वापस आने पर उन्होने देखा राखाल पहले की ही तरह खडा है। उन्होने कहा—खडे क्यो हो राजू, कमरे मे चलकर बैठो।

राखाल किसी हालत मे भी सकोच मिटा नही सकता, किंतु नही कहने के बिना काम चलने वाला ही नही था। अन्त मे धीरे-धीरे बोला—एक विशेष आवश्यक काम से आया हूँ नयी मा, मुझे आज कुछ रुपये देने पडेगे।

सविता आश्चर्य मे पडकर देखने लगीं, कहने मे शायद उनको भी हिचक सी मालूम हुई। किंतु उन्होंने कहा—रुपया? रुपया तो नही है राजू—जो कुछ था वह सब खरीदने मे ही खर्च हो गया उसी वक्त तो तुम सुन गये थे।

कुछ भी नही है मा?

नही रहने मे ही है। गृहस्थी का खर्च चलाने के बाद यदि मामूली कुछ बचा भी रहे तो उसे ढूँढ कर देखना पडेगा। इसके लिए अवसर तो नही है।

शारदा तरह-तरह के कामो से आना जाना कर रही थी। बात सुन कर उसने निकट आकर कहा—मेरे पास दस रुपये हैं, ला दू?

राखाल ने उसके मुँह की तरफ क्षणकाल देख कर कहा—तुम दोगी? अच्छा, दो।

शारदा ने कहा—मिनू की नानी के पास रुपया है, कोई चीज बधक रखने से उधार देती है।

उनके पास मुझे तुम ले जा सकती हो शारदा?

क्यो न सकूँगी—वे तो बूढी हैं। किंतु मेरे पास तो कोई चीज नही है।

तो भी चलो न देखे।

आइये।

उन दोनो के जाते समय सविता ने कहा—इसी कारण बिना खाये नीचे से ही चले मत जाना राजू!

राखाल लौटकर खडा हो गया, बोला—आज बहुत ही असमय मे खाना हुआ है नयी मा, भूख जरा भी नही है। आज मुझे क्षमा करनी पडेगी। यह कह कर वह शारदा के पीछे-पीछे नीचे उतर गया। सविता ने फिर उससे अनुरोध नही किया।

राखाल चला गया है, शारदा अपने घर मे दो एक बाकी काम पूरा करके फिर ऊपर जाने की तैयारी कर रही है, सविता ने आकर प्रवेश किया। उसके बिछौने पर बैठकर उन्होने कहा—एक पान दो तो बेटी खा लूँ।

यह सौभाग्य कभी शारदा को नही प्राप्त हुआ था, वह उपकृत हो गयी। झटपट हाथ धोकर वह पान लगा रही थी उसी समय उन्होने कहा—राजू बिना खाये नाराज होकर चला गया?

इतने कामो के बीच भी यह मामला अन्दर ही अन्दर इनको बेध रहा था। उसे झाड कर वे हटा नही सकी थी।

शारदा ने मुँह ऊपर उठा कर कहा—नही माँ, नाराज होकर तो नही।

नाराज होकर तो जरूर ही। वह प्रात काल से ही कुछ नाराज था, उस पर फिर से रुपया न दे सकी—तुमने शायद दस रुपये उसको दिये हैं?

नहीं मा, मुझसे उन्होने नही लिया मिनू की नानी से एक सौ रुपये लाकर दिये हैं।

यो ही? खाली हाथ क्या उसने दे दिया!

शारदा ने कहा—नही, यो ही तो नही। उन्होंने अपने हाथ की सुनहली घडी खोलकर मुझे देकर कहा—इसका दाम है तीन सौ रुपया, वे जो दे ले आओ। उनके पास चाय के बगीचे के कुछ कागज हैं उन्हे

ही वेचकर इसी महीने मे चुकता कर देने को कहा है।

सविता ने पूछा—अचानक उसको रुपये की जरूरत क्यो पड गयी?

शारदा ने कहा—कोई एक लडकी बहुत बीमार है, उसी की चिकित्सा के लिए।

लड़की कौन है कि उसके लिए रातोरात घडी बधक रखने की जरूरत पडती है।

इसकी जानकारी तो मुझे नही है मां, किंतु जान पडता है कि वह बहुत ही सख्त बीमार है। रुपये के अभाव से पीछे कही मर न जाय यही उनको डर है। सुनती हूँ कि लडकी के बाप ने ही बचपन मे उनका लालन पालन करके सयाना बनाया था।

सविता ने आश्चर्य मे पडकर कहा—बचपन मे लालन पालन किया था बताया है। यह उसकी मनगढन्त कहानी है। राजू को किसने पाला पोसा है यह मैं जानती हूँ। उनको लडकी की चिकित्सा मे किसी दूसरे को घडी बधक रखने की जरूरत नही पडती।

शारदा ने उनके मुँह की तरफ देखकर कहा—मनगढन्त कहानी तो नही मालूम होती मा। यह कहते समय उसकी आँखो मे आँसू भर आया—उन्होने कहा—इनके पास भी धनविभव बहुत था किंतु एकाएक व्यवसाय नष्ट हो जाने पर कर्ज के कारण घरद्वार तक बेच देने पडे, फिर भी दिल्ली जाते समय भी ऐसी दशा देखकर नही गये थे। आज जाकर उन्होने देखा कि बीमार पडी हुई लड़की की देखभाल करने वाला कोई नही है। बूढा बाप आप ही रसोई पकाने बैठा है—किंतु जानता कुछ भी नही है—हाथ जल गया है—भात जल गया है, तरकारी जल जाने से महक निकल रही है—राखाल बाबू का दुबारा फिर पकाना पडा तभी सबका खाना हुआ। इसीलिए यहाँ आने मे उनको देर लगी। मुझसे कहा था इस दुस्समय में उन लोगो की सहायता करो। लडकी की मा तो है नही—उसकी जरा देखभाल करो। मैंने राजी होकर कहा है, आप जो अदेश करेंगे वही मैं करूँगा।

शारदा ने पान दिया। वह उनके हाथ मे ही पडा रह गया। उन्होने पूछा—क्या राजू ने कहा है कि एकाएक रोजगार नष्ट हो जाने से कर्ज के कारण उनका मकान तक बिक गया है? दिल्ली जाने के पहले भी ऐसी हालत देखकर नहीं गया था?

हाँ, ऐसा ही तो उन्होने कहा है।

असभव है।

शारदा चुप हो रही। सविता ने फिर पूछा—राजू ने कहा है कि लडकी को मा नही है शायद मर गयी है?

शारदा ने कहा—मा जब मर गयी है तब तो वह अवश्य ही मर गयी है। दूसरी बात क्या हो सकती है मां?

सविता उठ गयी। पाँच छ मिनट के बाद शारदा बत्ती बुझाकर कमरा बन्द कर रही थी, तभी वे लौट आयी। पहनावे का पहले वाला कपडा नही था, शरीर मे वे सब गहने नही थे, मुँह घबडाहट से म्लान था—उन्होने कहा—मेरे साथ तुमको एकबार चलना पडेगा।

कहाँ मा?

राजू के डेरे पर।

इतनी रात को? मैं निश्चित रूप से कह रही हूँ मा, उन्होने थोडा सा दु ख अनुभव तो किया है, किंतु नाराज होकर नही गये हैं इसके सिवा यहाँ घर पर ही तो काम है, कितने लोग आये हैं, सभी मुझे ढूँढने लगेंगे मा?

कोई जान न सकेगा शारदा, हमलोग जायँगी और चली आवेगी।

शारदा ने सदिग्ध स्वर मे कहा—यह तो अच्छा नही होगा मा, हो सकता है कि कोई गडबडी—होने लगेगी। बल्कि कल दोपहर का खाना-पीना हो चुकने पर कोई जान भी न सकेगा।

सविता कुछ क्षणतक उसके मुँह की तरफ देखती रही, बोली—आज रात बीतेगी, कल प्रात काल का समय बीत जायगा, उसके बाद दोपहर को खाना पीना हो चुकने पर हमलोग जायँगी? तबतक तो मै पागल हो जाऊँगी शारदा?

इस उत्कठा का कारण शारदा समझ नही सकी, किंतु उसने फिर कोई आपत्ति भी नही की—चुप हो

रही।

जिस दरवाजे से किरायेदारो का आना जाना होता रहता है, दोनो वहा ही जा पहुँची और दो मिनट के वाद राह में चलने वाली एक खाली टैक्सी करके उसपर सवार हो गयीं। निगाह जा पहुँची ठीक ऊपर ही--प्रकाश से जगमगाता हुआ कमरा उस समय सगीत हास्य और आनन्द कलरव से मुखर हो उठा था। एक रूमाल मे वाँधा वडल शारदा के हाथ मे देकर सविता ने कहा—आँचल मे वॉध रखो तो वेटी, शायद राजू मेरे हाथ से नही लेगा—उसको तुम दे देना।

दस मिनट के वाद वे दोनों पैदल चल कर राखाल के घर के सामने पहुँच गयी। वहाँ जाकर उन्होने देखा बाहर से दरवाजा वन्द है, अन्दर कोई नही है। दोनो ही चुपचाप आकर गाडी पर वैठ गयी और लगभग पाँच छ मिनट और बीतने पर बहूबाजार के एक वहुत वडे मकान के सामने उनकी गाडी खडी हो गयी। उतरना नही पडा, दिखाई पडा कि उस घर के भी दरवाजे पर ताला लगा है। रास्ते का प्रकाश ऊपर की वन्द खिडकी पर जा पडा है। वहाँ वडे-वडे लाल अक्षरो मे नोटिस लटक रही है—मकान किराये पर दिया जायगा।

घोर विपत्ति मे अपने आपको क्षण भर मे संभाल लेने की शक्ति सविता मे असाधारण है। उनके मुँह से एक लम्बी साँस तक भी नही निकली। घर लौट चलने का आदेश देकर गाडी के कोने मे माथा रख कर वे पत्थर की मूर्ति की तरह बैठी रही।

ठीक क्या बात हुई है इसका अनुमान करना शारदा के लिए कठिन था। किंतु वह इतना तो समझ ही गयी थी कि राखाल झूठ कह कर नही आया है और सचमुच ही कोई भयकर घटना हो गयी है।

लौटते समय रास्ते मे उसने सविता के शिथिल हाथ को अपने हाथ मे खीच कर पूछा—यह किसका मकान है माँ। यही मकान बेच दिया गया है?

हाँ।

इनकी ही लडकी की बीमारी की बात उन्होंने कही थी।

जवाब न पाकर फिर धीरे-धीरे कहा—वे लोग कहाँ हैं, इसका पता लगाना तो जरूरी है?

कहाँ, किसके यहाँ पता लगाऊँ, शारदा?

कल अवश्य ही राखाल बाबू मुझे ले जाने के लिए आवेंगे।

किंतु यदि वह न आवे? मेरे घर पर यदि वह फिर कदम न रखना चाहे।

शारदा चुप हो रही। राखाल ने रुपया माँगा, वे दे नही सकी, केवल इतनी ही बात को लेकर नयी मा की इतनी अधिक उत्कण्ठा है। आवेग और आत्म-ग्लानि से उसके मन में अत्यन्त घबडाहट सी होने लगी। उसको सदेह हुआ, वास्तव में यह बात इतनी ही नही है। भीतर कोई निष्ठुर रहस्य है। सविता रमणी वावू की स्त्री नही हैं इस बात की जानकारी न रहने का ऊपरी दिखावा रखने पर भी घर के सभी मन ही मन समझते थे। वे लोग ऐसा वाह्य दिखावा रखते थे। डर से नही, श्रद्धा से। सभी जानते थे यह किसी बडे घर की लडकी वह हैं—आचार में, आचरण में बडी है, दया दाक्षिण्य और सौजन्य मे भी बडी हैं, इसीलिए उनका यह दुर्भाग्य किसी के लिए उल्लास की चीज नहीं रही। थी परिताप और गभीर लज्जा की बात। बहुत दिनो से एक ही साथ रहते रहते सभी उनको इतना अधिक प्यार करते थे।

गली के मोड से गाडी घूम रही थी कि उसी समय दूकान के तेज प्रकाश की रेखा आकर पल भर के लिए सविता के चेहरे पर आ पडी। शारदा ने देखा मानो उसमे प्राण ही नही है। हाथ का तला मालूम हुआ अत्यन्त शीतल। उसने भयभीत हो कर एक बार हिला कर पुकारा—माँ?

क्यो बेटी?

बहुत देर तक फिर कोई बात नहीं निकली—अधकार मे भी शारदा को मालूम हुआ कि उनकी आँखो से आँसू बह रहा है। उसने साहस करके हाथ बढ़ा कर देखा ठीक ऐसी ही बात है। यत्नपूर्वक आँचल से आँसू पोंछ कर उसने कहा—माँ, मैं आपकी लडकी हूँ। मेरा अपना कहलाने लायक इस ससार मे कोई नही है। मुझे आप जो करने को कहेंगी मैं वही करूँगी।

वे बातें साधारण ही थी। सविता ने उत्तर मे कुछ भी नही कहा, केवल हाथ बढ़ा कर उन्होने उसे अपनी गोद में खीच लिया। आँसू की भाप के रुँधे हुए आवेग से उनका समूचा शरीर कई बार काँप उठा।

उसके बाद वडे वडे ऑसू के बूँदे शारदा के मस्तक पर एक एक करके झरने लगे।

दोनो जिस समय घर वापस पहुँची उस समय भी मालतीमाला का गाना हो रहा था—उनलोगो की अल्प ममय की अनुपस्थिति का किसी ने ख्याल नही किया। सविता नीचे स्नान करके ऊपर जा ही रही थी कि दासी ने आश्चर्य के साथ पूछा—माँ, अभी नहा कर आ रही हो? सिर मे चक्कर आ रहा था शायद।

हाँ।

तो इस हालत मे धोती बदल कर जा ओ जरा लेट रहो माँ, सारा दिन जैसी मेहनत करनी पडी है।

शारदा ने कहा—इस तरफ मैं हूँ माँ, कोई चिंता मत करना। जरूरत पडते ही आपको बुला लाऊँगी।

उस रात को खाना-पीना किसी तरह खतम हुआ। एक एक करके अभ्यागतो ने बिदाई ले ली। खटिये के सिरहाने बैठकर शारदा धीरे-धीरे सविता के सिर पर और ललाट पर हाथ सुहला रही थी। क्रोध से कदम बढाते हुए रमणी बाबू ने प्रवेश करके कठोर स्वर मे कहा—अच्छा खेलवाड़ तुमने कर दिया। घर मे कोई काम होने लगता है तो तुमको भी कोई बहाना करने की सूझ आ जाती है। यही तुम्हारा स्वभाव है। लोग चले गये, अब नहा लो छल-कपट छोडकर अब जरा उठ बैठो—एक अच्छी साडी कम से कम पहन लो—विमल बाबू भेंट करने के लिए आ रहे हैं।

ऐसी उक्ति कोई अकल्पित नही थी, नयी भी नही थी। वस्तुत सविता ऐसी ही किसी बात की आशका कर रही थी। थकावट के स्वर मे उन्होने कहा—भेट किस मतलब से?

किस मतलब से। क्यो वे क्या भिखारी हैं कि खाना नही मिलता? घर पर निमत्रण है, फिर भी घर की मालकिन का ही पता नही है। अच्छी बात तो है।

सविता ने कहा—निमत्रण होते ही क्या घर की मालकिन के साथ भेट करने की प्रथा प्रचलित है?

रमणी बाबू ने व्यग करके कहा—प्रथा है क्या? प्रथा नही है यह मैं जानता हूँ—स्त्री रहने से कोई वार्तालाप या जान पहचान करना नही चाहता—किंतु वे सब जानते हैं।

शारदा के सामने सविता लाज के मारे सहम गयी। शारदा ने खुद भी वहाँ से भाग जाने की चेष्टा की, किंतु उठ नही सकी। इधर उत्तेजना बढकर पीछे वाक्‌वितण्डा तक न पहुँच जाय यह डर सविता को सब-से अधिक था। इसीलिए उन्होने नम्रभाव से ही कहा—उनसे कह दो आज भेट नही होगी।

किंतु फल हुआ उलटा। इस सहज कठ की अस्वीकृति से रमणी बाबू पागल से हो गये, चिल्ला उठे—अलबत् भेट होगी। वह करोडपति आदमी है यह क्या तुम जानती हो? साल मे मेरे कितने रुपये का माल खरीदता है इसकी खबर रखती हो? मैं कहता हूँ—दरवाजे के बाहर जूते की आवाज सुनाई पडी और नौकर ने सामने आकर हाथ से दिखा दिया।

सविता माथे के कपडे को ललाट तक खीच कर उठ बैठी। विमल ने कमरे मे प्रवेश करके नमस्कार करके खुद ही एक कुर्सी खीच कर कहा—सुनने में आया है कि आप अचानक बहुत बीमार पड गयी हैं, किंतु कल ही शायद मुझे कानपुर जाना पडेगा, शायद फिर लौट न सकूँगा, उधर से ही बम्बई होते हुए सीधे अपने कार्यस्थल के लिए रवाना हो जाना पडेगा। सोचा कि एक दो मिनट के लिए भी एक बार मुलाकात कर लूँ। आप के आतिथ्य से आज मुझे बडी प्रसन्नता मिली है।

सविता ने धीरे-धीरे कहा—यह मेरा सौभाग्य है।

उस मनुष्य की अवस्था चालीस की रही होगी। बालो का पकना शुरू हो गया है, किंतु यत्नपूर्वक सावधान रहने के कारण शरीर स्वास्थ्य और सौंदर्य से परिपूर्ण है। उन्होने कहा—मुझे खबर मिली कि रमणी बाबू आजकल प्राय बीमार हो जाया करते हैं और आपकी तबीयत ठीक नही रहती यह तो मैं अपनी आँखों से ही देख रहा हूँ। आपका जो फोटो पहले के किसी साल का है उसके साथ मेल ढूँढना कठिन हो रहा है—ऐसा ही चेहरा हो गया है।

सुन कर सविता मन ही मन लज्जित हो गयी, बोली—मेरा फोटो आपने देखा है क्या?

देखा तो जरूर है। आप लोगो का एक साथ लिया गया फोटो रमणी बाबू ने मेरे पास भेजा था। उसी समय से सोच रखा था फोटो जिनका है उनको एक बार आँखो से देखूँगा। वह साध आज मिट गयी। चलिये न एकबार लोगो के यहाँ सिंगापुर, कुछ दिनो की समुद्रयात्रा भी हो जायगी, और तबीयत भी जरा बहल जायगी। क्रूस स्टूटो में मेरा एक छोटा सा मकान है। उसकी ऊपरी मंजिल पर दिन रात समुद्र

की हवा वहती रहती है, सुवह शाम सूर्योदय सूर्यास्त दिखाई पडते हैं। रमणी वावू जाने को राजी हो गये हैं, केवल आपकी सम्मति लेकर यदि ले जा सकूँ तो समझूँगा कि इस वार मेरा देश आना सार्थक हो गया।

रमणी वावू उल्लास के साथ वोल उठे आपको तो मैं वचन दे चुका हूँ विमल वावू, अगले हफ्ते मे ही मैं रवाना हो सकूँगा, समुद्र की जलवायु की मुझे विशेष आवश्यकता है। शरीर का स्वास्थ्य—आप कहते क्या हैं। वही है सर्वस्व पहले।

विमल वावू ने कहा—ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो जाने से तो हमलोग एक ही जहाज मे यात्रा कर सकेगे। सविता को लक्ष्य करके मुसकुराते हुए वोले—अनुमति मिल जाय तो मैं तैयारी करने लगूँ—अपने दफ्तर मे भी एक तार भेज दूँ। मकान पर कही भी किसी तरह की कोई त्रुटि न रहे? क्या कहते हैं?

सविता ने सिर हिलाकर मृदु कठ से कहा—नहीं, इस समय कही जाने की सुविधा मुझे न होगी।

सुनकर रमणी वावू फिर एकवार गरम हो उठे—क्यो सुविधा न होगी सुनूँ तो? लिखना पढना कल परसो तक पूरा हो जायगा। दरवान नौकर मकान मे रह जायँगे, किरायेदार रह जाते हैं, जाने मे वाधा क्या है? नही यह नही होगा विमल वावू, साथ लेकर मैं जाऊँगा ही। नही कर देने से ही हो जायगा? मेरी तवीयत ठीक नही है—मेरा देखभाल कौन करेगा? आप स्वच्छन्दता से टेलीग्राम कर दीजिये।

विमल वावू ने फिर सविता को ही लक्ष्य करके पूछा, कहिये न, क्या एक तार भेज दूँ?

जवाव देने लगी तो दोनो की आँखे लड गयी, सविता ने लज्जा मे पडकर उसी क्षण अपनी निगाह नीचे करके कहा—नही। मैं जा न सकूँगी।

रमणी वावू भयकर विगड उठे—नही क्यो? मैं कहता हूँ तुमको चलना ही पडेगा। मैं साथ लेकर आऊँगा ही।

विमल वावू का चेहरा अप्रसन्न हो उठा, वोले—किस तरह ले जाइयेगा रमणी वावू, वाँध कर?

हाँ, जरूरत पडी तो वही होगा।

तो उस हालत मे और किसी जगह ले जाइये, मैं इस अन्याय का भार न ले सकूँगा। पता नही ठीक प्रवेश करते समय ही इस व्यक्ति का ऊँचा कलरव उनको सुनाई पडा था या नहीं। उन्होंने कहा—अच्छा, तो अव मैं उठता हूँ—आप विश्राम कीजिये। अस्वस्थ शरीर पर शायद मैं अत्याचार कर गया—तो भी, जाने के पहले मेरा अनुरोध ही रहा—मैं प्रति महीने मे आपके पास प्रिपेड टेलीग्राम भेजूँगा—इसी प्रार्थना को वताकर—देखूँगा कितनी वार नही कह कर उसका जवाव दे सकेंगी।

यह कह कर वे जरा हँस पडे। वोले—नमस्कार रमणी वावू, मैं जा रहा हूँ।

वे वाहर चले गये। उनके साथ ही साथ रमणी वावू भी नीचे उतर गये। रमणी वावू का मित्र समझ कर और अशिक्षित व्यवसायी समझ कर इस मनुष्य के सम्वोधन मे जैसी धारणा सविता के मन मे हुई थी, उनके चले जाने पर उसे खयाल हुआ कि शायद यह सच नही है।

सात

शारदा ने कहा—मा, कुछ खाइयेगा नही?

नही।

एक गिलास पानी और एक वीडा पान दे जाने को कह दूँ?

नही, जरूरत नही है।

वत्ती वुझाकर दरवाजा वन्द कर जाऊँ?

ऐसा ही करो शारदा, वडी रात होती जा रही है।

फिर भी, उठने को तैयार होकर भी उसे देर होती जा रही थी। रमणी वावू वापस आकर खडे हो गये। लम्वी साँस लेकर वोले—जाने दो, जान वच गयी, आज के लिए किसी तरह मान रक्षा हुई। भले आदमी अच्छे मिजाज के है, इतने वडे दर्जे के आदमी होने पर भी घमड जरूर नही है। तुम्हारे लिए तो वहुत चिता है। एक सो वार अनुरोध कर गया है, कल सवेरे ही समाचार भेज देना। कौन जाने, हो सकता

है कि खुद ही एक बडे डाक्टर को लेकर सवेरे हाजिर हो जायँ—कुछ भी कहा नही जा सकता—उनको तो हम लोगो की तरह रुपये की माया नही है—दस वीस हजार रहे तो क्या और चला जाय तो क्या? रथमार कम्पनी के डाइरेक्टर ही कहो या शेयर होल्डर ही कहो जो कुछ करता है वही मिस्टर घोषाल। मैंने तो तुमको बताया कि यह आदमी करोड रुपये का मालिक है। करोड रुपया! जर्मनी, हालैण्ड के साथ बहुत बडा कारोबार है—साल मे दो चार वार यो ही यूरोप मे घूम आना पडता है। जनरल मैनेजर शाप साहब हैं, उनको ही प्राय तीन हजार वेतन मिलता है। बडे आदमी हैं। जावा की चीनी के चालान मे ही गत वर्ष—

मुनाफे का रोमाचकर आकडा फिर बताया न जा सका—रुकावट पड गयी। सविता ने पूछा—तुम फिर लौट आये—घर नही गये?

किस प्रसग मे कौन बात—आ गयी। प्रश्न से उसके आनन्द मे वृद्धि नही हुई और वे यह समझ गये कि बहुत बडे आदमी का विवरण सुनने मे सविता ने बिन्दुमात्र भी मनोयोग नही दिया। जरा ठिठक कर बोले—घर? नही आज अब नही जाऊँगा।

क्यो?

नही—आज अब—

सविता ने एक क्षण उनकी तरफ देखकर कहा—शराब की महक निकल रही है—तुम शराब पी कर आये हो?

शराब? मैं? (इशारे से) केवल एक बूँद—समझती हो न—

कहाँ पी ली, इस मकान मे?

सुनो बात। मकान मे नही तो क्या सूँडी की दूकान पर खडे होकर पी आया हूँ?

शराब लाने को किसने कहा?

किसने कहा? ऐसी बात भी मैंने कभी नही सुनी। घर पर दस पाँच भले आदमियो को बुलाना पडता है तो थोडी सी लाकर रखे बिना क्या काम चलता है? इसीलिए—

सभी लोगो ने पी है?

पी नही है अच्छी चीज आफर करने से कौन साला नही पीयेगा सुनूँ तो तुमने तो अवाक् कर दिया?

विमल बाबू ने पी है?

रमणी बाबू ने फिर जरा इधर उधर किया, कहा—नही, आज वह एक चाल खेल गया। नही तो, उसकी कीर्ति कहानी सुनना मेरे लिए बाकी नही है। सब जानता हूँ।

सविता ने जरा मौन रहकर कहा—जानोगे तो जरूर ही। अच्छा, अब तुम जाओ। रात हो गयी, उस कमरे मे जाकर सो रहो।

बात कहने का तरीका केवल कर्कश नही रूखा भी था। शारदा के कानो मे भी अपमानजनक मालूम हुआ। आज सध्या के बाद से ही सविता के कठ स्वर की प्रच्छन्न रुखाई रमणी बाबू को बिध रही थी। इस बात से वे एकाएक अग्निकाण्ड की तरह जल उठे—आज तुमको क्या हो गया है बताओ? मिजाज देखता हूँ भारी गरम। इतना तो अच्छा नही है नयी बहू!

शारदा डर गयी। इस बार शायद किसी तरह का गदा झगडा खडा हो जायगा। किंतु सविता चुपचाप आँखे बद किये उसी तरह लेटी रह गयी। एक भी बात का जवाब उन्होने नही दिया।

रमणी बाबू कहने लगे—यही तो मैं कह चुका, सभी जानते हैं तुम स्त्री नही हो—इसी से लग गयी है समूची आग। किंतु जानता नही है कौन? शारदा नही जानती, या घर के लोगो से छिपी बात है? एक झूठी बात कितने दिन छिपी रहती है? इससे तुम्हारा मैंने क्या अपमान किया है सुनूँ तो।

सविता उठ कर बैठ गयी। उनकी आँखो की दृष्टि भाले के फलक की भाँति तेज और कठोर थी। बोली—यह बात तुम्हारे सिवा कोई भी पुरुष मुँह से निकालने मे भी लज्जा अनुभव करता, केवल पुरुष होने के ही कारण। तुम्हारी बातो से मेरा अपमान हुआ है, यह तो मैंने एक बार भी नही कहा है।

शारदा डर के मारे घबडा उठी—क्या कर रही हैं माँ, रुक जाइए।

रमणी बाबू ने कहा—मुँह से तो तुमने नही कहा यह सच है, किंतु मन मे तो यही सोच रही हो?

सविता ने उत्तर दिया—नही, मुँह से भी नही कहा, मन मे भी नहीं सोचा। तुम्हारी स्त्री कहला कर परिचित होने से मेरी मर्यादा नही बढती छोटे बाबू। उससे केवल लोक-लज्जा से बचाव होता है, नही तो सचमुच की लज्जा से मेरा अन्तर जल कर स्याह हो जाता है।

क्यो क्यो सुनूँ तो?

सुन लेने से क्या होगा? यह क्या तुम समझ जाओगे कि मैं जिनकी स्त्री हूँ, तुमलोग कोई भी उनके पैरो की धूलि की भी बराबरी मे नही हो?

शारदा पुन भय के मारे व्याकुल हो उठी—इतनी रात को क्या कर रहे हैं आप लोग। दोहाई माँ, चुप रहिये।

कितु किसी ने भी इस पर ध्यान नही दिया। रमणी बाबू ने कडे स्वर से चिल्ला कहा—सचमुच? सचमुच ही क्या?

सविता ने कहा—सच है या नही, क्या तुम इस बात को खुद नही जानते, सब भूल गये? उस दिन उनके सिवा क्या कोई और था जो हमारी रक्षा कर सकता था केवल हड्डी मास को बचाना ही तो नही है, मान-इज्जत बचा ली थी। खुद कितना बडा होने से कोई इतनी भीख दे सकता है, कभी तुम सोच सकते हो? मैं उनकी स्त्री हूँ। मैं उस क्षति को सह चुकी हूँ, इसको नही सह सकती।

रमणी बाबू को ढूँढने पर कोई भी उत्तर नही मिला तो जो ही बात मुँह से निकल पडी, वही उन्होंने कह डाली—तो कहने से तुम क्रोध करने लगती हो किसलिए?

सविता ने कहा—केवल आज तो तुमने नही कही, प्राय ही कहते रहते हो। बात सच्ची है इसीलिए हठात् सुनने से कानो में खटकती है, कितु हृदय उसी क्षण सतोष की साँस लेकर बोल उठता है—मेरे लिए अच्छा यही है कि यह मनुष्य मेरा कोई नही है, इसके साथ मेरा वास्तविक सबध कुछ भी नही है।

शारदा अवाक् होकर उनके मुँह की तरफ ताकती रही कितु अशिक्षित रमणी बाबू के लिए इस उक्ति का गभीर तात्पर्य समझना कठिन था। वे केवल इतना ही समझ गये कि यह अत्यन्त रूढ और अपमान-जनक है। इसीलिए रोष के साथ उन्होने पूछा—तो उसके पास वापस न जाकर मेरे ही पास पडी रहती हो किस लिए?

सविता कोई जवाब देने जा रही थी, कितु शारदा ने हठात् मुँह पर हाथ रख कर बद कर दिया, कहा—किसके साथ झगडा कर रही हो माँ, क्रोध के आवेश से सब भूल जा रही हैं?

सविता ने उस हाथ को हटाकर कहा—नही शारदा, मैं अब झगड़ा नही करूँगी। उनके मुँह से जो भी निकले, कहते रहे मैं चुप रहूँगी।

अच्छा, कल इसकी समुचित व्यवस्था करूँगा।

यह कह कर रमणी बाबू अपने कमरे से बाहर निकल गये और दो मिनट के बाद सदर रास्ते मे उनकी मोटर की आवाज से समझ मे आया कि वे मकान छोडकर कही चले गये।

शारदा ने डर कर पूछा—समुचित व्यवस्था क्या है माँ।

मैं नही जानती शारदा। वह बात मैं अनेक बार सुन चुकी हूँ, कितु आज भी उसका मतलब मैं समझ न सकी।

कितु झूठमूठ कैसा अनर्थ हो गया बताइये तो।

सविता मौन हो रही। शारदा ने खुद भी क्षण काल चुप रह कर कहा—रात हो गयी अब मैं जा रही हूँ माँ।

जाओ बेटी।

तुरन्त ही भोर हुआ था। शारदा के कमरे मे खटखटाने की आवाज हुई। उसने उठकर ज्यो ही दरवाजा खोला त्यो ही सविता ने प्रवेश करके कहा—राजू के आने ही मुझे खबर देने मे भूल मत करना शारदा।

उनके चेहरे की तरफ देखकर शारदा शंकित हो गयी। बोली—नही माँ, भूलूँगी क्यो, आते ही खबर दूँगी।

सविता ने कहा—दरवान ने पता लगाया है रात के समय राजू घर नही लौटा। कितु जहाँ भी क्यो न रहे आज तुमको ले जाने के लिए वह आवेगा ही।

यही तो उन्होने कहा था।

आज ही आवेगा कहा था तो?

नहीं, ऐसा तो नही कहा, केवल कहा था कि लडकी की बीमारी मे मदद देनी पडेगी।

तुमने स्वीकार किया था तो?

किया तो था जरूर ही।

किसी तरह की आपत्ति तो तुमने नही की बेटी?

नही मा, किसी तरह की आपत्ति नही की।

सविता ने कहा—अच्छा तो मै अब जा रही हूँ, तुम घर के काम काज कर डालो। उसके आते ही खबर मुझे मिलनी चाहिये शारदा। यह कहकर वे चली गयी।

घर के काम-काज शारदा को मामूली ही थे। झटपट उन्हे पूरा करके वह तैयार हो रही—राखाल लिवाने आने पर देर न होने पावे। बक्स खोल कर, उसमे जो दो चार अच्छे-अच्छे कपडे थे, उनको भी निकाल कर बाध रखा—साथ ले जाना ही पडेगा। अविनाश बाबू की स्त्री के साथ ही उसका ज्यादा प्रेम रहता है, उसके पास जाकर उसने कह रखा कि अपने कमरे की चाभी मैं तुहारे पास रख जाऊँगी, देखना शाम को दीया जला देना। दूर सम्भर्कीया एक बहिन सख्त बीमार है। उसकी शुश्रूषा करनी पडेगी।

दिन मे दस बज जाने पर सविता ने उसके कमरे मे प्रवेश किया—राजू अभी आया नही शारदा?

नही मा।

तुम शायद वहाँ जा न सकोगी, ऐसा सदेह हो उसको नही हुआ?

होना तो उचित नही है माँ। मैंने जरा भी अनिच्छा नही दिखायी। उसी क्षण मैं राजी हो गयी थी।

तो फिर वह आ क्यो नही रहा है? सवेरे ही तो आने की बात थी। कुछ सोच कर उन्होने कहा—दरवान को भेजती हूँ, वह एक बार देख आवे वह डेरे पर लौट आया है या नही।

यह कह कर ही वे चली गयी।

कल से ही शारदा निरन्तर सोचती रही है, यह लडकी है कौन। उसके कौतूहल की सीमा नही है, तो भी इस निरतिशय दुश्चिन्ताग्रस्त उद्भ्रान्त चित्त वाली रमणी से पूछकर वह निश्चित न हो सकी थी। कल राखाल से पूछने से उत्तर मिल गया होता। कितु उस समय उसको इसकी आवश्यकता नही थी, और इसकी याद भी नही आयी थी।

इसी तरह सवेरा बीत गया, दोपहर का समय टल गया, सध्या बीत जाने पर रात्रि का आगमन हुआ, कितु राखाल के दर्शन ही नही हुए। उसके बाद वह आ सकेगा, यह आशा भी जब चली गयी, तब सविता आकर शारदा के बिछौने पर लेट रही, एक बात भी मुँह से नही निकाली। केवल आँखो से अविरल आँसू बहने लगा। शारदा पोछने गयी तो उन्होने उसका हाथ हटा दिया।

दासी ने आकर खबर दी, विमल बाबू मुलाकात करने के लिए आये हैं।

सविता ने कहा—उनसे जाकर कह दो, बाबू घर पर नही हैं।

दासी ने कहा—वे खुद ही जानते हैं। कहा है कि वे आपके ही साथ मुलाकात करने आये हैं, बाबू के साथ नही।

सविता की आँखो मे विरक्ति और क्रोध प्रकट हुए, कितु सोचकर क्षणकाल इधर उधर करके उठ पड़ी। राह मे दासी ने कहा—मा, कमरे मे जाकर कपडा बदल डालिये, कुछ गंदा दिखाई पड रहा है।

आज इस तरफ उनकी दृष्टि विधुत थी, दासी की बात से होश ठिकाने आया, पहने हुए कपडे सचमुच ही किसी से भेट करने लायक नहीं थे।

दस पन्द्रह मिनट के बाद जब वे बैठक खाने मे गयी, तब त्रुटि पकडने लायक कुछ भी नही था। हरे रग के धीमे प्रकाश मे मुँह की शुष्कता टपक गयी।

विमल बाबू ने उठ खडे होकर नमस्कार किया, कहा—शायद आपको मैंने घबडाहट मे डाल दिया, कितु कल बहुत ही अस्वस्थ देख गया था, आज आये बिना मैं रह न सका।

सविता ने कहा—मैं अच्छी हूँ। आपका कानपुर जाना नही हुआ?

नही, यहाँ से जाने पर मैंने सुना कि मेरे बडे चाचा जी सख्त बीमार हैं, इसीलिए—

अपने खास बडे चाचा हैं शायद?

नही, अपने खास नही—बाबू जी के चचेरे भाई है।

इस घर मे आपलोग सभी शायद एक ही साथ हैं।

नही, ऐसी बात नही है, पहले तो ऐसी ही थी, किन्तु—

यहाँ से जाने के साथ ही हठात् उनकी बीमारी की खबर पा गये शायद?

नही, ठीक जाते ही नहीं—भोग रहे हैं बहुत दिनो से किंतु—

तो इस हालत मे शायद कल भी आप जा न सकेंगे—खूब नुकसान होगा तो?

विमल बाबू ने कहा—नुकसान थोडा हो सकता है, किन्तु कोई मनुष्य क्या केवल व्यवसाय के लाभ नुकसान के ही लिए जीवन बितावेगा? रमणी बाबू स्वय भी तो एक व्यवसायी है, किंतु कारोबार के बाहर क्या वे कुछ भी नही करते?

सविता ने कहा—करते हैं, किंतु न करने से ही उनके पक्ष मे अच्छा था।

विमल बाबू ने हँस कर कहा—कल का क्रोध आज भी आपका ठडा नही हुआ है। रमणी बाबू आवेंगे कब?

सविता ने कहा—नही जानती। नही आने की ही सभावना है।

नही आने की ही सभावना है? कब गये—आज?

आज नही, कल रात को आपके चले जाने के बाद ही चले गये।

विमल बाबू ने कुछ देर तक चुप रह कर कहा—आशा करता हूँ कि और ज्यादा बिगड कर नही गये है। कल उनकी तबीयत साधारण कुछ-कुछ खराब थी, इसी कारण शायद उस तरह अकारण ही जोर जबर्दस्ती कर रहे थे। आज अवश्य ही उन्हे अपनी गलती का पता लग गया है।

सविता से कुछ भी जवाब न पाकर वे कहने लगे—कल मुझसे कम अपराध नही हुआ। सिगापुर जाने से अस्वीकार करने के बाद भी आप से बार-बार अनुरोध करना मेरे पक्ष मे भारी अनुचित हुआ था। नही तो ये सब कुछ भी नही हो पाते। उसी की क्षमायाचना करने के लिए आज मेरा आना हुआ है। कल आपकी तबीयत बहुत खराब हो गयी थी, आज सचमुच ठीक हालत में हैं या किसी दूसरे पर क्रोध करके किसी दूसरे को सजा दे रही हैं, बताइये तो सच सच?

उत्तर देते समय दोनो की आँखे एक दूसरे से मिल गयी। सविता ने आँखे नीचे झुका कर कहा—मैं अच्छी ही हूँ। न रहती तो भी आप कौन सा उपाय करते विमल बाबू?

विमल बाबू ने कहा—उपाय करना तो कोई कठिन नही है, कठिन है अनुमति पाना, उसी को पाना चाहता हूँ।

नही, वह आपको नही मिलेगी।

भले ही न मिले। कम से कम रमणी बाबू के पास फोन द्वारा सूचना देने का हुकुम दीजिये। आप खुद तो उनको जतावेगी नही।

नही, जताऊँगी नही। किंतु आप ही भला जताने के लिए इतने उतावले क्यों हो रहे हैं बताइये?

विमल बाबू कुछ क्षण तक स्तब्ध हो रहे। उसके बाद धीरे-धीरे बोले—कल की अपेक्षा आज आपकी तबीयत ज्यादा खराब है, यह तो मैंने कमरे मे कदम रखने के साथ ही देख लिया था—चेष्टा करके भी आप छिपा नही सकी। इसी कारण घबडायी हुई हैं।

उत्तर देने मे सविता को भी क्षण काल विलम्ब हो गया। उसके बाद उन्होने कहा—अपनी दृष्टि को इतनी निर्भूल नही समझना चाहिये विमल बाबू, भारी धोखा हो जाता है।

विमल बाबू ने कहा—नही होता यह तो मैं नही कहता, किंतु दूसरे की दृष्टि क्या निर्भूल है। ससार मे जब कि धोखे का व्यवहार मौजूद ही है तब अपनी आँखो के कारण ही धोखा खाना अच्छा है। इससे फिर भी एक तरह की सात्वना मिलती है।

सविता की मानसिक अवस्था हँसने लायक नही थी—हँसने वाली कोई भी बात नही थी—अनिश्चित

अज्ञात आतंक से मन घबडाहट मे पडा था, तो भी परम आश्चर्य यह हुआ कि उसके मुँह पर हँसी आ गयी। यह हँसी किसी मनुष्य की निगाह मे साधारणत. नही पडती। जब पड़ जाती है तब खून मे नशा आ जाता है। विमल बाबू बात छेड़ कर एक दृष्टि से ताकते रहे—उसकी भाषा स्वतंत्र थी—परिपूर्ण मदिरापात्र ने तृष्णार्त शराबी की दृष्टि की सरलता को मानो एक मुहूर्त मे विकृत बना दिया और दृष्टि का निगूढ अर्थ नारी की आँखो मे छिपा नही रहा। थोडी ही देर पहले सविता के मन मे जो सदेह था उसने इस बार असन्दिग्ध विश्वास मे परिणत होकर उसने समूचे शरीर मे मानो लज्जा की स्याही ढाल दी। उसे याद पड गया यह मनुष्य जानता है कि मैं स्त्री नही हूँ, गणिका हूँ। इसी कारण अपमान से हृदय मे जितनी ही जलन क्यो न पैदा हो गयी, कडे शब्दो मे प्रतिवाद करके उसके सामने मर्यादा हानि का अभिनय करने की भी उसकी प्रवृत्ति नही हुई। पिछली रात की घटना उसे याद पड गयी। तब अपमान के प्रत्युत्तर में उसने भी कम अपमान नही किया था। किंतु यह मनुष्य अपरिष्कृत रुचि, अल्पशिक्षित रमणी बाबू नही हैं-दोनो मे काफी फर्क है—यह शायद अपमान के बदले मे एक शब्द भी न बोलेगा, शायद केवल अवज्ञा की दबी हुई हँसी अपने ओठो मे लेकर विनय नम्र नमस्कार द्वारा क्षमायाचना करके चुपचाप चला जायगा।

दो तीन मिनट तक नीरवता मे बीत गये। विमल बाबू ने कहा—कहाँ, मेरी बात का उत्तर आपने नही दिया?

सविता ने मुँह ऊपर उठाकर कहा—आप क्या पूछ रहे थे, मुझे याद ही नही है।

ऐसी अन्यमनस्क हो गयी हैं आज?

किंतु इसका भी उत्तर न पाकर उन्होने कहा—मैं कह रहा था, सचमुच ही आप की तबीयत अच्छी नही है। क्या हो गया है क्या मैं नही जान सकता?

नही।

मुझसे भले ही न बतावे, डाक्टर को तो बता सकती हैं?

नही, यह भी मैं नही बता सकती।

किंतु यह आपका बडा अन्याय है। क्योंकि, जो अपराधी है वह सजा नही पा रहा है। पा रहा है वही मनुष्य जो पूर्णत. निरपराध है।

इस अभियोग का भी कोई उत्तर नही आया। विमल बाबू कहने लगे—कल जैसी हालत मे देख गय था, उससे आप ज्यादा खराब हालत मे हैं। शायद फिर जवाब दीजियेगा, तुमको देखने मे भूल हुई है, शायद कहियेगा अपनी दृष्टि पर अविश्वास करने को। किंतु आज मैं आपको एक काम बताऊँगा। ग्रहचक्र ने बचपन से मुझे बहुत घुमाया है, मुझको इन दोनो आँखो से ससार की बहुत सी बातो को देखना पडा है, इनसे विशेष भूले नही हुई हैं—होने से नदी की बीच धारा मे ही भाग्य नौका डूब जाती। किनारे आकर नही लगती। मेरी वे ही दोनो आँखे आज शपथ खाकर बता रही हैं आप अच्छी हालत मे नही हैं—तो भी मैं कुछ भी न कर सकूँगा, मुँह बन्द करके चला जाऊँगा—इसको तो सहन करना कठिन है।

फिर दोनो की आँखे परस्पर मिल गयी। किंतु इस बार सविता ने अपनी निगाह नीचे नही की, केवल चुपचाप ताकती रही। सामने पूर्ववत् नीरव बैठे थे विमल बाबू। उनकी लालसा दीप्त आँखो मे उद्वेग का अन्त नही था—वे निषेध मानना नही चाहती थी—डाक्टर बुलाने के लिए दौड जाना चाहती थी और वहाँ क्या था? धन नही, कोई आदमी नही, अज्ञात किसी घर मे उसकी सतान रोगशय्या पर पडी हुई थी। निरुपाय मातृ-हृदय का गभीर हृदय हाहाकार कर उठा। केवल अव्यक्त वेदना से नही, लज्जा और दुस्सह अनुताप से। किसी तरह भी वे तब बैठी न रह सकी। उमडते हुए आँसू को किसी तरह रोक कर तेजी के साथ उठ पडी, बोली—अब मुझे आप कष्ट मत दीजिये विमल बाबू, मुझे कुछ भी नही चाहिये, अच्छी तरह हूँ।

यह कह कर ही एक नमस्कार करके वे चली गयीं। विमल बाबू आश्चर्य मे पड गये, किंतु नाराज नही हुए, समझ गये, यह तो कठिन मान अभिमान का [illegible] है—ठीक होने मे दो दिन का समय लगेगा।

दूसरे दिन जब [illegible] गाडी रख कर दरवान के पीछे सविता सत्रह

नम्बर के मकान के दरवाजे पर खडी हो गयी। फटिक की माँ बाहर जा रही थी, ठिठक कर खडी हो गयी, पूछ बैठी—कौन हैं आप?

तुम कौन हो बेटी?

मैं हूँ फटिक की माँ। इस मकान की बहुत दिनो की दासी।

कहाँ जा रही हो फटिक की माँ?

दासी ने हाथ की कटोरी दिखा कर कहा दूकान से तेल लाने के लिए। मालिक के पैर का ठोकर लग जाने से हठात् सब तेल गिर गया, इसीलिए जा रही हूँ फिर लाने।

ब्राह्मण नही आया है शायद?

नही मा, अभी आया नही है। सुनती हूँ कि कल आने वाला है। आज भी मालिक ही रसोई बना रहे हैं।

राजू घर पर नही है शायद?

उनको पहचानती हैं? नही माँ, वे घर पर नही हैं। लडका पढाने गये हैं, आते ही होगे।

आज रेणु कैसी है फटिक की माँ?

वैसी ही, मालूम नही क्यो ज्वर नही छूट रहा है माँ, सभी लोग बहुत चिता मे पड गये है।

कौन चिकित्सा कर रहा है?

हमलोगो के विनोद डाक्टर। इसी समय आवेगे। आप कौन हैं माँ?

मैं इन लोगो के गाँव की बहू हूँ फटिक की माँ, खूब दूर सम्पर्क की आत्मीया हूँ। कलकत्ते मे रहती हूँ, सुन चुकी हूँ कि रेणु बीमार है इसीलिए समाचार जानने के लिए आयी हूँ। मालिक मुझे जानते हैं।

उनको खबर दे आऊँ क्या?

नही, जरूरत नही है फटिक की माँ, मैं स्वय ही जा रही हूँ ऊपर। तुम तेल ले आओ।

दरवान खडा था। उससे उन्होने कहा—तुम मोड पर जाकर खडे रहो महादेव, मेरा समय हो जाने पर तुमको बुला लूँगी। गाडी वही खडी रहे।

बहुत अच्छा माई जी।

यह कह कर महादेव चला गया।

सविता ऊपर जाकर बरामदे के जिस तरफ मालिक रसोई के धधे मे व्यस्त थे वही जा खडी हुई। पैरो का शब्द मालिक के कानो मे गया, किंतु मुँह फेर कर देखने की फुरसत नही थी, बोले—तेल ले आयी? पानी खौल रहा है फटिक की माँ, आलू परवल एक साथ? चढा दूँ, या परवल पहले पका लूँ।

सविता ने कहा—एक साथ ही पका डालो मझले मालिक, जो कुछ भी हो एक तो बनना ही चाहिये।

ब्रजबाबू ने मुँह घुमाकर देखकर कहा—नयी बहू! कब आ गयी? बैठो। नही, नही, जमीन पर नही, जमीन पर नही, बहुत धूलि है। मैं आसन दे रहा हूँ।

यह कहकर हाथ का बर्तन उतार कर रख रहे थे कि सविता ने हाथ बढा कर रोक दिया—करते क्या हो? तुम अपने हाथ मे आसन दोगे तो मैं बैठूँगी कैसे?

ठीक तो है। किंतु अब कोई दोष नही है—उस कमरे से लाकर दे ही क्यो न दूँ?

नही।

सविता उसी जगह जमीन पर बैठ कर बोली—दोष उस दिन भी था, आज भी है। मृत्यु के बाद भी रहेगा मझले मालिक। किंतु उस बात को आज छोडो बाह्मन क्या मिल नही रहा है?

मिलते तो हैं बहुत से नयी बहू, किंतु गले मे एक जनेऊ रहने से ही तो उसके हाथ का खाया नही जा सकता। राखाल कल एक को पकड कर ले आया था, किंतु मैं उस पर विश्वास न कर सका। फिर कल एक दूसरे को पकड लावेगा कह गया है।

किंतु यह आदमी भी तो तुम्हारी जिरह के सामने टिकेगा नही मझले मालिक।

ब्रजबाबू हँस पडे, बोले—आश्चर्य नही है, कम से कम यही डर मुझे भी है। किंतु उपाय क्या है।

सविता ने कहा—मैं यदि किसी को पकड लाऊँ और रखने को कहूँ— रखोगे मझले मालिक?

ब्रजबाबू ने कहा—अवश्य रखूँगा।

जिरह न करोगे?

ब्रजवाबू फिर हँस पडे, बोले—नही, जी नही, जिरह न करूँगा। इतना जानता हूँ कि तुम्हारी जिरह मे पास करके ही वह आवेगा। वह और भी कठिन है। और कोई जो कुछ भी करे, तुम बूढे वाह्मण की जात न विगाडोगी इसमे सदेह नही है।

मैं शायद धोखा नही दे सकती?

नही, नही दे सकती, मनुष्य को धोखा देना तुम्हारा स्वभाव नही है।

सविता की दोनो आँखे आँसू से भर जाने के साथ ही उन्होंने झटपट अपना मुँह फेर लिया कि पीछे कहीं झर कर गिर जाने से ब्रजवाबू देख न ले।

राखाल आ पहुँचा। उसके दोनों हाथो मे दो पोटलियाँ थी। एक में तरकारी दूसरी मे सागू वार्ली मिश्री फलमूल आदि रोगी के लिए पथ्यसामग्री थी। नयी मां को देखकर पहले वह आश्चर्य मे पड़ गया, उसके वाद हाथ का वोझ उतार कर रख देने के बाद उसने पैरो की धूलि लेकर प्रणाम किया। ब्रजवाबू से कहा, आज वहुत दिन चढ आया काका जी, अव आप ठाकुर जी की कोठरी मे जाइये, उद्योग आयोजन कर लीजिये, मैं नहा आने के वाद रसोई का वचा हुआ काम पूरा कर डालूँ।

यह कह कर उसने एक क्षण रसोई की तरफ देखकर कहा—कड़ाही मे वह कौन चीज उबल रही है?

ब्रजवाबू ने कहा—आलूपरवल की रसदार तरकारी।

और?

और? और भात तो बनेगा ही राजू।

इतने आदमी क्या उतनी ही तरकारी से खा सकेगे काका जी? पानी कहाँ है, सिल लोढा कहाँ है, रसोई कुछ भी तो मैं नही देखता। बरामदे मे झाड़ू तक भी नही पड़ा है—धूलि जमा हो गयी है, इतनी देर से आप लोग क्या कर रहे थे? फटिक की माँ कहाँ चली गयी?

ब्रजवाबू ने घवडाहट के साथ कहा—हठात् पैर का ठोकर लगने से तेल गिर गया था कि नही, वह गयी है दूकान पर खरीदने के लिए—आती ही होगी।

मधु?

मधु पेट के दर्द से प्रात.काल से ही पडा हुआ है उठ तक भी नही सका है। रोगी का काम—घर गृहस्थी का काम—अकेली फटिक की मां—

वहुत अच्छा,—कह कर राखाल ने मुँह गभीर बना लिया। उसकी दृष्टि पड गयी एक कड़ाही मट्ठे पर। उसने पूछा—इतना मट्ठा खरीदा किसने?

ब्रजवाबू ने कहा—यह मट्ठा नही है फटे दूध का पानी है। अच्छी तरह खपत नही हुई क्यो बताओ तो? रेणु ने पीना ही नही चाहा।

सुनकर राखाल जल उठा, वोला—वुद्धि का काम किया है कि पी नही गयी। गृहस्थी का भार उसके ऊपर था, रात को जाग कर रुपये पैसे की चिंता करके, दौड धूप परिश्रम करके वह बहुत ही थक गया था मिजाज रूखा हो गया था। क्रुद्ध होकर उसने कहा—आपका क्रम ऐसा ही होता है। इतनी ही चीजे तैयार करके रोगी को खिलाना है, यह भी नही कर सकते।

सविता के सामने अपनी अकर्मण्यता के कारण तिरस्कृत होकर ब्रज वाबू ऐसे कुण्ठित हो उठे कि मुँह देखने से दया आती है। कोई भी कैफियत उनके मुँह से नहीं निकली, किंतु उसे देखने का समय राखाल को नही है। उसने कहा—जाइये आप ठाकुर जी की कोठरी में, जो कुछ करना है—मैं ही कर रहा हूँ।

ब्रजवाबू लज्जित चेहरे से उठ खडे हुए। ठाकुर जी की कोठरी का कोई काम ही अभी तक नही हुआ है—सव उनको ही करना पडेगा। फिर एक बार स्नान करने के लिए वे नीचे जा रहे थे। सविता सामने आकर खडी हो गयी। वोली—आज किंतु पूजा आह्निक झटपट पूरा कर डालना पड़ेगा मझले मालिक, देर करने से काम न चलेगा।

क्यो?

क्यो का उत्तर सविता ने नही दिया। मुँह फेर कर उन्होने राखाल से कहा—अपने काका जी के लिए

पहले थोडी सी मिश्री भिगो दो तो राजू—कल रही उनकी एकादशी अभी तक जल भी स्पर्श उन्होने नही किया है।

राखाल और व्रजवाबू दोनो ही आश्चर्य से उनके मुँह की तरफ देखने लगे। व्रजबाबू ने कहा—यह बात भी तुमको याद है नयी बहू।

सविता ने कहा—आश्चर्य ही तो है। किंतु देर कर न सकोगे कह देती हूँ। नही तो गोविन्द जी के दरवाजे के सामने जाकर ऐसा हगामा शुरू कर दूँगी कि ठाकुर जी का मत्र तक तुम भूल जाओगे। जाओ, शात होकर पूजा करो, किसी तरह की चिंता अब तुमको न करनी पडेगी।

फटिक की माँ तेल लेकर हाजिर हो गयी। राखाल ने स्टोव जलाकर बार्ली चढाकर पूछा—और दूध नही है फटिक की माँ?

नही बाबू, मालिक ने सब नष्ट कर दिया है।

तो इस हालत मे क्या उपाय होगा? रेणु खायगी क्या?

नयी माँ इस बार जरा हँस पडी, बोली—दूध भले ही न रहे बेटा, उससे डरने की कौन सी बात है? इस बार का काम तो बार्ली से चल जायगा। किंतु तुम खुद मालिक की तरह बार्ली भी नष्ट मत कर देना।

नही माँ, मैं इतना बेहिसाबी नही हूँ। मेरे हाथ से कुछ भी नष्ट नही होता।

सुनकर नयी माँ फिर जरा हँस पडी, कुछ भी नही बोली। थोडी देर बाद वहाँ से उठकर वे नीचे उतर आयी। आँगन के एक तरफ पानी के पाइप की कोठरी थी, जल गिरने के शब्द से ही पहचान मे आ गयी। ढूँढने की जरूरत नही पडी। किवाड ओठँगाया हुआ था, ठेलने के साथ ही खुल गया। अन्दर व्रजबाबू नहा रहे थे। सविता ने अन्दर घुसकर दरवाजा बन्द करके कहा—मझले मालिक, तुमसे कुछ बाते करनी हैं।

ठीक तो है, ठीक तो है, चलो हमलोग बाहर चले—

सविता ने कहा—नहीं, बाहर के लोग देख लेंगे। यहाँ अकेले तुमसे मुझे कोई लाज नही है।

व्रजबाबू झडफड से उठकर खडे हो गये और बोले क्या बात है नयी बहू?

सविता ने कहा—मैं यदि इस मकान से न जाऊँ तो तुम क्या कर सकते हो मेरा?

व्रजबाबू उनके मुँह की तरफ देखकर हतबुद्धि होकर बोले—इसका मतलब?

सविता ने कहा—यदि मैं न जाऊँगी तो तुम्हारे सामने मेरे शरीर पर कोई हाथ न रख सकेगा, पुलिस बुलाकर तुम मुझे गिरफ्तार न करा सकोगे, दूसरे से शिकायत करना भी असभव है, नही जाने से क्या कर सकते हो मेरा।

व्रजबाबू डरकर सूखी हँसी हँसकर बोले—तुम कैसा मजाक करती हो नयी बहू, जिसका सिर पैर कुछ भी नही है। हटो, दरवाजा खोल दो—देर हो रही है।

सविता ने उत्तर दिया—मैं मजाक नही करती मझले मालिक, सच ही करती हूँ, किसी तरह भी दरवाजा न खोलूँगी जबतक कि जवाब न दोगे।

व्रजबाबू और भी डर गये, बोले—मजाक न हो तो यह तुम्हारा पागलपन है। पागलपन का क्या कोई जवाब है?

जवाब न हो, तो रहो पागल के साथ एक ही कमरे मे बन्द। दरवाजा खोलूँगी नही।

लोग कहेगे क्या?

उनकी जो इच्छा हो कहते रहे।

व्रजबाबू ने कहा—यह तो अच्छी विपदा आ गयी। जबर्दस्ती रहने की बात किसी ने कभी सुनी है दुनिया मे? ऐसा होने से तो आईन कानून आचार-विचार रहेगा नही, जबर्दस्ती की जैसी खुशी हो वैसा ही कर सकेगा कोई ससार मे?

सविता ने कहा—सकेगा ही तो तुम क्या करोगे बता दो न?

यहाँ रहोगी, अपने घर न जाओगी?

नही, अपना घर मेरा यही है, जहाँ पति है सतान है। इतने दिन दूसरे के घर रही, अब वहाँ न जाऊँगी।

यहाँ रहोगी कहाँ?

नीचे इतने कमरे पडे हैं, उनमे से एक मे रहूँगी। लोगो के सामने दासी मजदूरिन कह कर मेरा परिचय देना। तुम्हारा झूठ बोलना भी न होगा।

तुम पागल हो गयी हो नयी बहू, यह क्या कभी मैं कर सकता हूँ?

यह तुम न सकोगे कितु इससे अधिक कठिन काम है मुझे हटा देना। यह कर सकोगे किस तरह? मैं किसी तरह भी न जाऊँगी मझले मालिक, तुमसे निश्चित रूप से कह देती हूँ।

पागल! पागल!

पागल कैसे? जबर्दस्ती करती हूँ इसीलिए? तुम्हारे ऊपर न करूँगी तो संसार मे जबर्दस्ती करूँगी किसके ऊपर, और जोर-जबर्दस्ती की परीक्षा ही यदि हो तो तुम मेरे साथ सकोगे सही।

क्यो न सकूँगा?

कैसे सकोगे? तुम्हारे पास तो अब रुपये पैसे नही हैं—गरीब हो गये हो—मुकदमा चलाआगे किस बूते पर?

ब्रजबाबू हँस पडे। सविता घुटने टेककर उनके दोनो पैरो पर माथा रख कर चुप हो रही। विभ्रान्त चित्त अनिर्देश शून्य मार्ग से प्रतिक्षण पागल की तरह घूमती हुई मर रही हैं, अपनी तरफ देखने का क्षणमात्र समय उन्हे नही मिला है। उनकी असयत रूखी सूखी केशराशि वर्षाकाल के दिगन्त प्रसारित बादलो की तरह पति के पैरो को ढककर भीगी जमीन पर क्षणमात्र मे बिखर पडी। झुककर उस तरफ देखकर ब्रजबाबू एकाएक चंचल हो उठे, किंतु उसी क्षण अपने को सयत रखकर बोले—तुम्हारी लडकी के ही लिए चिंता है नयी बहू। अच्छा देखता हूँ यदि—

वक्तव्य को सविता ने समाप्त होने नही दिया, मुँह ऊपर उठाकर देखने लगी। आँखें आँसू से डबडबा रही हैं, बोली—नही मझले मालिक, लडकी के लिए अब मैं कोई चिंता नही करती। उसका देखने वाला आदमी है, कितु तुम? इसी बोझ को सिर पर रखकर एक दिन तुम मुझे इस ससार मे ले आये थे—

एकाएक रुकावट पड गयी। उनकी बात भी पूरी न हो सकी। बाहर से पुकार आयी—राखाल बाबू?

राखाल ने ऊपर से जवाब दिया—आइये डाक्टर साहब।

सविता उठ खडी हुयी और कमरे का दरवाजा खोल कर एक तरफ हट कर खडी हो गयी। ब्रजबाबू बाहर निकल आये।

आठ

ठाकुर जी की कोठरी में थे ब्रजबाबू और बाहर खुले दरवाजे के पास बैठकर सविता अपलक नेत्रो से पति के कामों को अच्छी तरह देख रही थी। किसी दिन इस ठाकुर जी का सारा दायित्व उनका अपना था, उनके न करने से पति को पसंद नहीं आता था। उस समय समय के अभाव से अन्यान्य बहुत से सांसारिक कर्तव्यों की उन्हे उपेक्षा करनी पड़ती थी। इस कारण फुफिआ सास तरह-तरह के बहानो से उनकी त्रुटियाँ पकड कर अपने गुप्त विद्वेष का उपशम ढूँढ़ती थी, आश्रित ननदे टेढ़ी बातो से अपने मन का क्षोभ मिटाती थी। कहती थी, हमलोग क्या बाह्मण के घर की लड़कियाँ नही हैं। देवी-देवता का काम-काज क्या हम नही जानती। पूजा-अर्चना, देवी-देवता पर क्या नयी बहू के बाप के घर का एकाधिकार है कि केवल वही सीख आयी है।

इन सब बातो का जवाब किसी दिन सविता नही देती थी कभी बाध्य होकर इस कोठरी का काम यदि दूसरे को कर देना पड़ता था तो सारा दिन उनका मन न मालूम कैसा करने लगता था। चुपके चुपके जाकर ठाकुर जी से क्षमा-याचना करके कहती थी—गोविन्दजी, ठीक सेवा नही हो रही है जानती हूँ, किंतु उपाय तो नही है।

उन दिनो निरवच्छिन्न पवित्रता और छिद्रहीन अनुष्ठान पर क्या ही उनकी तीक्ष्ण दृष्टि थी। और आज? वही गोपालमूर्ति पहले की ही तरह प्रशात चेहरे से आज भी देख रही हैं, अभिमान का कोई भी चिह्न उन दोनो नेत्रो मे नही है।

इस परिवार मे जो इतना बडा प्रलय हो चला, तोडने जोडने मे इस घर मे युगान्त हो गया इतना बडा परिवर्तन क्या ठाकुर जी जान भी नही सके थे। बिलकुल ही निर्विकार उदासीन? उनके अभाव का दाग क्या कही भी नही पडा। उनकी इतने दिनो की इतनी सेवा सूखी जल रेखा की तरह निश्चिह्न हो गयी।

विवाह के बाद ही उन्होने गुरुमत्र की दीक्षा ली, परिजनो ने आपत्ति करके कहा था—इतनी छोटी उम्र मे यह होना उचित नही है, क्योंकि अवहेलना से अपराध का स्पर्श हो सकता है। ब्रजबाबू ने इस पर कान नही दिया। उन्होने कहा था, अवस्था मे छोटी होने पर भी वह घर की गृहिणी है, मेरे गोविन्दजी का भार लेगी, इसीलिए उसको घर मे लाना पडा है, नही तो कोई प्रयोजन ही नही था। वह प्रयोजन पूरा नही हुआ है, इष्टमत्र भी वे भूल नही गयी हैं, तो भी सब ही मिट गया है, उसी गोविन्द के कमरे मे प्रवेश करने का अधिकार भी उनको नही है, दूर बाहर बैठना पडा है।

डाक्टर को बिदा करके राखाल हँसते हुए चेहरे से उछलते-उछलते आ पहुँचा, बोला—माता के आशीर्वाद से बढ़ कर क्या कोई दवा है नयी माँ? घर पर पदार्पण हुआ है देखकर ही जान गया हूँ कि अब डर नही है, रेणु अच्छी हो गयी है।

नयी माँ ताकने लगी, ब्रजबाबू दरवाजे के पास आ खडे हुए। राखाल ने कहा—ज्वर नही है बिल्कुल ही नार्मल! दिनोद बाबू खुद ही बहुत खुश हैं, कह गये हैं, उस वक्त यदि कुछ ज्वर हो जाय तो कल फिर ज्वर नही होगा। अब चिता की बात नही है। दो दिनो मे ही पूर्णरूप से रोग मुक्त हो जायगी। नयी माँ, यह केवल आपके आशीर्वाद का ही फल है, नही तो ऐसा नही होता। आज रात को निश्चित होकर जरा सो जाने को मिलेगा, काकाजी जान बच गयी।

यह स्वर सचमुच ही कल्पनातीत है। रेणु का रोग सहज नही है, क्रमश अवस्था बिगडने की ओर जा रही है यही था आतक मरण-जीवन के कठिन मार्ग मे बहुत दिनो तक अनिश्चित सग्राम करते हुए चलने के लिए ही सभी जब तैयार हो रहे थे। तभी आ गया यह आशातीत सुसमाचार। सविता गले मे आँचल डाल कर जमीन पर बडी देर तक माथा रखकर प्रणाम करके उठ बैठी, आँखे पोछ कर बोली—राजू, तुम चिरजीवी रहो बेटा—सुखी रहो।

राखाल की प्रसन्नता का अन्त नही है, सिर पर से भारी बोझ उतर गया है, बोला—माँ पुराने जमाने मे राजा रानी गले का हार खोल कर पुरस्कार देते थे।

सुनकर सविता हँसने लगी, बोली—हार तो तुम्हारे गले मे शोभा नही देगा बेटा, यदि जीवित रहूँगी तो दुलहिन के आने पर उनके ही गले मे पहना दूँगी।

राखाल ने कहा—इस जन्म मे वह गला तो ढूँढ़ने पर मिलेगा नही माँ। बीच मे मैं ही वंचित हो गया। जानती ही तो हैं, मेरे भाग्य मे मुँह का अन्न धूलि मे पडकर भोग मे आने नही पाता।

सविता समझ गयी, वह उस दिन जो उनके घर से निमत्रण मिला था, उसी का उल्लेख कर रहा है। राखाल कहने लगा—रेणु को ठीक हो जाने दो, हार भले ही न मिले, मुँह मीठा करने का दावा किंतु मैं छोड़ूँगा नही, किंतु वह भी है दूसरे दिन की बात, आज चलिये एक बार रसोईघर की तरफ। इधर कई दिन केवल भात खाकर हमलोगो के दिन बीते हैं किसी ने इसकी परवाह नही की, आज किंतु इससे काम न चलेगा। अच्छी तरह खाना चाहिये। आइये, इसकी व्यवस्था कर दीजिये।

चलो बेटा चले, यह कह कर सविता उठ पडीं। वहाँ दूर बैठ कर राखाल से उन्होने सब कुछ ही करा डाला और ठीक समय पर अच्छी तरह ही आज खाना पीना हो गया। सभी जानते थे सविता ने अभी तक कुछ भी नही खाया है। किंतु खाने का प्रस्ताव मुँह से निकालने का भी साहस किसी को नही हुआ। केवल फटिक की माँ नयी आगन्तुक होने से और जानकारी न रहने के ही कारण यह बात एक बार कहने गयी थी, किंतु राखाल ने आँख के इशारे से मना कर दिया।

सभी के चेहरे पर आज एक तरह का उद्वेगहीन हँसी-खुशी का भाव है, मानो हठात् किसी जादूमत्र से इस घर पर से भूत का उपद्रव हट गया है। रेणु को ज्वर नही है, वह आराम से सो रही है। जमीन पर एक

चटाई बिछाकर क्लान्त राखाल ने आँखे मूँद ली हैं, मधु की आहट आवाज नही है, सम्भवत. उसके पेट का दर्द वन्द हो गया है, नीचे से खन् खन् झन् झन् की आवाज आ रही है। शायद फटिक की माँ जूठे बरतन आज दिन रहते, सवेरे-सवेरे माँज रही है। सविता आकर मालिक के कमरे का दरवाजा ठेल कर चौखट के पास बैठ गयी—अरे, जाग रहे हो?

व्रजबाबू जाग ही रहे थे उठकर बिछौने पर बैठ गये।

सविता ने कहा—कहाँ, मेरी बात का जवाब नही दिया?

व्रजबाबू ने कहा—उस समय तुमको, राखाल बुला ले गया, जवाब जान लेने का समय मुझे नही मिला।

किससे जान लोगे—मुझसे?

व्रजबाबू ने कहा—आश्चर्य मे क्यो पडती हो नयी बहू, चिरकाल से यही व्यवस्था तो होती आ रही है। उस दिन तो राखाल के कमरे मे बहुत दिनो की स्थगित समस्या का समाधान करा लिया था तुमसे। पता लगाने से सुन लोगी उनमे से एक मे भी किसी तरह की कोई त्रुटि नही हुई है।

सविता मुँह झुकाये बैठी है देखकर वे कहने लगे—प्रश्न चाहे जिस तरफ से ही क्यो न आया हो जवाब देती आयी हो तुम ही, मैं नही। उसके बाद हठात् एक दिन मेरी लक्ष्मी-सरस्वती, दोनों को ही तुमने अन्तर्धान कर दिया, मेरी बुद्धि की थाली खो गयी, तब से जवाब देने का भार पड गया मेरे अपने ही ऊपर। देता भी आया हूँ, किंतु उसकी दुर्गति क्या है यह तो तुम अपनी ही आँखों से देख रही हो नयी बहू।

सविता ने मुँह ऊपर उठाकर कहा—किंतु यह तो मेरा अपना प्रश्न है मझले मालिक?

व्रजबाबू ने कहा—किंतु यह प्रश्न तो सहज नहीं है। इसमे मौजूद है घर-गृहस्थी, समाज, परिवार, इसमे है सामाजिक रीति-नीति, है लौकिक पारलौकिक धर्मसस्कार, है तुम्हारी लडकी का कल्याण-अकल्याण, उसकी मानमर्यादा उसके जीवन का सुख-दु.ख, इतनी बडी भयकर जिज्ञासा का जवाब तुम्हारे सिवा कौन देगा बताओ तो? मेरी बुद्धि मे यह अँटेगा क्यो? तुमने कहा है यदि तुम न जाओ, यदि बलपूर्वक यहाँ रह जाओ, मैं क्या कर सकता हूँ। क्या करना उचित है मैं तो नही जानता नयी बहू, तुम ही बता दो।

सविता निरुत्तर बैठी हुई बहुत समय तक कितनी ही क्या क्या बाते सोचने लगी। उसके बाद उसने पूछा—मझले मालिक, तुम्हारा कारोबार क्या सचमुच ही सब नष्ट हो चुका है?

हाँ, सचमुच ही सब नष्ट हो चुका है।

मैं रुपया निकाल कर न लेती तो क्या होता?

उससे भी नही बचता—केवल डूब जाने मे एक दो साल की देर हो जाती।

तुम्हारे हाथ मे इस समय रुपये-पैसे क्या हैं?

कुछ भी नही। अपनी हीरे की अँगूठी बेचकर जो पाँच सौ रुपये मुझे मिले हैं उससे ही काम चल रहा है।

कौन अगूठी? अपने व्रतारम्भ की दक्षिणा कह कर जिसे मैंने खुद ही तुम्हारे हाथ मे पहिना दिया था—वही? तुमने उसे बेच डाला है।

उसके सिवा मेरे पास और कुछ भी नही था यह तो तुम जानती हो नयी बहू।

सविता ने फिर कुछ देर तक चुप रहकर कहा—जो दो इलाके थे वे भी क्या चले गये?

व्रजबाबू ने कहा—गये नही हैं किंतु जायँगे। रेहन रखे गये हैं, छुडा न सकूँगा।

कुछ क्षण चुपचाप बीत जाने पर सविता ने पूछा—तुम्हारी इस विवाह की स्त्री के पास क्या रह गया।

व्रजबाबू ने कहा—उनके नाम से पटलडाँगा मे दो मकान खरीदे गये थे वे हैं और गहने हैं पचीस-तीस हजार के कागज। उनका और उनकी लडकी का काम चल जायगा—कष्ट न होगा।

रेणु को क्या है मझले मालिक?

कुछ भी नही। मामूली कहे या न कहे गहने थे, उन्हे भी वे शायद भूल से लेते गये हैं।

सुनकर रेणु की माँ मुँह झुकाये स्तब्ध हो रही।

व्रजबाबू ने कहा—सोचता हूँ, रेणु अच्छी हो जायगी तो हमलोग अपने गाँव को चले जायँगे। वहाँ

केवल दया करके यदि कोई लडकी को ग्रहण करे तो उसका ब्याह कर देंगे, उसके बाद भी यदि जीवित रहूँगा तो गोविन्द जी की सेवा करके देहात मे किसी तरह मेरे जीवन के इनेगिने दिन बीत जायँगे, ऐसी आशा है।

किंतु सविता से कोई उत्तर न पाकर वे कहने लगे—एक दिक्कत है रेणु को लेकर उसको राजी न कर सका हूँ। उसको तुम जानती नही हो, किंतु वह हो गयी है तुम्हारी ही तरह अभिमानी, सहज में कुछ नही कहती किंतु जब कहती है उसको फिर टाल नहीं सकता। जिस दिन मैं इस डेरे पर चला आया, उस दिन रेणु ने कहा—चलो बाबूजी, हमलोग गाँव चले जायँ। किंतु मेरा ब्याह करने की चेष्टा मत करना, अपने बाबू को अकेला छोडकर मैं कही जा न सकूँगी।

मैंने कहा—मैं तो बूढ़ा हो चला बेटी, अब कितने दिन बचूँगा, किंतु तब तुम्हारी क्या हालत होगी बताओ तो? उसने कहा—बाबूजी, तुम मेरा भाग्य बदल न सकोगे, बचपन मे जिसे माँ छोडकर चली जाती है, जिसके ब्याह के दिन अज्ञात बाधा से सब छिन्न-भिन्न हो जाता है, जिसके बाप का राज्यधन आतिशबाजी की तरह हवा मे उड जाता है, उसे सुख भोग के लिए भगवान् ससार में नही भेजते। उसके दु ख का जीवन दु ख मे ही समाप्त हो जाता है। यही है मेरे भाग्य की लिखावट बाबूजी, मेरे लिए सोच सोच कर तुम और कष्ट मत उठाओ।

यह कहते-कहते एकाएक उनका गला भारी हो गया। किंतु अपने को सभाल कर उन्होने कहा—रेणु ने ये बाते कही विरक्त होकर भी नही, दु ख के धक्के से व्याकुल होकर भी नही। वह जानती है उसके भाग्य मे ये सब घटनाएँ होगी ही, उसके चेहरे पर विषाद की काली छाया नही थी, उसने ये बाते कही भी सहज भाव से—किंतु जो मुँह से निकल पडा वही नही, खूब सोच-विचार करके ही उसने कही थी। इसीलिए भय होता है, शायद इससे उसे सहज ही में हटाया न जा सकेगा। तो भी मैं सोचता हूँ नयी बहू, इस दुर्भाग्य मे भी मुझे यही सात्वना है कि मेरी रेणु शोक करने के लिए बैठी नही है, मेरा अपने मन मे एक बार भी तिरस्कार नही किया।

पति की तरफ एक दृष्टि से देखते हुए सविता की दोनो आँखो मे आँसू भर आये। उसने कहा—मझले मालिक के जीवित रहते सब कुछ ही मैं अपनी आँखो से देखूँगी, कानों से सुनूँगी किंतु कुछ भी करने न पाऊँगी?

ब्रजबाबू ने कहा—क्या करना चाहती हो नयी बहू, रेणु तो किसी तरह भी तुम्हारी सहायता न लेगी? और मैं—

सविता की जीभ ने शासन नही माना, अकस्मात् पूछ बैठी—रेणु क्या जानती है मैं आज भी जीवित हूँ मझले मालिक?

ये कई बाते मामूली ही थी, किंतु इस प्रश्न मे कितने प्रकार से उसकी रात्रि का सपना दिन की कल्पना भरी पडी है यह खबर उसके सिवा और कौन जानता है? पीले चेहरे से देखती हुई उत्तर के लिए उसकी छाती के अन्दर हलचल मचने लगी। ब्रजबाबू चुप रह कर क्षण काल सोचकर बोले—हाँ, वह जानती है।

जानती है कि जीवित हूँ?

जानती है। वह जानती है तुम कलकत्ते मे हो अगाध ऐश्वर्य मे सुखपूर्वक हो।

सविता ने मन ही मन कहा—हे पृथ्वी, द्विधा फट जाओ।

ब्रजबाबू कहने लगे—वह तुम्हारी सहायता न लेगी, और मैं—गोविन्दजी की अन्तिम पुकार मैं कानो से सुन चुका हूँ नयी बहू, तो भी मुझे कुछ देकर तुम तृप्ति पाओगी तो मैं ले लूँगा। प्रयोजन है इसलिए नही—मेरे धर्म का अनुशासन है—अपने ठाकुर जी का आदेश होने से लूँगा। तुम्हारा दान हाथ पसार कर लेकर मैं पुरुष का अन्तिम अभिमान समाप्त करके तृण की अपेक्षा भी हीन होकर ससार से बिदा हो जाऊँगा। यदि उस समय उसके श्री चरणो के नीचे स्थान पा जाऊँ।

सविता पति के मुँह की तरफ देख न सकी। किंतु साफ समझ गयी उनकी आँखो से दो बूँद आँसू लुढ़क पडे। वहाँ स्तब्ध भाव से मुँह झुकाये बैठी रहकर उसे सबकी बाते याद आने लगी। उसे वह बात याद आ गयी तब पति के नहाने की कोठरी मे दरवाजा बन्द करके उसने उनसे जोर लगा कर कहा था। यदि मैं न जाऊँ, तुम मेरा क्या कर सकोगे? उनके पैरों पर माथा रख कर कहा था, यही तो मेरा घर है, यहाँ है मेरी

कन्या, है मेरा पति। मुझे विदा करने की शक्ति किस मे है।

किंतु अब वह समझ गयी उसकी बाते कितनी अर्थहीन, कितनी असभव हैं। कितनी हास्यस्पद है जबर्दस्ती करने का उसका दावा। उसके भित्तिहीन शून्यगर्भ आस्फालन के आज एक छोर पर खडी है एक कुल-त्यागिनी और दूसरे छोर पर खडा है उसका पति, उसकी बीमार लडकी ही केवल नही, बीच मे है ससार घर-गृहस्थी, है धर्म, है नीति, है समाज बधन के असख्य विधि-विधान, केवल आँखो का आँसू धोकर पति के चरणो पर माथा पटक कर गुरु भार को वह टालेगी किस तरह? उसने और कोई बात नही कही। पति के उद्देश्य से फिर एक बार चुपचाप जमीन पर माथा टेक कर वह उठ खडी हुई।

राखाल की नीद टूट गयी है। उसने आकर कहा, मैंने सोचा, शायद नयी माँ चली गयी हैं।

नही बेटा, अब जाऊँगी। रेणु कैसी है?

अच्छी तरह है माँ, अभी तक सो रही है।

मझले मालिक, मैं जाऊँ अब!

जाओ।

राखाल ने कहा—माँ, चलिये आपको गाडी पर चढा आऊँ। कल फिर आप आवेगी तो?

आऊँगी ही बेटा।

यह कहकर वे आगे चढ चली। पीछे-पीछे राखाल भी चलने लगा।

रास्ते से चलते समय सविता गाडी मे आज की सब बाता, सब घटनाओ की मन ही मन आलोचना कर रही थी। उसके तेरह साल पहले का जीवन जिन कुछ चीजो से गुंथा हुआ था, आज फिर उनके ही बीच उसके दिन बीतने लगे। पति, कन्या, राखालराज और कुल देवता गोविन्दजी। गृह त्याग के बाद से प्रतिक्षण आत्मगोपन करके ही उसका इतना समय व्यतीत हुआ है, कभी वह तीर्थ-यात्रा के लिए बाहर नही निकली है, किसी देवमन्दिर मे नही गयी है, कभी गगा स्नान करने के लिए नही गयी है—कितने पर्वदिन, कितने शुभक्षण, कितने स्नान के मुहुर्त चले गये हैं, साहस करके किसी दिन राह के बरामदे मे भी नही खडी हुई है, पीछे किसी परिचित आदमी की दृष्टि न उस पर जाय। उस दिन राखाल के घर मे अकस्मात् कुछ कुछ आवरण उठ गया है—आज सबके सामने ही उसका भय दूर हो गया, लज्जा हट गयी। रेणु ने अभी तक सुना नही है, किंतु सुनना उसको बाकी न रहेगा। तब वह शायद इसी तरह चुपचाप क्षमा करेगी। उसके बाद किसी का क्रोध नही, अभिमान नही। व्यथा देने के लिए जरा सा भी कटाक्ष किसी ने नही किया है। दुःख के दिनो मे वह जो दया करके उन लोगो का समाचार जानने के लिए आ गयी है इसी से सभी कृतज्ञ हैं। व्यस्त होकर ब्रजबाबू अपने हाथ से उसको बैठने का आसन देने आये थे—मानो अतिथि की सेवा मे कही कोई त्रुटि न रह जाय। अर्थात् परिपूर्ण विच्छेद का और कुछ भी बाकी नही है, आते समय सविता असंदिग्ध रूप से यही बात जानकर आयी है।

रेणु जानती है उसके पिता दरिद्र हैं। वह जानती है उसके भविष्य के सभी सुख-सौभाग्य की आशा निर्मूल हो चुकी है। किंतु इसी बात को वह लेकर शोक मनाने नही बैठी है, व्यवस्था को उसने अविचलित धैर्य के साथ स्वीकार कर लिया है, उसने निश्चय कर लिया है स्वस्थ हो जाने पर दरिद्र पिता को साथ लेकर वह अपने एकान्त गाँव मे लौट जायगी। उनकी सेवा करके वहाँ ही जीवन बितायेगी।

ब्रजबाबू ने कहा है, रेणु जानती है उसकी माँ जीवित है—उसकी माँ अगाध ऐश्वर्य और सुख मे है। पति की यह बात जितनी बार उसे याद आयी उतनी ही बार सर्वांग मे व्याप्त होने वाली लज्जा से वह कटकित हो उठी। यह झूठ नही है—किंतु यही बात क्या सच है? लडकी को उसने देखा नही है, राखाल के मुँह से उसके रूप का विवरण सुन लिया है—सुना है वह अपनी माँ की ही तरह देखने मे है। अपना मुँह याद करके उसने चित्र अंकित करने की चेष्टा की, उतना स्पष्ट तो नही हुआ। फिर भी रोगतप्त उसका अपना मुँह ही मानो मानसपट मे बार-बार फूट उठने लगा।

गाँव देहात की दुःख-दुर्दशा के कितने सभव-असभव चित्र ही उसकी कल्पना मे आने लगे, उसकी सख्या नही है और सब ही मानो उसी एक मात्र पीले रुग्ण मुँह को सब ओर से घेर कर। ससार मे अनासक्त दरिद्र पिता ईश्वर-चिन्ता मे निमग्न है, किसी तरह भी उनकी दृष्टि मे नही पडता कि वही पर रेणु बिलकुल ही अकेली है। दुर्दिन मे सात्वना देने वाला मित्र नही है, विपत्ति मे आश्वासन देने वाला

आत्मीय नही है—वहाँ दिन पर दिन उसके कैसे बीतेगे? यदि कभी इसी तरह बीमार पड जायगी तब? हठात् यदि वृद्ध पिता को परलोक से बुलावट आ जायगी, उस दिन? किंतु उपाय नही है—उपाय नही है। उसे खयाल आने लगा पिजडे मे बन्द करके उसकी ही आँखों के सामने मानो उसकी संतान की कोई हत्या कर रहा है।

सविता को होश तब हुआ जब गाडी आकर उसके दरवाजे पर खडी हो गयी। ऊपर चढ रही थी कि उसी समय दासी ने आकर चुपके चुपके कहा—माँ, बाबूजी बहुत नाराज हो गये हैं।

कब आये हैं वे?

बहुत देर हुई। बडे कमरे मे बैठ कर विमलबाबू के साथ बातचीत कर रहे हैं।

वे कब आये?

कुछ ही देर पहले। अभी हठात् उस कमरे मे जाने की जरूरत नही है माँ, उनका क्रोध कुछ ठडा हो जाने दो।

सविता ने भौंहे टेढ़ी करके कहा—तुम जाओ अपना काम करो।

वह स्नान करके, कपडा बदल कर जब बैठक खाने मे आ खडी हुई तब सध्या का दीपक जल चुका था, विमल बाबू ने उठ कर खडे हो कर पूछा—आज कैसी हैं?

अच्छी हूँ, बैठिये।

उनके बैठ जाने पर सविता खुद भी जाकर एक कुर्सी पर बैठ गयी।

विमलबाबू ने कहा—सुना है कि दोपहर के पहले ही आप घर से बाहर निकली थी—आज आप का खाना तक भी नही हुआ है।

सविता ने कहा—नही, इसके लिए मुझे समय नही मिला।

रमणी बाबू मुँह उदास किये बैठे थे, बोले—कहाँ जाना हुआ था आज?

सविता ने कहा—मुझे काम था।

काम सारा दिन?

नहीं तो सारा दिन रहने जाऊँगी क्यो? पहले ही तो लौट सकती थी।

रमणी बाबू ने क्रुद्ध कंठ से कहा—सुनता हूँ कि आजकल प्राय: ही तुम घर पर नही रहती—काम क्या था जरा सुन सकता हूँ या नहीं?

सविता ने कहा—नही, वह तुम्हारे सुनने लायक नही है। विमल बाबू, आज भी आपका जाना नही हुआ?

विमल बाबू ने कहा—नही, हुआ नही। बडे चाचा जी जब तक कुछ अच्छे नही हो जाते तब तक शायद मैं जा न सकूँगा।

उसकी बात समाप्त होने के पहले ही रमणी बाबू रोष के साथ बोल उठे—मुझसे पूछकर क्या तुम बाहर गयी थी?

सविता ने शातभाव से उत्तर दिया—उस समय तो तुम थे नही।

जबाब क्रोध बढ़ाने लायक नही था। किंतु वे कुछ हो चुके थे, एकाएक चिल्ला उठे—रहूँ या न रहूँ यह तो मैं समझूँगा किंतु मेरे हुकुम के बिना एक कदम भी तुम बाहर न जाओगी यह साफ तौर से बता देता हूँ सुन लिया?

सुन लिया सभी ने, विमल बाबू ने सकोच से व्याकुल होकर कहा—रमणी बाबू, आज मैं जाता हूँ काम है।

नही नही आप बैठिये। किंतु यह सब बेहायापन मैं बरदाश्त नही करता, इसीलिए मैंने केवल उसे बता दिया।

सविता ने कहा—बेहायापन तुम किसको कहते हो?

कहता हूँ, जो कुछ तुम करती हुई घूमती रहती हो उसी को।

काम रहने पर भी नही जाऊँगी?

नही। मैं जो कहूँगा, वही तुम्हारा काम होगा। दूसरा काम नही है।

वही तो इतने दिनों से करती आयी हूँ छोटे बाबू, किंतु अब क्या तुम मेरे ऊपर अविश्वास करने लगे हो?

अविश्वास उस पर किसी दिन नही होता था, तो भी क्रोध के आवेश में रमणी बाबू बोले—होता है एक सौ बार। तुम सीता हो या सावित्री हो क्या जिससे अविश्वास नही हो सकता? एक आदमी को धोखा दे सकी हो, मुझे नहीं दे सकती।

विमल बाबू लज्जा से घबड़ा उठे। इन लोगों के झगडे के बीच बातचीत करना भी ठीक नही, किंतु सविता स्थिर होकर बहुत देर तक चुपचाप रमणी बाबू के मुँह की तरफ ताकती रही, उसके बाद बोलीं—छोटे बाबू, तुम जानते हो मैं झूठी बात नही कहती। हमलोगों का संबंध आज से समाप्त हो गया। फिर तुम मेरे मकान पर मत आना।

कलह-विवाद इसके पहले भी हुए हैं, किंतु सब एक तरफा होते थे। हँगामा चिल्लाहट के डर से चिर दिन ही सविता चुप रहती थी, पीछे कही गुप्त बात किसी के कानो तक न पहुँच जाय। उसी नयी बहू के मुँह से इतनी कडी बात सुन कर रमणी बाबू पागल हो उठे, विशेषतः तृतीय व्यक्ति के सामने मुँह वक्र बना कर बोले—किसका मकान है यह? तुम्हारा? कहने में जरा भी लज्जा नहीं हुई?

सविता उनके मुँह की तरफ देख कर बड़ी देर तक चुप हो रहीं, उसके बाद वे धीरे-धीरे बोलीं—हाँ, मुझे लज्जित होना चाहिये छोटे बाबू, तुम सच्ची बात कह रहे हो। न तो यह मकान मेरा है और न तो तुम्हारा ही है—तुमने ही दिया था। कल मैं और कही चली जाऊँगी, तब सभी तुम्हारा रहेगा। तेरह वर्ष के बाद चले जाने के दिन तुम्हारी एककौड़ी भी मैं अपने साथ न ले जाऊँगी सब ही तुमको वापस कर देती हूँ।

इस कंठ स्वर से रमणी बाबू की चौंक टूट गयी. हतबुद्धि होकर बोले—कल चली जाओगी किस तरह?

हाँ, मैं चली जाऊँगी।

चली जाऊँगी कहने से ही तुमको जाने दूँगा?

मुझे रोकने की व्यर्थ चेष्टा मत करो छोटे बाबू, हम लोगों का सब समाप्त हो गया—यह फिर लौटेगा नही।

इतनी देर में रमणी बाबू को होश हुआ कि मामला सचमुच ही भयंकर हो उठा है। डर कर उन्होंने कहा—मैं क्या सचमुच ही कह रहा हूँ नयी बहू की यह मकान तुम्हारा नहीं है मेरा है? क्रोध के आवेश में क्या मुँह से एक भी बात निकाली नहीं जा सकती?

सविता ने कहा—क्रोध के कारण नही। क्रोध जब ठंडा हो जायगा, शायद देर होगी—तब समझोगे इतना बड़ा मकान दान करने का नुकसान तुमसे सहा न जायगा, चिरकाल काँटे की तरह तुम्हारे मन में यही बात बिंधती रहेगी हम दोनों के लेन-देन में अकेले तुम ही ठगे गये हो। डण्डी पलडे मे एक दिशा को जब तुम खाली देखोगे तब दूसरी तरफ बटखरे का बोझ तुम्हारी छाती पर जाँता की तरह दबाकर बैठ जायगा—सहन करने की शिक्षा तुमको नही मिली है। किंतु और तर्क करने का जोर मुझमें नही है—मैं बहुत थक गयी हूँ। विमल बाबू, फिर शायद मुलाकात होने का अवकाश हम लोगो को नही मिलेगा—मैं कल ही चली जाऊँगी।

कहाँ जायँगी।

यह अभी तक मैं नही जानती।

किंतु जाने के पहले भेंट होगी ही। मैं फिर आऊँगा।

समय मिल जाय तो आइयेगा। आज किंतु मैं जा रही हूँ।

यह कह कर सविता आज दोनों को ही नमस्कार करके उठ गयी।

बिमल बाबू ने कहा—रमणी बाबू मेरा भी नमस्कार लीजिए—मैं जा रहा हूँ।

नौ

इतनी बडी बात फैलने मे कसर नही रही। प्रभात होने के पहले ही सब किरायादारो ने सुन लिया कल रात को मालिक-मालकिन मे खूब झगडा हो गया है। नयी मा ने प्रतिज्ञा की है कल ही इस गृह को छोड कर चली जायँगी। किसी दूसरे की बात होती तो वे लोग केवल मृदु हँस कर अपने काम में मन लगाते। किंतु इनके सबध में ऐसा न कर सके। ठीक-ठीक वे लोग विश्वास कर सके ऐसी बात भी नही है, किंतु यह विषय इतना ही गुरुतर था कि सच होने से चिता की कोई सीमा ही नही है। शहर मे इतने अल्प मूल्य में ऐसी रहने की जगह न मिलेगी यही डर केवल नही है, उन लोगों के कितने दिनो का कितना किराया बकाया पडा है और कितने ही प्रकार से वे इस गृह स्वामी के प्रति ऋणी हैं। बहुत से प्राय. भूल ही गये हैं कि यह गृह उनका नही है। उन लोगो ने शारदा को पकडा और उसने आकर म्लान चेहरे से कहा—यह कैसी बात सब लोग आपस मे कह रहे हैं माँ?

कौन सी बात शारदा?

वे लोग कह रहे हैं इस मकान से आप चली जायँगी।

उन लोगो ने सच्ची बात ही कही है शारदा।

सच्ची बात? सचमुच ही चली जायँगी आप?

सचमुच ही मैं चली जाऊँगी शारदा।

सुनकर शारदा स्तब्ध हो रही। उसके बाद उसने धीरे-धीरे पूछा, किंतु आप कहाँ जायँगी?

नयी माँ ने कहा—इसका अभी तक मैंने निश्चय नही किया है, केवल जाना पडेगा इतना ही मैंने निश्चय किया है बेटी।

शारदा की दोनो आँखें आँसू से भर गयी, बोली—उन लोगो मे से कोई भी विश्वास नहीं कर रहा माँ, सोचते हैं यह केवल आपके क्रोध की बात है—क्रोध ठडा होते ही मिट जायगी। मैं यह सोच भी नही सकती माँ, बिना बादल के ही हम लोगो के सिर पर इतना बडा वज्राघात होगा—निराश्रय मे हम लोगो मे से कौन कहाँ बह जायगा। फिर भी, वे लोग जो बात नही जानते मैं उसे जानती हूँ। मैं समझ सकी हूँ माँ, इस समय यह मकान आप के लिए इतना तीता हो उठा है कि वह अब सहा नही जा रहा है, किंतु जाऊँगी कह देने से ही तो जाना नही हो सकता।

नयी माँ ने कहा—क्यो नही हो सकता शारदा? यह मकान मेरे लिए तीता हो उठा है इस समय नही, बारह साल पहले जिस दिन पहले पहल मैंने यहाँ कदम रखा है। किंतु बारह साल तक भूल की है इसीलिए और भी बारह साल तक भूल करनी पडेगी, इस बात को मैं अब न मानूँगी—इस दुर्गति से मैं मुक्त होऊँगी ही।

शारदा ने कहा—माँ, मेरा तो कोई है नही, मुझे किसके पास छोड जायँगी?

नयी माँ ने कहा—जिसके पति हैं, उसके पास सब है शारदा। तुमने कोई अन्याय, कोई अपराध नही किया है। अनुतप्त होकर जीवन को एक दिन लौटना ही पडेगा। दु ख की ज्वाला से हतबुद्धि होकर वहाँ जहाँ ही क्यो न भाग गया हो, फिर तुम्हारे पास उसे आना ही पडेगा किंतु मेरे साथ चले जाने से तो वह तुमको ढूँढ कर पावेगा नही माँ।

शारदा ने कहा—नही माँ, वे अब आवेगे नही।

ऐसा कभी होता नही शारदा—वह आवेगा ही।

नही, माँ, आवेंगे नही किंतु आज नही, और किसी दिन आपको इसका कारण बताऊँगी।

जाने के लिए सविता ने कोई जिद नही की, किंतु अत्यन्त आश्चर्य से चुप हो रही।

शारदा कहने लगी—जहाँ ही आप जायें मैं साथ चलूँगी। आप बडे घर की लडकी हैं, बडे घर की बहू हैं—कही भी अकेली जाना ठीक नही, साथ मे एक दासी चाहिये ही—मैं आप की वही दासी हूँ माँ।

किस तरह तुम जान गयी कि मैं बडे घर की लडकी हूँ, बडे घर की बहू हूँ—किसने तुमसे कही यह बात?

शारदा ने कहा—किसी ने नही कही। किंतु क्या केवल इस बात को मैं ही जानती हूँ माँ, सभी जानते हैं, यह बात लिखी हुई है आप की आँखोकी पुतलियो मे, यह बात लिखी हुई है आप के सर्वांग मे, आप के पैदल चलने पर लोगो को पता चल जाता है। बाबू ने किसी तरह के कुछ सदेह का आभास दिया था, किसी तरह के अपमान की बात कह दी थी—ऐसी बात कितने ही घरो मे ही होती रहती है—किंतु वह आपसे कहा नही गया, सब छोड कर जाना चाहती हैं। बड़े घर की लड़की के सिवा क्या इतना अभिमान किसी को रहता है माँ?

क्षण काल मौन रह कर वह फिर कहने लगी, भीतर की बाते सभी जानते हैं। तो भी कोई मुँह से निकाल नही सकता, यह बात डर से भी नही, आपकी कृपा के लोभ से भी नही। ऐसा होने से यह छलना किसी न किसी दिन प्रकट हो ही जाती। आप को आभास से भी कोई अपमानित नही कर सकता यह केवल इसीलिए माँ।

सविता ने कृतज्ञतापूर्ण नेत्रों से स्वीकार करके कहा—तुम लोग सभी जो मुझे प्यार करती हो यह बात मैं जानती हूँ।

शारदा ने कहा—केवल प्यार ही नही, हम लोग आपका बहुत सम्मान करती हैं। केवल आप अच्छी हैं इसीलिए नही करती, आप बड़ी हैं इसीलिए करती हैं। इसी कारण कल्पना करने की बात तो दूर रही, वह बात मन मे सोचने से भी हमे लज्जा मालूम होती है। वही हम लोगो को छोड कर आप किस तरह चली जायँगी?

किंतु न जाने से भी तो कोई उपाय नही है?

उपाय यदि न रहे तो हम लोगो को साथ गये विना कोई उपाय नही है और मेरे न रहने से कौन करेगा?

सविता ने कहा—कौन करेगा यह मैं नही जानती, किंतु बड़े घर से ही यदि मैं आ गयी हूँ शारदा, तो तुम भी ऐसे घर से नही आयी हो जो लोग दूसरों का काम करते हुए घूमते हैं। तुमको दासी का काम करने भी मैं क्यो दूँगी?

शारदा ने जवाब दिया तो इस हालत मे मैं दासी का काम न करूँगी, मैं करूँगी माँ की सेवा। अपमान की लज्जा से अकेली जाकर रास्ते में आप खडी होंगी उसका दु ख कितना है, यह बात मैं जानती हूँ। यह मुझसे सहा न जायगा माँ, साथ मैं जाऊँगी ही। यह कहकर उसने आँचल से अपना मुँह पोछ डाला।

वह स्पष्ट रूप से कहना नही चाहती, केवल इशारे से समझाना चाहती है कि निराश्रय का दु ख कितना है! सविता को खुद भी याद आ गयी उस दिन की बात जिस दिन गंभीर रात्रि मे पतिगृह छोड़कर बाहर चली आयी थी। आज भी उस दुःख की तुलना करने मे जगत् का कोई भी दु.ख वह ढूँढ कर नही पाती। उसके बाद सुदीर्घ बारह वर्ष बीत गये इस घर मे। इस नरककुण्ड मे भी बचे रहने की जरूरत से फिर उनको धीरे-धीरे बहुत कुछ ही सचय करना पडा है, वह सब सचमुच ही क्या आज भार-बोझ है? सचमुच ही क्या प्रयोजन बिलकुल ही खतम हो चुका है? शारदा की सतर्क वाणी ने उनको सचेतन कर दिया, सदेह उत्पन्न हो गया निर्विघ्न आश्रय त्याग करने का घोर दुत्साहस शायद आज उनमे नही है। पुण्यमय पतिगृह मे रहने की बहुत सी स्मृतियाँ उनमे मानसपट में फूट उठी, भय उत्पन्न हुआ, वह मन, उस शात देहाती भवन की सरल सामान्य आवश्यकताएँ इस विक्षुब्ध नगरी की अशुचि जीवन-यात्रा की आँधी मे चक्कर खाकर कहाँ डूब गयी हैं, किसी तरह अब उनका पता न चलेगा। मन ही मन मान ही लेना पडा कि वे वही नयी वहू अब नही हैं, उनकी अवस्था बढ चुकी है, अभ्यासो मे बहुत से परिवर्तन हो गये हैं। यह आश्रय जिसने दिया है, उसकी दी हुई लाछना और अपमान चाहे जितना बडा ही क्यो न हो उस आश्रय को छोडकर खाली हाथ रास्ते मे निकल पडना आज उससे भी अधिक कठिन काम है। किंतु एकाएक याद पड गया रहना भी पडेगा किस तरह। इस मनुष्य के विरुद्ध उसका विद्वेष और घृणा प्रतिक्षण जमा हो कर जो इतना बडा पर्वताकार हो गया है, यह बात इतने दिन स्वय भी इस प्रकार हिसाब करके उन्होने नही देखी है। मन मे यह ख्याल आया कि खटिये पर बैठकर पान और तम्बाकू से गोलगप्पा की तरह फुला कर बारम्बार उच्चारित उन सब अत्यत अरुचिकर सभाषणो और रसिकता से उसका मनोरंजन करने का प्रयत्न कर रहा है—उसकी लालसापूर्ण वह धुँधली चितवन, उसकी अतिशय

लज्जाविहीन अत्युग्र अधीरता—इस कामार्त अतिप्रौढ़ व्यक्ति के शय्यापार्श्व में जाकर फिर उसे रात बितानी पडेगी यह स्मरण करके क्षण भर के लिए सविता मानो बेहोश हो गयीं।

माँ?

सविता ने चकित होकर उत्तर दिया—क्यो शारदा?

सचमुच ही आज आप चले जाइयेगा नही तो?

आज न जाने पर भी एक दिन तो जाना ही पडेगा?

क्यो जाना पडेगा, यह मकान तो आपका है।

नही, मेरा नही है, रमणी बाबू का है।

इतने दिनो तक इस नाम का वे मुँह से उच्चारण नही करती थी। मानो सचमुच ही यह निषिद्ध था, आज छलना का नकाब उन्होने खोल दिया। शारदा ने लक्ष्य किया, क्योंकि हिंदू नारी के कानो में यह खटकेगा ही। और कारण भी समझ गयी। बोली—हमलोग तो सभी जानते हैं यह मकान उन्होने आपको दिया था, अब तो उनका अधिकार नही है माँ।

सविता ने कहा—यह मैं नही जानती शारदा, यह तो कानून और अदालत की बात है। मौखिक दान का स्वत्व कितना है यह मैं नही जानती।

शारदा ने डरकर कहा—केवल मौखिक? लिखापढ़ी नही हुई है? ऐसा कच्चा काम तुमने क्यो किया था माँ?

सविता चुप हो रही, उनको उसी क्षण याद आ गया पति के पास जो रुपया जमा था, सर्वस्व खोकर भी उन्होने सूद असल समेत उस दिन लौटा दिया।

शारदा ने कहा—रमणी बाबू को आपने आने की मना ही कर दी है अब क्रोध के आवेश मे यदि वे अस्वीकार कर दें?

सविता ने अविचलित कंठ से कहा—वे वही कर डालें शारदा, मैं उनको जरा भी दोष न दूँगी। केवल उनसे मेरी प्रार्थना है क्रोध रोष और चिल्लाहट मचाने के लिए फिर वे मेरे सामने न आवें।

सुनकर शारदा निर्वाक् हो रही। अन्त मे सूखे मुँह से बोली—एक बात मैं कहती हूँ माँ आपसे। रमणी बाबू को आपने बिदाई दे दी, रहने का मकान भी जाने पर है, सचमुच ही क्या आपको कोई चिंता नही होती? उस दिन जब मुझे छोड़कर वे चले गये, अकेली घर मे मैं मानो पागल हो गयी। ज्ञान नही था इसीलिए तो विष खाकर मैंने मरना चाहा था माँ, नही तो इतने बडे पाप के काम मे तो मुझे साहस ही नही होता। किंतु आपको देखती हूँ पूर्ण रूप से निर्भय हैं, किसी चीज की ही परवाह नही करती—ऐसी बात किस तरह संभव होती है माँ? शायद संभव होती है इसलिए कि हमलोगों की अपेक्षा आप बहुत बडी हैं।

सविता ने कहा—बडी नही हूँ बेटी। किंतु तुम्हारी और मेरी अवस्था एक नही है। तुम थी पूर्णतः नि:स्व, सम्पूर्ण निरुपाय, किंतु मैं वह नही। उस दिन जो बहुत रुपये की सम्पत्ति मेरे यहाँ खरीदी गयी, वह मेरे अधिकार मे हैं शारदा।

शारदा ने आस्वस्त होकर पूछा—उसमें तो कोई गडबड़ी नही होगी माँ?

सविता गर्व के साथ बोल उठी—वह तो मेरे पति की है—वह तो मेरा अपना रुपया है। उसमे गडबडी मचाने की शक्ति है किसमे?

बारह वर्षों से सविता अकेली हैं। आत्मीय स्वजनहीन अवस्था में बारह वर्ष बीत गये हैं पराये घर में। मन की बात कहने लायक एक भी आदमी इतने दिन नही था। रुपये का विवरण देते समय अकस्मात् इस लड़की के सामने उनका इतने दिनों का बंद उत्स मुख खुल गया। एकाएक किस तरह पति से भेंट हो गयी, प्रायान्धकार गृह में केवल मात्र छाया देख कर किस तरह उन्होंने उसे पहचान लिया, तब किस तरह अपने को उन्होंने सम्हाल लिया तब उन्होंने क्या कहा, उन्होंने क्या किया, इन सब बातो को अनर्गल बकते-बकते कुछ देर के लिए सविता ने मानो अपने को खो दिया। शारदा के आश्चर्य का ठिकाना नही रहा—नयी माँ का इस हद तक आत्म-विस्मरण उसकी कल्पना के बाहर की बात थी।

नीचे से पुकार आयी माई जी!

सविता ने सचेतन होकर उत्तर दिया—कौन है महादेव?

दरवान ने ऊपर आकर बताया उनके आदेशानुसार शोफर गाड़ी ले आया है।

आधा घण्टे के बाद तैयार होकर नीचे उतर कर उन्होंने देखा दरबाजे के पास शारदा खड़ी है। उसने कहा—माँ, मैं आपके साथ चलूँगी, वहाँ राखालराज बाबू हैं। वे कभी नाराज नही होगे।

कोई साथ जाय ऐसी इच्छा सविता की नही थी। बोली—हो सकता है कोई नाराज न हो, किंतु तुम्हारे वहाँ जाने से क्या होगा शारदा?

शारदा ने कहा—मैं सब जानती हूँ माँ। रेणु बीमार है, मैं उसको एक बार देख आऊँगी। इससे भी बडी साध मुझे हुई है रेणु के बाप को देखने की—प्रणाम करके उनके पैरों की धूलि ग्रहण करूँगी।

यह कह कर सम्मति की प्रतीक्षा न करके ही गाडी पर जाकर बैठ गयी।

रास्ते मे चलते हुए उसने धीरे-धीरे पूछा—रेणु के बाप देखने मे कैसे हैं माँ?

सविता ने कौतुक करके कहा—तुमको कैसा मालूम होता है शारदा? ठाठ-बाट वाले खूब जबरदस्त आदमी—ठीक है न?

शारदा ने कहा—नही माँ, ऐसा नहीं मालूम होता। किंतु उसी समय से तो सोचती हूँ, कोई चेहरा ही मानो पसद नही आ रहा है।

क्यो नही हो रहा है शारदा।

हो नही रहा है इसलिए माँ, वे केवल रेणु के बाप नहीं हैं, वे आपके भी पति हैं। मन ही मन मानो किसी तरह भी दोनों को एक साथ मिला नहीं सकती।

सविता ने हँस कर कहा—मान लो यदि ऐसा ही हो—एक है वृद्ध वैष्णव मुझसे उम्र में बहुत बड़ा—माथे पर वे शिखा बाल प्राय. पक चुके हैं, रंग गोरा है, शरीर लम्बा है, पूजा से, उपवास से, आचार से, नियम से शीर्ण है—ऐसे आदमी को तुम पसद करती हो शारदा?

नहीं माँ, नही करती। आप करती हैं?

किये विना उपाय नहीं है शारदा? पति पसद वे-पसद की चीज नही है। उनको बिना विचार किये मान लेना पड़ता है। तुम कहोगी, यह है शास्त्र का विधान, मनुष्य के मन का विधान नही है। किंतु यह तर्क कौन लोग करते हैं जानती हो बेटी, वे ही लोग करते हैं जिनका सचमुच ही आज तक भी मनुष्य के मन की खबर नही मिली है, जिन्हें दुर्गति की आग जला कर जीवन का पथ टटोलते हुए घूमना नहीं पड़ा है। ससार-यात्रा मे पति के सौन्दर्य और जीवन का प्रश्न तुच्छ बात है बेटी, दो दिनों मे ही हिसाब के बाहर चला जाता है।

शारदा अशिक्षिता होने पर भी ऐसी वात को ठीक सच्ची बात कह कर ग्रहण न कर सकी, समझ गयी कि, यह है उनके परिताप की ग्लानि। प्रतिक्रिया के अतल आलोडित हृदय की ऐकान्तिक क्षमायाचना है। उसकी इच्छा नहीं हुई कि, प्रतिवाद करके उनकी वेदना को बढ़ा दे, किंतु चुप भी न रह सकी, बोली—एक बात जान लेने की भारी इच्छा हो रही है माँ, किंतु—

किंतु क्या बेटी? प्रश्न करके तुम मुझे और लज्जित करना नही चाहती—यही तो? और लज्जा न बढेगी शारदा, तुम स्वच्छन्दता से पूछो।

तो भी शारदा की कुण्ठा दूर नही हुई। वह चुप है देखकर उन्होने स्वय कहा—शायद तुम जानना चाहती हो, यदि यही सच है तो मेरा ही फिर इतनी बडी दुर्गति हो गयी क्यो? इसका उत्तर अनेक दिन अनेक प्रकार से मैंने सोच विचार करके देखा है किंतु अपने विगत जीवन का कर्मफल छोड कर इस प्रश्न का आजतक भी मुझे कोई जवाब नही मिला है बेटी।

यद्यपि शारदा स्वयं भी कर्मफल मानती है तो भी नयी माँ के इस उत्तर का उसका मन समर्थन न कर सकी, वह चुप रही। सविता उसके चेहरे की तरफ देख कर यह बात समझ गयी, बोली—किसी दूसरे के अज्ञात कर्मफल के कधे पर दोष मढ़ कर इस जन्म के टूटे हुए बेड़े के छेद ढूँढ़ती फिरती हूँ, इतनी बडी नासमझ मैं नही हूँ बेटी, किंतु इस गोरख धंधे के बाहर का रास्ता ही किसने निकाला है बताओ तो? जिस मनुष्य को मैंने बिदा कर दिया है, उसे कभी मैंने बडा नहीं समझा है, उस पर कभी मैंने श्रद्धा नही की है, किसी दिन उसे मैंने प्यार नही किया है, तो भी उसी के घर में मेरा एक युग कट गया किस तरह?

इस बार शारदा ने बात कही—उसने लज्जा के साथ कहा—आज भले ही न हो, उस दिन भी क्या

आपने रमणी बाबू को प्यार नही किया था माँ?

नही बेटी, उस दिन भी नही—किसी दिन भी नही।

तो भी पदस्खलन नहीं हुआ क्यो?

सविता ने क्षण काल मौन रह कर म्लान हँस कर कहा—पदस्खलन को क्या कोई क्यो रहता है शारदा? वह घटना हो जाती है, अचानक पूर्णत अकारण निरर्थकता मे। इन बारह-तेरह वर्षों मे कितनी ही लडकियो को तो मैंने देख लिया है, आज शायद सर्वनाश के भँवर के तले मे वे कहीं डूब गयी हैं, उस दिन किंतु मेरी एक भी बात का वे लोग जवाब न दे सकी थी मेरी तरफ अवाक् होकर देखते-देखते उनकी आँखे आँसू से भर गयी—मैं सोच कर समझ भी न सकी कि अपने भाग्य को छोड कर और किसे वे अभिशाप देगी। देखकर तिरस्कार करूँ कैसे, अपने ही माथे पर थप्पड लगा कर रोकर कह चुकी हूँ, निष्ठुर देवता! तुम्हारे रहस्यमय ससार मे दु ख के बिना दुःख का अभिनय गाने का भार तुमने दे दिया क्या अन्त मे इन अभागिनियो पर। क्यों होता है मैं नही जानती शारदा, किंतु ऐसा ही होता है।

शारदा ने इस बार भी समर्थन नही किया, सिर हिलाकर बँधे रास्ते के पक्के सिद्धान्त का अनुसरण करके बोली—उन लोगो का कोई दोष नही था, ऐसी बात आप कैसे कहती हैं माँ?

सविता ने उत्तर नही दिया, और उसे समझाने का उन्होने कोई चेष्टा नही की। केवल लम्बी साँस लेकर खिडकी के बाहर शून्य नेत्रो से रास्ते की तरफ ताकती रही।

गाडी आकर यथा स्थान पर रुक गयी। महादेव ने दरवाजा खोल दिया तो दोनों उतर पडी। गाडी कल की तरह ठहरने के लिए अन्यत्र चली गयी।

सत्रह नम्बर के मकान का सदर दरवाजा खुला पडा था। दोनो ने वहाँ प्रवेश करके देखा, नीचे कोई नही है। सीढियो से ऊपर चढते ही दिखाई पडा कि एक सोलह सत्रह वर्ष की लडकी बरामदे में बैठकर तरकारी काट रही है। वह उठ खडी हुई और अभ्यर्थना करके बोली—आइये। रेलिंग पर आसन था जिसे लाकर उसने बिछा दिया और सविता की पदधूलि लेकर प्रणाम किया।

यह लडकी आज इतनी बडी हो गयी है, आसन पर बैठ कर सविता किसी तरह भी अपने को सभाल न सकी। उच्छसित अश्रुवाष्प से समूचा शरीर बार-बार काँप उठा और दूसरे ही क्षण नेत्रो को प्लावित करके अनर्गल जल झरने लगा।

सविता समझ गयी यह लज्जाजनक है, हो सकता है कि इस आँसू की कोई मर्यादा इस लडकी के मन मे नही है, किंतु सयम का बाँध टूट गया है, किसी तरह भी कुछ नही हुआ। केवल जोर लगाकर दोनो आँखो पर आँचल दबा कर मुँह छिपाकर बैठी रही।

दस

सविता ने जितना ही चाहा रुलाई रोक लें, उतना ही वह शासन के बाहर चली गयी। झँझाक्षुब्ध आक्रान्त सर्वत्र आलोडित समुद्र जल ने किसी तरह मानो अन्त मान लेना नही चाहा। लडकी ने किंतु सान्त्वना देने की चेष्टा नही की। दुर्बल क्लांत हाथ से जिस तरह तरकारी काट रही थी उसी तरह चुपचाप काम करती रही। अन्त मे यद्यपि क्रन्दन की उद्दण्डता शात हो चली, किंतु अपने मुँह के आवरण को सविता किसी तरह भी हटा न सकीं। वह मानो खूब चिपक कर पडा रहा। किंतु इस तरह कितनी देर तक चलेगा, सबकी परेशानी ही अन्दर ही अन्दर दुस्सह होने लगती है। इसीलिए शायद शारदा ही सबसे पहले बात बोल उठी—शायद जो ही मन मे आया वही—बोली—आज तुम कैसी हो दीदी?

अच्छी हूँ।

फिर ज्वर तो नही हुआ?

नही, मुझे तो पता नही चला।

डाक्टर अभी तक आये नहीं?

नही, शायद वे उस वक्त आवेगे।

शारदा ने जरा सोच कर कहा—कहाँ, राखाल बाबू को तो मैं नही देखती? वे क्या घर पर नही हैं?

नही, पढाने गये हैं।

तुम्हारे बाबू जी?

वे सबेरे निकल पडे थे, कह गये हैं लौटने मे देर होगी।

शारदा की बाते समाप्त हो चलीं। इस बार वह क्या कहेगी सोच कर-समझ न सकी। अन्त मे बहुत सकोच के बाद उसने पूछा—ये कौन हैं, तुम क्या पहचान गयी रेणु?

पहचानूँगी कैसे, मुझे तो चेहरा याद नही है।

समझ भी नही सकी?

रेणु ने सिर हिला कर कहा—यह तो सकी हूँ। राजू भैया बता गये हैं। कितु आप कौन हैं समझ मे नही आता।

शारदा ने अपना परिचय देकर कहा—मेरा नाम है शारदा, तुम्हारी माँ के यहीं रहती हूँ। राखाल बाबू मुझे जानते हैं। मेरे बारे मे क्या कोई बात उन्होने तुमको नही बतायी?

नहीं। उन सब बातो को वे मुझसे बतावेंगे क्यो? बताना तो उचित नही है।

इसबार शारदा का मुह बिलकुल ही बन्द हो गया। उसकी बुद्धि-विवेचना जितनी दूर सभव थी उसने उन्हें उतनी दूर चलाया है। और आगे बढ़ने लायक उसको ढूँढने से कुछ नही मिला। कुछ मिनट नीरव बीत जाने पर रेणु उठ गयी, कितु थोडी ही बाद एक लोटा हाथ मे लेकर आयी और बोली—माँ, पाँव धोने के लिए पानी लायी हूँ-उठिये।

इस आह्वान से सविता पागल की तरह अकस्मात् उठ खडी हुयी। उन्होने लडकी को गोद मे खीच लिया, कितु कुछ ही क्षण के लिए। उसके बाद ही स्खलित होकर वे संज्ञाहीन होकर जमीन पर गिर पड़ीं। कुछ मिनट के बाद होश मे आने पर उन्होने देखा, उनका माथा शारदा की गोद मे है और सामने बैठी हुई लडकी पखा झल रही है।

रेणु ने कहा—माँआह्निकपूजा का स्थान ठीक कर दिया है, एक बार उठ जाना पडेगा।

सुनकर उनकी दोनो आँखो के कोने से केवल आँसू लुढक पडा।

रेणु ने फिर कहा—शारदा दीदी ने कहा था, आपने चार-पाँच दिन कुछ भी खाया नही, थोडी-सी मिश्री भिगो कर मैंने रख दी है माँ, इस बार उठकर पी लेना पडेगा। कितु बाल सब धूल मे जल मे लुटपुट कर एकाकार हो गये हैं, यह कितु मेरा दोष नही है माँ, शारदा दीदी का है, हाँ माँ, आप के बाल मानो काले रग के रेशम हैं। कितु मेरे ऐसे कडे क्यो हो गये हैं माँ? बचपन मे खूब शायद मुड़वा दिया था? गाँव देहात मे यही बडा दोष है।

सविता ने हाथ बढाकर लडकी के माथे पर हाथ रखा। कंई दिनो के ज्वर से उसके बिखरे हुए बाल रूखे हो उठे हैं। बहुत देर तक अँगुलियो से हिलाती-डुलाती रही, अनेक बार बाते करते समय गले मे रुकावट आ गयी, अत मे उस माथे को अपनी गोद मे खीच कर वे अविश्रात आँसू बरसाने लगी। जो बात गले मे रुक गयी थी, वह गले मे ही दबी रह गयी। बात भले ही मुँह से न निकले, कितु यह अनुच्चारित भाषा समझने मे किसी को कसर नही रही। लडकी समझ गयी, शारदा समझ गयी और समझ गये वे, जिनके लिए इस ससार मे कोई भी चीज अनजान नही है।

इस दशा मे कुछ क्षण रह कर सविता उठ पडी। लड़की उनको नीचे स्नान के कमरे मे ले जाकर फिर नहलवा कर ले आयी। बलपूर्वक आहिनकपूजा पर बैठा दिया और उसके समाप्त होने पर उसी तरह बल प्रयोग करके ही उनको मिश्री का शरबत पिला दिया।

रेणु ने कहा—माँ, अब जाती हूँ रसोई पकाने? आपको किंतु खाना पडेगा।

यदि न खाऊँ?

ऐसा होने से आपके पैरो पर माथा पटकूँगी। विना खाये आप छुटकारा न पावेंगी।

छुटकारा पाना नही चाहती बेटी, पर स्वयं तुम दुर्बल हो। अभी तक पथ्य लेना प्रारभ नही किया है।

रेणु ने कहा—सबेरे जरा मिश्री खाकर जल पी चुकी हूँ, आज और कुछ न खाऊँगी। कुछ दुर्बल तो सचमुच ही हूँ, किंतु रसोई पकाये बिना चलेगा कैसे माँ? राजू भैया के आने मे देर होगी। बाबूजी भी लौटेगे देर मे। रसोई न पकाने से इतने आदमी तो खाना पावेगे नही इसके सिवा मुझे ठाकुर जी का भोग बनाना ही पडेगा।

यह कह कर उसने ज्यो ही रेलिग पर से उतार कर अँगोछा कंधे पर रखा, त्यो ही सविता ने चौंक कर पूछा—तुम क्या नहाने जा रही हो रेणु?

रेणु ने हँस कर कहा—माँ भूल गयी हैं। आपने क्या कभी बिना स्नान किये ही भोग बनाया था?

सविता के मुँह से इस बात का उत्तर नही आया। शारदा ने कहा—किंतु फिर ज्वर तो आ सकता है रेणु।

रेणु ने सिर हिला कर कहा—नही, शायद आवेगा नही—मैं अच्छी हो गयी हूँ और हो जाने से भी मैं क्या करूँगी शारदा दीदी, जब तक अच्छी हूँ, तब तक तो करना ही पडेगा? हम लोगो के यहाँ करने वाला तो और कोई नही है।

उत्तर सुनकर दोनो ही चुप हो रही।

रसोई साधारण थोडी ही पकानी थी, किंतु उसे कर डालने मे रेणु को कितना कष्ट हो रहा था, यह अत्यन्त स्पष्ट है। ज्वर से अवसन्न, सात-आठ दिनों के उपवास से अत्यन्त दुर्बल थी। लडकी बहुत कष्ट उठा उठा कर आँखो के सामने ही काम करने लगी, माँ चुपचाप बैठकर देखती रही, किंतु कुछ भी करने को नही रहा। इस जीवन का पारिवारिक बधन जो इस तरह टूट गया है, व्यवधान जो इतना वृहत हो गया है, ऐसा प्रत्यक्ष रूप से समझ लेने का अवकाश शायद सविता को और किसी तरह भी नही मिलता जैसा कि आज मिल गया।

रसोई तैयार हो गयी। शारदा को लक्ष्य करके रेणु ने कहा—बाबूजी के लौटने मे, पूजा आह्निक समाप्त करने मे आज दिन ढल जायगा। आप क्यो झूठमूठ कष्ट उठावेगी शारदा दीदी, खा लीजिये। बाबूजी कहा करते हैं, ऐसी हालत मे गृहस्थी मे किसी एक के उपवास करके रहने से ही कोई दोष नही होता। सचमुच ही नही होता?

यह कहकर वह माँ के मुँह की तरफ देखती हुई उत्तर के लिए प्रतीक्षा करती रही।

सविता जानती हैं उन लोगो के बडे परिवार मे बाध्य होकर ही एक दिन यह नियम चलाया गया था। ठाकुर जी की पूजा के लिए पुजारी ब्राह्मण नियुक्त रहने पर भी ब्रजबाबू सहज मे ही यह काम किसी पर छोड़ देना नही चाहते थे, फिर भी चिरकाल ढीले स्वभाव का आदमी होने के कारण उनको ही प्राय अनुचित देर हो जाया करती थी। किंतु लडकी के प्रश्न के उत्तर मे उनको क्या कहना चाहिये, यह वे सोच कर समझ नही सकी।

जवाब न पाकर रेणु कहने लगी, किंतु मेरी नयी माँ को देर सही नही जाती थी, खाने जरा देर होने पर भी वे अत्यन्त क्रोध कर बैठती थी। बाबूजी ने मुझे एक दिन दु:खी होकर कहा था कि गाँव के मकान पर कितने ही दिन उनका इस वक्त खाना नही होता था, उपवास करके दिन काटना पडता था, इसकी सख्या नही है, किंतु किसी दिन क्रोध करके आपने नही कहा था कि ठाकुर जी को फेक दो।

शारदा ने आश्चर्य मे पडकर पूछा—वे क्या ठाकुर जी को फेक देने को कहती हैं?

हाँ, कितने ही दिन कह चुकी हैं। कहती हैं कि गगाजी मे फेक आओ।

तुम्हारे बाबूजी क्या कहते हैं?

शारदा के प्रश्न का उत्तर उसने माँ को ही दिया। कहा—मेरी अवस्था उस समय नौ वर्ष की थी। बाबूजी ने मुझे बुला भेजा। उनके कमरे मे जाकर मैंने देखा कि उनकी आँखों से आँसू गिर रहा है। मुझे अपने पास बैठा कर उन्होंने आदर करके कहा—मेरे गोविन्द का सब भार था एक दिन तुम्हारी माँ पर। आज से तुम ही उनका काम करो—कर सकोगी तो बेटी? मैंने कहा—सकूँगी बाबूजी। तभी से मैं ही ठाकुरजी का काम करती हूँ। पूजा जब तक नही हो जाती, मैं घर मे बिना खाये रहती हूँ। किंतु आज मैं नही रहती माँ। ज्वर का डर न रहता तो आपको बैठने को कह कर हम सभी लोग मिल कर आज खा लेते।

यह कह कर वह हँसने लगी। सोच कर भी उसने नही देखा कि इसने कितना असंभव और कितना मर्मांतिक आघात ही उसकी माँ को पहुँचाया।

सविता दूसरी तरफ देखती हुई चुपचाप बैठी रही। एक बात का भी उन्होने उत्तर नही दिया। लड़की जो कुछ भी कहे, माँ जानती है, इस घर की अब वे कुछ भी नही हैं। पारिवारिक नियमो के पालन में आज उनका खाना न खाना दोनो ही अर्थहीन है।

रेणु शारदा को ठाकुरजी के दर्शन के लिए ले गयी। सविता उसी जगह पर चुप हो कर बैठी रही। लडकी ने कितनी थोडी सी बात कह दी है! अपनी विमाता के ऊबे हुए चित्त का सामान्य विवरण, ठाकुर देवता के प्रति हतश्रद्धा का एक उदाहरण, यही तो! ऐसा तो कितने ही घरों मे है। कोई अकाल्पनिक भी नही है और शायद विशेष दोष की भी बात नही है, तो भी इस सामान्य वस्तु ने ही उसकी कल्पना मे बारह वर्षो को अज्ञात इतिहास पलभर में दाग कर चली गयी। यह स्त्री शायद उसके पति को एक क्षण के लिए समझ न सकी हैं, उसके कितने ही दिनों का कितना मुखभार, कितना दबा हुआ झगडा, कितने हीं छोटे-छोटे सघर्षो के काटे से बिछे हुए शांति हीन दिन, कितनी ही वेदना-विक्षत दु:खमय स्मृतियाँ—इसी प्रकार इस स्नेह श्रद्धा होना, कोपन स्वभाववाली नारी के अत्यन्त सन्निकट और शासन में इन दो प्राणियो का—उसके पति और कन्या का दिन पर दिन बीतता हुआ आज दुर्दशा की अन्तिम सीमा पर जा पहुँचा है।

पर किसलिए? इसी प्रश्न ने अब सबसे अधिक मात्रा मे सविता को बिंध दिया। जो भार स्वभावत: उसका अपना ही है, उस लोक को यदि कोई अन्य ढो न सके तो उसे क्या दोष दिया जा सकता है, उसके अपने अपराध के सिवा और किसका अपराध है। अधर्म की भार इतनी निर्दय होती है, अकेले इतना दु.ख भी ससार मे उत्पन्न किया जाता है, उसकी मूर्ति ऐसी भद्दी है, इसके पहले इस हद तक वे समझ न सकी थी, ग्लानि और व्यथा के भारी बोझ से उनकी साँस तक मानो रुक जाने लगी। फिर भी प्राणपण बल से वे केवल यही मन ही मन कहने लगी, इसका प्रतिकार क्यो नही है? ससार मे चिरस्थायी तो कुछ भी नहीं है, केवल ही दुष्कृति ही इस जगत् मे अविनश्वर है? कल्याण के सभी रास्ते सदा के लिए बन्द करके क्या केवल वही रह जायगी, किसी दिन भी क्या उसका नाश न होगा।

माँ, बाबूजी आ गये हैं।

सविता ने मुँह ऊपर उठाकर देखा सामने खडे हैं ब्रज बाबू। क्षणमात्र के लिए सब बाधा विघ्न भूल कर वे उठ खडी हुई और बोली—इतनी देर कैसे कर दी? बाहर निकल जाने पर क्या तुम घर-गृहस्थी की सभी बाते भूल जाओगे? देखा तो दिन कितना चढ़ आया है?

ब्रजबाबू महा अप्रतिहत रूप से विलम्ब की कैफियत देने लगे। सविता ने कहा—किंतु अब देर न कर सकोगे। ठाकुरजी की पूजा आज किंतु सक्षेप मे कर देनी पडेगी यह मैं तुमसे कह देती हूँ।

यही होगा नयी बहू, यही होगा। रेणु, दे तो बेटी, मेरा अँगौछा, झटपट नहा आऊँ।

नही बाबूजी, तुम थोडा आराम करो। जो देर होनी थी वह हो चुकी। मैं तमाखू चढ़ा लाती हूँ।

माँ और पिता दोनो ही कन्या के मुँह की तरफ देखने लगे। ब्रजबाबू ने कहा—लडकी के बिना बाप के प्रति इतनी दरद और किसी को नही होती नयी वहू। उसके सामने तुम हार गयी। यह कहकर वे हँस पडे।

सविता ने कहा—हार जाने मे कोई आपत्ति नही है मझले मालिक, किंतु यही एक मात्र सत्य नही है ससार मे एक और ऐसे पुरुष हैं जिनके सामने लडकी की भी जरूरत नही पडती, माँ की भी नही। यह कह कर वे भी हँसने लगी। यह हँसी देख कर ब्रजबाबू मानो चौंक पडे। किंतु और कोई बात न कह कर कुरता धोती बदलने के लिए अपने कमरे मे चले गये।

उस दिन खाना पीना खतम हुआ प्राय दिन के अन्त मे। ब्रजबाबू बिछौने पर बैठ कर तमाखू पी रहे थे। सविता कमरे मे घुस कर फर्श पर एक तरफ दीवाल पर ओठग कर बैठ गयी।

ब्रजबाबू ने पूछा—तुम खा चुकी?

हाँ।

लडकी ने कोई यत्न मे त्रटियाँ अवहेलना तो नही की?

नही।

ब्रजबाबू ने एक क्षण चुप रह कर कहा—गरीब का घर है। कुछ भी नहीं है। शायद तुमको कष्ट हुआ नयी बहू।

सविता ने पति के मुँह की तरफ देख कर कहा—यही नही होगा मझले मालिक, तुम मुझे कड़ी बात सुना न सकोगे। इतना ही मेरा अन्तिम सम्बल है। मरते समय यदि होश मे रहूँगी तो केवल यही बात उस समय सोचूँगी मेरी तरह पति संसार में किसी को कभी नही मिला।

ब्रजबाबू के मुँह से लम्बी साँस निकल पड़ी। बोले—तुम्हारे अपने खाने के कष्ट की बात मैंने नहीं कही, नयी बहू। मैं कह रहा था आज यह भी तुमको अपनी आँखों से देखना पड़ा। क्यो तुम आ गयी?

सविता ने कहा—देखना जरूरी है मझले मालिक। नही तो शांति असम्पूर्ण रहती। तुम्हारे गोविन्द की एक दिन मैंने सेवा की थी, शायद वे ही खींच कर ले आये हैं। बिलकुल ही छोड नहीं सके हैं।

यह कहते-कहते उनकी दोनों आँखों मे आँसू भर आया। आँचल से उसे पोंछकर उन्होंने कहा—अनन्य मन से यदि उनको चाहने लगूँ, मन मे कही भी यदि कपट न रखूँ, वे क्या मुझे क्षमा नही करते मझले मालिक?

ब्रजबाबू ने कष्ट से आँसू रोक कर कहा—अवश्य ही करते हैं।

किंतु किस तरह मैं जान सकूँगी?

यह तो मैं नही जानता नयी बहू। वह दृष्टि शायद वे ही देते हैं।

सविता बडी देर तक मुँह नीचे झुकाये बैठी रहीं फिर उन्होंने मुँह ऊपर उठाया, पूछा आज तुम कहाँ गये थे?

ब्रजबाबू ने कहा—नन्द साहा के यहाँ मेरा कुछ रुपया पावना था।

दे दिया?

तुम क्या जानती हो—

यह मैं सुनना नहीं चाहती, दिया या नही बताओ?

ब्रजबाबू ने न देने का कारण खोल कर बताने में कितना ही मानो कुंठित हो उठे। बोले—आनन्द पुर के साहा लोगों को तो तुम जानती ही हो। वे लोग अति सज्जन धर्मभीरु आदमी हैं, किंतु आजकल का समय दिन ऐसा हो गया है कि मनुष्य इच्छा करने पर भी कुछ कर नही सकता। इसके सिवा नन्द साहा अब अंधे हो गये हैं, कारबार है भतीजों के हाथ में—किंतु देंगे एक दिन अवश्य हीं।

यह मैं जानती हूँ। क्योंकि उनको मैं धोखा देने नही दूँगी। नन्द साहा को मैं भूल नहीं गयी हूँ!

क्या करोगी—दावा?

हाँ, और कोई उपाय यदि समझ न पाऊँ।

ब्रजबाबू ने हँस कर कहा—मिजाज तो देखता हूँ तिलभर भी बदला नही है।

कौन बदलेगा? मिजाज तुम्हीं लोगों का क्या बदल गया है? दुस्समय किसका तुमसे अधिक है? किंतु तुम किसको धोखा दे सके हो? मेरी तरह कृतघ्न का ऋण भी तुमने कौडी-कौडी देकर चुका दिया। उन लोगों को भी यही करना पडेगा। अन्तिम कौडी तक चुका कर ही वे लोग छुटकारा पावेंगे।

उन लोगो पर तुम्हारा क्रोध किसलिए है!

क्रोध तो नहीं है यह मेरी ज्वाला है। तुमको भाई ने धोखा दिया, मित्रों ने धोखा दिया, आत्मीय स्वजनों ने, कर्मचारियों ने, स्त्री तक ने तुमको धोखा देना नही छोडा। इस बार उन लोगों के साथ मेरा समझना बूझना है। तुम्हारे नये रिश्तेदार लोग मुझे पहचानते नही, किंतु वे लोग मुझे पहचानते हैं।

ब्रजबाबू को बहुत दिन पहिले की बातें याद आ गयी, उन दिनो भी एक बार वे डूबने लगे थे। तब इसी रमणी ने हाथ पकड कर उनको किनारे उठाया था। उन्होंने कहा—हाँ, वे लोग खूब पहचानते हैं। नयी बहू मर गयी जानकर जो लोग आराम मे हैं, वे लोग कुछ डर जायँगे। सोचेंगे भूत का उपद्रव हो रहा है। शायद गया में पिण्ड देने के लिए दौड पडेंगे।

सविता ने कहा—वे लोग जैसी इच्छा हो करें, मैं डरती नही। केवल तुम पिण्ड देने के लिए न दौड पडो तो उसी मे हो जायगा, वही पर मेरी चिता है। स्वयं तो वह काम तुम न करोगे?

ब्रजबाबू चुपचाप बैठे रहे।

उत्तर नही दिया क्यो?

ब्रजबाबू और भी कुछ क्षण उसके मुँह की तरफ ताकते रहे। अपराह्न सूर्य का कुछ-कुछ प्रकाश खिडकी से फर्श पर लाल होकर फैल गया था। उसकी तरफ सविता की दृष्टि आकर्षित करके उन्होने धीरे-धीरे कहा—इसी प्रकार मेरा वक्त गिर चला नयी बहू, पावना समझने का अब समय नही रहा। किंतु तुम्हारे सिवा संसार में शायद और कोई ऐसा नहीं है जो समझ सके कि मैं कितना क्लान्त हो चुका हूँ। छुट्टी की दरख्वास्त पेश करके बैठा हुआ हूँ, मंजूरी आने में देर नही है। जो कुछ मैं ले चुका हूँ, जो दे चुका हूँ उसका हिसाब निकास हो चुका है। हिसाब अच्छा नही हुआ है यह मैं जानता हूँ, गडबडी बहुत रह गयी है, किंतु तो भी उसकी जिरह मैं खीच न सकूँगा। अपना यह अनुरोध तुम वापस ले लो।

सविता एक दृष्टि से देखती हुई सुन रही थी। पति की बाते समाप्त हो जाने पर उन्होने केवल पूछा—सचमुच ही क्या अब तुम न सकोगे मझले मालिक? सचमुच ही तुम बहुत थक गये हो?

सचमुच ही बहुत थका हूँ नयी बहू। सचमुच ही अब न सकूँगा। कितना थका हूँ, यह तुम्हारे सिवा और कोई न समझेगा। वे लोग कहेगे आलस्य, कहेगे जड़ता, कहेंगे मेरे नैराश्य का दैन्य। वे लोग तर्क करेंगे, युक्ति देगे, मार-मार कर अब भी छुडाना चाहेगे—वे लोग केवल यही बात जान गये हैं कि मशीन मे चाभी देने से ही चलने लगती है। किंतु उसका भी तो अन्त है, इस पर तो वे लोग विश्वास नहीं कर सकते।

मैं विश्वास करूँ तो तुम खुश होगे?

खुश होऊँगा या नही यह मैं नही जानता, किंतु शान्ति पाऊँगा।

अब तुम क्या करोगे?

रेणु को साथ लेकर घर जाऊँगा। वहाँ सब चले जाने पर भी जो कुछ बचा रहेगा, उससे किसी तरह हम लोगो का खर्च चल जायगा और जो लोग हमे छोडकर कलकत्ते मे रह गये उनकी चिता नही रही, यह तो तुम पहले ही सुन चुकी हो।

रेणु का भार किसे दे जाओगे मझले मालिक?

दे जाऊँगा भगवान् को। उनसे वडा आश्रय दूसरा नही है। यह मैं जान गया हूँ।

सविता स्तब्ध भाव से बैठी रही। भगवान् मे उनका अविश्वास नही है। किंतु अपनी लडकी के संबंध में इतनी बडी निर्भयता से निश्चिन्त भी नही हो सकती। शंका से छाती के अन्दर हिलने-डोलने लगा। किंतु इसका उत्तर क्या है ढूँढने पर मिला भी नही, केवल जो बात उनके मन मे दिन रात काँटे की तरह विध रही थी, वही मुँह से निकल पडी। बोली—मझले मालिक, मुझे रुपया तुमने क्या अपराध का दण्ड देने के लिए लौटा दिया? प्रतिशोध का क्या और कोई रास्ता तुमको ढूँढने से नही मिला?

ब्रजबाबू ने कहा—नही तो तुम स्वयं ही कोई रास्ता वता दो? हम लोगो के रतन चाचा और रतन चाची की वात तुमको याद है? उस अवस्था मे राजी हो?

इतने दुःख में भी सविता हँस पडी। लज्जा के साथ वोली—छि, छि., कैसी बात तुम कहते हो?

ब्रजबाबू ने कहा—तो तुम क्या करने को कहती हो? नयी बहू गहना चुरा कर भाग गयी है इसीलिए क्या पुलिस मे भेज दूँ?

प्रस्ताव इतना हास्यकर था कि कहने के साथ ही दोनो हँस पडे। सविता ने कहा—तुम्हारी जितनी सब कल्पनाएँ हैं सभी उद्भट हैं।

बहुत दिनो के बाद दोनो की रहस्योज्ज्वल थोडी-सी हँसी की किरण से कमरे का गाढ अंधकार मानो बहुत कुछ दूर हो गया। ब्रजबाबू ने कहा—सजा का विधान सभी का एक्का नही होता नयी बहू। दण्ड यदि देना ही हो तो तुमको और क्या दण्ड दे सकता हूँ? जिस रात्रि को तुम अपनी गृहस्थी को पैरो से ठेल कर चली गयी, उसी दिन ही मैंने निश्चय कर लिया था, फिर यदि कभी भेट होगी तो तुम्हारा जो कुछ पडा रह गया है, वापस देकर अऋणी हो जाऊँगा।

सविता को विद्युद्वेग से याद आ गयी पति की एक बात जिसे वे उन दिनो प्रायः ही कहा करते थे। कहते थे, ऋण छोड कर मरना नही चाहिये नयी बहू, वह दूसरे जन्म मे भी आकर अपनी माँग रखता है। इसी वात का उनको डर है। किसी भी सूत्र से दोनों की भेट फिर न होने पावे—सभी संबंध यहीं पर जिससे

चिरकाल के लिए विच्छिन्न हो जाय।

उन्होंने कहा—मैं समझ गयी मझले मालिक। इस जन्म में और परकाल में फिर मेरा कोई दावा तुम्हारे ऊपर न रह जाय। सब ही समाप्त हो जाय—यही तो?

ब्रजबाबू मौन हो रहे और जो अंधकार अभी-अभी जरा हट गया था, वह फिर इस मौनता के बीच मे हजारो गुना बढ़कर वापस चला आया। पति के मुँह की तरफ फिर वे देख न सकी। आँखे झुकाये मृदु कंठ से उन्होंने पूछा—तुम लोग कब घर जाओगे मझले मालिक?

जितना शीघ्र जा सकूँ।

तो अब मैं जाऊँ।

जाओ।

सविता उठ खडी हुई। समझ गयीं सब समाप्त हो गया है। उस भूकम्प की रात्रि को रसातल का गर्भ चीर कर जो पाषाण स्तूप ऊपर फेके जाकर दोनों के बीच मे दुर्लंघ्य व्यवधान बना दिया था, वह आज भी उसी तरह अक्षय ही बना हुआ है, उसका तिलार्ध भी नष्ट नही हुआ है। यह निरीह शात मनुष्य इतना कठोर हो सकता है, आज के पहले इस बात को उन्होंने कब सोचा था।

कमरे के बाहर कदम बढ़ाकर भी वह सहसा ठिठक कर खड़ी हो गयी। बोली—मुक्ति न पाओगे मझले मालिक, तुम हो वैष्णव, कितने मनुष्यों के कितने ही अपराधों को तुमने अपने जीवन मे क्षमा कर दिया है। किंतु मुझे क्षमा न कर सके। यह ऋण तुम्हारा रह गया। एक दिन शायद यह जान जाओगे।

ब्रजबाबू उसी तरह स्तब्ध हो रहे। संध्या हो चली। जाते समय रेणु ने उनको प्रणाम किया, किंतु कुछ कहा नही। यह नीरवता का मंत्र उसने भी शायद अपने पिता से ही सीखा है।

शारदा को साथ लेकर सविता बाहर चली गयीं। गाडी पर सवार होते ही नजर पड गयी राखाल तारक को लेकर द्रुतपद से इसी तरफ आ रहा है।

तारक ने कहा—नयी माँ, एक बार उतर कर खडा होना पडेगा। मैं प्रणाम करूँगा।

बातचीत करना कठिन था। सविता ने इशारे से दोनों को गाडी पर चढने को कह कर किसी तरह केवल कहा—आओ बेटा, मेरे साथ तुम लोग घर चलो।

ग्यारह

एक सप्ताह पहले राखाल ने आकर कहा था—नयी माँ, सत्रह नम्बर मकान में आप तो जायेंगी नही—आज सध्या समय यदि मेरे डेरे पर एक बार अपनी चरणधूलि दे।

क्यो राजू?

काकाजी के लिए कुछ फलमूल खरीद लाया हूँ—इच्छा है कि उनको थोडा जलपान कराऊँ—वे राजी हो गये हैं आने को।

किंतु मुझको क्या उन्होंने बुलाया है?

वे भले ही न बुलावे, मैं तो बुला रही हूँ माँ। कल वे लोग चले जायेंगे गाँव पर, कह गये हैं समेट-बटोर कर उन लोगो को ट्रेन पर चढ़ा देने को।

सविता जानती थी ब्रजबाबू कही भी कुछ नही खाते, उनको राजी कराने के लिए राखाल को अनेक चेष्टाएँ करनी पडी हैं—शायद उसने सोचा है इस उपाय से भी दोनो की भेंट फिर हो जाय। राखाल के आवेदन के उत्तर मे सविता को उस दिन बहुत चिंता करनी पडी थी स्नेहार्द्रचित्त से उसकी तरफ चुपचाप देखकर अत मे उन्होने कहा था—नही बेटा, मैं जाऊँगी नही। मुझे देखकर वे केवल दुःख ही पाते हैं, उनको मैं और दुःख देना नही चाहती।

फिर एक सप्ताह बीत चुका है। राखाल के मुँह से खबर मिली है ब्रजबाबू लडकी को लेकर गाँव को चले गये हैं। उनके इस पक्ष की स्त्री कन्या रह गयी हैं कलकत्ते मे भाई के तत्वावधान मे। राखाल ने कहा

है उन लोगो को कोई शोक नही है, क्योंकि अर्थ कष्ट नही है मकान किराये से इन दिनों अच्छी तरह समय बीतेगा। गहने की पूँजी तो है ही।

संध्या के बाद अकेली बैठी हुई सविता इन्ही बातों को सोच रही थीं। बाहर वर्षों तक चलने वाला प्रतिदिन का संबंध, फ़िर भी, कितना शीघ्र कितने सहज में ही वह दूर हो जाता है। उनका अपना भाग्य जिस दिन फूट गया उस दिन सबेरे भी वे जानती नही थीं, रात्रि भी बीतेगी नहीं, सब छोड़कर उन्हें रास्ते में निकल जाना पडेगा। अत्यन्त दुःस्वप्न मे भी क्या सविता कल्पना कर सकती थी, इतनी बड़ी क्षति कोई सहन कर सकता है? फिर भी सहनी ही तो पड़ी? फिर सहन करनी पडी उनको ही। बारह वर्ष बीत गये आज भी वे उसी प्रकार जीवित हैं—उसी प्रकार दिन पर दिन बगैर बाधा के बीतते गये, कही भी रुकावट पड़ने से रुका नहीं रहा।

यह विडम्बना क्यो आ गयी, आज तक भी इसका कारण वे खुद नही जानतीं। जितना ही सोचती रही हैं, आत्मधिक्कार से जलभुन कर जितनी बार अपना विचार आप ही करने गयी हैं, उतनी ही बार उनको मालूम होता रहा है इसका अर्थ नहीं है, कारण नही है—इसका मूल अनुसंधान करने जाना व्यर्थ है। अथवा, संभवत. ऐसा ही यह जगत् है—अघटन इसी प्रकार अकारण ही घटित होकर जीवन-स्रोत दूसरी तरफ बह जाता है। मनुष्य की बुद्धि कहाँ अंधी होकर मर जाती हैं नालिश करने को जाने पर असामी का ठौर ठिकाना ही नही मिलता।

इधर रमणी बाबू भी अब नही आते। वे आवे, यह इच्छा सविता नही करती। किंतु आश्चर्य में पड कर सोचती हैं, मना करने के साथ ही क्या सारा सबंध सचमुच ही समाप्त हो गया। निर्विघ्न एकत्र बास करने के बाद वर्षों का कोई भी चिह्न कहीं बाकी नही रहा—बिलकुल ही मिट गया।

शायद ऐसा ही संसार है।

संसार ऐसा ही है—किंतु यहाँ क्या केवल अवनति और हानि ही है? कही भी उन्नति लाभ नही है? केवल ही क्षति है? तो क्यो आ गयी शारदा। उनकी लड़की की तरह, माँ की तरह। घर के अनेक किरायेदारों में वह भी एक थी। केवल नाम की जानकारी थी चेहरे की पहचान थी? कभी भेंट हुई थी सीढ़ियो पर, कभी आँगन में, कभी राह में। सकोच के साथ हट गयी है, आँखों से आँखे मिलाकर देखने का साहस उन्हे नही हुआ। अकस्मात् कौन सी बात हो गयी, किसी ने उसका डेरा सविता के हृदय के भीतर बना डाला! कितु यही क्या चिरस्थायी है? कौन जानता है, कब वह फिर घर तोड़ कर इसी तरह सहसा अदृश्य हो जायगा!

और भी एक आदमी आये हैं वे हैं विमल बाबू? मृदुभाषी, धीर प्रकृति के आदमी हैं। अल्पकाल के लिए आकर प्रतिदिन खबर ले जाते हैं कहाँ कौन प्रयोजन है। हिताकांक्षा की अधिकता से उपदेश देने का आडम्बर नही है, मित्रता के आडम्बर से बैठकर गप्प करने का आग्रह नहीं है, कौतूहल की कटुता से एक एक करके प्रश्न करने की प्रवृत्ति नहीं है—दो चार मामूली बातचीत करके ही चले जाते हैं। समय मानो उनका बँधा कसा है। नियम और सयम के शासन ने मानो इस मनुष्य के सभी कामों में बड़ी मर्यादा दे रखी है। तो भी उसकी दृष्टि से सविता डरती रहती हैं। भूखे बाघ की वह दृष्टि नहीं है, वह दृष्टि है भले आदमी की। इसीलिए डर है। उस आँख मे है आर्त्त की विनती, उन्माद का व्यभिचार नही है—उसकी शंका केवल इसी कारण से है। पीछे कही इसी राह से अचानक पराभव न आ जाय।

उनके आने पर दोनों के बीच इस तरह बातचीत होती है—

पूरब के ढँके हुए बरामदे मे बेंत की कुर्सी खींच कर विमल बाबू बैठ जाते हैं और पूछते हैं? आज तबीयत कैसी है?

सविता कहती—अच्छी ही तो है।

किंतु बहुत अच्छा तो नही दिखाई पडती? किस तरह सूखी-सूखी सी।

कहाँ, नहीं तो।

नहीं कहने से सुनूँगा क्यो। खाने पीने मे यत्न नही करती। लापरवाही से शरीर बचेगा क्यो—दो दिनो में टूट जायगा।

नही, टूटेगा नही, मेरा शरीर खूब मजबूत है।

विमल वाबू उत्तर में जरा हँस कर कहते हैं—शरीर मजबूत वन कर ही मानो वला वन गया है। उसको तोड डालना ही अब जरूरी है—ठीक है न! सच है या नहीं, वताइये।

सविता कष्ट से आँसू रोक कर चुप हो रहती।

विमल वाबू कहते—गाड़ी पडी हुई है झूठ-मूठ ड्राइवर को तनख्वाह दे रही हैं, शाम को जरा टहलने क्यो नही चली जाती?

टहलने तो किस दिन भी नही जाती विमल वाबू।

सुनकर विमल वाबू फिर जरा हँस कर कहते हैं—ठीक ही तो है। विना किसी काम के घूमने-टहलने की आदत मुझे भी नही है। आज राखाल वाबू आये थे।

नहीं।

कल भी यहाँ आये तो नही थे।

नही, चार पाँच दिनो से उनको मैंने देखा नही। शायद किसी फजूल काम मे फँसा हुआ है।

फजूल काम मे? वही उसका स्वभाव है, है न?

हाँ, वही उसका स्वभाव है। विना स्वार्थ के दूसरो की वेगारी खटने मे उसका जोडीदार कोई नही है।

विमल वाबू अनमने होकर कुछ क्षण चुप रह जाते। दूरी पर शारदा दिखाई पडती है, वे हाथ हिला कर पास वुलाते हैं, कहते हैं, कहाँ आज मुझको जल नही दिया वेटी? तुम्हारे हाथ का जल पीये विना और पान खाये विना मुझे तृप्ति ही नही होती।

शारदा जल और पान ला देती है। सब जल पीकर पान मुँह मे डाल कर विमल वाबू उठ खडे होते हैं, कहते हैं—अच्छा तो आज अब जा रहा हूँ।

सविता खुद भी उठ खडी होती हैं, नमस्कार करके कहती है—अच्छा जाइये।

तीन दिनों के वाद इसी तरह की वातचीत होने के वाद विमल वाबू ज्यो ही उठने को तैयार हुए त्यो ही सविता ने कहा—आज आपके काम का मैं कुछ नुकसान करूँगी। इसी समय आप जाने न पायेगे, वैठना पडेगा।

विमल वाबू ने वैठकर कहा—जरा वैठ रहने से मेरे कामो का नुकसान हो जाता है, ऐसी वात आपसे किसने कही?

सविता ने कहा—किसी ने कही नही, यह मेरा अनुमान है। आप के पास कितने ही काम रहते हैं—झूठमूठ समय नष्ट तो होता है?

विमल वाबू ने जरा मुसकुराकर कहा—यह तो मैं नही जानता। किंतु इसी कारण क्या आप कभी वैठने को नही कहती? सच वताइये तो?

यह वात सच नही थी, किंतु इसके लिए सविता ने कुछ वादानुवाद नही किया। उन्होने पूछा—रमणी वाबू से आपकी मुलाकात होती रहती है?

हाँ, प्राय: ही होती रहती है।

वे, अब यहाँ नही आते, यह क्या आपको मालूम है?

मालूम तो जरूर ही है।

वे क्या अब इस मकान मे नही आवेगे?

यह वात मैं नही जानता। शायद आप वुलावे तो आ सकते हैं।

क्षण काल तक चुप रहने के वाद सविता ने कहा—आज सवेरे की डाक मे एक विक्रय-पत्र आ पहुँचा है। इस मकान की उन्होंने मेरे नाम से विक्री की रजिस्टरी कर दी है। आप जानते हैं।

जानता हूँ।

किंतु यदि देने की इच्छा ही थी तो सीधे दानपत्र न लिखकर वेचने का कपटाचरण क्यों? दाम तो मैंने दिया नहीं।

किंतु दान-पत्र कोई अच्छी चीज नहीं हैं।

सविता ने कहा—यह तो मैं जानती हूँ विमल वाबू। मेरे पति थे सासारिक वातों में आसक्त गृहस्थ पुरुष। उनके सभी कामो में उन दिनों मेरी वुलाहट होती रहती थी। यह मुझसे अज्ञात वात नही है कि

मुझे दान देने के लिए कानूनी लिखापढी के कागज पर ऐसे कारणो को लिख देना पडता, जो किसी भी नारी के लिए गौरवजनक नही माने जा सकते। फिर भी, मैं कहती हूँ कि इस मिथ्या की अपेक्षा वही काम अच्छा होता।

इसके पहले ऐसा कोई कारण उपस्थित नही हुआ था, इस प्रकार सविता ने बातचीत भी नही की थी। विमल बाबू मन ही मन चचल हो उठे। बोले—यह मामला बिलकुल ही झूठा है, यह भी तो नही कहा जा सकता नयी बहू?

नयी बहू सबोधन नया था। सविता का चेहरा देखने से यह नही जान पडा कि वे इससे खुश हुई हो। किंतु अपने कठस्वर के सहज भाव को सुरक्षित रख कर ही उन्होने कहा—ठीक इसी बात पर मैं संकेत कर रही थी विमल बाबू। दाम आपने दिया है, किंतु दिया क्यो? उनका दान ग्रहण करने मे तो एक सात्वना भी थी, किंतु आपका देना तो बिलकुल ही भीख है। इसे मैं किसलिए ग्रहण करने जाऊँगी बताइये तो?

विमल बाबू चुपचाप मुँह झुकाये बैठे रहे।

सविता ने कहा—उत्तर न देने से मैं विक्रय-पत्र को वापस करके चली जाऊँगी विमल बाबू।

इस बार विमल बाबू ने मुँह ऊपर उठाकर देखा, कहा—इसी डर से मैंने दाम दिया है कि आप कही चली न जायँ। न देकर रह नही सका इसीलिए आपके मकान को खरीद रखा है।

रुपया उन्होने ले लिया?

हाँ, भीतर ही भीतर रमणी बाबू को तगी हो गयी थी। अब मानो काम ही चलाना कठिन हो रहा था।

सविता ने कुछ देर तक चुप रह कर कहा—मेरे मन मे भी सदेह हो रहा था किंतु इतना मैंने नही सोचा था। फिर थोड़ी देर तक चुप रह कर बोली—सुना है, आपके पास काफी रुपये हैं। इतने रुपयो की कोई कीमत नही है, फिर भी असली बात ही तो बाकी रह गयी विमल बाबू। आप दे सक्ते हैं, किंतु मैं लूँगी किस कारण?—नही, यह तो हो नही सकता—बार-बार चुप रह कर जवाब देने से पिण्ड छुडाते रहने से मैं नही सुनूंगी। बताइये।

विमल बाबू ने धीरे-धीरे कहा—एक अकृत्रिम मित्र के उपहार रूप मे भी आप ले सकती हैं।

सविता ने उनके चेहरे पर दृष्टि निबद्ध करके जरा हँस कर कहा—लेने पर कैफियत की कोई कमी नही होती। यह मैं जानती हूँ, आप तो मेरे मित्र नही हैं, यह बात भी मैं नही कहती, किंतु छोडिये इस बात को। यहाँ और कोई नही है केवल आप हैं और मैं हूँ। मुझसे कुछ कहने मे सकोच होता है, यह अधिकार पुरुष पर मेरा अब नही रहा—बताइये तो यही क्या सच है? यही क्या आपके मन की बात है?

विमल बाबू मुँह ऊपर उठाकर क्षणभर ताकते रहे। उसके बाद बोले—मन की बात आपको मैं बताऊँगा क्यो? बताने से तो लाभ नही है।

लाभ नही है यह भी आप जानते हैं?

हाँ, यह भी मैं जानता हूँ।

सविता ने निःश्वास को रोक रखा। इस स्वल्पभाषी शात मनुष्य के प्रतिदिन के आचरणो का खयाल करके उनकी ऑखो में ऑसू आने को तैयार हो चला, उसको ही रोक कर उन्होने कहा—मेरे जीवन का इतिहास आप जानते हैं विमल बाबू?

नही, जानता नही हूँ। केवल जो सब घटनाएँ हो गयी हैं—जिन्हे अनेक जान गये हैं—मैं भी केवल उतनी ही जानकारी रखता हूँ नयी बहू, उससे अधिक नही।

यह बात सुनकर सविता मानो चौंक पड़ी—जो घटनाएँ हो गयी, वे क्या मेरे जीवन के इतिहास मे नही हैं विमल बाबू—ये दोनो क्या परस्पर भिन्न हैं? बताइये तो ठीक से? उनके प्रश्न की घबराहट से विमल बाबू दुविधा मे पड गये। किंतु उसी क्षण सकोच छोडकर बोले—हाँ, वे दोनो एक नही हैं नयी बहू। कम से कम अपने जीवन के बीच से यही बात आज असंदिग्ध रूप से जान सका हूँ कि वे दोनो एक नही हैं।

यद्यपि इस कथन का अर्थ साफतौर से समझ मे नही आया, तो भी इस बात ने सविता के हृदय मे गहरा आघात पहुँचा दिया। चुपचाप मन ही मन बडी देर तक आन्दोलन करके उन्होने अत मे कहा—सुन तो चुके हैं कि मैं पति को छोडकर रमणी बाबू के पास आ गयी थी—फिर उस दिन उनको भी मैंने छोड दिया। मैं तो अच्छी औरत नही हूँ—फिर एक दिन किसी अन्य पुरुष को ग्रहण कर सकती हूँ, यह

बात क्या आपके मन मे नही आती।

विमल बाबू ने कहा—नही। कभी आने भी लगी है तो उसी क्षण उसे मैंने दूर हटा दिया है।

क्यो?

सुनकर उन्होने हँस कर कहा—यह तो हुआ बच्चो का प्रश्न। उसने ऐसा काम किया, अतएव उसे यह करना चाहिये यह उत्तर पायेगी आप उन लोगो की ही पढने की पुस्तको मे। मैं उससे अधिक पढ़ चुका हूँ नयी बहू।

पढाया किसने?

एक ने तो पढाया नही। क्लास मे हर पहर मे मास्टर बदलता था, उनमे से किसी की तो याद आती है, किसी की नही आती। किंतु जो हेटमास्टर थे, आड मे रहकर इन लोगो को जिन्होने नियुक्त किया था, उनको तो मैंने देखा नही, किस तरह आपको उनका नाम बताऊँ बताइये?

सविता ने क्षणकाल सोचकर कहा—आप शायद खूब धार्मिक मनुष्य हैं, ठीक बात है न विमल बाबू?

विमल बाबू ने पूछा—धार्मिक मनुष्य आप किसको कहती है? आपके पति की तरह जो मनुष्य हो उसको?

सविता ने चकित होकर पूछा—उनको क्या आप पहचानते हैं? उनके साथ आपकी जान-पहचान है क्या।

विमल बाबू ने उनकी घबडाहट को लक्ष्य किया। किंतु पहले ही की तरह शात स्वर मे कहा—हाँ, उनको मैं पहचानता हूँ। एक दिन किसी तरह भी अपने मन का कौतूहल दमन न कर सका, चला गया उनके पास। बडी कोशिश के बाद भेट हुई, बातचीत भी बहुत हुई नही, नयी बहू, धर्म को जिस प्रकार उन्होने ग्रहण किया है, मैंने वैसा नही समझा है। उस जगह पर हम दोनो मे मेल नही है। मैं धार्मिक मनुष्य नही हूँ।

आवेग और उत्तेजना से सविता की छाती मे हलचल मचने लगी। यह बात समझने मे उनको बाकी नही है, सब कौतूहल का मूल कारण वे स्वय हैं। वे रुक न सकी, पूछ बैठी—उस जगह पर भले ही मेल न हो, कही भी क्या आप लोगो मे मेल नही है? दोनो का स्वभाव क्या बिलकुल ही अलग-अलग है?

विमल बाबू ने कहा—इसका उत्तर आपको मैं नही दूँगा, देने का समय अभी नही आया है।

कम से कम यह तो बताइये, यह बात भी उस समय मन मे नही आयी कि इस मनुष्य को कोई भी छोड कर चली गयी किस तरह?

विमल बाबू ने हँस कर कहा—कोई का माने आप ही तो हैं? किंतु आप तो छोड कर चली नही गयी हैं। सभी ने मिलकर आपको चले जाने को बाध्य किया था।

यह बात भी आप सुन चुके हैं?

सुन तो चुका हूँ अवश्य ही।

सब कुछ ही?

सब ही सुन चुका हूँ।

सविता की दोनो आँखो मे आँसू भर आये। उन्होने कहा—उन लोगो को मैंने कोई दोष नही दिया, उन लोगो ने अच्छा ही किया था। पति की गृहस्थी को अपवित्र न बनाकर मेरा आप ही आप चला जाना उचित था। यह कह कर उन्होने आँचल से आँखे पोछ डाली। कुछ देर बाद उन्होने कहा—किंतु इतना जानते हुए भी मुझे प्यार करते हैं किस तरह बताइये तो?

प्यार करता हूँ, यह बात तो आज तक भी मैं नही कही नयी बहू?

नही आपने यह बात नही कही है इसीलिए तो इस बात को ऐसी सचाई के साथ जान सकी हूँ विमल बाबू। किंतु मन मे सोचती हूँ, ससार मे जिस मनुष्य ने इतना देखा है, मेरी सब बातो को जिसने सुन लिया है, उसने मुझको प्यार किया किस कारण? उम्र बढ़ गयी है, सौन्दर्य अब नही रहा—जो कुछ बाकी है, वह भी दो दिनो के बाद खतम हो जायगा—उसको प्यार कर सकने से मनुष्य क्या सोचेगा।

विमल बाबू ने उनके मुँह की तरफ देखकर कहा—यदि मैं प्यार ही करता हूँ, तो यह ससार मे बहुत कुछ देख चुका हूँ, इसीलिए सभव हुआ है। पुस्तक मे पढ़े हुए दूसरो के उपदेश मान कर चलने से शायद

यह मैं नही सकता। किंतु वह सौन्दर्य और यौवन के लोभ में पड़ कर नही आया है इस बात को यदि सचमुच ही आप समझ चुकी हों तो मैं आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

सविता ने सिर हिलाकर कहा—हाँ, इस बात को मैं सचमुच ही समझ गयी हूँ। किंतु पूछती हूँ, मुझे पाने से आपको क्या लाभ होगा? क्या कीजियेगा मुझे लेकर?

विमल बाबू ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल चुपचाप वे ताकते रहे। क्रमश. वह दृष्टि मानो व्यथा से भर गयी। सविता अधीर होकर बोल उठी—इसी तरह क्या केवल देखते ही रहियेगा विमल बाबू, जवाब मेरी बात का न दीजियेगा?

जवाब नही है बहू। केवल जानता हूँ आपको मैं पाऊँगा नही—पाने का रास्ता मुझे नही है।

क्यों नही है? कैसे समझ गये इस बात को?

समझ गया हूँ बहुत दु ख पाकर। मैं भी निष्कलक नही हूँ नयी बहू। एक दिन अनेक औरतों को मैं जान गया था! उस दिन ऐश्वर्य के जोर से उनको छोटी बना कर ले आया था—वे सब खुद भी बन गयी छोटी, मुझे भी उन्होने वही बना डाला। वे सब अब नही है—कहाँ कौन बह कर चली गयी, उस खबर की जानकारी भी मुझे नही है।

जरा रुक कर उन्होने कहा—उस समय इस खेलवाड मे उतरने मे मुझे रुकावट नही पडी। आज रुकावट पड़ रही है पग-पग पर।

सविता ने सिहर कर पूछा—केवल ऐश्वर्य से ही उनको भुलावे मे डाल दिया था? किसी को प्यार नही किया था?

विमल बाबू ने कहा—प्यार तो किया था जरूर ही। एक औरत तो आपकी ही तरह गृह छोडकर आ गयी थी, कितु खेल खतम हो गया उसको मैं रख नही सका। उसको मैंने कोई दोष नही दिया, किंतु आज मुझे यह समझने में कुछ भी बाकी नही है कि प्रेम के धन को छोटा बनाकर पकड कर नही रखा जा सकता—उसको खोना ही पडता है। उस दिन रमणी बाबू को भी इसी तरह खोते हुए देखा है।

सविता ने पूछा—यही क्या आपको भय है?

विमल बाबू ने कहा—भय नहीं है नयी बहू—अब यही है मेरा व्रत, इससे मैं च्युत न होऊँ यही है मेरी साधना। आपकी लडकी को मैंने देखा है, आपके पति को मैं देख आया हूँ। किस तरह सब देकर ऋण चुका कर वे चले गये हैं, यह भी मैं जान गया हूँ! मेरे लिए सुनना कुछ भी बाकी नही है। इसके बाद मैं आपको पाऊँगा किस बात से? दरवाजा तो बन्द है। मैं जानता हूँ छोटी मानकर किसी दिन मैं आपको ले न सकूँगा और इससे भी अधिक-यह जानता हूँ कि छोटी बना कर भी आपको पाने का मेरे लिए थोडा-सा भी रास्ता खुला नही है। इसीलिए तो मैंने आपसे कहा था नयी बहू, लीजिये मुझे अपना अकृत्रिम मित्र मान कर। यह मकान है उसी मित्र का दिया उपहार। यह आपको छोटी बनाने की युक्ति नही है।

सविता मुँह नीचे झुकाये चुपचाप बैठी रही। कितनी ही बातें उनके मन मे आ गयी उसका कोई ठिकाना नही है। अन्त मे मुँह ऊपर उठा कर उन्होने कहा—यह मित्रता कितने दिनो तक टिकी रहेगी विमल बाबू मिथ्या का यह आवरण टिकेगा क्यो? नर-नारी के मूल सबध मे एक दिन वह हम लोगो को खीच कर उतार ही देगा? उसे रोकेगा कौन?

विमल बाबू ने कहा—मैं रोकूँगा नयी बहू। आपकी प्रतीक्षा करता रहूँगा, कितु मन को भुलावे मे डालने की तैयारी न करूँगा। यदि कभी अपना परिचय आपको मिल जाय, मेरी तरह दोनो आँखो से देखने पर यदि कभी दृष्टि बदल जाय, तो मुझे अपने पास बुलाइयेगा—यदि मैं जीवित रहूँगा तो दौडकर चला आऊँगा। छोटी बनाकर लेने के लिए नही—आऊँगा सिर पर उठा लेने के लिए।

सविता की आँखे छलछलाने लगीं। उन्होने कहा—आपका परिचय पाना अब बाकी नही है विमल बाबू, आँखों की यह दृष्टि इस जीवन मे अब बदलेगी नही। केवल आप यही आशीर्वाद दीजिये कि, जिस दु ख को स्वय बुला लायी हूँ उसे सहन कर सकूँ।

विमल बाबू की आँखे भी सजल हो उठी। उन्होने कहा—दु.ख कौन देता है, कहाँ से वह आ जाता है मैं आज तक भी नही जानता। इसलिए तुम्हारे अपराध का विचार करने के लिए मैं नही बैठूँगा, केवल प्रार्थना करूँगा, चाहे जिस तरह भी क्यों न आया हो, यह तुम्हारा दु.ख चिरस्थायी न होने पावे।

बारह

रमणी बाबू अब आते नही, शायद अलगाव हो गया। दोनो के बीच अकस्मात् क्या बात हो गयी किरायेदार समझ ही न सके। आड से वे लोग देखते हैं सविता का शात, उदास चेहरा—पहले की तुलना मे कितना फर्क है। जेठ का शून्यमय आकाश आषाढ़ के सजल बादलो के बोझ से मानो झुक कर उन लोगों के पास आ गया है। उसी तरह लताओ मे, पत्तियो मे, पेड-पेड मे अश्रु वाष्प की सकरुण स्निग्धता लगी हुई है, उसी तरह जल मे, थल मे, आकाश मे, हवा मे सर्वत्र प्रकट हुआ है उनकी गुप्त वेदना का स्तब्ध इगित। उनकी बातो मे आचरणो मे किसी दिन भी उग्रता नही थी, तो भी किसी तरह के अनजान व्यवधान से वे इतने दिनो तक केवल दूर-ही-दूर रहती थी। अब वही दूरी मिट कर उनको खीच कर सबकी छाती के पास ले आयी है। घर की स्त्रियाँ उस दिन यही बात शारदा से कह रही थी। सोचती थी शायद विच्छेद के दु.ख ने ही उनको इस तरह बदल दिया है।

रमणी बाबू साधारणत भले आदमी थे, रहते थे पराये की तरह, किसी की भलाई मे भी नही, बुराई मे भी नही। बीच-बीच मे किराया बढ़ाने की आवश्यकता की घोषणा करने के अलावा अन्य असदाचरण उन्होने नही किया। उनका चला जाना खटक रहा है बहुतो को ही तो भी वे लोग सोचते हैं कि उस जाने के कलंकित मार्ग मे नयी माँ की सभी कालिख यदि इतने दिनो मे धुल जाय तो शोक के बदले मे वे लोग उल्लास ही अनुभव करेंगे। यह मानो उनकी ग्लानि दूर हो जाने से वे लोग आप ही आप निर्मल होकर बच गये। केवल एक भय था, वे यदि स्वय न रहेगे तो वे लोग ही कहाँ खडे रहने की जगह पावेगे। आज शारदा ने इसी सबध मे उनको निश्चिन्त कर दिया। उसने कहा—बूआजी, मकान की एक व्यवस्था हो गयी। तुम लोग जिस तरह हो, उसी तरह रहो—तुम लोगो को कही भी मकान ढूँढने की जरूरत न पडेगी, माँ ने कह दिया है।

तो अब शायद माँ किसी दूसरी जगह न जायँगी शारदा?

जायँगी, किंतु फिर लौट आवेंगी। मकान छोडकर कही ज्यादा दिन नही रहेगी। उन्होने कहा है।

खुशी के मारे बूआजी की आँखो मे आँसू भर आया। शारदा को आशीर्वाद देकर वे यह सुसमाचार सभी दूसरों को देने चली गयी।

प्रतिदिन विमल बाबू के विदा हो जाने के बाद सविता अपने पूजा के कमरे मे प्रवेश करती हैं। पहले पूजा-आह्निक करने मे उनका अधिक समय नही लगता था। किसी दिन रात के दास बज जाते थे। किसी दिन ग्यारह। इस समय शारदा को छुट्टी रहती थी, वह नीचे जाकर अपना घरेलू काम-धधा करती थी। आज कमरे मे जा कर उसने देखा राखाल बिछौने पर बैठ कर दीपक के प्रकाश मे उसका खाता पढ रहा है। उसने पूछा—आप कब आये? उसके बाद कुण्ठित स्वर मे उसने कहा—नही जानती, कितनी भूल चूक ही मुझसे हो गयी है न?

राखाल ने मुँह ऊपर उठाकर कहा—होने पर भी भूल-चूक को मैं सुधार सकूँगा, किंतु लिखावट तो कुछ भी आगे बढी नही है देख रहा हूँ।

नही, समय तो मिलता ही नही।

मिलता क्यो नही?

कैसे मिले बताइये? माँ के सभी काम तो मुझे ही करने पडते हैं।

नयी माँ को नौकर नौकरानियों की कमी नही है। उनसे कहती क्यो नही। तुम्हे भी समय की जरूरत है, तुमको भी काम है। यह किंतु बहुत ही अन्याय है शारदा।

राखाल के कठस्वर मे तिरस्कार का आभास था, किंतु शारदा का चेहरा देखने से ऐसा नही जान पडा कि वह जरा भी लज्जित हुई है। उसने कहा—आपका ही क्या कम अन्याय है देवता? भिक्षा का दान छिपाने के लिए व्यर्थ का बोझ लाद लिया है मेरी गरदन पर। दूसरे को अकारण सताने से आप ही ज्वर से भोगना पडता है, कमरे मे अकेले पडे रह कर भोगना पडता है, सेवा करने वाला कोई आदमी नही जुटता। इतना दुबला देख रही हूँ क्यो बताइये तो?

किंतु चिरस्थायी तो हो ही चुका है।

यह भी मैं नही जानता नयी बहू। मुझे आशा है, ससार मे आज भी तुमको कुछ जान लेने को बाकी है आज भी तुम्हारा सब देखना यहाँ ही खतम नही हुआ है। यदि तुमको आशीर्वाद देना ही हो तो यही आशीर्वाद देता हूँ कि तुम सहज ही मे इसका कोई किनारा देख सको।

सविता ने उत्तर नही दिया। फिर दोनो का बहुत समय चुपचाप बीत गया। जब उन्होंने अपना मुँह ऊपर उठाया तब दीपक के उज्ज्वल प्रकाश में दिखाई पडा कि उनकी आँखो की दोनो पलके भीगकर भारी हो गया है। उन्होंने मीठे स्वर मे कहा—तारक बर्दवान के किसी गाँव मे मास्टरी करता है। उसने मुझे बुलाया है, जाऊँ कुछ दिनो के लिए उसके यहाँ?

जाओ।

तुम क्या अभी कुछ दिन कलकत्ते मे ही रहोगे?

रहना ही पडेगा। यहाँ मैंने एक नया दफ्तर खोला है। उसका बहुत काम बाकी है।

सविता ने जरा हँस कर कहा—रुपया तो तुमने बहुत जमा किया—और क्या करोगे?

प्रश्न सुनकर विमल बाबू हँस पडे। बोले—जमा नहीं किया है। वे आप ही आप जमा हो गये हैं नयी बहू—उनको काम मे न ला सका इसीलिए। क्या करूँगा नही जानता, सोच लिया है, समय होने पर किसी से उनकी आवश्यकता सीख लूँगा।

सविता उठ कर गयी और पास की खिडकी खोलकर लौट आने के बाद बैठ गयी, बोली—इस मकान की मुझे अब जरूरत नही थी—मैंने सोचा था अच्छा ही हुआ कि चला गया। एक झझट मिट गया। किंतु तुमने ऐसा होने नही दिया। किरायेदार रहते हैं इनको देखो।

देखूँगा।

और एक अनुरोध करूँगी, रखोगे?

क्या अनुरोध है नयी बहू।

मेरी लडकी मेरे पति रह गये वनवास मे, यदि समय मिले तो उन लोगो की खबर लेना।

विमल बाबू ने हँसते हुए चेहरे से जरा गरदन हिला दी, कुछ भी नही कहा—इसका अर्थ क्या है सविता समझ न सकी, किंतु हृदय के अन्दर मानो आनन्द का आँधी बह चली। दोनो हाथ जोडकर उसने चुपचाप ललाट पर रख दिया, वह पति के उद्देश्य से था या विमल बाबू के लिए था, शायद खुद भी न जान सकी। एक क्षण चुप रह कर उनके मुँह की तरफ देखकर उसने कहा—अपने पति की बात मैं एक दिन तुमको अपने मुँह से सुनाऊँगी—उस बात को केवल मैं ही जानती हूँ और कोई भी नही। किंतु मैं पूछती हूँ तुमसे, मैं अपने बाप के घर जब छोटी थी तब तुम क्यो नही आये बताओ तो?

विमल बाबू ने हँसकर कहा—इसका कारण यह है कि मुझे जिन्होने भेजा है, उस दिन उनको इसका खयाल नही था। उस भूल का महसूल जुटाने मे हमारा प्राण जाने लगा, किंतु इस प्रकार ही शायद उस बूढ़े के विचित्र खेल मे रस जमा हो जाता है। कभी भेट होने पर दोनो मिलकर दावा दाखिल कर देगे। क्या कहती हो?

कुछ दूरी से शारदा को कई बार यातायात करते देख कर उसे अपने पास बुला कर उन्होने कहा—तुम्हारी माँ को भोजन करने मे देर हो गयी—न बेटी? उठना पडेगा।

शारदा भारी अप्रतिभ होकर बार-बार प्रतिवाद करके कहने लगी—नही, कभी नही। देर हो गयी है आपको—आपको आज खाकर जाना पडेगा।

विमल बाबू हँस पडे उठ खडे हुए और बोले—तुम्हारी इसी बात को मैं अब न रख सकूँगा बेटी, मुझे खाये बिना ही जाना पडेगा। जा रहा हूँ।

सविता ने उठ खडी होकर नमस्कार किया, किंतु वे शारदा के अनुरोध मे शामिल नही हुई।

विमल बाबू प्रतिदिन की तरह आज भी प्रतिनमस्कार करके धीरे-धीरे नीचे उतर गये।

राखाल ने कहा—दुबला नही हूँ ठीक ही हूँ। किंतु लिखने का काम अचानक व्यर्थ का काम हो गया है कैसे?

शारदा ने कहा व्यर्थ का काम नही है तो क्या है। हुआ है ज्वर, वह भी छिपा न सकने के कारण। ऐसी ही दशा है, अच्छी बात है, उसे भले ही मैं लिख डालूँ किंतु वह आपके किस काम मे लगेगा सुनूँ तो?

काम मे न लगेगा? तुम कहती क्या हो शारदा?

शारदा ने कहा—यही कहती हूँ कि वह सब किसी भी काम मे न लगेगा और यदि लगे भी तो मेरा क्या? मुझे आपने मरने नही दिया, अब बचा रखने की गरज आप की है। एक पंक्ति भी मैं न लिखूँगी।

राखाल ने कहा—लिखोगी नही तो मेरा उधार रुपया अदा करोगी कैसे।

उधार रुपया अदा न करूँगी, ऋणी ही बनी रहूँगी।

राखाल की इच्छा हुई कि, उसका हाथ अपने हाथ मे खीचकर कह दे, ऐसी ही रही, किंतु साहस नही किया। वरन् जरा गंभीर होकर ही उसने कहा—जो कुछ तुमने लिखा है, उसी से क्या तुम समझ नही सकती कि उन सबकी सचमुच ही जरूरत है?

शारदा ने कहा—जरूरत है मुझे केवल हैरान करने की—और कुछ भी नही। केवल कुछ-न-कुछ रामायण, महाभारत की कथाएँ—यहाँ से वहाँ से ली गयी है—ठीक मानो धार्मिक लीला के दल की वक्तृता है। यह सब किस मतलब से लिखने जाऊँ?

उसकी बात सुनकर राखाल जितना आश्चर्य मे पड गया, उससे कही बहुत अधिक वह विपत्ति मे पड गया। वास्तव मे लेख उसी श्रेणी के हैं। वह लीला के अभिनय रचता है, नकल कराकर लीला मण्डलियो अधिकारियो को देता है, यही है उसकी असल जीविका किंतु उपहास के भय से मित्र-मण्डली मे इसे प्रकट नही करता, कहता है लडको को पढ़ाता हूँ। लडको को पढाता न हो ऐसी बात नही है, किंतु उस आय से उसके ट्राम का किराया भी नही जुटता। उसकी इच्छा नही है कि उपार्जन का यह रास्ता कही पकड मे आ जाय मानो यह बहुत ही अप्रतिष्ठा और लज्जाजनक काम है। उसके मन मे यह सदेह भी उत्पन्न हुआ कि अपने को शारदा जितनी अशिक्षिता कह कर प्रचार किया था, शायद वह सच नही है, बिलकुल झूठ है, कौन जाने शायद उसकी अपेक्षा भी—क्रोध से मन का भीतरी हिस्सा किस तरह जल उठा, क्योकि वह जानता है अपनी पल्लव ग्राही विद्या को, जितना वह जानता है आइनस्टिन की रिलेटिविटी उतना ही जानता है वह एफाक्लिज का ऐण्टीगन ऐजक्स। अधेरे मे चलने की तरह प्रति पदक्षेप मे ही उसे भय है कही गढ़े मे पैर न गिर जाय। जात्रा के सीनो को लिखने की लज्जा भी उसकी इसी श्रेणी की है। शारदा के प्रश्न के उत्तर मे कोई बात ढूँढ़ने पर नही मिली तो वह बोल उठा—पहले तो तुम बहुत ही भली स्त्री थी शारदा—हठात् ऐसी दुष्ट हो गयी कैसे?

शारदा ने अपनी हँसी को दबा कर कहा—मैं दुष्ट हो गयी हूँ?

हो नही गयी हो? अच्छा तुम्हारे विचार से जरूरी काम क्या है सुनूँ तो?

बता रही हूँ। पहले आप बताइये छ -सात दिन आप आये क्यो नही?

तबीयत कुछ खराब हो गयी थी।

झूठी बात। यह कह कर शारदा उसके चेहरे की तरफ कुछ देर तक चुपचाप ताकती रही फिर बोली, हुआ था ज्वर, और वह भी खूब अधिक इसको तबीयत खराब कह कर उडा देने से वह होगी झूठी बात। आपकी बुढिया नौकरानी जिसको आप नानी कह कर पुकारते हैं वह भी बीमार पडी हुई थी। स्टोव जलाकर अपने लिए सागू-बार्ली तैयार करने की जरूरत पडी थी। सुनती हूँ आपके इष्ट-मित्र अनेक हैं, उनमे से किसी को आपने खबर क्यो नही दी?

यह प्रश्न राखाल के लिए नया नही है—गत वर्ष भी प्राय ऐसी ही अवस्था उत्पन्न हो गयी थी। किंतु वह चुप हो रहा। वह यह बात स्वीकार न कर सका कि ससार मे,जिसके मित्रो की सख्या अपरिमित है उसको ही दु ख के दिनो मे बुलाने लायक मित्रो का सबसे अधिक अभाव रहता है।

शारदा ने कहा—उन लोगो को जाने दो, नयी माँ के पास आपने खबर क्यो नही भेजी?

प्रत्युत्तर मे राखाल आश्चर्य के साथ बोल उठा, नयी माँ! नयी माँ भला जायँगी मेरे उस सडे टूटे फूटे डेरे में सेवा करने? तुम क्या कह डालती हो शारदा, इसका कोई ठिकाना ही नही है। किंतु मेरी बीमारी

का समाचार तुमको किसने दिया?

शारदा ने कहा—जो भी क्यों न दे; किंतु दुःख तो यह है कि उसने ठीक समय पर नहीं दिया। सुनकर नयी माँ ने कहा—राजू ने मेरी रेणु को बचाया था दिन के समय रसोई पका कर, सबके मुँह मे अन्न जुटाकर रात को सारी रात जागकर, अपनी सारी पूँजी खाकर डाक्टर-वैद्यो का ऋण चुका कर! और वह खुद ही जब बीमार पड़ गया तब खुद ही गया ज्वर की प्यास बुझाने के लिए पाइप से पानी लाने, चूल्हा जलाकर खुद ही उसने भूख मिटाने के लिए पथ्य तैयार किया, उसने दवा नही पायी अपना आदमी न रहने के कारण। किंतु मुझे वह खबर क्यो देता जेटी—क्या मेरे ऊपर तो उसका विश्वास नही है। लडकी की बीमारी मे दूसरे के नाम से जब वह सहायता माँगने आया था—उसे मैंने तो दी नही। —कहते-कहते शारदा की अपनी ही आँखो मे आँसू उमड चला। वह फिर कहने लगी—किंतु वह नयी माँ की बात थी, मैंने कौन सा अपराध किया था देवता? किरानीगिरी करके आज तक भी रुपया चुका न सकी, उसी क्रोध से क्या?

राखाल हँस पड़ा, बोला—यह तो तुमने चाय की प्याली का तूफान खड़ा कर दिया शारदा। तुच्छ बात को तुमने कितनी पेंचीली बना डाला है। ज्वर क्या किसी किसी को नहीं होता? दो ही दिनो मे तो वह ठीक हो गया।

शारदा ने कहा—वह जो ठीक हो गया, वह है भगवान की दया हम लोगों के ऊपर,—आपके लिए नही। असल मे आप बहुत खराब आदमी हैं। जहर खाकर मरने जा रही थी, आपने मरने नही दिया, अस्पताल मे दिन-रात आप डटे रहे। लौट आने पर कुछ खाये बिना मरने जा रही थी तो उसमें भी रुकावट डाल दी। एक तरफ तो यह हालत है, फिर दूसरी तरफ बीमारी की हालत मे थोडी सी सेवा करूँगी, यह भी आप से सहा नहीं गया। चिरकाल क्या आप ऐसी ही शत्रुता करते रहेगे, छुटकारा न दीजियेगा? मैंने आप का क्या किया था? इस जन्म का तो मैं अपना दोष नहीं देखती, यह क्या गत जन्म का दण्ड है?

राखाल जवाब न दे सका, अवाक् होकर सोचने लगा, यह मुँहचोर ठण्डी औरत हठात् ऐसी प्रगल्भ किस बात से?

शारदा रुकी नही। दिन के समय के कडे प्रकाश मे इतनी बाते इतने पूरे नि.संकोच से वह कुछ भी न कह सकती थी, किंतु यह था रात्रि का समय—निभृत कमरे के छाया पूर्ण अभ्यन्तर में केवल वह थी और एक दूसरा आदमी था—आज बुद्धि थी शिथिल तन्द्रा से आतुर, इसीलिए अन्तर्गूढ़ भावना उसके वाक्य के स्रोतों के मार्ग से रुकावट के बिना ही आ गयी, हिताहित के तर्जनी-शासन पर भ्रूक्षेप भी उसने नही किया। वह कहने लगी—जानते तो हैं देवता, मैं जानती हूँ, क्यो आपने आज तक विवाह नहीं किया। असल मे स्त्रियों के प्रति आपके मन मे भारी घृणा है। किंतु यह भी जानियेगा-जिनको आपने आज तक देखा है, जिनकी फरमाईश पर खटते रहे हैं, पीछे-पीछे घूमते रहे हैं, वे ही सभी स्त्री-जाति के उदाहरण नही हैं। इस जगत् मे दूसरी स्त्रियाँ भी हैं।

इस बार राखाल हँस पडा, उसने पूछा—आज तुमको क्या हो गया है बताओ तो?

सचमुच ही आज मुझे बहुत क्रोध हुआ है?

क्यों?

क्यो। किसलिए मुझे आपने बीमारी की खबर नही दी, बताइये।,

खबर देने से ही क्या हो जाता? वहाँ और कोई भी स्त्री नही है, अकेली क्या तुम मेरी सेवा करने जाती।

शारदा ने चमकती हुई आँखो से कहा—जाती नहीं तो क्या चुपचाप घर मे बैठी रहती?

तुम्हारे पति क्या कहते जब लौट् आने पर वे यह बात सुन लेते?

लौट कर वे आवेंगे नही, यह बात मैं आपसे अनेक बार कह चुकी हूँ। आप कहेगे तुम यह कैसे जान गयी? इसका जवाब यह है कि मैं जानूँगी नही तो ससार मे जानेगा कौन?

यह कह कर शारदा ने क्षण काल चुप रह कर कहा—इसके सिवा एक बात और है। अकेली आपकी सेवा करने के लिए मेरा जाना ही दोष की बात होती, किंतु इस मकान मे ही किसके भरोसे पर मुझे वे

अकेली छोड कर चले गये हैं? यही जो आप मेरे कमरे मे आकर वैठते हैं—यदि मैं जाने न दूँ, पकड रखूँ, तो कौन रोकेगा वताइये तो?

यह कैसा तमाशा है! ऐसी बात किसी औरत के मुँह से ही राखाल ने कभी सुनी नही थी। विशेषतः शारदा से। गभीर लज्जा से उसका चेहरा लाल हो उठा, किंतु प्रकट होने से वह लज्जा वढेगी ही घटेगी नही, इसीलिए जोर लगा कर हँसने का प्रयास करके वह बोला—अकेला पाकर तुमने तो मुझसे बहुत सी ही बाते कह डाली, किंतु उसके रहने पर क्या कह सकती थी?

शारदा ने कहा—तब तो कहने की जरूरत ही नही पड़ती। किंतु आज आने से उनको दूसरी बात कहती। मैं कहती, जो शारदा तुमको प्राण से भी अधिक प्यार करती थी—उसने कितना सहा है, उसके साक्षी हैं केवल भगवान—जिसको व्याह का नाम लेकर ले आने पर धोखा दिया, जूठे पत्तल की तरह जिसको स्वच्छन्दता से फेंक दिया, लौटने का रास्ता जिसके लिए कही भी खुला नही रखा, वह शारदा अब नही है, वह जहर खाकर मर गयी है। अपने नही, तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए। यह शारदा दूसरी है। उसका पुनर्जन्म हुआ है। उसके ऊपर अब किसी का दावा नही है।

सुनकर राखाल स्तब्ध होकर बैठा रहा।

शारदा कहने लगी—आपको क्या याद नही है देवता, अस्पताल मे रज होकर आपने बार-बार पूछा था, तुम कहाँ जाना चाहती हो, उत्तर मे मैंने बार-बार रो रोकर कहा था, मेरे जीने की जगह कही भी नही है। केवल एक ही जगह थी, वहीं मैं जा रही थी—किंतु बीच रास्ते मे ही उसी रास्ते को आपने बन्द कर दिया।

कुछ देर तक दोनो का ही चुपचाप समय बीत गया। राखाल ने कहा—जीवन बाबू को आँखों से देखा नही है, केवल घर के लोगो के मुँह से उनका नाम सुना है। वे क्या तुम्हारे पति नही हैं? सब ही झूठ है?

हाँ, सब ही झूठ है। वे मेरे पति नही हैं।

तो क्या तुम विधवा हो?

हाँ, मैं विधवा हूँ।

फिर कुछ क्षण नीरवता मे बीत गये। शारदा ने पूछा—मेरी कथा सुन कर क्या मेरे प्रति आपके मन मे घृणा उत्पन्न हो गयी?

राखाल ने कहा—नही शारदा, मैं इतना नासमझ नही हूँ! तुमसे भी अधिक अपराध किया था नयी माँ ने, मैंने उनसे भी घृणा नही की। किंतु कह चुकने पर तुरन्त ही वह अत्यन्त लज्जित होकर चुप हो रहा। उसी क्षण समझ गया, यह है अनधिकार चर्चा, यह है उसका अपना अपमान। यह कैसी भद्दी बात उसके मुँह से हठात् निकल पडी।

शारदा ने कहा—नयी माँ ने आपको माता की तरह पालपोस कर बड़ा बनाया था—

राखाल ने कहा—हाँ, वे मेरी माता ही तो हैं। यह कह कर इस प्रसग को झटपट दबाकर उसने कहा—तुम्हारे माँ-बाप आत्मीय-स्वजन हैं या नहीं, तुम बताना नही चाहती, कम से कम उन लोगो के यहाँ तुम जाओगी नही, यह मैं पक्का समझ गया हूँ, किंतु अब क्या करोगी?

शारदा ने कहा, जो कुछ कर रही हूँ वही। नयी माँ का काम करूँगी।

किंतु यह क्या चिरकाल ही तुमको अच्छा लगेगा शारदा?

शारदा ने कहा—यह दासी-वृत्ति तो नही है—माता की सेवा है। कम से कम बहुत काल तक अच्छा लगेगा यह मैं जानती हूँ।

राखाल ने कहा—किंतु बहुत काल के बाद भी एक काल बाकी रह जाता है, तब अपने ही पैरो पर खडा होना पड़ता है, उसमे रुपये की जरूरत पडती है। केवल सेवा करके उस समस्या की मीमासा नही होती।

शारदा ने कहा—चाहे कितने ही रुपयो की जरूरत क्यो न पडे आपका किरानीगिरी मैं न कर सकूँगी। वरन् छोटी सी एक चिट्ठी लिख कर बिछौने पर फेंक रखूँगी, कोई भी एक आदमी उसे पढ़कर मेरे तकिये के नीचे रुपया रख जायगा। उसी से मेरा अभाव दूर हो जायगा।

राखाल ने हँस कर कहा—वह तो भीख लेना हुआ।

शारदा भी हँस पडी, बोली—भीख ही लूँगी। कोई भी उसको जानेगा नही—घूस देकर लोग बतलाते नही—मुझे लज्जा किस बात की है?

राखाल को फिर इच्छा हुई कि हाथ पकड कर उसको अपने पास खीच लावे और इस धृष्टता के लिए सजा देवे। किंतु फिर साहस मे रुकावट पडी—समय बीत गया।

दासी ने बाहर से आवाज देकर कहा—दीदी जी, तुमको माँ बुला रही हैं।

माँ की आह्निकपूजा क्या समाप्त हो गयी?

हाँ, हो गयी है—यह कह कर वह चली गयी।

शारदा ने कहा—आप चलियेगा नही माँ से मुलाकात करने?

राखाल ने कहा—तुम जाओ, मैं पीछे आऊँगा।

पीछे क्यो? चलिये न दोनो ही एक साथ चले। कह कर ही वह दबी हुई हँसी का एक तरग उठाकर दरवाजा खोल कर द्रुत वेग से चली गयी।

राखाल आँखे बन्द करके बिछौने पर लेट गया। मन मे यह खयाल आया कि यह—कमरा जिस रस के माधुर्य से निविड हो उठा जीवित मनुष्य के हाथ की भाँति, उसने उसके सब अंगो पर स्पर्श किया है, कितने दिनो के परिचित उस साधारण गृह के रहस्य का मानो आज अन्त ही नही है।

उसके शरीर-मन मे आज यह किस बात की आकुलता है, किस बात के लिए स्पन्दन हो रहा है? वृक्ष के निगूढ़ अन्त:स्थल मे यह कोन बोल रहा है? क्या बोलता है? स्वर धीमा अस्पष्ट ही कान मे आ रहा है, भाषा समझ में आती क्यो नही? कितनी हो सैकडो स्त्रियो को वह पहचानता है। कितने दिनो के कितने ही आनन्दोत्सव उनके सग में बातचीत मे गीत-गायन मे, हँसी खेल मे व्यतीत हुए हैं, उनकी स्मृति आज भी लुप्त नही हुई है—मन के कोने मे ढूँढ़ने से आज भी वे दिखाई पड़ते हैं, कितु शारदा की—इसी केवल एक स्त्री के मुँह की बातो से जो विस्मय आज मूर्ति मे उमड़ उठी है, इस जीवन की अभिज्ञता मे उसकी तुलना कहाँ है? यह क्या नारी के प्रेम का रूप है? उसकी तीस वर्ष की अवस्था मे उस अनजान से क्या आज ही मुलाकात हुई? क्या इसके ही विजय गान का अन्त नही है, इसका ही कलक गाकर क्या आज भी समाप्त नही किया गया?

कितु भूल नही है, भूल नही है—शारदा के मुँह की बातों से भूल समझने का अवकाश नही है। ऐसे सुनिश्चित असंशय के साथ जो आप ही आकर पास खडी हो गयी, उसको नही कहकर लौटा देगा, वह किस संकोच से, किस वृहत्तर की आशा से? किंतु तो भी दुविधा जागती है, मन पीछे हटना चाहता है, संसार कुण्ठा दिखाकर कहता है, शारदा विधवा है, शारदा निन्दिता है, स्वैराचार के कलंक प्रलेप से वह मलिन है। मित्र-समाज मे स्त्री कहकर परिचय देगा वह किस दुस्साहस से? फिर उसी क्षण याद पडती है प्रथम दिन की बात—वही अस्पताल मे जाना। मृतकल्प नारी का फीका-पीला चेहरा, मृत्यु की नील छाया उसके ओठो पर, कपाल पर, निमीलित नेत्रो की पलको पर—गाडी के बन्द दरवाजे के सध से आता है पथ का प्रकाश—उसके बाद यममनुष्य के बीच वह कैसी लड़ाई। क्या ही दुःख से वह प्राण वापस पाना। इन सब बातो को राखाल भूलेगा किस तरह? किस तरह भूल जायगा वह उसी के हाथ मे शारदा का पूरा समर्पण। वही दोनो आँखों का आँसू पोछ कर कहना—अब मैं मरूँगी नही देवता, आपका हुक्म न लेकर। उस दिन जवाब मे राखाल ने कहा था—स्वीकृति याद रहे चिरकाल।

उसी दासी ने आकर कहा—राजा बाबू, माँ बुला रही हैं आपको।

मुझको? चकित होकर राखाल उठ कर बैठ गया। हाथ लगा कर उसने देखा आँखो का आँसू लुढक कर तकिये का बहुत-सा हिस्सा भींग गया है। झटपट उसे उलटकर रख कर वह ऊपर चला गया और नयी माँ के चरणो की धूलि लेकर निकट ही बैठ गया। इतने दिन न आने की बात उसकी बीमारी की बात का कुछ भी नयी माँ ने उल्लेख नहीं किया, केवल स्नेहार्द्र स्निग्ध कंठ से प्रश्न किया—अच्छी तरह हो बेटा?

राखाल ने सिर हिलाकर स्वीकार करके कहा—एक बहुत बड़ा अपराध मुझसे हो गया है माँ, मुझे क्षमा करना पडेगा। कई दिन ज्वर से भोगता रहा, आपके पास खबर न भेज सका।

नयी माँ कोई उत्तर न देकर चुप हो रही। राखाल कहने लगा, वह इच्छा से नही हुआ, आप लोगो को चोट पहुँचाने के लिए भी नहीं हुआ। याद आती है माँ, एक दिन जितना परेशान मैंने किया, उतना आपकी रेणु ने भी नहीं। उसके बाद एक दिन हठात् पृथ्वी बदल गयी—ससार मे इतना तूफान बादल बढ़ा कर रखा गया है, उसी समय मुझे पता चला। ठाकुर जी की कोठरी मे जाकर रोकर मैं कहता था, गोविन्द, अब तो मैं सहन नही कर सकता, हमारी माँ को लौटा कर ला दो। मेरी प्रार्थना को इतने दिनो मे ठाकुरजी ने मजूर किया है। अपनी उसी माँ का मैं अपमान करूँगा, ऐसी बात आप किस तरह सोच सकी माँ?

इस बार नयी माँ ने धीरे-धीरे कहा—तो किस अभिमान से तुमने खबर नही भेजी बेटा? दरवान को भेज कर जब मैं पता लगाने गयी तब कुछ करने का भी रास्ता तुमने नही छोडा था।

राखाल हँसते हुए कहा—वह केवल भूल हो जाने के कारण। अभ्यास तो नही है, दु:ख के दिनो में याद नही पडता माँ, तीनो लोक मे मेरा कही भी कोई है।

नयी माँ ने उत्तर नही दिया—केवल उसका हाथ पकड कर और भी पास उसे खीच कर गभीर स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेर दिया।

शारदा आड मे से ही शायद सुन रही थी, सामने आकर उसने कहा—देवता को खाकर जाने के लिए कहिये न माँ, डेरे पर जाकर तो वहाँ उनको खुद ही रसोई पकानी पडेगी।

नयी माँ ने कहा—मैं क्यो शारदा, खुद ही तो तुम कह सकती हो बेटी। उसके बाद मुस्कुराकर वे बोली, यह बात वह प्राय. कहा करती है राजू। तुमको अपने ही हाथ से रसोई पकानी पडती है मानो इसे वह सह नही सकती—इसके हृदय मे चोट पहुँचती है। उसको तुमने बचाया था एक दिन, इस बात को शारदा एक दिन के लिए भी भूलती नही।

पल भर के लिए राखाल लज्जा से लाल हो उठा। वे कहने लगी—ऐसी स्त्री को किस तरह उसका पति छोड कर चला गया, यही मैं केवल सोचती रहती हूँ। जितने अघटन हैं, क्या उनका केवल स्त्रियो के भाग्य मे ही विधाता लिख देते हैं और कहने के साथ ही उनके मुँह से एक लम्बी साँस निकल पडी।

शारदा ने कहा—इस बार इन्हे एक ब्याह करने को कह दीजिये माँ। आपके आदेश को वे कभी नही न कह सकेगे।

सविता कोई बात कहने जा रही थी, किंतु राखाल ने झटपट रुकावट डाल दी। कहा—तुमने मुझे केवल दो-चार दिन ही देखा है, किंतु उन्होने मुझे पालपोस कर आदमी बनाया है—मेरे स्वभाव को पहचानती हैं। अच्छी तरह जानती हैं, उसके नही हैं घर द्वार, नही है आत्मीय स्वजन, नही है उपार्जन करने की शक्ति-सामर्थ्य,वह है बिलकुल असमर्थ, किसी तरह लडके पढ़ाकर दोनों वक्त के भोजन का ठिकाना करता है। उसको लडकी देना केवल लडकी का जबह करना है। ऐसा अन्यायपूर्ण आदेश माँ कभी न देगी।

शारदा ने कहा—किंतु देगी तो?

राखाल ने कहा—देगी तो समझूँगा यह है मेरा भाग्य।

महाराज ने आकर खबर दी—भोजन तैयार है। राखाल समझ गया, यह आयोजन शारदा ने ऊपर आकर ही किया है।

बहुत दिनो के बाद सविता उसको खिलाने के लिए बैठी। बोली—राजू, तारक जहाँ नौकरी करता है, वह गाँव सुनती हूँ बिलकुल ही दामोदर के किनारे है। मुझको बडे ही चाव से कह रहा है कि कुछ दिन उसके यहाँ जाकर रहूँ। मैंने निश्चय किया है जाऊँगी।

प्रस्ताव करके उसने चिट्ठी लिखी है क्या?

चिट्ठी से नही, दो दिन की छुट्टी लेकर वह खुद ही आया था कहने के लिए। बहुत अच्छा लडका है। जैसा विनयी है वैसा ही विद्वान है। ससार में वह उन्नति करेगा ही।

राखाल ने साश्चर्य मुँह ऊपर उठाकर कहा—तारक आया था कलकत्ता? कहाँ मैं तो जानता नही।

सविता ने कहा—जानते नही हो? तब तो मालूम होता है कि भेट करने का वह समय न निकाल सका। केवल दो ही दिनो की छुट्टी थी न?

राखाल ने और कुछ भी नही कहा—सिर झुका कर भोजन का कौर मलने लगा। उसे याद पड गया

बीमारी के पहले दिन ही उसने तारक को एक पत्र लिखा था, उसमे बताया था, इन दिनो तबीयत कुछ खराब रहती है, उसकी इच्छा है कुछ दिनों की छुट्टी लेकर देहात मे जाकर मित्र के घर बिता आवे। उस चिट्ठी का जवाब अभी तक आया नहीं है।

तेरह

उस दिन रात को खाना-पीना हो चुकने के बाद डेरे पर वापस आते समय शारदा साथ-साथ नीचे उतर आयी थी और उसने बहुत ही अनुरोध करके कहा था, मेरी इच्छा है कि आपको खुद रसोई पकाकर एक दिन खिलाऊँ। खाइयेगा एक दिन देवता?

खाऊँगा तो अवश्य ही। जिस दिन तुम कहोगी।

तो परसो। इसी समय। चुपके-चुपके मेरे घर चले आइयेगा, चुपके-चुपके खाकर चले जाइयेगा। कोई जानेगा नही, कोई सुनेगा नहीं।

राखाल ने हँसते हुए पूछा था—चुपके-चुपके क्यो? तुम मुझे खिलाओगी इसमे दोष क्या है?

शारदा ने भी हँस कर जवाब दिया था, दोष तो खाने मे नही है देवता, दोष है चुपके-चुपके खिलाने मे। फिर भी अपने सिवा और किसी को जानने न देने का लोभ मैं छोड नही सकती।

सचमुच नही सकती, या कहना पडता है इसीलिए कह रही हो?

इतने जिरह का जवाब मैं न दे सकूँगी।

यह कह कर शारदा ने हँस कर मुँह घुमा लिया।

राखाल की छाती के निकट सिहरन हो उठी, बोला—अच्छा ऐसा ही होगा, परसों ही आऊँगा।

यह कह कर ही वह तेज कदम से बाहर निकल पडा।

वही परसो आज आ गया है। रात अधिक नही हुई है, शायद आठ बज चुके हैं। सभी काम में व्यस्त हैं, राखाल को शायद किसी ने लक्ष्य नहीं किया। रसोई का काम समाप्त करके शारदा चुपचाप बैठी हुई थी, राखाल को कमरे मे घुसते देख कर, आदर के साथ अभ्यर्थना करके उसने बिछौने पर बैठाया और कहा—मैंने सोचा था, शायद आपको रात हो जायगी अथवा शायद भूल ही जाइयेगा, आइयेगा नही।

भूल जाऊँगा, ऐसा तुमने कभी नही सोचा शारदा, तुम्हारी झूठी बात है।

शारदा ने हँसते हुए चेहरे से सिर हिलाकर कहा—हाँ, मेरी झूठी बात है। एक बार भी मैंने सोचा नही कि आप भूल जाइयेगा। खाने को ही दूँ।

दो।

हाथ के पास सब कुछ तैयार ही था आसन बिछाकर उसने खाने को दिया। परिमित आयोजन, कोई बाहुल्य नहीं था। राखाल ने खुश हो कर कहा—ठीक ऐसा ही मैंने मन ही मन चाहा था शारदा, किंतु मैंने आशा नही की थी। सोचा था और पाँच लोगों की तरह यत्नचेष्टा दिखाने की अधिकता से कितनी ज्यादती ही कर डालोगी। कितनी ही चीजे शायद फेक दी जायेगी। किंतु यह चेष्टा तुमने नही की।

शारदा ने कहा—चीजे तो मेरी नही हैं देवता। आपकी हैं। अपनी रहती तो उनसे ज्यादती कर देने मे भय नही होता। शायद करती भी—नष्ट भी होती।

अच्छी बुद्धि है तुम्हारी!

अच्छी ही तो है। नही तो आप सोचते इस स्त्री का अन्याय तो कम नही है। देना चुकाती नही, फिर भी दूसरो के रुपये से बाबूगिरी करती है।

राखाल ने हँस कर कहा—रुपये का दावा मैंने छोड दिया शारदा। तुमको अब चुकाना न पड़ेगा, सोचना भी न पड़ेगा। केवल खाता दे दो मैं वापस ले जाऊँ।

शारदा ने बनावटी गभीरता से मुँह गभीर बनाकर कहा—तो अब सब साफ रफा हो गया कहिये? इसके बाद आप भी रुपया माँग न सकेंगे, मैं भी नही। अभाव से यदि मरने लगूगी तो भी नही। ठीक?

राखाल ने कहा—तुम भारी दुष्ट हो शारदा। सोचता हूँ, जीवन तुमको छोड गया कैसे? वह क्या तुमको पहचान न सका।

शारदा ने सिर हिलाकर कहा—नही। यह मेरे भाग्य की बात है देवता, पति नही, जो फुसला कर ले आये दे नही, और जो यमराज के हाथ से छीन कर ले आये, वे भी नही। कौन जाने मैं कौन हूँ इसको कोई पहचान ही नही सकता।

थोडी देर तक रुक कर उसने कहा—मेरे पति की बात छोडो, किंतु जीवन बाबू की बात कहती हूँ। सचमुच ही मुझको वे पहचान नही सके थे। वह बुद्धि ही उनमें नही थी।

राखाल ने कौतूहली होकर प्रश्न किया—बुद्धि रहने से क्या करना उनके लिए उचित था?

उचित था, भाग न जाना। उचित था कह देना, अब मैं नही सकता शारदा, अब तुम भार ले लो।

कहने से तुम भार लेती?

लेती तो अवश्य ही। सोचते हैं भार ले सकते हैं केवल पुरुष ही। स्त्रियाँ नही ले सकती? सकती हैं। मैं दिखा देती किस तरह गृहस्थी का भार लेना पडता है।

राखाल ने कहा—इतना ही यदि जानती हो तो आत्महत्या करने क्यो गयी थी?

सोच रहे हैं आप स्त्रियाँ शायद इसीलिए आत्महत्या करती हैं? ऐसी बुद्धि ही पुरुषो की होती है। यह कहकर ही वह उसी क्षण हँसकर बोली—मैंने चेष्टा की थी आप को देख सकूँगी इसीलिए। नही तो मैं पाती नही—आज भी आप मुझसे वैसे ही अनजान बने रहते।

राखाल के मुँह से एक बात निकल रही थी, किंतु उसने उसे दबा रखा। उसको और कोई शिक्षा भले ही न मिली हो स्त्रियो के साथ सावधान होकर बातचीत करने की शिक्षा उसको मिली थी।

शारदा ने पूछा—देवता, आपने व्याह क्यो नही किया? सच ही बताइये न।

राखाल ने मुँह का कौर निगल कर कहा—तुमको यह जान लेने से क्या लाभ है?

शारदा ने कहा—क्या जानूँ, क्यो मुझे जानने की भारी इच्छा होती है। उस दिन भी मैंने पूछा था, आपने जैसा तैसा कुछ कह कर उडा दिया था, किंतु आज किसी तरह भी न सुनूँगी, आपको बताना ही पडेगा।

राखाल ने कहा—शारदा, हमारे समाज मे किसी का विवाह हो जाता है, कोई खुद विवाह करता है। मेरा नही हुआ, घर मे कोई अभिभावक कराने वाला नही था इस कारण। और खुद साहस नही किया गरीब होने के कारण। जानती ही तो हो संसार मे अपना कहने लायक मेरा कुछ भी नही है।

शारदा ने क्रोध करके कहा—यह आप की अन्यायपूर्ण बात है देवता। गरीब होने के कारण क्या किसी मनुष्य का विवाह न होगा? उसका वह अधिकार नहीं है? जगत् मे वे लोग ऐसे ही आवेंगे, जायँगे, कही भी घर न बसावेंगे? किंतु यह बात तो नही हैं, असल मे आप बहुत ही डरपोक आदमी हैं—कुछ भी साहस नही है।

राखाल ने उसकी उत्तेजना देख हँसकर अभियोग को स्वीकार कर लिया, बोला—हो सकता है कि तुम्हारा कथन ही सच है, हो सकता है कि सचमुच ही मैं डरपोक आदमी हूँ—अनिश्चित भाग्य पर खडा होने से डरता हूँ।

किंतु भाग्य तो चिरकाल ही अनिश्चित रहता है देवता, वह छोटा बडा विचार नही करता, अपने नियम के अनुसार आप ही चला जाता है।

यह भी जानता हूँ, किंतु मैं जो हूँ वही हूँ, अपने को तो बदल नही सकता शारदा।

भले ही न सकें, जो स्त्री बन कर आपके पास आवेगी, बदलने का भार तो लेगी वही—नही तो स्त्री कैसी? व्याह आपको करना ही पडेगा।

करना ही पडेगा क्या?

शारदा ने इस बार कठस्वर में अधिक जोर देकर कहा—हाँ, करनी ही पड़ेगी, नही तो किसी तरह भी मैं नही छोडूँगी। अभी आप कह रहे थे, कोई था नही, इसीलिए व्याह नही हुआ, इतने दिनों मे आपकी

वही स्वजन आ गयी हूँ मैं। उसको सिखा जाऊँगी किस तरह गरीब का घर चलता है, किस तरह वहाँ भी जो कुछ मिलना चाहिए वह मिल जाता है। कंगाल की तरह आकाश मे हाथ पसार कर केवल हाय-हाय करके मरने के ही लिए भगवान् ने गरीब को बनाया नही है यह विद्या मैं उसको दे आऊँगी।

उसकी बात सुनकर राखाल मन ही मन सचमुच ही आश्चर्य में पड गया। किंतु उसने मुँह से कहा—इस विद्या को यदि वह न सीख सके—यदि सीखना न चाहे, तब मेरे दुःख का भार कौन लेगा शारदा? किसके पास जाकर मैं अपनी नालिश सुनाऊँगा?

शारदा अवाक् होकर राखाल के चेहरे की तरफ कुछ क्षण ताकती रही, फिर बोली—किसी से भी नही। स्त्री होकर वह यह बात समझेगी नही। पति के दु.ख का अश न लेगी, बल्कि उसे बढा देगी ऐसा तो हो ही नही सकता देवता। इस पर मैं किसी तरह भी विश्वास न करूँगी।

फिर एक बार राखाल ने जीभ पर अपना शासन जमा लिया। उसने कहा नहीं कि स्त्रियो को मैंने कम नही देखा है शारदा; किंतु वे तुम्हारी तरह नही हैं। शारदा को सभी नहीं पा सकती।

जवाब न देकर राखाल ने चुपचाप भोजन मे मन लगा दिया है देखकर उसने फिर पूछा—कहाँ, तुमने तो कुछ भी नही कहा देवता?

इस बार राखाल मुँह ऊपर उठाकर हँस पड़ा, बोला—सभी प्रश्नो का उत्तर क्या तुरन्त ही मिलता है। सोचने मे समय तो लगता है।

समय तो लगता है, किंतु कितना लगता है सुनूँ तो।

यह बात आज ही कह दूँ किस तरह शारदा? जिस दिन खुद पाऊँगा तुमको भी उस दिन उत्तर बता दूँगा।

यही अच्छा—यह कहकर शारदा चुप हो रही। कमरे मे एक आदमी चुपचाप भोजन कर रहा है और एक दूसरी उसी तरह चुपचाप बैठी हुई हैं। खाना प्राय. समाप्त हो रहा था, उसी समय एक घने नि.श्वास के शब्द से चकित होकर राखाल ने आँखें ऊपर उठा कर कहा—यह क्या?

शारदा ने सलज्जभाव से मीठी हँसी हँसकर कहा—कुछ भी नही है। थोडी देर बाद उसने कहा—परसो शायद हम लोग हरिणपुर जा रहे हैं देवता।

परसो? तारक के यहाँ?

हाँ। कल है शनिवार। तारक बाबू रात की गाडी से आवेंगे, दूसरे दिन रविवार को हम लोगो को ले जायँगे।

जाने का निश्चय हुआ कैसे?

कल वे स्वय ही आये थे।

तारक आया था कलकत्ता? कहाँ, मेरे साथ तो उसने भेट नही की।

एक दिन की ही तो छुट्टी थी—दोपहर को आये फिर शाम की गाडी से लौट गये।

थोडी देर बाद उसने कहा—अच्छे आदमी हैं। वे खूब बडे विद्वान् हैं—न?

राखाल ने सम्मति देकर कहा—हाँ।

उनकी ही तरह आप भी विद्वान् क्यो नही बने देवता?

राखाल ने हाथ से अपना ललाट दिखाकर कहा—यहाँ लिखा था इसीलिए।

शारदा कहने लगी—और केवल विद्या ही नही। जैसा चेहरा है, वैसा ही शरीर का बल है। बाजार से बहुत सी चीजे कल मैंने खरीदी थीं—बहुत बडा बोझ था—जाते समय खुद ही उठा कर गाडी पर उन्होंने रख दिया। आप तो कभी नही रख सकते देवता।

राखाल ने स्वीकार किया—नही, मैं नही सकता शारदा—मेरे शरीर मे जोर नही है—मैं बहुत ही दुर्बल हूँ।

किंतु यह भी क्या भाग्य की लिखावट है? इसका अर्थ यह है कि आपने कभी चेष्टा नही की? तारक बाबू ने कहा था, चेष्टा से सब कुछ होता है। सब कुछ ससार मे मिलता है।

इस बात से राखाल ने हँसकर कहा—किंतु, यही चेष्टा ही किस चेष्टा से मिलती है उससे पूछ क्यो नही लिया? उसका जवाब शायद मेरे काम मे आ सकता था?

सुनकर शारदा भी हँस पड़ी, बोली—अच्छी बात है, मैं पूछूँगी। किंतु यह केवल आपकी बातों का घुमाव-फिराव है—असल में सच भी नहीं है, उनका जवाब भी आपके किसी काम में न लगेगा। किंतु मुझे जान पड़ता है उनके ऊपर आप नाराज हैं—ठीक है न?

राखाल साश्चर्य बोल उठा—मैं नाराज हूँ तारक पर? यह संदेह तुमको हुआ कैसे?

क्या जाने, कैसे हुआ, किंतु हो गया है इसीलिए कह दिया।

राखाल चुप हो रहा। उसने प्रतिवाद नहीं किया।

शारदा कहने लगी—उनकी इच्छा नहीं है कि अब और गाँव में रहे। एक छोटी-सी जगह में छोटे से स्कूल में लड़के पढ़ा कर जीवन नष्ट करने में वे नाराज हैं। वहाँ बड़े होने का सुअवसर नहीं है, वहाँ शक्ति हुई हैं संकुचित, बुद्धि पड़ी है सिर झुकाये। इसीलिए शहर में लौटना चाहते हैं। यहाँ ऊँचा होकर खड़ा होना उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं है।

राखाल ने आश्चर्य में पड़कर पूछा—ये बातें तुम्हारी हैं या उसकी हैं शारदा?

नहीं, मेरी नहीं हैं, उनके ही मुँह की बातें हैं। माँ से उन्होंने कहा था, मैंने सुन लिया है।

सुन कर नयी माँ ने क्या कहा?

सुन कर माँ खुश ही हुईं। बोली—उसकी तरह लड़के का गाँव में पड़ा रहना अनुचित है जिससे रहना न पड़े वही वे करेंगी।

करेंगी किस तरह?

शारदा ने कहा—यह तो कोई कठिन काम नहीं है देखता। माँ विमल बाबू से कह दें तो न हो सके ऐसा काम कोई भी नहीं है।

सुनकर राखाल उसकी तरफ ताकने लगा। अर्थात् उसने पूछना चाहा, इसका अर्थ क्या है?

शारदा समझ गयी आज तक भी राखाल कुछ भी नहीं जानता। बोली—खाना हो चुका, हाथ धोकर बैठिये, मैं बताती हूँ।

कई मिनट के बाद हाथ-मुँह धोकर वह बिछौने पर आकर बैठ गया। शारदा ने उसको जल दिया, भात दिया, उसके बाद निकट ही चटाई पर बैठकर बोली—रमणी बाबू चले गये हैं आप जानते हैं?

चले गये हैं? मुझे नहीं मालूम। कहाँ चले गये?

कहाँ चले गये हैं यह तो वे ही जानते हैं, किंतु यहाँ अब वे नहीं आते। जाना तो उनको पड़ता ही—यह भार ढोने का बल उनमें नहीं था—किंतु गये झूठमूठ का बहाना करके। इतना छोटा बनकर शारद जीवन बाबू भी मेरे पास से नहीं गये। यह कहकर उसने उस दिन से लेकर आज तक की आदि से अन्त तक सब घटनाओं का वर्णन करके कहा—यह तो होनेवाली बात थी, किंतु उपलक्ष्य बन गये आप ही। वही जो रेणु की बीमारी में दूसरे के नाम से रुपया माँगने के लिए आप आये थे और न पाकर बिना खाये ही चले गये, इस अन्याय ने माँ को तोड़ डाला, इस व्यथा को वे आज तक भी भूल न सकी। मुझको बुलाकर कहा—शारदा, राजू से आज मुझे मिलना ही चाहिये, नहीं तो मैं बचूँगी नहीं। चलो तुम मेरे साथ। जो कुछ माँ का था, गँठरी में बाँधकर साथ लेकर हम दोनों छिपे तौर से चली गयी, डेरे पर, आपके डेरे पर। उसके बाद गयी ब्रजबाबू के घर, किंतु सब खाली था, सब शून्य था। नोटिस लटक रही थी मकान किराये पर देने की, जानकारी कुछ भी नहीं हुई, समझा गया केवल किस अनजान मकान में उनकी लड़की बीमार है, दवा खरीदने के लिए रुपया नहीं है। सेवा करने के लिए आदमी नहीं है। शायद जीवित है। तो भी उपाय नहीं है वहाँ जाने का—राह का चिह्न बिलकुल मिट गया है।

माँ को मैं लेकर आ गयी। उस समय बाहर के कमरे में चल रहा था खाना-पीना, नाच-गान, आनन्द कलरव। करने को कुछ भी नहीं था, केवल बिछौने पर लेट जाने पर उनकी दोनों आँखों से अविरल आँसू गिरने लगा। सिरहाने बैठ कर चुपचाप केवल उनके माथे पर हाथ फेरने लगी। इसके सिवा उनको सान्त्वना देने का और मेरे पास क्या था?

उस दिन विमल बाबू थे साधारण परिचित आमंत्रित अतिथि। उन्हीं के प्रति सम्मान दिखाने के उद्देश्य से आनन्द का अनुष्ठान था। रमणी बाबू आये कमरे में—झिझक कर बोले—चलो सभा में। माँ ने कहा—नहीं, मैं बीमार हूँ। उन्होंने कहा—विमल बाबू करोड़पति धनवान हैं। वे मेरे मालिक हैं, खुद ही

आवेगे इसी कमरे मे भेट करने के लिए। माँ ने कहा—नही, यह नहीं हो सकता। इससे अतिथि का कितना अपमान है, यह बात माँ नही जानती थी ऐसी बात नही है, किंतु पश्चाताप से, व्यथा से, हृदय के छिपे हुए धिक्कार से तब मुँह दिखाना शायद असंभव था। किंतु दिखाना पडा। विमल बाबू खुद ही कमरे में घुस आये। प्रशात सौम्य मूर्ति, बातचीत मीठी थी, बोले—अनधिकार प्रवेश का अन्याय हो गया शायद, किंतु जाने के पहले आये बिना भी न रह सका। कैसी हैं बताइये। माँ ने कहा—अच्छी हूँ। उन्होने कहा—यह है क्रोध की बात, अच्छी आप नही है। कुछ समय पहले आपकी तस्वीर मैंने देखी है, और आज देख रहा हूँ सशरीर सामने ही। कितना भेद है यह मैं ही समझता हूँ। यह चल नही सकता, शरीर आपको अच्छा करना ही पडेगा।

चलियेगा एक बार सिंगापुर? वहाँ ही मैं रहता हूँ—समुद्र के आसपास मेरा एक मकान है। हवा का अत नहीं है, प्रकाश की भी सीमा नहीं है। पहले का शरीर फिर लौट आवेगा चलिये।

माँ ने केवल जवाब दिया—नही।

नही क्यो? मेरी प्रार्थना स्वीकार न कीजियेगा?

माँ चुप हो रहीं। जाने का उपाय तो नहीं है, लडकी तो बीमार है, पति तो गृहहीन हैं।

उस दिन रमणी बाबू शराब पी चुके थे। जल उठे, बोले—चलना ही पड़ेगा। मैं हुकुम देता हूँ जाना पडेगा तुमको।

नही, मैं जा न सकूँगी।

उसके बाद शुरू हो गया अपमान और कडी बातो का तूफान। वह कितना कटु रहा, उसे तो मैं बता न सकूँगी देवता। बवडरी हवा ने घुमा-घुमा ढेर लगा दिया जितना रहा गंदगी का कूडा-करकट प्रकट होने में देर न लगी कि माँ उस मनुष्य की स्त्री नही है—रखेली हैं। सती का नकाब पहन कर छिपे वेश मे मौजूद है एक गणिका। तब मैंने एक तरफ खडी होकर सोचा, पृथ्वी, तुम द्विधा हो जाओ। स्त्रियों की यह इतनी बडी दुर्दशा है उसके पहले कौन जानता था देवता?

राखाल पलक हीन नेत्रो से इतनी देर तक उसकी तरफ ताकता रहा इस बार क्षण मात्र के लिए उसने एक बार अपनी आँखे घुमा ली।

शारदा कहने लगी—माँ स्तब्ध होकर बैठी रही मानो पत्थर की मूर्ति हैं।

रमणी बाबू चिल्ला उठे—जाओगी या नही बताओ? सोचती क्या हो बैठकर?

माँ का कठस्वर पहले की भी अपेक्षा मीठा हो गया, बोली—सोचती क्या हूँ जानते हो मझले बाबू, सोचती हूँ, केवल बारह वर्ष तुम्हारे पास मैंने कैसे बिताये? सोती हुई क्या मैं सो रही थी। किंतु अब नहीं, मेरी नींद टूट गयी है। अब तुम मत आना इस मकान मे। फिर हम लोग परस्पर एक दूसरे का मुँह न देखने पावें।

यह कहते-कहते समूचा अंग मानो घृणा से बार-बार सिहर उठा।

रमणी बाबू इस बार पागल हो गये—बोले—यह मकान किसका है? मेरा है। तुमको मैंने नही दिया?

माँ ने कहा—यही अच्छा हुआ कि तुमने नहीं दिया। यह मकान मेरा नही है तुम्हारा ही है। कल ही छोडकर मैं चली जाऊँगी।

किंतु इस जवाब की आशा रमणी बाबू ने नही की थी। हठात् माँ के चेहरे की तरफ देखकर उनको होश हुआ—भयग्रस्त होकर तरह-तरह से उन्होंने समझाना चाहा—यह तो केवल क्रोध के आवेश की बात है, इसका कुछ भी अर्थ नही है।

माँ ने कहा—अर्थ है मझले बाबू। संबंध मेरा समाप्त हो गया, किसी भी हालत में वह लौटेगा नहीं।

रात हो चली, रमणी बाबू चले गये। जो उत्सव प्रातःकाल इतने समारोह से आरम्भ हुआ था, वह इसी तरह समाप्त होगा, ऐसा किसने सोचा था।

राखाल ने कहा—उसके बाद?

शारदा ने कहा—ये सब तो छोटी हैं, किंतु उसके बाद की ही बात बड़ी है देवता। विमल बाबू की अभ्यर्थना उस दिन बाहरी तरफ से चौपट हो गयी जरूर, किंतु आन्तरिक दिशा से वह एक और रूप में लौट आयी। माँ का अपमान उनको कितना खराब लगा—वे वे पराये—हो गये बिलकुल ही

आत्मीय। आज उनसे बढ़कर मित्र हम लोगो का नही हैं। रमणी बाबू को रुपये देकर उन्होने मकान खरीद कर माँ को वापस कर दिया, नही तो आज हम लोगों को कहाँ जाना पडता कौन जानता है।

किंतु यह खबर राखाल को खुश न कर सकी। उसका मन मानो दब गया। उसने कहा—विमल बाबू के पास अनेक रुपये हैं यह शायद उनके लिए कुछ भी नही है—नयी मा ने ले लिया कैसे? दूसरो से दान लेने की तो उनकी प्रकृति नही है।

शारदा ने कहा—शायद वे अब पराये नही हैं, हो सकता है कि लेने की अपेक्षा न लेना ही अधिक अन्याय की बात होती।

राखाल ने कहा—इस तरह समझना सीखने से सुविधा होती है जरूर, किंतु समझाना मेरे लिए बहुत ही कठिन है। यह कह कर इस बार वह जोर लगा कर हँसते-हँसते उठ खडा हुआ, बोला—रात हो गयी, अब जा रहा हूँ। तुम लोगो के लौटने पर शायद फिर मुलाकात होगी।

शारदा तडित् गति से उठ पडी और रास्ता रोक कर खडी हो गयी, बोली—नही, इस तरह हठात् मैं जाने न दूँगी।

तुम हठात् कहती हो किसे? रात तो हो गयी क्या जाऊँगा नही?

जाइयेगा जानती हूँ। किंतु माँ के साथ भेट करके भी न जाइयेगा?

मेरी उनको क्या आवश्यकता है? भेट करने की शर्त भी तो नही थी। चुपके-चुपके आकर वैसे ही चुपके-चुपके चला जाऊँगा यही तो बात थी।

शारदा ने कहा—नही, उस शर्त को अब मैं न मानूँगी। भेंट करने की आवश्यकता नही है आप कह रहे हैं? माँ का अपना भले ही न रहे आपको भी नहीं है?

राखाल ने कहा—जो आवश्यकता मुझे है वह रह गयी हृदय मे—वह कभी मिटेगी नही—किंतु बाहर की आवश्यकता मुझे नही दिखाई पडती शारदा।

दबा रखने की चेष्टा करके भी वह अपनी गूढ़ वेदनाओ को दबा न सका, कठ स्वर से वह पहचान में आ गयी। उसके चेहरो की तरफ दृष्टि रखकर शारदा बडी देर तक चुप हो रही। उसके बाद धीरे-धीरे बोली—आज एक प्रार्थना करती हूँ देवता, क्षुद्रता ईर्ष्या और जहाँ ही क्यो न रहे, आपके मन में न रहे यही इच्छा है। देवता कहकर पुकारती हूँ, देवता कह कर ही मैं चिरकाल आपको पहचान सकूँ। चलिये माँ के पास, आपके न कहने से तो उनका जाना न होगा।

मेरे न कहने से जाना न होगा। इसका क्या मतलब?

मतलब तो मैंने भी पूछा था। माँ ने कहा—लडका सयाना हो जाने पर उसकी राय लेनी पड़ती है। जानती हूँ, राजू मना न करेगा किंतु उसके हुकुम न देने से तो मैं जा न सकूँगी शारदा। यह बात सुनकर राखाल निरुत्तर स्तब्ध हो गया। छाती के अन्दर जो ज्वाला उठ पडी थी, उसको बुझाना नही चाहा, तो भी दोनो आँखे आँसू से परिपूर्ण हो गयी। उसने कहा—उनके पास सहज ही जा सकूँ ऐसा साहस आज ढूँढ़ने से मुझे नही मिलता शारदा, किंतु उनसे जाकर कह दो कल आऊँगा चरणों की धूलि लेने।

यह कहकर ही वह तेजी से बाहर चला गया। उत्तर के लिए उसने प्रतीक्षा नही की।

चौदह

तारक आया है लिवाने? आज शनिवार की रात्रि को वह यहाँ ही ठहर कर कल दोपहर की ट्रेन से नयी माँ को लेकर यात्रा करेगा। उसके साथ दो नौकर-नौकरानी और शारदा जायगी। अपने हरिणपुर के मकान को तारक अपनी असमर्थ्य के अनुसार सुव्यवस्थित कर आया है। गाँव-देहात मे नगर की सभी सुविधाएँ मिल नही सकती। फिर भी आमंत्रित अतिथियो को जिससे कष्ट न हो, उनकी अभ्यस्त जीवन-यात्रा के क्रम में यहाँ आकर व्यतिक्रम न हो इस तरफ उसकी प्रखर दृष्टि थी। आने के बाद से ही

बार-बार यही आलोचना हो रही थी। तभी माँ जितना ही कहती—मैं गृहस्थ घर की स्त्री हूँ बेटा, गाँव देहात मे मेरा जन्म हुआ है। मेरे लिए तुम चिंता मत करना, तारक उतना ही सदेह दिखाकर कहता—विश्वास करने की तबीयत नही होती माँ, जो कष्ट साधारण दस आदमियो से सहा जाता है वह आपसे भी सहा जायगा। भय लगता है कि मुँह से आप कुछ भी न कहियेगा, किंतु भीतर ही भीतर शरीर टूट जायगा।

टूटेगा नही तारक, टूटेगा नहीं।

ऐसा ही हो माँ। किंतु शरीर टूट पडे तो मैं आपको क्षमा न करूँगा यह कहे देता हूँ।

नयी माँ ने हँसकर कहा—यही ठीक है। तुम देखना मैं मोटी होकर लौटूँगी।

गाँव-देहात की कितनी ही छोटी-असुविधाओ की बात तारक के मन मे उठती है। तरह-तरह की खाद्य सामग्रिया उसने यथाशक्ति अच्छी तरह जुटा रखी है। किंतु खाना ही तो सब कुछ नही है। दो बत्तियाँ चाहिये, रात के समय चलने फिरने मे आँगन में कही भी जरा भी छाया न पड सके। एक अच्छे फिल्टर की जरूरत है, खाने के बरतनो को भी कुछ-कुछ बदल देना जरूरी है। खिडकियो के परदे झुलाकर रखे गये हैं जरूर, किंतु कुछ नये खरीद लेना आवश्यक है। नयी माँ चाय नहीं पीती यह सच है। किंतु किसी दिन इच्छा हो भी सकती है। तब वे दाग लगे टूटे-फूटे बरतनो से क्या काम चलेगा? एक सेट नया चाहिये। आह्निक-पूजा की सामग्री तो खरीदनी ही पडेगी। अच्छी धूप गाँव देहात मे नही मिलती—इसको भूल जाने से काम न चलेगा। ऐसी ही कितनी आवश्यक अनावश्यक छोटी-मोटी चीजे जुटाने के लिए वह बाजार मे चला गया है, अभी तक लौटा नही है।

बकस और बिछौनो का बाँधना-छानना चल रहा है, कल के लिए छोड रखने के पक्ष मे शारदा नही है। विमल बाबू भेंट करने के लिए आये। प्रतिदिन जैसे आते हैं वैसे ही। उन्होने पूछा—नयी बहू, कितने दिन रहोगी वहाँ?

सविता ने कहा—जितना दिन रहने को कहोगे उतने दिन। उससे एक मिनट भी अधिक नही।

किंतु इस बात को कोई सुनेगा तो इसका दूसरा अर्थ लगावेगा नयी बहू।

अर्थात् नयी बहू को नया कलक लगेगा यही तुमको भय है न? यह कह कर सविता जरा हँस पडी।

सुनकर विमल बाबू भी हँस पडे। बोले—भय तो है ही। किंतु मैं उसको होने न दूँगा।

दोगे नही ऐसा मैं जानती हूँ, और यही तो मेरा भरोसा है। इतने दिनो तक अपने ही विचार और अपनी ही बुद्धि से चलकर मैंने देख लिया, मैंने इस बार सोचा है उन लोगो को छुट्टी दे दूँगी। देकर देखूँगी क्या मिलता है और कहाँ जाकर मैं खडी होती हूँ।

विमल बाबू चुप हो रहे। सविता कहने लगी—तुम शायद सोच रहे हो हठात्—यह बुद्धि किसने दी? किसी ने नही दी। उस दिन तुम चले गये, बरामदे मे खडे होकर मैंने देखा, रास्ते के मोड पर तुम्हारी गाडी अदृश्य हो गयी, आँखो का काम समाप्त हो गया, किंतु मन में तुम्हारा पीछा किया। साथ-साथ कितनी दूरी तक वह चला गया, इसका ठिकाना नही है। वापस आकर कमरे मे बैठ गयी—अकेली मन मे बचपन से लेकर वही उस दिन तक कितने ही विचार आये और गये, एकाएक एक समय मेरा मन क्या बोल उठा जानते हो? उसने कहा—सविता, यौवन गया, सौन्दर्य तो नही है। तो भी यदि वे प्यार कर चुके हो तो वह उनका मोह नही है, वह सत्य है। सत्य कभी वंचना नही करता—उससे तुमको भय नही है। जो स्वय मिथ्या नही है वह किसी तरह भी तुम्हारे माथे पर अकल्याण न ला देगा—उसको विश्वास करो।

विमल बाबू ने कहा—तुमको सचमुच ही प्यार कर सकता हूँ इस पर तुम विश्वास कर सकती हो नयी बहू?

हाँ करती हूँ। नहीं तो तुमको कोई जरूरत नही थी। मुझमे तो अब सौन्दर्य नही है।

विमल बाबू ने हँसकर कहा—ऐसा भी तो हो सकता है कि मेरी दृष्टि मे तुम्हारे सौन्दर्य की सीमा नही है। फिर भी, ससार मे मैंने सौन्दर्य कम नही देखा है नयी बहू।

सुनकर सविता भी हँस पडी, बोली—आश्चर्यजनक आदमी हो तुम। इसको छोड़ कर और क्या कहूँ तुमको।

विमल बाबू ने कहा—तुम खुद भी कम आश्चर्य नही हो नयी बहू। यही तो उस दिन तुम इस तरह

धोखा खा गयी, इतनी गाढ़ी चोट खा गयी, फिर भी किस तरह इतनी जल्दी तुमने मेरे ऊपर विश्वास किया, यही बात मैं सोचता हूँ।

सविता ने कहा—चोट तो मुझे लगी है जरूर, किंतु धोखे मे नही पडी हूँ। कुहरे की आड में एक ही दशा में दिन बीतते जा रहे थे यही तुम लोगो ने देखा है, शायद इसी तरह चिर दिन बीत जाते—आजीवन सजा पाने वाले कैदी का जीवन जिस तरह बीत जाता है जेलखाने में, किंतु एकाएक आ गया तूफान, कुहरा उड गया, जेल की दीवार टूट गयी। बाहर निकल आयी अनजान रास्ते पर, किंतु कहाँ थे तुम अपरिचित मित्र जिसने हाथ बढ़ा दिया। इसको क्या धोखा खाना कहते हैं? किंतु क्या कह कर तुमको पुकारूँ बताओ तो?

मेरा नाम शायद तुम लेना नही चाहती।

नही, मुँह में बाधा पडती है।

विमल बने कहा—बचपन में मेरा एक और नाम था, नानीजी का रखा हुआ। उसका इतिहास है। किंतु वह नाम तो तुम्हारे मुँह मे और बाधा देगी नयी बहू।

क्या है बताओ तो, देखूँ यदि मन को अच्छा मालूम हो।

विमल बाबू ने हँस कर कहा—मुहल्ले में वे लोग मुझको दयामय कह कर पुकारते थे।

सविता ने कहा—नाम का इतिहास मैं जानना नहीं चाहती। उसे मैं बना लूँगी। बहुत ही पसंद आया है, यह नाम—अब से मैं भी पुकारूँगी दयामय कह कर।

विमल बाबू ने कहा—ऐसा ही करना। किंतु मैंने जो पूछा था उसका तो उत्तर तुमने नही दिया। तुमने क्या पूछा था दयामय?

इतना शीघ्र मुझको तुमने प्यार किया किस तरह?

सविता ने क्षणभर उनके चेहरे की तरफ देखकर कहा—प्यार करती हूँ यह बात तो मैंने नही कही। मैंने कहा है तुम मित्र हो, तुमको विश्वास करती हूँ। मैंने कहा है, जो प्यार करता है उसके हाथ से कभी अकल्याण नही आता।

दोनों ही क्षणभर के लिए स्तब्ध हो रहे। सविता ने कुँठित स्वर मे कहा—किंतु मेरी बात सुन कर तुम चुप हो रहे? कुछ भी तो तुमने नही कहा?

विमल बाबू ने प्रत्युत्तर में जरा सूखी हँसी हँस कर कहा—कहने की कुछ भी बात नही है नयी बहू—तुमने ठीक बात ही कही है। प्यार वाले धन के लिए कोई भी अपने हाथ से अमगल लाकर नही दे सकता। उसका अपना दु.ख चाहे जितना ही क्यो न हो उसको सहना ही पडेगा।

सविता ने कहा—केवल सह सकना ही तो नही है। तुमको दु.ख मिलने से तो मुझे भी मिलेगी ही।

विमल बाबू ने फिर जरा हँस कर कहा—मिलना उचित नही है नयी बहू, उस समय तुम यह बात सोच लेना कि अकल्याण का दुःख इससे भी अधिक होता है।

यह बात तो तुम्हारे लिए भी लागू है दयामय।

नही, लागू नही है। इसका कारण, मेरे मन के अन्दर तुम कल्याण की मूर्ति हो, किंतु तुम्हारे लिए मैं ऐसा नहीं हूँ। हो भी नही सकता। किंतु इसके लिए मैं तुमको दोष भी नही देता, अभिमान भी नही करता, जानता हूँ तरह-तरह के कारणों से जगत् ऐसा ही है। तुम्हारे आ जाने से मेरे विगत दिनों की त्रुटि दूर हो जाती, भविष्य हो जाता उज्ज्वल, मधुर शांत; उसका कल्याण फैल जाता अनेक दिशाओं में—मुझको बना देती बहुत बड़ा—

किंतु मैं खडी होऊँगी किस जगह पर?

तुम खुद खडी होगी किस जगह? विमल बाबू बिलकुल ही स्तब्ध हो गये। कुछ क्षण स्तब्ध रहकर वे धीरे-धीरे बोले—यह भी समझ सकता हूँ नयी बहू। तुम हो जाओगी दूसरों के आँखों में छोटी, वे लोग कहेंगे तुमको लोभी, कहेंगे—और भी जो सब बातें, उनके बारे में सोचने मे भी मुझे लज्जा आती है, तो भी उपलब्ध विश्वास से जानता हूँ एक बात भी उसकी सच्ची नही है, उससे तुम बहुत ही दूर हो—बहुत ही ऊपर हो।

सविता की आँखें सजल हो चली। ऐसे समय मे भी जो मनुष्य झूठ न बोल सका, उसके प्रति श्रद्धा

और कृतज्ञता से परिपूर्ण होकर उन्होने पूछा—दयामय, मैं लाऊँगी तुम्हारे जीवन मे परिपूर्ण कल्याण और तुम ला दोगे मुझको वैसे ही परिपूर्ण अकल्याण—ऐसी विपरीत घटना किस तरह सच होती है।

क्या है इसका उत्तर?

विमल बाबू ने कहा—इसका उत्तर मुझे देना नही है नयी बहू। मेरे लिए यही है मेरा विश्वास। तुम्हारे लिए भी यदि ऐसा ही विश्वास कभी सच होकर दिखाई पडे तो उसी समय केवल मन का द्वन्द्व मिट जायगा, इसका उत्तर पाओगी—उसके पहले नही।

सविता ने कहा—उत्तर यदि कभी न मिले, सदेह यदि न मिटे, तुम्हारा विश्वास और मेरा विश्वास यदि चिर दिन ऐसे ही उतरे रास्ते से चलते रहे, तो तुम मेरा भार ढोते फिरोगे?

विमल बाबू ने कहा—यदि उलटे रास्ते से ही चलने लगे, तो भी तुमको मैं दोष न दूँगा। तुम्हारा भार आज मेरे ऐश्वर्य की प्रचुरता है, मेरे आनन्द का सेवा है। किंतु यह ऐश्वर्य यदि किसी समय थकावट का बोझ बनकर दिखाई पडे तो उस दिन तुमसे मैं छुट्टी माँगूगा। आवेदन मजूर करो, मित्र की ही तरह विदाई लेकर जाऊँगा—कही भी मालिन्य का चिह्न मात्र भी रखकर न जाऊँगा। तुमसे मैं यही शपथ कर रहा हूँ नयी बहू।

सविता उनके मुँह की तरफ देखकर स्थिर होकर बैठी रहीं। दो तीन मिनट के बाद विमल बाबू ने मलीन हँसी हँस कर कहा—क्या सोच रही हो बताओ तो?

सोच रही हूँ ससार मे ऐसी भयानक समस्या का उद्भव होता है क्यो? एक का प्यार जहाँ असीम है, दूसरा उसको ग्रहण करने का रास्ता ढूँढ़ने पर क्यो नही पाता?

विमल बाबू ने हँसकर कहा—ढूँढ़ना सच्चा होने पर ही रास्ता निगाह मे पडता है, उसके पहले नही। नही तो अधकार मे केवल ही टटोल-टटोल कर मरना पडता है। ससार मे यह परीक्षा मुझे बहुत बार देनी पड़ी है।

तुमको रास्ते का पता चल गया था?

हाँ। प्रार्थना मे जहाँ कपटता नही थी, वहाँ ही मुझे पता चल गया था।

इसका क्या अर्थ?

अर्थ यह है कि, जिस कामना मे दुबिधा है, दुर्बलता नही है उसे नामजूर करने शक्ति कही भी नही है। इसका ही एक नाम है विश्वास। सच्चा विश्वास ससार मे व्यर्थ नही होता नयी बहू?

सविता ने कहा—मैं जो कुछ भी क्यों न करूँ दयामय, तुम्हारी अपनी चाह मे तो छल नही है, तो फिर वह क्यो मेरे लिए व्यर्थ हो गया?

विमल बाबू ने कहा—व्यर्थ नही हुआ है नयी बहू। तुमको मैंने बडी बनाकर माना चाहा था—यह मै पा गया। तुमको पूर्ण रूप से मैंने नही पाया यह मैं मानता हूँ। किंतु अपने जिस विश्वास को मैंने आज भी दृढ़ भाव से पकड रखा है, लोभ के कारण, दुर्बलता के कारण उसको यदि छोटा न करूँ तो मेरी कामना एक दिन पूरी जरूर होगी? उस दिन तुमको परिपूर्ण रूप मे ही मैं पाऊँगा। मुझे कोई भी वंचित न कर सकेगा—तुम भी नही।

सविता चुपचाप ताकती रही। जो असभव है किस तरह वह एक दिन सभव होगा इसको वे सोच कर समझ न सकी। दयामय के पास झुककर छाती टेककर चलने का रास्ता है, किंतु स्वच्छन्दता से सीधा होकर चलने का रास्ता कहाँ है?

शारदा ने आकर कहा—राखाल बाबू आ गये हैं माँ।

राजू? कहाँ है वह?

यहीं तो मैं हूँ—कहकर राखाल ने प्रवेश किया। उनके पैरो की धूलि लेकर उसने प्रणाम किया, बाद को विमल बाबू को नमस्कार करके फर्श पर बिछे गलीचे पर जा बैठा।

सविता ने कहा—तारक आया है मुझे ले जाने। कल जाऊँगी हम लोग हरिणपुर के मकान पर। तुमने सुना है राज।

राखाल ने कहा—शारदा के मुँह मे हठात् मैंने सुन लिया है माँ।

हठात् तो नही बटा। उसको तो मैंने तुम्हारी राय लेने को कहा था।

मेरी राय क्या आपको शारदा ने बता दी है?

सविता ने कहा—नही। किंतु जानती हूँ वह तुम्हारा मित्र है, उसके पास हमको जाने में कोई आपत्ति न होगी।

राखाल पहले तो चुप हो रहा। उसके बाद बोला—मेरे मतामत की जरूरत नही है माँ। वह आप लोगो का मुझसे बढकर मित्र है।

इस बात से सविता ने आश्चर्य मे पड कर पूछा—इसका क्या माने है राजू?

राखाल ने कहा—सब बातो का माने खोल कर बताना नही चाहिये माँ, मुँह की भाषा मे उसका अर्थ विकृत हो उठता है। उसे मैं बताऊँगा नही, किंतु मेरे मतामत पर ही यदि आप लोगों का जाना या न जाना निर्भर करता हो तो आप लोगो का जाना न होगा। मेरी राय नही है।

सविता ने अवाक् होकर कहा—सब पक्का हो गया है राजू। मेरी स्वीकृति पाकर तारक चीज-सामान खरीदने दूकान पर गया है, हम लोगो ही के लिए अपने गाँव मे वह सारी व्यवस्था कर आया है—हम लोगो को जिससे कष्ट न होने पावे—अब तो गये बिना उपाय नही है बेटा?

राखाल ने सूखी हँसी हँसकर कहा—उपाय नही है इसे मैं जानता हूँ। मेरा मत लेकर आप कर्तव्य निर्धारण करेंगी, यह उचित भी नही है, जरूरी भी नही है। कल शारदा ने कहा था, आप ने शायद उनसे कहा है लडका बडा हो जाने पर उनका मत लेकर काम करना पडता है। आप के मुँह की यह बात मैं चिरदिन कृतज्ञता के साथ याद रखूँगा, किंतु जिस लडके के केवल दूसरों की बेगारी खटते-खटते ही सब दिन कटते रहे हैं, उसकी उमर कभी बढती नही। दूसरों के लिए भी नही, माँ के लिए भी नही। मैं आपका वही लडका हूँ नयी माँ।

सविता मुँह झुकाये चुपचाप बैठी रही। राखाल ने कहा—मन मे आप दुःखी मत होइये नयी माँ, लोगो की अवज्ञा के नीचे लोगो का भार ढोते फिरना मेरा भाग्य है। आप के चले जाने के बाद मुझे यदि कुछ करने का हो तो आदेश दे जाइये, माँ की आज्ञा की मैं किसी भी कारण अवहेलना नही करूँगा।

शारदा चुप रह कर सुन रही थी, एकाएक वह मानो और सह न सकी, बोल उठी—आप बहुतों का बहुत कुछ ही करते हैं, किंतु इस प्रकार माँ को चिकोटी काटना उचित नही है।

सविता ने उसको आँख के इशारे से मना करके कहा—शारदा, कहने दो, कहने दो राजू को, ऐसी बात मेरे मुँह से कभी न निकलेगी।

राखाल ने कहा—इसका अर्थ है आप शारदा नही हैं माँ। शारदाओं को मैंने बहुत देखा है। वे लोग कडी बात का अवसर मिलने पर उसे छोड नही सकते, उससे कृतज्ञता का उनका भार हलका हो जाता है। सोचती हैं लेन-देन चुकता हो गया।

सविता ने सिर हिलाकर कहा—नही बेटा, उसके प्रति तुमने बहुत ही अविचार कर दिया। संसार मे शारदा एक ही है, अनेक नही हैं राजू।

शारदा माथा झुकाये बैठी थी, चुपचाप उठकर चली गयी।

सविता ने मीठे स्वर मे पूछा—तारक के साथ क्या तुम्हारा झगडा हुआ है राजू।

नही माँ, उसके साथ मेरी मुलाकात ही नही हुई है।

हम लोगो को लिवा जाने की बात उसने तुमको नही बतायी?

किसी दिन नही। शारदा कहती है मेरे मकान पर जाने का वह समय ही नही पाता। किंतु अब नही माँ मेरे जाने का समय हो गया, मैं अब उठता हूँ। यह कहकर राखाल उठ खडा हुआ। विमल बाबू ने उस समय तक एक भी बात नही कही थी, इस बार उन्होने बात कही। सविता को लक्ष्य करके उन्होने कहा—अपने लडके के साथ मेरा परिचय करा न दोगी नयी बहू? ऐसे ही अपरिचित हम दोनों बने रहेंगे।

सविता ने कहा—वह मेरा लडका है यही उसका परिचय है। किंतु तुम्हारा परिचय उससे मैं क्या दूँ दयामय, मैं खुद भी तो अभी तक नही जानती।

जब जान सकोगी तब दोगी?

दूंगी। उससे छिपाने लायक मेरी छिपी बात कुछ भी नही है। अपने सब दोषगुणों को लेकर ही मैं उसकी नयी माँ हूँ।

राखाल ने कहा—लडकपन मे जब कोई भी मेरा अपना नही रहा, तब मुझे इन्होंने आश्रय दिया था, पाल पोस कर आदमी बनाया था, मा कह कर पुकारना सिखाया था, तब से मैं इन्हे माँ कह कर ही जानता हूँ। चिरदिन माँ कह कर ही जानूँगा। यह कह कर झुककर उसने फिर एक बार मां के चरणो की धूलि ले ली।

विमल बाबू ने कहा—तारक के यहाँ तुम्हारी नयी माँ जाना चाहती हैं कुछ दिनो के लिए। यहाँ अच्छा नही लग रहा है इसी कारण। मैं कहता हूँ जाना ही अच्छा है। सम्मति है?

राखाल ने हँसकर कहा—है।

सच कहो राजू। क्योंकि तुम्हारी असम्मति से उनका जाना न होगा मैं मना करूँगा।

आपकी मनाही वे सुनेगी?

कम से कम अपने आप से नयी बहू ने यही प्रतिज्ञा की है। यह कह कर विमल बाबू जरा हँस पडे।

सविता ने उसी क्षण स्वीकार करके कहा—हाँ, यही प्रतिज्ञा मैंने की है। तुम्हारे आदेश का मैं लघन न करूँगी।

सुनकर राखाल की आँखो की दृष्टि क्षण भर के लिए रूखी हो उठी। कितु उसी क्षण अपने को शात करके सहज स्वर से उसने कहा—अच्छी बात है, आप लोगो की समझ मे जो अच्छा जान पडे कीजिये, मेरी आपत्ति नही है नयी माँ। यह कह कर वह और किसी प्रश्न के पहले ही नीचे उतर गया।

नीचे रास्ते के एक तरफ खड़ी थी शारदा। उसने सामने आकर कहा—एक बार मेरे कमरे मे चलना होगा देवता।

क्यो?

शारदाओ को बहुत देखा है आप कह चुके हैं। आपसे उन लोगो का परिचय लूँगी।

क्या होगा लेकर?

स्त्रियो के प्रति आपके मन मे भयानक घृणा है। कृतज्ञता का ऋण वे लोग किस चीज से चुकाती हैं आपके पास बैठकर उसकी कहानी सुनूँगी।

राखाल ने कहा—कहानी कहने का समय मेरे पास नही है, मुझे काम है।

शारदा ने कहा—मुझे भी काम है। कितु मेरे कमरे मे यदि आज न चलियेगा, कल सुन लीजियेगा शारदाएँ वगैरह अनेक नही थी, ससार मे केवल एक ही थी।

उसके कठस्वर के आकस्मिक परिवर्तन से राखाल स्तब्ध हो गया। उसे याद पड गयी वही प्रथम दिन की बात जिस दिन शारदा प्राण देने जा रही थी।

शारदा ने पूछा—बताइये क्या कीजियेगा?

राखाल ने कहा—रहने दो कामकाज। चलो तुम्हारे कमरे मे जायँ।

पन्द्रह

शारदा के कमरे मे जाकर राखाल बिछौने पर बैठ गया उसने पूछा—बुलाकर ले आयी हो क्यो?

शारदा ने कहा—जाने के पहले और एक बार आप के पैरो की धूलि पडेगी इसीलिए।

धूलि तो पड गयी अब तो उठूँ?

इतनी हडबड़ी? दो चार बाते कहने का भी समय न दीजियेगा?

दो-चार बातो को तो अनेक बार कह चुकी हो शारदा। तुम कहोगी देवता, आप ने मेरी प्राण-रक्षा की, बीस-पचीस रुपये देकर चावल-दाल खाने को दिये हैं, नयी माँ से कह कर बाकी किराया माफ करा दिया है, आपके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। जितने दिन बचूँगी आप का ऋण मैं चुका न सकूँगा। इसमे नया कुछ भी नही हैं। तो भी, यदि जाने के पहले फिर एक बार कुछ कहना चाहती हो तो कह डालो। कितु जरा झटपट

करो। मेरे पास ज्यादा समय नहीं है?

शारदा ने कहा—बातें नयी भले ही न हों, बहुत ही मीठी हैं। जितनी बार सुनी जाती हैं पुरानी नही होतीं—ठीक है न देवता?

हाँ ठीक है। मीठी बात तुम्हारे मुँह से और भी मीठी सुनाई पडती हैं, मैं यह अस्वीकार नही करता। समय रहने से बैठा-बैठा सुनता रहता। किंतु समय हाथ में नहीं है। इसी समय जाना पडेगा।

जाकर रसोई पकानी पडेगी।

हाँ।

उसके बाद खाकर सो रहना पडेगा।

हाँ।

उसके बाद आँखों मे नीद न आवेगी, बिछौने पर पड कर सारी रात छटपटाना पडेगा-न देवता?

यह बात तुमसे किसने कही।

किसने कही जानते हैं। जो शारदा ससार में केवल एक ही है अनेक नही है—उसी ने।

राखाल ने कहा—तो इस हालत में उस शारदा ने भी तुमसे गलत बताया है। मैंने ऐसा कोई भी अपराध नहीं किया है कि दुश्चिन्ता से बिछौन पर पड कर छटपटना पड़ना है। मैं लेट जाता हूँ और सो जाता हूँ। मेरे लिए तुमको सोचना न पडेगा।

शारदा ने कहा—अच्छी बात है, अब न सोचूँगी। आप की ही बात सुनूँगी, किन्तु मैंने ही क्या अपराध किया हैं जिसके कारण सो नही सकती। सारी रात जाग कर बिताती हूँ।

यह तो तुम ही जानती हो?

आप नही जानते?

नही। दुनिया मे कहाँ किसकी नीद मे बाधा पड रही है, यह जान लेना सभव भी नही है, इसके लिए समय भी नही है।

समय नही है—न? यह कह कर शारदा क्षण काल चुप रहकर हठात् हँस पडी, बोली—अच्छा देवता, आप इतने डरपोक आदमी क्यों हैं? क्यो कहते नही; शारदा, हरिणपुर तुम्हारा जाना न होगा। नयी माँ की इच्छा हो तो वे जायं तुम न जाओगी। तुमको मनाही रही। इतना ही कह देना क्या बहुत ही कठिन है?

इसके उत्तर मे क्या कहना चाहिये राखाल सोचने पर भी समझ न सका, इसी कारण कुछ-कुछ हतबुद्धि-सा ही होकर उसने कहा—तुम लोगो ने निश्चय किया है जाने का, निरर्थक ही मैं मना करने जाऊँगा किसलिए?

शारदा ने कहा—केवल इसीलिए, कि आपकी इच्छा नही है कि मैं जाऊँ। यही तो सबसे बडा कारण है देवता।

नही, किसी एक के खयाल को ही कारण नही कहा जाता। तुमको मना करने का मुझे अधिकार नही है।

शारदा ने कहा—भले ही हो खयाल, वही है आपका अधिकार, बोलिये मुँह खोलकर शारदा, तुम हरिणपुर जा न सकोगी।

राखाल ने सिर हिलाकर जवाब दिया—नही अनुचित अधिकार मैं किसी पर नही चलाता।

क्रोध करके तो नही कह रहे हैं?

नही, मैं सच ही कह रहा हूँ।

शारदा उसके चेहरे की तरफ ताकती रही। उसके बाद बोली नही, यह सच नही है—किसी तरह भी सच नही है, मुझको मना कर दीजिये देवता, मैं माँ से जाकर कह आऊँ मेरा हरिणपुर जाना न होगा, देवता ने मना किया है। इसके भी प्रत्युत्तर मे राखाल ने मूढ़ की तरह जवाब दिया—नही,

तुमको मैं मना न कर सकूँगा। यह अधिकार मुझे नही है।

शारदा ने कहा—था अधिकार। किंतु अब यही बात कहूँगी कि हमेशा केवल दूसरों का हुकुम मानते-मानते आज आप अपनी हुकुम करने की शक्ति खो चुके हैं? अब विश्वास टल गया है, भरोसा चला गया है अपने ऊपर से। जो मनुष्य दावा करने में डरता है, दूसरों का दावा मिटाने में ही उसका

जीवन बीत जाता है। शुभाकांक्षिणी शारदा की इस बात को आप याद रखियेगा।

यह तुम किसको कह रही हो! मुझको?

हाँ, आपको ही।

राखाल ने कहा, हो सका तो याद रखूँगा। किंतु पूछता हूँ तुमको मना करने मे मेरा लाभ क्या है? इसे यदि तुम समझा सको तो अब भी तुमको सचमुच ही मना कर सकता हूँ।

शारदा ने कहा—स्वेच्छा से आप की अधीनता स्वीकार करने को एक व्यक्ति भी ससार मे मौजूद है, इस सत्य को जान लेने की भी इच्छा क्या आपको नहीं होती?

जानकर क्या होगा?

शारदा ने उसके चेहरे की तरफ क्षणभर देखकर कहा—शायद कुछ भी न होगा। हो सकता है कि मेरा भी समय आ गया है समझ लेने का। फिर भी, एक बात मैं कहती हूँ देवता, अकारण ही निर्मम हो सकना ही पौरुष नही है।

राखाल ने जवाब दिया—यह मैं भी जानता हूँ। किंतु अकारण अति कोमलता भी मेरी प्रकृति नही है। यह कहकर उसके कुछ क्षण स्थिर रहकर अधिकतर रूखे स्वर से कहा—देखो शारदा अस्पताल में जिस दिन तुम्हारी चेतना लौट आयी, तुम अच्छी हो गयी, उस दिन की कुछ भी बात याद पड़ती है? तुमने छल करके बताया था कि तुम अल्प शिक्षिता हो, सहज सरल गाँव-देहात की लडकी हो, गरीब शिष्ट घराने की कुलवधू हो। तुमने कहा था, तुम्हारे न बचाने से मेरे बचने का उपाय नही है। तुमको अविश्वास मैंने नही किया। उस दिन मेरी सामर्थ्य मे जो कुछ था, उसे मैंने अस्वीकार भी नही किया। किंतु आज वह सब तुम्हारे लिए हँसी की चीजे हैं। उनको अवहेला से फेंक दिया! आज आये हैं विमल बाबू—ऐश्वर्य का अन्त नही है जिनका—आया है तारक, आयी हैं नयी माँ। उस दिन का कुछ भी बाकी नहीं है। इस कपटाचरण की क्या जरूरत थी बताओ तो?

अभियोग सुनकर शारदा आश्चर्य से अभिभूत हो गयी। उसके बाद धीरे-धीरे बोली—मेरी बातों में झुठाई थी, किंतु कपटाचरण नही था देवता? वह झुठाई भी केवल स्त्री होने के कारण थी। उसका लज्जा छिपाने के लिए। इसे ही जब कि मेरा स्वभाव समझ कर आपने भी भूल कर डाली, तब मैं और भीख न माँगूगी। कल माँ ने मुझे कुछ रुपया दिया है वस्तुएँ खरीदने के लिए। मुझे किंतु जरूरत नही है। जो रुपये आपने मुझे दिये थे उनको क्या लौटा दूँ?

राखाल ने कठोर बन कहा—तुम्हारी इच्छा। किंतु पा जाने से मुझे सुविधा ही होगी। मैं बडा आदमी नही हूँ शारदा, खूब ही गरीब हूँ, यह तुम जानती हो।

शारदा ने तकिये के नीचे मे रूमाल मे बँधा रुपये निकाल कर गिनकर राखाल के हाथ मे देकर कहा—तो आप यह ले ले? किंतु रुपया देने से आप का ऋण शोध हो जायगा, इतनी नासमझ मैं नही हूँ। फिर भी बिना अपराध के जो सजा आपने मुझे दी, वह अन्याय किसी एक दिन आप को बिंधेगा। किसी तरह भी छुटकारा न पाइयेगा यह आप से कहे देती हूँ।

राखाल ने कहा—और कुछ कहोगी?

नही।

तो अब जाता हूँ। रात हो गयी।

प्रणाम करते समय हठात् शारदा उसके पैरों पर माथा रखकर रो पडी। उसके बाद खुद ही आँखों को पोछ कर उठ खडी हुई।

जा रहा हूँ।

शारदा ने कहा—जाइये।

रास्ते मे निकल कर राखाल यह समझ न सका कि अभी पुरुष के लिए अयोग्य जो सब मान-अभिमान का अभिनय मैं पूरा कर आया, वह किसलिए। किसलिए यह क्रोध बिगाड? क्या किया है शारदा ने? उसका अपराध बतलाना भी कठिन है, उसकी अपनी जलन कहाँ है अगुली से बतलाना भी वैसा ही कठिन है। राखाल का हृदय आघात करके अपने को बार-बार कहने लगा—शारदा है शिष्ट भली, शारदा है बुद्धिमती, शारदा की तरह सौन्दर्य सहज में निगाह मे नही पडता। शारदा उसके प्रति

कृतज्ञ है यह तो बहुत बार बहुत तरह से बतलाना उसने बाकी नही रखा है। पैरो पर माथा रखकर आज भी बताने में उसने त्रुटि नही की है। और भी कोई बात वह आभास से प्रकट करती है शायद, उसका अर्थ केवल कृतज्ञता ही नही है, शायद वह और भी बडा है और भी गभीर है, शायद वह है पेम। राखाल के मन के अन्दर सदेह उथल पडा। बहुत दिन बहुत सी स्त्रियो के ससर्ग मे बहुत प्रकार से रह आया है। कितु किसी ने किसी दिन उसको प्यार किया हो, यह वस्तु ऐसी ही अकल्पित है कि यह आज प्राय असभव के कोठे पर जा पहुँचा है। आज यही वस्तु क्या शारदा उसको देना चाहती है? कितु उसे वह ग्रहण करेगा किम लज्जा से? शारदा है विधवा, शारदा है निन्दिता, कुल त्याग करने वाली, इस प्रेम मे न तो गौरव है *और न तो सम्मान ही है। अपने को वह समझा कर कहने लगा मैं गरीब होने के ही कारण तो कंगाल वृत्ति* अपना नही सकता। अन्न का अभाव हो गया है इसीलिए राह का जूठा उठाकर मुँह मे डालूँगा किस तरह? यह नही हो सकता, यह तो असभव है।

तथापि छाती के अन्दर मानो कैसा करने लगता है। वहाँ कौन बार-बार कहता है बाहर की घटना तो ऐसी ही है जरूर कितु जिस हृदय का परिचय उस प्रथम दिन से वह निरन्तर पाता रहा है, उस विचार की धारा क्या इस कानून की पुस्तक खोलने से मिलेगी? जिन स्त्रियो के सम्पर्क मे उसके इतने दिन बीत गए, वहाँ कहाँ है शारदा की तुलना? अकपट नारीत्व की इतनी बड़ी महिमा कहाँ ढूँढ़ने पर मिलेगी! फिर भी उसी शारदा को वह आज किस तरह अपमानित कर आया!

घर लौट कर उसने देखा नौकरानी अब तक भी मौजूद है। कुछ आश्चर्य मे पड कर ही उसने पूछा—तुम गयी नही अभी तक?

दासी ने कहा—नही बच्चा, उस वक्त तुम्हारा कुछ भी खाना नही हुआ, इस वक्त सब मैंने जुटा रखा है। पाव भर मास भी खरीद लायी हूँ—सब ठीक-ठाक करके ही जाऊँगी।

सबेरे सचमुच ही खाना नही हुआ था, मक्खी गिर जाने से विघ्न पड गया था। कितु राखाल को वह [illegible] थी। इसके पहले भी ऐसी ही स्थिति कितने दिन हुई है, तब सबेरे के अल्प आहार की पूर्ति रात्रि के भूरि भोजन के आयोजन से इसी दासी ने की है। यह कोई नयी बात नही थी, फिर भी आज उसकी बात सुनकर राखाल की आँखे आँसू से भाराक्रात हो गयी। उसने कहा—तुम बूढ़ी हो गयी हो नानी कितु मर जाने पर मेरी कैसी दुर्दशा होगी बताओ तो! इस जगत् मे कोई और नही है जो तुम्हारे दादा बाबू की देखभाल करेगी।

इस स्नेह के आवेदन से दासी की आँखो मे भी आँसू आ गये। उसने कहा—सच्ची बात ही तो है। बूढ़ी हो गयी हूँ मरूँगी नही? कितनी ही दिन मैंने कहा है तुमको, कितु तुम सुनते नही—हँस कर उडा देते हो। इस बार और न सुनूँगी, ब्याह तुमको करना ही पडेगा। दो दिन बची रहकर आँखो से देख जाऊँगी, नही तो मरने पर भी सुख न पाऊँगी दादा।

राखाल ने हँसकर कहा—तब तो उस सुख की आशा नही है नानी, मेरे घर-द्वार नही हैं, बाप माँ अपना कोई आदमी नही हैं, बडे वेतन की नौकरी नही है। मुझे लडकी देगा कौन?

वाह! लडकी की चिता? एक बार मुँह खोलकर कह देने से कितने ही सबध आकर हाजिर हो जायँगे।

तुम एक ठीक कर दो न नानी।

मैं क्या कर न सकूँगी समझते हो। मेरे हाथ मे आदमी हैं उसको कल ही काम मे लगा दे सकती हूँ।

राखाल हँसने लगा। बोला—मानता हूँ कि तुमने ऐसा कर डाला, कितु बहू आकर खायगी क्या बताओ तो हवा खायगी क्या?

दासी ने क्रोधित होकर जवाब दिया, हवा खाने जायगी किस दु ख से दादा, गृहस्थ घर मे सभी जो खाते हैं वह भी वही खायगी। तुमको सोचना न पडेगा, प्राण दिये हैं जिन्होने आहार भी देंगे वे ही।

वह व्यवस्था पहले थी नानी, अब वह नही है। यह कहकर राखाल ने फिर हँसकर रसोई के धधे मे मन लगाया। उसकी रसोई पकती थी कूकर पर। शौकीन आदमी है। छोटे, बडे, मझोले तरह-तरह के आकारो के कूकर थे। आज रसोई चढ़ा दी बडे मे। तीन-चार बर्तन तरह-तरह की तरकारियाँ और मास। अनेक दिनो से यह काम कर के दासी पक्की हो गयी है, कुछ भी बताना नही पडता।

चौका लगा कर, खाने के बर्तनो को सजाकर घर लौटने के पहले दासी माथे की शपथ दिला गयी

भर पेट खाने के लिए। बोली—सबेरे आकर यदि देखूँगी सब खा नही गये हो, पडा हुआ है, तो क्रोध करूँगी कह कर जा रही हूँ।

राखाल ने कहा—ऐसा ही होगा नानी, भर पेट ही खाऊँगा और जो भी करूँ तुमको दु:ख न दूँगा।

दासी के चले जाने पर राखाल आरामकुर्सी पर लेट गया। खाना तैयार होने मे प्राय: दो घटे की देर थी। इस समय को बिताने के लिए उसने एक पुस्तक उठा ली, किंतु किसी तरह भी वह अपनी मन उसमे न लगा सका, याद पडने लगी शारदा। याद पड़ने लगी अपनी अकारण अधीरता। अपने को वह सयत न रख सका। हृदय का क्रोध और क्षोभ की ज्वाला भद्दी रूढ़ता मे बार-बार फट कर बाहर निकल पड़ी है—बच्चो की तरह बुद्धिमती शारदा को कुछ भी समझना बाकी नही है। इस तरह अपने को पकड मे लाने की क्या आवश्यकता थी? क्या आवश्यकता थी अपने को छोटा बनाने की? मन ही मन लज्जा की कोई सीमा नही रही, इच्छा हुई कि आज की सभी घटनाओ को यदि मिटा कर फेक देता।

अपने जीवन की जो कहानी आज तक भी शारदा किसी को न बता सकी थी, उसे उसने उसी को केवल बता दिया है। उस कपट विश्वास का बदला क्या उसे मिल गया। उसको मिली केवल अश्रद्धा और निर्दय लाछना। किंतु उसने उसका क्या नुकसान किया था। एक भी बात का प्रतिवाद शारदा ने नही किया, केवल निरुत्तर रहकर सहती रही है। निरुपाय रमणी के इस मौन अपमान ने इतनी देर मे वापस आकर मानो उसका ही अपमान किया। उत्तेजना से उत्तेजित होकर राखाल कुर्सी छोडकर खडा हो गया और बोला—पडी रहे मेरी रसोई—इसी रात को मैं वहाँ जाऊँगा और—उससे माफी माग आऊँगा। उससे स्पष्ट रूप से कह दूँगा, कहाँ है मेरी ज्वाला, कहाँ है व्यथा, ठीक तौर से मैं नही जानता शारदा, किंतु जो सब बाते तुम से कह गया था वह सब सच्ची नही हैं बिलकुल ही झूठी हैं।

कूकर मे रसोई पकने लगी, कमरे की बत्ती जलने लगी। ओढ़ने की चादर लेकर वह कमरे का ताला वन्द करके रास्ते मे निकल पडा।

उस मकान पर पहुँचने मे वहुत देर नही लगी। सीधे शारदा के कमरे के सामने जाकर उसने देखा, ताला लटक रहा है वह नही है। ऊपर जाने पर—सामने ही दिखाई पडी दो कुर्सियो पर आमने-सामने सविता और विमल बाबू बैठे हुए हैं। वार्तालाप हो रहा है। उसको देखकर कुछ आश्चर्य मे पडकर ही उन्होने पूछा—तुम क्या अब तक इसी मकान मे थे राजू?

नही माँ, मैं अपने डेरे पर गया था।

डेरे से फिर लौट आये? क्यो?

राखाल झट-पट जवाब न दे सका। बाद को बोला—कुछ काम है माँ। मैंने सोचा, तारक से बहुत दिन हुए भेट नहीं हुई, एक बार मुलाकात कर आऊँ। कल तो फिर समय न मिलेगा।

नही, हम लोग सबेरे ही रवाना हो जायँगे।

विमल बाबू ने कहा—तारक क्या वापस आ गया है?

सविता ने कहा—नही। लडका हम लोगो के लिए अब तक क्या खरीद रहा है समझ मे नही आता।

विमल बाबू ने इस बात का जवाब दिया। इन्होने कहा—वह जानता है, उसके अतिथि साधारण व्यक्ति नही हैं। उनकी मर्यादा का उपयुक्त आयोजन उसे करना चाहिये।

सविता ने हँस कर कहा—तो इस हालत मे उसके लिए उचित था एक तालिका तुमसे लिखवा कर ले जाता।

सुन कर विमल बाबू भी हँस पडे। बोले—मेरी तालिका उसकी रुचि से मिलेगी, क्यो नयी बहू? वह तो अपनी-अपनी अलग हैं। तभी—मन खुश होता है।

इस आलोचना मे राखाल शामिल न हो सका। एकाएक उसके मन का भीतरी भाग मानो जल उठा। क्षणभर बाद अपने को जरा शात करके उसने पूछा—शारदा को तो मैंने उसके कमरे मे इस बार नही देखा नयी माँ?

सविता ने कहा—आज क्या उसके लिए कमरे मे रहने उपाय हैं बेटा। तारक खायेगा। ब्राह्मण रसोइया को हटाकर वह दोपहर से ही एक तरह से रसोई मे लगी हुई है। कितनी क्या-क्या चीजे तैयार कर रही है इसका ठिकाना नही है।

विमल बाबू ने कहा—उसने तो मुझे भी खाने को कहा है नयी बहू।

तुम्हारा भी निमन्त्रण है क्या?

हाँ। तुमने तो कभी खाने को कहा नही, किंतु उसने मुझे किसी तरह भी जाने नही दिया।

आज इसीलिए शायद बैठेहो इतनी देर तक। मैं सोचती थी शायद मेरे साथ बात-चीत करने के लोभ मे। यह कह कर सविता मुसकुराने लगी।

विमल बाबू ने भी हँसकर कहा—झूठी बात पकड में आ जाने पर उसको उकसा देना ठीक नही है नयी बहू। भारी पाप होता है।

राखाल ने मुँह फेर लिया। इस हास्य-परिहास से उसका मन फिर एक बार जल उठा।

सविता ने पूछा—शारदा ने तुमको खाने के लिए नही कहा राजू?

नही माँ।

सविता ने अप्रतिभ होकर कहा—तो शायद उससे भूल हो गयी है।

यह कह कर वे खुद ही शारदा को पुकारने लगी। उसके आने पर उन्होने पूछा—मेरे राजू को तुमने खाने को नही कहा शारदा?

नही माँ, कहा तो नही।

क्यो नही कहा? बात याद ही नही रही शायद?

शारदा चुप हो रही।

सविता ने कहा—याद ही नही रही राजू। किंतु यह भूल भी अन्याय है।

राखाल ने कहा—याद न रहना दुर्भाग्य हो भी सकता है नयी माँ, किंतु उसको अन्याय नही कह सकते। शारदा ने मुझसे पूछा था, डेरे पर वापस जाकर शायद रसोई पकानी पडेगी? मैंने कहा—हाँ। उन्होने पूछा—उसके बाद खाना पडेगा? मैंने कहा—हाँ। किंतु इसके बाद भी मुझे खाने को कहने की बात उनको याद ही नही पडी माँ। किंतु आप यह जान रखियेगा नयी माँ कि यह याद न रहना न्याय-अन्याय के अन्तर्गत नही है। यह चिकित्सा के अन्तर्गत है। यह कह कर राखाल नीरस हास्य के साथ तीखा व्यग्य मिला कर जोरो से हँसने लगा।

सविता सोचकर ठीक ही न कर सकी कि क्या कहना चाहिये। शारदा पहले की ही तरह चुपचाप खडी रही।

राखाल मन ही मनसब समझ गया कि यह अन्याय हो रहा है, उसकी बात झूठी न होने पर भी—झूठ से बढ़ती जा रही है, तो भी वह रुक न सका। बोला—तारक यहाँ आने पर भी मुझसे भेट नही करता। शारदा कहती है उसे समय का अभाव है। सचमुच हो भी सकता है, इसीलिए समय निकाल कर मैं ही भेट करने के लिए आ गया। खाने के लिए नही आया नयी माँ।

थोडी देर तक रुककर उसने फिर कहा—शारदा को शायद सदेह है कि तारक मुझे पसद नही करता, मेरे साथ खाने को बैठना उसे अच्छा नही लगता। मैं दोष नही दे सकता माँ, तारक यहाँ अतिथि है, उसके सुख और सुविधा का खयाल रखना ही पहले देखना जरूरी है।

शारदा पूर्ववत् ही चुप रही। सविता ने घबडा कर कहा—तारक है अतिथि, किंतु तुम तो मेरे घर के लडके हो राजू। मैं किसी की असुविधा नही चाहती, जिसकी जो इच्छा हो करे। किंतु मेरे घर मे मेरे पास बैठकर आज तुम खाओगे।

राखाल ने सिर हिला कर अस्वीकार किया, कहा—नही, वह नही हो सकता। मेरी बुढ़िया नानी जीवित है। बडे घर की बडी रसोई खाने का लोभ मुझे नही है नयी माँ।

सविता ने कहा—लोभ के लिए तो मैंने कहा नही राजू, किंतु न खा कर यदि तुम आज जाओगे, तो मरे दुःख की सीमा ही न रहेगी। यह तुमको कहे देती हूँ।

अपराध खूब अधिक बढ़ गया, राखाल ने निर्भय होकर कहा—विश्वास नही होगा नयी माँ। मन में यह खयाल आता है कि यह केवल बातचीत के सिलसिले में कह देने की जरूरत पडती है इसीलिए कहा जा रहा है। कौन हूँ मैं कि मेरे न खाकर जाने से आप के दुःख की सीमा न रहेगी? किसी के लिए भी आप के मन में दुःख का अनुभव नही होता। यही है आप की प्रकृति।

दुस्सह विस्मय से सविता के मुँह से केवल निकल पडा—कहते क्या हो राजू?

कोई कहता नहीं है, इसीलिए मैंने कह दिया नयी माँ। आप के सौजन्य, आप की सहृदयता, विचार-वुद्धि की कोई तुलना नहीं है। आर्त्तो की परम मित्र हैं आप, किंतु दुःखियों की माँ आप नही हैं। दःख का अनुभव केवल आपके वाहर का ऐश्वर्य है, हृदय का धन नहीं है। इसी कारण जैसे सहज ही मे आप ग्रहण करती हैं वैसे ही अवहेला से छोड़ भी देती हैं। आप को हिचक नही होती।

विमल वावू आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से स्तव्ध भाव से ताकते रहे।

राखाल ने कहा—आपने मेरे लिए वहुत कुछ किया है नयी माँ, उसे मैं चिरदिन याद रखूँगा। केवल मुँह की वातों से नही, शरीर-मन की पूरी शक्ति लगा कर। आप के साथ फिर शायद मेरी मुलाकात न होगी। हो जाय, यह अच्छा भी नही है। किंतु अपना यदि कुछ भी पुण्य हो तो उसके वदले मे भगवान से मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि, इस वार वे आप के ऊपर कृपा करे—अनजान के बीच से इस वार वे जानकारी के वीच आप को जगह दे। अन्त मे हठात् उसका गला जकड गया।

सविता टकटकी वाँधे उसकी तरफ देख रही थी। वात सुन कर उन्होने क्रोध नही किया। वरन् गभीर स्नेह के सुर में ही कहा—ऐसा ही हो राजू, भगवान् तुम्हारी प्रार्थना को ही मंजूर करे। मेरे भाग्य मे वही होने पावे।

मैं अव जा रहा हूँ नयी मा।

सविता उठ पड़ी और उसके पास जा कर उसका ए५ हाथ पकड़ कर बोलीं—राजू, कुछ हुआ है क्या वेटा?

क्या होगा नयी माँ?

ऐसी कोई वात जिसने तुमको आज ऐसा—चंचल कर दिया है—कटु बाते कहना तो तुम्हारा स्वभाव नही है।

प्रत्युत्तर मे राखाल ने झुककर उनके पैरों की धूलि ले ली, और कुछ कहा नही, जाने को तैयार होने पर विमल वावू ने कहा, राजू, विशेष परिचय हम दोनो मे नही है, किंतु मुझे मित्र के ही रूप में समझ रखना।

राखाल ने इसका भी जवाब नही दिया, धीरे-धीरे नीचे चला गया। कल की ही तरह आज भी सीढ़ी के पास खड़ी थी शारदा। पास पहुँचने पर उसने मीठे स्वर मे कहा—देवता?

क्या चाहती हो तुम?

आपने कहा था अनेक शारदाओ के अन्तर्गत मैं भी एक हूँ। शायद आप की ही बात सच है।

यह मैं जानता हूँ।

शारदा ने कहा—तरह-तरह के उपायों से मुझे आप ने बचाया था इसीलिए मैं बच गयी थी। आप बहुतो के लिए वहुत करते हैं, मेरे लिए भी किया था उससे आप का कुछ नुकसान नहीं हुआ। यदि बची रहूँगी तो केवल इतनी ही बातो को जान लेना चाहती हूँ।

राखाल ने इस प्रश्न का उत्तर नही दिया। वह चुपचाप बाहर चला गया।

शरत् बाबू ने इस उपन्यास को यहीं तक लिखा था। वे इसे पूरा नहीं कर सके। उपन्यास के प्रकाशक श्री हरिदास चट्टोपाध्याय ने शरत् बाबू के कई मित्रों से इसे पूर्ण करने का अनुरोध किया था। अन्त में श्रद्धेया श्रीमती राधारानी देवी ने १६वां अध्याय से अन्तिम अध्याय तक लिखकर इसे पूरा किया है। पाठकों के मनोरंजन के लिए इस उपन्यास को अधूरा न छापकर पूर्ण रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

कहा जाता है कि इस उपन्यास की रूपरेखा के बारे में शरत् बाबू ने श्रीमती राधारानी देवी को बताया था। उसी कथानक के आधार पर आपने इसे पूर्ण किया है।—प्रकाशक

सोलह

दूसरे दिन प्रात काल हरिणपुर की यात्रा की तैयारी जब पूरी हो गयी, सविता ने शारदा को बुला कर कहा—अपने बकस-बिछौने को तुम ऊपर भेज दो शारदा, सव सामान सामग्री की सूची तारक वना रहा है।

शारदा ने—कुंठित होकर कहा—मेरा बकस-बिछौना नही जायगा माँ। एक छोटे से स्टूल पर बैठकर तारक नोटबुक के पन्ने पर तेज हाथ से फरद लिख रहा था। शारदा का उत्तर उसके कानो में पहुँचा। झुके हुए मुँह को ऊपर उठाकर तारक ने आश्चर्य भरे स्वर मे कहा—बकस-बिछौना नही जायगा कैसे?

सविता भी आश्चर्य मे पड गयी थी। धीमे स्वर मे बोली—साथ ले जाने लायक बकस-बिछौना क्या तुम्हारे पास नही है शारदा? तो इस हालत मे पहले तुमने वताया क्यो नही? मैं इसकी व्यवस्था कर देती।

म्लान हँसी हँस कर शारदा बोली—बिछौना मेरा पुराना है, फटा भी है जरूर। तो भी उनको साथ ले जाने मे लज्जा नहीं थी। हरिणपुर मेरा जाना नही होगा।

तारक और सविता दोनों ही प्राय' एक ही साथ बोल उठे—यह क्यो?

शारदा ने सूखी हँसी हँस कर कहा—मुझे कही भी हिलने का उपाय नही है, नही तो, माँ की सेवा करने से अपने को वंचित करके इस शून्यपुरी मे अकेली पडी रहने की सजा मैं भोग नहीं करती।

निर्वाक् सविता तीक्ष्ण दृष्टि से शारदा के मुँह की तरफ देखकर मानो कुछ ढूँढ़ने लगी।

तारक उत्तेजित होकर बोल उठा—यह कैसे? कल भी नयी माँ के साथ हरिणपुर जाने को आप तैयार थी और आज सबेरे ही इस मकान को छोड कर हिलने का उपाय नही है यह आपने निश्चय कर लिया। नही, वह सब फजूल की बहानेबाजी न चलेगी, कोई स्त्री-बच्चा साथ न जाने से उस गाँव-देहात में अकेली नयी माँ—नही-नही, यह हो ही नही सकता।

शारदा ने उदास स्वर से कहा—मैं सच ही कह रही हूँ तारक बाबू। जाने का मुझे उपाय नही है। यह फजूल का बहाना नही है।

अविश्वास भरे गले से तारक ने प्रश्न किया—क्यो सुनूं तो? यहाँ आपको क्या काम है?

शारदा स्थिर दृष्टि से पत्थर की प्रतिमा की तरह खडी रही। कुछ भी जवाब उसने नही दिया।

कुछ क्षण चुप रह कर तारक ने कहा—जवाव नही देती क्यो?

शारदा तो भी निरुत्तर रही।

तारक हताश भाव से हाथ के नोटबुक को कमरे की फर्श पर फेककर कहा—तो अव किस तरह दोपहर की ट्रेन से आप का जाना होगा नयी माँ! स्त्री-बच्चे साथ कोई भी न रहने से उस गाँव-देहात मे बन्धुहीन स्थान मे अकेली आप टिक सकेगी कैसे?

सविता ने इतनी देर तक कोई बात नही कही थी। मीठी हँसी हँसकर उन्होने कहा—तारक, गाँव मे मेरा जन्म हुआ था, जीवन का अधिकाश भाग गाँव में ही बीता है, वहाँ मुझे कष्ट नही होगा।

रूखी दृष्टि से शारदा की तरफ देखकर तारक ने व्यग्य के स्वर मे कहा—कौन है वह महान् व्यक्ति क्या मैं जान सकता हूँ जिनके हुकुम के विना आप नयी माँ के साथ इस मकान को छोड कर जा न सकोगी? राखाल बाबू क्या निश्चित रूप से नही हैं?

तारक की असयत उक्ति से शारदा का चेहरा अपमान से लाल हो उठा। दूसरी दिशा की ओर स्थिर नेत्रो से ताकती हुई शात स्वर से उसने कहा—जो मुझको इस मकान मे रख गये हैं उनके हुकुम के बिना मेरा अन्यत्र जाना सभव नही है तारक बाबू। आप अकारण ही क्रोध कर रहे हैं।

शारदा के उत्तर से सविता चौंक पडी। किंतु तारक ने अपने कण्ठस्वर को बहुत कुछ नीचे उतार कर आश्चर्य युक्त स्वर मे कहा—किंतु वे तो बहुत दिनो से लापता हैं।

शारदा ने तारक की तरफ दृष्टिपात न करके सविता के सामने जाकर झुककर प्रणाम करके

कहा—माँ, और सभी मुझे गलत तरीके से समझें आप गलत रूप से न समझियेगा यह मैं जानती हूँ।
सविता ने गंभीर स्नेह से शारदा के माथे पर हाथ फेर कर अंगुलियो को अपने ओठों पर सटाया। अत्यन्त गाढ़ किंतु मीठे स्वर मे कहा—सोना को पीतला कह कर चिर दिन कोई गलती नहीं कर सकता शारदा। आज भले ही न समझे, एक दिन सभी तुमको समझ सकेगे।
शारदा के नेत्रों मे आँसू आ गया था, कुछ शायद कहने को तत्पर होकर भी वह कह न सकी। अवनत मुँह से प्रवल चेष्टा से चुपचाप वह आँसू रोकने लगी।
सविता ने शारदा को अपने पास खीच कर कहा— तुमको कुछ भी कहना न पडेगा शारदा। मेरे साथ तुम जा नही सकती। इसके लिए तुमको कितना दु.ख है यह मैं जानती हूँ।
ट्रेन छूटने के डेढ घटा पहले तारक सविता को लेकर स्टेशन पर जा पहुँचा। माल-असबाब गिनकर, कुर्सी ठीक करके पुराना दरवान महादेव की हिफाजत मे दें दिये गये हैं। ब्रेकवान के असबाबो को वजन के बाद रेलवे कम्पनी के दायित्व मे देकर रसीद को यत्नपूर्वक जेब मे रख कर तारक ने निश्चिन्त चित्त से सेकेण्ड क्लास लेंडिज वेटिग रूम के सामने जाकर पुकारा नयी माँ—
सविता कमरे के अन्दर से दरवाजे के सामने आकर खडी हो गयी। तारक ने रूमाल से ललाट का पसीना पोछते-पोछते कहा—माल-असबाव वजन कराकर ब्रेक मे रखवा कर रसीद ले आया हूँ। इस तरफ का झमेला खतम हो गया। अब ट्रेन के प्लेटफार्म पर आ जाने से ही काम हो जायगा। आपको विछौना विछा कर बैठा देने पर निश्चिन्त हो जाऊँगा।
सविता ने मीठी हँसी हँस कर कहा—नयी माँ पीछे कही हरिणपुर जाना रुक न जाय, इसलिए तुम्हारे भय और चिता की हद ही नही है, ठीक है न तारक?
हँसते हुए चेहरे से तारक ने जवाव दिया—जव तक लडके की मडैया मे माँ के चरणो की धूलि नही पड़ती, तव तक मैं अपने भाग्य के ऊपर विश्वास नही करता माँ।
छूटने के नियम के आधा घटा पहले ट्रेन प्लेटफार्म पर आ खडी हुई।
घवडाहट के साथ तारक ने वेटिग रूम के दरवाजे के पास जाकर ऊँचे स्वर से पुकारा—नयी माँ, वाहर आ जाइये। ट्रेन आ गयी है।
महादेव दरवान वेटिग रूम के वाहर कितने ही वकस-विछौनो के गट्ठर पर बैठ कर खैनी मल रहा था। झटपट खैनी को मुँह मे डाल कर पगडी को ठीक करते-करते घवडाहट के साथ उठ खडा हुआ।
आपाद-मस्तक सिल्क की चादर से मण्डिता सविता ने शिव की माँ दासी के साथ ट्रेन की तरफ तारक का अनुसरण करते-करते कहा—मुझको तुम इण्टरक्लास मे स्त्रियो के डव्वे मे चढा देना तारक। शिव की माँ भी मेरे साथ रहेगी।
तारक ने ठिठककर खडा होकर कहा—आपके लिए मैंने सेकेण्ड क्लास का टिकट खरीदा है नयी माँ। इण्टरक्लास के आगे जनाना डव्वे मे आप रह सकेगी कैसे?
सविता ने कहा—किंतु महिलाओ के ही डव्वे मे यातायात करने की मेरी आदत थी बेटा।
तारक ने वार-बार जिद करके एकाधिक असुविधाओं और कष्टो के वहाने दिखा कर दूसरे दर्जे के डव्वे मे सविता को चढा दिया।
डव्वा छोटा था। उस समय तक कोई भी दूसरा यात्री चढा नही था। तारक ने व्यस्तभाव से गाडी मे चढ कर अपनी धोती की कूची से प्लेटफार्म की तरफ की वेच को झाड कर यत्नपूर्वक साफ विछौना विछा दिया। हवडा स्टेशन से जाना पडेगा केवल वर्दवान तक। किंतु तारक ने यात्री पथ का आयोजन किया है दिल्ली या लाहौर तक जाने के लिए जैसा करना चाहिए।
सविता अन्यमनस्क चित्त से विछौने पर जाकर वैठ गयी। तारक शायद मन ही मन आशा कर रहा था नयी माँ उसके इस सतर्कतापूर्ण उद्योग-सेवा के सवध मे विशेष कुछ सस्नेह अनुयोग करेगी। किंतु धुली हुई साफ धोती की कूँची वेच की धूलि से लिप्त होकर मलिन वर्ण धारण कर लेने पर भी नयी माँ ने एक भी वात नही कही, इससे तारक का मन वहुत कुछ ही दु खित हो पडा। तो भी महा उत्साह के साथ उसने ऊपर के पटरे पर सूटकेस, हाथ-वक्स आदि सजा कर रख दिये। वेच के नीचे फलो की टोकरी और अन्यान्य वस्तुओं को उसने सुरक्षित कर दिया। कुलियो को विदा करके तारक ने सविता के सामने आकर

क्लात कठ से कहा—आप जरा बैठ जाइये नयी माँ, मैं एक गिलास लेमनेड बर्फ डाल कर ले आऊँ आपके लिए। अथवा एक प्लेट आइसक्रीम ले आऊँ--क्या कहती हैं।

सविता इतनी देर तक बाहर जनाकीर्ण प्लेटफार्म की तरफ उद्देश्यहीन दृष्टि से देख रही थी। तारक की बातो से मानो उन्हे पुन चेतना मिल गयी।

घबडाहट भरे स्वर में उन्होने कहा—नही तारक, कुछ भी लाना न पडेगा। प्यास मुझे नही लगी है।
तारक ने उस निषेध को अनसुनी बात बनाकर माथा हिलाकर कहा—वाह! ऐसा क्या होना है? प्यास नही लगी है कहने से मैं जान जाऊँगा कैसे नयी माँ? मुँह आपका कैसा सूख गया है यह तो मे दख ही रहा हूँ।

सविता ने मुस्कुरा कर शांत कितु दृढ कठ से कहा- लेमनेड, सोडा या आइसक्रीम यह सब मे कभी खाती ही नही। ट्रेन मे पानी तक छूना भी जीवन मे कभी नही पडा। तुम घबडा कर निरर्थक उन सब चीजो को खरीद मत लाना बेटा।

सभी विषयो का प्रतिवाद करना और अपनी इच्छा को दूसरे की इच्छा या अनिच्छा के विरुद्ध तर्को और युक्तियों से ठीक सिद्ध कर देना ही तारक की प्रकृति थी। कितु नयी माँ के इस कठ-स्वर ने उसको किसी पर भी तत्पर होने नही दिया। इसलिए वह मन ही मन दु ख की अपेक्षा बेचैनी ही अधिक अनुभव करने लगा बहुत।

प्लेटफार्म की कार्यव्यस्त जनता पर निबद्ध दृष्टि सविता की दोनो आँखे अकस्मात् उज्ज्वल हो उठी। दूर से विमल बाबू आते हुए दिखाई पडे। प्रशात सौम्यमूर्ति है, पदक्षेप कुछ तेज है। ट्रेन के डब्बो मे अनुसधान भरी दृष्टि रखते हुए अग्रसर होते चले आ रहे हैं। देखने-देखते सविता का चेहरा और नेत्र आनन्द की स्निग्ध किरणो से चमक उठे।

विमल बाबू प्रसन्न हास्य से सविता के डब्बे के सामने आ खडे हुए। तारक झटपट प्लेटफार्म पर कूद पडा और प्रसन्न कठ से बोला—अरे!आप स्टेशन पर आ गये देख रहा हूँ। हम लोगो को आशा थी कि मकान पर ही भेट करने आइयेगा। गाडी तब आये नही देख कर कितु चिता हो गयी थी।

विमल बाबू ने सविता के चेहरे की तरफ दृष्टि स्थापित करके शात कठ से तारक से पूछा—हम लोगो को क्या मतलब?

विमल बाब के प्रश्न से तारक सविता के मॅह की तरफ देखकर एकाएक घबडा उठा। बात का बहुवचन मे न कहने से ही शायद अच्छी सुनाई पडती। छि नयी माँ ने शायद क्या ख्याल किया?

कितु तारक को इस लज्जा से छुडा दिया नयी माँ ने ही। मधुर हँसी के साथ उन्होने कहा—तारक ने ठीक ही कहा है। आज प्रात काल वही हम लोगो ने तुम्हारा आना सभव समझ रखा था शारदा ने भी कहा था तुम्हारे बारे मे।

विमल बाबू ने शारदा के डब्बे मे एक बार अपनी नजर घुमाकर कहा—शारदा कहाँ है?

सविता का उत्तर मिलने के पहले ही तारक रूखे स्वर मे बोल उठा—हाँ, वे क्या शहर के पाईप का नल इलेक्ट्रिक बत्ती छोड कर सडे गाँव, देहात मे रहने जायेंगी? कितु इस बात को कृपापूर्वक शुरू मे ही कह देती तो अच्छा करती, हमलोग इतनी असुविधा मे नही पडते।

विमल बाबू ने आश्चर्य मे पड कर कहा—शारदा क्या तुम्हारे साथ हरिणपुर नही जा रही है?

सविता ने उदास हँस कर चुपचाप सिर हिला कर इशारे से बताया कि शारदा आ नही सकी है।

विमल बाबू डर गये। बायाँ हाथ उलटकर कब्जी मे बँधी सोने की रिस्टवाच की तरफ दृष्टि निबद्ध करके घबडाहट भरे स्वर से उन्होंने कहा—काफी समय है। अभी तुरन्त मोटर लेकर जाऊँ और शारदा को लिवा लाऊँ नयी बहू। मैं जाकर कहूँगा तो वह 'नही' नही कर सकती।

सविता ने रोक कर कहा—तुम्हारे अनुरोध करने पर भी वह आ न सकेगी। केवल उसका दु ख ही बढेगा।

विमल बाबू ने ठिठक कर खडे होकर विस्मित कठ से पूछा—इसका क्या अर्थ?

सविता ने कहा—किसी दूसरे दिन सुन लेना। विमल बाबू सविता के मुँह की तरफ कुछ क्षण ताकते रहे फिर बोले—मामला क्या है नयी बहू?

सविता ने कहा—उसके आने का उपाय नही है दयामय। नही तो मेरे साथ आने मे मै खुद भी उसे

रोक सकती थी या नही इसमे सदेह है। जो हो, मेरा एक और अनुरोध तुम्हारे ऊपर रहा। शारदा अकेली रही, बीच-बीच मे तुम उसकी खोज खबर लेना।

शारदा के व्यवहार से तारक उस पर इतना असतुष्ट हो गया था कि नयी माँ ने शारदा की अकृतशता का उल्लेख मात्र भी न करके वरन् विमल बाबू से उसकी देख-भाल करने का अनुरोध किया देखकर वह मन ही मन जल गया। मन की विरक्ति पीछे कही इन लोगो के सामने खुल न जाय इसलिए वहाँ से हट जाने की इच्छा से उसने कहा—शिबू की माँ और दरवान गाडी पर अच्छी तरह चढ चुके हैं या नही, मैं एक बार देख आऊँ नयी माँ।

यह कह कर वह अनावश्यक द्रुतपद से दूसरी तरफ चला गया।

विमल बाबू ने सविता की तरफ प्रश्नसूचक दृष्टि रखकर कहा—क्या हो गया है बताओ तो? तारक कुछ उत्तेजित सा शायद दिखाई पड रहा है?

सविता ने मीठी हँसी के साथ कहा—शारदा के मेरे साथ न आने के कारण तारक उसके ऊपर बहुत ही नाराज हो गया है। उसकी धारणा है कि मैं गाँव-देहात मे तरह-तरह की असुविधाओ के बीच जा रहा हूँ, शारदा साथ रहती तो मुझे बहुत सुविधा होती।

विमल बाबू ने कहा—यह बात केवल तारक ही सोच रहा है यह तो नहीं है, मैं भी ठीक वही बात सोच रहा हूँ नयी बहू!

सविता ने करुण हँसी के साथ कहा—किंतु मैं आज ठीक इसकी उलटी बात सोच रही हूँ।

विमल बाबू ने सविता के चेहरे पर इतनी करुण हँसी पहले कभी नही देखी थी। उनकी छाती के अन्दर वेदना से मानो मरोड उठी। सविता के चहेरे की तरफ स्थिर दृष्टि से ताक कर उन्होने कहा—मैं क्या सुन नही सकता नयी बहू?

भर्राई हुई आवाज से सविता ने कहा—सभी बाते ही तुमको एक दिन बताऊँगी यह मैंने सोच रखा है। और कोई भी तो मेरा दाह अन्तर्दाह समझ न सकेगा, शायद विश्वास न करना चाहेगा। मुझे बहुत जान लेने को बाकी है। इन तेरह वर्षो से लगातार दिन पर दिन रात के बाद रात क्रमागत जो प्रश्न मेरे हृदय के अन्दर पछाड खा रहा है, आज तक भी उसका जवाब मुझे नही मिला है। भगवान् के चरणो मे मैंने बार-बार कहा है, भगवान्, तुमसे छिपी बात तो कुछ भी नहीं हैं। इतनी बडी निर्मल जिज्ञासा को मेरे हृदय मे तुमने ही भेजा है। इसके लिए मैं तुम्हारी शिकायत न करूँगी। केवल इसका ठीक उत्तर भी तम मुझे इस जीवन मे दे देना। इसके सिवा प्रार्थना के लिए कुछ भी तो तुमने नही छोडा है? जितना बडा दुखही क्यो न दो मैं उसको तुम्हारे हाथ का दान मान कर सीधी होकर ही चल सकती थी कि किंतु मेरे जीवन मे तो तुमने दु ख भेजा नही है, भेजा है केवल तीव्र परिहास। मनुष्य का परिहास सहना कठिन नही है किंतु तुम्हारा यह निष्ठुर परिहास तो सहा नही जाता।

विमल बाबू के आनन्द भरे सौम्य चेहरे पर एक कठिन वेदनानुभूति की छाया निविड हो उठी। उन्होने एक बात भी नही कही। दूसरी तरफ अपनी दृष्टि घुमा कर स्थिर भाव से वे खडे रहे। वह दृष्टि मानो इस लोक से लोकान्तर को निरुदिष्ट था।

बहुत समय बीत गया। सविता ने अस्फुट मृदु स्वर से पुकारा—दयामय!

विमल बाबू ने घूमकर देखकर स्नेह स्निग्ध भारी गले से उत्तर दिया नयी बहू!

सविता एकाएक चौंक पडी। चेहरे पर उद्वेग और वेदना का चिह्न फूट पडा। विमल बाबू के चेहरे की तरफ पूर्ण दृष्टि से ताक कर विनयपूर्ण स्वर से उन्होने कहा—एक बात मैं कहूँगी? कहो कुछ बुरा तो न मानोगे?

विमल बाबू एकाएक सविता की बातो का कुछ भी उत्तर न दे सके। थोडी देर तक चुप रह कर धीरे-धीरे उन्होने कहा—नयी वहू, क्या कहना चाहती हो कहो, कुछ भी बुरा न मानूँगा।

दृष्टि नीचे झुका कर सविता ने कहा—तुम मुझे नयी बहू कह कर मत पुकारना।

विमल बाबू ने कुछ क्षण सविता की तरफ देखकर शात स्वर से कहा—ऐसा ही होगा।

इस बार मुँह ऊपर उठा कर विमल बाबू की तरफ देखने पर दिखाई पडा कि सविता की दोनों सुन्दर आँखें शिशिर-सिक्त कमल की पंखडियो की तरह आँसू के भार से टलमल कर रही हैं।

विमल बाबू को कोई बात कहने को तत्पर,होकर वह कह न सकी। रुकावट पड गयी। विमल बाबू ने इसे लक्ष्य किया।

प्लेटफार्म डब्बे के अन्दर जाकर वे सविता के सामने बेंच पर बैठ गये। उसके बाद स्नेह-कोमल फिर भी सभ्रमपूर्ण स्वर से उन्होने कहा—तुमको तुम्हारा नाम लेकर पुकारने का अधिकार तुम क्या मुझे दे सकोगी तुम? सकोच मत करो। यदि कोई बाधा हो, जरा भी मैं दुःखी न हूँगा जान लो। केवल बता देना, क्या कह कर पुकारने से तुम्हारे मन मे चोट न लगेगी, स्मृति का दाह जाग न उठेगा। मैं तो अधिक कुछ नही जानता। हो सकता है कि अनजान मे तुमको आघात पहुँचा रहा हूँ।

सविता इस बार उमडे हुए आँसू को सम्हाल न सकी। झरझर करके वह गिरने लगा। झटपट आँखें पोछ कर उन्होने दूसरी तरफ मुँह फेर लीं। कौन-सी एक बात बार-बार कहने की चेष्टा करके भी लज्जा और दुःख से गला रुँध जाने लगा।

विमल बाबू ने फिर कहा—लज्जित मत होना। बताओ, क्या कह कर पुकारने से तुम सहज मे उत्तर दे सकोगी?

सविता तब भी निरुत्तर हो रही। उसके बाद भारी सकोच को जी जान से हटा कर मृदु स्वर से उन्होने कहा—मुझको तुम रेणु की माँ कह कर पुकारना।

विमल बाबू के चेहरे पर कोमल सहानुभूति की करुणा खिल उठी। उन्होंने स्निग्ध कठ से कहा—सच है! बहुत सुन्दर है! मैं अवाक् हो जा रहा हूँ यह सोच कर कि, तुम्हारा इतना बडा परिचय इतने दिनो तक मेरे मन मे आया क्यो नही, बताओ तो?

सविता चुप हो रही।

विमल बाबू आनन्द मधुर स्वर से कहने लगे—यह जो तुमने कितना बडा दान आज मुझे दे दिया, इसे तुम शायद स्वय भी नही जानती रेणु की माँ! तुम्हारे दिये हुए इस सम्मान की मर्यादा रख सकूँ, यही कामना है। मेरी और कोई भी कामना नही है।

विमल बाबू शायद और भी कुछ कहते, गाडी छूठने की सकेत सूचक घटी बज गयी। हाथ घडी की तरफ देख कर वे उठ खडे हुए। बोले—जाता हूँ अब। हरिणपुर मे रहना यदि अच्छा न लगे तो, लौट आने मे कोई दुविधा मत करना। तारक को यदि पहुँचा जाने के लिए छुट्टी न मिले, तो मेरे पास खबर भेजना। राजू जाकर लिवा लावेगा। जरूरत पड़ने से मैं भी आ सकूँगा।

विमल बाबू गाडी से उतर पडे। तारक द्रुत पद से आ रहा था। उसके हाथ मे एक गिलास बर्फ के टुकडे से भरा पानी था। सिरप, झिझर या ऐसा ही कुछ रहा होगा। उसने विमल बाबू के हाथ मे गिलास दे कर कहा—नयी माँ के मुँह मे तो एक बूँद जल भी न दिला सका। कृपया आप इसे रिफ्यूज न कीजियेगा।

विमल बाबू ने हँस कर कहा—दो।

गिलास को विमल बाबू के हाथ मे देकर तारक ने जेब से काली पत्ती से मुडा हुआ पान का बीडा निकाल लिया।

अन्तिम घटी बज गयी और गार्ड की सिटी सुनाई पडी। सविता बोल उठी—गाडी तो अभी छूटेगी तारक। चढ आओ अब, तुम्हारी इस अतिथि वत्सलता के बीच मैं किस तरह दिन बिताऊँगी, यही सोच रही हूँ।

विमल बाबू तब तक भी अपने पानी को खतम न कर सके थे हँसने लगे तो हिचकी आ गयी।

सविता व्यग्र भाव से बोल उठी—अहा—

विमल बाबू मुँह से गिलास उतार कर सविता की तरफ देखकर इस बार ठठाकर हँस पडे।

उस समय गाडी का चलना शुरू हो गया था।

नमस्कार! कह कर तारक चलती गाडी पर चढ़ गया।

सत्रह

ब्रज बाबू के अपने भतीजे और चचेरे भाई नवीन बाबू थे। वे लोग इन बारह-तेरह साल के लम्बी अवधि मे गाँव के घर-द्वार जगह-जमीन पर दखल रख कर भोग कर रहे थे। इतने दिनो के बाद पुत्री समेत ब्रज बाबू के गाँव लौट आने को वे लोग बिलकुल ही प्रसन्न चित्त से ग्रहण न कर सके।

गाँव मे ब्रजबाबू का अपना दुमंजिला मकान था, बगीचा था, पोखरी थी और खेत-जमीन थी। इन सभी पर इतने दिनो से अधिकार करके वे ही लोग रह रहे थे। जो प्रधान हिस्सेदार हैं, कहना चाहिये कि असल मालिक हैं, वे ही आज हठात् आकर हाजिर हो गये, इस कारण विचलित होने की तो बात ही है। किंतु ब्रजबाबू के भतीजे को और चचेरे भाई नवीन बाबू को ब्रजबाबू के गाँव आने का विरोध करने का साहस नही हुआ। क्योंकि, अभी कुछ ही महीने पहले ब्रजबाबू ने ही उन लोगो को एक मूल्यवान इलाका लिख पढ कर दान कर गये थे। जिसकी वार्षिक आमदनी लगभग एक हजार रुपये की है। किंतु इसीलिए वे लोग अपनी गृहस्थी मे वासगृह के अन्त पुर मे तो ब्रजबाबू और रेणु को स्थान नही दे सकते। इस कारण बहुत सोच विचार करके युक्ति-परामर्श कर के उन लोगो ने मकान का सदर हिस्सा छोड़ दिया था।

सदर मकान एक-तल्ला बना था। उसमे दो बडे-बडे कमरे थे। कमरे के साथ अन्दर की तरफ बरामदा था और बाहर की तरफ खुला हुआ था। बरामदे के दोनो छोर पर एक-एक छोटी-छोटी कोठरियाँ थी। एक थी नौकरो को तमाखू चढाने के लिए और दूसरी थी बत्ती लालटेन रखने के लिए। यही था सदर मकान।

कमरों में झाड़ू लगवा कर, धुलवाकर, दो चौकियाँ बिछवा कर मिट्टी के नये घडे मे पीने का जल भरवा रख कर भतीजो ने इलाका देने वाले काका के प्रति अपना कर्तव्य पालन किया था।

गाँव मे आ जाने पर उस दिन ब्रजबाबू और रेणु के भोजन आदि की एक वक्त की व्यवस्था भी उन्ही लोगो के यहाँ हुई थी। किंतु वह मकान के अन्दर नही हुई। खाद्य-सामग्री बाहरी मकान मे ही भेजी गयी थी।

ब्रजबाबू के विशेष लक्ष्य न करने पर भी इस व्यवस्था का अर्थ समझने मे बुद्धिमती रेणु को विलम्ब नही हुआ। किंतु वह जन्म के समय से ही अल्पभाषिणी और सहनशील थी। किसी बात से मन में आघात लगाने अथवा अपमानित होने पर भी उसको लेकर चचलता प्रकट करना उसकी प्रकृति के विरुद्ध बात थी।

चाचा जी के घर पर पहुँचते ही भतीजो ने प्रणाम और कुशल प्रश्नादि के बाद पहले ही जान लेना चाहा कि किस कारण वे इतने दिनो के बाद घर लौटे हैं। बातचीत के बाद जब यह मालूम हो गया कि विशिष्ट धनवान चाचा ब्रजबाबू आज सर्वस्व खोकर और गृहहीन होकर अविवाहिता अपनी कन्या के साथ गाँव को लौट आये हैं, शेष जीवनकाल यही बिताने के लिए—तब वे लोग किञ्चित् भयभीत हो गये। ब्रजबाबू के शरीर की जैसी अवस्था है, अत तक वह सयानी अविवाहिता कन्या उनके ही कधे पर पड जा सकती है। इलाका दान करके अत मे क्या चाचा जी अपनी सयानी कन्या का भी दायित्व भार भतीजो को ही दान कर जायँगे? ऐसा हो जाने से भी हो सकता है, किंतु कुल त्यागिनी जननी की इस अनूढा कन्या को गृहस्थी मे आश्रय देकर कौन विपत्ति का भागी होगा।

ब्रजबाबू अपने गृह-देवता गोविन्द जी को साथ ही ले आये थे। पारिवारिक ठाकुर घर मे गोविन्द जी को ले जाने को तैयार होने पर कनिष्ठ भ्राता रवीन्द्र भतीजो के मुखपात्र रूप मे सामने आकर हाथ जोड कर ब्रजबाबू से कहा—मझले भैया, एक बात आपको न जताने से काम न चलेगा। मुँह से निकालने मे यद्यपि छाती फटती जा रही है, तो भी बताये बिना उपाय ही नही है। आप ढाँढ़स दें तो हम लोग खोलकर कह सकते हैं।

निर्विरोधी ब्रजबाबू भाई की इस सविनय भूमिका से चचल हो उठे, बोले—यह क्या नवीन! ढाँढ़स और क्या दूँगा? कहो-कहो, अभी तुरन्त कह डालो, क्या तुम लोगो की सुविधा असुविधा है? यही तो—क्या ही मुश्किल है—तुम लोग शायद अत मे—

ब्रजबाबू के सभी बाते खतम न कर सकने पर भी तीक्ष्ण-बुद्धि नवीनचन्द्र और भतीजो के दल ने उनका मनोभाव समझ लिया। उत्साहित होकर नवीन बाबू ने और भी आडम्बर के साथ अत्यन्त विनयपूर्वक लम्बी भूमिका बाँध दी। बहुत सी अवान्तर बातो और अपनी निर्बुद्धिता के अनेकानेक प्रमाण के साथ उन्होने जो कुछ बताया उसका साराश यही है कि यदि ब्रजबाबू और रेणु को नवीन बाबू वगैरह अपने यहाँ जगह दे तो उस हालत मे गाँव मे उन्हे पतित हो जाना पडेगा। गाँव भर के सभी लोग जानते हैं, इसी रेणु की तीन साल शैशवावस्था मे छोड कर उसकी जननी दूर सम्पर्क के ननदोई रमणी बाबू के साथ कुल त्याग करके निकल गयी थी। यह घटना आज से बारह-तेरह साल पहले की है, गाँव का कोई भी आज तक उसे भूल नही गया है।

ब्रजबाबू उदास चेहरे से सिर झुकाये बैठे रहे। उनके उस असहाय चेहरे को देखने मे अत्यन्त बडा कठोर हृदय भी व्यथित हुए बिना नही रह सकता। नवीनचन्द्र के भी हृदय मे आघात लगा। कितु वे भी क्या कर सकते हैं। एक मात्र आशा थी, ब्रजबाबू विशिष्ट धनवान व्यक्ति हैं—गाँव मे रुपया खर्च कर सकने से बहुतो के मुँह दबाये जा सकते हैं। कितु ब्रजबाबू आज नि स्व अर्थहीन हैं। इसलिए सयानी कन्या को अब तक अनूढा रखने का अपराध गाँव का कोई भी क्षमा न करेगा—विशेषत जिस कन्या के शरीर पर हल्दी लग जाने पर भी विवाह नही हुआ, माता जिसकी कलंकिनी है।

नयी बहू के गृहत्याग करने पर गाँव के निन्दनीय आन्दोलन ने ही ब्रजबाबू को गाँव का मकान छोड कर कलकत्तावासी बनने को बाध्य किया था, घर लौटने के पहले यह बात उनको क्यो याद नही पडी; यह सोच कर ब्रजबाबू सचमुच ही आश्चर्य मे पड गये।

गाँव के इस अप्रिय आन्दोलन का समाचार रेणु जानती नही थी। जानने से वह ब्रजबाबू को गाँव जाने का परामर्श नही देती। कितु इस अवस्था मे यहाँ रहना भी तो नही चल सकता। अब जायँगे भी तो कहाँ?

ब्रज बाबू के चिन्ता-जाल मे बाधा देकर नवीन बाबू और कृतज्ञ भतीजे ने बार-बार दु ख प्रकट करके कहने लगे—हम लोग पूर्णत निरपराधी हैं। पुत्री समेत ब्रजबाबू को सश्रान्त अपने यहाँ ग्रहण करने का अत्यन्त आग्रह रहने पर भी कोई उपाय नही है, यह हम लोगो के ही दुर्भाग्य के सिवा और कुछ भी नही है।

कुंठित होकर ब्रजबाबू ने कहा—नवू, तुम लोग लज्जित मत होना। मैं सब कुछ ही समझ रहा हूँ। इसे पहले ही सोच लेना मेरे लिए उचित था भाई, जो हो, यह भी शायद गोविन्दजी की ही परीक्षा है। देवता हूँ, उनकी इच्छा क्या है, फिर कहाँ ले जाते हैं।

ब्रज बाबू के बडे भतीजे ने कहा—कितु मझले काका। सबसे बडी चिता हम लोगो की रेणु के विवाह के लिए है।

ब्रज बाबू ने धीर कठ से जवाब दिया—कुछ भी चिता मत करो बेटा। मैं उसको और अपने गोविन्द जी को लेकर वृन्दावन की यात्रा करूँगा। गोविन्द जी के राज्य मे माता के अपराध के लिए लडकी को कोई दोष नही देता। जबतक जाने की कोई व्यवस्था नही कर सकूँ, यहाँ इस बैठक खाने मे ही अलग रहूँगा। किसी को किसी असुविधा मे न डालूँगा।

दायादो की बात-चीत से मालूम हो गया कि रहने के मकान के ठाकुर-घर मे गोविन्द जी के अपनी पहले की वेदी पर अधिष्ठित होने मे कोई बाधा नही है, बाधा है रेणु के ठाकुर-घर मे प्रवेश करने मे और ठाकुर जी का भोग तैयार करने मे।

मुँह से जो भी क्यो न कहे, इस घटना से ब्रज बाबू सचमुच ही मर्माहत हो गये। उनके समस्त जीवन के प्रधान लक्ष्य गोविन्दजी अपने पूजा-मन्दिर मे प्रवेश न कर सके, बैठक-खाने मकान मे पडे रहे। इस क्षोभ और दु ख से ब्रज बाबू मुरझा गये? ससार के तरह-तरह के उलट फेर यहाँ तक कि सर्वस्व खोकर गृहहीन होने की अवस्था भी उनके हृदय को इतना विकल न कर सकी थी।

गाँव मे आने के बाद से ही रेणु को बिलकुल ही अवकाश नही रहा। गोविन्दजी की सेवा और पिता की देख-भाल शुश्रूषा को लेकर उसे बराबर व्यस्त रहना पडता था। किसी दूसरी बात मे दृष्टि रखने का समय उसे विरल था, शायद इच्छा भी नही।

अन्दर मकान के दो कमरे मे से एक गोविन्दजी के लिए और दूसरे को पिता के लिए उसने निर्दिष्ट कर रखा है। पिता के सोने के कमरे मे ही एक किनारे एक पतली चौकी पर अपने सोने की व्यवस्था उसने की है। छोटी-छोटी कोठरियो में से एक भंडार-घर बना है और दूसरी कोठरी रसोई-घर का काम दे रही है। आँगन के एक कोने मे थोडी सी जगह घेर कर रेणु ने स्नान करने की जगह ठीक कर ली है।

गोविन्द बाबू व्याकुल चित्त से सोचते रहते हैं—हे गोविन्द, तुमको तुम्हारे अपने मन्दिर से बाहर लाकर असम्मान के बीच मैंने फेंक रखा है इस अन्तिम जीवन मे। यह क्या मेरा उचित काम हुआ है प्रभो। किंतु मेरी रेणु का तो तुम्हारे सिवा और कोई नही। उसको अपनी सेवा से वंचित करने से वह क्या लेकर बची रहेगी? पतितपावन, तुम भी क्या अन्त मे हम लोगों के साथ पतित बन गये?

सध्या की आरती के समय आरती करते-करते ब्रजबाबू अपने आप को भूल जाते हैं, इसी तरह की चिन्ताओ से। दाये हाथ मे पच प्रदीप और बाये हाथ की घटी निश्चल हो जाती है, गालो के ऊपर से आँसू बहने लगता है, होश नही रहता।

रेणु पुकारती है, बाबूजी—

ब्रज बाबू की चेतना जाग उठती है।

त्रस्त हाथों से आरम्भ की हुई आरती मे फिर लग जाते हैं।

कभी वे सदेह चचल चित्त में सोचते हैं गोविन्द, सतान-स्नेह से अधा होकर तुम्हारे प्रति त्रुटि करके मैं पापो का भागी तो नहीं बन गया प्रभो।

इस प्रकार अत्यधिक मानसिक सघात से ब्रज बाबू जब विच्छिन्नचित्त हो रहे थे, उसी समय एक घटना हुई। दोपहर को एक दिन पूजागृह से बाहर निकलने पर ब्रज बाबू सिर मे चक्कर आने से गिर कर मूर्च्छित प्राय हो गये। रेणु ने भय और घबडाहट से कातर हो जाने पर भी स्वाभाविक धीरता के साथ ही अर्ध अचेतन पिता से पूछा—बाबू जी, नबू काका को, या भैया लोगो को बुलाऊँ क्या?

ब्रज बाबू ने अति कष्ट से केवल कहा—राजू—

रेणु ने उसी दिन ही राखाल के पास आने के लिए तार भेज दिया।

गाँव के चिकित्सक मेडिकल कालेज के छठे वर्ष के एम० बी० फेल हैं। गाँव मे रोजगार कम नही जमा है। ब्रज बाबू की परीक्षा करके उन्होने कहा—सिर मे रक्त का चाप अत्यधिक बढ जाने से ऐसा हुआ है। सतर्कता के साथ चिकित्सा और शुश्रूषा होने से इस बार बच जायेंगे। किंतु भविष्य मे पुन ऐसी बात होने से जीवन की आशा अल्प ही है। अभी से विशेष सावधान रहने की जरूरत है।

राखाल अपने मित्र योगेश के मेस से उस दिन डेरे पर पहुँचा रात को प्राय: साढ़े ग्यारह बजे। योगेश ने किसी तरह भी राखाल को नही छोडा। खिला ही दिया।

दिल्ली मे कुछ अविवाहिता कयाएँ राखाल की आपत्ति रहने पर भी उसे दिखायी गयी थी। उन्ही पात्रियों में से एक पात्री के काका कलकत्ते के आफिस मे नौकरी करते हैं। दिल्ली से पात्री के पिता के तकाजे के अनसार पात्री के चाचा ने आकर योगेश को पकडा है। राखाल बाबू के साथ उनकी भतीजी का विवाह करा ही देना पडेगा। वे भले आदमी, सुना जाता है कि योगेश से इस तरह अनुनय-विनय कर रहें, कि, स्वय विवाहित और अन्य जातीय न होने पर योगेश शायद उस अरक्षणीया का रक्षण भार करके उसके काका के अनुनय-विनय के उपद्रव से आत्मरक्षा कर लेता।

पात्री का एक फोटोग्राफ भी योगेश ने राखाल को दिखाया है। यदि चेहरा याद न रहे इसलिए काका इस फोटो को योगेश के पास रख गये हैं।

राखाल ने पहले तो हँसकर ही उडा दिया था, किंतु योगेशचन्द्र छोडने वाला नही था। वह जी जान से तर्क और युक्ति से समझाने लगा यदि पात्री की उम्र, चेहरा, शिक्षा और उसके पितृ-कुल के संबंध में कोई बात राखाल को नापसद न हो तो वह विवाह करेगा क्यों नहीं?

योगेश जानता है, राखाल विवाह मे दहेज-तिलक लेने की प्रथा को सच्चे हृदय से घृणा करता है, संसार मे राखाल की अपेक्षा कम आमदनी वाले लोग भी विवाह करके स्त्री-कन्या का पालन कर रहे हैं। और योगेशचन्द्र भी तो उनमे से अन्यतम उदाहरण है। किंतु मध्यम वर्ग के विवाहित व्यक्तियों की जीवन-प्रणाली बडे लोगो के अनुकरण पर शायद नहीं चलती। मित्र के विवाह में या महिला-मित्र के

जन्म-दिवस पर न्यूमार्केट के फूल का बास्केट उपहार अथवा सुन्दर जिल्द मे बिना मूल्यवान सस्करण का रवीन्द्र नाथ अथवा शेली ब्राउनिग का ग्रथ उपहार देने मे विघ्न पड सकता है। विलायती सैलून मे आठ आने मे बाल छँटाने के बदले मे देशी नाई से बाल छँटाने को तब वह बाध्य हो सकता है। किंतु विवाह-योग्य पुरुष यदि विवाहोपयोगी अवस्था मे केवल दायित्व भार ढोने के भय से अथवा अपने विलास और निर्विघ्न मुक्ति मे बाधा पडने की आशका से विवाह से विमुख हो जाता है तो उससे बढ़ कर पुरुष ससार मे विरल ही होगा। हिसाब करके देखा जाता है विवाह के अयोग्य व्यक्ति विवाह करके जितना अपराध करता है, उनसे बढकर अधिक दोषी और अश्रद्धेय वे लोग है—जो लोग योग्यता रहने पर भी, मुक्ति मे विघ्न पडने की आशका से और दायित्व से बचने के ही लिए चिरकुमार रहना चाहते हैं, इत्यादि।

राखाल निर्विकार हँसी भरे चेहरे से मित्र की युक्तियो और भर्त्सनाओ को हजम कर गया। अन्त मे भोजन आदि के बाद डेरे को लौटते समय योगेश के बार-बार के अनुरोधपूर्ण दबावो के उत्तर मे बोला—मुझे सोचकर देखने का कुछ थोडा सा समय दो भाई।

योगेश ने उत्साहित होकर कहा—बहुत अच्छा, यह तो अच्छी ही बात हे। तो अनुमान से किस समय तक तुम्हारा उत्तर मिल जायगा बता दो। आगामी परसो? कैसा?

राखाल ने हँस कर कहा—इतना अधिक समय दे रहे हो क्यो? कह दो न, अगले भोर मे—

योगेश ने जरा लज्जित होकर कहा—नही, नही, यह बात नही है। किंतु जानते तो हो, उन लोगो पर कन्या का भार तो है कि नही। कुछ अधिक व्याकुल हो गये हैं। तुम्हारा यह 'सोच कर देखने' का समय उन लोगो के लिए खूनी असामी के जज की फैसला सुनने के लिए प्रतीक्षा करने की ही तरह साँस रोक देने वाली प्रतीक्षा है, इसीलिए मैं कह रहा था।

राखाल ने कहा—तुम घबडाओ मत। मैं इधर कुछ ही दिनो मे तुमको बता जाऊँगा।

योगेश को प्रसन्न करके राखाल जब उसके मेस से बाहर निकला तो रात को दस बज चुके थे। मित्र के आग्रहपूर्ण अनुरोध की बात सोचते-सोचते ही वह राह चल रहा था।

विवाह की पात्री को वह दिल्ली मे अपनी ही आँखो से देख आया है। उम्र अठारह उन्नीस साल की होगी। खूब मोटी ताजी गोलगाल है। रग गौर न होने पर भी काली नही कहा जा सकता। चेहरे पर लावण्य है। लिखना पढना साधारण तौर पर सीख चुकी है। सूचिशिल्प और रसोई आदि गृहकर्मो मे सुनिपुणा कह कर पात्री के पिता ने उच्छ्वसित सार्टीफिकेट को अपने मुँह से ही बिना माँगे दाखिल कर दिया है।

लडकी राखाल को और योगेश को नमस्कार करके अत्यन्त गभीर चेहरे से अत्यधिक अवनत सिर मे जडवत् होकर बैठी हुई थी। वही लडकी यदि प्रजापति के दुर्विपाक से उसकी पत्नी बनकर घर मे आ जाय तो कैसी जँचेगी? लडकी का वह अति गभीर मुँह और ऊँचा करके बँधा हुआ डीलकी तरह बडे जूडे के साथ अत्यन्त झुका हुआ माथा याद पड जाने से राखाल को एकाएक अत्यन्त हँसी आ गयी।

जीवन की सभी अवस्थाओ मे सब तरह के सुख-दुःख मे पास खडी रह कर हँसते हुए चेहरे से आश्वासन दे सकती है, आनन्द और तृप्ति सामने रख सकती है, ऐसा भरोसा क्या किया जा सकता है, उस लडकी पर? हटो हटो।

दिल्ली में और जो कई पात्रियाँ राखाल को दिखाई गयी थी, वे भी न्यूनाधिक तथैवच। राखाल के मानसपट मे चिता मे बहुतेरी बालिकाओ, किशोरियाँ युवतियो के तरह-तरह के सौन्दर्यो के चित्र फूट उठने लगे। किंतु उनमे से ऐसी एक को भी वह मन मे बैठा न सका जिसके ऊपर अपने जीवन के सुख-दुःख का सब भार रखकर निश्चिन्त निर्भरता प्राप्त करना सभव हो।

सभी चेहरो को आड मे रख कर एक कोमल शात और बुद्धि से चमकता हुआ चेहरा उसके मानस पट पर तैरने लगा। किंतु विवाह की पात्री चुनने के मामले मे वह चेहरा स्मरण मे जागने का कोई अर्थ ही नहीं होता, यह बात और किसी की अपेक्षा राखाल स्वय ही अच्छी तरह जानता है। किंतु वह जो भी हो, राखाल के प्रति प्रगाढ़ विश्वास और श्रद्धा से उस चेहरे की कान्ति ही भिन्न प्रकार की है जिसकी तुलना और किसी के साथ नही की जा सकती।

केवल विश्वास और श्रद्धा ही नही, अत्यन्त स्वजन सुलभ निविड हार्दिकता की मधुरता उन दोनो की स्निग्ध दृष्टि मे, स्वच्छ हँसी की भगी से जो आप ही आप झर पडती थी, उसके साथ ससार मे और दूसरे के साथ क्या उपमा दी जा सकती है। राखाल तो उसी की ऐकान्तिक श्रद्धा जडित अकुण्ठ निर्भरता प्राप्त करके ही आज अपने को विवाह के लिए दायित्व युक्त व्यक्ति कह कर क्षणकाल के लिए भी सोचने को समर्थ हुआ है।

सोचते-सोचते भावना के मूल सूत्र को खोकर राखाल शारदा के ही बारे मे सोचने लगा।

शारदा ने उस दिन रात के समय उससे कहा था—आप बहुतो के लिए बहुत करते हैं, मेरे लिए भी आपने किया था, उससे आपकी हानि नही हुई, यदि मै जीवित रही तो इतनी ही बात केवल जान रखना चाहती हूँ।

कितु सचमुच ही क्या यही बात है! राखाल बहुतो के लिए बहुत करता है, यह बात शायद सच है। शारदा का भी उसने सामान्य उपकार या कुछ सहायता की है। किंतु उससे राखाल की क्या कुछ क्षति नही हुई है? ऐसी बात यदि न भी हुई हो तो क्यो वह उस दिन रात्रि के समय इस तरह अपने आप को सयत रखने मे असमर्थ हुआ? केवल शारदा को ही जो उसने रूढ तिरस्कार किया इतना ही नही है, अपनी मातृ स्थानीय नयी माँ तक को भी कटु वचन सुना दिया एक तीसरे व्यक्ति के सामने ही।

तारक को यदि शारदा आदर यत्न करती है तो इसमे राखाल को क्षुब्ध होने का क्या कारण है? शारदा के लिए राखाल भी जो है, तारक भी वही है, बल्कि राखाल की अपेक्षा तारक विद्वान, बुद्धिमान और विलक्षण है। उसके इन्ही सब गुणो का उल्लेख किया था उस दिन शारदा ने, इससे उसने ऐसा कौन सा अपराध किया है जिसके लिए राखाल इस तरह जल उठा? क्यों उसने अपने को अकस्मात् वचित और क्षतिग्रस्त अनुभव किया?

सोचते-सोचते मुँह, आँख और कान गरम होकर जलने लगे। निकटस्थ एक पार्क मे प्रवेश करके एकान्त कोने की एक खाली बेच पर राखाल लम्बा होकर लेट गया। आँखे बद करके सोचने लगा दो-तीन दिन पहले एसप्लैण्ड के मोड पर वह ट्राम के लिए प्रतीक्षा कर रहा था। एक चलती हुई मोटर से झुककर विमल बाबू ने हाथ हिलाकर उसकी दृष्टि आकर्षित की थी, राखाल के विमल बाबू की तरफ ताकने पर वे मोटर रोककर हाथ के इशारे से उसको निकट बुलाकर गाडी से रास्ते पर उतर पडे थे। राखाल उनके पास गया तो विमल बाबू ने सबसे पहले प्रश्न किया—अपने काकाजी और रेणु की कोई चिट्ठी-पत्री मिली है क्या राजू?

अति मात्रा मे विस्मित होकर राखाल ने कहा था, क्यो बताइये तो!

विमल बाबू ने कहा—उनके साथ मेरा परिचय है। गाँव जाने पर वे लोग कैसे है, खबर मुझे नही मिली, इसीलिए तुमसे पूछता हूँ।

राखाल ने जवाब दिया था, वे लोग अच्छी तरह ही है।

विमल बाबू ने कहा था, तुमको चिट्ठी कब मिली है?

उसने उत्तर दिया था, चार दिन हो गये शायद। उसके बाद मौखिक सौजन्य से उसने विमल बाबू से पूछा था—आप किस तरफ जा रहे है?

विमल बाबू ने उत्तर दिया था—एक बार शारदा बेटी की खोज-खबर लेने के लिए जा रहा हूँ।

इससे अति मात्रा मे आश्चर्य मे पडकर उसने अकस्मात् प्रश्न कर दिया—कौन शारदा?

विमल बाबू ने कुछ आश्चर्य मे पडकर जवाब दिया था—शारदा को तो तुम पहचानते हो।

राखाल ने सूखे स्वर से कहा था, वह तो यहाँ नही है! नयी माँ के साथ हरिणपुर तारक के यहाँ गयी है।

विमल बाबू ने कहा था, यह क्या? तुम क्या नही जानते कि शारदा तुम्हारी नयी माँ के साथ हरिणपुर नही गयी?

राखाल ने उत्तर दिया था—नही। यह खबर मैंने नही सुनी। मै उन लोगो के जाने के एक दिन पहले रात्रि के समय तक शारदा का वहाँ जाना पक्का है यही देखकर आया था।

विमल बाबू ने कहा था—वही पक्का था जरूर, किन्तु मैंने स्टेशन जाकर देखा वहाँ शारदा गयी नही थी।

बेदाना, अगूर नारगी आदि फलमूल और रोगी के लिए जरूरी अन्यान्य खाद्य सामग्री भी खरीद लेनी पड़ेगी। इसलिए नौ बजे की गाडी मिलना असभव है। दूसरी ट्रेन साढे बारह बजे आती है—काफी समय है. दरवाजे पर ताला लगाकर राखाल चिन्तित चेहरे से शारदा से भेट करने के लिए चल पडा। कलकत्ता छोड बाहर जाने के पहले एक बार उसको बतला जाना उचित है। इच्छा थी कि, वहाँ ही झटपट चाय पी कर जरूरी सामग्री सब खरीद कर साढे बारह बजे की ट्रेन से रवाना हो जायगा।

शारदा के डेरे पर पहुँच कर राखाल ने देखा चबूतरे पर चटाई बिछा कर शारदा चारपाँच छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियो को पढा रही है। कोई स्लेट पर लिख रहा है, कोई हिज्जे सीख रहा है, कोई पहाडा कठस्थ कर रहा है। धीरे-धीरे खडी होकर बच्चो को उसने कहा—जाओ, तुम लोगो को अब छुट्टी रही। आज दोपहर मे पढना होगा।

लडको के चले जाने पर शारदा चबूतरे से आँगन मे उतर कर राखाल को प्रणाम करके बोली—खडे है क्यो चलिये कमरे मे बैठिये।

राखाल ने सूखे गले से कहा—नही, बैठने का अब समय नही है, दो एक बात पूछ कर ही चला जाऊँगा।

राखाल ने शायद मन ही मन आशा की थी शारदा मुझे अचानक देखकर आश्चर्य और आनन्द से अभिभूत हो जायगी। किन्तु शारदा के व्यवहार से मालूम हुआ कि राखाल आज इस समय आवेगा यह बात वह मानो पहले से ही जानती थी।

पहले तो रेणु का टेलीग्राम पाकर उसका मन था उद्विग्न चचल, उस पर से शारदा की सहज शात अभ्यर्थना ने राखाल के चित्त को फीका बना दिया। मन के भीतर एक ऐसा अकारण अभिमान घूमने लगा जिसका कारण स्पष्ट रूप से बताना कठिन है।

राखाल ने कहा—तुम नयी माँ के साथ हरिणपुर नही गयी सुना है।

शारदा चुप हो रही।

उत्तर न पाकर राखाल ने फिर कहा—क्यों नही गयी क्या मैं जान सकता हूँ।

शारदा कोई भी उत्तर नही देती देखकर राखाल के मन मे उत्तरोत्तर उत्ताप बढता जा रहा था। उसकी मौनता तोड देने के लिए शायद वह इस बार बोल उठा—मेरा ऋण तो उस दिन कौडी छदाम तक तुमने चुका दिया। इसलिए बात का उत्तर न देने से भी काम चलेगा, किंतु नयी माँ का ऋण भी इसी समय के बीच भी क्या तुमने चुका दिया है शारदा?

शारदा के चेहरे पर वेदना का चिह्न सुस्पष्ट हो उठा। तो भी उसने इस कठिन उपहास का उत्तर नही दिया। मृदु कठ से उसने कहा—आपको जो कुछ कहना हो कमरे मे चलकर कहिये। यहाँ खडे रह कर बीच बाजार मे मत कहिये। कमरे मे चलकर बैठिये। मैं अभी तुरन्त ही आ रही हूँ। चले मत जाइयेगा मेरा अनुरोध रहा।

ये बाते कहते-कहते ही शारदा एक ही क्षण मे चबूतरे के दूसरी तरफ घेरा डाले हुए कमरे किरायेदार के हिस्से मे अन्तर्हित हो गयी। विरक्त राखाल उसको लक्ष्य करके घबडाहट भरी आवाज से कहने लगा—नही नही मुझे बैठने का समय बिल्कुल ही नही है। अभी तुरन्त मुझे जाना पडेगा, जो कहने आया हूँ—सुन जाओ—

किन्तु शारदा तब तक चली गयी थी। राखाल थोडी देर तक आँगन मे खड़ा रह कर चला जाय या और थोडी देर तक प्रतीक्षा करे इसी दुविधा मे पड गया। अन्त मे विरक्त चित्त से शारदा के कमरे मे जाकर बैठ ही गया। पाँच आदमियो के मकान मे चिल्ला कर शारदा को बार बार पुकारा भी नही जा सकता खडा रहना और भी भद्दा लगता है। राखाल के कमरे मे बैठ जाने के एक मिनट के अन्दर ही शारदा एक छोटी एल्युमिनियम की केटली की डण्डी पर साडी का आँचल लपेट कर उसे मुट्ठी मे पकड कर कमरे मे आ गयी। ढक्कन से ढकी हुई केटली से थोडा-थोडा गरम धुआँ निकल रहा था। कमरे के कोने मे केटली उतार कर रख देने के बाद तेज हाथ से खिडकी के ऊपर के ताखे से एक खूब सफेद चमकदार भरा काँच का प्याला पिरीच और एक नया चम्मच उतार लिया। चाय का टीन बिलकुल ही नया है, पेच खोला नही गया है। शारदा ने लेबल फाड कर तेज हाथ से टीन खोल कर केटली के जल मे

चाय की पत्ती डाल कर ढक्कन से दबा दिया। उसके बाद प्याला, पिरीच और चम्मच को बाहर से धोकर ले आयी और उसके साथ ही ले आयी कागज की पोटली मे चीनी और छोटे से कॉसे के गिलास मे ताजा दूध।

कुर्सी पर बैठ कर राखाल चुपचाप शारदा का काम करना देख रहा था। दिन चढ़ आया है काफी किंतु चाय पीना नही हुआ है। माथे में दर्द उठने की नौबत आ रही है। इसलिए शारदा का चाय का आयोजन देखकर उसकी विरक्ति और अभिमान बहुत कुछ ही घट गया था। तथापि सभ्रम बचा रखने के ही लिए उसने कहा—इतनी समारोह कर के चाय बन रही है किसके लिए?

शारदा ने प्याली की चाय छानते-छानते मुसकुराकर गरदन घुमा कर एक बार राखाल की तरफ देखा। उसके बाद उसने फिर अपने काम मे मन लगाया।

मन ही मन लज्जित होने पर भी राखाल तब यह कह न सका—मैं उसे न पीऊँगा। तब तक शारदा दूध चीनी मिली सुनहले रंग की गरम चाय मे चम्मच हिलाते-हिलाते पिराच समेत प्याले को राखाल के सामने रख चुकी थी।

लेने मे कुछ हिचक दिखला कर राखाल ने कहा—इसके लिए इतनी देर तक मुझे रोक रखना तुम्हारे लिए उचित नही हुआ शारदा, कुछ भी जरूरत नही थी इसकी।

शारदा ने अत्यन्त निरीह की तरह मुँह बनाकर कहा—मैं यह जानती नही थी। अच्छा तो रहने दे, वापस ले जाऊँ।

ओठो के छोर पर दबी हुई दुष्ट हँसी थी। राखाल उस हँसी को पहचानता है। उसकी छाती के अन्दर काँप उठा, हाथ बढ़ाकर बोला—ना बना ही चुकी हो जब कि मेरे नाम पर तब वापस ले जाना ठीक न होगा।

शारदा इस बार ओठ दबाकर हँसते-हँसते चाय का प्याला हाथ मे उठा कर देकर चुपचाप बाहर चली गयी। थोड़ी ही देर में सफेद कॉच के एक प्लेट में कई गरम सिघाडे और दो ताजा राजभोग रसगुल्ला ले कर लौट आयी। राखाल ने प्लेट की तरफ दृष्टिपात करके कहा—वह सब फिर क्यो ले आयी शारदा।

शारदा ने गभीर मुँह से कहा—चाय के साथ जलपान के लिए। किन्तु चाय के प्याले को तो खाली कर देना पड़ेगा इस बार और एक प्याला चाय आपको छान कर दूँगी। मेरे यहाँ दूसरा प्याला नहीं है।

राखाल ने इस बार फिर आपत्ति नही उठायी। एक ही साँस मे बाकी चाय पीकर प्याले को फर्श पर उतार रखा। उसके बाद निर्विवाद ही जलपान के प्लेट को उठा लिया।

शारदा चाय की दूसरी प्याली ले आकर सामने खडी हो गयी तो राखाल ने खाते-खाते मुँह ऊपर न उठा कर ही प्रश्न किया—अच्छा शारदा, तुम खुद तो चाय पीती नही। घर मे चाय का सामान रखा है किसके लिए।

शारदा ने निरीह चेहरे से कहा—यही मान लीजिये, तारक बाबू टाबू—

राखाल ने कहा—ओ—समझ गया। हाथ के अर्ध समाप्त सिघाडे को खतम करके जल खाबा समेत प्लेट को राखाल ने नीचे उतार रखा।

शारदा घबडाकर झुक पडी और अकृत्रिम व्यग्रता से बोल उठी—यह क्या? रसगुल्ला तो आपने बिलकुल छुआ ही नही। नही, नही, यह नही होगा देवता? उठा लीजिये रिकाबी। सब ही न खाने से मैं सिर पटक कर मरूँगी कहे देती हूँ।

अकस्मात् शारदा की इस आन्तरिक चचलता से राखाल अवाक् विमूढ की तरह परित्यक्त को उठाकर बोला—किन्तु मुझे तो सचमुच ही खाने की रुचि नही है शारदा। सब जलपान न खाने से सचमुच ही क्या तुमको कष्ट होगा?

शारदा ने लाल मुँह के साथ कहा—हाँ, हाँ, होगा। आप खाइये कहती हूँ। रसगुल्ला आप कितना पसंद करते हैं क्या मैं नही जानती? सबेरे रोज ही तो आप चाय के साथ गरम सिघाडा मगाकर खाते है। बताइये, खाते नही हैं?

राखाल ने विस्मित कौतुक के साथ कहा—किंतु तुम इन सब गुप्त समाचारो को जान गयी कैसे?

शारदा ने शातभाव से कहा—मैं जानती हूँ। उसके बाद वह हँसते हँसते बोली—अच्छा, शपथ करके बताइये तो, एक प्याला चाय पीने से आपकी प्यास किसी दिन मिटती है। दो प्याला चाय न मिलने से मन खट खट करता है या नही?

राखाल ने रसगुल्ला से भरे हुए गाल से भारी स्वर मे कहा—हूँ, समझ गया। किंतु मैं जो अपने डेरे पर चाय पीता हूँ, ठीक इसी तरह के बडे प्याले मे, तारक भी यह खबर भी तुमको दे गया है?

शारदा ने जवाब नही दिया। राखाल का चाय पीना और जलपान हो जाने पर मुँह धोने का जल सुपारी इलायची लाकर दे दिया।

हाथ मुँह धोने के लिए एक साफ गमछा हाथ मे देकर शारदा बोली—आँगन के बीच मे खडे होकर ऊँची आवाज मे जो बात कहना चाहते थे, अब आँगन मे उतर कर उसे कह दीजिये चलिये।

राखाल ने लज्जित होकर कहा—शारदा, मैं देखता हूँ कि तुम आजकल प्रत्येक बात मे मेरा उपहास करती हो।

जीभ काट कर शारदा ने कहा—बापरे! क्या कहने हैं, देवता! इतना बडा दुस्साहस मुझे नही है। ब्रह्म तेज से क्या मैं राख न हो जाऊँगी।

राखाल ने गभीर मुँह से कहा—मैं जान लेने आया था, तुम नयी माँ को अकेली हरिणपुर भेज कर किस भारी जरूरत से कलकत्ते मे रह गयी! तुमको सच-सच इसका जवाब देना होगा।

शारदा थोडी देर तक चुप हो रही। बाद को बोली—पहले आप मेरी एक बात का सच-सच जवाब देंगे बताइये?

दूँगा।

जो प्रश्न आपने मुझसे पूछा है, स्वय ही क्या सचमुच उसका जवाब आप नही जानते?

राखाल मुश्किल मे पड गया। हुटक-हुटक कर बोला—मैने जो अनुमान किया है वह ठीक है या नही जान लेने के ही लिए तो तुमसे पूछ रहा हूँ शारदा!

शारदा ने कहा—तो आप जान रखिये, अपने मन से जो जवाब आपको मिला है, वही सच है। अपना हृदय कभी मनुष्य को धोखा नही देता।

राखाल चुप रह कर बैठा रहा। शारदा जूठा प्याला, पिरीच और रेकाबी उठाने की तैयारी कर रही थी, उसी तरफ देख कर राखाल ने कहा—तो भी अपने मुँह से तुम साफ बतला नही सकी, क्यो गयी नही।

शारदा ने हँसकर हाथ का जूठा-प्याला और प्लेटो को इशारे से दिखाकर कहा—इसी के लिए नही गयी। अब स्पष्ट जवाब मिला तो। यह कहकर वह बाहर चली गयी।

राखाल चुपचाप बैठा रहा। सोचने लगा कुछ दिन पहले मैंने कहा था, दुनिया मे शारदाओ को बहुत देख चुका हूँ। किंतु सचमुच ही क्या बात है? इस शारदा की बराबरी की क्या एक भी स्त्री से जीवन मे मुलाकात हुई है। जीवन दान के मूल्य मे इस प्रकार नि शब्द जीवन उत्सर्ग और कौन कर सकती है?

धुले बर्तनो को लाकर ताखे पर सजाकर रखते-रखते शारदा ने कहा—पहले जिस दिन मेरे घर मे आपके पैरो की धूलि पडी थी देवता, आपको चाय बनाकर मैंने पिलाना चाहा था। आपने कहा था, असमय मे चाय पीना मुझसे सहा नही जाता। जलपान लाकर देना चाहा था, मेरा आग्रह देखकर आपको दया उत्पन्न हो गयी थी। आपने कहा था—फिर जिस दिन समय पाऊँगा, मै खुद ही माँग कर तुम्हारी चाय तुम्हारा जलपान खा जाऊँगा तभी से मैंने चाय का सामान जुटाकर घर मे रख छोडा है। जानती थी एक दिन न एक दिन आप इस घर मे बैठ कर मेरे हाथ की चाय और नाश्ता ग्रहण करेगे ही। किंतु आपने कहा था खुद ही माँग कर खाऊँगा। मेरे भाग्य मे वह अब नही हुआ।

राखाल स्तब्ध होकर बैठा रहा। उसे याद पड गया बाजार करके शीघ्र डेरे पर लौट जाना आवश्यक है। चौंक कर वह खडा होकर बोला—आज मैं जा रहा हूँ शारदा! साढे बारह बजे मुझे ट्रेन पकडने की जरूरत है।

शारदा ने आश्चर्य में पडकर पूछा—कहाँ जाइयेगा?

काकाजी बहुत बीमार हैं। रेणु ने वहाँ जाने के लिए तार भेजा है।

शारदा ने चिन्तित चेहरे से कहा—नयी माँ के पास आपने खबर भेज दी है?

नही, नयी माँ तो हरिणपुर मे हैं? तुम उनकी चिट्ठी पत्री पाती हो क्या।

हाँ। वे प्रति चिट्ठी मे काकाजी और रेणु का समाचार जानना चाहती हैं। आपका कुशल समाचार प्रत्येक पत्र मे पूछती हैं।

राखाल ने कहा—तो हर हालत मे तुम उनके पास यह खबर लिख देना। मुझे उन्होने चिट्ठी-पत्री नही लिखी।

शारदा ने कहा—लिख दूँगी। जरा ठहरिये देवता। मुझे लौटने मे देर न होगी।

शारदा टीन का बक्स खोलकर कुछ कपडे निकाल कर लेकर कमरे से बाहर चली गयी।

राखाल को अधिक क्षण प्रतीक्षा करनी नही पडी। कुछ मिनटो मे ही शारदा मिल की साफ साढी और मोटी शेमिज से वेश मे एक छोटी सी पोटली हाथ मे लेकर कमरे मे आयी।

आश्चर्य मे पडा हुआ राखाल शारदा के मुँह की तरफ देखने लगा तो शारदा ने कहा—मुझे भी तो आपके साथ चलना पडेगा देवता।

राखाल ने अतिरिक्त आश्चर्य मे पड कर कहा—तुम कहाँ जाओगी मेरे साथ?

काकाजी बीमार हैं। रेणु नादान लडकी अकेली है। मैं वहाँ जाने पर बहुत सी जरूरतो मे लग सकूँगी।

राखाल ने भौंहे टेढी करके कहा—किंतु—

बीच ही मे रोककर शारदा ने कहा—ऐसा मत कीजिये देवता। आपके दोनो पैरो पर गिरती हूँ। काकाजी मुझे पहचानते हैं, रेणु भी मुझे जानती है, मेरे जाने से वे लोग नाराज नही होंगे, देखियेगा। शारदा के कंठ-स्वर मे निविड विनती फूट उठी।

राखाल खडा होकर सोचने लगा। सोच कर उसने देख लिया शारदा को साथ ले जाने से लाभ के सिवा कोई हानि न होगी। उसने कहा—अच्छा तो चलो। किंतु तुम्हारा खाना-पीना तो हुआ नही। मैं बाजार से लौट आता हूँ। तुम ग्यारह बजने के पहिले स्नान-भोजन करके तैयार हो जाओ।

शारदा ने पूछा—आपके खाने का क्या होगा?

मैं स्टेशन पर रेस्तराँ मे खा लूँगा ठीक किया है।

मेरी रसोई चढी हुई है। आप साढे दस बजने के पहिले खाना तैयार पाइयेगा। यही आज थोडा सा खा लीजिये न देवता।

नही, नही। मेरे खाने के लिए तुमको बखेडा करना न पडेगा। मैं दूकान से खाने की चीज खरीद सकूँगा।

आपको भात खाना न पडेगा। गरम पूडी छान दूँगी। पूडी खाने मे आपको आपत्ति क्या है?

आपत्ति कुछ भी नही है। अभी उसी दिन तो रात को निमत्रण खाया था तुम्हारे पास। अभी पेट के अन्दर चाय नाश्ता हजम नही हुआ है।

तो इस हालत मे दो चार पूडियाँ ही छान डालूँ।

यदि खाऊँगा तो भात खाऊँगा, पूडी नही। जात की बला मुझे नही है। अभी तक मैं तारक बाबू नही बना हूँ।

शारदा हँस कर कहा—तारक बाबू पर इतने नाराज क्यो हैं देवता।

राखाल ने हँस कर कहा—अवश्य ही तुम जानती हो तारक जिसके-तिसके हाथ का अन्न ग्रहण नही करता।

शारदा हँसने लगी, उसने जवाब नही दिया।

राखाल ने कहा—तो मैं जा रहा हूँ। सब चीज-सामान खरीद कर एक बार डेरे पर स्नान करके बक्स बिछौना लेकर लौटूँगा यहाँ। तुम तैयार रहना।

राखाल बाहर चला गया। लौट आया प्राय पौने बारह बजे। एक फल की टोकरी मे नारंगी बेदाना अँगूर आदि तालमिश्री-बार्ली, पार्ल सागू, एक टीन उत्कृष्ट मक्खन, एक टीन रोगी के लिए पथ्य हलका बिस्कुट इत्यादि खरीद लाये हैं। इसके अलावा बेडपैन, हाट वाटर बैग, आइस बैग, आयल क्लाथ आदि रोगी के लिए आवश्यक कुछ सामान भी उसने खरीद लिये हैं। और है उसका अपना बिछौना और बक्स।

राखाल ने लौट आने के साथ ही भात माँगा। शारदा ने अपने कमरे की फर्श पर आसन बिछा कर चौका लगा दिया था। राखाल के लिए हाथ पॉव धोने का जल और अंगोंछा आगे वढकर देने के वाद भात परोस कर वह ले आयी।

राखाल ने पूछा—तुम तैयार हो न शारदा?

शारदा ने जवाव दिया—मैं तो वहुत देर से ही तैयार हूँ।

राखाल ने आसन पर वैठ कर चुपचाप भोजन करने मे मन लगाया। आहार का आयोजन अत्यन्त साधारण ही था। किंतु उसके पीछे जो आन्तरिक और सयत्न आग्रह विद्यमान था, उसका परिचय राखाल के हृदय को अज्ञात नही रहा, तृप्ति पूर्वक भोजन करके उठने पर शारदा ने अँचवीने का जल हाथ पर ढाल दिया। राखाल जीवन में किसी दिन ऐसी सेवा ग्रहण करने मे अभ्यस्त नही है। इसलिए उसे यथेष्ट हिचक रुकावट-सी मालूम हो रही थी, किंतु शारदा के इस ऐकान्तिक आग्रहपूर्ण सेवा यत्न मे वाधा देने की प्रवृत्ति उसे नही हुई। आचमन का जल हाथ पर डाल कर दॉत साफ करने की सीक उसने दी। उसके वाद गमछे को राखाल के हाथ पर रख कर शारदा ने कई पान के सजे वीडे लाकर सामने रख दिये।

राखाल ने कहा—इसे ही कहते है विधाता की कृपा। कहॉ स्टेशन पर खरीदा हुआ खाना और कहॉ शारदा के हाथ का वना अमृतोपम अन्न व्यंजन! मय आचमन का जल, दॉत साफ करने की सीक, हाथ पोछने का गमछा, कमरे में सजा हुआ पान, आज मैं किसका मुँह देख कर उठा था।

शारदा मुसकराने लगी, कुछ भी नही वोली। राखाल की जूठी थाली कटोरी वाहर ले जाते-जाते कह गयी—आप जरा वैठिये। मैं दस मिनट मे आ रही हूँ।

राखाल एक सिगरेट जलाकर खाली चौकी के एक कोने मे वैठ कर तृप्ति के साथ खीचने लगा, उसने देखा, शारदा एक मलिन छोटी दरी से लपेटे हुए विछौने का छोटा बण्डल चौकी पर रख गयी है। चारों तरफ दृष्टिपात करके देखा कपड़े लत्ते की गठरी या बक्स नही है।

शारदा लौट आयी सचमुच ही दस मिनट के अन्दर। राखाल ने पूछा—तुम्हारा खाना हो चुका शारदा?

शारदा ने कहा—खाने ही तो गयी थी।

यह क्या? इतने ही समय मे खाना हो गया? अवश्य ही तुमने अच्छी तरह खाया नहीं।

शारदा ने हँसकर कहा—आज मैंने सवसे ज्यादा अच्छी तरह खाया है। देवता का प्रसाद क्या टीन बनाकर खाया जाता है? अव लीजिये, उठिये। सव तैयार है, देखती हूँ आपका तो लगेज अनेक हैं। एक है सूटकेस, एक विछौना, एक आम की टोकरी, एक मे किंग वक्स, एक मे एक वहुत भारी लगेज।

राखाल ने शारदा के परिहास का जवाव न देकर कहा—तुम्हारी वेडिंग तैयार है देखता हूँ। कपड़े-लत्ते का बक्स कहाँ?

शारदा ने कहा, तीन साडियो को और शेमिज है उनको भी उस विछौने के साथ ही मैंने वॉध दिया है।

राखाल ने आश्चर्य मे पडकर कहा—उससे काम चलेगा कैसे?

शारदा ने मुसकरा कर कहा—काफी है। गदा हो जाने पर साबुन से साफकर दूँगी। जैसा कि रोज ही यहाँ करती हूँ।

राखाल कुछ गुम हो रहा वार-वार उसे यह खयाल आने लगा—कपडो का तुमको इतना अभाव है, यह क्या मुझसे वता देने से तुम्हारा अपमान होता शारदा? किंतु मुँह खोलकर कुछ भी न कह सका। क्रोध के झोक मे रुपया वापस लेने की वात याद पड जाने से यह अपने को अपराधी सोचने लगा। राखाल ने उदास कठ से कहा—तो अव टैक्सी ले आऊँ।

शारदा चौंक उठी—अरे माँ वतलाना विलकुल ही भूल गयी देवता—आपके वाजार करने के लिए वाहर चले जाने के थोडी देर वाद ही विमल वावू आये थे। वे कह गये कि एक जरूरी काम से जा रहे हैं, अभी तुरन्त ही लौट आवेगे। आपके साथ उनकी जरूरत है। वे अपनी मोटर से हम लोगों को स्टेशन तक पहुँचावेगे कह गये हैं।

राखाल के मुँह के भाव की कोमलता अन्तर्हित हो गयी। उसने रूखे स्वर मे कहा—आज अब उनमे भेट करने का समय नही है शारदा। लौट आने पर भेंट होगी, देर करने से काम नही चलता। मैं टैक्सी लाने जा रहा हूँ। राखाल की बात खतम होने के पहले ही सदर दरवाजे के सामने मोटर का हार्न सुनाई पडा। और बाहरी आँगन से विमल बाबू की आवाज भी सुनाई पड़ी—शारदा बेटी—

शारदा ने बाहर निकल कर कहा—आइये।

विमल बाबू ने कमरे मे प्रवेश करके कहा—यही तो राजू आ गया है। भाग्य अच्छा था कि आज इस तरफ जरूरी काम से मैं आया था। खयाल हुआ कि, निकट ही जब कि आ गया हूँ, शारदा बेटी को एक बार देख जाऊँ। यहाँ आकर मैंने सुना कि ब्रजबाबू की बीमारी का तार पाकर तुम लोग आज ही रवाना हो रहे हो। चलो, तुम लोगो को पहुँचा आऊँ। आज बडी मोटर से ही बाहर निकल पड़ा हूँ। माल असबाब ले जाने मे असुविधा न होगी।

इच्छा न रहने पर भी राखाल आपत्ति न कर सका। चीज-सामान सब गाड़ी पर रखे जाने पर विमल बाबू ने राखाल का हाथ पकड कर कहा—राजू, मेरी एक अनुरोध मान लो। ब्रज बाबू की बीमारी में यदि किसी तरह की सहायता की जरूरत तुम समझो, मुझे तार भेजना भूल मत जाना। बीमारी मे अर्थबल और जनबल दोनो ही आवश्यक है। तुम खबर दोगे तो उसी क्षण बड़े डाक्टर को लेकर रवाना हो सकूँगा। मैं ब्रज बाबू और रेणु का अकृत्रिम हितैषी हूँ, विश्वास करने मे दुविधा मत करना।

विमल बाबू के स्वर की दृढ़ता से राखाल शायद कुछ अभिभूत हो गया था, इसीलिए कुछ आश्चर्य भाव से ही उसने उनके मुँह की तरफ देखा।

मलिन हँस हँसकर विमल बाबू ने कहा—मैं जानता हूँ राजू तुमसे बढ़कर दूसरा मित्र आज उन लोगो का कोई नही है। फिर भी मेरे द्वारा यदि उन लोगो को किसी भी तरफ से कोई भी उपकार बिन्दु मात्र भी सभव समझो, मुझे खबर देने मे मत भूल जाना। इतनी ही बात तुमको बता रखता हूँ।

राखाल कुछ मानो कहने जा रहा था। विमल बाबू ने कहा—रेणु और ब्रजबाबू आज कितने अधिक असहाय हैं, मैं यह जानता हूँ राजू।

राखाल की दोनो आँखें सजल हो उठीं। उसने कहा—आप के प्रति मैंने अविचार किया हो, मुझे क्षमा करे। काका जी की बीमारी मे यदि किसी सहायता की जरूरत होगी, आप को मैं खबर दूँगा।

उन्नीस

तारक की सुनिपुण सेवा, देख-भाल और अच्छे व्यवहार ने सविता का थका हुआ मन बहुत कुछ स्निग्ध हो गया था। उच्छ्वसित वात्सल्य-रस से अभिषिक्त हृदय लेकर सविता तारक के प्रति व्यवहार, कर्म, बातचीत मे आश्चर्यजनक विशेषता लक्ष्य करके मुग्ध हो रही थी। तारक ने भी सविता को अपनी मा की ही तरह केवल नही, देवता की भक्त जैसे निरकुश त्रुटि हीनता के साथ सेवा करता है, उसी तरह सेवा यत्न और आदर करने मे बिन्दु मात्र भी अवहेलना नही की।

बातचीत के सिलसिले मे सविता ने एक दिन तारक से पूछा—तारक, तुम जो मुझे हरिणपुर में ले आये बेटा, राजू को क्या तुमने इसकी खबर नही दी?

जरा कुंठित भाव से तारक ने उत्तर दिया—नही माँ।

आश्चर्य मे पड कर सविता ने कहा—कितु उसको ही तो अपनी सेवा के पहले खबर हमे देना उचित था तारक।

तारक ने कहा—क्यो मैंने खबर नही दी उस बात को मैं किसी दूसरे दिन आपको बताऊँगा माँ।

सविता ने अति मात्रा मे विस्मित होकर कहा—दोनो मित्रो के बीच तुम लोगो मे इसी बीच कौन सी ऐसी बात हो गयी, जिससे माँ को भी बताने मे लज्जित होना पड रहा है बेटा।

मुँह नीचे किये तारक ने कहा—राखाल शायद वह अभियोग आप से बता चुका है अथवा उसने न बताया होगा तो शीघ्र ही एक दिन बतायेगा ही। इसीलिए मैं भी आप को सब बताऊँगा इसे मैंने ठीक कर रखा है माँ।

तारक के कुंठित चेहरे की तरफ क्षण काल तीक्ष्ण दृष्टि से देखते रहने के बाद सविता ने कहा—राजू के तुम घनिष्ठ मित्र हो यह मैं सुन चुकी हूँ। मैं जानती थी, उसको तुम पहचानते हो। अब मैं समझ गयी, तुमने मेरे राजू को पहचाना नही बेटा!

तारक ने चंचल होकर कहा—क्यो माँ?

सविता ने कहा—जितना ही बडा अन्याय जो कोई उस पर क्यो न करे, राजू ने दुनिया के किसी के यहाँ किसी के नाम पर कभी अभियोग नही किया, करेगा भी नही। अभियोग करने की शिक्षा जीवन मे उसे नही मिली तारक, सहन करने की ही शिक्षा मिली है।

तारक और भी कुंठित हो गया। बोला—मुझे माफ कीजिये माँ। मेरे कहने की त्रुटि से गलत मत समझियेगा। मैंने कहना चाहा था कि राखाल से आप मेरे संबध मे जिस घटना की बात सुन चुकी हैं, या सुनेगी, वह वाह्यत सत्य होने पर भी पूर्णत· सत्य नही है।

सविता ने हँस कर कहा—मैंने राजू से कुछ भी नही सुना बेटा, किसी दिन सुनूँगी भी नही, इस सबंध मे तुम निश्चिन्त रह सकते हो।

तारक अकस्मात् कुछ उत्तेजित होकर वत्कृता की भगी से हाथ-मुँह हिलाकर कहने लगा—किंतु इसको मैं किसी तरह भी न मान सकूँगा माँ, आप के सामने भी हम लोगो के विच्छेद का कारण छिपा रखना उसका उचित काम हुआ! आपने उसे केवल स्नेह रस से और अन्य रस से ही पुष्ट नही किया है, आप से ही उसने प्राप्त की है अपनी शिक्षा और जो कुछ है सभी। आज वह जो पृथ्वी मे अब तक भी जीवित है और भले आदमी की ही तरह जीवित है, इसके लिए विपुल ऋण उसका किसके पास है किसके आश्चर्य जनक असाधारण मन और आश्चर्य जनक असाधारण जीवन ने राखाल की दृष्टि और मन को इतना विस्तृत बना रखा है। किसका अपार स्नेह, अन्तराल से विधाता की भांति ही उसके जीवन जो सत के भाव से बचाता आया है। उसी माँ से सत्य छिपाना मैं न्याय न मान सकूँगा माँ। आप के कहने से भी नही।

एक ही सांस मे इतनी कड़ी वत्कृता झाड़ कर तारक हाँफने लगा।

सविता स्थिर दृष्टि से तारक की तरफ ताकती हुई सुन रही थी। धीरे कठ से उन्होने कहा—तारक, तुम लोगों मे क्या हो गया है बेटा?

बताता हूँ। तो आप सुनिये माँ। राखाल ने मुझसे आप का जो परिचय दिया था, यदि आपको सचमुच ही वह अपनी माँ समझता तो उस हालत मे वह परिचय वह कभी दे नही सकता था।

सविता ने कोई बात नही कही और उनके हँसी युक्त मुख के भावो मे भी कोई परिवर्तन नही दिखाई पडा।

तारक पुन· उत्साह के साथ कहने लगा—आपने कहा था माँ। किसी के सबध मे कोई भी बात उपयाचक होकर कहना उसका स्वभाव नही है। किंतु मुझे ही तो उसके विपरीत प्रमाण मिला है उसने उपयाचक होकर मुझको अपनी नयी माँ का परिचय दिया था, जिसको जानने की मुझे कोई जरूरत नही थी। किंतु वह नासमझ यह समझ न सका कि, आग को भी राख कहकर बता देने से पहले शायद मनुष्य भूल कर सकता है, किंतु वह भूल अधिक क्षण स्थायी नही होती। अग्नि अपना परिचय आप ही दे देती है।

सविता ने इस बार भी जवाब नही दिया। पूर्ववत् जिज्ञासु दृष्टि से ही चुप हो रहीं।

तारक कहने लगा—अवश्य ही मैं यह स्वीकार करता हूँ माँ, उसने जब बहुत कुछ अतिरंजित कहानी सुनाकर मुझसे प्रश्न किया था—यह सब सुनकर मुझको घृणा हो रही है या नही? मैंने जवाब दिया था। घृणा होना तो स्वाभाविक है राखाल। तब तो मैं जानता नही था कि उसका उद्देश्य ही था आपके ऊपर अश्रद्धा पैदा करना। ऐसा न होने से इन सब बातो को कहने की उसे जरूरत ही नही थी।

सविता ने इस बार बात कही। उन्होने शात कठ से कहा—राजू, झूठी बात नही कहता तारक। उसने

जो कुछ तुमसे कहा है, सब ही सच है।

तारक का चेहरा बदरग हो गया। हुटक-हुटक कर सूखे गले से उसने कहा—आप जानती नही, वह कितनी भयकर बात है—

सविता ने कहा—जानती हूँ। तुम जो कुछ भी क्यो न सुन चुके होगे तारक, राजू के मुँह की कोई भी बात झूठी नही है।

तारक की कठनाली को सख्त मुट्ठी से दबाकर किसी ने मानो उसके स्वर को रुँध दिया। चेष्टा करने पर भी और एक शब्द भी उसके गले से नही निकला।

सविता धीरे-धीरे कहने लगी—तुमने राजू के प्रति केवल भूल ही नही की है तारक, अविचार भी किया है। उसने तुमको भूल समझाना नही चाहा, वरन् पीछे तुम ही कही भूल न समझ लो, इसी भय से शुरू मे ही सभी घटनाओं को खुले तौर से उसने तुमको बता दिया। यदि तुमने यह सोच लिया हो कि, उसकी बाते झूठी हैं तो तुमने खूब ही भूल की है।

तारक ने सूखे स्वर से कहा—किंतु माँ, मैंने तो कुछ भी जानना नहीं चाहा था, उसने उपयाचक बन कर क्यो—

सविता ने मलिन हँसी हँसकर कहा—तुम उच्च शिक्षित बुद्धिमान हो। सब तरफ मन फैलाकर सोचकर भला बुरा विचार करने की शक्ति तुम्हारी रहे यही सभव है। ससार मे वाह्य दृष्टि से बहुत सी चीजो को ही शायद हमलोग एक तरह देखते हैं, किंतु सादृश्य रहने पर भी वे सभी वस्तुत. एक नही हैं। इसके सिवा—यह तो तुम जानते हो—बाहर से भीतर का विचार किसी समय भी नही चलता। इन सब विषयो को साधारण लोग नही समझते और समझना भी नही चाहते। तुम उनके दल मे नहीं हो, राजू यह बात जानता था, इसी कारण उसने अपनी नयी माँ के दुर्भाग्य की कहानी तुमको खोलकर बता दी थी।

तारक बहुत देर तक मुँह झुकाये चुपचाप बैठा रहा। बाद मे उसने मुँह खोल कर कहा—राखाल ने मुझसे कहा था माँ एक दिन, ससार मे हजारो मे नौ सौ निन्नानवे स्त्रियाँ ही साधारण श्रेणी की होती हैं, कदाचित् कभी एक असाधारण स्त्री दिखाई पडती है—नयी माँ उन्ही नौ सौ निन्नानवे के बाद कदाचित् मिली हुई एक महिला हैं, इसकी कोई इच्छा करने पर भी अवज्ञा या अवहेला नही कर सकता। उसने सच्ची बात ही कही थी।

सविता ने बात नही कही। अन्य मनस्क भाव से दूसरी तरफ वे ताकती रही। तारक कुछ हिल डोल कर कठस्वर मे बहुत कुछ आवेग लाकर कहने लगा—शैशवावस्था मे माँ को मैंने खो दिया समझ बूझ होने के पहले ही, पहचानता था केवल मात्र अपने बाबू जी को। बाबूजी ने ही मुझको अपने हाथ से पालपोसकर आदमी बनाया, सयाना बनाया। उसी बाबू जी ने जब अपने सुख के लोभ से लाकर दे दिया मातृहीन सतान को एक विमाता, उसी दिन ही दुःख से अभिमान से और घृणा से मैं चला आया था देश त्यागी बनकर। बाप का मुख फिर मैंने नही देखा, देश-गाँव का भी नही। आपको पाकर माँ, जीवन मे नये रूप मे पा गया मातृपितृस्नेह का स्वाद। मेरे लिए आप माँ के सिवा और कुछ भी नहीं हैं। आपके जीवन मे जो अधड़ जो आघात, जो गुरुतर परीक्षा ही क्यो न आ चुकी हो, आपके हृदय के अपरिमित मातृस्नेह को वे सब विन्दुमात्र भी सोख नही सके हैं। सतान के लिए यही सबसे बडा पाना है।

सविता ने कहा—तुम्हारे बाबू जी अभी जीवित हैं?—किंतु तुमने तो एक दिन मुझसे कहा था कि पितृमातृ हीन हो?

तारक ने हँसकर कहा—मैंने ठीक ही कहा था माँ। मेरे जन्मदाता शायद आज भी जीवित रह सकते हैं, किंतु मेरे बाबू जी जीवित नही हैं। पिता की मृत्यु न होने से मातृहीन अभागे सतान के जीवन मे विमाता का आविर्भाव नही होता। यही है मेरा विश्वास।

सविता आश्चर्य भरे नेत्रो से तारक की तरफ देखती रही।

तारक कहने लगा—जीवन मे मुझे वृहत् आशाएँ और ऊँची आकाक्षाएँ अनेक हैं। केवल खा-पहिन कर किसी तरह जीवन धारण करता हुआ जीवित रहना मैं नही चाहता। मैं चाहता हूँ प्रचुरता के बीच ऐश्वर्य के बीच सार्थक सुन्दर जीवन लेकर जीवित रहना। हजारो आदमियो के बीच मेरे ही ऊपर सबकी दृष्टि पडेगी, हजारो नामो मे मेरे ही नाम को पहचान सकेगे सभी। कर्म जीवन की सार्थकता से,

यश-गौरव और सम्मान और प्रतिष्ठा के साथ उन्नत वृहत् जीवन लेकर मैं बचा रहूँ यही मैं चाहता हूँ। केवल अर्थ उपार्जन करना ही जीवन की एकान्त कामना नही है। केवल स्वच्छन्दता पूर्वक जीवन निर्वाह करना ही मेरा चरम लक्ष्य नहीं है।

सविता ने स्निग्ध कंठ से कहा—यह तो बहुत अच्छी बात है बेटा। पुरुषो के जीवन मे ऐसी ही ऊँची आकाक्षा की आवश्यकता है। लक्ष्य रहेगा जितना ऊँचा, जितना विस्तृत—जीवन भी होगा उतना ही उन्नत उतना ही विस्तृत।

तारक ने उत्साहित होकर कहा—आपको तो मैंने बता दिया है माँ, कितने दु.ख कष्टो मे, कितनी बाँधाओ मे, स्वय स्वावलम्बी बनकर ही विश्वविद्यालय की सीढियो को मैंने पार किया है। मैं बहुत ही जिद्दी हूँ माँ, जिसको करने का निश्चय करता हूँ, विश्राम नही रहता, जब तक कि वह सिद्ध नही हो जाता।

सविता हँसी भरे मुँह से तारक के यौवनोचित आशा-आकांक्षा उत्साह से प्रदीप्त चेहरे की ओर देखती हुई अनमनी सी होकर कुछ सोचने लगी।

तारक कहने लगा—अपने जीवन का सब कहानी केवल आपको ही खुलकर मैंने बता दी है माँ। नही जानता क्यो कभी-कभी ऐसा मालूम होता है, कि जीवन में शायद मुझे कुछ भी नहीं मिला, कुछ भी मैंने प्राप्त नही किया। सोचता हूँ कि यदि किसी दिन लाखो-लाखो रुपये कमा लूँगा तो उससे और कौन-सा लाभ होगा? यश से भी यदि देशदेशान्तर भर जाय, तो उससे भी क्या? सम्मान-पतिष्ठा की सर्वापेक्षा ऊँची चोटी पर भी क्या मेरी शैशव काल से मौजूद अतृप्त तृष्णा मिट जायगी? चिर दिन जिस अभिमान, जिस दु ख को अपने गुप्त हृदय के अन्दर ही अकेला ढोता रहा विधाता के सम्मुख भी अभियोग प्रकट नही किया, मेरी वह वेदना क्या किसी दिन दूर होगी मेरे इस अर्थमान यश या कर्ममय जीवन की चरितार्थता से? समूचा प्राण मानो हाहाकार करने लगता है, मुरझा जाती है जो कुछ भी है, कर्म के उत्साह और आकाक्षा मे उद्दीपना। मन में यह बात आयी है कि आप देवता ने जिस मनुष्य की पृथ्वी मे भेजकर शैशव मे ही मातृस्नेह से वंचित कर दिया है, वह कितना बडा दुर्भाग्य लेकर मनुष्यो के बाजार मे आया है, उस बात को किसी को समझाने की जरूरत नहीं है।

जीवजगत् के स्रष्टा का सर्वश्रेष्ठ दान है मातृस्नेह। उसी स्नेह से जो आजीवन वंचित है, उसका और .. वेदना के आवेश से तारक का गला रुंध गया।

सविता की आँखो का कोना सजल हो चला था। उन्होंने कुछ भी नही कहा,—सात्वना भी नही दी। मुँह पर सुस्पष्ट हो उठी गंभीर सहानुभूति की छाया। जिस निविड वेदना को वे चुपचाप अति गुप्त रीति से हृदय के निभृत भाग मे अकेली ढोती आ रही है सुदीर्घ काल से, उनकी उसी वेदना के स्थान को तारक ने आज अनजान में ही स्पर्श किया है। तारक की अन्तिम कुछ बातों ने सविता के समूचे हृदय को आलोडित कर दिया था। चुपचाप झुकी आँखों से वे अपने अशात हृदयावेग को सँयत करने लगी।

सदर दरवाजे पर डाकिये ने पुकारा—चिट्ठी—

तारक बाहर जाकर पत्र ले आया।

सविता के नाम की चिट्ठी है। शारदा की लिखी हुई है। समाचार दिया है कि विमल बाबू के साथ राजू की मुलाकात रास्ते में हुई थी। उनके मुँह से विमल बाबू को खबर मिली है—गाँव पर कन्या समेत ब्रजबाबू सकुशल हैं।

सविता ने पत्र पढकर हँस कर कहा—राजू शायद शारदा के यहाँ भेट करने नही जाता। जायगा भी वह कैसे, वह शायद जानता ही नही कि शारदा हरिणपुर आयी नहीं। तारक ने बात नही कही।

सविता ने फिर कहा—देखूँ, मैं ही उसको एक चिट्ठी लिख दूँ। एक काम करो न तारक, तुम उसको यहाँ आने का निमत्रण देकर एक चिट्ठी लिख दो, मैं भी उसके साथ लिख दूँगी यहाँ आने को। यहाँ उसके आ जाने से तुम दोनों मित्रो में मान-अभिमान की मीमासा हो जायगी।

तारक ने कहा—अच्छी बात तो है। मैं लिख देता हूँ आज ही।

सविता ने स्नेह-स्निग्ध कंठ से कहा—मेरा राजू बहुत ही अभिमानी लडका है। किंतु उसके हृदय की तुलना मैंने कहीं नही देखी।

यह बात सविता ने कही, यो ही सहज भाव से ही, किंतु तारक के चित्त मे इसने दूसरे अर्थ में आघात किया। उसके मन मे यह खयाल आने लगा कि, नयी माँ ने शायद मेरे ही हृदय के साथ तुलना करके राजू के सबध मे यह बात कही है। उसका चेहरा हो गया अधकार, वचन हो गये बन्द।

सविता उस पर लक्ष्य न करके ही विगलित कठ से कहने लगी—राजू की बात जब सोचती हूँ तारक, तब मुझे खयाल आता है कि मेरा राजू अधिक स्नेह का धन है या रेणु? राजू और रेणु इन दोनो मे से कौन ज्यादा है कौन कम है, यह मैं ठीक नही कर सकती।

तारक बोल उठा—तब तो आप अपने हृदय को अब तक भी नही पहचानती माँ। रेणु के साथ राजू की कोई तुलना ही नही हो सकती।

सविता ने कहा—क्यो बताओ तो?

राजू को आप जितना ही अपने सतान की भाँति क्यो न सोचें तो भी वह अपने सतान तुल्य ही रह जायगा। तुल्य को छोड कर पूर्णत अपना सतान वह नही होगा। हो सकता भी नही।

सविता ने कहा—सभी क्षेत्रो मे सभी विषयो मे एक ही तरह नही होता तारक।

यह जानता हूँ माँ। तो भी कहता हूँ सुनिये। आप खुद ही विचार करके देखिये, आपके हृदय के स्नेहाधिकार मे रेणु और राजू का समान दवा जितना ही क्यो न हो, पार्थक्य कितना है यह मैं दिखा देता हूँ। मान लीजिये, यह आपका हरिणपुर आना। रवाना होने के पहले की रात को मैंने सुना, राखाल ने आपको मना किया था हरिणपुर आने को आपने शायद कहा था—लडका सयाना होने पर उसकी सम्मति लेना आवश्यक है। इसीलिए सुनकर उसने असहमति ही प्रकट की थी। आप उसको ठेल कर चली आयी मेरे यहाँ। किंतु माँ, रेणु यदि आपके यहाँ आने में जरा भी अनिच्छा का आभास मात्र भी दिखाती, तो आप हरिणपुर आना बद कर देती अवश्य ही।

सविता ने जरा चुप रह कर कहा—मैं जानती थी तारक, राजू ने केवल अभिमान,और क्रोध के ही वश मे आकर मुझे आने का निषेध किया था। वह था उसका तर्क या जिद मात्र। सचमुच ही यदि मुझे यहाँ भेजने मे उसकी अनिच्छा रहती, तो मैं कभी आ नही सकती बेटा। किंतु मान लीजिये, यदि रेणु केवल जिद या तर्क करके ही आपको कही जाने का निषेध करती, तो आप उसके तर्क या जिद की खातिर को टाल सकती माँ?

सविता मौन हो रही। बहुत देर बाद उन्होने धीरे-धीरे कहा—तुमने ठीक ही कहा है तारक, मनुष्य अपने हृदय को शायद सबसे कम पहचानता है। किंतु एक बात है राजू मेरे लिए रेणु से बडा न भी हो सकता, मैं किंतु राजू के लिए माँ से बडी हूँ। मेरी ओर से भले ही न हो, राजू की अपनी ओर से किंतु वह मेरी रेणु से भी बडा है। यहाँ मुझसे भूल नही हुई है।

तारक चुप हो रहा। क्षणकाल के बाद प्रसग को उठाकर उसने कहा—विमल बाबू की चिट्ठी तो कहाँ आज भी नही आयी माँ।

सविता ने कहा—तुमने क्या इधर हाल मे उनको चिट्ठी लिखी है।

लिखी तो है जरूर ही। आपको उन्होने चिट्ठी नही दी शायद आठ दस दिन बीते होंगे? यही ठीक है न?

हाँ। किंतु मैंने उससे पहले के पत्र का जवाब अभी तक नही दिया है। इसीलिए शायद उन्होने मेरे पास पत्र नही लिखा है। क्योकि वे सकुशल हैं, यह तो मैं शारदा के पत्र मे जान ही रही हूँ।

तारक ने उच्छ्वसित कठ से कहा—वही एक मनुष्य मैंने देखा माँ। जिनके पैरो के पास माथा आप ही झुक जाता है।

सविता ने जवाब नही दिया।

तारक आप ही आप कहने लगा—क्या ही ऊँचे मन, उदार चरित्र का सुन्दर मनुष्य हैं। यथार्थ कर्मवीर। जीवन में सफल कर्मी पुरुष कम ही दिखाई पडते हैं।

सविता ने मृदु हँस कर कहा—यह बात तुम किस हिसाब से कह रहे तो तारक? एक मात्र आर्थिक उन्नति के अतिरिक्त ससार में—उन्होने और कौन सी चरितार्थता प्राप्त की है? कौन सा ही बडा आनन्द सचय कर सकते हैं समूचे जीवन मे?

तारक उच्छ्वास के झोक से बोल उठा—जो पुरुष अपनी ही सामर्थ्य से इतना विपुल अर्थ अनायास

उपार्जन कर सकते हैं, ऐसे प्रकाण्ड-प्रकाण्ड व्यवसाय खडा कर सकते हैं, उनके जीवन मे अन्य छोटी-मोटी सार्थकता कुछ उपलब्ध हो या न हो, उसके लिए आक्षेप नही है माँ। पुरुष के कर्ममय जीवन की इस प्रकार विराट सार्थकता की अपेक्षा और दूसरी कौन काम्यवस्तु रह सकती है बताइये।

सविता हँस पडी, उन्होने कुछ जवाब नही दिया। तारक के मुँह से पुरुष के जीवन मे उच्चाकाक्षा और ऊँचे आदर्श के सबध मे अब तक वे वडी-बडी बाते और वृहत्तर कल्पनाएँ ही सुनती आ रही थी। किंतु उसके अपने जीवन की आशा आकाक्षा सार्थकता का लक्ष्य किस मार्ग मे है, उसे वह किसी दिन स्पष्ट रूप से निर्देश न कर सका है या उसने किया ही नही है। सविता ने तारक के जीवन का प्रधान लक्ष्य और आशा आकाक्षा के स्वरूप का जरा सा आभास से इस बार मानो देख लिया उनकी चिन्ताधारा किस तरह की एक अनिर्दिष्ट शून्यता मे खो गयी।

शिवू की माँ ने आकर पुकारा—माँ दिन चढता जा रहा है, रसोई चढाइयेगा चलिये।

तारक ने कहा—अनेक दिन ही तो माँ के हाथ का अमृत-प्रसाद पाता रहा, अब रसोईदारिन को हाँडी चढाने की अनुमति दीजिये। इस प्रचण्ड गरम मे आग के ताप से आपका स्वास्थ्य टूट जायगा—

सविता ने हँस कर कहा—आग के ताप मे रसोई पकाने से बगाली औरतो का स्वास्थ्य टूटता नही है तारक, उसकी उन्नति होती है।

यह बात साधारण बगाली स्त्रियो को हो सकती है माँ, आप उनके दल मे नही हैं, मै जानता हूँ।

तुम कुछ भी नही जानते बच्चा।

नही माँ, मैं मानूँगा नही। कलकत्ते के डेरे पर आपकी ब्राह्मणी रसोईदारिन थी, मैंने देखा है। यहाँ क्यो आप रसोईदारिन के हाथ की रसोई न खाइयेगा बताइये तो? रसोईदारिन के हाथ की बनी खाने की इच्छा नही होती यह आपका निरर्थक वहाना है। असल बात है कि आप खुद परिश्रम करना चाहती हैं।

यही बात यदि हो, तो इसमे आपत्ति क्यो है बेटा?

अकृत्रिम आन्तरिकता से प्रबल वेग से सिर हिलाकर तारक ने कहा—नही यह नही हो सकता। अपनी राजराजेश्वरी माँ को मैं प्रति दिन रसोई बनाने, मसाला पीसने, कपडा फीचने नही दूँगा। यह सचमुच ही आपका काम नही है माँ।

सविता की दोनो आँखे आँसू से भर गयी। विलकुल ही अनमने चित्त से वे मानो कुछ सोचने लगी, कुछ भी नही बोली।

तारक ने कहा—आज से मजदूरिन और रसोईदारिन आपका सब काम करेगी, मैं उन दोनो को कह देता हूँ। और आपका यह सब अत्याचार चलेगा नही किंतु।

सविता ने सकरुण हँसी हँसकर कहा—तारक, मेरे ही ऊपर अत्याचार होगा बेटा, यदि मुझे इतना भी कामकाज न करने दोगे तब मैं तुमको स्पष्ट कहती हूँ, रसोईदारिन की रसोई मेरे गले मे नीचे न उतरेगी। नौकर-नौकरानी की सेवा मेरे शरीर मे काटेदार चाबुक लगायेगी। यह जान कर भी तुम मेरे काम के लिए यदि नौकर-नौकरानी बहाल करना चाहोगे तो मैं निरुपाय हूँ।

तारक ने आश्चर्य से अभिभूत होकर कहा—आप क्या चिर दिन ही अपना काम आप ही करती रहेगी माँ?

सविता ने कहा—चिर दिन करूँगी या नही यह मैं नही जानती बेटा, किंतु आज मैं सह नही सकती दास-दासियो की सेवा, केवल इतना ही कह सकती हूँ। ईश्वर यदि कभी मुँह ऊपर उठा कर देखेगे, तो तुम्हारे ही पास फिर किसी समय आकर खाट पलगपर बैठकर नौकर-नौकरानियो की सेवा ग्रहण करूँगी बेटा।

तारक सविता की बातो का रहस्य भेद न कर सका। दु.खित चित्त से निर्वाक् हो रहा। बहुत देर के बाद धीरे-धीरे उसने कहा—माँ, मनुष्य अपने को छोटा समझता है किस तरह, यही सोचता हूँ। मैं किंतु मनुष्य का परिचय एकमात्र मनुष्य के अतिरिक्त जाति, गोत्र कुल शील के नाम लेकर अलग से सोच नही सकता। इसीलिए मेरे सामने मुसलमान, ईसाई, ब्राह्मण, बौद्ध, वैष्णव, शाक्त सभी समान हैं।

सविता के विषाद-गभीर चेहरे पर आनन्द की आभा फूट उठी। उन्होने कहा—मैं यह जानती हूँ तारक। तुम्हारा अन्त.करण कितना ऊँचा और उदार है। तुम्हारे साथ परिचित होने के पहले ही यह मैं

जान चुकी थी। तुमको मैं स्नेह करती हूँ, विश्वास करती हूँ बेटा।

तारक ने आश्चर्य और कौतूहल मिले स्वर से कहा—मुझसे भेंट होने के पहले ही आप मेरा परिचय जान गयी थीं माँ? कहाँ। इतने दिन तो आपने बताया नही।

सविता स्नेह के साथ मृदु हँस पडी।

तारक ने कहा—किंतु जिससे ही मेरी बात आपने सुनी क्यो न हो, मैं जो विश्वास लायक हूँ यह किस तरह जान गयी बताइये तो?

ममता-कोमल कंठ से सविता ने कहा—किस तरह मैं जान गयी इसको न भी सुनोगे तो क्या होगा बेटा। किंतु जान गयी हूँ इसीलिए तुम्हारे स्नेह का आह्वान रखने के लिए राजू के भी मन मे व्यथा देकर यहाँ आयी हूँ, इसमे कुछ भी भूल नही है।

तारक ने अभिभूत स्वर मे कहा—मुझको इतना स्नेह इतना विश्वास करती है माँ?

सविता ने गंभीर कंठ से कहा—केवल विश्वास नही बेटा, उससे भी बडी बात, तुम्हारे ऊपर निर्भर करने का साहस मैं पा गयी हूँ। तुम तो जानते हो तारक, मुझको लडका नही है। राजू मेरे लडके के अभाव की पूर्ति करने पर भी अभी अपूर्ण है। तुम्हे उस शून्यता की पूर्ति करनी पड़ेगी बेटा।

तारक विस्मय विमूढ़ चित्त से अभिभूत की तरह ताकता रहा।

•

बीस

शारदा को साथ लेकर राखाल जिस समय ब्रजबाबू की शय्या के पास पहुँचा, उस समय रोग का प्रबल प्रकोप कुछ घट जाने पर भी पूर्ण रोग मुक्ति नही हुई थी। इस बीमारी मे ब्रजबाबू शरीर के साथ-साथ मन से भी अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। राखाल को देखकर उनकी बन्द आँखों मे आँसू लुढक कर गिरने लगा। स्वभावतः कोमल चित्त राखाल अपने पितृतुल्य काका की असहाय अवस्था देखकर आँखो का आँसू रोक न सका।

ब्रजबाबू ने धीमे स्वर से धीरे-धीरे कहा—राजू, तुमको मैंने बुलाया है।

वाष्प से अवरुद्ध कंठ को साफ करके उन्होने कहा—तुम्हारी बहिन की देखभाल करने वाला कोई नही है बेटा। उसके लिए ही तुमको बुलाना हुआ।

राखाल ने बात नही कही। बाबूजी अत्यन्त क्षीणस्वर में कहने लगे—राजू, यहां इन लोगो ने मुझे समाज च्युत कर रखा है। मेरे गोविन्द जी अपनी कोठरी मे प्रवेश नही कर सके, अपनी खास वेदी पर आसीन नही हो सके। रेणु मेरे गोविन्द जी का भोग तैयार करती है इस पर सबकी ही आपत्ति है। मेरे न रहने पर यहाँ कोई भी मेरी रेणु का भार नही लेगा। इसको तुम ले जाकर उसकी विमाता के पास ही पहुँचा देना। हेमन्त नाराज होगा, जानता हूँ, किंतु आश्रय देगा अवश्य ही। इसके सिवा और तो कोई उपाय ढूँढ़ने पर नही मिलता बेटा।

राखाल चुप ही रहा। पितृहीना पैसा-कौडी विहीना अनूढ़ा रेणु को उसकी विमाता और विमाता के विषय-बुद्धि सम्पन्न भ्राता अपनी गृहस्थी मे ग्रहण करेगे या नही इस संबंध मे वह यथेष्ट संदेह पोषण करता था। तो भी, मुँह से उसने कुछ भी नही कहा।

ब्रजबाबू कहने लगे। इसका विवाह करके जा सकने से, निश्चिन्त मन से गोविन्द जी के चरणो मे मैं जगह ले सकता था। अन्तिम समय में एकाग्रचित्त से गोविन्द को स्मरण करने मे भी रुकावट पा रहा हूँ राजू। रेणु के लिए दुश्चिन्ता मुझे शांति से मरने नही दे रही है।

राखाल ने कहा—अब उन सब बातों को क्यो सोच रहे हैं काका जी। आपको ऐसा कुछ भी नही हुआ है जिसके कारण अभी तुरन्त ही रेणु को हेमन्त मामा के यहाँ भेजने की व्यवस्था करनी पडेगी। आप अच्छा हो जाइये, मैं स्वयं इस बार रेणु के ब्याह के लिए उठ पडता हूँ।

ब्रजबाबू ने करुण हँसी के साथ कहा—किंतु रेणु तो ब्याह न करेगी, कहती है राजू।

राखाल ने कहा—एक बच्ची एक बात कह रही है, इसीलिए क्या उसी को चिर दिन मानकर चलना पडेगा, तब आपके बहुत बडे सर्वनाश के बीच दु ख कष्ट का धक्का लगने से उसने यह बात कही थी। किन्तु आज आपकी यह अवस्था देखकर उसको समझने मे क्या देर लगेगी कि उसको अपने जीवन मे अन्य आश्रय ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

ब्रजबाबू ने अत्यन्त मलिन हँसी हँसकर कहा—रेणु तुम्हारी नयी माँ की लडकी है। ससार मे एक मात्र मेरे और भगवान के सिवा और कोई नही जानता कि उसकी माँ की जिद कैसी थी। उसको अपने समस्त जीवन को ही तहस नहस कर देना पडा है केवल जिद के ही पैरो पर। जिद यदि उसकी चढ जाती थी तो उसे तोडने की शक्ति दूसरे आदमी मे तो थी ही नही, उसके अपने मे भी नही थी। रेणु उसी माता की लडकी है।

राखाल ने कहा—किन्तु मुझे जान पडता है काकाजी, रेणु शायद नयी माँ की तरह इतनी अधिक जिद्दी नही है।

तुम उसको पहचानते नही हो राजू। लडकी को अपनी माँ का स्वभाव अविकल मिल गया है। जिस माँ को होश होने के पहले ही खो चुकी है, उसकी प्रकृति उसके अन्त करण मे किस तरह हो गयी, मै सोच कर समझ नही पाता। नयी बहू की तरह तेजस्विनी, सत् स्वभाव की और सच्चरित्र स्त्री ससार म अति अल्प ही होती है। इसको मैं जितनी अच्छी तरह जानता हूँ, उतना और कोई नही जानता। वही नयी बहू—ब्रजबाबू का गला रुँध गया। गले को साफ करके उन्होने कहा—मेरे दुर्भाग्य के सिवा यह अन्य कुछ भी नही है राजू। उसको मैं कुछ भी दोष नही देता।

ब्रजबाबू इन सब आलोचनाओ से उत्तेजित होते जा रहे है देखकर राखाल पखा लेकर हवा झलते हुए बोला—उन सब बातो को अभी रहने दे काकाजी। आप पहले अच्छे हो जाइये, उसके बाद होगा।

ब्रजबाबू ने जीवन मे किसी भी दिन सविता के बारे मे किसी से भी आलोचना नही की थी। आज उनके सतान समान राजू के साथ उस विषय को लेकर उनको आलोचना करते देख राखाल अत्यन्त आश्चर्य मे पड गया। रोग मनुष्य को इतना दुर्बल बना देता है कि तब उनकी चिन्तातक पर सयम नही रहता। शायद ब्रजबाबू को भी अब और अपने मन की छिपी हुई गभीर चिन्ताओ को ढोने की शक्ति नही थी।

शारदा ने कमरे मे आकर ब्रजबाबू को प्रणाम किया। चौक कर राखाल की तरफ देखकर ब्रजबाबू ने कहा—तुम्हारी नयी माँ भी आ गयी है क्या राजू?

राखाल ने कहा—नही। वे तो कलकत्ते म नही है। बदवान तारक के यहाँ गयी है। शारदा आपकी बीमारी की खबर सुन कर आने के लिए घबडा उठी। बोली—काकाजी मुझे जानते हैं, मेरी सेवा ग्रहण करने मे वे आपत्ति न करेगे।

ब्रजबाबू ने थकावट के साथ तकिये पर माथा बढाकर कहा—किसी की भी सेवा लेने की जरूरत न पडेगी राजू मेरी रेणु बेटी जब तक है। यह बेटी आ गयी है तो अच्छा ही किया है, मेरी रेणु की वे कुछ देख-भाल कर सकेगी। उसकी देख भाल करने को कोई नही है। गृहस्थी का काम, ठाकुर जी की सेवा, उसके ऊपर रोगी की सेवा के चाप मे दिन रात एक पल भी उसे छुट्टी नही है।

राखाल ने कहा—नयी माँ का आपकी बीमारी की खबर क्या दे दूँ काकाजी?

ब्रजबाबू त्रस्त स्वर मे बोल उठे—नही, नही—तुम लोग क्या पागल हो गये हो? ऐसा काम मत करना। मेरी बीमारी की खबर यदि वे सुन लेगी तो उसके बाद उनको किसी भी हालत मे किसी भी बात से कहीं भी रोका न जा सकेगा। उसी क्षण ही वे यहाँ चली आवेगी।

राखाल ने बात नही कही।

सिर मे रक्त का चाप अत्यधिक बढ जाने के फलस्वरूप ब्रजबाबू के बाये अग मे पक्षघात के लक्षण सुस्पष्ट हो उठे हैं। प्राणहानि की आशका हो गयी है। गाँव के डाक्टर कह रहे है, ऐसे सकटापन्न रोगी को अपने हाथ मे रखने का साहस उनको नही है। उपयुक्त औषध पथ्य इजकशन आदि गाँव मे मिलते नही है। यहाँ तक कि रक्त का चाप नापने के यत्र का भी यहाँ अभाव है। कलकत्ते ले जाकर चिकित्सा करने मे उपकार हो सकता है। किंतु अभी इस अवस्था मे रोगी को हिलाना डुलाना सभव नही है। हार्ट अत्यन्त

दुर्वल है, नाडी की गति अत्यन्त तेज है। इसलिए कलकत्ते से विचक्षण कोई चिकित्सक बुला लाना सभव होने से शीघ्र उसकी व्यवस्था करना उचित है।

राखाल आफत मे पड गया। कलकत्ते के बडे-बडे डाक्टरो मे से बहुतो के ही नाम उसको मालूम हैं किंतु किसी के साथ भी भेट-मुलाकात, वातचीत, परिचय उसका नही है। इसके सिवा ऐसे रोगी के लिए किसको लाना ठीक होगा, यह भी एक समस्या है। इसके ऊपर से अर्थ का भी अत्यन्त अभाव है। उसकी अपनी जो कुछ साधारण पूजी थी, वह रेणु की बीमारी के समय खर्च हो गयी। ब्रजबाबू की चिकित्सा के लिए अब यथेष्ट खर्च की आवश्यकता है। किंतु उन लोगो के पास कुछ भी सवल नही है। इस अवस्था मे नयी माँ को खबर देने के सिवा दूसरा उपाय कहाँ है? यह खबर पाकर नयी माँ आये विना रह नहीं सकती, यह निश्चित है। किंतु गाँव के इस पुराने डीह पर उनका पदार्पण करना किसी तरफ से भी वाछनीय नहीं है। इसका परिणाम रोगी के लिए भी भयंकर हो सकता है। राखाल को दुर्भावना का कोई कूल-किनारा नही मिला। फिर भी शीघ्र ही कुछ व्यवस्था कर देना विशेष आवश्यक है। ऐसे ही समय में आ गया राखाल के पास विमल बाबू का पत्र।

ब्रजबाबू के स्वास्थ्य के सवध मे पूछताछ करके अन्त में उन्होने लिखा है—मेरा अत्यन्त अनुरोध है, ब्रजबाबू के लिए उपयुक्त चिकित्सक, नर्स, औषध, पथ्य और रुपया-पैसा जो कुछ भी आवश्यक हो, अति अवश्य ही तार द्वारा खबर मुझे दो। मैं तुरन्त व्यवस्था कर सकूगा।

राखाल पत्र को हाथ मे लेकर चिन्तित मुँह से बैठा था। शारदा ने आकर पूछा—वह किसकी चिट्ठी है देवता?

विमल बाबू की।

शारदा ने कहा—कलकत्ते से डाक्टर बुलाने के लिए आप इतना सोच रहे हैं देवता—फिर भी विमल वावू को जरा लिख देने से ही वे इसी क्षण अच्छा डाक्टर भेज सकते थे।

राखाल ने कहा—हूँ।

शारदा ने कहा—मैं समझ गयी आप सदेह मे पड गये हैं। उनकी सहायता लेने मे आप को हिचक हो रही है।

राखाल ने कहा—नही।

शारदा ने भी कुछ क्षण चुप रह कर धीरे-धीरे कहा—काकाजी की अवस्था जैसी हो गयी है, कव क्या हो जाय वताना कठिन है। जो करना हो शीघ्र ही ठीक कर डालिये नही तो, दूसरी कोई आवश्यकता वता नयी माँ को लिख दीजिये रुपये के लिए।

राखाल तो भी चुप हो रहा।

शारदा ने कहा—यदि आप कुछ खयाल न करें तो मैं एक वात याद दिला दूँ।

राखाल सप्रश्न दृष्टि से देखने लगा।

तुच्छ मान-अपमान, उचित-अनुचित का वजन-हिसाव करके चलने की अपेक्षा अब काकाजी की प्राण रक्षा की चेष्टा करना क्या सवसे अधिक जरूरी नही है। आप अपने कर्तव्य की तरफ से जरा सोचकर देखने की चेष्टा कीजिये न।

क्या करने को कहती हो तुम?

इस अवस्था मे विमल बाबू की अथवा नयी माँ की सहायता लेने मे रेणु लज्जा अनुभव करे तो वह उसके लिए अस्वाभाविक नही है, किंतु आपको तो वह बाधा नही है।

तुम ठीक ही कह रही हो शारदा। काकाजी की इस जीवन संकट अवस्था मे उचित-अनुचित का प्रश्न कम से कम मेरी तरफ से लाना कभी उचित नही है। तो इस हालत मे नयी माँ और विमल वावू दोनो को ही यहाँ की अवस्था बताकर दो पत्र लिख दूँ।

किंतु माँ को वताने की तो काकाजी ने उस दिन विशेष रूप से मना ही कर दी थी।

यह तो ठीक ही है। इस हालत मे केवल विमल बाबू को दो—अच्छा—विमल बाबू तो काका जी के परिचित हैं? काकाजी को बताकर ही व्यवस्था क्यों न की जाय—

यह खराब युक्ति नहीं है। किंतु रोगी को इस अवस्था में उनको विचलित तो न किया जायगा?

राखाल ने अत्यन्त कातरभाव से कहा—तो मैं क्या करूँगा शारदा? उन लोगो को कुछ भी न बताकर ही विमल बाबू को खबर दे दूँ?

कुछ सोचकर शारदा ने कहा—यही कीजिये देवता।

गोविन्द जी का भोग तैयार कर रही थी रेणु।

शारदा दरवाजे पर तरकारी काटते-काटते गप्प कर रही थी। रेणु काम करते-करते 'हाँ', 'ना', 'उसके बाद' इस तरह संक्षिप्त दो चार बाते कह रही थी।

बराबर ऐसी ही बाते होती रहती हैं। रेणु रहती है प्राय निर्वाक् श्रोता, शारदा ग्रहण करती है वक्ता का आसन। कितने गप्प करती है उनका ठौर ठिकाना नही है। शायद अपनी अनजान अवस्था मे ही शारदा सबसे अधिक गप्प करती है अपने देवता के बारे मे। नयी माँ के बारे मे भी वह बहुत कुछ कहती है। किरायेदारो की बाते तो है ही। वह कहती कुछ भी नही है रमणी बाबू के सबध मे रेणु कभी कोई प्रश्न नही करती, बिन्दु मात्र कौतूहल प्रकट नही करती किसी विषय मे ही। बडी-बडी शात दोनो आँखे खोलकर चुपचाप बाते सुनती जाती है। निपुण दोनो हाथ फँसे रहते हैं एक न एक जरूरी काम मे। बहुत बाते किसी दिन भी उसके मुख से नही सुनाई पडती।

शारदा तरकारी बनाते-बनाते कह रही थी, विमल बाबू के पास आज देवता तार भेजने गये हैं, कलकत्ते से अच्छा डाक्टर लेकर यहाँ आने के लिए। शायद कल के बीच ही वे डाक्टर साथ ले कर आ जायँगे।

रेणु की दृष्टि मे आश्चर्य प्रकट होने पर भी उसके मुँह से कोई प्रश्न नही निकला।

शारदा कहने लगी विमल बाबू के आ जाने पर बहुत कुछ ढाँढस मिलेगा। उपयुक्त चिकित्सा, दवा-पथ्य सब की ही व्यवस्था होगी। काकाजी इस बार शीघ्र स्वस्थ हो उठेगे।

रेणु ने इस बार जिज्ञासु नेत्रो से शारदा की तरफ देखा।

शारदा तब अपने मन ही मन बकती चली जा रही थी—ऐसा मनुष्य किंतु ससार मे मैंने दूसरा नही देखे रेणु। जैसे हैं सदाशय वैसे ही है सज्जन। सुन चुकी हूँ, वे हैं लखपति, लाखो-लाखो रुपये लगे हैं देश देशान्तरो के व्यवसाय मे, किंतु ऐसे निरहकार सहज विनयी मनुष्य कही भी नही देखा इसके पहले। यथार्थ ही जिनको शिव तुल्य कहते हैं। ऐसे न होने से विधाता इतना ऐश्वर्य देगे ही क्यो? कहावत है—मन के गुण से धन होता है। विमल बाबू का धन भी जैसा है, मन भी वैसा ही है।

निर्वाक् रेणु तब गोविन्द जी का भोग पकाना पूरा करके पिता का पथ्य बना रही थी। मौन रहने पर भी वह ध्यान के साथ ही शारदा के मन्तव्यो को सुन रही थी साफ तौर से समझा जाता है।

शारदा के वाक्यस्रोत मे मानो उच्छ्वास आ पडा था। वह कहने लगी—विमल बाबू ने उस दिन हम सब लोगो को बचा लिया था रास्ते में खडे रहने की लज्जा से। उस दुर्दिन की बाते याद आने से आज भी मेरी आँखो मे अँधेरा छा जाता है। जिनको घर भर के लोगो का आश्रय कहो, बल-भरोसा ही कहो, जो कुछ सब है, वही माँ हमारी जब निराश्रय होने लगी, तब हम लोगो की जो भय, चिंता और उत्कठा घनीभूत हो आयी थी, उसे केवल ईश्वर जानते हैं खुद। विशेष रूप से मेरे तो पैरो के नीचे से पृथ्वी खिसक जाने की घडी आ गयी थी। माँ के अतिरिक्त तब मेरे लिए इस जगत मे अन्य आश्रय या अवलम्ब कुछ भी नही था।

रेणु ने वैसे ही आश्चर्य पूर्ण नेत्रो से शारदा की तरफ देखकर प्रश्न किया—क्यो?

शारदा ने कहा—तुमको सब ही बताती हूँ बहिन। तुम क्या उन सब बातो को भूल गयी हो। मेरे घोर दुर्दिन मे माँ ने मुझे अपने स्नेह का आश्रय दिया था इसीलिए तो आज खडी हूँ।

रेणु ने आत्मविस्मृत भाव से कहा—उसके बाद?

उसके बाद की कहानी भी तो तुम सुन चुकी हो बहिन, मेरे मुँह से। मुझे पुनर्जन्म प्रदान किया माँ ने और इस देवता ने। बीच-बीच मे अब सोचती हूँ रेणु, भाग्य से उस दिन मैं मर नही गयी।

रेणु ने हँस कर कहा—क्यो शारदा दीदी। उस दिन मर जाने से ही आज तुम्हारी कौन सी हानि होती बहिन?

बहुत हानि होती। वह जो कितनी बडी हानि है। तुम नादान लडकी समझ न सकोगी बहिन।

रेणु चुप रह कर अपना काम करने लगी। शारदा का तरकारी काटना खतम होने पर बाकी तरकारियो को डलिया मे सजावट से रखते-रखते वह बोली—ससार मे असली चीज कुछ पाने के लिए उसका दाम वडा ही देना पडता है। दुर्लभ का मूल्य है बहुत। हमारे जीवन मे भी यह नीति मान कर चलना पडता है। नकली और मिलावट की समस्या मनुष्यो मे इतनी अधिक वढ गयी है कि, अब कौन है असली कौन है नकली पहचानना कठिन है। जीवन मे जिसको जितना वडा मचय मिला है वहिन, उसको उतना अधिक मूल्य भी देना पडा है गभीर दु ख के बीच से। कम से कम यह मैंने ठीक समझ लिया है कि 'दु ख की कसौटी पर पढे विना जीवन की जाँच नही होती।'

रेणु किसी दिन भी कुछ विशेष रूप से जानने के लिए शारदा से प्रश्न नही करती थी। आज किंतु वह एकाएक पूछ वैठी—शारदा दीदी, अपने खास जीवन मे तो तुम वहुत दु ख पा चुकी हो वहिन उसमे क्या कुछ असली सामग्री सचय कर सकी हो?

शारदा चौंक उठी। रेणु जो ऐसा प्रशन कर सकती है, यह सभावना उसको एक बार भी याद नही पडी थी। कुछ घवडा करके ही वह बोली—कैसे बताऊँ दीदी?

क्यो? जैसे इन सब बातो को तुमने वता दिया।

शारदा सहसा अनावश्यक गभीर होकर बोली—सचय कुछ भी कर सकी हूँ या नही, नही जानती, किंतु सवल यथेष्ट पा चुकी हूँ और वह जा सोलहो आने असली है इसमे मुझे अब सदेह नही है।

सरल स्वभाव की रेणु ने ममता से विचलित होकर कहा—शारदा दीदी, जो पति तुमको अकेली, असहाय छोडकर भाग गये, उनकी अव भी इतनी भक्ति करती हो तुम?

शारदा ने जवाव नही दिया। उसके चेहरे पर वेदना का चिह्न सुस्पष्ट हो उठा। अनाज का डलिया और पहँसुल लेकर दूसरे कमरे मे रखने के लिए वह उठ गयी।

राखाल ने आकर पुकारा—रेणु—

राजू दादा?

काकाजी की रसोई क्या पक गयी बहिन।

हो गयी। अव जाकर बाबू को स्नान करा दूँगी।

काकाजी सो रहे है। यदि तेरी रसोई का काम हो चुका हो तो जरा उस कमरे मे आ जाना,दो-चार बाते करनी है।

अभी आती हूँ। अपने भात का चावल चढाकर आ रही हूँ, चलो।

थोडी देर वाद रेणु जब हाथ-पैर धोकर राखाल के पास आ खडी हुई, राखाल कमरे की फ़र्श पर बैठा हुआ अखबार पढ रहा था। मुँह ऊपर उठाकर उसने रेणु से कहा—आ जा बैठ।

रेणु बैठ गयी। बोली—डाक्टर साहव आज तुमसे क्या कह गये हैं राजू भैया?

अच्छा ही कह गये हैं।

तब क्यो तुम कलकत्ता तार भेज आये, बडा डाक्टर लाने के लिए?

तू है पागल। शुरू से ही तो सुन रही है, यहाँ के डाक्टर साहव कह रहे है, एक अच्छा डाक्टर लाकर दिखाने की जरूरत है, उस रोग की चिकित्सा देहात के डाक्टर का काम नही है। मलेरिया रहता, तिल्ली रहती, या अँतरिया ज्वर रहता, तो ये लोग चतुर्भुज बनकर कितनी चिकित्सा करते। किसी को बुलाने नही देते, किंतु उस बात को छोडो। तुझे बुलाया है एक जरूरी परामर्श के लिए।

रेणु चुपचाप राखाल की तरफ मुँह उठाकर देखती रही।

दो बार अपने गले को साफ करके अखबार को चपोतते-चपोतते राखाल ने कहा—कह रहा था कि, काकाजी के कुछ अच्छा हो जाते ही यहाँ से डेरा डण्डा उठाना पडेगा। आपातत कलकत्ते जाकर काकाजी के पूर्णत अच्छा हो जाने तक पहले की तरह एक छोटा सा मकान किराये पर लेकर रहेंगे। किंतु उसके बाद—

राखाल कहते-कहते चुप हो गया। उसका कंठस्वर द्विधा से जकड गया।

रेणु पहले की ही तरह जिज्ञासु दृष्टि से ताकती रही।

चिंतित चेहरे मे राखाल ने कहा—उसके बाद क्या व्यवस्था हो सकती है वही बात सोच रहा हूँ। यहाँ

तो फिर वापस आने मे काम न चलेगा।

रेणु ने शात स्वर से कहा—क्यों?

राखाल ने विस्मित होकर कहा—यह भी क्या तू समझ नही सकती रेणु, इतने दिन यहाँ रह कर? देखती नही हैजाति बिरादरी का आचार व्यवहार। काकाजी इतना बीमार हैं, एक बार झाँक कर भी कोई खोज खबर नही लेता।

रेणु ने थोडी देर तक चुप रह कर कहा—किंतु तुम तो जानते हो राजू भैया, कलकत्ते मे रहना हम लोगो की अवस्था मे चल न सकेगा। यहाँ मकान का किराया नही लगता, मजदूरिन की तनख्वाह केवल एक रुपया है। साग तरकारी खरीद कर खाने की जरूरत नही पडती। खर्च कितना थोडा है।

राखाल ने कहा—किंतु काकाजी के शरीर की जो अवस्था है, उनके ऊपर तो निर्भर करके रहना नही चला सकता बहिन। थोडा सोच कर देख ले, उनके न रहने की हालत मे मुझे आश्रय कहाँ है? यहाँ के बिरादरी वालो ने तो तुम लोगो से सम्पर्क ही छोड दिया है। सौतेली माँ पहले ही अलग होकर अपने मायके चली गयी हैं। कलकत्ता जाकर कुछ दिन ही रहना पडे, उसके बीच ही तेरे व्याह की व्यवस्था हो जाने मे तब काकाजी निश्चिन्त होकर मेरे पास रह सकेगे। उनकी जो सामान्य, आमदनी। तेरे साथ एकत्र रहने से स्वच्छन्दता से अच्छी तरह ही काम चल जायगा। किसी की सहायता लेनी न पडेगी मेरे रहते।

रेणु चुप होकर सुन रही थी। उसकी चुप्पी से उत्साहित होकर राखाल कहने लगा—मैंने बहुत सोच विचार करके देख लिया है बहिन, इसके सिवा कोई दूसरी अच्छी व्यवस्था कुछ हो नही सकती। लडकी के भविष्य की दुश्चिन्ता ने ही काका जी को सबसे अधिक घबडाहट मे डाल दिया था। तुमको सत्पात्र को सम्प्रदान कर सकने से उनके मन की दुश्चिन्ता कट जायगी। तब वे सहज ही में स्वस्थ हो उठेगे आशा है।

रेणु ने मृदुकठ से कहा—बाबू जी को छोडकर मैं कही भी जा न सकूँगी राजू भैया।

किंतु गये बिना भी तो कोई उपाय नही है बहिन। तुम यदि लडका रहती, तो छोडकर जाने की बात ही नही उठती। किंतु लडकियो को तो आश्रम के सिवा उपाय नही है।

थोडी उम्र मे विधवा हो जाने वाली लडकियाँ तो सारा जीवन अपने पिता के ही घर मे रहती हैं मैंने देखा है।

राखाल ने सूखी हँसी के साथ जवाब दिया—रहती हैं जरूर, किंतु उनको यदि पिता के कुल मे रहने का आगमन न रहे किसी समय, तब वे ससुर कुल मे जाकर आश्रय लेती हैं यह भी तुमने देखा है अवश्य, पति न रहने पर भी उनका श्वसुर कुल तो रहता है।

रेणु ने मुँह झुकाये कुछ क्षण मौन रहकर धीरे-धीरे कहा—राजू भैया, मैंने बाबू जी को अपने मुँह से बता दिया है कि व्याह मे मेरी जरा भी रुचि नही है, मैं ब्याह न कर सकूँगी।

राजू हँसने लगा। बोला—तुझे बुद्धिमती समझता था, अब देखता हूँ तू बिलकुल ही पागल है रेणु। अरे उस दिन तू वह बात न कहती तो क्या काकाजी बचे रह सकते थे? हठात् कारबार फेल होने से सर्वस्व चला गया। रहने का मकान तक नीलाम पर चढ़ जाने से बिलकुल ही रास्ते मे खडे हो गये। उसी समय तेरा व्याह बंद होने को बहाने से झगडा। करके हेमन्त मामा अपनी बहिन और भांजी को लेकर अपना पावना कौडी वसूल करके खिसक गये। पीछे कही काका जी के कर्ज के भार से उनको भी रास्ते मे खडे होने की घडी न आ जाय। ससार ऐसा ही स्वार्थपरायण है बहिन।

राखाल ने एक बार रुककर एक लम्बी साँस छोड दी। उसके बाद फिर वह कहने लगा—पति के इतने बडे दुस्समय मे स्त्री अपने भाई के साथ एक साथ मिलकर अपने आर्थिक भली बुरी दिशा पर ही केवल विचार किया, पति की तरफ उसने देखा भी नही। तू यदि इस तरह ढाँढ़स देकर न कह देती रेणु, 'तुमको अकेले छोडकर मैं कभी कही भी न जाऊँगीपिताजी'—तो उस हालत मे काका जी ससार मे खडे होने किसको अवलम्बन करके?

रेणु ने अत्यन्त मीठे स्वर से कहा—किंतु राजू भैया, मैंने तो बाबू जी को सान्त्वना या साहस देने के लिए वह बात नही कही, मैंने तो सच्ची बात ही कही है।

रेणु की बाते कहने के ढग से राखाल मन ही मन आफत समझ लेने पर मुँह मे हँसी खीच लाने पर कहा—सच्ची बात नही तो तू क्या झूठी बात कह रही है कहता हूँ मैं? किंतु क्या जानती है बहिन, ससार में अधिकाश सत्य ही सामयिक सत्य होते हैं। चिरकाल की सत्य कहलाने वाली यदि कोई चीज हो तो वह है बाहर की वस्तु। तुम यदि उस दिन की मुँह से निकली बात रखने के लिए कटिबद्ध हो उठी हो तो जान लो कि उसके फलस्वरूप शायद तुम लोगो के जीवन मे अकल्याण ही दिखाई देगा। जो कल्याण को ढो लाता है, उसे ही कहते हैं सत्य। जो अशुभकर हैं, वह सत्य नही है। उस दिन तुम्हारे मुँह की जिस बात ने काकाजी को सबसे अधिक सान्त्वना और शांति प्रदान की थी—आज उसी बात को रखने के लिए तुम जिद पकड कर बैठी रहोगी, तो तुम जान रखो कि वह अवाछनीय काम ही काकाजी की सबसे बडी दुर्भावना दु ख का कारण हो जायगा। यहाँ तक कि वह उनकी मृत्यु का कारण तक हो सकता है। एक बात को भूलो मत रेण जो उग्र विष असाध्य बीमार को मृत्यु के मुँह से लौटाकर जीवनदान करता है, वही विष पान करके ही फिर स्वस्थ मनुष्य आत्महत्या करता है। स्थान, काल और अवस्था क अनुसार एक ही व्यवस्था किसी समय जैसी मगलकर, फिर किसी दूसरे समय वैसी ही अमगलकर भी है। बडी हो गयी हो, सब तरफ स्पष्ट रूप से सोच कर देखो। विशेष प्रयोजन से एक बार एक बात कह चुकी हो इसीलिए उस मुँह की बात को ही जीवन के सब मंगल प्रयोजन अप्रयोजन की अपेक्षा बडा बना देने को तत्पर होकर अकल्याण बुलाकर मत लाओ।

रेणु झुके नेत्रो से चुप हो रही।

इक्कीस

कलकत्ते के दो प्रसिद्ध कुशल चिकित्सक ब्रजबाबू की विशेष रूप से स्वास्थ्य-परीक्षा करने के बाद चिकित्सा की अच्छी व्यवस्था करके कलकत्ता लौट आये हैं। विमल बाबू और भी कई दिन उनके पास ठहरेगे। ब्लडप्रेशर और कुछ कम होते ही डाक्टर के निर्देशानुसार ब्रजबाबू को कलकत्ता पहुँचाया जायेगा।

मेडिकल कालेज के आस पास किसी स्थान मे प्रकाशयुक्त हवादार एक छोटा सा मकान किराये पर लेने के लिए विमल बाबू ने कलकत्ता पत्र लिख दिया है। उनके कर्मचारी लोग सब ठीक कर रखेगे।

कलकत्ते के चिकित्सकों के आने और रोगी की व्यवस्था कर जाने के बाद से ब्रजबाबू बहुत कुछ अपने को स्वस्थ अनुभव कर रहे हैं। सब का ही मन बहुत प्रसन्न है।

ब्रजबाबू तीसरे पहर को उत्तर तरफ के बरामदे मे एक डेक्चेयर पर लेटे हुए थे। पास की कुर्सी पर विमल बाबू अखबार हाथ में लिये बैठे थे। दोनो में बातचीत चल रही थी जगत्व्यापी ट्रेड डिप्रेशन या व्यवसाय की दुरावस्था के बारे मे।

इस आलोचना के प्रसग मे ब्रजबाबू ने कहा—आपने जब पहले पहल मेरे पास आकर मेरा कारोबार खरीद लेने का प्रस्ताव किया था, मेरे मन मे खयाल हुआ था, साधारण बडे आदमियो की ही तरह व्यवसाय के सबध मे आपको केवल शौकीन आग्रह उत्साह की है, सूक्ष्म भविष्य दृष्टि या अच्छे बुरे का ज्ञान—अर्थात् जिसको व्यवसायिक बुद्धि कहते हैं, वह आप मे नही है। उसके बाद जब आप के अन्यान्य सब प्रचुर लाभजनक व्यवसायो का विवरण मैंने सुना तब आश्चर्य मे पड़े बिना रह न सका। आश्चर्य मे पड गया था इसलिए कि इतने बडे व्यवसायी मनुष्य होकर भी आपने क्या देख कर मेरे डूबते हुए कारोबार को इतने चढे हुए दाम पर खरीदना चाहा था।

विमल बाबू हँसने लगे।

ब्रजबाबू ने फिर कहा—अच्छा विमल बाबू, सच-सच बताइये तो, आप क्या समझ नही सके थे कि उस कारोबार को उस अवस्था मे खरीद लेना तो दूर किनार, कह सुन कर अनुनय-विनय से हाथ पर उठा रखने से भी कोई लेना नही चाहता—उस पर कर्ज का परिमाण देख कर। उस अवस्था मे उसका भार लेने

का मतलब है इच्छा करके रुपयो को गगा जी के गर्भ मे फेक देना।

विमल बाबू पहले की ही तरह मृदु-मृदु हसने लगे। इस बार भी कोई भी जवाब नही दिया।

ब्रजबाबू ने कहा—आश्चर्यजनक मनुष्य हैं आप।

इस बार विमल बाबू ने बात कही। बोले—मुझसे भी बहुत अधिक आश्चर्यजनक मनुष्य हैं आप।

कैसे बताइये तो?

आप जान-बूझ कर भी अविश्वासी और प्रतारक आत्मीय लोगो के हाथ मे अपने हाथ का तैयार किया वृहत्-व्यवसाय दे कर निश्चिन्त थे।

म्लान हँसी हँस कर ब्रजबाबू ने कहा—ससार मे मनुष्य को विश्वास करना क्या कोई भारी अपराध है विमल बाबू! विश्वास को मैं किसी कारण भी खो देना नही चाहता।

बार-बार क्षति स्वीकार और दु ख उठा चुकने पर भी क्या विश्वास को बचा रखना सभव है!

यह मैं नही जानता, किंतु रखना अच्छा है। अविश्वासी को कही भी आश्रय नही है, कोई भी सान्त्वना नही है।

अपने खास जीवन की अभिज्ञता से यही सत्य आप जान गये हैं?

हाँ, मैंने विश्वास करके धोखा नही खाया। बाहर से लोगो ने मुझे बार-बार नासमझ कहा है, किंतु मैं जानता हूँ, मैंने भूल नही की है, उन लोगो ने ही भूल की है।

विमल बाबू तीक्ष्ण दृष्टि से ब्रजबाबू के मुँह की तरफ ताकते रहे।

दूर दिगन्त मे दृष्टि को निबद्ध करके ब्रजबाबू कहने लगे—अपनी समस्त कहानी एक दिन सुनाऊँगा आपको। आप दूसरो से कितनी दूर तक क्या सुन चुके हैं, मैं नही जानता, किंतु मेरे मुँह से उस दिन आपने जितना सुन लिया था, वही किंतु समस्त नही। अपनी बात कहने के पहले आप से मुझे कुछ पूछने को है।

बोलिये, क्या जानना चाहते हैं?

आप की जो अधिक अवस्था है, उससे आप को लक्ष्मी का वरपुत्र कहा जा सकता है। आप हैं बलवान सुश्री, स्वास्थ्यवान पुरुष, भाग्यदेवी सब तरफ से ही आप के प्रति प्रसन्न हैं—फिर भी, इतनी बडी उम्र तक भी गृहस्थ आश्रम मे आपने प्रवेश नही किया, इसका यथार्थ कारण क्या मैं जान सकता हूँ? अवश्य ही यदि बताने मे आप का कोई बाधा न हो।

बतलाने मे कुछ भी बाधा नही है, क्योकि कारण बहुत ही सीधा सादा है? प्रथमत. समय और सुअवसर का अभाव, द्वितीयत. विवाह की अनिच्छा।

प्रथम बात शायद किसी दिन सच थी, किंतु आज तो वह बात नही है। तब व्यवसाय की उन्नति की चेष्टा मे आप देश देशान्तरो मे घूमते रहते थे, गृहस्थी बसाने की चिंता मन मे लाने का अवकाश नही था। किंतु उसके बाद—

अभी-अभी तो मैंने बता दिया कि रुचि ही नही हुई।

रुचि-अरुचि की बात उठ जाने पर और कोई प्रश्न ही नही चलता विमल बाबू। मगर मेरे एक और प्रश्न का जवाब आप दीजिये। इस समय क्या गृहस्थ बनने मे बाधा है आप को!

ब्रजबाबू के प्रश्न से विमल बाबू जितना आश्चर्य अनुभव कर रहे थे उससे भी अधिक कौतुक पा रहे थे। दबी हँसी मे उनकी आँखे और चेहरा उज्ज्वल हो उठा था। बोले—बाधा किसी दिन भी नही थी, ब्रजबाबू आज भी नही है। हो सकता है कि मेरे विवाह का मार्ग इतना निर्विघ्न है इसीलिए स्वय प्रजापति राह रोक कर बैठे हैं। नववधू का शुभागमन नही हुआ।

ब्रजबाबू ने कहा—आप की बात मे ठीक समझ न सका। देखिये हमारे देश के औरतों मे एक प्रचलित कहावत शायद आप सुन चुके है—

अति बडी घरनी नही पाती घर ।
अति बडी सुन्दरी नही पाती वर।।

मेरी भी हालत हुई है वही। विवाह के पात्र की दृष्टि से शायद मैं सभी तरफ से ही उपयुक्त हूँ, यह बात बहुतो ने ही कही है, कम से कम घटक सम्प्रदाय तो कहते ही हैं। मगर जिसके समूचे यौवन मे ब्याह का फूल नही फूला, उस स्थल मे प्रजापति की बाधा के सिवा और क्या कहा जा सकता है बताइये?

किंतु इतने दिनो तक फूटा नही है, इसीलिए किसी दिन भी न फूटेगा यह भी तो नही है।

समय बीत चुका है भैया। असमय मे क्या फूल फूटता है। जबर्दस्ती करने से उसकी विकृतिमात्र पैदा होती है। विवाह व्यापार बहुत कुछ मोसमी फूल की तरह हैं। ठीक अपनी ऋतु मे आप ही फूट जाता है। मौसम के चले जाने पर फिर नही फूटता, तब वह दुर्लभ हो जाता है।

ब्रजबाबू ने जरा सोच कर हँसते हुए चेहरे से कहा—अच्छा माना कि चेष्टा करने से असमय मे भी फूल जुटा सकता है। किंतु उस बात को छोडिये, विबाह जो ठीक मौसमी फूल है, इसको मैं मान न सका। व्याह का फूल फूटना नामक एक कहावत इस देश मे है, किंतु किसी भी देश मे वह खेती के नियम को मान कर चलता है ऐसा प्रमाण शायद नही है।

विमल बाबू ने कहा—नही, नही, यह बात नही है। मैं कहना चाहता हूँ, जीवन मे लग्न विवाह का एक निर्दिष्ट शुभ लग्न है। उस लग्न के बीत जाने पर फिर विवाह नही होता। जो लोग उसके बाद भी विवाह करते हैं, वह ठीक विवाह नही है।

तो वह क्या है?

वह है केवल स्त्री-पुरुष का एक साथ रहना मात्र। किसी मामले मे वंशरक्षा के प्रयोजन से, किसी मामले मे ससारयात्रा निर्वाह अथवा सुख-सुविधा और आराम के प्रयोजन मे, किसी मामले मे केवल मात्र हृदय मन की विलासिता चरितार्थ करने के लिए।

आश्चर्यपूर्ण कौतूहल से ब्रजबाबू ने पूछा—उन सभी को छोडकर विवाह को और कौन सी वस्तु कहना चाहते हैं आप?

उसे ठीक समझा कर बतलाना कठिन है। ससार मे देखा जाता है समाज अनुमोदित पुरुष और नारी के मिलन को विवाह कहते हैं। किंतु मैं ऐसा नही समझता। मनुष्य के जीवन मे ऐसी एक बसत ऋतु आती है, ऐसा एक आनन्दकाल आता है कि परमक्षण मे नर-नारी का इच्छित मिलन, शरीर मन मे अपूर्व रस और रग मे रगीन हो उठता है। दो प्राणों के, दो शरीर मन के वह जो रस-मधुर वर्णराग है—उसे ही मैं कहता हूँ विवाह। सूर्यास्त के बाद वाले क्षण में ही, जब सध्या नही रहती, किंतु दिन बीता रहता है, वही सुन्दर संधि लग्न है, उसकी आयु अति अल्पकाल स्थायी रहती है। उसको हम लोग गोधूलि क्षण कहते हैं। उस रमणीय समय के बीच पश्चिम के आकाश मे जाग उठती है अपूर्व ज्योति की लीला और असीम रंगो का वैचित्र्य जो समस्त दिवारात्रि के दीर्घ समय के बीच फिर किसी तरह भी किसी क्षण मे भी पकडा नही जाता। वह है उसी विशेष क्षण की सामग्री। मनुष्य के जीवन मे विवाह भी ठीक वही है।

ब्रजबाबू ने मुसकुराकर कहा—समझ गया। किंतु आपने जो कुछ कहा विमल बाबू, वह शायद आप लोगों के कल्पना काव्य के पन्ने पर लिखा है, वास्तविक जीवन के हिसाब के खाते मे नही लिखा है। इसीलिए तो हमारे विवाहित जीवन के पन्ने पर इतनी गडबडी जम जाती है, हिसाब मिलता ही नही किसी तरह—अर्थात् आप कहते हैं, विवाह का व्यापार काव्य की किताब के छन्दो के अन्तर्गत है, हिसाब के खाते के अको के अन्तर्गत नही है?

इस बात का जवाब बचाकर विमल बाबू ने कहा—आप ही बताइये न भैया। विवाह की अभिज्ञता मेरे अपने जीवन मे एक बार भी नही हुई, किंतु आपको हुई है एकाधिक बार। आप इस विषय मे मुझसे अधिक अभिज्ञ हैं।

मेरी बात यदि आप मान ले तो बताऊँ।

बताइये।

व्याह का फूल फूटने का दिन आज भी आपका अटूट है।

इसका माने? आप क्या कहना चाहते हैं इस उम्र मे—

विमल बाबू का वाक्य समाप्त होने के पहले ही ब्रजबाबू हँस पडे। आपने सचमुच ही हँसा दिया किंतु विमल बाबू।

क्यो बताइये तो?

आपके विवाह की उम्र अब नही है, इस तरह की असभव धारणा किस तरह हो गयी? तो इस हालत मे हम लोग तो—

कितु आपके अधिक उम्र मे विवाह की अभिज्ञता एक बार भी सुख की नही हुई यह भी तो सच है?

क्या आप भाग्य मानते हैं?

कुछ-कुछ मानता हूँ जरूर किंतु अंधभाग्यवादी नही हूँ।

जन्म-मृत्यु-विवाह—ये तीनो बाते पूर्णत भाग्य के ऊपर निर्भर करती हैं इसे आप क्या स्वीकार करते हैं? नही। इस युग मे विज्ञान की सहायता से जन्म और मृत्यु को पूर्णत भले ही न हो, कुछ-कुछ इच्छा नियंत्रित कर सका है मनुष्य। यद्यपि जन्म मृत्यु का व्यापार बिलकुल ही प्रकृति का नियम है, जीवमात्र ही प्रकृति के नियमो के अधीन है इसलिए इन दोनो को छोडकर विवाह को ही लीजिये। वह है सामाजिक सुविधा के लिए मनुष्य का बनाया नियम। इस कारण उस मामले मे भाग्य का विशेष हाथ नहीं है। मनुष्य की इच्छा ही इस मामले मे प्रधान है।

ये सब युक्तितर्क संभवत ब्रजबाबू को अच्छे नही लग रहे थे। इसलिए इस आलोचना मे फिर शामिल न होकर वे चुपचाप आँखे मूँद कर डेकचेयर पर लेट रहे।

विमल बाबू ने भी हाथ के अखबारो मे मन लगाया।

संध्या गाढी होती जा रही थी, समाचार पत्र के अक्षर क्रमश. अस्पष्ट होते आ रहे थे। विमल बाबू ने दो-एक बार मुँह ऊपर उठाकर देखा, बत्ती जलायी गयी है या नही।

अर्धशायित ब्रजबाबू मुँदी हुई आँखो से क्या सोच रहे थे कौन जाने। वे हठात् सीधा होकर उठ बैठे और दायाँ हाथ बढाकर उन्होंने विमल बाबू का एक हाथ दबाकर पकड लिया। व्यग्र कंठ से कहा—विमल बाबू, तो इस हालत मे आप सचमुच विश्वास करते हैं, विवाह भाग्य के अधीन नही है, मनुष्य की ही इच्छा का वह अनुगत है?

विमल बाबू ने अत्यन्त आश्चर्य मे पडकर कहा—हाँ, मेरा विश्वास तो यही है अवश्य। किंतु आप हठात् इसको लेकर इतना चंचल क्यो हो गये ब्रजबाबू।

बतला रहा हूँ। किंतु इसके पहले आप वचन दीजिये मेरा कि अनुरोध मान लेगें। नही-नही,—अनुरोध है प्रार्थना है, यह मेरी भिक्षा है, ब्रजबाबू ने व्याकुल होकर विमल बाबू के दोनो हाथ पकड लिये।

अति मात्रा मे विपन्न होकर विमल बाबू ने कहा—आप यह क्या कह रहे हैं? मैं आपके छोटे भाई की तरह हूँ। जो आदेश जिस समय ही देगे, उसका मैं पालन करूँगा। ऐसी अनुचित बात का उच्चारण करके मुझे अपराधी मत बनाइये।

नही-नही, बात सुन लेने पर आप समझ सकेगे यह मेरा अनुरोध नही है, एकान्त प्रार्थना ही है। बोलिये मेरी विनती मानियेगा?

सामर्थ्य मे होने से अवश्य ही मानूँगा। विमल बाबू ने यह बात विशेष उत्कंठित होकर ही कही।

अश्रुपूर्ण नेत्रो मे ब्रजबाबू ने कहा—गोविन्द जी आपका कल्याण करेगे। मेरी जन्म दु खिनी लडकी का भार आप ले लें विमल बाबू। उसको आप के हाथ मे देकर मैं निश्चिन्त होना चाहता हूँ।

विमल बाबू स्तम्भित हो गये। उन्होंने सपने मे भी कल्पना नही की, ब्रजबिहारी बाबू उनको विवाह के पात्र रूप मे अपनी कन्या के लिए निर्वाचन कर सकते है। क्षणकाल निर्वाक् रहकर वे बोले—आप पहले कुछ स्वस्थ हो जाइये ब्रजबाबू, ये सब आलोचनाएँ बाद मे होगी।

ब्रजबाबू कातर भाव से कहने लगे—आप है उदार प्रकृति, मन आपका उन्नत है। किसी दूसरे के सामने साहस करके मै यह प्रस्ताव रख नही सकता था। मेरे जीवन की दु ख दुर्दशा की कहानी आप जानते है। देवता के निर्माल्य की तरह ही मेरी लडकी निष्पाप है। उसके गुणो का अन्त नही है, सौन्दर्य भी विशेष अवहेलना का नही है। फिर भी ऐसी लडकी के भाग्य मे भी विधाता ने इतना दु ख लिखा था। आप शायद जानते नही, रेणु का अब विवाह होना कठिन है। मेरे पास आज अर्थ-बल नही है और न है कोई जनबल न तो है कुल का गौरव उसके विवाह की आशा भरोसा नही है।

अत्यन्त आशा से आग्रहान्वित होकर ब्रजबाबू इतनी देर तक बाते कर रहे थे, किंतु विमल बाबू निरुत्तर ही बैठे हैं देख कर अकस्मात् व भग्नोत्साह होकर आँखे बंद करके आराम कुर्सी पर लेट गये। थोडी देर बाद जुडे हुए हाथ ललाट पर लगाकर निरुपाय की तरह बोले—गोविन्द, तुम्हारी ही इच्छा पूरी

हो।

शारदा बरामदे मे लालटेन ले आयी।

विमल बाबू ने पूछा—बेटी, राजू क्या घर पर है?

शारदा ने कहा—नही। थोडी देर पहले वे डाक्टरखाने मे गये हैं। अभी तुरन्त ही लौटेगे। ब्रजबाबू की तरफ देखकर उसने कहा—काकाजी , आपके लिए सन्तरे का रस क्या ले आऊँ?

ब्रजबाबू ने इशारे से हाथ हिलाकर मना किया।

विमल बाबू ने कहा—नही क्यो भैया, आपका सतरे का रस पीने का समय तो हो गया, ले आवेगी तो अवश्य ही। लाओ शारदा बेटी। ब्रजबाबू ने फिर मना नही किया। मुँदी आँखो से निर्जीव की तरह पड़े रहे। लालटेन के धीमे प्रकाश मे विमल बाबू ने तीक्ष्ण दृष्टि से लक्ष्य किया—अस्वस्थ ब्रजबाबू का रक्त हीन मुखमडल पीले रग का बदरग हो गया है। मुदी हुई आँखो के दोनो कोने मे दो बिन्दु अति छोटे अश्रुकण फूट उठे हैं।

प्राणाधिक कन्या के भविष्य के सबध मे कितनी गम्भीर हताशा की छिपी हुई वेदना से उस परम सहिष्णु मनुष्य की आँखो के कोने मे आज अश्रुकण निकल पडे हैं विमल बाबू को समझना बाकी नही रहा। निरुपाय वेदना से उनका समूचा हृदय व्यथित हो उठा। चुपचाप बैठकर सान्त्वना देने का उपाय या भाषा सोचने लगे। गोविन्द जी की आरती का घटा बज उठा। रेणु स्वय उपस्थित रहकर पुजारी ब्राह्मण की सहायता से आरती करा रही थी। ब्रजबाबू आरामकुर्सी पर सीधा होकर उठ बैठे। जबतक घडियाल-घटा निस्तब्ध नही हुआ, वे ललाट पर जुडे हुए हाथ लगाकर सिर झुकाये प्रणामरत बने रहे। धूप-धूना, चन्दन काष्ठ-चूर्ण और गुग्गुल के धूम-सौरभ से सध्या की मृदु वायु सुरभित हो उठी। घडियाल-घटा निस्तब्ध हो जाने पर उसके बाद भी ब्रजबाबू बहुत देर तक एक ही भाव से इष्ट देवता को मन ही मन वन्दना करके बाद को चेयर पर फिर लम्बा होकर लेट गये।

रेणु ने जाकर उनको गोविन्द का चरणामृत और सतरे का रस पिलाया। थोडी देर बाद राखाल आकर विमल बाबू की सहायता से ब्रजबाबू को कमरे मे ले गया। दो आदमियो के कधे पर दोनो हाथो से अशक्त शरीर का भार रखकर अतिकष्ट से ब्रजबाबू थोडी चल सकते थे। तब तक भी समूचे अग मे स्वाभाविक बल से वापस नही है मिला था।

भोजनादि के बाद विमल बाबू एक समय ब्रजबाबू की शय्या के पास आकर बैठ गये।

ब्रजबाबू के रोगशीर्ण हाथ को अपनी मुट्ठी मे उठाकर चुपके-चुपके कहा—आपने कल सध्या को जो प्रस्ताव मेरे सामने उपस्थित किया था, उस सबध मे कुछ सोच विचार करके देखना चाहता हूँ। आपको मै कल बताऊँगा।

ब्रजबाबू ने माथा हिलाकर इशारे से समर्थन किया।

विमल बाबू के उठ जाने पर छायाच्छन्न निर्जन कमरे मे शय्याशायी ब्रजबाबू अस्पष्ट स्वर से बारम्बार अपने इष्ट देवता गोविन्द का नाम उच्चारण करने लगे।

दूसरे दिन सवेरे जब विमल बाबू ब्रजबाबू के पास आकर बैठ गये, तब ब्रजबाबू ने लक्ष्य किया एक परितृप्त की स्निग्ध दीप्ति विमल बाबू के मुखमडल मे फैली हुई है। उस उज्ज्वल मुँह की तरफ देखकर ब्रजबाबू मन ही मन शायद बहुत कुछ आशान्वित हो उठे, किंतु साहस करके प्रश्न उठा न सके।

बोले—अखबार आ गया है। राजू ने पढ़कर सुनाना चाहा था, मैंने मना कर दिया। क्या होगा दुनिया भर के लोगो का दैनिक विवरण सुनकर उससे तो अच्छा है कोई सद्ग्रथ को सुनने से मन को शाति मिलेगी और परलोक मे भी कल्याण होगा।

विमल बाबू हँसने लगे। बोले—कौन ग्रथ सुनने की इच्छा है बताइये, पढ़कर सुनाऊँ।

चैतन्य चरितामृत पढियेगा।

विमल बाबू ने कहा—वैष्णव धर्मशास्त्रो मे वही एक आश्चर्यजनक पोथी है।

उसे पढ चुके हैं आप? ब्रजबाबू के गले मे आश्चर्य और आनन्द उच्छ्वसित हो उठे।

कुछ थोड़ा सा उलट-पुलट मात्र किया है। पढ़ना हुआ है ठीक नही कहा जा सकता।

यह तो नही ही है। चैतन्य चरितामृत को जो मनुष्य पाठ कर सका है अर्थात् उसका अर्थ हृदयगम

कर सका है वह गोविन्द के पादपद्म तक पहुँच गया है।

दिमल बाबू ने कहा—यहाँ क्या चैतन्य चरितामृत है?

हॉ है। रेणु को मैंने भागवत और चरितामृत साथ लाने को कहा था। रेणु स्वय भी उस पोथी को पढना खूब पसद करती है कि नही।

ऐसी बात है क्या? लड़की को भी तब तो आपने भगवत प्रेमामृत का आस्वादन कराया है कहिये?

जीभ काटकर जुटे हुए हाथ ललाट पर रखकर देवता के लक्ष्य से प्रणाम करके ब्रजबाबू ने कहा—छि. छि। ऐसी बात मुँह मे लानी नही चाहिये। उससे मुझे अपराध लगेगा। गोविन्द प्रेम का आस्वाद क्या मनुष्य मनुष्य को दे सकता है विमल बाबू! ज्ञान, बुद्धि, विद्या, सब ही वहाँ तुच्छ अर्थ हीन हैं। केवल वे स्वय जिस पर कृपा करते हैं, वही भाग्यवान ससार मे उनके प्रेम का दुर्लभ आस्वाद पाकर धन्य हो जाता है।

विमल बाबू चुप हो रहे।

ब्रजबाबू कहने लगे—वही जो कल सध्या को ऐकान्तिक आकाक्षा से आप से मैंने एक प्रार्थना की थी, आज सवेरे फिर तो उसके लिए कुछ भी आग्रह अनुभव मैं नही करता। यह क्या गोविन्द की ही करुणा नही है।—निरुद्वेग सरल हँसी से ब्रजबाबू का मुँह कोमल हो उठा।

विमल बाबू ने कहा—मैंने कल रात को सोच विचार करके उस विषय मे अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया है।

ब्रजबाबू के रोग-पाण्डुर मुख-मडल पर परितृप्ति की आनन्द-रेखा फूट उठी। उन्होने कहा—मैं जानता हूँ, तुमको उपलक्ष्य करके गोविन्द मुझको भारमुक्त करेंगे।

विमल बाबू ने कहा—किस तरह आपको पता लग गया बताइये तो?—ये थोडी सी बाते स्निग्ध कौतुक से समुज्ज्वल थी।

ब्रजबाबू ने सिर हिलाते-हिलाते कहा—गोविन्द ही तो अपने अधम सेवक की सभी चिन्ताओ को दूर करते हैं। तुमको भेज दिया है उन्हाने मेरे पास इसीलिए ही।

ब्रजबाबू के चेहरे पर असीम विश्वास और भक्ति की पवित्र आभा प्रकट हुई।

विमल बाबू चुप हो रहे।

ससार के बहुत तरह के दु खों से निपीडित इस रोगातुर वृद्ध के सरल चित्त की परितृप्ति की प्रफुल्लता को नष्ट करने को उनका मन नही हो रहा था, फिर भी बात यहाँ कहे बिना काम भी नही चलता। वृद्ध की भ्रांत धारणा दूर न कर सकने से जटिलता बढ जाने की सभावना है।

विमल बाबू ने कहा—मैंने कल विशेष रूप से आपके प्रस्ताव के सबंध मे विचार किया है। सब तरफ से विचार करके मैंने रेणु को ग्रहण करना ही स्थिर किया है। किंतु इस संबध मे एक बात है। आप वचन दीजिये , मैं जो चाहूँगा, उसे आप दीजियेगा।

ब्रजबाबू ने विमूढ नेत्रो से विमल बाबू के मुँह की तरफ देखकर धीमे स्वर मे कहा—कहिये।

विमल बाबू ने कहा—आपने मुझे कन्यादान करना चाहा है। मैं उनको स्वेच्छा से और आनन्द के साथ ग्रहण करना चाहता हूँ। यागयज्ञ मत्रोच्चारण करके, धार्मिक, सामाजिक और कानूनी रीति से पत्नी रूप मे ग्रहण करने से वह हम लोगो का गोत और उपाधि लेकर हमारे वश के अन्तर्गत आ जाती। मेरी सम्पत्ति पर उसका अधिकार हो जाता, मेरी मृत्यु से उसको अशौच पालन करना पडता। यागयज्ञ मंत्रोच्चारण करके ही धार्मिक, सामाजिक और कानूनी रीति से उसे अपनी दत्तक कन्या के रूप मे मैं ग्रहण करना चाहता हूँ। इससे भी वह मेरे वश और गोत्र को पा लेगी। मेरी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होकर मेरी मृत्यु पर अशौच पालन करेगी।

ब्रजबाबू निर्वोध दृष्टि से विमल बाबू की तरफ ताकते रहे, बात कह न सके।

विमल बाबू कहने लगे—रेणु आपकी कितनी स्नेह की सामग्री है, इसे मैं जानता हूँ। मेरी भी वह कम स्नेह-पात्री नहीं है। उसको संतान रूप मे ही ग्रहण करने को मैं तैयार हुआ हूँ।

जरा चुप रह कर विमल बाबू ने कहा—विवाह योग्य कोई सत्पात्र मेरे वश मे रहता तो उसको अपनी सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बना कर रेणु को मैं अपनी पुत्र वधू के रूप मे ले जाता। किंतु उस

तरह का कोई अपना मेरा नही है। दूर सम्पर्क के जो लोग हैं, वे मेरी रेणु बेटी के लिए उपयुक्त पात्र नही हैं। इसीलिए मैंने निश्चय किया है सीधे तौर से मैं उसे दत्तक कन्या रूप मे ग्रहण करूँगा। रेणु बेटी का उपयुक्त सत् पात्र के हाथ सौंपने का भार और उसके भविष्य के सबध मे चिता करने का दायित्व सब मैं लेता हूँ—आपकी ओर कोई चिता नही रही।

ब्रजबाबू ने लम्बी साँस छोडकर आँखे बद कर ली। जवाब नही दिया। उनके मुख-मडल पर इच्छा या अनिच्छा की कोई भी रेखा फूट नही उठी। जैसे निर्वाक् थे वैसे ही बने रहे।

दोपहर को राखाल ने विमल बाबू को कुछ आड मे ले जाकर अत्यन्त गभीर मुँह से कहा—आपके साथ कुछ परामर्श करना है।

विमल बाबू जिज्ञासु दृष्टि से ताकने लगे तो राखाल ने छाती की जेब से डाकघर का मोहर लगा एक पोस्टकार्ड निकाल कर कहा—पढ कर देखिये।

विमल बाबू ने कार्ड हाथ मे लेकर एक बार आँखे फेर कर नाम के सही को लक्ष्य किया—'मगलाकाक्षी श्री हेमन्तकुमार मैत्र।' बोले—ये कौन है राजू? पहचान तो नही सका।

काकाजी के इस ब्याह के साले हैं। हम लोगो के शकुनी मामा। नाम क्या आपने सुना नही है?

ओ , ये ही ब्रजबाबू के कारोबार के प्रधान सचालक थे न?

हाँ। केवल कारोबार का क्यो, विषय-सम्पत्ति, घर-गृहस्थी, स्त्री-कन्या का सब भार ही स्वेच्छा से कधे पर उठा कर काकाजी को बगैर झमेले के गोबिन्द जी के चरणो मे समर्पण कर दिया था।

चुपचाप झुके नेत्रो से पोस्टकार्ड पढ कर विमल बाबू ने आँखे ऊपर उठाकर राखाल के मुँह की तरफ देखा।

राखाल ने कहा—बताइये तो भला, यह चिट्ठी अब काकाजी के हाथ मे देना उचित है या नही?

विमल बाबू निरुत्तर रह कर सोचने लगे।

राखाल ने फिर कहा—काकाजी से इस खबर को छिपा रखना भी तो हम लोगो के लिए अनुचित होगा।

बिमल बाबू ने कहा—यह तो होगा ही।

उसके बाद एक क्षण सोच कर उन्होने कहा—उस चिट्ठी को उनके हाथ मे देने की जरूरत नही है. पढ कर सुना देने से ही काम चलेगा। क्योंकि चिट्ठी के कुछ अश मे अनावश्यक कटु बाते हैं। उनको न सुनाने से ही अच्छा होगा।

अवश्य ही। किस अश को छोडकर कितना उनको सुनाया जा सकता है बताइये तो?

यही जो लिखा है—"जिस कलकित वश मे रानी ने जन्म ग्रहण किया है उसके कलुष की लज्जा तो उसे चिरदिन ढोना पडेगा ही जानता हूँ। मुझे आशका होती है, कही आपके अपराध और महापाप की सजा अन्त तक मेरी निरपराध भानजी को स्पर्श न करे। इसीलिए ही उसको यथासभव शीघ्र सत्पात्र को सौंपने की व्यवस्था मैंने की है। आपको खबर देने की इच्छा नही थी, किंतु लौकिक और धार्मिक दृष्टि से—" इत्यादि। इन सब अशो को उनको सुनाने की जरूरत नही है।

राखाल ने कहा—रानी का विवाह पक्का हो गया उसके पिता की इच्छा-अनिच्छा सम्मति और असम्मति की प्रतीक्षा किये बिना ही। आश्चर्य है! ससार मे ऐसा आपने देखा है विमल बाबू?

विमल बाबू केवल जरा हँस पडे।

राखाल फिर पढने लगा—"आज निर्विघ्न रूप से हलदी लगाने का शुभ कर्म सम्पन्न हो गया, कल गोधूलि लग्न मे शुभ विवाह होगा।" बस इतनी ही बाते केवल लिखी हैं। कहाँ विवाह हो रहा है, पात्र कैसा है, कुछ भी खबर नही भेजी है। अक्किल विचार तो देख लिया?

बिमल बाबू चुप हो रहे।

राखाल ने कहा—बडी लडकी अविवाहिता रही, फिर भी छोटी लडकी का ठाठ बाट से विवाह।

विमल बाबू ने शात स्वर से कहा—ससार का नियम यही है, राजू। कोई कुछ भी किसी के लिए प्रतीक्षा करके नही रहता।

काकाजी उन लोगो को सर्वस्व देकर आज कौडी-कौडी के मुहताज हैं इसीलिए इतनी ज्यादती

मभव हुई, नही तो हो नही सकती थी।

उदास कठ से विमल बाबू ने कहा—यह भी शायद ससार का ही सहज नियम है।

पत्र मिलने के समय से ही राखाल के हृदय के अन्दर जलन हो रही थी। उसने तीखे कठ से कहा—ससार का नियम होने से ही सब कुछ ही सहा नही जाता विमल बाबू।

विमल बाबू ने हँसकर कहा—कितु सहे बिना भी तो कोई उपाय नही है राजू।

बाईस

जाडे की सध्या थी। कलकत्ते की एक पतली गली मे एक एकतल्ले मकान के किवाड ओठगाये हुए कमरे मे रेणु हरीकैन लालटेन के सामने बैठकर पशम की छोटी टोपी बुन रही थी। दरवाजे के बाहर से शारदा के ऊँचे गले से सुनाई पडा—दीदी—

रेणु ने जवाब दिया—आओ।

शारदा ने किवाड ठेलकर प्रवेश किया। उसके पीछे प्रकाण्ड दौरा लिए थी दासी।

रेणु ने उसे देखकर ज्यो ही शारदा की तरफ देखा त्यो ही शारदा ने कहा—गोविन्द जी के लिए माँ ने कुछ फलमूल तर-तरकारी और अच्छा मक्खन भेजा है।

रेणु की आँखो की दृष्टि प्रखर हो उठी। थोड़ी देर तक स्तब्ध रह कर उसने धीर कठ से कहा—शारदा दीदी, उसे तो हम लोग ले न सकेगे।

शारदा ने कुण्ठित गले से कैफियत के सुर मे कहा—यह क्या दीदी, यह तो तुम लोगों के लिए नही है। यह तो गोविन्द जी के—

रेणु ने शारदा की बातो को खतम न होने देकर शात स्वर मे कहा—गोविन्द जी को उपलक्ष्य बना कर माँ ने यह सब हम लोगो के ही लिए भेजा है। यह बात तुम भी जानती हो, मैं भी जानती हूँ शारदा दीदी—कितु इसको लेने का उपाय नही है। माँ से कह देना, वे हम लोगो को क्षमा करे।

शांत कठ की इन थोडी सी सहज बातो के पीछे कितनी सुनिश्चित अटलता है यह समझ लेने मे शारदा को भूल नही हुई। दासी को इशारे से बाहर प्रतीक्षा करने को कहकर शारदा रेणु के पास आकर बैठ गयी और उसने पूछा—काकाजी अच्छे हैं तो?

हाथ के पशम का काम पूरा करते-करते रेणु ने जवाब दिया—हाँ।

बहुत समय स्तब्धता के बीच ही पार हो गया। कहने लायक कोई बात ढूँढ़कर न पाने पर शारदा मन ही मन सकोच और बेचैनी अनुभव कर रही थी। इसीलिए उठ पडूँ-उठ पडूँ सोच रही थी, कि उसी समय रेणु ने ही बात कही।

ऊन की टोपी बुनते-बुनते बोली—शारदा दीदी, माँ को समझा कर कह दो, वे मन मे कष्ट न पावे। मेरे लिए अपने मन मे दु.ख दुर्भावना रखने की उन्हे मनाही कर दो। जो होने वाला बात नही है, वह होती नही है, इसे मुझसे वे अच्छी तरह ही जानती हैं। दु:ख दूर करने के चेष्टा से दोनो पक्षो के ही दु ख का बोझ केवल भारी हो उठेगा।

शारदा निर्वाक् हो रही। मन मे खयाल आने लगा, उस कर्म निविष्टा नतनेत्रा लडकी ने उसके अति निकट बैठी रह कर भी अत्यन्त सुदूर से इन थोड़ी सी शात बाते को कहकर भेज दी।

और भी कुछ क्षण समय बीत जाने पर शारदा ने जरा इधर उधर करके कहा—तो इस हालत मे जा रही हूँ बहिन।

माथा हिलाकर इशारे से रेणु ने सम्मति प्रकट की।

रेणु एक ही भाव से अखण्ड मनोयोग के साथ ऊन की छोटी टोपी तेज हाथ से बुनने लगी। रात ही भर मे इसे पूरा करके एक जोडा छोटा मोजा पकडना होगा।

प्राय सात आठ महीने हुए ब्रजबाबू गॉव का मकान छोडकर कलकत्ते मे आकर रह रहे हैं। त्रिमल बाबू के किराये पर ठीक किये गये मकान मे रेणु ने किसी तरह भी जाना नही चाहा। ब्रजबाबू के बहुत कुछ स्वस्थ हो जाने से रेणु ज़िद करने कम भाडे के एक छोटे से एक तल्ले मकान मे आ गयी है। पिता की बीमारी मे असहाय अवस्था में बाध्य होकर दूसरे मे सहायता लेनी पडी है, इसलिए बराबर ही दूसरो की मुखापेक्षी होकर रहने में वह असम्मत है। इस नीरव प्रकृति की सुशीला लडकी की सम्मति-असम्मति कितनी सुदृढ़ और दुर्लव्य है, इस घटना के बाद इसे सभी समझ सके हैं।

रेणु ने थोडे वेतन की एक मजदूरिन ठेके पर रख ली है। गृहस्थी के काम काज और देश-सेवा के अवकाश मे वह स्वय छोटे बच्चो के लिए जॉघिया, पेनी, फ्राक आदि की सिलाई करती है। ऊन का मोजा, टोपी, स्वेटर बुनती है। अचार, मुरब्बा और बरी तैयार करके ठेके की मजदूरिन के हाथ दूकान पर बेचने के लिए भेज देती है।

खुली छत के ऊपर कोरोगेटटीन की छाजन समेत एक सीढ़ी का कमरा है। उसी कमरे को साफ सुथरा बनाकर ठाकुरघर बना दिया गया है। ब्रजबाबू स्नान-भोजन और सोने समय के अलावा सब समय इस पूजा की कोठरी मे ही रहते हैं। गृहस्थी किस तरह चल रही है, कहॉ से खर्च आ रहा है इसकी खबर वे जानना नही चाहते। जानने से डरते हैं। रेणु के अतिरिक्त और किसी के साथ बहुत वार्तालाप या भेट मुलाकात भी नही करते।

शारदा ने आशंका की थी द्रव्य-सामग्री लोटायी जाने से सविता को अत्यन्त आधात लगेगा । इसलिए घर पहुँच कर द्रव्यसामग्री से भरे दौरे को चुपचाप एकतल्ले के भडार घर मे रखकर वह ऊपर चली गयी।

सविता अपने कमरे मे बैठकर पचाग के पन्ने उलट रही थी। शारदा को देखकर प्रश्न भरी दृष्टि से देखने लगीं।

कमरे की फ़र्श पर सविता के पास बैठकर शारदा ने कहा—काका जी अच्छे हैं मॉ।

रेणु?

रेणु भी अच्छी है।

सविता ने और कोई प्रश्न न करके पचांग के पन्ने पर पुन अपना मन लगाया।

शारदा आश्चर्य मे पड गयी। इसके पूर्व वाले दिन रेणु से भेट करके घर लौटने पर उसनेदेखासविता उत्कंठित प्रतीक्षा मे उसकी बाट जोह रही हैं। उसके बाद कितने ही तृष्णा युक्त आग्रह से एक के बाद एक प्रश्न करके सब खोद खाद कर जान लेना चाहती हैं। रेणु क्या कह रही थी, क्या-क्या बाते उसने कही, उसके बाल बॉधे हुए थे या नही, कपडे फीचे गये थे या नही, रेणु पहले से अधिक दुबली हो गयी है या वैसी ही है, इत्यादि। ब्रजबाबू की अपेक्षा रेणु के संबध मे ही सविता बहुत कुछ अधिक जान लेना चाहते हैं इसे भी शारदा ने लक्ष्य किया है।

बहुत समय चुपचाप बीत गया। शारदा आप ही आप कहने लगी, उन लोगो का अभाव ऐसा कुछ अधिक नही है मॉ, जिसके लिए आप इतना अधिक सोचती हैं। केवल दो प्राणी हैं? खर्च ही क्या है, काम भी क्या है? इच्छा करके ही इसीलिए रेणु ने रसोईदारिन नही रखी। गृहस्थी मे कोई कमी तो मैंने देखी नही।

सविता ने पचाग के एक कोने को मोडकर चिह्न रख कर उसे बन्द कर दिया। शारदा के मुँह की तरफ दृष्टि से देखकर मुसकुराकर उन्होने कहा—वह भले की उन लोगो को न हो? किंतु तुम चीजो के दौरे को कहॉ छिपा कर रख आयी शारदा?

शारदा ठिठक गयी। विस्फारित दृष्टि से लक्ष्य करके उसने देखा सविता के चेहरे पर वेदना का चिह्न मात्र नही है। वरन् ओठो के किनारे दबी हुई हँसी की रेखा है।

सविता ने कहा—तुम शायद यह सोचकर डर गयी हो शारदा कि चीजे वापस आ गयी हैं, सुनकर तुम लोगो की मॉं दु.ख से क्षोभ से बिस्तर पर गिर पडेगी, यही न?

शारदा ने लज्जित होकर कहा—नही, मैंने ठीक यह नही सोचा था। किंतु—शायद मन मे बहुत चोट पा जायँगी यही भय उत्पन्न हुआ था।

सविता स्नेह के साथ शारदा की पीठ पर और माथे पर हाथ सहलाते-सहलाते बोली—बेवकूफ लडकी, तुम्हारी तरह माँ के हृदय की ही तरफ केवल देख कर क्या सभी ने माँ को प्यार करना सीखा है। इसके लिए तो मैं रेणु पर क्रोध कर नही सकती बेटी, उसका दोष नही है कुछ भी।

वह बात आप से कहनी न पडेगी। रेणु जो आप की ही लडकी है आज मानो मैं इसे सबसे अधिक स्पष्ट रूप से देख आयी हूँ माँ।

सविता ने उस बात को बचा कर सहज सुर मे कहा—क्या कह कर तुमको उसने आज वापस किया?

शारदा ने आद्यन्त विवरण सुनाकर अन्त मे कहा—अच्छा माँ, एक बात मैं पूछती हूँ, आप क्या वापस आवेगी समझ कर ही चीजे भेज दी थी?

सविता ने सिर हिला कर इशारे से बताया—नही। उसके बाद उन्होने पूछा—शारदा ठीक तौर से बताओ तो बेटी, सचमुच ही क्या उन्हें कोई अभाव या कमी नही है तुम देख आयी हो?

—अन्दर की बात किस तरह जानूँगी माँ?

—देखने से क्या मालूम हुआ?

शारदा सिर झुकाये निरुत्तर रही।

सविता ने फिर प्रश्न नही किया। उनके प्रशांत मुखमंडल पर चिंता की काली छाया छा गयी।

कुछ क्षण बाद सविता ने प्रश्न किया—आज जब तुम गयी वह तब क्या कर रही थी?

ऊन की टोपी बुन रही थी।

सविता के चेहरे पर वेदना का चिह्न सुस्पष्ट हो उठा। क्लिष्ट कंठ से उन्होने कहा—मैंने चेष्टा की थी राजू की मार्फत उसकी वह ऊन की सामग्री खरीद लेने की। उसने राजू के हाथ बेचना ही चाहा।

क्यो माँ?

राजू ने जिस दाम से उसको बेचना चाहा था वह दाम लेने को वह राजी नही हुई। उसने कहा था—यह तुम लोगो की सहायता करने की युक्ति है।

शारदा स्तब्ध हो रही। सविता की शात गंभीर मूर्ति की तरफ देख कर वह मन ही मन सोचने लगी उस स्थिर प्रशांति की आड़ मे कैसी विक्षुब्ध आँधी बहती जा रही है। संसार मे कोई भी उसका पता नहीं जानता।

—शारदा ने कहा—माँ, मैंने सुना था रेणु के लिए एक अच्छे डाक्टर पात्र का पता ठिकाना ले आये थे देवता। उस सबंध का क्या—

—उमडती हुई लम्बी साँस को दबा कर सविता ने कहा—वह हुआ नही! लडकी ब्याह करेगी नही, यह प्रतिज्ञा उसने की है।

शारदा ने धीरे-धीरे कहा—ऐसी बुद्धि भली लडकी होकर भी वह—

उसकी बात समाप्त होने के पहले ही सविता ने कहा—उसने शायद कहा है, हिन्दू की लड़की को दुबारा हलदी नही लगती। वाग्दत्ता लडकी भी विवाहिता के ही समान है। मेरे विवाह का मामला वाग्दान के बाद बहुत दूर तक आगे बढ़ गया था। अब फिर दो बार करके वे सब मामले होने लगे, यह मैं नही चाहती। तुम लोग मेरे ब्याह की चेष्टा मत करना राजू भैया, उससे मेरा कल्याण न होगा यह मैं जान गयी हूँ।

सविता के चुप हो जाने पर शारदा व्याकुल कंठ से बोल उठी—यही यदि रेणु का मत है तो इस हालत मे उसी पात्र के साथ रेणु के विवाह की चेष्टा कीजिये न, जिसके साथ ब्याह ठीक होकर उसके शरीर मे हलदी तक लग गयी थी! भाग्य मे होने से पति शायद पागल नही भी हो सकता।

सविता ने मलीन हँसी हँस कर कहा—उसी पात्र के ही साथ सात आठ महीने पहले रेणु की सौतेली बहिन रानी का विवाह हो गया।

—सुनकर शारदा स्तंभित हो गयी।

एक मर्मभेदी लम्बी साँस के साथ सविता ने कहा—मेरी गलती से ही ऐसा हो गया।

शारदा पलकहीन नेत्रो से सविता की तरफ ताकती रही।

सविता मृदुस्वर मे स्वगत रूप से कहने लगी—इतनी जल्दी गृहस्थ न होकर शायद उन लोगो को राह

मे खडे होने की घडी नही आती यदि मैं इस तरह निन्दा कर के रेणु का विवाह बन्द न करवा देती।

अवश्य एक न एक दिन उन लोगो को रास्ते मे उतरना ही पडता, मैंने उसे आगे बढ़ा दिया, इतनी ही बात है। क़म से कम रेणु की विमाता इतनी सहूलियत से ही झटपट सम्पत्ति का हिस्सा बॉटकर अलग कर जाने का बहाना न पाती।

शिबू की मॉ ने आकर पुकारा मॉ, भैया जी अन्दर मकान मे आ गये हैं, उनका खाना दीजिए चलिए। रात होती जा रही है।

शारदा झटपट उठ खडी हुई और बोली—आप को जाना न पडेगा मॉ। मैं ही तारक बाबू को खाना जाकर दे देती हूँ, आप बल्कि कुछ विश्राम कीजिये।

नही शारदा। चलो मैं भी चलती हूँ। वह घबडा जायगा खाते समय मुझे न देखने से। शारदा के साथ सविता भी नीचे उतर गयी।

हरिणपुर से लौट आने पर सविता ने अपना मकान बदल दिया है। रमणी बाबू के उस पुराने मकान मे प्रवेश करने की अब इच्छा नही है। नियति के दुर्लंघ्य विधान से दीर्घ बारह वर्ष से अधिक काल जहाँ प्रति पल आत्महत्या की दुस्सह यत्रणा भोग कर के भी, आच्छन्नता की बीच अर्ध चेतनवत् बिताना पडा है। आज उस मकान की तरफ देखने मे भी आतक से शरीर सिहर उठा। फिर भी उस मकान से ही आश्रयच्युति की सभावना से अभी उस दिन भी तो उनको चिता से विचलित चित्त हो जाना पडा था। दीर्घ काल अपनी रुचि को निष्ठुर भाव से पीस कर, स्वभाव के विपरीत स्रोत मे अग्रसर होने के फलस्वरूप जिस असीम शांति से वे अवसन्न हो उठी थी, वह भार धीरे-धीरे दिन पर दिन दुस्सह होता जा रहा था।

विमल बाबू ने जिस मकान को ब्रज बाबू और रेणु के लिए ठीक कर रखा था, सविताउसी मकान मे चली गयी हैं। विमल बाबू कलकत्ते में नही हैं। व्यवसाय सबधी जरूरी टेलीग्राम आने से सिगापुर वापस चले गये हैं। सविता की देखभाल का भार देकर राखाल को इस नये मकान मे रहने के लिए विमल बाबू ने अनुरोध किया था। नयी मॉ की देखभाल का भार लेने को सम्मत होने पर भी उनके मकान पर रहने मे राखाल ने असमर्थता प्रकट की थी। विमल बाबू से यह खबर सुनकर तारक ने स्वेच्छा से नयी मॉ के डेरे पर रहकर उनकी देखभाल का भार ग्रहण किया है।

सविता की इच्छा के अनुसार तारक ने वर्दवान की स्कूल मास्टरी छोड कर हाईकोर्ट मे प्रेक्टिस करना शुरू किया है। एकतल्ले के बाहरी हिस्से को बैठकखाना मे कानूनी पेशावाले के उपयुक्त सामान-असबाबो से खूब अच्छी तरह सजा दिया गया है। विमल बाबू ने स्वय व्यवस्था करके उसको हाईकोर्ट के एक प्रतिष्ठित वकील का जूनियर बना दिया है। विमल बाबू की छोटी मोटर कार मे ही वह कचहरी जाना आना करता है। तारक के जरूरी पोशाक-पहनावे गाउन आदि साज-सामान सब ही सविता ने खरीद दिया है।

तारक का खाना हो जाने पर सविता ऊपर चली आयी थी। बहुत देर बाद शारदा ने ऊपर आकर कहा—मॉ, आज भी आप कुछ भी मुँह मे न डालेगी?

नही शारदा। मेरे गले से कुछ गलेगा नही। कितु तुम यदि मेरे लिए न खाकर उपवास करना चाहोगी, तो मुझे खाना ही पडेगा। कितु मैं जानती हूँ, तुम अपनी मॉ के साथ ऐसा जुल्म न करोगी।

शारदा मलिन चेहरे से खडी रही।

सविता ने कहा—जाओ बेटी, तुम खा आओ।

शारदा तो भी मुँह नीचे झुकाये साडी के ऑचल का एक कोना दोनो हाथो से अनावश्यक ही लपेटने लगी।

सविता ने कहा—कोई मनुष्य एक वक्त न खाने से मरता नही शारदा। कितु खाना अधिकाश समय मे उसके लिए मरण से भी अधिक यत्रणादायक हो उठता है। तो भी, यदि तुम मुझे खिलाने के लिए परेशान करना चाहो तो चलो चल ही रही हूँ।

शारदा ने इस बार मुँह ऊपर उठाकर मृदु कठ से कहा—नही, रहने दो मॉ। मै अकेली ही जा रही हूँ।

खाली कमरे मे बत्ती बुझाकर दरवाजे की सिटकिनी बन्द करके सविता खाली फर्श पर लेट गयी।

दोपहर को आज राखाल आया था। सविता विपत्तिग्रस्त पति और कन्या का सब समाचार ही जान गयी हैं। सारा दिन मानो उदासीनता के बीच से छाया की तरह बीत गया है, रात्रि के स्तब्ध निर्जन अवकाश मे वेदना भावातुर अन्तस्तल मे कुछ-कुछ मानो चेतना लौट आयी है। निर्मीलित दोनों नेत्रों की अविरल विगलित अश्रुधारा से कठोर फर्श पर लापरवाही से बँधी हुई केशराशि भीगने लगी। कोई भी शब्द नही है। चचलता नहीं है। निस्पन्द शरीर मे फैलाई हुई बॉहो पर माथा रखकर जमीन पर एक करवट पर पडी हुई हैं। उपायहीन हानि के क्षोभ से उनका समस्त हृदयमन आज कातर और विकल है। कोई सान्त्वना ही आज ढूंढने पर उन्हे नही मिल रही है। अपने सतान का यह दु ख और कृच्छसाधन उनको दिनरात मानो आग की चिनगारी के आघात से जर्जरित कर रही है। समस्त हृदय क्षत-विक्षत हो जाने पर भी वेदना से आर्तनाद करने का उपाय कहॉ है। बलि पशु की तरह ही रक्तारक्त शरीर से धूलि मे पडी रह कर छटपटाते रहने के सिवा कोई गति नही है।

आज उनका तृषित मातृ हृदय दोनो बॉहो को बढाकर जिसको छाती के अन्दर खीच लेने को व्याकुल है, हृदय से निचोडे हुए अशेष स्नेह से जिसे अभिषिचित करके भी तृप्ति नही है, ससार मे वही आज उससे सबसे अधिक परायी, सबसे अधिक दूर की हो गयी है।

परिपूर्ण यौवन के उच्छ्वसित वसत दिनो मे जब जीवन स्वत ही प्यास से आतुर रहता है, उनका उन दिनो को बिलकुल ही अकेली नि सग अवस्था मे ढोना पडा है। नही मिला है हृदय का अतरग साथी, न तो मिला है यौवन का प्राणवान सहचर। उस एकान्त अकेलापन के बीच हठात् एक दिन न मालूम कहॉ से कैसा आकस्मिक विप्लव हो गया उसे वे स्वय भी स्पष्ट रूप से समझ नही सकीं। जब चैतन्य हुआ, आसपास उन्होने देख लिया समूचे विश्व-ससार मे उनको कोई नही है, कुछ नही है। पति, सतान, गृह, परिजन, ससार प्रतिष्ठा, मानमर्यादा सब ही जादूगर की जादूगरी की तरह अन्तर्हित हो गये हैं। भयचकितचित्त से सहसा उन्होने अनुभव किया, ससार और समाज के बाहर वे बन्धुहीन अवलम्बनहीन हैं, अकेली शून्य के बीच लटक रही हैं। पैर रख कर खडी होने लायक जमीन तक भी पैरो के नीचे अब नही है।

जीवन के इस आकस्मिक सर्वनाश के क्षण मे जिस अत्यन्त कीचड भरी आश्रयभूमि का परिधि के बीच अपने को खडा करा दिया, वह सामाजिक ज्ञान-बुद्धि और विचार के पूर्णत दृष्टि बहिर्भूत था। केवल जीवो की प्रकृति की स्वाभाविक आत्मरक्षा प्रवृत्ति के वश मे पडने से ही जीवन धारण करने का अनिवार्य प्रयोजन ही उसके सामने आ पडा। कितु दिन बीतते रहने के साथ ही साथ उस अलुषित आश्रय के क्लेद और भद्देपन से प्रतिदिन उनका शरीर मन घृणा से सकुचित होता गया। जाग्रत आत्मचेतना प्रतिक्षण पश्चात्ताप के मर्मान्तिक आघात से आहत और जर्जरित होती रही। फिर भी उस असहनीय और अवाछनीय, सकीर्ण आश्रय को छोड कर और भी अनिश्चित मार्ग के बीच कूद जाने का साहस उनको नही हुआ। अपनी अतिशय निरुपाय अवस्था समझ लेने पर वे भीतर ही भीतर सिहरती रही। इसी प्रकार उनके दिन के बाद दिन, महीने के बाद महीने, वर्ष के बाद वर्ष नियत अस्वस्ति के बीच कटते गये।

जीवन के प्रारम्भिक क्षणो मे यदि कोई बलिष्ठ सजीव पुरुष उनके जीवन के मार्ग मे आ खडे होते तो आज उनके उज्ज्वल नारी जीवन की दीप्ति से क्या ससार और समाज प्रकाशित न हो उठता?

इस चिताधारा मे सहसा बाधा पड गयी। अचानक दरवाजे की साकल तेजी से बजने लगी।

बाहर से तारक की आवाज आयी—नयी मॉ, मैं हूँ तारक जरा दरवाजा खोलिये।

सविता ने कहा—इस वक्त तग मत करो।

तारक ने कहा—दो बाते सुन लीजिए। आपका अधिक समय नही लूँगा।

लाचारी मे सविता उठी और उसने दरवाजा खोल दिया। तारक को परेशानी सूरत मे देखकर वह मन ही मन शकित हो उठी। शायद घर मे कोई दुर्घटना हो गयी है।

तारक ने कहा—सुना कि आजकल आप रोजाना रात को कुछ नही खाती। आज भी आपने कुछ नही खाया। क्या आपकी तबीयत खराब है?

इस प्रश्न से सविता मन ही मन खीझ उठी। कभी-कभी तारक का व्यवहार इतना अशोभनीय और

रूढ हो जाता है कि जवाब देने की इच्छा नही होती। इस वक्त भी सविता चुप रही।

तारक ने अपना प्रश्न पुन दुहराया।

सविता ने शात स्वर मे जवाब दिया—मैं बिलकुल ठीक हूँ। तुम्हे चिता करने की जरूरत नही है।

तारक ने कहा—लेकिन आप नित्य उपवास क्यो कर रही हैं। नही, नही, मैं यह सब नही सुनूगा। आपको भोजन करना पडेगा। आपको क्या शिकायत है, डाक्टर को बुलाकर कल जॉच कराऊँगा।

यह सब हगामा मत करो तारक। मैं मना कर रही हूँ।

तो बताइये, क्यो अकारण ही उपवास करके आप अपने सिर पर अत्याचार कर रही हैं।

रात हो गयी है, तुम जाकर सो रहो तारक।

सविता के स्वर मे अत्यन्त थकावट फूट उठी।

तारक इससे क्षुण्ण हो पडा। बोला—बहुत अच्छा, आपकी जैसी खुशी हो कीजिये। मैं सिंगापुर सब हाल लिख देता हूँ। वे आने पर अन्त मे यदि कहे, तारक, तुमको मैं देखभाल करने का दायित्व देकर रख गया था, मुझको तुमने खबर क्यो नही दी—तब क्या जवाब दूँगा उनका?

सविता का हृदय जल उठा। किंतु धीर भाव से ही उन्होंने कहा—मैने क्यो दो दिन खाया नही, अथवा तीन दिन मैं सोयी नही इसके लिए वे किसी से भी कैफियत तलब न करेगे।

तो इस हालत मे मेरे यहाँ रहने की क्या जरूरत है नयी माँ?

तारक के स्वर मे अभिमान प्रकट हुआ।

सविता ने अवसन्न कठ से कहा—आज मैं बहुत थक गयी हूँ तारक। तर्क करने की शक्ति मुझमे नही है। मैं सोने जा रही हूँ।

सविता ने धीरे-धीरे फिर दरवाजा बन्द कर दिया।

शारदा सीढियो के सामने ही खडी थी। लौटते समय उसको देख कर तारक तीव्र स्वर से बोल उठा—नयी माँ, जो प्रतिदिन रात को उपवास करती हैं, यह बात आपने मुझे क्यो बतायी नही। आज शिबू की माँ के मुँह से सुनकर यह बात मुझे मालूम हुई।

आपने तो उनके सबध मे कुछ जानना नही चाहा।

शारदा के कठ की निर्लिप्तता से तारक गरज उठा—क्या, इतनी बडी झूठी बदनामी। मैं क्या नयी माँ की खबर नही रखता? देखभाल मे त्रुटि करता हूँ?

अकारण ही चिल्लाइये मत। मैंने यह सब कुछ भी नही कहा।

अवश्य ही कहा है। मैं समझ गया हूँ। मेरे विरुद्ध एक षडयत्र चल रहा है। आज रात को ही मैं सब लिख देता हूँ विमल बाबू को।

आप लिख सकते हैं। किंतु इससे नयी माँ नाराज होगी।

अपना कर्तव्य मैं करूँगा ही। सब दायित्व वे मेरे ही ऊपर रख गये हैं, इस बात को भूल जाने से तो हमलोगो का काम न चलेगा।

नयी माँ की रुचि-अरुचि पर जुलुम करने के लिए वे किसी को भी नही कह गये हैं। कहेगे भी कैसे? यह अधिकार किसी को भी नही है।

व्यग्य भरे स्वर से तारक बोला—तो वह अधिकार किसको है सूनूँ? राखाल बाबू को तो नही है आशा करता हूँ।

शारदा की दृष्टि कठोर हो उठी। उसने अपने को जीजान से सभाल कर मीठे स्वर से कहा—नयी माँ के ऊपर जोर चलाने का अधिकार यदि आज किसी को है तो राखाल बाबू को ही है और किसी को नही है।

मीठे स्वर से कही गयी इन बातो ने तीखे नोक वाली सुई की भाँति तारक को बिंध दिया।

गूढ़ क्रोध को सयत न कर सकने पर तारक बोल उठा—यह तो ठीक ही है। इसीलिए तो वे नयी माँ की असहाय अवस्था मे देखभाल करने का भार तक भी ले न सके। नयी माँ के घर आकर रहने से पीछे कही उनके सुनाम मे कलक न लग जाय।

शात गले से शारदा ने कहा—जो लोग स्वार्थ के प्रयोजन मे सब कुछ करने को तैयार हैं, राखाल बाबू उन लोगो के दल के नही हैं। नयी माँ की देखभाल का भार लेने की अपेक्षा नयी माँ की तरफ उन्होने बहुत

न्डा कर्तव्य का भार ले रखा है। आप उसे नही जानते, इसलिए समझ न सकेंगे।

किसी उत्तर की प्रतीक्षा न करके शारदा सीढियो पर से होती हुई नीचे चली गयी।

दोपहर को नहा कर तुरन्त सविता भीगे बालो के घने समूह को पीठ पर फैला कर धूप की ओर पीठ रख कर एकाग्रचित से पत्र लिख रही थी। पहिनी हुई साड़ी की काली पाड शंख सदृश सुन्दर गरदन के एक तरफ से लता की तरह लिपट कर पीठ पर टेढी होकर पडी हुई है। उदास विषाद भरी छाया ने शीर्ण शुभ्र चेहरे पर सकरुण श्री को विकसित कर दिया है।

शारदा उसी जगह बरामदे के एक छोर पर बैठकर अपने लिए एक शेमिज सी रही थी। रास्ते की तरफ उसने देखा तो उसे राखाल आता हुआ दिखलाई पडा। सिलाई का काम हाथ मे लिए ही वह नीचे उतर गयी। सदर दरवाजा खोलने के लिए।

कडा खटखटा कर पुकारने की जरूरत नही पडी। खुले दरवाजे पर शारदा उसके लिए प्रतीक्षा कर रही है देख कर राखाल अपने मन मे कुछ खुशी ही हो उठा। उसे प्रकट न करके ही वह बोला—ठीक दोपहर के समय सदर दरवाजे पर खड़ी क्यो हो शारदा?

एक आदमी के लिए प्रतीक्षा कर रही हूँ।

कौन है वह? फेरीवाला होगा अवश्य ही।

नही, आप पहचान न सकेंगे।

तो तुम ही पहचान करा दो न—

स्वयं पहचान लेना न चाहने से दूसरा कोई उसे पहचान लेने की शक्ति नही दे सकता देवता।

यह वात तो पहेली मालूम हो रही है—

कल्पनाशील मनुष्य के लिए सभी बाते पहेली सी ही लगती हैं ऐसा मैंने सुना है। इधर हटिये, दरवाज बन्द कर दूँ।

शारदा दरवाजा बन्द करके राखाल के साथ अन्दर दालान मे चली गयी।

राखाल ने मीठी हँसी से कहा—और दिन भी इसी तरह निस्तब्ध दोपहर को किसी के लिए दरवाजे पर खडी रह कर प्रतीक्षा करती रहती हो क्या शारदा?

उसके स्वर मे स्वच्छ परिहास का लघु सुर था।

शारदा ने केवल एक क्षण राखाल के मुँह की तरफ देख कर समझना चाहा कि यह व्यग्योक्ति है या नही। उसके वाद उसने भी हँस कर जवाब दिया—हॉ सब दिन ही करना पडता है। जिस दिन पहले पहल आपने मुझे देखा था, उस दिन भी तो एक आदमी की वाट जोहती हुई दरवाजा खोल कर मैं प्रतीक्षा कर रही थी।

ऐसी ही वात है क्या? वे कौन हैं बताओ तो?

शारदा ने हँस कर कहा—मेरे परम मित्र हैं मरण देवता। उनके आने का दरवाजा तो उस दिन इसी तरह अपने ही हाथो से मैंने खोल दिया था। किंतु उस खुले दरवाजे की राह से मरण देवता के वदले आ गये मर्त्यलोक के देवता।

राखाल के कानो की जडे लाल हो उठे। इस वात को हलका बना देने के लिए उसने कहा—कोई कुदेवता तो आ नही गये, इतना ही यथेष्ट है। चलो ऊपर चले। नयी माँ क्या इस समय विश्राम कर रही हैं?

नही। वे चिट्ठी लिख रही हैं। अभी तुरन्त उनका खाना हुआ है।

यह कैसी वात। इतनी देर मे?

प्रतिदिन तो ऐसा ही होता है। गृहस्थी के सभी कामकाज अपने हाथो से सम्पन्न करके स्नान-पूजा करके जव खाने वैठती हैं तव तीन बज जाते हैं। आज तो वल्कि कुछ पहले ही हो गया है।

इसका क्या माने? अपने हाथ से तो ये सव काम करना नयी माँ का अभ्यास नही है। ऐसा करने से तो सख्त वीमार पड जायेगी। आदमी-जन दासी रसोईदारिन ये सब क्या अब नही है? अकेली तो वे हैं। ऐसा ही क्या उनको अभाव—

अभाव के कारण नही देवता।

तो?

यह है उनका कठिन आत्म-निग्रह।

राखाल निरुत्तर हो रहा।

शारदा ने लम्बी साँस लेकर कहा—चल कर बैठिये।

शारदा के मुँह की तरफ देख कर राखाल ने कहा—मैं दोपहर को आता हूँ, इससे नयी माँ के विश्राम मे मैं कुछ विघ्न नही डालता शारदा?

ऐसा यदि आप को खयाल होता हो तो इस समय न आवे तभी ठीक है!

राखाल ने जरा इधर-उधर करके कहा—किंतु इस समय के सिवा यहाँ आने का अवसर मुझे नही रहता शारदा।

मुँह को दबाकर हँसती हुई शारदा ने जवाब दिया—यह मैं जानती हूँ।

राखाल ने सदेहभरे स्वर मे कहा—इसका क्या मतलब? तुम इसके बारे मे क्या जानती हो?

जानती ही तो हूँ। इस समय इस मकान के नये वकील साहब कचहरी मे रहते हैं। अतएव आप को मित्र-सकट, अरे, मित्र-मिलन होने की सभावना नही है।

हूँ, लकीर खीचकर भविष्य गणना करना सीखा है। अब चलो ऊपर चलोगी या नीचे ही मुझे खडा रखोगी?

शारदा ने कहा—उस तरफ की एक बेच पर जरा चल कर बैठिये न देवता। माँ की चिट्ठी लिखना खतम होने मे अभी कुछ देर है। इसी अवसर मे मैं आप से दो-चार बाते पूछना चाहती हूँ।

चलो, ऊपर चल कर ही सुनूँगा।

माँ के सामने मैं कह न सकूँगी। मुझे झिझक मालूम होगी।

शारदा राखाल को एकतल्ले के दालान के उत्तर तरफ ले गयी। एक तरफ पीठ टेकने वाली काठ की बनी एक बेच रखी हुई थी। अपने आँचल से बेच के ऊपर की धूल झाड कर शारदा ने कहा—बैठिये।

राखाल बैठ गया और बोला—इसके बाद। तुम्हारा आसन कहाँ है?

नही, मैं अच्छी तरह हूँ। मुझे थोडी ही बाते करनी हैं। अधिक समय तक आप को ठहरना न पडेगा।

तथास्तु। अथकथा का आरम्भ हो जाय।

आप इस तरह हँसी-मजाक करेगे तो मैं कहूँगी किस तरह?

अच्छा हँसी-मजाक दोनो ही छोड देता हूँ। कहो।

शारदा राखाल से कुछ दूरी पर दीवाल पर टेक कर खडी थी। हाथ मे सिलाई का जो काम अधूरा पडा हुआ था, उसे हिलाते-डुलाते जरा इधर-उधर करके उसने कहा—मैं ठीक नही जानती, यह सब पूछना मेरे लिए उचित है या नही। उसके बाद थोडी देर तक चुप रह कर उसने कहा—अच्छा, रेणु की बहिन विवाह के बाद किस हालत मे है आप जानते हैं।

राखाल ने शारदा से ऐसे प्रश्न की आशा नही की थी। इसीलिए बहुत कुछ आश्चर्य मे पडकर उसने कहा—क्यो बताओ तो? मैं तो विशेष कुछ भी नही जानता। किंतु वह अच्छे घर मे ही पडी है और ब्याह के बाद सुख-स्वच्छन्दता मे ही है ऐसा मैंने सुना था। किंतु, एकाएक तुम पूछ क्यो रही हो शारदा?

पीछे बताऊँगी। अच्छा, रानी को सुनता हूँ सतान प्रसव होने वाला है, उन लोगो ने चिट्ठी लिख कर काकाजी के पास यह सुसमाचार भेजा है?

शायद होने वाला हो। किंतु हम लोगो को इन सब समाचारो की क्या आवश्यकता है शारदा? यह समाचार सुनाने के ही लिए क्या तुमने समारोह करके मुझको यहाँ लाकर बिठाया है?,

नही। शारदा का कठ स्वर कुछ भारी हो उठा। उसने कहा—आप क्या जानते हैं रानी का ब्याह हुआ है उसी पात्र के साथ, जिस पात्र के साथ रेणु का ब्याह ठीक हो चुका था और हलदी लगाने का काम भी पूरा हो गया था।

राखाल ने अत्यन्त आश्चर्य मे पडकर कहा—ऐसी ही बात है क्या? यह बात तो मैं नही जानता था। राखाल की आँखो मे और मुँह पर चिंता की छाया सुस्पष्ट हो उठी।

हाँ, ऐसी ही बात है।

थोडी देर बाद शारदा ने पुन. पश्न किया—काकाजी शायद वृन्दावन जाकर रहेगे यह निश्चय उन्होने किया है?

हाँ।

रेणु भी साथ जायगी?

नही तो वह फिर रहेगी कहाँ?

शारदा क्षणकाल चुप हो रही। बाद को धीरे-धीरे कुछ अपने मन ही मन बोली—किंतु वहाँ इस ऊमर मे कुमारी लडकी—

राखाल ने कहा—सब ही तो मैं समझ गया। किंतु इसके सिवा दूसरा रास्ता ही कहाँ है दिखा सकती हो शारदा? थोडा रुक रह कर वह फिर कहने लगा—जिसके भाग्य मे जो लिखा है, उसको वह होता ही है। यही है दुनिया का नियम। इसे मान न लेने से केवल जटिलता और दु.ख बढ जाता है।

इसका मतलब यह है कि, आप कहना चाहते हैं रेणु के भाग्य मे जो है, वह होगा ही। हम लोगो की दुश्चिन्ता व्यर्थ है?

यही बात नही है तो क्या है? उसकी भाग्य - विडम्बना तो शैशव काल मे ही शुरू हो गयी थी उसके जीवन मे। तुम मैं क्यो, देश भर के लोग अब उसको सुख मे रखने की चेष्टा करेगे तो वह व्यर्थ हो जायगी।

क्या यही है आपके हृदय का यथार्थ विश्वास देवता?

हाँ, बहुत ठोकरे खाकर यही मैंने अन्त मे समझ लिया है।

शारदा स्तब्ध हो रही। बहुत देर के बाद लम्बी साँस लेकर उसने कहा—माँ किंतु इसे सहन कर सकेगी ऐसा मालूम नही होता।

इसका क्या माने।

आप चाहे जो कुछ भी कहे देवता, शारदा को आप भुलावे में नही डाल सकते। जोर लगा कर निष्ठुर बनना आपकी तरह मनुष्य के लिए साध्य नही है। सब ही आप जानते हैं, समझते हैं। आपके ज्ञान के सामने मेरा ज्ञान और मेरी बुद्धि तुच्छ है। मैं जानती हूँ, रेणु की आज जो अवस्था है, इसके लिए उसकी माँ ही उत्तरदायी है। किंतु जो बात इस ससार मे बहुत से मनुष्यो के जीवन मे, इच्छा से या अनिच्छा से हो जाती है उसकी क्या कोई जवाबदेही रहती है? खुद ही क्या वह उसका अर्थ ढूँढने पर पाता है?

राखाल भावहीन शून्य दृष्टि से शारदा की तरफ देखता रहा।

शारदा धीरे-धीरे कहने लगी—तो आप सोच कर देखिये, उस दिन की माँ और आज की माँ एक नहीं है। दोनो में बहुत भेद है। और जो कोई जो कुछ भी क्यो न समझे देवता; माँ का नयी माँ के रूप मे परिचय आप से ज्यादा और कौन जानता है।

निरुत्तर राखाल की आँखो मे और चेहरे पर निगूढ वेदना की विषण्णता उतर आयी थी। शारदा ने अत्यन्त मीठे स्वर से कहा—माँ की तरफ अब देखा मुझसे नही जाता। कैसी थी और कैसी होती जा रही हैं दिन पर दिन। दिन रात भूसी की आग से जलते-जलते उनका शरीर और मन राख हो गये। खाना छोड़कर, पहिनना छोडकर गृहस्थी के अनावश्यक कामो मे मजदूरिन रसोईदारिन से भी अधिक मेहनत करते-करते चिंता से पडी-पडी, अपने शरीर को नष्ट करती जा रही हैं, तो भी एक क्षण के लिए भी वे शांति नही पा रही हैं।

राखाल उदास नेत्रो से आँगन की तरफ ताकता रहा। उसने कोई बात नही कही।

शारदा ने कहा—माँ के ऊपर आप अविचार मत करे। आप भी यदि अभिमान से माँ को गलत समझे, तो इस पृथ्वी मे सत्य के ऊपर निर्भर करना नही चल सकता। मनुष्य बचा रहेगा कैसे?

राखाल ने अपनी निगाह नीचे कर ली। क्या कहे कुछ भी सोचकर स्थिर न कर सका। जवाब देने लायक कोई बात थी नही।

देवता आप चलिये जरा माँ के पास। आजकल उनके मन मे जो मर्मान्तिक ज्वाला है, उसे कुछ भी शीतल कर सके ऐसा कोई आदमी आपके सिवा और कोई नही है।

अब से तुम्हारी बातो के अनुसार मैं चलने की चेष्टा करूँगा शारदा।

भारी स्वर से शारदा ने कहा—आप केवल मेरे जीवनदाता देवता नही हैं, मेरे गुरु भी हैं। मैं अंधी थी, आपने ही मुझे दृष्टि दे दी। नासमझ थी आपने ही समझ दी। आपके ही दृष्टिकोण की स्वच्छता से आज मेरी दृष्टि बदल गयी है। यह बात मैंने जरा भी बढ़ा-चढ़ा कर नहीं कही, अन्तर्यामी जानते हैं।

तेईस

विमल बाबू सिंगापुर से कलकत्ता लौट आये हैं।

तारक के पत्र मे सविता के शारीरिक विषय मे उसको उन्होने लिखा था—"तुम लोगो की नयी माँ जो काम करने से तृप्ति पावे, उसमे बाधा पहुँचाना हम लोगों के लिए उचित नहीं है।

यह पत्र पाकर एक तरह से तारक बच गया। क्योंकि नये कानून की प्रैक्टिस मे वह दिन-रात व्यस्त हो रहा था, दूसरी तरफ ध्यान देने लायक अवकाश अब उसके लिए बहुत ही कम था।

नयी माँ के स्नानाहार मे रोज का अनियम, उपवास और परिश्रम का कठोर अत्याचार, किसी भी बात के लिए वह अब एक शब्द भी मुँह से नही निकालता। गभीर मुँह से और यथासभव चुप रह कर अपना स्नान भोजन करके वह बाहरी बैठकखाने मे चला जाता है।

सविता हँस पडती हैं। एक दिन उसे अपने पास बुलाकर उन्होने कहा—तारक, तुम माँ पर नाराज हो गये हो बेटा?

मुँह उदास बनाकर तारक ने जवाब दिया—यह अधिकार तो मुझे नहीं है नयी माँ। माँ एक राह का भिखारी ही तो हूँ।

सविता स्नेहपूर्वक कहा—छि. ऐसी बात नही कहनी चाहिये।

तारक और भी कई टेढी सीधी बाते ठेस लगा कर सुनाने को तैयार हो गया था, किंतु शारदा को आते देख कर हट गया। वह अच्छी तरह ही जानता है, नयी माँ कुछ भले ही न कहे, ऐसे अनेक अप्रिय सत्य हो सकते है, कि अभी तुरन्त सुस्पष्ट हो जायँ, जिनको सह लेना तारक के लिए अत्यन्त कठिन होगा। फिर भी उनके प्रतिकार का भी उपाय नही है।

विमल बाबू ने अपने कलकत्ता लौटने का समाचार सविता के पास पत्र द्वारा और तार द्वारा भी भेजा था। सविता के मुँह से वह समाचार सुनकर उनका स्वागत करने के लिए सवेरे जहाज घाट पर उपस्थित हो गया था। वहाँ जाकर उसने देखा, विमल बाबू की छोटी और बडी दोनों मोटर कार लेकर उनके मैनेजर, मुनीम और दरवान आदि वहाँ उपस्थित हैं। विमल बाबू ने तारक को देखकर उसको अपनी कार मे बुला लिया।

मोटर मे विमल बाबू ने तारक से सबसे पहले पूछा—राजू अच्छी तरह है तो तारक?

आश्चर्य में पड कर तारक ने जवाब दिया—क्यो, उसको क्या हो गया है?

नही, यों ही पूछ लिया है। मैंने तो उसे लिखा था कि नही, यदि कोई असुविधा न हो तो, जेटी पर ही आकर मुझसे भेट करना।

तारक के मुख की दीप्ति एक ही मुहूर्त्त मे लुप्त हो गयी। सूखे गले से उसने पूछा—कोई जरूरी काम था शायद।

हाँ। आया नही यह देखकर जान पडता है कि संभवत बीमार पड गया है, अथवा कलकत्ते के बाहर चला गया है। मेरी चिट्ठी उसे मिली नही।

तारक ने कहा—नही, परसो शाम को भी मैंने उसको अपने डेरे पर देखा है।

विमल बाबू ने कहा—तो इस अवस्था मे मालूम होता है कि किसी काम मे फँस जाने से वह आ नही सका है। ड्राइवर से उन्होने कहा— शिवचरण, पटलडँगा चलो।

तारक ने कहा—कुछ आगे इधर ही मुझे उतार दीजियेगा विमल बाबू। मेरा आज एक जरूरी कन्सल्टेशन इस मुहल्ले में है।

तव तो तुम्हारी प्रैक्टिस खूब जम गयी है कहो न।

हॉ, आपके आशीर्वाद से कोई खराब नही है। प्राय. प्रतिदिन ही एनगेज्ड हूँ।

अच्छी बात है, अच्छी बात है। तुम जीवन मे उन्नति कर सकोगे।

तारक विनम्रता युक्त हँसी के साथ विमल बाबू के पैर छूकर गाडी से उतर गया।

पटलडागा पहुँचने पर देखा गया राखाल के डेरे पर डबल ताले से दरवाजा बन्द है। कोई खबर मिलने का भी उपाय वहॉ नही है।

विमल बाबू वहॉ से लौटकर सविता के डेरे पर उतर पडे। उनके स्वर की आहट पाकर शारदा ने झटपट बाहर आकर हँसते हुए चेहरे से प्रणाम किया। विमल बाबू की तरफ देख कर उसने कहा—आप बहुत दुबले हो गये हैं। काले भी हो गये हैं। उस जगह की जलवायु शायद अच्छी नही है।

विमल बाबू ने हँसी के साथ जवाब दिया—दुनिया की माताओं की नजरे चिरकाल से यही एक ही बात कहती आयी हैं। लडका कुछ दिन घर से बाहर घूमकर लौटता है तो माता उसका पैर से सिर तक निरीक्षण करके शरीर और माथे पर हाथ फेर कर कहेंगी ही—अहा बच्चा मेरा सूख कर आधा हो गया है। मैं जो इससे कम काला था या ज्यादा मोटा था, उसका उपयुक्त प्रमाण कहॉ है शारदा बेटी?

शारदा लज्जित हो गयी। विमल बाबू की बातों को टालकर बोली—बैठिये, मॉ को बुला लाती हूँ।

बुलाना नही पडा। रसोईघर से निकलकर सविता बाहर चली आयी। अधमैली मोटी सिल की धोती पहने हुए थी। शुभ्र ललाट पर और कानो के पास केशगुच्छ रूखे रेशम की तरह झूल रहे थे। चेहरा पहले की अपेक्षा बहुत दुबला हो गया था। बड़ी-बडी ऑखो की निष्प्रभ दृष्टि मे विषाद की छाया पडी हुई थी।

शायद विमल बाबू का सविता के शरीर की ऐसी खराब दशा देखने की आशा नही थी। इसीलिए चकित होकर उन्होने पूछा—तुम्हारा शरीर इतना खराब हो गया कैसे? बीमार तो नही हो।

भोर के अधकारमय आकाश मे फीके प्रकाश की तरह मृदु हँस कर सविता ने कहा—बीमार मैं नही हूँ। किंतु तुमने तो मुझे लिखा था जहाज से उतर कर अपने ही घर जाओगे। वहॉ स्नान-भोजन विश्राम करके लगभग सध्या के समय यहॉ आओगे। किंतु यह तो देख रहा हूँ कि बिलकुल ही यहॉ आ पडे।

शारदा अन्यत्र चली गयी। गमन शीला शारदा की तरफ एक बार दृष्टिपात करके अपने गले के स्वर को कुछ नीचे उतार कर विमल बाबू ने कहा—धूलि लिप्त पैरो से ही देवी दर्शन करना शास्त्र की विधि है।

यही बात है क्या?

विश्वास न हो तो पचाग खोलकर देख सकती हो। किंतु इस बात को छोडो। मेरे प्रश्न का उत्तर दो।

क्या प्रश्न।

शरीर इतना अधिक खराब हो गया क्यो?

ओठों के कोने मे सविता की दबी हँसी फूट उठी। क्षण काल पहले विमल बाबू ने शारदा को जैसा कहा था, उसी की अविकल नकल करके उन्होने कहा—दुनिया के जितने दयामय लोग हैं उनकी नजर असहाय दीन दुखियो के सबध मे चिरकाल से यही एक ही बात कहती आयी है।

सविता के मुँह से अपनी ही बात की अविकल नकल सुनकर विमल बाबू ठठाकर हँस पडे। सविता भी हँसने लगी। अस्पष्ट वेदना की छाया से आच्छन्न कमरे का आकाश और हवा दोनो मानो बहुत दिनो के बाद आज उन्मुक्त हँसी की स्वच्छ धारा से मालिन्यहीन हो उठे।

विमल बाबू ने कहा— तुमसे सवि —रेणु की मॉ।

सविता कहने के लिए जाकर विमल बाबू ने जो झटपट उसे सम्हाल कर रेणु की माँ कह दिया, इसे सविता ने लक्ष्य करके ही जरा हँस पडी बोली—कहॉ स्नान-भोजन करोगे? यहॉ या अपने घर?

तुम जहॉ कहो?

घर चले जाओ।

वहॉ मेरे लिए प्रतीक्षा करके बैठने वाली कोई नही है, तुम जानती ही हो। है केवल नौकर-चाकर और कर्मचारियो के दल। दूर सम्पर्क की एक मौसी रहती हैं जरूर अपने एक जड़ बुद्धि लडके को

लेकर, किंतु उनके पास मेरा जाना प्रीति का काम है या भय-सचार का काम है यह बताना कठिन है।
ऐसा भले ही हो, घर चले जाओ। जो लोग भी हो वहाँ, वे लोग तुम्हारे जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं यह ठीक है। भले ही वह प्रीति से हो या भीति से हो। एक दम सीधे यहाँ आ जाना अच्छा नही दिखाई पडता।
निन्दा होगी शायद? किसकी होगी? तुम्हारी या मेरी?
किसकी होगी तुम्हारी समझ से।
यदि होगी तो दोनो के ही नाम उसमे लगे रहेगे।
तो इस हालत मे और देर क्यो कर रहे हो?
सोच रहा हूँ, मन की अवस्था विशेष में निन्दा भी अधिकाश समयो-मे प्रशसा से अधिक प्रलुब्ध करती है।
दार्शनिक तत्त्व रहने दो। घर चले जाओ अब।
जा रहा हूँ। किंतु देखता हूँ तुम मुझको—
विमल बाबू के मुँह की बात छीन कर सविता ने कहा—खदेड सकने से ही मानो बच जाती हूँ। कैसी बात है? हाँ यही है। अब इसी की साधना कर रही हूँ दयामय।—कठस्वर अत मे भारी हो उठा।
विमल बाबू विचलित हो गये।
अप्रत्याशित आश्चर्य मे इस असतर्क मुहूर्त मे उनके मुँह ही से निकल पडा—सविता!
सकरुण हास्य से विमल बाबू की तरफ देखकर सविता ने कहा—पीछे सब बताऊँगी। अभी मुझसे तुम कुछ मत पूछो।
नही, मैं सब न जान कर घर न जाऊँगा। तुमको बता देना पडेगा क्या हो गया है?
बताऊँगी। शाम को आना। रात को बल्कि यही खा लेना। मैं अब अपने ही हाथ से रसोई पकाती हूँ।
विमल बाबू ने कहा—यही होगा। किंतु देखो, उस समय फिर मुझे धोखा देकर दूसरी बात मे मत भुला देना।
भय नही है। जीवन म एक मात्र अपने को धोखा देने के अतिरिक्त और किसी को दिया है ऐसा तो याद नहीं पडता। सविता का कठस्वर काँप उठा।
विमल बाबू ने लक्ष्य किया सविता आज सहज परिहास के उत्तर में भी किसी तरह की मानो भारी वेदना से गभीर होती जा रही है। यह जो उनके किसी अन्तर्गूढ विक्षोभ का ही बाहरी लक्षण है, यह समझ लेने मे भूल नही हुई। इसलिए और कोई बात न कह कर सध्या को ही आऊँगा कहकर उन्होंने विदाई ले ली। सध्या के कुछ पहले जब विमल बाबू आये, सविता इस वक्त की रसोई पका कर स्नान-सध्या समाप्त करके, साफ कपडे पहिन कर तिमजिले की छत पर एक आराम कुर्सी पर बैठी हुई थी। सामने एक और कुर्सी रखी हुई थी। सफेद ढक्कन से ढकी एक छोटी सी मेज पर स्वच्छ काँच के गिलास मे साफ पीने का जल, तुरन्त ढकनी खोली हुई एक टीन विलायती सिगरेट जिस ब्राण्ड की सिगरेट विमल बाबू बराबर पीते थे, रखी हुई थी। उस छोटी मेज पर एक डिबिया नयी दियासलाई और राख झाडने के लिए एक पीतल का झक-झक चमकदार पात्र भी रखा हुआ था।
विमल बाबू के आकर खडे होने पर, मृणाल दण्ड की भाँति देहलता को नत करके सविता ने विमल बाबू के दोनो पैरो पर हाथ रखकर प्रणाम किया।
विमल बाबू ने घबडा कर पीछे हट कर कहा—यह क्या करती हो, यह फिर कैसा पागलपन—
दोनों बडी-बडी आँखों को उज्जवल बनाकर सविता ने कहा—यह पागलपन नही हैं, तुम्हारे प्रधान प्रश्न का उत्तर तो मेरा यही है। प्रात काल किया था आमत्रण, और सध्या को कर रही हूँ प्रणाम। और तो मुझसे आप कुछ प्रश्न न करेगे दयामय?
सविता के कठ-स्वर मे ऐसा ही एक अश्रुतपूर्व माधुर्य चू पडा कि विमल बाबू थोडी देर तक अभिभूत की तरह खडे रहे। ऐसा मालूम हुआ, मानो यह उनकी वह पूर्व परिचिता सविता नही है, जिस असहाया को उन्होंने रमणी बाबू की सुसज्जित अट्टालिका मे दिन पर दिन निगूढ वेदना की मौन छाया मे उदास प्रतिमा की तरह बार-बार देखा था। आज भी सबेरे रसोईदार के सामने जिसकी म्लान क्लिष्ट मूर्ति

देखकर हृदय के अन्दर वेदना मरोड़ पैदा करने लगी थी—मानो वह सविता भी यह नही है। खूब गोरे-दुबले मुँह पर प्रशांत कोमल मधुरता थी। उस मुख पर हृदय के आवेग की अत्यधिकता जनित उच्छ्वासदीप्ति नही थी, सलज प्रेमिका की प्रणय सुलभ स्निग्ध आभा भी वहाँ नही थी। कोमल अधरो पर पीति स्निग्ध सयत्त हास्य की माधुर्यमय सुषमा थी। विषाद शात दानो नेत्रो मे निकल रही थी सुदूर तक फैलने वाली दृष्टि। सभी अंग-भंगिमो की रेखा-रेखा मे आज ऐसी एक सुचारु सुन्दर और साथ ही संभ्रम सूचक अभिव्यक्ति विकसित हो रही थी, जिसमे स्नेह और श्रद्धा विश्वास और निर्भरता की सम्मिलित व्यजना अत्यन्त सुस्पष्ट थी। नारी की इस मूर्ति का दर्शन ससार मे दुर्लभ है। विमल बाबू ने अपने वहु विचित्र जीवन मे ऐसी मूर्ति कही भी नही देखी थी।

सविता की महिमामयी मूर्ति की तरफ देख कर, आज सबसे पहले विमल बाबू को मालूम हुआ कि, वे स्वय इस जगत् के जिस स्तर के मनुष्य हैं, सविता उससे कहीं बहुत ही उर्ध्वलोक की रहने वाली हैं। मानव-जीवन की जो अन्तरतम अनुभूति है, चरम विपत्ति के समय जो शान और अभिज्ञता है, दु:ख के दुर्गम मार्ग मे यात्री का जो भूयोदर्शन है—इन सभी ने आज उनके भीतर बाहर घेर कर एक ऐसी महिमा को साकार बना दिया है, जिसको केवल यथेष्ट दूरी से सिर झुका कर प्रणाम ही किया जा सकता है। उसके निकट जाकर खडा नही हुआ जा सकता था।

विमल बाबू का यह अभिभूत भाव लक्ष्य करके सविता मन ही मन कुण्ठित हो जाने पर भी सहज मुँह से ही बोली—कब तक खडे रहोगे, बैठो।

विमल बाबू चुपचाप सामने रखी कुर्सी पर बैठ तो गये जरूर, किंतु तब भी वे सविता की तरफ पलकहीन नेत्रो से ताकते रहे। उनके उसे देखने मे आज और विमुग्ध की विह्वल व्याकुलता नही थी, था अनुराग भरा श्रद्धा युक्त आश्चर्य। यह मानो देवता की मूर्ति के सम्मुख भक्त का वन्दना सुन्दर दर्शन था।

सविता ने संकुचित होकर कहा—टकटकी बाँधे क्या देख रहे हो।

तुमको ही देख रहा हूँ।

मुझको क्या कभी देखा नही है?

आज तुम जो हो, उसे तो सचमुच ही कभी देखा नही है। जिसको देखा है वह तुम आज नही हो।

वह मैं कौन थी दयामय?

वह तुम दूसरी ही थी। दु:ख के पीडा से विचलिता, अतीत, वर्तमान और भविष्य की चिन्ताओ से कातर थी। अपनी चिन्ता मे पडी अपने को खोयी हुई असहाय थी।

और आज की मैं कौन हूँ?

यह तो तुम एक नयी हो। आज ही इसे पहले पहल मैंने देख लिया। इसके साथ सचमुच ही इतने दिनो तक मेरा परिचय नही हुआ था। सिगापुर मे जो तुम्हारी चिट्ठियाँ जाती थी उनमे इसकी चरणध्वनि मिली थी जरूर। आज आकर मैंने देख लिया उसका साक्षात् आविर्भाव।

सविता हँस पडी। वह हँसी उदास थी। गोधूलि के रक्तिम प्रकाश मे दूर से आने वाला बाँसुरी का पूरवी सुर जैसे मनुष्य के चित्त को एक क्षण के लिए भी उदास कर देता है, सविता की हँसी मे उसी क्षण की उदास बना देने वाली आश्चर्यजनक माया निहित है।

वह बोली—कौन जाने, हो भी सकता है। एक ही जन्म मे मनुष्य के कितने जन्मान्तर हो जाते हैं, उसका क्या कोई हिसाब है।

विमल बाबू ने बात नही कही। आश्चर्यजनक नेत्रो से देखने लगे सविता खैरे रग की पाढ वाली सफेद रेशमी साडी पहिने है। किसी कार्य के उपलक्ष्य मे एक बार काशी जाकर विमल बाबू ने ही यह रेशमी साडी पूजा के समय पहिनने के लिए सविता को लाकर दी थी। साडी पहिनने के लिए उन्होने जरा अनुरोध किया था तो सविता ने हँसकर जवाब दिया था—अभी रहने दो। समय होने पर पहनूँगी।

आज ही उसी साडी को पहिन कर वे विमल बाबू के लिए प्रतीक्षा कर रही थी।

विमल बाबू ने कहा—जन्मान्तर मै नही मानता था, किंतु तुमने मुझे मनवा दिया। यह सच है जरूर और यह इसी जन्म मे जरूर होता है। इसीलिए इतने दिनो के बाद मेरी लायी हुई साड़ी पहिनने का

तुम्हारा समय तो हो गया है।

सविता को निरुत्तर देख कर विमल बाबू ने कहा—शायद मैंने कुछ गलत बात कह दी है। समय हो गया है न कह कर समय बीत गया है यही कहना मेरे लिए उचित था, ठीक है न सवि "—रेणु की माँ?

विमल बाबू के प्रश्न का जवाब देने से अपने को बचा कर सविता ने मृदु हँसी हँसकर कहा—किन्तु तुम इस विडम्बना को और कितने दिनो तक भोग करोगे बताओ तो? अन्दर से जो पुकार आप ही आप निकल रही है, उसको बार-बार गला दबा कर ठेलकर रोक देते हो और दूसरे के मुँह की पुकार पकड़ने की चेष्टा करते हो। कितनी ही बार तो ठोकर खा चुके तो भी छोड़ोगे नही?

विमल बाबू घबड़ाहट मे पड़ गये।

सविता कहने लगी—पहले पुकारते थे नयी बहू, वह तुम्हारे अपने मुँह की पुकार नही थी। उस नाम से पहले पहल जिन्होंने पुकारा था, उनके ही मुँह से वह शोभा देती है। तुम्हारे मुँह मे वह बेसुरा सी सुनाई पड़ती है। उसके बाद तुमने पुकारने की चेष्टा की 'रेणु की माँ' कहने की, वह भी तुम्हारे मुँह में अटक रही है, स्वछन्द होकर उठ नही सके, किसी दिन उठ भी न सकेगी।

तब क्या कह कर तुमको पुकारूँ बता दो तुम।

क्यो 'सविता'। जो नाम अपने आप मुँह से निकल पड़ता है।

तब तो इसी नाम से पुकारूँगा। किंतु रेणु की माँ कह कर पुकारने के लिए एक दिन तुमने ही तो कहा था। अच्छा, सच-सच बताओ, अनजान में भी क्या कभी उस नाम को मैंने मर्यादाहानि की है?

उस बात को मन मे भी मत लाओ। तुमको उस नाम से पुकारने को कहना मेरी ही गलती थी। तुम्हारे सामने मेरा तो वह परिचय नही है। किसी दिन भी वह पुकारना तुम्हारे मुँह मे सजीव न हो सका। देखो, बहुत दु ख पाकर एक बात मैं अब अच्छी तरह समझ गयी हूँ, जिसके लिए जो है उसके लिए वही अच्छा है। तुम्हारे मुँह से सविता नाम जितना सहज सुन्दर है, ऐसा दूसरा कुछ भी नही है।

विमल बाबू ने हँस कर कहा—मेरे हृदय के सुन्दर निर्झर मे जिस नाम के बुलबुले आप ही आप इन्द्र-धनुष के रंग लेकर निकल रहे हैं, वही फिर आप ही आप टूट-फूट कर विलीन हो जाते हैं, उसी नाम से अब पुकारने की अनुमति दो! किंतु बुलबुले के टूटने फूटने और—फिर बनने मे विराम नही हैं इसे जानती ही तो हो?

जानती हूँ।

तुम क्या उसे सह सकोगी रेणु की माँ? भले ही वह क्यो न हो जल बिन्दु का बुद-बुद मात्र हो, तो भी शायद वह बिंधेगा, इसका मुझे भय है।

सविता के मुँह पर छाया उतर आयी। बोली—यही तो तुम्हारा दोष है। स्त्रियों के सम्पर्क मे किसी दिन भी सहज नही हो सकते तुम लोग। अतिभक्ति या तो अति श्रद्धा से गद्‌गद् होकर बहुत ऊँचाई पर सम्भ्रम से उठा रखना चाहोगे, अथवा बिलकुल ही नर-नारी का चिरदिन का आदिम सम्पर्क स्थापित करके घनिष्ठता कर डालोगे। पुरुष और नारी मे क्या सचमुच ही मनुष्यो की सहज सुन्दर संबंध स्थापित नही हो सकता।

विमल बाबू ने शांत स्वर मे कहा—तुम्हारे और मेरे संबंध के बीच यह प्रश्न उठने का समय यद्यपि आजतक कभी नही आया है सविता, तो भी तुमसे ही पूछता हूँ, बता सकती हो कि ऐसा क्यो होता है?

कुछ सोचकर सविता ने कहा —ठीक मैं नही जानती। किंतु अनुभव होता है कि समाज विधि की विशेषता के अन्दर शायद इसका बीज बोया हुआ है। नही तो सर्वत्र सभी क्षेत्रो मे ही एक ही विषमय फल फलने लगता है किस तरह? देखो, समाज के बाहर आकर आज मेरी आँखो में सम "कल्याण और अकल्याण की दोनो दिशाएँ ही सुस्पष्ट हो उठी हैं। उसके अन्दर रह कर इस तरह दोष और गुण दोनो दिशाएँ दिखाई नही पड़ती।

विमल बाबू एकाग्रचित्त से सविता की बाते सुन रहे थे, उन्होने खुद बात नही कही। सविता कहने लगी,—मनुष्य अपना मन लेकर कितनी ही बड़ाई करता रहता है, किंतु वह अपना परिचय कितना जानता है? जीवन के प्रतिअंक में ही उसका परिचय बदलता रहता है।

अभी तो उस दिन तक मैं भी अपने मन मे सोचती रही। मेरी तरह पति की भक्ति संसार में शायद

किसी भी स्त्री ने नहीं की। पति को मेरी तरह कोई भी स्त्री प्यार भी नही कर सकती। बाहर के लोग विपरीत समाचार भले ही जाने अपने हृदय की खबर तो मैं अच्छी ही तरह जानती हूँ। किंतु इतने दिनो के बाद आज मेरी वह धारणा बदल गयी है। अपने हृदय का यथार्थ अर्थ इतने समय के बाद मैं समझ सकी हूँ।

आश्चर्य मे पड कर विमल बाबू ने कहा—तुमने क्या समझा है सविता?

कुछ स्थिर भाव से ही सविता ने कहा—ठीक साफ तौर से उसे बताना कठिन है। आज केवल इतना ही मैं स्पष्ट समझ सकी हूँ कि हृदय की श्रद्धा-भक्ति और संस्कारगत धारणा—और हृदय का प्रेम एक ही वस्तु नही है।

किंतु मैंने सुना है कि अधिकांश समय मे श्रद्धाभक्ति ही तो बन जाती है प्रेम की दीवाल।

हाँ, ऐसी बात होती है। करुणा ममता या सहानुभूति भी अधिकांश समयो मे प्रेम को गढ डालती है। किंतु मेरा विश्वास है नारी और पुरुष मे परस्पर स्वाभाविक मेल न रहने से प्रेम प्रकट हो जाने पर भी सुसार्थक नही होता। इसके सिवा एक बात और है। बहुत समय मे श्रद्धाभक्ति अथवा स्नेह ममता को मनुष्य प्रेम कह कर भूल कर बैठता है।

तुम क्या कहना चाहती हो स्नेह और ममता से जिस प्रेम का उद्‌भव होता है वह सत्य अथवा सार्थक नही है?

ऐसी बात मैं क्यों कहूँगी? जो अवश्य ही सत्य है वह सत्य के ही नाते सार्थक हुए बिना नही रह सकता। मैं कहती हूँ—स्नेह ममता सचमुच ही यदि प्रेम मे परिणत हो जाय तभी वह सत्य है। समुद्र मे पहुँच जाने पर सभी जल एक हैं, झरने का जल, नदी का जल,वर्षा का जल, बाढ का जल सब एक हैं।

विमल बाबू ने सविता की तरफ स्थिर दृष्टि रेखकर कहा—अच्छा, ये सब बाते तुम जान गयी किस तरह?

थोडी देर तक निरुत्तर रह कर सविता ने खुले आकाश की तरफ अपनी दृष्टि पसार कर कहा—अपने ही विडम्बित जीवन की अभिज्ञता से मैं जान गयी हूँ दयामय।

विमल बाबू प्रश्न भरे नेत्रो से ताकते रहे।

सविता ने कहा—बताऊँगी किसी दिन अपनी सभी बातें।

अभियोग के सुर से विमल बाबू ने कहा—तुम सभी बाते किसी दूसरे दिन बताऊँगी कह कर टाल देती हो। कब तुम्हारा वह दूसरा दिन आवेगा सविता? एक दिन तुमने कहा था? तुमको अपने पति की सभी बातें सुनाऊँगी। उसे केवल मैं ही जानती हूँ और कोई नही।

सविता ने कहा—सुनाने की इच्छा होती है किंतु सुना देना संभव नही हो पाता। अपने को सम्हाल लेना कठिन हो जाता है। किंतु उन सब बातो को सुनने से लाभ ही क्या है?

स्वेच्छा से पति त्याग करके जो स्त्री अपार-समुद्र मे बह चली है—पति के प्रति आज तक भी उसका मनोभाव कैसा है, यह जान लेने को शायद कौतूहल हो रहा है?

छि:, छि:, परिहास करके भी ऐसी बात मुझसे कहना तुम्हारे लिए उचित नही है सविता।

जानती हूँ। माफ करो, तुमको अकारण ही मैंने आघात किया। मेरे अपराधो का अन्त नही है। उसके बाद अन्यमनस्क चित्त से सविता न जाने क्या सोचने लगी।

विमल बाबू चुपचाप एक तरफ ताकते रहे।

बहुत समय चुपचाप बीत गया।

विमल बाबू ने पुकारा—सविता—

क्या कहती हो?

सचमुच बताओ, तुम क्या मुझसे डर रही हो?

किसलिए डर? सविता के गले मे आश्चर्य ध्वनित हो उठा।

विमल बाबू जवाब देने मे हिचकने लगे हैं देख कर सविता ने मन ही मन हँस कर कहा—तुमसे डरने

का तो अब कुछ भी बाकी नही रहा, कौन सा नुकसान बाकी है, जिसके लिए अब भी डरती रहूँ।

विमल बाबू ने कहा—जीवन के प्रति इतना बडा अभिमान और जो भी कोई करना चाहे करें, तुमको मैं न करने दूँगा। मनुष्य की जो कुछ मर्यादा है, वह जीवन की किसी एक आकस्मिक दुर्घटना से बिल्कुल ही राख नही हो जाती। जब तक जीवित रहता है मनुष्य तब तक उसको सब ही रहता है। कुछ भी खतम नहीं होता।

सविता चुप रही। कुछ देर बाद उन्होंने स्थिर स्वर से कहा—तुमसे मैं जरा भी डरती नही। वरन् तुम्हारे सबध मे अपनी जो यह एकान्त निर्भरता है, उसी से अब तक डरती रही हूँ। अब वह भय भी खतम हो गया। तुमको मैं विश्वास करता हूँ। मुझे जान पडता है ससार मे और कोई भी स्त्री इस प्रकार किसी सम्पर्कहीन पुरुष को असंदिग्ध रूप से विश्वास नही कर सकी है।

थोडी देर तक चुप रह कर अपने कठस्वर को जरा धीमा बना कर सविता ने फिर कहा—मैं जानती हूँ तुम किसी भी दिन मुझको नीचे उतार नही सकते। पुरुषो से स्त्रियो का अपमान और उनकी अवहेला जिन बातो से होती है, उनको तुम कभी होने न दोगे। सबसे बडी बात यह है कि मुझे समझने में तुमसे भूल नही हुई है।

विमल बाबू ने मृदु स्वर मे कहा—मनुष्य तो मनुष्य ही है। वह देवता तो नही है। उसका सब भला-बुरा, दोष-गुण, बलिष्ठता दुर्बलता सभी उसके ही समग्र रूप हैं। इसलिए उस पर क्या इतना अधिक विश्वास रखना उचित है?

क्या उचित है और क्या अनुचित है यह मै नही जानती। अपनी बुद्धि से विचार करके मैंने जान लेना भी नही चाहा। जो अपने हृदय मे एकान्त भाव से अनुभव करती रही हूँ, केवल उसे ही मैंने कह दिया है।

विमल बाबू ने कहा—तुम्हारे ससपर्श मे आ जाने से मेरा क्या लाभ हुआ है इसे तुम जानती हो सविता? मैंने सबसे पहले अनुभव किया है, अकल्याण के अन्दर से ही परम कल्याण आकर जीवन को स्पर्श करता है।

सविता ने कहा—मानती हूँ यह बात मैं। अकल्याण के मार्ग मे ही दीर्घ गमन की थकी हुई सध्या को एकाएक आपसे भेट हुई थी। विरुद्ध आवेष्टन के बीच अवांछित परिचय हो गया था। भाग्य से ही उस दिन तुम जबर्दस्ती मुझसे भेंट करने के लिए चले आये थे।

विमल बाबू ने आहत होकर अकृत्रिम दु खित स्वर से कहा—यह धारणा तो तुम्हारी सच नहीं है सविता। जीवन के अनजान मार्ग मे मनुष्य के साथ मनुष्य का निविड परिचय कब किस दिन किधर से हो जाता है, इसको कोई भी नही जानता। यह बात मैंने अपनी ही दृष्टि से कही थी। किसी दिन अपने भी अतीत के गदे अश की तरफ देखने से मेरे मन में घृणा, क्षोभ और लज्जा होती रही। कितनी ही बार मैंने सोचा है जीवन के अपवित्र अश को यदि किसी उपाय से धोकर साफ़ कर सकूँ तो अच्छा हो! फाड कर निश्चिह्न कर दिये जाते स्मृति के खाते से ग्लानि पूर्ण उन दिनो के वे पृष्ठ! किंतु आज सबसे पहले यह ख्याल आ रहा है, कि भगवान ने मगल ही किया है। उन दिनो की अमिट स्याही के दाग अंकित करके इस जीवन मे।

आश्चर्य मे पडी सविता ने अपना मुँह ऊपर उठाकर कहा—इसका क्या अर्थ हुआ?

समझ नही सकी? आज अपने लोग के अपवित्र स्पर्श से मैं ही तुमको बचा सकूंगा। अपने जीवन के इस कलकित आँगन मे लाकर मैं तुमको खडी न करा सकूँगा। यहाँ तुम्हारे लिए तो कोई उपयुक्त आसन नही है।

सविता ने अस्फुट स्वर मे कहा—सोने मे कलक नही लगता दयामय। कर... कणमात्र स्पर्श से हम ही लोग सदा के लिए मलिन हो जाती हैं। हम हैं निकृष्ट धातु।

विमल बाबू ने गभीर कठ से कहा—मैं इसे जरा भी नही मानता। देखो सविता, दूसरो के लिए तुम जो भी हो, मेरे जीवन मे परम कल्याणी तुम ही हो। यह बात झूठी नही है। मेरे जीवन मे बहुत विचित्र स्त्रियो से भेट हो चुकी है, किंतु तुम्हारे साथ हुआ है सन्दर्शन। मेरे अन्दर जो सत्य मनुष्य इतने दिनो तक सोया पडा था, उस दिन तुम्ही ने उसकी नीद तोडकर जगा दिया, जिस दिन तुम्हारे स्वत अभिजात प्रकृति का निजस्वरूप, उस विषादयुक्त म्लान अनुतापदग्ध फिर भी सहज मर्यादा से महिमान्वित रूप के प्रथम

दर्शन से ही मैं पहचान सका। रमणी बाबू के प्रमोद आमन्त्रण मे मैं देखने गया था जिसको, देख सका था उसके विपरीत को। तुम्हारे जीवन के इतिहास ने आज मेरे जीवन के भाग को भुला दिया है सविता। ससार मे मेरी तरह जिसको अनुभूति प्राप्त हुई है ऐसे मनुष्य को यही पहले पहल मैंने देखा है, वह हो तुम। जो अपनी प्रकृति से विछुड कर अवाछनीय अन्य प्रकार का जीवन इच्छा न रहते भी स्वेच्छा से विताने को वाध्य हुई है। अपने स्वभाव को दबा कर, आसपास की अवस्था का दावा मिटा कर आयु को किसी भी तरह अन्त की तरफ खीचते चलने के सिवा और तो कुछ भी नही है। अनुभूति के क्षेत्र मे तुम और मैं दोनो ही यहाँ एक ही स्थान पर आ खडे हुए हैं। शायद इसीलिए ही तुम्हारे हृदय के साथ मेरी जो घनिष्ठता सभव नही थी, वह केवल संभव ही नही, बल्कि सहज भी हो गयी है।

सविता आँखे झुकाये चुपचाप सुन रही थी। अब भी वे नेत्र नीचे किये चुप हो रही।

विमल बाबू धीमे स्वर से कहने लगे, आज मेरे लिए जीवन का अर्थ बदल गया है। मन की पुरानी धारणाओ के ऊपर से वहुत दिनो की संचित मोटी धूल एकदम ही मिटती जा रही है। बहुत दिनो तक उपेक्षा मे पडे रहना—आईने पर जमी हुई मैल ने उसकी जिस स्वच्छता को ढक रखा था, वह मानो आज किसी नवीन गृहलक्ष्मी की यत्न पूर्वक की गयी सफाई के कारण बिलकुल ही साफ हो गयी है। समूची पृथ्वी मेरे लिए आज अभिनव मालूम हुई है। यह जीवन का उद्दाम हृदयावेग नही है। देह की शिराशिरा मे तरुण रक्त का चंचल नृत्य नही है। यह है मेरे हिमकठोर अन्तरलोक मे मूर्च्छित आत्मा का जागरण। हृदय के कुहरे से घिरे आकाश मे नवचेतना का प्रथम सूर्योदय।

स्वभावत. स्वल्प बोलने वाले विमल बाबू इस प्रकार अपने हृदय की गभीर अनुभूतियो को भाषा मे प्रकाश कर सकते हैं, इसकी कल्पना भी सविता को नही थी। ससार मे शायद सब कुछ सभव है। इसीलिए अत्यन्त धीमे स्वर से—प्राय: अस्पष्ट स्वागतोक्ति की ही तरह सविता कहने लगी—यह तो तुम्हारे अपने मन की रचना की हुई है। इसके साथ सच्चा मेल मुझसे कितना है, उसका पता तुम नही जानते, मैं भी नही जानती। भले ही न रहे वह एक दूसरे को जानना समझना, भगवान् करें, तुमने जिस रूप मे मुझे देखा है वही रूप तुम्हारे लिए झूठ न हो सके।

चौबीस

विमल बाबू जिस समय राखाल को ढूँढ रहे थे, उस समय वह कलकत्ते के बाहर था। रेणु और ब्रज बाबू को वह वृन्दावन पहुँचाने के लिए चला गया था। लौट आने पर उसने विमल बाबू से जब भेंट की तब विमल बाबू ने शिकायत की, कि एक दिन और ठहर जाने से ही मुझसे ब्रजबाबू की मुलाकात हो जाती। तुमने क्यो इसकी व्यवस्था नही की राजू? तुमको तो मैंने चिट्ठी मे यह बात लिख दी थी।

वे लोग तो आप से भेट होने से बचने के ही लिए ही जल्दबाजी मे चले गये।

इसका कारण?

यह मैं नही जानता। किंतु काकाजी की अपेक्षा रेणु ही अधिक उतावली हो गयी थी।

मैं समझ गया।

विमल बाबू ने कुछ देर तक चुप रहकर बाद को कहा—वृन्दावन मे कहाँ तुम उन लोगो को रख आये?

गोविन्द जी के मन्दिर के आसपास ही एक गली मे। मकान बडा है। बहुत से परिवार किरायेदार उसमे रहते हैं। उन लोगो से दो कमरे सोने के लिए और थोडा सा स्थान रसोई-पानी के लिए किराये पर लिया है।

विमल बाबू ने चिंता भरे चेहरे से कहा—तुम्हारे सिवा तो दूसरा कोई उन लोगो की देखभाल करने वाला नही रहा। मेरा विचार है कि कम से कम कुछ दिन वृन्दावन जाकर रहना तुम्हारे लिए आवश्यक है।

किंतु उसके फलस्वरूप मेरी जीविका तो यहाँ अचल हो जायगी।

विमल बाबू मुँह नीचे झुकाकर सोचने लगे।

बहुत समय चुपचाप बीत गया। राखाल ने कहा—आप भाग्य मानते हैं या नही मैं नही जानता। किंतु मैं तो मानता हूँ।

राखाल की बातो का उत्तर न देकर विमल बाबू ने कहा—तुमने शायद सुना है—तारक हाई कोर्ट में जाने लगा है। प्रैक्टिस कोई खराब नही हो रही है। जान पडता है कि उसकी उन्नति अवश्य होगी ही। लडके को बडे होने की आकांक्षा खूब है। मैंने बहुत आशा की थी, उसके हाथ में रेणु को दूँगा। किंतु व्रजबाबू के साथ तो इस सबध मे आलोचना करने का सुयोग ही नही मिला।

राखाल आश्चर्य मे पड कर विमल बाबू की तरफ ताकता रहा।

विमल बाबू ने फिर कहा—तुम्हारी नयी माँ की भी इच्छा यह थी सुनने पर शायद व्रजबाबू भी राजी हो जाते।

राखाल ने मधुर शब्दो मे कहा—किंतु तारक क्या राजी हो गया है?

उससे अभी तक कहा नही गया है। किंतु तुम्हारी नयी माँ ने उसको कुछ आभास दे दिया है।

राखाल ने फिर कहा—आप क्या यह समझ रहे हैं कि वह इस प्रस्ताव पर सहमत होगा?

विमल बाबू ने कहा—सहमत न होने का तो मैं कोई कारण नही देखता। रेणु सब तरफ से ही योग्य पात्री हैं। एक मात्र त्रुटि यह है कि उसका बाप इस समय दरिद्र है। किंतु माँ के पास जो कुछ है, उसे रेणु ही पावेगी। तारक खुद ही तुम्हारी नयी माँ की खूब श्रद्धाभक्ति करता है, इसलिए किसी भी तरफ से उसके असहमत होने का कारण नही दिखाई पडता।

राखाल चुप हो रहा। विमल बाबू ने कहा—राजू, तुमको एक काम करना पडेगा।

राखाल ने कहा—क्या, कहिये।

तारक के सामने विवाह का यह प्रस्ताव तुमको ही रखना पडेगा।

राखाल ने आश्चर्य मे पड कर कहा—आपने क्या यह नही सुना है कि रेणु विवाह करने को बिलकुल ही असम्मत है।

उसको राजी करने का भार मेरे ऊपर है। तुम तारक के सामने यह बात उठा कर उसका मतामत बताओगे तो मैं खुद ही वृन्दावन जाकर उसे समझा करके ला सकूँगा।

राखाल ने कहा—आप भूल कर रहे हैं। रेणु या तारक दोनो मे से कोई भी इस विवाह मे सम्मत होगा ऐसा मुझे मालूम नही होता।

विमल बाबू ने कहा—रेणु की बात छोडो, तारक राजी क्यो नही होगा बताओ तो?

यह बात मैं किस तरह बताऊँ? तो संभवत. सहमत नही होगा यही मालूम हो रहा है।

तुम एक बार प्रस्ताव करके देख ही लो न?

अच्छा।

घर लौट जाने पर बाहर की पोशाक न बदल कर ही राखाल बिछौने पर लम्बा होकर लेट गया। आँखे बन्द करके सभव-असभव कितनी ही बाते सोचते-सोचते खाने का समय बीत गया, इसका खयाल ही उसे नही रहा।

बूढी नानी कुछ दिनो से बीमार पडी हुई है। काम करने के लिए वह आ नही सकती। अपने दौहित्र को काम पर भेज देती है। नानी की नाती की उम्र अधिक नही है। तेरह चौदह साल की उम्र होगी। उसका नाम है नीलू। खूब हँसने खेलने वाला प्रसन्न चित्त लडका है। सर्वदा उसके गले मे गुनगुनाहट के साथ गाने का सुर लगा ही रहता है। काम काज बहुत ही झटपट कर सकता है। किंतु प्राय. प्रति दिन ही राखाल के दो-चार चाय के प्याले, पिरिच, या काँच के प्लेट या काँच के गिलास उसके हाथ से फूटते रहते हैं। ज्यो ही वह घबडाहट भरे चेहरे से लम्बी जीभ काट कर राखाल के सामने आ खडा होता है, राखाल उसका चेहरा देखकर ही समझ सकता है आज फिर कोई काँच की चीज खतम हो गयी। राखाल उसको काँच के टूटे-फूटे टुकडो को सावधानी से फेंक देने को कह कर भविष्य मे काँच की चीजो को सतर्कता से छूने उठाने का सदुपदेश देता है। उसी क्षण प्रबल भाव से सिर हिलाकर सम्मति प्रकट करके फिर तीन

उछाल देकर नीलू भाग जाता है। राखाल अपनी बुढिया नानी के नाती को आदर करके पुकारता है—नीलू काका।

दिन मे चार बजे जब नीलू ने आकर राखाल को पुकार कर जगाया, आँखें रगड़ कर बिछौने पर उठ बैठने के बाद उसको खयाल हुआ कि आज मेरा खाना नही हुआ। विमल बाबू से भेट करके घर लौट कर कपडा पहनावा न बदल कर ही वह विस्तर पर लेट गया था। कब नीद आ गयीं पता ही नही चला।

घडी की तरफ देखकर राखाल अपने ऊपर नाराज हो गया। आजकल उसको मानों क्या हो गया है। घर-द्वार, काम-काज, वेश-भूषा, शरीर-स्वास्थ्य किसी तरफ भी उसका अब ध्यान नही है। यहाँ तक कि रोज़ उसे खाने-पीने की भी याद नही रहती। यह अच्छा नही है। वह है गरीब आदमी। ऐसा मनमौजी बनना बडे लोगों को ही शोभा देता है। जिन लोगो का प्रतिदिन का भोजन प्रति-दिन के उपार्जन पर निर्भर करता है, उनकी यह अन्यमनस्कता शोभा नही देती। बार-बार बहुत दिनो तक नागा करने के कारण उसके ट्यूशन के काम एक-एक करके छूट गये हैं। केवल एक ही ट्यूशन आज तक किसी तरह बचा हुआ है। राखाल उन लोगो के समय असमय मे विश्वस्त काम का आदमी होने से ही बच सका है। ट्यूटर की हैसियत से उसका मूल्य न रहने पर भी मित्र की हैसियत से काम के आदमी की हैसियत उसका मूल्य है। इन सब झमेलो के कारण अपने लिखने पढने का काम भी बन्द पडा हुआ है। लीलाओ का सवाद लिखना और बिना नाम की नाटक-रचना मे बहुत दिनो से हाथ नही लगा सका है। बैंको और डाकघरो की पासवहियो से जमा का हिसाब खतम हो गया है। जलपान की दूकानो पर मोदी की दूकान पर और ग्वाले के यहाँ कुछ रुपये बाकी पडे हुए हैं। यद्यपि वह आज कल अपने साफ सुथरे पहनावो और कपडो के शौकीन विलास की तरफ विशेष ध्यान नही देता—तो भी दर्जी और धोबी का हिसाब भी विशेष कुछ बाकी ही पडा हुआ है।

नीलू के पुकारने से उठकर मुँह धोते-धोते राखाल ने कहा—नीलू काका, स्टोव जलाकर भले लडके की तरह चाय का पानी चढा दो तो।

नीलू कमरे के सामने बरामदे मे जूठे बरतन न देखकर आश्चर्य मे पड कर राखाल के पास आया था, घबडाहट के स्वर मे उसने पूछा—बाबू, आप क्या बीमार हैं?

राखाल ने उसके मुँह की तरफ देखकर कहा—किसने कहा रे?

कुछ भी तो आपने खाया नहीं।

राखाल ने हँस कर कहा—नही, बीमार नही हूँ। यो ही आज खाया नहीं। तुम अब एक काम करो तो नीलू काका। चाय का पानी चढाकर उस मोड की दूकान से गरम सिघाडा कुछ ले आओ। चाय के साथ खाया जायगा।

नीलू पानी चढ़ाकर नाश्ता लाने के लिए चला गया। राखाल चाय बनाने लगा। एक बार उसे खयाल आया इतना हगामा न करके शारदा के पास जाकर कहने से ही तो हो जायगा—आज असमय मे सो गया था। भात खाना भूल गया। बस, इसके बाद फिर कुछ सोचना न पडेगा।

कल्पना मे शारदा के स्तम्भित क्रुद्ध चेहरे की आड मे जो व्याकुल स्नेह का छिपा हुआ रूप राखाल की दृष्टि मे दिखाई पडा, उसको याद करके उसकी छाती के अन्दर से एक गभीर लम्बी साँस निकल पडी। नही, शारदा के पास जाना उचित नही है। बेचारी निरुपाय वेदना से केवल मर्माहत ही होगी। राखाल जानता है शारदा की कैसी विपुल आकांक्षा, देवता की अपने हाथ से सेवा करने की है। घबडाहट भरे चित्त से चाय की सामग्री लेकर राखाल चाय ढालने लगा।

शारदा और सविता मे वार्तालाप चल रहा था। सविता ने कहा—अपने सोनारपुर की कहानी सुनाओ शारदा, सुनूँ।

शारदा ने सिलाई का काम करते-करते जवाब दिया—आपको जिसने एक बार देख लिया है माँ, उसको फिर पहचान न करनी पडेगी कि, रेणु आप ही की लडकी है। केवल चेहरे से ही वह आपकी लडकी नही हुई है, बुद्धि से, मर्यादाशीलता से, मन के वश-गौरव से भी वह आपकी प्रतिमूर्ति है।

सविता ने कहा—शारदा, इस तरह बातें करना तुमने किससे सीखा? यह तो तुम्हारी अपनी भाषा नही है।

शारदा ने लज्जित होकर सिर झुका लिया।

रेणु के सबध मे इन सब बातो की आलोचना तुमने और किसी के साथ की है शायद?

शारदा ने लज्जायुक्त सकोच से कहा—हाँ। सोनारपुर के देवता के साथ रेणु के बारे मे आलोचना होती थी।

सविता ने हँसकर शारदा के माथे पर पीठ पर स्नेह पूर्वक हाथ सहलाकर कहा—तुम बुद्धिमती लड़की हो मैं यह जानती हूँ।

शारदा ने उत्साहित होकर कहा—सच है माँ, इतना अधिक सादृश्य बहुत दिखाई नही पडता। रेणु मानो बिलकुल ही आपके ही साँचे मे ढाली गयी है।

सविता त्रस्त स्वर से बोल उठी—नही, नही, ऐसी बात मुँह से मत निकालो शारदा। मेरी तरह उसका कुछ भी न होने पावे।

शारदा ने जरा घबडा कर कहा—अच्छा, उस बात को छोडो अब। काका जी की कहानी सुनाऊँ, क्या कहती हो?

सविता ने कहा—सुनाओ।

काका जी आदमी बहुत अच्छे हैं। किंतु माँ, ससार मे रहते हुए भी वे ससार से उदासीन है। गोविन्द गोविन्द कह कर ही वे पागल हैं। इस ससार मे गोविन्द के सिवा किसी चीज पर भी उनकी आसक्ति है ऐसा मालूम नही होता।

सविता ने रुँधे साँस से पूछा—अपनी लडकी पर भी नही?

सविता के शकाकुल चेहरे की तरफ देखकर शारदा ने कैफियत के सुर मे कहा—उन्होने ससार की सभी चिंताओ को इष्ट देव के चरणो मे सौंप दिया है। उनकी लडकी भी शायद उसके बाहर नही है माँ।

सविता पत्थर की प्रतिमा की तरह निश्चल हो रही।

शारदा ने सान्त्वना के सुर मे कहा—घबडा कर छटपटा कर भी तो मनुष्य कुछ भी नही कर सकता। इससे तो भगवान के ऊपर निर्भर करके रहना ही अच्छा है माँ।

सविता ने आर्त्त कंठ से कहा—शारदा, तुम समझोगी नही। तुम स्वय सतान की माँ तो हुई नही हो। सतान क्या है, यह पुरुष नही समझते, जो स्त्रियाँ माँ नही बनी हैं, वे भी ठीक नही समझ सकती। रेणु के सबध मे आज मैं किस तरह निश्चिन्त रहूँ? चौबीसो घटे गोविन्द-गोविन्द रटते रहने से ही तो घर-गृहस्थी का सर्वनाश हो गया, रोजगार बिलकुल चौपट हो गया। अभी तक चैतन्य नही हुआ? लडकी का मुँह देखकर भी धर्म के झोक से अभी तक वे निवृत्त न हो सके?

शारदा भयग्रस्त नेत्रो से सविता के आरक्तिम चेहरे की तरफ ताकती रही। सविता उत्तेजित किंतु अत्यन्त मधुर स्वर मे कहने लगी—इतने दिनो तक सोचती रही मेरे पति की तरह पति शायद कभी किसी को नही मिला, मिलेगा भी नही। अब मेरी वह भूल टूट गयी। अब मै समझ गयी मेरे पति की तरह अपने को सर्वस्व मानने वाले मनुष्य ससार मे थोडे ही हैं। अपनी स्त्री, अपनी सतान के प्रति भी जो मनुष्य अपरिचित की भाँति उदासीन है, ऐसे मनुष्य की क्या जरूरत थी विवाह करने की। विवाह भी किया है अपने गोविन्द के ही लिए। समझ गयी शारदा, तुम लोग जिसे उनका महत्त्व समझती हो, वह ठीक उसका उल्टा है।

किसका महत्त्व उल्टा है नयी माँ? राखाल ने कमरे मे प्रवेश करते करते हँसी से भरे चेहरे से प्रश्न किया।

सविता ने गरदन घुमाकर शात स्वर मे कहा—तुम्हारे काका जी का।

क्षणमात्र मे राखाल का हास्य-प्रसन्न चेहरा गभीर हो उठा। सविता ने उसे लक्ष्य करके हँसकर कहा—मेरा राजू अपने काका जी की जरा भी शिकायत सह नही सकता।

राखाल ने गभीर मुँह से ही कहा—इसमे जरा भी आश्चर्य की बात नही है माँ। ससार मे काकाजी की भी निन्दा हो सकती है यही क्या सबसे बडा आश्चर्य नही है?

सविता ने कहा—राजू मैं तुम्हारे काका जी की निन्दा नही करती। किंतु आज तो—

राखाल ने हाथ जोडकर कहा—और कुछ आप न बोलिये। मैं पहले का आदमी हूँ, आजकल की

खबर नही जानता, जानना भी नही चाहता। जितनी खबर पहले की जानता हूँ वही पीछे टूट न जाय इसी भय से अब शका मे पड़ा हुआ हूँ।

सविता क्षणकाल राखाल की तरफ देखती रहकर धीरे-धीरे बोली—

पागल लड़का, एक समय की जानी हुई बात कभी चिरकाल के लिए ठीक नहीं हो सकती। बलपूर्वक उसको ही मान लेने से, या तो आँखे बन्द करके अंधा होकर रहना पडता है, या चरम क्षति का दुःख भोगना पडता है। संसार का यही है नियम।

सविता के कंठ-स्वर मे गभीर स्नेह प्रकट हुआ।

राखाल ने फिर बात नहीं कही। शारदा उठकर चली जा रही है देखकर उसने कहा—तारक इस समय घर पर है क्या जानती हो शारदा?

शारदा ने कहा—आज तो कचहरी नही है। सभवत. नीचे अपने दफ्तर के कमरे मे ही हैं?

राखाल बोला—तारक से कुछ जरूरी बाते करनी है। मैं जा रहा हूँ नयी माँ।

सविता ने कहा—चाय पीकर जाना राजू। शारदा, तुमने जो कचौडियाँ तैयार की है, राजू को चाय के साथ देने में भूल मत जाना।

शारदा ने हँसते हुए चेहरे से कहा—उसे तो वे खाना पसद न करेगे माँ, खाने पर भी निन्दा ही करेगे।

राखाल का मन आज अच्छा नही था। दूसरे समय की बात होती तो शारदा की इस बात को लेकर ही उसे पागल बना डालने के लिए बहुत कुछ कहता। चित्त आज अप्रसन्न करने के ही कारण शायद उसने रूखे स्वर मे कहा—नही, घर का बना जलपान खाने का मुझे अभ्यास नही है शारदा, इच्छा भी नही है। जिनके लिए तैयार हुआ है। उन्ही को खिलाना।

शारदा आश्चर्य भरे नेत्रों से राखाल की तरफ ताकती रह गयी। उसके बदरंग चेहरे पर दृष्टि पड़ते ही राखाल के मन में वेदना धक् कर उठी। किंतु कोई बात न कहकर वह कमरे से बाहर चला गया।

सविता ने शारदा की तरफ देखकर सान्त्वना के सुर में कहा—उसकी बात सुनकर मन में दुःख मत पाना शारदा। मेरे ऊपर क्रोध करके ही वह तुमको कडी बात सुना गया। तरह-तरह के कारणों से राजू के मन की अवस्था आजकल अच्छी नही है बेटी।

अकारण ही आकस्मिक भर्त्सना पाकर शारदा स्तम्भित हो गयी थी। सविता के सान्त्वना वचन से रुँधी वेदना ने संयम नहीं माना। हठात् झरझर करके दोनों आँखो से आँसू झरने लगा।

अश्रुप्लावित शारदा ने घबडाहट भरे स्वर मे कहा—मैंने क्या अपराध किया है माँ, देवता जब ही जिस पर क्रोध क्यों न करें, मुझको ही विध बिधकर कडी बात सुना कर चले जाते हैं?

शारदा को अपने पास खींच कर सविता ने कहा—वह तो तुमको स्वजन ही समझता है बेटी। तुमको वह सच्चा स्नेह करता है इसी से तुम्हारे ऊपर ही उसका सब आघात पड़ता है। उसको तो अपना कहलाने को इस ससार मे कोई नही है शारदा।

शारदा की उमड़ती हुई अश्रुधारा उस समय तक भी संयत नही हुई थी। वाष्परुद्ध कठ से अभिमान के सुर मे वह बोली—मेरा ही मानो ससार मे सब कोई हैं माँ। मैं तो जब तब किसी को इस तरह बातों के खोंचे से बिंधती नही।

सविता ने हँस कर कहा— सबका स्वभाव तो समान नही होता बेटी।

शारदा ने कहा—वे जानते हैं, मैं सब कुछ ही सह सकती हूँ किंतु उनका वही एक व्यग्य किसी तरह भी मैं सह नही सकती। यह जान कर भी वे मुझको इस तरह कहते हैं।

शारदा आँखें पोंछते पोछते उठ कर चली गयी।

राखाल ने तारक के बैठकखाने मे प्रवेश कर के देखा, सेक्रेटेरियेट टेविल के सामने चेयर पर बैठा हुआ तारक मुकदमे के कागज-पत्र देखने मे ध्यानमग्न है। राखाल के जूते की आवाज से जरासा माथा ऊपर उठा कर देखते ही चकित होकर आश्चर्यपूर्ण कठ से उसने कहा—यह क्या। राखाल आ गये।

टेविल के पास ही एक चेयर पर बैठते-बैठते राखाल ने कहा—क्यो आना नही चाहिये क्या?

चाहिये क्यो नही, आते नही हो, इसीलिए तो आने से आश्चर्य मे पड़ गया हूँ।

आता तो हूँ प्राय ही।

यह तो जानता हूँ। किंतु आते तो मेरे पास नही। आते हो अन्दर महल मे।
राखाल ने हँस कर कहा—अन्दर से ही पुकार आती है, इसीलिए वहाँ आता हूँ।
तारक ने रहस्यतरल कठ से कहा—आज क्या सदर से बुलाहट मिली है क्या?
नही, आज मुझे ही सदर की जरूरत पडी है।
अवश्य ही किसी मुकदमे का काम नहीं है आशा करता हूँ।
मुकदमा ही है। दुनिया का कौन काम मुकदमो के अन्तर्गत नही है बतला सकते हो?
तारक हँसने लगा।
राखाल ने कहा—मैंने सुना है खूब अच्छी तरह प्रैक्टिस चल रही है तुम्हारी।
कुछ भौहे सिकोड कर तारक ने कहा—तुमको किसने बताया।
जिसने भी क्यो न बताया हो, बात तो सच ही है। इस बार दूसरो के बीच मिठाई बाँटने की व्यवस्था करो एक दिन।
तारक ने कहा—पागल हो गये हो तुम। कहाँ है प्रैक्टिस? अभी तो केवल सीनियरी के दरवाजो पर धरना देकर पड़े रहना है, और उनकी जितनी सब मेहनत है उसका बोझ गधे की तरह ढोते रहना है।
राखाल ने कहा—ऐसी ही बात है क्या? तब तो विमल बाबू ने गलत बता दिया है शायद?
तारक ने चकित होकर कहा—विमल बाबू ने तुमसे यह बात कही है क्या?
हाँ।
उनसे तुम्हारी भेंट कहाँ हुई? उन्होने क्या कहा है बताओ तो? तारक के कठस्वर आग्रह फूट उठा।
राखाल ने हँस कर कहा—वह तो बहुत सी बाते हैं? तुम अभी काम मे व्यस्त हो। सुनने का समय मिलेगा क्या?
मिलेगा—मिलेगा। तुम बताओ।
तारक के मुँह मे और नेत्रो मे व्यग्र कौतूहल देख कर राखाल मन ही मन हँसने पर भी चेहरे पर निर्विकार भाव रख कर बोला—चलो, सामने के पार्क मे बैठ कर बातचीत करे।
तारक ने कहा—बहुत अच्छा, चलो।'
ब्रीफ का ढेर तेज हाथ से सजाकर फीता बाँधते-बाँधते तारक बोला—बैठो, मकान के अन्दर जाकर थोडी सी चाय की व्यवस्था कर आऊँ। चाय पीकर बाहर निकल पडेगे।
राखाल ने कहा—मैं तो अभी तुरन्त ही मकान के अन्दर कहता आया हूँ कि चाय मैं नही पीऊँगा।
तारक ने सक्षेप मे कहा—भले ही कह आये हो, चाय के मामले मे 'नही' को 'हाँ' कह देने मे दोष नही है।
तारक के द्रुतपद से कमरे से बाहर चले जाने पर राखाल लम्बी साँस छोड कर चेयर की पीठ पर टेक कर तरह-तरह की बाते सोचने लगा।
शरीर पर मूँगे का पजाबी, पैरो मे ग्रीसियन स्लीपर चढा कर तारक लौट आया। उसके पीछे-पीछे नौकरानी ट्रे मे चाय और दो प्लेट कचौडी लेकर कमरे मे आ गयी। राखाल ने कुछ कहे बिना चाय की प्याली और कचौडी का प्लेट लेकर उनका सद्व्यवहार शुरू कर दिया। थोडी देर मे प्लेट खाली करके उसने कहा—अपनी चायदायिनी को एक बार याद कर सकते हो?
तारक ने चाय का घूट पीते-पीते पुकारा—शिबू की माँ—इधर सुन जाओ।
नौकरानी के आने पर राखाल ने कहा—मकान के अन्दर जाकर कहो राखाल बाबू और कुछ कचौड़ियाँ खाना चाहते हैं।
नौकरानी चली गयी, तारक ने खाते-खाते हँसकर कहा—राजू बाबू कुछ कचौड़ियाँ खाना चाहते है सुन लेने पर किंतु मकान के अन्दर से एक दौरी कचौडी यहाँ आ जायगी।
राखाल ने चाय की दूसरी प्याली मे चुस्की लगाते-लगाते कहा—और तारक बाबू खाना चाहते है सुन लेने पर एक गाडी कचौडी आ जायगी शायद?
कचौडी का 'क' भी न आवेगा। केवल खबर आ जायगी खतम हो गया। बाजार से अभी तुरन्त कचौडी खरीद कर लायी जा रही है। थोडी देर ठहरना पडेगा।

राखाल ने हँसकर भौंहें चढा कर कहा—ऐसी ही बात है क्या?

तारक ने कहा—कुछ भी बढा चढ़ाकर मैंने नही कहा है।

आधा घूँघट खीच कर प्रौढा दासी शिवू की माँ ने अकारण ही अति सकोच से सहम कर एक प्लेट गरम कचौड़ी राखाल के सामने रख दी।

तारक ने हँस कर कहा—देख तो लिया। बिलकुल ही दर्जन के हिसाब से आ गयी।

राखाल ने मुसकुराकर शिवू की माँ को लक्ष्य करके कहा—मैं तो कोई राक्षस नही हूँ बहिन, इतनी कचौड़ियाँ ले आयी क्यो? किंतु जब कि ले ही आयी, तब खा ही लेता हूँ सभी। किंतु, कचौडी तुम अच्छी बना नहीं सकी हो, समझ गयीं? मिर्च देकर जैसी तीती बना दी है—पेट के भीतर तक जलन हो रही है। मिर्च कुछ कम देने से ही अच्छी बनी होती।

शिवू की माँ ने घूँघट,और कुछ खीच कर लज्जा से सिर झुका कर अस्फुट कंठ से कहा—कचौडी तो मैंने तैयार नहीं की। बहिन जी ने तैयार की है।

ओ- इसीलिए कचौडी में इतना कड़ुवापन है।

तारक को साथ लेकर राखाल जब पार्क में जा बैठा, तब दिन ढल कर तीसरा पहर हो चुका था।

तारक ने कहा—बहुत दिनो के बाद तुम्हारे साथ पार्क मे टहलने आना पडा आज।

प्रत्युत्तर मे राखाल जरा सूखी हँसी हँस पड़ा। तारक ने उसे लक्ष्य करके मन ही मन जरा बेचैनी अनुभव करने पर भी बाहर सलज्जभाव रख कर कहा—हाँ, क्या कहने वाले थे? विमल बाबू के मुँह से तुमने क्या सुना है मेरे संबध मे?

मैंने सुना है, तुम खूब अच्छा कामकाज कर रहे हो। तुम्हारा भविष्य अत्यन्त उज्जवल है। तुम्हारी तरह उद्योगी और परिश्रमी युवक के जीवन मे उन्नति अनिवार्य है।

राखाल के स्वर मे व्यग्य का सुर न रहने पर भी उसके कहने के ढंग से तारक ने उसे उपहास ही समझ लिया। भीतर ही भीतर जल जाने पर भी शांत भाव से ही कहा—तुमको बुलाकर ये सब बाते कहते थे? विमल बाबू का मतलब क्या था?

यह मैं किस तरह जान लूँ!

तारक गंभीर हो गया। उसने पूछा—तुमको और कुछ कहना है?

राखाल ने कहा—है।

उसे कह डालो। तीसरे पहर को निश्चिन्त भाव से बैठ कर हवा खाने लायक बडा आदमी मैं नही हूँ। तुमने देख ही तो लिया है, काम छोड कर चला आया हूँ।

तारक की गरमी से राखाल हँसने लगा। बोला—वकालत का पेशा जिनको करना है उनको इतना अधीर न होना चाहिये। जरा रुककर उसने फिर कहा—एक गुरुतर विषय पर आलोचना करने के ही लिए तुमको यहाँ बुला लाया हूँ तारक!

तारक निर्वाक् रहा।

राखाल ने गंभीर चेहरे से कहा—तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव ले आया हूँ।

राखाल के चेहरे की तरफ तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर तारक बोला—मजाक कर रहे हो?

मजाक करने के लिए तुम्हारे काम का नुकसान करके यहाँ बुलाकर नही लाया हूँ। सचमुच ही मैं तुम्हारे विवाह का प्रसग उठाने आया हूँ।

तो अब उस प्रसंग को न उठाकर उसे यही खतम कर देना अच्छा है क्योंकि विवाह करने लायक अवस्था और सुमति एक भी मुझे नही है। देर है।

राखाल बोला—मान लो यदि इस विवाह से तुम्हारी अवस्था का अभाव पूरा हो जाय।

तो उस हालत मे भी नही। क्योंकि मैं स्वय उपार्जनशील न बननें तक विवाह का दायित्व लेने में नाराज हूँ।

मान लो इस विवाह से यदि तुम्हारे उपार्जन की दिशा मे भी शीघ्र उन्नति हो जाय? तब तो आपत्ति न रहेगी।

तारक ने संदिग्ध नेत्रो से राखाल के मुँह की तरफ देखकर कहा—पात्री कौन है? किसी वकील

बैरिस्टर की लडकी है शायद?

नही, बिलकुल सम्बल हीन निराश्रय की कन्या है।

तब तुमने कैसे कहा कि इस विवाह से--

हाँ, ठीक ही कहा है। दरिद्र की कन्या से विवाह करके भी सम्पत्ति पाना बिलकुल विचित्र नही है। मान लो, अपने किसी धनवान आत्मीय की सभी सम्पत्ति की वह एकमात्र उत्तराधिकारिणी--

वह लडकी कौन है?

तुम राजी हो या नही, पहले बताओ।

परिचय जाने बिना बता न सकूंगा।

क्या परिचय जानना चाहते हो. पूछो। लडकी का वश परिचय उसका सौन्दर्य, गुण, उसकी शिक्षा?

तारक ने भौंहें सिकोड कर कहा--भावी पत्नी के संबध मे सब ही जान लेना जरूरी है।

राखाल ने थोडी देर तक चुप रहकर कहा--पात्री सुन्दरी है कहने से कम कहना होगा, वह है परम सुन्दरी, गुणवती, बुद्धिमती और सुशिक्षिता। ऊँचे ब्राह्मण कुल में उसका जन्म हुआ है। पिता किसी दिन धनवान व्यक्ति थे जरूर, किंतु वर्तमान समय मे एक कौडी भी उनके पास नही है। पितृसम्पत्ति न मिलने पर भी पात्री मातृधन की अधिकारिणी है। उस धन का परिमाण भी बहुत कम नही है। कुल, वर्ण और गोत्र मे तुम लोगो की बराबरी की है। सब दृष्टियों से वह किसी भी सुपात्र के लिए योग्य पात्री है।

पात्री के पिता का नाम. धाम और वर्तमान पेशा क्या है, क्या मैं जान सकता हूँ?

उसी पर क्या मनामत निर्भर करना है?

नही--हाँ, पूरे तौर से भले हीन हो, कुछ-कुछ तो निर्भर करता ही है।

राखाल ने फिर कुछ क्षण चुप रहकर बाद को धीरे-धीरे बोला--पात्री के पिता तुमसे सुपरिचित नहीं है। मैं ब्रज बिहारी बाबू की लड़की की ही बात कह रहा हूँ।

तारक चौंक पडा। बोला--यह क्या? तुम किस लडकी की बात कह रहे हो?

रेणु की।

तुम क्या पागल हो गये हो राखाल? राखाल के कठ मे तीव्र आश्चर्य ध्वनित हो उठा।

राखाल ने तारक की तरफ अवज्ञा भरी दृष्टि स्थापित करके कहा पागल होने से तो अच्छा होता। किंतु हो सकता हूं कहाँ?

उत्तेजित कठ से तारक बोला--होने में अब देर ही क्या है? नही तो नयी माँ की लडकी रेणु के साथ मेरे विवाह का प्रस्ताव लेकर आ सकते हो?

राखाल ने कहा--तो इसमे तुम्हारे आश्चर्य मे पडने या उत्तेजित होने की कौन सी बात है?

बहुत अधिक है। यह अवश्य ही तुम्हारा षडयत्र है। तुमने नयी माँ को भी शायद यह परामर्श दिया है।

राखाल ने निर्लिप्त भाव से ही कहा--नही। मेरे परामर्श की प्रतीक्षा उन्होने नही की। उन लोगों ने बहुत पहले से ही रेणु के लिए तुमको वर चुन रखा है। मैं जानता नही था यह खबर।

तारक ने दृढ़ भाव से सिर हिलाकर कहा--हो ही नही सकता--झूठी बात है।

राखाल ने स्थिर स्वर से कहा--तुम अच्छी तरह जानते हो, मैं झूठी बात नही कहता।

तारक का ऊँचा स्वर अब नीचे उतर आया और वह बोला--तुम ही रेणु से विवाह क्यो नही करते?

राखाल ने उत्तर दिया--मैं योग्य पात्र नही हूँ। रेणु के अभिभावक लोग इस बात को जानते हैं।

तारक ने व्यग्य भरे कठ से कहा--और अभागा मैं ही हो गया शायद सब तरह से उनकी कन्या के लिए सुयोग्य पात्र।

तुम हो परीक्षाओ मे उत्तीर्ण विद्वान लडका। बुद्धिमान, स्वास्थ्यवान और चरित्रवान हो।

हाँ, अनेक बान तुमने चला दिये, किंतु विचार मे यह बात क्यो नही आयी कि उस लडकी को मैं अपने पितृवश के कुलवधूरूप मे ग्रहण नही कर सकता। गरीब हो सकता हूँ किंतु मर्यादाहीन अभी तक नही हुआ हूँ।

राखाल ने क्रोध स्तम्भित कठ से कहा--तारक--

सत्य कथन से भय क्यों करें? तुम स्वय उस लडकी को विवाह करके ला सकते हो।

तीक्ष्ण दृष्टि से तारक की तरफ देखकर राखाल ने कहा—उसी लडकी की माँ के आश्रय मे रह कर उनकी ही सहायता लेकर, अपना भविष्य निर्माण करने मे तुम्हारी वंशमर्यादा और कुलीनता का गौरव उज्जवल होता जा रहा है? तारक, अपने मनुष्यत्व को दलित करके यदि उन्नति का रास्ता तैयार करोगे तो, तुमको अवनति के गढ़े मे ही वह ठेल ले जायगा।

तारक पागल की तरह उछल उठा। बोला—शटअप्। मुँह सम्हाल कर बातें करो राखाल। तुम क्या जानते हो कि उन लोगों का प्रत्येक पैसा मैं हिसाब करके शोध कर दूँगा? इसी शर्त पर ऋण के रूप में मैंने उन लोगो से यह सहायता ली है।

राखाल हँसने लगा। बोला—ऐसी बात है क्या? तब फिर क्या? ऋण शोध जब कर दोगे तब उनके साथ फिर क्या कृतज्ञता का सम्पर्क रह सकता है। क्या कहते हो? नही तो कुछ व्याज जोड देने से ही हो जायगा।

तारक ने रूखे स्वर से कहा—देखो राखाल—इन सब विषयों को लेकर व्यग्य मत करो। स्वयं जिस काम को नही कर सकते दूसरे को, उसे करने को कहने में तुमको क्या लज्जा नही आती?

उस बात का जवाब न देकर राखाल ने कहा—तुम्हारे संबध म तब तो देख रहा हूँ, मैंने भूल नही की है। तो भी जब मैंने सुना, नयी माँ इस सबंध मे शायद पहले ही तुमको बतला चुकी है, तब मैंने आशा की थी हो सकता है कि तुम्हारी असम्मति न भी हो सके।

तारक उठ खडा हुआ और बोला—नयी माँ ने किसी भी दिन ऐसी बात मुझसे नही कही, कहने का साहस भी वे न करेंगी, जान लो। वे जानती हैं तारक राखाल नही है। यह प्रस्ताव वे राखाल के सामने रख सकती हैं किंतु तारक के सामने नही।

उत्तर की प्रतीक्षा न कर के तारक हन्-हन् करके पार्क से बाहर चला गया।

पच्चीस

वर्ष बीत जाने पर नया वर्ष आ गया? वह भी फिर समाप्त होने जा रहा है। संसार की अवस्था परिवर्तित हो गयी है बहुत।

अन्तिम बार विमल बाबू सिगापुर जाकर प्राय. डेढ़ वर्ष से कलकत्ता नही लौटे हैं। इन दो वर्षों के बीच राखाल को प्राय. सात बार वृन्दावन जाना पडा है। इससे उसके अपने कामकाज का नुकसान यथेष्ट हुआ है। दिन पर दिन वह ऋण के जाल मे फँसता जा रहा है। फिर भी उपाय कुछ भी नही है।

रेणु वगैरह की आर्थिक सहायता करने के लिए सविता ने तरह-तरह के उपायो से बहुत चेष्टाएँ की थी, सफलता नही मिली। प्राय: सवा लाख रुपये की जो सम्पत्ति केवल एकसठ हजार रुपये मे उन्होंने रमणी बाबू की सहायता से अपने नाम खरीद ली थी वह रेणु को ही देने के उद्देश्य से थी। उस सम्पत्ति को खरीदते समय सविता ने नौ हजार रुपये रमणी बाबू से इस शर्त पर लिये थे कि, सम्पत्ति की आमदनी से वे रुपये चुका दिये जायँगे। ऊँची दर के व्याज के साथ नौ हजार रुपये रमणी बाबू को सम्पत्ति की आमदनी से एक मुश्त मे चुका भी दिये गये हैं। किंतु जिसके लिए यह आयोजन था, उसी ने जब कि सम्पत्ति को स्पर्श नही किया और भविष्य मे भी वो स्पर्श करेगी, ऐसी आशा नही रही, तब सविता का मन बिलकुल ही टूट गया। उन्होंने अपने सभी गहनो को, ब्रजबाबू के सील मुहरबन्द उस गहने के बकस के साथ बैंक मे जमा रखा है रेणु के ही नाम से। किंतु आकाशकुसुम रचना की तरह उनका तो सब ही वृथा हो जाने जा रहा है।

मन मे उन्होने कल्पना की थी, उच्च शिक्षित, चरित्रवान, स्वस्थ और बलवान युवक के हाथ मे कन्या अर्पण की व्यवस्था करके अपने रुपये और सम्पत्ति दहेज में दान कर देगी। वह अर्थ तो रेणु का ही पितृ धन है। उसके ही पिता और माता की दी हुई जो वह मूल्यवान अलंकार राशि दीर्घ कारण से बक्स में

ही वन्द पडी रही, किसी दिन सविता के अग पर उठी नही—इतने दिनों से आशा लगी थी, वह शायद सार्थक हो जायगी नवोढा रेणु को अलकृत करने से। वडी आकाक्षा थी, उनकी प्राणाधिका रेणु, परिपूर्ण दाम्पत्य सौभाग्य से सुखी अच्छी अवस्था मे परितृप्त जीवन वितावेगी। दूर से यह देख कर उनका अभिशप्त मातृजीवन चरितार्थ हो जायगा। किंतु भाग्य जिसका खराब है, सभी व्यवस्थाएँ ही उसकी शायद इसी प्रकार व्यर्थ हो जाती हैं।

इतने दिनों मे सविता असंदिग्ध रूप से समझ सकी हैं कि पति और कन्या के जीवन मे उनका स्थान तिल मात्र भी नही है। न तो हृदय मे और न तो बाहर ही।

आज यौवन के अस्ताचल मे शरीर-कामना रहित प्रेम आप ही दरवाजे पर आ पहुँचा है। सविता जानती है इसका मूल्य, जानती है यह कितना दुर्लभ है। इसको उपयुक्त सम्मान और समादर के साथ ग्रहण करने की मनोवृत्ति शायद अब नही है। आज उनका समस्त हृदय-मन मातृत्व के ममतारस से भीगकर सतान की आनन्द-तृषा से तृषित हो उठा है।

किंतु कहाँ है वह स्नेह पात्र?

अतिरिक्त मानसिक उद्वेग और विक्षोभ से सविता का स्वास्थ्य आज कल बिगडने लगा था। उसके ऊपर शरीर के प्रति उदासीनता और लापरवाही का अन्त नही है।

शारदा प्राय ही शिकायत करती थी। किंतु उसके अपने हाथ मे प्रतिकार का उपाय नही है। तारक कुछ बोलता नही हैं। उसकी प्रैक्टिस दिन पर दिन बढ़ती जा रही है, अपनी उन्नति की चेष्टा मे ही वह दिन रात डूबा हुआ हैं।

तीसरे पहर को सविता भण्डारघर में तरकारी काटते-काटते बैठी हुई एक डाक की चिट्ठी खोल कर चुपचाप पढ रही थी। उनके चेहरे पर आश्चर्य-और वेदना से युक्त सकरुण हँसी की रेखा पडी हुई है। विमल वाबू ने सिगापुर से लिखा है—

सविता, शारदा बेटी के सक्षिप्त पत्र से मुझे मालूम हुआ है कि तुम्हारा स्वास्थ्य खूब ही खराब हो गया है। फिर भी सुनता हूँ कि, इस सवध में तुम विलकुल ही उदासीन हो। शारदा बेटी ने लिखा है, समय रहते सावधान न होने से शीघ्र ही कठिन रोग से शय्याशायिनी हो जाने की संभावना है।

तुम तो जानती हो, टूटे हुए स्वास्थ्य को लेकर अकर्मण्य जीवन विताने का दु ख मृत्यु से भी अधिक है। मुझे आशका हो रही है, इस तरह चलने से तुम शायद वही अति दु खमय जीवन ढोने को वाध्य हो जाओगी।

किसी की भी इच्छा के विरुद्ध हस्तक्षेप करने की प्रकृति मेरी नही है। इसीलिए मैं तुम्हारी इच्छा के ऊपर अपनी इच्छा प्रकट करने मे लज्जित हूँ। हितैषी मित्र की हैसियत से मैं तुमको याद दिला रहा हूँ कि अतिरिक्त मानसिक से आघात तुम इतनी विचलित हो गयी हो कि, जीवित मनुष्य के लिए स्वास्थ्य कितनी आवश्यक वस्तु है, इसे भी तुम भूल गयी हो। अन्तर्गूढ़ हृदय वेदना से अपनी चेतना को खो कर शरीर के प्रति अवहेला करना ठीक नही है। इस भूल को भी भविष्य मे किसी दिन मनुष्य आप ही समझ सकता है। किंतु तव शायद इतनी हो जाती है कि प्रतिकार का उपाय नही रह जाता। इसीलिए मेरा अनुरोध है शरीर ही रक्षा मे लापरवाही मत रखो।

सवसे अत में उन्होंने लिखा है—तारक ने अपने विवाह के बारे में शायद तुमको बतलाया होगा। इस विवाह मे तुम्हारा मतामत कैसा है जानने की इच्छा करता हूँ। उसने पत्र लिखकर मेरा सम्मति और आशीर्वाद की प्रार्थना की है। पात्री तारक के सीनियर वकील शिवशकर बावू की भतीजी है। यह विवाह उसकी प्रैक्टिस की उन्नति के अनुकूल होगा इसमे सदेह नही है। इत्यादि।

सविता लम्बी साँस लेकर पत्र को लिफाफे मे रखकर तरकारी काटने लगीं। उनका हृदय आँसू से तर हो गया था।

तीसरे पहर को शारदा महिला शिक्षा-मडली के स्कूल से घर लौट आयी तो सविता ने कहा—एक सुसमाचार तुमने सुना है शारदा?

आग्रह से मुँह ऊपर उठाकर शारदा ने पूछा—क्या सुसमाचार है माँ?

हमारे तारक का विवाह।

उत्सुक होकर शारदा ने कहा—कब है माँ? कहाँ है? कन्या कैसी है देखने मे?

यह तो कुछ भी मैं नहीं जानती बेटी। सुनती हूँ हाईकोर्ट के बहुत बडे वकील हैं शिवशकर बाबू, उनके ही जुनियर बन कर तारक काम सीख रहा है, पात्री उनकी ही भतीजी है।

यह क्या? आप इसके संबंध मे कुछ भी नहीं जानती। तो फिर जानता कौन है माँ?

शारदा के कंठ मे आश्चर्य ध्वनित हो उठा।

सविता ने हँसकर कहा—समय होने पर ही सभी जान सकते हैं शारदा। मुझे सिगापुर से खबर मिली हैं कि तारक का विवाह होने वाला है।

शारदा ने अपना मुँह उदास करके कहा—उः क्या ही अद्‌भुत मनुष्य हैं यह तारक बाबू।

सविता ने स्निग्ध स्वर मे कहा—यह मेरा लडका कुछ लजीला है। तुम उसे दोष मत देना शारदा। बल्कि उद्योग मे लग जाओ अभी से।

शारदा निरुत्तर रह कर मुँह फुलाकर बाहर चली गयी।

डेढ साल हो रहे हैं शारदा को एक नारी शिक्षा मंडल संस्था के एक स्कूल मे सविता ने भर्ती कर दिया है। वहाँ वह लिखना-पढ़ना, तरह-तरह के अर्थोपार्जन के गृहशिल्प, शिशुपालन और शुश्रूषा आदि विभिन्न विभागों में काम सीखने के लिए तैयार हुई है। एक-एक विषय को सीखने के लिए कुछ वर्ष या कुछ महीने निर्धारित हैं। आजकल लिखने-पढ़ने और दर्जी के काम के विभाग मे शारदा का द्वितीय वर्ष चल रहा है। दिन मे नौ बजे स्कूल की गाडी आती है, फिर शाम को पाँच बजे लौट आती है। तीसरे पहर को सविता उसके लिए जलपान लिये बैठी रहती हैं। शारदा के आने पर झट-पट कह कर उससे कपडे बदलवा कर हाथ मुँह धुलवाकर अपने हाथ से जलपान परोस देने के बाद ही वे निश्चिन्त होती हैं। तारक के सबध मे भी यही बात है। कचहरी से लौटने के पहले उसके विश्राम और जलपान की व्यवस्था अपने हाथो से न किये बिना सविता तृप्ति नही पाती।

तारक प्रतिवाद करता है, शिकायत करता है, किंतु सविता उस पर ध्यान नही देती। शारदा कहती है माँ, आपकी सेवा का भार लेने में आपके पास आयी, किंतु अन्त मे आप ने ही मेरी सेवा अपने हाथ मे उठा ली। मैं सचमुच ही यह सह नही सकती। आपके कधे पर परिश्रम का भार लादकर स्कूल जाने मे मुझे खटकता है।

सविता हँसकर कहतीं हैं—बेटी, इसी काम मे मुझे अधिक तृप्ति मिलती है। तुमको किसी तरह भी स्कूल छोड़ना न पडेगा, मेरे जीवित रहते। जीवन मे तुमकोअवलम्ब तो चाहिये! शिक्षा न पाने से आत्म निर्भरता की शक्ति पाओगी कहाँ से? किसी दिन शायद तुमको अकेली जीवित रहना पडेगा इस पृथ्वी मे। अपने पैरों पर टेक कर खडा होना न सीखने से स्त्रियो की दुःख की सीमा नही रहती, यह बात तो तुम से अज्ञात नही है शारदा।

उस दिन रात को तारक खाने के लिए बैठा तो सविता प्रतिदिन की तरह खाने की देख भाल के लिए बैठी हुई थी। सविता ने एक समय कहा—सुनती हूँ तुम विवाह कर रहे हो बेटा?

तारक ने चौंककर प्रश्न किया—किससे आपने यह बात सुनी?

सविता ने शात हँसी हँसकर कहा—सिंगापुर की चिट्ठी आयी है आज।

शारदा मिठाई परोस रही थी। बोली—हमारे घरके विवाह की खबर हमलोगो के ही पास आती है तारक बाबू, समुद्र पार की डाक से।

शारदा की व्यंग्योक्ति से हड्डी-हड्डी में बिगड जाने पर भी तारक उसे प्रकट न कर सका। सविता की तरफ देखकर कैफियत के सुर में बोला—मेरे सीनियर वकील शिवशंकर बाबू बार-बार कह रहे हैं अपनी भतीजी के साथ मुझे विवाह करने के लिए। मैंने अभी तक अपना मतामत प्रकट नही किया है। यह विवाह होगा या नही होगा इसका कुछ भी ठीक नही है। किसी से भी अभी तक मैंने कहा नही है। केवल विमल बाबू के पास लिखा था, परामर्श देने के लिए।

सविता ने कहा—यह सबध तो तुम्हारे पक्ष मे अच्छा ही मालूम हो रहा है बेटा। तुम आत्मीय बन्धुहीन हो, इस तरह का प्रधान ससुर पाना भाग्य की बात है। यदि पात्री तुमको नापसंद न हो तो शुभ कर्म मे देर न करना ही अच्छा है।

तारक ने सकुचित होकर कहा—किंत इस विवाह में तरह-तरह के विघ्न है माँ। मैंने मन मे सोच लिया है शिवशकर बाबू को जवाब दूंगा, यह विवाह सभव नही होगा।

सविता ने कहा—बाधा किस बात की है? मुझको बताने मे क्या तुमको सकोच है बेटा?

तारक ने घबडाकर कहा—आपको बताने मे मुझे कौन-सी बाधा है। आप है मेरी माँ। मैं आपको बताऊँगा यही सोच रहा था। आज ही मैं स्वय आपके सामने इन सभी बातो को कहने वाला था।

शारदा के चेहरे पर अविश्वास की हँसी फूट उठी। उसने कहा—माँ, अब तो मैं ऊपर जा रही हूँ।

शारदा चली गयी।

तारक ने अपना कठस्वर धीमा करके कहा—शिवशकर बाबू मेरे साथ अपनी भतीजी का विवाह करने को इच्छुक हुए हैं। किंतु उनकी कुछ शर्तें हैं। उन शर्तों पर मैं अभी तक अपनी स्वीकृति न दे सका हूँ। यद्यपि शिवशकर बाबू की सहायता से ही में इतने थोडे दिनो मे ही 'बार' मे इतना अधिक नाम पैदा कर सका हूँ, और वे सहायक बने रहे तो मैं खूब जल्द ही उन्नति के मुँह तक अग्रसर हो सकूँगा, यह भी ठीक है, किंतु—

तारक बात अधूरी ही रखकर चुप हो रहा।

सविता तारक की तरफ जिज्ञासु नेत्रो से ताकती रही।

बहुत देर तक चुप रहने के बाद तारक धीरे-धीरे बोला—शिव बाबू की प्रथम शर्त है, विवाह के बाद कुछ दिन, कम से कम एक साल तक मुझे उनके पास जाकर रहना पडेगा।

क्यो?

उन भतीजी है पितृहीना। शिव बाबू को अपनी लडकी नही है। इसीलिए—

समझ गयी, भतीजी को ही अपनी पुत्री की तरह पाला पोसा है। अपने पास से अलग करना नही चाहते शायद—

हाँ, अपनी लडकी से भी अधिक उसको वे प्यार करते हैं। इसी लिए उन्होने कहा था तुम मेरे मकान मे आकर यदि रहो, तुम्हारे काम मे बहुत सुविधा होगी। बाद को तुम्हारी पृथक् गृहस्थी बना देने का दायित्व मेरे ऊपर रहा।

सविता ने कहा—इस मे तुमको असुविधा की कौन सी बात है?

तारक ने हुटक-हुटक कर गला साफ करके कहा—असुविधा तो ठीक मेरी अपनी जरूर ही नही है बल्कि—बराबर उनके पास रह कर काम का सीखना और पृथक केस पाने की दृष्टि से सुविधा ही होगी ऐसा मालूम होता है, किंतु मैं जाऊँ कैसे माँ? मान लीजिये, आप की देख-भाल—

सविता ने हँसकर कहा—ओ. इसीलिए। मेरे सबध मे तुम कुछ भी मत चिंता करना तारक। मैं तो आज ही सबेरे सोच रही थी—कुछ दिनो के लिए कही बाहर जाकर रहने से भी ठीक होगा। जीवन मे आजतक तीर्थ भ्रमण का मौका नही मिला। सोचती हूँ, इस बार तीर्थयात्रा के लिए निकल पडूँगी।

अकेली ही जाइयेगा?

मैं यदि जाऊँगी तो शारदा को भी अपने साथ लेती जाऊँगी। अथवा उसकी शिक्षा सस्था के बोर्डिंग मे ही उसे रख जाऊँगी।

तारक ने थोडी देर तक सोच कर कहा—लौट आइयेगा कितने दिनो मे।

सविता ने म्लान हँसी हँस कर कहा—हो सकता है कि फिर कभी कलकत्ता न भी आ सकूँ। यदि उधर के किसी भाग मे अच्छा लगेगा तो वही एक छोटा सा मकान खरीद कर रहूँगी सोच लिया है।

तारक चुप हो रहा।

सविता ने कहा—उन लोगो को पक्की बात दे दो।

तारक का खाना समाप्त हो चुका था। आसन से उठते-उठते उसने कहा—सोचकर देखूँगा।

उस दिन रात्रि को सविता के सो जाने पर शारदा जब उनकी मसहरी के निचले भाग को बिछौने के नीचे ठूँस रही थी, सविता ने कहा—शारदा, तुम्हारे स्कूल की परीक्षा कब है?

शारदा ने कहा—ढाई महीने के बाद।

सविता ने कुछ सोचकर कहा—मैं कुछ दिनो के लिए तीर्थ भ्रमण के लिए निकल पडूँगी, ऐसा विचार

कर चुकी हूँ तुम चलोगी मेरे साथ?

शारदा ने उत्साहित कंठ से कहा—हाँ माँ—चलूँगी। केवल काशी के सिवा अपने जीवन मे मैं और कही नही गयी। गया मे एक बार गयी थी जरूर, वह—खूब छोटी अवस्था मे, ग्यारह-बारह साल की अवस्था मे। पति का पिण्डदान कराने के लिए बाबू जी साथ ले गये थे।

यह बात सुन कर सविता यथेष्ट आश्चर्य मे पड गयी। किंतु उन्होंने कुछ कहा नही।

शारदा ने कहा—कब हम लोगो को चलना पडेगा माँ?

तारक का विवाह बीत जाय। बाद कलकत्ते का मकान बिलकुल ही छोड कर जाने का विचार है।

शारदा बोल उठी—मुझको भी साथ रखियेगा तो?

नही बेटी, तुमको फिर कलकत्ता लौट आना ही पडेगा।

क्यो माँ? शारदा के कंठस्वर में उद्वेगध्वनित हो उठा।

तुम जिस प्रयोजन मे शिक्षा पा रही हो, वह तो अभी पूरा नही हुआ बेटी। लौट आने पर बोर्डिंग मे रह कर पढाई खतम करके मेरे पास आकर रहना।

शारदा स्तब्ध होकर खडी रही। कुछ क्षण सोच मे पडी रहने के बाद वह म्लान कंठ से धीरे-धीरे बोली—तीर्थ भ्रमण को जाने की मुझे जरूरत नहीं है माँ।

सविता ने कहा—क्यो? देश देशान्तरो मे घूमफिर आने पर कुछ जान सकोगी, सीख सकोगी।

शारदा ने सिर हिलाकर कहा—नहीं माँ, मैं जाऊँगी नही। वे लोग यदि मुझे देख ले।

सविता न आश्चर्य मे पडकर पूछा—यह क्या, वे लोग फिर कौन हैं?

शारदा ने अत्यन्त कुण्ठित होकर कहा—मेरे बाप के घर के लोग।

सविता समझ गयी सब कुछ। कुछ भी प्रश्न उन्होंने नहीं किया। लम्बी साँस लेकर उन्होंने कहा—भले ही न जाओ तीर्थ करने। यही रह कर पढना जारी रखो।

कपट व्याकुलता से शारदा बोल उठी—आप के पास से अलग होने की इच्छा मुझे जरा भी नही होती माँ। बोर्डिंग मे अकेली रहने से भय तो न मालूम होगा।

भय किस बात का? वहाँ तुम्हारी तरह कितनी ही लडकियाँ रहती हैं—मेरा राजू कलकत्ते मे हैं ही, तारक भी है, उन दोनो को कहती जाऊँगी तुम्हारी खोज खबर लेते रहेगे। जब जिस बात की जरूरत पडेगी, उनको खबर दे सकोगी।

धुँधले अधकार कमरे मे सविता के बिछौने के पास चुपचाप खडी रह कर शारदा सोचने लगी। बहुत देर के बाद उसने अस्पष्ट शब्दो मे पुकारा माँ—

बोलो शारदा, मैं जागती ही हूँ। बिछौने पर से सविता ने जवाब दिया।

मुझे अपनी सभी बाते आप को सुनाने की आज इच्छा हो रही है।

आज बडी रात बीत चुकी बेटी। तुम जाकर सो रहो।

जा रही हूँ। मैं विधवा हो गयी थी माँ ग्यारह वर्ष की अवस्था मे, फिर कभी ससुराल नही गयी। छोटी उम्र मे ही माँ मर गयी थी। बाप ने फिर विवाह कर लिया—सविता ने बीच मे ही रोक कर कहा—तुमको कुछ भी कहना न पडेगा शारदा, मैं सब कुछ ही जान गयी हूँ।

दूसरे दिन सविता विमल बाबू को चिट्ठी लिख रही थी—बहुत दूर कही जाने के लिए मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो गया है। बहुत सोच विचार करके मैंने तीर्थ-भ्रमण को निकल पडने का निश्चय कर लिया है। यहाँ लौट आने की अब रुचि नही है। अनिर्दिष्ट घूमते-घूमते जो देश अच्छा लगेगा, वही रहने लगूँगी सोच रही हूँ। कलकत्ते का मकान अब रखने की आवश्यकता नही है। तारक के भावी ससुर तारक को अपने घर रखना चाहते हैं। उसके कानूनी पेशो मे सब तरह की सहायता और भविष्य मे गृहस्थी तैयार कर देने का दायित्व लेने को वे तैयार हैं। मैंने तारक को इस अवस्था मे सम्मत होने का परामर्श दिया है।

शारदा की शिक्षा जितने दिनो तक समाप्त नही होती, वह अपने विद्यालय के बोर्डिंग हाउस मे ही रहेगी। शिक्षा पूरी हो जाने पर, वह यदि इच्छा करे, मेरे पास जाकर रह सकती है।

व्यवस्था कुछ भी मैं अपने राजू के लिए न कर सकी। मुझे पता मिला है कि कुछ दिनो से वह ऋण के जाल मे फँस गया है फिर भी, मेरी अथवा और किसी की सहायता लेने को वह बिलकुल ही तैयार नही है।

उससे अनुरोध करने को भी मुझे साहस नही होता। प्रत्याख्यान का दुःख और भी सर्वत्र वढ़ाते रहने से लाभ नही है। रजू को साथ ले जाने का भी उपाय नहीं है, क्योंकि उसे प्रायः ही वृन्दावन जाना पड़ता है। कब, किस समय वृन्दावन से बुलाहट आ जायगी इसका कोई ठिकाना ही नही है।

तारक के लिए इस समय कचहरी मे नागा करना असंभव है, तुम जानते हो। इस कारण पुराने दरवान महादेव और शिवू की माँ दासी को साथ लेकर यात्रा करने का मैंने निश्चय किया है। कुछ दिन तो घूमूँ फिरूँ, उसके बाद जहाँ कही हो स्थिर होकर बैठूँगी।

X X X

किसी काम के उपलक्ष्य मे शायद उस दिन शारदा का स्कूल दोपहर को ही बन्द हो जाने के कारण दिन मे एक वजे घर लौट आयी। सविता उस समय दक्षिणेश्वर गयी थी। तारक था कचहरी मे। शारदा अकेली घर मे बैठ कर इतिहास का पाठ तैयार करने लगी।

सदर दरवाजे के किवाड का कडा खट-खटाये जाने की आवाज सुनाई पडी—नयी माँ—

पुस्तक के पन्ने फाडकर द्रुतपद से नीचे उतर आने पर शारदा ने दरवाजा खोल दिया।

राखाल ने कहा—यह क्या? तुम्हारा स्कूल क्या आज नही है।

शारदा ने जवाब दिया—था। छुट्टी हो गयी है।

राखाल ने पूछा—किसलिए छुट्टी?

शारदा ने दुष्टता की हँसी हँस कर कहा—आप आज यहाँ आवेगे इसीलिए?

राखाल ने गभीर मुँह से कहा—अच्छा, इन सब बातो को कहने मे तुम्हारे मुँह मे रुकावट नही पडती?

शारदा ने चचल कठ से उत्तर दिया—जरा भी नही।

शारदा के पीछे-पीछे सीढ़ियो से चढते हुए राखाल ने कहा—नयी माँ क्या कर रही हैं? उनके साथ कुछ जरूरी काम है।

शारदा ने कहा—तब तो संध्या तक प्रतीक्षा करनी पडेगी।

क्यों? वे क्या घर मे नही हैं।

नही, वे दक्षिणेश्वर गयी हैं। आज तो वे उपवास कर रही हैं न।

किस बात का उपवास।

यह तो कुछ उन्होने बताया नही। कहती हैं व्रत है।

इतने व्रत भी आ जाते हैं कहाँ से? पचागो को जला न डालने से देखता हूँ अब रक्षा नही है?

मैं जानती हूँ देवता, आज माँ का उपवास किसलिए है।

किसलिए है बताओ तो।

आज है उनकी लडकी की जन्मतिथि।

ऐसी बात है क्या। तुम्हारी नयी माँ ने कहा है शायद?

पागल हो गये हैं। कहा तो है जरूर। अनेक दिन पहले मैंने माँ को कहते सुना था माघी पंचमी रेणु जन्मतिथि है।

राखाल ने हँस कर कहा—इसलिए उस दिन नयी माँ का उपवास अनिवार्य है।

शारदा ने कहा—हाँ। केवल यही नही—मैंने लक्ष्य करके देखा है, इस दिन माँ गरीब दुखियो को प्रचुर दान करती हैं। रुपया-पैसा, कपडा, कम्बल, अलवान, यह सब तो देती ही हैं, इनके सिवा अपनी पसद की सुन्दर-सुन्दर रगीन साडियाँ, डोरीदार साडियाँ ब्लाउज शेमिज यह सब खरीद कर भिखारिनी स्त्रियो मे बाँट देती हैं। घर मे रह कर वे यह सब कुछ नही करती, किसी दूसरी जगह जाकर दे आती हैं। जैसे काली घाट, दक्षिणेश्वर, अथवा गगा के घाट पर इसी तरह और कही भी—

राखाल ने कुछ भी नही कहा। गभीर मुँह से मानो कुछ सोचने लगा।

शारदा ने कहा—आप ने सुना है क्या? माँ तो कलकत्ते का मकान खाली करके सर्वदा के लिए अन्यत्र जा रही है?

शारदा ने कहा—आपाततः तीर्थ भ्रमण करने। उसके बाद जिस किसी शहर मे हो, वे रहेगी।

राखाल ने मुँह ऊपर उठाकर कहा—कहाँ जा रही हैं।

राखाल ने प्रश्न किया—कब जायँगी?

शारदा ने कहा—तारक बाबू का विवाह हो जाने के बाद तुरन्त ही।

राखाल ने आश्चर्य मे पड कर कहा—तारक का विवाह है क्या? कहाँ?

शारदा ने विस्तार के साथ तारक के विवाह की सारी बातें राखाल को बता दीं।

राखाल ने कहा—तारक घरदामाद बनने को राजी हो गया?

केवल दो साल के लिए। उसके बाद शिव बाबू उसको एक अलग मकान देकर पृथक गृहस्थी बना देगे ऐसा वचन उन्होने दिया है।

राखाल ने हँस कर कहा—तब तो तारक केवल एक राजकन्या ही नहीं, आधा राज्य समेत ही पा रहा है, कहो।

शारदा ने परिहास के सुर मे कहा—सुन कर अवश्य ही आप को अफसोस हो रहा है—न देवता?

राखाल इस परिहास का जवाब न देकर अन्यमनस्क चित्त से मानो कुछ सोचने लगा। शारदा ने हठात् विनती के सुर मे कहा—देवता, आप क्यो नही विवाह कर लेते।

राखाल ने इस बार ऊँची हँसी हँस कर कहा—तारक के साथ टक्कर देकर करूँ क्या?

शारदा ने कहा—वाह? यह क्यो? चिरकाल क्या इसी तरह अकेला मेस मे पड़े रहेगे? गृहस्थी वनाने की क्या साध नही होती?

राखाल ने कहा—साध रहने पर भी सभी गृहस्थी नही बसा सकते हैं शारदा?

क्यो सकेगे नही? दीन-दु.खी मनुष्य भी तो अपने मन के अनुसार गृहस्थी तैयार कर लेते हैं।

किंतु यह तो दिखाई पड़ता है, शारदा, गरीब दु:खी मान लेता हूँ अभाव दु:ख के बीच भी गृहस्थी वनाने का मौका पा गये, किंतु महाधनवान प्रचुरता मे रह कर भी वह मौका न पा सका। सब के भाग्य मे सव साध पूरी नही होती। देखो न. तुम्हारी भी तो चेष्टा मे कोई त्रुटि हुई, किंतु तुम ही क्या गृहस्थी रचना कर सकती हो?

स्वच्छन्द स्वर मे शारदा ने जवाब दिया—मेरी बात आप छोड दे। इतनी कम अवस्था मे यदि मैं विधवा न हुई होती तो आज मेरी गृहस्थी बहुत बडी हो गयी होती। उसके बाद भी तो खोदा के ऊपर खोदकारी करके दुर्बुद्धि लेकर मैंने नये सिरे से गृहस्थी वना डाली थी। सहा नही गया तो क्या करूँ?

राखाल ने कहा—इसी से समझ लो—भाग्यं फलतिसर्वत्रम्!

शारदा ने राखाल की युक्ति पर कर्णपात न करके कहा—आप के ब्याह कर लेने के बाद यदि गृहस्थी न बन पाती, अथवा गृहस्थी चलाने के आरम्भ मे यदि बहू मर जाती तो उस हालत मे इस बात को मान लेती। आप ने तो आज तक कोई चेष्टा ही नही की?

राखाल ने कहा—चेष्टा करने से ही हो जाता है क्या। ब्याह होना या न होना भाग्य पर निर्भर करता है। इस बात को शायद तुम मानना नही चाहती? देखो शारदा, वह सब इतिहास भूगोल पढना और गलीचा बुनना छोडकर तुम्हारे लिए कुछ लाजिक पढने की जरूरत है।

कुछ भी जरूरत नही है। कीजिये देखूँ तर्क, किस तरह मैं आप को परास्त नही कर देती, देख लीजिये।

राखाल ने हाथ जोड कर कहा—मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूँ। पहले तो स्त्री ठहरी, उस पर से अल्प विद्या—यह कैसी भयंकर बात है। यह सभी जानते हैं। तर्क शास्त्र के प्रणेतागण स्वय आने पर भी हार जायँगे, मैं तो तुच्छ हूँ। उस बात को छोड कर अब काम की बात का जवाब दो तो भला। नयी माँ जो कलकत्ते का डेरा डंडा उठा कर तीर्थ यात्रा को जा रही हैं, तुम्हारी व्यवस्था क्या हो रही है, तुम भी क्या नयी माँ के साथ ही जा रही हो?

शारदा ने हँसकर कहा—मान लीजिये, यदि मैं जाऊँ भी—उससे आप खुश होगे या नाराज?

राखाल ने जरा सोच कर कहा—खुश न होने पर भी नाराज होने का मुझे क्या दरकार है?

अधिकार यदि पा जायँ, तो उस हालत मे?

राखाल ने हँस कर कहा—वह चीज तो इतनी तुच्छ नही हैं। अधिकार ऐसी वस्तु है, जो दान की सहायता से आ जाने से दुर्बल हो जाती है। इसी कारण दह मर्यादा खो जाती है। अधिकार जहाँ सहज भाव से आप ही आप उत्पन्न होता है, उसी जगह पर उसका जोर चलता है?

शारदा ने कहा—तब तो और मुझे भी अनधिकार चर्चा की जरूरत नही है। किंतु मोटे तौर से यह वात अच्छी तरह समझ मे आ रही है कि मैं माँ के साथ मेरे विदेश जाने पर आप जरा भी खुश नही होते।

यह तो केवल तुम्हारे ही भविष्य के कल्याण के लिए शारदा।

राखाल का कठ स्वर गाढ हो उठा। बोला—इसमे मेरा अपना स्वार्थ है ऐसा मत सोचना।

शारदा ने उदास भाव से दूसरी तरफ मुँह फेरकर कहा—ससार मे किसका स्वार्थ कहाँ है, किस तरह समझूँगी बताइये?

राखाल ने व्याकुल होकर कहा—मैंने झूठी बात नही कही शारदा—

शारदा इस बार हँस पडी। वह हँसी स्निग्ध और मधुर थी। सुनिये, नयी माँ ने कहा है, जितने दिन पढाई खतम नही होती, मेरे लिए स्कूल के बोर्डिंग मे ही रहने की व्यवस्था कर जायँगे।

राखाल बोला—वही है अच्छी सुव्यवस्था।

शारदा का मुँह उदास हो उठा। अभियोग के सुर से उसने कहा—किंतु मुझे तो यह स्कूल फिस्कूल बिलकुल ही अच्छा नही लगता देवता।

क्या अच्छा लगता है बता दो।

शारदा मुँह नीचे किये निरुत्तर हो रही।

राखाल ने कहा—मोटी-मोटी किताबे पढकर थियोरोटिकल ज्ञान लाभ करने की अपेक्षा प्रैक्टिकल क्लास मे हाथ या कलम से काम सीखना तो खूब इन्टरेस्टिंग है, वह तुमको अच्छा लगना चाहिये।

शारदा ने आँखे झुकाये ही कहा—मुझे कुछ भी सीखना अच्छा नही लगता।

राखाल ने आश्चर्य मे पडकर कहा—क्या तुमको अच्छा लगता है शारदा?

विषाद भरे स्वर मे शारदा बोली—उसे बताने से लाभ नही है। आप सुन कर शायद मजाक करेगे।

राखाल ने कहा—शारदा, तुम्हारे जीवन के सुख-दु ख की बात लेकर भी व्यग्य मजाक करूँगा, इतना बडा पाखडी मै नही हूँ।

घवडाहट मे पडकर शारदा ने कहा—नही देवता, यह बात नही है। मुझे क्या अच्छा लगता है। मैं खुद ही समझ नही सकती। किंतु इतना कह सकती हूँ, निर्दिष्ट समय पर यत्र की भाँति स्कूल मे जाकर लिखना-पढना, शिल्प के काम मे, अथवा धात्री-विद्या सीखने की अपेक्षा घर मे रहकर घर-गृहस्थी के काम करना मुझे बहुत अधिक अच्छा लगता है। गृहस्थी को त्रुटिहीन श्रृखला से सजा बनाकर सजावट मे रखने मे मेरे उत्साह का अन्त नही है। इसके लिए मैं प्रात काल से रात्रि तक परिश्रम कर सकता हूँ। छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियाँ मेरे लिए सबसे अधिक आनन्द की सामग्री हैं। देख ही तो चुके हैं, पुराने मकान मे रहते समय, छोटे-छोटे बच्चे मेरे ही पास रहते थे, खेलते थे, सोते थे, गप्प करते थे, लिखते-पढते थे।

थोडी देर चुप रहकर लम्बी साँस छोडकर शारदा अपने हाथ से स्वजनो की सेवा करने मे कितनी तृप्ति है, कितना आनन्द है—इसे स्त्रियो के अतिरिक्त और कोई भी न समझेगा।

राखाल ने व्यथित होकर कहा—शारदा, तुमको अपनी गृहस्थी कहलाने लायक कुछ भी नही मिला है इसी कारण ससार की तरफ तुम्हारा इतना आकर्षण है।

शारदा ने कहा—शायद यही बात होगी। इसी कारण तो विनती करके कह रही हूँ देवता, आप ब्याह कर ले। गृहस्थ बन जाये। मैं आपकी गृहस्थी लेकर रहूँगी। आप दोनो को जीजान से सेवा यत्न करूँगी। अपने हाथ से इस प्रकार घर-द्वार-गृहस्थी सब सजाकर रखूँगी, देखियेगा लोग बडाई करते हैं या नही। इसके बाद बच्चे बच्चियो के पालन-पोषण का भार लूँगा अपने ऊपर यह लिखाई का काम, सुनना, शिशु पालन करना, इतना कष्ट उठाकर मैने सीखा है, यह क्या सचमुच ही अरपताल मे या लोगो के द्वार-द्वार पर नौकरी करते फिरने के लिए? ऐसा खयाल भी मत कीजियेगा।

राखाल आश्चर्य से अभिभूत होकर शारदा की बातो को सुन रहा था।

शारदा कहने लगी—स्कूल के इतने कड़े नियम मुझसे बिलकुल ही सहे नही जाते। तो भी, जोर लगाकर सीखा है क्या जानते हैं? गृहस्थी चलाने के लिए। मैं आपका व्याह कराऊँगी ही। खुद ही लड़की पसंद करूँगी। गृहस्थी बना डालूँगी पक्की। पालूँगी पोसूँगी बच्चों को—भगवान न करें—यदि गृहस्थी में कोई अभाव दुःख आ जाय, उसके लिए किसी के यहाँ जाकर हाथ पसारना न पडेगा, खुद ही उनको पूरा कर सकूँगी।

राखाल बोला—तुमने क्या इसी कल्पना को लेकर ही शिक्षा में प्रवेश किया है शारदा?

राखाल के मुँह की तरफ देखकर शारदा ने कहा—आपके रहते सचमुच ही क्या मैं अन्न के लिए दूसरे के दरवाजे पर हाथ पसार कर नौकरी करने के लिए निकल पड़ूँगी, आप सोचते हैं? किस दुःख से जाऊँगी? कुछ भी जरूरत नहीं है।

शारदा के कंठ की प्रगाढ़ता से राखाल के पास अविश्वास करने लायक कुछ भी नही रहा।

शारदा के चेहरे की तरफ पूर्ण दृष्टि से देखकर राखाल ने धीरे कंठ से कहा—शारदा, तुम क्या कहना चाहती हो—तुम्हारा सारा जीवन इसी तरह दूसरों की गृहस्थी मे ही खतम हो जायगी? अपनी गृहस्थी, अपना पति, अपनी संतान न पाने से जीवन मे संसार की साध क्या पूर्णतः सार्थक होती है?

शारदा ने मृदुस्वर मे कहा—इसको मैं आपके साथ तर्क करके समझा न सकूँगी देवता—मैं जान गयी हूँ, पति, गृहस्थी सतान स्त्रियो के जीवन मे सबसे वडी आकांक्षा की सामग्री है। जो स्त्री सचाई के साथ इनको प्यार करती है, वह कभी इनमे थोडी सी भी स्याही नहीं लगने दे सकती। कोई स्त्री भी नही चाहती कि, उसके अपने संतान के ललाट पर बाप-माँ के किसी कलक का दाग रहे। जिसलिए ही हो, और जिसके दोष से ही हो, इस वात को तो मैं किसी दिन भी भूल नही सकती कि, मेरे जीवन मे अशुचिका लग गया है। अपने पति-पुत्र को छोटा बनाकर खुद स्त्री बनूँगी, माँ बनूँगी—इतनी वडी स्वार्थपरायण मैं नही हूँ। भले ही न मिले मुझे पति, संतान, जिसको मैं हृदय से प्यार करती हूँ, उसके सतान क्या अपने संतान की अपेक्षा कम स्नेह के हैं। उसकी गृहस्थी क्या अपनी गृहस्थी से कम आनन्द की है?

राखाल निस्तब्ध होकर बैठा रहा।

बहुत देर के बाद शारदा ने धीरे-धीरे कहा—देवता, मैं बेवकूफ नही हूँ आप व्याह कीजिये। आप की बहू को मैं प्यार कर सकूँगी। मैं ईर्ष्या से घृणा करती हूँ। इसके सिवा सबसे वडी वात क्या है आप जानते हैं? वही तो मुझे सत्व ही देगी। अपनी गृहस्थी, अपना सतान—मेरे आनन्द के सभी अवलम्व तो उसी के हाथ से मैं पाऊँगी। जीवन की सच्ची सार्थकता तो उसी का दान है।

निरुत्तर राखाल एक ही दशा में चिन्ताच्छन्न होकर बैठा रहा। वहुत क्षण चुपचाप बीत जाने पर राखाल ने निस्तब्धता तोड कर मुँह ऊपर उठा कर अस्फुट कठ से कहा—तुम्हारे अनुरोध ने आज सचमुच ही मुझे अपने भविष्य के जीवन के सबध मे सोचने को बाध्य कर दिया शारदा! मैं विचार करके देखूँगा—आज जा रहा हूँ। नयी माँ के आने पर कहना, मैं आया था।

छब्बीस

तारक का विवाह निर्विघ्न समाप्त हो गया।

विमल वावू कलकत्ता आये हैं। सविता तैयार हो गयी है विमल वावू के साथ तीर्थभ्रमण करने को। कल वे लोग रवाना हो जायँगे। पुराना दरवान महादेव के अलावा विमल बाबू ने दासी और रसोईदारिन भी साथ ले जाने की व्यवस्था की है।

राखाल को बुलवा कर सविता ने उसके हाथ मे व्रजविहारी वावू की सील-मोहर वन्द गहने समेत वक्स को दे कर कहा—ये गहने रेणु के हैं। वह न लेना चाहे तो ससार के मातृहीना लडकियो मे इन्हे तुम वाँट देना राजू। इन सब को मैंने रोक रखा था, जिसके लिए उसी ने जबकि चरम दरिद्रता को अपने सिर पर उठा लिया, तो मैं इस वोझ को ढोकर क्यो मरूँ? डेढलाख रुपये की जो सम्पत्ति मेरे नाम थी—वह खरीदी गयी थी रेणु के ही बाप के कमाये हुए रुपये से। उस सम्पत्ति को रेणु के नाम ट्रान्सफर करके मैंने रजिस्ट्री कर दिया है। यह लो दस्तावेज और कागज-पत्र। वह यदि ग्रहण न करे, तो इस सम्पत्ति की जो व्यवस्था तुम अच्छी समझो, वही करना। यह हजार रुपये का कम्पनी का कागज और मेरा यह हार,

वाला, चूडी जो विवाह के समय मेरे बाप के दिये हुए हैं। इसको मैं तुम्हारी गृहस्थी संभालने के लिए जो आवेगी, अर्थात् अपनी 'बहू' को मैं दहेजरूप मे देकर जा रही हूँ। यह उसकी सास की आशीर्वादसामग्री है। लौटाना मत बेटा।

शारदा दूर खडी रह कर राखाल के मुँह की तरफ देखती हुई मुस्कुराने लगी।

राखाल ने आफत मे पड कर कहा—नयी मॉ, आपको अपने लडके की विद्या-बुद्धि की खबर अज्ञात नही है। इतना बडा भारी दायित्व आप मेरे ऊपर देकर क्यो जा रही हैं? मैं क्या इन सब की व्यवस्था कर सकूँगा? इससे तो अच्छा यही है कि आप तारक के यहॉ इन सबको रख जायँ। वह कानून-दॉ आदमी है। विषय सम्पत्ति के मामले मे वह तो अच्छा समझता है। उसके हाथ मे रहने से व्यवस्था हो सकती है।

सविता ने कहा—मुझे क्या तू निश्चिन्त होकर जाने न देगा राजू? उसके बाद भारी गले से वह बोली—जिस उद्देश्य से तुम्हारे काकाजी के हाथ से मैंने अपने हाथ से इन सब को लिया था, वह सार्थक नही हुआ। तुम्हारे काकाजी के डूबने वाले कारोबार के साथ ही उसी के नीचे यह भी डूब जाता तो अच्छा होता। शायद इससे अधिक सान्त्वना उसी से मुझे मिलता।

राखाल ने कुण्ठित होकर कहा—किंतु यह सब आप कुछ भी कहें नयी मॉ, मैं किंतु इन सब आर्थिक मामलो मे बिलकुल ही अनजान हूँ। मुझको देकर—

सविता ने धीर कठ से कहा—डरो मत राजू! तुम इस सबध मे जो ही व्यवस्था करोगे वही होगी, सुव्यवस्था और शुभव्यवस्था।

सविता वगैरह ने पहले ही यात्रा की द्वारका के लिए। वहाँ से बहुत से स्थानो मे घूमते-घूमते गुजरात, राजपूताना आदि भ्रमण करके आगरा जा पहुँचने पर विमल बाबू ने पूछा— मथुरा-वृन्दावन देखोगी सविता, यहाँ से बहुत निकट ही—

सविता ने कहा—श्रीकृष्ण का लीलाक्षेत्र का आभास मैंने देखा, द्वारका को देख लिया। मथुरा वृन्दावन भी बाकी क्यो रहेगा—चलो देख आवे।

मथुरा मे विमल बाबू के परिचित एक धनवान सेठ के प्रासाद मे वे लोग जा पहुँचे। सेठ जी कारोबार के सिलसिले मे विमल बाबू से विशेष परिचित हैं। अपने सुरम्य गेस्ट हाउस या अतिथि भवन मे विमल बाबू वगैरह को ठहरने का इन्तजाम तो उन्होने कर ही दिया, अपनी एक मोटरकार भी विमल बाबू को सदा व्यवहार के लिए छोड दी।

मथुरा से मोटर द्वारा वृन्दावन जाकर विमल बाबू ने कहा— सविता, ब्रजबाबू के साथ भेट करने चलेगी क्या?

सविता ने कहा—पागल हो गये हो। हम लोग देव-दर्शन करने आये हैं, दर्शन करके लौट चलेगे।

सारा दिन वृन्दावन के विभिन्न स्थानो मे घूम कर थके हुए विमल बाबू ने शाम को कहा—चलो, अब मथुरा लौट चले।

सविता ने कहा—मैंने सुना है, वृन्दावन मे गोविन्द जी की आरती बहुत सुन्दर होती है, आरती देख कर चलने से न होगा?

विमल बाबू ने कहा—आरती देख कर ही वहॉ चलेंगे। एक विस्तृत मैदान के पास पेड के नीचे मोटर रख कर वे लोग दरी बिछा कर विश्राम करने के लिए बैठ गये। महादेव दरवान विमल बाबू की चाय की सामग्री से भरा बेत का बक्स गाडी से उतार कर स्टोव जला कर पानी गरम करने लगा। सविता चाय नही पीती। किंतु अपने हाथ से चाय बनाती है। आलमूनियम की केतली से खौलता हुआ जल चीनीमिट्टी की प्याली मे ढाल कर, चीनी, चाय, दूध आदि सभी को महादेव ने सविता के सामने बढा दिया।

क्लात कठ से सविता ने कहा—महादेव, आज तुम ही चाय बनाओ। मै घूमते-घूमते थक गयी हूँ।

विमल बाबू ने उद्विग्न होकर कहा—तुम्हारी तबीयत ठीक नही है क्या? तो इस हालत मे आज मन्दिर में भीड मे जाने की जरूरत नही है।

सविता ने कहा—नही, ऐसी कोई भी बात नही हुई है, आरती देखने का जब दृढ़ संकल्प मैं कर चुकी तब बिना देखे वापस न जाऊँगी।

मैदान के छोर पर सूर्य अस्ताचल को उतर गये। गाढ़े लाल प्रकाश से नीला आकाश और हरा मैदान

लाल हो उठा। घोंसले मे जाने वाले पक्षियों के कल कोलाहल से वृन्दावन के पेड़ पौधे और कुज मुखरित हो उठे हैं। सविता स्तब्ध होकर मैदान के दूरस्थ छोर पर अन्यमनस्क दृष्टि रख कर बैठी हुई है। विमल वावू चुपचाप समाचार पत्र पढ रहे हैं। क्रमश. सध्या हो गया। अखबार पर से मुँह ऊपर उठा कर विमल वावू ने कहा—चलो, अव मन्दिर में चले। वाद मे जाने से भीड मे शायद तुमको घूसने में कष्ट हो सकता है।

सविना ने जाग उठने की भाँति चौंक कर देखा और कहा—चलो।

गाड़ी पर चढ़ कर वैठं जाने पर हठात् न मालूम क्या सोच कर उन्होंने कहा—देखो, कुछ देर वाद ही हम लोग मन्दिर मे जायँ तो क्या हर्ज है। आरती का घड़ी घटा पहले वजने लगे। भीड में ऐसा कौन कष्ट होगा?

विमल वावू ने प्रतिवाद नही किया।

गाडी के इस तरफ उस तरफ जरा घूमने के वाद ही गोविन्द जी के मन्दिर मे आरती के वाजे वज उठे। विमल वावू और उनके साथ के लोगो ने मन्दिर मे प्रवेश किया।

गोविन्द जी की आरती हो रही है। सविता देवमूर्ति के सामने खडी होकर आरती देख रही है किंतु उनकी दृष्टि मूर्ति के प्रति स्थिर नही है। आस पास चंचल है।

एकाएक दृष्टि पड़ गयी उसी वरामदे के एक कोने मे। व्रजवावू दोनो हाथ जोडे पलकहीन नेत्रों से आरती देख रहे हैं। ओठ धीरे-धीरे काँप रहे हैं, नाम जप रहे हैं संभवत.—

आरती के समाप्त हो जाने पर भीड कम हो गयी। विमल बाबू ने आगे वढकर व्रजवावू की पदधूलि ले ली। साँप मे काटे जाने वाले की तरह पीछे हट कर व्रजवावू वोल उठे—गोविन्द! गोविन्द! यह क्या। प्रभु के मन्दिर मे मुझको प्रणाम। महापाप से पापी तो हो गया।

विमल वावू घवराहट मे पड़ कर वोले—मैं जानता नही था कि मन्दिर मे प्रणाम न करना चाहिये। क्षमा कीजिये।

गोविन्द, गोविन्द, आप हमारे विमल वावू हैं न? चलिये, चलिये, आँगन मे उधर तुलसी कुज की तरफ चल कर वैठे।

विमल वावू ने कहा—चलिये। व्रजवावू देवमूर्ति के सामने साष्टाग प्रणाम करने के लिए लेट कर अपनी नाक कान मल कर शायद विमल वावू के प्रणाम जनित अपराध की ही क्षमायाचना करने लगे।

सविता ने स्थिर नेत्रो से भूपतित व्रजवावू की तरफ देखती हुई निस्पन्द की तरह खडी रही।

सुदीर्घ प्रणाम के अन्त मे उठकर व्रजवावू, सविता और विमल वावू के साथ मन्दिर के एक किनारे जा खडे हुए।

व्रजवावू के चेहरे मे परिवर्तन हो गया है। मुखमडल और मस्तक सफाचट घुटा हुआ है। माथे मे दूध की तरह सफेद शिखा गुच्छा के सिवा दूसरे केशो का चिह्नमात्र नहीं है। गले मे तुलसी-माला है। नाक और ललाट पर तिलक रेखा है। हाथ में हरिनाम की झोली है, शरीर पर नामावली है। गौर वर्ण लम्बा छरहरा शरीर धूप से तपे हुए हौवे के रंग का होकर वुढापे के भार भी से आगेकी ओर वहुत कुछ झुक गया है।

विमल वावू के कुशल प्रश्न के उत्तर मे भावगाढ कठ से व्रजवावू ने कहा—विमल वावू, गोविन्द ने इस दीनहीन पर वहुत कृपा की है, जो मनुष्य व्रजधाम मे आ गया है, व्रजरेणु जिसने शरीर पर मल लिया है, यमुना मे वहाकर श्यामकुण्ड, राधाकुण्ड और गोवर्धन पर्वत का दर्शन कर लिया है, उसको क्या फिर कही अकुशल रहती है? वृन्दावन मे सव ही कुशल है। इहलोक मे मेरी और कोई कामना नही है। यहाँ मैं कृष्णानन्द में विभोर होकर पडा हूँ।

सविता ने आगे वढकर कहा—राजू से मैंने सुना है, यहाँ शायद तुमने किसी वैष्णव वावा जी से दीक्षा ले ली है। सदा सर्वदा शायद उनको लेकर निमग्न रहते हो मझले मालिक?

हुटक-हुटक कर व्रजवावू ने कहा—कुछ अशो मे ऐसी ही वात है। क्या जानती हो नयी वहू, मेरे अन्तिम दिनो को गोविन्द ने अपने चरणों मे खींच लाकर वड़ी दया ही की है। यहाँ ससार के सभी दु:खताप सचमुच ही मैंने शात कर दिये हैं।

सविता ने स्तम्भित आश्चर्य से ब्रजबाबू की तरफ देखकर कहा--मझले मालिक, यह दशा तो तुम्हारी रेस में हार कर सर्वस्व खोकर मदिरा के नशे डूबे रहने की तरह है। इस आनन्द का दाम क्या है जानते हो?

मन्दिर के दूसरे छोर पर झाँझ करताल लिये कीर्तन मडली का एक दल गा रहा था--

प्रेमानन्द से डगमगाते हुए सुधा सागर मे डुबकी लगाकर भी तृप्ति का सचार नहीं होता।

कृष्ण प्राण, कृष्ण धन, कृष्ण तन-मन ।
कृष्ण ही सुखनिधि परम रतन।।
कुलशील, धर्म-कर्मलोकलज्जि-भय ।
देह गेह धन सम्पद और लोका लभ।।

मदिरा मदान्ध का मानो दर्टिका वसन है अथवा नही है, नही विवेचना। ब्रजबाबू की दोनो आँखो मे आँसू झरने लगे। निस्वन्न कट से उन्होने कहा--नयी बहू--यह मदिरा का नशा फिर न छूट जाय यही कामना करो।

सविता ने कठोर कठ से कहा--तुम्हारी लडकी? मेरी--रेणु? कौन है मेरी लडकी? सब, 'मै' 'मेरा' आदि अपनेपन का मोह मत रखो नयी बहू। यहाँ तो सब कुछ तुम ही तुम है। 'अपना' कहलाने का कुछ भी नही है। यही एकमात्र 'मैं , व्रजनन्दन 'श्रीकृष्ण ही यहाँ सब कुछ हैं। रेणु को उनके ही चरणो मे अर्पण कर दिया है। जितने दिन उसे अपनी कहकर सोचता रहा, चिन्ताओ से भटकता रहा। इस बार दीन दुनिया के जो मालिक हैं, उनके ही चरणो मे तुम्हारी रेणु को सौंपकर निश्चिन्त हो गया हूँ। वे जो व्यवस्था करेगे, किसी में शक्ति नही है उसे रद्द करने की। हम लोगो की ही बातों पर विचार करके देखो न। मनुष्य की व्यवस्था, मनुष्य की इच्छा, मनुष्य का मालिकाना क्या काम मे आया? आड मे से ही उस परम रसिक ने हंसकर जिस तरफ अगुली हिला दी, उसी तरफ उलट पडा पासा। कठपुतली नचाने वाले की पुतली हैं हम लोग। मनुष्य की अपनी कोई इच्छा ही चल नही सकती, एक मात्र उनकी इच्छा के सिवा।

सविता मानो कुछ जवाव देने जा रही थी, किसी ने पुकारा--वावूजी।

कठस्वर से चौंक कर सविता ने पीछे की ओर घूमकर देखा--रेणु है। मुँह सूख गया है। केश रूखे हैं, चेहरे पर दरिद्रता की रेखा सुस्पष्ट है। एक अधमैली छापदार वृन्दावनी साडी पहने है। उसके भी गले मे तुलसी की माला है--ललाट पर नासिका के अग्रभाग पर चदन का तिलक है।

सविता स्तम्भित दृष्टि से कन्या की तरफ देखकर पागल सी हो गयीं।

रेणु ने सविता की तरफ देखे विना ही पुकारा--वावूजी, घर चलो, रात होती जा रही है।

ब्रजवावू ने कुछ घवडाकर कहा--अपनी माँ को तुम नही पहचान सकी न रेणु?

सिर हिलाकर रेणु वोली--उनको देख तो लिया है। मन्दिर मे तो प्रणाम नही करना चाहिये।

माँ के मुँह की तरफ एक वार शात निर्लिप्त दृष्टिपात करके फिर ब्रजवावू की तरफ घूमकर वोली--चलो वावू जी। एकादशी का उपवास करके सारा दिन पडे हो, कव थोडा सा प्रसाद ग्रहण करोगे?

कन्या की आकृति देखकर सविता के हृदय मे जो आर्त्त क्रन्दन उठता जा रहा था, कन्या की वातचीत की भगीं से वह मानो और भी उमड उठा।

माता के प्रति कन्या का यहाँ पराये जैसा आचरण देखकर ब्रजवावू मन ही मन कुण्ठित होते जा रहे थे। शायद इसीलिए उन्होने सविता से कहा--नयी वहू, गोविन्द की कुटिया मे किसी दिन तुम सेवा के लिए आ सकती हो।

सविता रेणु के निर्लिप्त चेहरे की तरफ दृष्टिपात करके ब्रजबावू को जवाव दिया--नही मझले मालिक, तुम्हारे गोविन्द की कुटिया मे मेरी तरह महापापी के प्रवेश का उपाय नही है। जीभ काटकर ब्रजवावू ने कहा--गोविन्द। गोविन्द। दीनदयाल, दीनवन्धु, पतितपावन। वे तो हैं अशरण के शरण। नयी वहू--

उच्छ्वसित रुलाई को पूरे प्राण से दमन करते-करते सविता ने कहा- केवल तोते की तरह मुँह से ही यह सब बोल गये मझले मालिक। तुम लोगो का धर्म, तुम लोगो ने जैसा तैयार किया है, उसे तुम लोग अपनी आँखो से देख नही रहे हो इसीलिए रक्षा है। जिस धर्म में क्षमा नही है, वह धर्म अधर्म से कितना ऊँचा है? इतना कहकर सविता तेज कदमो से मन्दिर के बाहर की तरफ बढ़ गयी।

विमूढ ब्रजबाबू के सामने जाकर विमल बाबू ने कहा--आपके साथ मुझे कुछ बाते करनी थीं। कब आपको सुविधा होगी जान लेने पर--ब्रजबाबू ने कहा--जब आपकी सुविधा होगी तभी।

विमल बाबू ने कहा--अच्छी बात है, कल दोपहर को मै आऊँगा। आपका मकान--

इस मन्दिर से निकल कर बाये हाथ का रास्ता पकड़ कर कुछ आगे जाकर दायी तरफ की गली मे। घनश्यामदास बाबा जी का कुंज कहने से सभी दिखा सकेगे।

रेणु ने कहा--बाबू जी, कुंज तो श्री गुरु महाराज के कुंज मे दिन रात का अखण्ड नाम कीर्तन और वैष्णव सेवा है। कल सारा दिन तो हम लोग वहाँ ही रहेगे।

ब्रजबाबू ने घबड़ा कर कहा--ठीक तुमने याद दिलायी है बेटी। विमल बाबू, कल मुझे माफ करना पड़ेगा, कल मैं दिनभर अपने गुरुदेव श्री श्री वैकुण्ठदास बाबा जी के कुंज मे रहूँगा। आपको परसों सवेरे आने मे असुविधा होगी क्या?

विमल बाबू ने कहा--कुछ भी नहीं। तो यही ठीक है परसो सबरे ही मैं आपके पास आऊँगा। नमस्कार।

ब्रजबाबू ने कहा--गोविन्द। गोविन्द।

मोटर पर सवार होकर ही आसन पर थका हुआ शरीर टेक कर सविता ने कहा--अब विभिन्न स्थानों में घूमना अच्छा नही लगता। अब तो मुझे विश्राम चाहिये दयामय।

आश्चर्य मे पडे हुए विमल बाबू ने सविता के मुँह की तरफ देखकर कहा--वृन्दावन में रहने का निश्चय तुमने कर लिया है क्या?

नही-नही-नही। यहाँ मैं एक दण्ड भी टिक न सकूँगी। कंठस्वर ने जरा जोर लगाकर ही बोली--मुझे सिंगापुर ले चलो।

अत्यन्त आश्चर्य मे पडकर विमल बाबू ने कहा--यह क्या?

हाँ--कल सवेरे ही यात्रा की सारी व्यवस्था कर डालो। एक दिन भी अब देर नही--सविता के कंठ मे व्याकुल विनती ध्वनित हो उठी।

विमल बाबू ने कहा--ऐसी अधीर मत हो जाओ सविता। कल तो जाना हो नहीं सकता। यह रेल का रास्ता नही है, जहाज का रास्ता है। कलकत्ता होकर जाना पडेगा। इसके सिवा--ब्रजबाबू को बात दे आया हूँ, परसो सवेरे उनके साथ अवश्य भेंट करूँगा। इसलिए कल सारा दिन प्रतीक्षा किये बिना तो उपाय नही है। अवश्य ही, परसो रात के ही ट्रेन से हम लोग मथुरा छोडकर रवाना हो सकेगे।

सविता ने बालिका की तरह व्याकुल होकर कहा--नही, मैं नही, सकूँगी जी। मेरा दम घुटता जा रहा है यहाँ। इस देश से तुम मुझे बहुत दूर देश में ले चलो। बहुत दूर--जहाँ रीति, नीति, समाज, मनुष्य सभी दूसरे ही प्रकार के हैं। मैं पोछ डालूँगी अपने सारे अतीत को! उसको इस तरह अपने जीवन को दखल करके रहने अब न दूँगी मैं।

विमल बाबू ने कोई उत्तर नही दिया। सविता के मन की अवस्था देखकर वे चुप हो रहे।

दूसरे दिन प्रात.काल विमल बाबू ने नीद से जाग कर देखा--सविता के सोने के कमरे का दरवाजा अभी तक बन्द है। विमल बाबू बराबर ही कुछ देर से उठते हैं। किंतु सविता को भोर मे उठने का अभ्यास है। इतनी देर तक दिन चढ आने पर भी सविता के सोने के कमरे का दरवाजा बन्द देख कर वे शंकित हो गये। दरवाजे के सामने खडे होकर किवाड पर धक्का दूँ या नही, यही वे सोच रहे थे, ऐसे ही समय मे दरवाजा खोल कर सविता बाहर निकल आयी। दोनो आँखो का रग लाल था, रात भर जागने की थकावट और कालिमा आँखो पर और मुँह पर निविड रेखाओ से फूट उठी है। मरणासन्न रोगी को लेकर सुदीर्घ रात्रि मे मृत्यु के साथ जूझने के बाद प्रभात में नारी के मुँह की आकृति जैसी बदल जाती है। एक ही रात्रि मे सविता के मुँह पर मानो वही 'छवि' फूट उठी है।

विमल बाबू ने एक बार सविता की तरफ देखकर अपनी व्यथित दृष्टि को दूसरी तरफ फेर लिया। कुछ भी प्रश्न नहीं किया।

सविता ने कुछ लज्जित होकर कहा—बहुत दिन चढ आया है देखती हूँ। अवश्य ही तुमको चाय नही मिली है। कपडे फीच क्रर आकर मैं अभी तुरत तैयार कर देती हूँ।

विमल वाबू ने कहा—आज रसोईयाँ महाराज ही चाय वना दें तो क्या हर्ज है सविता।

सविता ने कहा—नहीं, नही, वह अच्छी चाय वना नही सकता, मैं कोई अधिक देर न करूँगी।

इसके वाद खुद ही कैफियत के रुख से सहज स्वर मे उन्होंने कहा—रात को अच्छी तरह नीद नहीं आयी। कल मिजाज ऐसा विगड़ गया था, माथे में दर्द हो जाने से रात की नीद बीच से मिट्टी ही हो गयी थी। जाऊँ झटपट स्नान कर आऊँ।

सविता गमछा हाथ मे लेकर स्नान के कमरे की तरफ चली गयी। विमल बाबू अन्यमनस्क चित्त से सोचने लगे, कितनी धीर हताशा और मर्म वेदना से मनुष्य का चेहरा एक रात मे ही इतना म्लान होकर सूख जा सकता है।

चाय ढालते-ढालते सविता ने अत्यन्त सहजभाव से कहा—कल बहुत अच्छी तरह सोच विचार करके मैंने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया है। समझ गये?

विमल वाबू ने कहा—किस वात का।

वही उन लोगों के संवध मे।

यह अप्रकट सर्वनाम किसके उद्देश्य से उच्चारित हुआ विमल वावू समझ गये। कितनी गभीर वेदना के ही फलस्वरूप अतिप्रिय नाम आज सर्वनाम मे रूपान्तरित हो गया है यह भी उनके लिए अज्ञात नही रहा। बोले—तुमने क्या निश्चय किया सविता?

सिगापुर जाने का ही निश्चय किया।

और कुछ दिन तीर्थ भ्रमण करते हुए घूमा जाय—उसके बाद भी यदि जाने की इच्छा हो तो जाना। कैसा होगा? नहीं, अव तीर्थ में नही। मनुष्य के हाथ के वने इस पुतली के खेल वाले तीर्थ मे घूम-घूम कर केवल घूमने के ही नशे मे थोडा सा समय कट जाता है। हृदय की प्रकाण्ड जिज्ञासा का उत्तर नही मिलता। खेल मे और किसी का भी मन क्यो न भूल जाय, जो सत्य चाहता है उसका मन नही भूलता। इस बार विश्राम चाहिये।

विमल वावू ने जरा इधर-उधर करके कहा—किंतु विश्राम कीआशा से जहाँ जाना चाहती हो, वहाँ जाकर यदि वह न मिले?

इसका भय मत करो। इस वार मुझसे भूल न होगी। तुम्हारे हाथ से भगवान मेरे जीवन के दिनान्त में जो सामग्री मेरे लिए भेज दी है, वह साधारण नही है। डण्ठल से ही जो फूल फटकर गिर पडा है जमीन पर वह फूल फिर कभी डाली के वधन में लौट नही आता। मृग तृष्णा के पीछे दौडता फिरना तो केवल दुःख ही वढा देना है।—इस वार इस वात को मैं समझ गयी हूँ।

वहुत समय निस्तव्धता मे वीत गया। विमल वावू ने पूछा—तो टेलीग्राम कर दूँ, सिगापुर के जहाज में दो केविन रिजर्व करने के लिए।

सविता ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति प्रकट की।

दूसरे दिन प्रात काल विमल वावू मथुरा से मोटर द्वारा वृन्दावन के लिए रवाना हो गये, सविता को उन्होंने कहा—तुमको व्रजवावू ने अपने मकान पर जाने का निमत्रण दिया था। घूम आओ न?

सविता ने असम्मति प्रकट की। विमल वावू अकेले ही वाहर चले गये। वृन्दावन मे व्रजवावू का ठिकाना ढूँढकर डेरे पर पहुँच कर उन्होंने देखा, रेणु पिछली रात मे ही हैजे की वीमारी से आक्रान्त है। चिकित्सा और सुश्रूषा की उचित व्यवस्था कुछ भी नही हुई है। रोगी को हरिनाम सकीर्तन सुनाया जा रहा है। व्रजवावू ठाकुरघर मे धरना देकर पडे हुए हैं। वीच-वीच मे उठ कर आते हैं और मुमुर्षू कन्या के ओठो पर थोडा-थोडा चरणामृत डाल देते है और फिर व्याकुल चित्त से दौडकर चले जाते है और मूर्ति के सामने गिर पडते हैं। अपने गुरुदेव वावा ठाकुरदास जी के कुज मे खवर भेज देने से उन्होंने आश्रम की एक वैष्णवी सेवादासी को रोगिनी की सुश्रूषा के लिए भेज दिया है। वह है मथुरा जिले की युवती। वगला

भाषा वह अच्छी तरह समझ नही सकती। सुश्रूषा के संबध मे विशेष जानकारी नही है। अशक्त रोगी को प्यास लगने पर जल देती है और बैकुण्ठदास बाबा जी की दी हुई कविराजी बटिका खिलाती है और ठाकुर जी का चरणामृत पिलाती है। रोगी की शय्या और उसके कपडो मे उपयुक्त सफाई का अभाव विमल बाबू की दृष्टि मे पड़ गया।

यह हालत देखकर विमल बाबू शीघ्र सविता को लाने के लिए मथुरा लौट गये। रेणु की अवस्था आशंकाजनक है यह बात वे समझ गये थे। खबर पाकर सविता मानो पत्थर बन गयी।

विमल बाबू उनको साथ लेकर जरा भी देर न करके पुन. वृन्दावन को दौड पडे।

मोटर पर बैठी हुई सविता के मुँह की तरफ उस समय देखना कठिन था। उसके अन्दर मानो एक विराट आँधी स्तब्ध हो रही है।

बहुत देर बाद जल मे डूबते हुए व्यक्ति की तरह छटपटा कर रुँधी साँस मे एक बार सविता बोल उठी—उ., गाडी इतनी धीमी चाल मे क्यो चल रही है? मेरी साँस तो रुकती जा रही है।

विमल बाबू के दो चार समयोपयोगी बात कहने पर भी वे सविता के कानों तक नही पहुँची। वे अकस्मात् बोल उठी—दयामय, तुम लोग तो अनेक देशो के अनेक इतिहास पढ चुके हो। माँ ही अपनी संतान की दुर्गति का कारण हो गयी, ऐसा क्या तुम कही पढ चुके हो क्या—

विमल बाबू निरुत्तर ही रहे।

रास्ते मे एक स्थान पर एक कुएँ के सामने मोटर रुक गयी, रेडियेटर मे जल भर लेने के लिए। रास्ते के पास कुछ दूरी पर किसानों की झोपडियाँ थी जिनसे बालक कंठों की कातर क्रन्दन ध्वनि आ रही थी।

सविता अचानक भयकर रूप से सिहर उठी। उन्होने व्याकुल कंठ से पूछा—अरे, क्या हो गया है उन लोगो को? यह तो रोने की आवाज है—नही? सुन रहे हो क्या?

विमल बाबू सविता की मानसिक अवस्था समझ कर चिन्तित हो गये, बोले—वह कुछ भी नही है। छोटे बच्चे यो ही रो रहे हैं शायद। किंतु तुम यदि ऐसी निर्बल हो जाओगी सविता, तो किस तरह वहाँ रोगी की सुश्रूषा का दायित्व लोगी?

सविता ने अत्यन्त घबडा कर कहा—नही, नही, मैं जरा भी घबड़ाहट मे नही हूँ। जो कुछ भी हुई हूँ, वहाँ जाने पर एक बार छाती मे पा जाने पर मेरा सब ठीक हो जायगा। इन पन्द्रह वर्षो से मेरी छाती का भीतरी भाग खाली हो गया तो। भले ही वह मेरे ऊपर क्रोध करे, घृणा करे। करने की तो बात ही है। चाहे जितनी ही भूल मैं क्यो न कर डाली हो तो भी मैं हूँ उसकी माँ। इसको क्या वह न समझेगी? अवश्य ही समझेगी, देख लेना। वह उसका क्रोध नही है, घृणा नही है, माँ के ऊपर अभिमान है। मेरी लड़की तो बचपन से ही बहुत अभिमानिनी है।

विमल बाबू लम्बी साँस दबाकर दूसरी तरफ ताकते रहे।

यथासंभव तेज गति से वे लोग वृन्दावन मे ब्रजबाबू के डेरे पर जा पहुँचे।

मकान के सामने रस्सी की खटिया और गेरुआधारी वैष्णवों का दल देख कर विमल बाबू शंकित नेत्रो से सविता की तरफ देखने लगे। स्थिर धीर मुख पर अब वह चंचलता और उद्वेग व्याकुलता का लेशमात्र नही है। वहाँ गहरी विषाद भरी आभा साथ ही अत्यन्त कठिन यवनिका उतर आयी है। विमल बाबू चौंक पडे। उनको याद आ गया, सर्वप्रथम जिस दिन उन्होने सविता को देखा था, उस दिन सविता के मुँह पर इसी तरह आश्चर्य कठिन फिर भी निगूढ विषाद व्यजक छाया उनको दिखाई पड़ी थी।

सविता ने जरा भी घबराहट प्रकट नही की। मोटर से उतर कर मकान मे चली गयी। सद्य शोकाहल ब्रजबाबू ने अश्रुमग्न कठ से कहा—तुम आ गयी नयी बहू! ये लोग घबडा गये हैं रेणु को ले जाने के लिए। मैं कहता हूँ, यह नही होगा। जिसका धन है वह आ जाय, उसके बाद तुम लोगो की जैसी खुशी हो करो। तुम्हारी गच्छित सामग्री को मैं रख नही सका। मैंने उसे खो दिया—मुझे माफ कर सकोगी क्या?

सविता ने बात नही कही। कापते हुए ओठो को जी जान से दाँतो से दबाकर निर्वाक् चेहरे से गदे फर्श के एक तरफ बिछौने की ओर ताकने लगी। भूमितल पर मलिन शय्या पर वस्त्रो से आवृत निस्पन्द शीतल शरीर पडा हुआ है। आप-पास चाय के लोटे, चरणामृत के बर्तन, कविराजी बटिकाएँ, खल-लोढी आदि इधर-उधर बिखरे पडे हैं।

सविता ने अग्रसर होकर कांपते हुए हाथ से मृतशरीर के मुँह पर से मलिन वस्त्र उठा लिया। अत्यन्त शीर्ण, बदरंग रक्त लेशहीन मुख कालिमा लिप्त आँखें गभीर भाव से फँस गयी हैं। मुँह और गले की हड्डियाँ ऊपर उठ आयी हैं। तेल हीन रूखे केश गरदन के नीचे ढेर होकर जमा हो गये हैं। स्नेहमयी जननी की आँखो में मानो उस मुँह को देखने से विश्व के गंभीरतम दु.ख और वेदना की गहरी छाया सुस्पष्ट हो उठी।

मृत्यु मलिन मुँह की तरफ बहुत देर तक अश्रुहीन पलकहीन नेत्रो से देख कर सविता ने झुक कर कन्या के तुषार शीतल ललाट पर गंभीर चुम्बन अंकित कर दिया।

मुर्दा ढोने वाले पास आ गये तो वे आप ही एक तरफ हट गयीं। किंतु वृद्ध ब्रजबाबू अपने सारे जीवन की सयम साधना और भगवद् ज्ञान भूल कर, आज शिशु की भाँति रोते हुए जमीन पर लोट गये। बेटी, अपने इस बूढ़े बाप को किसके पास रख कर तू जा रही है—

कई दिन बीत चुके हैं। दुर्घटना का समाचार पाकर कलकत्ते से राजू आ गया है।

तार मिल गया है कि ब्रजबाबू की छोटी पत्नी अर्थात् रेणु की विमाता आवेगी। सभवत. ब्रजबाबू का भार लेने के लिए ही वे आ रही हैं, ऐसा ही सब लोगो को अनुमान है।

इन्ही थोडे दिनों मे सविता के शरीर में बुढ़ापे के चिह्न सुस्पष्ट हो उठे हैं। आँखो पर और चेहरे पर अनिद्रा और गभीर शोक की गहरी स्याही छा गयी है। सूखे ओठों पर लावण्य का लेशमात्र नही है। मुँह का भाव फीका हो गया है।

शोकजीर्ण ब्रजबाबू की सेवा का सब भार सविता ने अपने हाथ मे लेकर दिन-रात उस काम मे ही अपने को निमग्न कर दिया है।

कमरे की फर्श पर बैठी हुई सविता सूप मे धान का लावा बीन रही थी ब्रजबाबू के रात्रिकालीन भोजन के लिए। पहिनी हुई साडी अत्यन्त गंदी थी, जगह-जगह पर तेल, घी, स्याही, और कीचड के दाग लगे हुए हैं। माथे की माग उलटी-सीधी, टेढ़ी-मेढ़ी हो गयी थी, रूखे बालो में जहाँ-तहाँ लटें बँध गयी हैं।

विमल बाबू आकर खडे हो गये।

सविता ने अपना मुँह ऊपर उठा कर कहा—तुम और कितने दिन यहाँ रहोगे?

विमल बाबू ने कहा—जितने दिन रहने को तुम कहो।

सविता ने कहा—छोटी मालकिन आज आ रही हैं। शायद उनके आने के पहले ही मेरा यहाँ से चला जाना उचित है। क्या कहते हो?

विमल बाबू ने कहा—इसको तुम स्वय विचार करके देख लो।

सविता ने कहा—किंतु मैं तो समझ रही हूँ, वे लोग इनको शांति से रहने न देंगे। इनको कलकत्ता खीच ले जाने के ही मतलब से वे लोग यहाँ आ रहे हैं।

विमल बाबू ने कहा—इसमे नुकसान क्या है?

सविता ने सिर हिलाकर कहा—यह नही हो सकता। इस असहाय, असमर्थ, रोग-शोक से जीर्ण मनुष्य को इनके अन्त समय के आश्रय वृन्दावन से खीच ले जाने की तरह निष्ठुरता और कुछ नही हो सकती। हृदय का खिचाव रहता तो छोटी मालकिन यहाँ ही रह कर पति की सेवा करती।

विमल बाबू चुप हो रहे।

सविता ने कहा—इस गर्द, गदगी से भरी दशा मे तुमको शायद खूब ही कष्ट हो रहा है। तुम लौट जाओ। मैं यही रह जाती हूँ।

विमल बाबू ने कहा—अच्छा।

विमल बाबू जा रहे थे, पीछे से सविता ने पुकारा—सुनो।

विमल बाबू लौटे तो सविता ने उनकी तरफ वेदना विह्वल दृष्टि उठा कर कहा—एक बात का उत्तर मुझे दे सकोगे?

विमल बाबू ने कहा—पूछो।

क्या जन्म-जन्मान्तर तक मुझे इस क्षमाहीन ग्लानि का बोझा लादे फिरना पडेगा? सविता का गला

रुँध गया। एक पल रुककर बोली—लेकिन रेणु ने बडी होकर एक दिन मुझे माँ कहकर पुकारा था। मेरी सेवा-आदर किया था। क्या उससे भी मेरी कालिख नही धुली?

तुम्हारा मन ही इसका ठीक-ठीक उत्तर देगा, सविता।

—और एक बात है। मनुष्य के भीतर का मुख्य सहारा जब इस तरह टूट जाता है तब भी मनुष्य किस तरह क्या लेकर जीता रहता हैं? जानते हो?

मुझे लगता है तुमने जो खोया है उसे संसार के अभागो के बीच, दीन-दुखियो के बीच पा लोगी।

सविता ने जो कहा था, वही हुआ। छोटी बहू अपने एक बहनोई को साथ लेकर ब्रजबाबू को कलकत्ता ले जाने के लिए आयी। ब्रजबाबू के कुछ कहने के पहले ही सविता ने कहा—देह और मन की इस हालत मे इनका कलकत्ता लौटना सभव नही है। जीवन के अंतिम दु.ख भरे दिन यहाँ फिर भी कुछ शांति से कट जायेगे।

छोटी बहू ने कहा—यहाँ तो एक आदमी बिना इलाज के प्राण गवाँ बैठा। तबीयत खराब होने पर इन्हे देखेगा कौन? कौन सेवा करेगा? फिर लोग मुझे क्या कहेगे?

सविता ने कहा—सेवा के लिए तुम स्वय यहाँ रह सकती हो। इनको खीच ले जाना ठीक नही होगा।

छोटी बहू ने कहा—आपको मैं पहचान नही पा रही हूँ।

सविता ने कहा—मैं तुम्हारे ससुराल की हूँ, रिश्तेदार हूँ। तुमने मुझे कभी देखा नहीं तब पहचानोगी कैसे?

छोटी बहू बुरे स्वभाव की नही है। थोड़ी-सी निर्दोष, सीधी सादी और आराम तलब है। बारीकी से कुछ समझ नहीं सकती। विचार नही कर सकती। बोली—वृन्दावन मे रहूँ, दादा की इच्छा नहीं है। बडी मुश्किल से उनके हाथ-पैर जोड़कर कुछ दिनो के लिए आ पायी हूँ। इनको ले जाने मे मुझे सुविधा रहेगी।

सविता ने कहा—यह मैं जानती हूँ। लेकिन यह बात इनके लिए असुविधा की बात होगी।

छोटी बहू ने कहा—अगर मेरे साथ न जायेगे तो इन्हे देखे सुनेगा कौन? मुझे तो कल ही लौटना होगा।

सविता ने कहा—जब तुम लोग इनके अपने नही थे, इनको जानते-पहचानते नहीं थे तब जो आदमी इनके देखने-सुनने का भार लिए रहता था, उसी ने इन्हे देखने-सुनने का भार अब भी ले रखा है। तुम अपने दादा से कह देना।

छोटी बहू ने चकित भाव से पूछा—वह कौन है?

सविता ने कहा—'तुम पहचान नही सकोगी, बहन? अपने दादा से कहना, वे पहचान जायेगे।

छोटी बहू अपने बहनोई के साथ वापस लौट गयी। विमल बाबू भी सिंगापुर जाने की तैयारी करने लगे।

यात्रा के समय सविता ने आकर उनको प्रणाम किया। शोक से जीर्ण सविता की ओर देखकर विमल बाबू ने अस्पष्ट स्वर मे शुभकामना प्रकट की, जो सविता की समझ मे नही आयी। अपराधी की तरह बोली—तुम मुझे गलत मत समझना। जीवन मे बार-बार आश्रय-भ्रष्ट होना ही मेरे भाग्य मे लिखा है।

विमल बाबू की लाल मोटर वृन्दावन की सड़को की धूल उडाती हुई सविता की नजरो से ओझल हो गयी। स्तब्ध खड़ी सविता के रक्तहीन चेहरे की ओर देखकर डरे हुए स्वर मे राखाल ने पुकारा—माँ, नयी माँ।

राखाल की पुकार पर उसकी ओर देखती हुई सविता बोली—राजू, मेरी रेणु ने जब मुझे क्षमा नहीं किया तब मैं जान गयी हूँ कि ससार मे अब मुझे कोई क्षमा नही करेगा।

इस घटना के एक माह बाद अदन के बन्दरगाह पोस्ट आफिस की मोहर लगा एक पत्र सविता के नाम वृन्दावन आया। विमल बाबू ने उस पत्र मे लिखा था—

रेणु की माँ,

तुम्हारा देश-भ्रमण समाप्त हो गया। मैं पृथ्वी-भ्रमण के लिए जा रहा हूँ। तुम्हारे प्रति बिन्दु मात्र दु ख या क्षोभ हृदय मे है, ऐसा सदेह मत करना। अपने सारे जीवन मे, वृहद व्यक्ति के न लगे रहकर

वर्तमान जीवन का यह स्वल्प विस्तार मानो मुझे संकुचित कर रहा है। इसलिए इस यात्रा पर निकला हूँ।

मेरा हृदय साक्षी है कि तुम्हारे साथ मेरे परिचय का मूल्य असामान्य है। लेकिन जो पुरुष के जीवन को बाहर से यथेष्ट विस्तृत, उन्नत और उन्मुक्त नही बना सकता, वह पुरुषों के लिए कल्याणकारी नही है। मैंने केवल धन और ऐश्वर्य पाया है। पथिक के रूप में निरन्तर चलते-चलते ही मेरी किशोरावस्था और जवानी व्यतीत हुई है। आज प्रौढ़ावस्था भी समाप्त हो रही है। जीवन की इस उदास बेला में तुम्हारे निकट घर के आनन्द की उपलब्धि हुई। उससे मुझे असीम तृप्ति मिली। इसके लिए मैं सच्चे मन से आभार प्रकट करता हूँ।

तुम्हारे प्रति गहरी सहानुभूति और असीम श्रद्धा अपने हृदय मे लेकर तुमसे बहुत दूर चला जा रहा हूँ। यही विश्वास रह गया है कि आज इस यात्री की जो नौका किनारो से गुप्त सागर मे बह चली है उसे किनारे लगाने का लगर तुम ही हो।

जिस दिन, जब कभी, किसी भी कारण तुम्हे मेरी आवश्यकता हो, टामस बुक कम्पनी द्वारा तार कर देना। जीवित रहने पर जहाँ कही भी रहूँगा, वहाँ से हवाई जहाज से फौरन आ जाऊँगा। मैं यह भी जानता हूँ कि एक ऐसा व्यक्ति इस पृथ्वी पर रहा जो अन्तिम विदा का दिन आने पर सारी बाधाओं की परवाह न करके मेरे पास अवश्य पहुँच जायगा। यह जानना ही क्या अस्ताचल की ओर बढ़ते जीवन के लिए काफी नही है?

श्रीकान्त–४

एक

अभी तक तो जीवन उपग्रह की तरह ही बीता। जिसे केंद्र मानकर चक्कर लगाता रहा हूँ, न तो उसके पास तक पहुँचने का अधिकार मिला और न उससे दूर जाने की इजाजत ही मिली। अधीन नहीं हूँ, पर स्वयं को स्वाधीन कहने की शक्ति भी नही है मुझ में। काशी से वापसी के दौरान ट्रेन में बैठे-बैठे बार-बार यही सोचता रहा। सोचता रहा कि मेरे ही भाग्य मे बार-बार क्यो घटता है ऐसा। मरते दमतक अपना कहने लायक किसी को नही पा सकूँगा क्या? पूरा जीवन क्या इसी तरह काट दूँगा? बचपन की याद आई· दूसरे की इच्छा से, दूसरे के घर मे साल-दर-साल रहकर शरीर को किशोरावस्था से जवानी की ओर बढाता गया, किंतु मन को पता नहीं किस रसातल की ओर तडियाता रहा। आज बार-बार पुकारने पर भी कोई आहट नही मिलती उस विदा हुए मन की, यद्यपि किसी क्षीण कठ का अनुरणन कदाचित् कान में आ लगता है, किंतु अपने बूते नि.संशय होकर उसे पहचान नही पाता—विश्वास करते हुए डर लगता है।

यहाँ यह समझकर ही आया हूँ कि आज मेरे जीवन मे राजलक्ष्मी मर चुकी है। विसर्जित प्रतिमा के शेष चिह्न तक को नदी किनारे खडे होकर अपनी नजर से देखकर लौटा हूँ—कोई भी ऐसा सूत्र बाकी छोड़कर नही आया हूँ जिससे आशा करूँ, कल्पना करूँ, धोखा दूँ अपने आप को। उस तरफ सब कुछ शेष हो चुका है, निश्चित हो गया हूँ, किंतु यह शेष कितना शेष है, यह किससे कहूँ—और कहूँ ही क्यो?

लेकिन यह तो कुछ ही दिनो की बात है। कुमार साहब के साथ शिकार पर चला गया,—संयोग से पियारी का गाना सुनने के लिए बैठ गया, उसपे भाग्य को कुछ ऐसा मिल गया जो जितना ही आकस्मिक था उतना ही अपरिसीम। न तो अपने गुण से पाया न ही अपने दोष से गवाया, तथापि आज स्वीकार करना पडा कि उसे मैंने खो दिया—क्षति ही मेरे ससार से जुडी रही। चल रहा हूँ कलकत्ते, वासना एक दिन फिर वर्मा पहुँचा देगी। किंतु यह तो जैसे जुआरी का घर लौटना है। घर की छवि अस्पष्ट है, अप्रकृत है—केवल पथ ही सत्य है। ऐसा लगता है, जैसे इस पथ पर चलने का कोई अत नही है।

ओ! यह तो श्रीकात है।

अभी तक यह ख्याल ही नही था कि गाडी एक स्टेशन पर रुकी है। अब देखता हूँ कि मेरे गाँव के ठाकुर दा (बाबा), रागा दीदी और सत्रह-अठारह साल की एक लड़की, तीनो सिर और कधे पर गठरी-पोटरी लिए प्लेटफार्म पर दौडते-भागते खिडकी के सामने आकर रुक गये।

ठाकुर दा बोले, 'उफ्, कैसी भीड है! एक सूई जाने की जगह नही, यहाँ वे तीन-तीन आदमी हैं। तुम्हारा डिब्बा तो काफी खाली है—इसी मे चढ आवे?

'आ जाइए,' कहकर दरवाजा खोल दिया। तीनो हाफते-हांफते डिब्बे के अंदर आ गए और जितना सामान था, सब नीचे रख दिया। ठाकुर दा ने कहा, 'सभवत अधिक किराए का डिब्बा है यह, जुर्माना तो नही देना पडेगा?'

नहीं' मैंने कहा, 'मैं गार्ड से कह आता हूँ।'

गार्ड को बताकर, अपना कर्तव्य पूरा कर जब मैं वापस आया तब वे लोग निश्चिन्त होकर आराम से बैठे थे। गाडी के चल देने पर राशा दीदी ने मुझपर नजर डाली और चौंककर कहा, 'तुम्हारा यह शरीर कैसा हो गया है श्रीकांत? यह मुँह सूखकर रस्सी जैसा हो गया है, थे कहाँ इतने दिन? खैर, तुम ठीक-ठाक तो हो? जब से गये तब से एक चिट्ठी तक नहीं भेजी! घरवाले सभी सोच-फिक्र से मरे जा रहे हैं।

इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर की आशा कोई नहीं करता, कोई बुरा भी नहीं मानता उत्तर न मिलने पर।

ठाकुर दा ने बताया कि वे तीर्थ करने के लिए गया धाम आये थे, और यह लडकी उनकी बडी साली की पोती है—बाप हजार रुपए गिन देने के लिए तैयार है, फिर भी अभी तक कोई योग्य पात्र नहीं मिला। मानती ही न थी इसलिए साथ लाना पडा। पुटू, पेडे की हाण्डी तो खोल बेटी—क्यों जी, पूछता हूँ कि दही का बर्तन भूल तो नहीं आई?—हां तो पत्ते पर रख दो दो-चार पेडे, थोडा दही—ऐसा दही कभी तुमने खाया न होगा भैया, शपथ खाकर कह सकता हूँ। ... नहीं नहीं, लुटिया के पानी से हाथ धो ले पहले। पुटू, किसी गैरे-गैरे को तो दे नहीं रही है—ऐसे लोगों को किस तरह देना चाहिए यह सीख ले।

पुटू ने आदेश के अनुसार यत्नपूर्वक कर्तव्य का पालन किया। इस प्रकार ट्रेन में बिना किसी सुअवसर के, बिना मांगे ही, दही-पेडे हाथ लग गये। खाते-खाते सोचने लगा, रेल में ही भाग्य में सारी अनहोनियां हुआ करती हैं, इसलिए इस गाडी में पुटू के लिए कहीं मैं ही हजार रुपए मूल्य का पात्र न चुन लिया जाऊं। इन लोगों को यह खबर पहली बार ही मिल गई थी कि बर्मा में मैं अच्छी नौकरी करने लगा हूँ।

राशा दीदी बहुत अधिक स्नेह बरसाने लगी मुझपर, और अपने आतरिक ज्ञान की बदौलत पुटू भी घंटे भर के अंदर ही घुल-मिल-सी गयी मुझ से, आखिर मैं कोई पराया तो था नहीं।

लडकी अच्छी थी, साधारण भद्र गृहस्थ घराने की। रंग गोरा तो नहीं था लेकिन देखने में सुन्दर थी। हालत यह हुई कि बाबा उसके गुणों का बखान खत्म ही नहीं कर पा रहे थे। लिखने-पढ़ने के विषय में राशा दीदी ने बताया, 'यह ऐसा सुंदर पत्र लिख सकती है कि तुम्हारे आजकल के नाटक और नाविल भी हार मान जायँ। उस घर की ननदरानी को उसने एक ऐसा खत लिख दिया था कि जमाई मोशाय सात दिनों के बजाय पंद्रह दिनों की छुट्टी लेकर आ धमके।

राजलक्ष्मी का जिक्र किसी ने इशारे से भी नहीं किया, जैसे उस तरह की कभी कोई बात हुई थी यह किसी को याद तक नहीं।

दूसरे दिन स्टेशन पर गाडी रुकी तो मुझे भी उतरना पडा। उस वक्त लगभग दस बजे थे। ठीक समय पर स्नान-भोजन आदि न होने पर पित्त भडक जाने की आशंका से वे दोनों चिंतित हो उठे। घर पहुंचने पर मेरी खातिर की सीमा न रही। पांच-सात दिनों के भीतर ही गांव भर में किसी को इस बात में संदेह नहीं रह गया कि पुटू का वर मैं ही हूँ। यहाँ तक कि पुटू को भी संदेह नहीं रहा।

बाबा जी ने चाहा कि यह शुभ कार्य अगले बैसाख महीने में ही संपन्न हो जाय। पुटू के जो रिश्तेदार जहाँ-जहाँ थे, सब को बुला लेने की बात भी उठी। राशा दीदी ने गदराये हृदय से कहा, 'देखते हो, किसी के भाग्य में कौन बदा है, यह पहले से कोई भी नहीं बता सकता।'

मैं उदासीन था, फिर चिंतित हुआ और इसके बाद डर गया। धीरे-धीरे अपने ऊपर ही संदेह होने लगा कि कहीं मैंने स्वीकृति तो नहीं दे दी है। मामला ऐसा बेढब फंस गया कि कहीं पीछे कोई बुरी वारदात न हो जाय, इसलिए ना कहने का साहस ही न रहा। पुटू की माँ यहीं थी। एक दिन रविवार को अचानक उसके पिता के भी दर्शन हो गये। मुझे कोई वहाँ से जाने देना नहीं चाहता, आमोद और हंसी-मजाक भी चालू हो गया—पुटू मेरे ही गले पडेगी, बस कुछ ही दिनों की देर है—धीरे-धीरे ऐसे आसार चारों ओर साफ नजर आने लगे। जाल में फंसा जा रहा हूँ, मन को शांति नहीं मिलती—जाल फाड़कर बाहर निकल भी नहीं पाता। ऐसे समय अचानक एक सुयोग मिल गया। बाबा ने पूछा, 'तुम्हारी कोई जन्मपत्री है या नहीं? उसकी जरूरत आ पडी है।'

साहस बटोर कर, जोर लगाकर सारे संकोच को दूर कर कह बैठा, 'आप लोगों ने पुटू के साथ मेरा विवाह करना क्या सचमुच तय कर लिया है?'

ठाकुर दा मुँह फाड़कर कुछ देर तक अचंभे से देखते रहे, फिर बोले 'सचमुच? सुन रो इनकी बात।'

'किंतु मैं तो अभी तक स्थिर नही कर पाया हूँ।'

'नही कर पाए तो अब कर लो। लड़की की उम्र मैं चाहे बारह-तेरह वर्ष की ही कहूँ या और कुछ, किंतु वास्तव मे वह सत्रह-अठारह साल की है। इसके बाद हम इस लडकी का विवाह कैसे करेगे?

'लेकिन यह मेरा दोष तो नही है?'

'तो फिर किसका है? शायद मेरा?'

इसके बाद लडकी की माँ और रागा दीदी से लेकर पास-पडोस तक की लडकिया भी आ गई। रोना-धोना, अनुयोग-अभियोग का अंत नही रहा। मुहल्ले के पुरुषो ने कहा, 'ऐसा शैतान तो आज तक नही देखा, इसे अच्छा सबक दिया जाना चाहिए।'

लेकिन दंड देना और बात है और लडकी की शादी करना दूसरी बात है। फलत ठाकुर दा चुप हो रहे। इसके बाद अनुनय-विनय की बारी आई। पुटू को अब नही देखता हूँ। शायद वह गरीब शर्म से मुँह छिपाए पड़ी है कही। क्लेश होने लगा। कैसा दुर्भाग्य लेकर ये हमारे घरो मे पैदा होती हैं। सुना कि ठीक यही बात उसकी माँ भी कह रही है—ओ अभागिन, हम सब को खाने के बाद जाएगी। इसकी ऐसी तकदीर है कि यदि समुद्र पर दृष्टि डाल दे तो समुद्र तक सूख जाय और जली हुई शोल मछली भी पानी मे भाग जाय।' इसकी ऐसी गति न होगी तो किसकी होगी?''

कलकत्ते जाने के पहले बाबा को बुलाकर मैंने अपने घर का पता बता दिया। कहा, 'मेरे लिए एक व्यक्ति की राय लेना जरूरी है, उनके कहने पर मैं राजी हो जाऊगा।' बाबा मेरा हाथ पकडकर गदगद कंठ से बोले, 'देखो भाई, लड़की को मत मारो। उन्हे तनिक समझा-बुझाकर कहना कि वे अपनी असम्मति न दे।' मैं बोला, 'मेरा विश्वास है कि वे असम्मति प्रकट नही करेंगे, बल्कि प्रसन्न होकर सम्मति दे देंगे।'

बाबा ने आशीर्वाद दिया, 'तुम्हारे घर कब आऊँ भैया?'

'पाँच-छह दिन बाद ही आ जाइए।'

पुंटू की माँ और रागा दीदी ने रास्ते तक साथ आकर आसुओ के साथ मुझे विदा किया।

मन ही मन कहा, तकदीर। किंतु यह अच्छा ही हुआ कि एक प्रकार से वचन दे आया। मैंने इस बात पर बिना संशय यह विश्वास कर लिया कि इस विवाह मे राजलक्ष्मी तनिक आपत्ति नही करेगी।

दो

मैं स्टेशन पहुचा ही था कि ट्रेन छूट गई। दूसरी गाड़ी आने मे दो घंटे की देर थी। वक्त काटने की तरकीब खोज रहा था तभी एक मित्र मिल गया। वह एक मुसलमान नौजवान था जिसने कुछ देर तक मेरी ओर देखते रहने के बाद पूछा, 'आप श्रीकांत हैं?'

'हाँ।'

'मुझे नही पहचान पाये? मैं गौहर हूँ।' इतना कहकर मेरा हाथ जोर से दबा दिया उसने, पीठ पर चटाक् से थाप लगाई और कसकर गले से लिपट कर कहा, 'चलो, हमारे घर चलो। जा कहाँ रहे थे?—कलकत्ता? अब जरूरत नहीं है जाने की—चलो।'

यह मेरा पाठशाला का दोस्त है, उम्र मे कोई चार साल बडा है, सदा से कुछ अधपगला जैसा है। मुझे लगा उम्र बढने के साथ-साथ उसका पागलपन भी, घटने की बजाय, बढता गया है। पहले भी उसकी जिद और जबर्दस्ती से बच निकलने की कोई सूरत नही होती थी, सो यह ख्याल आने पर कि कम से कम आज की रात तो वह मुझे नही ही छोडगा, मेरी दुश्चिंता की सीमा न रही। बेकार है यह कहना कि उसकी आत्मीयता और उल्लास मे हिस्सा बटाने की ताकत आज मुझ मे नही है। मेरा बैग उसने खुद उठा लिया और एक कुली बुलाकर बेडिंग उसके सिर पर रख दिया। फिर मुझे जबर्दस्ती खीचता हुआ बाहर ले आया, एक वाहन ठीक किया और बोला, 'चलो बैठो।'

बच निकलने का कोई उपाय नही है, तर्क करना फिजूल है।

कह चुका हूँ कि गौहर मेरा पाठशाला का साथी है। उसका मकान मेरे गाव से एक कोस दूर था, एक नदी के किनारे। बचपन मे बदूक चलाना उसी से सीखा था मैने। उसके पिता की एक पुरानी बदूक थी, उसी को लेकर नदी किनारे, आम के बगीचो और झाड-झखाडो मे घूमकर चिडियो का शिकार किया करते थे हम। बचपन मे अनेक बार उसी के यहाँ रात बिताई है—उसकी माँ चिउडा, गुड, दूध और केला लाकर मुझे फलाहार करा देती थी। उनलोगो के पास, जमीन-जायदाद और खेती-बारी बहुत थी।

वाहन मे बैठकर गौहर ने सवाल किया, 'इतने दिनो तक कहा थे, श्रीकात?'

जहा-जहा था, सबका एक सक्षिप्त विवरण दे दिया मैने। पूछा, 'तुम अब क्या करते हो गौहर?'

'कुछ भी नही।'

'तुम्हारी माँ अच्छी तरह से तो हैं?'

'माँ-बाप दोनो की मृत्यु हो गई—मकान मे मैं ही अकेला हूँ।'

'शादी नही की?'

'वह भी चल बसी।'

मन ही मन सोचा, शायद इसीलिए चाहे जिस किसी को भी पकडकर घर ले आने का आग्रह है। बातचीत के लिए कोई विषय नही मिला तो पूछा, 'तुम्हारी वह पुरानी बदूक है?'

गौहर हँस पडा। बोला, 'देख रहा हूँ, तुम्हे वह अब भी याद है। वह है, और उसके अलावा और भी एक अच्छी बदूक खरीद ली थी। अगर तुम शिकार खेलने जाना चाहो तो साथ चला चलूगा। मगर अब मैं चिडिया नही मारता—बहुत दुःख होता है।'

'यह क्या कहते हो गौहर? तब तो तुम रात-दिन इसी के पीछे पागल रहते थे।'

'यह सच है। लेकिन अब बहुत दिनो से छोड दिया है वह सब।'

गौहर का एक परिचय और है, और वह यह है कि वह कवि है। उन दिनो वह मुँह-जबानी अनर्गल ग्राम-गीत बना सकता था—किसी भी समय, किसी भी विषय पर। वह छद, मात्रा, ध्वनि आदि पिगल के नियम और अनुशासन मानता था या नही, इसकी जानकारी मुझे न तो तब थी और न अब है। किंतु मुझे याद है कि उन दिनो में मणिपुर की लडाई और टिकेद्रजित सिंह की बहादुरी की कहानी उसके मुँह मे (उन ग्राम-गीतो मे) मे सुनकर बार-बार उत्तेजित हो उठता था। मैंने पूछा, 'गौहर' उन दिनो तुम्हे कृतिवास से भी सुदर रामायण लिखने का शौक था, वह सकल्प अब भी है या टूट-बिखर गया?' यह बात सुनते ही, क्षण-भर मे गौहर गभीर हो गया। बोला, 'वह शौक क्या कभी छूट सकता है यार? उसी के बल पर तो बचा हुआ हूँ। जब तलक जिदा हूँ, उसे लिए रहूँगा। कितना लिखा है, चलो न, आज सारी रात तुम्हे सुनाऊगा तो भी खत्म नही होगा।'

कहते क्या हो गौहर?''

'नही तो क्या झूठ कहता हूँ तुम से?'

उसके नेत्र और मुँह प्रदीप्त कवि-प्रतिभा से चमक उठे। मैंने सदेह नही किया था, मात्र विस्मय व्यक्त किया था। फिर भी, केचुआ खोजने के दौरान कही सर्प न निकल आए—जबर्दस्ती मुझे बैठाकर रातभर वह काव्य-चर्चा न करता रह जाय—मेरे भय की सीमा न रही।

उसे खुश करने के ख्याल से कहा, 'नही गौहर, यह मैं थोडे कहता हूँ। तुम्हारी अद्भुत क्षमता को तो सभी स्वीकार करते हैं, किंतु बचपन की बाते याद हैं या नही, यही जानने के लिए मैंने पूछ दिया। तो ठीक है, वह चीज बगाल की एक कीर्ति होकर रहेगी।

'कीर्ति? अपने मुँह से क्या कहूँ भाई? पहले सुन तो लो, फिर ये सब बाते होगी।'

किसी भी सूरत मे छुटकारा नही। कुछ देर स्थिर बने रहकर मानो कुछ अपने आप से ही कह बैठा, 'सवेरे से ही तबीयत बिगड रही है। ऐसा लगता है कि यदि नीद नही आ जाती .. . ।'

गोहर ने कोई ध्यान ही न दिया इसपर। कहा, 'पुष्पक रथ पर बैठकर सीताजी जब रोते-रोते गहने फेक रही है, इस प्रसग वाले अश को जिन-जिन लोगो ने सुना है वे अपने आसू नही रोक सके हैं श्रीकान्त।'

नयनो का नीर मैं भी रोक पाऊगा, इसकी सभावना कम है। कहा, 'किंतु—'

गौहर कहता गया, ''हमारे उस बूढे नयन चाद्र चक्रवर्ती की याद है न तुम्हे। उसने तो नाक में दम कर रखा है। वक्त-बेवक्त आ धमकता है, कहता है—'गौहर, जरा वह अश पढो न, सुनूगा।' फिर कहता है, 'तुम मुसलमान की संतान कभी नही हो। ऐसा लगता है कि तुम्हारे शरीर मे शुद्ध ब्राह्मण रक्त प्रवाहित है।'

'नयन चाद' नाम हर कही नही होता, इसीलिए याद आ गया। मकान भी गौहर के गाव मे ही है। मैंने पूछा, 'वही बूढा चक्रवर्ती? उसके साथ तो तुम्हारे पिताजी का बडा झगडा हुआ था, लाठियाँ चली थी, और मामला भी चला था?'

'हॉ,' गौहर ने कहा, 'लेकिन पिताजी के आगे उसकी क्या चलती? उन्होने उसकी जमीन, बगीचा, तालाब आदि सब कर्ज-मद्धे नीलाम करवा लिया था। लेकिन मैंने उसका तालाब और मकान वापस दे दिया है। बहुत गरीब है वह। रात-दिन रोता रहता था—यह क्या अच्छा होता श्रीकांत?'

अच्छा तो नहीं होता, परतु चक्रवर्ती के काव्य-प्रेम से मैं इसी होनहारी का अदाज लगा रहा था। मैंने कहा, 'अब तो उसका रोना बंद हो गया है न?'

'लेकिन आदमी वाकई अच्छा है वह।' गौहर ने कहा, 'कर्ज के मारे उस वक्त उसने जो कुछ किया, वैसा बहुत लोग करते हैं। उसके मकान के पास ही डेढ बीघे का आम का बगीचा है, उसके एक-एक पेड़ को चक्रवर्ती ने अपने हातो से लगाया है। नाती-पोते बहुत-से हैं उसके, खरीद कर खाने के पैसे नही हैं। फिर मेरा ही कौन है, है कौन खाने वाला?'

'ठीक कहते हो तुम। उसे भी वापस लौटा दो।'

'लौटा देना ही ठीक है, श्रीकान्त! ऑखो से सामने ही आम पकते हैं, लडके-बच्चे ठढी आहे भरते हैं—मुझे बडा दु:ख होता है भाई! आम के मौसम मे मेरे सारे बगीचे व्यापारी लोग ले लेते हैं। सिर्फ वह बगीचा नहीं बेचता। कह दिया है कि चक्रवर्ती, तुम्हारे पोते तोड-तोड कर खाए।—तुम क्या कहते हो, ठीक किया है न।'

'बिल्कुल ठीक।' मन ही मन कहा, जय हो बैकुठ के खाते की! उसकी बदौलत यदि गरीब नयन चांद युत्किंचित् लाभ उठा सकता है तो नुकसान ही क्या है? इसके अलावा, गौहर कवि है। कवि की इतनी संपत्ति किस मतलब की अगर वह रसग्राही रसिक सुजनो के काम न आए?

करीब-करीब चैत के मध्य की बात है। गाडी की खिडकी को एक-ब-एक पूरा खोलकर गोहर ने अपना सिर बाहर निकालते हुए कहा, 'दक्खिनी हवा का अनुभव हो रहा है श्रीकांत?'

'हो रहा है।'

गौहर ने कहा, ''वसंत को पुकारते हुए कवि ने कहा है—

'खोल दे आज दखिन का द्वार।''

कच्ची मिट्टी का रास्ता है। मलय पवन के एक झोके ने रास्ते की सूखी धूल को जमीन पर नही रहने दिया, उससे मुँह और सिर को भर दिया। मैं नाखुश होकर बोला, 'कवि ने वसंत को नही बुलाया, वह कहता है कि इस वक्त यम का दक्षिण द्वार खुला है, इसलिए यदि गाडी की खिड़की बद नही करोगे तो शायद वही आकर हाजिर हो जाएगा।'

गौहर ने हँसकर कहा, 'चलकर देखोगे ही एक बार। चकोतरे के दो पेडो पर फूल खिले हैं, कोई आधा कोस से उनकी गंध आती है। सामने वाला जामुन का पेड माधवी फूलो से भर गया है, उसकी एक डाल पर मालती की लता है। फूल अभी नही खिले हैं, कलियो के गुच्छे के गुच्छे लटक रहे हैं। हमारे चारो तरफ ही आम के बगीचे हैं और अब की बार मौर से आम के झाड छा गये हैं। कल सुबह देखना मधुमक्खियों का मेला। कि नीलकंठो, कितनी बुलबुलो और कितनी कोयलो के गान होते रहते हैं। इस समय चादनी रात है, इसलिए रात को भी कोयल की कूक नही रुकती। बाहरवाले कमरे की दक्षिणवाली खिडकी अगर खुली रखोगे तो फिर तुम्हारी पलके नही झपेगी। लेकिन इस बार ऐसे ही नही छोड दूंगा भाई, यह पहले से कह देता हूँ। अलावा इसके, खाने की भी कोई फिक्र नही है, चक्रवर्ती मोशाय को एक बार खबर मिलने भर की देर है। फिर तो तुम्हारा आदर गुरु की तरह करेंगे वे।

आमत्रण की इस निश्छल आंतरिकता से मुग्ध हो गया मैं। कितनी मुद्दतो के बाद मुलाकात हुई है, किंतु वह उस वक्त जैसा ही गौहर है, तनिक भी नही बदला है—वैसा ही बचपना, मित्र-मिलन का वही

अकृत्रिम उल्लास है।

गौहर मुसलमान फकीर सप्रदाय का है। सुना जाता है कि उसके पितामह बाऊज थे। वे रामप्रसादी और दूसरे गीत गा-गाकर भिक्षा मागा करते थे। उनकी पाली हुई सारिका की अलौकिक सगीत-पारदर्शिता की कहानी उस समय इस क्षेत्र मे बहुत प्रसिद्ध थी। परतु गौहर के पिता पैतृक-वृत्ति छोडकर व्यापार और पाट का कारबार करने लगे और अपने बेटे के लिए तमाम जायदाद खरीद कर छोड गये हैं। किंतु बेटे मे बाप की-सी व्यापार-बुद्धि नही, बल्कि काव्य और सगीत के प्रति पितामह का अनुराग ही उसमे है। इसलिए पिता की जी-तोड मेहनत से अर्जित-संचित जगह-जायदाद और खेती-बारी का आखिरी अजाम क्या होगा, यह शक-शुभ का मुद्दा है।

खैर, जो भी हो, मैंने उन लोगो का मकान बचपन मे देखा था। अब ठीक-ठीक याद नही है। शायद अब वह कवि की वाणी-साधना के तपोवन में बदल गया हो। उसे एक बार फिर आँखो से देखने की इच्छा हो गई।

उसके गाँव के रास्ते से मैं परिचित हूँ, उसकी दुर्गमता भी याद आती है मुझे। मगर थोडी देर बाद ही मालूम हो गया कि बचपन की उस याद के साथ आज की आखो से देखने की कोई तुलना सभव नही है। बादशाही जमाने की सडक है अतिशय सनातन। मिट्टी और पत्थरों की परिकल्पना यहाँ के लिए नही है। कोई ऐसी परिकल्पना करेगा, इस तरह की दुराशा भी अब कोई नही करता। इतना ही नही, सम्कार या मरम्मत की सभावना भी लोगो के मन से बहुत पहले ही धुल-पुछ गई है। गाववाले जानते हैं कि शिकायत या अभियोग भी फिजूल है, उनके लिए कभी भी राजकोष मे रुपये नही होगे। वे यह तो जानते हैं कि पुरुषानुक्रम से सडक के लिए सिर्फ सडक टैक्स देना पडता है, पर वह सडक है कहाँ और किसके लिए है, यह सोचना भी उनके लिए ज्यादती है।

उस सडक पर लंबे अरसे से संचित और स्तूपीकृत बालू तथा मिट्टी के अवरोधो को ठेलती-हटाती हमारी गाडी सिर्फ चाबुक के जोर से आगे बढ़ रही थी। इसी समय गौहर एकाएक बडे जोर से चिल्ला उठा, 'गाडीवान, अब आगे नहीं, और आगे मत बढ़ो, रुक जाओ, एकदम रोक दो।'

उसने यह बात इस तरह से कही जैसे पजाब मेल का मामला हो—जैसे पलभर मे ही सारे वैक्युम ब्रेक यदि फटाफट बद नही किये जा सके तो सर्वनाश की आशंका हो।

गाडी रुक गई। बाईं तरफ का रास्ता उसके गाव जाने का मार्ग है। नीचे उतर कर गौहर ने कहा, 'श्रीकात, उतर जाओ, मैं बैग ले लेता हूँ। तुम बिछौना उठा लो, चलो।'

'शायद गाडी और आगे नही जाएगी।'

'नही। देखो न, रास्ता ही नही है।'

बात सही है। दायी और बायी ओर काटे दार पेडों और बेत-कुज की घनी एव सम्मिलित शाखा प्रशाखाओं के कारण गाव की वह गली बहुत ही सकरी हो गई है। गाडी को अदर घुसाने का तो सवाल ही नाजायज है, क्योंकि आदमी भी अगर होशियारी के साथ झुककर न घुसे तो कांटो मे फसकर उसके कपडों का फटना अनिवार्य है—अतएव कवि के कथनानुसार वहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य अनिर्वचनीय ही था। उसने बैग को सिर पर रखा और मैंने बिछौने को बगल मे दबाया। इस प्रकार हमलोग गोधूलि-बेला मे गाडी से उतरे। जब कवि के घर पहुचा तब शाम हो चुकी थी। अनुमान किया कि आकाश मे बसत-रात्रि का चद्रमा भी निकल आया है। तिथि सभवत पूर्णिमा के आस-पास की थी, सो मैं इस आशा मे था कि गभीर निशीथ मे चद्रदेव जब सिर के ऊपर आ विराजे तो तिथि के विषय मे नि सशय हो जाऊं। मकान के चारो ओर बास का घना वन है। बहुत सभव है कि कोयल, नीलकठ और बुलबुलो का झुंड भी रहता हो, और उन्ही की दिन-रात की पुकार तथा गाना कवि को व्याकुल बना देता हो। बास के पके सूखे असख्य पत्ते झड-झडकर आगन तथा चबूतरे को चारो ओर से परिव्याप्त किये हुए हैं। इन पर दृष्टि पडते ही समग्रमन क्षण भर मे इस प्रेरणा से गर्जना कर उठता है कि झडे हुए पत्तो का गीत गाया जाये। . नौकर ने आकर बाहर की बैठक खोल दी और बत्ती जला दी। गौहर ने तख्त दिखाते हुए कहा, 'तुम इसी कमरे मे रहो। देखना, कैसी सुदर हवा आती है।'

यह असभव नही है। देखा कि दक्षिणी पवन के कारण देश भर के सूखे पत्तो और लताओ ने गवाक्ष-पथ से भीतर घुसकर पूरे कमरे को भर दिया है, तख्त को भी आच्छादित कर रखा है। फर्श पर

पांव रखते ही बदन सनसना उठा। खाट के पाये के पास अपना बिल बनाकर चूहे ने मिट्टी जमा कर रखी है। मैंने उसे दिखाकर पूछा, 'क्यों गौहर, इस कमरे मे तुम लोग क्या कभी झांकते तक नही?'

गौहर ने जवाब दिया, 'नही, जरूरत ही नही पडती। मैं अदर ही रहता हूँ। कल इसे साफ करा दूंगा।'

'साफ तो हो जाएगा, लेकिन इस बिल मे साप भी तो रह सकते हैं!'

नौकर ने बताया, 'दो थे, मगर अब नही हैं। ऐस दिनों मे वे नही रहते यहाँ, हवा खाने के लिए बाहर चले जाते हैं।'

'यह कैसे मालूम हुआ मिया?' मैंने पूछा।

गौहर ने हंसते हुए कहा, 'यह मिया नही है, अपना नवीन है। पिताजी के जमाने का आदमी है। गाय-बैल, खेती-बारी देखता है और मकान की हिफाजत भी करता है। हमारे यहां क्या है और क्या नही है, इसे सब पता है।'

नवीन बगाली हिंदू है और है पिता के जमाने का आदमी। इस घर की गाय-भैंसो और खेती-बारी से लेकर मकान तक का सारा हाल जानना उसके लिए असभव नही है। फिर भी साप के बारे मे उसकी बातो से मैं निश्चिंत नही हो सका। यहा,तो मकान भर को दक्षिणी हवा लग गई है। सोचा, इसमे शक नही कि हवा के लोभ मे सर्प-युगल बाहर जा सकते हैं, परंतु इनके वापस लौटते भी कितनी देर लग सकती है?

गौहर इस बात को भाप गया कि मुझे तसल्ली नही हुई है। बोला, 'तुम तो खाट पर रहोगे, फिर तुम्हे किस बात का डर है? इसके अलावा, वे कहा नही रहते? भाग्य मे लिखा था, इसलिए राजा परीक्षित को भी रिहाई नही मिली, फिर हम तो तुच्छ हैं।—नवीन, कमरे मे झाड़ू लगाकर एक ईट से बिल को ढक देना, भूलना मत।—पर श्रीकांत, तुम खाओगे क्या?'

'जो कुछ मिल जाय।' मैंने जवाब मे कह दिया।

नवीन बोला, 'दूध, चिउडा और अच्छे गन्ने का गुड है। आज के लायक—'

'ठीक है, ठीक है।' मैंने कहा, 'इस मकान मे दही सब खाने की मेरी आदत है, और कुछ जुटाने की जरूरत ही नही है भाई। बल्कि तुम कही से एक हल्की-सी ईट ले आओ। बिल को मजबूती से ढक दो, ताकि दक्षिणी हवा से पेट भरकर जब वे घर मे लौटें तो एकाएक इसमे न घुस सके।'

नवीन हाथ मे बत्ती लेकर कुछ देर तख्त के नीचे झाकता रहा। फिर बोला, 'नही, नही हो सकता।'

'क्या नही हो सकता जी?'

उसने सिर हिलाकर कहा, 'नही, यह नही हो सकता। बिल का मुँह क्या अकेला है बाबू? पजावा-भर ईटे चाहिए। चूहो ने जमीन को एकबारगी पोला बना डाला है।'

गौहर विशेष विचलित नही हुआ। उसने आदमी लगाकर कल अवश्य मरम्मत करा देने का हुक्म दे दिया।

नवीन हाथ-मुंह धोने के लिए पानी देकर फलाहार की व्यवस्था करने जब भीतर चला गया तब मैंने पूछा, 'और तुम क्या खाओगे गौहर?'

'मैं? मेरी एक मौसी हैं, वे ही खाना बनाती है। खैर, यह खाना-पीना खत्म हो जाय तब अपनी रचनाए सुनाऊ तुम्हे।' गौहर अपने काव्य के ध्यान मे ही मगन था। अतिथि के आराम और सुविधा का ख्याल सभवत: उसने किया ही नहीं। बोला, 'बिस्तर लगा दूं? क्या कहते हो? रात को हम दोनो एक साथ ही रहेंगे—क्यो?'

यह एक और आफत आ गई। मैंने कहा, 'ना भाई गौहर, तुम अपने कमरे मे जाकर सोओ। आज मैं बेहद्द थक गया हूँ, कल सुबह ही तुम्हारी रचना सुनूंगा।'

'कल सुबह? तब क्या वक्त रहेगा?'

'जरूर रहेगा।'

गौहर चुप होकर कुछ सोचता रहा। बोला, 'अच्छा श्रीकांत, एक काम किया जाय तो कैसा हो? मैं पढ़ता हूँ और तुम लेटे-लेटे सुनते रहना। नीद आने पर मैं चला जाऊंगा। क्या कहते हो? यह ठीक है न, क्यो?'

मैंने विनती करते हुए कहा, 'नही भाई गौहर, इससे तुम्हारी किताब की मर्यादा कम होगी। कल मैं

पूरा ध्यान लगाकर सुनूगा।'

गौहर ने क्षुब्ध चेहरे के साथ विदा ली, पर विदा करके मेरा मन भी प्रसन्न नही हुआ।

यह एक ही पागल है। पहले इसके इशारो से तो मैंने यही समझा था कि अपने काव्य-ग्रथ को वह प्रकाशित करना चाहता है, और उसे आशा है कि उससे ससार मे एक धूम मच जाएगी। वह ज्यादा पढा-लिखा नही है। पाठशाला और स्कूल मे उसने सिर्फ थोडी-सी बगला और अंग्रेजी सीखी थी। इच्छा भी नही थी, और शायद समय भी नही मिला। शैशव में न जाने कब और कैसे वह कविता से प्रेम कर बैठा। सभव है कि वह प्रेम उसकी शिराओ के रक्त मे ही बह रहा हो—इसके बाद ससार का सब कुछ उसकी नजरो मे अर्थहीन हो गया है। अपनी अनेक रचनाए उसे याद हैं। गाडी मे बैठा हुआ वह बीच-बीच मे गुनगुनाकर आवृत्ति भी करता था। उस वक्त सुनकर मैंने यह नही सोचा था कि इस अक्षय भक्त को वाग्देवी अपने स्वर्ण-पद की एक पखुडी देकर किसी दिन पुरस्कृत करेगी। पर अक्लात आराधना के एकाग्र आत्म निवेदन मे इस बेचारे को विराम नही, विश्राम नही। बिछौने पर लेटा हुआ सोचने लगा कि बारह साल बाद मुलाकात हुई है। इन बारह वर्षो से उसने सब पार्थिव स्वार्थों को जलांजलि देकर और एक रचना के बाद दूसरी गूथ करके श्लोको का पहाड जमा कर लिया है। पर यह सब किस काम मे आएगा? जानता हूँ कि काम मे नही आएगा। गौहर आज नही है पर उसकी दुश्तर तपस्या की अकृतार्थता स्मरण कर आज भी मन दु खी होता है। सोचता हूँ कि न जाने कितने शोभाहीन, गधहीन फूल लोक-चक्षुओ के अतराल मे खिलते हैं और फिर अपने आप ही मुरझा जाते हैं। परतु, विश्व-विधान मे यदि उनकी कोई सार्थकता है तो शायद गौहर की साधना भी व्यर्थ नही हुई होगी।

गौहर ने बहुत सबेरे ही पुकार कर मेरी नीद खोल दी। तब शायद सात या न भी बजे हो। उसकी इच्छा थी कि बसत के दिनो मे बगाल के निभृत गावो के लोकोत्तर शोभा-सौंदर्य को अपनी आखो से देखकर धन्य होऊ। उसका भाव कुछ ऐसा था कि मानो मैं विलायत से लौट कर आया हूँ। उसका आग्रह पागलो जैसा था। अनुरोध टालने का उपाय नही था। अतएव हाथ-मुँह धोकर तैयार होना पडा। प्राचीर से सटे हुए एक अधमरे जामुन के पेड के अधिक हिस्से मे माधवी और अधिक मे मालती लता लिपटी थी। यह कवि की अपनी योजना है। अत्यत निर्जीव शकल, तथापि, एक में थोडे से फूल खिले हैं और दूसरी मे अभी कलिया फूटी हैं। उसकी इच्छा थी कि थोडे-से फूल मुझे उपहार दे, पर पेड मे इतने लाल चीटे थे कि छूने का कोई उपाय नही सूझा। उसने मुझे यह कहकर सात्वना दी कि कुछ देर बाद उन्हें आकडी से अनायास ही झडा दिया जाएगा।—अच्छा, चलो।

प्रात क्रिया ठीक तौर से निष्पन्न हो सके (अर्थात् कब्ज न रहे), इसके उद्योग-पर्व मे नवीन चीलम हाथ मे लिए दम लगाकर बडे जोर से खास रहा था। थूककर, खखार कर और बहुत कुछ सभालकर हाथ हिलाकर उसने मना किया। कहा, 'जगल मे कही गायब मत हो जाइएगा, कहे देता हूँ।'

गौहर ने नाराजगी से कहा, 'क्यो रे?'

नवीन ने जवाब दिया, 'कोई दो-तीन सियार पागल हो गये हैं, ढोर—आदमियो को काटते-डोल रहे हैं।'

मैं डर के मारे पीछे हट गया।

'कहाँ रे नवीन?'

'यह क्या मैंने देखा है कि कहा हैं? कही न कही झाडी-वाडी मे छिपे होगे। अगर जाते हो तो आखे खोलकर जाना।'

'तो भाई, जाने का काम नही गौहर।'

'वाह रे! इस वक्त कुत्ते और सियार जरा पागल हो ही जाते हैं,—सिर्फ इसी वजह से क्या लोग रास्ता चलना बद कर देगे? खूब कहा।'

यह भी दक्षिण की हवा का मामला है। अतएव, प्रकृति की शोभा देखने साथ मे जाना ही पडा। रास्ते में दोनो ओर आम के बगीचे हैं। करीब पहुचते ही असख्य छोटे-छोटे कीडे-मकोडे चटचट-पटपट आवाज करते हुए आम्र मुकुलो को छोडकर आख, नाक, मुह और कपडो के भीतर घुस गये। सूखे पत्तो पर आम का मधु गिरकर चिपकनी लेई की तरह हो गया था, वह जूते के तलो मे चिपकने लगा। सकरे रास्ते का बहुत-सा हिस्सा बेदखलकर विराजमान मुकुलित-विकसित फूलो के भार से लदी घनी करौंदे

की झाडिया—इसी समय याद आ गई नवीन की चेतावनी। गौहर के मतानुसार यह वक्त पागल होने लायक ही है। इस लिए करौंदे के फूल की शोभा का और किसी दिन, समय के अनुसार, उपभोग किया जाएगा। आज गौहर और मैं—यानी नवीन के 'ढोर-आदमी' ने जरा तेज कदम से ही स्थान त्याग किया।

मैं कह चुका हूं कि हमारे गाव की नदी इस गाव की सीमा मे भी होकर बहती है। वर्षा की चौडी जल-धारा वसंत के समागम से पतली शीर्ण हो गयी है। उस समय धार के साथ बहकर आई अपरिमेय सिवार और कोई शुष्क वटभूमि पर फैल गयी है और शिशिर और धूप मे सडकर उसने सारी जगह को दुर्गंध से नरक-कुड वना दिया है। नदी के उस पार कुछ दूर सेमर के पेड मे सैकडों लाल फूल खिले हुए थे। उन पर नजर पडी, लेकिन इस वक्त कवि को भी उस ओर दृष्टि आकर्षित करना ठीक नही लगा। उसने कहा, 'चलो, घर लौट चले।'

'अच्छा, चलो।'

'मेरा ख्याल था कि ये सव चीजे अच्छी लगेगी।'

कहा, 'अच्छी लगेंगी भाई, लगेगी। अच्छे-अच्छे शब्दो मे तुम इनको कविता मे लिखो, मैं पढकर खुश हूंगा।'

'शायद इसीलिए गाव के आदमी एक बार भूल कर भी इन्हें नही देखते।'

'नहीं। देखते-देखते उन्हे अरुचि हो गयी। भाई, आंखो की रुचि और कानो की रुचि एक नही। जो यह सोचते हैं कि कवि के वर्णन को अपनी आंखो देखने पर लोग मोहित हो जाते हैं, वे नही जानते हैं कि सत्य क्या है। दुनिया के हर काम मे यह बात लागू है। आखो के लिए जो एक साधारण घटना या मामूली-सी वस्तु है, वही कवि की भाषा मे 'नई सृष्टि' हो जाती है। तुम जो देखते हो वह भी सत्य है, और जो मैं नही देख सका वह भी सत्य है। इसके लिए तुम दुःखी मत होना गौहर।'

तो भी लौटते समय रास्ते मे उसने न जाने कितनी और क्या-क्या चीजे दिखाने की चेष्टा की। पथ का प्रत्येक वृक्ष, प्रत्येक लता-पौधा तक मानो उसका पहचाना हुआ है। न जाने कव एक पेड की छाल औषधि के लिए कोई छील कर ले गया था और उससे चिपकने वाला पदार्थ अव भी झर रहा था। सहसा उसे देखकर गौहर सिहर-सा उठा। उसकी आखे छलछला आई—मैं उसके मुह की ओर देखकर साफ-साफ समझ गया कि अतर मे उसने कितनी वेदना का अनुभव किया है। चक्रवर्ती जो अपनी सारी खोई हुई चीजे फिर वापस प्राप्त कर रहा था, सो केवल अपनी होशियारी के कारण नहीं, इस... तो गौहर के स्वभाव मे ही है। ब्राह्मण के प्रति मेरा क्रोध बहुत कुछ अपने आप ही कम हो गया। चक्रवर्ती से भेट नही हुई, क्योकि सुनने मे आया कि उसके घर मे उसके दो नातियो पर शीतला कृपा हुई है। अव तक गाव-गांव मे विशूचिका-माता के दर्शन नही हुए हैं—वे सडी हुई तलैयो के पानी के थोडा और सूख जाने की प्रतीक्षा कर रही हैं।

जो भी हो, घर पहुचकर गौहर ने अपना पोथा मेरे सामने हाजिर कर दिया। उस ... कर जिसे भय न व्यापे, ससार मे ऐसा आदमी यदि कोई होगा तो वह बिरला ही होगा। बोला, 'विना ... छुटकारा नही मिलेगा श्रीकात, और तुम्हे सच-सच अपनी राय देनी होगी।'

यह आशका तो थी ही। साफ-साफ राजी हो सकू। इतना साहस नही था, तो भी कवि की इस यात्रा के, एक के वाद एक, मेरे सात दिन काव्यालोचना मे ही कट गये। काव्य की बात जाने दो, सघन साहचर्य मे इस मनुष्य का जो परिचय मिला, वह जितना सुदर था उतना ही विस्मयकारक।

एक दिन गौहर ने कहा, 'श्रीकात, तुम्हे बर्मा जाने की क्या जरूरत है? हम दोनो के ही ... लायक कोई नही है, तो आओ न हम दोनो भाई यही एक साथ जीवन बिता दे।'

हसकर कहा, 'मैं तो तुम्हारी तरह कवि नही हूं भाई, न पेड-पौधो की भाषा ही समझता हूं, और उनसे बातचीत कर सकता हूं, फिर इस जगल मे कैसे रह सकूगा? दो दिन मे ही हाफने लगूंगा।'

'गौहर ने गभीर होकर कहा, 'किंतु मैं उनकी भाषा वाकई समझता हूं। वे सचमुच बोलते हैं ... तुम लोग विश्वास नही करते?'

मैंने कहा, 'यह तो तुम भी समझते हो कि विश्वास करना मुश्किल है?'

गौहर ने सरलता से स्वीकार कर लिया, कहा, 'हा-हा, यह तो समझता हूं।'

एक दिन सवेरे अपनी रामायण का अशोक-वन वाला अध्याय कुछ देर तक पढने के बाद उस

हठात् पुस्तक बंद कर दी और मेरी ओर घूमकर सवाल किया, 'अच्छा श्रीकांत, तुम ने कभी किसी से प्यार किया है?'

कल बहुत रात तक जागकर राजलक्ष्मी को शायद अपनी अंतिम चिट्ठी लिखी थी। उसमें यात्रा की बातें, पुटू की कथा और उसके दुर्भाग्य का सारा विवरण था। उन लोगों को वचन दिया था कि एक आदमी की अनुमति माग लूंगा सो वह भिक्षा भी उसमें मागी थी। चिट्ठी भेजी नही थी। उस वक्त जेब में ही पड़ी हुई थी। गोहर के प्रश्न के उत्तर मे हंसकर कहा, 'नहीं।'

गौहर ने कहा, 'यदि कभी प्यार करो, यदि कभी ऐसा दिन आये तो मुझे जताना श्रीकांत।'

'जानकर क्या करोगे?'

'कुछ भी नही। तब सिर्फ तुम लोगो के बीच जाकर कुछ दिन काट आऊंगा।'

'अच्छा।'

'और यदि उस समय रुपयो की जरूरत हो तो मुझे खबर दे देना। बाबूजी बहुत रुपया छोड़ गये हैं, वह मेरे काम मे तो लगा नही—किंतु शायद तुम लोगो के काम मे लग जाए।'

उसके कहने का तरीका कुछ ऐसा था कि सुनते ही आंखों मे आसू निकल पड़े। कहा, 'अच्छा, यह भी खबर दूगा। पर आशीर्वाद दो कि इसकी कभी जरूरत न पड़े।'

मेरे जाने के दिन गौहर फिर मेरा बैग उठाकर तैयार हो गया। इसकी जरूरत न थी, नवीन तो शर्म से प्रायः अधमरा हो गया, पर उसने एक न सुनी। ट्रेन में बैठाकर वह औरतो की भांति रो उठा, बोला, 'मेरे सिर की कसम है श्रीकांत, चले जाने के पहले एक दिन फिर आना ताकि एक बार फिर मुलाकात हो जाय।'

आवेदन की उपेक्षा नही कर सका, वचन दिया कि मिलने के लिए फिर एक बार आऊंगा।

'कलकत्ता पहुचकर कुशल-सवाद दोगे न?'

यह भी वचन दिया। मानो न जाने कितनी दूर चला जा रहा हूँ

कलकत्ते के मकान मे जब पहुँचा, तब प्रायः संध्या हो गई थी। चौखट पर पैर रखते ही जिसके दर्शन हुए, वह और कोई नहीं स्वयं रतन था।

'यह क्या रे, तू है?'

'हा, मैं ही हूँ और कल से बैठा हूँ। एक चिट्ठी है।'

समझ गया कि उसी प्रार्थना का उत्तर है। कहा, 'डाक से भेजने पर भी तो चिट्ठी मिल जाती।'

रतन ने कहा, 'यह व्यवस्था किसान, मजदूर और साधारण गृहस्थ के लिए है। मा की चिट्ठी अगर एक आदमी बिना खाए-पीए और सोए पाच सौ मील हाथ मे लिए दौडता हुआ न लाए, तो खो न जाएगी! आप तो सब जानते हैं, क्यो झूठमूठ पूछ रहे हैं?'

बाद मे सुना कि रतन का यह अभियोग झूठा है। क्योंकि खुद ही उद्यत होकर वह यह चिट्ठी अपने हाथ लाया है। मालूम हुआ कि ट्रेन की भीड और आहार की अव्यवस्था के कारण उसका मिजाज बिगड गया है। हसकर कहा, 'ऊपर आ। चिट्ठी बाद मे पढूंगा, चल, पहले तेरे खाने का इन्तजाम कर दू।'

रतन ने धूल लेकर प्रणाम किया और कहा, 'चलिए।'

तीन

रतन डकार से चौंकाता हुआ दाखिल हुआ।

'बोल रतन, पेट भर गया?'

'जी हा। आप चाहे कुछ भी कहे बाबू, किंतु हमारे कलकत्ते के बंगाली ब्राह्मणो के अलावा कोई भोजन बनाना नही जानता। इनके सामने तो उन मारवाडी महाराजो को पशु ही कहा जा सकता है।'

मुझे याद नहीं कि दोनो प्रदेशो की रसोई की खूबी-खामी या रसोइये की कला के बारे मे रतन से मैंने कभी बहस की हो, किंतु रतन को जितना जानता हू उससे यही ख्याल आया कि यथेष्ट भोजन से वह परम संतुष्ट हो गया है। यदि यह बात न होती तो वह पश्चिमी रसोइयों के बारे मे ऐसी दो टूक राय जाहिर नही करता। उसने कहा, 'गाडी मे बहुत धक्के खाने पडे हैं, हाथ-पाव फैलाकर लेटे बिना . '

'अच्छा तो रतन, चाहे कमरे मे चाहे बरामदे मे बिस्तर डालकर सो जा, कल सारी बाते होंगी।'

न जाने क्यो चिट्ठी के लिए उत्कंठा नहीं हो रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे उसमे जो कुछ है वह मुझे

पहले से मालूम है।

रतन ने फतुई की जेब से एक लिफाफा निकालकर मेरे हाथ मे दे दिया। चपडे से सील-मोहर की हुई थी। बोला, बरामदे की इस दक्षिणवाली खिडकी की बगल मे बिछौना बिछा लू? मसहरी लगाने की झंझट नही रहेगी। ऐसा सुख कलकत्ते के अलावा और है कहा? जाता हू .

'किंतु सब खबर तो अच्छी है न रतन?'

रतन ने चेहरा गभीर बनाकर कहा, 'लगता तो ऐसा ही है। गुरुदेव की कृपा से मकान का बाहरी भाग गुलजार है। अदर दास-दासियो, बकू बाबू और नई बहू ने आकर घर-द्वार को आलोकित कर दिया है और सबके ऊपर स्वयं मां हैं जो घर की मालकिन हैं। ऐसी गृहस्थी की बुराई कौन करेगा? लेकिन मैं बहुत पुराना नौकर हूँ, जाति का नाई हूँ—रतन को इतनी जल्दी भुलावा नही दिया जा सकता बाबू! इसीलिए तो उस दिन स्टेशन पर आखों के आसू नही रोक सका। मैंने निवेदन किया था कि परदेस मे नौकरो का अभाव होने पर रतन को एक बार खबर जरूर कर दे। मैं जानता हू कि आपकी सेवा करने पर भी उसी मां की सेवा होगी। धर्म की हानि नही होगी।'

मैं कुछ भी नही समझ पाया, केवल चुपचाप ताकता रहा। वह कहता गया, 'अब बकू बाबू की उम्र भी हो गई है, थोडा-बहुत पढ-लिख कर आदमी भी बन गये हैं। सोचते हैं शायद कि दूसरे के अधीन किसलिए रहा जाय। दान पत्र के बल पर सब कुछ मार तो लिया ही है। मानता हूँ कि मोटे तौर पर उन्होने काफी हाथ लगा लिया है, परतु वह कितने दिनो का है बाबू?'

स्थिति अब भी स्पष्ट न हुई, पर एक धुधली छाया तिरने लगी आखो के सामने। वह फिर कहने लगा, 'आपने तो स्वय अपनी आंखो से देखा है कि महीने मे कम से कम दो बार मेरी नौकरी छूट जाती है। हालत बुरी नही, नाराज होकर जा भी सकता हू, लेकिन क्यो नही चला जाता? जा नही सकता। इतना मैं जानता हूं कि जिसकी कृपा से सब कुछ हुआ है उसके एक ही नि श्वास से सब कुछ लुप्त हो जाएगा आश्विन के मेघ के समान। वह पलक मारने की फुर्सत नही देगा। यह मा की नाराजगी नहीं, यह तो मेरे देवता का आशीर्वाद है।'

यहा यह स्मरण रखना जरूरी है कि रतन बचपन मे कुछ दिनो तक प्राइमरी स्कूल मे शिक्षा प्राप्त कर चुका है, एकदम निरक्षर भट्टाचार्य नहीं है।

कुछ रुककर उसने आगे कहा, "मां ने मना कर रखा है, इसीलिए कभी कहता नही। घर मे जो कुछ था बाबा ने लिया, यजमानो का एक घर तक नही दिया। एक छोटा बालक, लडकी और उनकी मां को छोडकर पेट के लिए एक दिन गाव त्यागकर बाहर निकल पडा था। पर पूर्वजन्म की तपस्या थी, मेरी नौकरी इन्ही मां के घर लग गई। उन्होने सारा दुखडा सुना, लेकिन कुछ कहा नही उस समय। सालभर बाद मैंने अर्ज किया, 'मा बच्चो को देखने की इच्छा है, यदि चद दिनो की छुट्टी मिल जाती ।' हसकर बोली, 'फिर आओगे न ?' जाने के दिन हाथ मे एक पोटली देते हुए कहा, 'रतन, बाबा से लडाई-झगडा मत करना भैया, जो कुछ तुम्हारा चला गया है उसे इसके द्वारा फेर लेना।' गठरी खोलकर देखता हू तो पाच सौ रुपए हैं। पहले तो अपनी आखो पर विश्वास ही नही हुआ। ऐसा लगा मानो मैं जागे-जागे सपना देख रहा हू। मेरी उसी मा से बकू बाबू अब उल्टी-सीधी बाते कहते हैं, आड मे खडे होकर फुसफुसाते है, सोचता हू कि अब इनके अधिक दिन नही रह गये हैं, क्यो कि अब मा-लक्ष्मी जाने ही वाली हैं।"

मैंने यह आशका नही की थी, चुपचाप सुनने लगा।

ऐसा लगा कि कुछ दिनो से क्रोध और क्षोभ से रतन फूला जा रहा है। बोला, 'मा जब देती हैं तो दोनों हाथों से उँडेल देती हैं। बकू को भी दिया है, इसलिए उसने यह सोच लिया कि मधु निचोडे हुए छत्ते की क्या कीमत?—इस समय तो अधिक से अधिक उसे जलाया ही जा सकता है। इसलिए उसको वे इतनी अप्रिय हो रही हैं। मूरख यह नही जानता कि आज भी मा का एक गहना बेचने पर ऐसे पाच मकान तैयार हो सकते है।"

मैं भी यह नही जानता था। हसकर कहा, "ऐसी बात है? पर वह सब है कहा?"

रतन भी हसा। बोला, "उन्ही के पास है। मां ऐसी बेवकूफ नही। सिर्फ आप ही के चरणो पर सर्वस्व लुटाकर वे भिखारिणी हो सकती हैं, किंतु और किसी के भी लिए नही। बकू नही जानता कि आप के जिंदा रहते मा को आश्रय की कमी न होगी, और जबतक रतन जीवित है तब तक उन्हे नौकर के लिए भी सोचने की जरूरत नहीं। उस दिन काशी से आप के इस प्रकार चले आने के कारण मा के हृदय मे कैसा

तीर चुभा है, इसकी खबर क्या वकू बाबू रखते हैं? गुरु महाराज को भी उसकी खोज-खबर कहा से मिल सकती है?"

"परतु मुझे तो उन्होने स्वय विदा किया था। इसकी खबर तो रतन, तुम्हे है?"

रतन जीभ निकालकर लाज से गड गया। उसमे इतनी विनय इसके पहले कभी नही देखी थी। कहा 'बाबू, हम तो नौकर-चाकर हैं, ये सब बाते हमारे कानो को नही सुननी चाहिए। यह झूठ है।'

रतन थकावट मिटाने चला गया। शायद कल आठ बजे के पहले उसके शरीर मे स्फूर्ति नही आएगी।

दो बडी खबरे मिली। एक तो यह कि वकू अब बडा हो गया है। पटने मे जब पहली बार मैंने उसे देखा था तब उसकी उम्र सोलह-सत्रह थी। अब इक्कीस वर्ष का युवक है। बल्कि इन पाच-छह वर्षो मे पढ-लिखककर वह आदमी बन गया है। अत शैशव का वह कृतज्ञता भरा स्नेह यदि आज यौवन के आत्मसम्मान बोध में सामजस्य न रख पाता हो, तो उसमे विस्मय की कौन-सी बात है?

दूसरी खबर यह है कि राजलक्ष्मी की गभीर वेदना का पता न तो वकू को और न गुरुदेव को ही आज तक मिला है।

मेरे मन मे ये ही दो बाते बहुत देर तक घूमती रही।

बडे यत्न से लगी चपडे की सील-मोहर को देखकर चिट्ठी खोली, उसके हाथ की लिखावट देखने का ज्यादा मौका नही मिला है, पर, यह ख्याल आया कि अक्षर ऐसे तो नही हैं कि पढने मे तकलीफ हो, लेकिन फिर भी अच्छे नही हैं। किंतु यह पत्र उसने बहुत सावधानी से लिखा है। शायद उसे भय हो कि मैं चिढकर फेक न दू, बल्कि शुरू से आखिर तक सब कुछ आसानी से पढ जा सकू।

आचार और आचरण मे राजलक्ष्मी उस युग की प्राणी है। प्रणय-निवेदन की अधिकता तो दूर की बात है, बल्कि यह भी याद आता कि उसने मेरे समक्ष कभी कहा हो कि, 'प्रेम करती हू।' उसने चिट्ठी लिखी है—मेरी प्रार्थना के अनुकूल अनुमति देकर। तो भी, न जाने क्या है, पढने मे जाने क्यो डर लगने लगा। उसके बाल्यकाल की याद आ गई। उस समय गुरु महाशय की पाठशाला मे उसका पढ़ना-लिखना बद हो गया था। बाद मे शायद घर पर ही थोडा-बहुत पढ-लिख लिया होगा। अतएव भाषा का इन्द्रजाल, शब्दो की झकार, पदविन्यास के माधुर्य की उसके पत्र मे आशा करना अन्याय है। कुछ मामूली प्रचलित बातो मे ही मन के भाव व्यक्त करने के अलावा वह और क्या करेगी? अनुमति देकर सामान्य शुभकामना की दो पक्तिया होंगी,—यही तो? पर लिफाफा खोल कर पढना शुरू करते ही कुछ देर के लिए बाहर का और कुछ भी याद न रहा। पत्र लबा नही है, किंतु भाषा और भगी जितनी सरल समझ रखी थी, उतनी ही नही है। मेरे आवेदन का उत्तर उसने इस तरह दिया है

'काशीधाम

"प्रणाम के उपरात सेविका का निवेदन।

अब की बार मिलाकर कुल सौ मर्तबा तुम्हारा पत्र पढा। फिर भी यह समझ मे नही आया कि तुम पागल हो गये हो या मैं। तुमने सभवत यह समझ लिया हो कि मैंने तुम्हे पडा हुआ पा लिया था। किंतु तुम कही पडे हुए नही थे, बहुत तपस्या के बाद तुम मिले थे, बहुत आराधना के बाद। इसलिए विदा देने के अधिकारी तुम नहीं। मुझे त्यागने का मालिकाना स्वत्वाधिकार तुम्हारे हाथो में नही है।

"तुम्हे याद नही, फूलो के बदले करौंदे तोडकर, उनकी माला गूथकर किस शैशव मे तुम्हे वरण किया था मैंने। हाथो मे काटे चुभ जाने के कारण रक्त बहने लगता, लाल माला का लाल रग पहचान नही सके थे तुम। बालिका की पूजा का अर्घ्य उस दिन तुम्हारे गले मे था। परतु तुम्हारे हृदय पर जो रक्त-रेखा मे लेखा अकित कर देती थी, वह तुम्हारी दृष्टि मे नही पडी। किंतु जिसकी दृष्टि से ससार का कुछ भी छिपा नही रह सकता उसके चरणकमलो मे मेरा वह निवेदन पहुच गया था।

"उसके बाद आई दुर्योग की रात। काले मेघो ने मेरे आकाश का आलोक ढक दिया। लेकिन वास्तव मे वह मैं ही हूँ या और कोई, ये बाते इस जीवन मे सचमुच हुईं या मैं साई-साई स्वप्न देख रही थी, यह सोचते हुए अक्सर मैं डर जाती हू कि मैं पागल न हो जाऊ। ऐसे समय सब भूलकर जिसका ध्यान लगाकर बैठ जाती हू, उसका नाम नही लिया जाता। यह किसी से कहने की बात नही है। उनकी क्षमा ही मेरे जगदीश्वर की क्षमा है। इसमे गलती नही, सदेह नही है। यहा मैं निर्भय हू।

''हा तो मैंने कहा था कि इसके बाद मेरे दुर्दिनों की रात आई, कलक ने दोनो आंखो की ज्योति बुझा दी। किंतु क्या मनुष्य का समस्त परिचय यही है? इस अखड ग्लानि के घने आवरण के बाहर क्या उसका और कुछ भी शेष नही होता?

''है। उसे मैंने अव्याहत अपराध के बीच-बीच बार-बार देखा है। यदि ऐसा न होता, अतीत का राक्षस यदि मेरे समस्त अनागत मगल को नि शेष रूप से ग्रास बना लेता, तो फिर तुम मुझे मिलते कैसे? तुम्हे लाकर फिर मेरे ही हाथो मे कौन सौंप जाता?

''तुम मुझ से चार-पाच साल बडे हो, तथापि तुमको जो अच्छा लगता है वह मुझे शोभा नही देता। मैं बगाली घर की लडकी हूँ, जीवन के सत्ताईस साल पार कर लेने के बाद और जीवन का दावा नही करती। मैं चाहे कितनी ही अधम क्यो न होऊ, तुम मुझे गलत मत समझना। यदि वह बात तुम्हारे मन मे क्षणभर के लिए घुणाक्षर न्याय से भी आ जाय तो मेरे लिए इससे बढकर शर्मनाक बात और कोई नहीं है। बकू जिए, वह बडा हो गया है। उसकी बहू आ गई है—तुम्हारे विवाह के बाद उन लोगो के सामने मैं कौन-सा मुह लेकर निकलूगी। कैसे सह पाऊगी यह अपमान?

''यदि कभी तुम बीमार पड जाओ तो सेवा कौन करेगा—पूंटू? और मैं तुम्हारे घर के बाहर से ही नौकरो से हाल-चाल पूछकर वापस लौट आऊगी? इसके बाद भी जिन्दा रहने के लिए कहते हो?

''तुम शायद सवाल करोगे—तो क्या सदा ऐसा ही नि.संग जीवन बिताऊ? किंतु सवाल चाहे जो भी हो, उसका जवाब देने की जिम्मेदारी मुझ पर नही, तुम्हारे ऊपर है। फिर भी, यदि तुम एकदम ही कुछ न सोच सको—यदि इस हद तक बुद्धि का क्षय हो गया हो—तो मैं उधार दे सकती हू, उसे वापस करना नही पड़ेगा—लेकिन देखो, यह उधार कही अस्वीकृत मत कर देना।

''तुम सोचते हो कि गुरुदेव ने मुझे मुक्ति का मत्र दिया है, शास्त्रो ने मेरे लिए पथ का सधान किया है, सुनदा ने धर्म की प्रवृत्ति दी है, और तुमने दिया है केवल भार—बोझ। ऐसे ही अधे हो तुम लोग।

''मैं पूछती हूँ, तुम्हे तो तेईस साल की उम्र मे पा लिया था मैंने, इसके पूर्व कहां थे ये सब? इतना अधिक तुम सोच सकते हो, और यह बात नही सोच सकते?

''मैं आस लगाये थी कि एक दिन मेरे सारे पापो-सतापो का अत हो जाएगा, निष्कलुष हो जाऊगी मैं। यह लोभ क्यों है, जानते हो? स्वर्ग के लिए नही—वह नही चाहिए मुझे। मेरी कामना तो यह है कि मरने के बाद पुन. जन्म ले सकूं। इसका अर्थ तुम समझ सकते हो क्या?

''मैंने सोचा था कि पानी की धारा मे कीचड मिल गया है, उसे निर्मल करना ही पडेगा मुझे किंतु आज यदि उसका मूल स्रोत ही सूख जाएगा, तो पड़ा रह जाएगा मेरा जप-तप, मेरी पूजा-अर्चना, रह जाएगी सुनंदा, पडे रहेगे मेरे गुरुदेव।

मैं स्वेच्छा से मरना नही चाहती। किंतु मेरा अपमान करने का ही कूट कौशल बनाया है तुमने, तो इस ख्याल से बाज आओ। तुम यदि विष दे दोगे मुझे तो मैं पी लूगी, किंतु यह (अपमान) न ले सकूगी। तुम मुझे जानते हो, इसलिए यह मैंने बता दिया कि जो सूर्य अस्त हो जाएगा, उसके पुन. उदित होने की प्रत्याशा मे बैठे रहने का समय मेरे पास अब नही है। इति। राजलक्ष्मी।''

मुक्ति मिली। सुनिश्चित कठोर अनुशासन की चरम लिपि भेजकर उसने एक तरफ से मुझे एकदम निश्चिंत कर दिया। उस विषय मे, इस जीवन मे, सोचने के लिए अब और कुछ नही रहा। किंतु नि.सशय से यह तो ज्ञात हो गया कि मैं क्या नही कर सकूगा। किंतु इसके आगे मुझे क्या करना होगा, इस बारे मे राजलक्ष्मी बिल्कुल चुप है। शायद उपदेशो-भरा एक पत्र किसी और दिन लिखेगी, अथवा मुझे ही सशरीर तलब करेगी। किंतु इस वक्त जो व्यवस्था हो गई है वह बहुत ही बढ़िया है। उधर बाबा महोदय सभवत. कल तडके ही आ धमकेगे। उन्हे भरोसा दे दिया हूँ कि चिता करने की आवश्यकता नही है, अनुमति मिलने मे कोई विघ्न नही पडेगा। यह जो कुछ आ पहुचा है, वह निर्विघ्न अनुमति ही तो है। रतन नाई के हाथ उसने वस्त्र और मौर-मुकुट नही पठाया, यही बहुत है।

दूसरी तरफ, देशवाले मकान मे विवाह का आयोजन निश्चित रूप से आगे बढ रहा होगा। पूटू के स्वजनो मे से कोई-कोई पहुच रहे होगे, तथा सयानी हो चुकी अपराधी कन्या को इतने दिनो की लाछना-भर्त्सना के बदले मे अब कुछ आदर मिल रहा होगा। मुझे यह मालूम है कि बाबा से क्या कहूगा। किंतु कैसे कहूगा, यह समझ मे नही आ रहा है। उनके बेरहम तकाजो, बेशर्म युक्तियो और

दलीलों के बारे मे मन ही मन सोचकर एक ओर हृदय जितना तिक्त हो उठा, दूसरी ओर व्यर्थ प्रत्यावर्तन की निराशा से क्षुब्ध परिवारवालो द्वारा बालिका को और अधिक उत्पीडित किये जाने की बात सोचकर हृदय को उतनी ही व्यथा पहुची। किंतु उपाय क्या है? बिस्तर पर पडा-पडा बहुत रात तक जागता रहा। पूटू की बात भूलने मे देर नही लगी, किंतु गगामाटी की याद बराबर आती रही। उस जन-विरल छोटे गांव की स्मृति मिट ही नही सकती कभी। इस जीवन की गगा-यमुना की धाराए यही आकर मिली थी एक दिन, और एक छोटे अरसे तक पास-पास प्रवाहित होने के बाद एक दिन फिर वही विच्छिन्न हो गई थी। एक साल रहने के वे शरणार्थी दिन श्रद्धा से गहरे, स्नेह से मधुर, आनद से उज्ज्वल और उनकी ही भांति नि शब्द वेदना से स्तब्ध हैं। विच्छेद के दिन भी हमने प्रवचना की निंदा से एक-दूसरे को कलंकित नही किया, लाभ-हानि के वाहियात वाद-विवाद से गगामाटी के शात गृह को हम धूमाच्छादित कर नही आए। वहां के सारे लोग यही जानते हैं कि हम एक दिन फिर वापस आयेगे, फिर हसी-खुशी शुरू हो जाएगी और फिर आरभ होगी भूस्वामिनी की दीन-दुखियो की सेवा और सत्कार। किंतु वह सभावना अब समाप्त हो गयी है, प्रभात की विकसित मल्लिका दिनात का आदेश शिरोधार्य कर शात हो गयी है, यह बात वे सपने मे भी नही सोचेगे।

आखो में नीद नही है। निद्रारहित रात जैसे जैसे भोर की ओर बढ़ती गयी वैसे-वैसे यह इच्छा जोर पकडती गयी कि यह रात खत्म न हो। केवल एक यही चिता मुझे मोहाच्छन्न बनाये रही।

बीती हुई कहानी घूम-फिर कर मन मे आ जाती है। वीरभूमि जिले की वह तुच्छ कुटिया मन पर भूत की भांति सवार हो जाती है, सदा काम-काज मे लगे राजलक्ष्मी के दोनों स्निग्ध हाथ सामने साफ नजर आने लगते हैं—इस जीवन मे परितृप्ति का ऐसा आस्वादन और कभी किया है, यह याद नही आता

अभी तक पकडा ही गया हू, पकड नही पाया हू। किंतु राजलक्ष्मी की सबसे बडी दुर्बलता कहा है, आज पकड ली। वह समझती है कि मैं नीरोग नही हू, किसी भी दिन बीमार पड सकता हू। तब न जाने कहा की एक पुटू मुझे घेर कर बैठी है, राजलक्ष्मी का कोई प्रभुत्व ही नही है—इतनी बडी-बडी दुर्घटना को वह अपने मन मे स्थान नही दे सकती। संसार की सारी वस्तुओ से वह स्वय को वंचित कर सकती है पर यह वस्तु असभव है—उसके लिए यह असाध्य है। मृत्यु तुच्छ है, इसके एक ओर रह गये गुरुदेव और दूसरी ओर रह गये उसके जप-तप, व्रत-उपवास। चिट्ठी में उसने मुझे झूठा भय नही दिखाया है।

भोर के समय सो गया था। रतन की पुकार सुनकर जब उठा तो काफी वक्त हो गया था। उसने बताया, ''न जाने कौन-से एक वृद्ध महाशय घोडा गाडी से अभी पधारे हैं।''

वे बाबा हैं। पर किराये पर गाडी करके? मुझे संदेह हुआ।

रतन ने कहा, ''साथ मे एक सत्रह-अठारह साल की लडकी है।''

वह पुटू है। वह बेहया आदमी उसे कलकत्ते के मकान तक घसीट लाया है। प्रात काल का प्रकाश तिक्तता से म्लान हो गया। कहा, ''उन्हे उस कमरे मे लाकर बैठाओ रतन, मैं मुह-हाथ धोकर आता हू।'' यह कहकर मैं नीचे के स्नानघर मे चला गया।

घटे भर बाद लौटते ही बाबा ने मेरी सादर अभ्यर्थना की, मानो मैं ही उनका अतिथि हू, ''आओ बेटा, आओ। तबीयत ठीक है न?''

मैंने प्रणाम किया। बाबा ने हाक लगाई, ''पुटू कहां चली गई?''

पुटू खिडकी की बगल मे खडी होकर रास्ता देख रही थी, पास आकर उसने मुझे नमस्कार किया।

बाबा बोले, ''इसकी बुआ विवाह के पहले एक बार देखना चाहती थी। फूफा तो हाकिम हैं, पाच सौ रुपए महीना पाते हैं। डायमड हारबर मे तबादला हुआ है। घर-गृहस्थी छोडकर बाहर जाने की फुर्सत बुआ को नही है। इसलिए साथ लेता आया। सोचा कि दूसरे के हाथो मे सौंपने के पहले उन्हे एक बार दिखा लाऊ। इसकी दादी मा ने आशीर्वाद देकर कहा, ''पुटू, ऐसा ही भाग्य तेरा भी हो।''

मेरे कुछ कहने के पहले ही खुद बोले वे, ''इतनी जल्दी नही छोडूगा भैया। हाकिम हो चाहे कुछ हो, हैं तो रिश्तेदार—खडे होकर काम पूरा कराना होगा—तभी उन्हे छुट्टी मिलेगी। जानते तो हो बेटा, कि शुभ कार्य मे बहुत विघ्न होते हैं—शास्त्र में कहा है, 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि।' ऐसे एक आदमी के खडे रहने पर किसी को चू तक करने की मजाल नही होगी। हमारे गाव के लोगो का तो विश्वास है नही—वे सब कुछ कर सकते हैं। पर वे तो हाकिम हैं, उनकी तो राशि हीं न्यारी है।''

पुटू के फूफा हैं। समाचार अवातर नही है—मतलब का है।

रतन नया हुक्का खरीदकर यत्न के साथ सजाकर दे गया। थोडी देर ध्यान से देखते के वाद बाबा ने कहा, "ऐसा लगता है कि इस आदमी को कही देखा है।"

रतन ने फौरन ही कहा, 'जी हा, देखा क्यों नही है। "देशके मकान में जब बाबू बीमार थे—"

"ओ, तभी तो कहा कि पहचाना हुआ चेहरा है।"

"जी हा।" कहकर रतन चला गया।

बाबा का मुह अत्यत गभीर हो गया। धूर्त आदमी ठहरे, शायद उन्हे सारी बाते याद आ गई। चुपचाप चिलम के दम लगाते हुए बोले, "आने के लिए दिन देखकर आया था। बहुत अच्छा दिन है। मेरी इच्छा है कि आशीर्वाद का काम ऐसे ही खत्म कर जाऊ। नूतन बाजार मे तो सभी चीजें बिकती हैं। नौकर को एक बार भेज नही सकते? क्या कहते हो?"

जब कुछ भी कहने को न मिला तो किसी तरह सिर्फ कह दिया, "नही।"

"नही? नही क्यो? बारह बजे तक दिन बहुत अच्छा है।—पचाग है?"

मैंने कहा, "पचाग की जरूरत नही। मैं विवाह नही कर सकता।"

बाबा ने हुक्के को दीवार से लगाकर रख दिया। चेहरा देखकर मैं ताड़ गया कि वह युद्ध के लिए तैयार हो रहे हैं। गले को बहुत शात और गभीर बनाकर कहा, "सारा आयोजन एक तरह से पूरा हो गया है, लडकी के व्याह की बात है, हसी-मजाक का मामला तो है नही।—वचन दे आने पर अब ना करने से कैसे काम चलेगा?"

पुटू इधर पीठ किये खिडकी के बाहर देख रही है, और दरवाजे की आड मे रतन कान लगाये खड़ा है। यह भली भांति मालूम हो गया।

मैंने कहा, "वचन देकर तो नही आया था, यह आप भी जानते हैं और मैं भी। कहा था कि एक व्यक्ति की अनुमति मिल जाने पर राजी हो सकता हू।"

"अनुमति नही मिली?"

"नही।"

बाबा एक क्षण रुककर बोले, "पूंटू के पिता कहते हैं कि सब मिलाकर वे एक हजार रुपए देगे। ज्यादा जोर लगाने पर और भी सौ-दो सौ रुपए दे सकते हैं, क्या कहते हो?"

रतन ने कमरे मे आकर कहा, "तंबाकू क्या एक बार और वदल दू?"

"वदल दो। तुम्हारा नाम क्या है जी?"

"रतन।"

"रतन? बडा सुदर नाम है, कहा रहते हो?

"काशी मे।"

"काशी? देवी आजकल देवी शायद काशी मे ही रहती हैं। वहां क्या करती हैं?"

रतन ने मुह उठाकर कहा, "इस समाचार से आप को मतलब?"

बाबा जरा हसकर बोले, "नाराज क्यो होते हो बाबू, क्रोध करने की तो कोई बात नही। गाव की लड़की है न, इसीलिए खबर जानने की इच्छा होती है। शायद कभी उसके पास भी जाना पडे। खैर, वह अच्छी तरह तो है?"

रतन कोई जवाव दिये बिना ही चला गया, और दो मिनट बाद ही चिलम को फूकता हुआ लौट आया और हुक्का हाथ मे थमाकर चला जा रहा था कि बाबा बड़े जोर से कई दम लगाकर ही उठ खडे हुए। बोले, "ठहरो तो भई, जरा पाखाना दिखा दो। सुबह ही निकल पडा हू न।" कहते-कहते वे रतन के आगे ही बहुत तेजी के साथ कमरे के बाहर निकल गये।

पुटू ने मुंह फिराकर देखा और कहा, "बाबा की बातो पर आप एतबार मत कीजिए। पिताजी के पास हजार रुपए कहा हैं जो देगे? किसी तरह दूसरो से गहने मागकर जीजी की शादी की थी,—अब वे लोग जीजी को नही बुलाते। कहते हैं कि हम लड़के की दूसरी शादी करेगे।"

इस लडकी ने इतनी बाते मुझ से पहले नही कही थी। कुछ चकित होकर पूछा, 'तुम्हारे पिताजी वाकई हजार रुपए नही दे सकते?'

पटू ने सिर हिलाकर कहा, "कभी नही। पिताजी को रेल मे सिर्फ चालीस रुपए मिलते हैं। स्कूल की फीस के कारण ही मेरे छोटे भाई की पढाई बद हो गई। वह कितना रोता है।" कहते-कहते उसकी दोनो आखे छलछला आई।

सवाल किया, "सिर्फ रुपए के कारण ही तुम्हारा विवाह नही हो रहा है?"

पटू ने कहा, "हा, इसी कारण। हमारे गाव के अमूल्य बाबू के साथ पिताजी ने सबंध पक्का किया था। उनकी लडकिया भी मुझ से काफी बडी हैं। इस पर मा पानी मे डूब मरने गई तो विवाह रुक गया। इस बार शायद किसी की कुछ न सुनेगे, वही मेरी शादी कर देगे।"

पूछा, "पटू, मैं तुम्हे पसद हू?"

पटू ने लाज से मुह झुकाकर तनिक सिर हिला दिया।

"पर मै भी तो तुम से चौदह-पद्रह साल बडा हू?"

पटू ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया।

पूछा, "क्या तुम्हारा और कही कोई सबध नही हुआ था?"

पटू ने प्रसन्न होकर मुह ऊपर उठाते हुए कहा, "हुआ तो था। आप अपने गाव के कालिदास बाबू को जानते हैं? उनके छोटे बेटे ने बी ए पास किया है। उम्र भी मुझ से थोडी ही ज्यादा है। उसका नाम शशधर है।"

"वह तुम्हे पसद है?"

पटू हठात् हस पडी।

मैंने कहा, "किंतु यदि शशधर तुम्हे पसद न करे तो?"

"पसद क्यो नही करेगा?" पटू ने कहा, "हमारे घर के सामने से ही होकर बार-बार आता-जाता रहता है। रागा दीदी हमी मे कहती थी कि वह सिर्फ मेरे लिए ही चक्कर काटता है।"

"फिर यह शादी हुई क्यो नही?"

पटू का चेहरा धूमिल हो गया। बोली, "उसके पिता हजार रुपए नकद और हजार रुपए के गहने मागते थे। ऊपर से पाच सौ रुपए विवाह मे खर्च हो जाते कि नही? इतना तो जमीदार के घर की लडकी के लिए ही हो सकता है। सच है कि नही? मेरी मा उनके घर गई और बहुत हाथ-पैर जोडे, पर उन्होने एक नही सुनी।"

"शशधर ने कुछ नही कहा?"

"नही, कुछ नही। पर वह भी तो बहुत बडा नही है—फिर उसके माता-पिता जिदा हैं न?"

"यह तो सही है। शशधर का व्याह हो गया?"

पटू व्यग्र होकर बोली, "नही, अभी नही हुआ है। सुना है कि शीघ्र ही होने वाला है।"

"अच्छा, वहा तुम्हारी शादी हो जाने पर यदि वे लोग तुम से प्रेम न करे तो?"

"मुझ से? प्रेम क्यो नही करेगे? मैं रसोई बनाना, सिलाई करना और गृहस्थी के सारे काम जानती हू। मैं अकेले उनका सारा काम कर दूगी।"

बगाली घराने की लडकी इससे अधिक और क्या जानती है? अपने शारीरिक परिश्रम द्वारा ही वह सारी कमियो की पूर्ति कर देना चाहती है। पूछा, "उन लोगो का सब काम अवश्य करोगी न?"

"हा, निश्चय ही करूगी।"

"तो जाकर तुम अपनी मा से कह देना कि श्रीकात दादा ढाई हजार रुपए भेज देगे।"

"भेज देगे आप? तो फिर वचन दीजिए कि शादी के दिन आएगे।"

"अच्छा, आऊगा।"

दरवाजे की देहली पर बाबा की आवाज सुनाई पडी। उन्होने लाग से मुह पोछते-पोछते कमरे के अदर प्रवेश किया और कहा, "तुम्हारा पायखाना तो बहुत बढिया है भैया। सो जाने की इच्छा हो जाती है। गया कहा रतन? चिलम और तबाकू सजा दे न।"

चार

इस दुनिया का सबसे बड़ा सत्य यही है, मनुष्य को सदुपदेश देने से कोई लाभ नही होता, सही सलाह पर कोई तनिक भी ध्यान नही देता। किंतु, क्यो कि यह सत्य है, इसलिए इसका व्यतिक्रम भी होता है। इस तरह की एक घटना सुनाता हू।

बाबा ने दात निपोरकर आशीर्वाद दिया और अत्यत प्रसन्नता के साथ प्रस्थान किया। पुटू ने भी बहुत सारी चरण-रज लेकर आदेश पाला। किंतु उनलोगो के चले आने के बाद मेरे परिताप की सीमा ही न रही। मन विप्लवी होकर केवल तिरस्कार करने लगा आखिर होते कौन हैं ये लोग जिन्हे विदेश मे नौकरी कर अनेक कष्टो से संचित किया हुआ धन दे दोगे? सनक मे आकर यदि कुछ कह ही दिया तो क्या इसका अर्थ यह हो गया कि अब दाता कर्ण बनना होगा? न जाने कहा की इस लडकी ने ट्रेन मे मागे बगैर पेडे और दही खिलाकर अच्छा फांसा फदे मे मुझे! एक फंदा काटते-काटते एक और फदे मे फस गया। बच निकलने की तरकीब सोचते-सोचते माथा गर्म हो गया, और उस निरीह कन्या के प्रति क्रोध और विरक्ति की सीमा ही न रही। और यह शैतान बाबा! मनाने लगा कि अब यह अपने घर न पहुच पावे, शीत-ताप के कारण मार्ग मे ही मर जाय! किंतु यह आशा निराधार है। भली भांति जानता हू कि यह मनुष्य किसी हालत मे मरने वाला नही है, और अब, जब उसे मेरे मकान का पता एक बार चल गया है तब, फिर आएगा तथा जैसे भी सभव होगा, रुपए वसूल करेगा। सभव है कि इस बार उन हाकिम फूफा महाशय को भी साथ ले आवे। एक ही रास्ता है—य पलायति सजीवति। टिकट खरीदने गया, किंतु जहाज मे जगह ही नही रह गई-सारे टिकट पहले ही बिक चुके हैं। इसलिए दूसरी मेल की प्रतीक्षा करनी ही होगी और उसमे अभी छह-सात दिनो की देर है।

एक उपाय और है, क्यो न घर ही बदल दिया जाय तो खोजने पर भी बाबा को न मिले! किंतु इतनी बढिया जगह इतनी जल्दी कहा मिलेगी? परंतु शिकारी के हाथो से प्राण-रक्षा के सबध मे स्थिति विकट हो जाने पर भले-बुरे का प्रश्न ही गौण है—यथारण्य तथा गृहम्।

भय है कि मेरा यह गुप्त उद्वेग रतन की दृष्टि मे न आ जाय। किंतु कठिनाई तो यह है कि वह यहा से जाना ही नही जाहता। उसे काशी की अपेक्षा कलकत्ता अधिक भा गया है। मैंने पूछा, "पत्र का उत्तर लेकर तुम क्या कल ही लौट जाना चाहते हो, रतन?"

छूटते ही जवाब दिया रतन ने, "जी नही। मा को आज दोपहर मैंने एक पोस्टकार्ड छोड दिया कि मुझे वापस आने मे दो-चार दिनो की देर होगी। मृत सोसाइटी (अजायघर) और जीवित सोसाइटी (चिडियाखाना) देखे बगैर नही जाऊँगा। फिर अब कब आना हो, कोई ठिकाना तो हैं नही इसका।"

"किंतु वे तो उद्विग्न हो सकती हैं?" मैंने कहा।

"जी नही। लिख दिया है कि गाड़ी मे लगे धक्को की थकान अभी दूर नही हुई है।"

"किंतु चिट्ठी का जवाब . "

"जी, आप दीजिए न। कल ही भेज दूगा रजिस्ट्री से। उस घर मे मा का पत्र खोलने का साहस यम भी नही करेगा।"

मौन धारण कर बैठा रहा। एक भी तरकीब नही चली नाई के बेटे के सामने। सारे प्रस्ताव निरस्त कर दिये।

बाबा जाते-जाते रुपयो की बात प्रचारित कर गये। किंतु किसी को यह गलतफहमी नही होनी चाहिए कि उन्होने हृदय की उदारता या अतिशय सरलता के कारण ऐसा किया हो। वे तो ऐसा करके साक्षी बना गये हैं।

ठीक इसी बात का अनुमान रतन ने लगाया। बोला, "बाबू, यदि आप अप्रसन्न न हो तो एक बात कहू।"

"कौन-सी बात रतन?"

"ढाई हजार रुपए की रकम थोडी नही है," रतन ने कुछ सकुचाते हुए कहा, "वे कौन होते हैं जिनकी शादी के लिए आपने इतने रुपए देने की बात कह दी? इसके अतिरिक्त, वह बूढा बाबा हो या और कोई, किंतु भलामानुस नही है। उसे देने की बात कहना अच्छा नही हुआ बाबू!"

उसका मन्तव्य सुनकर जैसे एक अकथ्य आनद मिला वैसे ही मन को बल भी मिला, और यही तो मैं चाहता था। फिर भी अपने शब्दो मे किंचित् सदेह का पुट देकर बोला, "यह कहना अच्छा नही हुआ, क्यो रतन?"

रतन बोला, "हा बाबू, निश्चय ही अच्छा नही हुआ। रुपए भी तो कम नहीं हैं, और फिर किसलिए—कहिये तो?"

"ठीक तो है," मैंने कहा, "तो नही देगे।"

कुछ देर आश्चर्य से देखते रहने के बाद रतन बोला, "वह छोडेगा ही क्यो?"

"नही छोडेगा तो करेगा क्या?" मैंने कहा, "कोई लिखकर तो दिया नही है, और फिर यही कौन जानता है कि उस समय तक मैं यही रहूगा या बर्मा चला जाऊगा?"

रतन क्षणभर चुप रहकर हसा। फिर बोला, "आप उस बूढ़े को पहचान नही पाये, बाबू। उस आदमी को शर्म और मानापमान छू तक नही गया है। रो-धोकर, याचना कर या फिर डरा-धमकाकर वह रुपए तो किसी न किसी तरह वसूलेगा ही। यदि आप से यहां भेट न हुई तो वह लडकी को लेकर काशी जाएगा, और मा से रुपया वसूल कर ही रहेगा। मा को बहुत शर्म आएगी बाबू, यह तरीका ठीक नही है।"

यह सुन कर मैं स्तब्ध होकर बैठा रहा। रतन मुझसे बहुत अधिक बुद्धिमान है। आकस्मिक निरर्थक हठ का दड तो मुझे चुकाना ही पडेगा, कोई निस्तार नही।

ग्रामवासी बाबा को पहचानने में रतन ने भूल नही की। यह तब समझ मे आया जब कि चौथे दिन वे फिर लौटकर आये। आशा थी कि इस बार हाकिम फूफा भी उनके साथ जरूर आयेंगे, लेकिन हाजिर हुए वे अकेले ही। बोले, "बेटा, दस गावो मे धन्य-धन्य हो रहा है। सब कहते हैं कि कलियुग मे ऐसा कभी नही सुना। गरीब ब्राह्मण की कन्या का ऐसा उद्धार कभी किसी ने नही देखा। आशीर्वाद देता हूं कि तुम चिरंजीवी होओ।

पूछा, "शादी कब है?"

"इसी महीने की पच्चीस तारीख तय हुई है, बीच मे दस दिन बाकी है, कल 'देखना' पक्का हो जाएगा, आशीर्वाद—करीब तीन बजे के बाद मुहूर्त नही है, इसके भीतर ही सब शुभ कार्य पूरे कर लेने होंगे। किंतु बिना तुम्हारे गये सब रुका रहेगा, कुछ भी नहीं हो सकेगा। यह लो अपनी पुटू की चिट्ठी। उसने अपने हाथ से लिखकर भेजी है। पर यह भी कहे देता हू बेटा, कि जिस रत्न को तुमने अपनी इच्छा से खो दिया, उसका जोड नही है।" यह कहकर उन्होंने एक पीले रग का मुडा हुआ कागज का टुकडा मेरे हाथ मे दे दिया।

कुतूहलवश चिट्ठी पढ़ने की चेष्टा की। बाबा ने अचानक दीर्घ नि श्वास छोडकर कहा, "कालिदास रुपए वाला है तो क्या हुआ? बिलकुल नीच है—चमार। उसके लिए आख की शर्म नाम की कोई चीज ही नही। कल ही रुपया-पैसा सब नकद चुका देना होगा। गहने वगैरह अपने सोनार से बनवायेगा। वह किसी का विश्वास नही करता—यहा तक कि मेरा भी नही।"

उस आदमी मे बडी खराबी है। बाबा तक का विश्वास नही करता—आश्चर्य!

पुटू ने अपने हाथ से चिट्ठी लिखी है, एक-दो पृष्ठ की नही बल्कि ठसाठस भरे चार पृष्ठो की। चारो पृष्ठो मे कातरता के साथ विनती है। ट्रेन मे रांगा दी ने कहा था कि 'आजकल के नाटक और नाविल भी हार मान ले', केवल आजकल के ही क्यों, सभी कालो के नाटक-नाविल हार मान लेगे—यह अस्वीकार नही करूँगा। इस बात का विश्वास हो गया कि इस लिखने के प्रभाव से ही नदरानी का पति चौदह दिन की छुट्टी लेकर सातवे दिन ही आकर हाजिर हो गया था। अतएव दूसरे दिन मैं भी चल दिया, और बाबा ने इसकी जाच खुद ही अपनी आखो से कर ली कि मैंने रुपए अपने साथ ले लिए हैं, को प्रतारणा तो नही कर रहा हू! बोले, "रास्ता चलना देखकर, रुपया लेना ठोक कर। अरे भाई, हम देवता तो हैं नही, आदमी हैं—भूल होते क्या देर लगती है?"

ठीक तो है। रतन कल रात को ही काशी चला गया है। पत्र का उत्तर उसके हाथ से भेज दिया है। लिख दिया है—तथास्तु। पता इस कारण नही दे सका कि कोई ठीक नही है। इस भूल के लिए अपने गुण से क्षमा करने की प्रार्थना भी कर दी है।

ठीक समय से गाँव पहुंच गया, मकान के तमाम आदमियो की दुश्चिंता दूर हुई। जो आदर और सम्मान मिला, उसे बताने के लिए कोश में शब्द नही हैं।

संबंध सुनिश्चित होने और आशीर्वाद देने के क्रम मे कालिदास बाबू से परिचय हुआ। वे जैसे शुष्क प्रकृति के हैं वैसे ही भाभी भी। सबको यह याद दिलाने के अलावा कि वे बहुत रुपए वाले हैं, ऐसा मालूम नहीं पडा कि ससार मे उनका और कोई दूसरा कर्तव्य है। सारा धन खुद उन्ही का कमाया हुआ है। बडे घमड से बोले, "जनाब, किस्मत को मैं नहीं मानता, जो कुछ करूगां वह सब अपने बाहुबल से। देवी-देवताओ के अनुग्रह की भीख भी मैं नही मागता हू। मैं कहूंगा कि देवता की दुहाई कापुरुष देते हैं।"

बडे आदमी और छोटे-मोटे ताल्लुकेदार होने के कारण उनके यहा गाव के प्रायः सभी लोग उपस्थित थे, और शायद अधिकाश के वे महाजन थे और बहुत कडे महाजन थे,—अतएव सभी ने एक स्वर से उनकी बाते मान ली। तर्क-रत्न महाशय ने एक सस्कृत का श्लोक सुनाया और आस-पास से उसके सबंध मे दो-एक पुरानी कहानियो का भी सूत्रपात हुआ।

उन्होने एक अपरिचित और साधारण व्यक्ति समझकर मेरी ओर असम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा। उस वक्त रुपयो के दु.ख से मेरा हृदय जल रहा था। वह दृष्टि मुझे गवारा नही हुई। मैं एकाएक बोल उठा, "यह तो नही जानती कि किस परिमाण मे आप मे बाहुबल हैं. पर यह मैं स्वीकार करता हू कि रुपए कमाने का जहा तक सवाल है, आपका बाहुबल प्रबल है।"

"इसके मानी?"

मैंने कहा, "मानी खुद मैं। न तो वर को पहचानता और न कन्या को, फिर भी रुपए मेरे खर्च हो रहे हैं और आप के सदूक मे पहुच रहे हैं। तकदीर नही कहते तो और क्या कहते हैं? आपने अभी कहा कि आप देवी-देवताओं का अनुग्रह नही लेते, लेकिन आप के लडके के हाथ की अगूठी से लेकर बहू के गले का हार तक मेरे अनुग्रह के दान से बनेगा। हो सकता है कि बहू-भात की दावत तक का इतजार मुझे ही करना पडे।"

कमरे में बज्रपात होने पर भी शायद सब लोग इतने व्याकुल और विचलित न होते। बाबा ने न जाने क्या कहने की कोशिश की, पर कुछ भी सुस्पष्ट या सुव्यक्त न हो सका। क्रोध मे कालिदास बाबू ने भीषण रूप धारणकर कहा, "आप रुपए दे रहे हैं, यह मुझे कैसे मालूम हो? और दे ही क्यो रहे हैं?"

कहा. "क्यो दे रहा हूं, यह आप नही समझ सकते। मैं आपको समझाना भी नही चाहता। पर सारा गाव सुन चुका है कि मैं रुपया दे रहा हू, सिर्फ आपने ही नही सुना? लडकी की मा ने आपके सारे घरवालो के हाथ-पैर जोडे, पर आप अपने बी ए. पास लडके का मूल्य ढाई हजार से एक पैसा भी कम करने को तैयार नही हुए। लडकी का बाप चालीस रुपए महीने की नौकरी करता है, चालीस पैसे देने की भी उसकी शक्ति नही,—तब आपने यह नहीं सोचा कि आप के लडके को खरीदने के लिए अचानक उसके पास इतना रुपया कहां से आ गया? कुछ भी हो, लडके बेचने मे रुपए बहुत लोग लेते हैं, आप भी ले तो इसमे बुराई नहीं। पर इसके बाद गाववालो को अपने मकान मे बुलाकर रुपयो का घमड और न कीजिएगा। और यह भी याद रखियेगा कि आपने एक बाहर के भिक्षा-दान से लडके की शादी की है।"

बेचैनी और दहशत से सबका मुंह स्याह पड गया। शायद सबने यह सोचा कि अब कुछ भयकर घटना होगी, और कालिदास बाबू फाटक बद करवाकर लाठियो से पीटे बिना किसी को भी घर से वापस नही जाने देगे। किंतु, थोडी देर तक चुप बैठे रहने के बाद उन्होने मुंह ऊपर उठाकर कहा, "मैं रुपए नही लूगा।"

मैंने कहा, "इसके मानी यह कि आप लडके की शादी यहा नही करेगे?"

कालिदास बाबू ने सिर हिलाकर कहा, "नही, यह नही। मैंने वचन दिया है कि शादी करूगा,—इसमें तनिक भी फर्क नही होगा। कालिदास मुखर्जी कही हुई बात के विरुद्ध कार्य नही करता। आपका नाम क्या है?"

बाबा ने व्यग्र कंठ से मेरा परिचय दिया। कालिदास बाबू ने पहचानकर कहा, "ओ.—ठीक है। इनके बाप के साथ एक बार मेरा बहुत ज्बर्दस्त फौजदारी का मामला चला था।"

बाबा ने कहा, "जी हा, आप कुछ भी नही भूलते। ये उन्ही के लडके हैं और रिश्ते मे मेरे नाती लगते हैं।"

कालिदास बाबू ने प्रसन्न कंठ से कहा, "ठीक है। मेरा बड़ा बेटा यदि जीवित होता तो इतना ही बड़ा होता। शशधर की शादी में आना, बेटा। हमारी ओर से उस दिन तुम्हारा निमंत्रण रहा।"

शशधर उपस्थित था। उसने एक बार कृतज्ञ नेत्रों से मेरी ओर देखा और तत्काल मुंह नीचे कर लिया।

मैंने उठकर प्रणाम किया। कहा, "चाहे जहां भी रहूं, लेकिन कम से कम बहू-भात के दिन आकर नववधू के हाथ का अन्न खा जाऊंगा। पर मैंने बहुत-सी अप्रिय बातें कही हैं, आप मुझे क्षमा करेंगे।

कालिदास बाबू बोले, "यह सच है कि अप्रिय बातें कही है, पर मैंने क्षमा भी कर दिया है। अभी जाने का काम नहीं श्रीकान्त, शुभ कार्य के उपलक्ष्य में मैंने थोड़ा-सा खाने का भी आयोजन किया है। तुम्हें खाकर ही जाना होगा।"

"जैसा कहेंगे वही होगा," कहकर फिर बैठ गया।

उस दिन पात्र को आशीर्वाद देने से लेकर उपस्थित अभ्यागतों के खाने-पीने तक के सारे काम निर्विघ्न सुसम्पन्न हो गये। इस अध्याय के प्रारंभ में सदुपदेश के बारे में जिस नियम का उल्लेख किया था, उसके व्यतिक्रम का एक उदाहरण पुटू का विवाह है। संसार में सिर्फ यही एक उदाहरण अपनी आंखों से देखा है। कारण, निःसंपर्कीय, अपरिचित, अभागी लड़की के बाप का कान ऐंठते ही जहां रुपए वसूल हो जाते हैं वहां वैष्णव बनकर हाथ जोड़ने पर बाघ के ग्रास से निस्तार नहीं मिलता। निष्ठुर, निर्दय इत्यादि गाली-गलौज कर समाज और तकदीर को धिक्कारने पर किंचित् क्षोभ मिट सकता है, प्रतिकार नहीं होता, क्योंकि दूल्हे के बाप के हाथ प्रतिकार नहीं है, वह तो लड़की के बाप के हाथों में ही है।

पांच

गौहर की खोज में आया तो नवीन मिल गया। मुझे देखकर वह प्रसन्न हुआ किन्तु उसका मिजाज बहुत ही रूखा था। बोला, "जाकर वैष्णवियों के आश्रम में देखिये, कल से तो घर आए ही नहीं।"

"यह माजरा क्या है नवीन! यह वैष्णवी कहां से आ गयी?"

"एक वैष्णवी नहीं, पूरा का पूरा एक दल आ जुटा है।"

"रहती कहां हैं वे?"

"यहीं मुरारीपुर के अखाड़े में।" कहकर नवीन ने एक निःश्वास छोड़ा, फिर कहा, "हाय, बाबू, अब न तो वे राम रह गये हैं और न वह अयोध्या। वृद्ध मथुरा दास के मरते ही उनके स्थान पर एक छोकरा वैरागी आ गया है, उसके कोई चार गंडा सेवा-दासियां हैं। द्वारकादास वैरागी से हमारे बाबू की बड़ी दोस्ती है। वहीं तो प्रायः रहते हैं।"

मैंने चकित होकर कहा, "परंतु तुम्हारे बाबू तो मुसलमान हैं, वैष्णव वैरागी अपने आश्रम में उन्हें रहने कैसे देंगे?"

नवीन नाराज होकर बोला, "इन सब बाउल सन्यासियों को क्या धर्माधर्म का ज्ञान है? ये जाति-जन्म कुछ भी मानते ही नहीं। उन्हें जो भी मिल जाता है, उसे ही वे अपने दल में खींच लेते हैं, सोच-विचार कुछ नहीं करते।"

पूछा, "लेकिन तब की बार जब मैं तुम्हारे यहां छह-सात दिन था, तब तो गौहर ने उनके बारे में कुछ नहीं कहा?"

नवीन बोला, "कह ही देते तो कमललता के गुण-दोष प्रकट नहीं हो जाते? केवल उन कुछ दिनों ही बाबू अखाड़े के पास नहीं गये। लेकिन आप जैसे ही यहां से गये वैसे ही बाबू कापी और कलम लिए अखाड़े में जा पहुंचे।

पूछताछ करने के बाद पता चला कि द्वारिका बाउल गाना गाने और दोहा रचने में माहिर है। गौहर इसी चक्कर में फंस गया है। उसी को अपनी कविता सुनाता है, उसी से अपनी गलतियों का संशोधन कराता है और कमललता एक युवती वैष्णवी है—उसी आश्रम में रहती है। उसकी बातें सुनकर लोग मुग्ध हो जाते हैं। वह देखने में सुंदर है, गाना सुंदर गाती है। कभी-कभी गौहर वैष्णवों की सेवा के लिए

रुपए-पैसा भी देता है। अखाडे की पुरानी दीवार जर्जर होकर गिर गई थी, गौहर ने अपने खर्चे से उसकी मरम्मत करा दी है। यह कार्य उसने उस संप्रदाय के लोगो के जाने वगैर चुपचाप ही किया है।

मुझे याद आया कि बचपन मे इस अखाडे के बारे मे बाते सुनी थी। पुराने जमाने मे महाप्रभु के एक शिष्य भक्त ने इस अखाडे की प्रतिस्थापना की थी। तभी से शिष्य परपरा के अनुसार इसमे वैष्णव वास करते आ रहे है। बड़ा कुतूहल पैदा हुआ। पूछा, "नवीन, मुझे एक बार अखाडा दिखा दोगे?"

नवीन ने सिर हिलाकर इन्कार कर दिया। बोला, "मुझे बहुत काम है, और आप तो इसी देश के हैं, स्वय नही ढूढ लेगे? आधा कोस से अधिक दूर नही है। सामने के इस रास्ते से सीधे उत्तर की ओर जाने पर ही आप को दिखाई दे जाएगा, किसी से पूछना नही पडेगा। सामने वाले तालाब के नीचे वृंदावन-लीला हो रही होगी। दूर से कानो मे आवाज पडेगी—ढूढना नही पडेगा।"

मेरे जाने का प्रस्ताव शुरू से ही नवीन ने पसंद नही किया। मैंने पूछा, "वहा होता क्या है, कीर्तन?"

नवीन बोला, "हां, दिन-रात होता रहता है, खजड़ी और करताल को भी चैन नही मिलता।"

मैंने हसकर कहा, "यह तो अच्छा ही है, नवीन। जाऊ, गौहर को पकड लाऊ?"

इस बार नवीन भी हसा, बोला, "हा जाइए। किंतु देखिएगा, वहा कमललता का कीर्तन सुनकर कही आप खुद ही न अटक जाए।"

"देखू, क्या होता है।" कहकर हसता हुआ तीसरे पहर चल दिया—कमललता वैष्णवी के अखाडे मे जाने के लिए।

जब अखाडे का पता चला तब शायद शाम हो गई थी। दूर से कीर्तन या खजडी-करताल की आवाज सुनाई तो नही पडी, किंतु वह सुप्राचीन बकुल का वृक्ष फौरन नजर आ गया जिसके नीचे टूटी हुई वेदी है। पर एक ही व्यक्ति दिखाई नही दिया। एक क्षीण पथ की रेखा टेढी-मेढी होकर परकोटे के किनारे-किनारे नदी की ओर चली गई है। अनुमान लगाया कि उधर शायद किसी से कोई अता-पता मिले, अतएव उधर ही कदम बढा दिये। यह भूल नही की। शीर्ण-सकीर्ण शैवाल से ढकी हुई नदी के किनारे एक परिष्कृत और गोबर से पुती हुई ऊची भूमि पर गौहर और एक अन्य व्यक्ति बैठे हैं। अंदाज लगाया कि ये ही सन्यासी द्वारिकादास हैं—अखाडे के वर्तमान अधिकारी। नदी-तीर होने के कारण उस समय तक वहा सध्या की धुध घनी नही हुई थी, सो बाबाजी को भली भाति देख सका। देखने मे वह आदमी भद्र और ऊची जाति का ही जान पडा। वर्ण श्याम, दुबली-पतली काठी होने के कारण। कुछ लबा मालूम होता है, माथे के बाल जटा की तरह सामने की ओर बधे हुए हैं, मूछ-दाढी अधिक नही—थोडी है। आखो मे और मुह पर एक सहज हसी का भाव है। उम्र का सही अनुमान नही कर सका, तो भी पैंतीस-छत्तीस से अधिक नही जान पडी। दोनो मे से किसी ने भी मेरे आगमन और उपस्थिति पर ध्यान नही दिया, दोनो ही नदी के उस पार पश्चिम दिगत मे आखे गडाये स्तब्ध बने रहे। वहा नाना रग और नाना प्रकार के मेघो के टुकडो के बीच तृतीया का क्षीण पाडुरग चद्रमा चमक रहा है, मानो उसके कपाल के बीच मे अति उज्ज्वल साध्य-तारा उदित हो रहा है। बहुत नीचे दिखाई देते हैं दूर ग्रामो के नीले पेड-पौधे—मानो इनका कही अत नही, सीमा नही। काले, सफेद, पीले—नाना रगो के टूटे-फटे बादलो पर इस समय भी अस्तगत सूर्य की शेष दीप्ति खेल रही है—ठीक वैसे ही जैसे कि किसी दुष्ट बालक के हाथ मे रग की तूलिका पड जाने से तस्वीर का पूरा श्राद्ध हो रहा हो। यह आनद क्षणभर ही रहा-क्यो कर इतने मे ही चित्रकार ने आकर कान मल दिये और हाथ से तूलिका छीन ली।

उस स्वल्पतोय नदी का थोडा-सा भाग सभवत गाव वालो ने साफ कर लिया है। सामने के उस स्वच्छ, काले और थोडे पानी पर छोटी-छोटी रेखाओ मे चद्रमा और साध्य तारे का प्रकाश पास-पास ही पडकर झिलमिला रहा है —मानो स्वर्णकार कसौटी पर सोना घिसकर दाम जाच रहा हो। पास ही कही वन मे सैकडो वन-मल्लिकाए खिली हैं और उनकी गध से मानो सारी वायु भारी हो गयी है। निकट के ही किसी पेड के असख्य पक्षियो के घोसलो से उनके बच्चो की एक-सी ची-ची विचित्र मधुरता से कानो मे अविराम आ रही है। यह सब ठीक है। और तद्गत-चित्त जो दो आदमी जडभरत की भांति बैठे हुए है, इसमे सदेह नही, वे भी कवि हैं। पर सध्या समय इस जगल मे मैं यह सब देखने नही आया हूं। नवीन ने कहा था कि वैष्णवियो का एक दल यहां है और उनमे कमललता वैष्णवी सर्वश्रेष्ठ हैं। वे कहा हैं?

पुकारा, "गौहर!"

ध्यान भंग कर गौहर हतबुद्धि के समान मेरी ओर ताकता रह गया।

बाबाजी ने उसे जरा हिलाकर कहा, "गुसाईं, ये ही तुम्हारे श्रीकात हैं न?"

गौहर ने तेजी से आकर मुझे बडे जोर से बाहु-पाश मे आबद्ध कर लिया, इस तरह कि जैसे उसका वह आवेग रुकना ही नही चाहता हो। किसी तरह मैं अपने को मुक्त कर बैठ गया। बोला, "गुसाईंजी ने मुझे एकाएक कैसे पहचान लिया?"

बाबाजी ने हाथ हिलाया, "यह नहीं होगा गुसाईं, इसमे से आदरवाचक 'जी' बाद देना होगा। तभी तो रस आएगा।"

मैंने कहा, "अच्छा, बाद दे दिया। लेकिन एकाएक मुझे पहचान कैसे लिया?"

बाबाजी ने कहा, "एकाएक कैसे पहचानूगा? तुम तो वृंदावन के हमारे पहचाने हुए हो गुसाईं, और तुम्हारी दोनों आखें तो रस की समुद्र हैं जो देखते ही आखों मे भर जाती हैं। जिस दिन कमललता आई थी, उसकी दोनों आंखें भी ऐसी ही थीं,—उसे देखते ही पहचान गया और बोल उठा, कमललता, कमललता, इतने दिनों कहा थी?' कमल आकर जो अपनी हो गई तो उसका आदि-अत, विरह-विच्छेद नहीं रहा। यही तो साधना है गुसाईं, इसी को तो कहता हू रस की दीक्षा।"

मैंने कहा, "कमललता को देखने ही तो आया हू गुसाईं, वह कहां है?"

बाबाजी बहुत खुश हुए। बोले, "उसे देखोगे? पर गुसाईं, तुम उससे अपरिचित नहीं हो, वृंदावन में अनेक बार देखा है। शायद भूल गये हो। पर देखते ही पहचान जाओगे कि वह कमललता है। गुसाईं, उसे एक बार पुकारो न।" कहकर बाबाजी ने गौहर को पुकारने का इशारा किया। इनके निकट सब गुसाईं हैं। बोले, "कहो कि श्रीकात तुम्हें देखने आया है।"

गौहर के चले जाने के बाद पूछा, "गुसाईं, मेरे बारे मे सारी बाते शायद गौहर ने तुम्हें बताई हैं?"

बाबाजी ने सिर हिलाकर कहा, "हा, सब बताया है। जब उससे पूछा, 'गुसाईं, तुम छह-सात दिन क्यो नही आये?' तो उसने कहा कि श्रीकात आये थे। उसने यह भी बताया कि तुम फिर जल्दी ही आओगे। यह भी मालूम हुआ कि तुम बर्मा जानेवाले हो।"

सुनकर संतोष की सास छोडकर मन ही मन मैंने कहा, रक्षा हुई। डर था कि वास्तव मे किसी अलौकिक आध्यात्मिक शक्ति के कारण तो ये मुझे देखते पहचान नही गये हैं।

बाबाजी भले ही जान पडे। कम से कम असाधु प्रकृति के नही मालूम हुए। बडे सरल। बाबाजी ने सरलता से यह स्वीकार कर लिया कि न जाने क्यो गौहर ने मेरी सारी बाते, अर्थात् जो कुछ वह जानता है, इन लोगो से कह दी हैं। कविता और वैष्णव-रस-चर्चा मे वे कुछ-कुछ सनकी-से, कुछ विभ्रात-से जान पडे।

कुछ देर बाद ही गौहर गुसाईं के साथ कमललता आ उपस्थित हुई। उम्र तीस से अधिक नही होगी। श्याम वर्ण, इकहरा शरीर, कलाई में पीतल की कुछ चूडिया हैं—सोने की भी हो सकती हैं। बाल छोटे-छोटे नहीं हैं, गिरह देकर पीठ पर झूल रहे हैं। गले मे तुलसी की माला है और हाथ की थैली के अदर भी तुलसी की ही जपमाला है। छापे-वापे का बहुत अधिक आडबर नहीं है, अथवा सुबह के समय कुछ रहा हो, इस समय मिट-सा गया है। उसके मुह की ओर देखकर मैं अत्यंत आश्चर्य से भर गया। विस्मय के साथ ध्यान आने लगा कि इन आखो और चेहरे का भाव तो जैसे परिचित है, और चलने का ढग भी जैसे पहले कही देखा है।

वैष्णवी ने वार्ता आरभ की। तत्क्षण ही समझा गया कि वह निम्न स्तर की प्राणी नही है। किसी प्रकार की भूमिका नही बांधी उसने। मेरी ओर सीधे ताक कर उसने कहा, "कहो गुसाईं, पहचान सकते हो?"

"नही," मैंने कहा, "किंतु ऐसा लगता है कि कही देखा है जैसे।"

वैष्णवी ने कहा, "वृंदावन मे देखा था। बडे गुसाईंजी से नही सुना?"

"सो तो सुना है।" मैं बोला, "किंतु मैं तो जीवन मे कभी वृंदावन नही गया।"

"गये कैसे नही?" वैष्णवी ने कहा, "बहुत पुरानी बात है, इसीलिए एक-न-एक याद नही आ रही है। वहा गायें चराते, फल तोड लाते, वन-फूलो की माला गूथकर हमारे गले मे पहनाते—सब विसार दिये?" यह कहकर ओठो को दबाकर मद-मद हसने लगी वह।

मैं यह तो समझ गया कि मजाक कर रही है, पर मेरा या बड़े गुसाईंजी का, यह ठीक नही कर सका। वह बोली, "रात हो रही है। अब जगल में क्यों बैठे हो? भीतर चलो।"

मैंने कहा, "जंगल के रास्ते हमें बहुत दूर जाना होगा। कल फिर आयेंगे।"

वैष्णबी ने पूछा, "यहां का पता किसने बताया? नवीन ने?"

"हा, उसी ने।"

"कमललता की बात नहीं बताई?"

"हां, बताई थी।"

"इस बारे में तुम्हें सावधान नहीं किया कि वैष्णवी का जाल तोडकर अचानक बाहर नहीं जाया जा सकता?"

हसते हुए बोला, "हां, यह भी कहा है।"

वैष्णवी हस पडी, बोली, "नवीन होशियार मांझी है। उसकी बातें न मानकर अच्छा नही किया।"

"क्यो भला?"

वैष्णवी ने इसका उत्तर नही दिया। गौहर को दिखाते हुए कहा, "गुसाईं ने कहा था कि नौकरी करने के लिए विदेश जा रहे हो। पर तुम्हारे तो कोई है नही, फिर नौकरी क्यो करोगे?"

"तब क्या करू?"

"हम जो करती हैं। गोविद जी का प्रसाद तो कोई छीन नही सकता।"

"यह जानता हू। पर वैरागी-वृत्ति मेरे लिए नई नही है।"

वैष्णवी ने हंसकर कहा, "समझती हूं। शायद प्रकृति सहन नही करती?"

"नही, अधिक दिन सहन नहीं करती।"

वैष्णवी ओठ दबाकर हसी। बोली, "तुम्हारा काम अच्छा है। भीतर आओ, उन लोगो से तुम्हारा परिचय करा दू। यहा कमलो का वन है।"

"सुना है, पर अधेरे मे लौटेगे कैसे?"

वैष्णवी फिर हंसी, वोली, "अधेरे मे हम लौटने ही क्यो देगी? अधकार दूर तो होगा ही। तब जाना। आओ।"

"चलो।"

वैष्णवी ने कहा, "गौर! गौर!"

"गौर, गौर" कहते हुए मैंने भी अनुसरण किया।

छह

यद्यपि धर्माचरण मे न तो मेरी रुचि है और न विश्वास, फिर भी जिन लोगो को आस्था है उनको मैं बाधा नही पहुचाता। मन मे बिना सशय रखे मैं जानता हूं कि मैं इस गूढतर विषय का ओर-छोर नही ढूढ पाऊगा। तथापि, धार्मिको की मैं भक्ति करता हू। विख्यात स्वामी जी और सुख्यात साधुजी,—किसी को भी छोटा नही कहता, दोनो की ही वाणी मेरे कानो मे समान मधुवर्षा करती है। विशेषज्ञो के मुह से सुना है कि बगाल की आध्यात्मिक साधना का निगूढ रहस्य वैष्णव सप्रदाय मे ही सुगुप्त है, और यही बगाल की खालिस अपनी चीज है। इसके पहले सन्यासी और साधुओ की थोडी-बहुत सगत की है। फल-लाभ का ब्योरा देने की चाहत नही है। पर इस बार यदि दैवात् खालिस चीज नसीब होती हो तो सकल्प कर लिया कि इस अवसर को व्यर्थ नही जाने दूगा। पुटू के बहू-भात के निमन्त्रण मे मुझे जाना ही होगा। कम से कम कलकत्ते के नि सग मेस के बदले ये कई दिन अगर इस वैष्णवी-अखाडे के आस-पास कही काटने पर तो और चाहे जो हो, जीवन के सचय मे विशेष हानि नही होगी।

भीतर आकर देखा कि कमललता का कथन झूठ नही था। वहा सचमुच कमलो का ही वन है, पर दलित-विदलित। मत्त हाथियो से साक्षात्कार तो नही हुआ, किंतु उनके बहुत से पद-चिह्न विद्यमान

थे। ना ना उम्र और तरह-तरह के चेहरो की वैष्णविया ना ना कार्यो मे सलग्न हैं. कोई लड्डू बना रही, कोई मैदा गूद रही है, कोई फल-मूल तराश रही है—यह सब ठाकुर जी के रात के भोग की तैयारियां हैं। एक अपेक्षाकृत अल्प वय की वैष्णवी ध्यानमग्न हो फूलो की माला गूथ रही है, और एक उसी के पास वैठी नाना रगो के छपे हुए छोटे-छोटे कपडो के टुकडे सावधानी से कुंचित कर ढंग से रख रही है। सभवत श्री गोविन्दजी स्नान के बाद इन्हे पहनेगे। कोई भी खाला नही है। उनका काम मे आग्रह और एकाग्रता देखकर आश्चर्य होता है। सब ने मेरी ओर ताका, कितु निमेषमात्र के लिए ही। कुतूहल का अवसर नही है। सबके ओठ हिल रहे हैं, शायद मन ही मन जप हो रहा है। इधर समय बीत गया है। एक-एक कर दिए जलने शुरू हो गये हैं। कमललता ने कहा, "चलो, भगवान को नमस्कार कर आए। कितु, अच्छा, यह तो बताओ कि तुम्हे क्या कहकर पुकारू? 'नये गुसाई' कहकर पुकारू तो कैसा हो?"

मैंने कहा, "क्यो नही पुकारती? तुम्हारे यहा जब गौहर तक 'गौहर गुसाईं' हो गया है, तव मैं तो कम से कम ब्राह्मण का लडका हू। पर मेरे नाम ने क्या बुराई की है? उसी के साथ 'गुसाई' जोड दो न।"

कमललता ने ओठ दबाकर हसते हुए कहा, "यह नही होगा ठाकुर, नही होगा। वह नाम मैं नही ले सकती,—अपराध होता है। आओ।"

"आता हू, पर अपराध किसका?"

"किसका,—यह सुनकर तुम क्या करोगे, तुम तो खूब हो।"

जो वैष्णवी माला गूथ रही थी वह हंस पड़ी और उसने मुह नीचा कर लिया। ठाकुरजी के कमरे मे काले पत्थर और पीतल की राधा-कृष्ण की युगल मूर्तिया हैं। एक नही, वहुत सारी। यहा भी पाच-छह वैष्णविया कार्य-रत हैं। आरती का समय हो रहा है, सास लेने का भी अवकाश नही है।

भक्तिपूर्वक यथा-रीति प्रणाम कर वाहर निकल आया। ठाकुरजी के कमरे के अलावा और सारे कमरे मिट्टी के हैं, पर सभाल-सफाई की सीमा नही है। बिना आसन के कही भी बैठते हुए सकोच नही होता, तथापि कमललता के सामने के बरामदे मे एक ओर आसन बिछा दिया। कहा, "बैठो, तुम्हारे रहने का कमरा जरा ठीक कर आऊ।"

"मुझे आज यही रहना पडेगा क्या?"

"क्यो, भय क्या है? मेरे रहते तुम्हे कष्ट नही होगा।"

मैंने कहा, "कष्ट के लिए नही कहता, कितु गौहर जो नाराज हो जाएगा।"

वैष्णवी बोली, "यह भार मेरे ऊपर है। मेरे रखने पर तुम्हारा मित्र तनिक भी नाराज नही होगा।" कहकर वह हसती हुई चली गई।

अकेला वैठा मैं अन्यान्य वैष्णवियो का काम देखने लगा। सचमुच उनके पास नष्ट करने को तनिक भी समय नही है। मेरी ओर किसी ने मुडकर देखा तक नही। लगभग दस मिनट बाद जब कमललता वापस लौट आई तब काम खत्म कर सभी उठ गई थी। पूछा, "तुम इस मठ की अधिकारिणी हो क्या?"

कमललता ने जीभ काटकर कहा, "हम सब गोविदजी की दासिया हैं—कोई छोटा-वडा नही है। एक-एक पर एक-एक भार है। मेरे ऊपर प्रभु ने यह भार दिया है। यह कहकर उसने मदिर की ओर रुखकर हाथ जोडकर सिर से लगा लिये। बोली, "अब कभी ऐसी बात जवान पर मत लाना।"

"ऐसा ही होगा।" मैंने कहा, "अच्छा, वडे गुसाई और गौहर गुसाई क्यो नही दिखाई दे रहे हैं?

वैष्णवी ने कहा, "वे अभी आते ही होगे। नदी मे स्नान करने गये हैं।"

"इतनी रात को? और इस नदी मे?"

"हा।" वैष्णवी ने कहा।

"गौहर भी?"

"हा, गौहर गुसाईं भी।"

"पर मुझे ही क्यो नही स्नान कराया?"

वैष्णवी ने हसकर कहा, "हम किसी को स्नान नही कराती। वे अपने आप करते हैं। भगवान की दया होने पर एक दिन तुम भी करोगे और उस दिन मना करने पर भी नही मानोगे।"

मैंने कहा, "गौहर, भाग्यवान है। पर मेरे पास तो रुपया नहीं है। गरीब आदमी हू, इस कारण शायद मेरे प्रति परमात्मा की दया नही हो।"

शायद वैष्णवी मेरा इशारा समझ गई, और नाराज होकर कुछ कहने ही वाली थी, पर कहा नही। फिर कहा, ''गौहर गुसाईं कुछ भी हों, पर तुम भी गरीब नही हो। जो मनुष्य ढेर रुपए देकर दूसरे की लड़की का उद्धार करता है, भगवान उसे गरीब नहीं मानते। तुम्हारे ऊपर भी दया होना आश्चर्य नही है।''

मैंने कहा, ''तब तो वह डर की बात है। तो भी भाग्य मे जो लिखा है वह होगा ही, टाला नहीं जा सकता—पर पूछता हूं कि कन्या के उद्धार की खबर तुम्हें कहां से मिली?''

वैष्णवी ने कहा, ''हमे चार जगह से भीख मागनी पडती है, इसलिए हमे तमाम खबरे मिल जाती हैं।''

''पर यह खबर शायद अभी तक नही मिली है कि मुझे रुपए देकर लड़की का उद्धार नही करना पडा?''

वैष्णवी कुछ विस्मित हुई। बोली, ''नही, यह खबर तो नहीं मिली। पर हुआ क्या, शादी टूट गई?''

''शादी नही टूटी, लेकिन कालिदास बाबू टूट गये हैं,—स्वयं दुल्हा के पिता ही। बेटे को बेचकर दूसरे की भिक्षा के दान से मिले दहेज को हाथ पसार कर लेने मे उन्हे शर्म आई। इससे मैं भी बच गया।'' कहकर मैंने सक्षेप मे सारा मामला बता दिया।

वैष्णवी ने सविस्मय कहा, ''कहते क्या हो जी, यह तो बिल्कुल अनहोनी बात हुई।''

''ईश्वर की दया। सिर्फ गौहर गुसाई ही क्या अधेरे मे गदी नदी के पानी मे गोते लगाएगा, ससार मे और कही भी कुछ अनहोनी बात नही हुई? उनकी लीला ही फिर किस प्रकार जाहिर होगी, बोलो?'' कहकर जैसे ही मैंने वैष्णवी का मुंह देखा वैसे ही समझ गया कि यह ठीक नही हुआ,—सीमा लांघ गया हू। किंतु वैष्णवी ने प्रतिवाद नही किया, मंदिर की ओर हाथ उठाकर उसने सिर्फ नि शब्द नमस्कार कर लिया। मानो अपराध को क्षमा करने की याचना की हो।

एक वैष्णवी एक बडे थाल मे मैदा की पूरिया लिए हुए सामने से ठाकुरजी के कमरे के निकट गई। उसे देखकर कहा, ''आज तुम्हारे यहा समारोह है। शायद कोई विशेष त्योहार है—नही?''

वैष्णवी ने कहा, ''नही, आज कोई त्योहार नही है। यह हमारे यहा का रोज का किस्सा है। ठाकुरजी की दया की कभी कमी नही होती।''

''खुशी की बात है। पर आयोजन सभवत रात को ही ज्यादातर होता है।?''

वैष्णवी बोली, ''सो भी नही। सेवा मे सुबह-शाम का कोई सवाल नही है। यदि दया कर दो दिन रह जाओ तो स्वय ही सब कुछ देख लोगे। हम सब दासी की दासी हैं, उनकी सेवा करने के अलावा ससार मे हमारा और कोई काम है ही नही।'' कहकर उसने मंदिर की ओर हाथ जोडकर एक बार पुन नमस्कार किया।

पूछा, ''दिनभर तुम लोगों को क्या-क्या करना होता है?''

वैष्णवी ने कहा, ''आकर जो देखा, वही।''

''आकर देखा मसाला कूटना, रसोई के लिए तरकारी बनाना, दूध दुहना, माला गूथना, कपडे रगना—ऐसे ही और बहुत से काम। तुम सब दिन भर क्या यही सब किया करती हो?''

वैष्णवी ने कहा, ''हा, दिनभर सिर्फ यही करती हैं।''

''पर यह सब तो केवल घर-गृहस्थी के काम हैं, सभी औरते करती हैं। तुम भजन-साधन कब करती हो?''

वैष्णवी बोली, ''यही हमारी भजन-साधना है।''

''यह रसोई बनाना, पानी भरना, कूटना-फटकना, माला गूथना, कपडे रगना—इसी को 'साधना' कहते हैं?''

वैष्णवी ने कहा, ''हा, इसी को साधना कहते हैं। दास-दासियो की इससे बढकर साधना हमे और कहा मिलेगी गुसाई?'' कहते-कहते उसकी दोनो सजल आखे मानो अनिर्वचनीय माधुर्य से परिपूर्ण हो उठीं। एकाएक मुझे ध्यान आया कि इस अपरिचिता का मुह जितना सुदर है, उतना सुदर मुह मैंने ससार मे कभी नही देखा। कहा, ''कमललता, तुम्हारा मकान कहा है?''

वैष्णवी ने आचल से आखे पोछ कर हसते हुए कहा, ''पेड की छाया।''

"पर पेड की छाया तो हमेशा न थी?"

वैष्णवी ने कहा, "तब था ईंट और काठ के बने हुए किसी मकान का एक छोटा-सा कमरा। पर कहानी सुनाने का वक्त तो अब रहा नही गुसाईं। मेरे साथ आओ, तुम्हारा नया कमरा दिखा दू।"

कमरा बढिया है। उसने बास की खूटी पर टगा हुआ एक साफ रेशम का कपडा दिखाते हुए कहा, "यही पहन कर ठाकुरजी के कमरे में आना। देखो, देर न करना।" कहकर वह तेजी से चली गई।

एक ओर एक छोटे-से तख्त पर बिछौना बिछा है। पास ही एक चौकी पर कुछ किताबे और एक थाली मे बकुल-फूल रखे हैं। अभी-अभी शायद कोई प्रदीप जलाकर धूप जला गया है, कमरा अब भी उसकी गध और धुए मे भरा हुआ है—बहुत अच्छा लगा। दिन-भर की क्लाति तो थी ही—ठाकुर देवताओ से सदा दूर-दूर रहता आया हू, उधर आकर्षण नही था—अत' कपडे उतार कर श्रम मे बिछौने पर लेट गया। जाने यह किसका कमरा है, एक रात के लिए वैष्णवी न जाने किसकी शय्या मुझे उधार दे गई है—अथवा शायद यह उसी की है—इन सब विचारो से मेरा मन स्वभावत ही बहुत सकोच अनुभव करता है। पर आज कुछ भी ख्याल न हुआ, मानो न जाने कब से परिचित अपने ही आदमियो के पास आ पहुंचा हू। शायद कुछ तद्रा आ गई थी कि इतने मे ही जैसे किसी ने दरवाजे के बाहर से आवाज दी, "नये गुसाई, मंदिर नही जाओगे? वे तुम्हे बुला जो रहे है।"

चटपट उठ बैठा। मजीरे के साथ-साथ कीर्तन के गाने की आवाज भी कानो मे पहुची। बहुत-से मनुष्यो का समवेत कोलाहल ही नही था, गेय वस्तु भी जितनी ही मधुर थी उतनी ही स्पष्ट थी। नारी-कठ था—बिना आखों से देखे ही निस्सदेह अनुमान किया कि कमललता है। नवीन का विश्वास है कि इस मीठे स्वर से ही उसके मालिक को फास लिया है। सोचा कि यह असभव नही है, और बहुत असंगत भी नही है।

मंदिर मे घुसकर एक ओर चुपचाप बैठ गया, किसी ने मुडकर नही देखा। सब की दृष्टि राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति पर केंद्रित थी। बीच-बीच मे खडी हुई कमललता कीर्तन कर रही है —

> मदन गोपाल जय जय यशोदा के लाला की,
> यशोदा के लाल जय जय, जय नदलाल की।
> नदलाल जय जय गिरिधारी लाल की,
> गिरिधारी लाल जय जय गोविद गोपाल की।।

इन थोडे-से सहज और साधारण शब्दो के आलोडन से भक्तो का गभीर वक्ष-स्थल मथित होकर कौन सा अमृत तरंगित हो उठता है, यह मेरे लिए उपलब्ध करना कठिन है। पर देखा कि उपस्थित व्यक्तियो मे से किसी की आखे शुष्क नही हैं। गायिका की दोनो आखो का प्लावित कर झर-झर अश्रु झर रहे हैं और भावो के गुरु भार से बीच-बीच मे उसका कठ-स्वर टूट जाता है जैसे। मैं इन सब रसो का रसिक नही हू, किंतु मेरे मन के भीतर भी एकाएक न जाने कैसा होने लगा। द्वारिकादास बाबाजी आखें मूदे एक दीवार का सहारा लेकर बैठे थे। यह पता नही चलता कि वे सचेत हैं या अचेत। और सिर्फ थोडी देर पहले की स्निग्ध हास्य-परिहास चचल कमललता ही नही, बल्कि साधारण गृहकर्म मे नियुक्त जो सब वैष्णविया अभी तक साधारण, तुच्छ और कुरूप लगती थीं, वे भी मानो इस धूप के धुए मे आच्छन्न गृह में अनुज्ज्वल दीप के प्रकाश मे क्षणभर के लिए मेरी नजरो में अत्यत सुदर हो उठी। मुझे भी ऐसा लगा मानो पत्थर की यह निकटवर्ती मूर्ति यथार्थ मे आखे मलकर देख रही हो और कान लगाकर कीर्तन के समस्त माधुर्य का उपभोग कर रही हैं।

भावो की इस विह्वल-मुग्धता से मैं बहुत डरता हू, व्यस्त होकर बाहर चला आया। किसी ने लक्ष्य भी नही किया। देखता हू कि प्रागण के एक कोने मे गौहर बैठा है और कही से प्रकाश की एक रेखा आकर उसके शरीर पर पड रही है। मेरे पैरो की आवाज से उसका ध्यान भग नही हुआ, पर उस एकात सम्मोहित मुह की तरफ मैं भी न हिल सका, वही स्तब्ध हो खडा रहा। ऐसा लगा कि सिर्फ मुझे ही अकेला छोडकर इस जगह मे सभी व्यक्ति और किसी दूसरे लोक मे चले गये हैं—जहा का पथ मै नही पहचानता। कमरे में जा रोशनी बुझाकर लेट गया। यह अच्छी तरह से जानता हू कि ज्ञान, विद्या और बुद्धि मे मैं इन सबसे बडा हू, तथापि न जाने किसकी व्यथा से अदर ही अदर मन रोने लगा और वैसे ही अनजान कारण से आखो के कोने मे पानी की बडी-बडी बूदे गिरने लगी।

पता नही कि कितनी देर से सो रहा था। कान मे भनक पडी, "अरे नये गुसाई?"

जगकर उठ बैठा, "कौन?"

मैं हूं तुम्हारी शाम की वधु—इतना सोते हो?"

अधेरे कमरे मे चौखट के पास कमललता वैष्णवी खडी थी। बोला, "जागने से क्या लाभ होता है? सोने मे समय का कुछ सदुपयोग तो हुआ।"

"यह मालूम है। पर ठाकुर का प्रसाद नही लोगे?"

"लूंगा।"

"तो फिर, सो क्यो रहे हो?"

"जानता हू कि कोई दिक्कत नही होगी, प्रसाद तो मिलेगा ही। मेरी शाम की वधु रात को भी परित्याग नही करेगी।"

वैष्णवी ने सहास्य कहा, "यह अधिकार वैष्णवो को है, तुम लोगो को नहीं।"

"आज्ञा मिल जाने पर वैष्णव होते क्या देर लगती है? तुमने गौहर तक को गुसाई बना डाला, तो मैं ही क्या इतनी अवहेलना का पात्र हू? आज्ञा होने पर वैष्णवो का दासानुदास होने को भी राजी हू।"

कमललता का कठ स्वर कुछ गभीर हुआ। कहा, "वैष्णवो की हसी नही उडानी चाहिये, गुसाई, अपराध होता है। गौहर गुसाई को भी तुमने गलत समझा है। उनके अपने आदमी उन्हें 'काफिर' कहते हैं, पर नही जानते कि वे पक्के मुसलमान हैं, पिता-पितामह के धर्म-विश्वास को इन्होने नही त्यागा है।"

"पर उसका भाव देखने पर तो यह मालूम नही होता।"

वैष्णवी ने कहा, "यही तो आश्चर्य है। पर अब देरी मत करो, आओ।" फिर कुछ सोच कर कहा, "या प्रसाद ही तुम्हे यही दे जाऊ—क्या कहते हो?"

"आपत्ति नही है। पर गौहर कहा है? वह हो तो दोनो को एक साथ ही दो न।"

"उनके साथ बैठकर खाओगे?'

हमेशा ही तो खाता हू। बचपन मे उसकी मा ने मुझको बहुत खिलाया है। और उस वक्त तुम्हारे प्रसाद की अपेक्षा वह कम मीठा नही होता था। इसके अलावा गौहर भक्त है, गौहर कवि है,—कवि की जाति की खोज नही की जाती है।"

उस अधकार मे भी ऐसा लगा कि वैष्णवी ने एक सांस को दबा लिया। फिर कहा, "गौहर गुसाई नहीं हैं। वे कब चले गये, हमें पता नही।"

मैंने कहा, "मैंने देखा था कि गौहर आगन मे बैठा है। उसे क्या तुम भीतर नही जाने देती?"

वैष्णवी ने कहा, "नही।"

"गौहर को आज मैंने देखा था। कमललता, मेरे मजाक से तुम नाराज हो गई, किंतु तुम भी अपने देवता के साथ कम हसी-मजाक नही कर रही हो। यह बात नहीं कि अपराध केवल एक ओर से होता हो।"

वैष्णवी ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया। वह चुपचाप बाहर चली गई। थोडी देर बाद ही उसने एक अन्य वैष्णवी के हाथो रोशनी और आसन तथा खुद प्रसाद का पात्र लेकर प्रवेश किया। कहा, "नये गुसाई, अतिथि-सेवा मे त्रुटि हो सकती है पर यहा का सब कुछ ठाकुरजी का प्रसाद है।"

मैंने हसकर कहा, "ओ सध्या की वधु, यह कोई डर की बात नही, वैष्णव न होते हुए भी तुम्हारे नये गुसाई मे रस-बोध है, आतिथ्य की त्रुटि के लिए वह रस-भग नही करेगा। जो है रख दो,—लौटकर देखोगी कि प्रसाद का एक कण भी बाकी नही बचा है।"

"ठाकुरजी का प्रसाद ऐसे ही तो खाया जाता है," यह कह और सिर नीचा कर कमललता ने सारी खाद्य सामग्री एक-एक कर सिलसिलेवार सजा दी।

दूसरे दिन बहुत सवेरे ही नीद टूट गई। भारी नगाडे की आवाज के साथ मगल आरती शुरू हो गई। प्रभाती के सुर मे कीर्तन का पद कान मे पडा—

"कान्हे गले वनमाला बिराजे, राधा गले मोती साजै'।
अरुण चरण दोउ नूपुर सोभित, चख लख खजन लाजै।"

इसके बाद दिनभर ठाकुरजी की सेवा होती रही। पूजा-पाठ, कीर्तन, नहलाना, खाना-खिलाना, बदन पोछना, चदन लगाना, माला पहनाना—इसमे तनिक भी विराम और विच्छेद नही पडा। सब व्यस्त हैं, सब नियुक्त हैं। ऐसा लगा कि ये पत्थर के देवता ही यह अष्टप्रहरव्यापी अनत सेवा सह सकते हैं, और कोई होता तो इतने जबर्दस्त ऊधम से क्षीण होकर कभी का नि शेष हो गया होता।

कल वैष्णवी से पूछा था कि 'तुम भजन करती हो?' उसने जवाब मे कहा था, कि 'यही तो साधना और भजन है।' सविस्मय प्रश्न किया था, 'यह रसोई बनाना, फूल चुनना, माला गूथना, दूध औटाना—क्या इसी को साधना कहती हो?' उसने उसी वक्त सिर हिलाकर जवाब मे कहा था, 'हा, इसी को साधना कहती हू,—हमारी और कोई भजन-साधना नही है।'

आज पूरे दिन का हाल देखकर समझ गया कि उसकी बात का एक-एक अक्षर सच है। कही भी अतिरजना या अत्युक्ति नही। दोपहर को थोडा मौका पाकर बोला, "मै जानता हू कमललता, कि तुम और सब जैसी नही हो। सच तो कहो, भगवान का प्रतीक यह पत्थर की मूर्ति—"

वैष्णवी ने हाथ उठाकर मुझे रोक दिया और कहा, "प्रतीक क्या जी—वे तो साक्षात् भगवान हैं।—ऐसी बात कभी जबान पर भी मत लाना नये गुसाई—"

मेरी बातो मे उसे जैसे बहुत शर्म आई, न जाने क्यो मै भी एक तरह से झेप गया। फिर आहिस्ता-आहिस्ता बोला, "मैं तो नही जानता, इसीलिए पूछा था कि क्या सचमुच तुम सब यह सोचती हो कि इस पत्थर की मूर्ति मे ही भगवान की शक्ति और चेतना है, उसका—"

मेरी यह बात भी पूरी न हो सकी। वह बोल उठी, "सोचने जाएगी ही क्यो जी, यह तो हमारे लिए प्रत्यक्ष है। तुम लोग सस्कारो के मोह नही तोड सके हो, इसलिए यह सोचते हो कि रक्त-मास के शरीर को छोडकर और कही चैतन्य के रहने के लिए जगह नही है। कितु यह क्यो? और यह भी कहती हू कि शक्ति और चैतन्य का तत्व क्या तुम लोग ही सब हजम कर चुके हो, जो यह कहोगे कि पत्थर मे उसके लिए जगह नही होती है? होती है जी, होती है, भगवान को कही भी रहने मे रुकावट नही होती. नही तो बताओ उन्हे भगवान ही क्यो कहेगे?"

तर्क की दृष्टि से ये बाते स्पष्ट भी नही और पूर्ण भी नही हैं। पर यह और कुछ तो है नही, यह तो उसका जीवत विश्वास है। उसके इस जोर और अकपट उक्ति के सामने मैं एकाएक न जाने कैसा सिटपिटा-सा गया। बहस करने—प्रतिवाद करने का साहस ही न हुआ, इच्छा भी नही हुई। बल्कि सोचा, सच तो है, पत्थर हो या और कुछ लेकिन इतने परिपूर्ण विश्वास से वह अपने को अगर पूर्णत सपृक्त न कर पाती तो वर्ष के बाद वर्ष, और दिन के बाद दिन, यह अविच्छिन्न सेवा करते रहने की शक्ति उसे मिलती कैसे? इस तरह सीधे निश्चित और निर्भय होकर खडे, होने का अवलबन कहा से मिलता? ये शिशु तो है नही, बच्चो के खेल के इस मिथ्या अभिनय से दुविधाग्रस्त मन दो दिन मे ही थककर गिर न जाता? पर ऐसा तो हुआ नही, बल्कि भक्ति और प्रेम की अखड एकाग्रता से इनके आत्मनिवेदन का आनदोत्सव बढता ही जा रहा है। इस जीवन मे पाने की दृष्टि से वह क्या सब कुछ शून्य या भूल है,—सब अपने को ठगना है?

वैष्णवी ने कहा, "क्यो गुसाई, बात क्यो नही करते?"

मैंने कहा, "सोच रहा हू।"

"किसका सोच कर रहे हो?"

"तुम्हारे बारे मे सोच रहा हू।"

"यह तो मेरा बडा सौभाग्य है।" कुछ देर बाद कहा, "फिर भी यहा रहना नही चाहते, न जाने कहा, किस बर्मा देश मे नौकरी करने जाना चाहते हो। नौकरी क्यो करोगे?"

मैंने कहा "मेरे पास मठ की जमीन-जायदाद तो है नही,—अधभक्तो का दल भी नही—खाऊगा क्या?"

"भगवान देगे।"

मैंने कहा, "यह अत्यधिक दुराशा है। पर ऐसा तो नही लगता कि तुम सबका भी भगवान पर बहुत भरोसा है, नही तो भिक्षा के लिए क्यो जाती?"

वैष्णवी ने कहा, "जाती हूं इसलिए कि देने के लिए वे हाथ बढ़ायें, दरवाजे-दरवाजे खडे हैं नही तो हमारी गरज नही है। यदि होती भी तो नही जाती। बिना खाए ही सूख-सूख कर मर जाती तो भी नही जाती।"

"कमललता, तुम्हारा देश कहां है?"

"कल ही तो कहा था गुसाईं, मेरा घर पेड़ के नीचे है, मेरा देश गली-गली मे है।"

"तो पेड के नीचे और गली-गली मे न रहकर मठ में किसलिए रहती हो?"

"बहुत दिनो तक गली-गली मे ही थी गुसाईं, यदि कोई संगी मिल जाय तो पुन: एक बार गली को संबल बना लूं।"

मैंने कहा, "इस बात पर तो विश्वास नही होता। तुम्हें संगी-साथी की क्या कमी है कमललता? जिससे कहोगी वही तैयार हो जाएगा।"

वैष्णवी ने हसते हुए कहा, "तुम्ही से कहती हूं नए गुसाईं—राजी होगे?"

मैं भी हसा। कहा, "हा, राजी हूं। नाबालिग उम्र मे जो यात्रा के दल से नही डरा, बालिग होने पर उसे वैष्णवी का क्या डर?"

"यात्रा के दल मे भी रहे हो?"

"हा।"

"तो गाना भी गा सकते हो?"

"नही। मालिक ने इतनी दूर आगे बढ़ने ही नही दिया, इसके पहले ही जवाब दे दिया। यह नहीं कहा जा सकता कि तुम मालिक होती तो क्या करती।"

वैष्णवी हंसने लगी। बोली, "मैं भी जवाब दे देती। इसे छोडो, अब हम मे से एक के भी जाने पर काम चल जाएगा। इस देश मे चाहे जैसे भी भगवान का नाम लेने पर भिक्षा का अभाव नही होता। चलो न गुसाईं, निकल पडे। कह रहे थे कि वृदांवन धाम नही देखा है, चलो तुम्हे दिखला लाऊ। बहुत दिन घर मे बैठे-बैठे कटे, रास्ते का नशा जैसे फिर अपनी ओर खीचना चाहता है। सच, चलोगे नये गुसाईं?"

अचानक उसके मुह की ओर देखकर बहुत विस्मय हुआ। कहा, "हमारा परिचय हुए तो अभी चौबीस घंटे भी नही हुए, मुझपर इतना विश्वास कैसे हो गया?"

वैष्णवी ने कहा, "ये चौबीस घटे केवल एक पक्ष के लिए ही तो नही हैं गुसाईं, दोनो पक्षो के लिए हैं। मेरा विश्वास है कि पथ-प्रवास मे भी तुमपर मेरा अविश्वास न होगा। कल पचमी है, जाने का बहुत ही अच्छा शुभ दिन है,—चलो। और रास्ते के किनारे रेल का पथ तो है ही,—अच्छा नही लगे तो लौट आना। मैं मना नही करूंगी।"

एक वैष्णवी ने आकर सूचना दी, ठाकुरजी का प्रसाद कमरे मे रख दिया गया है। कमललता ने कहा, "चलो, तुम्हारे कमरे मे चलकर बैठे।"

"मेरे कमरे मे? अच्छी बात है।"

और एक बार उसके मुंह की ओर देखा। इस बार लेश मात्र भी सदेह न रहा कि वह हसी नही कर रही है। यह भी निश्चित है कि मैं उपलक्ष मात्र हू, पर चाहे जिस कारण से हो, उसकी ऐसी हालत मालूम हुई कि वह चाहे जिस कारण से हो, यदि यहा के बधन तोड़कर भाग सके तो मानो उसकी जान मे जान आ जाय—उसे एक क्षण का भी विलंब सहन नहीं हो रहा है।

कमरे मे आकर खाने बैठा। बहुत बढ़िया प्रसाद है। भागने का षडयंत्र अच्छी तरह जम जाना, किंतु एक बहुत जरूरी काम से कोई कमललता को बुला ले गया। अत: अकेले ही मुंह बंद किए हुए सेवा समाप्त करनी पडी। बाहर निकलने पर कोई भी नजर नही आया। द्वारिकादास बाबाजी भी न जाने कहा चले गये। दो-तीन पुरानी वैष्णवियां घूम-फिर रही हैं,—कल शाम को ठाकुरजी के कमरे धोने में शायद ये ही अप्सरा जैसी लगी थी, किंतु आज दिन की रोशनी मे कल का वह अध्याय सौंदर्यबोध उतना अटूट नही रहा। मन न जाने कैसा हो गया, सीधा आश्रम के बाहर निकल आया। वही शैवालाच्छन्न शीर्ण काया मंद स्रोत सुपरिचित नदी और वही लतागुल्म कंटकाकीर्ण तटभूमि, वही सर्प संकुल सुदृढ़ बेंतो का कुज और सुविस्तृत वेणु-वन।

बहुत दिनों के अनभ्यास के कारण शरीर सनसनाने लगा, कहीं दूसरी जगह जाने की सोच ही रहा था

कि एक आदमी जो कहीं छिपा बैठा था, उस और निकट आकर खड़ा हो गया। पहले तो आश्चर्य हुआ कि इस स्थान पर भी मनुष्य हो सकता है। उसकी उम्र भी मेरी उम्र ही होगी, और दस वर्ष ज्यादा होना भी असभव नहीं है। ठिंगना, दुबला-पतला, शरीर का रंग अधिक काला नहीं है, किंतु मुंह का निचला भाग जैसे बहुत ही छोटा है। आंखों की दोनों भौंहें भी वैसी ही अस्वाभाविक रूप से विस्तीर्ण हैं। वस्तुतः इतनी बड़ी, घनी और मोटी भौंहें भी मनुष्य की होती हैं, यह ज्ञान मुझे इसके पूर्व न था। दूर से ही संदेह हुआ कि प्रकृति ने मजाक में ओठों के बदले कपाल पर एक जोडी मोटी मूंछें तो नहीं चिपका दी हैं। गले में तुलसी की मोटी माला है, वेशभूषादि भी बहुत कुछ वैष्णवों जैसी है, पर जितनी मैली है उतनी ही जीर्ण।

"महाशयजी!"

चौंककर खड़े होते हुए मैंने पूछा, "क्या आज्ञा है?"

"क्या यह जान सकता हूं कि आप यहां कब आए हैं?"

"जान सकते हैं। कल शाम को आया हूं।"

"रात को अखाड़े में शायद थे?"

"हां, था।"

"ओ!"

नीरवता में ही कुछ क्षण कटे। पैर बढ़ाने की चेष्टा करते ही उस आदमी ने कहा, "आप तो वैष्णव नहीं हैं, कैसे दाखिल हैं—अखाड़े में आपको रहने दिया?"

मैने कहा, "यह तो वे ही जाने। उन्ही से पूछिये।"

"हा।"

"ओ , जानते हैं उसका असली नाम क्या है?—उषांगिनी। मकान सिलहट मे हे. कितु दिखती है कलकत्ते की-सी। मेरा घर भी सिलहट मे है। गाव का नाम है महमूदपुर। उसके स्वभाव-चरित्र के बारे मे कुछ सुनेगे?"

मैंने कहा, "नही।" पर उस आदमी के हाव-भाव देखकर इस बार सचमुच ही विस्मित हो उठा। प्रश्न किया, "कमललता के साथ आप का कोई सबध है?"

"है क्यो नही!"

"वह क्या?"

क्षणभर इधर-उधर कर वह आदमी एकाएक गरज उठा, "क्यो, क्या झूठ है? वह मेरी घरवाली होती है। उसके बाप ने स्वय हमारी कठी बदली की थी, इसके गवाह हैं।"

न जाने क्यो मुझे विश्वास नही हुआ। पूछा, "आप की जाति क्या है?"

"हम द्वादशतेली हैं।"

"और कमललता की?"

प्रत्युत्तर मे वह अपनी मोटी भौंहो की वह जोडी घृणा से कुंचित कर बोला. "वह कलवार हे,—उनके पानी से हम पैर ही नही धोते। एक बार उसे बुला सकते हैं?"

"नहीं। अखाडे मे सब जा सकते हैं, इच्छा हो तो आप भी जा सकते हैं।"

वह कुछ नाराज होकर बोला, "जाऊंगा साहब, जाऊंगा। दरोगा को पैसे खिला दिये हे, प्यादे साथ लेकर झोटा पकडकर बाहर खीच लाऊंगा। बाबाजी के बाबा भी नही बचा सकेंगे। साला, रास्कल कहीं का।"

मैं और व्यर्थ बातचीत न कर आगे बढ़ने लगा। पीछे से वह कर्कश कठ से बोला, "इसमे आप की क्या हानि हो जाती? जाकर यदि एक बार बुला ही देते तो क्या शरीर का कुछ क्षय हो जाता? ओह—भले आदमी!"

पीछे मुडकर देखने का साहस अब नही हुआ। बाद में कही क्रोध न रोक पाऊं और इस अति दुर्बल मानुस के शरीर पर हाथ न छोड दू, इस आशंका से कुछ तेजी के साथ ही आगे बढ गया। ऐसा लगने लगा कि वैष्णवी के भाग जाने का हेतु यही कही सबद्ध है।

मन बिगड चुका था। ठाकुरजी के कमरे मे न तो स्वय गया और न कोई बुलाने ही आया। कमरे के भीतर एक चौकी पर कई एक वैष्णव-ग्रथावलियां बडे यत्न से रखी थी। उन्ही मे से एक को हाथ मे लेकर और प्रदीप को सिरहाने की तरफ रखकर बिछौने पर लेट गया—वैष्णव-धर्मशास्त्र के अध्ययन के

लिए नहीं, केवल समय काटने के लिए। बार-बार क्षोभ के साथ सिर्फ एक ही बात ख्याल में आने लगी, कमललता जो गई सो फिर लौटकर नहीं आई! ठाकुरजी की संध्या-आरती विधिवत प्रारंभ हुई, उसका मधुर कंठ स्वर बार-बार कानों में आने लगा और मन में घूम फिर कर यही विचार आने लगा कि तब से कमललता ने मेरी कोई खोज खबर ही नहीं ली। ·· और वह मोटी भौंहो वाला मानुस? क्या उसकी शिकायत में कोई सत्य नही है?

एक बात और भी है। गौहर कहां है?, उसने भी तो आज मेरी कोई खोज-खबर नही ली! सोचा था कि कुछ दिन—कम से कम पुंटू के विवाह के दिन तक का समय— यहीं बिता दूंगा, किंतु अब यह नही होगा। शायद कल ही कलकत्ते प्रस्थान करना पडे।

आरती और कीर्तन धीरे-धीरे समाप्त हो गया। कलवाली वही वैष्णवी आकर बडे यत्न से प्रसाद रख गई, किंतु जिसकी बाट जोह रहा था। उसके दर्शन नही मिले। बाहर लोगों की बतकही और आने-जाने की आवाज भी क्रमश. शांत हो गई। यह सोचकर कि अब उसके आने की सभावना नही है, भोजन किया और हाथ-मुंह धोकर दीप बुझा कर सो गया। शायद उस समय बहुत रात थी, कानो मे भनक पड़ी, "नए गुसाईं!"

जागकर उठ बैठा। अंधकार मे खड़ी कमललता आहिस्ता-आहिस्ता बोली, "आई नही, इसलिए शायद मन ही मन बहुत दु खी हो रहे हैं—क्यों नये गुसाईं?"

कहा, "हा, दु खी हुआ हू।"

क्षणभर के लिए वैष्णवी चुप रही, फिर बोली, "जंगल मे वह आदमी तुम से क्या कह रहा था?"

"तुमने देखा था क्या?"

"हां।"

"कह रहा था कि वह तुम्हारा पति है,—अर्थात् तुम्हारे सामाजिक आचारों के अनुसार तुम्हारी-उसकी कंठी-बदल हुई है।"

"तुमने विश्वास किया?"

"नही, नही किया।"

क्षणभर पुन मौन रहकर वैष्णवी ने कहा. "उसने मेरे स्वभाव और चरित्र के बारे मे कुछ संकेत नही किया?"

"किया था।"

"और मेरी जाति का?"

"हा, उसका भी।"

वैष्णवी ने कुछ रुककर कहा, "सुनोगे मेरे बचपन का इतिहास? शायद तुम्हे घृणा हो जाय।"

"तो रहने दो, मैं नही सुनना चाहता।"

"क्यों?"

"उससे क्या फायदा कमललता, तुम मुझे भली लगी हो। यहा से कल चला जाऊंगा और शायद फिर हम दोनों की मुलाकात ही न हो। तब मेरे इस भले लगने को निरर्थक ही नष्ट करने से क्या फायदा होगा, बताओ?"

इस बार वैष्णवी बहुत देर तक मौन रही। यह समझ मे नही आया कि अंधकार मे चुपचाप खडी वह क्या कर रही है। पूछा, "क्या सोच रही हो?"

"सोच रही हू कि कल तुम्हे नही जाने दूंगी।"

"तो फिर कब जाने दोगी?"

"जाने कभी न दूंगी। पर अब बहुत रात हो गई, सो जाओ। मसहरी अच्छी तरह से लगी हुई है न?"

"क्या पता, शायद लगी है।"

वैष्णवी हंसकर बोली, "शायद लगी है? वाह, खूब हो!" यह कह उसने करीब आकर अंधकार में ही हाथ बढाकर बिछौने के चारों छोरों की परीक्षा कर ली और कहा, "सोओ गुसाईं, मैं जाती हूं।" यह कहकर वह पांव दबाकर बाहर निकल गयी और बाहर से बड़ी होशियारी से दरवाजा भी बंद करती गई।

सात

आज बार-बार छेडकर वैष्णवी ने मुझ से शपथ करा ली कि उसका पूर्व-विवरण सुनकर मैं घृणा करूगा या नही।

बोला, "सुनना मैं चाहता नही, किंतु सुनने पर घृणा नही करूगा।"

वैष्णवी ने प्रश्न किया, "किंतु क्यो नही करोगे? सुनकर स्त्री-पुरुष सब तो घृणा करते हैं।"

मैंने कहा, "तुम क्या कहोगी, यह मैं नही जानता, फिर भी मैं अदाज लगा सकता हू। यह सुनकर सबसे अधिक स्त्रिया ही स्त्रियों से घृणा करती हैं, यह जानता हू और इसका कारण भी जानता हू, लेकिन तुम से यह बताना नही चाहता। पुरुष भी करते हैं लेकिन बहुत मौको पर यह छलना होती है, बहुत मौको पर आत्मवचना। तुम जो बताओगी उससे भी भद्दी बाते मैंने स्वयं तुम लोगो के ही मुह से सुनी हैं और अपनी आखो से देखी हैं। परतु तो भी घृणा नही होती।"

"क्यो नही होती?"

"यह मेरा स्वभाव ही है शायद। तुम से कल हो तो कहा था कि इसकी दरकार नही है। मैं तनिक भी उत्सुक नही हू यह सुनने के लिए। इसके अतिरिक्त, कौन कहां का है, यह सारी कथा मुझ से न भी कहो तो क्या हानि है?"

वैष्णवी काफी देर तक कुछ सोचती रही। इसके बाद अचानक पूछ बैठी, "अच्छा गुसाईं, क्या तुम पूर्व जन्म और अगले जन्म पर विश्वास करते हो?"

"नही।"

"नही क्यो? क्या तुम सोचते हो कि ये सब बाते सचमुच नही हैं?"

"मेरे सोचने के लिए दूसरी ढेर सारी बाते हैं, शायद यह सब सोचने के लिए समय ही नही मिलता मुझे।"

वैष्णवी फिर एक क्षण चुप रहकर बोली, "तुम्हे एक घटना बताऊंगी, विश्वास करोगे? ठाकुरजी की ओर मुह करके कहती हू, मैं तुम से झूठ नही बोलूगी।"

मैं हस पडा। बोला, "करूगा।"

"तो कहती हू। एक दिन गौहर गुसाईं के मुह से सुना कि उनकी पाठशाला का एक मित्र उनके घर आया है। मैं सोचती रही कि जो आदमी यहा आये बगैर एक दिन भी नही रह सकता, वह छह-सात दिनो तक अपने बचपन के मित्र के साथ कैसे भूला रह गया? फिर सोचा कि यह कैसा ब्राह्मण मित्र है जो बिना सकोच के मुसलमान के घर पडा रहा, किसी से भी नही डरा? उसका कही भी कोई नही है क्या? पूछने पर गौहर गुसाईं ने भी यही बताया। कहा कि ससार मे अपना कहने योग्य उसका कोई नही है, इसीलिए उसे भय नही है, चिता भी नही है। मन ही मन मैंने मान लिया कि ऐसा ही होगा। पूछा, 'गुसाई, तुम्हारे उस मित्र का नाम क्या है?' नाम सुन कर मैं चौंक गई जैसे। जानते तो हो गुसाई, यह नाम मुझे नही लेना चाहिए।"

मैंने हसकर कहा, "जानता हू। तुम्हारे ही मुह से सुना है।"

वैष्णवी बोली, "पूछा, 'देखने मे कैसा है तुम्हारा मित्र? आयु क्या है?' गुसाई ने जो कुछ बताया उसका कुछ भाग तो कानो मे गया और कुछ भाग नही। पर दिल के भीतर धडकन होने लगी। तुम सोचते होगे कि ऐसा आदमी तो देखा ही नही जो नाम सुनकर ही पगला जाए। किंतु यह सत्य है। स्त्रिया केवल नाम सुनकर ही पागल हो जाती हैं गुसाई।"

"इसके बाद?"

"इसके बाद स्वय भी हसने लगी," वैष्णवी बोली, "किंतु भूल न सकी। सारे काम-काज मे मेरा ध्यान केवल इस बात पर केंद्रित रहा कि तुम कब आओगे, कब अपनी आखो से देख सकूगी तुम्हे।"

सुनकर मैं चुप रहा, किंतु उसके मुह की ओर देखकर हस न सका।

वैष्णवी ने कहा, "अभी कल सायकाल ही तो तुम आए हो, किंतु आज इस ससार मे मुझसे अधिक कोई भी तुम से प्रेम नही करता। यदि पूर्वजन्म सत्य न होता तो एक दिन मे यह असभव बात क्या सभव

हो सकती थी?"

कुछ रुककर फिर उसने कहा, "मुझे मालूम है कि तुम यहा रहने नही आए हो, और न रहोगे ही। मै चाहे जितना भी अनुनय-विनय करू, एक-दो-दिन बाद तुम चले ही जाओगे। किंतु मैं केवल यही सोचती हू कि कब तक जुगाती रहूगी मैं इस व्यथा को।" यह कहकर सहसा उसने आचल से आखे पोछ डाली।

मैं मौन हो रहा। इतने कम समय मे, इतनी स्पष्ट और प्राजल भाषा मे किसी सुदरी के प्रणय-निवेदन की कथा इसके पूर्व न तो किसी पुस्तक मे पढी थी और न लोगो के मुंह से सुनी थी। पर जहा अपनी आखो से देख रहा हू कि यह अभिनय भी नही है। कमललता देखने मे सुदर तो है ही, अपढ गंवार भी नही है। अपनी वार्ता-कुशलता, अपने गाने, अपने आदर-प्रेम और अपनी अतिथि सेवा की आतरिकता के कारण ही वह मुझे भली लगी है, और प्रशसा एव रसिकता भरी अत्युक्ति के जरिए मैंने इस भले लगने का विस्तार करने मे कृपणता भी नही की है। किंतु इसकी परिणति देखते-देखते इतनी गहरी हो जाएगी, वैष्णवी के आवेदन से, अश्रु-मोचन से और माधुर्य के अकुंठित आत्म प्रकाश से मन ऐसी तिक्तता से भर उठेगा, क्षणभर पहले तक यह क्या जानता था मैं? मैं मानो हतबुद्धि हो गया। इतना ही नही कि केवल लज्जा से ही सारा शरीर रोमाचित हो गया हो, बल्कि एक प्रकार की अज्ञात विपदा की आशका से हृदय मे अब शांति औरा निराकुलता भी एकदम नही रह गई। न जाने किस अशुभ मुहूर्त मे काशी से चला था जो एक पटू का जाल ताडने के बाद अब दूसरी पटू के जाल मे बुरी तरह आ फसा। इधर वय यौवन की सीमा पार कर रही है, ऐसे असमय मे अयाचित नारी -प्रेम की ऐसी बाढ आ गई कि यह सोच ही नही पाया कि कहा भागकर आत्मरक्षा करूं। कभी कल्पना भी नही की थी कि युवती-रमणी की प्रणय-याचना इस हद तक अरुचिकर हो सकती है। मन मे प्रश्न उठा, एक-ब-एक मेरा मूल्य इतना बढ कैसे गया? राजलक्ष्मी का प्रयोजन भी आज मुझ मे शेष नही होना चाहता। तर्क-वितर्क इस निष्कर्ष पर पहुचा कि वह अपनी वज्रमुष्टि को तनिक भी ढीलाकर मुझे निष्कृति नही देगी। किंतु यहा अब और नही रहना चाहिए। इस साधु-सग को सादर नमस्कार, मन ही मन तय कर लिया कि यह स्थान कल ही छोड दूगा।

एकाएक वैष्णवी चकित-सी होकर बोल उठी, "अरे वाह! तुम्हारे लिए चाय मगाई है गुसाई!"

"क्या कहती हो? कहाँ मिली?"

"आदमी को शहर भेजा था। जाऊ, बनाकर ले आऊ। देखो, कही भाग न जाना।"

"नही, किंतु तुम बनाना जानती हो?"

वैष्णवी ने कोई उत्तर नही दिया, केवल सिर हिलाकर हसती हुई चली गयी। उसके चले जाने के बाद जब उस तरफ देखा तो हृदय मे न जाने कैसी एक चोट-सी लगी। आश्रम मे चाय पीने की व्यवस्था नही है, मना ही है शायद, तो भी उसने यह जान लिया कि यह चीज मुझे पसद है और शहर मे आदमी भेजकर उसने मगवा ली। उसके विगत जीवन का इतिहास मैं नही जानता, और वर्तमान व्योरा भी नही, केवल इतना ही आभास मिला है कि वह अच्छा नही है, निंदनीय है—सुनने पर लोगो को घृणा होती है। तथापि वह वृत्तात वह मुझसे छिपाना नही चाहती, सुनाने के लिए बार-बार हठ करती है, केवल मैं ही प्रस्तुत नही हू सुनने को। मुझे कुतूहल ही नही है क्योकि मेरा कोई प्रयोजन ही नही है। प्रयोजन उसी का है। इस प्रयोजन के बारे मे अकेले मे बैठ कर सोचते हुए मैंने स्पष्ट रूप से समझ लिया कि मुझे बताये बिना उसके हृदय की ग्लानि नही जाएगी। मन मे वह किसी प्रकार बल ही नही जुटा पा रही है। सुना है कि कमललता मेरे नाम, 'श्रीकात' का उच्चारण नही कर सकती। पता नही कि वह कौन उसका परम पूज्य गुरुजन है और कब उसने इस लोक से विदा ले ली है। हमारे नाम की इस दैवी एकता ने ही सभवत इस विपत्ति की सृष्टि की है, और तभी से उसने शायद कल्पना मे विगतजन्म के स्वप्न-सागर मे गोते लगाते हुए ससार की सारी यथार्थताओ को तिलाजलि दे दी है।

तथापि ऐसा लगता है कि इसमे विस्मय की कोई बात नही। इस की आराधना मे आकठ निमग्न रहने के बावजूद उसकी एकात नारी-प्रकृति शायद आज भी रस का तत्व नही पा सकी है, वह असहाय अपरितृप्त प्रवृत्ति इस निरवच्छिन्न भाव-विलास के उपकरणो का सग्रह करने मे कदाचित् आज क्लात है, दुविधा से पीडित है। उसका यह पथभ्रष्ट, विभ्रात मन अनजान मे ही न जाने कहा अवलब ढूढने मे प्राणपण से लगा हुआ है—वैष्णवी उसका ठिकाना नही जानती, इसीलिए आज वह बार-बार चौंककर

अपने विगत-जीवन के रुद्ध द्वार पर हाथ पसार कर अपराध की सांत्वना माग रही है। उसकी बातें सुनकर समझ सकता हू कि मेरे नाम 'श्रीकांत' को ही पाथेय बनाकर आज वह अपनी नाव छोड़ देना चाहती है।

वैष्णवी चाय लेकर आ गई। सब नई व्यवस्था है, पीकर बहुत आनंद मिला। आदमी का मन कितनी आसानी से बदल जाता है! अब मानो उसके विरुद्ध कोई शिकायत नही है।

पूछा, "कमललता, क्या तुम कलवार हो?"

कमललता ने हंसकर कहा, "नही, सोनार-बनिया। किंतु तुम्हारे पास तो ऐसा कोई भेद है नही—दोनो एक ही हैं।"

"कम से कम मेरे पास तो एक ही हैं। दोनों ही एक क्यों, बल्कि सबके एक हो जाने में भी कोई हानि नही है।"

वैष्णवी बोली, "लगता तो ऐसा ही है। तुमने तो गौहर की मा के हाथ का भी खाया है।"

"उन्हे तुम नही जानती। गौहर अपने बाप जैसा नही है, उसे अपनी मां का ही स्वभाव मिला है। इतना शात, अपने आप को भूला हुआ, ऐसा प्यारा आदमी कभी देखा है? उनकी मां ऐसी ही थी। बचपन मे एक बार गौहर के पिता के साथ उनके झगडे की बात मुझे याद है। उन्होंने छिपा कर किसी को बहुत से रुपये दिये थे। इस कारण झगड़ा खड़ा हुआ। गौहर के पिता बदमिजाज आदमी थे। हम तो भय के मारे भाग खडे हुए। कुछ घटे बाद धीरे से आकर देखा कि गौहर की मा गुमसुम बैठी है। गौहर के पिता के बारे मे पूछने पर पहले तो उन्होने कोई उत्तर नही दिया, किंतु हमारे मुह की ओर ताकते हुए एक बार वे खिलखिलाकर हस पडी। आखो से पानी की कुछ बूदे नीचे टपक पडी। यह उनकी आदत थी।"

"इसमे हसने की कौन-सी बात थी?" वैष्णवी ने प्रश्न किया।

"यही तो हमने भी सोचा। पर जब हंसी थम गई तब उन्होंने धोती से आखे पोंछकर कहा, 'मैं कैसी मूर्ख औरत हू बेटे! वे तो भरपेट खा कर मजे से खर्राटे ले रहे हैं, और मैं बिना खाये-पिये उपवास कर गुस्से मे जल-भुन रही हू। बताओ, इसकी जरूरत क्या है! और इतना कहने के साथ ही उनका सारा अभिमान और क्रोध धुल-पुछ गया। एक भुक्त-भोगी के अलावा कोई यह नही जानता कि स्त्रियो का यह कितना बडा गुण है!"

वैष्णवी ने प्रश्न किया, "तुम भुक्तभोगी हो क्या, गुसाईं?"

मैं कुछ अकबका गया। मैंने यह सोचा ही नही था कि यह प्रश्न उसको छोडकर मेरे ही सिर आ पडेगा। कहा, "सब कुछ क्या स्वय भोगा ही जाता है कमललता, दूसरो को देखकर भी तो सीखा जाता है। मोटी भौंहो वाले उस आदमी के पास क्या तुमने कुछ नही सीखा?"

वैष्णवी बोली, "किंतु वह तो मेरे लिए पराया नही है।"

और कोई प्रश्न मेरे मुह से नही निकला, एकदम स्तब्ध हो रहा मैं।

वैष्णवी स्वय भी कुछ देर मौन रही। फिर हाथ जोडकर बोली, "तुम से बिनती करती हूं गुसाईं, एक बार मेरी शुरू की बाते सुन लो।"

"अच्छी बात है, कहो।"

किंतु जब वह कहने लगी तो देखा कि कहना उतना आसान नही है। मेरी ही तरह उसे भी मुह नीचे किये हुए काफी देर तक चुप्पी साधे रहना पडा। फिर भी उसने हार नही मानी। अंतर्द्वंद्व मे विजयी होकर जब उसने एक बार मुह ऊपर उठाकर देखा तो ऐसा लगा कि उसकी सहज-सुदर आकृति पर एक विशेष कांति आ गई है। बोली, "अहंकार मरकर भी नही मरता गुसाईं! हमारे बडे गुसाईं कहा करते हैं कि यह मानो फूस मे लगी आग है जो बुझकर भी नही बुझती। राख हटाते ही दिखता है कि वह धक-धक धधक रही है। किंतु इसीलिए इसे फूक मार कर बढ़ा नही सकती मैं, फिर तो मेरा इस पथ पर आना ही मिथ्या हो जाएगा! सुनो। किंतु औरत हू न, इसलिए शायद सारी बाते खोल कर नहीं कह पाऊ।

मेरे सकोच की सीमा टूट गयी। अंतिम बार बिनती कर बोला, "औरत के पाव फिसलने के विवरणो मे मेरी दिलचस्पी नही है, उत्सुकता भी नही है, और यह सब सुनना मुझे कभी अच्छा भी नही लगा कमललता। मुझे ज्ञात नही है कि तुम्हारी वैष्णव-साधना मे अहकार के नाश के लिए कौन-सा मार्ग-निर्देश किया है तुम्हारे महाजनो ने, किंतु अपने गुप्त पापो को अनावृत करने की हठ भरी बिनती ही

यदि तुम्हारे प्रायश्चित्त का विधान है तो तुम्हें ऐसे अनेक व्यक्ति मिल जायेगे जिन्हे ये सब कहानिया सुनना बहुत रुचिकर लगता है। मुझे क्षमा करो कमललता। इसके अलावा, मैं शायद कल ही चला जाऊंगा, फिर जीवन मे शायद कभी हमलोगो की मुलाकात भी नही होगी।''

''यह तो पहले ही कह चुकी हूं गुसाई,'' वैष्णवी ने कहा, ''प्रयोजन तुम्हारा नही, मेरा है। पर यह क्या तुम सच कह रहे हो कि कल के बाद हमारी मुलाकात नहीं होगी?—नही, ऐसा कभी नही हो सकता, मेरा मन कहता है कि फिर मुलाकात होगी—मैं यह आस लेकर रहूंगी। किंतु क्या वास्तव में मेरे बारे में कुछ भी जानने की तुम्हारी इच्छा नही है? क्या सदा केवल एक अनुमान और सदेह ही लिए रहोगे?''

मैंने प्रश्न किया, ''आज वन में जिस आदमी से मेरी भेंट हुई, जिसे तुम आश्रम मे घुसने नही देती, जिसके उपद्रव से भाग जाना चाहती हो तुम, वह क्या वास्तव में तुम्हारा कोई नही होता? क्या एकदम पराया है वह?''

''किसके भय से भाग रही हूं, यह तुम समझ गये गुसाईं?''

''हां, लगता तो ऐसा ही है। किंतु है वह कौन?''

''है कौन वह? वह मेरे इहलोक और परलोक की यंत्रणा है। इसीलिए तो बराबर रो-रोकर प्रार्थना करती रहती हू भगवान से, 'प्रभु, मैं तुम्हारी दासी हूं, मुनष्य के प्रति इतनी जबर्दस्त घृणा मेरे मन से निकाल दो ताकि मैं पुन: सरलता से सास लेकर जी सकूं—अन्यथा मेरी सारी साधना व्यर्थ हो जाएगी।''

उसकी आंखों से आत्मग्लानि फूट पडी हो जैसे, मैं मौन बना रहा।

वैष्णवी ने कहा, ''तथापि एक दिन उससे बढकर मेरा अपना कोई नही था। ससार मे इतना प्यार कदाचित् किसी ने किसी को नहीं दिया होगा।'' उसका यह कथन सुनकर मेरे विस्मय की सीमा नही रही, और इस सुरूपा में उस प्रेम-पात्र की कुत्सित एव भद्दी सूरत को याद कर मेरा मन बहुत ही सकुचित हो गया।

अक्लमंद वैष्णवी ने मेरा चेहरा देखकर ही यह समझ लिया। बोली, 'यह तो उसका बहिरग परिचय है गुसाईं, उसका अतरंग परिचय तो सुनो।''

''कहो।''

वैष्णवी ने कहना शुरू किया, ''मेरे और दो छोटे भाई भी हैं, कितु मां-बाप की मैं इकलौती कन्या थी। हम श्रीहट्ट के रहनेवाले हैं, पर चूंकि पिताजी व्यापारी थे, उनका व्यापार कलकत्ते मे था, इसीलिए मैं बचपन से ही कलकत्ते में पली हू। मा गृहस्थी के साथ गांववाले मकान में ही रहती थी। मैं यदि पूजा के दिनों मे गांव जाती भी तो महीने भर से अधिक वहा नही रह पाती थी। वहा रहना मुझे अच्छा भी नही लगता था। कलकत्ते मे ही मेरा व्याह हुआ और सत्रह वर्ष की वय में कलकत्ते मे ही मैंने उन्हें खो दिया। उनके नाम के कारण ही गुसाईं, गौहर गुसाई के मुह से तुम्हारा नाम सुनकर मैं चौंक गयी। इसी कारण 'नये गुसाईं' कहकर पुकारती हू, उस नाम को जुबान पर ला ही नही सकती।''

''यह तो समझ गया मैं, इसके बाद?''

वैष्णवी बोली, ''आज जिस आदमी से तुम्हारी भेंट हुई, उसका नाम मन्मथ है, वह हमारा मुनीम था।'' कहकर वह क्षणभर तक चुप रही, फिर बोली, ''जब मैं इक्कीस साल की हुई तब मेरे सतान होने की संभावना हुई—''

वैष्णवी कहती गई, ''मन्मथ का एक पितृहीन भतीजा हमारे ही मकान में रहता था। पिताजी उसे कालेज मे पढाते थे। उम्र मे मुझ से कुछ कम था वह। वह मुझे इतना प्यार करता था कि सीमा नही। एक बार मैंने उसे बुलाकर कहा, 'यतीन, और कभी तो तुम से कुछ मागा नहीं भैया, इस विपत्ति मे अंतिम बार मेरी थोडी-सी सहायता कर दो। मुझे एक रुपए का जहर खरीद कर ला दो।' पहले तो वह मेरी बात समझ ही नही पाया, किंतु जब बात उसकी समझ मे आ गई तब उसका चेहरा मुर्दे की तरह फीका पड गया। मैंने कहा, ''देरी मत करो भैया, यह तुम्हे अभी खरीद कर देना होगा। मेरे लिए इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नही रह गया है।''

''यह सुनकर यतीन के रोने का क्या कहना! वह मुझे देवी समझता था और दीदी कहकर पुकारता था। उसे कितना आघात लगा, कितनी व्यथा हुई! उसकी आखो से पानी झरना जैसे बंद ही होना नही चाहता था। बोला, ''उषा दीदी, आत्मघात से बढ़कर और कोई महापाप नही है, किंतु लज्जा से बचने के

लिए यदि तुमने यही तरीका स्थिर किया हो तो दीदी, मैं कदापि सहायता नही करूगा। इसके अतिरिक्त तुम जो भी आदेश दोगी, मैं उसका तत्काल पालन करूगा।' उसी के कारण मैं मर न सकी।

''यह बात क्रमश पिताजी के कानो मे पहुची। वे जितने निष्ठावान थे उतने ही शात और निरीह प्रकृति के मनुष्य थे। मुझ से उन्होने कुछ नही कहा, किंतु लज्जा और दुख मे वे दो-तीन दिनो तक बिछौने से नही उठ सके। बाद मे, गुरुदेव के परामर्श से मुझे लेकर नवद्वीप आये। तय किया गया कि मैं और मन्मथ दीक्षा लेकर वैष्णव हो जाये और तब फूलो की माला एव तुलसी की माला अदल-बदल कर नयी रीति से हमारा ब्याह हो जाय। उससे पाप का प्रायश्चित्त हो जाएगा या नही, यह तो नही जानती थी, किंतु इस भरोसे पर कि गर्भ मे आए शिशु की मा होकर हत्या नही करनी पडेगी, मेरी आधी वेदना दूर हो गयी। उद्योग-आयोजन होने लगे, दीक्षा कहो या भेष कहो या और कुछ कह लो, मेरा नया नामकरण हुआ--कमललता। लेकिन तब भी यह मालूम नही था कि दस हजार रुपये देने का वचन देकर ही पिताजी ने मन्मथ को राजी किया है। पर एकाएक न जाने क्यो, ब्याह की तिथि आगे बढा दी गई--सभवत एक सप्ताह तक। मन्मथ बहुत कम दिखाई पडता, नवद्वीप के मकान मे प्राय मैं अकेले ही रहती थी। ऐसे ही कई दिन बीत गये, तब जाकर शुभ दिन आया। स्नान करके पवित्र होकर शात मन से, ठाकुरजी को अर्पित माला हाथ मे लिए प्रतीक्षा मे बैठी रही। पिताजी उदास चेहरा से एक बार देख गये, पर मन्मथ को जब नवीन वैष्णव के वेश मे देखा तो अचानक सारे मन के भीतर बिजली दौड गयी। यह ठीक-ठीक नही जानती कि यह आनद की थी या व्यथा की, शायद दोनो की ही थी, किंतु इच्छा हुई कि उठकर उसके चरणो की धूल माथे से लगा लू। किंतु लाज के कारण ऐसा नही हो सका।

''हमारी कलकत्ते की पुरानी दासी बहुत-सी चीजे ले आई। उसी ने मेरी परवरिश की थी, उसी के मुह से तिथि आगे बढने का कारण सुना।''

कितनी पुरानी बात है, तिसपर भी गला भर आया और उसकी आखो मे आसू आ गये। मुह फेर कर वैष्णवी आसू पोछने लगी।

पाच-छह मिनट बाद पूछा, ''क्या कारण बताया उसने?''

वैष्णवी ने कहा, '' उसने बताया कि मन्मथ अकस्मात् दस हजार के बदले बीस हजार रुपए की माग कर बैठा। मुझे कुछ ज्ञात नही था, मैंने चौंककर पूछा कि क्या मन्मथ रुपयो के बदले ही राजी हुआ है? और क्या पिताजी भी बीस हजार रुपए देने को तैयार हैं? दासी ने कहा, 'उपाय ही क्या है दीदी रानी?' मामला भी तो आसान नही है, जाहिर हो जाने पर जाति, कुल, मान, सब चला जाएगा।' मन्मथ ने असली बात अत मे जाहिर कर दी। कहा कि इसके लिए वह तो जिम्मेदार है नही, जिम्मेदार है उसका भतीजा यतीन। अत यदि बिना दोष के उसे अपनी जाति छोडनी ही है तो बीस हजार से कम मे नही छोड सकता। फिर, दूसरे के लडके का पितृत्व स्वीकार करना--यह भी तो कम मुश्किल नही है।

''यतीन अपने कमरे मे बैठकर पढ रहा था, उसे बुलाकर बात सुनाई गई। सुनकर पहले तो हक्का-बक्का-सा हुआ खडा रहा, फिर बोला, झूठी बात है।' चाचा मन्मथ गर्ज उठा, 'पाजी, नीच, नमकहराम! जो व्यक्ति तुझे खाना-कपडा देकर और कालेज में पढा-लिखा कर आदमी बना रहा है, उसी का तूने सर्वनाश किया! कैसे काले साप को मैं मालिक के घर मे ले आया! सोचा था कि माता-पिता-हीन लडका आदमी बन जाएगा। छि छी--' यह कहकर छाती और सिर पीटने लगा। बोला, 'यह बात उषा ने स्वय अपने मुह से कही है, और तू इन्कार करता है!

''यतीन चौंक उठा और बोला, 'उषा दीदी ने स्वय मेरा नाम लिया है? पर वह तो कभी झूठ नही बोलती--इतना बडा झूठा अपवाद तो उनके मुह से कभी बाहर निकल ही नही सकता।'

''मन्मथ एक बार और चिल्ला उठा, 'अब भी इन्कार करता है पाजी, अभागा, शैतान? अपने मालिक से तो पूछ, वे क्या कहते हैं!'

''मालिक ने अनुमोदन करते हुए कहा, 'हा।'

''यतीन ने पूछा, 'क्या खुद दीदी ने मेरा नाम लिया है?'

''मालिक ने फिर सिर हिलाकर कहा, 'हॉ।'

'पिताजी को वह देव-तुल्य मानता था। इसके बाद उसने और कोई प्रतिवाद नही किया। स्तब्ध

होकर कुछ देर खड़े रहने के वाद धीरे-धीरे चला गया। क्या सोचा, यह तो वही जाने।

"रात मे किसी ने उसकी खोज-खबर नही ली। सुवह ही आकर किसी ने सूचना दी। सब दौड पडे और देखा कि हमारे टूटे अस्तवल के एक कोने मे गले मे रस्सी वाधे यतीन झूल रहा है।"

वैष्णवी ने कहा, "यह नही जानती कि शास्त्रो मे भतीजे की आत्महत्या के उत्तरदायी चाचा के लिए प्रायश्चित्त की कोई विधि है या नही गुसाईं। कदाचित् न हो, या शायद डुवकी लगाने से ही शुद्धि हो जाती हो, वह जो हो सो हो, शुभ दिन केवल कुछ दिनो के लिए और आगे वढ गया। इसके वाद गगा-स्नान से शुद्ध और पवित्र हो माला और तिलक लगाये गुसाई पापिनी के पाप-विमोचन का शुभ-सकल्प लिए हुए नवद्वीप मे आकर हाजिर हो गये।"

एक मुहूर्त के लिए मौन रहकर वैष्णवी फिर कहने लगी, "उस दिन ठाकुरजी की अर्पित माला ठाकुरजी के पाद-पद्मो मे ही लौटा आई। मन्मथ की अपवित्रता दूर हो गई, पर पापिनी उषा की अपवित्रता इस जीवन मे दूर न हो सकी नये गुसाई।"

मैंने पूछा, "इसके वाद?"

वैष्णवी ने मुह फेर लिया और कोई जवाब नही दिया। मैं समझ गया कि उसे सभलने मे देर लगेगी। काफी देर तक हम दोनो ही चुप वैठे रहे।

उसका शेष विवरण सुनने का आग्रह प्रवल हो उठा। कितु सोच रहा था कि प्रश्न करना उचित होगा या नही। वैष्णवी ने आर्द्र मृदु कंठ से स्वय ही कहा, गुसाई, जानते हो, ससार मे पाप नाम की वस्तु इतनी भयकर क्यो है?"

"अपने विचारो के अनुसार एक प्रकार से जानता हू, कितु शायद तुम्हारी धारणा से वह मेल न खाए।"

उसने प्रत्युत्तर मे कहा, "नही जानती कि तुम्हारा विचार क्या है। कितु उस दिन से मैंने अकेले ही अपने ख्याल से समझ लिया है गुसाई, कि कितने ही लोगो को तुम सगर्व कहते हुए सुनोगे कि कुछ नही होता। वे अनेक व्यक्तियो के उदाहरण देकर अपनी बात प्रमाणित करना चाहेगे। कितु इसकी तो कोई आवश्यकता ही नही। इसका प्रमाण है मन्मथ और प्रमाण हू मैं स्वय। हमलोगो का अब भी कुछ नही हुआ। यदि कुछ होता तो मैं इसे इतना भयकर न कहती, पर ऐसा है नही, इसका दड भोगते हैं निरपराध और निर्दोष लोग। यतीन को आत्महत्या का वडा भय था, पर उसी से वह अपनी दीदी के अपराध का प्रायश्चित्त कर गया। कहो गुसाई, इससे और अधिक भयकर तथा निष्ठुर ससार मे क्या है? कितु होता ऐसा ही है, इसी प्रकार शायद भगवान अपनी सृष्टि की रक्षा करते हैं।"

इस मुद्दे पर वहस से कोई लाभ नही। युक्ति और भाषा—कुछ भी प्राजल नही, तथापि यही अनुमान किया कि दुष्कृति की शोकाच्छन्न स्मृति ने सभवतया इस पथ पर चलकर पाप-पुण्य की उपलब्धि अर्जित की है और उससे सात्वना पाई है।

"इसके वाद क्या हुआ, कमललता?"

यह सुनकर सहसा वह व्याकुल होकर बोल उठी, "सच बताओ गुसाई, इसके बाद भी मेरी वाते सुनने की इच्छा होती है?"

"सच ही कह रहा हू, होती है।"

"मेरा भाग्य है जो इस जन्म मे तुम्हारे दर्शन पुन: हुए।" कहकर वैष्णवी कुछ देर तक मेरी ओर देखती रही। फिर वोली, "कोई चार दिन वाद एक मरा हुआ लडका पैदा हुआ। उसे गगा-तट पर विसर्जित कर और गगा मे नहाकर घर लौट आई। पिताजी ने रोकर कहा, 'अब तो मैं नही रह सकता वेटी।'

'हा पिताजी, अब आप मत रहिए, घर लौट जाइए। बहुत दु ख दिया, अव आप मेरी चिता मत कीजिए।'

पिताजी ने पूछा, 'वीच मे खवर दोगी न वेटी?'

'नही पिताजी, मेरी खवर लेने की अव आप चेष्टा मत कीजिएगा।'

'कितु उषा, तुम्हारी मा अव भी जीवित है।'

'मैं मरूगी नही पिताजी, कितु मेरी सती-लक्ष्मी मा से कह देना कि उषा मर गई। मा को दु ख तो

होगा, परतु यह जान कर तो और अधिक दु ख होगा कि लडकी जीवित है।' आंखो से आसू पोछकर पिताजी कलकत्ते चले गये।"

मौन बैठा रहा मैं, कमललता कहने लगी, "पास मे रुपया था, मकान का किराया चुकाकर मैं भी निकल पडी। सगी-साथी मिल गये। सब वृदावन धाम जा रहे थे, मैं भी उनके साथ हो गई।"

वैष्णवी ने कुछ रुककर कहा, "इसके बाद कितने तीर्थों मे, कितने पथो मे और कितने पेडो के नीचे अनेक दिन कट गए।"

"यह तो जानता हू, पर सैकडो साधुओ की आखों की दृष्टि का विवरण तो तुमने बताया ही नही, कमललता।"

वैष्णवी हस पड़ी। बोली, "बाबाजी लोगों की दृष्टि अतिशय निर्मल है, उनके बारे मे अश्रद्धा की बात नही कहनी चाहिए गुसाईं।"

"नही नही, अश्रद्धा नही। अतिशय श्रद्धा के साथ ही उनकी कहानी सुनना चाहता हू, कमललता।"

इस बार वह हसी नही, पर दबी हुई हसी छिपा भी नही सकी। बोली, "जो बाबाजी प्रेम करते हैं, उनसे सब बाते खोलकर नही कही जाती, हमारे वैष्णव शास्त्र मे मना ही है।"

"तो रहने दो। सब बातो का काम नही है, किंतु एक बात बताओ। गुसाईं द्वारिका दासजी कहां मिले?"

कमललता ने सकोच मे जीभ काट ली, और माथे से हाथ लगा कर कहा, "मजाक नही करना चाहिए, वे मेरे गुरुदेव हैं गुसाईं।"

"गुरुदेव? तुमने उन्ही से दीक्षा ली है?"

"नही, दीक्षा तो नही ली है, पर वे उतने ही पूजनीय हैं।"

"पर इतनी सारी वैष्णविया—सेवादासियां क्या—"

कमललता ने फिर जीभ काटकर कहा, "वे सब मेरे ही समान उनकी शिष्या हैं। उन सबका भी उन्होंने ही उद्धार किया है।"

"निश्चय ही किया है, किंतु 'परकीया साधना'—या कुछ ऐसी ही जो एक साधना-पद्धति तुम लोगो की है—उसमे तो कोई दोष नही—"

वैष्णवी ने मुझे रोककर कहा, "दूर-दूर रहकर तुम लोगो ने केवल हमारा हंसी-मजाक ही उडाया है, निकट आकर कभी कुछ देखा तो है नहीं, इसलिए सरलता से व्यग्य कर सकते हो। हमारे बडे गुसाईं सन्यासी हैं, उनका उपहास करने से पाप लगता है नूतन गुसाईं—ऐसी बात फिर कभी जबान पर मत लाना।"

उसकी बातो से और गभीरता से मैं कुछ हतप्रभ हो गया। यह लक्ष्य कर वैष्णवी ने तनिक मुस्काते कहा, "दो दिन हमलोगो के पास यही रहो न गुसाईं। केवल बडे गुसाईं जी के लिए ही नही कह रही हू, मुझे तो तुम प्यार करते हो, और कभी यदि मुलाकात न हो तो कम से यह तो देख जाओ कि कमललता सचमुच मे क्या लेकर ससार मे रह रही है। यतीन को मैं आज भी नहीं भूली हू—दो दिन रह जाओ, मैं कहती हू कि तुम यथार्थ मे खुश होगे।"

मैं चुप रहा। इन लोगो के बारे मे एकदम ही कुछ न जानता होऊ, ऐसी बात नही है। असल वैष्णव की बेटी टगर की याद आ गई। किंतु मजाक करने की अब और प्रवृत्ति नही थी। यतीन के प्रायश्चित्त की घटना सारी आलोचना के बीच रह-रहकर जैसे मुझे भी उन्मना कर देती थी।

वैष्णवी ने अचानक प्रश्न किया, "क्यो गुसाईं, इस उम्र तक भी क्या सचमुच कभी तुमने किसी को प्यार नही किया?"

"तुम्हार ख्याल क्या कहता है कमललता?"

"मेरा तो ख्याल होता है कि नही। तुम्हारा मन असली वैरागी का मन है,—उदासीन का—तितली की तरह। तुम कभी किसी बधन को नही मानोगे।"

मैंने हसकर कहा, "तितली की उपमा तो अच्छी नही है कमललता, यह तो सुनने मे बहुत कुछ गाली जैसी है। मेरा प्रेम-पात्र यदि सचमुच कही कोई है तो उसके कानो मे इसकी भनक पडने पर अनर्थ हो जाएगा।"

वैष्णवी हसी, बोली, "डर की कोई बात नही गुसाईं। वास्तव मे यदि कोई होगी तो वह मेरी बात का विश्वास नही करेगी, और तुम्हारी मधुमिश्रित चालाकी भी वह जीवन भर नही पकड पाएगी।

"तो फिर उसे दु ख किस बात का रहा? हो न चालाकी, परतु उसके निकट तो यही सही रहेगी।"

वैष्णवी ने सिर हिलाकर कहा, "ऐसा नही होता गुसाईं। सत्य का स्थान झूठ कभी नही ले सकता। वे भले ही समझे, कारण भले ही उनके लिए स्पष्ट न हो, तथापि उनका अंतर निरतर अश्रुमुख ही रहेगा, मिथ्या का कांड तो देखते ही हो, इसी प्रकार इस मार्ग पर न जाने कितने लोग आये। यह पथ जिनके लिए सत्य नही है, उनकी सारी साधना जल की धारा के तल की सूखी बालू के समान सदा ही अलग-अलग रही है, कभी एकत्रित नही हुई।"

कुछ ठहर कर वह अचानक मानो मन ही मन बोल उठी, 'वे रस के मर्म तक तो पहुचते नही, इसीलिए प्राणहीन निर्जीव मूर्ति की निरर्थक सेवा करते-करते उनका जी दो दिन मे ही हाफ उठता है—सोचते हैं कि वे किस मोह के अंधकार मे अपने को दिन-रात ठगते हुए मरे जा रहे हैं। ऐसे लोगो को देखकर ही तुमलोग हमारा उपहास करना सीखते हो, किंतु मैं यह क्या फालतू बाते बक रही हू गुसाईं, इस सारे असलग्न प्रलाप की एक बात भी तुम नहीं समझोगे। पर यदि तुम्हारी ऐसी कोई है, तो तुम उसे भले ही भूल जाओ, लेकिन वह तुम्हें नही भूलेगी, और न कभी उसकी आखो का पानी ही सूखेगा।"

मैंने मान लिया कि उसके वक्तव्य का पूर्वार्द्ध मैंने समझा, किंतु अंतिम अश का प्रतिवाद किया, "तुम क्या यही कहना चाहती हो कमललता, कि मुझे प्यार करने का नाम ही है दु.ख पाना?"

"दु.ख की बात तो नही कही गुसाई, कही है आंखो के पानी की बात।"

"पर कमललता, ये दोनो ही एक ही हैं, केवल शब्दो का हेर-फेर है।"

वैष्णवी ने कहा, "नही गुसाईं, "ये दोनो एक नही हैं। न तो शब्दो का ही हेर-फेर है और न भाव का ही। औरतें न तो इससे डरती हैं और न उससे बचना ही चाहती हैं। किंतु तुम समझोगे कैसे?"

"जब कुछ नही समझूगा तब मुझ से यह सब कहती ही क्यो हो?"

"कहे बिना रहा नही जाता जी। प्रेम की वास्तविकता को लेकर मर्दों का दल जब अपनी बडाई करता रहता है तब सोचती हूं कि हमारी जाति उनसे अलग है। तुमलोगो के और हमलोगो के प्रेम की प्रकृति ही भिन्न है। तुमलोग चाहते हो विस्तार और हम चाहती हैं गभीरता, तुमलोग चाहते हो उल्लास और हम चाहती हैं शांति। जानते हो गुसाईं, कि प्रेम के मद से हम भीतर ही भीतर कितना डरती हैं। इसके उन्माद से हमारे हृदय की धडकन नही रुकती।"

मैं कुछ प्रश्न करना चाहता था, किंतु मेरी ओर उसने ध्यान ही नही दिया, और भावावेग मे बोलना जारी रखा, "वह हमारा स्वत्व भी नही है, हमारा अपना भी नही है। वह दौड-धूप की चचलता जिस दिन थमती है, केवल उसी दिन हम नि श्वास छोडकर आराम पाती हैं। ओ जी नये गुसाई, प्रेम की बडी से बडी प्राप्ति, स्त्रियो के लिए, निर्भयता की अपेक्षा और कुछ नही है। पर यही चीज तुम लोगो से कभी कोई नही पाती?"

"यह निश्चयपूर्वक जानती हो, कि नही पाती?"

वैष्णवी ने कहा, "निश्चयपूर्वक जानती हू। इसलिए ही तो तुम्हारी बडाई मुझे सहन नही होती।"

आश्चर्य हुआ। कहा, "तुम्हारे निकट बडाई तो की नही कभी कमललता?"

उसने कहा, "जान-बूझकर तो नही की, किंतु तुम्हारा यह उदासीन वैरागी-मन,—जगत मे इससे बढकर अहंकार से भरा हुआ और भी कुछ है क्या?"

"परन्तु इन दो दिनो मे ही तुमने मुझे इतना कैसे जान लिया?"

"जान गई, क्योंकि तुम्हें प्यार जो किया है।"

सुनकर मन ही मन कहा, तुम्हारे दु ख और आखो के अश्रुओ का प्रभेद इतनी देर बाद अब समझा हू कमललता! मालूम होता, अविश्राम पूजा और रस की आराधना का परिणाम ऐसा ही होता है।

"प्यार किया है, यह क्या सच है कमललता?"

"हां, सच है।"

"पर तुम्हारा जप-तप, तुम्हारा कीर्तन, तुम्हारी रात-दिन की ठाकुर सेवा—इन सब का क्या होगा, बताओ?"

वैष्णवी ने कहा, "तब ये सब मेरे लिए और भी सत्य, और भी सार्थक हो उठेंगे। चलो न गुसाईं, सब कुछ छोड-छाडकर दोनो जने रास्ते पर निकल पडे।"

मैंने सिर हिलाकर कहा, "यह नही होगा कमललता, कल मैं चला जा रहा हू। पर जाने से पहले गोहर के बारे मे जानने की इच्छा होती है।"

वैष्णवी ने केवल नि श्वास छोडकर कहा, "गौहर के बारे मे? नही, उसे सुनने का तुम्हारा काम नही है। सचमुच ही कल जाओगे?"

"हा, सच ही कल जाऊगा।"

क्षणभर के लिए स्तब्ध रहकर वैष्णवी ने कहा, "इस आश्रम में यदि तुम फिर कभी आओगे गुसाईं, तो कमललता को न खोज पाओगे।"

अब यहा निमिषमात्र भी रहना उचित नही है, इस बारे में कोई सदेह नही रह गया है, मगर इसी दौरान मानो कोई आड खडा होकर आख बदकर इशारे से मना करने लगता है। कहता है, 'जाओगे क्यो? सोचकर तो यही आए थे न कि छह-सात दिन रहेंगे,—रहो न, कष्ट तो कुछ है नही।'

रात को बिछौने पर पडा-पडा सोचता रहा कि ये हैं कौन जो एक ही शरीर मे वास कर एक ही समय ठीक उल्टी राय देते हैं। किस की बात अधिक सच है? कौन अधिक अपना है? विवेक, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति—ऐसे ही न जाने कि कितने नाम हैं, न जाने इनकी कितनी दार्शनिक व्याख्याये है, किंतु सत्य को आज भी कौन प्रतिष्ठित कर पाया है? जिसको सोचता हू कि अच्छा है, इच्छा आकर वही पर आगे कदम बढाने मे बाधा क्यो बन जाती है? अपने ही भीतर के इस विरोध—इस द्वद्व—का अत क्यो नही होता? मन कहता है कि यहा से चला जाना ही श्रेयस्कर है, चला जाना ही कल्याणकारी है। तो फिर दूसरे ही क्षण उस मन की दोनो आखो मे आसू क्यो भर आते हैं?. बुद्धि, विवेक, प्रवृत्ति, मन– इन सब बातो की सृष्टि करके सच्ची सात्वना रह कहा जाती है?

तथापि मुझे जाना ही चाहिए। पीछे हटने मे कार्य नही सधने वाला है। और सो भी आज ही। मैं सोचने लगा कि इस जाने को कैसे सपन्न करू। बचपन का एक तरीका जानता हू, वह है गायब हो जाना। विदा की वाणी नही, वापस लौटने का झूठा दिलासा नही, कारण का प्रदर्शन नही, प्रयोजन का—कर्तव्य का—विस्तृत विवरण नही, केवल मैं था और अब नही हू, इस सत्य घटना के आविष्कार का भार उन लोगो पर छोड देना जो पीछे रह गये हैं, बस। निश्चय कर लिया कि अब सोना नही है, ठाकुर जी की मगल-आरती प्रारभ होने के पहले ही अधेरे मे शरीर ढक कर प्रस्थान कर दूगा। कितु कठिनाई यह है कि पुटू के दहेज का रुपया छोटे बैग सहित कमललता के पास है। कितु इसे रहने दो। कलकत्ते से, और नही तो बर्मा से चिट्ठी भेज दूगा, उससे एक काम यह भी होगा कि जब तक यह रुपया लौटा न देगी तब तक कमललता को बाध्य होकर यहा रहना पडेगा, पथ-विपथ पर जाने का सुयोग ही प्राप्त नही होगा। जो कुछ रुपए मेरे कुरते की जेब मे पडे हैं, वे कलकत्ता पहुच जाने के लिए पर्याप्त है।

इसी तरह बहुत रात बीत गई। चूकि बार-बार सकल्प किया था कि सोऊगा नही, शायद इसी कारण न जाने कब सो गया। पता नही कि कितनी देर तक सोता रहा, पर अचानक ऐसा लगा कि स्वप्न मे गाना सुन रहा हू। एक बार ख्याल आया कि रात का व्यापार सभवत. अभी तक समाप्त नही हुआ है, फिर सोचा कि शायद प्रत्यूष की मगल-आरती शुरू हो गई हे, पर कासे के घटे का सुपरिचित दु सह निनाद नही है। असपूर्ण अपरितृप्त निद्रा टूट कर भी नही टूटती, आखे खोलकर देखा भी नही जा सकता। कितु, कानो मे प्रभाती के सुर मे मीठे कठ का सादा धीमा आह्वान पहुचा

जागिए गोपाल लाल, पछी बन बोले।
रजनी को अत भयो, दिन ने पट खोले।।

"गुसाईजी, और कितनी देर तक सोओगे? उठो।"

बिछौने पर उठ बैठा। मसहरी उठाई, पूर्व की खिडकी खुली हुई हे—सामने की आम्र-शाखाओ मे पुष्पित लवग-मजरी के कई बडे-बड़े गुच्छ नीचे तक झूल रहे हैं। उनकी सेधो मे से दिखाई दिया कि

आकाश मे कई जगह हल्के लाल रग का आभास है, जैसे अधेरी रात मे सुदूर ग्राम के अत मे आग लग गई हो।—मन मे कही कुछ व्यथा-सी होने लगी। कुछ चमगीदड उडकर अपने घोसलो मे लौट रहे हैं। उनके पखो की फडफडाहट बार-बार कानो मे आने लगी। ऐसा लगने लगा कि रात समाप्त हो रही है। यह नीलकंठें, बुलबलो और श्यामा पक्षियो का देश है। मानो, यह उनकी राजधानी, कलकत्ता शहर है और यह विशाल वकुल वृक्ष (मौल सिरी) उनके लेन-देन और काम-काज का 'बड़ा बाजार' है जहा दिन के समय की भीड़ देखकर अवाक् हो जाना पडता है। तरह-तरह की शक्ले, तरह-तरह की भाषा और रंग-बिरंगी पोशाक का बहुत ही विचित्र समावेश है। रात को अखाडे के चारो ओर के वन मे डाल-डाल पर उनके अगणित अड्डे हैं। नीद खुल जाने की आहट कुछ-कुछ पाई गई। उससे मालूम हुआ कि मानो हाथ-मुह धोकर वे तैयारी कर रहे हैं। अब सारे दिन चलने वाले नाच-गान का महोत्सव शुरू होगा। ये सब लखनऊ के उस्ताद हैं जो थकते भी नही और कसरत भी बद नही करते। भीतर वैष्णवो का कीर्तन शायद कभी वद भी हो जाय, परतु बाहर इस बला के बद होने की सभावना नही है। यहा पर छोटे-बडे, भले-बुरे का विचार नही है। इच्छा और समय चाहे हो या न हो, गाना तुम्हे सुनना ही पडेगा। इस देश की मालूम होता है, यही व्यवस्था है, यही नियम है। याद आया, कल सारी दोपहरी भर पीछे के बास के वन में दो पपीहो के उच्च कठ स्वर की 'पिया-पिया' पुकार की अविराम होड से मेरी दिवा-निद्रा मे काफी विघ्न हुआ था, इस पर मेरी ही तरह क्षुब्ध हुआ कोई जल काक नदी किनारे के वृक्ष पर और भी कठोर कठ से बार-बार उनका तिरस्कार करके भी उन्हे चुप नही कर सका था। भाग्य अच्छा था कि इस देश मे मोर नही हैं, नही तो उनके इस उत्सव के अखाडे मे आ पहुंचने पर तो मनुष्य टिक ही नही पाता। सो जो भी हो, दिन का उपद्रव अब भी शुरू नही हुआ था। शायद और भी थोडा-सा निर्विघ्न सो सकता, किंतु इसी समय पिछली रात का सकल्प याद आ गया। परतु, अब चुपचाप खिसक चलने का भी मौका नही रहा, प्रहरियो की सतर्कता से काम बिगड चुका था। नाराज होकर बोला, "मैं 'गोपाल' भी नही हू और मेरे बिछौने मे 'लाल' भी नही है। इस समय आधी रात को सोते से जगाने की भला कहो तो, क्या जरूरत थी"

वैष्णवी ने कहा, "रात कहा हैं गुसाई, तुम्हारी तो आज सवेरे की गाडी से कलकत्ते जाने की बात थी। मुंह-हाथ धो लो, मैं चाय तैयार कर लाती हू। नहाना नही। आदत नही है, बीमार पड सकते हो।"

"हाँ, बीमार पड सकता हू। सुबह की गाडी से जब मेरी इच्छा होगी चला जाऊगा, पर यह तो बताओ कि तुम्हे इस विषय मे इतना उत्साह क्यो है?"

उसने कहा, "और किसी के उठने के पहले मैं तुम्हे बड़े रास्ते तक पहुचा जो आना चाहती हू गुसाई।" उसका चेहरा स्पष्टत नही दिखाई दिया, पर बिखरे हुए बालो की ओर देखकर कमरे की इतनी कम रोशनी मे भी यह जान गया कि वे गीले हैं, स्नान से निबटकर वैष्णवी तैयार हो गई है।

"मुझे पहुचाकर फिर आश्रम मे ही लौट आओगी न?"

वैष्णवी ने कहा, "हा।"

रुपयो की उस छोटी-सी थैली को बिछौने पर रख उसने कहा, "यह रहा तुम्हारा बैग। रास्ते मे सावधानी रखना,—रुपये एक बार देख लो।"

एकाएक कुछ कहने के लिए शब्द न सूझे। फिर कहा, "कमललता, तुम्हारा इस रास्ते पर आना मिथ्या है। एक दिन तुम्हारा नाम था 'उषा', आज भी वही उषा हो—जरा भी नही बदल सकी हो।"

"क्यो, बताओ?"

"तुम भी कहो कि मुझ से रुपए गिनने के लिए क्यो कहा? गिन सकता हू यह क्या तुम सच समझती हो? जो सोचते कुछ और हैं और कहते कुछ और हैं उन्हे 'कपटी' कहते हैं। जाने के पहले मैं बडे गुसाई जी से शिकायत कर जाऊगा कि आश्रम के खाते से तुम्हारा नाम काट दे। तुम वैष्णव दल के लिए कलक हो।"

वह चुप रही। मैं भी क्षणभर मौन रहकर बोला, "आज सुबह मेरी जाने की इच्छा नही है।"

"नही है? तो थोडी देर और सो लो। [illegible] ने खबर देना—क्यो?"

"पर तुम अभी क्या करोगी?"

मुझे काम है। फूल चुनने जाऊगी।"

"इस अधकार में? डर नही लगता?"

"नही, डर किसका? सुबह की पूजा के फूल मैं ही चुनकर लाती हूं। नही तो उन लोगो को बडी तकलीफ होती है।"

'उन लोगो के माने अन्यान्य वैष्णविया। यहा दो दिन रहकर यह गौर कर रहा था कि सबकी आड मे रहकर मठ का समस्त गुरुभार कमललता अकेली वहन करती है। सब व्यवस्थाओ मे उसका कर्तृत्व है उसके ऊपर, किंतु स्नेह से, सौजन्य से और सर्वोपरि सविनय कर्म-कुशलता से यह कर्तृत्व इतनी सहज श्रृखला से प्रवहमान है कि कही भी ईर्ष्या-द्वेष का तनिक-सा भी मैल जमने नही पाता। यह सोचकर मुझे भी क्लेश हुआ कि यही आश्रम लक्ष्मी आज उत्कठ व्याकुलता के साथ 'जाऊ जाऊं' कह रही है। यह कितनी बडी दुर्घटना है। कितनी बडी निर्विकल्प दुर्गति मे इतने निश्चिंत नर-नारी गिर पडेगे। इस मठ मे सिर्फ दो दिन से हू, पर न जाने कैसा एक आकर्षण अनुभव कर रहा हू,—ऐसा मनोभाव हो गया है कि माना इसकी आतरिक शुभाकाक्षा चाहे बिना रह ही नही सकता। सोचा, लोग यह गलत कहते हैं। पर यह मानो आखो के सामने ही देखने लगा कि इस एक के अभाव मे केंद्र भ्रष्ट उपग्रह की तरह समस्त आयतन ही दिशा-विदिशाओ मे विच्छिन्न-विक्षिप्त होकर टूट सकता है। कहा, "और नही सोऊंगा कमललता, चलो तुम्हारे साथ चलकर फूल चुन लाऊ।"

वैष्णवी ने कहा, "तुमने स्नान नही किया है, कपड़े भी नही बदले हैं—तुम्हारे छुए हुए फूलो से पूजा होगी?"

मैंने कहा, "फूल मत तोडने देना, पर डाल को झुकाकर पकडने तो दोगी? यह भी तुम्हारी सहायता होगी।"

वैष्णवी ने कहा, "डाल झुकाने की जरूरत नही होती, छोटे-छोटे पेड हैं,—मैं खुद ही कर लेती हू।"

कहा, "कम से कम साथ रहकर सुख-दु:ख दो-चार बाते तो कर सकूगा? इसमे भी तुम्हारी मेहनत कम होगी।"

इस बार वैष्णवी हसी। बोली, "यकायक इतना दरद हो आया गुसाई! अच्छा, चलो। मैं डलिया ले आऊ, इतने मे तुम हाथ-मुह धोकर कपडे बदल लो।"

आश्रम के बाहर थोडी दूर पर फूलो का बगीचा है। घने छायादार आम्रवन के भीतर से रास्ता है। सिर्फ अधकार के कारण ही नही, बल्कि सूखे पत्तो के ढेरों के कारण पथ की रेखा विलुप्त हो गई है। वैष्णवी आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे चला, तो डर लगने लगा कि कही साप पर पैर न पड जाय।

कहा, "कमललता, रास्ता तो नही भूलोगी?"

"नही, कम से कम आज तो तुम्हारे लिए रास्ता पहचान कर चलना पडेगा।"

"कमललता, एक अनुरोध मानोगी?"

"कौन-सा अनुरोध?"

"यहा से तुम और कही नही जाओगी।"

"जाने से तुम्हारी क्या हानि है?"

जवाब नही दे सका, चुप हो रहा।

"मुरारी ठाकुर ने कहा है कि 'हे सखी, अपने घर लौट जाओ, जिसने जीते हुए भी मरकर अपने आप को खो दिया है, उसे तुम क्या अब समझती हो?'—गुसाई, शाम को तुम कलकत्ते चले जाओगे, और अब यहा शायद एक प्रहर से अधिक ठहर न सकोगे,—क्यो?"

क्या पता, पहले सुबह तो होने दो।"

वैष्णवी ने जवाब नही दिया, कुछ देर बाद गुनगुनाकर गाने लगी—

चडी दास कहे सुन विनोदिनी, सुख-दुख दोनों भाई!
सुख के कारन प्रीति करे जो, दुख भी ता ढिग जाई।।

गाना रुक जाने पर कहा, "इसके वाद?"
"इसके वाद और नही है याद।"
कहा, "तो कुछ और गाओ—"
वैष्णवी ने वैसे ही मधुर स्वर मे गाया—

> चंडिदास कहे सुन विनोदिनी, प्रीति को वात न भावै।
> प्रीति के कारण प्राण गवावैं, आखिर प्रीति ही पावै।।

इस वार उसके रुकने पर वोला, "इसके वाद?"
वैष्णवी ने जवाब दिया, "इसके वाद और नही है, यही शेष है।"

इसमे शक नही कि शेष ही है। दोनो ही चुप हो रहे। बहुत इच्छा होने लगी कि द्रुत पदो से निकट जाकर और कुछ वोलकर इस अधकार पथ पर उसका हाथ पकडकर चलू। जानता हू कि वह नाराज नही होगी, वाधा नही देगी, पर किसी भी प्रकार पैर नही चले, मुह से भी एक शब्द नही निकला। जैसे चल रहा था वैसे ही धीरे-धीरे चुपचाप जंगल के वाहर आ पहुचा।

रास्ते के किनारे वासो के घेरे से घिरा हुआ आश्रम का फूलो का एक वगीचा है। ठाकुर जी की दैनिक पूजा के लिए यही से फूल आते हैं। खुली हुई जगह मे अधकार नही है। पर उजाला भी उतना नही हुआ है। फिर भी देखा कि अनगिनत खिले हुए चमेली के फूलो से सारा वगीचा मानो सफेद हो रहा है। सामने के पत्ते झडे हुए मुडे चपे के झाड मे फूल तो नही हैं, परन्तु, उसके पास ही कही कुछ रजनी गधा के फूल असमय मे ही फूल रहे हैं जिनकी मीठी गध से उस कमी की पूर्ति हो गई है। और सव से अधिक मन को लुभा लेने वाला था बीच का हिस्सा। रात्रि के अत में इस धुधले आलोक मे पहचाने जाते थे एक-दूसरे से भिडे हुए झुड के झुंड गुलाव के झाड,—जिनमे वेशुमार फूल थे और जो सहस्रों फैली हुई लाल आखो से वगीचे की दिशाओ की ओर मानो ताक रहे थे। पहले कभी इतने तडके शय्या छोडकर नही उठा था, यह समय हमेशा निद्राच्छन्न जडता की अचेतनता मे कट जाता है। बता नही सकता कि आज कितना अच्छा लगा। पूर्व के रक्तिम दिगंत मे ज्योतिर्मय का आभास मिल रहा है, और उसकी नि शब्द महिमा से सारा आकाश शात हो रहा है। यह लतिकाओ और पत्तो से, शोभा और सौरभ से और अनगिनत फूलो से परिव्याप्त सामने का उपवन, सभी मिलकर ऐसा लगा कि जैसे यह रात्रि की समाप्तप्राय वाक्यहीन विदा की अश्रुरुद्ध भाषा हो। करुणा, ममता और अयाचित दाक्षिण्य से मेरा समस्त अतर पलक मारते ही परिपूर्ण हो उठा, सहसा कह उठा, "कमललता, जीवन मे तुमने अनेक दु ख-दर्द पाये हैं, पार्थना करता हू कि इस वार तुम सुखी होओ।"

वैष्णवी फूलों की डलिया को चपे की डाल पर लटकाकर सामने की वाड का द्वार खोल रही थी कि उसने आश्चर्य से लौटकर देखा और कहा, "अचानक तुम्हे हो क्या गया है गुसाई?" अपनी वाते अपने ही कानो मे न जाने कैसी वेतुकी लग रही थी, उस पर उसके सविस्मय प्रश्न से मन ही मन बहुत अप्रतिभ हो गया। कोई उत्तर नही सूझा, लज्जा को ढकने के लिए एक अर्थहीन हसी की चेष्टा भी ठीक से सफल नहीं हुई, अत मे चुप हो रहा।

वैष्णवी ने भीतर प्रवेश किया, साथ ही मैंने भी। फूल तोडते हुए उसने अपने आप कहा, "मैं सुख मे ही हूँ गुसाईं। जिनके पाद-पद्मो मे अपने को निवेदित कर दिया है वे दासी का कभी परित्याग नही करेंगे।"

सदेह हुआ कि अर्थ पर्याप्त स्पष्ट नही है, कितु यह कहने का साहस नही हुआ कि स्पष्ट करके कहो। वह मृदु स्वर मे गुनगुनाने लगी—

> गले मे श्याम माणिको की मजु मालाए डालूगी,
> और कानो मे नवकुडल, श्याम गुण-यश के धारूगी।
> श्याम के ही अनुराग रगे, पीत पट सुदर पहनूगी,
> योगिनि वन करके वन-वन, और पथ-पथ भटकूगी।।
> कहे यदुनाथदास—

गीत रोकना पडा। कहा, "यदुनाथ दास को रहने दो, उधर झल्लरीकी आवाज सुन रही हो, लौटोगी

नही?"

उसने मेरी ओर देखकर मृदु हास्य के साथ फिर शुरू कर दिया—

धर्म और कर्म सभी जावे, नही डरती हू मैं इससे।

कही इस चक्कर मे पडकर, हाथ न धो बैठू प्रीतम से।।

'अच्छा, नए गुसाईं, जानते हो कि वहुत-से भले आदमी स्त्रियो का गाना नही सुनना चाहते, उन्हे वहुत खराव लगता है?"

मैंने कहा, "जानता हूँ। किंतु मैं उन 'भले वर्वरों' मे नही हू।"

"तो बाधा डालकर मुझे रोका क्यो?"

"उधर तो शायद आरती शुरू हो गई है,—तुम्हारे न रहने से उसमे कमी रह जाएगी।"

"यह मिथ्या छलना है गुसाईं।"

"छलना क्यो है?"

"क्यो, सो तुम भी जानते हो। किंतु यह वात तुम से कही किसने कि मेरे न रहने पर ठाकुर जी की सेवा मे सचमुच ही कमी हो सकती है? इस पर क्या तुम विश्वास करते हो?"

"करता हूं। मुझे किसी ने कहा नही कमललता, मैंने स्वय अपने नेत्रों से देखा है।"

उसने और कुछ नही कहा, न जाने कैसे अन्य मनस्क भाव से क्षणभर वह मेरे मुह की ओर ताकती रही और इसके वाद फूल तोडने लगी।

डलिया भर जाने पर वोली, "वस, अव और नही।"

"गुलाव नही चुने?"

"नही, इन्हें हम नही तोडती, यही से भगवान को निवेदन कर देती हैं। चलो, अव चले।"

उजाला हो गया है। लेकिन यह मठ गाव के एकान्त मे है—इधर लोग अधिक आते-जाते नही, इसलिए यह पहले भी जनहीन था और अव भी है। चलते-चलते एक वार पुनः वही प्रश्न किया, "तुम क्या सचमुच यहा से चली जाओगी?"

"यह वात वार-वार पूछने से तुम्हें क्या लाभ होगा गुसाईं!"

इस बार भी उत्तर नही दे सका, केवल अपने आप से कहा, सच ही तो है, मैं यह वात बार-वार क्यो पूछता हू? इससे मेरा लाभ?"

मठ में वापस आकर देखा कि इस बीच सभी लोग जाकर दैनिक कार्यों में लग गये हैं। उस समय झल्लरी की आवाज से घवरा कर व्यर्थ ही जल्दी मचा दी थी। पता चला कि वह मगल-आरती थी ही नही, वह तो केवल ठाकुरजी की नीद तोडने वाला वाजा था। यह उन्हें ही भाता है।

अनेक लोगों ने हम दोनों को देखा, किंतु किसी के भी देखने में कुतूहल नही था। अल्हड उम्र होने के कारण केवल पद्मा एक वार मुस्काई, फिर मुह झुका कर रह गई। वह ठाकुरजी के लिए माला गुंथती है। उसके पास फूलो भरी डलिया रखकर कमललता ने सस्नेह कौतूहल के साथ ताना मारकर कहा, "हंसी क्यो कलमुही?"

लेकिन उसने मुह ऊपर नही उठाया। कमललता ठाकुरजी के कमरे मे चली गई, और मैं भी अपने कमरे मे दाखिल हो गया।

स्नान और आहार यथारीति और यथासमय संपन्न हुआ। शाम की गाडी से मेरे जाने की वात थी। वैष्णवी को खोजने गया तो देखा कि वह ठाकुरजी के कमरे में है और उन्हे सजा रही है। मुझे देखते ही वोली, "नये गुसाईं, यदि आए हो तो कुछ मेरी सहायता भी करो। पद्मा सिरदर्द लेकर पडी है, और लक्ष्मी-सरस्वती दोनों वहनों को एकाएक वुखार आ गया है, क्या होगा कुछ समझ में नही आता। वासती रग के इन दो कपडों में चुन्नट डाल दो न गुसाईं।"

अतएव ठाकुर के कपडों मे चुन्नट डालने बैठ गया। उस दिन जाना न हो सका। दूसरे दिन भी नही और उसके वाद वाले दिन भी नही। मैं वडे सवेरे वैष्णवी के फूल तोडने का साथी बन गया। प्रभात में, मध्याह्न में, सध्या को—कुछ कुछ काम वह मुझ से करा ही लेती है। इस प्रकार स्वप्न की तरह दिन कटने लगे। सेवा में, सहृदयता मे, आनन्द मे, आराधना के फूलो मे, गध में, कीर्तन में, पक्षियो के गान में—कही भी कोई छिद्र नही, फिर भी संदिग्ध मन बीच-बीच में सजग हो भर्त्सना कर उठता है कि यह

क्या खिलवाड़ कर रहे हो? बाहर के सारे संबंध तोडकर इन थोड़े से निर्जीव खिलौनों के पीछे यह कैसा पागलपन कर रहे हो? इतनी बड़ी आत्म-वंचना में मनुष्य जीवित कैसे रहता है? फिर भी यह अच्छा लगता है, जाऊ जाऊ करके भी पैर नहीं बढ़ा पाता। इस तरफ मलेरिया कम है, तथापि इस समय अनेक लोग ज्वरग्रस्त हो रहे हैं। गौहर केवल एक दिन आया था, फिर नही आया। उसकी खोज-खबर लेने का समय भी नहीं निकाल पाता! यह तो अच्छी हो गई मेरी दशा।

मन भय और धिक्कार से भर गया सहसा। यह मैं कर क्या रहा हू? संगति के दो से क्या एक दिन यह सब सत्य मान बैठूंगा? स्थिर किया, अब नही, चाहे कुछ भी क्यों न हो, कल यह स्थान छोड़कर मुझे भागना ही पड़ेगा।

प्रति दिन रात के अंत में वैष्णवी आकर जगा देती है। प्रभाती के स्वर में वैष्णव कवियों का नीद उड़ा देने वाला वह गीत भक्ति और प्रेम का कितना सकरुण आवेदन होता है! हठात् उत्तर नहीं दे देता, कान लगाकर सुनता रहता हूं। आंखों के कोनो में आंसू आ जाना चाहते हैं। मसहरी उठाकर जब वह खिड़की और दरवाजा खोल देती है तब नाराज होकर उठ बैठता हूं, और मुह धो कपड़े बदलकर साथ चल देता हूं।

कई दिनों की आदत की वजह से आज स्वतः नींद खुल गई। कमरे में अंधकार है। एक बार तो ऐसा लगा कि रात अभी खत्म नही हुई है, परंतु फिर संदेह हुआ। बिछौना छोडकर बाहर आया,—देखता हूं कि रात कहां है, सबेरा हो गया है। किसी के खबर देते ही कमललता आकर खडी हो गई। उसका ऐसा अस्नात अप्रस्तुत चेहरा इससे पहले नही देखा था।

भय के साथ पूछा, "तुम्हारी तबीयत ठीक नही है क्या?"

उसने म्लान हंसी हंसकर कहा, "गुसाईं, आज तुम जीत गये।"

"बताओ, कैसे?"

"तबीयत आज वैसी अच्छी नही। समय पर नहीं उठ सकी।"

"तो आज फूल तोडने कौन गया?"

आंगन के एक ओर एक अधमरे तगर के पेड़ में कुछ थोड़े से फूल लगे थे, उन्हीं को दिखाकर बोली, "इस समय तो इन्हीं से किसी तरह काम चल जाएगा।"

"पर ठाकुर के गले की माला?"

"माला आज न पहना सकूगी।"

सुनकर मन न जाने कैसा हो गया—उन्ही निर्जीव खिलौनो के लिए! कहा, "नहाकर मैं तोड लाता हूं।"

"तो जाओ, पर इतने सबेरे नहा नही सकोगे। बीमार पड जाओगे।"

"बड़े गुसाईंजी नहीं दिखाई देते हैं?"

वैष्णवी ने कहा, "वे तो यहा हैं नही, परसो अपने गुरुदेव से मिलने नवद्वीप गये हैं।"

'कब लौटेंगे?"

"यह तो पता नही गुसाईं।"

इतने दिनों से मठ में रहते हुए भी वैरागी द्वारिकादास के साथ घनिष्ठता नही हुई, कुछ तो मेरे अपने दोष से और कुछ उनके निर्लिप्त स्वभाव के कारण। वैष्णवी के मुंह से सुनकर और अपनी आंखो से देखकर जान गया हूं कि इस आदमी में न कपट है, न अनाचार और न मास्टरी करने का चाव। उनका अधिकाश समय अपने निर्जन कमरे में वैष्णव धर्मग्रथों के साथ व्यतीत होता है। इन लोगों के धर्म संबंधी मत पर मेरी न आस्था है और न विश्वास। मगर इस शख्स की बाते इतनी विनम्रतापूर्ण, चीजों को देखने-परखने की दृष्टि इतनी निर्मल एवं गंभीर और निष्ठा तथा विश्वास से दिन-रात इतनी भरपूर रहती है कि उनके मत एवं विश्वास की आलोचना करने में न केवल हिचकिचाहट होती है बल्कि दुःख भी होता है। यह बात स्वतः समझ में आ जाती है कि यहा तर्क करना एकदम बेकार है। एक रोज एक साधारण-सा तर्क करने पर वे इस प्रकार मुस्काते हुए चुपचाप ताकने लगे कि मारे कुंठा के मेरे मुंह से और शब्द ही न निकल सके। इसके बाद से मैं जहां तक हो सका, उनसे बचकर रहने लगा। तथापि एक कुतूहल बना रहा। एक चाहत भरी उम्मीद थी कि यहां से जाने के पहले उनसे, इतनी स्त्रियो से घिरे रहने

तथा निरविच्छिन्न रस के अनुशीलन में बनाये रखने का राज पूछूंगा। परंतु, इस सफर में अब यह सुयोग सम्भवत: नही मिलने वाला है। मन ही मन इस नतीजे पर पहुचा कि फिर कभी आऊंगा तो देखा जाएगा।

वैष्णव मठो मे ठाकुरजी की मूर्ति को सामान्यत: ब्राह्मणो को छोडकर अन्य कोई नही छू सकता, किंतु यह रीति इस आश्रम में नही है। ठाकुरजी का एक पुजारी बाहर रहता है जो आज भी हर रोज की तरह आकर पूजा कर गया। लेकिन आज ठाकुर जी की सेवा का भार बहुत कुछ मुझपर आ गया। वैष्णवी बताती जाती है और सब काम करता जाता हू, किंतु रह-रहकर हृदय में कडवाहट-सी भर जाती है: यह कैसा पागलपन सवार हो गया है मुझ पर!

आज भी जाना रुक गया। स्वय को सम्भवत: यह कहकर समझा लिया कि इतने दिनो से अगर यहां हूं ही तो विपत्ति की घड़ियो मे इन लोगों को क्योंकर छोड भागू? दुनिया में कृतज्ञता नाम की भी तो कोई चीज है।

दो दिन और कट गये। मगर अब और नहीं। कमललता स्वस्थ हो गई है, पद्मा और लक्ष्मी-सरस्वती दोनों बहनो की तबीयत भी ठीक हो गई है, और द्वारिकादासजी कल शाम वापस आ गये हैं। उनसे विदा मांगने गया। गुसाई जी ने पूछा, "आज ही जाओगे गुसाई? फिर कब आओगे?"

"यह तो नही जानता गुसाईंजी।"

"किंतु कमललता तो रोते-रोते अधमरी हो जाएगी।"

यह जानकर हमारी चर्चा इनके कानों तक भी पहुच गई है, मैं मन ही मन बहुत खीझ उठा। पूछा, "वह क्यो रोएगी?"

गुसाईंजी ने तनिक हंस दिया। कहा, "तुम यह नही जानते शायद?"

"जी नही।"

"उसका स्वभाव ही है ऐसा। जब भी कोई यहां से चला जाता है, वह शोक मे अधमरी हो जाती है।"

मुझे यह बात और खली। कहा, "शोक करने की आदत है जिसकी वह तो करेगा ही। उसे मैं रोक कैसे सकता हू?" किंतु—यह कहकर उनकी ओर से मुह फेरा था कि देखा, कमललता खडी है मेरे पीछे।

द्वारिकादास जी ने उदासी भरे स्वर मे कहा, "इस पर नाराज न होना गुसाईं। सुना है कि ये सब तुम्हारी सेवा न कर सकी और बीमार पडकर तुम से बहुत काम लिया, तुम्हें अनेक कष्ट दिया। इसके लिए यह स्वय कल मेरे सामने दुख प्रकट कर रही थी। और सेवा-सत्कार करने के लिए वैष्णव वैरागियों के पास है भी क्या? फिर भी, यदि कभी इधर आना हुआ तुम्हारा तो इन भिखारियों को दर्शन देते जाना। आओगे न गुसाईं?"

सिर हिलाकर बाहर निकल आया, कमललता खडी रही वहीं पर वैसी की वैसी ही। लेकिन अचानक यह हो क्या गया! विदा लेने के समय न जाने कितना, क्या-क्या कहने-सुनने की कल्पना कर रखी थी मैंने—सब बर्बाद कर डाली। अनुभव कर रहा था कि चित्त की दुर्बलता जनित ग्लानि आहिस्ता-आहिस्ता अतर में जमा होती जा रही है, लेकिन ऐसा सपने में भी नही सोचा था कि झुंझलाया हुआ असहिष्णु मन ऐसे अशोभन रूखेपन से अपनी मर्यादा नष्ट कर देगा।

नवीन आ धमका। वह गौहर की खोज मे आया है, क्योंकि वह कल से अभी तक घर लौटकर नही आया है। मुझे बड़ा अचरज हुआ, "यह कैसी बात है नवीन, वह तो यहा भी नहीं आता?"

इस प्रश्न से नवीन विशेष विचलित नही हुआ। बोला, "तब किसी वन-जगल मे घूम रहे होंगे। नहाना-खाना तक छोड दिया है, अब कहीं सांप के डसने की खबर मिलेगी तो निश्चित हुआ जाएगा।"

"लेकिन नवीन, उसकी खोज करना तो जरूरी है।"

"पता है कि जरूरी है यह, मगर कहा ढूढू? बाबू, वन में घूम-घूम कर अपनी जान तो दे नही सकता मैं। किंतु वे कहां है? उनसे पूछ तो लू एक मर्तबा?"

"वे कौन?"

"वही कमललता।"

"किंतु उसे क्या मालूम होगा?"

"वे नही जानती क्या?—सब जानती हैं।"

विवाद और अधिक न बढ़ाकर मैं तमतमाये नवीन को मठ से बाहर ले आया। कहा, "वास्तव मे कमललता कुछ नहीं जानती, नवीन। वह स्वय बीमार होने के कारण तीन-चार दिनो तक अखाडे के बाहर भी नहीं निकली।"

यकीन नही किया नवीन ने। खिन्न होकर बोल पडा, "नही जानती? सब जानती है। वैष्णवी कौन-सा मतर नही जानती? वह क्या नही कर सकती?—अगर कही नवीन के पल्ले पड जाती वह तो उसका आख-मुंह मटकाना और कीर्तन करना, सब निकाल देता।… बाप के जोडे इतने रुपये-पैसे लौंडे ने जादू से उड़ा दिये।"

नवीन को शात करने के उद्देश्य से मैंने कहा, "कमललता रुपये लेकर क्या करेगी नवीन? वह वैष्णवी है, मठ मे रहती है—गाना गाकर, भीख मागकर ठाकुर देवता की सेवा करती है। दोनो जून दो मुट्ठी खाती तो है, और क्या लेती है? इसीलिए नवीन, मुझे तो ऐसा नही लगता कि वह रुपयो की भिखारिन है।"

नवीन कुछ शांत होकर बोला, "अपनी खातिर नही है, यह तो हम भी जानते हैं। देखने मे भी भले घर की बिटिया जैसी लगी है—वैसा ही चेहरा-मोहडा, वैसी ही बातचीत। बडे बाबाजी भी लोभी नही हैं। मगर उन्होने वैष्णवियो का एक पूरा झुड जो पाल रखा है! ठाकुर-सेवा के बहाने इन लोगो को रोज हलुआ-पूड़ी और घी-दूध जो मिलना चाहिए! नयन चाद चक्रवर्ती के मुह से यह फुसफुस भी सुनी है कि अखाडे के नाम बीस बीघा जमीन भी खरीद ली गयी है। अब कुछ नही बचेगा बाबू, जो कुछ है सब एक दिन चला जाएगा बैरागियो के पेट मे।

"शायद यह सच नही, अफवाह है।" मैंने कहा, "और वह नयन चाद चक्रवर्ती भी तो कम नही है।"

नवीन ने यह बात तत्क्षण स्वीकार कर ली। बोला, "यह ठीक है। यह कुटिल बाभन बडा झासाबाज है। फिर भी कहिए न कैसे विश्वास न करूँ? उस दिन खामख्वाह मेरे ही लडके के नाम दस बीघा जमीन दान कर दी। मैं रोकता रह गया मगर एक न सुनी। मानता हू कि बाप बहुत रख गया है, मगर बाबू इस तरह बाटने से कै दिन चलेगा। जानते हैं, एक दिन क्या कहा? फरमाने लगे, 'हम फकीर के वशज हैं, फकीरी तो हम से कोई छीन नही लेगा'—लीजिए , सुनिए जनाब की बाते।"

नवीन चला गया। एक बात ध्यान मे चढ़ गयी—उसने एक बार भी यह नही पूछा कि मैं मठ मे इतने दिनो से क्यो पड़ा हू। मालूम नही कि यदि वह पूछ ही बैठता तो क्या उत्तर देता, कितु मन ही मन मैं झेप-सा गया। उसी से यह जानकारी भी मिली कि कालिदास बाबू के लड़के का ब्याह कल धूमधाम से हो गया। सत्ताईस तारीख की सुध ही नही रही मुझे।

नवीन की बातो पर सोचते-सोचते सहसा एक सदेह बिजली की गति से उठ खडा हुआ—वैष्णवी किसलिए चली जाना चाहती है? कही मोटी भौंहो वाले उस बदसूरत आदमी के डर से तो नही जो कठी के फेरबदल से मिले पतित्व का दावा जताता है। यहा मेरे रहने के बारे मे ही—सभवत इसीलिए—वैष्णवी ने उस दिन कौतुक से कहा था, 'गुसाई, यदि मैं तुम्हे पकडकर रखे रहू तो वे नाराज नही होगे। नाराज होने वाले आदमी नहीं हैं वे।' कितु अब क्यो नही आता वह? उसने न जाने मन ही मन क्या समझ लिया है। संसार में गौहर की आसक्ति नही है, अपना कहने को भी कोई नही—रुपया-पैसा, धन-दौलत तो उसके लिए ऐसे हैं मानो सब लुटाकर ही वह चैन पाएगा। प्रेम यदि उसने किया भी हो तो इस डर से कि आगे चलकर कोई गुनाह न छू जाय, किसी दिन मुह खोल कर वह शायद कहेगा भी नही। अनतिक्रम्य बाधा मे चिर-निरुद्ध प्रणय के इस निष्फल चित्त-दाह से उस शांत एव आत्म-विस्मृत मनुष्य को बचाने के लिए ही शायद वह यहा से निकल भागना चाहती है।

नवीन जा चुका है और मैं बकुल गाछ के नीचे टूटी बेदी पर अकेला बैठा सोच रहा हूं। घडी निकालकर देखी—यदि पाच बजे की गाडी पकड़नी है तो अब और देर नही की जा सकती। कितु प्रतिदिन जाते-जाते न जाना आदत मे कुछ इस कदर आ गया था कि झट से उठकर चल देने से आज भी मन पीछे हटने लगा।… चाहे जहा भी रहूं, पुटू के बहू-भात के समय पहुच कर अन्न ग्रहण करने के लिए वचनबद्ध हू और लापता गौहर को खोज लाना मेरा फर्ज है। इतने दिनो तक अनावश्यक अनुरोध बहुत माने हैं, लेकिन आज, जब कि सच्चा कारण विद्यमान है, मान्य करने के लिए कोई अनुरोध ही नहीं है। देखा, पद्मा आ रही है। पास आने पर बोली, "तुम्हे एक बार दीदी बुला रही हैं गुसाईं।"

मैं लौट आया। आगन मे खडी वैष्णवी ने कहा, "तुम्हे कलकत्ते पहुचने में देर हो जाएगी नये गुसाईं। थोडा-सा ठाकुर जी का प्रसाद सजा रखा है, कमरे में आओ।"

प्रतिदिन की भांति ही सावधानी से तैयारी की गई थी। यहा खाने के लिए मनाने और जोर डालने का रिवाज नहीं है, जरूरी होने पर मांग लेना होता है। बाकी नही छोडा जाता।

जाने के समय वैष्णवी ने पूछा, "नये गुसाईं, फिर आओगे न?"

"तुम रहोगी न?"

"तुम बताओ, मुझे कितने दिन रहना होगा?"

"तुम्ही बताओ, कितने दिनो बाद मुझे फिर आना होगा?"

"नही, यह मैं नही बताऊंगी तुम्हें।"

"मत बताओ, किंतु एक अन्य बात का जवाब दोगी, बोलो?"

वैष्णवी ने इस बार तनिक हस कर कहा, "नहीं, वह भी नही दूंगी मैं। इस समय तुम्हारी जो भी इच्छा हो सोच लो गुसाईं, एक दिन अपने आप ही मिल जाएगा उसका जवाब।

'अब तो समय नही है कमललता, कल चला जाऊंगा'—इन शब्दों ने कई बार जबान पर आना चाहा, किंतु किसी तरह कह नही पाया मैं। कहा यही कि—"जाता हूं।"

पद्मा भी पास आकर खड़ी हो गई। कमललता की देखादेखी उसने भी हाथ जोडकर नमस्कार किया। वैष्णवी ने नाराजगी दिखाते हुए फटकारा, "हाथ जोडकर नमस्कार क्या करती है कलमुंही, चरणो की धूल लेकर प्रणाम कर।"

मैं मानो चौंक गया इस बात से। उसके मुह की ओर दृष्टि डालते ही देखा कि उसने दूसरी ओर मुंह फेर लिया है।—और तब, और कुछ न कह-सुनकर मैं उनका आश्रम छोडकर बाहर निकल पडा।

आठ

कलकत्ते पहुचने के लिए आज असमय ही निकल पडा। इसके आगे इससे भी दु:खमय है बर्मा में निर्वासन। शायद अब वहा से लौटकर आने का समय ही नही रह जाएगा और प्रयोजन भी नही होगा। यह जाना ही आखिरी जाना हो शायद। गिनकर पाया कि दस दिन शेष हैं। जीवन के संदर्भ में दस दिन होते ही कितने हैं! फिर भी मन मे सदेह नही रह गया कि जो दस दिन पहले यहां आया था और जो आज विदा लेकर जा रहा है, वे दोनों एक ही नही हैं।

बहुतेरे लोगो को अफसोस के साथ कहते हुए सुना है कि अमुक आदमी ऐसा हो जाएगा, यह किसने सोचा था—यानी अमुक का जीवन सूर्यग्रहण और चद्रग्रहण के समान मानो उसके अनुमान के पचांग मे सही-सही गिनकर दर्ज किया हुआ है, उसका ठीक-ठीक न मिलना केवल अचित्य ही नही, अयुक्त भी है—मानो उनकी बुद्धि के हिसाब-किताब से अलग संसार मे और कुछ है ही नही। वे जानते ही नही कि ससार मे केवल भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्य ही नही हैं, बल्कि इसका पता लगाना भी दुस्तर है कि एक-एक मनुष्य भी कितने भिन्न—भिन्न मनुष्यो मे रूपातरित हो जाता है—यहां पर एक क्षण भी तीक्ष्णता और तीव्रता मे सपूर्ण जीवन को अतिक्रमित कर सकता है।

सीधा मार्ग छोडकर वन-जंगलो से गुजरते हुए इस-उस रास्ते चक्कर लगाता स्टेशन जा रहा था—बहुत कुछ उसी प्रकार जिस प्रकार बचपन मे पाठशाला जाया करता था। गाडी का समय मालूम नही है, कोई जल्दी भी नही है उसकी,—केवल यह जानता हू कि स्टेशन पहुच जाने पर कोई न कोई ट्रेन मिल ही जाएगी, चाहे जब मिले। चलते-चलते अचानक ऐसा लगा जैसे सारे रास्ते जाने-पहचाने हैं, मानो कितने दिनो तक कितनी बार इन रास्तो से गुजरा हू! पहले वे बडे थे, अब न जाने क्यो सकरे और छोटे हो गये हैं। अरे यह क्या—यह तो खा लोगो का हत्यारा बाग है! अरे, वही तो है! और यह तो मैं अपने ही गाव के दक्षिणी मुहल्ले के किनारे से जा रहा हू! उसने न जाने कब शूल की व्यथा के मारे इमली के पेड की ऊपर वाली डाल पर रस्सी बाधकर आत्महत्या कर ली थी। की थी या नही, नही जानता, पर प्राय

अन्य सभी गांवों की तरह यहा भी यह जन-श्रुति है। पेड रास्ते के किनारे है, बचपन मे इस पर निगाह पड़ते ही शरीर में कांटे उभर आते थे, आंखें बद करके एक ही दौड़ में इस स्थान को पार कर जाना पड़ता था।

पेड़ वैसा ही है। उस समय ऐसा लगता था कि इस हत्यारे वृक्ष का धड मानो पर्वत के समान है और सिरा आकाश से टकरा रहा है। किंतु आज देखा कि उस बेचारे मे गर्व करने लायक कुछ नही है, और अन्य इमली के जैसे पेड होते हैं यह वैसा ही है। जनहीन ग्राम के एक ओर एकाकी निःशब्द खडा है। शैशव मे जिसने बहुत डराया है. आज अनेक बर्षों बाद के प्रथम साक्षात्कार मे उसी ने मानो बंधु के समान आख मिचकाकर मजाक किया, कहो मेरे बंधु कैसे हो, डर तो नही लगता?

मैंने पास जाकर परम स्नेह के साथ उसके शरीर पर हाथ फेरा। मन ही मन कहा, अच्छा हूं भाई। डर क्यों लगेगा? तुम तो मेरे बचपन के पडोसी हो—मेरे आत्मीय!

सांझ का प्रकाश बुझता जा रहा था। मैंने विदा लेते हुए कहा, भाग्य अच्छा था जो अचानक भेट हो गई, अब जाता हूं बंधु!

सिलसिले में बंधे बहुत-से बगीचो के बाद थोडी-सी खुली जगह है। अन्य-मनस्क रहता तो इसे भी पार कर जाता, किंतु सहसा बहुत दिनों की भूली-बिखरी फिर भी परिचित-सी अति सुंदर मीठी गंध पाकर चौंक पडा। इधर-उधर निहारते ही निगाह जा पड़ी—वाह! यह तो हमारी उसी यशोदा वैष्णवी के आऊस फूलों की खुशबू है। बचपन मे इनके लिए यशोदा से कितनी आरजू-मिन्नत नहीं की थी। इस प्रजाति का वृक्ष इस क्षेत्र मे नहीं होता, क्या पता कहां से लाकर उसने इसे अपने आगन के एक कोने मे लगा दिया। उसकी शक्ल-सूरत वृद्ध मनुष्य के समान टेढ़ी-मेढ़ी और गांठो वाली थी। उस समय की ही तरह आज भी उसकी महज एक बही डाल है और ऊपर के थोड़े-से हरे पत्तो के बीच वैसे ही थोडे-से सफेद फूल हैं। इसके नीचे यशोदा के पति की समाधि थी। वैष्णव ठाकुर को हमने नही देखा था, हमारे जन्म के पूर्व ही वे स्वर्ग सिधार चुके थे। तब उनकी छोटी-सी मनिहारी की दुकान उनकी विधवा ही चलाती थी। दुकान तो नही रही, लेकिन यशोदा छोटे-छोटे आईने, कंघिया, नारे, महावर, तेल के मसाले, कांच के खिलौने, टीन की वंशी इत्यादि एक दौरी मे भरकर घर-घर घूमकर बेचा करती थी। इसके अलावा उसके पास मछली फसाने का सामान भी रहता था—ज्यादा नही, एक-एक दो-दो पैसे की डोरियां और काटे। इन्हे खरीदने के लिए जब कभी हम उसके घर जाते, बहुत धूम मचाते थे। इस आऊस गाछ की एक सूखी डालपर मिट्टी से बनाये आले पर यशोदा सायंकाल दीपक जलाती और फूल के लिए ऊधम मचाने पर हमे समाधि दिखाकर कहती, "ना बच्चो, ये मेरे देवता के फूल हैं, तोडने पर वे नाराज हो जाएंगे।"

वैष्णवी अब नही रही, पता नही कब वह मर गई—शायद बहुत दिन नही हुए। पेड से लगे एक तरफ बने एक और चबूतरे पर दृष्टि पडी, यह शायद यशोदा की समाधि हो। बहुत संभव है कि लबे इतजार के बाद पति के पास ही उसने अपने लिए भी थोडी-सी जगह बना ली हो। स्तूप की खुदी हुई माटी अधिक उर्वर होने के कारण बिच्छू खूब हो गये हैं, और वृक्ष को चमगादडो ने छा दिया है। संभालने वाला कोई नही है।

मार्ग छोडकर, बचपन से ही परिचित उस वृद्ध वृक्ष के पास जाकर खडा हो गया। देखा कि सायकाल जलने वाला वह दीपक नीचे पडा है, और उसके ऊपरवाली वह सूखी डाल आज भी वैसे ही तेल से काली हो रही है।

यशोदा का यह छोटा-सा घर अभी पूरी तरह ध्वस्त नही हुआ है—हजारो छेदो वाला जीर्ण-शीर्ण फूस का छप्पर दरवाजे को ढककर औंधा पड़ा हुआ आज भी घर की रक्षा कर रहा है।

बीस-पच्चीस साल पहले की न जाने कितनी बाते याद आ गईं—बांसों के घेरे से घिरा यशोदा का लिपा-पुता आगन, और उसकी वह छोटी-सी कुटिया। उसकी आज यह हालत! किंतु उससे भी अधिक, एक बहुत ही करुणा जनक वस्तु अब भी देखने को शेष थी। अचानक दिखाई पडा कि उसी घर के टूटे छप्पर के नीचे से एक ककाल-शेष कुत्ता बाहर निकला। उसने मेरे पैरो की आवाज से चौंक कर मेरे अनधिकार प्रवेश का विरोध करना चाहा। किंतु उसकी आवाज इतनी बेदम थी कि उसके मुह मे ही रह

गई।

पूछा, "क्यो रे, कोई गुनाह तो नही किया मैंने?"

उसने मेरे मुह की तरफ ताक कर न जाने क्या सोचा, और फिर पूछ हिलाना शुरू कर दिया। मैंने कहा, "तू अब भी यही है?"

प्रत्युत्तर मे केवल दोनो उदास आखे खोलकर अत्यत निरुपाय की तरह उसने मेरे मुंह की तरफ ताका।

यह यशोदा का कुत्ता है, इसमे सदेह नही। उसके गले मे रगीन किनारी का फूलदार पट्टा अब भी है। मैं समझ नही सका कि उस नि सतान रमणी के एकांत स्नेह का धन यह कुत्ता इस परित्यक्त कुटी मे क्या खाकर आज भी जीवित है। उसमे ऐसी शक्ति तो है नही और न ऐसी आदत ही है कि मुहल्लो में जाए और छीन-झपट कर खा आए। अपनी जाति के साथ मेल-जोल की शिक्षा भी उसे नही मिली है। सो भूखा-अधभूखा यही पडा-पडा बेचारा शायद उसी की बाट जोह रहा है जो कभी उसे प्यार किया करती थी। सोचता होगा कि कही न कहीं गई है, एक न एक दिन वापस लौटेगी ही। मन ही मन कहा, यह क्या ऐसा ही है? इस प्रत्याशा को एक बारगी पोछ डालना क्या इस ससार मे इतना सरल है?

चलने के पहले छप्पर की सेंध मे से एक बार भीतर की ओर दृष्टि डाली। अधकार मे और तो कुछ भी दिखाई न पडा, दीवार पर चिपकी हुई तस्वीरें नजर आ गई। राजा-रानी से लेकर नाना जाति के देवी-देवताओं तक की तस्वीरे हैं। कपडे के नये थानो मे से निकाल-निकालकर यशोदा इन्हे सग्रहीत करती थी ओर इस तरह वह अपना तस्वीरो का शौक मिटाती थी। याद आया कि बचपन में इनको अनेक बार मुग्ध दृष्टि से देखा है। बारिश से भीग कर, दीवार की मिट्टी से बिगडकर ये आज भी किसी तरह टिकी हुई हैं।

और पास के ही छीके पर पडी हुई है वैसी ही दुर्दशा मे वह रगीन हॅडिया जिसे देखते ही मुझे याद आई यह बात कि इसमे उसके आलते के बडल रहते थे। और भी इधर-उधर क्या-क्या पडा था, अधकार में पता नही चल सका। वे सब चीजे मिलकर प्राणपण से मुझे न जाने किस बात का इंगित करने लगी, पर उस भाषा से मैं अनभिज्ञ था। कुछ ऐसा लगा कि मकान के एक कोने मे मानो किसी मृत शिशु का खिलौना-घर है। घर-गृहस्थी की नाना टूटी-फूटी चीजो से यत्नपूर्वक सजाये हुए इस क्षुद्र ससार को वह छोड गया है। आज उन चीजो की कदर नही है। प्रयोजन भी नही, आचल से बार-बार झाड़ने-पोछने की जरूरत भी नही,—पडा रह गया है केवल जजाल, इसलिए कि किसी ने उसे मुक्त नही किया है।

वह कुत्ता कुछ देर तक साथ-साथ आया और ठहर गया। जब तक दिखाई पड़ा तब तक बेचारा इस ओर टकटकी लगाये खडा देखता रहा। उसके साथ का यह परिचय प्रथम भी है, और अंतिम भी। फिर भी वह कुछ आगे बढकर विदा देने आया है। मैं जा रहा हू किसी बधुहीन, लक्ष्यहीन प्रवास के लिए, और वह लौट जाएगा अपने अधकारपूर्ण निराले टूटे हुए मकान में। दोनों के ही ससार में ऐसा कोई नही है जो राह देखते हुए प्रतीक्षा कर रहा हो।

बगीचे के पार हो जाने पर वह आखो से ओझल हो गया, परतु पाच ही मिनट के इस अभागे साथी के लिए हृदय भीतर ही भीतर रो उठा, ऐसी दशा हो गई कि आखो के आसू न रोक सका।

चलते-चलते सोच रहा था कि ऐसा क्यो होता है? और किसी दिन यह सब देखता तो शायद कुछ विशेष ख्याल न आता, पर आज मेरा हृदयाकाश मेघो के भार से भारातुर हो रहा है—जो उन लोगो के दुःख की हवा से सैकडो धाराओ मे बरस पडना चाहते हैं।

स्टेशन पहुच गया। भाग्य अच्छा था, उसी समय गाडी मिल गई, कलकत्ते के निवास-स्थान पर पहुचने तक रात न होगी। टिकट खरीदकर बैठ गया, और उसने सीटी देकर सफर शुरू कर दिया। स्टेशन के प्रति उसे मोह नही, सजल आखो से बार-बार घूमकर देखने की उसे जरूरत नही।

फिर वही याद आई—मनुष्य के जीवन मे दस दिन होते ही कितने हैं, फिर भी कितने बडे हैं।

कल सुबह कमललता अकेली ही फ़ूल तोडने जाएगी और उसके बाद शुरू हो जाएगी उसकी सारे दिन चलने वाली देव-सेवा। क्या मालूम, दस दिन के साथी-नये गुसाईं—को भूलने में उसे कितने दिन लगेंगे।

उस दिन उसने कहा था, 'सुख से ही तो हू गुसाईं। जिनके पाद-पद्मों पर अपने आप को निवेदित

कर दिया है वे दासी का कभी परित्याग नही करेगे।' सो यही हो। ऐसा ही हो।

बचपन से ही मेरे जीवन का कोई लक्ष्य नही है, बलपूर्वक किसी भी चीज की कामना करना मैं नही जानता—सुख-दु ख सबधी मेरी धारणा भी अलग है। तथापि इतनी उम्र सिर्फ दूसरो का अनुकरण करने मे कट गई—दूसरो के विश्वास पर और दूसरो का हुक्म तामील करने मे। इसलिए किसी भी कार्य का मुझ से भली भाति निर्वाह नहीं होता। दुविधा से दुर्बल मेरे सारे सकल्प और सारे उद्योग थोडी ही दूर तक चल पाते है और ठोकर खाकर रास्ते मे ही चूर-चूर हो जाते है, तब सभी कहने लगते है, 'आलसी है, किसी काम का नही। शायद इसीलिए उन निकम्मे वैरागियो के अखाडे मे ही मेरा अतरवासी अपरिचित बधु अस्फुट छाया-रूप मे मुझे दर्शन दे गया, मैंने बार-बार नाराज होकर मुह फेर लिया और बार-बार उसने मुस्काते हुए हाथ हिला-हिलाकर न जाने क्या इशारा किया।

और वह-वैष्णवी कमललता! उसका जीवन तो मानो प्राचीन कवि-हृदयो के आसुओ का गीत है। छदो मे तारतम्य नहीं है, व्याकरण मे भूले हैं, भाषा मे भी कई खामिया हैं, किंतु उस पर विचार इन बातो से नही किया जा सकता। कीर्तन का सुर तो मानो उसका ही दिया हुआ है—जिसके मर्म को छूता है उसे ही उसका पता चलता है। वह मानो गोधूलि-बेला के आकाश की रग-बिरगी तस्वीर है। उसका कोई नाम नही, सत्ता नहीं—कलाशास्त्र के सूत्रो के आधार पर उसका परिचय देना भी एक विडबना ही है।

मुझसे कहती थी, 'चलो न गुसाई, यहा से निकल चले, गीत गाते-गाते रास्ते ही रास्ते पर हम दोनो के दिन कट जाएगे।'

उसे तो कहने मे कुछ नही लगा, किंतु मुझे खटका वह। मेरा नाम उसने 'नये गुसाई' रखा है। कहती थी, 'असली नाम तो मैं मुह से निकाल नहीं सकती, गुसाई।' उसका विश्वास है पिछले जीवन का मै उसका बधु हू। उसे मुझसे भय नही। मेरे पास रहते हुए उसकी साधना मे विघ्न नही पड सकता। वैरागी द्वारिकादास की वह शिष्या है, पता नही उन्होने उसे किस साधना से सिद्धि-लाभ का मत्र दिया है।

सहसा राजलक्ष्मी याद आ गई, फिर याद आई कड़ी शब्दावली वाली उसकी वह चिट्ठी जो स्नेह और स्वार्थ के मिश्रण से भरी हुई थी। फिर भी मुझे मालूम है कि इस जीवन के पूर्ववर्ती विराम पर वह मेरे लिए शेष हो चुकी है। अच्छा ही हुआ है यह शायद। परतु उस शून्यता को भरने के लिए क्या कही भी कोई है? खिडकी के बाहर अधकार मे ताकता हुआ चुपचाप बैठा रहा। न जाने कितने सदर्भ और कितनी घटनाए एक-एककर याद आती गई शिकार के आयोजन हेतु खड़ा किया गया कुमार साहब का वह तबू, वह दल-बल और कई वर्षो बाद प्रवास मे प्रथम साक्षात्कार वाले दिन की दीप्त काली आखो मे उसकी वह विस्मय-विमुग्ध दृष्टि। जिसको जानता था कि मर गई है, जिसे पहचान नही सका था—उसी ने उस दिन श्मशान मार्ग पर कितनी व्यग्र-विह्वल प्रार्थना की थी। और अत मे कैसा था वह क्रुद्ध निराशा का तीव्र अभिमान। रास्ता रोककर कहा था, 'तुम जाना चाहते हो क्या इसीलिए मैं तुम्हे चले जाने दूगी? देखू तो कैसे जाते हो। इस विदेश मे यदि कोई विपत्ति आ पडी तो कौन देख-भाल करेगा? वे या मैं?'

इस बार पहचान लिया उसे। यह जोर ही उसका सदा का वास्तविक परिचय है। जीवन यह उससे फिर कभी नही छूटा—इसने उसके निकट कभी किसी को अव्याहति नही मिली। रास्ते के एक किनारे मरने को पडा था कि नींद टूटने पर आखे खोलकर देखता हू कि वह सिरहाने बैठी है। तब सारी चिताए उसे सौपकर आखे बंद कर सो गया। यह भार उसका है, मेरा नही।

गाव वाले मकान मे आकर बीमार पड गया। यहा वह नही आ सकती थी—यहा वह मृत है—इससे बढकर और कोई लज्जा उसके लिए नही थी, फिर भी जिसे अपने करीब पाया वह वही राजलक्ष्मी थी।

चिट्ठी मे लिखा है, 'तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा? पुटू और मैं सिर्फ नौकरो की जुबानी खबर सुनकर लौट जाऊगी? इसके बाद भी जीवित रहने के लिए कहते हो?'

इस प्रश्न का उत्तर नही दिया। इसलिए नही कि जानता नही, बल्कि इसलिए कि साहस ही नही हुआ। मन ही मन कहा, क्या केवल रूप मे ही? सयम मे, शासन मे, कठोर आत्म-नियत्रण मे उस प्रखर बुद्धिमती के पास यह स्निग्ध सुकोमल आश्रमवासिनी कमललता कितनी-सी है। पर उस इतनी-सी मे ही इस बार मानो मैंने अपने स्वभाव की प्रतिच्छवि देख ली। ऐसा लगा कि उसके पास ही है मेरी मुक्ति, मर्यादा और नि श्वास छोडने का अवकाश। वह कभी मेरी सारी चिताए, सारी भलाई -बुराइया अपने

हाथो में लेकर राजलक्ष्मी के समान मुझे आच्छन्न नही कर डालेगी।

सोचने लगा कि विदेश जाकर क्या करूंगा? होगा क्या इस नौकरी से? नई बात तो कोई है नही--उस दिन भी ऐसा क्या पा लिया था जिसको फिर से पाने का लोभ करना होगा आज? केवल कमललता ने ही तो नही कहा, द्वारिका गुसाई ने भी आश्रम मे रहने के लिए एकांत मे आदरपूर्वक आग्रह किया है। क्या यह सब वचना है? क्या मनुष्य को धोखा देने के अलावा इस आमत्रण में कोई सत्य नही है? जीवन अब तक जिस प्रकार कटा है, क्या यही उसका शेष है? क्या अब कुछ भी जानने को बाकी नही बचा? क्या मेरे लिए सब जानना समाप्त हो गया? सदा ही तो इसके प्रति अश्रद्धा और उपेक्षा ही बरती है, कहा है--सब असार है, सब भूल है। किंतु केवल अविश्वास और उपहास को ही पूजी मान लेने से संसार मे कभी किसी को कोई बडी चीज हासिल हुई है?

ट्रेन हावड़ा स्टेशन पर आकर रुक गई। तय किया कि रात को घर रहकर जो कुछ काम हैं, जो देना-पावना है, वह सब निबटाकर कल फिर आश्रम लौट जाऊंगा। गई अपनी नौकरी, और रह गया अपना वर्मा जाना। जब घर पहुचा तब रात के दस बज गये थे। भोजन का प्रयोजन तो था, किंतु उपाय नही था। हाथ-मुह धोकर और कपडे बदलकर झाड ही रहा था कि पीछे से एक सुपरिचित कठ की आवाज आई, "आ गए बाबूजी?"

अचरज से मुडकर देखा, वह रतन था। पूछा, "कब आया रे?"

"सझा को ही आ गया। बरामदे मे बडी सुहानी हवा थी, आलस के मारे सो गया था तनिक।"

"बहुत अच्छा किया। खाया तो नही है न?"

"जी नही।"

"तब तो यार, तूने बडी मुश्किल मे डाल दिया।"

"और आपने?" रतन ने पूछा।

स्वीकार करना पडा, "खाया तो मैंने भी नही।"

रतन प्रसन्न हो गया बोला, "तब तो अच्छा हुआ, आप का प्रसाद पाकर रात काट दूंगा।"

मन ही मन कहा कि यह नापित-पुत्र विनय का अवतार है, किसी भी प्रकार हतप्रभ नही होता। बोला, "तो आस-पास की किसी दुकान मे खोज, यदि कुछ प्रसाद जुटा सके तो। किंतु यह शुभागमन किसलिए हुआ है? फिर कोई चिट्ठी है?"

"जी नही," रतन ने कहा, "चिट्ठी लिखन मे बडी झझट है। जो कुछ कहना होगा, वे खुद अपने मुह से ही कहेगी।"

"इसका मतलब? मुझे फिर जाना होगा क्या?"

"जी नही। मा स्वय आ गई हैं।"

घबरा गया सुनकर। इस रात मे उसे कहां ठहराऊ? क्या उपाय करू? कुछ समझ मे नही आया। फिर भी कुछ तो करना ही चाहिए। पूछा, "जब से आई है तब से क्या घोडागाडी मे ही बैठी हैं?"

रतन हसकर बोला, "ना बाबू, हमे आए तो चार दिन हो गए। इन चार दिनो से आपके लिए रात-दिन पहरा दे रहा हू। चलिए।"

"कहा? कितनी दूर?"

"दूर तो कुछ जरूर है, मगर मैंने किराए की गाड़ी तय कर रखी है, तकलीफ नही होगी कोई।"

अतएव, फिर से कपडे पहन कर, घर मे ताला लगाकर फिर यात्रा करनी पडी। श्याम बाजार की एक गली में एक दोमंजिला मकान है, सामने चारदीवारी से घिरा हुआ एक बगीचा है। राजलक्ष्मी के दरबान ने द्वार खोलते ही देख लिया मुझे। उसके आनद की सीमा न रही। सिर झुकाकर लबा-चौडा नमस्कार कर पूछा, "अच्छे तो हैं बाबूजी?"

"हा तुलसीदास, अच्छा हू। तुम ठीक-ठीक हो न?"

जवाब से उसने सकारात्मक ढग से फिर वैसा ही नमस्कार किया। तुलसी मुगेर जिले का है, जाति का कुर्मी। ब्राह्मण होने के नाते वह हमेशा बगाली रीति से मेरे पैर छूकर प्रणाम करता है।

हमारे वार्तालाप से एक और हिंदुस्तानी नौकर की नीद खुल गयी शायद, रतन के जोर से हडकाने के कारण वह बेचारा हक्काबक्का होकर रह गया। दूसरो को अकारण ही डरा-धमकाकर रतन इस मकान

मे अपनी मर्यादा बनाये रखता है। बोला, "जब से आये हो, बस सोते हो और रोटी खाते हो, चिलम में तंबाकू तक सजाकर नही रख सकते? जाओ जल्दी जल्दी ...।" यह आदमी नया है, डर के मारे चिलम सजाने चला गया।

ऊपर, सीढ़ी के सामने वाला बरामदा पार करने के बाद एक बहुत बड़ा कमरा मिला—गैस के धवल प्रकाश से जगमगाता हुआ। चारों ओर कार्पेट बिछा हुआ है, उसके ऊपर फूलदार जाजम है और दो-चार तकिये पडे हैं। पास ही मेरा बहु-व्यवहृत अतिप्रिय हुक्का और उससे कुछ ही दूर जरी के काम वाले मेरे मखमली स्लीपर सावधानी से रखे हुए हैं। ये राजलक्ष्मी ने अपने हाथ से बनाये थे और मेरे एक जन्मदिन के अवसर पर परिहास मे उपहार स्वरूप दिये थे! पास का कमरा भी खुला हुआ है, किंतु उसमें कोई नहीं है। खुले दरवाजे से एक बार झांककर देखा कि एक और नयी खरीदी हुई खाट पर बिछौना बिछा हुआ है और दूसरी तरफ वैसी ही नयी खूंटी पर मेरे ही कपडे टगे हैं। ये सब गंगामाटी जाने के पहले तैयार हुए थे। याद भी नही रह गये थे, और कभी काम में भी नही आये।

रतन ने पुकारा,—"मां!"

"आई," कहकर राजलक्ष्मी सामने आकर खड़ी हो गयी और पैरो की धूल लेकर प्रणाम कर बोली, "रतन, चिलम तो भर ला, इधर कई दिनो से तुझे भी काफी कष्ट दिया।"

"कुछ भी कष्ट नही हुआ मा।" राजी-खुशी इन्हे घर लौटा लाया, मेरे लिए यही बहुत है।" कहकर नीचे चला गया वह।

इस बार राजलक्ष्मी को नई आंखो से देखा। सौंदर्य जैसे शरीर मे समाता ही नही। उस दिन की पियारी याद आ गई। इन कई वर्षों के दु.ख-शोक मे नहाकर उसने मानो नया रूप धारण कर लिया है। नये मकान की इन चार दिनों की इस व्यवस्था से चौंका नही, क्योंकि उसकी सुव्यवस्था से पेड़ तले का वास-स्थान भी सुंदर हो जाता है। लेकिन राजलक्ष्मी ने इन कुछेक दिनों में स्वयं को मिटाकर फिर से नया बना लिया है। पहले वह बहुत-से आभूषण धारण किये रहती थी, बीच में सब उतार दिये थे—मानो सन्यासिनी हो। किंतु आज पुन: धारण कर लिये हैं—थोड़े-से ही, पर देखकर लगा कि ये अत्यंत बहुमूल्य हैं। तथापि, धोती बहुत कीमती नही है—मिल की धोती है, घर में आठों पहर पहनने की। माथे के पल्ले की किनारी के नीचे से निकलकर छोटे-छोटे बाल गालो के आस-पास झूल रहे हैं। शायद छोटे होने के कारण वे उसकी आज्ञा नहीं मानते। देखकर अवाक् रह गया मैं।

"इतना घूर-घूर का क्या देख रहे हो?" राजलक्ष्मी ने पूछा।

"तुमको देख रहा हूं।"

"नई हू क्या?"

"लग तो ऐसा ही रहा है।"

"और मुझे क्या लग रहा है, जानते हो?"

"नही।"

"इच्छा तो यह होती है कि रतन के चिलम सजाकर लाने के पहले ही दोनों बाहे तुम्हारे गले में डाल दूं। यदि डाल दूं तो क्या करोगे, बताओ? कहकर हंस पडी। बोली, "उठाकर बाहर फेक तो नही दोगे?"

"डालकर देख ही लो न।" मैं भी हसी नही रोक सका। कहा, "किंतु इतनी हसी, ... कहीं भाग तो नही खा ली है?"?"

सीढियों पर पैरो की आवाज सुनाई पडी। चालाक रतन कुछ जोर-जोर से पैर पटकता हुआ चढ़ रहा था। राजलक्ष्मी ने हंसी दबाकर कहा, "पहले रतन को चले जाने दो फिर मैं बताऊंगी कि भांग खाली है या और कुछ खाया है।"

किंतु कहते-कहते उसका कंठ भारी हो गया। कहा, "इस अनजान जगह चार-पाच दिनो के लिए मुझे अकेली छोड़कर तुम पुंटू की शादी कराने गये थे? पता है, ये रात-दिन मेरे कैसे बीते हैं?"

"मुझे क्या पता कि तुम अचानक आ जाओगी?"

"हा जी हा, अचानक तो कहोगे ही। पर तुम सब जानते थे, केवल मुझे परेशान करने के लिए ही चले गए थे।"

रतन ने आकर हुक्का दे दिया। बोला, "बात पक्की हुई है मां, बाबू का प्रसाद पाऊंगा। रसोइये से

भोजन लाने को कह दू क्या? रात के बारह बज गये हैं।"

बारह बजने की बात सुनकर राजलक्ष्मी मे व्यस्तता आ गई। बोली, "रसोइये से नही होगा, मैं स्वय जाती हू। तुम मेरे सोने के कमरे मे थोडी जगह बना दो।"

खाने के लिए बैठा तो गगामाटी के अतिभ दिनो का स्मरण हो आया। उन समय यही रसोइया और यही रतन मेरे खाने की व्यवस्था करते थे। राजलक्ष्मी को मेरी खबर लेने की फुर्सत ही नही मिलती थी। किंतु आज इन लोगो से नहीं होगा, स्वय जाना होगा रसोईघर मे। मगर यही उसकी प्रकृति है, वह तो निकृति थी। समझ गया कि कारण चाहे जो हो, किंतु उसने अपने को फिर पा लिया है।

खाना खत्म हो जाने पर राजलक्ष्मी ने पूछा, "पुट्टू की शादी कैसी रही?"

"आखो से तो नही देखी किंतु कानो से सुनी, भली भांति हो गई।"

"आखो से नही देखी? फिर थे कहा इतने दिनो से?"

विवाह का पूरा वृत्तात खोल कर सुना दिया। सुनकर पलभर गाल पर हाथ रखकर उसने कहा, "तुमने तो अवाक् कर दिया। आने के पहले पुंटू को कुछ उपहार नहीं दिया?"

"वह मेरी ओर से तुम दे देना।"

"तुम्हारी ओर से क्यो?" राजलक्ष्मी ने कहा, "अपनी तरफ से ही लडकी को कुछ भेज दूगी। किंतु थे कहा, यह तो बताया नही तुमने?"

पूछा, "मुरारीपुर के बाबाओ की याद है तुम्हे?"

"है क्यो नही?" राजलक्ष्मी बोली, "वैष्णवियाँ वही से तो भीख मांगने मुहल्ले-मुहल्ले म आती थी। बचपन की बाते मुझे खूब याद हैं।"

"वही था मैं।"

सुनकर राजलक्ष्मी के शरीर मे जैसे कांटे निकल आये, "उन्ही वैष्णवियो के अखाडे मे? ओ मेरी मा! क्या कहते हो जी? उनके विषय मे तो भयकर गदी बातें सुनी हैं।" कहकर सहसा वह जोर से हस पडी। अतत मुह मे आंचल दबाकर बोली, "तो तुम्हारे लिए कोई कार्य असाध्य नही है आरा मे जो तुम्हारी मूर्ति देखी है—सिर पर जटा, पूरे शरीर मे रुद्राक्ष की माला, हाथो मे पीतल के वह अद्भुत . ।" बात पूरी न कर सकी, हसते-हसते लोट-पोट हो गई। नाराज होकर बैठा दिया उसे। अत मे, हिचकी लेकर मुह में कपडा ठूसने पर बडी मुश्किल से जब हसी थमी तब बोली, "वैष्णवियो ने तुम से क्या कहा? चपटी नाको वाली और गोदनो वाली वहा बहुत-सी रहती हैं न जी ?"

हसी का वैसा ही फव्वारा फिर छूटने वाला था, पर सावधान कर दिया, "इस बार हसोगी तो ऐसा कठोर दड दूगा कि सुबह नौकरो को मुह दिखाने लायक नही रह जाओगी।"

राजलक्ष्मी डर से पीछे हट गई, और मुह खोलकर बोली, "ऐसा काम तुम सरीखे वीर पुरुषो का नही है। स्वय ही शर्म के मारे बाहर नही निकलोगे। तुम से ज्यादा भीरू पुरुष दुनिया मे नही है।"

कहा, "तुम कुछ भी नही जानती लक्ष्मी। भीरु कहकर तुमने मेरी अवज्ञा की है, किंतु वहा एक वैष्णवी मुझ से कहती थी अहकारी—दभी।"

"क्यो? उसका क्या कर दिया था?"

"कुछ भी नही। उसने मेरा नाम रख दिया था 'नये गुसाई,' कहती थी, 'गुसाई, तुम्हारे उदासीन वैरागी मन की तुलना मे अधिक दभी मन पृथ्वी पर दूसरा नही है।"

"क्या कहा उसने?" राजलक्ष्मी की हसी हवा हो गई।

"कहा कि इस प्रकार एक उदासीन, वैरागी मन वाले मनुष्य के मुकाबले अधिक दंभी व्यक्ति ससार मे ढूढे नही मिलेगा। अर्थात् मैं दुर्द्धर्ष वीर हू, भीरू कदापि नही।"

राजलक्ष्मी की आकृति गभीर हो गई। परिहास पर ध्यान ही नही दे सकी वह। बोली, "तुम्हारे उदासीन मन का पता उस हरामजादी ने कैसे पा लिया?"

"वैष्णवियो के प्रति ऐसी अशिष्ट भाषा अत्यत आपत्तिजनक है।"

"जानती हू यह।" राजलक्ष्मी बोली, "किंतु उसने तुम्हारा नाम तो 'नये गुसाई' रख दिया और उसका अपना नाम क्या है?"

"कमललता। कोई-कोई प्रेम से कमलीलता भी कहता है। लोग कहते हैं कि वह जादू जानती है,

उसका कीर्तन सुनकर मनुष्य पागल हो जाता है और, वह जो चाहती है, वही दे देता है।"

"तुमने सुना है?"

"सुना है। चमत्कार है।"

"उम्र क्या है उसकी?"

"तुम्हारे ही बराबर जान पडती है। कुछ अधिक भी हो सकती है।"

"देखने में कैसी है?"

"अच्छी है। कम से कम बुरी तो नहीं ही कही जा सकती। तुमने जिन चपटी नाको और गोदनावालियो को देखा है, उनके दल की वह नहीं है। वह भले घर की लडकी है।"

"मैं उसकी बात सुनकर ही समझ गई।" राजलक्ष्मी ने कहा, "जब तक तुम रहे तब तक तुम्हारी सेवा करती रही न?"

"हां, मेरी ओर से कोई शिकायत नही है।"

एकाएक नि.श्वास छोडकर राजलक्ष्मी ने कहा, "सो करने दो। तुमको जिस साधना से पाया जाता हे उससे तो भगवान भी मिल सकते हैं। यह वैष्णव वैरागियो का काम नही है। मैं डरने जाऊगी उस न जाने कहां की कमललता से? छी:!" कहकर वह उठी और बाहर चली गई।

मेरे मुह से भी एक दीर्घ नि.श्वास निकल गया। कुछ बेमन-सा हो गया था शायद, इस आवाज से होश मे आ गया। मोटे तकिये को खींचकर चित लेटकर हुक्का पीने लगा।

ऊपर एक मोटा-सा मकडा जाल बुन रहा था। गैस के उज्जवल प्रकाश मे उसकी छाया बहुत बडे बीभत्स जतु के समान मकान की कडियो पर पड रही थी। आलोक के व्यवधान से छाया भी कई गुनी काया को अतिक्रमित कर जाती है।

राजलक्ष्मी वापस लौटी, मेरे ही तकिए के एक कोने मे कोहनियों के बल झुक कर बैठ गई। हाथ लगाकर देखा कि उसके सिर के बाल गीले हैं। शायद अभी-अभी आख-मुंह धोकर आई है।

प्रश्न किया, "लक्ष्मी, एकाएक इस तरह कलकत्ते क्यो चली आई?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "एकाएक कदापि नही। उस दिन के बाद दिन-रात चौबीस घटे मन न जाने कैसा होने लगा कि कही हार्ट फेल न हो जाय—इस जन्म मे फिर कभी आखो से नहीं देख सकूं," कहकर उसने हुक्के की नली मेरे मुंह से निकालकर दूर फेक दी। कहा, "जरा ठहरो। धुएं के मारे मुह तक नही दिखाई देता, ऐसा अंधकार कर रखा है।"

हुक्के की नली तो गई, पर बदले मे मेरी मुट्ठी मे उसका हाथ आ गया।

पूछा, "बंकू आजकल क्या कहता है?"

राजलक्ष्मी ने तनिक म्लान हंसी हंसकर कहा, "बहुओ के आने पर सब लडके जो कहते हैं, वही।"

"उससे अधिक कुछ नही?"

"कुछ नही तो नही कहती, पर वह मुझे दु:ख क्या देगा? दु ख तो केवल तुम्हीं दे सकते हो। तुम लोगो के अलावा औरतों को सचमुच का दु ख कोई भी नही दे सकता।"

"पर मैंने क्या कभी कोई दु ख दिया है लक्ष्मी?"

राजलक्ष्मी ने अनावश्यक मेरे माथे मे हाथ लगाया और उसे पोछकर कहा, "कभी नही। बल्कि, मैंने तुम्हे आज तक न जाने कितने दु:ख दिए हैं। अपने सु:ख के लिए लोगो की नजरों मे तुम्हे हेय बनाया, प्रवृत्तिवश तुम्हारा असम्मान होने दिया—उसी का दड है कि अब दोनो किनारे डूबे जा रहे हैं। देख तो रहे हो न?"

हसकर कहा, "कहा, नही तो?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तो किसी ने मंतर पढकर तुम्हारी दोनो आखो पर परदा डाल दिया है।" फिर कुछ चुप रहकर कहा, "इतने पाप करके भी ससार मे मेरे जैसा भाग्य किसी का कभी देखा है? पर मेरी आशा उससे भी नही मिटी। न जाने कहां से आ जुटा धर्म का पागलपन और हाथ आई लक्ष्मी अपने पैरो से ठुकरा दी। गगामाटी से आकर भी चैतन्य नही हुआ, काशी से तुम्हे अनादर के साथ विदा कर दिया।"

उसकी दोनो आखो से टप-टप आंसू गिरने लगे, मेरे उन्हे हाथ से पोछ देने पर बोली, "अपने ही हाथ से विषैला पौधा लगाया था, अब उसमें फल आ गये हैं। खा नहीं सकती, सो नही सकती, आखो की नीद

हराम हो गई, न जाने कैसे-कैसे असंबद्ध भय होने लगे जिनका न सिर है न पैर। गुरुदेव तब मकान में थे, उन्होंने कोई कवच जैसा हाथ में बांध दिया, कहा, 'बेटी, सुबह एक ही आसन पर बैठकर तुमको दस हजार बार इष्टनाम का जप करना होगा।' पर कर कहां सकी? मन मेंतो आग जल रही थी, पूजा पर बैठते ही दोनों आंखों से आंसुओं की धार बह चलती,—उसी समय आई तुम्हारी चिट्ठी और तब इतने दिनों बाद रोग पकड मे आया।"

"किसने पकडा?—गुरुदेव ने? इस बार शायद उन्होंने फिर एक कवच लिख दिया?"

"हा जी, लिख दिया है और उसे तुम्हारे गले में बांधने के लिए कहा है।"

"ऐसा ही करना, बाध देना, यदि तुम्हारा रोग अच्छा हो जाय।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "उस चिट्ठी को लेकर मेरे दो दिन कटे। कैसे कटे, यह नहीं जानती। रतन को बुलाकर उसके हाथों चिट्ठी का जवाब भेज दिया। गंगा स्नान कर अन्नपूर्णा के मंदिर में खड़ी होकर कहा, 'मां, ऐसा करो कि समय रहते उनके हाथों में चिट्ठी पहुच जाय, मुझे आत्महत्या न करनी पड़े।" मेरे मुंह की, ओर देखकर कहा, "मुझे इस तरह क्यों बांधा था बोलो?"

सहसा इस जिज्ञासा का उत्तर नही दे सका। इसके बाद कहा, "तुम स्त्रियों से ही यह संभव है। हम तो यह सोच भी नही सकते, समझ भी नही सकते।"

"स्वीकार करते हो?"

"हा।"

राजलक्ष्मी एकबार फिर क्षणभर के लिए मेरी ओर देखकर बोली, "वाकई विश्वास करते हो कि यह हम लोगों के लिए ही संभव है, पुरुष यथार्थ में ऐसा नही कर सकते?"

कुछ देर तक दोनों स्तब्ध रहे। राजलक्ष्मी ने कहा, "मंदिर से बाहर निकलकर देखा कि हमारा पटने का लछमन साहू खडा है। मेरे हाथ वह बनारसी कपडे बेचा करता था। बूढ़ा मुझे बहुत चाहता था और मुझे बेटी कहकर पुकारता था। आश्चर्य से चकित होकर बोला, 'बेटी, आप यहां?' मुझे मालूम था कि कलकत्ते में उसकी दुकान है। कहा, 'साहूजी, मैं कलकत्ते जाऊंगी, मेरे लिए एक मकान ठीक कर सकते हो?' उसने कहा, 'कर सकता हूं। बगाली मुहल्ले में मेरा अपना एक मकान है, सस्ते में खरीदा था। चाहो तो उतने ही रुपए में मैं मकान दे सकता हू।' साहू धर्म-भीरु व्यक्ति है, उस पर पर विश्वास था, राजी हो गई। घर पर बुलाकर रुपए दे दिए और उसने रसीद लिखकर दे दी। उसी के आदमियों ने ये सब चीजें खरीद कर दी हैं। छह-सात दिन बाद ही रतन को साथ लेकर यहा चली आई। मन ही मन कहा, 'मां अन्नपूर्णा, तुमने मुझ पर दया की है, नही तो यह सुयोग कभी न मिलता। मुझे उनके दर्शन होंगे हीं, और आखिर दर्शन हो गए।"

कहा, "परतु मुझे तो शीघ्र ही बर्मा जाना होगा लक्ष्मी।"

राजलक्ष्मी बोली, "ठीक है, तो चलो न। वहां अभया है, सारे देश में बुद्धदेव के बड़े-बड़े मंदिर हैं—उन सब को देख आऊगी।"

कहा, "किंतु वह बडा गदा देश है लक्ष्मी, शुचि-वायुग्रस्त लोगों के आचार-विचार वहां नही चलते। उस देश मे तुम कैसे जाओगी?"

राजलक्ष्मी ने मेरे कान पर मुह रखकर धीरे-धीरे न जाने क्या कहा, अच्छी तरह से समझ में नहीं आया। कहा, "जरा जोर से कहो तो सुनाई दे।"

इसके बाद वह अवशभाव से उसी तरह पडी रही। केवल उसके उष्ण घने निःश्वास मेरे गले पर और गालों पर आकर पडने लगे।

नौ

"उठो जी, कपडे बदलकर हाथ-मुह धो लो। रतन चाय लेकर खडा है।"

मेरी ओर से जवाब न पाकर राजलक्ष्मी ने फिर आवाज दी, "कितनी देर हो गई है—अब कबतक सोते रहोगे?"

मैंने करवट बदलते हुए अवश कंठ से कहा, "सोने ही कब दिया तुमने? अभी-अभी तो सोया हूं।"

इसी समय चाय की कटोरी की आवाज कानों में पड़ी जिसे मेज पर रखकर रतन शर्म के मारे भाग गया था।

"छी छी! तुम कितने निर्लज्ज हो। आदमी को झूठमूठ ही अप्रतिभ कर देते हो। अपने तो रातभर कुंभकर्ण की भांति सोते रहे, बल्कि मैं ही जागकर पंखा झलती रही कि कहीं गर्मी से तुम्हारी नींद न खुल जाय, और अब मुझ से ही ऐसा कहते हो! जल्दी उठ जाओ, वर्ना पानी डाल दूंगी ऊपर।"

मैं उठ बैठा। हालांकि देर नहीं हुई थी, फिर भी सबेरा हो गया था। खिड़कियां खुली हुई थीं। प्रभात के उस स्निग्ध प्रकाश में राजलक्ष्मी की अद्‌भुत मूर्ति दिखाई दी। उसका स्नान और पूजा-पाठ समाप्त हो चुका है। गंगाघाट के उड़िया पंडे का लगाया उजले और लाल रंग की नई बनारसी साड़ी है। पूरब वाली खिड़की से आई थोड़ी-सी सुनहली धूप तिरछी होकर उसके मुंह के एक एक तरफ पड़ रही है। उसके अधरों के नीचे चपल नेत्रो की दृष्टि मानो उछाल भरे आवेग से जगमगा रही है—देख कर आज भी आश्चर्य की सीमा न रही। अचानक हंसकर उसने कहा, "अच्छा यह तो बताओ कि कल से इतने घूर-घूर कर क्या देख रहे हो?"

"तुम्हीं बताओ न कि क्या देख रहा हूं!"

"शायद यह देख रहे कि पुंटू मुझसे अधिक सुंदर है या नहीं," राजलक्ष्मी ने फिर कुछ हंसकर कहा, "अथवा कमललता देखने में अधिक अच्छी लगती है या नही—क्यों, यही बात है न?"

"नहीं,। यह बात आसानी से कही जा सकती है कि रूप को लेकर तो कोई तुम्हारी प्रासंग में भी नही आ सकता। इसके लिए इतने ध्यान से देखने की आवश्यकता नहीं है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "अच्छा रूप की बात छोड़ो, किंतु गुण में?"

"गुण मे? हां—यह तो मानना पड़ेगा कि इस विषय में मतभेद की गुंजाइश है।"

"गुणों के बारे में तो यहां तक सुना है कि वह कीर्तन कर लेती है।"

"हां, बहुत सुंदर कर लेती है।"

"तुमने यह कैसे समझ लिया कि वह सुंदर है?"

"वाह, यह भी नहीं समझ सकता? विशुद्ध ताल, लय, सु, ... "

राजलक्ष्मी ने बीच मे ही रोककर कहा, "अच्छा जी, ताल किसे कहते हैं?"

"ताल उसे कहा जाता है जो बचपन में तुम्हारी पीठ पर पडती थी। याद है कि नही?"

"क्या कहा, याद नही?" राजलक्ष्मी बोली, "खूब याद है। . कल आनन-फानन में भीरु कहकर तुम्हारी अवज्ञा कर डाली। कमललता ने तो केवल तुम्हारे उदासीन मन का परिचय पाया है, तुम्हारी वीरता की कहानी नहीं सुन पाई शायद?"

"नहीं, क्योंकि अपनी बडाई अपने मुंह से नही करनी चाहिए। वह तुम सुना देना। किंतु इसमे संदेह नही कि उसका कठ मधुर है।"

"संदेह मुझे भी नही है।" कहते-कहते अचानक उसकी आंखो मे प्रच्छन्न कौतुक चमक उठा। बोली, "हां जी, तुम्हे वह गाना याद है?—वही जो पाठशाला की छुट्टी होने पर तुम गाया करते थे और हम सब मुग्ध होकर सुनते थे—'कहां गये प्राणों के प्राण हे दुर्योधन रे-ए-ए . . '

हंसी दबाने के लिए उसने आंचल से मुंह को ढंक लिया, मैं भी हंस पडा। राजलक्ष्मी ने कहा, "किंतु वह गाना बहुत भावपूर्ण था। तुम्हारे मुंह से सुनकर मनुष्यों की तो बात ही क्या, गाय-बछडो की आखों मे भी पानी आ जाता था।"

रतन के पदचाप सुनाई पड़े। अविलंब ही दरवाजे के पास खडे होकर उसने कहा, "चाय का पानी फिर चढ़ा दिया है मा, तैयार होने मे देर नहीं लगेगी।" यह कहकर कमरे के भीतर आकर उसने चाय की कटोरी उठा ली।

राजलक्ष्मी ने मुझसे कहा, "अब तो देर मत करो, उठ जाओ। इस बार फिर चाय फेकी जाने पर रतन चिढ़ जाएगा। वह चीजों की बर्बादी नहीं सह सकता। क्यों, ठीक कहती हूं न रतन?"

जवाब देना रतन को भी खूब आता है। कहा, "आपकी ओर से होने वाला नुकसान तो नहीं सह सकता मां। मगर बाबू के लिए मैं सब कुछ सह सकता हूं।" कहकर वह चाय की कटोरी लेकर चला

गया। क्रोध मे वह राजलक्ष्मी को 'आप' कहता था, ऐसे 'तुम' कहकर ही सम्बोधित करता था।

"रतन वाकई तुमको बहुत आदर देता है।" राजलक्ष्मी ने कहा।

"मुझे भी ऐसा ही लगता है।"

"हा। जब तुम काशी से चले आए तब उसने लगभग मेरा काम छोड दिया। नाराजगी के साथ मैंने पूछा, 'रतन, तेरे साथ मैंने जो बर्ताव किया है उसका प्रतिफल क्या यही है?' उसका जवाब था, 'मां, रतन नमकहराम नहीं है। मै भी बर्मा जा रहा हू, बाबू की सेवा कर तुम्हारा कर्जा चुका दूगा।' मैंने तब उसका हाथ पकड लिया और अपनी गलती मजूर कर उसे मनाया।"

कुछ रुककर कहा उसने, "इसके बाद ही आया तुम्हारे विवाह का निमत्रण-पत्र।"

"झूठ मत बोलो।" मैंने रोककर कहा, "सिर्फ तुम्हारी राय जानने के लिए ."

इस बार उसने भी रोककर कहा, "हा जी हा, यदि नाराज होकर मै विवाह करने के लिए लिख देती तब तो कर लेते न?"

"नही।"

"नहीं क्या? तुम लोग सब कुछ कर सकते हो।

राजलक्ष्मी बताने लगी, "रतन ने न जाने क्या समझ लिया, मने तो यही देखा कि मेरे पास दौड़ आने के बाद उसकी आखे छलछला आई है। बाद मे जब चिट्ठी का जवाब डाक मे डालने के लिए उसे दिया तब बोला, 'मा, इस चिट्ठी को डाक मे नही छोड सकूगा, इसे खुद ले जाकर उनके हाथ मे दूगा।' मैने टोका, 'बेकार रुपए बर्बाद करने से क्या लाभ होगा?' रतन ने जवाब मे आखे पोछकर कहा, 'मा, यह तो नही जानता कि हुआ क्या है, मगर तुम्हे देखकर ऐसा जान पडता है मानो नदी का किनारा कमर तक धस गया है—इस बात का कोई ठिकाना नही कि कब जड़ पेड-पत्तो और सब लेकर सिर-दिए पानी मे बह जाय। तुम्हारी दया से अब मुझे कोई कमी नहीं है। रुपए तुम दोगी तो भी मैं नहीं ले सकूगा। अगर विश्वनाथ बाबा ने सिर उठाकर देख लिया तो मेरे गाव वाली झोपडी मे नानी के लिए थोडा-सा प्रसाद भेज देना, वह कृतार्थ हो जाएगी'।"

"नाई बेटा कितना सयाना है।"

सुनकर राजलक्ष्मी ने ओठ दबाकर केवल हस दिया और कहा, "अच्छा, अब देर मत करो, जाओ।"

दोपहर को जब वह भोजन कराने बैठी तब मैंने कहा, 'कल तो साधारण-सी साडी पहने हुए थी किंतु आज प्रात काल से ही यह बनारसी साड़ी। यह ठाठ क्यो है, बताओ तो सही?"

"तुम्ही बता दो न।"

"मैं नहीं जानता।"

"अवश्य जानते हो।—पहचान सकते हो इस साडी को?"

"हा, पहचान सकता हू। मेने बर्मा से खरीद कर भेजी थी।"

"उसी दिन मैंने निश्चय कर लिया था," राजलक्ष्मी ने कहा "कि इसे अपने जीवन के सबसे महान दिन पर पहनूगी—और कभी नहीं।"

"इसीलिए आज पहन ली है।"

हसकर कहा, "किंतु वह तो हो गया अब उतार दो।" वह चुप रही। मैंने कहा, "सुना है, तुम अभी ही कालीघाट जाओगी?"

राजलक्ष्मी ने आश्चर्य के साथ कहा, "अभी ही? यह कैसे हो सकता है? तुम्हे खिला-पिलाकर सुला लेने के बाद ही तो छुट्टी मिल पाएगी।"

"नही, तब भी नहीं मिलेगी। रतन बता रहा था कि तुम्हारा खाना-पीना प्राय बन्द-सा हो गया है। केवल कल थोडा-सा खाया था और आज से फिर उपवास शुरू हो गया है। जानती हो, मैंने क्या तय किया है? आज से तुम्हे कठोर शासन मे रखूगा। अब तुम्हारी जो मर्जी होगी वही नही कर पाओगी।"

"ऐसा हो जाय तो जी जाऊगी महाशय जी," राजलक्ष्मी ने प्रसन्न मुख से कहा, "तब खूब खाऊगी-पीऊगी, किसी झझट मे पडना नही होगा।"

"इसीलिए आज तुम कालीघाट नही जा सकोगी।"

राजलक्ष्मी ने हाथ जोड दिए। कहा, "पाव पडती हू तुम्हारे, केवल आज भर के लिए माफ कर दो।

आगे पुराने ज़माने के नवाबों और बादशाहों की दरबारी रईसज़ादों की तरह रहोगी—इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहूंगी तुम से।"

"अच्छा, यह तो बताओ कि इतनी विनती क्यों कर रही हो?"

"विनती नहीं, यह सत्य है। अपनी हैसियत समझकर नहीं चली, और न तुम्हें ही मानकर चली, इसीलिए एक के बाद एक अपराध करते-करते साहस बढ़ गया है। तुम्हारे ऊपर अब पहले वाली उस लक्ष्मी का अधिकार नहीं है—अपनी ही गल्ती से उसे खो बैठी हूं।"

देखा कि उनकी आंखों में आंसू आ गये हैं। बोली, "सिर्फ आज भर जाने की अनुमति दे दो राजा मेरे, मैं मां की आरती देख आऊं।"

कहा, "ऐसा ही है तो कल चली जाना। तुम्हीं ने तो कहा कि कल सारी रात जाग कर मेरी सेवा करनी रही। आज तुम बहुत थकी हुई हो।"

"ना, मुझे तनिक भी थकावट नहीं है। न केवल आज ही, बल्कि कितनी ही बार बीमारी की हालत में देखा है कि लगातार कई रात जागने पर भी तुम्हारी सेवा में मुझे कोई कष्ट प्रतीत नहीं होता। पता नहीं कौन मेरी सारी थकान हर लेता है। कितने दिनों से देवी-देवताओं को भूल गई थी, किसी में भी मन नहीं लगा सकी। सो आज मुझे न रोको राजा, जाने की इजाज़त दे दो।"

"तो चलो साथ चलें।"

राजलक्ष्मी के दोनों नेत्र आह्लाद से चमक उठे, "हां चलो, परन्तु मन ही मन देवता की अवज्ञा तो नहीं करोगे?"

उत्तर में कहा, "शपथ तो नहीं ले सकता, परन्तु तुम्हारा पथ देखते हुए मंदिर के द्वार पर ही खड़ा रहूंगा। मेरी ओर से भी तुम देवता से वर मांग लेना।"

"बताओ, क्या मांगू?"

मुंह में अन्न का ग्रास लेकर सोचने लगा, पर कोई कामना सूझी ही नहीं। बोला, "यह तुम्हीं बता दो न लक्ष्मी, क्या मांगोगी मेरे लिए तुम?"

"आयु मांगूंगी, स्वास्थ्य मांगूंगी, और यह भी मांगूंगी कि मेरे प्रति तुम कठोर बन सको ताकि अधिक प्रश्रय देकर फिर अब मेरा सर्वनाश न करो।—यही करने के लिए तो बैठे थे तुम।"

"देखो लक्ष्मी यह तो तुम्हारी रूठने वाली बात हुई।"

"रूठने की बात तो है ही। तुम्हारी वह चिट्ठी कभी भूल सकूंगी क्या?"

मैं मुंह लटकाकर मौन हो रहा।

उसने अपने हाथ से मेरा मुंह ऊपर उठाया। कहा, "किंतु इसके चलते, यह भी नहीं सह सकती मैं। फिर भी, तुम कठोर तो हो नहीं सकते, ऐसा स्वभाव ही नहीं है तुम्हारा। लेकिन यह कार्य अब मुझे तो करना ही होगा, अवहेलना करने से काम नहीं चलेगा।"

"कौन-सा काम?" पूछ बैठा, "और निर्जल उपवास?"

"उपवास से सजा नहीं मिलती," राजलक्ष्मी हंसती हुई बोली, "बल्कि और अहंकार बढ़ जाता है। अब मेरा मार्ग दूसरा है।"

"अब तुमने कौन-सा मार्ग ठीक कर लिया है?"

"ठीक नहीं कर पाई हूं, खोज में घूम रही हूं।"

"अच्छा, तो सचमुच तुम्हें ऐसा विश्वास होता है कि मैं कभी कठोर हो सकता हूं?"

"होता है जी, और खूब होता है।"

"नहीं, कदापि नहीं होता। तुम झूठ कहती हो।"

"अच्छा बाबा, झूठ ही सही।" राजलक्ष्मी ने हंसते हुए सिर हिलाकर कहा, "लेकिन गुसाईंजी, यही तो मेरे लिए विपद की बात है। तुम्हारी कमललता ने भी क्या खूब नाम रखा है। दिनभर 'ओजी,' 'हांजी,' 'सुनोजी, करते-करते जान निकल जाती थी, अब से मैं भी 'नये गुसाईं' कहकर पुकारूंगी।"

"मजे से।"

"तब तो कभी," राजलक्ष्मी ने फिर ताना मारा, "भूल से शायद मुझे कमललता ही समझ बैठोगे?—लेकिन इससे भी शांति ही मिलेगी, कहो, ठीक है न?"

सहास कहा, "मर जाने के बाद भी स्वभाव नही बदलता लक्ष्मी। बादशाही काल की लौंडी की-सी ये ही बातें हैं, क्यो? इतने पर तो वे तुम्हें जल्लाद के हाथ सौंप देते।"

सुनकर राजलक्ष्मी भी हंस पडी। बोली, "जल्लाद के हाथो मे तो मैंने खुद ही सौंप दिया है स्वय को।"

"किंतु सदा से तुम इतनी दुष्ट रही हो कि तुम पर शासन करने की शक्ति किसी भी जल्लाद में नहीं है।"

राजलक्ष्मी प्रत्युत्तर मे कुछ कहने जा ही रही थी कि अचानक बिजली की-सी तेजी से उठ बैठी, "अरे, यह क्या? दूध कहां है?—देखो, मेरे सिर की कसम, उठ न जाना।" और यह कहने के साथ ही वह तेज कदमो से बाहर चली गई।

एक निःश्वास के साथ मेरे मुंह से निकल गया, "कहां यह, और कहा कमललता।"

दो मिनट बाद ही वह हाथ मे दूध का कटोरा लिए आ गई और पत्तल के पास रखकर पखा झलने बैठ गई। कहने लगी, "अभी तक लगता था कि मेरे मन में कही पाप है। इसी से गंगामाटी में मन नहीं लगा तो काशीधाम लौट गई। गुरुदेव को बुलवाकर अपने केश कटवा दिये, गहने उतार दिये और तपस्या में पूर्णतः तल्लीन हो गई। सोचा, अब कोई चिंता नही है, स्वर्ग की सोने की सीढ़ी तैयार हो रही है! एक अवरोध तुम थे, सो भी विदा हो गये। ... लेकिन उस दिन से नेत्रों की जल-वर्षा ने किसी तरह रुकना ही नहीं चाहा। सारे इष्टमंत्र भूल गई, देवता अंतर्धान हो गये, हृदय सूख गया एकदम। भय लगा—यदि यही धर्म की साधना है, तो फिर यह सब क्या हो रहा है! अंत में पागल तो नहीं हो जाऊगी!"

मैंने सिर उठाकर उसके मुंह की ओर देखा और कहा, "तपस्या के प्रारभ मे देवता भय दिखाया ही करते हैं। उनके सम्मुख टिके रहने पर ही सिद्धि प्राप्त होती है।"

"सिद्धि की आवश्यकता ही नही है मुझे," राजलक्ष्मी बोली, "वह मुझे मिल गई है।"

"कहां मिली?"

"यही। इसी घर में।"

"विश्वास नही हो रहा, प्रमाण दो।"

"प्रमाण तुम्हें दूगी? क्या गरज पड़ी है, मुझे?"

"खरीदी हुई लौंडिया ऐसी बाते नही किया करती लेकिन।"

"देखो जी, क्रोध मत दिलाओ। बार-बार इस प्रकार 'खरीदी हुई लौंडिया' पुकारोगे तो ठीक नहीं होगा।"

"अच्छा जाओ, तुम्हें मुक्त कर दिया। आज से तुम स्वाधीन हो।"

फिर हस पडी राजलक्ष्मी। बोली, "कितनी स्वाधीन हू मैं, यह तो अबकी मर्तबा रग-रग में महसूस कर रही हू। कल जब बातें करते-करते तुम सो गये तब तुम्हारी गर्दन के नीचे से बांह निकालकर मैं उठ बैठी। हाथ से छूकर देखा, तुम्हारा माथा। पसीने से तर हो रहा है, आंचल से पसीना पोछकर मैं पंखा लेकर बैठ गई। मद्धिम प्रकाश को तेज कर दिया; उस समय नीद में बेसुध तुम्हारे चेहरे की ओर जो देखा तो आंखें हटा ही न सकी। इसके पूर्व क्यो नही दिखा कि यह इतना सुदर है! अब तक अंधी थी क्या? .. फिर सोचा, यदि यह पाप है तो फिर पुण्य की मुझे आवश्यकता नही, और अगर यह अधर्म है तो फिर चूल्हे में जाय मेरी धर्म-चर्चा, जीवन मे यदि यह मिथ्या है तो ज्ञान होने के पहले ही किसके कहने से इनका वरण किया था मैंने? .. अरे यह क्या? पीते क्यों नही? समूचा दूध पडा है जस का तस!"

"अब पीया नही जा रहा।"

"तो कुछ फल ले आऊं?"

"नही, वह भी नहीं।"

"किंतु कितने दुबले हो गये हो?"

"दुबला हो भी गया हू तो बहुत दिनों की लापरवाही के कारण। यदि एक दिन मे ही सुधारना चाहोगी तो व्यर्थ ही मारा जाऊंगा।"

वेदना के कारण उसका मुंह पीला पड़ गया। बोली, "नहीं, अब गलती नहीं होगी। जो सजा मिल गई है उसे अब भूलंगी नहीं। मेरा सबसे बड़ा लाभ यही है।" कुछ देर चुप रहकर फिर वह धीरे-धीरे कहने लगी, "प्रात:काल ही उठकर आई। भाग्य से कुंभकर्ण की नींद टूटती ही नहीं जल्दी, वर्ना लोभवश जगा ही डाला था। तब दरबान को साथ लेकर गंगा नहाने गयी। लगा, मानो माता ने सारा ताप धो दिया है। घर लौटकर जब पूजा करने बैठी तब जाकर जाना कि तुम्हीं अकेले नहीं लौट आये हो, साथ ही मेरी पूजा का मंत्र भी आ गया है, आ गये हैं मेरे इष्ट देवता और गुरुदेव, और आ गये हैं मेरे सावन के मेघ भी। आज भी मेरी आंखों से जल बहने लगा, किंतु ये आंसू हृदय मसोस कर निचोड़े हुए नहीं थे, बल्कि यह तो आनंद के उत्ताल निर्झर की धारा थी जिसने मुझे सर्वथा विभोर कर दिया। ... पास बैठकर अपने हाथ से छील-काट कर तुम्हें फल खिलाये बहुत दिन हो गये। जाऊं, क्यों?"

"अच्छा जाओ।"

राजलक्ष्मी वैसी तेजी से चली गई। मैंने एक बार फिर सांस छोड़कर कहा, "कहां यह और कहां कमललता!"

न जाने किसने जन्म के समय हजारों नामो से चुनकर इसका नाम राजलक्ष्मी रखा था।

जिस समय दोनों कालीघाट से लौटे उस समय रात के नौ बज गये थे। राजलक्ष्मी स्नान कर और कपड़ा बदल कर सहज भाव से पास आ बैठी। मैंने कहा, "राजसी पोशाक उतर गई। चलो, जान बची।"

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाकर कहा, "हां, वह मेरे लिए राजसी पोशाक ही है, क्योंकि मेरे राजा ने जो दी है। जब मरूं तब वही मुझे पहना देने के लिए कहना।"

"ऐसा ही होगा। किंतु तुम आज सारा दिन क्या स्वप्न देखने मे ही बिता दोगी? अब कुछ खालो।"

"खाती हूं।"

"मैं रतन से कह देता हूं कि तुम्हारा खाना रसाइये के हाथ से यहीं भेजवा दे।"

"यहीं? जैसी तुम्हारी इच्छा। लेकिन मैं तुम्हारे सामने बैठकर कैसे खाऊंगी? कभी खाते देखा है?"

"देखा तो नहीं है, किंतु देखने में खराबी क्या है?"

"भला ऐसा भी कहीं होता है! स्त्रियों का राक्षसी खाना तुम लोगों को हम देखने ही क्यों देंगी?"

"देखो लक्ष्मी, तुम्हारी यह चाल आज नहीं चलेगी। तुम्हें अकारण ही उपवास नही करने दूंगा। खाओगी नहीं तो मैं तुम से नहीं बोलूंगा।"

"ना बोलना।"

"मैं भी नही खाऊंगा।"

राजलक्ष्मी हंस पड़ी, बोली, "इस बार जीत गये, क्योंकि यह मैं न सह सकूंगी।"

रसोइया भोजन दे गया। फल-फूल, मिष्ठान्न। नाम मात्र भोजन कर वह बोली, "रतन ने शिकायत की है कि मैं खाती नही हूं, परंतु तुम्ही बताओ, मैं खाती क्यों कर? हारे हुए मुकदमे की अपील करने कलकत्ते आई थी। रतन रोज तुम्हारे यहां से वापस आता था किंतु भय के मारे कुछ पूछने का मेरा साहस न होता था, क्योंकि वह कही यह न कह दे कि मुलाकात हुई थी पर बाबू आये नही। जो दुर्व्यवहार किया है, उसके कारण मेरे पास तो कहने के लिए कुछ है नही।"

"कहने की आवश्यकता नही है। उस समय स्वय घर आकर, जिस प्रकार कांचपोका तिलचट्टे को पकड ले जाता है, तुम भी ले जाती।"

"तिलचट्टा कौन, तुम?"

"यही तो समझ रहा हूं, ऐसा निरीह जीव संसार में और कौन है?"

एकक्षण चुप रहकर राजलक्ष्मी बोली, "किंतु तो भी, मन ही मन मैं जितना तुम से डरती हू उतना और किसी से नही।"

"यह परिहास है। किंतु इसका कारण पूछ सकता हूं?"

राजलक्ष्मी फिर कुछ क्षण तक मेरी ओर देखती रही, बोली, "कारण यह है कि मैं तुम्हें भली भांति पहचानती हूं। मैं जानती हूं कि स्त्रियों के प्रति तुम्हारी सचमुच की आसक्ति जरा भी नही है, जो कुछ है

वह सिर्फ दिखाने का शिष्टाचार है। संसार मे किसी के प्रति तुम्हे मोह नही है। यथार्थ प्रयोजन भी तुम्हें उसका नही है। तुम्हारे 'ना' कह देने पर किस प्रकार तुम्हे लोटाऊंगी?"

"लक्ष्मी, इसमे थोडी-सी भूल हो गई है। पृथ्वी की एक वस्तु मे आज भी मेरा मोह है, और वह हो तुम। केवल यहीं पर 'ना' नही कहा जाता। तुमने अब तक श्रीकात की यही बात न जानी कि केवल इसके लिए वह दुनिया की सारी वस्तुओं को त्याग सकता है।"

"हाथ धो आऊ," कहकर राजलक्ष्मी उठकर जल्दी से चली गई।

दूसरे दिन, दिन और दिनांत के सभी कार्य निबटाकर, राजलक्ष्मी मेरे पास आ बैठी। कहने लगी, "कमललता कहानी सुनूगी, सुनाओ।"

जो कुछ जानता था, सब सुना दिया, केवल अपने-से सबंधित कुछ अश छोड दिया, क्योंकि उससे गलतफहमी होने की आशका थी।

मन लगाकर शुरू से आखिर तक सारी बाते सुनकर उसने धीरे से कहा, "यतीन की मृत्यु ही उसे सबसे अधिक चुभी है, उसी के दोष से वह मारा गया।"

"उसका क्या दोष?"

"दोष कैसे नही है? अपना कलक छिपाने के लिए उसी से आत्महत्या करने मे सहायता मागी थी। उस दिन तो यतीन स्वीकार नही कर सका, किंतु एक दिन अपना कलक छिपाने के लिए उसे भी यही मार्ग सबसे पहले नजर आया। ऐसा ही होता है, इसलिए पाप मे सहायता के लिए किसी मित्र को नही बुलाना चाहिए। इससे एक का प्रायश्चित्त दूसरे के गले मे पड जाता है।—वह स्वय तो बच गयी, किंतु उसके स्नेह का धन मर गया।"

"युक्ति कुछ समझ मे नही आई, लक्ष्मी।"

"तुम कैसे समझोगे? समझा है कमललता ने और तुम्हारी राजलक्ष्मी ने।"

"ओ —ऐसा है!"

"नही तो क्या? भला कहो तो हमारा जीवन कितना है ही, उसका क्या मूल्य है, जब हम देखती हैं तुम्हारी ओर . .."

"किंतु कल तुमने ही तो कहा था कि मेरे मन की सारी कालिख धुल गई है और अब कोई ग्लानि नही रह गई है—क्या यह झूठ था?"

"झूठ ही तो था। कालिख तो मरने पर ही पुछेगी, उससे पहले नही। मरना भी चाहा था, केवल तुम्हारे कारण नही मर सकी।"

"सब मालूम है, पर इसे लेकर यदि बारबार दु ख दोगी तो मैं इस तरह भाग जाऊगा कि फिर ढूढने पर भी नही पाओगी।"

दहशत मे आकर राजलक्ष्मी ने मेरा हाथ पकड लिया, और एकदम छाती के पास खिसक आई। बोली, "फिर ऐसी बात कभी जबान पर नही लाना। तुम कुछ भी कर सकते हो, तुम्हारी निष्ठुरता कही भी अवरोध नही मानती।"

"तब कह दो कि अब ऐसी बात नही कहोगी?"

"नही कहूगी।"

"बोलो—सोचूगी भी नही।"

"तुम भी कहो कि अब मुझे छोडकर कभी नहीं जाओगे।"

"मैं तो कभी गया ही नही लक्ष्मी, और जब कभी गया भी हू तो इसीलिए कि तुमने मुझे नही चाहा।"

"वह तुम्हारी लक्ष्मी नही, कोई और होगी।"

" 'उस' किसी स्त्री से ही तो आज भय लगता है।"

"नही, अब उससे मत डरो। वह राक्षसी मर चुकी है।"

यह कहकर उसने मेरे उसी हाथ को जोर से पकड लिया और चुपचाप बैठी रही। पाच-छह मिनट तक इसी पकार बैठी रहने के पश्चात् उसने दूसरी चर्चा छेड दी, कहा, "तुम क्या सचमुच बर्मा जाओगे?"

"हा, सचमुच ही जाऊगा।"

"जाकर क्या करोगे,—नौकरी? पर हम तो सिर्फ दो ही प्राणी हैं—हमारी आवश्यकताएं ही कितनी हैं?"

"किंतु उन कितनी का भी तो प्रबन्ध करना होगा?"

"वह भगवान दे देंगे। पर तुम नौकरी नही करने पाओगे, वह तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल नही है।"

"नही कर सकूगा तो वापस चला आऊगा।"

"जानती हूं, वापस तो आना ही पडेगा, केवल मुझको कष्ट देने के लिए हठपूर्वक इतनी दूर ले जाना चाहते हो।"

"चाहो तो कष्ट नही भी उठाओ।"

राजलक्ष्मी ने एक क्रुद्ध कटाक्ष फेंककर कहा, "देखो, चालाकी मत दिखाओ!"

मैंने कहा, "चालाकी नही करता, चलने से तुम्हे वास्तव मे कष्ट होगा। भोजन बनाना, बरतन माजना, घर-बार साफ करना, बिछौने बिछाना "

राजलक्ष्मी ने कहा. "तब दाई-नौकर क्या करेंगे?"

"दाई-नौकर कहां? उनके लिए रुपए कहा है?"

राजलक्ष्मी बोली, "अच्छा, न सही। तुम मुझे चाहे कितना ही भय दिखाओ, मगर मैं तो चलूंगी ही।'

"तो चलो। केवल मैं और तुम, काम के मारे न तो झगड़ने का अवसर मिलेगा और न पूजा तथा उपवास करने की फुर्सत निकलेगी।"

"न मिलने दो। मैं क्या काम से डरती हूं?"

"सच है, डरती नही हो, पर तुम कर न सकोगी। दो दिन बाद ही वापस आने के लिए हाय तोबा मचाना शुरू कर दोगी।"

"इससे भी क्या कोई डर है? साथ लेकर जाऊगी और साथ ही वापस लेकर आऊगी। कम से कम तुम्हे छोड़कर तो नही आना होगा।" कहकर वह क्षणभर के लिए कुछ सोचने लगी फिर बोली, "हा, यह ठीक रहेगा। एक छोटे से घर मे केवल हम और तुम रहेगे, न कोई दास होगा न दासी। जो खाने को दूंगी वही खाओगे, जो पहनने को दूंगी वही पहनोगे—नही? तुम देखना, मेरी आने की शायद इच्छा ही न होगी।"

सहसा वह मेरी गोदी मे अपना सिर रखकर लेट गई और बहुत देर तक आखे मूद कर निस्तब्ध पडी रही।

"क्या सोच रही हो?"

राजलक्ष्मी नेत्र खोलकर किंचित् मुस्काई और बोली, "हमलोग कब चलेगे?"

"इस मकान की कुछ व्यवस्था कर 'दो' फिर जिस दिन चाहो, चल दो।"

उसने सिर हिलाकर स्वीकृति जताई और फिर आखे मूद ली।

"फिर क्या सोचने लगी?"

राजलक्ष्मी ने ताककर कहा, "सोच रही हू कि एक बार मुरारीपुर नही जाओगे?"

"हा, विदेश जाने के पूर्व एक बार मिल आने का वचन तो उन्हे दिया था।"

"तो चलो, कल ही दोनों चले।"

"तुम भी चलोगी?"

"क्यो, इसमे डर क्या है? तुम्हे चाहती है कमललता और उसे चाहते हैं हमारे गौहर दादा। यह खूब हुआ है!"

"यह सब तुमसे किसने कहा?"

"तुम्ही ने।"

"ना, मैंने नही कहा।"

"हा, तुम्ही ने कहा है, केवल तुम्हे यह ध्यान नही है कि कब कहा है।"

सुनकर सकोच से अकुला गया। कहा, "खैर, जो कुछ भी हो, पर तुम्हारा वहां जाना उचित नही है।"

"क्यो नही है?"

"उस बेचारी का मजाक उडाकर तुम उसे तंग कर डालोगी।"

राजलक्ष्मी की भृकुटी तन गई, उसने क्रोधित स्वर में कहा, "अब तक तुम्हे मेरा यही परिचय मिला है? मैं क्या उसे इसलिए लज्जित करूंगी कि वह तुमसे प्रेम करती है? तुम से प्रेम करना क्या अपराध है? मैं भी तो स्त्री हू। यह भी तो हो सकता है कि जाने पर मैं भी उसे चाहने लग जाऊं।"

"तुम्हारे लिए कुछ भी असभव नही है लक्ष्मी। चलो, तुम भी चलो।"

"हां, चलो, कल सबेरे की गाडी से ही हम दोनो चल दें। तुम कोई चिंता न करो, इस जीवन में मैं तुम्हें कभी दु खी न करूंगी।"

इतना कहकर वह एक तरह बेमन-सी हो गई। आंखें बद हो गईं, सांस रुकने लगा। सहसा न जाने वह कितनी दूर चली गई।

भयभीत होकर उसे हिलाकर पूछा, "यह क्या?"

राजलक्ष्मी ने नेत्र खोलकर तनिक-सा मुस्का दिया, फिर कहा, "कहा, कुछ भी तो नही।"

आज उसकी यह हसी भी न जाने मुझे कैसी लगी!

दस

मेरे न चाहने की वजह से दूसरे दिन तो जाना न हो सका, लेकिन उसके अगले रोज किसी भी तरह से यात्रा नही टाल सका और मुरारीपुर के अखाडे के लिए चल देना ही पडा। राजलक्ष्मी का वाहन रतन, जिसके बिना एक पग भी चलना कठिन है, तो साथ चला ही, रसोईघर की दाई लालू की मा भी साथ हो गई।

रतन कुछ आवश्यक वस्तुए लेकर प्रात:काल की ट्रेन से ही निकल गया है—वहा पहुचकर वह पहले से ही दो घोड़ा गाडिया स्टेशन पर ठीक करके रखेगा। हमारे साथ जाने के लिए जो सामान बाधा गया है वह भी तो कम नही है।

मैंने प्रश्न किया, "वहां क्या घर-बार बसाने चल रही हो?

राजलक्ष्मी का उत्तर था, "क्या दो-एक दिन भी नही रहेगे वहां? देश के वन-जगल, नदी-नाले घाट-मैदान क्या तुम अकेले देख आओगे? मैं उस देश की लडकी नही हू क्या? क्या वह सब देखने की मेरी इच्छा नही होती?"

"मानता हू कि होती है। किंतु इतनी चीजें—खाने-पीने के इतने प्रकार के आयोजन ."

"तो क्या तुम्हारा कहना यह है कि देव-स्थान मे खाली हाथ ही चला जाये? और यह सब तुमको तो ढो ले चलना है नहीं, फिर इतनी चिता काहे की?"

चिता तो बहुत थी, पर कहता किससे? सबसे बडा डर तो इसी बात का था कि वैष्णवियों का छुआ देवता का प्रसाद वह माथे तो मजे से चढ़ा लेगी, पर मुह मे नही डालेगी। फिर यही कौन जानता है कि वहां जाकर वह किस बहाने उपवास शुरू कर देगी या भोजन बनाने लगेगी। मात्र एक भरोसा है, राजलक्ष्मी का मन वास्तव मे ही भद्र है, वह अकारण गले पडकर किसी को आघात नही पहुचा सकती। ऐसा यदि कुछ करना भी हुआ उसे तो मुदित मुख और हास-परिहास के साथ इस सलीके से करेगी कि सिवा मेरे और रतन के और कोई समझ भी नही पाएगा।

राजलक्ष्मी के शारीरिक गठन मे भारीपन कभी नही आया, फिर संयम एव उपवास ने उसे मानो लाघव की एक दीप्ति दे डाली है। खासकर आज तो उसकी साज-सज्जा कुछ विचित्र है। भोर होने के पहले ही वह स्नान कर आई है, उसके ललाट पर गगाघाट के उडिया पडे का लगाया हुआ तिलक है, फल-फूल और बेल-बूटो से चित्रित कत्थई रग की वृदावनी साडी पहन रखी है उसने, देह पर थोडे-से वे ही गहने हैं मुख पर स्निग्ध प्रसन्नता है और अपने काम मे वह तल्लीन है। कल लबे आईने लगी दो आलमारिया खरीद लाई थी, आज सबेरे से ही उनमे न जाने क्या-क्या रख रही है। काम करते-करते उसकी कलाइयों के कडों मे जडी शार्क मछली की आखे चमक उठती हैं, गर्दन मे पडे हीरे-पन्ने के

जडाऊ हार की बहुरगी वर्णच्छटा आचल का किनारा हटने पर झलक उठती है।

मेजपर चाय पीने के लिए बैठा मैं टकटकी लगाकर उसी ओर ताक रहा था। उसमें एक खामी थी कि घर में वह जाकेट ब्लाउज नही पहनती थी, अतएव तनिक असावधान होने पर भी उसके गले और बाहो का काफी हिस्सा उघार हो जाता था। अगर इस बात पर टोका जाता तो हसकर कहती, "यह सब मुझ से नही हो सकता बाबा, मैं गांव की औरत ठहरी, मुझे रात-दिन यह बीबियाना ठाठ नही भाता—अर्थात् हम शुचि-वायुग्रस्त जीवो के लिए अधिक-कपडे पहनना परेशानी का काम है।

आलमारी का पल्ला बंद करते समय अचानक उसकी दृष्टि आईने मे मुझ पर पड गई, और वह तुनक कर बोल पडी, "फिर घूरने लगे? इस मर्तबा मुझे बार-बार इतना क्यो निहार रहे हो, बोलो तो?"

हंसी आ गई मुझे। बोला, "सोचने लगा था कि विधाता को फरमाइश देकर न जाने किसने तुम्हे गढवाया है।"

"तुमने।" राजलक्ष्मी बोली, "नही तो ऐसी निराली पसंदगी ससार मे और किसकी हो सकती है? मेरे आने के पाच-छह वर्ष पहले ही तुम आ गये थे, और आते वक्त ही बयाना दे आये थे उन्हे। याद नही है क्या?"

"नही, किंतु यह तुम कैसे जान गई?"

"चालान करते वक्त विधाता ने ही कान मे कह दिया था। . . पर क्या तुम चाय पी चुके? देर करोगे तो आज भी जाना नही हो पाएगा।"

"न हो।"

"कितु क्यो, बताओ?"

"वहाँ भीड में तुम्हे खोज नही पाऊगा शायद।"

"मुझे तो पा ही लोगे तुम।" राजलक्ष्मी बोली, "किंतु तुम्हे ढूंढकर पा जाऊ तो बडी बात है।"

मैंने कहा, "यह भी तो ठीक नही है।"

"नहीं, ऐसा होगा ही नही।" हंसकर कहा उसने, "तुम्हे चलना ही होगा। सुना है, वहा 'नये गुसाईं' का एक अलग कमरा है, पहुचते ही मैं उस का कुंडा तोडकर रख दूगी। कोई भय नही, ढूंढना ही नहीं पडेगा—दासी तुम्हे यो ही मिल जाएगी।"

"तो चलो।"

हम लोग जिस समय मठ मे दाखिल हुए उस समय देवता की मध्याह्नकालीन पूजा बस समाप्त ही हुई थी। बगैर बुलाए, बिना सूचना दिए, इतने प्राणी आ धमके थे, इसके बावजूद उन लोगो को इतनी प्रसन्नता हुई कि बयान नही कर सकता। बडे गुसाईं आश्रम में नही हैं, गुरुदेव के दर्शन हेतु फिर नवद्वीप गये हैं, किंतु इसी दौरान दो वैरागियो ने आकर मेरे कमरे मे अपना अड्डा जमा लिया है।

कमललता, पद्मा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा अन्य कइयो ने आकर हमलोगो की आदरपूर्वक अभ्यर्थना की। कमललता ने भरे गले से कहा, "नये गुसाईं, तुम इतनी जल्दी फिर हम लोगो को दिखाई दोगे, ऐसी आशा नही की थी।"

राजलक्ष्मी ने इस प्रकार बातचीत की मानो न जाने कब का परिचय है। कहा, "कमललता जीजी, इन कई दिनो से इनकी जबान पर केवल तुम्हारी ही चर्चा थी। इससे पहले ही आना चाहते थे, परतु मेरे कारण ही ऐसा न हो सका। इसमे मेरा ही दोष है।"

कमललता का मुख कुछ क्षणो के लिए लाल हो गया, पद्मा हस पडी और उसने आखे फिरा ली। राजलक्ष्मी की वेश-भूषा तथा चेहरे से सभी ने उसे भद्र परिवार का समझा। केवल मेरे साथ उसका क्या सबंध है, यह नि सदेह कोई न जान सका।

परिचय के लिए सभी उतावले हो रहे थे। राजलक्ष्मी की आखो से कुछ भी नही छिपता। उसने कहा, "कमललता दीदी, मुझे पहचान नही सकी?"

कमललता ने सिर हिलाकर कहा, "नही।"

"वृदावन मे कभी नही देखा?"

कमललता भी अबोध नही है, उसने परिहास समझ लिया और हसकर कहा, "याद तो नही पड रहा बहन।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "याद न पड़ना ही अच्छा है जीजी। मैं इसी देश की लड़की हूं, वृंदावन कभी नही गई।" कहकर वह हस पड़ी। फिर लक्ष्मी, सरस्वती, तथा अन्य सबके चले जाने के बाद मुझे दिखाकर कहा, "हमलोग एक ही गांव मे एक ही गुरु की पाठशाला मे पढ़ते थे, दोनो मे ऐसा प्रेम था जैसे भाई-बहन हो। मैं मुहल्ले के रिश्ते से 'दादा' कहकर पुकारती थी, और ये मुझे बहन की तरह प्यार करते थे। शरीर पर कभी हाथ तक नही लगाया।" फिर मेरी ओर ताककर कहा, "क्यो जी, जो कुछ कह रही हू, सच है न?"

पद्मा प्रसन्न होकर बोली, "इसी से तुम दोनो देखने मे एक जैसे लगते हो। दोनो ही ऊंचे और पतले, केवल तुम गोरी हो और नये गुसाई सावले है।"

राजलक्ष्मी ने गंभीर होकर कहा, "हम लोगो के ठीक एक जैसे हुए बिना काम कैसे चल सकता पद्मा?"

"अरी मैया! तुम्हे तो मेरा नाम भी मालूम है। नये गुसाई ने बता दिया है शायद?"

"बताया है, तभी तो तुम लोगो को देखने आई। मैंने कहा, अकेले क्यो जाओगे? मुझे भी साथ ले चलो, तुम से तो मुझे कोई डर नही। एक साथ देखकर कोई कलक भी न लगायेगा, और यदि लगाया भी तो हर्ज क्या है, विष नीलकठ के गले मे ही रह जाएगा, पेट मे नही उतरेगा।"

मैं अब शांत न रह सका। स्त्रियो का यह परिहास किस प्रकार का है, यह वे ही जाने। क्रोधित होकर कहा, "लड़कियो के साथ झूठा मजाक क्यो कर रही हो बताओ?"

"तो सच्चा मजाक तुम्ही बता दो न।" राजलक्ष्मी ने भले आदमी की तरह कहा, "जो कुछ जानती हू, निश्छल मन से कह रही हू, तुम उखड़ क्यो रहे हो?"

गुस्से मे होने के बावजूद उसकी गंभीरता भाप कर मैं हस पड़ा, "खूब निश्छल मन से कह रही हो। कमललता, इतनी शैतान और बातूनी लड़की ससार मे ढूढ़ने पर भी दूसरी नही मिलेगी तुम्हे। इसका कुछ न कुछ मतलब है, इनकी सारी बातो पर सहज ही विश्वास न कर लेना।"

"बुराई क्यो करते हो गुसाई?" राजलक्ष्मी ने कहा, "तब तो मेरे सबध मे भी तुम्हारे मन मे ही कोई मतलब है।"

"हा, है तो।"

"मगर मेरे मन मे नही है। मैं निष्पाप हू, निष्कलक हू।"

"हा, युधिष्ठिर!"

कमललता भी हस पड़ी—लेकिन उसके बोलने की भंगिमा पर। ठीक-ठीक शायद कुछ समझ न सकी वह, केवल उलझन मे पड़ गई। कारण, उस समय भी तो किसी रमणी से अपने सबध का कोई आभास मैंने नहीं दिया था। और देता भी तो कैसे? उस वक्त देने के लिए था ही क्या?

"तुम्हारा नाम क्या है बहन?" कमललता ने पूछा।

"मेरा नाम है राजलक्ष्मी, पर ये पहला अश छोड़कर केवल 'लक्ष्मी' कहते है। मैं इन्हे 'ए जी', 'ओ जी', 'सुनो जी', कहकर पुकारती थी। किन्तु अब 'नये गुसाई' कहकर पुकारने के लिए कहा है। कहते हैं, इससे तृप्ति होगी।"

पद्मा ने अचानक ताली बजाकर कहा, "मैं समझ गई।"

कमललता उसे घुड़कते हुए बोली, "जलमुही के मोटी बुद्धि है न। बता तो, क्या समझी?"

"अवश्य ही समझ गई। बताऊ?"

"बता न-बताना नही है, जा।" कहकर स्नेह के साथ उसने राजलक्ष्मी का हाथ पकड़ कर कहा, "बातो ही बातो मे देर हुई जा रही है बहन। धूप लगने से मुह सूख गया है। जानती हूँ, कुछ खाकर भी नही चली। चलो, हाथ-मुह धोकर देवता को प्रणाम करो, फिर सभी मिलकर प्रसाद पाये। तुम भी गुसाई—" कहकर वह उसका हाथ पकड़कर खीच ले गई।

इस बार मन ही मन मुझे आफत दिखाई पड़ गई। क्योकि अब प्रसाद ग्रहण करने का बुलावा आएगा। खान-पान और छुआछूत के विचार राजलक्ष्मी के जीवन मे ऐसे गुथ गये हैं कि इस विषय मे सत्य-असत्य की मीमांसा ही नाजायज है। यह मात्र विश्वास नही, उसका स्वभाव है। इसे छोड़कर वह

जी ही नहीं सकती। जीवन के इस एकात प्रयोजन की सहज एव सक्रिय सजीवता ने कितनी बार कितने सकटो से उबारा है उसे, यह कोई नही जान सकता। स्वय तो वह बताएगी नही, और जान लेने मे कोई लाभ भी नही होगा। सिर्फ मैं ही यह जानता हू कि एक दिन अन चाहे ही राजलक्ष्मी को दैवात् पा गया मैं, और अब वह सभी सुलभ वस्तुओ से बढकर है। किंतु इस समय यह बात छोड देना ही ठीक है।

उसमे जो किंचित् कठोरता है भी तो वह केवल अपने लिए है। उनमे दूसरे पर अत्याचार जैसा कोई भाव नही है। अक्सर हस कर कहती है, 'बाबा, इतना कष्ट करने की जरूरत ही क्या है? आजकाल के जमाने में इतना बचकर चलने से प्राण नही बच सकते।' वह बखूबी जानती है कि मै कुछ नही मानता। वह इसी मे खुश है कि उसकी आखो के सामने कोई भयकर घटना न हो। परोक्ष के अनाचार का मेरी कहानी से कभी तो वह दोनो कानो को बद करके अपनी रक्षा करती है, और कभी गाल पर हथेली रख कर कहती है, मेरे दुर्भाग्य से तुम ऐसे हो क्यो गये? तुम्हारे कारण मेरा सब कुछ चला गया।'

लेकिन आज का मामला ठीक वैसा ही है। इस सुनसान मठ मे जो भी प्राणी शांति के साथ ठहरते हैं, वे सब दीक्षित वैष्णव धर्मावलबी हैं। ये लोग जाति का भेद नही मानते और पूर्वाश्रम की बाते तो कभी मन में भी नही लाते। इसीसे किसी अतिथि के आने पर ये लोग नि सकोच होकर श्रद्धापूर्वक प्रसाद वितरण करते हैं। और आजतक किसी ने भी प्रसाद अस्वीकृत कर इन लोगो का अनादर नही किया। किंतु यह अशोभन घटना यदि आज अनाहूत आये हम लोगो के चलते हो जाय तो दु ख की सीमा नही रहेगी—विशेषत मेरे लिए। यह तो मैं जानता था कि कमललता मुंह से कुछ न कहेगी, किसी को कुछ कहने भी नही देगी—और शायद केवल एक बार मेरी ओर ताक कर ही फिर सिर झुकाकर अन्यत्र खिसक जाएगी। तब उस मूक अभियोग का क्या उत्तर होगा—मैं खडा-खडा यही सोच रहा था, तभी पद्मा ने आकर कहा, "चलो नये गुसाई, दीदी बुला रही हैं तुम्हे। हाथ-मुह धो चुके हो?"

"नही।"

"तो आओ, मैं पानी देती हूँ। प्रसाद दिया जा रहा है।"

"आज क्या प्रसाद बना है।"

"आज तो देवता को अन्न-भोग लगा है।"

मैंने मन मे ही कहा कि यह तो और भी खुशी की बात है। पूछा, "प्रसाद किस जगह दिया जा रहा है?

"देवगृह के बरामदे मे।" पद्मा ने बताया, "तुम बाबाजी लोगो के साथ बैठोगे, और हम महिलाए बाद मे खाएगी। आज हम लोगो को स्वय राजलक्ष्मी दीदी परोसेगी।"

"खाएगी नही वे?"

"नही। वह हम लोगो की तरह वैष्णव तो हैं नही, ब्राह्मण कन्या हैं। हम लोगो का छुआ खाने से उन्हे पाप लगता है।"

"तुम्हारी कमललता दीदी नाराज नही हुई?"

"नाराज क्यों होगी, बल्कि हसने लगी। राजलक्ष्मी से दीदी ने कहा, "अगले जन्म मे हम दोनो बहने एक ही मां के पेट से जन्म लेगी। पहले मैं पैदा होऊगी और तुम बाद मे। इन दोनो बहने मा के हाथ से एक ही पत्तल मे खाएंगी। उस समय यदि जात नष्ट होने की बात कहोगी तो मा कान मल देगी।"

सुनकर प्रसन्नता हुई। सोचा, अब ठीक हुआ। राजलक्ष्मी को बात करने मे अब तक कोई प्रतिद्वद्वी नही मिला था। पूछा, "जवाब क्या दिया?"

"राजलक्ष्मी दीदी भी सुनकर हसने लगी।" पद्मा ने बताया, "कहने लगी, मा क्यो दीदी, तुम तो बडी बहन होगी ही, तुम्ही कान मल देना—छोटी की ऐसी मजाल कदापि बर्दाश्त न करना।"

जवाब सुनकर चुप हो गया। मन ही मन प्रार्थना करने लगा कि कमललता इसके भीतरी अर्थ को न समझ सके।

जाने पर पाया कि प्रार्थना मजूर हो गयी है। कमललता ने उस बात पर कोई ध्यान नही दिया है, प्रत्युत इस अमेल को न मानकर ही इस बीच दोनो मे खूब मेल हो गया है।

शामवाली गाडी से बडे गुसाई द्वारिका दास आ गये, उनके साथ और भी बाबाजी आये। सारे अगो मे छापो का परिमाण और वैचित्र्य देखकर सदेह नही रह गया कि वे लोग भी अवहेला के पात्र नही हैं। बडे गुसाई मुझे देखकर बडे प्रसन्न हुए, पर उनके साथियो ने मेरी कोई परवा नही की। परवा करनी भी

नही चाहिए, क्योकि, सुना कि उनमे से एक तो ख्यातिप्राप्त कीर्तनकर्ता हैं और दूसरे मृदग बजाने मे उस्ताद।

प्रसाद पाना खत्म होने के बाद मैं बाहर निकल आया। वही सूखी नदी, वही वन-जगल। चारों ओर वेणु और बेत के कुज हैं—शरीर बचाकर चलना भी मुश्किल है। आसन्न सूर्यास्त की वेला मे किनारे पर बैठकर प्रकृति की लीला निहारने का सकल्प किया, किंतु ऐसा बोध हुआ कि निकट ही कहीं अरबी प्रजाति के 'अधेरे के माणिक' (फूल) खिले हैं। सडे मास जैसी उनकी वीभत्स दुर्गंध ने बैठने नही दिया। मन में विचार आया कि कवियो को तो यह फूल बहुत पसद है। कोई इन फूलो को ले जाकर उन्हे उपहार क्यो नही देता? शाम होने के पहले ही लौट आया। जाकर देखा कि वहां समारोह की धूम है। ठाकुर-गृह सजाया जा रहा है और आरती के बाद कीर्तन की बैठक होने वाली है।

पदमा ने कहा, "नये गुसाईं, कीर्तन सुनना तो तुम्हे अच्छा लगता है, आज मनोहरदास बाबाजी का गाना सुनकर तुम अवाक् रह जाओगे। कैसा बढ़िया गाते हैं।"

वास्तव मे मेरे लिए वैष्णव कवियो की पदावली जैसी अन्य कोई मधुर वस्तु है ही नही। कहा, "सच, मुझे बहुत अच्छा लगता है पद्मा। बचपन मे दो—चार कोस के भीतर कहीं भी कीर्तन होने की खबर सुनता था तो तत्काल दौड जाता था, किसी भी तरह घर मे नही रह सकता था। समझ मे आये चाहे न आये, लेकिन आखिर तक बैठा रहता था। . कमललता, तुम नही गाओगी?"

"नही गुसाईं, आज नही।" कमललता ने कहा, "मेरी तो वैसी शिक्षा नही है, इसीलिए उनके सामने गाने मे सकोच होता है। इसके अलावा पिछली बीमारी से गला इतना बिगड गया है कि अभी तक ठीक नही हुआ।"

"किंतु लक्ष्मी तो तुम्हारा गाना सुनने ही आई है। उसका ख्याल है कि मैंने तुम्हारे बारे में बढ़ा-चढ़ा कर कहा है।"

कमललता झेपती हुई-सी बोली, "बढ़ा-चढ़ाकर तो जरूर कहा होगा गुसाईं।" फिर हल्की हसी के साथ राजलक्ष्मी से बोली, "तुम कुछ ख्याल न करना बहन। थोडा-बहुत जो कुछ आता है, वह किसी और दिन सुनाऊगी।"

राजलक्ष्मी ने प्रसन्नता दिखाते हुए कहा, "ठीक है दीदी, जिस दिन तुम्हारी इच्छा हो बुला लेना, मैं स्वय आकर तुम्हारा गाना सुन जाऊँगी।" और मुझसे कहा, "तुम्हे कीर्तन सुनना इतना भाता है, यह तो तुमने कभी नही बताया?"

"तुम्हे क्यो बताता?" मैंने उत्तर दिया, "गगामाटी में बीमार होकर जब शय्या पर पडा था, तब सूखे एव सूने मैदानो को देखते-देखते दोपहर का समय तो कट जाता था पर दुर्भर सध्या अकेले में किसी तरह कटना ही नही चाहती थी—"

"यदि और अधिक कुछ कहा तो पैरो पर सिर पटक कर प्राण दे दूंगी।" राजलक्ष्मी ने अपने हाथ से मेरा मुह दबा कर कहा। फिर स्वत: अप्रतिभ हो हाथ हटाकर बोली, "कमललता दीदी, अपने बडे गुसाईं को बता आओ बहन, आज बाबाजी महाशय के कीर्तन के बाद मैं देवता को गाना सुनाऊँगी।"

कमललता संदेहभरे कठ से बोली, "मगर बहन, बाबाजी बडे टीका-टिप्पणी करने वाले हैं।"

"भले ही हो," राज लक्ष्मी ने कहा, "भगवान का नाम तो होगा।" विग्रह मूर्तियो को हाथ से दिखाते हुए कहा, "ये कदाचित् प्रसन्न हो। और बाबाजीओ का तो मैं उतना ख्याल नही करती बहन, पर मेरे ये दुर्वासा-देवता प्रसन्न हो जायँ तो जान में जान आए।"

"मगर प्रसन्न होने पर बख्शीश मिलेगी।"

राजलक्ष्मी ने भय प्रदर्शित कर कहा, "रक्षा करो गुसाईं, कही सबके समक्ष बख्शीशी देने मत आ जाना। तुम्हारे लिए कुछ असभव नही है।"

वैष्णविया हस पडी सुनकर। पद्मा खुश होने पर ताली बजाने लगती है। बोली, "मैं सम झ ग ई।"

उसकी ओर स्नेह से देखकर कमललता ने हसते हुए झिडका, "दूर हट कलमुही, चुप रह।" राजलक्ष्मी से बोली, "इसे ले जाओ बहन, क्या मालूम कहा क्या कह बैठे अचानक।"

देवता की सध्या-आरती के उपरात कीर्तन का दरबार लगा। आज बहुत-से दीपक जल रहे थे।

वैष्णव-समाज में मुरारीपुर का आश्रम नितांत अप्रसिद्ध नहीं है। विभिन्न स्थानों से कीर्तन करने वाले वैरागियों के दल आने पर इस प्रकार का आयोजन अक्सर होता ही रहता है। मठ में सब प्रकार के वाद्य-यंत्र मौजूद रहते हैं। देखा, वे सब हाजिर कर दिये गये हैं। एक ओर वैष्णवियां बैठी हैं—सब परिचित हैं, दूसरी ओर अनेक अज्ञात-कुल-शील वैरागी मूर्तियाँ हैं—विभिन्न आयु और भिन्न-भिन्न चेहरों वाली। मध्य में ख्यात नामा मनोहर दास और उनके मृदंगवादक आसीन हैं। मेरे कमरे पर हाल ही में कब्जा जमा बैठे बाबाजी हारमोनियम में सुर दे रहे हैं। यह बात प्रचारित हो गई है कि कलकत्ते से एक संभ्रांत महिला आई हुई हैं—वे ही गाना गाएँगी। वे युवती और दौलत-मद हैं, उनके साथ आए हैं दास-दासी, आए हैं तरह-तरह के खाने के सामान, और कोई एक नया गुसाईं भी आया है—वह है यहीं का एक घुमक्कड।

मनोहरदास भी कीर्तन की भूमिका और **गौर-चंद्रिका** के बीच राजलक्ष्मी कमललता के पास आ बैठी। अकस्मात् बाबाजी महोदय का कंठ किंचित् कांपकर फिर संभल गया, मृदंग पर थपकी नही पड़ी। यह एक नितांत दैव-लीला ही थी। द्वारिकादास दीवार के सहारे आंख बंद किये जैसे बैठे थे वैसे ही बैठे रहे—क्या पता, शायद वे जान ही न पाए कि कौन आया है और कौन नहीं।

राजलक्ष्मी एक नीलांबरी साडी पहने हुई है और उसकी महीन जरी वाली किनारी से मिलकर नीले रंग का ब्लाउज अभिन्न हो गया है। बाकी सब पहले जैसा ही है, केवल उड़िया पंडे की लगाई हुई छापे अब बहुत कुछ मिट गयी हैं—जो छापें बची हैं वे मानो क्वार के आसमान में छितरी-बिखरी बदलियां हैं जो न जाने कब नीलाबर में विलीन हो जाएंगी। वह बहुत शिष्ट और शांत है। उसने मेरी ओर कटाक्ष से भी नही ताका, मानो यह जानती ही न हो। फिर भी उसने अधरों तक आई हल्की-सी हँसी क्यों दबा दी, यह वही जाने। अथवा मेरी भी भूल हो सकती है—असंभव तो है नही।

बाबाजी महाराज का गाना आज जमा नहीं। वह अपने दोष से नहीं बल्कि लोगों की अधीरता के कारण हुआ। द्वारिकादास ने आंखें खोली, और राजलक्ष्मी का आह्वान कर कहा, "दीदी, हमारे देवता को अब तुम कुछ निवेदन करके सुनाओ, सुनकर हम भी धन्य हों।"

राजलक्ष्मी उसी तरफ मुंह करके बैठ गयी। द्वारिकादास ने मृदंग की ओर उंगली से इशारा करते हुए पूछा, "इसके कारण कोई बाधा तो पैदा न होगी?"

"नही।" राजलक्ष्मी ने कहा।

यह सुनकर वे ही नहीं, बल्कि मन ही मन मनोहर दास भी कुछ विस्मित हुए, क्योंकि एक साधारण महिला से उन्होंने शायद इतनी आशा नही की थी।

गाना शुरू हुआ। सकोच की जडता, अज्ञता या अल्पज्ञता की दुविधा कही नही है"—नि.संशय कंठस्वर अबाध जलस्रोत के समान प्रवाहित होने लगा। जानता हूं, इस विद्या में वह सुशिक्षिता है, यह उसकी जीविका थी, किंतु यह ख्याल नही था कि बगाल के अपने संगीत की इस धारा पर भी उसने इतने यत्न के साथ अधिकार कर रखा है। जिसे ज्ञात था कि प्राचीन और अर्वाचीन वैष्णव कवियों की इतनी विविध पदावलियां उसने कंठस्थ कर रखी होगी। केवल सुर-ताल और लय मे ही नही बल्कि उच्चारण की स्पष्टता, वाक्य की शुद्धता और प्रकाशमयी की मधुरता से उसने इस संध्या वेला में जिस आह्लादक विस्मय की सृष्टि की वह कल्पनातीत थी। पाषाण के देवता उसके सामने तो और दुर्वासा देवता पीछे—कहना कठिन है उसकी यह आराधना किस को अधिक प्रसन्न करने के लिए थी—। कौन जाने, उसके मन में यह बात थी या नही कि इससे गंगामाटी के अपराध का थोडा-सा क्षालन भी हो गया है।

वह गा रही थी·

एके पद-पंकज पके विभूषित, कंटक जरजर भेल,
तुया दरसन आशे कछ नाहिं जानलु, चिर दुख अब दूर भेल।

तोहारि मुरलि जब श्रवणे प्रवेशल,
छोडनु गृह-सुख-आस,
पंथक दुख तृणहुं करि न गणनु
कह तंह गोविंददास।।

बड़े गुसाईंजी की आखो से अश्रुधारा वह रही थी, वे आवेग और आनद की प्रेरणा से उठ खड़े हुए। मूर्ति के गले से मल्लिका की माला उतार कर उन्होंने राजलक्ष्मी के गले मे पहना दी और कहा, "प्रार्थना करता हू, तुम्हारे सारे अकल्याण दूर हो जाय।"

राजलक्ष्मी ने झुककर नमस्कार किया, फिर उठकर मेरे पास आई, सब के सामने पैरो की धूल माथे पर लगाई और धीरे-से कहा, "यह माला रखी है, बख्शीश का डर न दिखाया होता तो यही तुम्हारे गले में पहना देती।" कहकर तुरत ही वह चली गई।

गाने की बैठक समाप्त हुई। ऐसा लगा मानो आज जीवन सार्थक हो गया। क्रमश प्रसाद वितरण आयोजन शुरू हुआ। अधकार मे उसे जरा ओट मे बुलाकर कहा, "वह माला रख दो। यहा ही, घर लौट कर तुम्हारे हाथो मे ही पहनूगा।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यहा ठाकुर-घर मे पहन लोगे तो फिर उतार नही सकोगे—शायद इसी बात का डर है?"

"नही, अब डर नही है, वह दूर हो गया है। अगर सारी दुनिया मेरी होती,तो तुम्हे आज वह भी दान कर देता।"

"ओः, कैसे दानी हो। किंतु वह तो तुम्हारी ही रहती जी।"

"आज तुम्हे असख्य धन्यवाद।"

"क्यो; बताओ तो सही?"

"आज खयाल हो रहा है; मैं तुम्हारे योग्य नही हू। रूप, गुण, रस, विद्या, स्नेह और सौजन्य से परिपूर्ण जो धन मुझे बिना याचना के ही मिला है, उसकी ससार मे तुलना नही है। अपनी अयोग्यता के मारे शर्म आती है लक्ष्मी,—तुम्हारे निकट मैं सचमुच बहुत कृतज्ञ हूं।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "इस बार मैं सचमुच नाराज हो जाऊंगी।"

"सो हो जाओ। सोचता हूँ कि इस ऐश्वर्य को मैं रखूगा कहा?"

"क्यो, चोरी जाने का डर है?"

"नही, ऐसा आदमी तो कोई नजर नही आता लक्ष्मी। चोरी कर के तुम्हे रख छोडने लायक बडी जगह वह बेचारा कहा पाएगा?"

राजलक्ष्मी ने उत्तर नही दिया, मेरा हाथ खीच कर थोडी देर तक हृदय के समीप रख छोडा। फिर कहा, "अधकार मे इस प्रकार आमने-सामने खडे रहेगे तो लोग हसेगे नही? पर सोच रही हू कि रात को तुम्हे कहा सुलाऊगी—जगह तो है ही नही।"

"रहने दो, कहीं भी सोकर रात काट दूगा।"

"सो तो काट दोगे ही, पर तबीयत तो तुम्हारी अच्छी है नही, बीमार पड़ सकते हो।"

"तुम्हे चिता करने की आवश्यकता नही, ये लोग कुछ न कुछ करेगे ही।"

राजलक्ष्मी ने चिंता के स्वर मे कहा, "सब कुछ देख तो रही हू, पता नही क्या व्यवस्था करेगे। पर मैं चिता न करू और वे करे?—चलो, थोडा-सा खाकर सो जाना।"

लोगो की भीड के कारण सोने को सचमुच ही जगह न थी। [illegible] रात को किसी प्रकार एक खुले बरामदे मे मसहरी लगाकर मेरे सोने की व्यवस्था की गयी। त्रुटि [illegible] राजलक्ष्मी अशांति अनुभव करने लगी, शायद रात को बीच-बीच मे आकर देख भी गई, पर [illegible] नीद में कोई बाधा नही पडी।

दूसरे दिन बिछौने से उठने पर देखा कि दोनो ढेर सारे फूल तोडकर लौट आई हैं। कमललता ने आज मेरे बदले राजलक्ष्मी को ही साथी बना लिया था। यह नही जानता था कि वहा अकेले मे उनके बीच क्या-क्या बाते हुई। किंतु आज उन दोनो के चेहरे देखकर मुझे बहुत सन्तोष हुआ। मानो दोनो बहुत पुरानी सखिया हैं, न जाने कितने समय की आत्मीय। कल दोनो एक साथ एक ही शय्या पर सोई थी—जाति के विचार ने वहा किसी तरह का रोडा नही अटकाया। इस बारे मे कि एक दूसरी के हाथ का नही खाती, कमललता ने मुझसे हसकर कहा, "तुम कुछ ख्याल न करना गुसाई, इसका प्रबध हमारा हो गया हैं। अगली बार मैं बडी बहन बनकर जन्म लूगी और इसके दोनो कान अच्छी तरह से मल दूगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "इसके बदले मैंने भी एक शर्त करा ली है गुसाई, कि अगर मैं मर जाऊ तो इसे वैष्णवी धर्म से इस्तीफा देकर तुम्हारी सेवा मे नियुक्त होना पडेगा। मैं अच्छी तरह जानती हू कि तुम्हारे

बिना मुझे मुक्ति नही मिलेगी और तब भूत बनकर दीदी के सिर पर चढी फिरूगी—उसी सिंदबाद जहाजी के कधे पर बूढे दैत्य की तरह—कंधे पर बैठे-बैठे इसके द्वारा सब काम करा लूंगी, तब छोड़ूगी।"

"तुम्हे मरने की जरूरत नहीं बहन, "कमललता ने हसी के साथ कहा, "मैं तुम्हे कंधे पर लिए हर वक्त नही घूम सकूगी।"

सुबह चाय पीकर गौहर की खोज मे निकल पडा। कमललता ने आकर कहा, "बहुत देर न कर देना गुसाई, और उन्हे भी साथ लेते आना। इधर देवता का भोग तैयार करने के लिए आज एक ब्राह्मण पकड लाई हू। जितना गदा है उतना ही आलसी। उसे सहायता देने के लिए राजलक्ष्मी भी साथ मे गई हैं।"

"ठीक नहीं किया यह। राजलक्ष्मी का खाना तो हो जाएगा, किंतु तुम्हारे देवता बिना खाए ही रह जाएगे।"

कमललता ने भय से जीभ काट ली। कहा, "ऐसी बात न कहो गुसाई, उसके कानो मे भनक पड गई तो फिर यहा जल तक ग्रहण नही करेगी।"

मैं हंसा, बोला, "चौबीस घटे भी नहीं बीत पाए कमललता, किंतु उसको तुमने पहचान लिया है।"

"हा गुसाईं," उसने भी हसकर कहा, "पहचान लिया है। करोडो मे खोजने पर ऐसा एक भी मनुष्य नही मिलेगा भाई, तुम भाग्यवान हो।"

गौहर से मुलाकात नही हुई। वह घर पर नही था। उसकी एक बेवा बहन सुनाम गाव मे रहती है। नवीन ने बताया कि वहाँ न जाने कौन-सी एक बीमारी फैल गई है, बहुत लोग मर रहे है। गरीब बहन लडके-बच्चो को लेकर आफत मे पड गई है, इसीलिए वह दवा-दारू कराने गया है। आज दस-बारह दिनो से कोई खबर नही है। नवीन मारे डर के मरा जा रहा है, पर कोई भी तरकीब उसे नही सूझ रही है। एक-ब-एक जोर की चीख मारकर वह रोने लगा, बोला, "मेरे बाबू अब जिंदा नही हैं शायद। मैं ठहरा मूरख किसान, गाव से बाहर कभी निकला ही नही, नही जानता कि वह देश कहा है, और कहाँ से जाना होता है; नही तो सारी घर-गृहस्थी डूब जाती, तो भी नवीन अबतक घर नही बैठा रहता। चक्रवर्ती की दिन-रात खुशामद करता हू कि महाराज दया करो, जमीन बेचकर सौ रुपए देता हू तुम्हे, एक बार ले चलो मुझे,—मगर वह धूर्त ब्राह्मण टस से मस नही होता। मगर यह भी कहे देता हू बाबू, कि अगर कहीं मेरे मालिक मर गए तो चक्रवर्ती का घर फूक डालूगा, और फिर उसी आग मे कूदकर आत्महत्या कर लूगा। इतने बडे नमकहराम को मैं जिंदा नही रहने दूगा।"

उसे ढाढस बधाकर पूछा, "जिले का नाम जानते हो नवीन?"

नवीन ने कहा, "सिरिफ इतना सुना है कि यह गाव नदिया जिले के किसी कोने मे है। टेसन से बैलगाडी मे बहुत दूर जाना पडता है।" फिर बोला, "चक्रवर्ती जानता है, मगर यह बाभन इतना भी बताना नही चाहता।"

नवीन पुरानी चिट्ठी-पत्री सब बटोर लाया, पर उनसे कोई पता नही चला। कागज-पत्र से केवल इस बात की जानकारी मिली कि दो महीने पहले लडकी की शादी के लिए चक्रवर्ती ने दो सौ रुपए गौहर से वसूल किए थे।

बेवकूफ गौहर के पास बहुत रुपया है, सो शैतान दरिद्र उसे ठगेगे ही—इसके लिए क्षोभ करना व्यर्थ है, तथापि इतनी बडी शैतानी बहुत कम दिखाई पडती है।

नवीन ने कहा, "उसके लिए तो बाबू का मर जाना ही अच्छा है, झझटो से बच जाएगा जो। उधार का एक पैसा भी चुकाना नही पडेगा।" यह असभव नही है।

दोनो आदमी चक्रवर्ती के घर पहुचे। इतना विनयी, ऐसा मधुरभाषी, और इतना पर-दुख-कातर भद्र व्यक्ति ससार मे दुर्लभ है। किंतु वृद्ध हो जाने के कारण स्मरण-शक्ति इतनी क्षीण हो गई है कि किसी भी तरह याद ही नही आया, यहा तक कि जिले के नाम की भी याद नही आई। बडी कोशिश के बाद एक टाइम टेबुल लाकर उत्तर और पूर्व रेलवे के स्टेशनो के तमाम नाम पढ गया, फिर भी स्मरण नहीं कर सका। खेद जाहिर करते हुए बोला, "लोग न जाने कितनी चीजे और रुपए—पैसे उधार ले जाते हैं बाबा, याद नही रहता, और फिर कोई लौटाने भी नहीं आता। मन ही मन कहता हूँ कि सिर पर भगवान हैं वे ही इसका विचार करेगे।"

नवीन अब और न सह सका। गरज उठा, "हा, वे ही तुम्हारा विचार करेंगे। अगर नही करे तो फिर मैं करूगा।"

चक्रवर्ती ने स्नेह से भीगे गले से कहा, "नवीन, झूठ मूट के लिए क्यो नाराज होते हो भैया? तीन पन तो वीत गये, एक पन बाकी रह गया है। यदि जानता तो क्या इतना भी नही करता? गौहर क्या मेरे लिए पराया है? वह तो मेरे लडके के समान है रे।"

नवीन ने कहा, "यह सब मैं नहीं जानता। तुम से आखिरी मर्तबा कहता हू कि बाबू के पास ले चलना हो तो ले चलो, नही तो जिस दिन उनकी कोई बुरी खबर मिलेगी, उस दिन रहे तुम और रहा मैं।"

जवाब मे चक्रवर्ती ने हाथ से माथा ठोककर केवल इतना ही कहा, "तकदीर है नवीन, तकदीर। नही तो तुम मुझसे ऐसी बात कहते?"

अतएव, फिर दोनो आद .ट पडे। मकान के बाहर खडे होकर मैंने आशा की कि अनुतप्त चक्रवर्ती शायद अब भी बुलाए। किंतु कोई नतीजा नही निकला। दरवाजे की आड़ से झांककर देखा कि चक्रवर्ती जली हुई चिलम फेंककर बड़े इतमीनान के साथ हुक्का तैयार कर रहा है।

गौहर का संदेश पाने का उपाय सोचते-सोचते जब मैं अखाडे पहुंचा तब लगभग तीन बज चुके थे। देंवता वाले कमरे के बरामदे मे औरतो की भीड लगी हुई है। बाबाजी लोगों मे से कोई नहीं है, सभवतः बहुत अधिक प्रसाद-सेवन से परिश्रात तथा निर्जीव होकर कही विश्राम कर रहे हैं—चूंकि रात के समय एक बार फिर प्रसाद से भिडना है, अतएव इसके लिए भी बल-संचय करना आवश्यक है।

झांककर देखा कि भीड़ के मध्य मे हाथ देखने वाला एक पंडित बैठा है—पचांग, पोथी, स्लेट, खडिया, पेंसिल आदि गणना के विविध उपकरण उसके पास हैं। सब से पहले पद्मा की ही दृष्टि मुझपर पडी। वह चिल्ला उठी, "नये गुसाईं आ गये।"

कमललता ने कहा, "मैं तो तभी जान गई थी कि गौहर गुसाईं तुम्हे यो ही नही छोड देगे, क्या खिलाया उन्होने?"

राजलक्ष्मी ने उसका मुंह दबा दिया, "रहने दो दीदी, यह मत पूछो।"

कमललता ने उसका हाथ हटा कर कहा, "धूप मे मुह सूख गया है, रास्ते की धूल-माटी माथे पर जम गयी है,—नहाना-धोना हो गया क्या?" "तेल तो छूते नही," राजलक्ष्मी ने कहा, "इसलिए नहा-धो लेने पर भी पता नही चलेगा दीदी।"

"इसमे सदेह नही कि नवीन ने हर तरह से कोशिश की, पर मजूर नही किया मैंने। बिना नहाए-खाए ही वापस लौट आया हूँ।"

राजलक्ष्मी ने बडे आनद के साथ कहा, "ज्योतिषी ने मेरा हाथ देखकर बताया है कि मैं राजरानी होऊंगी।"

"क्या दिया?"

पद्मा ने बता दिया, "पाच रुपया। राजलक्ष्मी दीदी के आंचल मे बधे थे।"

मैंने हसकर कहा, "मुझे देती तो मैं उससे भी अच्छा बता सकता था।"

ज्योतिषी उडिया ब्राह्मण था, बहुत अच्छी बगला बोलता था—बगाली कहा जा सकता है। उसने भी हसकर कहा, "नही महाशय, रुपए के लिए नही, रुपए तो बहुत कमाता हू। सच कहता हू कि इतना बढिया हाथ आज तक मैंने दूसरा देखा ही नही। देख लीजिएगा, मेरा हाथ देखना कभी झूठ नही होता।"

"ज्योतिषी जी, बिना हाथ देखे भी कुछ बता सकते हो?" पूछा।

"बता सकता हू। एक फूल का नाम लीजिए।"

"सेमर का फूल।"

ज्योतिषी हस पडा, बोला, "सेमर का ही फूल सही। मैं बता दूगा कि आप चाहते क्या हैं। यह कहकर उसने खडिया से दो मिनट तक हिसाब लगाया, फिर कहा, "आप एक खबर जानना चाहते हैं।"

मेरी तरफ देखकर वह कहने लगा, "नही, मामले-मुकदमे की नही, आप किसी आदमी की खबर जानना चाहते हैं।"

"कैसी खबर है, बता सकते हो?"

"बता सकता हू। खबर अच्छी है, एक-दो दिन मे ही मिल जाएगी।"

सुनकर मैं मन ही मन विस्मित हो गया, मेरा चेहरा देखकर सब ने ऐसा अनुमान किया। राजलक्ष्मी प्रसन्न होकर बोली, "देख लिया न। मैं कहती हूं कि ये बहुत अच्छी गणना करते हैं, किंतु तुम लोग तो किसी बात पर विश्वास ही करना नही चाहते—हसकर बात ही उड़ा देते हो।"

कमललता ने कहा, "अविश्वास किसका? नये गुसाईं, एकबार जरा अपना हाथ भी तो ज्योतिषी जी को दिखाओ।"

मैंने जैसे ही हाथ फैलाया, ज्योतिषी जी ने उसे अपने हाथ में ले लिया, दो-तीन मिनट तक पर्यवेक्षण करने के बाद हिसाब लगाया, फिर कहा, "महाशय देखता हूं कि आप के लिए एक बहुत बडी विपत्ति ..."

"विपत्ति? कब?"

"बहुत जल्दी, मरने-जीने की बात है।"

राजलक्ष्मी की तरफ देखकर पाया कि उसके चेहरे का खून सूख गया है, चेहरा भय से सफेद पड़ गया है।

ज्योतिषी ने मेरा हाथ छोड़ दिया। राजलक्ष्मी से बोला, "मां, तुम्हारा हाथ एक बार और ..."

"नही, मेरा हाथ अब नही देखना है, देख चुके।"

उसका तीव्र भावातर बहुत ही स्पष्ट था। चतुर ज्योतिषी तुरंत समझ गया कि गणना करने मे उसने गलती नही की है। बोला, "मै तो एक दर्पण मात्र हू मा, जो छाया पड़ेगी वही कहूगा, किंतु रुष्ट ग्रह को भी शात किया जा सकता है, इसकी विधि है—केवल दस-बीस रुपए खर्च की बात है।"

"तुम हमारे कलकत्ते के मकान पर आ सकते हो?"

"क्यो नही आ सकता? ले जाने पर चला चलूगा।"

"अच्छी बात है।"

देखा कि ग्रह के कोप पर तो उसे पूरा विश्वास है, किंतु उसको प्रसन्न कर लेने के बारे मे पर्याप्त सदेह है।

कमललता ने कहा, "चलो गुसाई, तुम्हारी चाय तैयार कर दू, समय हो गया है।"

राजलक्ष्मी ने टोका, "मैं बना लाती हूं दीदी, तुम जरा इनके बैठने की जगह ठीक कर दो और रतन से कह दो कि हुक्का तैयार करे। कल से तो उसकी छाया भी नजर नही आती।"

ज्योतिषी को लेकर सब कलरव करने लगी, हम चले आए।

दक्षिण के खुले बरामदे मे मेरी रस्सी की खटिया पडी है। रतन ने झाड-पोछ-दी, हुक्का दिया, हाथ-मुंह धोने के लिए जल दिया। कल सवेरे से ही बेचारे को काम से फुर्सत नही मिली है। फिर भी मालकिन का आरोप है कि उसकी छाया तक नजर नही आयी। मेरा विपत्ति-योग निकट है, किंतु यदि रनन से इसकी चर्चा करता तो अवश्य कहता, "जी नही, विपत्ति-योग आपका नही—मेरा है।'

कमललता नीचे बरामदे मे बैठकर गौहर का हाल-चाल पूछ रही थी। राजलक्ष्मी चाय ले आई। उसका चेहरा भारी हो रहा है, सामने के स्टूल पर प्याली रखकर बोली, "देखो जी, तुम से हजार बार कह चुकी हू कि वन-जगलो मे मत घूमा करो—आफत आते देर ही कितनी लगती है? गले मे आंचल डाल और हाथ जोडकर प्रार्थना करती हूं कि मेरी बात मानो।"

चाय बनाते हुए राजलक्ष्मी ने अब तक सोचते-सोचते यही स्थिर किया था। "बहुत जल्दी का दूसरा अर्थ क्या हो सकता है?"

कमललता ने चकित होकर पूछा, "वन जगलो मे गुसाईं कब गये थे?"

"कब गयेसरी ओर मुह फेरकर चला गया।

"कब गये," राजलक्ष्मी का जवाब था, "क्या यह मैं देखा करती हूँ दीदी? मुझे क्या दुनिया मे ओर कोई काम नही है?"

मैं बोल पड़ा, "देखा कभी नही, केवल अंदाज है। ज्योतिषी बेटा अच्छी आफत मे डाल गया।"

यह सुनकर रतन दूसरी ओर मुंह फेरकर चला गया।

राजलक्ष्मी ने प्रतिवाद किया, "ज्योतिषी का क्या कसूर है? वह जो देखेगा वही तो बताएगा? संसार

मे क्या विपत्ति-योग नाम की कोई चीज ही नही है? क्या आफत मे कभी कोई पडता ही नही?"

चाय की प्याली अपने हाथ मे लेते हुए राजलक्ष्मी ने पूछा, "दो-चार फल और थोडी-सी मिठाई ले आऊ?"

कहा, "नहीं।"

"नही क्यो?—"नही छोडकर 'हा' कहना क्या भगवान ने सिखाया ही नही तुम्हे?" लेकिन मेरे मुह की ओर देखकर वह सहसा बहुत उद्विग्न हो उठी। पूछा, "तुम्हारी दोनो आखे इतनी लाल क्यो दिखाई दे रही है? नदी के सडे पानी मे नहाकर तो नही आए हो?"

'नही। आज स्नान किया ही नही।"

"और खाया क्या वहा?"

"कुछ भी नही खाया। इच्छा भी नही हुई।"

पता नही क्या सोचकर उसने पास आकर मेरे सिर पर हाथ रखा, फिर वही हाथ कुर्ते के अदर मेरी छाती तक ले जाकर कहा, "जिससे शकित थी, ठीक वही है। कमल दीदी, देखो तो इनका बदन गरम है कि नही?" वह नाम रखने मे बहुत ही पटु है। यह नया नाम मेरे कानो मे भी पडा।

राजलक्ष्मी ने फिर कहा, "इसके मानी ज्वर जो है दीदी।"

कमललता बोली, "यदि ज्वर ही हो तो तुम लोगा कोई पानी मे तो नही आ पडी हो? हमारे पास आई हो, हम ही इसकी व्यवस्था कर देगे बहन, तुम्हे चिता करने की कोई जरूरत नही।"

अपनी इस असगत व्याकुलता मे दूसरे के अविचलित शांत कठस्वर से राजलक्ष्मी प्रकृतिस्थ हो गयी। कुछ लज्जित-सी होकर उसने कहा, "अच्छी बात है दीदी, किंतु एक तो यहा डाक्टर-वैद्य नही है, फिर सदा देखा है कि जब इन्हे कुछ होता है तो जल्दी आराम नही होता—बहुत भोगना पडता है। फिर जलमुंहा ज्योतिषी न जाने कहा से आकर दहशत मे डाल गया—"

"डालने दो।"

"नही दीदी, अक्सर मैंने देखा है कि इनकी अच्छी बाते तो फलीभूत नही होती। किंतु अशुभ बाते सही निकल आती है।"

कमललता ने हल्की हसी के साथ कहा, "डरने का काम नही राजू, इस क्षेत्र मे उसकी बात सही नही होगी। सवेरे से ही गुसाई घूमते रहे हैं, सही समय पर स्नान-आहार भी नही हुआ, इसी कारण शरीर कुछ गरम हो गया है शायद—कल सवेरे तक नही रहेगा।"

तभी आकर लालू की मा ने खबर दी, "मा, रसोईघर मे ब्राह्मण-रसोइया तुम्हे बुला रहा है।"

"जाती हू," कहकर कमललता की ओर कृतज्ञता के साथ निगाह डालकर वह चली गई।

मेरे स्वास्थ्य के सबध मे कमललता की बात ही सही निकली। बुखार सुबह ही तो नही उतरा, पर एक-दो दिन मे मै स्वस्थ हो गया। लेकिन इसी घटना से मेरी आतरिक बातो की जानकारी कमललता को मिल गई, यह जानकारी सभवत एक और व्यक्ति को मिल गई—स्वय बडे गुसाई जी को।

जाने के दिन कमललता ने हम लोगो को आड मे बुलाकर पूछा, "तुम्हे अपनी शादी का साल याद है, गुसाईं?" देखा कि पास मे ही एक थाली मे देवता का प्रसाद, चदन और फूलो की माला रखी है।

प्रश्न का उत्तर राजलक्ष्मी ने दिया, "इन्हे क्या खाक मालूम होगा? मुझे याद है।"

"यह कैसी बात है कि एक को याद रहे और दूसरे को नही?" कमललता ने हसते हुए कहा।

"बहुत कम वय थी न, इसीलिए।" राजलक्ष्मी ने कहा, "इन्हे तब भी सही ज्ञान न था।"

"लेकिन वय मे तो ये ही बडे हैं, राजू?"

"ओ , बहुत बडे हैं—कुल मिलाकर पाच-छह बरस। तब मेरी उम्र आठ-नौ साल की थी। एक दिन गले मे माला पहनाकर मैंने कहा, आज से तुम मेरे दुल्हा हुए। दुल्हा। दुल्हा।" कहकर इशारे से मुझे दिखाते हुए बोली,—"किंतु यह देवता वही खडे-खडे मेरी माला को उसी समय खा गये।"

"फूलो की माला कैसे खा गये?" कमललता ने चकित होकर पूछा।

"फूलो की नही," मैंने भेद खोला, "करौंदो की माला थी। जिसे दोगी, वही खा जाएगा।"

कमललता हसने लगी। राजलक्ष्मी बोली, "किंतु वही से शुरू हो गई मेरी दुर्दशा। इन्हे खो बैठी। इसके आगे की बाते मत जानना चाहो दीदी,—किंतु लोग जिस बात की कल्पना करते है वह भी नही

है—वे तो न जाने क्या-क्या सोचते रहते हैं। इसके बाद एक अरसे तक रोती-पीटती भटकती रही और ढूंढती रही इन्हें। अततः एक दिन कृपा हुई भगवान की, और जैसे एक दिन स्वय ही देकर अचाकर छीन लिया था वैसे ही एक दिन अकस्मात् हाथों हाथ वापस लौटा भी दिया।" यह कहकर उसने भगवान को लक्ष्यकर प्रणाम किया।

"उन्ही भगवान की माला बडे गुसाईं ने भेजी है," कमललता ने कहा, "आज जाने के पहले तुम दोनों एक दूसरे को पहना दो।"

राजलक्ष्मी ने हाथ जोड दिए, बोली, "इनकी इच्छा तो ये ही जाने, किंतु इसके लिए मुझे आदेश मत करो। बचपन की मेरी वह लाल रग की माला आज भी आंखे बद करने पर इन के उसी किशोर गले मे झूलती हुई दिखाई देती है। भगवान की दी हुई वही माला सदा बनी रहे दीदी।"

"किंतु वह माला तो मैं खा गया था।" मैंने टोक दिया।

"हां देवता जी, इस बार मुझे भी खा डालो। कहकर हंसते हुए उसने कटोरी के चंदन मे उंगलिया बोर कर मेरे मस्तक पर छाप लगा दी।

भेंट करने के उद्देश्य से हम सब द्वारिकादास के कमरे में गए। वे न जाने किस ग्रथ का पाठ करने मे संलग्न थे। बोले, "आओ भाई, बैठो।"

राजलक्ष्मी भूमि पर बैठ गई। बोली, "बैठने का समय नहीं है गुसाईं।

बहुत ऊधम मचाई है, इसीलिए जाने के पहले प्रणाम कर आप से क्षमा की भीख मांगने आई हूं।"

"हम वैरागी आदमी हैं," गुसाईं बोले, "हम भिक्षा ले तो सकते हैं, दे नही सकते। लेकिन फिर ऊधम मचाने कब आओगी, बोलो दीदी? आश्रम मे तो आज अंधकार हो जाएगा।"

"सच है गुसाईं," कमललता ने पुष्टि की—"सचमुच यही लगेगा कि आज कही भी बत्ती नही जली है, सब कही अंधकार हो रहा है।

बड़े गुसाईं ने कहा, "गान, आनंद और हास-परिहास की बदौलत कई दिनो से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों हमारे चारों ओर विद्युत-दीप जगमगा रहे हो—ऐसा और कभी प्रतीत नही हुआ। मैंने सुना है, कमललता ने तुम्हारा नाम 'नये गुसाईं' रखा है, और मैंने इन्हे नाम दिया है, 'आनदमयी—"

उनके इस उच्छ्वास में इस बार मुझे बाधा डालनी पडी। बोला, "बडे गुसाईं, आप लोगो को तो विद्युत-दीप दिखाई पड़ता है, किंतु उनसे भी जरा पूछिए जिनके कर्ण-रध्रो मे दिन-रात इनकी कडकड ध्वनि पहुंचती रहती है। आनदमयी के संबंध मे कम से कम रतन की राय—"

रतन पीछे ही खडा था, भाग गया।

राजलक्ष्मी कह पडी, "इनका प्रलाप तुम सुनो गुसाईं, ये दिन-रात मुझ से ईर्ष्या करते हैं।" फिर मेरी ओर देखकर बोली, "अब की बार जब आऊंगी तो इस बीमार और अरसिक आदमी को ताला लगाकर बद कर आऊंगी। इसके मारे मुझे कही चैन नही मिलती।"

बडे गुसाईं बोले, "नही आनदमयी, यह करते नहीं बनेगा, छोडकर नहीं आ सकोगी।"

"अवश्य आ सकूंगी।" राजलक्ष्मी ने कहा, "बीच-बीच मे तो मेरी ऐसी इच्छा होती है गुसाईं, कि जल्दी ही मर जाऊं।"

बडे गुसाईं ने कहा, "यह इच्छा तो एक दिन वृदावन मे उनके मुंह से भी निकली थी बहन, पर वैसा हो नही सका। हा, आनदमयी, तुम्हे क्या वह बात याद नही है?—

सखी, दे जाऊं मैं किसको-किसको कन्हैयालाल की सेवा।

"वे जाने क्या बताओ तो—"

कहते-कहते वे मानो अन्यमनस्क हो गये। बोले, "सच्चे प्रेम के बारे मे लोग जानते ही कितना-सा है? केवल छलना मे स्वयं को भुलाये रखते हैं। किंतु तुम जान सकी तो बहन, इसीलिए कहता हू कि तुम जिस दिन यह प्रेम श्रीकृष्ण को अर्पित कर दोगी आनदमयी—"

राजलक्ष्मी मानो सिहर गयी सुनकर, व्यग्र होकर बाधा देती हुई बोल उठी, "ऐसा आशीर्वाद मत दो गुसाईं, मेरे भाग्य मे ऐसा न घटे। बल्कि यह आशीर्वाद दो कि इसी प्रकार हसते-खेलते एक दिन इनके सामने ही चल बसू।"

कमललता ने बात को संभालते हुए कहा, "बडे गुसाईं तुम्हारे प्रेम की बात ही कह रहे हैं राजू, और

कुछ नही।" मैंने भी यही समझ लिया कि अन्य भावो के भावुक द्वारिका दास की —विचार-धारा सहसा एक और पथ पर चली गई थी, बस।

राजलक्ष्मी ने सूखे मुह से कहा, "एक तो ऐसी काया, और फिर एक-न एक बीमारी लगी ही रहती है—एकागी आदमी ठहरे, किसी की बात सुनना नही चाहते—मैं दिन-रात किस तरह डरी सहमी रहती हू दीदी, किसे बताऊँ?"

अब तो उद्विग्न हो उठा मैं मन ही मन। जाते-जाते बात-बात मे ही कहा का काजल कहा पहुच गया, इसका ठिकाना ही नही। मुझे मालूम है कि मुझे अवहेलना के साथ विदा करने की मर्मातक आत्मग्लानि लेकर ही राजलक्ष्मी इस बार काशी से आई है, और सभी प्रकार के हास-परिहास के अतराल मे न जाने किस अज्ञात कठोर दड की आशका उसके मन मे बनी रहती है जो किसी प्रकार मिटना ही नही चाहती। इसी को शात करने के अभिप्राय से मैंने हसकर कहा, "लोगो के सामने मेरे दुबले-पतले शरीर की तुम चाहे जितनी निदा क्यो न करो लक्ष्मी, पर इस शरीर का विनाश नही है। पहले तुम्हारे मर जाने बिना मैं मरने वाला नही, यह निश्चित है।"

उसने बात पूरी भी न होने दी। धप से मेरा हाथ पकड कर बोली, "तब इन सबके सामने मुझे छूकर तीन बार शपथ लो। कहो कि यह बात कभी झूठ नही होगी।" कहते कहते उमडे आसू उसके दोनो नेत्रो से झरने लगे। सबके सब अवाक् हो रहे। मारे लज्जा के उसने मेरा हाथ जल्दी से छोड दिया और जबरदस्ती हसकर कहा, "उस जलमुहे ज्योतिषी ने झूठमूठ ही इतना भयभीत कर दिया मुझे कि—"

यह बात भी पूरी नही कर सकी, और चेहरे की हसी तथा लज्जा के बावजूद उसके नेत्रो से अश्रु बिदु दोनो गालो पर ढुलक पडे।

एक बार पुन एक-एक कर सबसे विदा ली गई। बडे गुसाईं ने वचन दिया कि अब की मर्तबा कलकत्ते आने पर वे हमारे मकान पर भी पधारेगे, और पद्मा ने कभी शहर नही देखा है इसलिए वह भी साथ मे आएगी।

स्टेशन पहुचने पर सबसे पहले वही 'जलमुहा' ज्योतिषी दिखाई पडा। प्लेटफार्म पर कबल बिछाकर बडी शान से बैठा है और उसके आसपास बहुत-से लोग एकत्र हो गये हैं।

"यह भी साथ चलेगा क्या?" मैंने पूछा।

राजलक्ष्मी ने दूसरी तरफ ताककर अपनी लाज-भरी हसी छिपाली, फिर सिर हिलाकर बताया, "हा, जाएगा।"

"नही, यह नही जाएगा।" मैंने विरोध के स्वर मे कहा।

"लेकिन, जाने से अगर कुछ भला न होगा तो बुरा भी तो नही होगा। साथ चलने दो न।"

"नही। भला या बुरा कुछ भी हो, यह साथ नही चलेगा। इसे जो कुछ देना हो, दे-दिलाकर यही से विदा कर दो। ग्रह शात करने की क्षमता और साधुता यदि इसमे हो भी, तो तुम्हारी आँखो की आड मे ही वह करे।"

"तो यही कह देती हू," कहकर उसे बुलाने के लिए उसने रतन को भेज दिया। जानता नही कि उसे क्या दिया गया, किंतु अनेक बार सिर हिलाकर और बारबार आर्शीवाद देकर हसते हुए ही उसने विदा ली।

कुछ ही देर बाद गाडी आ गई, और हम कलकत्ते के लिए रवाना हो गये।

ग्यारह

राजलक्ष्मी को उसके एक सवाल के जवाब मे, रुपये मिलने का वृत्तात सुनाना ही पडा, "बर्मा स्थित हमारे कार्यालय के एक ऊचे दर्जे के साहब ने घुड दौड मे अपना सब कुछ हार जाने के बाद मेरे जमा किए हुए रुपये उधार ले लिए थे और उन्होने स्वय यह शर्त भी रखी थी कि यदि उनके अच्छे दिन बहुरेगे तो केवल ब्याज ही नही, बल्कि मुनाफे का आधा भाग भी देगे। इस बार कलकत्ते लौटने के बाद जब मैंने रुपए मागे तो उन्होने ऋण की चौगुनी राशि भेज दी, बस यही पूजी है मेरी।

"कितनी है वह?"

"मेरे लिए तो बहुत है, पर तुम्हारे लिए बहुत ही कम।"
"सुनूं भी कितनी है।"
"सात-आठ हजार।"
"वह मुझे देनी होगी।"
डरते हुए कहा, "कैसी बात है यह। लक्ष्मी तो सिर्फ दान करती है, क्या वे हाथ भी पसारती हैं?'
राजलक्ष्मी हंसने लगी, बोली, "लक्ष्मी फिजूलखर्ची नही करती, और अयोग्य मानकर सन्यासी फकीरो का विश्वास नही करती। लाओ रुपए।"
"क्या करोगी?"
"अपने भोजन-वस्त्र की व्यवस्था करूंगी। अब तो यही मेरे जिंदा रहने का मूल धन होगा।"
"किंतु इतने कम मूलधन से काम कैसे चलेगा। तुम्हारे झुंड के झुंड नौकर-नौकरानियो की आधे महीने की तनख्वाह भी तो इससे पूरी नही होगी। इसके अतिरिक्त गुरु-पुरोहित हैं, तैंतीस करोड देवता हैं। बहुत सी विधवाओ का भरण-पोषण है,—उन सब का क्या करोगी?"
"उनकी चिंता छोड़ो, उनके मुंह बंद नही होंगे। मैं केवल अपने भरण-पोषण की बात सोच रही हूं। समझे?
मैंने कहा, "समझ गया। अब से अपने आप को एक माया मे भुलाये रखना चाहती हो, यही न?"
"नही, यह बात नही है।" राजलक्ष्मी बोली, "वह सारा रुपया दूसरे कामो के लिए है। मेरे भविष्य का मूलधन वही होगा, जो अब से तुम्हारे सामने हाथ पसारने पर मिलेगा। उसी से पेटभर खाऊंगी, नही तो उपवास करूंगी।"
"तो तुम्हारे भाग्य मे यही लिखा है।"
"क्या लिखा है—उपवास?" यह कहकर वह हंस पडी, फिर बोली, तुम सोच रहे हो कि यह मामूली-सी पूँजी है। किंतु वह विद्या मैं जानती हूं कि साधारण को किस प्रकार बढाया जाता है। एक दिन तुम समझ जाओगे कि मेरे धन के बारे में तुम जो संदेह करते हो वह सही नही है।"
"यह बात इतने दिनों तक क्यों नही कही तुमने?"
"इसीलिए नही कही कि विश्वास नही करोगे। मेरा रुपया तुम मारे घृणा के छूते तक नही, किंतु तुम्हारी घृणा से छाती फट जाती है मेरी।"
"आज ये बाते अचानक क्यों कह रही हो लक्ष्मी?" व्यथित हो कर पूछा।
राजलक्ष्मी क्षणभर तक तो मेरा मुंह ताकती रही, फिर बोली, "यह बात आज तुमको अचानक खटकी है, किंतु मेरी तो रात-दिन की यही भावना रही है। तुम क्या यह समझते हो कि अधर्म की कमाई से ही मैं देवी-देवताओं की सेवा करती हूं? उस धन का एक अग्र भी यदि तुम्हारे उपचार मे खर्च करती तो क्या तुम्हे बचा पाती? अवश्य ही मुझ से भगवान तुम्हे छीन लेते। इस बात को सत्य मानकर तुम कहा विश्वास करते हो कि मैं तुम्हारी हूं?"
"विश्वास तो करता हूं।"
"ना, नही करते।"
उसके विरोध का आशय नही समझा। वह कहने लगी, "कमललता से तो तुम्हारा दो दिन का परिचय है, तो भी उसकी सारी कहानी तुमने मन लगाकर सुनी, उसकी सारी घुटन मिट गई, वह मुक्त हो गई। परंतु मुझसे तुमने कभी कोई बात नही पूछी, कभी तो नही कहा कि लक्ष्मी, अपने जीवन की सारी घटनाएं खोल कर बताओ। क्यो नही पूछा?—तुम विश्वास नही करते मेरा, और न अपने ऊपर ही विश्वास कर सकते हो।"
"उससे भी पूछा नही," मैंने कहा, "जानना भी नही चाहा उसने स्वय ही जबरदस्ती सुनाई है।"
"तो भी सुनी तो हैं।" राजलक्ष्मी बोली, "वह पराई है इसलिए उसकी—कहानी नही सुनना चाहते थे, क्योंकि जरूरत नही थी। किंतु मुझसे भी क्या यही कहोगे?"
"नही, यह नही कहूंगा। पर क्या तुम कमललता की चेली हो? उसने जो कुछ किया है, क्या तुम्हें भी वही करना होगा?"
"इन बातों मे मैं भूलने वाली नही। मेरी सारी बाते तुम्हे सुननी ही पडेगी।"

"यह तो वडी मुश्किल है। में सुनना नही चाहता तो भी सुननी पडेगी?"

"हा सुननी पडेगी। तुम्हारा ख्याल है कि सुन लेने पर शायद मुझे प्यार नहीं करोगे, या मुझे विदा देनी पडेगी।"

"तव, तुम्हारी विवेचना के अनुसार, क्या यह तुच्छ वात है?"

राजलक्ष्मी हस पडी। वोली, "नही, यह नही होगा, तुम्हे सुनना ही पडेगा। तुम तो पुरुष हो, तुम्हारे मन मे क्या इतना भी वल नही है कि उचित जान पडने पर मुझे दूर कर सको?"

मैंने इस दुर्वलता को स्पष्ट रूप से स्वीकारते हुए कहा, "तुम जिन शक्तिशाली पुरुषो का उल्लेख करके मेरा अपमान कर रही हो लक्ष्मी, वे वीर पुरुष हैं, नमस्कार करने योग्य हैं। उनके पैरों की धूल की योग्यता भी मुझमे नही है। तुम्हे विदा देकर मैं एक दिन भी जीवित नही रह सकूगा—शायद उसी क्षण लौटा लाने के लिए दौड पड़ूगा, और कही तुमने 'ना' कह दिया तो मेरी दुर्गति की सीमा नही रह जाएगी। इसलिए इन भयावह विषयो की समीक्षा वद करो।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तुमको ज्ञात है, वचपन मे मा ने मुझे एक मैथिल राजकुमार के हाथो वेच दिया था।"

"हा, और एक मैथिल राजकुमार के ही मुह से यह खवर वहुत दिनो वाद सुनी थी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "हा, वह तुम्हारे मित्र का मित्र था। एक दिन नाराज होकर मैंने मा को विदा कर दिया और उन्होने घर लौटकर मेरी मृत्यु की अफवाह फैला दी। यह खवर तो सुनी थी?"

"हा, सुनी थी।"

"सुनकर तुमने क्या सोचा था?"

"सोचा था,—आह, वेचारी लक्ष्मी मर गयी।"

"यही? ओर कुछ नही?"

"और यह भी सोचा कि काशी मे मरने के कारण और कुछ न भी हो, सद्गति तो हुई ही। आह!"

राजलक्ष्मी नाराज हो गई। तुनक कर वोली, "जाओ, झूठी आह भरकर दु ख प्रकट करने की जरूरत नही। मैं कसम खाकर कह सकती हू कि तुमने एक वार भी 'आह' नही की थी। लो, मुझे छूकर कहो तो?"

कहा, "इतने दिन पहले की वाते क्या ठीक-ठीक याद रहती हैं? की थी, यही तो याद आता है।"

"खैर," राजलक्ष्मी वोली, "कष्ट करके इतनी पुरानी वाते अव याद करने की जरूरत कही मैं जानती हू।" फिर थोडी देर रुककर उसने कहा, "और मैं? रोज सवेरे विश्वनाथ से रो-रो कर कहती थी भगवान्, मेरे भाग्य मे तुमने यह क्या लिख दिया? तुम्हे साक्षी वनाकर जिसके गले मे माला डाली थी, क्या इस जीवन मे उससे फिर कभी मिलना नही होगा? चिर काल तक क्या ऐसी ही अप वित्रता मे दिन काटने पडेगे? उन दिनो की वाते याद आते ही आज भी आत्महत्या कर मर जाने की इच्छा होती है।"

उसके चेहरे की तरफ देखकर क्लेश का अनुभव होने लगा, किंतु यह सोचकर चुप ही रहा कि वह निषेध नही मानेगी।

उसने इन वातो को कितने दिनो तक मन ही मन कितने प्रकार से उलट-पलट कर सोचा-विचारा है, अपराध-वोध से आक्रात उसके मन ने नीरव ही वने रहकर कितनी मर्मातक वेदना झेली है—फिर भी इस भय से कि कुछ करने के प्रयास मे कुछ हो न जाय, कुछ जाहिर करने का साहस नही किया है। इतने दिनो वाद अव जाकर यह शक्ति वह कमललता से अर्जित कर पाई है। अपनी प्रच्छन्न कलुपिता को अनावृत करके वैष्णवी ने मुक्ति पा ली है। राजलक्ष्मी भी आज भय और मिथ्या मर्यादा की जजीर तोडकर उसी के समान सहज होकर खडी होना चाहती है, फिर उसके भाग्य मे कुछ भी क्यो न हो। यह विद्या उसे कमललता ने दी है। ससार मे इस एक व्यक्ति के आगे इस दर्प वाली नारी ने सिर झुकाकर अपने दु ख के समाधान की भिक्षा मागी है, यह विना किसी सशय के समझ लेने पर मुझे वहुत सतोष मिला।

कुछ देर दोनो ही चुप रहे। सहसा राजलक्ष्मी ने मौन तोडा, कहा, "राजकुमार अचानक मर गया, ओर मा ने मुझे फिर वेचने का षड्यत्र रचा—"

"इस वार किस के हाथ?"

"एक अन्य राजकुमार के—तुम्हारे उन्ही मित्र-रत्न के—हाथ, जिनके साथ-साथ शिकार करने के लिए जाते हुए क्या हुआ, याद नही है?"

"शायद नही। बहुत पुरानी वात है न। पर इसके बाद?"

"यह षड्यत्र चला नही।" राजलक्ष्मी ने कहा, "मैं बोली, 'मां, तुम घर जाओ।' मां ने कहा, 'हजार रुपए ले चुकी हूँ?' मैंने कहा, 'वह रुपया लेकर तुम देश चली जाओ। दलाली का रुपया जैसे होगा मैं चुका दूगी। आज रात की गाडी से ही यदि तुम विदा न होगी मा, तो कल सबेरे ही अपने को बेचकर गंगा माता के पानी मे डुबा दूगी। मुझे तो तुम जानती हो मा, झूठा भय नही दिखा रही हू।" मा विदा हो गई। उन्ही के मुह से मेरी मौत की खबर सुनकर तुमने दु.ख प्रकट करते हुए कहा था, 'आह! बेचारी मर गई!"

यह कहकर वह खुद ही कुछ हसी और बोली, "खबर सच होती तो तुम्हारे मुह से निकली यह 'आह' ही मेरे लिए बहुत थी, पर अब जिस दिन सचमुच मरूँगी उस दिन दो बूद आसू जरूर गिराना। कहना कि संसार में अनेक वर-वधुओं ने अनेक मालाए बदली हैं, उनके प्रेम से ससार पवित्र—परिपूर्ण हो रहा है, पर तुम्हारी कुलटा राजलक्ष्मी ने अपनी नौ वर्ष की उम्र मे उस किशोर वर को एक ही मन से जितना प्यार किया था, इस ससार मे उतना अधिक प्यार किसी ने किसी को नही किया। —कहो कि मेरे कानो मे उस वक्त यह बात कहोगे? मैं मृत होकर भी सुन सकूंगी।"

"यह क्या, तुम रो रही हो?"

उसने आचल से आखो के आसू पोछकर कहा, "तुम क्या समझते हो कि इस निरुपाय बच्ची और इसके आत्मीय जनो ने जो अत्याचार किये वह अंतर्यामी भगवान देख नही पाए? इसका न्याय वे नही करेगे? आखे मूदे रहेगे?"

कहा, "सोचता तो हू कि आखे मूंदे रहना उचित नही है, पर उनकी बाते तुम लोग ही अच्छी तरह जानती हो, मेरे जैसे पाखडी का परामर्श वे कभी नही लेते।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मजाक।" किंतु दूसरे ही क्षण गंभीर होकर कहा, "अच्छा, लोग कहते हैं कि स्त्री और पुरुष का धर्म एक न होने से काम नही चलता, किंतु धर्म-कर्म मे तो मेरा और तुम्हारा सबध साप और नेवले जैसा है। फिर भी हम लोगो का कैसे चलता है?"

"सांप-नेवले के समान ही चलता है, इस जमाने मे जान से मार डालने मे वडी झझट है, इसी कारण एक व्यक्ति दूसरे का बध नही करता, निर्भय होकर विदा कर देता है—तब जब कि यह आशका होती है कि उसकी धर्म-साधना मे विघ्न पड़ रहा है।"

"इसके बाद क्या होता है?"

हंसकर कहा, "इसके बाद वह स्वय ही रोते-रोते चला जाता है, दॉत मे तिनका दबाकर कहता है कि मुझे बहुत सजा मिल चुकी है, इस जीवन मे फिर इतनी बडी गलती नही करूंगा। गया मेरा जप-तप, गुरु-पुरोहित, मुझे क्षमा करे।"

राजलक्ष्मी भी हंस पडी, बोली, "क्षमा मिल तो जाती है न?"

"हां, मिल जाती है, पर तुम्हारी कहानी का क्या हुआ?"

राजलक्ष्मी बोली, "कहती हूं।" एक क्षण मेरी तरफ अपलक नेत्रो से देखकर बोली, "मा देश चली गई। उन दिनो मुझे एक बूढ़ा उस्ताद गाना-बजाना सिखाता था। वह बगाली था। किसी जमाने में सन्यासी था, पर सन्यास छोडकर फिर ससारी हो गया था। उसके घर मे मुसलमान स्त्री थी, वह मुझे नाच सिखाने आती थी। मैं उसे बाबा कहती थी और मुझे सचमुच वह बहुत प्यार करता था। रोकर कहा, 'बाबा, तुम मेरी रक्षा करो, यह सब अब मुझसे न होगा।' वह गरीब आदमी था। एकाएक साहस न कर सका। मैंने कहा कि मेरे पास बहुत रुपया है, उससे काफी दिनो तक काम चल जाएगा, फिर भाग्य मे जो बदा होगा, वह होगा। पर अब चलो, भाग चले। इसके बाद उसके साथ कितनी जगह घूमी—इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली, आगरा, जयपुर, मथुरा—अत मे इस पटना मे आकर आश्रय लिया। आधा रुपया एक महाजन की गद्दी मे जमाकर दिया और आधे रुपए से एक मनिहारी और कपडे की दुकान खोली। मकान खरीदकर बंकू को ढूढा, उसे लाकर स्कूल मे दाखिल करा दिया और जीविका के लिए जो कुछ करती थी, वह तो तुमने खुद अपनी आखो से देखा ही है।"

उसकी कहानी सुनकर कुछ देर तक स्तब्ध रह गया, फिर बोला, ''तुम कहती हो इसलिए अविश्वास नही होता, पर और कोई कहता तो समझता कि सिर्फ एक मनगढत झूठी कहानी सुन रहा हू।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''मैं शायद झूठ नही बोल सकती?''

कहा, ''शायद बोल सकती हो। पर मेरा विश्वास है कि मुझ से आजतक नही बोली।''

''यह विश्वास क्यों है?''

''क्यो? तुम्हे डर है कि झूठी प्रवचना करने के कारण पीछे कही देवता रुष्ट न हो जायँ और तुम्हें दड देने के लिए कही मेरा अकल्याण न कर बैठे।''

''मेरे मन की बात तुमने कैसे जान ली?''

''मैं जान सकती हू, क्योंकि यह मेरीं रातदिन की भावना है, पर तुम्हारे तो वह नही है।''

''अगर हो तो खुश होओगी?''

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाकर कहा, ''नही होऊगी। मैं तुम्हारी दासी हू, दासी को इससे अधिक मत समझना, मैं यही चाहती हू।''

उत्तर मे मैंने कहा, ''तुम उस युग की मनुष्य हो, वही हजार वर्ष पुराने संस्कार हैं।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''मैं ऐसी ही हो सकू और हमेशा ऐसी ही रहू।'' यह कहकर क्षणभर मेरी ओर देखा, फिर कहा, ''तुम सोचते हो कि इस युग की औरते मैंने नहीं देखी हैं? बहुत देखी हैं, बल्कि तुम्ही ने नही देखी हैं, और देखी भी हैं तो बाहर से। इनमे से किसी के साथ मुझे बदल लो, तो देखूं कि तुम कैसे रह सकते? अभी मुझसे मजाक करते हुए कहा था कि दॉतो मे तिनका दबाकर आई थी, तुम दस हाथ दूर से दातो मे तिनका दबाए आओगे।''

''पर जब इसकी मीमासा हो ही नही सकती, तब झगडने से क्या लाभ? केवल यही कह सकता हू कि उनके बारे मे तुमने अत्यत अविचार बरता है।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''अविचार यदि किया हो तो भी कह सकती हू कि अत्यधिक अविचार नही किया। ओ गुसाईं, मैं भी बहुत घूमी हू, बहुत देखा है। तुम लोग जहा अधे हो वहा भी हमारी दस जोडी आखे खुली हैं।''

''पर जो कुछ देखा है, रगीन चश्मे से देखा है, इसलिए सब गलत देखा है। दस जोडी भी व्यर्थ हैं।''

राजलक्ष्मी ने हसते हुए कहा, ''क्या कहूं, मेरे हाथ-पैर बधे हुए हैं, नही तो ऐसे आडे हाथो लेती कि जन्मभर भी न भूलते। पर जाने दो, जब मैं उस युग की तरह तुम्हारी दासी होकर ही रहती हूं, तब तुम्हारी सेवा हीं मेरे लिए सब से बडा कार्य है। पर तुम्हे मैं अपने बारे मे तनिक भी नही सोचने दूगी। ससार मे तुम्हारे लिए बहुत काम है, अब से वे ही करने होगे। इस अभागिन के पीछे तुम्हारा काफी वक्त तथा और भी बहुत कुछ नष्ट हो गया है, अब मैं और नष्ट नही करने दूगी।''

कहा, ''इसीलिए तो मैं, जितनी जल्दी हो सके, उसी पुरानी नौकरी पर जाकर हाजिर हो जाना चाहता हू।''

राजलक्ष्मी बोली, ''नौकरी मैं तुम्हे नही करने दूगी।''

''कितु मंनिहारी की दुकान भी नही चला सकूगा मैं।''

''क्यो नही चला सकोगे?''

''पहली वजह तो यही है कि चीजो के दाम मुझे याद नही रहते, दूसरे दाम लेना और तत्काल हिसाब लगाकर बाकी पैसे लौटा देना तो और भी असभव है। दुकान तो उठ ही जाएगी, ग्राहको के साथ यदि लाठी न चल जाय तो गनीमत है।

''तो एक कपडे की दुकान करो।''

इससे बेहतर है कि जगली शेर-भालुओं की एक दुकान करा दो, मेरे लिए उसे चलाना अधिक सरल होगा।''

राजलक्ष्मी खिलखिला पडी, बोली, ''मन लगाकर इतनी आराधना करने के बाद भी अत मे भगवान ने मुझे एक ऐसा अकर्मण्य मनुष्य दिया जिसके द्वारा ससार का इतना-सा भी काम नही हो सकता।''

कहा, ''आराधना मे त्रुटि थी। उसे सुधारने का समय है, अब भी तुम्हे कर्मठ मनुष्य मिल सकता

हैं—काफी सुदर, स्वस्थ, लबा-चौडा जवान, जिसे न कोई हटा सकेगा और न ठग ही सकेगा, जिस पर कार्य भार सौंपकर निश्चित हाथ मे रुपया-पैसा सौंप कर निर्भय हुआ जा सकेगा। जिसकी खबरदारी नही करनी होगी, भीड मे जिसे खो देने की व्याकुलता नही, जिसे सजाकर तृप्ति, भोजन कराकर आनंद—'हा' के अलावा जो 'ना' बोलना ही नही जानता—'—

राजलक्ष्मी चुपचाप मेरे मुह की तरफ देख रही थी। अकस्मात् उसके सारे शरीर मे काटे उग आए। मैंने कहा, "अरे यह क्या?"

"नही, कुछ नही।"

"काप जो उठी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मुंहजवानी ही तुमने जो तस्वीर खीची है, उसका यदि आधा भी सत्य हो तो शायद मैं मारे डर के ही मर जाऊगी।"

"पर मेरे जैसे अकर्मण्य मनुष्य को लेकर तुम क्या करोगी?"

राजलक्ष्मी ने हसी दबाकर कहा, "करूँगी और क्या? भगवान को कोसूगी और हमेशा जलती-भुनती रहकर मरूगी। इस जन्म मे और तो कुछ आखो से दिखाई नही देता।"

"बल्कि बेहतर तो यही कि तुम मुझे मुरारीपुर के अखाडे मे भेज दो।"

"उन्ही का तुम कौन-सा उपकार करोगे?"

"उनके फूल तोड दिया करूगा और देवता का प्रसाद पाकर जितने दिन जिंदा हू, पडा रहूगा। इसके बाद वे उसी बकुल के तले मेरी समाधि बना देगे। पद्मा किसी दिन शाम को दीपक जला जाएगी—जिस दिन वह भूल जाएगी उस दिन दीप न जलेगा। सुबह के फूल तोडकर उसके पास से कमललता जब निकलेगी तब कभी एक मुट्ठी मल्लिका के फूल बिखेर देगी और कभी कुद के फूल। यदि कभी कोई परिचित रास्ता भूल कर आ जाएगा तो उसे समाधि दिखाकर कहेगी, यहा हमारे नये गुसाई रहते हैं—यही जो जरा ऊची जगह है, जहा मल्लिका के सूखे और कुंद के ताजे फूलो के साथ मिलकर झरे हुए बकुल के फूल छाये हुए हैं—यही।"

राजलक्ष्मी की आंखों मे आसू भर आए, पूछा, "और वह परिचित व्यक्ति तब क्या करेगा?"

मैंने कहा, "यह मैं नही जानता। हो सकता है कि बहुत सा रुपया लगाकर मंदिर बनवा जाए—"

राजलक्ष्मी ने कहा, "नही, ऐसा न होगा। वह उस बकुल की छाया को छोडकर कही न जाएगा। पेड की डाल पर पत्ती कलरव करेंगे, गाना गाएगे, लडेगे—सैंकडो सूखे पत्ते, सूखी हुई डाले गिराएंगे—उन सब को साफ करने का भार उस पर रहेगा। सुबह चुनकर और साफ कर फूलो की माला गूथेगा, रात को सब के सो जाने पर उन्हे वैष्णव कवियो के गीत सुनाएगा, फिर समय आने पर कमललता दीदी को बुलाकर कहेगा, 'हमे एकत्र करके समाधि देना, कही अतर न रहने पाए, अलग-अलग न पहचाने जाए। और यह लो रुपए, इनसे मंदिर बनवा देना, राधाकृष्ण की मूर्ति प्रतिष्ठित करना, पर कोई नाम मत लिखना, कोई चिन्ह मत रखना—किसी को मालूम न होने पाए कि कौन हैं और कहा से आए।"

मैंने कहा, "लक्ष्मी, तुम्हारी तस्वीर तो और भी सुदर, और भी मधुर बन गई।"

राजलक्ष्मी बोली, "क्योंकि यह तस्वीर केवल बातो से नही गढी गई हैं गुसाई, यह सत्य जो है। और यही पर दोनो मे अतर है। मैं कर सकूंगी, पर तुमसे नही होगा, तुम्हारे द्वारा बनायी गयी बातो की तस्वीर केवल बातें होकर रह जाएगी।"

"कैसे जान लिया यह?"

कुछ रुककर कहा, "ऊपर वाला यह दक्षिण का कमरा तुम्हारे पढ़ने का कमरा होगा। आनंद देवर किताबे खरीद लाएगे और मैं अपने मन के मुताबिक सजाकर रखूगी। उसके एक बगल में मेरा सोने का कमरा रहेगा, और दूसरी ओर ठाकुरजी का कमरा। बस, इस जन्म में यही त्रिभुवन है इसके बाहर मेरी दृष्टि कभी जाए ही नही।"

पूछा, "और तुम्हारा रसोईघर? आनद सन्यासी आदमी है, उधर नजर न रखोगी तो उसे एक दिन भी नही रखा जा सकेगा।—पर उसका पता कैसे मिला? वह कब आएगा।?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "कुशारी जी ने पता दिया है, कहा है कि आनंद बहुत जल्दी आ जाएगा। इसके बाद सब मिलकर गंगामाटी जाएगी, और वही कुछ दिन रहेंगे।"

कहा, "समझ लो कि वहां चली ही गई, किंतु उनके पास जाते हुए इस बार तुम्हे शर्म नही आएगी?"

राजलक्ष्मी ने झेपकर सिर हिलाते हुए कहा, "पर उनमें से वो कोई भी यह नही जानता कि काशी में केश वगैरह कटवा कर मैंने स्वांग बनाया था। केश अब बहुत कुछ बढ़ गये हैं, पता नहीं चल सकता कि कभी कटे थे। और फिर मेरे सारे अन्याय और सारी लज्जा दूर करने के लिए तुम भी तो मेरे साथ हो।"

कुछ ठहरकर बोली, "खबर मिली है कि वह हतभागिनी मालती फिर लौट आई है और साथ लाई है अपने पति को। उसके लिए एक हार गढ़वा दूगी—"

कहा, "ठीक है, गढ़ा देना, किंतु वहा जाकर फिर अगर सुनदा के पल्ले पड जाओ—"

राजलक्ष्मी तपाक से बोल उठी, "नही जी, नहीं, अब वह डर नही है, उसका मोह अब दूर हो गया है। बाप रे बाप, ऐसी धर्म बुद्धि दी कि रात-दिन न तो आंखो से आसू ही रोक सकी, न खाना ही खा सकी और न सो सकी। यही बहुत है कि पागल नही हुई।" फिर उसने हंसकर कहा, "तुम्हारी लक्ष्मी चाहे जैसी हो, लेकिन अस्थिर मन की नही है। उसने एक बार जिसे सत्य समझ लिया, फिर उसे उससे कोई डिगा नही सकता।" कुछ क्षण नीरव रहकर फिर बोली, "मेरा सारा मन मानो इस समय आनंद में डूबा हुआ है। हर वक्त ऐसा लगता है कि इस जीवन का सब कुछ मिल गया है, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। यदि यह भगवान निर्देश नही तो और क्या है, बताओ? प्रतिदिन पूजा कर देवता के चरणो में अपने लिए कुछ कामना नही करती, केवल यही प्रार्थना करती हू कि ऐसा आनद ससार मे सबको मिले। इसीलिए आनद देवर को बुला भेजा है कि उसके काम में अब से थोडी बहुत सहायता करूगी।"

"अच्छी बात है, करो।"

राजलक्ष्मी अपने मन में न जाने क्या सोचने लगी, फिर सहसा कह उठी,—"देखो, इस सुनंदा के जैसी अच्छी, निर्लोभ और सत्यवादी और कोई दूसरी औरत मैंने नही देखी, पर जब तक उसकी विद्या की गरमी न जाएगी तब तक वह विद्या किसी काम नही आएगी।"

"पर सुनदा को विद्या का घमड तो नही है?"

राजलक्ष्मी बोली, "नही, दूसरों की तरह नही है,—और यह बात मैंने कही भी नही। वह कितने श्लोक, कितनी शास्त्र-कथाए, कितने उपाख्यान जानती है। उसके मुख से सुन-सुन कर ही मेरी यह धारणा हुई थी कि मैं तुम्हारी कोई नही हू, हमारा सबध झूठा है,—और विश्वास भी तो यही करना चाहा था,—पर भगवान ने मेरी गर्दन पकडकर समझा दिया कि इससे बढ़कर मिथ्या और कुछ नही है। इसी से समझ लो कि उसकी विद्या मे कही जबरदस्त भूल है। इसीलिए देखती हू कि वह किसी को सुखी नही कर सकती, सिर्फ दु ख ही दे सकती है। उसकी जेठानी उससे बहुत बडी हैं। सीधी-सादी हैं, पढ़ना-लिखना नही जानती, पर दिल में दया-माया भरी हुई है। कितनी दु.खी और दरिद्र परिवारों का वह लुकाछिप कर प्रतिपालन करती है—किसी को पता भी नही चलता। जुलाहे परिवार के साथ जो एक सुव्यवस्था हो गई, वह क्या कभी सुनदा के जरिए हो सकती थी? तुम क्या सोचते हो कि वह तेज दिखलाकर मकान छोडकर चले जाने के कारण हुई है? कभी नही। यह तो उसकी बडी देवरानी ने अपने पति के पैरों पड और रो-धोकर किया है। सुनदा ने सारी दुनिया के सामने अपने बडे जेठ को चोर कहकर छोटा कर दिया,—यही क्या शास्त्र-शिक्षा का सुफल है? उसकी पोथी की विद्या जब तक मनुष्यो के सुख-दु.ख, भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, लोभ-मोह के साथ सामजस्य नही कर पाती तब तक पुस्तको मे पढ़े हुए कर्तव्यज्ञान का फल मनुष्यों को बिना कारण छेदेगा, अत्याचार करेगा और तुम्हे बताए देती हूँ, कि ससार

मे किसी का भी कल्याण नही करेगा।"

ये वातें सुनकर विस्मित हो गया, "यह सब तुमने सीखा किससे?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "क्या पता किससे? शायद तुमसे ही। तुम कुछ करते नही, कुछ मांगते नही, किसी पर जोर नही डालते। इसीलिए तुमसे सीखना सिर्फ सीखना नही है, वह तो सत्य रूप मे पा जाना है। हठात् एक दिन अचरज के साथ सोचना पड़ता है कि यह सब कहां से आया? पर इसे जाने दो, इस बार जाकर बडी कुशारी गृहिणी से मित्रता करूंगी और उस मर्तबा उनकी अवहेलना करके जो गलती की है, अवकी बार उसे सुधार लूंगी। चलोगे न गगामाटी?"

"किंतु बर्मा? मेरी नौकरी?"

"फिर वही नौकरी? अब तो कहा, कि मैं नौकरी नही करने दूगी।"

"लक्ष्मी, तुम्हारा स्वभाव भी खूब है। तुम कहती कुछ नही, चाहती कुछ नही, किसी पर दबाव भी नही डालती—विशुद्ध वैष्णव सहनशीलता का नमूना सिर्फ तुम्हारे ही निकट मिलता है।"

"इसीलिए जिसकी जो इच्छा होगी, उसी का अनुमोदन करना होगा? संसार मे क्या और किसी का दुख-सुख नही है? तुम्ही सब कुछ हो?"

"ठीक कहती हो, किंतु अभया? उसने प्लेग का भय नही किया। अगर उस दुर्दिन में आश्रय देकर वह न बचाती तो शायद आज तुम मुझे पाती ही नही। आज उसका क्या हुआ, यह क्या बिलकुल ही न सोचू?"

राजलक्ष्मी क्षणभर मे ही करुणा और कृतज्ञता से विगलित होकर बोली, "तो तुम रहो, आनंद देवर को लेकर मैं ही बर्मा जाती हूं, पकडकर उन लोगो को ले आऊगी, यहा उनके लिए कोई प्रबंध हो ही जाएगा।"

"यह हो सकता है, किंतु वह बहुत अभिमानिनी है। मैं न गया तो कदाचित् वह आएगी ही नही।"

राजलक्ष्मी बोली, "आएगी। यह समझेगी कि तुम्ही उन लोगों को लेने आए हो। देखना, मेरा कहना वृथा नही जाएगा।"

"पर मुझे छोडकर जा तो सकोगी?"

राजलक्ष्मी पहले तो चुप रही, फिर अनिश्चित कंठ से धीरे से बोली, "इसी का तो मुझे डर है। शायद नही जा सकूंगी। पर इससे पहले चलो, थोड़े दिनों तक गंगामाटी मे चलकर रहे।"

"वहां क्या तुम्हे कोई विशेष कार्य है?"

"थोडा-सा है। कुशारी जी को खबर मिली है कि पास पोडामाटी गांव बिकने वाला है। सोचती हूँ कि वह खरीद लूं। और उस मकान को भी अच्छी तरह से तैयार करवाऊ जिससे तुम्हे रहने मे कष्ट न हो। उस बार पाया कि कमरे की कमी से तुम्हे बडा कष्ट होता है।"

"कमरे की कमी से कष्ट नहीं होता था। कष्ट तो दूसरे कारण से होता था।"

राजलक्ष्मी ने जानबूझ कर इस बात पर कोई ध्यान नही दिया। कहा, "मैंने पाया है कि वहां तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। तुम्हे शहर मे ज्यादा दिनो तक रखने का साहस नही होता, इसीलिए तो जल्दी से हटा ले जाना चाहती हूँ।

"पर इस नाशवान शरीर के लिए अगर तुम क्षण-क्षण इतनी उद्विग्न होती रहोगी तो मन को शांति नही मिलेगी, लक्ष्मी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यह उपदेश बहुत काम का है, पर यह मुझे न देकर यदि स्वय ही तनिक सावधान रहो, तो शायद थोडी-सी शांति पा सकू।" सुनकर चुप रहा। क्यो कि, इस बारे मे तर्क करना सिर्फ निष्फल ही नही, अप्रीतिकर भी होता। स्वयं उसका अपना स्वास्थ्य अटूट है, पर जिसको यह सौभाग्य प्राप्त नही है, विना कारण भी वह बीमार हो सकता है, यह बात वह किसी तरह नही समझेगी। कहा, "शहर में मैं कभी नही रहना चाहता। उस समय गगामाटी मुझे अच्छी ही लगी थी। यह बात तुम भूल गई हो लक्ष्मी कि मैं वहां से अपनी इच्छा से चला भी नही आया था।"

"नही जी नही, भूली नही हू, सारी जिदगी नही भूलूगी।" यह कहकर वह जरा हंसी। बोली, "उस बार तुम्हे ऐसा लगता था मानो किसी अनजान जगह मे आ गए हो, पर इस बार जाकर देखोगे कि उसकी आकृति-प्रकृति ऐसी बदल गई है कि उसे अपना समझते तुम्हें जरा भी संकोच न होगा। और सिर्फ

घर-बार तथा रहने की जगह ही नही, इस बार जाकर मैं बदलूंगी, स्वय अपने को और सबसे अधिक तोडमोडकर नये सिरे से गढूगी तुम्हे,—अपने नये गुसाईं जी को, जिससे कमललता दीदी फिर पथ-विपथ मे घूमने का साथी बनाने का दावा पेश न कर सके।"

"शायद यही सब सोच-समझ कर तय किया है?"

राजलक्ष्मी हसते हुए बोली, "हां। तुम्हे क्या बिना मूल्य यो ही ले लूंगी,—उसका ऋण नहीं चुकाऊगी? और जाने के पहले, मैं भी तुम्हारे जीवन मे सचमुच आ गई थी, इस आने के चिह्न को न छोड जाऊगी? ऐसी ही निष्फल चली जाऊगी? नही, यह किसी भी तरह न होने दूगी।"

उसके मुह की ओर देखकर श्रद्धा और स्नेह से भर हृदय परिपूर्ण हो गया। मन ही मन सोचा, हृदय का विनिमय नर-नारी की अत्यत सामान्य घटना है,—संसार में नित्य ही घटती रहती है,—विगम नही, विशेषत्व नही। फिर भी यह दान और प्रतिग्रह ही व्यक्ति विशेष के जीवन का अवलंबन कर ऐसे विचित्र विस्मय और सौंदर्य से उद्भासित हो उठता है कि उसकी महिमा युग-युगातर तक मनुष्य के हृदय को अभिषिक्त करती रहकर भी समाप्त नही होना चाहती। यही वह अक्षय सपत्ति है जो मनुष्य को वृहद् बनाती है, शक्तिशाली बनाती है और अकल्पित कल्याण द्वारा नया बना देती है। पूछा, "तुम वंकू का क्या करोगी?"

राजलक्ष्मी बोली, "वह अब मुझे नही चाहता। सोचता है कि यह आफत दूर हो जाय तो अच्छा है।"

"किंतु वह तो तुम्हारा निकट का आत्मीय है, उसे तुमने बचपन से ही पाल-पोसकर आदमी जो बनाया है?"

"यह आदमी बनाने का सबध ही रहेगा, और कुछ नही। वह मेरा निकट आत्मीय नही है।"

"क्यो नही है? अस्वीकार कैसे करोगी?"

"अस्वीकार करना मैं भी नही चाहती थी," फिर क्षणभर तक चुप रहने के बाद बोली, "मेरी सब बाते तुम भी नही जानते। मेरे विवाह की कहानी सुनी थी?"

"लोगो के मुह से सुनी थी। पर उन दिनो मैं देश मे न था।"

"हा, नही थे। दु ख का ऐसा इतिहास और नही है, ऐसी निष्ठुरता भी कदाचित् कही नही हुई। पिता मा को कभी नही ले गए, मैंने भी उन्हे कभी नही देखा। हम दोनो बहने मामा के यहा ही बडी हुईं, बचपन मे ज्वर के कारण हमारा चेहरा कैसा हो गया था, याद है?"

"है।"

"तो सुनो। बिना अपराध उस दड के परिणाम को सुनकर तुम्हारे जैसे निर्मोही आदमी को भी दया आ जाएगी। बुखार आता था, पर मौत नही आती थी। मामा खुद भी तरह-तरह की तकलीफो से खाट पर पडे थे। हठात् खबर मिली कि दत्त का ब्राह्मण रसोइया हमारी ही जाति का है, मामा की तरह ही असल कुलीन है। आयु आठ के करीब है। हम दोनो बहनो को एक साथ ही उसके हाथो सौंपा जाएगा। सबने कहा कि इस सुयोग को खो देने पर इनका कुआरापन नही उतर सकेगा। उसने सौ रुपए मागे, मामा ने थोक दर लगाई पचास रुपए। एक ही आसन पर, एक साथ और फिर मिहनत कम। वह उतरा पच्हत्तर रुपए पर, बोला, 'महाशय, दो-दो भाजियो को कुलीन के हाथ सौंपेगे और एक जोडी बकरी के दाम भी न देगे?' शेष रात्रि मे लग्न थी, दीदी तो जगी थी किंतु मैं पोटली जैसी उठाकर लाई गई और उत्सर्ग कर दी गई। सुबह से ही बाकी पच्चीस रुपयो के लिए झगडा शुरू हो गया। मामा ने कहा, 'बाकी पच्चीस रुपए उधार रहे, अग्नि सस्कार-क्रिया होने दो।' वह बोला, 'मैं इतना बुद्धू नही हू, इन सब मामलो मे उधार-सुधार का काम नही।' आखिर वह लापता हो गया। शायद उसने सोचा कि मामा कही न कही से रुपए लाकर देगे और काम पूरा करेगे। एक दिन हुआ, दो दिन हुए, मा ने रोना-धोना शुरू किया, मुहल्ले के लोग हसने लगे, मामा ने दत्त के यहा जाकर शिकायत की, किंतु वह फिर नही आया। उसके बाद मे खोज की गई, वहा भी वह नहीं मिला। हमे देखकर कोई कहता कलमुही, कोई कहता करमफूटी—शर्म के मारे दीदी घर से बाहर नही निकलती थी। उस घर से छह महीने बाद उन्हे बाहर किया गया श्मशान के लिए। और कोई छह महीने बाद कलकत्ते के किसी होटल से समाचार आया कि वहा खाना पकाते-पकाते वर महोदय भी बुखार से मर गये। इस तरह ब्याह पूरा नही हुआ।"

कहा, "पचीस रुपए मे दूल्हा खरीदने से यही होता है।"

राजलक्ष्मी बोली, "उसे तो मेरे हिस्से के पचीस रुपए तो मिल भी गए। पर तुम्हे क्या मिला था?—मात्र करौंदों की एक माला। वह भी खरीदनी नही पडी, वन से तोड लाई थी।"

कहा, "जिसके दाम न लगे उसे अमूल्य कहते हैं। और कोई दूसरा आदमी तो दिखाओ जिसे मेरे जैसा अमूल्य धन मिला हो?"

"बताओ कि यह क्या तुम्हारे मन की सच्ची बात है?"

"पता नही चला?"

"नही जी नही, नही चला, सचमुच ही नही चला।" पर कहते-कहते ही वह हंस पडी, बोली, "पता सिर्फ तब चलता है जब तुम सोते हो,—तुम्हारे चेहरे की ओर देखकर। पर इस बात को जाने दो। हम दोनो बहनों जैसा दड इस देश की सैकडो लड़कियों को भोगना पडता है। और कही तो शायद कुत्ते-बिल्लियों की भी इतनी दुर्गति करने में मनुष्य का हृदय कापता है।" यह कहकर क्षणभर तक देखते रहने के बाद बोली, "शायद तुम सोचते होगे कि मेरी शिकायत मे अत्युक्ति है, ऐसे दृष्टात भला कितने मिलते हैं? उत्तर में यदि कहती कि एक हो तो भी सारे देश कैं लिए कलंक है, तो मेरा जवाब काफी हो जाता; पर मैं यह न कहूगी। मैं कहती हूं कि बहुत होते हैं। चलोगे मेरे साथ उन विधवाओ के पास जिन्हे मैं थोड़ी-बहुत सहायता करती हूं? वे सब की सब गवाही देगी कि उनके घर के लोगो ने उनके भी हाथ-पैर बांध कर ऐसे ही पानी में फेंक दिया था।"

कहा, "शायद इसी कारण उनके लिए इतनी दया-माया है?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तुम्हें भी होती अगर आखे खोलकर हमारा दु.ख देखते। अब से मैं ही एक-एक कर तुम को सब दिखाऊगी।"

"मैं नही देखूंगा,—आंखें बंद किए रहूगा।"

"नही रह सकोगे। मैं एकदिन अपने काम का भार एक दिन तुम पर ही डाल जाऊगी। सब भूल जाओगे, पर यह कभी न भूल सकोगे।" यह कहकर वह कुछ देर मौन रहकर अकस्मात् अपनी पहली कहानी के सिलसिले मे कहने लगी, "ऐसा अत्याचार तो होता ही है। जिस देश मे लडकी की शादी न होने पर धर्म जाता है, जाति जाती है, शर्म से समाज मे मुंह नही दिखाया जा सकता,—गवार, गूगी, अंधी, रोगिणी,— किसी की भी रिहाई नही,—लोग वहा एक को छोडकर दूसरे की ही रक्षा करते हैं। इसके अलावा उस देश मे मनुष्यों के लिए दूसरा उपाय ही क्या है, बताओ? उस दिन सब मिलकर यदि हम दोनो बहनों को बलि न दे देते तो दीदी शायद मरती नही और मैं इस जन्म मे इस तरह शायद तुम्हे नही भी पाती, पर मेरे मन मे तुम सदा इसी तरह प्रभु बनकर रहते। और यही क्यो? मुझे तुम टाल नही पाते। जहा भी होते,—चाहे जितना दिन हो जाते, तुम्हे खुद आकर ले ही जाना पडता।"

कुछ जवाब देने की सोच रहा था, हठात् नीचे से एक किशोर कंठ की पुकार आई, "मौसी?"

आश्चर्य से पूछा, "यह कौन है?"

"उस मकान की मझली बहू का लडका है," कहकर उसने इशारे से पास का मकान दिखा दिया और जवाब दिया, "क्षितीश, ऊपर आ जा बेटा।" दूसरे ही क्षण एक सोलह-सत्रह वर्ष के सुश्री युक्त बलिष्ठ किशोर ने कमरे मे प्रवेश किया। मुझे देखकर पहले तो वह सकुचित हुआ, फिर नमस्कार कर अपनी मौसी से बोला, "आपके नाम मौसी, बारह रुपए चदा लिखा गया है।"

"सो तो लिख लो बेटा, किंतु सावधानी से तैरना, कोई दुर्घटना न हो।"

"नही, कोई डर नही है मौसी।"

राजलक्ष्मी ने आलमारी से निकालकर रुपए उसके हाथ मे रख दिये, लड़का द्रुतगति से सीढी पर से उतरते-उतरते अचानक रुक कर बोला, "मा ने कहा है कि छोटे मामा परसो सुबह आकर सारा 'एस्टीमेट' बना देंगे।" और तेजी के साथ चला गया।

प्रश्न किया, "किस बात का एस्टीमेट?"

"मकान की मरम्मत नही करनी होगी? तीसरी मंजिल का जो कमरा उन्होने आधा बनवाकर छोड रखा है, उसे पूरा नही करना होगा?"

"यह तो होगा, पर इतने आदमियो से तुमने पहचान कैसे कर ली?"

"वाह, ये सब तो पास के मकान के ही आदमी हैं। पर अब नही, जाती हू—तुम्हारा खाना तैयार करने का समय हो गया।" यह कहकर वह उठी और नीचे चली गयी।

बारह

स्वामी आनद तडके ही आ धमके एक रोज। रतन नहीं जानता था कि उन्हें निमंत्रण देकर बुलाया गया है। मुंह लटकाए आकर उसने जानकारी दी, "बाबू, गगामाटी वाला वह साधु आन पहुंचा है। बलिहारी है!—ढूढ ढाढकर पा ही गया मकान।"

रतन के लिए सभी साधु-सुजान सदेह के पात्र हैं। राजलक्ष्मी के गुरुदेव तो उसे फूटी आंखों भी नही सुहाते। बोला, "देखे, अबकी बार वह किस मतलब से आया है। ये धार्मिक लोग रुपए ऐठने की कई तरकीबे जानते हैं।"

मुझे हसी आ गई। कहा, "आनद बडे आदमी का लडका है, डाक्टरी पास है, खुद के लिए उसे रुपए की जरूरत नही है।"

"बडे आदमी का लडका है, हू.! रुपया रहने पर भी कोई यह मार्ग अपनाता है!" और इस प्रकार अपना सुदृढ़ अभिमत व्यक्त कर वह चला गया। रतन को असली आपत्ति यही है, वह इस बात को सह ही नही पाता कि मा के रुपए कोई ले जाय। हां, उसकी अपनी बात दूसरी है।

वज्रानदआकर मुझे नमस्कार|कहा, "एक बार और आ गया दादा, कुशल तो है? कहां हैं दीदी?"

"पूजा कर रही हैं शायद।"

"तो स्वय ही चलकर बता दू। पूजा का काम भाग थोडे ही जाएगा, अब एक बार वे रसोईघर की तरफ भी नजर फेरे।—पूजा वाला कमरा किस ओर है दादा?—और कहा गया वह नाई का बच्चा?—जरा चाय का पानी तो चढ़ा दो!"

पूजा वाला कमरा दिखा दिया। आनद 'रतन, रतन' पुकारता हुआ उस ओर चला गया।

दो मिनट बाद दोनों आ उपस्थित हुए। आनद ने कहा, "पाचेक रुपए दे दो दीदी, चाय-वाय पीकर तनिक सियालदा बाजार घूम आऊ।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "निकट ही एक अच्छा बाजार है आनद, उतनी दूर क्यों जाओगे? और तुम ही क्यो जाओगे? रतन को ही जाने दो न!"

"कौन रतन? उस आदमी का भरोसा नही दीदी, मैं आया हू इसीलिए वह छाट-छाट कर सडी हुई मछलियां खरीद लाएगा।" कहने के साथ ही अचानक देखा कि रतन दरवाजे पर खडा है। अचकचाहट मे जीभ दबाकर कहा, "रतन बुरा न मानना भाई, मैं जानता था कि तुम उधर चले गये हो—पुकारने पर कोई जवाब नही मिला था न!"

राजलक्ष्मी हस पडी, नही रहा गया मुझसे भी हसे बिना। रतन की भृकुटी नही तनी, उसने गभीर स्वर मे बताया, "मैं बाजार जा रहा हू मा, किसने चाय का पानी चढ़ा दिया है।" और वह चला गया।

राजलक्ष्मी ने कहा, "शायद रतन और आनंद के बीच बनती नही?"

आनद का जवाब था, "हां, किंतु मैं उसे दोष नहीं देता दीदी। वह आपका हित चाहता है, ऐरो-गैरो को पैठने देना नही चाहता। मगर आज मेल कर लेना होगा उससे, वर्ना अच्छा भोजन नही मिलेगा। कई दिनो का भूखा हू।"

राजलक्ष्मी ने बरामदे तक दौड लगाकर कहा, "रतन, कुछ ओर रुपए ले ले भाई, क्यो कि एक बडी-सी रूई मछली लानी होगी।" वापस आकर कहा, "फटाक से हाथ-मुह धोलो भाई, मैं चाय बना लाती हूं।" कहकर वह नीचे चली गई।

"अचानक मैं तलब क्यो किया गया दादा?" पूछा आनंद ने।

"यह स्पष्टीकरण क्या मैं ही दूगा आनद?"

आनद हस दिया, कहा, "देखता हू, दादा का अब भी वही भाव है—नाराजगी गई नही है। फिर कही गोल हो जाने का इरादा है क्या? उस बार गंगामाटी मे कैसी झझट मे डाल दिया था! इधर देश भर के लोगों को निमत्रण, उधर गृहस्वामी लापता—बीच मे मैं, एक अजनबी, कभी इधर दौड रहा हू, कभी उधर भाग रहा हू! दीदी हाथ-पाव पसार कर रोने बैठ गई, रतन लोगो को भगाने के उद्योग मे लगा—कैसी आफत थी! वाह दादा वाह, खूब हैं आप!"

मैं भी हस पडा, बोला, "अबकी बार नाराजगी खत्म हो गई हे, डरो मत।"

"पर भरोसा नहीं होता।" आनंद ने कहा, "डर लगता है आप सरीखे निःसंग, एकाकी लोगो से, और प्राय. सोचने लगता हूं कि आपने अपने को संसार मे बंधने ही क्यों दिया?"

मन ही मन कहा, तकदीर! और प्रकट बोला, "देखता हूं कि भूले नही हो मुझे, बीच-बीच मे याद करते थे?"

"नहीं दादा, "आनंद ने कहा, "आपको भूलना मुश्किल है और समझना भी कठिन है—मोह दूर करना तो और भी कठिन है! यदि विश्वास न हो तो कहिए, दीदी को बुलाकर साक्ष्य प्रस्तुत कर दूं। आप से मात्र दो-तीन दिनों का ही तो परिचय है, किंतु उस दिन दीदी के स्वर में स्वर मिलाकर मैं भी जो रोने नहीं बैठ गया सो केवल इसलिए कि यह सन्यासी धर्म के विरुद्ध था।"

कहा, "वह शायद दीदी की ही खातिर। उनके अनुरोध से हीं तो इतनी दूर आए हो?"

आनंद बोला, "यह एकदम झूठ नहीं है दादा। उनका अनुरोध तो मात्र अनुरोध नहीं है, वह तो मानो मां की पुकार है, चरण स्वयं चल पडते हैं। न जाने कितने घरों में आश्रय पाता हूं, पर ठीक ऐसा तो कहीं नहीं देखता। सुना है, आप भी बहुत घूमे हैं, आपने भी इनके जैसी कहीं कोई और देखी है?"

कहा, "बहुत।"

राजलक्ष्मी ने कमरे में प्रवेश किया। अंदर आते ही उसने मेरी बात सुन ली थी, चाय की प्याली आनंद के पास रखकर पूछ बैठी मुझसे, "बहुत क्या जी?"

आनंद शायद कुछ विपद्ग्रस्त हो गया, मैंने कहा, "तुम्हारे गुणों की चर्चा हो रही है। इन्होंने संदेह व्यक्त किया था, इसलिए मैंने जोर देकर प्रतिवाद किया है।"

आनंद चाय की प्याली मुंह से लगा ही रहा था कि हसी के कारण प्याली छलक गई, थोडी चाय जमीन पर गिर गई। राजलक्ष्मी भी हसने लगी।

आनंद बोला, "आपकी प्रत्युत्पन्न बुद्धि भी अद्भुत है दादा, यह एकदम उल्टी बात आपके दिमाग मे एक क्षण में ही कैसे आ गई?"

"इसमें आश्चर्य क्या है आनंद?" राजलक्ष्मी बोली, "अपने मन की बात दबाते-दबाते और कहानिया गढ़कर सुनाते-सुनाते ये पूरे महामहोपाध्याय हो चुके हैं।"

पूछा, "तो तुम मेरा विश्वास नही करती?"

"तनिक भी नही।"

आनंद ने हंसकर कहा, "गढ़कर सुनाने में तो आप भी कम नही हैं दीदी। तत्काल ही जवाब दे दिया, 'जरा भी नहीं'।"

राजलक्ष्मी भी हसी। बोली, "जल-भुनकर सीखना पडा है भाई। किंतु अब तुम देर मत करो, चाय पीकर नहा लो। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि ट्रेन में कल तुम्हें भोजन नही मिला। इनके मुह से मेरी प्रशंसा सुनने के लिए तो तुम्हारा पूरा दिन भी कम ही पडेगा।" यह कहकर वह चली गई।

आनद ने कहा, "आप दोनो के समान दो व्यक्ति संसार मे विरल हैं। भगवान ने अद्भुत जोडी मिलाकर दुनिया मे आप लोगो को भेजा है।"

"उसका नमूना देख लिया न?"

"नमूना तो उस पहले ही दिन साईंथियां स्टेशन के गाछ तले देख लिया था। इसके बाद और कोई नजर नही आया।"

"आहा! ये बाते अगर तुम उनके सामने ही कहते आनद!"

आनंद काम का आदमी है। काम करने का उद्यम और शक्ति उसमे अद्भुत है। उसको निकट पाकर राजलक्ष्मी की खुशी का ठिकाना नही। दिन-रात खाने की तैयारियां तो प्राय भय की सीमा तक पहुच गई। दोनो के बीच लगातार कितने परामर्श होते रहे, वह सब मैं नही जानता। कान मे केवल इतनी भनक पडी की गगामाटी मे एक बालको के लिए और एक बालिकाओ के लिए विद्यालय खोला जाएगा। वहा काफी गरीब और नीच जाति के लोग रहते हैं और शायद वे ही उपलक्ष्य हैं। सुना कि चिकित्सा का भी प्रबंध किया जाएगा। इन सब विषयो मे मेरी तनिक भी गति नही है। परोपकार की इच्छा तो है, पर शक्ति नही। यह सोचते ही कि कही कुछ खडा करना या बनाना है, मेरा श्रान्त मन 'आज नही, कल' कहकर टालना चाहने लगता है। अपने नये उद्योग मे आनद बीच-बीच मे मुझे

घसीटने आता, पर राजलक्ष्मी हसकर बाधा डालती हुई कहती, "उन्हें मत लपेटो आनन्द, तुम्हारे सारे उद्योग पगु हो जाएगे।"

सुन लेने के बाद विरोध करना ही पडता, "अभी उसी दिन तो कहा कि मेरा बहुत काम है और अब मुझे बहुत कुछ करना होगा।"

राजलक्ष्मी हाथ जोडकर कहती, "गलती हो गई गुसाई, अब ऐसी बात कभी जबान पर नही लाऊगी।"

"तब क्या किसी दिन कुछ भी नही करूगा?"

"क्यो नही करोगे? यदि बीमार पडकर डर के मारे मुझें अधमरी न कर डालो, तो इतने से ही मैं तुम्हारे निकट चिरकृतज्ञ रहूगी।"

आनद ने टोका, "दीदी, इस तरह तो सचमुच आप इन्हे अकर्मण्य बना देगी।"

राजलक्ष्मी बोली, "मुझे नही बनाना पडेगा भाई, जिस विधाता ने इनकी सृष्टि की है उसी ने इसकी व्यवस्था कर दी है,—कही भी त्रुटि नही रहने दी है।"

आनद हसने लगा। राजलक्ष्मी ने कहा, "ओर फिर वह कलमुहा ज्योतिषी ऐसा डर दिखा गया है कि मकान से इनके बाहर निकलते ही मेरी छाती धक्धक् करने लगती है—जब तक लौट नही आते तब तक किसी भी काम मे मन नही लगा सकती।"

"इस बीच ज्योतिषी कहा मिल गया? क्या कहा उसने?"

इसका उत्तर मैंने दिया, "मेरा हाथ देखकर उसने बताया कि बहुत बडा विपद्योग है—जीने मरने की समस्या।"

"पर दीदी, इन सब बातो पर आप विश्वास करती हैं?

मैंने कहा, "हा करती हैं, जरूर करती हैं। तुम्हारी दीदी सवाल उठाती हैं क्या विपद्-योग नाम की कोई बात ही नही है दुनिया मे? क्या कभी किसी पर आफत नही आती?"

आनद ने हसकर कहा, "आ सकती है, पर हाथ देखकर कोई यह कैसे बता सकता है दीदी?"

"यह तो नही जानती भाई, "राजलक्ष्मी बोली, "पर मुझे यह भरोसा जरूर है कि जो मुझ जैसी भाग्यवती है उसे भगवान इतने बडे दुख मे नही डुबाएगे।"

इसी बीच मकान की लिखा-पढी, बदोबस्त और व्यवस्था का काम चालू हो गया। ढेर की ढेर ईंटे, लकडी, चूना-सुरखी, दरवाजे-खिडकिया आदि आ गई। राजलक्ष्मी ने पुराने घर को नया बनाने की योजना बनाई।

उस दिन सध्या समय आनद ने आग्रह किया, "चलिए दादा, जरा घूम आए।"

मेरे बाहर जाने के प्रस्ताव पर आजकल राजलक्ष्मी अनिच्छा प्रकट करने लगी है। बोली, "घूमकर लौटते-लौटते तो रात हो जाएगी आनद सर्दी नही लगेगी?"

आनद ने बात काटी, "गरमी से तो लोग मर रहे हैं दीदी, सर्दी कहा है?"

अपनी तबीयत भी आज अच्छी न थी, "नि सदेह ठढ लगने का डर नही है, पर आज उठने की भी वैसी इच्छा नही हो रही है आनद!"

"यह तो जडता है।" आनद ने कहा, "शाम के समय कमरे मे बैठे रहने से अनिच्छा और बढ जाएगी—उठिए, चलिए।"

राजलक्ष्मी ने इसका समाधान निकालने के उद्देश्य से कहा, "इससे अच्छा एक और काम करे न आनद! परसो क्षितीश एक नया हारमोनियम खरीद कर मुझे दे गया है, अभी तक उसे देखने का समय नही मिला। मैं भगवान का नाम लेती हू, बैठकर सुनो—शाम कट जाएगी।" यह कह कर उसने रतन को बुलाया और बक्स लाने को कह दिया।

आनद ने जिज्ञासा रखी, "भगवान का नाम माने गीत दीदी?"

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाकर 'हा' जता दी। आनद ने पूछा, "दीदी को यह विद्या भी आती है?"

"बहुत मामूली सी।" फिर मुझे दिखाकर बोली, "बचपन मे इन्होने ही अभ्यास करा दिया था।"

आनद खुश हो गया, कहा, "दादा तो छिपे रुस्तम हैं, बाहर से पहचान लेने का कोई उपाय ही नही।"

उसकी यह धारणा जानकर राजलक्ष्मी हस उठी, किंतु मैं महज मन मे साथ न दे सका, क्योंकि आनद कुछ भी नही समझेगा, मेरे इन्कार को उस्ताद का विनय-वाक्य मानकर और अधिक तग करेगा और अंत मे नाराज भी हो जाएगा शायद। पुत्र-शोक से व्याकुल धृतराष्ट्र के विपाल का दुर्योधन वाला गाना जानता हू, किंतु वह राजलक्ष्मी के बाद इस बैठक मे कुछ जचने वाला नही है।

हारमोनियम आने पर राजलक्ष्मी ने एक-दो ऐसे भजन गाए जो हर कही प्रचलित हैं, इसके बाद वैष्णव पदावली शुरू कर दी। सुनकर ऐसा लगा जैसे उस दिन मुरारीपुर अखाडे मे भी शायद इतना अच्छा नही सुना था। आनद विस्मय से अभिभूत हो गया, मेरी ओर इंगित कर मुग्ध मन मे बोला, "यह सब क्या इन्ही से सीखा है दीदी?"

"सब क्या एक ही उस्ताद से कोई सीख लेता है आनद?"

"यह तो सही है।" इसके बाद मेरी तरफ इशारा किया, "दादा, अब आपको दया करनी होगी। दीदी कुछ थक गई हैं।"

"नही भाई, मेरी तबीयत अच्छी नही है।"

"तबीयत के लिए मैं ही जिम्मेदार हू, क्या अतिथि का अनुरोध नही मानेंगे?"

"मानने का उपाय जो नही है, तबीयत बहुत खराब है।"

राजलक्ष्मी ने गंभीर बनने की कोशिश की, मगर कामयाब न हो सकी, हसी के मारे लोटपोट हो गई। आनद ने अब मामला समझ लिया, बोला, "दीदी, तो सच बताओ कि आपने इतना सब सीखा किससे?"

मैंने कहा, "जो रुपयो के बदले मे विद्या-दान करते हैं उनमे, मुझमे नही भैया। मैं तो इस विद्या के पास तक कभी नही फटका।"

क्षणभर मौन रहकर आनद बोला, "मैं भी कुछ थोडा-सा जानता हू दीदी, पर अधिक सीखने का अवसर नही मिला। यदि इस बार सुयोग मिल गया तो आप का शिष्यत्व स्वीकार कर अपनी यह शिक्षा पूरी कर लूगा। पर आज क्या यही रुक जाएगी, और कुछ नही सुनाएगी?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "अब समय कहा है भाई? तुम लोगो का खाना जो तैयार करना है।"

आनद ने नि श्वास छोडकर कहा, "जानता हूँ कि ससार मे जिनपर भार होता है उनके पास समय बहुत कम होता है। किंतु वय मे छोटा हू, आपका अनुज। मुझे सिखाना ही होगा। अपरिचित स्थानो पर, जब अकेला समय कटना नही चाहेगा तब, आपकी इस दया का स्मरण करूगा।"

राजलक्ष्मी स्नेह से गल गई, बोली, "तुम तो डाक्टर हो, विदेश मे अपने इस स्वास्थ्यहीन दादा को दृष्टि मे रखना भाई, मैं जो कुछ जानती हू वह सब तुम्हे प्यार से सिखाऊगी।"

"पर इसके अतिरिक्त क्या आपको और कोई चिंता नही है दीदी?"

राजलक्ष्मी चुप हो गई। आनद ने मुझे लक्ष्य बनाकर कहा, "दादा के समान भाग्य सहसा ध्यान मे नही आता।"

उत्तर मे मैं बोला, "और ऐसा अकर्मण्य व्यक्ति का ध्यान जल्दी आता है आनद? ऐसो की नकेल पकडे रहने के लिए भगवान सबल जोडीदार भी भेज देता है, नही तो वे बीच सागर मे ही डूब जाय, किसी तरह किनारे तक पहुच ही न पाए। ससार मे सासजन्य ऐसे ही कायम रहना है भैया। मेरी बाते मिलाकर देख लेना, प्रमाण मिल जाएगा।"

राजलक्ष्मी कुछ क्षण अवाक् हो ताकती रही, फिर खडी हो गई। उसे बहुत काम है।

इन कुछ दिनो के अदर ही मकान का काम शुरू हो गया। सामान एक कमरे मे बद कर राजलक्ष्मी यात्रा की तैयारी मे लग गई। मकान का बोझ बूढे तुलसीदास पर रहा।

जाने के दिन राजलक्ष्मी ने मेरे हाथ मे एक पोस्टकार्ड देकर कहा, "मेरे चार पन्ने की चिट्ठी का यह जवाब आया है, पढकर देख लो।" और वह चली गई।

दो-तीन पंक्तियो मे कमललता ने लिखा है

"सुख से ही हू बहन, जिनकी सेवा मे स्वय को निवेदन कर दिया है, मुझे अच्छा रखने का भार भी उन्ही पर है। यही प्रार्थना करती हू कि तुम लोग सकुशल रहो। बडे गुसाई अपनी आनदमयी के लिए श्रद्धा प्रकट करते हैं। — इति श्री श्री राधाकृष्णचरणाश्रिता, कमललता।"

उसने मेरे नाम का उल्लेख तक नही किया है, पर इन कई अक्षरो की आड मे उसकी न जाने कितनी बाते छिपी रह गई हैं। खोजने लगा कि चिट्ठी पर कही एक बूद आसू का दाग भी नही पडा है? पर कोई भी चिन्ह दिखाई नहीं पडा।

हाथ मे चिट्ठी लेकर चुपचाप बैठा रहा। खिडकी के बाहर धूप मे तपता हुआ नीलाभ आकाश है, पडोसी घर वाले दो नारियल वृक्षो के पत्तो की फाक से उसका कुछ भाग दिखाई देता है। वहा औचक ही दो आकृतिया पास ही पास मानो तैर आई एक मेरी राजलक्ष्मी की, कल्याण की प्रतिमा, और दूसरी कमललता की—अपरिस्फुट, अनजान, जैसे सपने मे देखी हुई कोई छवि।

"स्नान का समय हो गया है बाबू, मा ने कहा है।" रतन ने आकर ध्यान तोडा। स्नान का समय भी नही निकलना चाहिए।

फिर एक दिन तडके हम गगामाटी जा पहुचे। तबकी बार आनद अनाहूत अतिथि था, किंतु अब की बार आमत्रित बाधव था। मकान मे भीड अटती ही नही, गाव भर के आत्मीय और अनात्मीय न जाने कितने लोग हमे देखने के लिए उमड पडे हैं। सब के मुंह पर प्रसन्नता की हसी और कुशल-क्षेम के प्रश्न है। राजलक्ष्मी ने कुशारीजी की पत्नी को प्रणाम किया। सुनदा रसोई के काम मे लगी थी, बाहर निकल आई और हम दोनो को प्रणाम कर बोली, "दादा आप का शरीर तो वैसा अच्छा दिखाई नही देता।"

राजलक्ष्मी बोली, "और कब अच्छा दिखता था बहन? मुझसे तो नही हुआ, अब शायद तुम लोग अच्छा कर सको—इसी आशा मे तो यहा ले आई हू।"

पिछले दिनो की मेरी बीमारी की बात शायद बडी बहू को याद आ गई, उन्होंने स्नेहार्द्र कठ से ढाढस बधाते हुए कहा, "डर की कोई बात नही है बेटी, इस देश की हवा-पानी से वे दो-तीन दिन मे ही ठीक हो जाएगे।" मेरी समझ मे यह नही आया कि मुझे हुआ क्या है और किसलिए यह दुश्चिता है।

इसके बाद विविध कार्यों का आयोजन पूरे उद्यम के साथ चालू हो गया। पोडा-माटी को खरीदने की बात चीत से लगायत शिशु-विद्यालय की स्थापना हेतु स्थान की खोज तक किसी भी काम मे किसी को तनिक भी आलस्य नही था।

केवल मैं अकेला ही मन मे कोई उत्साह अनुभव नही करता। या तो यह मेरा स्वभाव है या फिर और ही कुछ जो दृष्टि से अगोचर मेरी समग्र प्राण-शक्ति का शनै शनै मूलोच्छेदन कर रहा है। मेरी उदासीनता से अब कोई विस्मित नही होता, मानो मुझसे और किसी बात की प्रत्याशा करना ही असगत हो। मैं दुर्बल हू, बीमार हू, मैं कभी हू और कभी नही हूं। फिर भी कोई बीमारी नही है, खाता-पीता और रहता हू। अपनी डाक्टरी विद्या से आनद जब कभी हिलाने-डुलाने का प्रयास करता है, राजलक्ष्मी तत्काल सस्नेह उलहने के रूप मे बाधा डालती हुई कह उठती है, उन्हे परेशान करने की जरूरत नही भाई न जाने क्या से क्या हो जाय। तब हमे ही भोगना पडेगा।"

आनद ने कहा, "मैं सचेत किए दे रहा हू दीदी, कि जो व्यवस्था आपने कर रखी है उससे भोगने की सभावना बढेगी ही, घटेगी नही।"

राजलक्ष्मी यह सहज भाव से स्वीकारती हुई बोली, "यह तो मैं जानती हू आनद, कि भगवान ने मेरे जनमने के समय ही यह दु ख लिख दिया है कपाल मे।"

इसके बाद और तर्क नही किया जा सकता।

दिन कट जाता है—कभी किताबे पढते हुए, कभी अपनी विगत कथा लिखने मे और कभी सूने मैदानो मे अकेले घूमते-घूमते। एक बात से निश्चित्त हू कि कर्म की प्रेरणा मुझे नही है। लड-झगडकर उछल-कूद मचाकर ससार मे दस आदमियो के सिर पर चढ बैठने की शक्ति भी नही और सकल्प भी नही। सहज ही जो मिल जाता है, उसे ही यथेष्ट मान लेता हूँ। मकान-घर, रुपया-पैसा, जमीन-जायदाद, मान-सम्मान, ये सब मेरे लिए छायामय हैं। दूसरो की देखा-देखी अपनी जडता को यदि कभी कर्तव्य-बुद्धि की ताडना से सचेत करना चाहता हूं तो देखता हू कि कुछ ही देर मे वह फिर आखे बद किए ऊघ रही है—सैकडो धक्के देने पर भी हिलना-डुलना नही चाहती। देखता हू कि केवल एक विषय मे तद्रांतुर मन कलरव से तरगित हो उठता है और वह है मुरारी पुर के दस दिनो की स्मृति का आलोडन। मानो कानो मे सुनाई पड रहा है, वैष्णवी कमललता का सस्नेह अनुरोध—'नये गुसाई, यह कर दो न भाई।—अरे जाओ, सब नष्ट कर दिया। मेरी गलती हुई जो तुम से काम करने को कहा, अब

उठो। जलमुंही पद्मा कहा गई, जरा पानी चढा देती, तुम्हारा चाय पीने का समय हो गया है गुसाईं।

उन दिनो वह कुछ चाय के पात्र धोकर रखती थी, इस डर से कि कही टूट न जाय। उनका प्रयोजन समाप्त हो गया है, तथापि क्या मालूम कि फिर कभी काम मे आने की आशा उसने अब भी उन्हे यत्नपूर्वक उन्हे रख छोड़ा है या नही, जानता हूं कि वह 'भागू भागू' कर रही है। हेतु नही जानता, तो भी मन में संदेह नही है कि मुरारीपुर के आश्रम मे उसके दिन हर रोज सक्षिप्त होते जा रहे हैं। एक दिन अकस्मात् शायद, यही खबर मिलेगी। यह कल्पना करते ही आंखो मे आसू आ जाते हैं कि वह निराश्रय, नि:सबल पथ पर भीख मागती घूम रही है, भूला-भटका मन सात्वना की आशा मे राजलक्ष्मी की ओर देखता है जो सबकी सकल शुभचिंताओ के अविश्राम कर्म में निहित है—मानो उसके दोनो हाथो की दसो उगलियो से कल्याण अजस्रधारा में वह रहा है। सुप्रसन्न मुह पर शांति और संतोष की स्निग्ध छाया पड रही है। करुणा और ममता से हृदय की यमुना किनारे तक भरी है—निर्विच्छिन्न प्रेम की सर्वव्यापी महिमा के साथ वे मेरे हृदय मे जिस आसन पर प्रतिष्ठित है, नही जानता कि उसकी तुलना किससे की जाय।

विदुषी सुनदा के दुर्निवार प्रभाव ने कुछ समय के लिए उसे जो भ्रमित कर दिया है, उसके दु सह परिताप से उसने अपनी पुरानी सत्ता फिर से पा ली है। एक बात आज भी मेरे कानो मे कहती है कि "तुम भी कम नही हो जी, कम नही हो। भला यह कौन जानता है कि तुम्हारे चले जाने के पथ पर ही मेरा सर्वस्व पलक मारते ही दौड पडेगा। उ.! वह कैसी भयकर बात थी। सोचने पर भी डर लगता है कि मेरे वे दिन कैसे कटे थे। धडकन बद होने से मर नही गई, यही आश्चर्य है।" मैं उत्तर नही दे पाता हू, सिर्फ चुपचाप देखता रहता हूँ।

अपने बारे मे अब उसकी गलती पकडने की गुजाइश नही है। सौ कामो के बीच भी सौ बार चुपचाप आकर देख जाती है। कभी एकाएक आकर पास मे बैठ जाती है और हाथ की किताब हटाती हुई कहती है, "आखे बद करके जरा सो जाओ न, मैं सिर पर हाथ फेरे देती हूं। इतना पढने पर आखो मे दर्द जो होने लगेगा।"

आनंद आकर बाहर से ही कहता है, "एक बात पूछनी है, आ सकता हू?"

राजलक्ष्मी कहती है, "आ सकते हो। तुम्हे आने की कहां मनाही है आनद?"

आनद कमरे मे आकर आश्चर्य से पूछता है, "सुला रही हैं दीदी?"

राजलक्ष्मी हसकर जवाब देती है, "तुम्हारा क्या नुकसान हुआ? नही सोने पर भी तो ये तुम्हारी पाठशाला के बछड़ो को चराने नही जाएगे।"

"नही तो खुद जो मिट्टी हुई जाती हैं, बेफिक्री से कोई कामकाज नही कर पाती।"

"आप दोनो ही क्रमश पागल हो जाएंगे।" कहकर आनद बाहर चला जाता है।

स्कूल बनवाने के काम मे आनद को सांस लेने की भी फुर्सत नही है, और संपत्ति खरीदने के हगामे मे राजलक्ष्मी भी पूरी तरह डूबी हुई है। इसी समय कलकत्ते के मकान से घूमती हुई, बहुत से डाकघरो की मुहरो को पीठ पर लिए हुए, बहुत देर मे, नवीन की साघातिक चिट्ठी आ पहुची।—गौहर मृत्यु-शय्या पर है। सिर्फ मेरी ही राह देखता हुआ अब भी जी रहा है। यह खबर मुझे शूल जैसी चुभी। यह नही जानता कि बहन के मकान से वह कब लौटा। वह इतना ज्यादा पीडित है। यह भी नही सुना—सुनने की विशेष चेष्टा भी नही की और आज एकदम शेष सवाद आ गया। प्राय छह दिन पहले की चिट्ठी है, इसलिए अब वह जिंदा है या नही—यह कौन जानता है। तार द्वारा खबर पाने की व्यवस्था इस देश मे नही है और उस देश मे भी नही। इसलिए इसकी चिता वृथा है। चिट्ठी पढकर राजलक्ष्मी ने सिर पर हाथ रखकर पूछा, "तुम्हें क्या जाना पडेगा?"

"हा।"

"तो चलो, मैं भी साथ चलूगी।"

"यह कही हो सकता है? इस आफत के समय तुम कहा जाओगी?" यह उसने स्वय समझ लिया कि प्रस्ताव असंगत है, मुरारीपुर के अखाडे की बात भी फिर वह जबान पर न ला सकी। बोली, "रतन को कल से बुखार है, साथ मे कौन जाएगा? आनद से कहू?"

"नही, वह मेरे बिस्तर उठानेवाला आदमी नही है।"

"तो फिर साथ मे किसन जाय?"

"भले जाय, पर जरूरत नही है।"

"जाकर रोज चिट्ठी दोगे, बोलो?"

"समय मिला तो दूगा।"

"नही, यह नही सुनूंगी। एक दिन चिट्ठी नही मिलने पर मैं खुद आ जाऊगी, चाहे तुम कितने ही नाराज क्यो न हो।"

मजबूरन राजी होना पडा, और हर रोज सवाद देने की प्रतिज्ञा करके उसी दिन चल पडा। देखा कि दुश्चिता से राजलक्ष्मी का मुंह पीला पड गया है, उसने आखे पोछकर अंतिम बार सावधान करते हुए कहा, "वादा करो कि शरीर की अवहेलना नही करोगे?"

"नही, नहीं करूगा।"

"कहो कि लौटने मे एक दिन की भी देरी नहीं करोगे?"

"नही, सो भी नही करूंगा।"

अंत में बैलगाड़ी रेलवे स्टेशन की ओर चल पडी।

आषाढ़ का महीना था। तीसरे पहर के मकान के सदर दरवाजे पर जा पहुचा। मेरी आवाज सुनकर नवीन बाहर आया और पछाड खाकर पैरो के पास गिर पडा। जो डर था वही हुआ। उस दीर्घकाय बलिष्ठ पुरुष के प्रबल कठ के उस हृदय विदारक क्रदन मे शोक की एक नई मूर्ति देखी। वह जितनी गंभीर थी, उतनी ही विशाल और उतनी ही सत्य। गौहर की मा नही, बहन नही, कन्या नही, पत्नी नही। उस दिन इस सगी रहित मनुष्य को अश्रुओ की माला पहनाकर विदा करने वाला कोई नही था, तो भी ऐसा मालूम होता कि उसे सजाहीन, भूषणहीन, कगाल वेश मे नही जाना पडा, उसकी लोकावर यात्रा के पथ के लिए शेष पाथेय अकेले नवीन ने ही दोनो हाथ भरकर उडेल दिया है। बहुत देर बाद, जब वह उठकर बैठ गया तब, पूछा, "गौहर कब मरा नवीन?"

"परसो। कल सुबह ही हमने उन्हे दफनाया है।"

"कहा दफनाया?"

"नदी के किनारे, आम के बगीचे मे। और यह उन्ही ने कहा था। ममेरी बहन के घर मे बुखार लेकर लौटे और वह बुखार फिर नही गया।"

"इलाज हुआ था?"

"यहा जो कुछ हो सकता था, सब हुआ, पर किसी से कुछ लाभ न हुआ। बाबू खुद ही सब जान गये थे।"

"अखाडे के बडे गुसाईं जी आते थे?"

नवीन ने कहा, "कभी-कभी। नवद्वीप से उनके गुरुदेव आए थे। इसलिए रोज आने का वक्त उन्हे नही मिलता था।"

और एक व्यक्ति के बारे मे पूछते हुए शर्म आने लगी, तो भी सकोच छोडकर पूछा, "वहा से और कोई नही आया नवीन?"

नवीन ने कहा, "हां, कमललता आई थी।"

"कब आई थी?"

नवीन ने कहा, "हर रोज। अतिम तीन दिनो मे तो न उन्होने खाया और न सोई, बाबू का बिछौना छोडकर एक बार भी नही उठी।"

और कोई प्रश्न नही किया, चुप हो रहा। नवीन ने पूछा, "अब कहा जाएगे, अखाडे मे?"

"हा।"

"जरा ठहरिए।" कहकर वह भीतर गया और एक टीन का बक्स बाहर निकाल लाया। उसे मुझे देते हुए कहा, "आपको देने के लिए कह गये हैं।"

"क्या है इसमे नवीन?"

"खोलकर देखिए," कहकर उसने मेरे हाथ मे चाभी दे दी। खोल कर देखा कि उसमे उसकी कविता की कापिया रस्सी से बधी हुई हैं। ऊपर लिखा है, "श्रीकात, रामायण खतम करने का वक्त नही रहा। बडे गुसाईं जी को दे देना, वे इसे मठ मे रख देगे, जिससे नष्ट न होने पाए।" दूसरी छोटी पोटली सूती लाल

कपडे की है। खोलकर देखा कि नाना मूल्य के एक बडल नोट हैं, उन पर लिखा है, "भाई श्रीकांत, शायद मैं नही बचूंगा। पता नही कि तुमसे मुलाकात होगी या नही। अगर नही हुई तो नवीन के हाथ में यह बक्स दे जाता हू। इसे ले लेना ये रुपए तुम्हे दे जा रहा हूं। यदि कमललता के काम मे आए तो दे देना। अगर न ले तो इच्छा सो करना। अल्लाह तुम्हारा भला करे—गौहर।"

दान का गर्व नही, अनुनय-विनय भी नही। मौत को करीब समझकर केवल थोडे से शब्दो मे बाल-सखा की शुभकामना कर अपना शेष निवेदन रख गया है। भय नही; क्षोभ नही, न उच्छ्वासित हाय-हाय से उसने मौत का विरोध ही किया है। वह कवि था, मुसलमान फकीर खानदान का खून उसकी नसो मे था—शात मन से यह शेष रचना अपने बचपन के बधु के लिए लिख गया है। अभी तक मेरी आखो के आसू बाहर नही निकले थे, किंतु अब उन्होंने रोक नही मानी, बडी-बडी बूदो मे वे आखो से निकलकर ढुलक पडे।

आषाढ का लंबा दिन उस समय खत्म हो रहा था। समूचे पश्चिम आकाश मे काले मेघो की एक घटा ऊपर उठ रही थी। उसके ही एक पतले सुराख से अस्तोन्मुख सूर्य की रश्मिया लाल होकर आ पड़ी चार दीवारी से लगे शुष्कप्राय जामुन वृक्ष के सिर पर। इसकी ही शाखा के सहारे गौहर की माधवी और मालती लताओ के कुज बने थे। उस समय केवल कलिया थी। उनमे से ही मुझे कुछ उपहार देने की उसने इच्छा जाहिर की थी। किंतु चींटियो के भय से नही दे सका था। आज उनमे गुच्छे-गुच्छे फूल हैं, जिनमे से कुछ तो नीचे झड गये हैं और कुछ हवा से उडकर आस-पास बिखर गये हैं। उन्ही मे से कुछ उठा लिए—बचपन के बधु के हाथो का अंतिम दान समझकर। नवीन ने कहा, "चलिए, आप को पहुचा आऊ।"

कहा, "नवीन, जरा बाहर का कमरा तो खोलो, देखूगा।"

कमरा खोल दिया नवीन ने। चौकी पर आज भी एक तरफ बिछौना लपेट कर रखा हुआ है, एक छोटी पेंसिल और कुछ फटे कागजो के टुकडे भी हैं। इसी कमरे मे गौहर ने अपनी स्वरचित कविता 'बंदिनी सीता' की दुःख भरी कहानी गाकर सुनाई थी, न जाने कितनी बार आया हू इस कमरे मे, कितने दिनो तक खाया-पीया और सोया हू, और उपद्रव कर गया हू। उन दिनो जिन्होने हसते हुए सब कुछ सहन किया था, आज उनमे से कोई भी नही है जीवित। सब अपना सारा आना-जाना खत्म कर आज बाहर चले गये हैं।

रास्ते मे नवीन के मुह से सुना कि गौहर ऐसा ही नोटो का बडल उसके लडको को भी दे गया है। बाकी जो सपत्ति बची है वह उसके ममेरे भाई-बहनो को मिलेगी, और उसके पिता द्वारा बनवाई गई मसजिद की व्यवस्था तथा देखरेख के लिए रहेगी।

आश्रम में पहुचकर देखा कि गजब की भीड है। गुरुदेव के साथ बहुत-से शिष्य और शिष्याए आई हैं। खासी मजमा जमा है, और हाव-भाव से उनके शीघ्र विदा होने के लक्षण भी नही दिखाई दिए। अनुमान किया कि वैष्णव सेवा आदि कार्य विधिपूर्वक ही चल रहे हैं।

मुझे देखकर द्वारिकादास ने अभ्यर्थना की। मेरे आगमन का हेतु उन्हे ज्ञात था। गौहर के लिए उन्होंने दुःख व्यक्त किया, किंतु उनकी आकृति पर न जाने कैसा विव्रक्त, उद्भ्रात भाव था जो इसके पूर्व कभी नही देखा। अनुमान किया कि स्यात् इतने दिनो वैष्णवो की परिचर्या के कारण वे क्लात और विपर्यस्त हो गये हैं, निश्चित होकर बातचीत करने का समय उनके पास नही है।

खबर पाते ही पद्मा आई। उसके मुहपर भी आज हसी नही है, ऐसी सकुचित सी है, मानो भाग जाए तभी जान बचे।

पूछा, "पद्मा, कमललता दीदी आज बहुत व्यस्त हैं?

"नही, बुला दू दीदी को?" कहकर वह चली गई। आज यह सब इतना अप्रत्याशित और अप्रासंगिक लगा कि मन ही मन शंकित हो उठा। कुछ ही देर बाद आकर कमललता ने नमस्कार किया। कहा, "आओ गुसाई, मेरे कमरे मे चलकर बैठो।

अपने बिस्तर वगैरह स्टेशन पर ही छोडकर केवल बैग साथ लाया था, और गौहर का वह बक्स मेरे नौकर के सिर पर था। कमललता के कमरे मे आकर उसे उसके हाथ मे देते हुए बोला, "जरा सावधानी से रख दो, बक्स मे बहुत रुपए हैं।"

कमललता ने कहा, "मालूम है।" इसके बाद बक्स को खाट के नीचे रख कर पूछा, "शायद तुमने अभी तक चाय नही पी है?"

"नही।"

"कब आए?"

"शाम को।"

"आती हूं, तैयार कर लाऊं।" कहकर वह नौकर को साथ लिए चल पडी, और पद्मा भी हाथ-मुह धोने के लिए पानी देकर चली गई, खडी नही रही।

मन मे फिर सवाल उठा कि बात क्या है?

थोडी देर बाद कमललता चाय ले आई, साथ में कुछ फल-फूल, मिठाई और उस समय का देवता का प्रसाद। बहुत देर का भूखा था, फौरन ही बैठ गया।

कुछ क्षण पश्चात् ही देवता की साध्य आरती के शख और घटे की ध्वनि सुनाई पडी। पूछा, "अरे, तुम नही गई?"

"नही, मना है।"

"मना है तुम्हे? इसके मानी?"

कमललता ने म्लान हसी हसकर कहा, "मन के माने हैं मना गुसाईं। अर्थात् देवता के कमरे में मेरा जाना वर्जित है।"

आहार करने मे रुचि न रही, पूछा, "किसने मना किया?"

"बडे गुसाईंजी के गुरुदेव ने। और उनके साथी जो आए हैं, उन्होने।"

"वे क्या कहते हैं?"

"कहते हैं कि में अपवित्र हू, मेरी सेवा से देवता कलुषित हो जाएगे।"

"तुम अपवित्र हो!" विद्युत वेग से पूछा, "गौहर की वजह मे ही सदेह हुआ हे क्या?"

"हा, इसीलिए।"

कुछ भी नही जान सकता था, तो भी बिना किसी सशय के कह उठा, "यह झूठ है—यह असभव हे।"

"असभव क्यो है गुसाई?"

"यह तो नही बता सकता हू कमललता, पर इससे बढकर और कोई बात मिथ्या नही। ऐसा लगता है कि मनुष्य समाज मे अपने मृत्यु-पथ यात्री बधु की एकात सेवा का ऐसा ही शेष पुरस्कार दिया जाता है।"

उसकी आखो में आसू आ गए। बोली। "अब मुझे दु ख नही है। देवता अतर्यामी हैं। उनके निकट तो डर नही था, डर था सिर्फ तुम से। आज मैं निर्भय होकर जी गई गुसाई।"

"ससार मे इतने मनुष्यो के बीच तुम्हे केवल मुझसे भय था? और किसी से नही?"

"नही, और किसी से नही, सिर्फ तुम से था।"

इसके बाद दोनो ही स्तब्ध रहे। एक बार पूछा, "बडे गुसाई जी क्या कहते हे?"

कमललता ने कहा, "उनके लिए तो और कोई उपाय नहीं हैं। नही तो फिर कोई भी वैष्णव इस मठ मे नहीं आएगा।" कुछ देर बाद कहा, "अब यहा रहना नही सभव है। यह तो जानती थी कि एक दिन यहा से मुझे जाना होगा, पर यही नहीं सोचा था कि इस तरह जाना होगा गुसाई। केवल पद्मा के बारे मे सोचने से दुख होता है। लडकी है, उसका कहीं भी कोई नही है। बडे गुसाई को यह नवद्वीप मे पडी हुई मिली थी। अपनी दीदी के चले जाने पर वह बहुत रोएगी। यदि सभव हो तो जरा उसका ख्याल रखना। यहा न रहना चाहे तो मेरे नाम से राजू को देना—वह जो ठीक समझेगी, अवश्य करेगी।"

फिर कुछ क्षण, चुप्पी मे कटे। पूछा, "इन रुपयो का क्या होगा? न लोगी?"

"नही। मैं भिखारिन हू, रुपयो का क्या करूगी—बताओ?"

"तो भी यदि कभी किसी काम मे आए—"

कमललता ने इस पर हसकर कहा, "मेरे पास भी तो एक दिन बहुत रुपया था, वह किस काम आया? फिर भी अगर कभी जरूरत पडी तो तुम किसलिए हो? तब तुमसे माग लूगी। दूसरे के रुपए क्यो लेने लगी?"

सोच न सका कि इस सवाल का क्या जवाब दू, केवल उसका मुह ताक्ता रहा।

उसने फिर कहा, "नही गुसाई, मुझे रुपए नही चाहिए। जिव के श्री चरणो मे स्वयं को समर्पित कर दिया है, वे मुझे नही छोडेगे। कही भी जाऊ, वे सारे अभाव भर देगे। मेरे लिए चिना-फिक्र न करो।"

पद्मा ने कमरे में आकर कहा, "नए गुसाई के लिए क्या इसी कमरे मे प्रसाद ले आऊ दीदी?"

"हा, यहीं ले आओ। नौकर को दिया?"

"हां, दे दिया।"

तो भी पद्मा आई नही, क्षण भर तक इधर-उधर करके वोली, "तुम नही खाओगी दीदी?"

"खाऊगी री जलमुही, खाऊगी। जब तू है, तब बिना खाए दीदी की रिहाई है?"

पदमा चली गई।

सुबह उठने पर कमललता दिखाई नही पडी, पद्मा के मुह से पता चला कि वह शाम को आती है। दिन भर कहां रहती है, कोई नही जानता। तो भी मैं निश्चिंत न हो सका, रात की बाते याद कर डर होने लगा कि कहीं वह चली न गई हो और अब मुलाकात भी न हो।

वडे गुसाई जी के कमरे मे गया। सामने उन कापियों को रखकर बोला, "गौहर की रामायण है। उसकी इच्छा थी कि यह मठ मे रहे।"

द्वारिकादास ने हाथ फैलाकर रामायण ले ली, बोले|यही होगा नए गुसाई। जहा मठ के और सब ग्रथ रहते हैं वही उन्हीं के साथ इसे भी रख दूगा।"

कोई दो मिनट तक चुप रहकर बोला, "इसके सबध मे कमललतापर लगाये-गये अपवाद पर तुम विश्वास करते हो गुसाई?"

द्वारिकादास ने मुह ऊपर उठाकर कहा, "मै? जरा भी नही।"

"तब भी उसे चला जाना पड रहा है?"

"मुझे भी जाना होगा गुसाई। निर्दोषी को दूर हटाकर यदि खुद बना रहू, तो फिर मिथ्या ही इस पथ पर आया और मिथ्या ही उनका नाम इतने दिन तक लिया।"

"तब फिर उसे ही जाना क्यो पडेगा? मठ के कर्ता-धर्ता तो तुम्ही तो, तुम तो उसे रख सकते हो?"

द्वारिकादास 'गुरु। गुरु। गुरु।' कहकर मुह नीचा किए बैठे रहे। समझ लिया कि इसके अलावा गुरु का और आदेश नही है।

"आज मैं जा रहा हू, गुसाई।" कहकर कमरे से बाहर निकलते समय उन्होने मुह ऊपर उठा कर मेरी ओर देखा। देखा कि उनकी आखो मे आसू आ गए। उन्होने मुझे हाथ उठा कर नमस्कार किया और मैं प्रति-नमस्कार करके चला आया।

अपरान्ह वेला क्रमश सध्या मे परिणत हो गई, सध्या उतीर्ण होकर रात आई, किंतु कमललता नजर नही आई। नवीन का आदमी मुझे स्टेशन पर पहुचाने के लिए आ पहुचा। सिर पर बैग रखे किसन जल्दी मचाकर कह रहा है, अब वक्त नही है—पर कमललता नही लौटी। पद्मा का विश्वास था कि थोडी देर बाद वह आ जाएगी, पर मेरा सदेह क्रमश विश्वास बन गया कि वह नही आएगी और शेष विदाई की कठोर परीक्षा से विमुक्त होकर वह पूर्वान्ह मे ही भाग गई है। दूसरा वस्त्र भी साथ नही लिया है। कल उसने भिक्षुणी वैरागिणी बनाकर जो आत्म-परिचय दिया था, वह परिचय ही आज अक्षुण्ण रखा।

जाने के समय पद्मा रो पडी। उसे अपना पता देते हुए कहा, "दीदी ने तुमसे मुझे चिट्ठी लिखते-रहने के लिए कहा है,—तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझे लिखकर भेजना पद्मा।"

"पर मैं तो ठीक से लिखना नही चाहती, गुसाई।"

"तुम जो भी लिखोगी उसे मैं पढ लूगा।"

"दीदी से मिलकर नही जाओगे?"

"फिर मुलाकात होगी पद्मा, अब तो मै जाता हू।" कहकर बाहर निकल पडा।

तेरह

पर गम्ने आखे जिसको अंधकार में भी ढूंढती आई, उससे स्टेशन पर भेंट हो गई। लोगों की भीड से दूर खडी थी वह, मुझे देखते ही पास आ गई। बोली, "एक टिकिट खरीद देना होगा गुसाईं—"

नव क्या वाकई सबको छोडकर चल पडी?"

इसके अलावा और तो कोई उपाय है नही।"

कष्ट नही होता कमललता?"

यह बात क्यो पूछते हो गुसाई? सब तो जानते हो तुम।"

जाओगी कहा?"

वृदावन जाऊगी। पर इतनी दूर का टिकिट नही चाहिए। तुम नजदीक के ही किसी स्थान का खरीद दो।"

मतलब यह कि मेरा ऋण जितना ही कम हो उतना ही अच्छा। इसके आगे दूसरो से भीख मागना शुरू कर दोगी—जबतक रास्ता समाप्त न हो जाय। यही न?"

भीख मागना क्या पहली बार शुरू होगा गुसाई? क्या और कभी भीख नही मागी?"

मैं मौन रहा। उसने मेरी ओर आखे फिराकर कहा, "तो वृन्दावन का ही टिकिट ले दो।"

तो चलो एक साथ ही चला चले?"

तुम्हारा भी यही रास्ता है क्या?"

कहा, "नही, यही तो नही है—तथापि जितनी दूर तक है उतनी दूर तक ही सही।"

गाडी आने पर दोनो उसके अदर जा बैठे। पास वाली बेच पर मैंने अपने हाथों से ही उसका बिछौना बिछा दिया।

कमललता तिलमिला गई, बोली, "यह क्या कर रहे हो गुसाईं?"

"कर रहा हू वह जो कभी किसी के लिए नही किया—सदा याद रखने के लिए।"

"सचमुच ही याद रखना चाहते हो?"

"सचमुच यही याद रखना चाहता हू कमललता। यह बात तुम्हारे अलावा और कोई नही जानेगा।"

"पर मुझे तो दोष लगेगा गुसाईं।"

"नही, कोई दोष-वोष नही लगेगा। तुम आराम से बैठो।"

कमललता बैठी तो, लेकिन बडे सकोच के साथ। कितने गावो, कितने नगरो, और कितने प्रातरों को पार करती हुई रेलगाडी भागी जा रही थी। पास मे बैठी-बैठी वह धीरे-धीरे अपने जीवन की कई कहानियाँ सुनाने लगी—जगह-जगह घूमने की कहानिया मथुरा, वृदावन, गोवर्धन, राधाकुड-निवास के प्रसग, अनेक तीर्थाटनो के वृत्तात और अतत द्वारिकादास के मुरारीपुर आश्रम मे आने का प्रकरण। मुझे उस व्यक्ति की वे बाते याद आ गईं जो उसने विदा के समय कही थी। कहा, "जानती हो कमललता, बडे गुसाईं तुम पर लगाए गए कलक पर विश्वास नही करते?"

"नही करते?"

"एकदम नही करते। मेरे विदा होने के समय उनके नेत्रो से आसू गिरने लगे। कहने लगे, 'निर्दोषी को दूरकर यदि मैं बना रहा नए गुसाई, तो उनका नाम लेना वृथा है और वृथा है मेरा इस पथ पर आना।' मठ मे अब वे भी नही रहेगे कमललता, और तब ऐसा निष्पाप मधुर आश्रम टूटकर एकदम नष्ट हो जाएगा।"

"नही, नष्ट नही होगा, भगवान एक न एक रास्ता अवश्य दिखा देगे।"

"यदि कभी तुम्हे बुलाया जाए, तो क्या फिर वहा लौटकर जाओगी?"

"अगर वे अफसोस जाहिर कर तुमको वापस लाना चाहे?"

"तो भी नही।"

"किंतु अब तुम से मुलाकात कहा होगी?"

उसने इस सवाल का जवाब नही दिया, चुप रही। पर्याप्त समय निकल गया खामोशी मे। आवाज दी, 'कमललता?' जवाब नही मिला, देखा कि गाडी के एक कोने मे सिर टिकाकर आखे मूद ली हैं उसने।

यह सोचकर कि समूचे दिन की थकान के कारण सो गई है, जगाने का मन नही हुआ। इसके अनंतर फिर मैं स्वय कब सो गया, पता नही। अचानक कानो मे आवाज आई।, "नए गुसाई?" पाया कि वह मेरा शरीर झकझोर कर पुकार रही है। बोली, "उठो, तुम्हारी साईंथिया की गाड़ी खडी है।"

झट से उठ बैठा। पास वाले डिब्बे मे ही किसन सिह बैठा था, पुकारने के साथ ही आकर उसने बैग उतार दिया। बिछौना बाधते समय देखा कि जिन दो चादरों से उसका बिछौना बनाया था, उनको उसने पहले ही तह कर मेरी बेंच पर एक तरफ रख दिया है। कहा, "यह तनिक-सा भी तुमने लौटा ही दिया, लिया नही?"

"न जाने कै बार चढना-उतरना पडे, यह बोझा कौन उठाएगा?"

दूसरा वस्त्र भी साथ नही लाई, वह भी बोझ हो जाता क्या? एक-दो कपडे निकालकर दूं?"

"तुम भी खूब हो! तुम्हारे कपडे भिखारिन की देह पर कैसे फबेगे?"

"खैर, कपडे नही फबेगे, किंतु भिखारी को भी खाना तो पडता ही है? पहुंचने मे अभी दो-तीन दिन और लगेगे, ट्रेन मे क्या खाओगी? जो खाने की चीजे मेरे पास हैं उन्हे भी क्या फेक जाऊँ—तुम छुओगी नही?"

"अरे वाह!" कमललता ने हंसकर कहा, "क्रुद्ध हो गए? अजी, उन्हें छुऊगी। दे दो उन्हें, तुम्हारे चले जाने के बाद मैं भर पेट खाऊंगी।"

समय समाप्त हो रहा था। मेरे उतरने के वक्त बोली, "तनिक रुको गुसाईं, कोई है नही—आज छिपकर तुम्हे एक बार प्रणाम कर लू।" यह कहकर उसने मेरे पैरो की धूल ले ली।

गाडी से उतर कर प्लेटफार्म पर खडा हो गया। तब तक रात समाप्त नही हुई थी, नीचे और ऊपर अंधकार के स्तरो मे विभाजन प्रारभ हो गया था। आकाश के एक छोर पर कृष्ण त्रयोदशी का क्षीण-शीर्ण चद्रमा और दूसरे पर उषा का आगमन हो रहा था। उस दिन का दृश्य याद आ गया जिस दिन ऐसी ही बेला मे देवता के सेवार्थ फूल तोडने जाने के लिए उसका साथी बन गया था। और आज?

सीटी बजाकर और हरी बत्ती हिलाकर गार्ड साहब ने यात्रा शुरू करने का सकेत दिया। कमललता ने खिडकी से हाथ बढ़ाकर पहली बार मेरा हाथ पकड लिया। उसके कंपित स्पर्श मे जो विनती का सुर था उसे मैं कैसे समझाऊ? बोली, "तुम से कभी कुछ मांगा नही है, आज एक बात रख दोगे?"

"हा, रखूंगा।" कहकर उसकी ओर ताकने लगा।

बात कहने में उसे एक क्षण का विलब हुआ, बोली, "मुझे मालूम है कि तुम्हारे कितने आदर की पात्र हूं। आज विश्वासपूर्वक 'उनके' पाद-पद्मो मे मुझे सौंप कर तुम निश्चित हो जाओ। मेरे लिए सोच-सोचकर तुम अब अपना मन दु खी मत करना गुसाईं। तुम्हारे निकट मेरी यही प्रार्थना है।

ट्रेन चल पड़ी। उसका वही हाथ अपने हाथ मे लिए कुछ दूर तक आगे बढते-बढते कहा, "कमललता, तुम्हे मैंने उन्ही को सौंपा है, तुम्हारा भार वे ही सभाले। तुम्हारा पथ, तुम्हारी साधना निरापद हो—'अपनी' कहकर अब मैं तुम्हारा अनादर नही करूगा।"

हाथ छोड़ दिया। गाड़ी दूर से दूरतर होने लगी। खिडकी से झाककर देखा, उसके झुके हुए मुख पर स्टेशन की प्रकाशमाला कई बार आकर पडी और फिर अधेरे मे मिल गई। केवल यही मालूम हो पाया कि हाथ उठाकर वह मानो मुझे अंतिम बार नमस्कार कर रही हो।

शरत् की कहानियां

- परेश
- प्रकाश और छाया
- हरिचरण
- मुकदमे का परिणाम
- देवघर की स्मृतियाँ
- अभागिनी का स्वर्ग

शरत्- समग्र

परेश

एक

मजूमदारों का वंश बडा वंश है, गाँव मे उनकी बडी-भारी इज्जत है। बडे भाई गुरुचरण इस घर के कर्ता-धर्ता हैं। केवल घर के ही क्यों, उन्हें अगर सारे गाँव का कर्ता-धर्ता कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। बडे आदमी तो और भी थे पर इतनी श्रद्धा-भक्ति का पात्र श्रीकुंजपुर में और कोई न था। अपने जीवन मे बडी नौकरी उन्होने नही की, गाँव छोडकर अन्यत्र जाने को राजी हो जाते तो उनके लिए वह दुष्प्राप्य नही थी। लेकिन यौवन मे जो एक बार निकटवर्ती जिला-स्कूल की मास्टरी के काम मे घुसे तो किसी भी लोभ से उस शिक्षालय की ममता छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए राजी नही हुए। यहाँ उनका वेतन तीस से बढते-बढते पचास रुपया हो गया था और अब उसकी आधी पचीस रुपया पेशन पाते हैं। तीन साल हुए, उन्होंने अवसर ग्रहण कर लिया है। संसार मे आजतक रुपये की कमी उनके लिए सबसे बडी चीज नही हुई। अगर ऐसा न होता तो झगडा मिटाने, मामलो का फैसला करने, दलबन्दी की गुत्थियाँ सुलझाने मे उनका आदेश ही श्रीकुंजपुर मे सर्वमान्य नहीं हो सकता। उनकी असीम धर्मनिष्ठा, चरित्र की दृढता और अविचलित साधुता के सामने सभी कोई इज्जत के साथ सिर झुकाते हैं। उमर साठ के लगभग होगी। अगर कोई आदमी चरित्र, साधुता या धार्मिकता मे ज्यादती दिखाता तो आसपास के दस-बीस गाँव के लोग उसका यह कहकर मजाक उडाते कि "ओफ् हो, तुम तो एकदम गुरुचरण मालूम होते हो!" गुरुचरण की स्त्री नही थी, केवल एक लडका था विमल। ससार मे शायद अद्भुत कहलाने लायक सचमुच कुछ है ही नही, नही तो इतने बडे और सर्वगुण सम्पन्न पिता के ऐसा सर्वदोष-सम्पन्न पुत्र कैसे हुआ,—कुछ समझ में नही आता।

पुत्र के साथ पिता का सासारिक बधन नही के बराबर था, उनका सारा का सारा बधन जा पडा था भतीजे परेश पर। हरिचरण का बडा लडका परेश ही मानो उनका अपना लडका हो। परेश एम० ए० पास करके कानून पढ़ रहा है,—उसे वर्ण-परिचय की पहली पुस्तक से लेकर आजतक सब-कुछ वे ही पढाते आ रहे हैं। विमल ने कुछ नही सीखा, उनका यह दुःख परेश से मिट गया।

दो

छोटा भाई हरिचरण इतने दिनो से परदेश मे मामूली नौकरी ही कर रहा था। सहसा लडाई के बाद न-जाने कैसे वह बडा आदमी बन गया और नौकरी छोडकर घर चला आया। लोगो को ऊँचे व्याज पर रुपये उधार देने लगा, स्त्री के नाम से एक बगीचा खरीद लिया, और भी दो-एक काम ऐसा किया जिससे उसके रुपये की गध को पाँच-सात गाँव के लोगों की नाकतक पहुँचते देर न लगी।

एक दिन हरिचरण ने आकर विनय के साथ कहा, "भइया, बहुत दिनो से मैं आप से एक बात कहने की सोच रहा हूँ—"

गुरुचरण ने कहा, "अच्छी बात है, कहो।"

हरिचरण बगलें झाँकता हुआ बोला, "आप अकेले अब और कितना कर सकेंगे, उमर भी काफी हो रही है—"

गुरुचरण ने कहा, "सो तो है ही। साठवाँ साल चल रहा है।"

हरिचरण ने कहा, "इसी से कह रहा था, मैं तो अब घर ही रहूँगा; जमीन-जायदाद सब गैर-सिलसिले से पडी है, जरा निशान लगा कर मैं ही अगर—"

गुरुचरण ने क्षणभर अपने छोटे भाई के चेहरे की तरफ देखकर कहा, "जमीन-जायदाद तो अपनी मामूली ही है और गैर-सिलसिले से भी नही है,—लेकिन तुम क्या अलग होने की बात कह रहे हो?"

हरिचरण ने मारे शरम के दातों-तले जीभ दबाकर कहा, "जी नही, जी नहीं—जैसा है जैसा चल रहा है, सब वैसा ही रहेगा, सिर्फ जो कुछ अपने पास है उसमें जरा निशान लगा लेना है, और रसोई-बसोई

भी बडे झझट की चीज है,—सब कुछ एकत्रित ही रहेगा, पर दाल और भात अलग-अलग कर लिया जाय आप समझे नही—"

गुरुचरण ने कहा, "समझा क्यो नही, समझता तो हूँ ही। अच्छी बात है, कल से ऐसा ही होगा।"

हरिचरण ने पूछा, "निशान आप कैसे लगायेगे, कुछ तय किया है?"

गुरुचरण ने कहा, "तय करने की तो अबतक कोई जरूरत नही पडी थी, पर यदि वह आज आ पडी है तो तीनो भाइयो के तीन हिस्से बराबर-बराबर बाँट देने से काम चल जायगा।"

हरिचरण ने आश्चर्य के साथ कहा, "तीन हिस्से कैसे? मझली वहू तो विधवा हैं, लडका-वाला भी कोई नही, फिर उनका हिस्सा कैसा? दो हिस्से होगे।"

गुरुचरण ने सिर हिलाकर कहा,—"नही, तीन हिस्से होगे। मझली वहू मेरे श्यामाचरण की विधवा है, जबतक जीवित रहेगी, हिस्सा तो पायगी ही।"

हरिचरण रुष्ट हो गया, बोला, "कानून से नही पा सकती, सिर्फ खाने-पहनने को ले सकती है।"

गुरुचरण ने कहा, "सो तो ले ही सकती है, क्योंकि वहू ठहरी।"

हरिचरण ने कहा, "मान लीजिए, कल को अगर वेच देना या गिरवी रख देना चाहे तो?"

गुरुचरण ने कहा, "कानून से अगर ऐसा हक हासिल हो तो करेगी।"

हरिचरण का चेहरा स्याह पड गया। बोला, "हूँ, करेगी क्यो नही!"

दूसरे दिन हरिचरण रस्सी और फीता हाथ मे लिये घर-घर मे नाप-जोख करने लगा। गुरुचरण ने न तो कुछ पूछा, और न बाधा ही डाली। दो-तीन दिन बाद ईटे, काठ और बालू-चूना-सुर्खी भी आ पहुँची। घर की पुरानी महरी ने आकर खबर दी, "कल से राज लग जायँगे, छोटे बाबू की भीत खडी होगी।"

गुरुचरण ने हँसते हुए कहा, "सो तो देख ही रहा हूँ, कहने की क्या जरूरत है।"

पाँच-छह दिन बाद, एक शाम को दरवाजे के बाहर पैरो की आहट सुनकर गुरुचरण ने मुँह उठाकर पूछा, "पचू की माँ, क्या है?"

पचू की माँ बहुत दिनो की पुरानी महरी है। उसने इशारे से दिखाते हुए कहा "मझली वहू खडी हैं बडे बाबू।"

बडी वहू के मरने के बाद से विधवा भ्रातृवधू ही इस गृहस्थी की मालकिन हैं, वे ओट मे खडी होकर जेठ के साथ बोलती हैं। उन्होने मृदुकण्ठ से कहा, "ससुर के घर मे क्या मेरा कुछ भी दावा नही, जो छोटी बहू मुझे रात-दिन, गालियाँ दिया करती हैं?"

गुरुचरण ने कहा, "है क्यो नही वहू! जेसा उनका है, ठीक वैसा ही तुम्हारा भी हक है।

पचू की माँ ने कहा, "लेकिन इस तरह करने मे तो घर मे टिकना मुश्किल है।"

गुरुचरण सब सुन रहे थे, क्षण-भर चुप रहकर बोले, परेश को आने के लिए चिट्ठी लिख दी है, पचू की माँ, उसके आते ही सब ठीक हो जायगा—तब तक तुम लोग जरा सहती रहो।"

मझली वहू ने दुविधा करते हुए कहा "लेकिन परेश क्या—"

गुरुचरण ने टोकते हुए कहा, "लेकिन कुछ नही, मझली वहू, मेरे परेश के विषय मे 'लेकिन' नही चल सकता। हरी उसका बाप जरूर है, पर वह लडका मेरा ही है, सारी दुनिया एक तरफ हो जाय, तो भी वह मेरा ही रहेगा। उसके 'ताऊजी' कभी अन्याय नही करते, यह बात अगर वह न समझे तो समझो कि व्यर्थ ही मैंने इतने दिनो पराये लडके को छाती से लगाकर आदमी बनाया!"

दासी ने कहा "इसमे क्या कहना है! उस साल माता निकली थी तब तुम्हारे सिवा उसे यमराज के मुँह से और कौन छीन सकता था बडे बाबू? तब कहाँ छोटे बाबू थे और कहाँ उसकी सौतेली माँ! मारे डर के कोई उसके पासतक न फटकता था। अकेले ताऊजी ही थे, क्या रात और क्या दिन।"

मझली वहू ने कहा "परेश की माँ जीवित रहती, तो शायद उससे भी इतना करते न बनता।"

गुरुचरण सकोच मे पड गये "रहने दो बेटी, ये सब बाते।"

उसके चले जानेपर वृद्ध गुरुचरण की आँखो के सामने मानो विमल और परेश दोनो पास-पास खडे हो गये। जगले के बाहर अन्धकारमय आकाश की तरफ देखकर उनके मुँह से एक दीर्घ नि श्वास

निकला पड़ा। उसके बाद मोटी बाँस की लाठी उठाकर वे सरकारों के बैठकखाने में शतरंज खेलने चले गये।

दूसरे दिन दोपहर को गुरुचरण रोटी खाने बैठे थे। मकान के उत्तर-तरफ के बरामदे का कुछ हिस्सा घेरकर हरिचरण की रसोई का काम चल रहा था। वहाँ से तीक्ष्ण नारी-कण्ठ से ऐसी-ऐसी कड़ुई बातें निकलती आ रही थीं, जिनका हदो-हिसाब नहीं। उनके भोजन में काफी विघ्न हो रहा था, मगर उनमें जब सहसा पुरुष का मोटा गला आ मिला, तब क्षण-भर के लिए उनके कान खड़े हो गये और सुनकर सहसा वे उठके खड़े हो गये।

मझली बहू ओट में से हाय-हाय कर उठी और पचू की माँने मारे क्रोध और क्षोभ के चीत्कार करके इस दुर्घटना को प्रकट कर दिया।

आँगन में खड़े होकर गुरुचरण ने भाई को पुकारकर कहा, "हरिचरण औरतों की बातपर मैं ध्यान नहीं देना चाहता पर तुम पुरुष होकर अगर विधवा बड़ी भौजाई का इस तरह अपमान करोगे तो उसका फिर इस घर में रहना नहीं हो सकता।"

इस बात का किसी ने जवाब नहीं दिया; पर बाहर जाने के रास्ते में उन्हें छोटी बहू का परिचित तीक्ष्ण कंठ सुनाई दिया, वह मजाक उड़ाती हुई कह रही थी "इस तरह अपमान न किया करो, कहे देती हूँ। नहीं तो मझली बहू घर में ही न रहेगी! तब क्या होगा?"

हरिचरण जवाब दे रहा था, "दुनिया रसातल में डूब जायगी और क्या होगा! कौन रहने के लिए सर की कसम दिला रहा है? चली जाय तो जान बचे।" गुरुचरण ठिठककर खड़े हो गये।

तीन

हेडमास्टर साहब की कन्या के विवाह में शामिल होने के लिए गुरुचरण कृष्णनगर को रवाना हो रहे थे, इतने में अचानक सुना कि परेश घर आ गया है, और आते ही बुखार में पड़ गया है। वे घबराये हुए परेश के कमरे में घुस रहे थे कि सामने छोटे भाई को देखकर पूछ उठे "परेश को बुखार आ गया है क्या?"

हरिचरण 'हूँ' कहकर चला गया। छोटी बहू की मायके की नौकरानी ने सामने रास्ता रोककर कहा, "आप भीतर मत जाइए।"

"न जाऊँ? क्यों?"

"भीतर दीदीजी बैठी हैं।"

"उन्हें जरा हट जाने को कह दे न।"

नौकरानी ने कहा, "हट कहाँ जायँगी, लड़के के माथेपर हाथ फेर रही हैं।" कहकर वह अपने काम में चली गयी।

गुरुचरण स्वप्नाच्छन्न की भाँति क्षणभर खड़े रहे, फिर परेश को पुकारकर बोले "परेश, कैसी तबीयत है बेटा?"

भीतर से इस व्याकुल प्रश्न का कोई जवाब न आया, मगर नौकरानी ने कहीं से जवाब दिया, "भइयाजी को बुखार है, सुन तो लिया!"

गुरुचरण स्तब्ध होकर दो-तीन मिनटतक वहीं खड़े रहे, फिर धीरे से बाहर चले आये और किसी से कोई बात न करके सीधे रेलवे स्टेशन की तरफ रवाना हो गये।

वहाँ ब्याह की धूम-धाम में किसी ने कुछ ध्यान नहीं दिया, परन्तु काम-काज निबट जानेपर उनके बहुत दिनों के मित्र हेडमास्टर साहब ने एकान्त में ले जाकर उनसे पूछा "क्या बात है गुरुचरण? सुना है कि हरिचरण तुम्हारे बहुत पीछे पड़ा है?"

गुरुचरण ने अन्यमनस्क की भाँति कहा, "हरिचरण? नहीं तो।"

"नहीं तो क्या जी? हरिचरण की शैतानी का हाल तो सभी सुन चुके हैं।"

गुरुचरण को सहसा सब बातें याद आ गयीं, बोले, "हाँ-हाँ जमीन-जायदाद के बारे में हरिचरण कुछ गड़बड़ी कर रहा है।"

उनकी बात के ढग से हेडमास्टर क्षुण्णहुए। दोनों बचपन के निष्कपट मित्र है फिर भी गुरुचरण भीतर की बात को उदासीनता के आवरण मे छिपाना चाहते है—इस बात का ख्याल कर के फिर उन्होने कोई बात नही पूछी।

गुरुचरण ने कृष्णनगर मे घर वापस आकर देखा कि उनकी इन चन्द दिनो की अनुपस्थिति मे मौका पाकर हरिचरण ने आँगन मे जगह-जगह गढे खोद-खादकर ऐसा हाल कर रखा है कि कहीं पैर रखने का जगह नही। वे समझ गये कि वह अपनी मरजी और सहूलियत के माफिक घर का बँटवारा करके बीच मे दीवार खडी करेगा। उसके पास रुपया है, लिहाजा, किसी और के मतामत की उसे जरूरत नहीं।

वे अपने कमरे मे जाकर पकडे बदल रहे थे, इतने मे मझली बहू का साथ लिये पचू की माँ आ खडी हुई। गुरुचरण समाचार पूछना चाहते थे कि वह अकस्मात् अस्फुट आर्तकण्ठ से रोने लगी और रोते-रोते ही उसने बताया कि परसो सबेरे मझली बहूजी को छोटे बाबू ने गरदन पकडकर धक्का देते हुए घर से बाहर निकाल दिया था और मै मौजूद न होती तो शायद मार-मार कर अधमरी कर डालते।

घटना पूरी तरह से समझने मे गुरुचरण को ज्यादा देर न लगी। फिर भी वे मिट्टी के पुतले की तरह निर्वाक् और निस्पन्द रहकर सहसा पूछ उठे, "सचमुच ही क्या हरिचरण ने तुम्हारी देह पर हाथ लगाया था बहूरानी? लगा सका वह?"

थोडी देर बाद पूछा, "जान पडता है तब परेश शायद खाटपर पडा होगा?"

पचू की माँ ने कहा, "उन्हे तो कुछ हुआ ही नही बडे बाबू, अभी आज ही तो सबेरे की गाडी से कलकत्ता चले गये हैं।".

"कुछ हुआ नही? तो वह अपने बाप की करतूत जानकर गया है?"

पचू की माँ ने कहा, "हाँ, सभी कुछ।"

गुरुचरण के पैरो के नीचे से जमीन खिसक गयी। बोले, "बहूरानी इतने बडे अपराध की सजा अगर उसे न मिले तो इस घर मे मेरा रहना उठ गया समझ लो। चलो अभी समय है मै गाडी लिये आता हूँ, तुम्हे अदालत चलकर नालिश करनी होगी।"

अदालत जाकर नालिश करने के नाम से मझली बहू चौक पडी। गुरुचरण ने कहा "गृहस्थी की बहू-बेटियो के लिए यह काम सम्मान-जनक नही, यह मैं जानता हूँ, पर इतना बडा जबरदस्त अपमान अगर चुपचाप सह लोगी बेटी, तो भगवान् तुमसे नाराज हो जायेंगे। इससे ज्यादा बात और मै नही जानता।"

मझली बहू जमीन से उठकर खडी हो गयी, बोली "आप पिता के समान है। मझ जैसी आज्ञा देगे मै बिना किसी सकोच के उसका पालन करूँगी।"

हरिचरण के खिलाफ मुकदमा दायर हुआ। गुरुचरण ने अपनी पुराने जमाने की जर्जीर बेचकर बडे वकील की मोटी फीस दाखिल कर दी।

निर्दिष्ट दिन को मामले की सुनवाई हुई। प्रतिवादी हरिचरण हाजिर हुआ, मगर वादिनी नही दिखाई दी। वकील ने न-जाने क्या कहा-सुना, हाकिम ने मुकदमा खारिज कर दिया। भीड मे गुरुचरण की अचानक निगाह पड गयी परेश पर। तब वह मुँह फेरकर मन्द-मन्द हँस रहा था।

गुरुचरण ने घर आकर सुना कि मायके मे किसी की जबरदस्त बीमारी की खबर पाकर मझली बहू बगैर नहाये-धोए, यो ही गाडी बुलवाकर वहाँ चली गयी है।

पचू की माँ हाथ-पैर धोने को पानी देने आयी और सहसा रोकर कहने लगी "रात भी झूठी दिन भी झूठा,—तुम और कही चले जाओ बडे बाबू, इस पापी ससार मे तुम्हारे रहने की जगह नही है।"

ढोल आये, नगाडे आये, सजीरा आये,—मुकदमा जीत जाने की खुशी मे हरिचरण के घर शुभचण्डी की पूजा के ऐसे बाजे बजे कि सारा गाँव उथल-पुथल हो उठा।

चार

दो भागो मे विभक्त पैतृक मकान के एक हिस्से मे रहा हरिचरण का परिवार और दूसरे मे रहे गुरुचरण और उनकी बहुत दिनो की पुरानी दासी पचू की माँ। दूसरे दिन सबेरे पचू की माँ ने आकर कहा

"रसोई का सब सामान जुटा दिया है वडे बबू।"

"रसोई का? ओ—हाँ—ठीक है,—चलो मैं आया।" कहकर गुरुचरण उठना ही चाहते थे कि दासी ने कहा—"कोई जल्दी नही है बड़े वाबू, जरा दिन चढ़ने दीजिए; बल्कि आप गगा-स्नान कर आइए।"

"अच्छी बात है, जाता हूँ।" कहकर गुरुचरण पलक मारते ही गंगास्नान के लिए जाने को तैयार हो उठ खड़े हुए। उनके काम या वात मे कही कुछ भी असंगति नही थी, फिर भी पंचू की माँ को न जाने कैसा वहुत बुरा-सा मालूम दिया। उसे बार-बार यही खयाल आने लगा—मानो ये पहले के वे बडे बाबू नही रहे।

पचू की माँ भीतर जाकर चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी, "कभी भला न होगा! हरगिज भला न होगा! इसकी सजा भगवान् देंगे ही देंगे!"

किसका भला न होगा और किसे भगवान सजा देगे ही देगे, ठीक समझ मे न आया, लेकिन उन दिन छोटे वाबू की तरफ से इस बारे मे झगड़ा करने को कोई तैयार नही हुआ।

इसी तरह दिन कटने लगे।

गुरुचरण की एकमात्र सन्तान विमलचन्द्र सुसन्तान नही, वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे। कोई मास पहले कुछ घण्टो के लिए एक बार वह घर आया था, फिर उसके दर्शन ही नही हुए। उस बार वह एक बैग मे छिपाकर न जाने क्या-क्या रख गया था। उसके चले जानेपर गुरुचरण ने बुलाकर कहा था, "देख तो बेटा, क्या है इसमें?" परेश ने अच्छी तरह देख-भालकर कहा था, "कुछ कागजात हैं, शायद दस्तावेज हो। ताऊजी, इन्हे जला दूँ?"

गुरुचरण ने कहा था, "अगर जरूरी हुए तो?"

परेश ने कहा था, "जरूरी तो हैं ही, पर विमल-भइया के लिए शायद गैरजरूरी हैं। आफत को जरूरत क्या है घर मे रखने की?"

गुरुचरण ने आपत्ति की थी, "बगैर जाने नष्ट नही करना चाहिए परेश, किसी का सत्यानाश भी हो जा सकता है। इन्हें तू कहीं छिपाकर रख दे बेटा, पीछे देखा जायगा।"

इस घटना की उन्हें याद नही थी। आज सवेरे गगा-स्नान से लौटकर रसोई बनाने जा रहे थे, इतने में अकस्मात् बैग लिये हुए परेश, हरिचरण, गाँव के और भी कई सज्जन और पुलिस आ खडी हुई।

घटना सक्षेप में यह है कि विमल डकैती का असामी है, फिलहाल फरार है। अखबार मे खबर पढ़कर परेश ने पुलिस को सब बातें जता दी हैं। बैग अब तक उसी के पास था। विमल खराब लड़का है, शराब पीता है, आनुषंगिक और भी अनेक दोष हैं। कलकत्ता रहकर कोई मामूली-सी नौकरी करके वह ये सब काम किया करता है। मगर वह डकैती कर सकता है, ऐसा सन्देह पिता के मन में कभी स्वप्न में भी न हुआ। कुछ क्षण वे एकटक परेश के चेहरे की तरफ देखते रहे, उसके वाद उनकी निष्प्रभ निर्निमेष दोनो आँखों से झर-झर आँसू टपकने लगे। बोले, "सब सच है, परेश ने एक बात भी झूठ नही कही!"

दरोगा ने और भी दो-चार बातें पूछकर उन्हे छुट्टी दे दी। जाते समय उसने सहसा झुककर गुरुचरण के पाँव छुए, और कहा, "आप उम्र में बड़े हैं और ब्राह्मण हैं, मेरा कसूर ध्यान मे न लाइएगा। इतने भारी दुःख का काम मैंने इसके पहले कभी नही किया।"

और भी, कई महीने बीत जानेपर खबर आई कि विमल को सात साल की सजा हो गयी है।

पाँच

फिर ढोल, नगाड़े और मजीरा बजाकर समारोह के साथ शुभचण्डी की पूजा की तैयारियाँ होने लगीं। परेश ने कहा, "बापूजी, यह सब रहने दो।"

"क्यों?"

परेश ने कहा, "यह मुझसे सहन नही होगा।"

बाप ने कहा, "अच्छी बात है, सहन न कर सको तो आज का दिन कलकत्ता जाकर घूम-फिरकर बिता आओ। जगन्माता की पूजा है,—धर्म-कर्म में बाधा मत डालो।"

कहना न होगा कि धर्म-कर्म में कोई बाधा नही आयी।

दस दिन बाद, एक दिन सबेरे गुरुचरण के घर की तरफ अकस्मात् शोरगुल और चीख-चिल्लाहट सुनाई दी, और कुछ देर बाद ग्वालिन रोती हुई आ खडी हुई। उसकी नाक से खून बह रहा था। हरिचरण ने घबराहट के साथ पूछा, "खून कैसे आ गया मोक्षदा? बात क्या है?"

रोने की आवाज सुनकर घर के सभी आ पहुँचे। मोक्षदा ने कहा, "दूध मे पानी मिलाया था, इसलिए बडे बाबू ने लात मारकर मुझे गड्ढे मे गिरा दिया।"

हरिचरण ने कहा, "किसने, किसने? हट—"

परेश ने कहा, "ताऊजी ने? झूठ बोलती है।"

छोटी बहू ने कहा, "जेठजी औरतो की देह से हाथ लगायेगे? तू क्या सपना देख रही है दूधवाली?"

उसने अपनी देहपर कीच-मिट्टी दिखाते हुए देवी-देवताओं की कसम खाकर कहा कि सच्ची बात है।

'इजक्शन' की कृपा से दीवार का उठना तो बन्द हो गया था, पर आँगन के गढ़े सब ज्यो के त्यो बने हुए थे, मूँदे नही गये थे। गुरुचरण के लात मारनेपर उन्ही मे से एक मे गिर जाने से उसे चोट आ गयी थी।

हरिचरण ने कहा, "चल मेरे साथ, नालिश कर दे।"

स्त्री ने कहा, "कैसी असभव बात कहते हो तुम! जेठजी औरतो की देहपर हाथ लगाये? झूठी बात है।"

हरिचरण ने कहा, "झूठी होगी, हार जायगी। लेकिन भइया के मुँह मे तो झूठ निकल नही सक्ता। मारा होगा तो सजा हो जायगी।"

युक्ति सुनकर स्त्री मे सुबुद्धि आ गयी, बोली, "है तो ठीक। ले जाकर नालिश करवा दो। ठीक, सजा हो जायगी।"

हुआ भी यही। भइया के मुँह से झूठ न निकला। अदालत के न्याय से उनपर दस रुपया जुरमाना हो गया।

अबकी बार शुभचण्डी की पूजा तो नही हुई, मगर दूसरे दिन देखा गया कि कुछ लडके झुण्ड बाँधकर गुरुचरण के पीछे-पीछे शोर-गुल मचाते और बकते हुए जा रहे हैं। ग्वालिन को मारने का गीत भी इतने मे, बन गया है।

छह

रात के करीब आठ बजे होगे। हरिचरण की बैठक भरी हुई है। गाँव के मुरब्बी लोग आजकल यही आने लगे हैं। अकस्मात् एक आदमी ने आकर एक बडे मजे की खबर सुनाई। "लुहारो के लड़को ने विश्वकर्मा-पूजा के उत्सव मे कलकत्ते से दो जनी खेमटा नाचनेवाली बुलाई हैं, उन्ही के नाच की महफिल मे गुरुचरण बैठे हैं।"

हरिचरण हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। बोला, "पागल है! पागल! इसकी बात सुनो! भइया खेमटा नाच देख रहे हैं! किस चण्डूखाने से आ रहे हो अविनाश?"

अविनाश ने कसम खाकर कहा, "अपनी आँखो से देख आया हूँ।"

एक आदमी दौडा गया—सच्ची खबर लाने के लिए। दस मिनट बाद वह लौट आया, और बोला कि हाँ, बिलकुल सच बात है, और सिर्फ नाच ही नही देख रहे, बल्कि रूमाल मे बाँधकर उन्हे न्योछावर देते हुए भी वह अपनी आँखो से देख आया है।

बस फिर क्या था, एक जोर का शोरगुल उठ खडा हुआ। किसी ने कहा, 'किसी दिन ऐसा होगा ही, यह तो जानी हुई बात थी।' कोई कहने लगा 'जिस दिन बिना कुसूर औरत की देहपर हाथ लगाया था, उसी दिन हम समझ गये थे।' एकने लडके की डकैती का उल्लेख करते हुए कहा—'उसीसे बाप के चरित्र का अन्दाजा हो सकता है।' इसी तरह की न जाने कितनी तरह की बाते होने लगी।

आज, कुछ बोला नही तो सिर्फ एक हरिचरण। वह अन्यमनस्क-सा होकर चुपचाप बैठा रहा। उसे न जाने कैसे मानो आज बचपन की याद आने लगी—क्या ये ही उसके भइया हैं? ये ही गुरुचरण मजूमदार हैं?

सात

रात के करीब दो-ढाई बजे होंगे, पर नाच खत्म होने मे अब भी देर है। विश्वकर्मा-पूजा जल्दी ही खत्म हो चुकी थी; पर उसकी रेशा अब भी चल रही थी, जिसे भक्त लोग शराब पीकर, मास खाकर, रडी नचाकर दक्ष-यज्ञ के रूप मे पूरा कर रहे थे। अधिकाश लोग अपना होश-हवास खो बैठे थे और उन्ही के बीच मे बैठे मुसकरा रहे थे वृद्ध गुरुचरण।

इतने मे कोई चादर से मुँह ढके हुए वहाँ आया, और धीरे से उसने उनकी पीठपर हाथ रखा। वे चौक-पडे, बोले, "कौन?"

उसने कहा, "मैं हूँ परेश। ताऊजी, घर चलिए।"

गुरुचरण ने कोई भी आपत्ति नही की, बोले, "घर? चलो।"

उत्सव-मच का जरा-सा क्षीण प्रकाश रास्तेपर आ पडा था, वहाँ पहुँचकर परेश एकटक 'ताऊ' के चेहरे की तरफ देखता रहा। आँखो मे वह ज्योति नही, चेहरेपर वह तेज नही, नीचे से ऊपरतक सारा का सारा आदमी भूताविष्ट-सा हो गया है। इतने दिनो बाद आज उसकी आँखो से आँसू गिरने लगे और इतने दिनो बाद आज उसकी आँखे देख सकी कि लोगो के आगे लज्जित होने लायक 'ताऊजी' में कोई चीज बाकी नही रही है। इस अर्ध-सचेतन देह को छोडकर वे और कही चले गये हैं। उसने कहा, "आपकी काशी जाने की बड़ी इच्छा थी ताऊजी, चलिएगा?"

गुरुचरण कगाल की तरह बोल उठे, "जाऊँगा परेश, जाऊँगा, पर कौन ले जायगा मुझे।"

परेश ने कहा, "मैं ले जाऊँगा ताऊजी।"—

"तो चल एक बार, घर चलकर चीज-वस्तु ले आये जाकर।"

परेश ने कहा, "नही ताऊजी, उस घर मे अब नही जाना है। वहाँ का अब कुछ भी नही चाहिए हमें।"

गुरुचरण को सहसा मानो होश आ गया, क्षण-भर नीरद रहकर बोले, "कुछ नही चाहिए? उस घर का अब हम कुछ नही चाहते?"

परेश ने अपनी आँखे पोछते हुएं कहा, "नही ताऊजी, कुछ नही चाहिए। उन चीजो को लेनेवाले और बहुत हैं वहाँ, चलिए।"

"चलो।"—कहकर गुरुचरण ने परेश का हाथ पकडा, और जनशून्य अन्धकारमय रास्ते मे दोनो के दोनो रेलवे-स्टेशन की तरफ चल दिये।

प्रकाश और छाया

१

शुरू मे ही अगर तुम जिद्द पकड लो कि ऐसा कभी हो नही सकता, तव तो मैं लाचार हूँ। और अगर यह कहो कि ऐसा हो भी सकता है, दुनिया मे न जाने क्या-क्या होता है, सभी कुछ थोडे ही जानता हूँ, तो इस कहानी को पढ़ डालो। मेरा विश्वास है कि इससे किसी भी तरह की कोई बडी हानि न होगी। कहानी लिखते वक्त कुछ ऐसी प्रतिज्ञा तो कर ही नही ली है कि जो कुछ लिखूँगा, सव खालिस सत्य ही होगा। दो-एक लाइने गलत हों तो हो, थोडा-वहुत मतभेद हो तो हो,— इससे ऐसा क्या वनता-बिगडता है।

हाँ, नायक का नाम है यज्ञदत्त मुखर्जी, मगर सुरमा उसे कहती है 'प्रकाश'। आपने नायिका का नाम तो सुन ही लिया, लेकिन यज्ञदत्त उसे 'छाया' कहकर पुकारता है। कुछ दिनों तक उनमे भारी कलह रहा, कौन प्रकाश है और कौन छाया, किसी भी तरह इसकी मीमासा नही हुई। अन्त मे सुरमा ने समझा दिया, तुम्हारी सूक्ष्म बुद्धि मे इतनी-सी बात नहीं आती कि तुम न हो तो मैं कही की भी नही, परन्तु, मेरे विना रहे भी तुम चिरकाल चिरजीवी हो, इसी से तुम प्रकाश हो और मैं छाया।

यज्ञदत्त हँस दिया—"एकतरफ डिग्री पाना चाहती हो, तो ले लो, मगर फैसला किसी काम का नही हुआ।"

"खूब हुआ है, वढ़िया हुआ है, बहुत अच्छा हुआ है,— प्रकाश, अव लडने की जरूरत नहीं। तुम प्रकाश हो, मैं श्रीमती छाया हूँ।"

यह कहते हुए छाया ने नाना प्रकार से प्रकाश को तग कर डाला।

कहानी का इतना तो हो गया। परन्तु डर है कि कही अव तुम्ही लोगो से द्वन्द्व-युद्ध न हो जाय, तुम कहोगे, ये लोग स्त्री-पुरुष हैं, मैं कहूँगा— स्त्री-पुरुष जरूर हैं, पर पति-पत्नी नहीं हैं। तव जरूर ही तुम आँखे चढ़ा लोगे कि तो क्या अवैध प्रेम है? मैं कहूँगा— बहुत ही शुद्ध प्रेम है। तुम लोगों को किसी भी तरह विश्वास नही होगा, मुँह वनाकर पूछोगे— उमर क्या है? मैं कहूँगा, प्रकाश की उमर है तेईस साल और छाया की अठारह। इसके वाद भी अगर सुनना चाहो, तो शुरू करता हूँ।

यज्ञदत्त की छोटी-सी छँटी हुई दाढ़ी थी, आँखो पर चश्मा, सिर पर लेवेण्डर की सुगन्ध, चुनी हुई ढाके की धोती, शर्ट पर एसेन्स लगा हुआ, पैरों मे मखमल के स्लीपर, जिन पर छाया ने अपने हाथो से फूल काढ़ दिये हैं, लाइब्रेरी मे भर-घर पुस्तके हैं और हैं घर पर अनेक दासियाँ। टेबुल के किनारे बैठा हुआ यज्ञदत्त चिट्ठी लिख रहा है, सामने वडा-भारी आईना है। परदा हटाकर छाया ने बडी सावधानी के साथ प्रवेश किया। उसकी तबीयत थी कि चुपचाप पीछे से आकर आँखे मीच ले, पर पीठ के पास आकर हाथ बढाते ही सामने शीशे पर नजर पड गयी। देखा कि यज्ञदत्त उसके मुँह की तरफ देख-देखकर मुसकरा रहा है। सुरमा भी हँस दी बोली—"क्यो देख लिया?"

यज्ञदत्त—"यह क्या मेरा कसूर है?"

सुरमा—"तो किसका है?"

यज्ञदत्त—"आधा तुम्हारा है और आधा है शीशे का।"

सुरमा—"मैं उसे अभी ढँके देती हूँ।"
यज्ञदत्त—"ढँक न दो, लेकिन बाकी के लिए क्या करोगी?"
सुरमा ने दो-तीन बार हिल-डुलकर कहा—"प्रकाश महाशय!"
यज्ञदत्त—"कहो छाया देवी!"
सुरमा—"तुम सूखते क्यों जा रहे हो?"
यज्ञदत्त—"मुझे तो ऐसा नही मालूम होता।"
सुरमा—"तुम खाते क्यों नही?"
यज्ञदत्त हँसने लगा। बोला—"सुरो, झगडा करने आयी हो?"
सुरमा—"हूँ!"
यज्ञदत्त—"मैं इसके लिए राजी नही।"
सुरमा—"तुम ब्याह क्यो नही करोगे?"
यज्ञदत्त—"इसका जवाब तो हर रोज एक बार दिया करता हूँ।"
सुरमा—"नही, करना ही पडेगा।"
यज्ञदत्त—"सुरो, तुम अपना ब्याह क्यो नही करती?"
सुरमा यज्ञदत्त के हाथ से चिट्ठी छीनकर कहा—"छि., विधवा का कही ब्याह होता है?"
यज्ञदत्त ने कुछ देर चुप रहकर कहा—"कौन जाने! कोई कहता है, होता है और कोई कहता है, नही होता।"
सुरमा—"तो फिर मुझे इस निमित्त का भागी बनाने की कोशिश क्यो?"
यज्ञदत्त ने लम्बी साँस लेकर कहा—"तो क्या हमेशा मेरी ही सेवा करते-करते जीवन बिता दोगी?"
'हूँ' कहकर वह टप-टप आँसू गिराती हुई रोने लगी।
यज्ञदत्त ने उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"सुरो, तुम्हारे मन की साध क्या है, क्या मुझे साफ-साफ नही बताओगी?"
सुरमा—"मुझे वृन्दावन भेज दो।"
यज्ञदत्त—"मुझे छोडकर रह सकोगी?"
सुरमा के मुँह से बात नही निकली। दाये और बाये दो-एक बार सिर हिलाने के साथ ही उसकी आँखो का पानी झरने-सा बहने लगा।

२

सुरमा—"यज्ञ-भइया, वह कहानी फिर से कहो न?"
यज्ञदत्त—"कौन-सी सुरमा?"
सुरमा—"वही, मुझे जब वृन्दावन मे खरीदा था। कितने रुपये मे खरीदा था?"
यज्ञदत्त—"पचास रुपये मे। मेरी उमर तब अठारह साल की थी। बी० ए० का इम्तहान देकर पछाँह की तरफ घूमनें गया था। मा तब जिन्दा थी, वे भी साथ थी। एक दिन दोपहर को मालती-कुज के पास से वैष्णवियो का एक दल गीत गाता हुआ जा रहा था, उसी मे पहले पहले मैंने तुम्हे देखा। यौवन की पहली सीढ़ी मर पैर रखते ही दुनिया ऐसी सुन्दर-सुहावनी दीखने लगती है कि सिर्फ अपनी आँखो से उसका माधुर्य पूरा-पूरा नही लूटा जा सकता। साध होती है, मनकी-सी और दो आँखे इसी तरह एक साथ ऐसी शोभा का सम्भोग कर सकें, अगर उसे समझा दे सकूँ,— यह क्या सुरमा, रोती हो?"
सुरमा—"नही, तुम कहो।"
यज्ञदत्त—"तुम तब तेरह वर्ष की नवीन वैष्णवी थी। हाथ मे तम्बूरा था और गीत गा रही थी।"
सुरमा—"जाओ, मैं क्या गाना गा सकती हूँ?"
यज्ञदत्त—"उस वक्त तो गा सकती थी,— उसके बाद बहुत परिश्रम से तुम्हे पाया, तुम ब्राह्मण की लडकी थी, बाल-विधवा। मा तुम्हारी तीर्थ मे आकर फिर घर न लौट सकी, स्वर्ग सिधार गयी। मैंने तुम्हें लाकर अपनी माँ के हाथ सौंप दिया, उन्होने छाती से लगा लिया उसके बाद, मरते समय वे फिर मुझे ही लौटा गयी।"

सुरमा—"यज्ञ-भइया, तुम्हारा घर कहाँ है?"

यज्ञदत्त—"सुना है, कृष्णनगर के पास है कहीं।"

सुरमा—"मेरे और कोई नहीं है?"

यज्ञदत्त—"मैं हूँ न, यही तो तुम्हारा सब कुछ है, सुरमा।"

सुरमा के पलक फिर भीग गये, बोली—"तुम मुझे फिर बेच सकते हो?"

यज्ञदत्त—"नहीं, सो नही कर सकता। अपने को बिना बेचे यह काम हरगिज नही हो सकता।"

सुरमा कुछ बोली नहीं। उसी तरह डबडबाई हुई आँखों से उसकी तरफ देखती रही। बहुत देर बाद धीरे से बोली—"तुम बड़े भइया हो, मैं छोटी बहन हूँ। हम दोनो के बीच एक अच्छी-सी बहू ले आओ न भइया।"

यज्ञदत्त—"क्यो भला?"

सुरमा—"दिन-भर उसका साज-सिंगार करके उसे तुम्हारे पास लाकर बैठा दिया करूँगी।"

यज्ञदत्त—"सो क्या तुम पूरे मन से कर सकोगी?"

सुरमा ने मुँह उठाकर, उसकी आँखों में आँखे बिछाकर कहा—"मैं क्या ऐसी अधम हूँ जो जलूँगी?"

यज्ञदत्त—"जलोगी नही, पर अपनी जगह तो लुटा दोगी?"

सुरमा—"लुटा क्यो दूँगी? मैं राजा की राजा बनी ही रहूँगी, सिर्फ एक मन्त्री बहाल कर दूँगी, दोनों जनी मिलकर तुम्हारा राज्य चलावेंगी, बडा आनन्द आयेगा।"

यज्ञदत्त—"देखो छाया, विवाह करने की मेरी इच्छा नही, पर हाँ, तुम्हे अगर एक साथी की बहुत जरूरत हो तो ब्याह कर सकता हूँ।"

सुरमा—"हाँ, जरूर करो बडा आनन्द आयेगा, दोनो जनी खूब मौज से दिन बितायेंगी।"

इतना कहकर सुरमा मन ही मन बोली—"तीनो कुल मे मेरे तो कोई है नही; मान-अभिमान हो, सो भी नही, लेकिन, तुम क्यों मेरे कारण दुनिया-भर का कलक बटोरोगे? देव हो तुम मेरे! तुम ब्याह करो, तुम्हारा मुँह देखकर मैं सब सह लूँगी।

३

कलकत्ते मे ऐसे बहुत-से लोग हैं जो अपने पडोसी की खबर नहीं रखते। बहुत-से रखते हैं तो खूब रखते हैं। जो खबर रखते हैं, वे कहते हैं,—यज्ञदत्त बी० ए० पास भले ही कर ले, पर है आवारा लडका। इशारे मे वे सुरमा की बात का उल्लेख करते हैं। कभी-कभी यह बात सुरमा और यज्ञदत्त के भी कानो मे पड जाती है। सुनकर दोनो हँसने लगते हैं।

परन्तु तुम अच्छे हो चाहे बुरे, अगर बडे आदमी हो तो तुम्हारे घर लोग आयेंगे ही, खासकर औरते। कोई कहती—"सुरमा, तुम अपने भइया का ब्याह क्यो नही करवा देती?"

सुरमा जवाब देती—"करा दो न जीजी, अच्छी-सी लडकी खोज दो।"

जो सुरमा की सहेली होती, वह हँस देती—"यही तो, अच्छी लडकी मिलना मुश्किल है, तुम्हारे रूप से जिसकी आँखें भरी हुई हैं, उसके—

"हट जलमुँही" कहते-कहते सुरमा का सारा चेहरा स्नेह और गर्व से लाल हो उठता।

उस दिन दोपहर को टिपिर-टिपिर मेह बरस रहा था, सुरमा ने कमरे मे घुसते ही कहा—"एक लडकी पसन्द कर आयी हूँ।"

यज्ञदत्त—"उफ्, माथे से एक चिन्ता हट गयी। कहाँ, सुनूँ तो सही?"

सुरमा—"उस मुहल्ले के मित्तिरो के यहाँ।"

यज्ञदत्त—"ब्राह्मण होकर कायस्थ के घर?"

सुरमा—"कायस्थो के घर क्या बाम्हन नही रहते? उसकी माँ वहाँ रसोई बनाने का काम किया करती थी। सुना है, लडकी बहुत अच्छी है। देख आओ, अगर मन मे बैठ जाय तो घर ले आना।"

यज्ञदत्त—"मैं क्या ऐसा अभागा हूँ कि दुनिया-भर की भिखारिनोके सिवा मेरी गुजर ही न होगी?"

सुरमा—"भिखारिन बटोर लाना क्या तुम्हारे लिए नया काम है!"

यज्ञदत्त—फिर!

सुरमा—"नही, तुम जाओ, देख आओ। मन मे जम जाय तो 'ना' मत करना।"

यज्ञदत्त—"मन मे तो किसी हालत मे जम ही नही सकती।"

सुरमा—"जम जायगी जी, खूब जमेगी, एक बार देख तो आओ।"

छायादेवी ने फिर प्रकाश को सजा दिया। खूब खुशबू वगैरह लगा कर, मॉज-घिसकर, बाल काढकर—इस ढग से आईने के सामने खड़ा कर दिया कि यज्ञदत्त को शरम मालूम होने लगी। बोला—"छिः, यह तो बहुत ज्यादती हो गयी।"

सुरमा ने कहा—"हो जाने दो, तुम देख आओ।"

गाडी पर सवार होकर यज्ञदत्त लड़की देखने चल दिया। रास्ते मे एक मित्र को भी अपने साथ ले लिया—"चलो, मित्तिरों के यहाँ जल-पान कर आवे।"

मित्र ने पूछा—"क्या मतलब?"

यज्ञदत्त—"उनके घर एक भिखारिन की लडकी है। उसके साथ ब्याह करना होगा।"

मित्र—"कहते क्या हो, यह सीख किसने दी?"

यज्ञदत्त—"तुम लोग जिसकी ईर्षा से मरे जा रहे हो, उसी छायादेवी ने।"

यज्ञदत्त अपने मित्र के साथ लडकी देखने मित्तिरो के घर पहुँचे। लडकी कार्पेट के आसन पर बैठी थी, कई बारकी धुली देशी साडी पहने, उसके सूत कही-कही ऐसे बिखर गये थे जैसे जाली। हाथो मे चूडियाँ थी और ताँबे के रंग के सोने के कडे, —कही-कही उनके भीतर का चपडा दीख रहा था। माथे मे इतना तेल था कि ललाट तक चमक रहा था, और सिर के बीचो-बीच ठीक ब्रह्मतालु के ऊपर जूडा काठ-सा कड़ा बँधा हुआ ऊँचा खडा था। दोनो मित्र उसे देखते ही मुसकरा दिये। हॅसी को छिपाते हुए लड़की की तरफ देखकर यज्ञदत्त ने कहा—"क्या नाम है तुम्हारा?"

लडकी ने अपनी बडी-बडी काली ऑखो को शान्तभाव से उसके मुँह पर रखते हुए कहा—"प्रतुल।"

यज्ञदत्त ने अपने मित्र को चुटकी भरकर मुसकराते हुए कहा—"क्यो भाई, गदाधर तो नही?"

मित्र ने हलका-सा एक धक्का देकर कहा—"ज्यादा बहस नही, झटपट पसन्द कर डालो।"

"हां, अभी लो—"

"अच्छा, अच्छा, क्या पढ़ती हो।"

"कुछ नही।"

"और भी अच्छा है।"

"काम-काज करना आता है?"

प्रतुल ने सिर हिलाया। पास ही एक नौकरानी खडी थी, व्याख्या कर दी—बडी कर्मी लड़की है बाबूजी, रसोई बनाने परोसने घर के काम-धन्धे मे अपनी मॉ के जैसी है। और मुँह से तो इसके बात ही नहीं निकलती—बडी शान्त है।"

"सो तो देख ही रहा हूँ। तुम्हारे बाप हैं?"

"नही।"

"मॉ भी मर गयी हैं?"

"हाँ।"

यज्ञदत्त ने देखा कि उस गूँगी-बेवकूफ लडकी की आँखो मे आँसू भर आये हैं, पूछा—"तुम्हारे क्या कोई भी नही है?"

"नही।"

"हमारे घर चलोगी?"

उसने गरदन हिलाई—हाँ। इतने मे उसकी जगले की तरफ निगाह पडी तो देखा कि खिडकी से दो काली आँखें जैसे आग बरसा रही हो! तब उसने डरकर कह दिया—नही।

बाहर आकर मित्तिर साहब से भेट हुई।

"कैसी दिखी लड़की?"

"अच्छी है।"
"तो फिर ब्याह का मुहूर्त सुधवाया जाय?"
"हाँ—हाँ।"

४

बारह-तेरह वर्ष के लडके के हाथ से जब कोई निर्दय रसहीन अभिभावक उसका अर्द्ध पठित कौतुकपूर्ण उपन्यास छीनकर छिपा देता है तब उसकी जैसी हालत होती है,— भीतर का प्राण व्याकुल भाव से उस शुष्क-मुख शंकित बालक को कभी इस कोठरी में और कभी उस कोठरी में दौडाता रहता है, डरती हुई उसकी तीव्र आँखे जैसे उस प्रिय पदार्थ को खोजने मे व्यस्त और परेशान हो जाती हैं और उसकी सर्वदा इच्छा होती रहती है कि किसी पर खूब गुस्सा होने की इच्छा होती है, ठीक उसी तरह सुरमा यज्ञदत्त के लिए छटपटाने लगी। वह क्या जाने क्या ढूँढकर निकालेगी। कुरसी, बेन्च, शोफा, पलंग, कमरा, बरामदा आदि सभी चीजो पर वह नाराज हो उठी। सडक की तरफ का एक भी जगला उसे पसन्द न आया, कभी इस पर और कभी उस पर बैठने लगी। यज्ञदत्त ने कमरे मे प्रवेश किया।

"क्या हुआ प्रकाश महाशय?"

प्रकाश का चेहरा गम्भीर हो गया।

सुरमा—"पसन्द आयी?"

यज्ञदत्त—"आई।"

सुरमा—"कब का ब्याह है?"

यज्ञदत्त—"शायद, इसी महीने मे,—"

निरानन्द उत्साह के साथ सुरमा पास आयी, पर उसने किसी तरह का ऊधम नही किया, कहा—"तुम्हे मेरे सिर की कसम, सच बताओ।"

"कैसी आफत है, सच ही तो कह रहा हूँ।"

"मेरा मरा मुँह देखो, बताओ, पसन्द आ गयी?"

"हाँ—"

सहसा सुरमा को मानो कोई शब्द ढूँढे नही मिला। बच्चे जैसे फटकार खाकर रोने से पहले इधर-उधर गरदन हिलाकर कोई अर्थहीन बात कह डालते हैं, सुरमा ने भी उसी तरह बच्चो जैसी गरदन हिलाकर गाढ़े स्वर मे कहा— मैंने तो पहले ही कह दिया था।

यज्ञदत्त अपनी ही चिन्ता मे व्यस्त था, इसलिए, समझ नही सका कि उसके कुछ मानी ही नही होते, क्योंकि पहले तो 'पसन्द ही होगी' ऐसी बात सुरमा ने कभी कही नही, दूसरे उसने खुद भी लड़की नही देखी, बल्कि, ऐसी तो उसने बिलकुल आशा ही नही की थी कि इतनी जल्दी पसन्द आ जायगी और सगाई पक्की हो जायगी। उसी से वह दिन-भर अपने कमरे मे बैठकर इस बात की चिन्ता करने लगी। दो दिन बाद यज्ञदत्त के बहुत कुछ समझ मे आ गया। बोला—"सुरो, यह ब्याह मत कराओ, बहन।"

सुरमा—"वाह, ऐसा भी कही होता है? सगाई जो पक्की हो गयी है?"

यज्ञदत्त—"पक्की कुछ नही हुई।"

सुरमा—"नही, सो नही हो सकता, दुखिया लडकी को सुखी करना है, यह भी तो जरा सोचो; खासकर, वचन देकर मुकरोगे?"

यज्ञदत्त को प्रतुलकुमारी का मुखडा याद आ गया, उस दिन उसकी काली आँखों में मानो उसने सहिष्णुता और शान्त भाव की निगूढ़ छाया देखी थी। इससे वह चुप हो रहा। फिर भी, बहुत-सी बाते सोचने लगा। सुरमा के बारे मे ही ज्यादा सोचा। वर्षा के दिन सहसा बरसाती फतिंगे जैसे घर-घर मे भर जाते हैं, उसी तरह उसका सारा मन भी बेचैनी से भर गया, और साथ ही उनका छिपा हुआ वास-गह्वर जैसे ढूँढे नही मिलता, उसी तरह सुरमा के मुँह की बाते हृदय की किस गुप्त आकाक्षा के भीतर से झुण्ड बाँधकर निकलने लगी, इसका भी कुछ पता नही लगा। उसकी आँखो पर ऐसा एक धुँधला-सा जाल पड गया कि उसे किसी भी तरह सुरमा का चेहरा न दिखाई दिया।

५

विवाह करके यज्ञदत्त बहू को घर ले आया। विकार-ग्रस्त रोगी के घर मे कोई आदमी न रहने से जैसे वह अपनी सारी शक्तियो को एकत्र करके पानी के घडे की तरफ दौडकर उससे चिपट जाता है, सुरमा ने ठीक उसी तरह नयी बहू को छाती से चिपटा लिया। अपना जितना भी जेवर था, सब उसे पहना दिया; और, जितने कपडे थे, सब उसके बॉक्स मे भर दिये। सूखे मुँह से दिन-भर बहू को सजाने की धूम देखकर यज्ञदत्त का मुँह इतना-सा निकल आया। गम्भीर स्वप्न तो सहा जा सकता है, क्योंकि असह्य होते ही नीद टूट जाती है; परन्तु जागते हुए स्वप्न देखने मे तो दम अटकने लगता है। किसी तरह वह खतम नहीं होता और नीद भी नहीं टूटती। कभी मालूम होता है यह स्वप्न है, कभी मालूम होता है यह सत्य है। प्रकाश और छाया दोनो के ही ऐसा भाव आने लगा। एक दिन अपने कमरे मे बुलाकर यज्ञदत्त ने कहा—"छायादेवी!"

"क्या है यज्ञ-भइया?"

"प्रकाश महाशय" नही कहा?"

सिर झुकाकर सुरमा ने कहा—"प्रकाश महाशय।"

यज्ञदत्त ने दोनो हाथ बढ़ाकर कहा—"बहुत दिनों से पास नही आयी, आओ।"

सुरमा ने एक बार उसके मुँह की तरफ देखा और दूसरे क्षण कह उठी—"वाह, मैं भी खूब हूँ! बहू को अकेली छोडकर आयी हूँ!"

कहती हुई वह जल्दी से भाग गयी।

गुस्से में अगर किसी अपरिचित भले आदमी के गाल मे थप्पड मार दिया जाय और वह अगर शान्त-भाव से क्षमा करके चला जाय तो उस समय जैसा मन खराब हो जाता है, वैसे ही क्षमाप्राप्त अपराधी की तरह उसका भी मन क्रमशः उत्साहहीन होने लगा। बार-बार यही मालूम होने लगा—उसने अपराध किया है और सुरमा उसे जी-जान से क्षमा कर रही है।

सुरमा सर्व आभरणो से भूषित नववधू को जबरदस्ती उसके पास बिठा देती। शाम होते ही चटसे बाहर से ताला बन्द कर देती। यज्ञदत्त गाल पर हाथ रखकर सोचता रहता। बहू भी कुछ-कुछ समझ जाती है। वह सयानी लडकी नही है, फिर भी है तो नारी। साधारण स्त्री-बुद्धि से भगवान् किसी को भी वंचित नही रखते। वह भी सारी रात जागती रहती। ब्याह हुए आज आठ दिन भी नही हुए, इतने ही में एक दिन सवेरे यज्ञदत्त ने सुरमा को बुलाकर कहा—सुरो, बर्द्धमान मे बुआजी को बहू दिखा लाऊँ।

दामोदर नदी के उस पार बुआ का गॉव है। बुआ के घर पहुँचते ही यज्ञदत्त ने कहा—"बुआजी, बहू लाया हूँ देखो।"

बुआ—"अरे, ब्याह कर लिया! ओ हो, जीती रहो। अच्छी चन्दा-सी बहू है, अब आदमी की तरह घर-गृहस्थी चलाओ, बेटा!"

यज्ञदत्त—"इसीलिए तो सुरमा ने जबरदस्ती यह ब्याह कराया है।"

बुआ—"अच्छा, सुरो ने यह ब्याह करवाया है?"

यज्ञदत्त—"उसी ने तो कराया है, पर तकदीर ही खराब निकली, इस बहू के साथ घर नही चल सकता।"

बुआ—"सो क्यो?"

यज्ञदत्त—"जानती हो बुआ, मेरा नर गण है और बहू का है राक्षण गण। एक साथ रहने से ज्योतिषी ने कहा, बचा न बचा।"

बुआ—"अरे बेटा यह कैसी बात?"

यज्ञदत्त—"तब जल्दी मे ये सब बातें देखी नही गयी, अब यह तुम्हारे ही पास रहा करेगी, माहवारी पचास रुपये तुम्हे भेज दिया करूँगा, इतने से काम नही चल जायगा बुआ?"

बुआ—"हाँ, चल जायगा। गँवई-गॉव मे, विशेष कोई तकलीफ नही होगी। आहा, चाँद-सी बहू है, बड़ी हो गयी है,—क्यों रे यज्ञ कोई शान्ति-विधान कराने से काम नही चलेगा?"

यज्ञदत्त—"चल सकता है। मैं भट्टाचार्यजी से पूछकर, जैसा होगा, तुम्हे खबर दूँगा।"

बुआ—"अच्छा, सूचित करना वेटा।"

शाम के वक्त बहू को पास बुलाकर यज्ञदत्त ने कहा—"तो तुम यही रहो।"

उसने गरदन हिलाकर कहा—"अच्छा।"

"तुम्हे जब ज़िस चीज की जरूरत हो, मुझे खबर देना।"

"अच्छा।"

"तुम्हे चिट्ठी लिखना आता है?"

"नही।"

"तो फिर, कैसे खबर दोगी?"

नववधू घर की पालतू हरिणी की तरह अपनी आँखो को पति के चेहरे पर गाड़कर चुपचाप खडी रही। यज्ञदत्त मुँह फेरकर चला गया।

बुआजी के घर बहू खूब तडके ही उठकर काम-काज मे लग जाती है। बैठा रहना उसने सीखा ही नही। बिलकुल नयी होने पर भी उसने परिचित की भाँति घर का काम-धन्धा करना शुरू कर दिया। दो-चार दिन मे ही बुआजी समझ गयी कि ऐसी लडकी सभी की कोख से नही होती।

बहू के पास बहुत गहने हैं, मुहल्ला-भर की औरतें देखने आती हैं। किसी ने पूछा—किसने दिया है बहू? तुम्हारे बाप ने?

"माँ-बाप मेरे नही हैं, ननदजी ने दिया है।"

दो-एक बराबर की उमरवालियों से मेल हो जाने पर वे खोद-खोदकर भेद जानने की कोशिश करने लगी। पूछने लगी—तुम्हारी ननद शायद खूब वड़े घर की हैं?

"हाँ।"

"सब गहने उन्ही के हैं?"

"वे नही पहनती? विधवा हैं वे, पहनती नही।"

"कितनी उमर है बहू?"

"हम लोगों से कुछ बडी होगी? उन्होने जबरदस्ती अपने भइया से मेरा ब्याह कराया है।"

"तुम्हारा दर उनका कहना खूब मानता है, क्यो?"

"हाँ, वे सती-लक्ष्मी हैं, सभी उनसे प्रेम करते हैं।"

६

ऊपर के जंगले से सुरमा ने देखा, यज्ञदत्त घर लौट आये, पर साथ मे बहू नही है। घर में घुसते ही उसने पूछा—"भइया, बहू को कहाँ छोड आये?"

"बुआजी के घर।"

"साथ में ले क्यो नही आये?"

'रहने दो अभी कुछ दिन बाद मे देखा जायगा।"

बात सुरमा की छाती में चुभ गयी। दोनों चुप बने रहे। प्रिय जनों में बहस करते करते अचानक झगड़ा हो जाने से जैसे दोनों कुछ देर तक क्षुण्ण मन से चुपचाप बैठे रहते हैं,—ये दोनों जने भी कुछ दिन उसी तरह चुपचाप दिन बिताते रहे। सुरमा कहती, —"नहा-धोकर खा-पी लो, बहुत अबेर हो गयी है।" यज्ञदत्त कहता—"हाँ, जाता हूँ।" ऐसे ही कुछ दिन बीत गये। एक साथ रहकर घर-गृहस्थी चलाने का काम हमेशा इस तरह नही हो सकता, इसी से फिर मेल होने लगा। यज्ञदत्त फिर लाड-प्यार के साथ बुलाने लगे—'ओ छायादेवी!' मगर, छाया अब 'प्रकाश' नही कहती। कभी 'यज्ञ-भइया' कहती है, कभी सिर्फ 'भइया' कहकर ही पुकारती है।

सुरमा ने एक दिन कहा—"भइया, करीब तीन महीने होने को आये, अब बहू को ले आओ।" यज्ञदत्त बात टाल देता—"हाँ, सो आ जायगी।'—सुरमा उसके मन का भाव समझकर चुप रह जाती।

बुआ की चिट्ठी कभी-कभी आ जाया करती है। बुआ लिखती हैं, बहू को मलेरिया-बुखार आने लगा है, इलाज होना जरूरी है। मतलब समझकर यज्ञदत्त और कुछ रुपये ज्यादा भेज देता। फिर महीने-भर कोई बात ही नही छिडती।

इतने मे ही एक दिन अकस्मात् चिट्ठी आई—बुआ मर गयी! यज्ञदत्त बर्द्धमान चला गया। जाते समय सुरमा ने सिर की कसम देकर कह दिया, बहू को लेते आना।

बर्द्धमान में बुआ का क्रियाकर्म हो जाने के बाद, एक दिन दोपहर को यज्ञदत्त बरामदे मे खडा-खडा घर आने की बात सोच रहा था। आँगन मे धान की मडाई के पास नई बहू खडी थी। उस पर उसकी निगाह पड़ गयी। चार आँखे होते ही उसने हाथ से इशारा करके उसे पास बुलाया।

बहू पास आ गयी।

"क्यो?"

"आपसे कुछ कहूँगी।"

"अच्छी बात है, कहो।"

नयी बहू ने घूँट-सा भरते हुए कहा—"एक दिन आपने कहा था, अगर मुझे कुछ जरूरत हो—"

यज्ञदत्त—"हाँ हाँ, क्या जरूरत है बताओ—"

बहू—"घर मे सभी कोई कहा-सुनी करती रहती हैं, मैं बडी कुलच्छिनी हूँ, इससे यहाँ अब रहने को जी नही करता।"

यज्ञदत्त—"कहाँ रहना चाहती हो?"

बहू—"कलकत्ते मे अगर किसी भले-घर मे जगह मिल जाती, मैं तो सब काम करना जानती हूँ।"

यज्ञदत्त—"तुम अपने घर जाओगी?"

बहू—"मेरा अपना घर? वह कहाँ है? वे लोग क्या अब रहने देगे?

यज्ञदत्त ने अपने हाथ से स्त्री का मुँह ऊँचा करके कहा—"मेरे घर चलोगी?"

बहू—"चलूँगी।"

यज्ञदत्त—"सुरमा तुम्हारे लिए बडी घबरा रही है।"

सुरमा के जिक्र से उसका चेहरा मारे खुशी के फूल उठा,—"जीजी मेरी याद करती हैं?"

यज्ञदत्त—"खूब करती हैं।"

बहू—"तो ले चलिए।"

दुनिया मे एक तरह के ऐसे आदमी हैं जिन्हे दूसरो के बारे मे अपनी राय जाहिर करने की बुद्धि ही किसी तरह ढूँढे नही मिलती, मगर उनमे ऐसी एक सहज बुद्धि होती है कि वे उस पर निर्भर होकर अपने बारे में और किसी से सलाह लेने की कतई जरूरत नही समझते। नयी बहू इसी कोटि की है। वह अपनी बात आप ही सोचती है, दूसरे से नही पूछती। उसने सोचकर कहा—"आप लोगो का अमगल होने का बड़ा डर है मुझे, पर रहूँ भी तो कहाँ रहूँ? नही तो मैं नीचे ही रहा करूँगी, सब काम-काज करने मे नीचे आराम भी रहेगा।"

यज्ञदत्त—"ऊपर क्या तुम्हारे रहने का कमरा नही है?"

"है, पर नीचे के कमरे में ही अच्छी रहूँगी।"

यज्ञदत्त ने फिर कोई बात नही की। वह सोचने लगा, इसकी बाते तो बिलकुल बेवकूफो की-सी नही हैं और कई बार मन मे आयी कि कह दे,— वह कुलच्छिनी नही है, राक्षण गण वगैरह सब झूठ है। पर झूठ बोलने का कारण क्या है, उसे कैसे बताया जाय? खासकर वह इस बात का भी भरोसा नही कर सका कि घर जाकर वह अपने पिछले और आगे के व्यवहार मे अच्छी तरह सामञ्जस्य भी रख सकेगी।

७

सुरमा ने देखा, कि बहू आ गयी। उग्र नशे का पहला झोका सँभालकर अब वह स्थिर हो गयी है। इसी से बहू को देखने के लिए उसने ज्यादती नही की। शान्त धीर भाव से प्रिय-सम्भाषण किया, मौखिक ही नही, अन्तरग की मगलेच्छा उसके सूखे चेहरे पर फिर से ज्योति ले आई।

बोली—"बहू, तुम्हारी तबीयत वहाँ ठीक नहीं रही?"

बहू ने सिर हिलाकर कहा—"बीच-बीच मे बुखार आ जाता था।"

सुरमा ने उसके माथे का पसीना पोछकर कहा—"यहाँ इलाज होते ही सब अच्छा हो जायगा।"

दोपहर को सुरमा को खबर लगी कि बहू के लिए नीचे का कमरा साफ हो रहा है; मारे अपमान के

उसकी आँखो मे ऑसू भर आये। किसी तरह उन्हें रोकते हुए वह यज्ञदत्त के पास जाकर बोली—"भइया, वहू क्या नीचे सोयेगी? तुम कुछ नही कहोगे?"

"मैं क्या कहूँ? जिसके मन मे जो आवे, करे।"

सुरमा लज्जा और धिक्कार से अपने को कावू मे न रख सकी, उसके सामने ही रो दी ओर भाग खडी हुई। ऊपर की यह वारदात नीचे तक न पहुँची।

नयी बहू नये सिरे से घर के काम-काज मे जुट पडी। क्रमश' धीरे-धीरे उसने सुरमा का सब काम अपने हाथ मे ले लिया। सिर्फ ऊपर नही जाती, पति के साथ मुलाकात नही करती। धीरे-धीरे सुरमा ने भी ऊपर का जाना-आना छोड दिया। बहू प्रफुल्ल-गम्भीर मुख से काम करती और सुरमा पास बैठी रहती। एक यह देखती कि काम करने मे कितना सुख है और दूसरी यह समझती कि काम की बहती धारा मे कितना दु ख बहाया जा सकता है। दोनो मे से कोई भी ज्यादा बातचीत नही करती, फिर भी उनमे परस्पर सहानुभूति क्रमश गाढी ही होती गयी।

बीच-बीच मे नयी बहू को अकसर बुखार आता और दो-चार दिन उपवास करने से अपने आप चला जाता। दवा खाने की ओर न उसकी प्रवृत्ति है और न खाती है। उस समय का काम-धन्धा नौकर-नौकरानियाँ ही करती हैं, सुरमा से होता नही, इच्छा होने पर भी यह उसके सामर्थ्य से बाहर की बात है।

सोने की प्रतिमा सुरमा देवी का अब न तो वह रग है ओर न ही वह कान्ति। इतना लावण्य इन दो ही महीनो मे न जाने कहाँ उड गया! वह कभी-कभी कहती है—"जीजी, तुम दिन पर दिन ऐसी क्यो होती जा रही हो?"

"मैं? अच्छा भाभी, स्वास्थ्य सुधारने के लिए अगर कही बाहर चली जाऊँ, तो तुम्हे तकलीफ तो न होगी?"

"जरूर, होगी?"

"तो नही जाऊँगी।"

"नही जीजी, मत जाना, तुम दवा-दारू कराके यही अच्छी हो जाओ।"

सुरमा ने स्नेह से उसका ललाट चूम लिया।

एक दिन सुरमा यज्ञदत्त के लिए थाली लगा रही थी। यज्ञदत्त उसका मलिन सूखा चेहरा सतृष्ण दृष्टि देख रहा था। सुरमा के ऑख उठाकर देखते ही उसने दीर्घ नि.श्वास लेते हुए कहा—"मन मे आता है, मर जाऊँ तो अच्छा।"

"क्यो?" कहते ही सुरमा की आँखो मे आंसू भर आये। "डरता हूँ, न जाने ओर कब तक प्राणो का भार ढोना पडेगा।" बन्दूक की गोली खाकर वन का पशु जैसे जमीन छोडकर आसमान की ओर भागने के लिए जी-जान से उछल पडता है, किन्तु आसमान उसका कोई नही, इसलिए वह आश्रयशून्य मरणाहत जीव अन्त मे चिर-आश्रय पृथिवी को ही हृदय से लगाकर प्राण त्याग देता है, ठीक उसी तरह छटपटाती हुई सुरमा ने पहले तो आकाश की ओर देखा, उसके बाद जमीन पर लोटकर वह रोने लगी—"यज्ञ भइया, क्षमा करो, मैं तुम्हारी शत्रु हूँ, मुझे और कही भेज दो, तुम सुखी होओ।"

कही नौकरानी न आ जाय, इस डर से यज्ञदत्त ने हाथ पकडकर उसे उठा लिया। स्नेह से उसके आँसू पोछते हुए कहा—"छि , इस तरह लडकपन नही किया करते।"

आँसू पोछती हुई सुरमा झटपट कमरे मे चली गयी और उसने भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया।

८

उसके बाद, एक दिन सुरमा ने बहू को अपने पास खीचकर धीरे से पूछा—"बहू, भइया ने क्या तुमसे कभी कुछ कहा है?"

बहू ने सहज भाव से जवाब दिया—"कहेगे क्या?"

"तो फिर, तुम उनके पास जाती क्यो नही? तुम्हारी क्या तबीयत नही होती जाने की?"

बहू को पहले तो शरम मालूम होने लगी, फिर सिर झुकाकर बोली—"होती तो है जीजी, लेकिन जाना तो नही हो सकता न!"

"क्यो वहू?"

"तुम्हे याद नही?"

"नही तो!"

"अरे, शायद तुम भूल गयी हो जीजी, मेरा राक्षण गण है और उनका नर गण है।

"किसने कहा?"

"उन्ही ने बुआजी से कहा था, इसीसे तो—"

सुरमा के एकाएक रोगटे खडे हो गये, बोली—"यह तो झूठी बात है बहू।"

"झूठी बात?"

आँखे फाडकर वह सुरमा के मुँह की ओर देखती रह गयी। सुरमा बार-बार सिहरने लगी।

बोली—"झूठी बात है बहू, बिलकुल झूठ!"

"मुझे विश्वास नही होता, वे झूठ बोलेगे।"

सुरमा से अब न सहा गया। वह दोनो बाहुओ से उसका दृढ आलिगन करके फूट-फूटकर रोने लगी—"बहू, मैं महापातकिनी हूँ।"

बहू ने अपने को छुडाकर धीरे से कहा—"क्यो जीजी?"

उफ् उसे अब मत सुनो। मैं नही कह सकूँगी।"

आँधी की तरह सुरमा यज्ञदत्त के सामने आ पहुँची। बोली—"बहू को इस तरह धोखे मे रख छोड़ा है? उफ्, कैसे भयानक झूठे हो तुम।"

यज्ञदत्त दंग रह गया। "यह क्या सुरो!"

"कृतविद्य हो तुम, छि. छि , तुम्हे शरम आनी चाहिए थी।"

यज्ञदत्त कुछ मतलब नही समझ सका, सिर्फ कडुवी बाते सुनने लगा—

"क्या सोचकर व्याह किया था?— क्या सोचकर उसे छोड़े हुए हो?— मेरे लिए? मेरा मुँह देखकर इस तरह धोखा देते आ रहे हो?"

"सुरमा, पागल हो गयी क्या?"

"पागल मैं हूँ? तुमसे मुझमे ज्यादा ज्ञान है, मुझे और कही भेज दो।" कहते हुए सुरमा की आँखे सुर्ख हो गयीं, हाँफती हुई बोली—"एक दण्ड मैं यहा नही रहना चाहती, छि. छि ।"

यज्ञदत्त ने बडे जोर से चिल्लाकर कहा—"क्या कहती हो?"

"कहती हूँ, तुम झूठे हो, धोखेबाज हो!"

निमेषमात्र मे यज्ञदत्त के माथे के अन्दर आग-सी जल उठी, बिना कारण ही उसे मालूम हुआ, उसके भीतर की आत्मा बाहर निकलकर उसे युद्ध करने के लिए ललकार रही है। ज्ञान-शून्य होकर वह टेबिल पर रखा हुआ भारी 'रूलर' उठाकर जोर से चिल्लाता हुआ बोला—"मैं अधम हूँ!— मैं धोखेबाज हूँ, झूठा हूं!— और यह उसका प्रायश्चित करता हूँ!"

कहते हुए यज्ञदत्त पूरी ताकत से उसे अपने सिर पर मार लिया। सिर फटकर झरझर खून बहने लगा। सुरमा अस्फुट स्वर से पुकार उठी—"मैया री!" उसके बाद वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पडी। यज्ञदत्त ने उसे देखा, देखा कि स्वय उसका तमाम मुँह खून से लथपथ हो गया है, आँखो मे खून चला जाने मे सब धुँधला-सा दिखाई देता है, वह उन्मत की तरह कहने लगा—"अब क्यो? इतने मे पीछे से किसी ने आकर पकड लिया। मुडकर देखा, स्त्री है। रोता हुआ बोला—"तुम आ गई?"

कधे पर सिर रखकर वह बेहोश हो गया।

सुरमा जिस तरह नीचे से ऊपर भाग आई थी, नयी बहू उससे आश्चर्यान्वित और शकित हाकर चुपके से उसके पीछे-पीछे आकर दरवाजे के पास बाहर खडी हो गयी थी, उसने सब बाते सुनी और सब देख लिया। बहुत-सा सत्य उसके माथे के भीतर सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट हो गया, उसकी भी छाती की धडकन तेज हो गयी, आँखो के बाहर कुहरा-सा छाया जा रहा था, किन्तु, उसने अपने को सम्हालकर इस विपत्ति के समय पति को गोद मे ले लिया।

छह दिन बाद अच्छी तरह होश आने पर, सुरमा ने पूछा—"भइया तबीयत कैसी है?"

दासी ने जवाब दिया, ' अच्छी है।"

"मैं देख आऊँ।" कहती हुई सुरमा उठी, पर फिर पड रही। दासी ने कहा—"तुम अभी बहुत

कमजोर हो, और बुखार भी आ रहा है, उठो मत डाक्टर ने मना किया है।

सुरमा ने आशा की कि यज्ञ-भइया देखने आयेंगे, बहू आयेगी। एक दिन, दो दिन, करते-करते एक सप्ताह बीत गया; पर कोई नहीं आया। किसी ने खबर तक नहीं ली। बुखार अब नहीं आता, पर कमजोरी बहुत है। अब उठने की कोशिश करने से शायद उठ सकती; परन्तु, जबरदस्त अभिमान के कारण उठने की प्रवृत्ति ही नहीं हुई उसे। वह अपने मन ही मन उफन-उफनकर रोने लगी, और आँखें पोछकर सोचती, अपनी प्रकाश और छाया की कहानी।

दीप्त प्रकाश और गाढ़ी छाया लेकर उन लोगों ने खेल शुरू किया था, अब प्रकाश बुझता-सा जा रहा है। मध्याह्न का सूर्य पश्चिम की ओर झुक गया है, गाढ़ी छाया इसी से अस्पष्ट और विस्तृत होकर प्रेत के समान ककालसार हो गयी है। वह छाया अज्ञात अन्धकार की ओर मानो उसमे खो जाने के लिए धीरे-धीरे खिसकती जा रही है। रोते-रोते सुरमा सो गयी।

देह पर गरम हाथ रखकर किसी ने मानो बुलाया—"जीजी।"

सुरमा उठकर बैठ गयी, बोली—"यह क्या बहू?"

आँखे उसकी लाल सुर्ख हो रही थी, मुँह सूखा, ओठों पर स्याही-सी पुत रही थी। सुरमा ने फिर पूछा—"क्यो बहू क्या हुआ है तुम्हे?"

"क्या हुआ है मुझे? तुम मुझे इस घर मे लायी थी, इसीसे कहने आयी हूँ तुमसे, जीजी, मुझे छुट्टी दे दो। मैं जाऊँगी?"

"क्यो बहन, कहाँ जाओगी?"

नयी बहू सुरमा के पैरों पर सिर रखकर जमीन पर लोट गयी।

सुरमा ने देखा कि उसकी देह आग-सी जल रही है। बोली—"यह क्या! तुम्हें तो खूब बुखार चढ़ा हुआ है।

इतने में एक नौकरानी चिल्लाती हुई दौडी आयी, बोली—"जीजी, बहूजी कहाँ गयी? अरी मैया, बुखार की बेहोशी में ही भाग आयी हैं। आज आठ दिन हुए, बेहोश पडी हुई हैं। मैया! कैसे आयी यहाँ?"

"आठ दिन से बुखार है! डाक्टर देख रहे हैं?"

"कोई नही जीजी, कोई नही देखता। परसों सबेरे भी बहूजी घंटे-भर तक नल के नीचे सिर किये बैठी रही थी; इतना मना किया, पर एक न सुनी।"

शाम होने से पहले सुरमा यज्ञदत्त के कमरे से जाकर रो दी—"भइया, बहू का तो अब जीना मुश्किल है।"

"जीना मुश्किल है! क्या हुआ?"

"मेरे कमरे में चलकर देखो भइया, बहू का तो अब बचना मुश्किल है।"

दो-तीन डाक्टरो ने आकर कहा—"प्रबल विकार है।" रात भर परिश्रम करने के बाद सबेरे वे लोग विफल होकर चले गये।"

रात भर यज्ञदत्त सिरहाने बैठा रहा, कितनी ही बार मुँह के पास मुँह ले गया, पर बहू पति को नही पहचान सकी।

डाक्टरो के चले जाने पर यज्ञदत्त रो उठा—"बहू, एक बार आँख खोलकर देखो, एक बार कह दो, क्षमा कर दिया।"

सुरमा पाँव के पास कपडे मे मुँह छिपाकर अस्फुट स्वर मे बोली—"भाभी, क्यो ऐसी सजा दे गयी?"

कौन बात करता? सम्पूर्ण मान, अभिमान, अवज्ञा और अनादर को दूर हटाकर धीरे-धीरे वह अन्त मे विलीन हो गयी।

सुरमा ने कहा—"भइया कहाँ हैं?"

दासी ने उत्तर दिया—"कल वे पछाँह की तरफ कही चले गये हैं।"

"कब आयेगे?"

"मालूम नही, शायद जल्दी नही आयेगे।"

"मैं कहाँ रहूँगी?"

"मुनीमजी से कह गये हैं, जितने चाहो रुपये लेकर तुम्हारी जहाँ खुशी हो, वहाँ रहना।"

सुरमा ने आकाश की ओर देखा—देखा संसार का प्रकाश बुझ गया है, सूर्य नही है, चन्द्र नही है, एक तारा भी नहीं दिखाई देता। अगल-बगल देखा— वह अस्पष्ट छाया भी न जाने कहाँ गायब हो गयी है,— चारों तरफ घोर अन्धकार है। छाती की धडकन भी मानो उसकी बन्द होना चाहती है, आँखो की ज्योति भी म्लान और स्थिर होना चाहती है।

दासी ने बुलाया—"जीजी!"

ऊपर को देखते हुए सुरमा ने पुकारा—"यज्ञ भइया!" उसके बाद वह धीरे-धीरे लुढ़क पड़ी।

हरिचरण

वह बहुत दिन पहले की बात है। लगभग दस-बारह साल हो गये हैं। तब दुर्गादासबाबू वकील नही बने थे। दुर्गादास बद्योपाध्याय को तुमलोग शायद अच्छी तरह नही जानते, मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आओ, उनसे आज परिचय करा दूँ।

बचपन मे न जाने कहाँ से एक अनाथ पितृमातृहीन कायस्थ बालक ने रामदासबाबू के घर आश्रय ग्रहण किया था। सब कहते थे कि लडका बडा अच्छा है। बहुत सुन्दर और बुद्धिमान। दुर्गादासबाबू के पिता का प्रिय भृत्य था।

सब काम वह खुद अपने ऊपर ले लेता था। गाय को चारा देने से लेकर बाबू को तेल लगाने तक के सब काम वह खुद करना चाहता था। उसे सर्वदा व्यस्त रहना अच्छा लगता था।

लडके का नाम था हरिचरण। गृहिणी अक्सर हरिचरण के काम को देखकर अचभे मे आ जाया करती थी। बीच-बीच मे फटकार कर कहती भी थी 'हरि, और भी तो नौकर हैं, तू अभी बालक है, क्यो इतना खटता है?' हरि के अवगुणो में था उसका हँसना। हँसना बहुत अच्छा लगता था उसे। वह हँसकर जवाब देता, 'मा, हम लोग गरीब आदमी है, खटना पडेगा हमे हमेशा।' फिर बैठे रहकर क्या होगा?'

इस तरह कामकाज, आराम और स्नेह मे हरिचरण का करीब एक साल गुजर गया।

सुरो रामदासबाबू की छोटी लडकी है। अब सुरो की उम्र पाँच-छ साल है। हरिचरण से सुरो की बहुत पटती थी। जब दुग्धपान के निमित्त सुरो गृहिणी से द्वद्वयुद्ध मे प्रवृत्त हो जाती थी, जब माँ बहुत देर तक बकझक करके भी अपनी इस क्षुद्र कन्या पर काबू नही कर पाती थी और दुग्धपान की विशेष आवश्यकता तथा उसके अभाव में कन्यारत्न के आशु प्राण वियोग की आशका मे उद्विग्न होकर अत्यन्त क्रोध से सुरबाला के गडद्वय को विशेष रूप से दबाकर भी उसे दूध नही पिला पाती थी, तब हरिचरण की बात से ही काम बन जाता था। दरअसल सुरो हरिचरण को बहुत पसद करती थी।

दुर्गादास बाबू की उमर जब बीस साल थी, तब की बात कह रहा हूँ। दुर्गादास अबतक कलकत्ता मे पढते थे। घर आने के लिये उन्हे स्टीमर से दक्षिण की ओर जाना पडता था, उसके बाद भी करीब दस-बारह कोस पैदल रास्ते पर होकर आना पडता था। सुतरा घर का यह पथ विशेष सहजगम्य नही था। तभी दुर्गादास बाबू अक्सर घर नही आते थे।

लडका बी ए पास होकर घर आया है। अत्यन्त व्यस्त हैं माँ। लडके को अच्छी तरह खिलाने-पिलाने और सेवा-जतन करने के लिये घर पर सब लोग एक साथ उत्कठित हो गये।

दुर्गादास ने पूछा, 'माँ, यह लडका कौन है?'

माँ ने कहा, 'यह एक कायस्थ का लडका है, बाप-माँ नही है उसके, तभी तेरे पिता ने उसे अपने यहाँ रखा है। घर के सब काम-काज करता है, बडी शान्त प्रकृति का हे लडका, कभी किसी बात पर नाराज नही होता। फिर, बिना माँ-बाप का है बालक है बेचारा। मैं बहुत चाहती हूँ उसे।

घर आकर दुर्गादासबाबू को हरिचरण का यह परिचय मिला।

जो हो, आजकल हरिचरण का वहुत काम बढ गया है। इस कार्यवृद्धि से वह असतुष्ट नही, वरन सतुष्ट ही प्रतीत होता है। छोटे बाबू (दुर्गादास) को स्नान कराना, जरूरत के वक्त पानी भरा गडुआ, ठीक समय पर पान का डिब्बा, हुक्का वगैरह पेश करने मे वहुत पटु है हरिचरण। दुर्गादास बाबू बहुधा सोचते है कि लडका वहुत इन्टेलीजेन्ट है। लिहाजा कपडों में चुनट डालने और हुक्का भरने के काम हरिचरण के न करने पर दुर्गादासबाबू को पसंद नही आते थे।

कुछ समझ मे नही आता, कहाँ का पानी कहाँ जाकर मरता है। बडा दुरूह तत्त्व है यह। क्या तुमने देखा है कि अच्छी वात का अच्छा ही परिणाम है, क्या कभी बुरा नही होता? यदि तुमने न देखा हो तब आओ, आज मैं तुम्हे दिखाऊँ यह दुरूह तत्त्व।

आज दुर्गादासबाबू का एक शानदार भोज मे निमत्रण है। घर भोजन नही करेगे, शायद बहुत रात गये लौटेगे। इसीलिये हरिचरण को रोजमर्रा का काम खतम करके सो जाने को कह गये हैं।

अब हरिचरण की बात कहता हूँ। दुर्गादासबाबू रात को बाहर के बैठकखाने मे ही सोते थे। इसका कारण बहुत से लोग नही जानते। मेरा खयाल है कि उनकी पत्नी पित्रालय होने के कारण उन्होने अपने लिये यह व्यवस्था बनाई थी।

रात को दुर्गादासबाबू का विस्तर लगाना, फिर उनके सोनेपर उनकी पद सेवा आदि कार्य हरिचरण के जिम्मे थे। बाद मे बाबू को अच्छी तरह नीद आ जाने पर हरिचरण पास के एक कमरे मे जाकर सो जाता था।

संध्या होने के पहले से ही उस दिन हरिचरण का सिरदर्द करने लग गया। हरिचरण समझ गया कि अब उसे बुखार आनेवाला है। बीच-बीच मे उसे अकसर बुखार आ जाता था। इसलिये इन लक्षणो को वह बखूबी जानता था। हरिचरण और बैठ नही पाया, अपने कमरे मे जाकर सो गया। छोटे बाबू का विस्तर नही लगा है, यह बात उसे याद नही रही। रात को सब ने भोजन किया, पर हरिचरण भोजन करने नही आया। गृहिणी देखने आयी। हरिचरण सोया था, उसके बदन पर हाथ लगाकर देखा कि वहुत गरम है। समझ गयी कि बुखार आ गया है उसे। लिहाजा उसे और कुछ न कहकर चुपचाप चली गयी वे।

रात का दूसरा पहर हो चला था। भोज के उपरान्त दुर्गादासबाबू ने घर आकर देखा कि उनका विस्तर नही लगा है। एक तो उन्हे नीद आ रही थी, फिर तमाम रास्ते यही सोचते आ रहे थे कि जाते ही विस्तर पर पड जायेगे, हरिचरण उनके श्रान्त पदयुगल से बिनामा (जूते) खोलकर धीरे-धीरे उन्हे दवाने लगेगा और वे आराम से तंद्रा मे गडगडे का नल मुँह मे लेकर आँखे खोलकर एकदम सुबह की रोशनी देखेगे।

विलकुल हताश होकर वे गुस्से से आगबबूला हो गये। दो-चार बार 'हरिचरण', 'हरि', 'हरे' आदि कहकर चिल्लाये। लेकिन कैसे आये हरि? वह तो ज्वर के प्रकोप से बेहोश पडा है। तब दुर्गादासबाबू ने सोचा कि हरामजादा सो गया है। उसके कमरे मे जाकर देखा कि अच्छी तरह ढक-ढॉप कर सो रहा है।

और बरदाश्त नही हुआ उन्हे। बडी जोर से हरि के बाल पकडकर खीच के उसे बैठाने की कोशिश की, लेकिन हरि फिर ढुलक कर विस्तर पर सो गया। तब अत्यन्त क्रोधवश दुर्गादासबाबू हिताहित ज्ञानशून्य हो गये। हरि की पीठ पर उन्होने सबूट पदाघात किया। करारी चोट खाकर वह होश मे आकर बैठ गया विस्तर पर। दुर्गादासबाबू बोले, 'दुधमुँहा बच्चा है क्या तू जो सो गया था? विस्तर कौन लगायेगा? मैं? बातचीत मे उनका गुस्सा और बढ गया। हाथ के बेत से हरिचरण की पीठ पर फिर उन्होने दो-तीन वार कर दिये।

हरि जब रात को पदसेवा कर रहा था, तब शायद एक बूँद गरम पानी दुर्गादासबाबू के पैर पर टपक पडा था।

तमाम रात दुर्गादासबाबू को नीद नही आई। पानी की वह एक बूँद उन्हे वहुत गरम मालुम हुई थी। दुर्गादासबाबू हरिचरण को बहुत प्यार करते थे। अपनी नम्रता के लिये वह केवल दुर्गादासबाबू का ही नही, सब का प्रियपात्र था। फिर, महीने भर की इन घनिष्ठता के बाद और प्रिय बन गया था।

रात को कितनी ही बार दुर्गादासबाबू के मन मे यह बात आई थी कि जाकर एक बार देख आये कि उसकी पीठ मे कितनी चोट आई है, कितनी सूजन आ गई है। पर वह तो नौकर है न यह उनके लिये

मुनासिब नही। कितनी बार मन मे आया है कि पूछ आये, बुखार कम हुआ कि नहीं। पर शर्म के मारे नही जा पाये। सुवह हरिचरण ने मुँह धोने का पानी ला दिया, हुक्का भर दिया। तब भी वे कह सकते थे, 'ओह! वह तो एक बारह साल का बालक मात्र है! बालक समझकर भी उसे पास बुलाकर उसकी पीठ को देख सकते थे, उसपर आहिस्ते से हाथ फेर सकते थे। एक बालक से क्या लज्जा?

दिन के नौ बजे न जाने कहाँ से एक टेलिग्राम आ गया। तार की बात सुनकर ही दुर्गादासबाबू का मन बहुत विचलित हो गया। तार खोलकर देखा कि स्त्री अत्यत पीडित है। धड से उनकी छाती एक हाथ बैठ गयी। उसी दिन उन्हे कलकत्ता के लिये रवाना हो जाना पडा। गाडी मे बैठ कर उन्होने सोचा, 'हे भगवान! प्रायश्चित्त होगा क्या?'

प्राय. महीना भर हो गया है। आज दुर्गादासबाबू का चित्त प्रसन्न है। उनकी पत्नी ठीक हो गयी है। आज उन्हे पथ्य मिला है।

घर से आज एक चिट्ठी आई है। चिट्ठी दुर्गादासबाबू के छोटे भाई ने लिखी है। पत्र के अन्त में 'पुनश्च' करके लिखा गया है .

'बडे दु ख की बात है कि कल सुबह दस दिन के ज्वर विकार से हरिचरण की मृत्यु हो गई है। मरने से पहले उसने बहुत बार आप को देखने की ख्वाहिश जाहिर की थी।

ओह! मातृ-पितृहीन अनाथ!

दुर्गादासबाबू ने धीरे-धीरे पत्र के सौ टुकड़े करके उन्हें फेंक दिया।

मुकदमें का परिणाम

वृद्ध वृन्दावन सामन्त की मृत्यु के पश्चात् उसके दोनो लडके शिवू और शभू ने प्रतिदिन लड़ाई-झगडा करते हुए छः महीने एक ही परिवार मे रहते हुए काट दिये। इसके बाद एक दिन अलग हो गये।

गाँव के जमीदार चौधरी महाशय ने स्वयं ही आकर उनकी खेती-वारी, जमीन-जायदाव, तालाव-बगीचा सब कुछ का बँटवारा कर दिया। छोटा भाई सामने के तालाब के उधर दो मिट्टी के घर बनाकर छोटी बहू एवं बाल-बच्चों को लेकर पुराने घर को हमेशा के लिए छोड दिया।

सवका बँटवारा हो गया, केवल एक छोटे से बाँस के झाड का हिस्सा नही हो सका। कारण, शिवू ने आपत्ति करते हुए कहा—"चौधरी महाशय, बाँस का झाड तो मुझे अवश्य चाहिए। घर-द्वार सव पुरानी हो गयी हैं, छप्पर को बदलवाने एवं खूँटा-खूँटी लगाने के लिए बाँस की मुझे रोज जरूरत है। गाँव मे किससे माँगने जाऊँगा, बताइए?"

शम्भू प्रतिवाद के लिए उठकर बड़े भाई के मुँह की ओर हाथ हिलाते हुए वोला—"अहा, इन्ही के घर मे खूँटा-खूँटी के लिए बाँस चाहिए और मेरे घर का काम केले का पेड काटकर लगा देने से ही हो जायगा, है न? यह नही होगा, यह नही होगा चौधरी महाशय, बाँस का झाड मुझे न मिलने से काम नही चलेगा, यह कहे देता हूँ।"

मीमासा यही तक होते-होते रह गयी। फलत सम्पत्ति रही दोनो शरीको की। उसका फल यह हुआ कि शभू यदि उसकी एक भी टहनी पर हाथ डालने आता तो शिबू गँडासा लेकर दौडा आता और शिबू की स्त्री के वाँस के झाड के नीचे से पैदल चलने पर शंभू लाठी लेकर मारने दौडता।

उस दिन सबेरे इस बाँस के झाड के कारण ही दोनों परिवारो मे बडा झगड़ा हो गया। षष्ठी देवी की पूजा अथवा ऐसे ही किसी देवकार्य के लिए वडी वहू गगामणि को कुछ बाँस के पत्तो की आवश्यकता थी। गँवई गाँव में यह वस्तु कुछ दुर्लभ नही थी, परन्तु अपना होते हुए दूसरे के आगे हाथ फैलाने में उसे शर्म लगती थी। विशेषकर उसके मन में भरोसा था कि देवर इस समय तक अवश्य ही खलिहान पर चला गया होगा—अकेली छोटी बहू क्या कर लेगी।

परन्तु किसी कारणवश शभू को उस दिन खलिहान पर जाने मे देर हो गयी थी। वह वासी भात खाकर हाथ धोने का उपक्रम कर रहा था, इसी समय छोटी वहू ने तालाव के घाट से गिरती पड़ती दौडती हुई पति को आकर समाचार दिया। शंभू की कही तो रही पानी का लोटा, कही रहा हाथ-मुँह धोना, उसने अरे-अरे शब्द से सारे मुहल्ले को गुँजाते हुए तीन कुदान मे ही पास आकर भाभी के हाथ से बाँस के पत्ते छीनकर फेक दिये और साथ-ही-साथ वडी भाभी के प्रति जिन वाक्यो का प्रयोग किया, वे सव उसने चाहे जहाँ से सीखे हो, रामायण के लक्ष्मण-चरित्र से नही सीखे थे, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

इधर वडी वहू ने रोते-रोते घर जाकर अपने पति के पास खवर भेज दी। शिवू हल छोड़कर हाथ मे हँसिया लिए दौड़ता हुआ आ पहुँचा और बाँस के झाड़ के पास ही खडा हो अनुपस्थित छोटे भाई के उद्देश्य से अस्त्र घुमाते हुए चीत्कार करके ऐसा उपद्रव खड़ा कर दिया कि भीड जमा हो गयी। उससे भी जव क्षोभ नही मिटा, तव वह जमींदार के घर नालिश करने चल दिया और यह कहकर धमका आया कि

चौधरी साहब इसका न्याय करें तो अच्छा है, अन्यथा वह अदालत में जाकर एक नम्बर का मुकद्दमा चलाएगा—तभी उसका नाम शभू सामन्त होगा।

उस ओर शभू बॉस के पत्ते छीनने का कर्त्तव्य पूरा करके ही प्रसन्न भाव से हल-बैल ले खेत चला गया था। स्त्री की मनाही नही सुनी। घर मे छोटी बहू अकेली थी। इस बीच जेठ वहाँ आकर अपने चीत्कार द्वारा सारे मुहल्ले को इकट्ठा कर, वीरदर्प से इकतरफा विजयी बनकर चला गया। छोटे भाई की बहू होने के कारण वह सब कुछ कानो से सुनकर भी किसी बात का जवाब नही दे सकी। इससे उसके मनस्ताप एव पति के विरुद्ध रोष की सीमा नही रही। वह रसोईघर की ओर भी नही गयी। उदास मुँह बरामदे के ऊपर पॉव फैलाये हुए बैठी रही।

शिबू के घर मे भी यही दशा थी। बडी बहू प्रतिज्ञा करकेपति के वापस आने की राह देखती हुई बैठी थी। या तो इसका फैसला कराओ, वर्ना वह पानी तक मुँह में न डालकर मायके चली जाएगी। दो बाँस के पत्तों के लिए देवर के हाथ से इतनी लाँछना!

डेढ़ पहर का समय हो गया, तबतक शिबू का कोई पता नहीं। बड़ी बहू छटपटाने लगी, क्या पता चौधरी साहब के घर से ही वे एक नम्बर की नालिश दायर करने सीधे अदालत को न चले गये हों।

इसी समय बाहर दरवाजे पर झटाक से जोर का धक्का देते हुए शंभू के बडे लडके गयाराम ने प्रवेश किया। उसकी आयु सोलह-सत्रह वर्ष अथवा इतनी ही कुछ थी। परन्तु इस आयु में ही क्रोध और भाषा मे वह अपने बाप को भी पीछे छोड गया था। वह गाँव के माइनर स्कूल में पढ़ता है। आजकल सुबह का स्कूल है। साढ़े दस बजे ही स्कूल की छुट्टी हो गयी थी।

गयाराम की जब एक वर्ष की आयु थी, तब उसकी माता की मृत्यु हो गयी थी। उसका पिता शभू दूसरा विवाह कर नयी बहू को घर ले आया जरूर, परन्तु इस मातृ-हीन बालक को बडा करने का भार ताई के ऊपर ही पडा एव इतने दिनों तक दोनो भाई के अलग न होने तक यह भार वही वहन करती आ रही थी। विमाता के साथ उसका किसी भी दिन कोई भी विशेष संबंध नही रहा—यहाँ तक कि उसके नये घर मे चले जाने पर भी गयाराम को जब कभी सुविधा मिलती, वही भोजन कर लेता था।

आज वह स्कूल के बाद घर में घुसते ही विमाता के मुँह और भोजनादि के प्रबंध को देखकर प्रज्वलित हुताशन के समान जलता हुआ इस घर से चला आया। ताई का मुँह देखकर उसकी उस अग्नि में पानी नही पडा, किरासिन तेल पड़ गया। उसने बिना कुछ भूमिका बाँधे ही कहा—'भात दो ताई।'

ताई ने बात नहीं की, जैसी बैठी थी, वैसे ही बैठी रही।

क्रुद्ध गयाराम जमीन पर एक पाँव मारता हुआ बोला, 'भात देगी या नही देगी, कहो?'

गगामणि ने क्रोध सहित मुँह उठाकर बरसते हुए कहा—'तेरे लिए भात राँध कर बैठी हूँ जो दूँगी। क्या तेरी सौतेली माँ अभागी भात नही दे सकी, जो यहाँ आकर हगामा मचा रहा है?'

गयाराम चिल्लाता हुआ बोला—'उस अभागी की बात नहीं जानता। देगी या नही, बता? नही देगी तो चलूँ मैं तेरी सब हाडी-मटकी तोडने के लिए।' कहकर वह गोले के पास के ईंधन के ढेर में से एक लकडी उठा कर रसोईघर की ओर चल दिया।

ताई भयभीत हो चीत्कार कर उठी—'गया! हरामजादा! डकैत! उपद्रव मत कर, कहे देती हूँ। दो दिन भी नही हुए मैंने नयी हाँडी-मटकी निकाली हैं, यदि कोई फूट गयी तो तेरे ताऊ से कहकर तेरा एक पॉव यदि न तुडवा दूँ तब कहना हाँ!'

गयाराम ने रसोईघर की साँकल से जाकर हाथ लगाया। अचानक एक नयी बात याद आ जाने से वह अपेक्षाकृत शांत भाव से लौटते हुए बोला—'अच्छा, भात नहीं देती तो मत दे, मैं भी नहीं माँगता। नदी के किनारे वट वृक्ष के नीचे ब्राह्मणों की सभी लडकियाँ टोकरा भर-भरकर चिउडा-मुडकी ले जाकर पूजा कर रही हैं, जो माँगता है, उसी को देती हैं, देख आया हूँ। मैं जा रहा हूँ उन्हीं के पास।'

गगामणि को याद आया, आज अरण्यषष्ठी है, एव पलभर मे ही उसका मिजाज रूखेपन से कोमलता की ओर झुक गया तथापि मुँह पर जोर बनाए रखकर कहा—'तो जा न! कैसे खा सकेगा देखूँ?'

'देखना तब' कहकर गयाराम ने एक फटा अँगोछा खींचकर कमर पर लपेटते हुए प्रस्थान करने का उद्योग करते ही गगामणि उत्तेजित होकर बोली—'आज षष्ठी के दिन दूसरे के घर यदि खाया तो तेरी क्या

दुर्गति करूँगी, उसे देखना अभागे।'

गयाराम ने उत्तर नहीं दिया। रसोईघर में घुसकर थोड़ा-सा तेल लेकर माथे पर मलते-मलते उसे बाहर निकलते हुए देखकर ताई आँगन में आकर डराती हुई कहने लगी—'डकैत है। देवी-देवता के साथ गँवारपन। डुबकी लगाकर न लौट आया तो अच्छा नही होगा, कहे देती हूँ। आज मैं वैसे ही गुस्से मे हूँ।'

परन्तु गयाराम डरने वाला लडका नहीं है। वह केवल दाँत बाहर निकालकर ताई को अँगूठा दिखाता हुआ भाग कर चला गया।

गगामणि उसके पीछे-पीछे सडक तक आकर चिल्लाने लगी—'आज षष्ठी के दिन किसके लडके भात खाते हैं, जो तू ही भात खाना चाहता है? पटाली गुड के सदेश से, दूध-दही, फलाहार नही कर सकता जो तू जायेगा दूसरे घर माँगकर खाने के लिए? केवट के घर तू ऐसा नवाब जन्मा है?'

गया कुछ दूरी पर घूमकर खड़े होते हुए बोला—'तो तूने दिया क्यों नहीं मुँहजली? क्यो कहा कि नही है?'

गगामणि गाल पर हाथ रखकर चकित होती हुई बोली—'सुनो लड़के की वाते, कब मैंने कहा नही है? न स्नान, न कुछ, डकैत की भाँति आकर कहा 'दे भात'। भात क्या आज खाया जाता है जो देती? मैं कहती हूँ, सब कुछ तो मौजूद है, डुवकी तो लगा कर आते ही . .

गया ने कहा—'फलाहार तेरा सड जाय। रोज-रोज अभागियाँ लडाई करेगी और रसोईघर की 'साकल चढाकर। पाँव फैलाये बैठी रहेगी और रोज मैं तीसरे पहर सूखा भात खाऊँगा? नही, मैं तुम लोगो के। किसी के, यहाँ नहीं खाना चाहता।' उसे भन्-भन् करता हुआ जाते देखकर गंगामणि उसी जगह खडी होकर रोती-रोती गला फाडने लगी—'आज षष्ठी के दिन किसी से माँग-खाकर अमगल मत करना, मेरा राजा बेटा। अच्छा तो चार पैसे दूँगी रे, सुन।'

गयाराम ने भौंह। भी नहीं उठायी, झटपट चला गया। चलते-चलते कह गया—'मुझे नही चाहिए फलाहार, मुझे नही चाहिए पैसा। तेरे फलाहार पर मैं इत्यादि-इत्यादि।

वह दृष्टि से ओझल हो गया। गगामणि घर लौटकर क्रोध, दुःख, अभिमान से निर्जीव की भाँति वरामदे के ऊपर आ बैठी और गया के दुर्व्यवहार से मर्माहत हो उसकी विमाता को भला-बुरा कहने लगी।

परन्तु नदी के मार्ग पर चलते-चलते गया के कानों में ताई की बातें गूँजने लगी। एक तो अच्छे भोजन की ओर स्वभावतः ही उसे अधिक लालच था। पटाली गुड़ के संदेश, दही, दूध, पके केले, उसके ऊपर चार पैसा दक्षिणा—उसका मन बहुत जल्दी नरम होने लगा।

स्नान करके गयाराम भूख लिए लौट आया। आँगन में खडे होकर पुकारा—'फलाहार की सब चीजे शीघ्र लेकर आओ, ताई। मुझे बडी भूख लग रही है। परन्तु पटाली संदेश कम देगी तो आज तुझी को खा डालूँगा।'

गगामणि तभी गाय की टहल करने के लिए ग्वालघर में घुसी थी। गया की पुकार सुनकर मन-ही-मन अपनी गलती समझ गयी। घर में गुड, दूध, दही-चिउड़ा—सब था, परन्तु पके केले नही थे, पटाली गुड़ के संदेश भी नहीं थे। उस वक्त तो गया को रोकने के लिए जो मुँह मे आया, वही कह कर लालच दिखा दिया था।

उसने वहीं से उत्तर देते हुए कहा, 'तू झटपट भींगे कपडे वदल ले बेटा, मैं तालाब से हाथ धोकर आती हूँ।'

'जल्दी आ', कहकर हुक्म चलाता हुआ गया कपडे बदल स्वयं ही एक आसन बिछा लोटे में पानी भर तैयार होकर बैठ गया। गंगामणि झटपट हाथ धोकर उसका प्रसन्न मिजाज देख खुश होती हुई बोली—'यही तो मेरा राजा बेटा है। बात ही बात में क्या नाराज होना अच्छा है बेटे।' कहकर उसने भण्डार में से भोजन की सब वस्तुएँ लाकर सामने उपस्थित कर दीं।

गयाराम ने पलभर में सब वस्तुओं को देखकर तीक्ष्ण स्वर में पूछा, 'पके केले कहाँ हैं?'

गगामणि इधर-उधर करती हुई बोली—'ढाँकने की याद नही रही बेटे, सबको चूहे खा गये। एक बिल्ली पाले बिना अब काम नहीं चलेगा।'

गया हँसकर बोला—'चूहे कहीं केले खाते हैं? तेरे पास नहीं थे, यह क्यों नहीं कहती?'

गंगामणि अवाक् होकर बोली—'यह क्या कह रहा है रे! चूहे केले नहीं खाते?'

गया चिउड़ा-दही मिलाते-मिलाते बोला—'अच्छा खाते हैं। केलों की मुझे जरूरत नहीं है, पटाली-सन्देश ले आ। कम मत लाना अच्छा!'

ताई फिर भण्डारघर में जाकर झूठ-मूठ को कुछ देर तक हाँडी-मटकी हिलाकर भयभीत-सी होकर कह उठी, 'अरे, उन्हें भी चूहे खा गये बेटे, एक भी नहीं बचा, न जाने कब भूल से हाँडी का मुँह खुला छोड़ गयी।'

उसकी बात समाप्त होते न होते गया आँखें लाल कर चिल्ला उठा, 'पटाली-गुड़ को चूहे कब खाते हैं राक्षसी! मेरे साथ चालाकी। तेरे पास जब कुछ नहीं है तो मुझे क्यों बुलाया?'

ताई बाहर आकर बोली—'सच कहती हूँ, गया।'

गया उछलकर खड़ा हो गया, 'फिर भी कहती है, सच है। जा, मैं तेरा कुछ नहीं खाना चाहता।' कहकर उसने पाँव से ठोकर मारकर सब वस्तुओं को आँगन में फैला दिया। बोला—'अच्छा, मैं मजा दिखाता हूँ', कहकर वह उसी लकड़ी को हाथ में उठाकर भण्डारघर की ओर लपका।

गंगामणि 'हाँ-हाँ' कहती दौड़ पड़ी, परन्तु पलक मारते क्रुद्ध गयाराम ने हाँडी-मटकी फोड़कर चीज-वस्तु फैलाकर एकाकार कर दीं। उसे रोकते समय हाथ के ऊपर एक मामूली-सी चोट भी खा ली।

ठीक इसी समय शिबू जमींदार के घर से लौट आया। हंगामा सुनकर चिल्लाते हुए कारण पूछा तो गंगामणि पति का सहारा पाकर रो उठी तथा गयाराम हाथ की लकड़ी फेंककर तेजी से भाग खड़ा हुआ।

शिबू ने क्षुब्ध स्वर में कहा—'क्या बात है?'

गंगामणि ने रोते हुए कहा—'गया हमारा सर्वस्व तोड़ कर मेरे हाथ में एक चोट मारकर भाग गया है। यह देखो, सूज गया है।' कहकर उसने पति को हाथ दिखा दिया।

शिबू के पीछे उसका छोटा साला था। होशियार और पढ़ा-लिखा समझकर जमींदार के घर जाते समय शिबू उसे उस मुहल्ले से बुलाकर ले गया था। उसने कहा—'सामन्तजी, यह सब छोटे सामन्त की कारस्तानी है। लड़के से उसी ने यह काम कराया है।' 'क्या कहती हो दीदी, यही है न?'

गंगामणि का उस समय हृदय जल रहा था, उसने उसी समय गर्दन हिलाकर कहा—'ठीक है भाई, उसी ने मुँहजले लड़के को सिखाकर मुझे मार खिलायी है। इसका तुम्हें क्या करना है, करो, अन्यथा मैं गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँगी।'

अब तक शिबू ने नहाया-खाया कुछ नही था, जमींदार के पास भी ठीक विचार नही हुआ, उस पर भी घर में पाँव रखते-रखते यह काण्ड देखा, उसे फिर भले-बुरे का ज्ञान नही रहा। वह एक प्रचण्ड सौगन्ध खाकर कह उठा, 'अब मैं जा रहा हूँ थाने में दरोगा के पास। इसका नतीजा न चखा सकने पर मैं बिन्दु सामन्त का लड़का नही।'

उसका साला पढ़ा-लिखा आदमी है, विशेषकर उसे गया के ऊपर पहले से ही क्रोध था, उसने कहा—'कानून के अनुसार इसका नाम' अनधिकार प्रवेश है। लाठी लेकर घर पर चढ़ाई कर देना, चीज-वस्तु नष्ट करना, स्त्रियो के शरीर पर हाथ उठाना—इस सबका दण्ड छः महीने की जेल है। सामन्तजी, तुम कमर बाँधकर खड़े हो जाओ। देखो, मैं किस तरह से बाप-बेटे को एक साथ जेल भेजता हूँ।'

शिबू ने फिर द्विरुक्ति नहीं की, साले का हाथ पकड़कर थाने में दरोगा से मिलने के लिए प्रस्थान कर दिया।

गंगामणि को अन्य सबकी अपेक्षा अधिक क्रोध आया देवर और छोटी बहू के ऊपर। वह इसी बात को लेकर एक हलचल खड़ी करने के उद्देश्य से किवाड़ मे साँकल लगाकर, चूल्हा जलाने की लकड़ी को हाथ में लिए हुए देवर शंभू के आँगन में आ खड़ी हुई। उच्च स्वर मे बोली—'क्यों जी छोटे मालिक, लड़के द्वारा मुझे पिटवाओगे? अब बाप-बेटे एक साथ हवालात में जाओ।'

शंभू अभी अपने दूसरे बिवाह के लड़के के साथ फलाहार समाप्त कर खड़ा हुआ था, बड़ी भाभी की मूर्ति तथा उसके हाथ में लकड़ी देखकर हतबुद्धि हो गया, कहा—'क्या हुआ? मैं तो कुछ भी नही

जानता।'

गंगामणि ने मुँह विकृत करते हुए उत्तर दिया—'अधिक बनने की जरूरत नही है। दरोगा आ रहा है, उसके पास जाकर कहना कि कुछ जानते हो या नही।'

छोटी बहू घर से बाहर निकलकर एक खूटी पर अँगूठा रखकर चुपचाप खड़ी हो गयी। शंभू मन-ही-मन डरते हुए पास आकर गंगामणि का एक हाथ पकड़ता हुआ बोला—'शपथ खाकर कहता हूँ बड़ी भाभी, मैं कुछ भी नहीं जानता।'

बात सच्ची है, बड़ी बहू स्वयं भी जानती है, परन्तु उस समय उदारता का समय नही था। उसने शंभू के मुँह पर ही सम्पूर्ण दोष रखकर, झूठ-सच लगाते हुए गयाराम की करतूत का वर्णन कर दिया। इस लड़के को जो लोग जानते हैं, उन्हें इस घटना पर विश्वास करना कठिन था।

स्वल्पभाषिणी छोटी बहू ने अब मुँह खोला, पति से कहा—'क्यो, जो मैंने कहा था वही हुआ या नहीं। कितनी बार कहा, उस डाकू लड़के को घर मे मत घुसने दो, अन्यथा तुम्हारे छोटे लड़के को मार-मार कर किसी दिन खून कर डालेगा। यह बात ध्यान में ही नहीं आती थी। अब तो बात सच हो गई?'

शंभू ने अनुनय करके गंगामणि से कहा—'तुम्हें मेरी कसम बड़ी भाभी, दादा क्या सचमुच थाने गये हैं?'

उसके करुण कण्ठस्वर से बहुत कुछ नरम होकर बड़ी बहू ने जोर देकर कहा—'तुम्हारी कसम देवर, गये हैं, साथ मे मेरा पाँचू भी गया है।'

शंभू अत्यन्त भयभीत हो गया। छोटी बहू पति को लक्ष्य करके कहने लगी, 'रोज ही कहती हूँ दीदी, कहीं पर नदी के ऊपर जो सरकारी पुल बन रहा है, वहाँ ले जाकर उसे काम पर लगा दो। वे चाबुक मारेंगे और काम करायेंगे—भागकर जा नहीं सकता, दो दिन में ही सीधा हो जायेगा। सो नही—स्कूल मे भेजते हैं पढ़ने को। लड़का जैसे वकील-मुख्तार हो जाएगा।'

शंभू कातर होता हुआ बोला—'अरे, वहाँ क्या उसे यों ही नहीं भेजा। सब लोग क्या वहाँ से घर लौट पाते हैं—आधे लोग मिट्टी मे दब कर न जाने कहाँ चले जाते हैं, उनका पता ही नहीं चलता।'

छोटी बहू बोली—'तब बाप-बेटा मिलकर सजा भुगतो।'

बड़ी बहू चुप रही। शंभू उसका हाथ पकड़कर बोला—'मैं कल ही छोकरे को ले जाकर पाँचाला के पुल के काम में लगा दूँगा, भाभी, दादा को शांत करो। ऐसा फिर नहीं होगा।'

उसकी पत्नी ने कहा—'झगडा-टटा तो केवल इसी छोकरे के कारण है। तुमसे भी तो कई बार कहा है दीदी, इसे घर के दरवाजे में मत घुसने दो—सिर पर मत चढाओ। मैं कुछ नही कहती इसीलिए, अन्यथा उस महीने तुम्हारे मर्तबान के केले की गहर को काटकर रात मे कौन ले आया था? यही तो वह डाकू था। जैसा कुत्ता हो, वैसा डंडा न होने पर क्या चलता है? पुल के काम मे भेज दो, मुहल्ला शात हो जायगा।'

शंभू ने माँ की सौगन्ध खायी कि कल जैसे भी हो, छोकरे को गाँव से निकालकर ही वह पानी पीएगा।

गंगामणि ने इस संबंध मे कोई बात नही कही; हाथ की लकडी फेंककर चुपचाप घर लौट गयी।

पति, भाई अभी तक भूखे हैं। अपराह्न के समय वह विषण्णमुख से रसोईघर में दुबारा बैठकर उन्ही के भोजन की तैयारी कर रही थी। गयाराम ने ताक-झाँक कर निःशब्द पाँवों से प्रवेश किया घर मे और किसी को न देखकर, उसने साहस में भरकर एकदम पीछे से आवाज दी, 'ताई!'

ताई चौंक उठी, परन्तु बात नही की। गयाराम ने समीप ही दुःखी भाव से धम् से बैठते हुए कहा—'अच्छा जो है, वही दे मुझे, बड़ी भूख लग रही है।'

खाने की बात से गंगामणि का शांत क्रोध पलभर मे प्रज्वलित हो उठा। वह उसके मुँह की ओर बिना देखे ही क्रुद्ध हो बोल उठी, 'बेहया! मुँहजला। फिर मेरे पास आकर कहता है भूख लगी है? दूर हो यहाँ से।'

गया ने कहा—'दूर हो जाऊँ तेरे कहने से?'

ताई धमकाती हुई बोली—'हरामजादा, पाजी, मैं फिर तुझे खाने को दूँगी?'

गया बोला—'तू नही देगी तो कौन देगा? क्यो तूने चूहे को दोष लगाकर झूठी बात कही? क्यो अच्छी तरह नही बोली—'बेटा, इसी से खा ले, आज और कुछ नही है।' तब तो मुझे क्रोध नहीं आता। दे न खाने को जल्दी राक्षसी, मेरा पेट जल गया।'

ताई क्षणभर चुप रहकर, मन-ही-मन कुछ नरम होती हुई बोली— पट जल रहा है तो अपनी सौतेली माँ के पास जा।'

विमाता के नाम से गया की आँखें पल भर मे ही जल उठी। बोला, 'उस अभागी का मैं क्या फिर मुँह देखूँगा? केवल घर मे अपनी बसी लेने गया था, बोली—'दूर! दूर! इस बार जेल का भात खाने जा।' मैं बोला—'तेरा भात खाने के लिए मैं नही हूँ—मैं ताई के पास जा रहा हूँ।' मुँहजली शैतान है! इसी वजह से पिताजी ने तेरे हाथ से बाँस के पत्ते छीन लिए थे। यह कहकर उसने जोर से धरती पर पाँव मारते हुए कहा—'तू राक्षसी स्वय ही पत्ता लेने को जाकर अपमानित हुई? मुझसे क्यो नही कहा? इस बाँस की पूरी झाडी मे यदि आग न लगा दूँ तो मेरा नाम गया नहीं, देख लेना।' अभागी मुझसे क्या बोली, जानता है ताई है? बोली, 'तेरी ताई ने थाने मे खबर भेजी है, दरोगा आकर बाँध ले जायगा और तुझे जेल मे भेजेगा।' सुनी अभागी की बात।'

गगामणि ने कहा, 'तेरे ताऊ पाँचू को साथ लेकर थाने तो गये ही हैं। तू मेरे ऊपर हाथ उठाता है, तेरी इतनी बडी हिम्मत?'

पाँचू मामा को गया बिल्कुल नही देख सकता था। इसमे भी शामिल हुआ है, सुनकर वह जलता हुआ बोला, 'क्यो तू गुस्से के समय मुझे रोकने गयी थी?'

गगामणि ने कहा—'इसी से मुझे मारेगा? अब जा, हवालात मे बन्द रहना जाकर।'

गया अँगूठा दिखाते हुए बोला—'तो तू मुझे हवालात मे भेजेगी? भेज न एक बार फिर, मजा देख न! तू स्वय ही रो-रोकर मर जायगी, मेरा क्या होगा।'

गगामणि ने कहा—'मेरी बला जाती है रोने को। जा, मेरे सामने से चला जा, कहती हूँ, दुश्मन, बला कही का।'

गया चिल्लाकर बोला, 'तू पहले खाने को दे, तभी तो जाऊँगा। बहुत सवेरे उठाकर दो मुट्ठी लाई खाई है, बता, क्या मुझे भूख नही लगती?'

गगामणि कुछ कहने जा रही थी, इसी समय शिवू, पाँचू के साथ थाने से लौट आया और गया पर दृष्टि पडते ही जल-भुनकर चिल्लाने लगा, 'हरामजादा, पाजी, फिर मेरे घर आया! भाग, भाग, कहे देता हूँ। पाँचू पकड तो सुअर को!'

बिजली की भाँति गयाराम दरवाजे से निकल गया। चिल्लाता हुआ कह गया—'पाँचू साले की एक टाँग न तोड दूँ तो मेरा नाम गयाराम नही।'

क्षण-भर मे यह घटना घट गयी। गगामणि एक बात कहने का अवसर भी न पा सकी।

क्षुब्ध शिबू ने स्त्री से कहा, 'तेरी शह पाकर ही वह ऐसा हो गया है। फिर कभी हरामजादे को घर मे घुसने दिया तो तुझे बडी भारी सौगन्ध है।'

पाँचू बोला—'दीदी, तुम लोगो का क्या, मेरा ही सर्वनाश है। कभी रात-बिरात मे छिपकर मेरी टाँग पर लट्ठ मार देगा, ऐसा दिखाई देता है।'

शिबू ने कहा—'कल सबेरे ही यदि पुलिस के सिपाही से उसके हाथ मे हथकडी न पहनवा दूँ तो मेरा' इत्यादि-इत्यादि।

गगामणि जडवत् बैठी रही—एक बात भी उसके मुँह से बाहर नही निकली। भयभीत पाँचू कौडी उस रात को फिर घर नही गया। वही पर सो गया।

दूसरे दिन दस बजे के समय दो कोस की दूरी से दरोगाजी उपयुक्त दक्षिणादि ग्रहण कर पालकी पर चढे हुए सिपाही और चौकीदारो के साथ मौके पर तहकीकात करने के लिए आ पहुँचे। अनधिकार प्रवेश, चीज-वस्तु का नुकसान, जलाने की लकडी से स्त्री के शरीर पर चोट करना आदि बडी-बडी धाराओ के अभियोग—सारे गाँव मे एक हलचल मच गयी।

प्रधान मुलजिम गयाराम था—उसे हिकमत के साथ पकड लाकर हाजिर करते ही, वह सिपाही,

चौकीदार आदि को देखकर डर के मारे रोते हुए बोला—'मुझे कोई देख नही सकता, इसी से सब लोग मुझे जेल भेजना चाहते हैं।' दरोगा वृद्ध मनुष्य था। उसने मुलजिम की आयु और रोने को देखकर दयार्द्र-चित्त से पूछा—'तुम्हे कोई प्यार नही करता गयाराम?'

गया ने कहा, 'मुझे केवल मेरी ताई प्यार करती है, और कोई नही।'

दरोगा ने पूछा—'तब ताई को मारा क्यो था?'

गया बोला—'नही, नही मारा।' किवाडो की आड मे गगामणि खड़ी थी, उस ओर देखता हुआ बोला, 'तुझे मैंने कब मारा था ताई?'

पॉचू पास ही बैठा था, वह एक कटाक्ष करता हुआ बोला—'दीदी, हुजूर पूछ रहे हैं, सच्ची बात कहो। कल दोपहर के समय मकान मे घुसकर लकडी से तुझे नही मारा था? धर्मावतार के निकट झूठी बात मत कहना।'

गगामणि ने अस्फुट स्वर मे जो कुछ भी कहा, पॉचू उसी को स्पष्ट करता हुआ बोला—'हॉ हुजूर, मेरी दीदी कहती है, उसने मारा था।'

गया अग्नि के समान जलता हुआ चिल्ला उठा, 'देख पाँचू, तेरा पॉव मैं न तोड डालूं तो।' क्रोध से उसकी बात पूरी भी न हो सकी, रो पडा।

पॉचू उत्तेजित होकर कह उठा, 'देखा हुजूर! देखा! हुजूर के सामने ही कहता है, पॉव तोड दूँगा, पीछे यह खून कर सकता है। इसे बॉध लेने का हुक्म दीजिए।'

दरोगा केवल जरा-सा हँस दिया। गया ऑखे पोछता-पोछता बोला—'मेरी मॉ नही है इसी से! अन्यथा' इस बार भी उसकी बात पूरी न हो सकी। जिस मॉ की उसे याद भी नही, याद करने की कोई जरूरत भी नहीं, आज विपत्ति के दिन अचानक उसी को पुकारता हुआ झरझर आँसू बहाता हुआ रोने लगा।

दूसरे मुजलिम शिबू के विरुद्ध कोई बात प्रमाणित नही हुई। दरोगा जी अदालत मे नालिश करने का हुक्म देकर रिपोर्ट लिखकर चले गये। पॉचू ने मामला चलाने और बाकायदा उसकी तदवीर करने का उत्तरदायित्व ले लिया और अपनी बहिन के प्रति किए भारी अत्याचार के लिए गया को जो कडी सजा मिलेगी, उसे चारो ओर कहता हुआ घूमने लगा।

परन्तु गया बिल्कुल लापता हो गया। मुहल्ले पडोस के लोग शिबू के इस आचरण की निन्दा करने लगें। शिबू उनसे लड़ता फिरने लगा, परन्तु शिबू की स्त्री एकदम् चुप रही। उस दिन गया की दूर के रिश्ते की एक मौसी खबर पाकर शिबू के घर जाकर उसकी स्त्री से जो मन मे आया वह कहकर गाली-गलौज कर गयी, परन्तु गगामणि एकदम चुप बनी रही। शिबू ने पडोस के आदमी से यह बात सुनकर क्रुद्ध होते हुए स्त्री से कहा—'तू चुप बैठी रही? एक बात भी नही कही?'

शिबू की स्त्री ने कहा—'नही।'

शिबू बोला—'मैं घर मे होता तो उस औरत को झाड़ू मारकर निकाल देता।'

उसकी स्त्री ने कहा—'तब तो आज से घर में ही बैठे रहो, और कहीं मत निकलना।' कह कर अपने काम से चली गयी।

उस दिन दोपहर को शिबू घर पर नही था। शंभू आकर बॉस की झाडी से कुछ बॉस काट ले गया, आवाज सुनकर शिबू की स्त्री ने बाहर आकर अपनी आँखों से सब कुछ देखा, चुपचाप घर लौट गयी। दो दिन बाद खबर सुनकर शिबू कूदने लगा। स्त्री से आकर कहा—'तेरे क्या कान फूट गये हैं? घर के पास से ही वह बॉस काट ले गया और तुझे आहट भी नहीं मिली?'

उसकी स्त्री बोली—'आहट क्यो नही मिली, मैंने आँखो से वह सब देखा था।'

शिबू क्रुद्ध होकर बोला—'तो भी तूने मुझे नही बताया?'

गगामणि बोली—'बताती फिर क्या? बाँस की झाड़ी क्या केवल तुम्हारी ही है। देवर का उसमे हिस्सा नही है?'

शिबू ने आश्चर्य से हताश होते हुए केवल यह कहा—'तेरा क्या माथा खराब हो गया है?

उस दिन सध्या के बाद पॉचू अदालत से लौटकर शान्त भाव मे धम्-से बैठ गया। शिबू गाय के लिए

पुआल काट रहा था, अँधेरे मे उसके मुँह और आँखो की मुस्कराहट पर उसकी दृष्टि नहीं पडी। भयभीत होकर पूछा—'क्या हुआ?'

पाँचू गभीरतापूर्वक तनिक हँसता हुआ बोला—'पाँचू के रहने पर ज़ो होता, वही हुआ! वारण्ट निकलवा कर तब आया हूँ। इस समय वह कहाँ है, इसका पता लगाना ही होगा।'

शिबू को एक तरह की भयानक जिद चढ़ गयी थी। उसने कहा—'चाहे जितना खर्च हो, छोकरे को पकड़वाना ही है। उसे जेल भिजवा कर ही मैं और काम करूँगा।' तदुपरान्त दोनो मे अनेक प्रकार के परामर्श चलने लगे, परन्तु रात के ग्यारह बज गये, भीतर से उसकी बुलाहट नही आयी, यह देखकर शिबू ने चकित होकर रसोईघर में जाकर देखा, घर मे अँधेरा है।

सोने के कमरे मे जाकर देखा, स्त्री धरती पर चटाई बिछाए सो रही है। क्रुद्ध और आश्चर्यचकित होकर पूछा—'खाना हो गया तो मुझे बुलाया क्यो नही?'

गगामणि धीरे से करवट लेकर बोली—'किसने बनाया जो खाना बन गया?'

शिबू ने टोकने हुए पूछा—'अब तक नही बनाया?'

गंगामणि ने कहा—'नही! मेरा शरीर ठीक नही है, आज मैं नही बना सकूँगी।' जोर की भूख से शिबू की नाडी जल रही थी, वह और नही सह सका। सोती हुई स्त्री की पीठ पर एक लात मारते हुए बोला—'आजकल रोज बीमार, रोज नही बना सकती? नही बना सकती तो निकल जा मेरे घर से।'

गगामणि ने बात भी नहीं की, उठकर भी नही बैठी। जैसी सो रही थी, वैसे ही पडी रही। उस रात साले-बहनोई किसी का भोजन नही हुआ।

सबेरे देखा गया, गगामणि घर मे नही है। इधर-उधर कुछ देर ढूँढ़ने के बाद पाँचू ने कहा—'दीदी अवश्य ही हमारे घर चली गयी हैं।'

स्त्री के इस प्रकार आकस्मिक परिवर्तन का कारण शिबू मन-ही-मन समझ रहा था, इसी से उसकी विरक्ति भी जैसे उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। नालिश-मुकद्दमे की ओर झुकाव भी वैसे ही कम होता जा रहा था। उसने सिर्फ यह कहा—'चूल्हे मे जाए, मुझे ढूँढ़ने की जरूरत नही है।'

शाम को खबर मिली, गगामणि बाप के घर नही गयी। पाँचू ने भरोसा देते हुए कहा—'तब तो वह अवश्य ही बुआ के घर चली गयी है।'

उसकी एक धनी बुआ पाँच-छ कोस दूर एक गाँव मे रहती थी। पूजा-पर्व के उपलक्ष्य में वे कभी-कभी गगामणि को लिवा जाती थी। शिबू स्त्री को बहुत प्यार करता था। उसने मुँह से तो जरूर कहा—'जहाँ खुशी हो, जाने दो! मरने दो!' परन्तु भीतर-ही-भीतर अनुतप्त एव उत्कण्ठित हो उठा। फिर भी क्रोध के कारण पाँच-छ दिन बीत गये। इधर काम-काज और गाय-बैलो के मारे उसकी गृहस्थी का काम एक तरह से रुक गया। एक दिन भी काटना कठिन हो गया।

सातवे दिन वह स्वय तो नही गया, परन्तु अपने पौरुष को मिटाकर उसने बुआ के घर बैलगाडी भेज दी।

दूसरे दिन सूनी गाडी लौट आयी, समाचार दिया वहाँ कोई नही है। शिबू माथे पर हाथ रखकर बैठ गया।

सारे दिन स्नान-भोजन नही हुआ, मुर्दे की भाँति एक तख्त के ऊपर पडा रहा। पाँचू ने अत्यन्त उत्तेजित की भाँति घर मे प्रवेश करते हुए कहा—'सामन्तजी, पता मिल गया!'

शिबू ने झटपट उठकर बैठते हुए कहा—'कहाँ है? किसने खबर दी? गाडी ले चलो न, अभी दोनो जने चले।'

पाँचू बोला—'दीदी की बात नही, गया का पता मिल गया है।'

शिबू फिर लेट गया, कोई बात नही कही।

तब पाँचू बहुत प्रकार से समझाने लगा कि इस सुयोग को किसी भी तरेह छोड़ना उचित नही है। दीदी तो एक दिन आयेगी ही, परन्तु तब इस बेटा को कब्जे मे पकड नही सकेगें।

शिबू ने उदास कण्ठ से कहा—'अभी ठहरो पाँचू! पहले यह लौट आये. उसके बाद।'

पाँचू ने बाधा देते हुए कहा—'उसके बाद फिर क्या होगा, सामन्तजी? अपितु दीदी के लौटकर

आने-न-आने से पहले ही काम समाप्त कर देना चाहिए! अगर वह आ गयी तो फिर होगा ही नही।'

शिबू राजी हो गया, परन्तु अपने खाली घर की ओर देखकर दूसरे से बदला लेने का जोर उसे स्वयं मे ढूँढे भी नही मिल रहा था। मगर पाँचू का जोर उधार लेकर ही उसका काम चल रहा था।

दूसरे दिन रात रहते ही वे दोनो अदालत के पियादे आदि को लेकर बाहर निकल पडे। रास्ते मे पॉचू ने बताया—काफी परेशानी के बाद यह खबर मिली है कि शभू ने उसे पाँचाला के सरकारी पुल के काम मे नाम बदलकर भर्ती कर दिया है। उसी जगह उसे गिरफ्तार करना होगा।'

शिबू बराबर चुप बना रहा था, इस बार भी चुप बना रहा।

उन्होने जब गॉव मे प्रवेश किया तब दोपहर हो चुकी थी। गाँव के एक ओर बहुत बडा मैदान था, लोग-बाग, लोहा-लक्कड, कल-कारखानो से परिपूर्ण था, सब जगह छोटे-छोटे घर बने हुए थे, जिनमे मजदूर रहा करते थे। बहुत-कुछ पूछताछ के बाद एक आदमी ने कहा—'जो लडका साहब के बगले में लिखा-पढी का काम करता है,वही न? उसका घर यह रहा।' कह कर एक छोटी-सी झोपडी दिखा दी। वे लोग मौन साधे, पाँव दबाये, बडी मुश्किल से उसके पास जाकर खडे हो गये। भीतर गयाराम का कण्ठस्वर सुनाई दिया। पॉचू के प्रसन्नता मे भर कर पियादा एव शिबू को लेकर वीरदर्प से अचानक झोपडी के खुले हुए दरवाजे को रोक कर खडे होते ही उसका सम्पूर्ण मुख विस्मय, क्षोभ और निराशा से काला हो गया। उसकी दीदी भात परोस कर एक हाथ मे पंखा लिए हवा कर रही थी और गयाराम भोजन करने बैठा हुआ था।

शिबू को देखते ही गगामणि ने माथे पर आँचल को खीचते हुए केवल यह कहा—'तुम लोग जरा ठण्डे होकर नदी मे नहा आओ, मैं तब तक और एक हॉडी भात चढाये देती हूँ।'

देवघर की स्मृतियाँ

डाक्टरो के आदेशानुसार वायु-परिवर्तन के लिये देवघर जाना पडा। चलते समय कविगुरु की एक कविता बार-बार याद आने लगी

औषुधे डाक्टरे
'व्याधिर चेयें आधि हल बड
'करलें जखन अस्थी जर जर
तखन बलले हावा बदल करो।

हवा बदलने से क्या लाभ होता है, यह सभी जानते हैं, फिर भी लोग जाते ही हैं और मुझे भी जाना पडा। चारदीवारियों से घिरे हुए एक मकान में रहता हूँ। पास के किसी मकान से एक महाशय रात के तीन बजे से फटे बाँस की आवाज की तरह बेसुरे राग से भजन गाना शुरू कर देते हैं, नीद उचट जाती हैं, और खीझ कर बाहर बरामदे में आकर बैठ जाता हूँ। धीरे-धीरे भोर हो जाता है। पक्षियों का कलरव शुरू हो जाता है। सबसे पहिले कोयल पक्षी की आवाज सुनाई पडती है। सुबह होने के पहले ही सब शोर मचाने लगते हैं और फिर धीरे-धीरे बुलबुल, श्यामा, गौरैया और कोयल आदि भी जगल के आम के पेडो, मेरे मकान के नीबू के वृक्ष पर, सडक पर स्थित पीपल के पेड पर शोर मचाने लगतीं। यद्यपि किसी को देख नही पाता था, फिर भी लगता जैसे इन सबको पहचानता हूँ। पीले रग के दो पक्षी नित्य देर से आते थे और दीवार के पास वाले चीड वृक्ष की सबसे ऊँची डाल पर आकर हाजिरी दे जाते थे। अचानक दो दिन तक वे दोनों नही आये। मन में यह शका उत्पन्न हुई कि कही किसी ने उन दोनो को पकड तो नही लिया। इधर व्याध भी काफी हैं, पक्षियों का ही रोजगार करते हैं, लेकिन तीसरे दिन उन्हे यथास्थान देखकर सतोष हो गया।

इस तरह सुबह समाप्त हो जाती है। शाम के समय गेट के बाहर सडक के एक ओर आकर बैठ जाता हूँ। टहलने की शक्ति मुझमे नही है, इसलिए जो लोग टहलते रहते हैं, उनकी ओर हसरत भरी निगाहो से देखता रहता हूँ। टहलने वालों मे अधिकतर मध्यम वर्ग के पुरुष और नारी ही थे। उनमे कुछ के पैर फूले रहते थे, जिसे देखते ही समझ जाता था कि बेरी-बेरी के रोगी हैं। अपनी इस कमजोरी को छिपाने के लिए उन्हें कष्ट सहना पड़ता है। गोकि सर्दी का मौसम नही है, फिर भी अपने फूले हुए पाव को ढकने के लिए ये मोजा पहनते हैं, किसी की धोती जमीन लथेडती, इससे उन्हे चलने मे कष्ट हो रहा है, फिर भी लोगों की नजरों से वे अपने आपको बचाना चाहते हैं। मुझे सबसे अधिक दु ख होता था—एक दरिद्र लडकी को देखकर। रोग-मुक्त होकर भी पैदल चलकर पुनः खोयी हुई शक्ति को प्राप्त कर लेगी और तब पति-पुत्रवाली गृहस्थी मे जाकर अपने नारी-जीवन को सार्थक करेगी। मैं अपनी जगह पर बैठा यही सब सोचा करता था। एक बगाली लडकी इससे अधिक क्या कामना कर सकती है। मैं मन ही मन आशीर्वाद देते हुए कामना करता कि वह स्वस्थ होकर अपने घर वापस चली जाये। जिन तीन लडको ने उसकी जीवन-शक्ति का शोषण कर लिया है, उन्हें जीवित रखने के लिए उसमे आत्मबल और शक्ति पैदा हो जाये। यह किसकी लडकी है, किसकी बहू है, यह मैं नही जानता, लेकिन यह लडकी हमारे देश

की उस असख्य लडकियो का प्रतीक बनकर मेरे मन में जो एक लकीर खीच गयी, वह कभी मिट न सकेगी।

मेरे साथ एक जवान मित्र नि स्वार्थ-सेवा करने के लिए आये हुए थे। कलकत्ते मे बीमारी के समय जैसा देखा था, ठीक वैसा ही यहाँ भी पाया। अक्सर वह कह उठता—"चलिये भाई साहब, कही टहल आया जाय।" मैं कहता—"तुम टहल आओ। मैं यही बैठा रहूँगा।" वह असहिष्णु होकर कहता—"आपसे अधिक उम्र के व्यक्ति चहलकदमी कर रहे हैं। अगर आप टहलेगे नही, तो भूख कम लगेगी।"

"पर बेकार घूमना मुझे पसंद नही भाई।"

हव नाराज होकर अकेले ही चले जाते, लेकिन जाते समय मुझे सावधान कर दिया करते—"अँधियारा होने के पहले वापस आजाइयेगा। नौकरो से लालटेन मगवा लिया करियेगा। इधर 'करइत' साँप अधिक हैं। कही बदन पर पैर पड गया तो खैर नही।"

उस दिन मित्र साहब कही गये हुए थे। शाम का समय था। कुछ लोग, भोजन का समय हो गया है, समझकर तेजी से अपने घर की ओर जा रहे थे, सभवत ये सभी लोग व्याधि से घिरे हैं और शाम होने के पहले ही अपने दरबे मे प्रवेश कर जाते हैं। उनलोगों के चलने की गति देख कर मुझे भी जोश आ गया। सोचा—"चलूँ कुछ दूर टहल आऊँ। उस दिन काफी देर तक टहलता रहा। अधकार समीप होने के कारण घर की ओर ज्यो ही रवाना हुआ, तो देखा पीछे-पीछे एक कुत्ता भी चला आ रहा है। मैंने उससे कहा—"क्या है रे? मेरे साथ चलेगा? अँधियारे रास्ते का तूही साथी बन जा।" वह दूर खडा अपनी पूँछ हिलाता रहा। मैं समझ गया, उसे मेरा प्रस्ताव स्वीकार है। फिर मैंने कहा—"अच्छा, आ मेरे साथ।"

कुछ दूर आगे बढकर प्रकाश के सामने देखा-दुबला पतला वृद्ध-सा है, बदन पर अधिकाश जगहो पर वाल नही है, कुछ लगडा कर चल रहा था। अपनी जवानी के समय शक्तिवान रहा होगा इसमे संदेह नही। उसी कुत्ते से बात-चीत करता हुआ घर के सामने आ गया। दरवाजा खोलकर मैंने कहा—"आओ, भीतर आओ, आज तुम मेरे अतिथि हो।"

वह बाहर खडा अपनी पूँछ हिलाता रहा। भीतर आने का साहस नही हुआ। तभी नौकर लालटेन लेकर आया। दरवाजा बद करते देख मैंने कहा—"आज दरवाजा वन्द करने की जरूरत नही है। अगर वह कुत्ता आये तो उसे कुछ खाने को दे देना।" एक घटे बाद जब पता लगाया तो मालूम हुआ कि कुत्ता भीतर नही आया, न जाने कहाँ चला गया।

दूसरे दिन सबेरे बाहर आकर देखा—दरवाजे के पास ही अतिथि महोदय खडे है। प्रत्युत्तर मे मेरी ओर देखते हुए पूँछ हिलाने लगे। मैंने कहा—"आज अवश्य भोजन करना। बिना खाये मत जाना। समझे?" इस प्रश्न के उत्तर मे वह बराबर पूँछ हिलाने लगा। मैं समझ गया वह राजी है।

रात के समय नौकर ने आकर सूचना दी कि कल वाला कुत्ता बाहर बरामदे मे आकर बैठा है। रसोइये को बुलाकर मैंने कहा—"आज वह मेरा अतिथि है, उसे भरपेट भोजन दिया जाय।"

दूसरे दिन पता चला कि अतिथि महोदय मौजूद हैं। आतिथ्य की मर्यादालघन कर आराम से बरामदे मे पडे हैं। फिर भी मैंने कहा—"खैर, रहने दो। उसे भरपेट भोजन अवश्य दिया जाय।"

मुझे यह ज्ञात था कि नित्य काफी भोजन फेंक दिया जाता है। इससे किसी को आपत्ति नही होगी। लेकिन आपत्ति थी और वह भी भयकर आपत्ति। हम लोगो के बढे भोजन की हकदार थी बगीचे की मालिन।

मुझे यह बात नही मालूम थी। मालिन देखने मे जवान है, खूबसूरत है और भोजन के सबध मे संत है। नौकरो का झुकाव उस पर अधिक है। फलस्वरूप मेरा अतिथि उपवास करता है। शाम के समय जब टहलने निकलता हूँ तो नित्य उसे सडक पर पहले से ही स्वागत मे खडा देखता हूँ। चलते-चलते पूछता—"क्यो भाई, आज गोशत कैसी बनी रही? उसकी हड्डियो मे तुम्हे स्वाद मिला या नही?"—उत्तर मे पूँछ हिलाते देख समझ गया—गोश्त उसे पसद आया था। मुझे यह नही मालूम था कि मालिन ने उसे बगीचे से खदेड दिया है। अब बाग मे घुसने नही देती। फलस्वरूप बेचारा सडक पर मेरी प्रतीक्षा मे खडा रहता है। इस कार्य मे मेरे नौकरो का भी हाथ था।

अचानक दरवाजे पर छाया देखकर मैं चौंक उठा। देखा—मेरे अतिथि महोदय सामने खड़े होकर पूँछ हिला रहे हैं। दोपहर होने के कारण सभी नौकर सो गये हैं, इसलिए हजरत चुपचाप कैसे ऊपर तक चले आये हैं। सोचा-शायद दो दिन से दिखाई न पड़ने के कारण मुझे देखने के लिए चला आया है। कहा—"आओ दोस्त, चले आओ।" लेकिन वह आगे नहीं आया। पूछा—"खा-पी चुके? क्या-क्या खाया?" अचानक उसकी आँखों की छोर पर पानी दिखायी पड़ा। लगा जैसे वह मेरे पास फरियाद लेकर आया है। चिढ़कर मैंने नौकर को आवाज दी। दरवाजा खुलने की आवाज से मेरा मित्र भाग गया। नौकर के आने पर पूछा—"आज कुत्ते को खिलाया गया था?"

"जी नहीं, मालिन ने उसे भगा दिया।"

"खाना जो बचा था, वह क्या हुआ?"

"मालिन सब उठा ले गयी है।" चिल्लाहट सुनकर मेरे मित्र महोदय आँखें मीचते हुए ऊपर आये। कहा—"भाई साहब, आप भी अजीब तमाशा करते हैं, इन्सान को भरपेट भोजन मिल ही नहीं रहा है और आप कुत्ते के लिए परेशान हो रहे हैं।" मित्र महोदय जानते हैं कि इस अकाट्य युक्ति का कोई जवाब नही है। मैं चुप रह गया। किसकी फरियाद किसके द्वारा यहाँ पहुँचती है, उन्हें कैसे समझाऊँ? समझाना मेरे बूते का कार्य नही है। खैर, जो भी हो, मेरे अतिथि को बुलाया गया और उसे बरामदे के कोने मे जगह दे दी गयी। आज सुबह से सामान वगैरह बाँधा जा रहा था। दोपहर को गाड़ी जाती है। गेट के सामने बैलगाडी आयी, उस पर सभी सामान लाद दिया गया। मेरे अतिथि महोदय आज बहुत व्यस्त रहे। कुलियो के साथ दौड-दौडकर खबरदारी कर रहे थे कि वहाँ कोई सामान छूट न जाय। उसका उत्साह सबसे अधिक था।

टिकट खरीद लिया। माल-असबाब गाडी पर चढ़ा दिया गया। तभी मेरे मित्र ने आकर सूचना दी कि गाड़ी छूटनेवाली है। जो लोग मुझे पहुँचाने आये थे, सभी को इनाम दिया गया, सिर्फ मेरे अतिथि को नहीं दिया गया। गर्म हवा के झोंके से आँखों मे अंधेरा छा गया। उस अंधकार मे मैंने देखा स्टेशन के बाहर फाटक के पास अतिथि महोदय खडे एकटक देख रहे हैं। गाडी चल पडी। वापस लौटने के लिए मेरा मन व्याकुल नही था। सिर्फ रह-रहकर यही याद आ रही थी कि आज मेरा अतिथि जब वापस जायेगा तो देखेगा कि लोहे के फाटक वाला दरवाजा बन्द है। अब उसके भीतर प्रवेश करना मुश्किल है। दो दिन तक इधर-उधर टहलता रहेगा। शायद सुनसान दुपहरिया मे दीवार फाँदकर भीतर औकर मेरी तलाश करे। फिर जहाँ से आया था, वही वापस चला जायगा।

शायद उससे तुच्छ, जीव शहर मे और कोई नही है, फिर भी देवघर की स्मृति में उसे स्मरणीय बनाने की इच्छा से यह कहानी लिख दी।

* *

अभागिनी का स्वर्ग

ठाकुरदास मुखर्जी की बड़ी-बूढ़ी पत्नी का देहान्त सात दिन के बुखार में हो गया। वृद्ध मुखर्जी महाशय ने धान के रोजगार मे काफी पैसा कमाया था। उनके चार लडके, तीन लडकियाँ और उनके भी बाल-बच्चे मौजूद थे। उस पर दामाद, अडोसी-पडोसी, नौकर-चाकर सबके आ जाने से एक उत्सव सा हो गया था। गाँवभर के लोग धूमधाम के साथ निकलनेवाली अर्थी को देखने आये। लडकियों ने रोते-रोते माँ के दोनो पाँवो पर गाढ़ा करके महावर और माथे पर सिन्दूर लगा दिया। बहुओं ने ललाट पर चन्दन लगाकर बहुमूल्य वस्त्र से सास को ढँक दिया। बच्चों ने उनकी अन्तिम पद-धूलि लेकर अपने-अपने माथे लगायी। पुष्पपत्र सुगन्धमाला और कलरव से मालूम ही न पडा कि इस घर में कोई शोक की घटना हुई है। ऐसा मालूम हुआ जैसे बडे घर की गृहिणी ५० वर्ष के बाद फिर एक बार नये ढंग से अपने पति के घर विदा हो रही हैं। वृद्ध मुखर्जी महोदय शांत भाव से अपनी चिरसंगिनी को अन्तिम विदा देकर छिपे-छिपे आँखो से आँसू पोछकर शोकार्त कन्याओं और पुत्र वधुओं को सांत्वना देने लगे। प्रबल हरिध्वनि से प्रभात के आकाश को आलोडित करता हुआ सारा का सारा गाँव अरथी के साथ हो

लिया। और भी एक स्त्री जरा दूर रहकर इस दल के साथ हो गयी। वह थी कंगाली की माँ। वह अपनी झोपड़ी के आंगन में फले हुए कुछ बैंगन तोडकर हाट में बेचने जा रही थी, इस दृश्य को देखकर उससे फिर हिला न गया। उसका हाट जाना रह गया। उसके आंचल में बैंगन वैसे ही बँधे रह गये। वह अपनी आँसू पोंछती हुई, सबके पीछे-पीछे श्मशान मे जा उपस्थित हुई। गाँव के बाहर गरुड नदी का श्मशान है। वहाँ पहले से ही लकड़ी के बोझे, चन्दन के टुकडे, घी, मधु धूप, राल इत्यादि उपकरण संचित हो चुके थे। कंगाली की मां छोटी जाति की थी, दूले की लडकी होने से पास जाने की हिम्मत न हुई। दूर एक टीले पर खडी वह अन्त्येष्टि क्रिया शुरू से आखिर तक उत्सुक आग्रह के साथ टकटकी बांधकर देखने लगी।

अनेक कण्ठों की हरिध्वनि के साथ जब पुत्र के हाथ की मन्त्रपूत अग्नि से चिता जलने लगी, तब उसकी आँखों से आँसुओ की झडी बंध गयी। मन ही मन वह बार-बार कहने लगी—"भाग्यवती माँ! तुम सुरग जा रही हो। मुझे आशीर्वाद करती जाओ, जिससे मैं भी इसी तरह कंगाली के हाथ की-आग पा सकूँ। लडके के हाथ की आग! यह कोई मामूली बात नही है। पति, पुत्र कन्या, नाती, नातिन, दासपरिजन के सामने यह स्वर्गारोहण हो रहा है। यह देखकर उसकी छाती फटने लगी। इस सौभाग्य की मानो वह गिनती ही न कर सकी। सद्यः प्रज्वलित चिता का लगातार उठता हुआ जोर का धुआँ नीले रग की छाया फेकता हुआ घूम-घूमकर आकाश की ओर उठता जा रहा था। कंगाली की माँ को उसी में एक छोटे रथ की मूर्ति स्पष्ट दिखाई दी। उस रथ के चारो तरफ कितने चित्र अंकित हैं, उसकी चोटी पर तरह-तरह की लताए और पत्तियाँ लिपटी हुई है। उसके भीतर न जाने कौन बैठा हुआ है। चेहरा उसका पहचानने में नही आता, परन्तु माथे पर उसके सिन्दूर की रेखा और महावर पांवो में लगा हुआ है। ऊपर की ओर देखते-देखते कगाली की माँ की आँखो में आसुओं की धारा बह रही थी। इतने में एक चौदह-पन्द्रह साल का लडका उसकी धोती का पल्ला खीचता हुआ बोला—'तू यहां खडी है अम्मा! रोटी नहीं बनायेगी?'

माँ ने चौंककर उसकी तरफ मुड़कर देखा और कहा—"बनाऊगी रे।" इसके बाद सहसा ऊपर की ओर उँगली दिखाकर व्यग्र स्वर मे कहा—"देख, देख बेटा! बाह्मण माँ रथ मे चढ़कर स्वर्ग जा रही है।"

लड़के ने आश्चर्य के साथ मुह उठाकर कहा—"कहाँ?" कुछ देर अच्छी तरह देख भालकर वह फिर बोला—"तू पगली हो गयी है माँ। वह तो धुंआ है।" इसके बाद क्रोधित होकर बोला—"दोपहर तो हो गया मुझे भूख नही लगती होगी क्यो?" और साथ-साथ मा की आँखो मे आंसू देखकर बोला—"वाह्मणी माँ मरी है, तो तू क्यो रोये मरती है?"

कगाली की माँ को अब होश हुआ। दूसरे के लिए श्मशान में खडी होकर इस तरह आसू बहाने से वह स्वयं मन ही मन लज्जित हुई। यहां तक कि लडके के कल्याण की आशका से दूसरे ही क्षण आँखे पोछकर जरा हँसने की कोशिश करती हुई बोली—"रोऊँगी क्यों रे, आँखो में धुआँ लग गया था इसी से।"

"हाँ, हाँ, धुआँ ही तो लगा है। तू तो बिल्कुल रो रही है।"

मां ने फिर कोई प्रतिवाद नही किया। लडके का हाथ पकडकर घाट तक आयी। खुद नहायी और कगाली को भी नहलाया। इसके वाद घर लौट गयी। श्मशान-संस्कार देखना उसके भाग्य वदा नही था।

दो

सतान के नामकरण में पिता-माता की मूढ़ता पर विधाता पुरुष अन्तरिक्ष मे रहकर अधिकतर हसकर सतुष्ट नही होते, बल्कि तीव्र प्रतिवाद भी करते हैं। इसी से उनका सारा जीवन उनके नाम के प्रति व्यंग्य करते रहते हैं। कगाली के मा के जीवन का इतिहास छोटा है, पर यही कगला जीवन विधाता के इस परिहास की गरज से मुक्ति पा चुका था। उसे जन्म देकर मा मर गयी। क्रोधवश पिता ने लडकी का नाम रखा—अभागी। मा नही है, बाप नदी मे मछली पकडता रहता है। उसके लिए न तो दिन है और न रात। फिर भी कैसे छोटी अभागी एक दिन कगाली की मा बनकर जीवित रह गयी, यह एक

विस्मयजनक बात है। जिसके साथ इसका विवाह हुआ, उसका नाम था—रसिक बाघ। उस बाघ की एक और बाघिन थी। उसे लेकर वह एक दूसरे गॉव चला गया और अभागिन अपने अभाग्य तथा बच्चे को लेकर उसी गॉव मे रह गयी।

उसका वह कगाली आज बडा हो गया है, पन्द्रहवे मे कदम रखा है। हाल में ही उसने बेत का काम सीखना शुरू कर दिया है। अभागिनी को आशा है कि और भी साल भर तक अगर अभाग्य के साथ जूझ सकी तो उसका दु ख दूर हो जायगा। यह दु ख क्या है, जिन्होने दिया है, उनके अलावा और कोई नही जानता।

कगाली तालाब से हाथ-मुँह धोकर आया तो देखा कि उसकी थाली का बचा भोजन मा एक बरतन मे ढँककर रख रही है। उसने आश्चर्य से पूछा—''तुमने नही खाया मा?''

''बहुत अबेर हो गयी है, बेटा। अब भूख भी नही है।''

लडके ने विश्वास नही किया। कहा—''हाँ, भूख तो जरूर नही होगी। कहा देखू तेरी हँडिया?''

यही छलना करके कगाली की मा कगाली को धोखा देती आयी है, इसी से उसने हडिया देखने के बाद सतोष व्यक्त किया। उसमे और एक व्यक्ति के भोजन करने लायक भात था। अब वह प्रसन्न भाव से मा की गोद मे जाकर बैठ गया। इस उमर के लडके साधारणत ऐसा नही करते, किन्तु बचपन से ही अक्सर बीमार रहने के कारण माँ की गोद के सिवा बाहर के सगी-साथियो के साथ खेलने का उसे मौका ही नही मिला। यही बैठकर उसे खेलकूद का शौक मिटाना पडा है। एक हाथ माँ के गले मे डालकर उसके मुँह पर अपना मुंह रखते हुए ही वह चौंक पडा। कहा—''माँ तेरी देह तो गरम है। क्या तू घाम मे खडी मुरदा जलाना देख रही थी? क्यो फिर नहायी जाकर। मुरदा जलाना क्या तैने ''

माँ ने चट से लडके का मुह दाबकर कहा—छि बेटा! 'मुरदा जलना' नही कहते, पाप लगता है। सती-लक्ष्मी माँ महारानी रथ मे चढकर सुरग गयी है।''

लडके ने सदेह करके कहा—''तेरे पास वही बात है। रथ मे चढ़ने से क्या कोई सुरग जाता है?''

माँ ने कहा—''मैंने जो अपनी ऑखो से देखा है बेटा! ब्राह्मण माँ रथ मे वैठी थी। उनके लाल-लाल पॉव सबने देखे रे।''

''सबो ने देखे?''

''हॉ सबो ने।''

कगाली माँ की छाती से लगकर सोचने लगा। माँ का विश्वास करना ही उसका अभ्यास था, विश्वास करना ही उसने बचपन से सीखा है। उसकी माँ जब कह रही हैं सबो ने इतनी बडी घटना अपनी ऑखो से देखी है, तब अविश्वास करने की कोई बात नहीं रह गयी। थोडी देर बाद उसने आहिस्ते-आहिस्ते कहा—''तब तो तू भी माँ सुरग को जायगी? बिन्दो की माँ उस दिन राखाल से कह रही थी, कगाली की माँ जैसी सती लक्ष्मी दूलो मे और कोई नही है।''

कगाली की मा चुप रही। कगाली उसी तरह धीरे-धीरे कहने लगा—''बाबू ने जब तुझे छोड दिया था, तब कितने जनो ने 'सगाई' करने के लिए तेरी खुशामद की थी। लेकिन तैने कहा—नही। तू ने कहा—कगाली बना रहेगा तो मेरा दु ख दूर हो जायगा। फिर से सगाई क्यो करू? अच्छा मा! तू शादी करती तो मैं कहा जाता? मैं शायद भूखो मर जाता।''

मा ने लडके को दोनो हाथो से छाती से चिपका लिया। वास्तव मे उस दिन उसे ऐसी सलाह कम लोगो ने नही दी, और जब वह इसके लिए किसी भी तरह राजी नही हुई, तब ऊधमबाजी भी कम नही हुई। उस बात को याद करके अभागिनी की ऑखो से ऑसू गिरने लगे। लडके ने हाथ से माँ के ऑसू पोछते हुए कहा—''कथरी बिछा दू माँ! सोयेगी?''

मा चुप रही। कगाली ने चटाई बिछाकर उस पर कथरी बिछा दी। टॉड के ऊपर से वह छोटा तकिया उठा लाया और माँ का हाथ पकडकर उस पर सुलाने चला तब मा ने कहा—''कगाली आज काम पर तू मत जा। रहने दे।''

काम पर मत जाने के प्रस्ताव से कगाली को बहुत ही अच्छा लगा, मगर बोला—''जलपान के दो पैसे फिर नही मिलेगे मा!''

"मत मिलने दे, आ आज तुझे कहानी सुनाऊँ।"

अधिक लोभ न दिखाना पडा। कगाली उसी क्षण मां की छाती से लगकर पडा रहा, और बोला–'सुना माँ राजकुमार कोतवाल का बेटा और वह पक्षीराज का घोड़ा।'

अभागिनी ने राजकुमार कोतवाल पुत्र और पक्षी राज घोड़े से कहानी शुरू कर दी। यह सब उसकी बहुत दिनो की सुनी हुई और बहुत दिनो की कही हुई कहानियाँ थी। परन्तु कुछ ही क्षणबाद कहाँ गया उसका राजकुमार और कहाँ गया कोतवाल का बेटा। उसने ऐसी कहानी शुरू कर दी, जो दूसरे से सीखी हुई नही थी–उसकी अपनी रचना थी।

जैसे-जैसे उसका बुखार बढ़ने लगा, माथे मे खून का दौरा ज्यो-ज्यो जोर का होने लगा, त्यो-त्यो मानो वह नयी-नयी कहानियो का इन्द्रजाल रचती चली गयी। भय, विस्मय और पुलक के मारे मानो वह जोर से माँ के गले से लगकर उसकी छाती मे समा जाने लगा। बाहर दिन डूब चुका था। सूर्य के अस्त होते ही सध्या की मलिन छाया धीरे-धीरे गाढी होकर चारो ओर व्याप्त हो गयी, परन्तु घर के भीतर आज दिया नही जला, गृहस्थ का अन्तिम कर्त्तव्य पालन करने के लिए कोई न उठा। निविड अधकार मे सिर्फ रुग्ण माता का बाधाहीन गुजन निस्तब्ध पुत्र के कानो में सुधा बरसाता चला गया। वही श्मशान और श्मशान यात्रा की कहानी भी, वहा वही रथ, वही महावर से रंगे लाल पैर, वही उसका स्वर्ग जाना। किस तरह शोक विह्वल पति, अन्तिम पदधूलि दे, व रोते हुए विदा हुए, किस तरह हरिध्वनि के साथ लड़के माँ की अर्थी उठा ले गये और फिर उसके बाद संतान के हाथ से आग।" "वह आग नहीं थी बेटा। वह हरि का रूप था। मेरा बेटा कगाली चरण!"

"क्यो माँ?"

"तेरे हाथ की आग अगर पा गयी बेटा। ब्राह्मण माँ की तरह मैं भी सुरग जा सकूँगी।"

कगाली ने अस्फुट स्वर में कहा–"हट, ऐसा नही कहते।"

माँ शायद उसकी बात सुन भी न सकी। वह गरम सास छोडती हुई कहने लगी–"तब छोटी जात होने से कोई नफरत न कर सकेगा। गरीब दु:खी होने से फिर कोई रोक टोक न सकेगा। ओफ। लडके के हाथ की आग। रथ को तो आना ही पडेगा।"

लडके ने माँ के मुँह पर हाथ रखकर रूंधे गले से कहा–"ऐसा मत बोल माँ। ऐसा मत बोल, मुझे बड़ा डर लगता है।"

माँ ने कहा–"और सुन कगाली! तू अपने बाबू को एक बार पकड लायेगा। वे उसी तरह अपने पांव की धूल मेरे माथे से लगाकर मुझे विदा कर देगे। उसी तरह पाँव मे महावर माथे पर सिन्दूर, पर यह सब कौन करेगा बेटा! तू करेगा न कगाली? तू ही मेरा सब कुछ है।" कहते-कहते उसने लडके को छाती से लिपटा लिया।

तीन

अभागिनी के जीवन-नाटक का अन्तिम अध्याय समाप्त होने जा रहा है। उसका विस्तार ज्यादा नहीं थोडा ही था। शायद अब तक तीस ही साल पार हुए होगे या न भी हुए हो। समाप्त भी हुआ वैसे ही मामूली तौर पर। गाँव मे वैद्य कोई न था, दूसरे गाँव मे एक रहते थे। कंगाली जाकर रोया-धोया, हाथ जोडे, पाँव पड़ा और अन्त मे उसने एक लोटा गिरवी रखकर उन्हे एक रुपया सलामी दी, मगर फिर भी वे आये नही। उन्होने चार-पांच गोलिया देकर टरका दिया। और उनका खटराग कितना। खरल, शहद अदरख का सत, तुलसी के पत्तो का रस। कंगाली की मां ने लडके पर गुस्सा होकर कहा–'क्यों तू मुझसे बिना पूछे लोटा गिरवी रख आया बेटा? इसके बाद उसने गोलिया हाथ में लेकर सिर से लगाई और चूल्हे में डाल दी। बोली–"अच्छी होऊँगी तो ऐसे ही हो जाऊँगी। बाग्दी-दुलो (नीच जाति) के घर दवा खाकर कभी कोई नही जीता।"

दो-तीन दिन इसी तरह बीत गये। पडोसी लोग खबर पाकर देखने आये और अपने-अपने जाने हुए मुष्टि योग-हस्त के सींग का घिसा हुआ पानी गट्टा कौडी जलाकर शहद के साथ चाटना इत्यादि अव्यर्थ

औषधियों का पता देकर, सब अपने-अपने काम पर चले गये। बच्चा कंगाली जब घबड़ा सा गया तो माँ ने उसे अपने पास खीचकर कहा—"वैद्य की दवा से तो कुछ भी नहीं हुआ बेटा। इन दवाओं से क्या होगा? मैं ऐसे ही अच्छी हो जाऊँगी?"

कगाली ने रोते हुए कहा—"तुमने तो गोलियां खाई ही नही माँ। चूल्हें मे फेक दी थी। ऐसे ही क्या कोई अच्छा होता है?"

"मैं अच्छी हो जाऊँगी। अच्छा, तू थोड़ा सा भात-आत बनाकर खा तो ले देखूं। मैं देखती ही रहूगी।"

कगाली अपने जीवन मे आज पहले पहल अपटू हाथो से भात बनाने लगा। न तो वह अच्छी तरह माड निकाल सका और न ठीक से परस कर खाही सका। चूल्हा तक तो ठीक से जला ही नही। उफान का पानी पड जाने से धुआँ हुआ सोअलग। भात परसने मे चारों तरफ विखर गया। माँ की आँखो मे आँसू भर आये। उसने खुद एक बार उठने की कोशिश की, पर वह सिर न सीधा कर सकी, बिछौने पर गिर पडी। खा चुकने पर लडके को अपने पास बुलाकर उसे, कैसे बनाया और परोसा जाता है, उसका विधिवत् उपदेश देते-देते उसका क्षीण कण्ठ सहसा रुक गया और आँखो से बराबर आँसू की धारा बहने लगी।

गाँव का ईश्वर नाई नाडी देखना जानता था। दूसरे दिन वह आया और हाथ देखकर उसी के सामने चेहरा गभीर बनाकर, एक दीर्घ नि श्वास लेते हुए अन्त मे सिर हिलाकर उठकर चल दिया। कगाली की माँ इसका अर्थ समझ गयी। मगर उसे डर नही लगा। सब के चले जाने पर उसने लडके से कहा—'एक बार उन्हे बुला ला सकता है बेटा?'

'किसको माँ?'

'वही रे—उस गाँव जो चले गये हैं।'

कगाली समझकर बोला—'बाबू को।'

अभागिनी चुप रही। कगाली ने पुनः कहा—"वह क्यो आने लगे मा?"

अभागिनी को खुद ही काफी संदेह था, फिर भी उसने धीरे से कहा—"जाकर कहना। माँ सिर्फ तुम्हारे पैरो की धूल जरा चाहती है।"

वह उसी वक्त जाने को तैयार हो गया। माँ ने उसका हाथ पकडकर कहा—'जरा रोना-धोना बेटा कहना माँ जा रही है।" जरा ठहरकर फिर बोला—'उधर से लौटते वक्त नाइन भाभी से थोडा सा महावार लेते आना बेटा। मेरा नाम लेने से ही वह दे देगी। मुझसे बडा मेल है।'

मेल उसका बहुतेरे से है, इसमे संदेह नही। बुखार होने के बाद से कगाली ने अपनी माँ के मुँह से इन सब चीजो की बात इतनी बार और इतनी तरह से सुनी है कि वह वही से रोता हुआ रवाना हुआ।

चार

दूसरे दिन रसिक दूले समयानुसार जब आ पहुँचा तब अभागी को उतना होश नही था। मुँह पर मृत्यु की छाया पड़ चुकी थी। आँखों की दृष्टि इस ससार का काम पूरा करके न जाने कहाँ किस अनजान देश को चली गयी थी। कंगाली ने रोते हुए कहा—"मा रे। बाबूजी आये हैं, पांवो की धूल लेगी न?"

माँ शायद समझी हो या न समझी हो, या हो सकता है कि उसकी गहराई तक संचित वासना ने सस्कार के समान ढकी हुई चेतना पर चोट पहुचाई हो। इस मृत्यु पथ के यात्री ने अपना कमजोर कांपता हुआ हाथ विस्तर के बाहर निकालकर पसार दिया।

रसिक हतबुद्धि की तरह खडा रहा। ससार मे उसके भी पाव के धूल की जरूरत हो सकती है, उसे भी कोई चाह सकता है, यह उसके कल्पना से बाहर की बात है। विन्दो की बुआ खडी थी—उसने कहा—"दो बेटा जरा पाव की धूल, हाथ से लगा दो।"

रसिक आगे बढ़ गया। अपने जीवन मे उसने कभी जिस स्त्री से प्रेम नही किया, अशन-वसन नही दिया, कोई खोज खबर नही ली, मरते समय उसे सिर्फ पाव की धूल देते हुए रो पडा।

राखाल की मा ने कहा—'ऐसी सती लक्ष्मी स्त्री ब्राह्मण तथा कायस्थो के घर न पैदा होकर दूलो के

घर क्यो पैदा हुई! अब उसकी जरा गति सुधार दो बेटा! कगाली के हाथ की आग के लोभ से बेचारी ने प्राण दे दिये।''

अभागिनी के अभाग्य के देवता ने अगोचर मे बैठ कर क्या सोचा नही मालूम, परन्तु बच्चा कगाली की छाती मे जाकर यह बात तीर सी चुभ गयी। उस दिन का दिन तो कट गया, पहली रात भी कट गयी, पर सबेरे के लिए कगाली की मा प्रतीक्षा न कर सकी। मालूम नही इतनी छोटी जात के लिए स्वर्ग के रथ की व्यवस्था है या नही, अथवा अधेरे मे पैदल ही उन्हे रवाना होना पडता है, परन्तु इतना समझ मे आ गया कि रात खतम होने के पहले ही वह इस दुनिया को छोडकर चली गयी हैं।

झोपडी के सामने ऑगन मे एक बेल का पेड था। कही से कुल्हाडी माग के रसिक ने उस पर चलायी होगी या न भी चलायी हो, न जाने कहा से जमीदार ने आकर उसके गाल पर तड से एक थप्पड जड दिया और कुल्हाडी छीनकर कहा—''साला कही का, यह क्या तेरे बाप का पेड है, जो काट रहा रे?''

रसिक गाल पर हाथ फेरने लगा। कगाली रुआसा होकर बोला—''वाह, यह तो मेरी अम्मा के हाथ का रोपा हुआ पेड हैं, दरबान जी! बाबू को तुमने झूठमूठ क्यो मार दिया?''

दरबान ने उसे भी एक न सुनने लायक गाली देकर मारना चाहा, पर वह अपनी मरी हुई मा के पास बैठा था, इसलिए छुआछूत के डर से उसे छुआ नही। शोरगुल से लोगो की भीड जमा हो गयी। किसी ने भी इस बात से इन्कार नही किया कि बिना पूछे रसिक का पेड काटना अच्छा नही हुआ। वे ही फिर दरवान साहब कें हाथ जोडने और पैर पकडने लगे कि वे मेहरबानी करके हुक्म दे दें। कारण बीमारी के समय जो कोई देखने आया था, उसी से कंगाली की मां ने अपनी अन्तिम अभिलाषा कर दी थी।

मगर दरबान इन सब बातो मे आनेवाला नही था, उसने हाथ-मुह हिलाते हुए कहा—'यह सब चालाकी मेरे सामने नही चल सकती।'

जमीदार स्थानीय व्यक्ति नही थे। गाव मे उनकी एक कचहरी है, गुमाश्ता अधरराय उसके मालिक हैं। लोग जिस समस दरबान से व्यर्थ अनुनय-विनय कर रहे थे, कगाली उसी समय बेतहाशा दौड़ता हुआ एकदम कचहरी मे जा पहुँचा। उसने लोगों के मुह से सुन रखा था—पियादे लोग घूस लेते हैं, इसलिए उसे निश्चित विश्वास था कि इतने बडे असगत अत्याचारी की बात अगर मालिक के कान तक पहुँचा दे तो इसका प्रतिकार हुए बिना नही रह सकता। हाय रे अनभिज्ञ! बगाल के जमीदार और उनके कर्मचारी को वह पहचानता नही था। सद्यमातृहीन-बालक शोक और उत्तेजना से उद्भ्रांत होकर एकबारगी ऊपर चढता चला आया था। अधरराय हाल ही मे सध्या पूजा और थोडा सा जलपान करके बाहर आकर बैठे थे। विस्मित और क्रुद्ध होकर बोले—''कौन हैं?''

''मैं हूँ कंगाली। दरबान जी ने मेरे बाप को मारा है।''

''अच्छा किया है। हरामजादे ने लगान न दी होगी?''

कगाली ने कहा—''नही बाबू साहब! बाबू पेड काट रहे थे—मेरी मा मर गयी है—'' कहते-कहते वह अपनी रोआई को रोक न सका, रो दिया।

सबेरे ही इस तरह की रोना-धोना से अधर बाबू नाराज हो उठे। छोकरा मुर्दा छूकर आया है। मालूम नही, यहां का भी कुछ छू-छा दिया होगा। कड़ककर बोले—''माँ मरी है तो जा, नीचे जाकर खडा हो, अरे कौन है रे! यहा जरा गोबर पानी डाल दे। किस जात का लडका है तू?''

कगाली ने डर के मारे नीचे उतर कहा—''हम लोग दूले है।''

अधर ने कहा—''दूले! अरे, दूले के मुर्दे के लिए लकडी की क्या जरूरत है रे?''

कगाली ने कहा—''माँ मुझे आग देने को कह गयी है। तुम पूछ लो न बाबू साहब! माँ सब किसी से कह गयी है। सबो ने सुना है।'' माँ की बात कहते हुए उसके क्षण-क्षण के अनुरोध-उपरोध सब एक साथ याद आ जाने से उसका कण्ठ मानो रुलाई के मारे फटा जाने लगा।

अधर ने कहा—''अम्मा को जलाना चाहता है तो पेड के पाँच रुपये दाम ला। ला सकेगा?''

कगाली जानता था कि यह असभव है। उसको उत्तरीय (कफन) खरीदने के लिए दाम चाहिए था, सो बिन्दो की बुआ उसकी भात खाने की थाली गिरवी रखने के लिए ले गयी है, वह अपनी आखो से देख आया था। उसने गरदन हिलाकर कहा—'नही।'

अधर ने अपना चेहरा अत्यन्त विकृत करते हुए कहा—'नही तो माँ को ले जाकर नदी के किनारे गाड दे। किसी के बाप के पेड पर तेरा बाप कुल्हाडी चलाने चला है रे—पाजी अभागा बदमाश1'

कगाली ने कहा—"वह तो हम लोगों के आगन का पेड है। बाबू साहब! मेरी मा का रोपा हुआ पेड हैं।"

"हाथ का रोपा हुआ पेड है? पाडे! सुअर को गरदनिया दे के निकाल तो दे यहा से।"

पाडे ने आकर गरदनियां देकर निकालते हुए मुह से ऐसी बात कही कि जिसे सिर्फ जमीदारो के कर्मचारी ही कह सकते हैं।

कंगाली धूल झाडकर उठ खडा हुआ और फिर धीरे-धीरे बाहर चला आया। क्यो उसने मार खायी और क्या उसका कसूर था, उसकी समझ मे यह बात नहीं आयी। गुमाश्ते के निर्विकार चित्त पर इसका जरा भी असर नहीं हुआ। अगर होता तो यह नौकरी उसे न मिलती। उलटे उसने फरमाया—"पारस! देखना जरा, इसका लगान बाकी पडा है या नही। बाकी हो तो जाल-वाल कोई चीज छीनकर रखवा देना। हरामजादा भाग जा सकता है।"

मुखर्जियो के घर श्राद्ध है—बीच मे सिर्फ एक दिन बाकी है। धूमधाम और तैयारियाँ खूब जोरों से, गृहिणी के श्राद्ध के लिए हो रही है। वृद्ध ठाकुर दास स्वय देख-रेख कर रहे हैं। कगाली उनके सामने आ खडा हुआ, बोला—"पण्डित जी! मेरी मां मर गयी है।"

"तू कौन है? क्या चाहता तू?"

"मैं कगाली हूं। मां कह गयी है उसे आग देने के लिए।"

"सो दे जाकर।"

कचहरी की घटना की खबर इस बीच मे चारो तरफ फैल गयी थी। एक आदमी ने आकर कहा—"यह लडका शायद एक पेड चाहता है।" इतना कहकर उसने वह घटना कह सुनाई।

मुखर्जी साहब आश्चर्य और नाराजगी के साथ बोल उठे—"सुनो इसकी, अरे हमे ही कितनी लकड़ी चाहिए। कल परसों काम ठहरा। जा, जा, यहा कुछ नही होगा।' इतना कहकर वे अन्यत्र चले गये।

भट्टाचार्य महाशय पास ही बैठे सूची तैयार कर रहे थे। उन्होंने कहा—"तेरी जात में जराते हैं कब रे? जा, मुँह में जरा आग देकर नदी के किनारे गाड दे।"

मुखर्जी साहब का बडा लडका काम की जल्दी मे व्यस्तता के साथ इधर से ही वही जा रहा था, उसने कान खडे करके जरा सुनकर कहा—'देखते हैं, पंडित जी। सब साले आजकल ब्राह्मण कायस्थ हो जाना चाहते हैं।' कहकर वह अपने काम से चला गया।

कगाली ने फिर किसी से प्रार्थना नही की। इन दो घटो के अनुभव से दुनिया म वह मानो एकदम बूढ़ा हो गया था।

नदी के किनारे गढ़ा करके अभागिनी को सुला दिया। राखाल की मा ने कगाली की हाथ मे थोडा सा जलता हुआ पुआल देकर उसकी माँ के मुँह में छुआ दिया। उसके बाद सबने मिलकर मिट्टी से ढककर कंगाली की माँ का अन्तिम चिह्न तक लुप्त कर दिया।

सब कोई अपने काम में व्यस्त थे। सिर्फ कंगाली उस जले हुए पुआल से जो थोडा बहुत धुआ घुमता हुआ आकाश मे उड रहा था—उस धुएँ की तरफ एक टक देखता हुआ स्तब्ध खडा था।
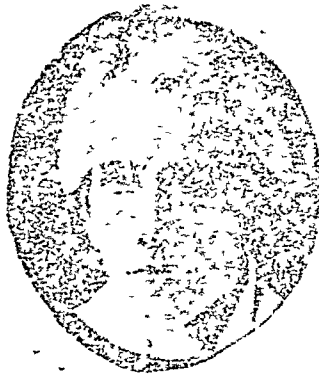
शरत् के निबंध

- तरुणों का विद्रोह
- आने की आशा में
- पुस्तकों का दुःख
- भाग्य विडंबित लेखक सम्प्रदाया
- शुभेच्छा
- नाटक
- बाल्यकाल की स्मृति
- आत्मकथा
- ५७ वें जन्मदिन का अभिभाषण

तरुणों का विद्रोह

जीवन समापन की वेला पर देश की युवा पीढी के पथ-प्रदर्शन के लिए आह्वान किया गया है। इस पथ-प्रदर्शन का नेतृत्व समाज के बुजुर्गों को करना है। ऐसा इसलिये हो रहा है कि युवा पीढी के अन्दर की कर्मशक्ति समाप्ति पर है। उनकी कार्य-क्षमता एवं प्रेरणा क्षीणतर होती जा रही है। उनके अन्दर इस आह्वान को ग्रहण करने की शक्ति कहा है? उनके अपने कार्द हृदय मे मात्र वेदना का सचार करते हैं। युवा-सघ के प्रत्येक सदस्य की तरह एक समय मेरे अन्दर भी यौवन कर्म क्षमता स्वास्थ्य और जन कल्याण कार्य के प्रति लगाव था। यह सब करने मे अपरिमय आनन्द की प्राप्ति होती है। यह तो बहुत दिनो की बात है। तरुण सघ को दृढता से सबोधित करने की हमारे पास कोई कुजी ही नही है। मुझे इनके पथ-निर्देशन का गुरुत्वपूर्ण उत्तरदायित्व लेना शोभा नही देता, न मैंने इसकी कल्पना ही की थी। मैं मात्र कुछ परिचित उक्तियो को स्मरण कराने के लिये इनके बीच उपस्थित हुआ हूं।

यहा यह उल्लेख करना आवश्यक है कि मैं पेशे से साहित्यकार हूँ। मेरे लिये राजनीतिक चर्चा करना अनाधिकार होगा। प्रथम तो मैं अपने लेखन के सबध मे दो शब्द कहना चाहूगा। मैंने कभी भी किसी कौशल से व्यक्तिगत अभिमत सपादित कराने की चेष्टा नही की है। पारिवारिक, सामाजिक व्यक्ति विशेष की जीवन-समस्या वेदना का विवरण दु ख की कहानी, अन्याय-अविचार की मर्मान्तक पीडा का इतिहास पन्ने-दर पन्ने लिपिवद्ध करता गया हूँ। मेरी साहित्य यात्रा की यह सीमा रेखा है और अपनी जानकारी मे मैंने कभी भी इसका अतिक्रमण या उल्लघन नही किया है। मेरी पुस्तको मे समस्याए हैं पर समाधान नही। समाधान का दायित्व पाठको एव आलोचको का है, साहित्यकारो का नही। अच्छे-वुरे वर्तमान काल के लिये कौन सा परिवर्तन उपयोगी है और कौन सा परिवर्तन अनुपयोगी, इस समस्या का समाधान कर्ता पर छोड मैंने पूर्ण निश्चिन्तता से विदाई ग्रहण कर ली है। इन कुछ पृष्ठो मे मैंने अप्रत्याशित कुछ भी नही जोडा है। समस्याए हैं और उत्तर नही। उत्तर देने का उत्तरदायित्व वगाल के तरुण सघ का है, इस वूढे का नही। इस अभिभाषण का यही मुख्य मुद्दा है।

शुरू मे ही एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि तरुण सघ राष्ट्रीय आन्दोलन सेअशत जुडा है। इस तथ्य को छुपाने से कोई लाभ नही है, न छुपाना युवा वर्ग का ही कर्तव्य है। इस शहर मे दो दिनो के वाद वंगाल के राष्ट्रीय सम्मेलन का कार्य आरंभ होगा। दोनो सस्थाओ के ज्यादातर उद्देश्य एक ही हैं, तो तरुण संघ की अलग से सम्मेलन की क्या आवश्यकता थी? कुछ लोगों का कहना है कि आवश्यकता है, क्योंकि तरुण संघ मे अनेक छात्र एव ऐसे लोग हैं जो खुलकर राजनीति मे भाग नही ले सकते। तरह-तरह की समस्याए और वाधाए हैं। उनके लिये आवरण की आवश्यकता है। वडे आन्दोलन कभी भी आवरण एव छल-प्रपंच द्वारा सफल नहीं हुए हैं। आदोलन चलाना और अधिकारियो की आंखो मे धूल झोकना दोनो कार्य एक साथ सभव नही है। अतएव युवक संघ को देश के समक्ष स्पष्ट शब्दो मे अपने मुख्य उद्देश्यों को व्यक्त करना होगा, भयभीत नही होना है। जो इसमें सक्षम नही है उनसे कुछ भी नही हो सकता और वह निष्फल होंगे। वस्तुत दोनो संस्थाओं मे वाह्य रूप मे अनेक समताये हैं, किंतु आन्तरिक दृष्टिकोणो मे मतभेद संभव है। काग्रेस उतनी ही वृद्ध है जितना मैं हूँ। किंतु युवक सघ अल्पवयस्क है। इसकी शिराओ का रक्त अभी भी गर्म और निर्मल है। कांग्रेस देश के अग्रणी कानूनवादी राजनीतिक विशारदों का आश्रम केन्द्र है। युवक सघ मात्र हृदय के एकाग्र आवेक और आग्रह से गठित है। एक का सचालन कुछ विषय वुद्धि से जीवन का स्वाभाविक धर्म नियोजित करना है। इसलिये मद्रास मे काग्रेस ने तरह-तरह के प्रत्यारोपण एव उत्तेजना के मध्य पूर्ण स्वतत्रता का प्रस्ताव पास किया, परन्तु एक वर्ष भी न बीता कि कलकत्ता काग्रेस मे मत-परिवर्तन हो गया। स्वाधीनता के स्थान पर

राज्याधिकार का प्रस्ताव आया। किंतु देश के युवा वर्ग ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। यही दोनों सस्थाओ मे भिन्नता है। मनुष्य का जीवन पुरातन विधि-निषेध से घिरा जाल है-युवा समिति प्रादुर्भाव का इतिहास है। भारतवर्ष मे जिधर भी दृष्टिपात करते हैं उसी तरफ नव अभ्युदय का राग दिखाई देता है। तरुण शक्ति मात्र राजनैतिक क्षेत्र में ही नही, वरन् सामाजिक, आर्थिक नीति में भी हर जगह नव चेतना उत्प्रेरित करती हुई दिखाई देती है। इनके बिना वर्तमान स्थितियो की किसी भी समस्या का हल दिखाई नही देता। इस सत्य को स्वीकार करना चाहिए। पुरातन पथी (सनातनी) समय समय पर व्यग कर कहते हैं, कल के छोकरे, तुम्हे अनुभव ही कितना है? युवा समिति इस अभियोग का उत्तर देने में नही हिचकती है। किंतु मेरा कहना है कि वाक युद्ध के बजाय स्पष्ट क्यो नही कहते हैं कि उनकी सबसे बडी लडाई उनके अनभिज्ञता के विरुद्ध ही है। हम घिसे-पिटे अनुभव एव ज्ञान को नष्ट कर जगत को मुक्ति देना चाहते हैं। आपलोग इस विषय मे गलती न करे। काग्रेस राष्ट्रीय सस्था है। वस्तुत. देश की एकमात्र यही सस्था है जिसने विदेशी शासन के अन्याय, अत्याचार और इस विचार के विरुद्ध संघर्ष किया है। वास्तव मे इसका दीर्घकालीन वाद-प्रतिवाद क्रोध और अभियोग का सम्मिलित कोलाहल बहरे राजतत्र के कान मे प्रवेश नही करता, किंतु विरोध एव सघर्ष के अलावा दूसरा कोई रास्ता भी नही। इसी तरह समय व्यतीत हो रहा था कि सहसा महात्मा गाधीका असहयोग आन्दोलन उनके चरखे की डोरी से जा जुडा। ३० दिसम्बर को स्वराज्य की तिथि निर्धारित की गयी। जेल जाने और आत्मत्याग की बाढ़ आ गयी। यह मत्र बगाल के बाहर से आया। परन्तु उस समय जितना चरखा और खादी वस्त्र बंगाल मे तैयार हुआ, जितने बगाल के लोग जेल गये और युवको ने अपने जीवन और सर्वस्व का बलिदान दिया, सपूर्ण भारत उसकी तुलना मे पीछे रहा। क्यो? तुम जानते हो। बगाल के लडके जितना देश से प्रेम करते हैं, प्राय पजाब को छोडकर इसका एक अश भी भारत मे कही ओर नही है। बगाल ने ही वदेमातरम का नारा दिया। इसी बगाल मे जन्मे पुण्यात्मा स्वर्गीय देशबन्धु। इधर ३१ दिसम्बर बीत गया और स्वराज्य नही आया। एक अज्ञात गाव चौरी चौरा मे रक्तपात हुआ और भयभीत होकर गांधी जी ने समस्त आन्दोलनो को स्थगित कर दिया। देश के सामने आयी आजादी की किरण एकाएक विलुप्त हो गयी। उस समय ऐसे ही व्यक्ति थे देशबधु जो कभी सघर्ष मे डरे नही। देशबन्धु उस समय जेल मे थे। सिर्फ बगाल ही नही बल्कि बगाल के बाहर के लोगो ने भी उनके समस्त प्रयत्नों एव प्रयासो को विफल कर दिया। कौन जानता था कि आन्दोलन भटक सकता है। गाधी जी द्वारा आदोलनों के स्थगित कर देने से क्रातिकारियो के कार्यक्रम को धक्का लगा। अगर उस समय का उभार न दबा होता तो भारत का नक्शा कुछ और होता। खैर, यह तो बीती बाते हुई।

कुछ दिनो की शाति के बाद पुन जनता का आह्वान किया गया। इस बार जलियावाला बाग था। इस बार साइमन कमीशन था। पुन वही चरखा, खादी, बहिष्कार, ताडी की दुकानो पर धरने का प्रस्ताव, वही ३० दिसम्बर एव सर्वोपरि बगाल। लेकिन बगाल के बाहर दूसरे नेता हावी हो गये। हम जानते थे कि ३१ दिसम्बर पुन पहले की तरह बीत जायेगा। मात्र एक ही आशा की किरण थी, बगाल की युवा शक्ति का जागरण, नवचेतना। इस बगाल ने अपनी शक्ति और चेतना बग-भग की निश्चितता को अनिश्चितता मे बदल दिया। बग-भग की नीति को त्यागने के लिये जनता को बाध्य किया। उस दिन आपके इस भार को उठाने के लिये बाहर से कोई नही आया। आन्दोलन का नेतृत्व करनेवाले नेताओ को परामर्श के लिये बाहर से नही बुलाना पडा। उस समय बगाल के समस्त आदोलन के नेतृत्व का दायित्व बगाल के नेताओं के कधे पर था।

प्रत्येक देश के स्वभाव, प्रवृत्ति, रीति-नीति, आचार-विचार, व्यवहार एव चाल-चलन मे भिन्नता होती है। इस विभेद और गूढ तत्व को वहां के नागरिक ही समझते हैं। नेता और मनीषियो से इनका अनुभव और समझ कम नही है। इस अनुभव और अनुभूति पर सफलता कितनी निर्भर करती है, इस पर बहुत से लोग ध्यान नही देते। अन्त मे अपनी अनुभवहीनता के कारण असफल होने पर बाहरी नेता असफलता का दोषारोपण वहा की जनता पर थोप देते हैं और इससे स्वय मे आत्मसतोष और सांत्वना प्राप्त करते हैं। पूरे देश की कार्यप्रणाली की एकरूपता को ही वे एकता समझते हैं। भिन्न-भिन्न कार्य-पद्धति मे भी वास्तविक एकता निहित रह सकती है, इस तथ्य को न स्वीकारने के कारण ही अनेक

तरह की उलझने पैदा होती हैं। अत: देश के नागरिको, नेताओ और मनीषियो के द्वारा ही सभी क्षेत्रो के लिये कार्यक्रम और कार्यप्रणाली निरूपित होना आवश्यक है। साइमन साहब के दल से भी ठीक यही भूल हुई थी। मिस्टर साइमन ने विदेश से आकर भारत के संविधान निर्माण मे रुचि लेना शुरू किया था। आज मैं इसी साइमन कमीशन पर विचार करने के लिये बंगाल के युवको का आह्वान करता हूँ।

आपलोगो को मेरा वक्तव्य नीरस एवं कटु प्रतीत हो रहा होगा। मैं शब्दाडंबर के जाल से रोचकता एव अपनी वाक्पटुता द्वारा उत्तेजना नही पैदा कर सकता। आपलोग जानते है कि सत्य को सत्य ही कहना मेरा स्वभाव है। किसी के विरुद्ध गलतबयानी कर लाछना लगाना मेरी प्रवृत्ति नही रही है। शायद यही कारण है कि मेरे वक्तव्य रोचक और मधुर नही होते, यह मैं स्वय अनुभव करता हू। फिर भी इस बात की खुशी है कि राष्ट्रीय सम्मेलन आसन्न हैं। अनेक नेता आ चुके हैं, बाकी पहुचने वाले ही हैं। उनके भाषण सुनकर आपलोग खुश होंगे और आप लोगो की क्षुधा मिटेगी। अंग्रेजो के पास शासन करने का अनुभव हैं, डेढ़ सौ वर्षो का अनुभव है। अग्रेजों ने इस देश पर अनेकों तरह के अन्याय किये हैं, अनेको निर्दोष नागरिकों का खून किया है, न जाने कितने लोगो को विचाराधीन कैदी के रूप मे आज भी जेल मे बन्द कर रखा है। उन्होंने आज तक देश हित में कोई कार्य नही किया। चाय बगान के साहब को अत्याचार-अनाचार करने के लिये छोड रखा है। आपलोगो का देश जंगलियो का देश है। यह राज्य शैतानों का राज्य है। इस तरह अपने अत्याचार, अनाचार और निरकुशता को धारावाहिकता प्रदान कर हमें वे विश्व के समक्ष जगली घोषित कर बर्बर अत्याचार जारी रखेगे। अग्रेजी शासन प्रणाली निम्न कोटि की और निन्दनीय है। हम लोगों का जीना कठिन और दुभर हो गया है। अतएव नियम कानून मे परिवर्तन करे, जनहित कार्यक्रम अपनावे अन्यथा हमे इन लोगो को देश छोडने के लिये मजबूर करना पडेगा। असहयोग आन्दोलन जारी रखना होगा। नई बन रही सस्थाओं की मन स्थिति मे गभीर अन्तर्विरोध हे। क्या अग्रेजी राज्य बर्बर और जंगली है, यह प्रमाणित करने का दायित्व युवा समिति का नहीं हैं। युवक उनसे प्रश्न करें। इसका उत्तर है विदेशी राज्य को जैसा होना चाहिए, वैसा ही है। काग्रेस के सम्मिलित अधिकार और निन्दा से लज्जित होकर अंग्रेज भविष्य मे भी भारत में स्वराज्य की घोषणा करेंगे कि नही, यह ईश्वर जाने अथवा अग्रेजी शासक स्वय समझे। हमलोगो के सामने यह स्पष्ट है कि उनसे हमे कोई सहयोग या सपर्क नही रखना है। युवा शक्ति नही चाहती कि उसे स्वाधीन भारत की जगह पराधीन स्वर्ग रूपी राज्य प्राप्त हो।

स्वाधीनता केवल एक नाम नहीं है। इसे दाता के हाथ दानस्वरूप या भिक्षा के रूप मे नही पाया जा सकता। इसका मूल्य होता है, पाने के लिये मूल्य चुकाना होगा। सवाल यह है कि मूल्य कहा है। किसके हाथ में है यह मूल्य। यह मूल्य युवारक्त मे खौल रहा है। इस मूल्य बोध का परिणाम कैसे कहाँ और किस रूप में मिलेगा। पराधीनता के बधन से मुक्त होना होगा। मूल्य-बाध के अनुभव का लाभ उठाने का समय आ गया है। अब किसी भी स्थिति मे विलम्ब नही किया जा सकता। जब संपूर्ण देश का प्रत्येक नागरिक जीवन-मृत्यु के कगार पर खडा सर्वनाश का सामना कर 'करो या मरो' की स्थिति पर आ खडा होता है, तब अज्ञात भी ज्ञात हो जाते हैं और कुछ कर गुजरने की तमन्ना करने लगते हैं। गरीब गाव की जनता पर कुछ कर गुजरने की स्पष्ट झलक दिखाई दे रही है। चारो ओर असत्य शोषण से पीडित जनता अभाव के मध्य यह समझ गयी है कि यह देश अब मुक्त नही हो पायेगा। इसे सर्वनाश ने जकड रखा है। युवा पीढी को मैं बताना चाहता हूँ कि इस सर्वनाश से देश को बचाने का दायित्व उनका ही है। क्या आपलोग अपने दायित्व का भार ग्रहण नहीं कर सकते? समस्त विश्व को देख लीजिये। देश के आये सकट का भार कौन वहन कर रहा है? और कोई नही, आपलोग ही यह दायित्व ग्रहण करेगे। क्या इसका व्यतिक्रम यही भारत देश होगा? भारत के नागरिको को शांति-श्री-हीन, सम्मान वर्जित जीवन से बचाने की जिम्मेदारी मात्र भारत के नवयुवकों की है। देश की रक्षा, क्या वृक्ष करेगे। इतिहास साक्षी है कि आदि काल से अबतक समय-समय पर हर देश में देश को नष्ट होने से बचाने के लिए तरुणो ने अपने प्राणो की चिता न कर उसकी रक्षा की है। आपलोग अगर इस सत्य को भूल जाते हो तो ऐसे सगठन का क्या प्रयोजन है, यह स्पष्ट होना चाहिए।

आजकल भारत के आकाश मे क्रांति शब्द गुजायमान है। इसलिये विदेशी राजशक्ति युवको से

भयभीत हो रही है। इस सत्य को मत भूलो कि कभी भी किसी देश मे मात्र क्राति के लिये क्राति नही लायी जा सकती। अर्थहीन अकारण क्राति का नारा देने से मात्र रक्तपात ही होता है। इससे कुछ लाभ नही होता। क्रांति की सृष्टि मानव अत करण मे होती है, न कि अर्थहीन रक्तपात मे। अतएव धैर्य के साथ क्रांति का इतजार किया जाता है। क्षमाहीन समाज, स्नेहहीन असहिष्णु धर्म, जातिगत घृणा, आर्थिक वैमनस्य, स्त्रियो के प्रति अमानुषिक व्यवहार आदि ऐसी चीजे जिन्हे बगैर समाप्त किए क्राति सभव नही है। अन्यथा असहिष्णु अपरिमित अभिलाषा ओर असीम कामना से मात्र विफलता के अलावा और कुछ प्राप्त नही हो सकता। क्राति स्वाधीनता सग्राम का अपरिहार्य पथ नही है। जो यह समझते है कि ससार के अन्य सभी कार्यो मे आयोजन प्रयोजन प्रस्तुति की आवश्यकता होती है, परन्तु क्राति के लिये इसकी आवश्यकता नही, तो वे ये समझ ले कोई भले ही ज्ञानी मनीषी या सर्वज्ञ हो पर वह क्रान्ति के मूल तत्त्व से आज भी अनभिज्ञ है। मेरे कथन से सभव है कि क्रांतिकारी मित्र अप्रसन्न हो, परन्तु मैंने प्रारम्भ मे ही कह दिया है कि मैं यहा किसी को प्रसन्न करने के लि नही आया हूँ। बल्कि सत्य को सत्य के रूप मे कहने आया हूँ।

हमलोग हर तरह से निरुपाय साधनहीन हैं। कई लोग कहते है कि विदेशी राजशक्ति ने हमे अस्त्र-शस्त्र हीन कर अक्षम कर रखा है। मैं इस अभियोग को असत्य नही मानता, पर मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या यह पूर्ण सत्य है? हम मानते है कि वर्तमान मे अस्त्र-शस्त्र हीन हैं। परन्तु हजार वर्ष पहले आपने क्या किया, उस समय तो अस्त्र-शस्त्र निसेधाज्ञा लागू नही थी। हमे सर्वाधिक निरुपाय एव अकर्मण्य आपसी अन्तर्कलह ने किया है। इसीलिये बारम्बार मुगलो, पठानो को अग्रेजो के आगे नतमस्तक होना पडा। पृथ्वी की समस्त शक्तिशाली जातियो के इतिहास पर दृष्टिपात करे। आप पायेगे कि उनके बीच भी अन्तर्कलह रही है, किंतु वे बाहरी शत्रु के सामने अपनी आपसी कलह को स्थगित रखना जानते हैं। हम जबतक शत्रु को पूर्ण रूप से पराजित नही कर देते, तबतक किसी भी तरह के घरेलू झगडे मे हमे नही पडना चाहिए। यही हमारी सबसे बडी शक्ति और विक्षणता का नमूना होगा। परन्तु हम लोगो ने जयचंद्र पृथ्वीराज से सिराजुद्दौला और मीरजाफर तक के इस ऐतिहासिक अभिशाप से शिक्षा नही ग्रहण की और न ही उन्हे भुला सके। बगाल को विजय करने के लिये मुसलमान आये। इस देश के असहिष्णु कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बियो ने प्रसन्न होकर उन्हे धर्म रक्षक सबोधित किया, उनके यशोगान 'धर्म मंगल' मे लिखे।

> धर्म हुआ यवनरूपी,
> सिर पर रखे काली टोपी,
> धर्म के शत्रु करते विनाश।

अर्थात् विदेशी मुसलमान इन हिन्दू धर्मावलम्बी पडोसी बगाली भाइयो को दु ख देने लगे। ये लोग आनन्दित होते हैं। यह तो अभी कुछ ही समय की बात है। आपसी लडाई मे इतने बडे महापुरुष चितरजनदास की आयु नि शेष हो गयी। खोज करने पर हम पायेगे कि इस युवासघठन मे तेरह दल हैं किसी का किसी से मेल नही है। इस तरह के मतभेद एक दूसरे पर नाना प्रकार के लाछना अभियोग मानाभिमान का द्वन्द्व, कमलपत्र पर स्थित जल बिन्दु की तरह एकत्रित भीड का नाम क्या सगठन है। देहतन्तु की तरह जैसे पाव के नाखून मे सुई चुभने पर सिर तक के केश सिहर उठते हैं। जिस दिन इस रूप मे सगठन सभव होगा, उसी दिन बगाल मे निरुपाय अक्षमता का माहौल समाप्त हो जायेगा।

आह! मैं सोचता हूँ कि क्या यही सनातन सस्कार है? शत्रु सदर दरवाजे पर दस्तक दे रहा है, तब भी हम एक न हो सके, दलबन्दी को समाप्त न कर पाये। परन्तु आज देश को इन्ही युवको पर आशा और भरोसा है। यह समस्या कब हल होगी और कैसे सुलझेगी यह भगवान ही जाने।

राजसत्ता के समय दिग्विजय का गौरव अर्जित करने के लिये राजा देश विजय को निकल पडते थे किंतु अब समय बदल गया है। वह राजा नही हैं, राजशक्ति हैं। वह राजशक्ति तथा कथित बडे व्यवसायियो के हाथ मे है। व्यवसायी राजशासन स्वय अथवा अन्य के द्वारा सपादित करते हैं। वर्तमान मे वणिक वृत्ति प्रधान है राजनीति। शोषण के लिये शासन है, अथवा इसका कोई विशेष प्रयोजन है। दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व के विश्वयुद्ध के मूल मे बाजार और क्रेता के लिये वणिक वृत्ति की 'छीनाझपटी' ही

थी। वास्तव मे इस व्यवस्था पर चोट करने के लायक वर्तमान काल मे कोई दूसरा नही है। नाना प्रकार के अपमान-अवमानना से क्रोधित होकर काग्रेस ने ब्रिटिश वस्तुओ का बहिष्कार करने का सकल्प ग्रहण किया है। उसका सकल्प सफलीभूत हो। बगाल के तरुणदल, आपलोग इस संघर्ष मे काग्रेस कासर्वान्त -करण से सहयोग और सहायता करे। परन्तु अन्धानुकरण न करे, चाहे महात्मा जी का आदेश हो या काग्रेस समवेत स्वर मे इसका समर्थन करती फिरे, तब भी नही। भारत के २० लाख रुपये की खादी से ८० करोड रुपये के अभाव को पूरा नही किया जा सकता। काठ के चरखे से लौहयत्र को हराया नही जा सकता। सफल होने पर भी इससे मानव-कल्याण का पथ प्रशस्त नही होगा। यह विशेषत अर्थनैतिक विवाद नही, राजनैतिक विवाद है। इस तथ्य को किसी भी कीमत पर भूलना उचित नही है। अत जापानी सूत, देश के तात के कपडे, देशी कल कारखाने से उत्पादित कपडे या खामख्यालियो के खद्दर द्वारा हो, इस संकल्प को सफल करना ही है। इस सकल्प से बंगाल अनजान नही है। पूर्व मे बगाल के मनीषियो ने जिस पथ का निर्देश दिया था, उसी रास्ते से आज यह सकल्प सिद्ध होगा। ब्रिटिश कपडे के स्थान पर भारतीय कपडे को जोडकर अहिसा नीति की पराकाष्ठता परिदर्शित कर सकते हैं। कितु असभव के मोह और आत्मप्रशसा के मोह से सिर्फ मोह स्तम्भ ही खडा किया जा सकता है और कुछ नही - हो सकता। पुन ३१ दिसम्बर पूर्व की भांति हमे भ्रमित कर आँख मे धूल झोक कर निर्विघ्न समाप्त हो जायेगा।

मैं गाव का निवासी हू। मेरा बडा से बडा शत्रु भी यह नही कहेगा कि मैं बगाल और उसके गांव को नही पहचानता। घर-घर मे जाकर देखा है, यह नही माना जा सकता कि जो स्वदेश-वत्सल दो-चार पुरुषो के लिये सभव हो भी तो महिलाओं के लिए असभव है। अन्य दूसरे प्रदेशो के विषयो मे मैं कुछ नही कह सकता, परन्तु इस प्रदेश (बगाल) मे दिनभर मे महिलाओ को अनेक परिधानो की आवश्यकता होती हैं। इस देश का सामाजिक रीति-रिवाज और संस्कार नाना प्रकार के वस्त्रो के कारण है। सभा मे खडे होकर खद्दरमहिमा के बखान मे गला फाड चिल्लाहट की आवाज किसी भी तरह गाव के अन्त पुर मे नही पहुच पायेगी। मैं सिर्फ सपन्न गृहस्थ की ही नही गरीब किसान, भूमिहीन मजदूर की भी बात कह रहा हूँ। यह सत्य है एव इसे स्वीकारना ही उत्तम है। बगाल के किसी एक विशेष सबडिविजन मे चरखे से तैयार किये हुए मन दो मन सूत की उपमा दिखा देना ही इसका उत्तर नही है। यह तो खद्दर का विवरण है, चरखे की भी ठीक यही गति है। यहा किसान और गरीब घरो की स्त्रियो को सूर्योदय से सूर्यास्त तक देहतोड परिश्रम करना पडता है। इसी बीच एक आध घटे की फुर्सत मिलने पर महात्मा जी का आदेश समझ महिलाए चरखा की ऊटी पकडने पर चरखे पर ही सो जाती हैं। हम इसे दोष नही कह सकते हैं, क्योंकि वास्तविक आवश्यकता के अभाव के कारण ही ऐसा होता है।

मैं इस प्रसग मे एक बात और कहना आवश्यक समझता हूँ। इस देश के बहुत से विशिष्ट व्यक्तियो के मतानुसार मनुष्य को अपने जीवन-यापन की प्रयोजन्यता को कम कर लेना आवश्यक है। अभाव का ज्ञान ही दुख का मूल तत्त्व है। अत दस हाथ कपडे की जगह पाच हाथ और पाच हाथ की जगह कोपीन पहने, क्योंकि विलासिता ही पापो की जड है। इसलिये सर्वप्रकार सयम, आत्म सतोष एव निम्नतम शारीरिक एव आर्थिक इच्छाए ही मनुष्य के विकास के सर्वोत्तम उपाय हैं। यह भूमि त्याग महात्म्य से भरपूर है। उच्चदर्शन एव शास्त्र मे क्या है नही जानता हूँ परन्तु सहज एव सरल बुद्धि के अनुसार इस त्याग के मत्र ने दिनानुदिन मनुष्य को नीचे उतार कर पशु के समीप ला पटका है। उच्च आकाक्षा करेगे ही कैसे, जबकि अभाव-बोध अथवा ज्ञान ही नष्ट हो गया। छोटी जात वाले अस्पृश्य हैं, इससे क्या। उनके लिये एक बेला से अधिक अन्न नही जुटता। भाग्य का लिखा है, कर्म का फल है। इससे सतुष्ट रहना ही वे उचित समझते हैं। जिन्हे इसमे कुछ अधिक ज्ञान है, वे उदासीन भाव से आँख मूद कर कहेगे—ससार की माया है, दो दिन का खेल है। इस जन्म मे सतुष्ट मन से दु ख कष्ट को सह लेगे तो अगले जन्म मे अच्छे कर्म फल होगे, भगवान की अवश्य कृपा होगी। एक अदृष्ट को छोड किसी के विरुद्ध उनका आरोप-प्रत्यारोप नही है। मागना जानते ही नही हैं, उन्हे मागने मे भय लगता है। अन्न नही, वस्त्र नही, स्वास्थ्य नही, अभाव पर अभाव, निरन्तर दबाव। जितना ही अभावो का दबाव बढता जाता है उतना ही सहन करने के वरदान की प्रार्थना करते है और अन्त मे नि शब्द आँख मूद कर आकाश

की ओर देखते हैं।

पुरातन पथी प्रायः दु:ख के साथ कहते सुने जाते हैं कि पहले ऐसा नही था। अब नीची जात वाले तक कुर्ता पहनते हैं, जूता पहनना चाहते हैं। छाता लगा कर चलते हैं। उनकी स्त्रियाँ साबुन एवं प्रसाधन सामग्री का उपयोग करती हैं। इस बाबूगिरि के कारण देश बर्बादी के कगार पर जा रहा है। आप प्रत्युत्तर मे उन्हें यही कहे कि यदि यह सत्य है तो बडे आनन्द की बात है। देश बर्बादी की ओर नहीं, अपितु उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। आवश्यकताओ की वृद्धि के साथ आवश्यकता-शक्ति मे वृद्धि होती है। अभाव पर विजय को जीवन की सफलता के रूप मे स्वीकारने वाले का पुरुष हे। पहले जो नही था, उससे अन्य कुछ था अथवा बाबूगिरि या नवाबी कहकर धिक्कारने और उसकी निन्दा करते रहने से देश-कल्याण की कामना नही हो सकती। इससे किसी का कल्याण नही होगा।

मैं कलकत्ते मे आयोजित, विगत दिसम्बर में आल इंडिया लीग के सम्मेलन के सभापति श्री नारिमन साहेब के भाषण के कुछ अश का उल्लेख करना चाहूगा। वे उच्छृखल आवेग के साथ अपने भाषण में बार-बार यह उल्लेख करने से न चूकते थे कि हमलोगो ने बारदोली में अग्रेजी शासन दण्ड को भूमिसात कर दिया। ब्रिटिश शासक शर्म से सिर न उठा सके। अतएव 'बारदोली द होल कंट्री' संपूर्ण देश को बारदोली मे परिणत करे। बारदोली के गर्व एव गौरव की हानि करने की मेरी कामना नही है। उनलोगों ने साहसी और गौरवोचित कार्य किया है, इसे मैं सपूर्णरूप से स्वीकार करता हूं। ठीक इसी तरह का कार्य आपलोगो को बगाल मे करना हो तो अवश्य करे परन्तु पश्चिम भारतीय काग्रेसी नेताओ की तरह ढोल पीटते घूमने मत निकले। थोडा विनयी होना अच्छा है। एक घटना, आपलोगो को सुनाता हू। एक किसान ने प्रजा के रूप मे कहा, "हूजूर मालगुजारी (कर) एक रुपया से बढ़कर दो रुपया हो गयी है। हमलोग नही दे सकेंगे, हमलोग मर जायेगे। इसकी जाच करायें।" अविवेकी राज्य कर्मचारियों ने अस्वीकार कर कहा पहले मालगुजारी अदा करो, फिर बाद में जाच की जायेगी। करदाता अपनी मांग पर डटे रहे। नेताओ ने एकत्रित होकर सरकार से कहा कि यह खालिस अर्थनैतिक विवाद है, राजनैतिक नही। सरकार ने बात की अनसुनी कर दी। थोडा-थोडा अत्याचार और उत्पीडन आरंभ हुआ। जिस तरह यूनियन बोर्ड का जलसा उस बार मेदिनीपुर मे हुआ था, छोटे-बड़े जहा भी जितने नेता थे सभी ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई। अखबारो ने भी साथ दिया। लाख-लाख रुपये बारदौली आने लगे और युद्ध होने लगा। युद्ध तब तक नही रुका जबतक सरकार को विश्वास न हो गया कि सचमुच प्रजा अंग्रेजी राज उलटना नही चाहती। वह निर्फ जाच और मालगुजारी की थोडी सी माफी और न्याय विचार चाहती है। बगाल मे इसे कभी ब्रिटिश सरकार की हार मत समझो, किसी भी राजनैतिक सघर्ष को आर्थिक झगडा समझने की कभी भूल मत करो। उस दमन-चक्र का रूप ही अलग है। कार्य मे कभी अवतरित होना पडा तो जिस रूप में विगत दिनो काग्रेस स्वय सेवक जन-सगठन के रूप मे उभरा था उसी रूप मेंअपने कार्य-क्षेत्र मे आगे बढो, क्योंकि उस स्वय सेवक सस्था के कार्य के समतुल्य कार्य आजतक भारत मे कही नही हुआ है। तब आत्म प्रवचना से अपने आपको और देश को मत ठगो। मुझे इतना ही भरोसा है कि यहा पर उपस्थित सदस्यो मे बहुत से वयोवृद्ध भी हैं जो अग्रेजो की उस मूर्ति को अच्छी तरह पहचानते हैं। सभी को वस्तुस्थिति और अपनी शक्ति को आकने के लिये मुझे इतना कहना पडा है। किसी को अपमानित करने का लेश मात्र भी मेरा उद्देश्य नही है।

आप लोगो का बहुत समय लिया। सभवत. अभिभाषण लबा हो गया। अंत मे एक बात और कह कर समाप्त करूगा। इस समय देश मे शिक्षा-व्यवस्था विस्तार पर है। जिस शिक्षास्तर की माग सभ्य जगत की पूजा करती है, उस शिक्षा का विस्तार सरकार के आन्तरिक प्रयत्न के अतिरिक्त व्यक्ति विशेष की चेष्टा मे सभव नही है। मैं इस दिशा मे कार्य करने के लिये किसी को मना नही करता हू। परन्तु यहा एक रात्रि पाठशाला (एक आश्रम), एक विद्यापीठ स्कूल आदि के खोलने के लिये कहूँगा। लिखने-पढने और शिक्षा के अलावा अन्य कार्य की भी प्रयोजनिता है। किंतु जो कहते हैं देश मे सभी को शिक्षा न मिलने तक, देश का कल्याण नही, मुक्ति के द्वार अवरुद्ध हैं, अत सभी कार्यों का परित्याग कर वे देश को शिक्षित करने के लिये मन योग दे। वे लोग अवश्य ही भले और अच्छे आदमी हैं, इसमे मुझे कोई सदेह नही हे। परन्तु उन पर मुझे भरोसा नही है। अब मैं समाप्त करू। मैं मुसलमान भाइयो से

अलग से कुछ कहना आवश्यक नही समझता हूं, क्योंकि वे लोग भी देश के इस तरुण सघ के अन्तर्गत ही आते हैं। युवकों का तरुणोचित कार्य ही उनकी जाति है। युवको की न कोई जाति है और न ही कोई दूसरा नाम है, वे जहां भी हैं जिस रूप मे हैं युवक हैं।

तुम लोग स्नेहवश मुझे यहां खीच लाये इसके लिये तुमलोगो को धन्यवाद दे रहा हूं। सत्य समझ कर अनेको कटु एव अप्रिय बाते कही हैं। इसका इनाम बाकी रहा। इसी काग्रेस मडप मे दो दिन बाद तिरस्कार के बाण-प्रहार होगे। किंतु तब मैं हावड़ा के सुदूर गांव मे पडा, साहित्यिक दरबार मे व्यस्त हो जाऊंगा। यहां के गंभीर गर्जन मेरे कानों तक नही पहुचेगे। यही आशा, भरोसा और विश्वास है।

आने की आशा में

जीवन की तुलना क्या गाने के साथ नहीं की जा सकती? कौन-सा नुकसान है? गाने की तरह जीवन में भी एक लय होती है। वह लय किसी में द्रुत, किसी में धीमी होती है। कोई लड़ाई के बाजे बजाकर द्रुत ताल में चला जा रहा है और कोई धीमी ताल से लम्बे अरसे तक पिछड़ा रहता है।

जो लोग एक साथ कदम मिलाकर चले जा सकते हैं, उनका भाग्य अच्छा है।

मेरे भाग्य में ऐसा नहीं हुआ। वह विजय-गर्व से चले गये—और मैं? मेरी तकदीर फूटी हुई है!

मुझे देखकर तुम लोगों ने निश्चय ही पागल समझा है। समझ सकते हो। मेरी साज-सज्जा और जीवन बड़ा ही अनमेल है।

मेरे हाथों में चूड़ी चमक रही हैं, मेरी माँग का सिन्दूर चमक रहा है, मैंने चौड़े लाल किनारे की साड़ी पहन रक्खी है।

लेकिन जिनके लिए यह सब कुछ है वही तो नहीं हैं।

सच ही कह रही हूँ—तुम लोग उस तरह से हँसो मत। एक दूसरे का शरीर दबाकर मत कहो कि मैं पागल हूँ। सच कहती हूँ, मैं पागल नहीं हूँ। तो मैं क्या हूँ? अरे ओ! उन बातों को कहने में भी मैं डरती हूँ। यथार्थ में क्या वे नहीं हैं?

मैंने कितने ही लोगों से पूछा—कितने ही साधु-संन्यासियों के पैरों पर सिर पटका, मगर क्या कोई भी मेरी बातों का जवाब नहीं देगा? तो शायद इसका कोई जवाब ही नहीं है। तुम लोगों में से अगर कोई बतला सके तो इस अभागिनी का बड़ा उपकार होगा।

बतला सकोगे? ओफ्—भगवान् तुम्हें सुखी बनावें—और क्या कहूँ—'दीर्घजीवी बनो' कहने में डर लगता है। डर लगता है, आशीर्वाद देते हुए कहीं शाप न दे बैठूँ!

तो कहती हूँ, सुनो—

बसाख महीने में बेल का पेड़ देखा है? कितने ही पत्तों के आवरण में घने दलों के बीच कली सोती रहती है। वसन्त की कोकिल की पुकार उसे नहीं जगा सकती है। मलय हवा की सारी आराधनाओं को तुच्छ समझकर वह कितनी बेफिक्री से सोती रहती है।

फिर, वसन्त जब हाय-हाय करता हुआ चला जाता है—तब अभागिनी कली चौंककर तीन दिनों में ही खिल उठती है। तब उसे अनगिनित लाँछना भोगनी पड़ती है। कड़े सूर्य की गर्मी निष्ठुर होकर उसके ऊपर पड़कर विद्रूप करती रहती है। ओस कौवे का हाहाकार सुनते हुए दिन समाप्त होने पर वह डाल के नीचे लोट जाती है।

मैं फूल नहीं हूँ, इसीलिए लोट नहीं गयी। झर जाती तो सब कुछ समाप्त हो जाता।

मेरा जन्म बहुत गरीब घर में नहीं हुआ था। पिता बहुत बड़े आदमी भी नहीं थे, लेकिन मेरी खूबसूरती काल बन गयी।

सुनती हूँ,—मेरे रंग में गुलाबी आभा* है। काले बाल पैरों तक पहुँच जाते थे। और भी कितनी ही बातें हैं।

---

* दूध में अलता मिलाने पर जो रंग बनता है।

यह मेरी सुनी हुई बाते हैं। झूठ-सच भगवान् जाने। तुम्हे क्या इसका कुछ परिचय मिल रहा है?

क्या देख रहे हो? नही, नही,—वह रंग नही है—मेरे होंठ वैसे ही है। यह? टिकुली नहीं है—यह एक तिल है। यह जन्म से ही है।

इसी को देखकर ही तो कलमुँहे सन्यासी ने कहा था, मै राजरानी बनूँगी। काश अगर नही कहता! कलमुँहे ने जो कहा, अजी वही हुआ।

अहा, अगर उस दिन सबेरे डाली लेकर नही निकलती। गंगाजल से क्या शिव की पूजा नही होती? माँ, सभी बातो मे बढी-चढी रहती थी। फूल उन्हे चाहिए ही चाहिए, नही तो शिव की पूजा नहीं होगी। और उन्हे न जाने कैसा पता चल गया? और राजा की भी अकल कैसी थी। दुनिया मे अनगिनत रास्ते के रहते हुए भी उन्हें जाने का रास्ता मिला, उसी हमारे पोखरे की बगल वाली सँकरी गली से।

सुना, राजा आ रहे हैं, राजा आ रहे हैं—मुँह बाए राजा को देख रही थी। सोचा, शायद उनके चार हाथ देखूँगी। हाय, तब अगर दौडकर घर मे घुस जाती!

राजा को तो न जाने कितने लोगो ने देखा था। तकदीर तो किसी की नही खुली। उस दिन से लोगों की हँसी नही सुहाती। लगता है उस हँसी के नीचे मानो छुरी की टेढी धार चमक रही है।

राजा हँसकर बोले—बिटिया, तुम्हारा नाम क्या है? मैं लज्जा से गड गयी। सिर झुकाये खडी बायें पैर की उँगली से मिट्टी कुरेदने लगी, नाम याद नही आया। कानों मे झिल्लियो की आवाज आने लगी। नाक के ऊपर पसीने की बूँदे दिखाई पडी।

राजा बोले—"कितनी शात है—कैसे लक्षण हैं, कैसा रूप है।—यह तो केवल मेरे ही घर के उपयुक्त है।"

उस दिन से चारो ओर कानाफूसी शुरू हो गयी। मेरा मन तडफडाने लगा। क्यो, राजा की तो कोई खबर नही आती? हाय रे अभागी! अन्त मे तेरी साध पूरी हुई।

जब पुकार आयी तो बिलकुल बालो को मुट्ठी मे पकडकर। अब सब्र नही सहा गया। नही जानती कब कुमार मुझे देखकर नहाना खाना छोड बैठे।

पोथी-पत्रा देखकर ज्योतिषी ने ब्याह का दिन निश्चित कर दिया—सावन महीने की पूर्णिमा का दिन। उस रात को कितनी वर्षा, कितना तूफान आया! सच कहती हूँ—उस तूफान मे ब्याह के मन्त्र उड गये। केवल हम दोनों ने एक दूसरे को देखा—केवल एक बार! इसके बाद तूफान मे सारी बत्तियाँ बुझ गयी—हमारे गले की जुही की माला टुकडे-टुकडे होकर न जाने कहाँ उड़ गयी।

मैं कुमार की छाती के पास सिमटकर बोली,—"अजी, मुझे बहुत डर लग रहा है।" मेरे मुँह के पास मुँह लगाकर वह बोले, "और खिसक आओ—मेरी इस छाती के अन्दर।"

मैं तूफान के अन्दर काँपते-काँपते, चिडियो के बच्चे जिस तरह घोंसले मे सोते हैं, उसी तरह सो गयी।

सबेरे नींद खुलने पर देखा, राजकुमार कहाँ है,—मैं तो अपनी नौकरानी की छाती पर पडी हूँ!

उसके मुँह की ओर देखा, उसकी दोनो आँखो से आँसुओ की धारा बह रही है। बोलने की हिम्मत नही हुई।

देखा, बादलो से बहुत-सा पानी बरस रहा है—देखा, घर के सभी लोगो की आँखों से आँसू बरस रहे हैं। पेडो के अन्दर से सायँ-सायँ करती हुई हवा बह रही है। मुझे लगा कि मेरी छाती के अन्दर बहुत-सी हवा गुमसुम बैठी है। इच्छा हुई कि रोऊँ। रोना नही आया, अवाक् हो गयी। एक ही रात के अन्दर मेरे सीने का सारा खून—आँखो के सारे आँसू इस तरह किसने सोख लिये!

उसके बाद फिर कुमार से मुलाकात नही हुई। लाज के मारे किसी से पूछ नही सकी कि वे कहाँ हैं।

विशाल मकान में पिंजडे की चिडियों की तरह पडी रही। जो मुझे देखता था वही रोता था—मैं अवाक् देखती रहती थी।

अन्त मे एक दिन राजकुमार दिखाई पडे। उस दिन न जाने कहाँ की नीद ने मुझे आ घेरा था। उन्होने न जाने कितनी बातें कही, उनका अर्थ तब नही समझा था। आज भी क्या समझा है!

उन्होने कहा, फिर मुलाकात होगी। कब? यह नही बतलाया। कहा, "मुझे छोडकर वह कही नही रह सकेगे।" उन्होने मुझे माँग का सिन्दूर धोने के लिए मना किया—हाथ की चूडियाँ फोड़ डालने के लिए

मना किया—इसीलिए यह सिन्दूर है—इसीलिए आज भी इन अभागे हाथों मे सोने की चूड़ियाँ चमक रही हैं।

अब तुममें से कोई क्या कृपा करके मुझे बतला सकता है कि वह कब आएँगे?

यह क्या! तुम लोग भी अवाक् होकर क्या देख रहे हो! आँखों की उस तरह की उदासीन चितवन को मैं बर्दाश्त नही कर पाती।

अजी, तुम क्या सबके सब तस्वीर हो? बातें नही करते? हाय-हाय—मुझे तुम किस देश में रख गये हो कुमार! अरे मेरी अम्मा! तुम्हारी आँखों के कोने में वह क्या है? आँसू तो नहीं हैं! यह क्या, तुम लोग भी बातें नही करोगी? तो मुझे कौन बतलायेगा कि कुमार तुम कब आओगे। ('भारतवर्ष' जेठ, '१३२४)

पुस्तकों का दुःख

कुमार मुनीन्द्रदेव रायजी की वक्तृता सुनकर, और कुछ भले ही न हो, पर कम से कम हमारा तो एक उपकार अवश्य ही हुआ। यूरोप के बहुत से ग्रन्थागारो के सम्बन्ध में वे जो कुछ कह गये, उनमें से बहुत सी बातें तो हमें याद न रहेगी। किन्तु आज उनकी वक्तृता सुनकर हमारे मन मे एक आकुलता जाग उठी है। यूरोप के ग्रन्थागारो की अवस्था जैसी समुन्नत है, वैसी अवस्था हमारे देश में कब होगी-इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। किन्तु जितना होना सम्भव है, उसके लिए चेष्टा करना हमारे लिए उचित है। चारों तरफ से यही अभियोग लगाया जाता है कि हमारे ग्रन्थागारों मे अच्छी पुस्तकें नहीं हैं। हैं भी तो केवल वाहियात नावेल। हमारे लेखकगण ज्ञानपूर्ण पुस्तके नही लिखते। वे केवल गल्प लिखते हैं। किन्तु वे लिखेगे कहाँ से? इन अतिनिन्दित गल्प लेखकों के दैन्य की सीमा नही। बहुतों के उपन्यासों के तो शायद द्वितीय संस्करण भी नही निकल पाते। इन उपन्यासो से जो कुछ भी लाभ होता है, वह किसके पेट में प्रवेश कर जाता है, यह न बताना ही अच्छा है। बहुतो को शायद इसकी धारणा ही नही हैं कि यह लेखक-सम्प्रदाय कितना विपन्न, दरिद्र एव निस्सहाय है।

किन्तु विलायत में गल्प लेखकों की अवस्था भिन्न है। वे धनवान हैं। उनमे से एक-एक की शान शौकत की, आमदनी की, हम कल्पना भी नहीं कर सकते। थोडे ही समय के भीतर उनकी पुस्तको के संस्करण के बाद सस्करण निकलते रहते हैं, क्योंकि, उस देश में अन्तत. सामाजिकता की भावना से भी प्रेरित होकर लोग पुस्तके खरीदते हैं। किन्तु हमारे देश में ऐसी बात नही हैं। उस देश मे हर घर मे ग्रन्थागार रखना उच्चवंशीय होने की निशानी है। सभी शिक्षित व्यक्तियो को पुस्तके खरीदने का अभ्यास है। यदि वे न खरीदे तो उनकी निन्दा होती है, शायद कर्तव्य की भी त्रुटि होती है। और जिन लोगों की अवस्था ठीक है, उनकी तो कोई बात ही नही है। उनमे से प्रत्येक के ही घर में एक-एक बडा ग्रन्थागार मिलेगा। पढने के लिए लोग उसमें रहे या न रहे, किन्तु ग्रन्थागार रखना तो जैसे उनका एक सामाजिक कर्तव्य है। किन्तु हम लोग कितने दुर्भाग्यग्रस्त जाति के हैं। हमारे यहाँ शिक्षित लोगो मे भी पुस्तकें रखने का चलन नही है। बहुत से लोग शायद मासिक पत्रिका के पृष्ठों से समालोचना के बहाने गाली-गलौज का उपकरण सग्रह कर लेते हैं। यदि आप पता लगावे तो देख सकेंगे, उनमे से बहुतो ने मूल पुस्तक भी नही पढी है। मैं स्वयं ही एक साहित्य-व्यवसायी हूँ। बहुत से जगहो से मुझे निमन्त्रण मिलते हैं। बहुत से बड़े आदमियों के घर भी जा चुका हूँ। पता लगाकर मैंने देखा तो यही ज्ञात हुआ कि उनके पास सब कुछ तो है, केवल ग्रन्थागार नही है। पुस्तके खरीदना उनमे से बहुतो के ही लिए अपव्यय के सिवा और कुछ भी नही है। जिनके पास कुछ पुस्तके रहती भी है तो वे भी कुछ ही चमकदार पुस्तके बाहरी कमरे में सजाकर रखते हैं। किन्तु बगला पुस्तकें तो बिलकुल ही नही खरीदते।

यही कारण है—जिनको आप ज्ञानपूर्ण पुस्तके कहते हैं, उनकी रचना बगला मे नहीं होने पाती। ये बिकती ही नही, इसलिए प्रकाशक वैसी किताब छपाना नही चाहते। वे कहते हैं, इन पुस्तको की माँग नहीं है, ले आओ गल्प-उपन्यास। लोग समझते हैं, उपन्यास लिखना बहुत ही सहज है। मुहल्ले के लोग शुभाकांक्षी होते हैं। वे असमर्थ आत्मीयजनों को परामर्श देते हुए कहते हैं कि तू कुछ भी नही कर सकता, तो जाकर कम से कम होमियोपैथी सीख ले। किन्तु सच यह है कि होमियोपैथी की तरह कठिन काम बहुत ही कम है। इसका कारण यह है कि, जो चीज सबसे मुश्किल है, उसको बहुत से लोग सबसे आसान मान लेते हैं। भगवान के भी सम्बन्ध मे लोग बहुत बातें करते हैं, उनके सम्बन्ध में आलोचना करने मे किसी को कभी विद्या-बुद्धि का अभाव नही होता।

गल्फ लेख के विरुद्ध अभियोग करने मे क्या होगा ? अर्थाभाव मे कितनी अच्छी अच्छी कल्पनाये कितनी बडी-बडी प्रतिभाएं नष्ट हो जाती है इसकी खबर कौन रखता है। युवावस्था मे मुझे भी एक कल्पना थी, एक ऊँची आशा थी कि ''द्वादश मूल्य'' नाम देकर मैं एक ग्रन्थ तैयार करूँगा। जैसे– सत्य का मूल्य, मिथ्या का मूल्य, दु ख का मूल्य, नर का मूल्य, नारी का मूल्य-इसीप्रकार मूल्य विचार अभीष्ट था। उसकी ही भूमिका की दृष्टि से उस युग मे मैंने ''नारी का मूल्य'' लिखा था। वह पुस्तक भी बहुत दिनो तक अप्रकाशित पडी रही। बाद मे 'यमुना' पत्रिका मे प्रकाशित तो जरूर हुई, किन्तु उस द्वादश मूल्य को मैं फिर समाप्त न कर सका, इसका कारण है अभाव। मेरे पास जमींदारी नही है। रुपये नही हैं। तब तो मेरी ऐसी हालत थी कि दोनो वक्त के लिए भोजन जुटाने के लिए पैसे तक नही थे। प्रकाशको ने उपदेश दिया, इस तरह काम न चलेगा। तुम जैसे भी हो दो-चार उपन्यास लिख डालो। बाजार मे उनकी खपत एक हजार की सख्या मे तो हो ही जायगी। हमारी जाति की विशेषता ही कहे या दुर्भाग्य कि लोग पुस्तके खरीद कर हम लेखको की सहायता नही करते। यहाँ तक कि जिनकी अवस्था अच्छी है, वे भी ऐसा नही करते। वरन् अभियोग करते हैं कि उपन्यास पढ़कर क्या होगा? फिर भी, आज अन्त पुर मे जितना भी स्त्री-शिक्षा का प्रचार हुआ है, उसका सारा श्रेय इन गल्पो को है।

कितने ही बडे-बडे कवि उत्साह का अभाव रहने के कारण नाम और कीर्ति अर्जन न कर सके। परलोकगत सत्येन दत्त की शोक सभा मे जाकर मैंने देखा था, बहुत से लोग सचमुच ही रो रहे थे। तब मैंने अत्यन्त क्षोभ के साथ कहा था—कडी बात कहने का मुझे अभ्यास है, ऐसे स्थानो मे कभी-कभी कडी बाते मैं कह भी देता हूँ। उस दिन मैंने कहा था—इस समय आप लोग रोना-धोना मचा रहे हैं, किन्तु क्या जानते हैं कि बारह वर्षों मे उनकी पाँच सौ पुस्तको की भी बिक्री नही हो सकी। बहुत से लोग शायद उनकी सभी पुस्तको का नाम तक भी नही जानते। फिर भी आज आप लोग आँसू गिराने आये हैं।

हमारे देश मे जितने बडे आदमी हैं, वे यदि कम से कम सामाजिक कर्तव्य पालन के ध्येय से भी पुस्तके खरीदे, अर्थात् जिसमे देश के लेखकों की सहायता हो, ऐसी चेष्टा वे करे, तो उससे साहित्य की बहुत उन्नति होगी। लेखको को उत्साह मिलेगा, भरपेट भोजन मिलेगा, खुद उन्हे भी तरह-तरह की पुस्तके पढ़ने का अवसर मिलेगा। इसके फलस्वरूप उनका भी ज्ञान बढेगा, तभी तो बेचारे लेखक ज्ञानपूर्ण पुस्तके लिख सकेगे।

राय महाशय की वक्तृता सुनकर एक और बात विशेष रूप से हमारी नजर मे पड जाती है। विदेश मे जो कुछ हुआ है, उसे वहाँ की जनता ने मिलकरके किया है। वे सभी सम्पन्न हैं। उन्होने मोटी-मोटी रकमें दान मे दी हैं, जिनसे बडी-बडी सस्थाएँ कायम हुई है। हम लोग प्राय ही सरकार की निन्दा करते रहते हैं, गालियाँ सुनाते रहते हैं। किन्तु हमारे ही यहाँ देशबन्धु की स्मृति भण्डार की पूर्ति किस परिणाम मे हुई है? उन्होने देश के लिए क्या नही किया? उनकी स्मृति-रक्षा के लिए कितने आवेदन किये गये। किन्तु वह भिक्षापात्र आज तक भी आशा के अनुरूप पूर्ण नही हो सका। किन्तु इग्लैण्ड मे 'वेस्ट मिनिस्टरएबे' के एक कोने मे जब दरार पड गयी तब वहाँ के डीन ने बीस लाख पौण्ड के लिए एक अपील निकाली। कुछ ही महीने मे उस कोष मे इतने पैसे आ गये कि अन्त मे उनको उस फण्ड को बन्द करने को बाध्य होना पडा। किन्तु दाताओं ने नाम के लिए यह दान नही किया, यह बात इसी से स्पष्ट ही समझ मे आ जाती है कि समाचार पत्र मे किसी भी दाता का नाम नही निकलता था। इतना सम्भव तभी होना है जब लोगो मे स्वदेश के सम्बन्ध मे एक प्रबुद्ध मन तैयार हो जाता है।

मेरी प्रार्थना है कि कुमार मुनीन्द्रदेव राय महाशय दीर्घजीवी हो। अपने इस आरम्भ किये गये कार्य मे वे उत्तरोत्तर सफलता प्राप्त करे। उनकी बाते सुनने मे हमारे मन मे आकुलता जाग जाती है। जिनमे जिस परिणाम मे शक्ति हो, व उसी परिणाम मे लाइब्रेरी आन्दोलन के लिए दान देवे तो देश का काम बहुत आगे बढ जायगा। हमे शायद इस कार्य का सुपरिणाम देखने का अवसर न मिले, किन्तु मुझे आशा है, इस समय जो लोग युवक हैं—जो उम्र मे छोटे हैं, वे निश्चय ही इस कार्य का कुछ अच्छा फल देख सकेगे। ''कोन्नगर पाठचक्र'' की चेष्टा से जो ये सब मूल्यवान बाते सुनी गयी उसके लिए वक्ता और सभ्य लोगो को मैं आन्तरिक धन्यवाद देता हूँ। आज मुझे बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ। कहाँ है यूरोप और कहाँ है हमारा यह अभागा देश! युग-युगान्तर का पाप सचित हो चुका है। एक मात्र भगवान् की विशेष करुणा के अतिरिक्त परित्राण की तो कोई आशा मैं नही देखता।

* *

भाग्य-विडम्बित लेखक -सम्प्रदाय

उस दिन विचार पूर्वक हिसाब लगाकर मैंने समझ लिया जो लोग यथार्थ साधना करते हैं, साहित्य जिनका केवल विलास नही है, साहित्य जिनके जीवन का एक मात्र व्रत है, ऐसे जितने भी लोग इस देश मे हैं, उनकी सख्या तो अगुलियो पर गिनी जा सकती है।

ये साहित्य-सेवी अक्लान्त परिश्रम कर भूखे रह, रात-रात जागकर देश के लिए साहित्य-रचना करते हैं। सुनता हूँ वह साहित्य जन-समाज का कल्याण करता है, किन्तु हम क्या उसका मूल्य उन्हे दे पाते हैं?

जिन साहित्यिको ने देश के लिए प्राणो की बाजी लगा दी, उनको इस त्याग और बलिदान का पुरस्कार दरिद्रता और लाछना के रूप मे मिला। साहित्यसेवी बहुत अधिक धन-सम्पत्ति अर्जन कर वित्तशाली एव धनवान होना नही चाहते। वे चाहते हैं केवल थोडा सा स्वच्छन्द जीवन, सर्वनाशकारी दरिद्रता के घोर अभिशाप से मुक्ति। वे चाहते हैं केवल निश्चिन्तता से लिखने योग्य अनुकूल जलवायु, किन्तु दु ख है कि उनको यह सुलभ नही। उन्हे आजीवन केवल भाग्यविडम्बित होकर ही समय बिताना पडता है जिनकी कल्याण कामना करते-करते उन्होने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया, वे एक बार भूले से भी उनकी ओर ऑख उठाकर देखते नही।

देश के लोग उन साहित्यसेवियो को कुछ भी नही देते, किन्तु वे उनसे पाना बहुत चाहते हैं। यदि कही किसी की रचना जरा भी खराब हुई नही कि बस, उसी क्षण समालोचना के विष से और निन्दा के तीक्ष्ण शर से उस साहित्य-सेवी को जर्जरित कर डालेगे।

इस अतिनिन्दित गल्प लेखको के दैन्य की कोई सीमा नही। इनके लिखित विषयो को पढकर सर्व साधारण आनन्द तो जरूर पाते हैं, किन्तु यदि उनके घरो की खबर ली जाय तो मालूम होगा कि यह लेखक-सम्प्रदाय कितना दरिद्र है, कितना निस्सहाय है। बहुतो के उपन्यासो का तो शायद द्वितीय सस्करण हो ही नही पाता।

किन्तु ऐसा क्यो होता है?

इसका एक मात्र कारण यह है कि हमारे देश के लोग पुस्तके तो जरूर पढते हैं, किन्तु पैसा खर्च करके नहीं। यहाँ यह बात शायद कही जा सकती है कि हमारे देश के जनसाधारण दरिद्र हैं, पुस्तके खरीदने की सामर्थ्य उनमे नही है। किन्तु जिनमे सामर्थ्य है, ऐसे अनेक बडे लोगो के घर मैं जा चुका हूँ। वहाँ जाकर मैंने देखा है, उनके पास सभी चीजे हैं, मकान है, गाडी है, विलास-व्यसन के सहस्र उपकरण हैं, केवल पुस्तकें नही हैं। पैसा खर्च करके पुस्तके खरीदना उनमे से बहुतो के ही लिए अपव्यय के सिवा और कुछ नही जान पडता।

फिर भी गल्प लेखको के विरुद्ध जितने अभियोग लगाये जाते हैं, उनका कोई अन्त नही। सम्प्रति मैं यही सुन रहा हूँ कि वे लोग अच्छा नही लिखते। क्यो नही अच्छा लिखते, यदि यही प्रश्न कोई मुझसे करे तो मैं कहूँगा—जिन लोगो मे शक्ति है, वे अर्थाभाव से, दरिद्रता के उत्पीडन से इस तरह निष्पेषित है कि, कोई भी अच्छी चीज लिखने की इच्छा रहने पर भी उनको अवसर नही मिलता, अथवा उनकी इच्छा भी नही होती।

इस स्थिति का प्रतिकार सबसे पहले आवश्यक है। सबसे पहले देश के साहित्यिको का अर्थाभाव दूर करने की व्यवस्था करनी होगी, वे अच्छी पुस्तके लिख सके, इसके लिए अनुकूल वातावरण तैयार करना होगा। ऐसा करने से ही साहित्य की रक्षा होगी, नही तो सुदूर भविष्य मे उसकी क्या अवस्था होगी, भगवान ही जाने।

हमारे देश के बडे लोग यदि कर्तव्य-पालन की नीयत से भी एक-एक पुस्तक खरीदे तो उस अवस्था मे भी इसके प्रतिकार की कोई व्यवस्था हो जायगी। पुस्तके न खरीद कर भी अनेक प्रकार से सहायता पहुँचाकर वे लोग साहित्य को समृद्ध बना सकते हैं। किन्तु क्या वे ऐसा करेगे?

पुराने युग मे बडे-बडे राजा लोग अपने दरबार मे कवियो को रखकर उन साहित्यिको की

जीवन-वृत्ति की व्यवस्था कर देते थे और अनेक प्रकार से साहित्यको को उन्नति करने का सुयोग देते थे। आजकल वह दशा भी नही रही।

जो लोग शौक से साहित्य-सेवक बने हैं, उनके विषय मे मैं कुछ भी नही कहता। भगवान् की कृपा से जिसके लिए अन्न की व्यवस्था है, साहित्य जिनके लिए विलास की सामग्री है, उनकी बात ही दूसरी है। शायद वे लोग कहेगे—यह अन्न चिन्ता वलगर है, ऐसा करने से साहित्य की श्री नष्ट हो जायगी। इसकी चिन्ता बाद को करने मे भी काम चलेगा।

बाद को अन्न-चिन्ता करने से, जिनका काम चल जाता है, भाई, वे लोग वही करे, उनकी चर्चा मैं यहाँ न करूँगा। मैं केवल उन अभागो की ही बात कह रहा हूँ—जिनकी अस्थि मे, मज्जा मे साहित्य के अत्यग्र विष की प्रक्रिया शुरू हो गयी है, साहित्य सृजन जिनका जन्मगत अधिकार है, जिनके रग-रग मे सृजन और सृष्टि की मदाकिनी प्रवाहित हो रही है। ये सब उन्मादी व्यक्ति होते हैं, ये दारिद्रय एव लाञ्छना के बीच बैठकर भी लिखते रहेगे, यह मैं जानता हूँ। न लिखने से ये जीवित ही न रहेगे। इसीलिए जितने दिन वे जीवित रहते हैं, उतने दिन तक तो उनके लिए दो मुट्ठी अन्न की व्यवस्था होनी ही चाहिए। ये साहित्यिक दूसरो के लिए जी रहे हैं। ये उत्सर्ग और परोपकार की दीप शिखा के लौ हैं। यदि अन्नाभाव से अकाल मे ये दीपक बुझ गये तो उससे देश का महान अमगल होगा। बस आप लोग केवल इतनी ही बात आज जान रक्खे।

('वातायन', २७ फाल्गुन, १३४४)

* *

शुभेच्छा

शारदीया पूजा बगालियो का सबसे बडा उत्सव है। इसके प्रति बगदेश की नर-नारियो मे जो उत्सुकता रहती है, उसका कोई अन्त नही है। स्नेह का भी अन्त नही है। यही बात उनके आनन्द के विविध पत्रो और विचित्र गतियो मे प्रकट होती है। कही तो यह अन्तर्मुखी है—मनुष्यो को अपने घरो को लौट आने की अत्यन्त उत्सुकता मे, आत्मीय स्वजनो के समीप पहुँचने की कामना मे और कही तो यह बहिर्मुखी है—घर छोडकर बाहर चले जाने की जरूरत मे। जो अपरिचित हैं, अभी अनजान हैं, उनको स्वजन बनाकर जान लेने की व्याकुलता मे। इस कारण, उस दिन जब शिलाग पहाड निवासी हेमचन्द्र ने आकर कहा, इस बार पूजा के अवसर पर हम एक समाचार पत्र निकालेगे तब मैं विस्मित नही हुआ। मैने सोचा, यह अच्छा ही हुआ कि इन लोगो के आनन्दोत्सव की धारा इस बार साहित्य-सेवा की ओर प्रवाहित होगी। इस आयोजन को सम्पूर्ण और सुन्दर बनाने मे परिश्रम है, व्यय है,—इसे छोडिये तो भी, सभी बाधाओं का अतिक्रमण करके भी एकाग्रसाधना की जो सफलता वाणी के प्रसाद रूप मे वे लोग पा जायेगे, उससे निष्कलक आनन्दरस मधुरतर एव दीप्ततर हो उठेगा।

किन्तु एक बात कहने की जरूरत है। मैं जानता हूँ मेरी इन कुछ पंक्तियो के लिखने का मूल्य कुछ भी नही है, और ऐसा सम्भव भी नही है, क्योकि, जिनकी शक्ति प्राय समाप्त हो चुकी है, जिनकी आयु अस्तोन्मुख है, उनसे कुछ भी आशा करना ठीक नही। तो भी, मेरी इन पक्तियो से इस पत्रिका की कोई हानि न होगी। साहित्यव्रत मे जो लोग नवीन पथिक है जो उदीयमान हैं, जिनका वेग चचल—गतिशील है, इस वाणी पूजा का महत् अर्घ्य उनके पास से ही समाहृत होगा, यही मुझे आशा है। शिलाग के बगाली अधिवासियो की तरफ से हेम ने केवल मुझ से ही आशीर्वाद माँगा था, अपनी शरत्‌वार्षिकी के लिए शुभकामना। एकान्त मन से मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि उनका प्रयत्न, उनकी साधना सार्थक हो। इस वार्षिकी साहित्यिक पत्रिका की आयु सुदीर्घ हो। यह इसी प्रकार प्रति वर्ष प्रकाशित होती रहे।

नाटक

तुम्हारा यही प्रश्न है कि मैं नाटक क्यों नही लिखता? शायद दो कारणो से तुम्हारे मन मे ऐसा प्रश्न उठ खडा हुआ। प्रथम नाटककार और दूसरे ग्रंथकारो द्वारा लिखे गये उपन्यासो को नाट्यरूप प्रदान करने वाले श्रीयुक्त योगेश चौधरी ने सम्प्रति 'वातायन' पत्रिका में बगला नाटक के सम्बन्ध मे जो मन्तव्य प्रकट किया है, उसको तुम पूर्णरूप से स्वीकार नही कर सके हो, और दूसरा—यह कि तुम लोग निरन्तर जिन नाटको का अभिनय देखते रहते हो, उनके भाव, उनकी भाषा, उनका चरित्र गठन आदि पर विचार करने के बाद तुम लोगो के मन में यही बात जाग उठी है कि शरत्‌चन्द्र यदि नाटक लिखे तो सम्भव है, रगमच का कुछ कायाकल्प हो सके।

तुम्हारे प्रश्न के उत्तर मे मुझे पहली बात तो यह कहनी है कि मैं नाटक नही लिखता। इसका कारण है, मेरी असमर्थता दूसरा, इस अमसर्थता को अस्वीकार करके यदि मैं नाटक लिखूँ भी तो उस हालत में जो पारिश्रमिक मुझे उससे प्राप्त होगा, उससे मेरा काम चल नहीं सकेगा। यह मत समझना कि मैं यह बात केवल रुपये पैसे के दृष्टिकोण से कह रहा हूँ। संसार में उसकी जरूरत तो पड़ती ही है, किन्तु वही एकमात्र जरूरत नही है, इस सत्य को मैं एक दिन के लिए भी नही भूलता। मासिक पत्र के सम्पादक उपन्यास को आग्रह के साथ स्वीकार करेंगे। उपन्यास छापने वाले प्रकाशको की भी कमी नहीं है। अब तक तो मुझे इस बात की कभी कमी हुई ही नही। और मेरे उपन्यास के पाठक भी मुझे मिलते रहे हैं। फिर कहानी लिखने की धारा मैं जानता हूँ। कम से कम- यह चीज मुझे सिखा दीजिये—ऐसा कहकर किसी के द्वार पर जाने की नौबत अभी तक नही ही आयी। किन्तु नाटक? रंगमचों के संचालक ही हैं, इसके चरम हाईकोर्ट। सिर हिलाकर यदि दे कह दे कि इस स्थान मे ऐक्शन कम है, दर्शक पसन्द न करेंगे अथवा यह पुस्तक चलने वाली नही है तारे फिर उसको चलने लायक बनाने का कोई उपाय नही रहेगा। उनकी सम्मति ही इस सम्बन्ध में अन्तिम बात है, क्योंकि ये इस लाइन के विशेषज्ञ होते हैं। रुपया खर्च करके नाटक देखने वाले दर्शको की नाड़ी पहचानने की कला वे सब खूब जानते हैं। इसलिए इस विपत्ति में निरर्थक घुस पड़ने में मुझे सकोच मालूम होता है।

सम्भवतः मैं नाटक लिख सकता हूँ क्योंकि, नाटक के लिए जो अत्यन्त आवश्यक वस्तु है—जिनके ठीक न होने से नाटक का प्रतिपाद्य विषय किसी तरह भी दर्शकों के हृदय में नहीं पहुँच पाता, वह होता है डायलाग और उसे लिखने का मुझे पूरा अभ्यास है। कोई बात किस तरह कहनी चाहिए, कितने सीधे रूप से कहने से वह मन को अपील करेगी, उस कौशल की जानकारी मुझे न हो, ऐसी तो बात नही है। इसके सिवा चरित्र अथवा घटना सृष्टि की बात यदि कहते हो तो मुझे विश्वास है कि मैं यह काम भी अच्छी तरह कर सकता हूँ। नाटक में घटना या 'सिचुएशन' को लाना पड़ता है चरित्र सृष्टि के ही लिए। चरित्र सृष्टि दो प्रकार से हो सकती है। एक है—प्रकाश अर्थात् पात्र-पात्री जो है, वही घटना—परम्परा की सहायता से दर्शको के सामने प्रकट कर दिये जायँ। और दूसरा है—चरित्र के विकास अर्थात् घटना परम्परा के बीच से उनके जीवन का परिवर्तन दिखाना। यह अच्छाई की तरफ भी हो सकती है और बुराई की तरफ भी। मान लो, कोई एक आदमी शायद बीस वर्ष पहले विलसन के होटल मे खाया करता था, झूठ बोलता था और अन्य कुकर्म भी करता था। यही आज धार्मिक वैष्णव बन गया है। बंकिम चन्द्र के कथनानुसार थाली मे मछली का झोल पड़ जाने से उसे हाथ से पोछकर फेंक देता है। तो भी शायद वह उसका पाखण्ड नही है, उसका सच्चा आन्तरिक परिवर्तन है। सम्भवतत बहुत-सी घटनाओ के भँवर मे पडकर, पाँच भले आदमियो के सस्पर्श मे आकर, उनके द्वारा प्रभावित होकर, वह सचमुच ही बदल गया है। इस कारण बीस वर्ष पहले, वह जैसा था, वह भी सत्य है और आज वह जैसा हो गया है, वह भी सच है। किन्तु जैसा का तैसा होने से तो काम न चलेगा। पुस्तको के जरिये, लेखो के जरिये पाठको या दर्शको के समक्ष उसे सत्य रूप प्रदान करके प्रस्तुत करना होगा। उनको ऐसा न मालूम होने पावे कि लिखित विषय मे इस परिवर्तन का कारण ढूँढने से नही मिल रहा है। और यह कार्य कठिन है। एक बात और है—उपन्यास की तरह नाटको मे Clasticity नही होती। नाटक को एक निर्दिष्ट समय से अधिक आगे बढने नही दिया जा सकता। घटना के बाद घटना को सजाकर नाटक को दृश्य या अक मे बॉट देना—यह भी शायद चेष्टा करने से दुस्साध्य न होगा। किन्तु मैं सोचता हूँ, ऐसा करने से होगा क्या? मैं

जो नाटक लिखूँगा, उसका अभिनय कौन करेगा? कुशल, शिक्षित समझदार अभिनेता-अभिनेत्री ही कहाँ है? नाटक की 'हिरोइन' कोई बन सकेगी। ऐसी एक भी अभिनेत्री नजर नहीं आ रही है। इसी प्रकार विभिन्न कारणों से साहित्य की इस दिशा की तरफ कदम बढ़ाने की इच्छा नहीं होती। मुझे आशा है, एक दिन वर्तमान रंगालय का यह अभाव दूर हो जायेगा, किन्तु हम तो शायद आँखों से वह मंच देख न सकेंगे। अवश्य ही यदि ऐसा करने के लिए सच्चा तकाजा आया तो शायद किसी दिन मैं भी नाटक लिख सकूँ। किन्तु मुझे इसकी आशा बहुत नहीं है।

* *

बाल्यकाल की स्मृति

पुरानी बातों की आलोचना' शीर्षक एक निबन्ध प्रकाशित हुआ है। उसमें मेरे सम्बन्ध में कुछ आलोचना है, किन्तु इसलिए उस आलोचना में मैं भी शामिल हो जाऊँ, ऐसा स्वभाव मेरा नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि मैं बहुत ही आलसी आदमी हूँ—सहज ही में लिखने-पढ़ने के काम में मेरा मन नहीं लगता। दूसरा कारण यह है कि अपने विगत जीवन के इतिहास के सम्बन्ध में मैं अत्यन्त उदासीन रहता हूँ। मैं जानता हूँ कि इस विषय को लेकर बहुत तरह की कल्पनाएँ और बहुत प्रकार की जनश्रुतियाँ सर्वसाधारण में प्रचारित हो चुकी हैं, किन्तु मेरे निर्विकार आलस्य को वे अणुमात्र भी विचलित नहीं कर सकतीं। जो लोग मेरे हिताकांक्षी हैं, वे कभी-कभी उत्तेजित होकर मेरे पास आते हैं और कहते हैं—आप क्या नहीं इन मिथ्या बातों का प्रतिकार करते? मैं कहता हूँ कि यदि ये सब बातें मिथ्या हैं तो उनका प्रचार मैंने नहीं किया है। इसलिए प्रतिकार करने का दायित्व भी मेरे ऊपर नहीं है। यह सब भी उन्हीं लोगों पर है, अतः जाओ, उनसे ही कहो, वे ही प्रतिकार करेंगे। तब वे लोग क्रोधित होकर उत्तर देते हैं—लोग आपके सम्बन्ध में अद्भुत धारणा रखते हैं। आखिर इसके लिए क्या किया जाय? मैं कहता हूँ—यह दायित्व भी उन्हीं का है, किन्तु इन सत्तावन वर्षों में भी यदि कोई हानि न हुई हो तो और कुछ ही वर्षों तक धीरज रक्खो, अपने ही आप इस तरह की सारी बातें खतम हो जायँगी। चिन्ता की कोई बात नहीं।

आज इस निबन्ध को पढ़ते-पढ़ते मैं सोच रहा था कि हमारे बचपन में उस अत्यन्त छोटी-सी तुच्छ साहित्य सभा में नेपथ्य में शामिल होने का—'नेपथ्य' शब्द प्रयुक्त करना कोई एक सज्जन भूल गये हैं इस कारण कैसी व्याकुलता है! एक बार भी मैंने विचार नहीं किया कि इसका भी मूल्य कितना है और इस वृहत् संसार में कौन ऐसा है जो उन बातों को याद रक्खेगा। अवश्य ही इन प्रश्न का यही उत्तर भी है। वह जो कुछ भी हो, अपनी बात ही कह दूँ। कहने का जरा सा कारण है, किन्तु वह मेरे लिए नहीं है, इस निबन्ध के अन्तिम अंश तक पढ़ने से वह समझ में आ जायगा।

श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय मेरे आत्मीय हैं और बाल्यकाल के मित्र हैं। 'कल्लोल' में और 'स्याही-कलम' में उन्होंने मेरे बाल्यजीवन के प्रसंग में क्या-क्या लिखा है, उसे मैंने नहीं पढ़ा है—कौन सी बात उन्होंने कही थी, उसे भी मैंने नहीं देखा है। मेरा ऐसा स्वभाव ही है। किन्तु मैं जानता हूँ मेरे ऊपर सुरेन का कितना असीम स्नेह है, इस कारण उनके लेख में अतिशयोक्ति अवश्य ही है, यह तो मैं न पढ़ने पर भी शपथ पूर्वक कह सकता हूँ। किन्तु लेख को बिना पढ़े उसके सम्बन्ध में शपथ लेना एक बात है, और बिना पढ़े उसका प्रतिवाद करना दूसरी बात! इस कारण यह किसी के लेख का प्रतिवाद नहीं है—केवल जितनी बातें मुझे याद आती जा रही हैं, उन्हें ही कह देना मात्र है।

भागलपुर में जब हमारी साहित्य सभा की स्थापना हुई थी, तब हमारे साथ श्रीमान् विभूति भूषण भट्ट या उनके बड़े भाइयों का कुछ भी परिचय नहीं था। शायद एक कारण यह है कि वे लोग विदेशी थे और बड़े आदमी भी थे। स्वर्गीय नफर भट्ट वहाँ सब जज के पद पर थे। उसके बाद किस तरह उस परिवार के साथ धीरे-धीरे हमारी जान-पहचान और घनिष्ठता होती गयी, वे सब बातें मुझे अच्छी तरह याद नहीं हैं। शायद इस कारण कि धनवान होने पर भी, इन लोगों में धन की उग्रता या दाम्भिकता बिलकुल ही नहीं थी। और मैं शायद इन लोगों की तरफ यथेष्ट रूप से इसी कारण आकर्षित भी हो गया था कि उन लोगों के घर में शतरंज खेलने का सुन्दर आयोजन रहता था। शतरंज खेलने का सुन्दर

आयोजन का अर्थ यह समझना चाहिए कि लेख पाठ और [illegible] आदि का

विधिवत् आयोजन रहता था।

सम्भवत उसी समय श्रीमान् विभूतिभूषण हमारी साहित्य-सभा के सदस्य बने। मैं [illegible]
था, किन्तु साहित्य-सभा मे [illegible] तरफदारी करने का अवसर मुझे कभी नहीं मिला और [illegible]
कभी नही पडी। सप्ताह मे केवल एक दिन सभा की बैठक होती थी और [illegible]
कर किसी निर्जन मैदान में ही बैठक होती थी यह जान लेना आवश्यक है कि उन दिनो इस ढंग से
साहित्य-चर्चा एक अपराध ही माना जाता था। इस सभा में कभी-कभी कविता पाठ भी होता
था। कविता सुनाने में गिरीन अच्छा था। इस कारण यह भार उसके ही ऊपर था मेरे ऊपर नही।
कविता के गुण-दोष का विचार होता था और उत्तम समझ लेने पर साहित्य सभा की मासिक पत्रिका
'छाया' में वह कविता प्रकाशित हो जाती थी। गिरीन साहित्य-सभा के मंत्री थे और 'छाया' के
सम्पादक भी और अंगुली-यंत्र से अधिकांश लेखों के मुद्रक भी। इस सम्बन्ध में मुझे साधारण तौर से
इतनी ही बाते याद पडती है।

साहित्य-सभा के सदस्यो मे सबसे मेधावी विभूति थे। वे जिस तरह यथेष्ट रूपेण शिक्षित थे, उसी
तरह सज्जन और मित्रवत्सल भी थे। समझदार समालोचक भी थे।

किन्तु नही कहकर किसी बात को जान लेना और नही कहकर प्रकट रूप मे किसी बात का प्रतिवाद
करना भी ठीक एक ही बात नही है। तब सकोच मे बाधा पहुँचती है। अपने से बडी उम्र वाले किसी
व्यक्ति को भी अकारण ही दु खित करने के क्षोभ मे मन मे अशान्ति उत्पन्न होती है। किन्तु जब सत्य
की प्रतिष्ठा करनी ही पडती है तब अप्रिय कर्तव्य की यह पुन-पुन द्विधा अपने वक्तव्य को पग-पग पर
अस्वच्छ बना देती है। पुरानी बातो की आलोचना मे विपत्ति उसी जगह उपस्थित होती है। फिर भी
इसके कहने की कोई आवश्यकता नही थी। इतने अधिक वर्षो के बाद मैं रहता तो कहता—ससार मे
कितनी ही भूले तो विद्यमान है, एक और भी रह जाय तो क्या हानि हो सकती है। इसमे कौन सा नुकसान
है। किन्तु हानि समझने का मेरा हिसाब और दूसरे का हिसाब भी एक-सा नही है।

वहा एक गल्प याद पड गया। वह इस प्रकार है—

''कई वर्ष पूर्व की बात है। एक बार हवडे में 'शरत्चन्द्र' सम्बन्धी एक सभा मे एक वक्ता ने शायद
सुरेन्द्रनाथ के उस लेख को पढकर ही अपने भाषण मे कहा था—टीला कोठी के मैदान मे (भागलपुर) यह
सभा होती थी और सुरेन्द्र, गिरीन्द्र विभूतिभूषण उनके पैरो के नीचे बैठकर साहित्य साधना करते
थे। इस सभा के एक श्रोता ने (जिनका नाम विनय कुमार बन्द्योपाध्याय था, शारीरिक बल के कारण
आदमपुर क्लब मे उनको सभी जानते थे, वे गृह-शिक्षक रूप मे भागलपुर मे बहुत दिनो से रहते आये थे
वे सब कुछ ही जानते थे।)— उत्तेजित होकर हमे यह समाचार सुनाया और प्रतिवाद करने को कहा।
विभूति बाबू ने उनको बडे ही कष्ट से शान्त करके समझाया कि दूसरे के मुह से सुनी हुई बात का
लेख के द्वारा प्रतिवाद नही किया जा सकता। अपने मुह से जो कुछ कहा जाय उतना ही ठीक है।

विभूति बाबू अपने भूतपूर्व गृह-शिक्षक विनय कुमार को यदि सचमुच ही शान्त कर सके हो तो
उन्होने एक आश्चर्यजनक काम कर डाला, इसे मैं जरूर ही मानूँगा। क्योकि चौबीस घण्टे मे एक घण्टे
के लिए भी उनको शान्त करना कोई सहज काम नही था। ''पैरो के नीचे बैठकर साहित्य साधना करते
थे,'' यह ग्लानिजनक उक्ति सुनकर भूतपूर्व गृहशिक्षक विनयकुमार ने स्वय उत्तेजित होकर प्रतिवाद
किया है और दूसरो को उत्तेजित होने को उकसा दिया है। किन्तु यह घटना मेरे लिए एकदम नयी है। सन्
१९२५ मे हवडे मे ही था, किन्तु अपने सम्बन्ध मे ऐसी एक सभा होने की बात मुझे एकदम मालूम नही
है। यदि सचमुच ही ऐसी सभा हुई होती और मैं स्वय उसमे उपस्थित रहता तो ऐसी एक बात मेरे लिए
जितनी ही बडी गौर की सामग्री क्यो न हो, असत्य कहकर मैं अवश्य ही उसका प्रतिवाद करता और
विनय को भी उत्तेजित हो उठने की जरूरत न पडती। यह मैं निस्सदेह कह सकता हूँ।

स्वभावत ही मनुष्य बहुत अशो मे कल्पना-प्रिय होता है, यह बात ठीक है, कल्पना की भी
उपयोगिता है यह बात भी सच है, किन्तु ठीक स्थान मे। भूतपूर्व गृहशिक्षक विनयकुमार स्टेट्समैन
अखबार के रिपोर्टर थे। बार-बार घटनास्थल मे उपस्थित न रहकर भी तीव्र कल्पना की सहायता से
समाचार प्रस्तुत करने के कारण उनकी नौकरी चली गयी थी और अखबार के सम्पादक को भी लांछित

होना पडा था। आज विनय परलोक मे है। मृत व्यक्ति को लेकर ये सब बाते लिखने मे मुझे क्लेश होता है।

किन्तु यह बाह्य विषय है। असल मे परेशानी मे डाल दिया है कुछ अति कौतूहल-प्रिय लोगो के अशिष्ट और अक्षम्य पूछताछ ने। उन लोगो ने पूछा है, मेरे प्रति . साहित्य के विषय मे कौन कितना ऋणी है। मुझसे भी लोगो ने ऐसा प्रश्न न किया हो, ऐसी भी बात नही है। किन्तु जिसने भी पूछा, उसको ही मैंने सदैव निष्कपट ढंग से यही बात कही है कि कोई भी मेरे प्रति लेशमात्र भी ऋणी नही है। एक स्थान मे एक ही समय मे बाल्यावस्था मे कुछ लोग साहित्य-चर्चा करने लगते हैं तो सभी एक दूसरे को उत्साह देते ही रहते हैं, कोई बात अच्छी लगने पर अच्छी कह कर मित्रगण एक दूसरे को अभिनन्दित करते ही हैं। उसे ऋण कहकर प्रचार करना ठीक नही। ऐसी हालत मे मनुष्य के ऋण की कही सीमा ही नही हो सकती। जैसे सुरेन, गिरीन, उपेन थे, वैसे ही विभूति . आदि भी। लेख पढ़ लेने पर यदि अच्छा लगा, तो मैंने अच्छा ही कहा, कही विशेष अच्छा न लगा तो उसे फाडकर फिर लिखने का अनुरोध किया। किसी दिन मैंने सशोधन नही किया। . इतने दिनो के बाद इन बातो को व्यक्त करने का मेरा उद्देश्य केवल यही है कि इस सम्बन्ध मे मेरा जो वक्तव्य है, वह लिपिबद्ध रह सके। ..

अब मै अपने सम्बन्ध मे दो-चार बाते कहकर इस आलोचना को समाप्त कर देना चाहता हूँ। बाल्यकाल की लिखी मेरी कई पुस्तके विविध कारणो से खो गयी हैं। उन सबका नाम मुझे याद नही है, केवल दो पुस्तको के नष्ट हो जाने का विवरण मैं जानता हूँ। एक है "अभिमान" बहुत मोटी कापी में स्पष्ट अक्षरो मे लिखी हुई थी। अनेक इष्ट मित्रो के हाथ घूमती हुई अन्त मे वह बाल्यकाल के सहपाठी केदार सिह के हाथ मे जा पड़ी। केदार लगातार बहुत दिनो तक बहुत सी बाते कहते रहे। किन्तु वह पुस्तक फिर मुझे वापस नही मिली। अब वे एक घोरतर तान्त्रिक साधु बाबा हैं। पुस्तक का उन्होंने क्या किया वे ही जानते होंगे। किन्तु माँगने का साहस नही होता। सिन्दूर-मण्डित उनके बडे त्रिशूल से मैं बहुत ही डरता हूँ। अब वे मेरी पहुँच के बाहर है। महापुरुष-घोरतर तान्त्रिक बाबा है। दूसरी पुस्तक है शुभदा प्रथम युग की लिखी वही मेरी अन्तिम पुस्तक थी, अर्थात् 'बडी दीदी' 'चन्द्रनाथ', 'देवदास' आदि के बाद लिखी गयी थी।

* *

आत्म-कथा

मेरा शैशव और यौवन दोनो ही दरिद्रता मे व्यतीत हुए। अर्थाभाव के ही कारण मुझे पूरी शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त नही हो सका। अस्थिर स्वभाव और साहित्यानुराग के अतिरिक्त पूज्य पिताजी से उत्तराधिकार के रूप मे मुझे और कुछ भी नही मिला। पिता के दिये हुए प्रथम गुण ने मुझे घर छोड देने को बाध्य किया। इस तरह अल्पावस्था मे ही मैं समग्र भारत का भ्रमण कर आया। और पिता के दूसरे गुण के फलस्वरूप मैं आजीवन केवल स्वप्न ही देखता रहा। मेरे पिताजी का पाण्डित्य अगाध था। छोटी कहानिया, उपन्यास, नाटक, कविता-साराश यह कि साहित्य के प्राय. सभी विभागो मे ही उन्होंने हाथ लगाया था। किन्तु किसी को भी वे पूर्ण न कर सके। उनकी लिखित सभी सामग्री आज मेरे पास नही है। कब किस तरह वे खो गयी, यह बात आज याद नही। किन्तु इतना तो अब भी मुझे स्पष्ट याद है कि बचपन मे कितनी ही बार अपनी असमाप्त रचनाओ को लेकर वह घन्टो उन्ही मे लगे रहते थे। वे उनको समाप्त न कर सके और इसके क्या कारण थे, यह सोचकर कभी-कभी मैंने बहुत ही दु ख का अनुभव किया। वे असमाप्त अश क्या हो सकते है, यह सोचते-सोचते मैंने कितनी ही निद्राहीन राते बिता दी हैं। इसी कारण शायद सत्रह वर्ष की अवस्था मे, मैंने गल्प लिखना शुरू भी किया। किन्तु कुछ दिनो के बाद यह समझ कर कि, कहानी लिखना निकम्मे लोगो का काम है, मैंने गल्प लिखने का अभ्यास छोड दिया।

इसके बाद अनेक वर्ष बीत गये। किसी समय मैंने एक लाइन भी लिखी थी, इस बात को जैसे मैं भूल ही गया था। अट्ठारह वर्षो के बाद एक दिन मैंने पुन. लिखना प्रारम्भ किया। इसका कारण दैव दुर्घटना ही ऐसा समझना चाहिए। उन दिनो मेरे कुछ पुराने मित्र एक छोटी-सी मासिक-पत्रिका प्रकाशित करने के उद्योग मे सलग्न थे। किन्तु प्रतिष्ठित लेखको मे से किसी ने भी इस सामान्य पत्रिका मे अपना लेख देना

स्वीकार नही किया। निरुपाय होकर उनमे से किसी-किसी ने मुझे स्मरण किया। वडी चेष्टा से उन लोगों ने मुझसे लेखो की वसूली कर ली। सन् १९१३ ई० की बात है। सकोचवश ही मैंने ऐसा करना स्वीकार किया था। अत किसी तरह जान बचाने के ख्याल से मैंने उन्हे लेख देना मजूर किया था। उद्देश्य यह था कि किसी तरह एक वार रगून पहुँच जायँ तो काम वन ही जायगा। किन्तु पत्र के बाद पत्र आते रहने से, और तारो की भरमार से, अत मे, सचमुच ही मुझे कलम पकडने को विवश होना पडा और तभी मे लिखने की प्रेरणा मुझे मिली। मैंने उनकी नव-प्रकाशित 'यमुना' के लिए एक छोटी-सी कहानी भेज दी। इस गल्प के प्रकाशित होते ही वगाल के पाठक समाज मे उसने अपना एक सम्मानित स्थान वना लिया। उसके वाद तो मैं आज तक नियमित रूप से लिखता चला आ रहा हूँ। इस वडे देश मे शायद मैं ही एक मात्र सौभाग्यशाली लेखक हूँ, जिसे किसी प्रकार की वाधा या कष्ट भोगने की नौबत नही आयी।

★ ★

५७वें जन्म दिन का अभिभाषण

प्रति वर्ष भादो की ३१वी तारीख को मुझे स्वदेशवासियो का निमत्रण आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए मिला करता है। मुझे यहाँ आना पडता है और मैं श्रद्धानत सिर से आ खडा होता हूँ। अँजुरी भर आशीर्वाद लेकर घर लौट जाता हूँ। वही सारे वर्ष का मेरा राह-खर्च वना रहता है। फिर ३१ वी भादो की लौट आती है। फिर मेरी वुलाहट होती है। फिर आकर मैं आप लोगो के सामने खडा हो जाता हूँ। इसी रीति से जीवन की अपराह्न वेला निकट पहुँच गयी है।

भादो की यह ३१ वी तारीख प्रति वर्ष आती रहेगी, किन्तु एक दिन ऐसा भी आयेगा जव मैं यहाँ फिर न आऊँगा। उस दिन शायद किसी को यही बात व्यथा के साथ याद पडेगी, और बाद मे किसी को इसकी विलकुल ही याद न पडेगी। ऐसा ही होता चला आया है। इसी तरह यह जगत् चलता ही रहता है।

मेरी प्रार्थना केवल यही है कि उस दिन भी ऐसा ही स्नेह का आयोजन रह सके, आज जो लोग युवक है, जो लोग वाणी के मन्दिर मे नवीन सेवक है, वे इसी तरह सभा-स्थल मे खडे रहकर अपने दाहिने हाथ के ऐसी ही अकुठित दान से हृदय को भरकर अपने घरो को लौट जा सके।

मैंने जो अति तुच्छ साहित्य सेवा की है, उसका पुरस्कार मुझे अपने देशवासियो से वहुत कुछ मिल-चुका। मेरा जो पावना है, उससे कहीं अधिक।

आज मुझे सवसे अधिक यही बात याद पड रही है कि कितनी वातो पर मेरा दावा है, और इसका ऋण भी कितना है। क्या यह ऋण मेरे पूर्ववर्ती पूजनीय साहित्याचार्यो के प्रति है?

इस ससार मे जो लोग केवल देते ही रहे है, परन्तु जिनको कुछ भी नही मिला, जो लोग वचित है, जो दुर्वल है,जो उत्पीडित है, मनुष्य होने पर भी, मनुष्यो ने जिनके नेत्रो के आँसू का कोई हिसाव नही लिया, अपने निरुपाय दु ख-मय जीवन मे जिनको किसी दिन सोचने पर भी कुछ समझ मे नही आया कि सव कुछ रहने पर भी चीज पर उनका अधिकार नही हैं, उनके प्रति भी क्या मैं कम ऋणी हूँ? इनकी ही वेदना ने मेरा मुँह खोल दिया, इन्होने ही मुझे मनुष्यो के पास मनुष्य की दु ख-कहानी व्यक्त करने को भेज दिया। उनके प्रति मैंने कितने ही अविचार होते देखा है, कितने ही कुविचार होते देखा है, कितने ही विना विचार के दुस्सह सुविचार भी होते देखा है। इसी कारण मेरा कारवार केवल इन्ही लोगों को लेकर है। ससार में सौन्दर्य से, सम्पदा से, परिपूर्ण बसन्त आता है, यह मैं जानता हूँ। वह अपने साथ कोयलो की मीठी-मीठी कूक लाता है। प्रस्फुटित मल्लिका-मालती जूही-वेला आदि को लाता है। गन्धव्याकुल दक्षिणी पवन को लाता है। किन्तु जिस घेरे से मेरी दृष्टि आवद्ध हो गयी, उसके भीतर उन्होने दर्शन नही दिये। उनके साथ घनिष्ठ परिचय मिलने का सुयोग मुझे नही मिला। यह दरिद्रता मेरी रचना पर दृष्टि डालने मे दिखाई पडती है। किन्तु हृदय मे जिसे पा नहीं सका, श्रुतिमधुर शव्दराशियों की माला गूँथ कर उनको पा गया हूँ, यह प्रकट करने की धृष्टता भी मैंने नही की है। इसी तरह और भी वहुत सी बाते हैं। इस जीवन मे जिनका तत्व ढूँढने पर मुझे नहीं मिला, स्पर्धायुक्त अविनय से उनकी मर्यादा को खण्डित करने का अपराध भी मैंने नही किया। इसीलिए साहित्य-साधना की विषय-वस्तु और उसका वक्तव्य

और व्यापक नही है, वह सकीर्ण है, अपरिसीमित है। तो भी मै केवल इतना ही दावा करता हूँ कि असत्य से अनुरंजन करके मैंने उनको आज भी सत्य-भ्रष्ट नही किया है।

मुझे अपने बाल्यकाल की बाते याद पड रही है। प्रत्येक साहित्य-साधक के हृदय मे ही आस-पास, दो जनो का तो अवश्य ही निवास रहता है। उनमे एक है लेखक, जो रचनाए करता है और दूसरा है उसका समालोचक, जो उन रचनाओ पर विचार करता है। कच्ची उम्र मे लेखक का ही प्रबल पक्ष रहता है, वह दूसरे को मानना नही चाहता। एक पक्ष का व्यक्ति जितना ही हाथ दबा रखना चाहता है, कानो मे कहता रहता है, पागल की तरह तुम यह क्या लिखते जा रहे हो; जरा रुक जाओ,—प्रबल पक्ष का व्यक्ति अपना हाथ उतने ही वेग से हटा कर अपनी निरकुश रचना को चलाता जाता है। कहता है आज तो मेरा रुकने का दिन नही है, आज आवेग और उच्छ्वास के गतिवेग मे दौडते जाने का दिन है। उस दिन कापी के पत्रो पर पूँजी अधिक जम जाती है। स्पर्धा आकाश-भेदी हो उठती है, उस समय नीव कच्ची रहती है, कल्पना असयत और उद्यम रहती है,—जोरदार गले से चिल्लाकर बोलने को ही उस दिन युक्ति मान लेने का भ्रम होता है। उस दिन पुस्तको मे पढ़कर जो चरित्र अच्छे जँचते है, उनका ही बढ़ाकर विकृत रूप मे प्रकट करने को ही अपनी अनवद्य मौलिक रचना समझना होता है।

सम्भवत साहित्य-साधना की यही है स्वाभाविक विधि। किन्तु उत्तरकाल मे इसके ही लिए लज्जा रखने तक की कोई जगह नही मिलती, यह भी शायद इसका ऐसा ही अपरिहार्य अग है। मेरे यौवन काल की कितनी ही रचनाए ऐसी है जिनको हम इसी श्रेणी मे रख सकते है।

किन्तु सौभाग्य का विषय है कि अपनी भूल मुझे आप ही समझ मे आ जाती है। तब मै भयग्रस्त होकर नीरव हो जाता हूँ। उसके बाद बहुत दिनो तक समय चुपके से बीतता जाता है। वह कैसे बीत जाता है, यह विवरण, विषयान्तर है। किन्तु जब फिर आत्मीय-स्वजनो और इष्ट-मित्रो ने मुझे वाणी के मन्दिर द्वार पर लाकर खडा कर दिया तब तो यौवन का अन्त हो चुका था और आँधी रुक चुकी थी। तब यह जान लेना बाकी नही रहा कि ससार मे सघटित घटनाएँ ही केवल साहित्यिक सत्य नही है, और सत्य हो जाने से ही वे साहित्य के उपादान भी नही है। वे तो केवल नीव है, और नीव होने के ही कारण भूमि के नीचे अच्छी तरह छिपी रहती हैं,—अन्तराल मे पडी रहती हैं।

तब मेरा विचार अपने सुनिर्दिष्ट आसन पर आ बैठा था। मेरा जो 'मै' लेखक है, उसने उसके शासन को मान लिया था। इनके विवादो का अवसान हो चुका था।

ऐसे ही समय मे मै एक मनीषी को कृतज्ञतापूर्ण चित्त से स्मरण करता हूँ। वे थे स्वर्गीय पाँचकौडी बन्द्योपाध्याय वे हमारे बाल्यकाल मे स्कूल के शिक्षक थे। अकस्मात् इसी नगर के एक रास्ते के किनारे एक दिन उनसे भेट हो गयी। मुझे अपने निकट बुलाकर उन्होने कहा—"शरत्, तुम्हारी रचनाएँ मैने पढ़ी नही है। किन्तु लोग कहते है कि वे अच्छी हुई है। एक समय ऐसा था जब कि मैंने तुमको पढाया था। मेरा यह आदेश रहा कि जिस बात को तुम सचमुच ही नही जानते, उसको कभी मत लिखना। जिसकी उपलब्धि तुमको यथार्थ रूप से नही हुई, सत्यानुभूति के द्वारा जिसको तुमने अपनी वस्तु के रूप मे प्राप्त नही किया उसको बढा-चढाकर भाषा के आडम्बर से ढककर पाठको को धोखा देकर बडा बनने की इच्छा मत करना, क्योकि इस धोखा-धडी को कोई एक दिन जरूर ही पकड लेगा, तब तुम्हारे लिए लज्जा की कोई सीमा ही न रहेगी। अपनी सीमा को लाँघ जाना ही अपनी मर्यादा को लाँघ जाना होता है। ऐसी भूल जो नही करता उसकी ओर जो भी दुर्गति क्यो न हो उसको लाँछना भोगने का दुर्भाग्य नही प्राप्त होता। अर्थात् सम्भवत उनकी इच्छा मुझे केवल यही समझा देने की थी कि जीविका के निमित्त यदि कभी तुमको उधार भी लेने की जरूरत पड़े तो उस हालत मे कभी बाबूगिरी मत करना।

उस दिन मैंने उनको यही कहा था कि मै ऐसा ही करूँगा।

इसीलिए मेरी साहित्य-साधना चिरकाल से अल्प परिधि-विशिष्ट रही है। सम्भवत यही मेरी त्रुटि है, सम्भवत यही मेरी सम्पदा है, आप लोगो का स्नेह और प्रेम पाने का सच्चा अधिकार है। शायद आप

इसी तरह एक बार किसी जन्म दिवस के अवसर पर मैने कहा था, मै दीर्घजीवी होने की आशा नही करता। क्योकि, ससार मे बहुत-सी ही बातो की तरह मानव मन का भी परिवर्तन होता रहता है।

इसलिए आज जो बात बड़ी है वही यदि किसी दूसरे दिन तुच्छ हो जाय तो उसमें आश्चर्य मानना न चाहिए। उस दिन मेरी साहित्य-साधना का बृहत्तर अंश भी यदि अनागत की अवहेलना से व्यर्थ हो जाय तो मैं उसके लिए दुःख का अनुभव न करूँगा। केवल अपने मन में इतनी ही आशा रख जाऊँगा कि सब कुछ छोड़ देने पर भी यदि कहीं सत्य रह गया हो तो वह मेरे लिए रह ही जायगा। मेरा वह सौन्दर्य मिट नहीं सकेगा, धनवान का विपुल ऐश्वर्य भले ही मुझे उपलब्ध न हो सका, फिर भी वाणी-देवी के अक्षय-भण्डार में उसी स्वल्प सञ्चय मात्र को रख जाने के ही लिए मेरी आजीवन साधना रही है। जीवन के अन्तिम भाग में इसी आनन्द को मन में लेकर प्रसन्न हो मैं विदा लूँगा। समझ जाऊँगा कि मैं धन्य हूँ, मेरा जीवन व्यर्थ ही नहीं बीता।

प्रचलित रीति यही है कि उपसंहार में अपने शुभाकांक्षी प्रीति-भाजन इष्ट-मित्रों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की जाती है। किन्तु इसे व्यक्त करने योग्य भाषा मुझे नहीं मिली। इसीलिए मेरा केवल यही कथन है कि मैं सचमुच ही आप लोगों के प्रति बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

परिशिष्ट

- सत्याश्रयी
- युवक संघ
- नई कार्य-सूची
- वर्तमान राजनीतिक प्रसंग
- महात्मा जी का पदत्याग
- साम्प्रदायिक बंटवारा १ व २

परिशिष्ट

सत्याश्रयी

छात्र युवक और समवेत बन्धुगण

बंगला भाषा मे शब्दो की कमी नही थी। परन्तु इस आश्रम के प्रतिष्ठाताओ ने चुनकर इसका नाम रखा है अभय आश्रम। बाहर के जन समाज मे प्रतिष्ठान के नामकरण के लिए विभिन्न प्रकार के नाम तो थे फिर भी उन्होने उसका नाम रखा है अभय आश्रम। बाहर का परिचय गौण है। ऐसा लगता है मानो संघ स्थापित करके विशेष रूप मे वे अपने को ही कहना चाहते है कि देश के काम के लिए हम निर्भय हो सके इस जीवन के यात्रा-पथ मे हमारे सामने कोई भय न रहे। सभी प्रकार के दुःख, दैन्य और हीनता के मूल मे मनुष्यत्व के चरम शत्रु भय की उपलब्धि करके विधाता से उन्होने अभय वर की प्रार्थना की थी। नामकरण के इतिहास मे इस तथ्य का मूल्य है और आज मेरे मन मे कोई संशय नही कि उनका निवेदन विधाता के दरबार मे स्वीकृत हुआ है। कार्यसूत्र मे इनसे मेरा परिचय बहुत दिनो का है दूर से थोडा-बहुत जो विवरण सुन पाता है उसमे मेरे मन मे यह प्रबल आकाक्षा थी कि एक बार अपनी आँखो से जाकर सब कुछ देख आऊँ। इसीलिए मेरे परम प्रीतिभाजन प्रफुल्लचन्द्र ने (डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष अनु०) जब मुझे सरस्वती पूजा के उपलक्ष मे यहा बुलाया तो उस आमत्रण को मैने अतिशय आनन्द के साथ ही स्वीकार किया। केवल एक शर्त करा ली कि अभय आश्रम की ओर से मुझे अभय दिया जाय कि मंच पर खडा करके मुझे असाध्य-साधन मे नियुक्त नही किया जायगा। भाषण देने की विभीषिका से मुझे छुटकारा दिया जायगा। जीवन मे अगर किसी चीज से भय खाता हूँ तो इसी से। पर इतना कहना था कि अगर समय मिला तो दो एक पंक्ति लिख ले जाऊँगा। लिखना प्रयोजन की दृष्टि से भी यत्सामान्य होगा, उपदेश की दृष्टि से भी अकिंचित् कर। इच्छा थी कि बातो का बोझ न बढा कर उत्सव के मिलने-जुलने के अन्दर से, आप लोगो के बीच से, आनन्द का सचय करके घर लौटूँगा। मैं उस सकल्प को भूला नही हूँ और इन दो दिनो मे धोखा भी नही खाया, लेकिन यह मेरा अपना पक्ष है। बाहर का भी एक पक्ष है, वह जब आ पडता है तो उसके दायित्व को भी अस्वीकार नही किया जा सकता। इसी तरह भाई प्रफुल्लचन्द्र की मुद्रित कार्य-सूची, लेकर रवाना होना पडेगा, समय नही है लेकिन पढ देखा, अभय आश्रम पश्चिम विक्रमपुर (ढाका जिले की एक तहसील अनु०) के निवासी छात्राओ और युवको के मिलन क्षेत्र का आयोजन किया है। लडके यहाँ समवेत होगे। वे मुझे छुटकारा नही देगे। कहेगे, किशोरावस्था मे छपी पुस्तको के अन्दर से आपकी कितनी ही बाते सुनी है, आज जब निकट पाया है तो कुछ सुने बगैर नही छोडेगे। इसी के फलस्वरूप मैंने यह कुछ पंक्तियाँ लिखी है। शायद उन्हे लगेगा अच्छी बात है। लेकिन इतनी बडी भूमिका की कौन सी आवश्यकता थी।

इसके उत्तर मे एक बार स्मरण करा देना चाहता हूँ कि भीतर की वस्तु जब कम होती है तब भूमिका के आडंबर से भी श्रोताओ के मुंह को बन्द करने की आवश्यकता पडती है।

अपनी चिंता शीलता मे नयी बात कहने की शक्ति, सामर्थ्य मुझमे कुछ भी नही, स्वदेश-वत्सल नेतृ-स्थानीय व्यक्तियो के मुँह से बहुतेरी सभा समितियो मे आप लोगो ने जो बाते कितनी ही बार सुनी हैं, मैं उन्ही को केवल लिपिबद्ध कर लाया हूँ। सोचा है, नवीनता न रहे, मौलिकता कितनी ही बडी क्यो न हो, सत्य कथन उससे भी बडा है। पुराना होने के कारण वह तुच्छ नही है, उसे एक बार फिर स्मरण करा देना भी बडा काम है, उसी तरह की दो तीन बातो का आज मै आप लोगो के सामने उल्लेख करूगा।

कुछ दिनो से मैं एक बात को लक्ष्य करता आ रहा हूँ, सोचता हूँ। इतना बडा सत्य इतने दिनो तक गुप्त कैसे था। अभी उस दिन तक सभी जानते थे सभी मानते थे कि राजनीति नामक वस्तु पर केवल बूढो की ही इजारेदारी है। आवेदन, मान, अभिमान से लेकर आखे दिखाने तक विदेशी राजसत्ता से

मकांविला की जितनी जिम्मेदारियाँ हैं, सब उन्ही की है। लडको का यही प्रवेश बिल्कुल निशिद्ध है। केवल अनधिकार चेष्टा ही नही, गहरा अपराध भी है। वे स्कूल कालेज मे जायँगे, भोले-भाले अच्छे लडके बनकर परीक्षा मे उत्तीर्ण होकर बाप-माँ का मुख उज्जवल करेगे। छात्र जीवन की यही सर्व-सम्मत नीति थी। इसमे कोई व्यतिक्रम हो सकता है, इसके विरुद्ध कोई प्रश्न उठ सकता है, यह मानो लोगो के लिये स्वप्न के परे की बात थी। अचानक कहाँ से एक आँधी आई, आँधी ने आकर उसके केन्द्र को ठेलकर परिधि के बाहर फेक दिया। बिजली की कौंध जिस तरह अकस्मात घने अधकार के कलेजे को चीर कर वस्तु को प्रकाशित करती है। निराशा और वेदना की अग्नि शिखा आज ठीक उसी तरह ही सत्य को उद्घाटित कर रही है जो आखो से ओझल थी वह उसके सामने आ पडी है। सारे भारतवर्ष मे आज कही सदेह का लेश मात्र नही कि लोग इतने दिनो तक जो कुछ सोचते आये हैं, वह गलत है। उसमे सत्य नही था, इसीलिये विधाता ने बारम्बार देश के सर्वांग मे व्यर्थता की कालिमा पोत दी हो। यह गुरु भार वृद्धो के लिये नही है, यह भार जवानो पर है। इसीलिये आज स्कूल, कालेज, ग्राम, नगर, भारत के प्रत्येक घर मे जवानो के लिये आह्वान आया है। आह्वान वृद्धो ने नही किया है, विधाता ने स्वय किया है। उनका आह्वान कानो के अन्दर मे हृदय मे पहुँचा है कि जननी के हाथो-पैरों मे पहिनाई कठोर शृंखलाओ को तोडने की शक्ति अति प्राज्ञप्रवीणो के हिसाबी अक्ल मे नही है, यह सत्य है केवल जवानी के जीवन चचल हृदयो मे। इस निस्संशय आत्म-विश्वास पर आज उसे प्रतिष्ठित होना ही पडेगा। अब तक विदेशी वणिक राजसत्ता को कोई चिता नही थी, वृद्धो की राजनीति चर्चा को उसने खिलवाड ही समझा था। लेकिन अब उसे खिलवाड करने का अवसर वह नही है, चारो दिशाओ मे उसके चिह्न क्या आप लोगो ने नही देखे हैं। अगर नही देखे हैं तो आखे खोलकर देखने के लिये कहता हूँ, राजशक्ति आज व्याकुल है और अचिर भविष्य मे यह अन्धव्याकुलता सारे देश मे छन जायगी। मैं कहना चाहता हूँ कि आप लोग इस सत्य को समग्र हृदय से उपलब्ध करे। यह भी कहता हूँ कि उस दिन इस सत्योपलब्धि की अवज्ञा न होने पावे।

यहाँ एक बात कह दूँ। क्योकि सदेह हो सकता है कि सभी देशो मे ही तो राजनीति के सचालन का भार वृद्धो पर ही होता है। लेकिन यहा वैसा क्यो नही होगा। व्यतिक्रम यहाँ भी नही होगा, एक दिन उन्ही पर ही राजशासन का दायित्व आयेगा लेकिन वह दिन आज का नही है, वह अभी आ नही पहुँचा है। कारण यह है कि देश का शासन करना और स्वाधीन करना एक वस्तु नही है। इस बात को याद रखना बहुत जरूरी है कि राजनीति सचालन एक पेशा है। जैसे डाक्टरी, वकालत, अध्यापन उसी तरह का। अन्य विद्याओ की तरह उसे भी सीखना पडता है, आयत करने मे समय लगता है। तर्को के दाँव-पेच, बातो की लडाई, कानून के दरार ढूँढ कर दो-चार कड़ी बाते सुना देना फिर यथा समय आत्म-सवरण और विनीत भाषण, ये कठिन बाते हैं और उम्र के सिवा इसमे पारदर्शिता नही उत्पन्न होती है। इसी का नाम राजनीति है। पराधीन देशो की यह व्यवस्था नही है। वहा देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पग-पग पर अपने को बलिदान करते हुए चलना पडता है। यह उसका पेशा नहीं बल्कि धर्म है। इसीलिये परम त्याग के व्रत को एक मात्र जवानी ही ग्रहण कर सकती है, यह उसके स्वाधिकार की चर्चा है। अनधिकार चर्चा न होने के कारण ही राजशक्ति इसे भय की दृष्टि से देखने लगी है। यही स्वाभाविक है और इसके गति-पथ मे बाधाओ का अंत नही होगा, यह भी उसी तरह स्वाभाविक है। लेकिन इस सत्य को क्षोभ के साथ नही, आनन्द से ही स्वीकार करके अग्रसर होने के लिए आप लोगों का आह्वान करता हूँ।

शब्दो की घटाओ और वाक्यो की छटाओ से उत्तेजना पैदा करने मे असमर्थ हूँ। शात समाहित चित्त मे सत्योपलब्धि करने का ही मै अनुरोध करता हूँ। हम आत्मविस्मृत जाति हैं। हमारे यहाँ यह था, वह था और यह है, वह है, अतएव आँखे मीचकर उठ बैठते ही सब कुछ मिल जायगा, इस जादू का आश्वासन देने की प्रवृत्ति मेरी कभी नही होती है। ससार माने या न माने हम एक बड़ी जाति हैं, उछलकूद मचाकर चारों ओर इसकी घोषणा करने मे मैं जिस प्रकार गौरव का अनुभव नही करता, उसी प्रकार विदेशी राजशक्ति को धिक्कार देकर कहने मे मुझे लज्जा का बोध होता है कि हे अग्रेज तुम लोग कुछ नही हो, क्योंकि अतीत काल मे जब हम लोगो ने इन बडे-बडे कामो को किया उस समय तुम लोग

पेडो की डालो पर कूदते-फिरते थे। और व्यग करते हुए मुझे कोई कहता है कि तुम लाग अगर सचमुच ही इतने बडे हो तो हजार वर्षो से कभी पठान, कभी मुगल, कभी अंग्रेजो के चरणो पर तुम्हारा मस्तक क्यों नत होता है? तो इस उपहास के प्रत्युत्तर मे भी मैं इतिहास की पोथियो को उलटकर दूसरी जातियो की दुर्दशा के नजारे पेश करने मे घृणा का अनुभव करूगा। वस्तुत इस तर्क से कोई फायदा नही। अतीत काल मे तुम्हारे-हमारे पास क्या था ःसे लेकर ग्लानि बढाने से क्या होगा। मैं कहता हूँ अंग्रेज आज तुम बडे हो। शौर्य मे, वीर्य मे, देशभक्ति मे तुम्हारा सानी नही है, किंतु मेरे बडे होने की सामग्री भी मौजूद है। आज देश का युवक-चित्त रास्ते की तलाश मे चंचल हो उठा है, उसे रोकने की शक्ति किसी मे नहीं है, तुममे भी नही है। तुम जितने भी बडे क्यो न हो, वह तुम्हारी तरह बडा होकर अपने जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त कर ही लेगा।

लेकिन किस सज्ञा से यौवन का निर्देश किया जा सकता है। अतीत जिसके लिये अती त से अधिक नही, वह जितना ही बडा क्यो न हों, मुग्धचित्त होकर उसी से चिपक कर समय गँवाने की फुरसत जिसे नही है, जिसकी वृहत्तर आशा और जिसका विश्वास अनागत के अन्तराल की कल्पना से उद्‌भासित है, वही तो यौवन है। यही वृद्धो का पराजय है। उसकी शक्ति शेषप्राय है। भविष्य आशाहीन शुष्क है, आगे का पथ अवरुद्ध है, जीवन के अन्तिम समय के दिनों को जीजान से अतीत से चिपके रहने मे ही उसे सात्वना मिलती है, इस अवलम्बन को वह किसी भी दशा मे नही छोड सकना। उसे बराबर भय रहता है कि इससे अलग होने पर उसे खडे होने का शरण कही मिलेगा। स्थितिशक्ति शाति ही उसके लिए एकमात्र आश्रय है। बहुत दिनों से पिजडे मे बद चिडियो की तरह मुक्ति ही उसका बधन है, मुक्ति ही इसके सुनियंत्रित अभ्यास सिद्ध जीवन धारण प्रणाली की वास्तविक बाधा है। यहाँ जवानी मे और उसमे प्रचण्ड भेद है। समाज की, जाति की स्वतत्रता प्राप्ति की जिम्मेदारी जितने दिनो तक इन वृद्धो मे रहेगी, बधन की गाँठें एक-एक करके बढती ही जायँगी, खुलेगी नही, लेकिन जवानी का घमंड इसके विपरीत है। इसलिये जिस दिन से सुना कि स्कूल कालेज के विद्यार्थी उस राजनीति को जो केवल मात्र राजनीति नही है, जो राजनीति देश के स्वतत्रता यज्ञ मे व्रत की तरह है, धर्म की तरह है उसी को ग्रहण करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हैं। इस कुसस्कार के हाथो से मुक्त हो गये हैं कि यह वस्तु उनके छात्र जीवन का विरोधी है, उसी दिन से ही मुझे विश्वास हो गया है कि अब सचमुच ही हमारी दुर्गति का अत होगा। छात्र और देश के युवको से मेरा निवेदन है कि इस सकल्प से उन्हे किसी के कहने किसी भी प्रलोभन से डिगना नही चाहिये।

इस विषय मे बहुतेरे मनीषी व्यक्तियो ने कितने ही उपदेश दिये। तुम लोग यह करो वह करो। यही तुम्हारे लिये करणीय है, यह आचरण ही प्रशस्त है स्वार्थ त्याग करना होगा हृदय मे देश-प्रेम की अग्नि प्रज्वलित करने की आवश्यकता है, जाति-भेद को अस्वीकार करना, छुआ-छूत को बद करना, खद्दर पहिनना, इस तरह के बहुतेरे आवश्यक और मूल्यवान आदेश और उपदेश उन्होंने दिये है, यह तो हुई कार्य-सूची। अन्य प्रकार के उपदेश, भिन्न प्रकार की कार्य सूची भी है। आप लोगों की ही तरह देश के बहुतेरे युवक और छात्र मुझसे पूछते हैं हम क्या करे आप बता दीजिये। जवाब में मैं कहता हूँ कार्य-सूची तो मैं नहीं दे सकता, मैं तुम लोगो से केवल कह सकता हूँ कि तुम लोग दृढता पूर्वक सत्याश्रयी बनो। वे प्रश्न करते है कि इस क्षेत्र मे सत्य क्या है, भिन्न-भिन्न मतामत और कार्य सूची हमे विभ्रात कर देते हैं। देश, काल और पात्र के सबध से ही सत्य की परीक्षा होती है। देश काल पात्र के परस्पर के संबंध का सत्य ज्ञान ही सत्य का स्वरूप है। एक के परिवर्तन के साथ ही दूसरे का परिवर्तन अवश्यभावी है, इस परिवर्तन को बुद्धिमानी से स्वीकार कर लेना ही सत्य को जानना है। जैसे बहुत पुराने जमाने में राजा ही भगवान का प्रतिनिधि था। देश के लोगो ने इस बात को मान लिया था। इसे मै असत्य नही कहना चाहता। प्राचीन युग मे हो सकता है, यही सत्य हो। लेकिन आज ज्ञान और वातावरण के परिवर्तन के फलस्वरूप यह बात अगर गलत ही सिद्ध हो तो भी प्राचीन काल के युक्ति और उक्ति मात्र को ही अवलंबन करके इसी को सत्य मानकर अगर कोई बहस करता है, तो उससे और कुछ भी क्यो न कहूँ सत्याश्रयी नही कहूँगा। लेकिन केवल मानना ही इसका सब कुछ नही, वस्तुत और एक पक्ष मे इसकी कोई भी सार्थकता नही, अगर विचार, वाक्य और व्यवहार मे जीवन यात्रा के पग पग पर यह सत्य

विकसित नही हो उठता है। गलत समझना भ्रात धारणा वल्कि अच्छी है, लेकिन भीतर के जानने और वाहर के आचरण मे अगर सामजस्य नही है, अर्थात् अगर जानता हूँ एक तरह और कहता हूँ दूसरी तरह तो जीवन मे इससे वढ़कर व्यर्थता, इससे वढकर कायरपन और दूसरा नही यौवन के धर्म को छोटा वनाने वाला इससे वढकर दूसरी चीज नही। छुआछूत, जाति भेद, खद्दर पहनना, राष्ट्रीय शिक्षा, देश का काम। ये सत्य या असत्य, अच्छी है या वुरी, इसकी आलोचना मैं नही करूगा। इसकी सच्चाई झुठाई तो समझाने के लिये आप लोगो को मुझसे योग्य व्यक्ति मिलेगे लेकिन मै केवल यही निवेदन करूगा कि आप लोगो की समझ और कार्य मे एकता होनी चाहिये। जानता हूँ छुआछूत, आचार विचार, वेमानी है, फिर भी मानता जाता हूँ। जानता हूँ जाति भेद घोर अकल्याणकर है, फिर भी अपने आचरण मे उसे प्रकट नही कर पाता। समझता और कहता हूँ विधवा विवाह उचित है, फिर भी' अपने जीवन मे उसे अस्वीकार करता हूँ। जानता हूँ खद्दर पहिनना उचित है फिर भी विलायती कपडे पहिनता हूँ, इसी को मै असत्याचरण कहता हूँ। देश की दुर्दशा और दुर्गति की ओर यह महापाप हमे कितना नीचे खीच लाया है, उसकी शायद हम कल्पना भी नही करते। यही वात चारो ओर दिखाई पडती है। दृष्टात देकर समय वर्बाद करने की आवश्यकता नही प्रार्थना करता हूँ, दीनता और कायरता के इस गहरे कीचड से देश का जीवन मुक्त हो। गलत समझ कर गलत काम करने से अज्ञता का अपराध होता है। पर वह कही अच्छा है। लेकिन ठीक समझ कर वे-ठीक काम करना केवल सत्य भ्रष्टता ही नही, वल्कि असत्य निष्ठा है, उसके प्रायश्चित्त का जव समय आता है तो सारे देश की शक्ति से भी पूरा नही पडता है। इस वात को याद रखना होगा कि सत्य-निष्ठा ही शक्ति है, सत्य-निष्ठा ही सारे मगलो का आधार है और अंग्रेजी मे जिसे कहते है टेनसीटी आफ परपस (धुन का पक्का) वह भी इसी सत्य-निष्ठा का विकास है। इसलिये देश के युवको से वारम्वार यही आवेदन करता हूँ, सत्य-निष्ठा ही उनका व्रत वने। क्योकि निश्चित रूप से जानता हूँ कि इस व्रत को ग्रहण करने से ही उनके सामने की सारी वाधाये दूर होगी और यथार्थ कल्याण का पथ उन्मुक्त हो जायगा। कार्य सूची और पथ की दुश्चिन्ता नही करनी पडेगी।

आज की कार्य-सूची मे एक विषय है लाठी, तलवार और छूरे का खेल, अव तक शारीरिक कसरत की ओर छात्र समाज विल्कुल लापरवाह हो गया था ऐसा लगता है कि यह धीरे-धीरे फिर वापिस आ रहा है। मैं इस प्रत्यागमन का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ। वे देख रहे हैं कि ठोकर से सिर्फ दुर्वल शक्ति-हीनो की ही तिल्ली फटती है, शक्तिशाली पठानो की नही। फटती है वगाली की। शायद वारम्वार इस धिक्कार के कारण ही शारीरिक-शक्ति अर्जुन की स्पृहा सी लौट आयी है। व्यायाम से शक्ति वढती है, आत्म-रक्षा का कौशल आयत होता है, साहस वढता है, लेकिन फिर भी इस बात को भूलने से काम नही चलेगा कि यह सव शरीर के मामले हैं। अतएव यही सव कुछ नही है। साहस वढ़ना और निर्भीकता अर्जन करना दोनो एक ही वात है। एक दैहिक है दूसरा मानसिक। शरीर की शक्ति और कौशल की वृद्धि से अपेक्षाकृत दुर्वल और अनाडी को पछाड़ा जा सकता है। लेकिन निर्भयता की साधना से शक्तिशाली भी परास्त किया जा सकता है, ससार मे कोई उसे वाधा नही दे सकता है, वह अपराजेय हो जाता है। अतएव प्रारम्भ मे जिस वात को एक वार कहा है उसकी पुनरुक्ति करके फिर कहता हूँ कि अभय आश्रम इसी साधना मे नियुक्त है। इनकी साधना कुछ उसी की एक सीढी है, एक उपाय है। यह इनके पथ हैं, अन्तिम लक्ष्य नही। अभाव, दु ख, क्लेश, पडोसियो की लाछना, मित्रो की शिकायत, प्रबल का पीडन कोई भी वस्तु इनके मुक्ति के पथ को वाधा-ग्रस्त नही कर सकता, यही उनका एक मात्र प्रण है। यही तो निर्भय की साधना है और इसीलिये सत्य-निष्ठा ही उनके गतव्य-पथ को निरन्तर आलोकित कर रही है। खद्दर प्रचार, राष्ट्रीय विद्यालय की स्थापना, अस्पताल खोलना, दुनिया की सेवा यह अच्छी है या वुरी अगर इनकी सत्य-निष्ठा इन्हे दूसरे पथ का निर्देश देती है तो इस सारे आयोजन को अपने ही हाथो से खतम कर देने मे अभय आश्रमियो को क्षण-भर भी देर नही लगेगी, यही मेरा विश्वास है। और कामना करता हूँ कि मेरा यह विश्वास सत्य है।

मेरी उम्र वहुत हुई, फिर भी यहाँ आकर वहुत कुछ सीखा, इस अभय आश्रम के अतिथि होने के सौभाग्य को मैं अन्तिम दिन तक याद रखूगा।

अत मे, इस छात्र और युवक सघ को आशीर्वाद देता हूँ कि इन्हीं जैसी सत्यनिष्ठा उनके जीवन का

भी ध्रुवतारा बने।

आप लोग मेरे सकृतज्ञ हृदय का नमस्कार स्वीकार करें।

[गैर कानूनी घोषित मालिकांदा अभय आश्रम में विक्रम युवक और छात्र सम्मेलन के अधिवेशन में १५ फरवरी १९२९ को दिया गया भाषण 'बांगलार रूप' विशेषांक, १३४५।]

युवक-संघ

कल्याणीय वेणु के किशोर किशोरी पाठकगण उत्तरीय बगाल के रगपुर शहर से तुम्हे यह पत्र लिख रहा हूँ तुमलोगो को शायद मालूम होगा कि बगाल मे युवक समिति के नाम से एक सघ की स्थापना हुई है। हो सकता है कि आज भी तुमलोग इसके सदस्य न बने हो। लेकिन एक दिन यह समिति तुम्हारे हाथो मे आ ही जायगी। तुम्ही लोग इसके उत्तराधिकारी हो। इसलिये इस सबध मे वे बाते तुम्हे बतला देना चाहता हूँ। समिति का वार्षिक सम्मेलन कल समाप्त हुआ है। मैं बूढा आदमी हूँ, फिर भी लडके लडकियो ने मुझको इस सम्मेलन का नेतृत्व करने के लिये आमत्रित किया है। उन्होने मेरी उम्र का ख्याल नही किया। कारण शायद यह है कि किसी तरह वे जान गये है कि मै उन्हे पहिचानता हूँ। उनकी आज्ञा और आकाक्षा से मेरा परिचय है। मैं उनका निमत्रण स्वीकार कर इसी बात को जानने के लिये आनद से दौड पडा था कि उन्ही पर देश का भला-बुरा निर्भर करता है, इस सत्य को वे हृदय से उपलब्धि करे। लेकिन इस परम सत्य को समझने मे उनके रास्ते मे बहुतेरी बाधाये हैं। उनकी नजरो से इसे ढाक रखने के लिये न जाने कितने परदे तैयार किये गये हैं। और तुमलोग जिनकी उम्र और भी कम है उनके लिये तो बाधाओ का अत ही नही। बाधा देने वाले कहते हैं कि अभी सत्य को सभी को जानने का अधिकार नही है। यह तर्क इतना जटिल है कि न कहकर इसे पूरी तरह उडा नही दिया जा सकता और हाँ कहकर पूरी तरह मान भी नही लिया जा सकता और इसी बात मे उनके बल है। लेकिन इस वस्तु की मीमासा इस तरह नही होती है हुई भी नही है। सभी देशो मे सभी कालो में प्रश्न पर प्रश्न आये है। अधिकारी भेद का तर्क उठा है अत मे उम्र की बात को छोड मनुष्य के छोटे-बडे, ऊँच-नीच दशा की दुहाई देकर उसे मनुष्य समझे जाने के अधिकार से वचित कर रखा गया है।

इसी तरह तुम लोग भी अपनी जन्मभूमि के विषय मे कितनी ही बातो की जानकारी से वचित हो। सच्ची खबर पाकर तुम्हारा मन विक्षिप्त हो उठे। तुम्हारी स्कूल कालेज की पढाई मे, तुम्हारी परीक्षा नामक परम वस्तु मे उत्तीर्ण होने मे बाधा पहुँचे इस आशका से झूठ का तुम्हारी नजरो पर पर्दा डाला जाता है। इस बात को शायद तुम जान भी नही पाते।

युवक-समिति के सम्मेलन मे इसी बात को मैने अधिकतर कहना चाहा था। कहना चाहा था कि तुम्हारे पराधीन देश को विदेशियो के शासन से मुक्त करने के अभिप्राय से ही तुम्हारा सघ बना है। स्कूल, कालेज के विद्यार्थियो को पढाई की अवस्था मे भी देश के काम मे योग देने, देश की स्वतत्रता के विषय मे विचार का अधिकार है। और इस अधिकार की बात को मुक्त कठ से घोषित करने का अधिकार भी है। देश की पुकार के रास्ते मे उम्र किसके लिये बाधक नही हो सकती है, तुम लोग जैसे किशोरो के लिये भी।

परीक्षा पास करने की आवश्यकता है, लेकिन यह उससे भी अधिक आवश्यक है, बचपन मे इस सत्य चितन से अपने को अलग रखने से जो टूटन पैदा होती है, उम्र बढ जाने पर वह फ़िर जुडना नही चाहती है। इस उम्र की शिक्षा ही सबसे बडी शिक्षा है। खून के साथ बिल्कुल घुल-मिल जाना है।

खुद भी तो देखता हूँ कि बचपन मे मा की गोद मे बैठकर जो कुछ सीखा था, वह इस बुढापे मे भी अक्षुण्ण है। वह शिक्षा मिटती नही है।

अपने बारे मे भी इस बात को सही मानना। यह मत समझना कि आज अवहेलना के कारण जिधर जब नज़र नही डाली, बडे होकर उधर तुम अपनी मर्जी से देख सकोगे। शायद नही देख सकोगे, शायद हजारो चेष्टाओ के बाद भी वह दुर्लभ वस्तु सदा के लिये तुम्हारी आँखो से दूर ही रह जायगी। जो शिक्षा परम श्रेय है, उसे इस किशोरावस्था मे ही नसो के खून के साथ प्रवाहित करके लेनी पडती है, तभी उसका पाना यथार्थ होता है। कल की इस युवक-समिति के युवको ने कांग्रेस की रीति-नीति बचपन मे ही अपनायी थी, इसीलिये वे इसे नही छोड सके यह भय की बात नही है।

[रंगपुर १७ चैत्र १३३६ वेणु, तृतीय वर्ष अंक, वैशाख १३३६।]

नई कार्य सूची

श्री परशुराम

शरत् बाबू के रंगपुर भाषण के उत्तर मे चरखे को लेकर लबी बहस चल पडी, आज भी उसका अत नही हुआ। चरखा भक्तो के दल ने पहिले प्रचार कर दिया कि उन्होने महात्मा जी की चोटी मे चरखा बॉधने का प्रस्ताव किया है। इतनी बडी असम्मान जनक बात उनके भाषण मे नही थी।

लेकिन कहने से क्या होता है, थी ही। नही तो भक्तो को वेदना प्रकट करने का अवसर कैसे मिलता। लेकिन स्वय शरत बाबू जब मौन हैं तो मेरे जैसे एक साधारण व्यक्ति का वकालत करने जाना अनावश्यक है। अपने सिर पर चोटी नही है कोई पकड कर गुस्से मे आकर बॉध देगा यह भी नही होने का अतएव इस ओर से निरापद हूँ लेकिन भाषण मे केवल चोटी ही नही चरखा भी था। अतएव वैज्ञानिक प्रफुल्लचन्द्र शीघ्रता पूर्वक ढाका से मातृभूमि गये और युवक समिति के सम्मेलन मे प्रतिवाद किया। ठीक ही हुआ यह युवक समिति का ही मामला था तरुण वैज्ञानिक बूढ़े साहित्यिक के तमाकू पीने के विरुद्ध घोर आपत्ति करके लौट आये। सभी एक के लिए धन्य-धन्य और दूसरे के लिए छि -छि करने लगे। फिर भी आशा नही है कि वे तीन काल पार करके चौथे काल मे तमाकू पीना छोड देगे। इसके बाद प्रतिवाद शुरू हुआ , फिर उसका भी प्रतिवाद। दो एक अखबारो को खोजने से अभी एकाध दिखायी पडते है।

लेकिन हम सोच रह हैं कि शरत बाबू ने कौन सा अपराध किया। उन्होने कहा था कि बगाल के लोगो ने चरखे को नही ग्रहण किया है। अतएव ग्रहण न करना अपराध है तो वह इस प्रात के लोगो का है। खामख्वा उनपर क्रोध करने से फायदा नही। इस विषय में मुझे भी थोडा अनुभव है। अपनी आखो से देखा है कि आठ वर्ष तक चरखे को लेकर लोगो से कितनी बार भिडत हुआ। लेकिन शुरू से हम लोग जो टेढे, सुराज का लोभ, महात्मा जी की दुहाई, वन्देमातरम की कसम, किसी भी चीज से उन्हे सीधा नही किया जा सका। अगर किसी ने चरखा लिया भी तो दाम नही दिया। भाषण के बलपर जो दल मे लाया गया उसने और भी अधिक मुसीबत पैदा की। नये उत्साह से काम शुरू करके दस पन्द्रह दिनो के बाद ही उलझे हुये सूत की एक लच्छी लेकर हाजिर हुये। उसके चारो ओर नाम धाम का पुरजा चिपका हुआ रहता अर्थात् गडबडी मे कही खो न जाय। कहा महाशय, एक बडी साडी तो बीन दे। कार्यकर्ता कहते इससे कही साडी बनती है?

नही बनती। अच्छा साडी की जरूरत नही धोती ही बीन दे लेकिन देखे कही पनहा छोटा न हो जाय।

कार्यकर्ता वृन्द—इससे धोती भी नही बनेगी।

कैसे नही बनेगी? अच्छा, सीधे दस हाथ न हो, नौ साढे नौ हाथ की तो बनेगी ही? अच्छी बात है इतनी ही सही। अच्छा चला। इतना कह कर जाने के लिए उद्यत होता है।

जान बचाने के लिए, कार्यकर्ता चिल्ला कर हाथ मुँह हिलाडुला कर समझाने की चेष्टा करता है, कि

यह ढाका का मलमल नही है, खद्दर है। एक लच्छी सूत कम नही है, कम से कम एक टोकनी सूत चाहिये।

यह तो हुई बाहर के लोगो की बात। लेकिन इसका मतलब यह नही कि कार्यकर्ताओ के उत्साह उद्यम अथवा खद्दर निष्ठा मे लेशमात्र भी अन्तर था मैं नहीं कह सकता। पहले युग मे मोटे खद्दर के मार पर ही प्रधानत· देश भक्ति निर्भर करती थी। सुभाषचन्द्र की बात याद आती है।

वह सामियाना बनाने के देशी कपडे को बीच से सिला कर पहिन कर आते थे। समवेत प्रशसा के मृदु गुजन से सभा मुखरित हो उठती और उस परिधेय वस्त्र की कर्कशता, दृढता, स्थायित्व और वजन की कल्पना करके किरनशकर आदि भक्त वृन्दो की दोनो आखे भावावेश मे अश्रुसिक्त हो उठती थी।

लेकिन सामियाने के कपडे से पैरा नही पडा। घुटने तक धोती पहनने का युग आया, उस दिन असल कार्यकर्त्ता साफ पहिचान मे आ गये। यथा अनिलचरण, दीर्घ शुभ्र देह घुटने भर को ढकखडाऊं परजब सभा-प्रवेश करते थे तो श्रद्धा और सम्मान से सभी उपस्थित व्यक्ति आख मूदकर सिर नीचे कर लेते थे। और उनके सुखासीन न होने तक कभी किसी को भी आख खोलकर देखने की हिम्मत नही होती थी। वे कैसे दिन् थे। (माई ओनली आन्सर इज चरखा) मेरा एक मात्र उत्तर है चरखा। मुह लटकाये सभी मन ही मन इसी महावाक्य का जप करते हुए समझते थे कि अग्रेजो के लिए अब चारा नही, लकाशायर का दिवाला पिट जायगा, बेटा अब मरे। आज अनिलचरण योगाश्रम मे ध्यानस्थ बैठ कर इसी का प्रायश्चित्त कर रहे हैं।

उन दिनों विदेशी कपडो का मतलब था मिल का कपडा। चाहे वह कही भी क्यो न तैयार किया गया हो। उन दिनो अपवित्र मिल के कपडे को न पहिनने की प्रतिज्ञा करके अगर कोई देशभक्त दिगम्बर मूर्ति मे भी प्रवेश करता, तो ३१ दिसम्बर की बात सोचकर किसी को कुछ कहने की हिम्मत न होती।

रवीन्द्रनाथ ने लिखा था चरखे का कार्यक्रम नितात नादानी से भरा हुआ है इस बात को देखकर निराशा होती है कि सारा देश इससे विभ्रात हो गया है। (दी प्रोग्राम आफ दी चरखा इज सो अटरली चाइल्डिश दैट इट्स वन् डिस्पैयर टु सी दि होल कन्ट्री, डिन्युडेड बाइ इट) उसी समय के बडो ने क्यो इतना दु.ख प्रकट किया था, आज उसके कारण को समझा जा सकता है। लेकिन सभी अभी इस मोह से मुक्त नही हुये हैं प्राय उसी तरह मोह अक्षुण्ण है इसके कितने ही उदाहरण भाषणो, निबधो और अखबारो के पृष्ठो में दिखायी पडते हैं। लेकिन इसके लिये कोई चारा नही क्योंकि यदि व्यक्तिमत्त ही अधी हो जाय तो उसका कोई इलाज नही। दृष्टात स्वरूप बगाल के खद्दर के एक बडे आढतदार की बात का उल्लेख किया जा सकता है।

आश्रम बनाने से लेकर बकरी दुग्धपान तक उन्होने सब कुछ ग्रहण किया है उसी तरह की चोटी उसी तरह से कपडा पहनना, उसी तरह से चादर ओढना, उसी तरह से घुटने मोडकर बैठना, उसी तरह से जमीन की ओर देखते हुए मृदु, मधुर वार्तालाप, सब कुछ। लेकिन कहा जाता है कि इससे भी उसका उपचार सम्पूर्ण नही हुआ है, सोलहो कलाओ से हृदय नही भरा है। उपेन्द्रनाथ का कहना है कि उन्होने सामने के दातो को उखडवा डालने का फैसला किया है, वास्तव मे यह अनुराग अतुलनीय है। ऐसा लगता है मानो उन्होने वैज्ञानिक प्रफुल्ल घोष को भी मात दे दिया है।

लेकिन यह तो हुई उच्चाग साधना पद्धति। सभी का इस पर अधिकार नही हो सकता। जो लोग इस कोटि मे नही पहुँचे हैं, कुछ नीचे के स्तर पर है, उनका चरखा-तर्क भी काफी हृदयग्राही है। एक बात बार-बार कही जाती है चरखा कातने से आत्मनिर्भरता पैदा होती है। लेकिन यह वस्तु क्या है क्यो पैदा होती है, और चरखा घुमाने से बाहुबल की वृद्धि होती है या और कोई गूढ तत्त्व निहित है, यह बार-बार करने पर भी ठीक-ठीक समझ मे नही आता। पर इस बात को मानता हूँ कि आत्म-निर्भरता की धारणा सभी की एक सी नही है। जैसे हमारे अमुक ने एक बार आत्म-निर्भरता पर भाषण देते हुए अपने वक्तव्य को स्पष्ट करने के लिए उपसहार मे ठोस उदाहरण देकर कहा था समझ लो तुम पेड पर चढकर गिर पडे। लेकिन गिरते-गिरते तुम अचानक उसकी एक डाल पकड सकते हो तभी समझना कि तुमने आत्म-निर्भरता की शिक्षा पा ली है, तुम स्वावलम्बी हो गये हो।

हाँ अगर ऐसा हो तो झगडे की गुजाइश नही। लेकिन यह तो हुआ सूक्ष्म पक्ष। इसके इस स्थूल पक्ष

की आलोचना अधिक आवश्यक है, विशेषज्ञ बाबू राजेन्द्रप्रसाद के कथन को पेश करते हुए अक्सर कहा जाता है कि फुर्सत के वक्त प्रतिदिन दो-चार घटे चरखा कातने से मासिक दस-बारह आने आमदनी बढती है। हॉ, गरीब शब्द अनपेक्षित शब्द नही है। एक भी तुलनात्मक शब्द नही है। अर्थ नीति मे उपान्तिक आवश्यकता (मारजीनल यूटिलिटी) नामक जिस वस्तु का उल्लेख है वह जिस वस्तु का शास्त्र है यह उसी के उपलब्धि की वस्तु है। हम अपने देश के गरीब शब्द के अर्थ को भी समझते हैं, इसे लेकर बहस नही करते। लेकिन रोजाना एक डेढ पैसे की आमदनी की बढती से किसान खा पहिन कर मुस्तड हो अग्रेजो को खदेड कर कैसे स्वराज्य लेगे, इसे समझना ही कठिन है।

अनिलचरण कहते हैं, कहॉ चरखा, कहॉ पूनी, कहॉ धुनियॉ, इतनी झझट नही करके फुर्सत के वक्त मे दो मुट्ठी घास छीलने से तो मासिक दस-बारह आना अर्थात् रोजाना एक डेढ पैसे की आमदनी हो सकती है। वह यह भी कहते हैं कि इससे दूसरा फायदा भी है। ए० आई० सी० सी० की एक मीटिग बुलाकर वोटाधिकार पास कर देने से लीडरो को घास छीलने के लिये गॉव मे जाना ही पडेगा। क्योकि शहरो मे घास नही होती। अतएव इस तरह मेल-जोल से गॉव मे सगठन का काम भी तेजी से बढ निकलेगा। कम से कम शहरो मे मोटर हॉककर लोगो को उसके नीचे कुचलकर मारने के दुष्कर्म मे कुछ कमी ही होने की सभावना है।

मै कहता हूँ कि अनिलचरण के प्रस्ताव पर उचित विचार होना चाहिये। रवीन्द्रनाथ देश वापिस आ गये हैं। हो सकता है कि वह सुनकर कहेगे कि यह भी बिल्कुल नादानी है लेकिन हम कहेगे कि कवियो मे अकल नही होती अतएव उनकी बात सुनने से काम नही होगा। विशेषत बारह महीने मे तेरह महीने वह विलायत रहते हैं, वह देश की आबहवा कितनी जानते हैं? चरखा-विश्वासी अहिसक गण हिसक विश्वासियो को अधिकार देते हुए प्राय कहा करते हैं कि तुम चरखा कातने जैसे सीधे काम को धीरज के साथ नही कर सकते तो तुम देश का उद्धार क्या करोगे? छि छि, तुम लोग डूब मरो।

सुनकर वे मृयमाण हो जाते है। कोई-कोई सोचते हैं, हो भी सकता है। जब चरखा ही नही कात सका तो हमसे और क्या होगा। लेकिन मैं कहता हूँ हताश होने की जरूरत नही है। अनिलचरण की कर्म-पद्धति की कम से कम साल भर परीक्षा (ट्रायल) करना चाहिये। कारण यह और भी आसान है, चरखा नही खरीदना पडेगा, सीखना भी नही पडेगा, कपास की खेती भी नही करनी पडेगी, बजाज का शरणापन्न भी नही होना पडेगा। कोई भी कठिनाई नही। और पद्मा नदी का द्विधारा हुआ तो कोई क्षति ही नही, छीलना भी नही पडेगा, पकडते ही हाथ मे आ जायगा। स्वराज्य मुट्ठी मे है।

लेकिन अनिलचरण ने कहा है कि आस्थाहीन होने से काम नही चलेगा। ऐसे देखने पर यह प्रथा जितनी भी नादानी से भरी क्यो न दिखाई पडे, तर्क जितनी भी उल्टी बातें क्यो न पेश करे, तथापि विश्वास करना होगा।

एक वर्ष मे डोमिनीयन स्टेट्स अवश्यभावी है। होना ही पडेगा। अगर न हो। वह लोगों का अपराध है, प्रोग्राम का नही। और तब आसानी से कहा जा सकेगा कि इतनी सहज पद्धति को जिस देश के लोग निष्ठा के साथ ग्रहण करके सफल नही बना सके, उनसे कभी कुछ नही होगा। असल बात है विश्वास और निष्ठा। एक से जब काम नही चला तब दूसरे का होना चाहिये, इसी तरह से चेष्टा करते-करते एक दिन असल प्रोग्राम पकड मे आवेगा ही। जय हो अनिलचरण की। कितने सस्ते मे स्वराज्य का रास्ता बतला दिया।

अखिल भारत-चरखा-सघ ने सवाद दिया है कि बीस लाख का चरखा खरीदकर २२ लाख की खादी तैयार हुई है। उत्सव होने लगे, सबने कहा अब चिता की बात नही, विलायती कपडा दूर हो चला। कलकत्ते मे काग्रेस का अधिवेशन होनेवाला है, सुभाषचन्द्र ने कहा, सावधान। मशीन का बना विदेशी एक लच्छी सूत भी प्रदर्शनी मे न घुसने पाये। यह घुसा तो वह नही घुसेगे।

नलनी रजन सरकार (अनु०) सासारिक आदमी हैं। कितने धान मे कितना चावल होता है इसका लेखा-जोखा लगाना उनका पेशा है। ऑखे फाडकर बोले, यह कैसी बात है। विदेशी कपडे का बाइकाट करने की जो प्रतिज्ञा की है। अपने इस बीस बाइस लाख से सत्तर अस्सी करोड का धक्का कैसे सम्हलेगा।

सेन गुप्ता (यतीन्द्र मोहन सेन गुप्ता अनु०) साहब ने दहाडकर कहा हम उसी खद्दर के एक सौ टुकडे

करके लगोटी पहिनेगे। नलनी रंजन ने कहा कि इस बात को जानता हूँ। लेकिन टुकडे क्या उसके एक एक सूत मे भी पूरा नही पडेगा।

सुभाष ने कहा कि कपडे का बाइकाट बाद मे होगा, फिलहाल महात्मा जी बाइकाट बर्दाश्त नही करेगे। किरण शकर ने कहा, ठीक, ठीक। महातमा आये, लोगो से खबर पाकर प्रमाण पत्र भेज दिया कि फ़िलिस सरकस खूब जमा है।

नेताओ ने चू तक नही किया। कही गुस्सा होकर वह स्वराज्य की कुजी रोक न ले, बगाल मे जहाँ जितने आश्रम थे उनके तपविस्यो ने गाल बजाकर नाचना शुरू किया। कैसा हुआ? कसे प्रदर्शनी।

हम बाहर के लोग सोचते हैं, अवश्य ही पूर्ण स्वराज्य है। इसलिये डोमिनियन स्टेटस इन्हे नही रुचता है। आज भी एक बात सोचता हूँ कि अच्छा ही हुआ कि देशबधु स्वर्गलोक सिधार गये हैं। फिलिस सरकस का विवरण उन्हे यग इंडिया के पन्नो मे नही देखना पडा।

सुना है राष्ट्रीय प्रतिष्ठान काग्रेस मे इस बार नेहरू रिपोर्ट पास हो गया है। बहु प्रकार के छलो से भरा हुआ वह आवेदन अन्त मे विलायत की पार्लियामेट मे पेश किया गया है। अब वे ही एक प्रकार से भारत के भाग्य विधाता हैं तो थे ही। पर कहा जाता है कि इस बार की पार्लियामेट महिलाओ के आदेशानुसार बनी है। अतएव अब यही एक प्रकार से भारत के भाग्य विधाता हैं। कहावत है महिलाये दयामयी होती हैं। अब अगर वे इस देश के अभागे पुरुषो पर कही कुछ दया करे।

* *

वर्तमान राजनीतिक प्रसंग

काग्रेस ने गलती की है, इस तरह का एक चीत्कार कुछ दिनो से सुन रहा हूँ। इस कोलाहल मे कितना सत्य है, इस बात पर विचार नही किया गया है।

मैं खुद कभी अचानक किसी विषय पर धारणा नही बना पाता हूँ। जो बुलद आवाज मे प्रचार करते हैं कि उन्ही की माग प्रबल है, उनकी बात भी मैं आसानी से स्वीकार नही कर लेता हूँ। इसीलिये काग्रेस के विरुद्ध इस तर्कहीन निन्दा-प्रचार को मेरे लिये मान लेना कठिन है।

जो इस नये आन्दोलन के अगुआ हैं, उन्हे एक-निष्ठ प्रवीण कार्यकर्त्ता के रूप मे श्रद्धा करता हूँ। देश की राजनीतिक साधना के इतिहास मे उनकी देन को भी कम नही समझता। लेकिन देश के प्रति उनका दु ख-बोध काग्रेस से भी अधिक है, इस बात को सिद्ध करने के लिये किसी नये दल के बनाने की आवश्यकता शायद नही थी। काग्रेस सदा से साम्प्रदायिक विभेद के खिलाफ लडती आई है. आज उसे छोटी सिद्ध करने की चेष्टा से किसी का व्यक्तिगत-गौरव कुछ बढा है या नही हम नही जानते। लेकिन शायद देश का रचमात्र भी नही बढा है।

देश-सेवा नामक वस्तु जब तक धर्म नही बन जाती है, तब तक उसके अन्दर कुछ धोखा रह जाता है इस बात को मैं प्रतिदिन भलीभाँति अनुभव कर रहा हूँ। मेरा धर्म जब देश से ऊपर हो जाता है तभी मुसीबत पैदा होती है महात्मा जानते हैं और वर्किंग कमेटी भी जानती है कि उन्होने भूल नही की है। मालवीय जी और अणे के विरोध ने महात्मा को विचलित नही किया अतएव अगर वह काग्रेस से नाता तोड ही लेते हैं, तो उससे इस गडबडी का कोई सबध नही रहेगा। उन्हे वास्तविक डर है सोशिलिज्म से। उनको घेरे हुए हैं धनिक लोग, व्यापारिक लोग। समाजवादियो को वह कैसे ग्रहण करे? यहा भी महात्मा की कमजोरी को अस्वीकार नही किया जा सकता।

एक बात को मैं जानता हूँ कि बगाल के मुसलमान भी सयुक्त निर्वाचन मागने लगे हैं। नही तो त्रुटि कहा है इसे वे जानते हैं। इस बात को भूलने से काम नही चलेगा कि अधिकाश धनी, मुसलमान, मैनेजर, गुमाश्ता, वकील, डाक्टर की हैसियत से अपनी जाति से हिन्दुओ पर अधिक विश्वास करते हैं। साथ ही मैं यह भी कहता कि प्रत्येक हिन्दू ही तनमन से राष्ट्रीय बाडी हैं। धार्मिक विश्वास मे भी वे किसी से छोटे नही। उनके वेद, उनके उपनिषद बहुतेरे मनुष्यो की तपस्या के फल हैं। तपस्या का अर्थ होता है

विचार। वहुजन की वहुतेरी चिताओ के फलस्वरूप धर्म का निर्माण हुआ है। विधान सभा मे थोडे मे आसनो के कम होने की आशका से उसके सर्वनाश का भय दिखाने की शायद आवश्यकता नही थी।

[नागरिक, दशहरा अंक १३४१]

महात्मा का पद-त्याग

खवर आयी है कि महात्मा गाँधी ने काग्रेस का नेतृत्व छोड दिया है। यह खवर आकस्मिक नही है, कुछ दिनो से इस तरह की एक सभावना हवा मे तैर रही थी। महात्मा राजनीति के प्रवाह से अपने को अलग करके अपने विशाल व्यक्तित्व, विराट कार्य शक्ति और एकाग्रचित्त को भारत की आर्थिक, नैतिक और सामाजिक समस्या के समाधान मे नियोजित करेगे। हुआ यही। देखा गया है कि राष्ट्रीय महासभा के सभामडप मे वहुतेरे कार्यकर्त्ता, वहुतेरे भक्त, वहुतेरे मित्रो का आवेदन, निवेदन, अनुनय, विनय उन्हे अपने सकल्प से डिगा नही सका। डिगाने की वात भी नही। कितनी ही वार कितनी ही विषयो मे सिद्ध हो गया है कि अश्रुधारा की प्रवलता से महात्मा जी को कभी विचलित नहीं किया जा सकता। क्योकि अपने तर्क और वुद्धि से वढकर ससार मे और कोई वस्तु है, इसे शायद वे सोच ही नही सकते थे। लेकिन मैं यह भी नही कहता कि यह वुद्धि मामूली या साधारण है। यह वुद्धि असामान्य असाधारण है। अनुरागियो के ढक रखने के कोशिशो के वावजूद इस वुद्धि ने अत मे उनके सामने यह सत्य उद्घाटित कर ही दिया है कि काग्रेस मे उनकी आवश्यकता कम से कम फिलहाल समाप्त हो गयी है। लेकिन आश्चर्य की वात यह है कि उनके दुस्सह प्रभुत्व के कारण जो लोग अपने को उत्पीडित, लांछित समझते हैं महात्मा के विचार और कार्य-पद्धति को अनुसरण करने मे पग-पग पर आगा-पीछा करते रहे हैं, नेपथ्य मे जिनकी शिकायतो का अत नही था उन्हे भी इस वात को खुलेआम कहने की हिम्मत नही हुई। वल्कि नाना प्रकार से उनका प्रसाद पाने के लिये प्रयत्न पूर्वक उस नेतृत्व पर ही उन्हे प्रतिष्ठित रखने की जीतोड चेष्टा की है। शायद उन्हे इस वात का डर है कि इतने वडे भारतवर्ष मे नेतृत्व करने के लिये उन्हे दूसरा आदमी नही मिलेगा। लेकिन मिलने पर भी मैं यह कहूगा कि जहा स्वतत्र चिन्तन, स्वतत्र मत ने वार-वार प्रतिरुद्ध होकर राष्ट्रीय महासमिति को एक प्रकार से पगु कर दिया है, वहा महात्मा का अथवा और किसी का निरवच्छिन्न सार्वभौम आधिपत्य कल्याणकारी नही है।

आज महात्मा के मत, पथ और तर्क की आलोचना नही करूगा। चरखा देश की अवनति को रोक सकता है कि नही, भद्र अवज्ञा से देश की राजनीतिक स्वतत्रता आ सकती है या नही। भद्र अवज्ञाआन्दोलन का अन्तिम परिणाम क्या है, इन प्रश्नो को आज नही लूगा। लेकिन महात्मा की इस माग को सत्य मानता हूँ कि उनके दिखाये रास्ते से भारत क्षतिग्रस्त नही हुआ है।

किसी जमाने मे काग्रेस आवेदन, निवेदन, अभियोग, अनुयोग की लम्वी तालिका प्रस्तुत करके अपना कर्त्तव्य समाप्त कर देती थी। वगभग के दिनो मे भी राष्ट्रीय महासमिती वग को अपना अग नही सोच पाती थी।

वगाल का प्रश्न केवल मात्र वगालियो का ही प्रश्न था। वम्वई-अहमदावाद, वगालियो के हाथों एक रुपये का कपडा चार रुपये मे वेचते थे। काग्रेस लाचार हो आश्चर्य मे सिर्फ देखती रहती थी। लेकिन इस विच्छिन्न, अक्षय राष्ट्रीय महासमिति को अपने अदम्य, अकपट, विश्वास के जोर से महात्मा ने समग्रता ला दी। शक्ति प्रदान की, प्राण का सचार किया। उनके इस देन को ही कृतज्ञ हृदय मे स्मरण करूँगा। आगे चलकर हो सकता है उनका मत और पथ दोनो परिवर्तित हो, उनके चलाये आदर्श का शायद चिन्ह भी न रहे, फिर भी वह जो कुछ दे गये वह सारे परिवर्तन के वीच भी अमर रहेगा, पराधीनता से मुक्त भारत उनके ऋण को कभी नही भूलेगा, आज काग्रेस मे वह वाहर हो आये है। लेकिन उसे छोडा नही है। छोडने की सूरत भी नही है। जिस शिशु को उन्होने लालन-पालन किया है वह वडा हुआ है। इसीलिए आज अपने कठोर शासन से महात्माजी ने स्वेच्छा से उसे मुक्त कर दिया। इसमे

शोक करने की कोई बात नही है। मुझे आशा है कि इस मुक्ति से दोनों का कल्याण होगा।

[किशलय, द्वितीय वर्ष, प्रथम खंड, छठवां अंक, आश्विन १३४४]

★★

साम्प्रदायिक बंटवारा (१)

आज जिन्होने बंगाल के हिंदुओ का यह सम्मेलन बुलाया है मैं उनमे से एक हूँ। यह विशाल सभा केवल मात्र इस नगर के नागरिको की ही नही है। आज जो लोग एकत्र हुए हैं, वे बंगाल के विभिन्न जिलों के निवासी हैं, सभी का वर्ण शायद एक नही है। लेकिन भाषा एक है, साहित्य एक है, धर्म एक है, गुजर-बसर की प्रारम्भिक बात भी एक है। विश्वास मे जो निष्ठा हमारे इस लोक-परलोक को नियंत्रित करती है वहां भी हम एक दूसरे के गैर नही हैं। पराया समझने के नानाउपायो, नाना कौशलो के बावजूद हम आज भी एक हैं। युग-युगान्त से जिस बंधन ने हमे बना रखा है, वास्तव मे वह आज भी विच्छिन्न नही हो गया है।

बगाल की समग्र हिन्दू जाति की ओर से लोग इस सभा के आयोजनकारी हैं उनकी ओर से मैं सविनय और ससम्मान रवीन्द्रनाथ का आह्वान करता हूँ, इस विशाल सभा का नेतृत्व ग्रहण करने के लिये।

सभापति का परिचय देने की एक प्रथा है। लेकिन रवीन्द्रनाथ के विराट नाम के आगे-पीछे परिचय का कौन-सा विशेषण जोडा जा सकता है? विश्वकवि सार्वभौम आदि लोगो ने पहले ही जोड़ दिया है, लेकिन हम जो उनके शिष्य सेवक हैं, अपने अन्दर केवल कवि का ही उल्लेख करते हैं। बाहर रवीन्द्रनाथ कहते हैं। जानता हूँ सभ्य ससार के एक छोर से दूसरे छोर तक इस व्यक्ति को समझने में किसी को कोई असुविधा नही होगी। कवि का क्लान्त-शरीर दुर्बल, अवसन्न है। इस विशाल जनता के वीच उन्हे लाना खतरे से खाली नहीं है। फिर भी हमने उनसे अनुरोध किया है। मन ही मन इच्छा थी कि यह बात किसी से छिपी न रहे कि इस सभा का नेतृत्व किसने ग्रहण किया? कवि ने स्वीकार किया कहा अच्छी वात है। उनका कथन उन्ही के मुंह से व्यक्त हो। उन्हे आप लोगों के सकृतज्ञ हृदय का नमस्कार निवेदन करता हूँ।

विलायत के मंत्रीगण बहुत दिनों से बडी सावधानी से भारत शासन के लिये नयी मशीन बना रहे हैं। जहाज पर लद चुकी है। आ पहुँचने ही वाली है। उसके कितने छोटे-बडे पहिये हैं कितने दंड हैं, कितने पुर्जे हैं, कौन किस ओर घूमता-फिरता है, किस तरफ आगे बढता है, हममे से कोई ठीक-ठीक नही जानता। और अत तक उसका कितना मूल्य देना पड़ेगा इसकी धारणा भी किसी को नही है। जब मशीन बन रही थी, तब बीच-बीच मे केवल खबर आती थी कि अकल देने के लिये इस देश से उस देश मे बहुत से बुद्धिमान चालांन गये हैं, उन्होने कौन-सा सुझाव दिया, उस सूक्ष्म तत्त्व को हम साधारण लोग नही समझते। हम लोग केवल यही समझ सके थे कि एक पक्ष ने जोर से चिल्लाकर कहा था कि नये मशीन की उसे जरूरत नहीं और दूसरे पक्ष ने धमका कर कहा था कि नये की अलबत जरूरत है, चिल्लाओ मत। अतएव अन्त तक स्वीकार करना ही पडा कि जरूरत है। बहुतों की धारणा है कि वह ईख पेरने की मशीन की तरह वहुत बडी है। उसके एक ओर से रस निकलेगा और दूसरी ओर खुइया भी होगा। रस संचित होकर कहाँ जायगा यह प्रश्न केवल फिजूल ही नहीं शायद अवैध भी है। भय भी है फिर भी प्रश्न किया जा सकता है, राष्ट्र-व्यवस्था मे क्या धर्म विश्वास ही सबसे बडी वस्तु बन गई? और मनुष्य हो गया छोटा? जो व्यवस्था ससार मे कही नही है जिससे कही भी कल्याण नही हुआ, वही इस अभागे देश में विशेष और विचित्र परिस्थिति बन गया। और उसे नाबालिगों के ट्रस्टियो के सिवा और कोई नही समझता।

लेकिन यह राजनीति है। इसकी आलोचना का भार मेरे ऊपर नही है। इस विषय मे जो लोग जानकार हैं, वे ही इसे समझा देने कें योग्य-मात्र हैं। मैं नही।

फिर भी अंत मे एक वात कह दू। किसी की धारणा है कि हमने न्याय की आशा से विलायत स्मारक-पत्र भेजा है, हममे से किसी को यह विश्वास नही है, हमने अन्याय का प्रतिवाद भेजा है। नया शासन-विधान शुरू से आखिर तक खराब है, उस असीम खराबी के अंदर बगाल के हिन्दू सबसे अधिक

क्षतिग्रस्त हुये हैं, कानून की कील ठोककर उन्हे सदा के लिये छोटा कर दिया गया है। फिर भी यह सच है कि देश के मुसलमान भाइयो को दस पन्द्रह अधिक स्थान मिले हैं, इससे उनके प्रति हमारे अदर क्रोध नही है। लेकिन जो लोग इस अन्याय के जनक हैं, उनसे कहना चाहता हूँ कि अन्याय, अविचार एक आदमी के प्रति होने पर भी वह अकल्याणकर है, उससे अन्त तक मुसलमान, हिन्दू, जन्म-भूमि किसी का कल्याण नही होगा।

[१५ जुलाई १९३६ मे कलकत्ता टाउनहाल मे साम्प्रदायिक बंटवारे के विरुद्ध होनेवाली सभा का उद्घाटन-भाषण (वातायन श्रावण, १३४३)]

★ ★

साम्प्रदायिक बंटवारा (२)

नये शासन विधान मे भारतवर्ष के हिन्दू, विशेषकर बगाल के हिन्दुओ के प्रति जो अविचार किया गया है, इतना बडा अविचार दूसरा नही हो सकता। बहुतेरे लोग यह सोच सकते हैं कि इस अविचार के प्रतिवाद करने की क्षमता हमारे हाथ मे नही है और यही सोचकर वे निश्चेष्ट रहेगे, प्रतिवाद नही करेगे। लेकिन यह सच नही है। लेकिन अगर इस अन्याय को रोकने की क्षमता किसी मे है तो हमी मे है।

अपने सामर्थ्य के अनुसार मैं आजन्म साहित्य सेवा करता आ रहा है। इस असामयिक देश का साहित्य बडा हो, और इस आशा मे ही साहित्य के कार्यो मे, देश के कार्यो मे अपने को सपूर्ण रूप से नियुक्त किया है। लेकिन अब ऐसी हालत हो चली है कि मुझे भय है कि शायद दस वर्षो मे साहित्य का एक दूसरा युग आ जायगा। शायद तब मैं नही होऊगा। इसीलिये अभी से उस हालत की बात सोचकर शकित हो गया हूँ। बगला साहित्य को विकृत करने की एक हीन-प्रचेष्टा चल रही है, कोई कह रहा है कि सख्या के अनुपात मे भाषा के अन्दर इतने अरबी शब्दो का व्यवहार करे। कोई कह रहा है इतने फारसी शब्दो का व्यवहार करे। और कोई कह रहा है कि इतने उर्दू शब्द व्यवहार करे, इसका कोई कारण नही है। जैसे छोटे बच्चे के हाथ मे चाकू पडते ही वह घर की सारी चीजो को काटता फिरता है यह भी वैसा ही है।

इसके बाद हम लोगो पर, हिन्दुओ पर इतना बडा अविचार हुआ इसे जानकर भी चुप रहे। यही सबसे बडे दु ख की बात है। इस बात को क्या वे नही समझते हैं कि यह जहर यह क्षोभ जो हिन्दुओ के मन मे सचय हुआ वह किसी न किसी दिन प्रकट होगा ही। इसकी एक प्रतिक्रिया है, इसे भी क्या वह नही सोचते हैं। इस तरह से देश का काम नही चल सकता, एक जाति जिन्दा नही रह सकती। यह तो उनकी भी जन्मभूमि है। देखिये, केवल कह देने से ही काम नही चलता है ग्रहण करने की बोलने की शक्ति भी एक शक्ति है। आज अगर वे समझते हैं कि ब्रिटिश सरकार ने उन्हे दे दिया, इसीलिये मिला। एक दिन वे समझेगे कि यह कितनी बडी भूल है।

मैं अपने मुसलमान भाइयो से कहता हूँ कि तुम लोग संस्कृति पर नजर रखना, साहित्य पर नजर रखना। छोटे बच्चो की तरह हाथ मे तेज चाकू पाकर सब कुछ काट मत डालना।

मेरा मत है कि अन्याय को स्वीकार नही करना चाहिये, यथासाध्य प्रतिकार करना चाहिये। इसी से मनुष्य बनता है। हमारे ऊपर यह जो अन्याय हो रहा है उसका पतिकार करना ही होगा। अगर नही कर सकते तो दस साल के बाद बगाली आज जिस बात को लेकर गौरव करते हैं, उसका कुछ भी नही रहेगा। इसलिये मेरी तुच्छ शक्ति से जितना बन पडेगा मैं इस अन्याय का प्रतिवाद करूंगा। क्योंकि इस अन्याय को चलने दिया जाय तो देश के हिन्दू मुसलमान किसी का कल्याण नही होगा।

[सांप्रदायिक फैसले के प्रतिवाद में कलकत्ते के एल्बर्ट हाल में होनेवाली सभा के सभापति का भाषण। वातायन, १६ श्रावण १३४३]

☆ ☆